Guaranteed Circulation 7

र्ष १ ; खंड १]   मार्गशीर्ष, ३०५ तु० सं०   [संख्या ५ ; पूर्ण संख्या ५

वसुधा

76022



प्रधान संपादक

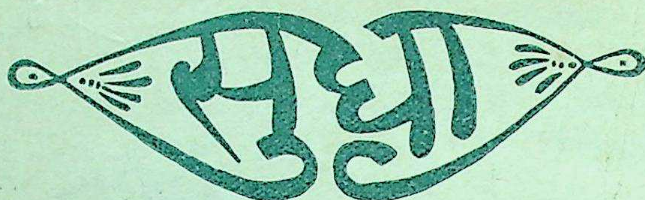
श्रीदुलारेलाल भार्गव

अंक मूल्य ६।)   तिमाही मूल्य २)

P. B. No. 37 Mount Ro...

आपको विज्ञापन कहाँ देना चाहिए ?

हिंदी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका



में।

क्यों ? किसलिये ?

इसलिये कि—

(१) राजे-महाराजे, रईस-ताल्लुक़ेदार, अमीर-उमराव, वकील-बैरिस्टर, डॉक्टर-वैद्य, मिलों के मालिक और दूकानदार, कोठीवाले और महाजन, अध्यापक और विद्यार्थी, सभी इसे पढ़ते हैं। इसमें विज्ञापन देने से घर बैठे आपकी तिजारत की ख़बर इन सबको मिल जायगी, और आप ही से ये लोग माल मँगाएँगे। देखिए, रोज़गार बढ़ाने का कैसा अच्छा और सस्ता तरीक़ा है !

(२) यह हिंदी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका है। इसके प्रत्येक पृष्ठ को लोग बड़े चाव से देखते हैं, और सदा नई-नई वस्तुओं की खोज में रहते हैं। फिर बताइए, आपकी चीज़ अगर नई, बढ़िया, सुंदर और उपयोगी हुई, तो वे क्यों नहीं उसे ख़रीदेंगे ?

(३) सभी बड़े-बड़े व्यापारी अपना विज्ञापन इसमें छपवाकर काफ़ी लाभ उठा रहे हैं। इसके विज्ञापन के पृष्ठों को देखिए ! फिर आप ही सुस्त क्यों बैठे हैं ?

(४) यह हिंदुस्थान के कोने-कोने में जाती है। कहीं भी आपकी वस्तु की आवश्यकता होगी, माँग आपके पास सीधी आएगी।

(५) इसकी ग्राहक-संख्या तेज़ी से बढ़ रही है। यह सबसे अधिक लोक-प्रिय हो रही है। लाखों स्त्री-पुरुष इसे पढ़ रहे हैं। इसीलिये हमें एक-एक अंक के दो-दो संस्करण करने पड़े हैं ! हिंदी की मासिक पत्रिकाओं के इतिहास में यह एक बिलकुल नई घटना है !

(६) इसमें सभी विषय के लेख रहते हैं, अतएव सभी विचार और प्रकृति के लोग इसे पढ़ते हैं। सो अगर किसी भी चीज़ की किसी को आवश्यकता हुई, तो वह इसी के विज्ञापन-पृष्ठों में पहले उसका विज्ञापन खोजेगा, फिर और किसी से पूछेगा !

(७) अधिक प्रचार होते हुए भी इसके विज्ञापन-छपाई के रेट भी सोच-विचारकर रक्खे गए हैं, जिसमें सभी श्रेणी के लोग विज्ञापन छपा सकें। ऐसा मौक़ा क्यों चूकते हैं ? क्या आपको और कुछ जानना है ? यदि हो, तो पत्र लिखकर पूछिए।

शीघ्रता कीजिए। कंट्रैक्ट कर लीजिए। नहीं तो संभव है, आगे चलकर इसके विज्ञापन-रेट बढ़ाने पड़ें। क्योंकि कोई क्या कह सकता है कि सुधा की ग्राहक-संख्या आगे कितनी हो जाय।

मैनेजर 'सुधा', लखनऊ

लेख-सूची

R 576

चित्र-सूची

पृष्ठ

(क) रंगीन

(ख) व्यंग्य

(ग) सादे

रोग शत्रु पर विजय का डंका

हिन्दुस्तान और विदेशों की रिपोर्ट से साबित

सरकार से रजिस्टर्ड





कफ, खांसी, हैज़ा, दमा पेचिश, पेटदर्द, नज़ला बुखार, बालकोंके हरे पीले दस्त, आदि रोगों की स्वादिष्ट और बिना अनोपान की अचूक दवा है। क़ीमत फ़ी शीशी ॥) आठ आ. वी. पी. ख़र्च एक से ३ तक ।≈) आना १२ शीशी का दाम सिर्फ़ ४≋) चार रु. तीन आना डांक ख़र्च माफ़

हाय ! खुजाते खुजाते मर चले



तो हम क्या करें हमने तो पहिले ही कहा था कि दादपर 'दादका काल' लगादो वरना रोओगे।





पुरानेसे पुराने व कठिनसे कठिन दादको बिना किसी कष्ट व जलन के २४ घंटे में जड़से खोने वाली मशहूर दवा है क़ी. फ़ी शी. ।) ख़र्च १से३ तक ।≈) १२ शी.का मू. १॥।-) ख़र्च माफ़

पता ☛ सुन्दर शृङ्गार महौषधालय मथुरा।

मुफ़्त ! मुफ़्त !! मुफ़्त !!!

"गृहस्थ-चिकित्सा"

इसमें सब रोगों के कारण, लक्षण और चिकित्सा का वर्णन है।

सर्वोत्कृष्ट रसायन

सिद्ध मकरध्वज वटी

मू० ६० गोली ५)

ये गोलियाँ पहली मात्रा से ही अटूट बल देती हैं। विशेष पौष्टिक, बल-वीर्य-वर्द्धक, वीर्य-स्तंभक और नामर्दी रोग की शर्तिया दवा हैं; बीसों प्रकार का प्रमेह, बहुमूत्र, धातुक्षीणता, नज़ला, जुकाम, खाँसी, नसों की कमज़ोरी और शीघ्रपतन रोग दूर होता है।

इसके सेवन से स्नायुमंडल पुष्ट होता है। दृष्टि, श्रवण-शक्ति मज़बूत, सूक्ष्म और तेज़ हो जाती है। यह बुढ़ापे और मृत्यु को दूर करती है। मेदा ठीक-ठीक काम करता है, और याददाश्त बढ़ जाती है। दिल-दिमाग़ मज़बूत होता है। एक महीने तक ६० गोली सेवन करने से पूर्ण आयु और पूर्ण यौवन प्राप्त होता है।

मिलने का पता—
मैनेजर आदर्श-औषधालय, मथुरा

विधारा जंगल की जड़ी है।

रेचक और बलकारक है। दमा, बवासीर तथा धातुपुष्टि की एक ही औषधि है। विधारा और अश्वगंधा यदि नित्य सेवन किया जाय, तो मनुष्य अपने सब रोगों को दूर कर सकता है। और, किसी समय में बलवान् हो जायगा।

मूल्य २ पैसेकी एक खूराक

साँवलदास खन्ना चौक, प्रयाग

मुफ़्त !!!

आयुर्वेदिक, यूनानी, होम्योपैथिक, बाइ-केमिक, दंत-रचना एवं चश्मा साज़ी की शिक्षा और सनदयाफ़्ता डॉक्टर, वैद्य या हकीम बनने के सरल नियम मुफ़्त मँगाओ। परीक्षा देनेवाले शीघ्र प्रार्थना-पत्र भेजें। डॉक्टर बी० सी० शुक्लाज़।

दी प्रिंस होम्योपैथिक ट्रेनिंग कॉलेज
(सरकार से रजिस्टर्ड)

अपने ढंग के निराले नाटक

कर्बला

लेखक, हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत प्रेमचंद बी० ए० । मौलिक नाटक । हज़रत मुहम्मद के नवासे हज़रत हुसेन की शहादत का करुणा-जनक ऐतिहासिक वृत्तांत । मुसलिम इतिहास की सबसे हृदय-विदारक, युगांतरकारी और महत्त्व-पूर्ण घटना । वीर, भक्ति और करुण-रस का अनुपम दृश्य । पढ़ते वक्त कलेजा हाथों से थाम लेना पड़ता है । इतनी बड़ी ट्रेजेडी कदाचित् समस्त संसार में न हुई होगी । हुसेन का अपने समस्त परिवार को और अपने प्राण को भी इसलाम की मर्यादा पर बलिदान कर देना, कर्बला के निर्जन और निर्जीव मैदान में प्यास से तड़प-तड़पकर मरना दिल हिला देनेवाले दृश्य हैं । इस घटना को इसलामी इतिहास का महाभारत समझना चाहिए । उसी वीरात्मा के शोक में आज तक समस्त इसलामी संसार में दस दिन तक मुहर्रम का मातम होता है । मूल्य १॥), सुनहरी रेशमी जिल्द २)

कृष्णकुमारी

अनुवादक, पं० रूपनारायणजी पांडेय । यह पुस्तक बँगला के सर्वश्रेष्ठ काव्य "मेघनाद-वध" के रचयिता, महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त के सबसे बढ़िया ऐतिहासिक नाटक "कृष्णकुमारी" का अनुवाद है । सुंदर छपाई । काग़ज़ बढ़िया । कई सादे और रंगीन चित्र भी दिए गए हैं । मूल्य केवल १), सजिल्द १॥)

जयद्रथ-बध

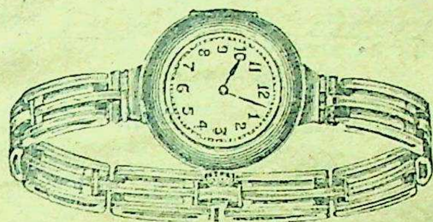
अनुवादक, पं० गोकुलचंद शर्मा बी० ए० । श्रीयुत प्रोफ़ेसर परशुराम-नारायण पाटणकर एम्० ए० के 'वीर-धर्म-दर्पण'-नामक संस्कृत-नाटक का हिंदी-अनुवाद । भाषा का लालित्य, काव्य की कमनीयता, भाव की भावुकता आदि में यह किसी भी मौलिक पुस्तक से कम नहीं । यह गद्य-पद्यमय वीर-रस-पूर्ण नाटक है । वीरता के ओजस्वी वर्णन पढ़कर रोम-रोम फड़क उठता है । वीर और करुण-रस पढ़ते बनता है । मूल्य केवल ।।।=)

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय लखनऊ

ग़ज़ब ! **हैरत !!** **आश्चर्य !**

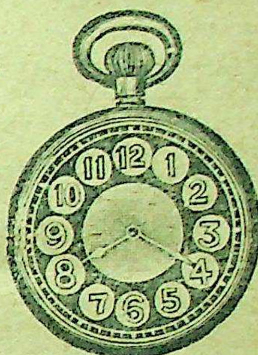
इस अद्वितीय सुअवसर से चूकनेवालों को केवल पछताना ही हाथ लगेगा ! प्रिय मित्र महोदय ! निम्न ... अत्यंत सुंदर, फ़ैंसी और बिलकुल सच्चा टाइम देनेवाली मय निम्नांकित दूसरे क़ीमती सामान के एकदम बड़ी भारी संख्या में मँगवाने के कारण सस्ती आ पड़ी हैं, जिससे हम भी अपने ग्राहकों के लाभार्थ सस्ते दामों अर्थात् आधे से भी कम दामों पर बेच रहे हैं। अस्तु. मँगाने में शीघ्रता करें और अपने इष्ट-मित्रों को भी इस विज्ञापन की सूचना दे दें क्योंकि इसकी रोज़ाना धड़ाधड़ बिक्री के कारण यह सुअवसर जल्दी ही समाप्त हो जायगा और फिर दुगने दामों पर भी इसके साथ का माल कहीं न मिल सकेगा।

२५) की चार घड़ियाँ केवल १०) में !

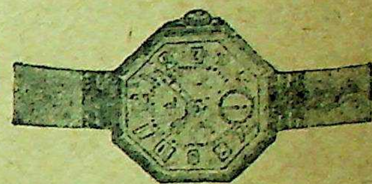


नं० १

५ साल की गारंटी का पर्चा इन घड़ियों के साथ हम भेजते हैं। लेकिन १०-२० साल तक चल जाना इनके लिये मामूली बात है। तीन सेट एक साथ मगाने से डाक ख़र्च भी माफ़।



नंबर २



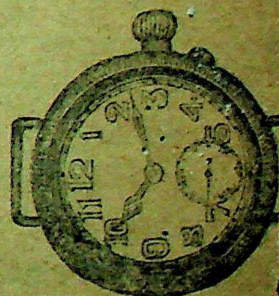
नंबर ३

१—अत्यंत सुंदर बढ़िया फ़ैंसी रिस्टवाच चाबी ३६ घंटा, २—रेल्वे रेगुलेटर लीवर, पाकेट वाच, एंजिन मार्क, चाबी ३६ घंटा, ३—बढ़िया क्वालिटी की सुंदर जर्मन वी टाइमपीस, ४—बच्चों के लिये निहायत ख़ुशनुमा बेबीज़ टायरिस्ट वाच केवल ६॥।) में असली पाकेट फ़ैंसी लीवरवाच या ९) में बढ़िया रिस्टवाच मय महसूल डाक और साथ में ४५-४५ निम्न-लिखित वस्तुएँ मुफ़्त।

श्रीमन् महोदय ! यह वही असली घड़ियाँ हैं, जो इससे पहले केवल घड़ियाँ ही ८) और १२) में बिकती थीं और जो इस समय हम ४५-४५ वस्तुओं-सहित केवल ६॥।) और ९) में मुफ़्त बराबर लुटा रहे हैं। और वह भी महसूल डाक सहित ... ख़ूबी यह कि तीन सेट एक साथ मँगाने से पाकेट वाच के साथ १६॥) और रिस्टवाच के साथ २६।) ही डा० ख़० सहित लिए जायँगे। घड़ियों की प्रशंसा करना हमारा काम नहीं है, आप स्वयं ही माल देखकर तारीफ़ न करने लगें तो हमारा ज़िम्मा ...

इनाम में ४५ वस्तुएँ क्या-क्या मिलेंगी





(१) घड़ी की सुंदर चेन या तस्मा (२) घड़ी रखने का फ़ैंसी बक्स (३) कमीज़ के बटनों का उत्तम मुकम्मिल सेट (४) अत्युत्तम सोने के मुलम्मे की नगदार अँगूठी (५-६) अत्युत्तम सोने के मुलम्मे की डायमंड चूड़ियाँ १ जोड़ा (७) बढ़िया फ़ैंसी कंघा विलायती (८) अमृत सुर्मा जिसको लगाने से आँख सदैव नीरोग रहती है (९) सुर्मा लगाने की सलाई (१०) मुँह हाथ धोने का सुगंधित साबुन (११) बाल उड़ाने का सुगंधित साबुन (१२) मुँह देखने का सुंदर विलायती शीशा (१३ से २२) १० अदद सुंदर लिफ़ाफ़े (२३ से ३२) १० अदद उत्तम लेटर पेपर (३३) फ़ैंसी चाकू (३४) बढ़िया पेंसिल (३५) बढ़िया विलायती होल्डर मय निब (३६) पेंसिल क्लिप (३७) शीशे की दावात (३८) असली स्याही (३९) रंगदार ४ शीशों का बढ़िया चश्मा (४०) उमदा सेफ़्टी पिन (४१) आलपीनों का पूरा सेट (४२) रेशमी इज़ारबंद (४३) बढ़िया पाकेट रुमाल (४४) विलायती इतर की शीशी (४५) रबड़ का गेंद। यह सब बढ़िया लाभदायक वस्तुएँ घड़ियों के साथ मुफ़्त मिलती हैं, इससे बढ़कर नफ़े का सौदा और क्या होगा ? इसलिये यह सुअवसर हर्गिज़ हाथ से न छोड़ें।

पता—जी० सी० आहूजा ऐंड संस (S) कटरा घनइयाँ, अमृतसर

३६ साल का परीक्षित
भारत-सरकार तथा जर्मन गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड

६३,००० एजेंटों द्वारा बिकना दवा की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण है।



(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगंधित दवा है, जिसके सेवन करने से कफ़, खाँसी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द, बालकों के हरे-पीले दस्त, इन्फ़्लुएंज़ा इत्यादि रोगों को शर्तिया फ़ायदा होता है। मूल्य ॥) ; डाक-ख़र्च १ से २ तक ।=)



दाद की दवा

बिना जलन और तकलीफ़ के दाद को २४ घंटे में आराम दिखानेवाली सिर्फ़ यही एक दवा है। मूल्य फ़ी शीशी ।) ; डाक-ख़र्च १ से २ तक ।=), १२ लेने से २।) में घर बैठे देंगे।



दुबले-पतले और सदैव रोगी रहनेवाले बच्चों को मोटा और तंदुरुस्त बनाना हो, तो इस मीठी दवा को मँगाकर पिलाइए। बच्चे इसे ख़ुशी से पीते हैं। दाम फ़ी शीशी ॥) ; डाक-ख़र्च ॥)

पूरा हाल जानने के लिये सूची-पत्र मँगाकर देखिए। मुफ़्त मिलेगा।

ये दवाइयाँ सब दवा बेचनेवालों के पास भी मिलती हैं।

सुख-संचारक कंपनी, मथुरा

भारत गवर्न्मेंट से रजिस्ट्री किया हुआ। सूचीपत्र मंगालो। एजेन्टों की जरुरत है

संकट मोचन



कफ, खांसी दमा, हैजा, शूल, संग्रहणी पेट का दुखना, जी मिचलाना आदि पेट के हर एक रोगों की अचूक दवा

मूल्य ।) फी शीशी खरचा अलग

३ शीशी १॥) ६ शीशी २॥) १२ शीशी ४॥) खर्चा माफ

एल. पी. नागर कं. नं २२ मथुरा।

THE

GANGA FINE ART PRESS,
LUCKNOW.

Telegrams: GANGA, LUCKNOW. Telephone No. 6.

All kinds of Job Work

and

Designs for advertisement

in

Vernacular and English.

TERMS: Moderate Execution: Excellent
Delivery: Prompt.

Payment: Part in Advance,
Balance on delivery.

FOUNTAIN PENS

of various makes and qualities
STOCKED BY
BHOLA NATH & CO.,
Hardware, Paint & General Merchants,
Stationers & Rubber Stamp Makers,
30, Aminabad Park, LUCKNOW.

हमारे मंत्र-भंडार का विषय पढ़कर विश्वास नहीं होता, परंतु सर्वथा सत्य है!

सचित्र मंत्र-भंडार

कौड़ी उड़ाकर या थाली साटकर साँप, बिच्छू, गीद आदि समस्त विषैले जीवों के विष तथा डाइन की नज़र झाड़ने के २०० मंत्र, बात-की-बात में स्त्री-पुरुषों को वश करने के ४० मंत्र, विलासिता और स्तंभन आदि के, आज़माई औषधियों के, सैकड़ों नुसख़े सरल भाषा में इसमें दिए हुए हैं। कोई भी आसानी से लाभ उठा सकता है। इसे पुस्तक नहीं, कल्पतरु जानिए। फिर भी प्रचारार्थ इसका मूल्य केवल १।।) ही रक्खा गया है।

मिलने का पता—
रामप्रसाद गुप्त, वैद्यनाथधाम

'अवश्य ही पुत्र लाभ होगा'

जिन स्त्रियों को केवल पुत्रियाँ ही होती हों, पुत्र न होता हो, उनको गर्भ के तीसरे मास के लगते ही पुत्र-दा गोली खानी चाहिए। अवश्य ही पुत्र होगा। अगर पुत्र न हो, तो दाम वापस दिया जायगा। मूल्य केवल १०) दस रुपए।

रामलक्ष्मण गुप्त
अध्यक्ष सुधा फ़ार्मेसी, शाहाबाद (पंजाब)

१००,००० पैकेट मुफ़्त !!!

"नमक पचलोना"

नमूना तुरंत मँगाइए। हाज़मा बिलकुल दुरुस्त। खूब स्वादिष्ट चूर्ण।

मिलने का पता—
मेसर्स अमृतलहरी कंपनी
पो० कुरथा, जि० गया

हिंदी क़ानून की पुस्तकें

क़ानून दीवानी ॥=), क़ानून फ़ौजदारी १।), ताज़ीरातहिंद १॥।), बृहत् क़ानून-दर्पण ५५ क़ानूनों का सार १।), क़ानून रेलवे १), क़ानून पुलिस ॥), डाकख़ाना ॥), गोद ॥), क़ानून शहादत १।), रजिस्ट्री ॥), ख़ानदानमुशतर्की ॥), मियाद समाअत ॥।), पंचायत ऐक्ट ॥), तार ।), जुआ ।), प्रेस ॥), नया क़ानून ज़ाब्ता आराज़ी १।) रु०।

विना उस्ताद के पढ़ानेवाली किताब इँगलिश-टीचर १।), उर्दू-टीचर ॥।), टेलीग्राफ़-टीचर ॥), बंगाल का सच्चा जादू १)

हर तरह के ताले और मुहरें भी बनते हैं।

पता—**आर० एल० जैन कंपनी**
नं० ११, जैन स्ट्रीट, अलीगढ़ (यू० पी०)

श्वेत-कुष्ठ की असली फ़क़ीरी औषधि

यह औषधि १ मास से कम में छुड़ा देनेवाली छूमंत्र नहीं है। बल्कि खाने और लगाने से १ मास में श्वेत-कुष्ठ जड़ से नष्ट हो जाता है। परंतु गुण प्रथम ही दिन से मालूम होने लगता है। आराम न हो, तो कुल दाम वापस। विश्वास न हो, तो शर्त लिखा लें। दोनों औषधियों का एक साथ मू० ५) रु०

फ़क़ीरी फ़ार्मेसी, नं० ४३, लहेरिया सराय

FREE!



कोकशास्त्रों की दादी

हिंदी जानने वाले पूरे रईशों का पुरा पता भेजकर मुफ्त मंगाइये

पता-रसायनघर, पो० हेस्टीङ्स, कलकत्ता

हमारी औषधियाँ झूठी साबित करनेवालों को

दो हज़ार रुपए इनाम

जाड़े में खाकर लुत्फ़ उठाइए। डाक-ख़र्च माफ़।

१—काम शक्ति नवजीवन—सुस्त व कमज़ोर शरीर में विद्युल्लता-सा चमत्कार दिखाता है। यदि आप अज्ञानतावश अपने ही हाथों अपने तारुण्य को नाश कर बैठे हों, तो इस अद्भुत उपयोगी औषधि को अवश्य खाइए। आप देखेंगे कि यह कितनी शीघ्रता से आपको यौवन-सागर की लहलहाती हुई तरंगों का मधुरास्वाद लेने के लिये लालायित करता हुआ सत्य ही नवजीवन देता है! इस नवजीवन से नपुंसकता तथा शीघ्रपतन आदि लज्जाकारी विकार इस प्रकार नाश होते हैं, जैसे वायु-वेग से मच्छर। ६०-७० वर्ष तक के वृद्ध पुरुष इसके सेवन से लाभ उठा सकते हैं। जो मनुष्य वर्ष में एकबार भी इसका सेवन करेगा, वह काम-शक्ति की कमी की शिकायत हरगिज़ नहीं करेगा। यदि आपको रति-सुख का मनमुराद आनंद लूटना हो, तो एक बार इस महौषधि का सेवन कर देखिए। २४ दिन पर्यंत सेवन करने में काम-शक्ति का रोकना अत्यंत ही अशक्य हो जाता है। इसके सेवन-कर्ता इसकी स्तुति अपने मित्रों से ख़ुद ही करने लगते हैं। अधिक प्रसार करने की ही इच्छा से हमने इस अमूल्य औषधि को थोड़े-से मुनाफ़े पर देने का विचार किया है। २४ दिन सेवन करने-योग्य औषधि की क़ीमत ३) है। स्त्री-विरही मनुष्य इसे मँगाने का परिश्रम न करें। यदि धातु गिरती हो, या अशक्ति ज़्यादा हो, तो प्रथम "जवाँमर्दमोदक" का सेवन कर इसे उपयोग में लावें, तो अजीब फ़ायदा देखेंगे।

२—जवाँमर्दमोदक—इसकी तारीफ़ हम ही ख़ुद क्या करें? जो मँगाते हैं या दवाख़ाने से ले जाते हैं, वही दूसरों के पास इसकी स्तुति करके उनसे मँगाने का आग्रह करते हैं। बिलकुल गए-गुज़रे नपुंसक को छोड़कर बाक़ी कैसी ही अशक्ति या इंद्रिय-शिथिलता क्यों न हो २१ दिन के सेवन से जादू के समान दूर होती है। वीर्य पानी-सा पतला हो गया हो, स्वप्न में या मूत्र के साथ वीर्य जाता हो, इंद्रिय-शिथिलता, कड़की, अग्निमांद्य, मूत्रसंकोच, मूत्रातिटेक, शरीरदाह, विद्यार्थियों का विद्याभ्यास में चित्त न लगना और स्मरण-शक्ति का कम हो जाना, मुखश्री का निस्तेज व फीका पड़ना, आलस्य, उत्साहहीनता, शरीर का दुबलापन, शरीर, सर, छाती, पीठ-कमर आदि में पीड़ा, स्त्रियों के सर्व प्रकार के प्रदर आदि धातु-क्षीणता के कारण होनेवाले सर्व विकार और कोई भी बीमारी से उठने के पश्चात् जो अशक्ति रहती है, वह इस मोदक के सेवन से इस प्रकार भागती है, जैसे सिंह को देखकर मृग। वीर्य गोंद-सा गाढ़ा करके स्तंभन लाता है। रति में कमज़ोरी आने नहीं देता। शीघ्र स्खलनता का दोष दूर कर सच्चा आनंद देता है। रोगी-नीरोगी यदि हर साल एक वक्त सेवन कर लें, तो वृद्धावस्था में भी काम-शक्ति कम न होगी। शरीर हट्टा-कट्टा और तेजस्वी होता है। बहुत क्या लिखें? बाल, वृद्ध, तरुण को "जवाँमर्द" बनाने में इसके समान आपको दूसरी सच्ची औषधि कहीं न मिलेगी। इसका प्रसार ज़्यादा करने की इच्छा से इसे बहुत थोड़े मुनाफ़े पर दे रहे हैं। २१ दिन की ख़ुराक़ की क़ीमत २॥) है। इसके सेवन के पश्चात् ही जो "काम-शक्ति नवजीवन" सेवन करेंगे, वे इसके गुण गाएँगे।

१. प्रसिद्ध डॉक्टर एल० जी० आवरो (डी० ई० टी०) नागपूर लिखते हैं—"आपकी शक्ति की दवाइयाँ हमने आपके दवाख़ाने से मँगवाकर अनेक मुश्किल बीमारों पर अनुभव कीं। सचमुच ही आपके इश्तिहार की तारीफ़ के समान ही बहुत गुणकारी साबित हुईं। वे बीमार आपकी औषधियों की बहुत ही स्तुति करते हैं। उनके ही ज़रिए से नए-नए बीमार बहुत ही आना शुरू हैं। इससे बराय मेहरबानी काम-शक्ति नवजीवन की आठ शीशी और जवाँमर्द मोदक के दस डब्बे भेजे हुए हमारे मनुष्य को दे दीजिए। पचास रुपए नक़द भेजता हूँ। जो कमीशन उचित समझें, काटकर हिसाब भेजिए।"

२. जनाब सेठ नूरमुहम्मद पो० मोहगाँव ज़ि० छिंदवाड़ा लिखते हैं—"आपका मराठी में इश्तहार देखकर पोस्ट द्वारा हमने जवाँमर्द मोदक व काम-शक्ति नवजीवन क़रीब एक साल हुआ मँगाया था। उससे बहुत ही कुछ फ़ायदा होने की वजह से हमारी सिफ़ारिश से हमारे एक दोस्त ने, जो बहुत सख़्त कमज़ोर थे, यही दोनों दवाइयाँ मँगाकर इस्तेमाल कीं। वह भी निहायत ख़ुश हुए। आपकी दवाइयाँ सचमुच ही फ़ायदेमंद हैं। अव्वल मोदक खाकर बाद नवजीवन के इस्तेमाल से अक्सीर-जैसा फ़ायदा ज़रूर ही होता है। हमारे दोस्त को किसी की दवाई से फ़ायदा नहीं हुआ। मगर आपके ज़रिए वह घर-संसार को लग गए। आपके हक़ में वह रात-दिन दुआ करते हैं। अब जाड़े का मौसम आनेवाला है, इस सबब से फिर मेरे और दो दोस्तों के लिये 'तीन शीशी काम-शक्ति नवजीवन और तीन डब्बे जवाँमर्दमोदक' के बज़रिए वी० पी० जल्द रवाना करने की मेहरबानी करें।"

यह दोनों औषधियाँ हमारे दवाख़ाने की मूर्तिमंत कीर्ति हैं। यह औषधियाँ झूठी हैं, ऐसा साबित करनेवाले को २००० रुपया इनाम दिया जावेगा। दूसरे झूठे विज्ञापनों की नसीहत पहुँचने के सबब जो इस विज्ञापन को भी झूठ समझेंगे, वह इन सच्ची गारंटी की दवाइयों से दूर रहेंगे। जो अनुभव करेंगे, उन्हें स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि सत्य ही औषधियाँ दवाख़ाने के नाम की गुणकारी हैं। रोगी और नीरोगियों को सर्दी के मौसम में अवश्य सेवन करके सच्चा आनंद और लुत्फ़ उठाना चाहिए। क़ीमत के अलावा डाक-ख़र्च ।≈) ज़्यादा पड़ेगा। इस सर्दी के मौसम-भर रियायत की जाती है कि जो कोई "सुधा" में पढ़कर एक साथ दोनों औषधियाँ वी० पी० से मँगावेंगे, उन्हें डाक व पैकिंग-ख़र्च माफ़। पत्र-व्यवहार गुप्त रक्खा जाता है। हिंदी या अँगरेज़ी में पता साफ़ व स्पष्ट लिखें।

मैनेजर—नवजीवन दवाख़ाना, (सु) नागपूर सिटी

... का उल्लेख करने की कृपा अवश्य करें।

SANYASI ASHRAM SARGODHA'S

चंद्रावली

रजिस्टर्ड

यह भारत के प्राचीन गौरव की एक स्मारक तथा आश्रम की प्राचीन ऋषियों की मौरूसी संपत्ति है, जो स्त्रियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के मासिकधर्म-संबंधी तथा अन्य व्यतिक्रमों से उत्पन्न हुए बंध्यात्व (बाँझपने) को समूल नाश कर देती है। इसका व्यवहार उस उन्नति की आशा की एक शर्तिया झलक दिखाता है, जो भारत के गौरव के दिनों में देशी औषधियों से प्राप्त थी। नीचे लिखे हुए प्रशंसा-पत्रों से हमें आशा है, आप यह मालूम कर सकेंगे कि व्यवहार-कर्ताओं को इसका गुण कहाँ तक प्रतीत हुआ है—

डॉ० प्रतापसिंह एम्० बी०, बी० एस्०, नौशहरा (*Via Khusab, N. W. Ry.*) लिखते हैं कि—"जैसा कि आपको मालूम है, मेरे ब्याह के १३ वर्ष बाद तक मेरी स्त्री के मासिकधर्म ठीक नहीं होता था। कभी होता ही न था, और होता भी था, तो असह्य वेदना के साथ। इसी के फल-स्वरूप उसके कोई बच्चा भी नहीं हुआ। इतना अधिक समय हो जाने का मुझे दुःख न था; परंतु सोच था अपने भविष्य के अंधकार का। मेरी स्त्री की बेचैनी की बाबत तो कहना ही व्यर्थ है। ख़ैर, दैव-प्रेषित आपकी चंद्रावली मुझे मिली। पहली बोतल के पीने से ही उसकी मासिकधर्म-संबंधी सभी बीमारियाँ दूर हो गईं, और आश्चर्य तो यह हुआ कि उसके गर्भ के भी लक्षण प्रतीत होने लगे। मैंने इसी सिलसिले में एक बोतल और भी पिलाई, जिससे गर्भ पका हो गया।

मैं इसके लिये आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ, क्योंकि मैंने अपनी स्त्री की दवा-दारू में कोई बात उठा न रक्खी थी। और, यहाँ तक कि उसके गर्भाशय का ऑपरेशन भी करवाया था। परंतु उससे रत्ती-भर भी फ़ायदा न हुआ। अब तो मैं यही कहता हूँ कि चंद्रावली ने ही मुझे पुत्र-रत्न प्रदान किया है।"

डॉ० ज्ञानसिंह एम्० बी०, बी० एस्० *Incharge Guru Ram Das Hospital* अमृतसर लिखते हैं कि—सन् १९२४ तक, अर्थात् सन् १९१५ से मेरी शादी के ९ वर्ष बाद, मेरी स्त्री के कोई बच्चा नहीं हुआ। इसका कारण जो हम लोगों को मालूम होता था, मेरी स्त्री की मासिकधर्म की ख़राबी थी। मैंने इसको ठीक करने के लिये अपनी कोई दवा उठा न रक्खी। बाहरी दवाओं का भी ख़ासा प्रयोग किया गया, और यहाँ तक कि लाहौर के सुप्रसिद्ध डॉक्टर कर्नल टेट Col. Godfrey Tate, M. B., Ch. B. (Dub. Univ.), I. M. S., से ऑपरेशन भी करवाया। इससे भी कोई लाभ नहीं हुआ, और दो वर्ष व्यतीत हो गए।

इसी अवसर में आपकी चंद्रावली की प्रशंसा एक मित्र द्वारा मेरे सुनने में आई। मैंने तीन बोतलें मँगाकर सन् १९२३ की अंतिम तिमाही में अपनी स्त्री को इस्तेमाल कराई। दैव-कृपा से उसी से उसके गर्भ रह गया, और इस समय एक पूर्ण स्वस्थ और सुंदर बालक उत्पन्न हुआ है। मैं चंद्रावली की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपने हताश भाइयों से इसकी सिफ़ारिश करता हूँ।"

[श्रीयुत जे० एस्० बतरा, बैंकर, बख़्तरवार (शाहपुर) से लिखते हैं]

"मेरा प्रथम ब्याह २० वर्ष की अवस्था में, संवत् १९५२ में, हुआ था। मेरी स्त्री ब्याह के उपरांत ११ वर्ष तक जीवित रही। उसके एक बच्चा हुआ था, जो केवल ७ मास तक जीवित रहा। इसके बाद मेरा दूसरा ब्याह संवत् १९६७ में हुआ; लेकिन मेरी यह स्त्री केवल ४ वर्ष तक ही जीवित रहकर संवत् १९७१ में उसका भी प्राणांत हो गया। ४ वर्ष बाद मैंने तीसरी शादी की। इस समय मेरी अवस्था ४४ वर्ष की थी, और मेरी स्त्री युवा होने के साथ ही पूर्णतः स्वस्थ और सुंदर थी। ४ वर्ष आशा करते-करते व्यतीत हो गए, परंतु कोई बच्चा न हुआ। अब मुझे यह शंका हुई कि शायद मेरी स्त्री कोई अंदरूनी मर्ज़ से बीमार है, और तदनुसार हमने उसे दो दाइयों को दिखलाया। अंतिम वर्ष जब भलवाल (*Bhalwal*) के हकीम पंजाबसिंह की दवाइयों से भी कोई लाभ न हुआ, तो हमारी सभी आशाओं पर पानी फिर गया। इसी निराशा की अवस्था में मुझे ख़बर मिली कि आपकी चंद्रावली अनेक स्त्रियों के बाँझपने को नाश कर चुकी है। हमने जहाँ तक जल्दी हो सका, उसकी दो बोतलें ख़रीदीं। मेरी स्त्री एक ही बोतल व्यवहार में लाई थी कि उसके गर्भ रह गया। दूसरी आज भी मेरी अलमारी में उसी तरह रक्षित है। आश्रम के प्रति मेरी तथा मेरी स्त्री की कृतज्ञता का भाव, जिसने चंद्रावली के द्वारा ५१ वर्ष की आयु में पुत्र-रत्न-लाभ कराया है, और फिर भी तीसरी स्त्री से, समझा ही जा सकता है, लिखा नहीं जा सकता।"

मूल्य १ बोतल ५), २ बोतलें ९), तीन बोतलें १३) और ४ बोतलों का दाम १६) है। पैकिंग और वी० पी० ख़र्च अलग। बड़ा सूचीपत्र लिखने पर मुफ़्त भेजा जाता है।

मिलने का पता—संन्यासी आश्रम (S.) Sargodha (India)

इसके पढ़ने से लाखों का भला होगा

प्रिय पाठक! इस पत्र अथवा अन्य कई एक पत्रों में आप कोकशास्त्र के दर्जनों विज्ञापन पढ़ते होंगे। कदाचित् आपने मँगाकर रुपए भी नष्ट किए हों, परंतु आपकी मनोकामना पूरी न हुई होगी। अस्तु!

जितने विज्ञापनदाता हैं, वह अधिकांश में वैद्यक तो क्या, हिंदी अथवा संस्कृत भी नहीं जानते। बेचते कोकशास्त्र-जैसी वैद्यक की अमूल्य पुस्तक हैं, जिसके एक-एक शब्द और एक-एक चित्र का मूल्य मुट्ठी-भर सोना नहीं, हीरे होने चाहिए।

जिन-जिन विज्ञापनदाताओं से हमारा परिचय है, उनमें से कई एक तो हमारे नौकर रह चुके हैं। हमारे निकाल देने पर उन्होंने भी कोकशास्त्र के विज्ञापन द्वारा जनता को ख़ूब लूटा। चार-पाँच आने लागत की पुस्तक तीन-तीन रुपए को बेनीराम लुधियानेवाले से लेकर बेंची और बेंच रहे हैं। कोई महाशय हलवाई हैं, कोई आटा-दाल बेंचनेवाले। इन सबकी पुस्तकें उनकी लिखी हुई क़ीमत से हम चौथाई पर बेंचते और चित्रों का नमूना मुफ़्त भेजते हैं। इस पुस्तक के विषय में हमारा कहना है कि श्रीकोका पंडित महामंत्री महाराजा काशमीर-रचित पुस्तक का अनुवाद तो क्या, उसका एक अक्षर भी इसमें नहीं है। यदि कोई यह साबित कर दे, तो हम अपनी सामर्थ्य अनुसार उसको मुँह माँगा धन दे सकते हैं, और भविष्य में कभी अपनी पुस्तक बेंचनी तो क्या, जितनी इस समय स्टाक में हैं, वह भी सब नदी में फेंक देंगे।

हम पर गवर्नमेंट का चलाया मुक़दमा

हमारी पुस्तक को अश्लील समझकर सरकार ने हम पर मुक़दमा चलाया, जिसका पूरा फ़ैसला तो नहीं, चंद शब्द विद्वान् हाकिम के हम दर्ज करते हैं—

···किताब मज़कूर बच्चों और नौ जवानों के लिये मख़सूस नहीं है, जिनके भाव आसानी से बदल सकें। किताब मज़कूर वैद्यों, हकीमों और उन शख़्सों के लिये मख़सूस है, जिनका चालचलन बन चुका है। और जो किताब [कोकशास्त्र] का बतौर एक साइंस मुताला करने के ख़्वाहाँ हों। मज़मून ऐसा है कि इज़हार की सादगी अटल है। ज़बाँदानी जो इस्तेमाल की गई है, सीधी है। जिस्म के मुख़्तलिफ़ हिस्सों का हवाला देती है। इत्यादि इत्यादि। दस्तख़त मौलवी महम्मद फ़िदाउल्लाह साहब बहादुर डिप्टी मैजिस्ट्रेट लुधियाना ३० सितंबर, १९२६ ई०

१००० पौंड इनाम! यदि कोई विज्ञापनदाता अपने "कोकशास्त्र कशमीरी" को स्वर्गवासी श्रीपंडित कोकाजी महामंत्री महाराजा कशमीर-रचित असली साबित कर दें। अन्यथा किसी पत्र-संपादक अथवा बैंक में १५ हज़ार तो नहीं, केवल १००० जमा करा दे। हम अपनी पुस्तक को असली साबित करते हैं।

हमारी पुस्तक असली है, औरों की नक़ली होने की हम गारंटी लेते हैं

गारंटी—यदि हमारी पुस्तक नक़ली और विज्ञापन के अनुसार न हो, तो तुरंत वापिस करके अपनी क़ीमत ले लें। जिस-जिस कोकशास्त्र का विज्ञापन इस······में है, वह केवल १) रुपए में बेचते हैं। फिर क्या ज़रूरत है कि आप नक़ली और अधिक मूल्य में औरों की पुस्तक ख़रीदें।

हमारी अपील है कि यदि आप असली कोकशास्त्र पढ़ और उसके रंग-बिरंगे ८४······के चित्र देखकर संसार का आनंद लेना चाहते हैं, तो [औरों की पुस्तक तो देख चुके] हमसे मँगवाकर भी देखें। घबड़ाने की कोई ज़रूरत नहीं, जब कि हम वापसी की शर्त करते हैं।

[श्रीमान् कोका पंडित-रचित का हिंदी-अनुवाद]

सचित्र! असली!! पुराना!!!

कशमीरी कोकशास्त्र

पद्मिनी, चित्रिणी, शांखिनी, हस्तिनी, और शशक, वृषभ, मृग, अश्व

इन चारों प्रकार की स्त्री तथा पुरुषों की पहिचान। उनका वर्णन, स्त्री को आयु-भर स्वस्थ सुंदर सौंदर्य अर्थात् हुस्नो इश्क़ की देवी बनाए रहना। मनचाही सुंदर बलिष्ठ संतान उत्पन्न करना, गर्भ में पुत्र-पुत्री की पहिचान। स्त्री-पुरुष के जोड़े-जोड़ी का मिलान। संतान उत्पन्न न होती हो, तो ज़रूर हो। स्वयं पूरे सौ वर्ष तक हृष्ट-पुष्ट सुंदर और स्वस्थ बने रहना। कुमारी-भेद और लक्षण-प्रेम-प्रीति स्त्री पुरुष का पारस्परिक संबंध स्त्रियों का रजोदर्शन, ऋतु और उसका सामयिक प्रभाव, सहवास-विलासियों के लिये सहवास के नियम। गर्भाधान *चौरासी आसन* गर्भ-परीक्षा, गर्भोत्पत्ति, गर्भ-वृद्धि, प्रसव और शिशुपालन, स्त्रियों के शृंगार, उनके संबंध में समस्त यौवन-वर्द्धक, आनंद-दायक मसाले, स्त्री-पुरुषों के कोकशास्त्र-संबंधी गुप्त रोग और उनका अद्भुत इलाज कामोपदायक औषधियाँ तथा मसाले। वशीकरण स्त्री-पुरुषों की चौरासी रंग-बिरंगी तस्वीरें, तथा आसनों के दिल-चस्प

सम्मन बग़रज़ इन्फ़िसाल क़रारदाद अमूर तनक़ीहतलब मुक़द्दमा नं० ३१२ सन् १९२७ ई०

बअदालत जनाब मुनसिफ़ साहब बहादुर फतेहपुर मुक़ाम बाराबंकी।

परागी वल्द लालताप्रसाद क़ौम कुरमी साकिन बुदेहड़ा परगना रामनगर ज़िला बाराबंकी मुद्दई

बनाम अब्दुलग़फ़ूर वल्द समसाम अली क़ौम शेख़ साकिन मसौली परगना नवाबगंज ज़िला बाराबंकी मुद्दाअलेह

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत १९९५।-) के दायर की है। लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ २६ माह नवंबर सन् १९२७ ई० बवक्त दस बजे दिन के असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ किया गया हो और जो कुल अमूर अहम मुतालक़ा मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सकै हाज़िर हो और जवाबदही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुकर्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है। पस तुमको लाज़िम है। कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इसतदलाल करना चाहते हो उसी रोज उनको पेश करो।

मुत्तला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे, तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमूआ और फैसल होगा।

आज बतारीख़ ८ माह नवंबर सन् १९२७ ई० मेरे [illegible]

डिगरी तारीख़ मुक़र्ररह निसवत तसलीह (फ़रायत)

इश्तिहार नीलाम

बाबू परमेश्वरीदयाल वकील

(आर्डर २१-क़ाईदा ६६)

मुनसफ़ी एटा मुक़ाम एटा ज़िला अलीगढ़

इजलास बाबू हरीशंकर साहब मुनसिफ़ एटा

मुक़द्दमा नं० ६८३ बाबत सन् १९२७ ई०

मुंशी अहकलाल वल्द मुंशी महाराज सहाय क़ौम कायस्थ साकिन एटा खास मुद्दई

बनाम

मुसम्मात ज्वालादेवी बेवा पंडित रामचंद्र, क़ौम ब्राह्मण साकिन एटा हाल मौजूदा फ़ीरोज़ाबाद मुनसफ़ी आगरह बरमकान पंडित गुलाबसिंह मुद्दाअलेह

बनाम मुसम्मात ज्वालादेवी मद्यों डिगरी

चूँकि बमुक़द्दमा मुनदरजे उनवान अहकलाल डिगरीदार ने वास्ते नीलाम जायदाद ग़ैरमनक़ूला के दरख़्वास्त गुज़ारी है लिहाज़ा तुमको इत्तला दी जाती है। कि बतारीख़ २३ माह नवंबर सन् १९२७ ई० वास्ते तय करने शरायत इश्तिहार नीलाम के मुक़र्रर हुई है।

आज बतारीख़ ७ माह नवंबर सन् १९२७ ई० बसब्त मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत के जारी किया गया।

बहुक्म

सम्मन बिनावर इनफ़िसाल मुक़द्दमा
(आर्डर ५ क़ायदा १ व ५)

नंबर मुक़द्दमा २६३ सन् १९२७।

बअदालत मुनसफ़ी चंदौसी ज़िला मुरादाबाद मु० सावंती ज़ौजा पं० रुद्रप्रसाद ब्राह्मण सा० संभल

मुद्दई

बनाम

मु० इमरती कुँवर ज़ौजा जवाहरलाल ब्राह्मण सा० धाडोल, पर० संभल।

मुंशीलाल वल्द गनेशलाल ब्राह्मण धाडोल परगना संभल मुद्दाअलेह

हरगाह कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत २२५०) के दायर की है। लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ २९ माह नवंबर सन् १९२७ ई० बवक्त १० बजे दिन के असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हालात से करार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल अमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जवाब ऐसे सवालात का दे सके, हाज़िर हो और जवाबदिही दावा की करो। और, हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे इहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है। पस तुमको लाज़िम है कि उसी रोज़ अपने जुमला गवाहों को जिनकी शहादत पर वो नीज़ तमाम दस्तावेज़ात जिन पर तुम अपनी जवाबदिही के ताईद में इस्तदलाल करना चाहते हो, उसी रोज़ पेश करो।

तुमको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे, तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमू और फ़ैसल होगा।

बसब्त मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत के आज बतारीख़ ७ माह नवंबर, सन् १९२७ ई० जारी किया गया।

बहुक्म

दः पढ़ा नहीं जाता

मुंसरिम

सम्मन बग़रज़ क़रारदाद अमूर तनक़ीह तलब

मुक़द्दमा नं० २०२ स० १९२७ ई०

अदालत जनाब मुनसिफ़ साहब बहादुर फतेहपुर मुक़ाम बाराबंकी।

मालिक नौशादअली मुद्दई

बनाम

मुसम्मात वहीउलनिसां वग़ैरा सा० बड़ागाँव मुद्दाअलेह बनाम मुसम्मात सुलेमन ज़ौजे महम्मदबशीर मलिक असगर अली मरहूम साकिन मौजे बड़ागाँव, परगना व तहसील नवाबगंज, ज़ि० बाराबंकी।

मुद्दाआलहूम नं० ४

वाज़े हो कि मलिक नौशाद अली मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत दखल दिहानी मौज़े बड़यल परगना नवाबगंज के दायर की है। लिहाजा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ६ माह दिसंबर सन् १९२७ वक्त दस बजे दिन पर असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल अमूर अहेम मुतालिका मुक़द्दमे का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और सख़्श हो, जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके, हाज़िर हो और जवाबदही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और तुमको हिदायत की जाती है कि जुमला दस्तावेज़ात को जिन पर तुम बताईद अपनी जवाबदही के इस्तदलाल करना चाहते हो, पेश करो।

मुतला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे, तो मुक़द्दमा तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में मसमूआ और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ १० माह नवंबर स० १९२७ ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से जारी किया गया।

बहुक्म

दः पढ़ा नहीं जाता

मुंसरिम

फ़ायदा न हो तो दाम वापस

हम इससे अधिक और क्या आपको विश्वास दिला सकते हैं कि अगर फ़ायदा न हो, दाम वापस देंगे।

ताक़त की अनुपम दवा

इस औषधि के सेवन से शरीर में अपूर्व ताक़त पैदा होती है। पानी के सदृश पतली धातु को भी दही की तरह गाढ़ा कर देती है, जिसके कारण बलहीन पुरुषों में स्वाभाविक युवावस्था की शक्ति उत्पन्न होती है। सुस्ती, स्वप्नदोष, धातुक्षिन्नता, दुबलापन, वीर्य का कम उत्पन्न होना और उसका पानी की तरह पतला होना, वर्षों का पुराना प्रमेह, पेशाब के साथ गोंद की भाँति चिकना व सफ़ेद हड्डी का खार गिरना, पाख़ाना फिरते समय वीर्य का निकल जाना, पेशाब लाल, गँदला, कभी-कभी चूने की तरह सफ़ेद होना, दिमाग़ की कमज़ोरी, शिर का घूमना तथा दर्द करना, बात शीघ्र ही भूल जाना, कमर और पिंडलियों में दर्द, मन में चिंता व शोक होना, भूख कम लगना, बदहज़मी, खट्टी डकारों का आना, उठते-बैठते आँखों के सामने पीली-पीली चिनगारियाँ-सी उड़ती दिखाई पड़ना इत्यादि सर्व रोग तथा उठती हुई जवानी के जोश में अपने हाथों जवानी का सत्यानाश करने से पैदा की हुई सब ख़राबियाँ कुछ ही दिनों के सेवन से दूर होकर शरीर में नया ख़ून, नई ताक़त और हर काम को पूरा करने के लिये पूर्ण उत्साह और संतानोत्पत्ति की पूरी योग्यता पैदा होती है। इस दवा में कोई कुश्ता नहीं है, परंतु ताक़तवर इतनी है कि कोई दवा, कोई माजून इसके बराबर लाभदायक नहीं हो सकती। जिन मनुष्यों को वैद्यों तथा हकीमों और डॉक्टरों ने जवाब दे दिया था, वह भी इसकी बदौलत आज युवावस्था का सच्चा आनंद प्राप्त कर रहे हैं —२१ ख़ूराक का मूल्य सिर्फ़ २॥) ढाई रुपया।

स्त्री-संजीवन चूर्ण

यह अनुपम दवा स्त्रियों के मासिकधर्म-संबंधी सब ख़राबियों को दूर करने और प्रदर, वायुगोला, भूख कम लगना, शरीर दुबला, पीला तथा निर्बल होना, शिर, कमर, रीढ़ और पिंडलियों में दर्द का होना, हथेली और पैरों के तलवों में झुनझुनाहट, दिल की उदासी, मासिकधर्म का कष्ट से होना, गर्भ न ठहरना, सिर्फ़ लड़कियाँ ही पैदा होना आदि सब दोषों को दूर करता है। मासिकधर्म ठीक समय और ठीक मात्रा में होता है। बुढ़ापे में युवावस्था प्राप्त कराता है। इसके सेवन से अवश्य पहले महीने में गर्भ ठहरता है। सैकड़ों निराश रोगी स्त्रियाँ नीरोग और पुत्रवती हो चुकी हैं। मूल्य ३), डाक-महसूल ।=)

कोकिला-कंठ

उस दवा का नाम है जो लेक्चरार, स्पीकर, रामायण तथा अन्य कथावाचकों के लिये अत्यंत लाभदायक है। थोड़े-से पान में खाइए, आवाज़ सुरीली होकर कोयल के सदृश मनोहर, मधुर, रसीली, रँगीली और मनमोहनी हो जाती है। खाते ही गला साफ़ करती है। कफ को दूर करती है। नाटक-मंडलियों, रामलीला, रासलीला, आल्हा कहनेवालों या थिएटर करनेवालों को अपने पास रखना चाहिए। मूल्य २) डाक-महसूल ।=)

गुल्शन-बहार तेल

इस तेल के शिर में लगाते ही ख़ुशबू से आपकी तबियत मस्त हो जायगी और भीनी-भीनी ख़ुशबू से पास बैठनेवालों का दिल ख़ुश और लोट-पोट हो जायगा। तेल लगाकर आप जिस रास्ते निकल जायँगे, वहाँ के बैठनेवालों को आश्चर्य होगा कि यह अजीब बहारदार, मनोहर ख़ुशबू किस बग़ीचे से आ रही है। इसके सेवन से शिर घूमना, दिमाग़ की कमज़ोरी, दर्द सिर, बाल झड़ना, कमसिनी में बाल पकना, ख़ुश्की रहना आदि रोग जल्द अच्छे होते हैं। बालों को बढ़ाकर घुँघरवाले व लच्छेदार बनाता और दिमाग़ में तरावट लाता है। दो-एक महीने बराबर लगाने से स्त्रियों के बाल कमर तक बढ़ जाते हैं। सबसे बड़ा गुण यह है कि बुढ़ापे से पहले जो बाल सफ़ेद हो जाते हैं, उनको भी स्याह करता है। मूल्य फ़ी शीशी १॥)

सुंदरता की दवा

दो ही तीन सप्ताह यह दवा मलने के बाद चेहरा गुलाब के सदृश सुंदर, कमल की तरह प्रफुल्लित होकर कुंदन की भाँति चमकने लगता है। चेहरे के तमाम दाग़, धब्बे, झाइयाँ, मुँहासे, खाल फटना, रूखी ख़ुश्की, चुरचुरापन आदि सब मिट जायँगे। अगर काली और बदसूरत स्त्री भी लगा ले, तो सेवन के बाद पहचाननेवाले धोखा खायँगे। रानी-महारानियों ने पसंद किया है। मूल्य फ़ी शीशी २), डाक-महसूल ।=)

मिलने का पता—मैनेजर अज़मतुल इलाज औषधालय, (स) लखनऊ

(यदि इसमें १३२ सातरंगी सुंदर चित्रें असली न हों तो क़ीमत वापस देंगे)

असली पुराना

काशमीरी कोकशास्त्र

रंगीन १३२ चित्रों सहित संपूर्ण

(श्रीमान् कोका पं० महामंत्री काशमीर की असली पुस्तक का अनुवाद)

नक़ली पुस्तक को लोग बेचकर लूट रहे हैं । उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में पड़कर धोखे में न पड़ें। क़ीमत २॥) डाक-व्यय-सहित ।

पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी तथा शशक, वृषभ, मृग और अश्व

इन चारों प्रकार की स्त्रियों तथा पुरुषों की पहिचान, उनका वर्णन, स्त्री-पुरुष का जोड़ा, स्त्री को आयु-भर स्वस्थ, सुंदर, सौंदर्य की देवी और अपनी आज्ञा माननेवाली बनाए रखना, मन-चाही सुंदर तथा बलिष्ठ संतान उत्पन्न करना, गर्भ में पुत्र-पुत्री की अथवा नेक व बद की पहचान, स्त्री-पुरुषों के जोड़ों का मिलान, संतान उत्पन्न न हो तो ज़रूर हो, पूरे सौ वर्ष तक हृष्ट-पुष्ट, सुंदर और स्वस्थ बने रहना, कुमारी भेद और लक्षण, प्रेम, प्रीति, परदा, स्त्री-पुरुष का परस्पर संबंध, स्त्रियों का रजोदर्शन अर्थात् ऋतु, उसका सामयिक प्रभाव, सहवास, विलासियों के लिये सहवास के नियम, गर्भाधान, चौरासी आसन, गर्भ-परीक्षा, गर्भोत्पत्ति, गर्भ-वृद्धि, गर्भ रोकना, प्रसव और शिशुपालन, स्त्रियों के शृंगार, उनके संबंध में समस्त यौवन-वर्द्धक आनंद-दायक मसाले, स्त्री-पुरुषों के कोकशास्त्र-संबंधी रोग और उनकी अद्भुत गुणकारी औषधियाँ, कामोद्दीपक दवाएँ, वशीकरण, स्त्री-पुरुषों की १३२ तसवीरें तथा ८४ आसनों के दिल-चस्प हालात दर्ज हैं। यही नहीं, स्त्री तथा पुरुषों की गुप्त बीमारियाँ आदि कई एक ऐसी दर्ज हैं, जो कि यहाँ लिखना उचित नहीं ; पाठक समझ लें । इसके १३२ चित्र कानपुर, कलकत्ता वग़ैरह के मशहूर कारीगरों से बनवाए हुए हैं । क़ीमत उत्तम सुनहरी, पुख़्ता जिल्द, डाक, महसूल, सहित, २॥), रेशमी सुंदर जिल्द ३)

रबड़ की तिलस्मी थैलियाँ असली

शारीरिक रक्षा और आनंद प्राप्त करने की सरल और सुंदर युक्ति और कई प्रकार की शारीरिक व्याधियों से बचानेवाली यह वस्तु है । इनको धारण करने से आतशक, सुज़ाक आदि रोग नहीं होते । १ थैली मुद्दतों काम देती है । बड़े मज़े की चीज़ है । दाम मरदानी थैली ३), २॥), २), १॥) नक़ली थैली १॥), १), ॥), ॥) ज़नानी थैलियाँ जिनको धारण करने से बढ़ती औलाद पर क़ाबू रहता है और न होगी ३), ४), ५)

सफ़ाई का ठेकेदार—नाजुक-से-नाजुक गुप्त जगह पर इस तेल को लगाने से वहाँ उमर-भर बाल पैदा न होंगे, दाग़-धब्बा न पड़ेगा, सबके काम की वस्तु है । फ़ी औंस ३)

आईना-सिकंदरी—





यह आइना हिंदुस्तान के मैस्मरेज़रों के दिमाग़ का निचोड़ है, जिसे हर शख़्स बिना क़ैद उमर देख सकता है । इसके ज़रिए ग़ायब और गुमशुदा का पता, बीमार के सेहतयाब होने व न होने का हाल, आनेवाले और गुज़रे हुए हालात, किसी मुश्किल का हल होना या न होना, मरे हुए दरवेशों और शहीदों, अज़ीज़ों व दोस्तों की रूहों से मुलाक़ात हो सकती है । जिसे कभी न देखा हो उसे आइना में देख सकेंगे । ग़रज़े कि यह आइना अपने असर से सब कुछ बता सकता है । क़ीमत मय परचा तरक़ीब बड़ा साइज़ १॥), डाक-ख़र्च-सहित ।

ग़र्ज़ की रियायत—केवल १०) में ३ बढ़िया घड़ियाँ

१—जर्मनी बी० टाइमपीस, २—रेलवे रैगूलेटर वाच
३—बढ़िया फैंसी सुंदर रिस्टवाच, मय चेन व तस्मों के

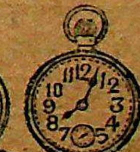
२०) की घड़ी से अकेली ही मुक़ाबिला करेगी



रिस्टवाच दादा ख़रीदें पोता बरतें







पाकेटवाच डायल पर एंजिन का चित्र है

यह घड़ियाँ अति सुंदर मज़बूत फैंसी और सच्चा समय देनेवाली हैं इनकी असली क़ीमत २०) है, मगर विलायत से ६ हज़ार की तादाद में इकट्ठी मँगाने की वजह से सस्ती पड़ी हैं इस कारण हम भी सस्ते दामों बेच रहे हैं । इसलिये मँगाने में शीघ्रता करें और अपने इष्ट-मित्रों को भी इस विज्ञापन की सूचना दे दें, देर करने से यह सुअवसर जाता रहेगा, बल्कि जाने पर २०) में भी ऐसी उत्तम घड़ियाँ न मिलेंगी ५ वर्ष की गारंटी का

हिंदी के नए और निराले नाटक

पूर्व-भारत

(लेखक, ऑनरेब्ल पं० श्याम-विहारी मिश्र एम्० ए० और राय बहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०)

यह एक मौलिक पौराणिक नाटक है। महाभारत के कथानक को लेकर इसकी रचना हुई है। इसमें पांडवों और कौरवों के झगड़े के आरंभ से लेकर अज्ञात-वास के अंत तक की कथा है। यह पुस्तक कवित्व से कमनीय, नाटकत्व से निर्मल, सद्भावों से सुंदर और मौलिकता से मंडित है। इसे पढ़ने से महाभारत के उस युग का दृश्य आँखों के आगे उपस्थित हो जाता है। मिश्र-बंधुओं की श्रेष्ठ रचनाओं में यह भी एक है। मूल्य ॥।=), सजिल्द १।=)

बुद्ध-चरित्र

(अनुवादक, 'सुधा'-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय)

पांडेयजी ने बँगला के अनेक विख्यात नाटकों का ऐसा भाव-पूर्ण अनुवाद किया है कि वे बिलकुल मौलिक-से मालूम होते हैं। समाज, भाव, भाषा-शैली, सब पर हिंदी-पन और स्वाभाविकता की छाप लगी हुई है। राजसी सुख-भोग की लालसाओं को लात मारकर, अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये संसार के सारे सुखों को तिलांजलि देकर महात्मा बुद्धदेव किस प्रकार आत्म-चिंतन और वैराग्य में लीन हुए थे, इसका स्पष्ट चित्र देखना हो, तो यह नाटक अवश्य पढ़िए। ज्ञान, शिक्षा, उपदेश, पवित्रता और शांति तथा प्रेम से पूर्ण ऐसा मनोरंजक नाटक आपने शायद ही अब तक पढ़ा हो। ४-५ चित्रों-सहित पुस्तक का मूल्य ॥।), सुंदर रेशमी जिल्द का मूल्य १।)

ख़ाँजहाँ

(लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय)

ख़ाँजहाँ ऐतिहासिक नाटक है। बँगला-भाषा के प्रसिद्ध नाटक-लेखक बाबू क्षीरोदप्रसाद विद्या-विनोद के नाटक के आधार पर इसकी रचना हुई है। इसमें दिल्ली के सम्राट् शाहजहाँ के साथ मालवे के वीर और मनस्वी नवाब ख़ाँजहाँ लोदी के युद्ध का, उनकी अलौकिक वीरता का, आत्माभिमान और बहादुरी का अपूर्व चित्र खींचा गया है। इसे जितनी बार पढ़िए—ध्यान देकर इस पर विचार कीजिए, जी नहीं भरेगा। यह नाटक अनेक जगह अनेक बार खेला जा चुका है। इसके करुण-रस के दृश्यों को देखकर लोगों के आँसू तक निकल आते हैं। तृतीयावृत्ति में सुंदर-सुंदर सादे और रंगीन चित्र भी दिए गए हैं। मूल्य सजिल्द १॥=), सादी १=)

मध्यम व्यायोग

यह पुस्तक संस्कृत के वीर-रस-पूर्ण नाटक का अनुवाद है। अनुवाद किया है हिंदी के ख्यातनामा सुलेखक श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल की विदुषी सुपुत्री श्रीमती सुशीलादेवी जायसवाल ने। बड़ी ही सुंदर रचना है। वीरत्व के भावों से शराबोर है। मूल्य =)

मिलने का पता—संचालक गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय,

[illegible] अमीनाबाद-पार्क लखनऊ

इत्तलानामा बनाम रेस्पान्डेन्ट मुशअर इत्तला इस अमूर के कि हुक्म तैयारी डिगरी क़तई क्यों न सादिर किया जावे

नाम अदालत	नं० मुक़द्दमा	नाम फ़रीक़ैन
मुंसफ़ी चँदौसी	२६/४०१	मुसम्मात गोमती बनाम मुसम्मात भगवती

अदालत मुंसफ़ी चँदौसी मुक़ाम चँदौसी ज़िला मुरादाबाद इजलास ठाकुर नंदलालसिंह साहब बहादुर मुंसिफ़ चँदौसी मुक़द्दमा मुतफ़र्रिक़ा नं० ४०१ सन् १९२७ ई० मुसम्मात गोमती वल्द ख़ूबसिंह जौज़े धनसिंह, क़ौम ठाकुर साकिन मौज़ा देवीपुरा डाकख़ाना भोजपुर परगना मुरादाबाद डिगरीदार सायल

बनाम

मुसम्मात भगवती जौज़े छेदीलाल व ओंकारप्रसाद नाबालिग़ पिसर छेदीलाल क़ौम वैश्य बरनवाल साकिनान सरणिया परगना संबल मुताल्लिक़े मुंसफी चँदौसी वा नाबालिग मज़कूर बरवक़्त मुसम्मात भगवती मादरहक़ीक़ी ऊपरकोट बरसकान लाला मटरूलाल वैश्य बरनवाल बहनोई खुद मुताल्लिक़े मुंसफ़ी बुलंदशहर

हरगाह मुद्दई डिगरीदार मज़कूरसदर ने दरख़्वास्त सुदूर हुक्म क़तई वास्ते नीलाम जायदाद मरहूना वा मक़फ़ूला डिगरी नंबरी ४०१ सन् १९२६ ई० की जो बतारीख़ २२ माह अप्रैल सन् १९२७ अदालत हाजा से सादिर हुई थी बमतालिबा मुबलिग़ ५४२।||) है लिहाज़ा तुमको इत्तला दी जाती है कि अगर तुमको कोई उज्र निस्बत सादिर होने हुक्म क़तई नीलाम जायदाद मज़कूरा के हो, तो इस अदालत में बतारीख़ १० माह दिसंबर सन् १९२७ ई० बवक़्त १० बजे दिन के असालतन या वकालतन या बज़रिए मुख़्तार मजाज़ हाज़िर होकर पेश करो।

आज बतारीख़ १६ माह नवंबर सन् २७ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

बहुक्म

द० रामगोपाल

इत्तलानामा बनाम रिस्पांडेंट (Respandant) मुसाअर इत्तला इस अमूर के कि हुक्म तैयारी डिगरी क़तई क्यों न सादिर किया जाय।

नाम अदालत मंसफ़ी मैनपुरी नं० मु० १ सन् २६ नाम फ़रीक़ैन मुसम्मात कुंताकुँवरि बनाम तिलकसिंह वग़ैरह

मुसम्मात कुंताकुँवरि बेवा गनपतिसिंह पिसर जिवसिंह क़ौम ठाकुर साकिन मौज़ा टेकरी, डाकख़ाना ज्यवनी, परगना व ज़िला मैनपुरी मुद्दैया

(१) तिलकसिंह वल्द महताबसिंह (२) गुलाबसिंह पिसर तिलकसिंह क़ौम ठाकुर साकिनान मौज़ा इतरपुर परगना बसौली ज़िला बदायूँ (३) लल्लूसिंह उर्फ़ हरबक्ससिंह नाबालिग़ पिसर गुलाबसिंह व वलिदयत गुलाबसिंह मुद्दाअलेह नं० २ पिदर ख़ुद

मुद्दयून डिगरी फ़रीक़सानी

सिंह नाबालिग़ फ़रीक़सानी हरगाह मुद्दई डिगरीदार मज़कूरुल सदर में दरख़्वास्त मंज़ूर हुक्म क़तई वास्ते नीलाम जायदाद मरहूना व मक़फ़ूला डिगरी नंबरी सन् १६२६ ई० की जो तारीख़ २१ माह दिसंबर सन् १६२६ ई० अदालत हाज़ा से सादिर हुई थी बमताल्बा मुबलिग़ १२१३≡) अलावा ख़र्चा गुज़ारी है लिहाज़ा तुमको इत्तला दी जाती है कि अगर तुमको कोई उज़्र निस्वत साबित होने हुक्म क़तई नीलाम जायदाद मज़कूरा के हो तो इस अदालत में बतारीख़ १३ माह दिसंबर १६२७ ई० बवक़्त १० बजे दिन के असालतन या वकालतन या बज़रिए मुख़्तार मजाज़ हाज़िर होकर पेश करो आज बतारीख़ २२ माह नवंबर सन् १६२७ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

बहुक्म
भगवतीप्रसाद
मुंसरिम



"कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू।"
(गो० तुलसीदास)

वर्ष १ खंड १ | मार्गशीर्ष, ३०५ तुलसी-संवत् (१९८४ वि०)— दिसंबर, १९२७ | संख्या ५ पूर्ण संख्या ५

आत्म-संगीत

हृदय के अंतस्तल से आज न-जाने क्या उठता है गान ;
तनिक ठहरो, सुनने दो मुझे, अरे आकुल हैं मेरे प्राण।
विश्व की गति, ठहरो तो तनिक; प्रबलतम मनोवेग, हो शांत ;
निराशे, आशे, लड़कर मुझे बनाओ मत विभ्रम-उद्भ्रांत।
कल्पने, क्या करना है तुझे जान यह क्या स्वर है, क्या छंद ;
कौन-सी भाषा, लय है कौन, गा रहा कौन सुभग सानंद।
सुना मैंने सागर का गीत, पहाड़ी निर्झर का भी गान ;
वसंत-श्री में खिलते हुए कुसुम की मधुर सुनी है तान।
आह का करुणा-मिश्रित काव्य, और सुस्मित का प्रेमाह्वान ;
सुनाई-सा देता है अभी आँसुओं का प्यारा आख्यान।
उमंगों की मधुमय गुंजार, वासनाओं का हाहाकार ;
अरे रहने भी दो, सुन चुका जगत् के ये मादक उद्गार।
आह ! जीवन में पहली बार सुन रहा हूँ यह राग पुनीत ;
मुग्ध हो, बस, सुनने दे मुझे, शांति से सुनने दे संगीत।
पड़ी लघु वीणा मेरी बंद, सजा लेने दें इसके तार ;
और भरने दें इसमें मुझे सहज प्रिय यह माधुर्य अपार।
व्याप्त हूँ इसमें मैं, हो और व्याप्त मुझमें यह मृदु आलाप ;
रागमय मम बन जावे विश्व, राग ही हो जाऊँ मैं आप।

श्रीरत्न शुक्ल

बाल-विनोद-वाटिका की बढ़िया पुस्तकें

बाल-नीति-कथा

यह पुस्तक हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी के प्रिंसिपल और प्रो-वाइस चांसलर श्रीमान् ए० बी० ध्रुव एम्० ए०, एल्-एल्० बी० की लिखी हुई है। आपने महाराजा साहब बड़ोदा के आज्ञानुसार बड़ोदा-राज्य की पाठशालाओं के लिये इस ग्रंथ की, गुजराती में, रचना की थी। पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०, अध्यापक लखनऊ-युनिवर्सिटी ने इसका हिंदी-अनुवाद किया है। पुस्तक कितनी उच्च कोटि की है और बालकों के चरित्र पर इसका कितना असर पड़ेगा, इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि विद्वान् लेखक इस विषय के प्रकांड पंडित हैं, और चरित्र-गठन-संबंधी पुस्तकें लिखने के लिये आपसे बड़ा अधिकारी इस देश में मुश्किल से मिलेगा। आपने इस पुस्तक में सभी प्रधान मतों और देशों से उत्तम कथाएँ चुनकर संग्रह की हैं और हरएक कथा से निकलनेवाले उपदेश भी नोट-रूप में दे दिए हैं, जिससे यह पुस्तक पाठ्य-क्रम में रक्खे जाने के लिये बहुत ही उपयुक्त हो गई है, और अनेक स्थानों में पढ़ाई भी जाती है। भाषा सरल और मुहावरेदार है। 'चरित्र' मानव-जीवन का रत्न और हरएक प्रकार की उन्नति का मूल-मंत्र है। इस दृष्टि से यह पुस्तक अमूल्य है। पुस्तक दो भाग में है। प्रत्येक भाग का मूल्य १) है। दोनों का मूल्य २।।), सजिल्द ३।।)

लड़कियों का खेल

[लेखक—गिरिजाकुमार घोष]

पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है। इस पुस्तक की रचना विशेषकर लड़कियों के लिये ही हुई है। वे इसे बड़े चाव से पढ़ेंगी, और इससे बहुत कुछ सीखेंगी। हिंदी में ऐसी बहुत कम पुस्तकें निकली हैं। मूल्य ।।), सजिल्द ।।=)

खेल-पचीसी

इस पुस्तक में उन २५ खेलों का संग्रह किया गया है, जो लड़के साधारणतः खेलते हैं या यों कहिए कि खेलते थे। अँगरेज़ी शिक्षा के फैलने से हमारे पुराने खेल दिन-दिन मिटते चले जा रहे हैं। शायद कुछ दिनों के बाद उन खेलों के जानकार भी न रहेंगे। हमने यहाँ ऐसे खेलों के खेलने की विधि बताई है, जिन्हें लड़के शौक़ से खेल सकें, और खेल के साथ उनकी कुछ कसरत भी हो जाय। सचित्र। मूल्य ।=), सजिल्द ।।)

गधे की कहानी

[लेखक—पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल्० टी०]

गधे ने अपनी कथा बड़े रोचक और मनोरंजक ढंग से कही है। बड़ी ही सरल और सीधी भाषा में मानो समाज की आलोचना की गई है। देखने ही योग्य है। अनेक सुंदर चित्र। मूल्य ।।।), रेशमी जिल्द १)

भारत के सपूत

[लेखक—मुं० जहूरबख़्श]

इस पुस्तक में भारत के महान् पुरुषों के जीवन से संबंध रखनेवाली ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह किया गया है। भाषा अत्यंत सरल है, और कहानियाँ बहुत ही रोचक। लड़के इसे बड़े शौक़ से पढ़ेंगे। पुस्तक में ६ चित्र भी दिए गए हैं। मूल्य ।।=), सजिल्द १=)

सुघड़ चमेली

[लेखक—पंडित रामजीदास भार्गव]

हिंदी एवं उर्दू-संसार भली भाँति जानता है कि आप बालोपयोगी पुस्तकें लिखने में कैसे पटु हैं। आप इस पुस्तक को अपनी लड़कियों को पढ़ाइए और फिर देखिए कि वे चमेली की तरह कैसी सुघड़ हो जाती हैं! सचित्र। मूल्य =) मात्र; सजिल्द ।)

कीड़े-मकोड़े

[लेखक—पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल्० टी०]

चींटी, बर्रे, टिड्डी आदि कीड़े-मकोड़ों का ऐसा सुंदर और रोचक वर्णन किया गया है कि पढ़ने में क़िस्से-कहानी से कहीं अधिक आनंद आता है। बालकों के योग्य इस विषय की अब तक कोई पुस्तक न थी। ९ हाफ़टोन और एक रंगीन चित्र से अलंकृत। मूल्य ।।=), सजिल्द १=)

सब प्रकार की हिंदी-पुस्तकें मिलने का पता—

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

दुर्लभ मस्तिष्क-शक्ति प्राप्त करने के लिये



तैल व्यवहार कीजिए। सुगंधित तैल में सर्वोच्च स्थान इसको प्राप्त है। यह वही तैल है जिसकी उत्तमता की प्रशंसा भारतवर्ष के प्रधान-प्रधान नेतागणों ने मुक्त कंठ से की है। नहीं, व्यवहार करने तक यह विश्वास नहीं होगा कि ऐसा उत्कृष्ट सुगंधित तैल इतने अल्प मूल्य में मिल सकता है।

प्रति शीशी १), डाक-महसूल ।), तीन शीशी २॥=), डाक-महसूल ॥=)

पढ़िए:-

राष्ट्र महासभा के नेता

त्याग-मूर्ति

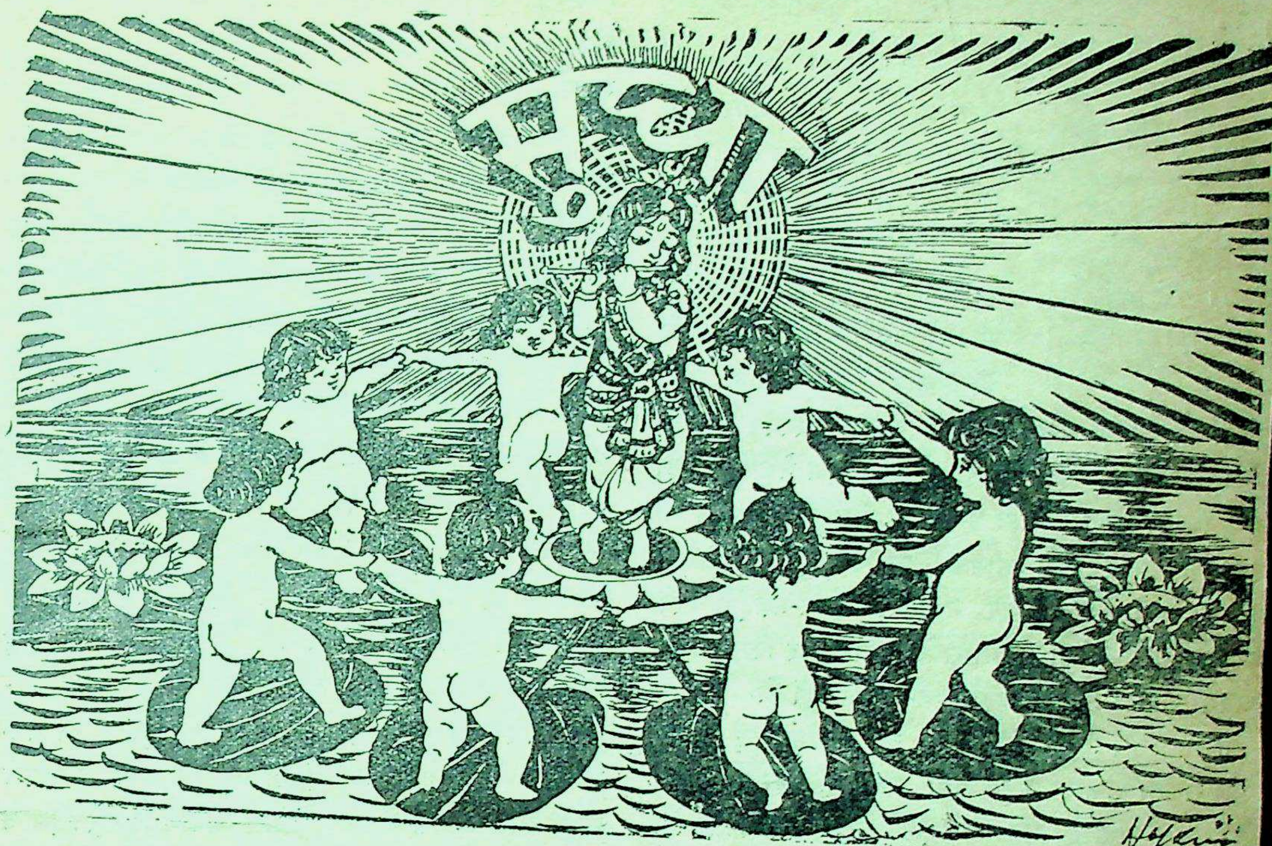
पंडित मोतीलाल नेहरू (एम्० एल्० ए०) का मत—

डॉक्टर एस्० के० बर्मन का बनाया "केशराज तैल" का मैंने व्यवहार किया है। यह बाज़ार के अच्छे तेलों में एक ही तेल है।

सर्व साधारण को चाहिए कि ऐसी शुद्ध देशी वस्तुओं का सेवनकर इसके प्रचार में सहायक बनें।

पता— डॉक्टर एस्० के० बर्मन, (विभाग नं० ४६) पोस्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता।

लखनऊ (चौक) में डॉक्टर गंगाराम जैतली के यहाँ मिलेगा।



"कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू।"
(गो० तुलसीदास)

वर्ष १
खंड १

मार्गशीर्ष, ३०५ तुलसी-संवत् (१९८४ वि०)—
दिसंबर, १९२७

संख्या ५
पूर्ण संख्या ५

आत्म-संगीत

हृदय के अंतस्तल से आज न-जाने क्या उठता है गान ;
तनिक ठहरो, सुनने दो मुझे, अरे आकुल हैं मेरे प्राण।
विश्व की गति, ठहरो तो तनिक; प्रबलतम मनोवेग, हो शांत ;
निराशे, आशे, लड़कर मुझे बनाओ मत विभ्रम-उद्भ्रांत।
कल्पने, क्या करना है तुझे जान यह क्या स्वर है, क्या छंद ;
कौन-सी भाषा, लय है कौन, गा रहा कौन सुभग सानंद।
सुना मैंने सागर का गीत, पहाड़ी निर्झर का भी गान ;
वसंत-श्री में खिलते हुए कुसुम की मधुर सुनी है तान।
आह का करुणा-मिश्रित काव्य, और सुस्मित का प्रेमाह्वान ;
सुनाई-सा देता है अभी आँसुओं का प्यारा आख्यान।
उमंगों की मधुमय गुंजार, वासनाओं का हाहाकार ;
अरे रहने भी दो, सुन चुका जगत् के ये मादक उद्गार।
आह ! जीवन में पहली बार सुन रहा हूँ यह राग पुनीत ;
मुग्ध हो, बस, सुनने दे मुझे, शांति से सुनने दे संगीत।
पड़ी लघु वीणा मेरी बंद, सजा लेने दे इसके तार ;
और भरने दे इसमें मुझे सहज प्रिय यह माधुर्य अपार।
व्याप्त हूँ इसमें मैं, हो और व्याप्त मुझमें यह मृदु आलाप ;
रागमय मम बन जावे विश्व, राग ही हो जाऊँ मैं आप।

श्रीरत्न शुक्ल

शिक्षितों की बेकारी



हिंदोस्तान में बेकारी का मर्ज़ बेतरह बढ़ता जा रहा है। अगर हम नहीं सँभले, तो मालूम नहीं, कुछ ही दिनों में और किस भयंकर खाईं में जा गिरेंगे। बेकारी पढ़े-लिखों में भी है, और अपढ़ों में भी। पर अपढ़ों के सिवा पढ़े-लिखों की बेकारी, उनका रोटी के लिये रोना और उनकी परेशानी, हमें ज़्यादा परेशान कर रही है। यही कारण है कि यहाँ शिक्षितों की बेकारी पर ही कुछ विचार किया जा रहा है। अपढ़ बेकारों की हालत भी बुरी, भयंकर तथा शोचनीय है; पर उतनी नहीं, जितनी शिक्षितों की। वे तो हार मानकर, मेहनत-मज़दूरी करके अथवा मिलों में ही अपना सर्वस्व स्वाहा कर किसी प्रकार अपना जीवन—चाहे वह पाशविक जीवन ही हो—बिताने लग जाते हैं। पर शिक्षितों से यह नहीं होता; हो भी नहीं सकता। भारत बहुत बड़ा देश है। यहाँ सब प्रकार के आदमी रहते हैं, सब प्रकार की चीज़ें पैदा होती हैं, सब तरह की आब-हवा मौजूद है। संसार की सब चीज़ें तैयार करने के साधन भी विद्यमान हैं। पर, तो भी, हिंदोस्तान के आदमी आज बेकार हैं। उन्हें पेट पालने तक के लिये काम नहीं मिलता। हिंदोस्तानियों की छाती पर मूँग दलकर, उन्हीं की चीज़ों को ज़बर्दस्ती छीनकर, आज दूसरे लोग यहाँ स्वर्गीय आनंद लूट रहे हैं, गुल-छर्रे उड़ा रहे हैं, और हिंदोस्तानियों को पेट-भर खाने के भी लाले पड़े हैं। कैसा घोर अंधेर है, कैसी भयंकर अवस्था है, कैसा ग़ज़ब ढानेवाला ढंग है। पर इसका अभी हम ख़याल भी नहीं करते। ख़याल भी कैसे करें? हमारे दिमाग़ से वे बातें ही निकाल डाली गईं, उन पर परदा डाल दिया गया। आज हम अपनी दीनता, अपनी हीनावस्था और अपनी पराधीनता को सोच सकने में भी असमर्थ हैं। ग़ुलामी ने इस प्रकार हमारी नस-नस में घर कर लिया है कि इस घातक और सर्वनाशक बला को अपनाए रहने में हमें दुःख भी नहीं होता। फिर इसे दूर करने और हटाने की कोशिश क्योंकर कर सकते हैं।

पढ़े-लिखे लोग नौकरी के लिये दर-दर मारे-मारे फिरते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी अपने बाप की गाढ़ी कमाई, अपनी बहुमूल्य तंदुरुस्ती और बीसों वर्ष का अमूल्य समय खोकर परीक्षा पास करता है। जब तक स्कूल या कॉलेज में वह शिक्षा प्राप्त करता रहता है, बड़े-बड़े मंसूबे बाँधता, अपने भावी जीवन के सुख-स्वप्न देखकर उछला करता और बेफ़िक्र रहता है। उसे यह पता भी नहीं होता कि शिक्षा समाप्त होने के बाद मुझे एक बड़ी भारी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा! सार्टीफ़िकेट मिला, ग्रेजुएट हुए; पर सुख के दिन देखने को कहाँ मिले? उलटे सिर पर एक नई और भयानक आफ़त सवार हो गई। उसको अपने तथा परिवार के जीवन-निर्वाह के लिये दर-दर भटकना पड़ता है। पर उसे नौकरी नहीं मिलती। शिक्षा भी उसे ऐसी ही मिली है कि सिवा नौकरी करने के, दफ़्तरों के बाबू बनकर दिन-भर क़लम घिसते रहने के वह और कुछ कर ही नहीं सकता। और, कुछ करने के लायक़ वह हो भी कैसे सकता है, जब कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ही एक कोरी स्वार्थमय भित्ति पर अवलंबित रक्खी गई है। जो शिक्षा प्रचलित करने के आरंभ ही में लॉर्ड मेकाले ने हमें ग़ुलाम बनाने, हमारे दिल व दिमाग़ को परतंत्रता की बेड़ी से जकड़ देने और हमें निरा अपने काम निकालने का हथियार-भर बनाने का सिद्धांत निश्चित किया था, उस शिक्षा का फल अगर आज ऐसा न होता, तो वही आश्चर्य की बात होती, न कि यह जो आजकल हो रहा है। आजकल हमें इसलिये नहीं पढ़ाया जाता कि हम मनुष्य बनें, और संसार में अपने कर्तव्य के पालन और कर्मशीलता से गौरव प्राप्त कर सकें। हमें इसलिये नहीं शिक्षा दी जाती कि हम बड़े-बड़े आविष्कार कर सकें, अपनी अद्भुत योग्यता और बुद्धि-वैचित्र्य के बल पर अपने देश के शासन की बागडोर थाम सकें, अथवा योग्य और अच्छे-अच्छे ऊँचे पदों पर ही पहुँच सकें। बल्कि हमें इसलिये शिक्षा दी जाती है, इसलिये पढ़ाया जाता है कि हम सदा अँगरेज़ों की ग़ुलामी करते रहें, उनके जूते उठाते रहें, उनके अत्याचार सहते रहें, और बहुत हुआ, तो उनके दफ़्तरों के बाबू बन उनकी चापलूसी करें। अगर यह बात न होती, तो आज डेढ़ सौ वर्ष की शिक्षा के बाद भी हम इतने अयोग्य न बतलाए जाते कि "तुममें

अपना घर सँभालने—राज-काज करने और शासन-कार्य को अपने हाथ में लेने—की योग्यता नहीं है ।" कैसा अंधेर है ! कल के जापान ने कुल चालीस-पचास वर्षों में न-मालूम क्या-से-क्या कर डाला ; पर तारीफ़ है इस विश्व-विख्यात सभ्यताभिमानी अँगरेज़-जाति की, जो १५० वर्षों से भी हमें शिक्षा देकर इस योग्य भी नहीं बना सकी कि हम कम-से-कम पेट-भर अन्न तो पा लिया करें । और अधिक कुछ तो दूर की बात है । यह है हमारे रक्षक और संसार के सर्वश्रेष्ठ 'सभ्य' अँगरेज़ी शासन की श्रेष्ठता और ख़ूबी !

आजकल यहाँ के पढ़े-लिखों के लिये नौकरी के सिवा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं रह जाता; क्योंकि शिल्प, व्यवसाय, कृषि आदि की शिक्षा दी ही नहीं जाती, जिससे लोग विभिन्न व्यवसायों में लगकर अपनी रोटी का प्रबंध कर सकें। ग्रेजुएट होने के बाद यही प्रश्न उपस्थित होता है कि "क्या करें ?" डॉक्टरी और इंजीनियरिंग पास करने पर भी, उनके क्षेत्र अत्यंत परिमित होने के कारण, उनमें अब बहुत गुंजाइश नहीं रह गई है । परंतु, तो भी, इनके दरवाज़े भी अवश्य खटखटाए जाते हैं, और फिर यहाँ से निराश होने के बाद वकालत का रास्ता तो खुला ही है । पर अफ़सोस की बात तो यह है कि इससे भी काम नहीं चलता, खाने और पहनने-भर को भी नहीं मिलता । वास्तव में ऐसे बहुत कम वकील मिलेंगे, जिनकी आमदनी संतोषप्रद कही जा सके, और वकालत की आय से उनका काम अच्छी तरह चल रहा हो । इस प्रकार, इतना अधिक ख़र्च कर, इतनी शक्ति और समय बर्बाद करके भी, उसके बदले हम इतना नहीं कमा पाते कि अपने स्त्री-बच्चों सहित सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह कर सकें । हाँ, इतना ज़रूर होता है कि जो बड़ी-बड़ी सिफ़ारिशें पा जाते हैं, अनेक प्रकार की ख़ुशामद और मिन्नतें करने में नहीं झेंपते, और अपने आत्मगौरव से हाथ धो बैठते हैं, उन्हें कोई ऐसी सरकारी बड़ी नौकरी ज़रूर मिल जाती है, जिससे वे पूरे साहब बन जाते हैं, और हिंदोस्तानियों को ही घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। इस प्रकार इन्हीं कुछ ख़ास-ख़ास ऊँचे ओहदों तक पहुँचने के लिये, गुलामी का बड़ा-सा तौक़ गले में डालने के लिये, हमारे देश के लाखों नवयुवक अपनी मिट्टी पलीद करते हैं । पर इतनी परेशानी के बाद भी जब उन्हें सरकारी दफ़्तरों से कोरा जवाब मिलता है, तो उनकी कमर टूट जाती है, आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है, और वे निराशा के अथाह सागर में ग़ोते लगाने लगते हैं । उस समय उनके सारे सुख-स्वप्नों पर पानी फिर जाता है; मालूम होता है कि शिक्षा-काल में उन्हें जो बड़े-बड़े सब्ज़ बाग़ दिखलाई पड़ते थे, जो आशा-लताएँ लहलहा रही थीं, और जो बड़े-बडे मंसूबे उन्होंने बाँध रक्खे थे, वे आकाश-कुसुम-मात्र थे । पाठकों को ख़ूब मालूम है कि इस प्रकार निराश होकर कितनों ही ने तो आत्महत्या तक कर डाली है । जिन्हें इतनी हिम्मत नहीं होती, या जो कुछ उद्यमी और साहसी हुए, वे, ज्यों-त्यों करके, जो काम मिला, जीविका-निर्वाह की ग़रज़ से, वही करने लगते हैं, और उनके दिल के बड़े अरमान और इच्छाएँ दबकर दिल ही में रह जाती हैं । कौन नहीं जानता कि प्रत्येक मनुष्य की रुचि विभिन्न होती है, और रुचि के अनुसार ही वह अपनी शक्तियों को काम में लगा सकता है । अगर मनुष्य को अपनी रुचि के अनुसार अपनी शक्तियों को सदुपयोग का समुचित साधन मिले, तो वह बहुत कुछ कर सकता है । इसी नियम के अनुसार हमारे विद्यार्थियों को भी विभिन्न अभिलाषाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ होती हैं । कोई बड़ा वैज्ञानिक बनना चाहता है, तो कोई इतिहास का धुरंधर विद्वान्; कोई बड़ा भारी दार्शनिक बनना चाहता है, तो कोई बड़ा भारी योद्धा; कोई बड़ा भारी अमीर बनना चाहता है, तो कोई अपनी मातृभूमि की सेवा में ही अपना सारा जीवन बिता देना चाहता है । इसी प्रकार कोई अव्वल दर्जे का व्याख्यानदाता और लेखक भी बनना चाहता है । पर देश का वायुमंडल ही विपरीत है । उन्हें अपनी रुचि के अनुकूल काम नहीं मिलता, जिससे वे अपनी योग्यता और बुद्धि के चमत्कार का परिचय दे सकें । कहा जाता है, हिंदोस्तानियों में किसी भी काम को अच्छी तरह करने की योग्यता नहीं होती । कैसी थोथी बात है ? जो हिंदोस्तानी एक दिन जगद्गुरु थे, जिस भारत ने राम, कृष्ण, बुद्ध, अशोक, चंद्रगुप्त समुद्रगुप्त, शिवाजी और प्रताप पैदा किए, जहाँ अब भी लोकमान्य, महात्मा गांधी, गोखले, दादाभाई नौरोज़ी, रवींद्रनाथ, जे० सी० वसु०, भांडारकर, रमेशचंद्र दत्त आदि सैकड़ों अपूर्व प्रतिभाशाली पुत्र उत्पन्न होते रहते हैं, उसकी संतानों में क्या इतनी योग्यता भी नहीं रह गई है, जो वे इन बदनाम करनेवालों के मुख में कालिख लगा सकें । साथ ही हमें बदनाम करनेवाले, हमें अयोग्य ठहरानेवाले

यह नहीं देखते, इतना नहीं सोचते कि हम जिस लाइन में काम कर सकते हैं, जिसमें हमारी रुचि है, जो हमारे लिये सुलभ है, उस तरफ़ बढ़ने के साधन ही हमें नहीं प्राप्त हैं, उस तरफ़ जाने से हमें मजबूरन रुकना पड़ता है। फिर विपरीत दिशा में, प्रतिकूल अवस्था में—और उस हालत में, जब पेट में चूहे कूद रहे होते हैं—हम अपनी योग्यता, अपने बल और अपनी शक्ति का परिचय देकर किस प्रकार इन बदनाम करनेवालों का मुँह बंद कर सकते हैं? हमारे एक-दो नहीं, हज़ारों, लाखों ऐसे होनहार भावुक नवयुवकों को अपने पेट के प्रश्न के पीछे, अपनी आत्मा और इच्छा के विरुद्ध, अनुपयुक्त व्यवसायों में लगना पड़ता है। जिनसे देश-हित, समाज-हित और धर्म-हित होने की संभावना थी, जिनसे भारत का गौरव बढ़नेवाला था, उनकी शक्ति विपरीत दिशा में मोड़ दी जाती है। देश में ऐसे हज़ारों नवयुवक, लाखों विद्यार्थी, मौजूद हैं, जो देश-सेवा करने की, देश के गौरव को बढ़ाने की, उसकी अपयश-कालिमा को धोने की शक्ति रखते हैं, और इसके लिये लालायित हैं, उत्सुक हैं; पर उनकी रोटी का कोई ठिकाना ही नहीं है। फिर वे देश की सेवा और भारत का उद्धार क्या ख़ाक कर सकते हैं! इस प्रकार परतंत्रता की बेड़ी में जकड़े रहने पर भी, पेट-भर खाने को न मिलने की हालत में भी, हमारे देश में वर्तमान दूषित शिक्षा-प्रणाली के रहते हुए भी, जो हमारे बीच पूर्वोक्त महात्मा गांधी, जगदीशचंद्र वसु, पी० सी० राय, कवींद्र रवींद्र आदि विश्व-विख्यात और संसार-सम्मानित नर-रत्न विद्यमान हैं, यह कुछ कम गौरव की बात नहीं है। अगर हमारी दशा, हमारी स्थिति अच्छी होती, हमें उपयुक्त शिक्षा दी जाती, भरपेट खाने को मिलता, हम स्वतंत्र होते, तो दुनिया को दिखा देते कि भारत अब भी वही सर्वश्रेष्ठ देश है, जो जगद्गुरु होने का दावा कर सकता है, और उसमें संसार को चकित कर देने की, संसार में हलचल मचा देने की कैसी अद्भुत शक्ति है। और, हमें विश्वास है कि जब हमारी दशा ठीक हो जायगी, तो दुनिया आँखें फाड़-फाड़कर हमारी वीरता, हमारी श्रेष्ठता और हमारे कामों को देखेगी, हमारी प्रशंसा करेगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

भारत में इस समय शिक्षित केवल १२ प्रतिशत पुरुष और २ प्रतिशत स्त्रियाँ—अर्थात् औसत से ७ प्रतिशत पढ़े-लिखे आदमी—हैं। और, इस अवस्था में भी हमारे पढ़े-लिखों के सामने बेकारी की जटिल समस्या उपस्थित है। अगर हमारे पढ़े-लिखों की संख्या और बढ़ी—और बढ़ेगी ही—तब तो न-मालूम इस बेकारी की भयंकरता और बढ़कर क्या कर डालेगी! तो क्या इसका मतलब यह है कि भारतवर्ष में शिक्षा-प्रचार का कार्य बंद कर दिया जाय? कारण, ज्यों-ज्यों लोग पढ़ते जायँगे, बेकार बढ़ते जायँगे! नहीं, कदापि नहीं। भारतवर्ष में शिक्षा की बहुत ही कमी है, और संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं, जहाँ के लोग इतने कम शिक्षित हों, और जहाँ की सरकार शिक्षा पर इतना कम ध्यान देती हो। यहाँ शिक्षा का प्रचार करना होगा, और बहुत ज़ोरों से करना होगा। पर उसकी प्रणाली, उसका ढंग और उसका ध्येय बदलना होगा। अगर यही बात होती कि पढ़े-लिखे लोग बेकार हो जाते हैं, तो इँगलैंड, फ़्रांस, जर्मनी, स्वीज़रलैंड, अमेरिका आदि देश आज इतने संपन्न और समृद्धिशाली न होते। वे आज हमसे भी अधिक बुरी हालत में देख पड़ते। पर नहीं, वास्तविक बात तो यह है कि किसी भी देश को पूर्ण उन्नत करने के लिये, उसे समृद्धिशाली और स्वतंत्र बनाने के लिये, उसके श्रेष्ठ होने के लिये, शिक्षा की ही सर्वप्रथम आवश्यकता होती है। शिक्षारहित देश की वही हालत होती है, जो हिंदोस्तान की हो रही है। भारत का शिक्षित समुदाय बेकार है, इसका यह मतलब कदापि नहीं कि यह शिक्षा का ही दोष है, बल्कि यह शिक्षा को कुपथ में मोड़ने का, उसका दुरुपयोग करने का और उससे होनेवाले समुचित लाभ के न उठाने का फल, या यों कहना चाहिए कि शिक्षा-प्रणाली का दोष, और स्पष्ट शब्दों में वर्तमान दूषित अँगरेज़ी शिक्षा का दुष्परिणाम है। स्वतंत्र राष्ट्रों ने शिक्षा के वास्तविक लाभ उठाए हैं, और उठा रहे हैं। इसी कारण वे इतने संपन्न हैं। हम उससे वंचित किए जाते हैं, उससे विपरीत दशा में मुड़ने को मजबूर किए जाते हैं, इसी कारण हममें जो इतने थोड़े-से शिक्षित हैं भी, तो उनमें कुछ को छोड़ शेष के लिये यह शिक्षा एक समस्या-सी हो गई है, और बेकारी का प्रश्न उपस्थित हो गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हममें से कुछ शिक्षित आदमी अपने और देश के लिये बहुत कुछ कर भी रहे हैं; पर यह इस शिक्षा का सुफल नहीं, बल्कि उनके व्यक्तिगत उद्योग, तत्परता, साहस और कुशाग्र बुद्धि का फल है। अगर शिक्षा का फल यह होता, तो हमारे सामने उक्त

बेकारी की समस्या ही न होती, हमारी आज यह हालत ही न रहती। हम स्वतंत्र होते, और संसार में हमारा भी आदर होता।

यह सब कुछ होते हुए भी—इस शिक्षा-प्रणाली की जड़ में विष का असर देखकर भी—इसके कुफलों को भुगतकर भी—इसको बुरा मानते हुए भी—इसके सुधार की ओर न तो सरकार का ही ध्यान है, और न हमीं लोगों का। पर, उस सरकार से, जो सदा हमें ग़ुलाम ही बनाए रखना चाहती है, जिसका उद्देश्य ही स्वार्थपरता से परिपूर्ण है, इस शिक्षा-प्रणाली के सुधार की आशा करना निरी मूर्खता है। अगर कुछ सुधार हो जायँ, तो वे गवर्नमेंट की तत्परता और कर्तव्य-परायणता से नहीं, बल्कि हिंदोस्तानियों के ही आंदोलन, दबाव और जवाँ-मर्दी से हो सकते हैं। अगर हम बहुत आंदोलन करेंगे, कौंसिलों में चिल्ल-पों मचावेंगे, तो संभव है, कुछ सुधार हों; पर वे संतोषप्रद और हमारी आवश्यकताओं की पूर्ण रूप से पूर्ति करनेवाले कदापि नहीं हो सकते। अस्तु, हमें स्वावलंबी बनना होगा, अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा। हमें अपने दिल से इस बात को निकालकर फेंक देना होगा कि वर्तमान सरकारी शिक्षा-संस्थाएँ हमें रोटी दे सकती हैं, और शिक्षा-प्राप्ति का उद्देश्य रोटी कमाना, नौकरी करना ही है। हिंदोस्तान में शिक्षा की इतनी कमी होने की हालत में भी इस समय १५ विश्वविद्यालय, १६० के क़रीब कॉलेज और २५० से ऊपर हाईस्कूल हैं। इन विश्वविद्यालयों से प्रतिवर्ष हज़ारों ग्रेजुएटों और लाखों मैट्रिकुलेटों की पलटनें निकलती हैं। सोचने की बात है, इतनों के लिये नौकरियाँ कहाँ मिल सकती हैं? गवर्नमेंट के यहाँ भी इतनी जगहें कहाँ ख़ाली रहती हैं, जो प्रति वर्ष इतनी बड़ी संख्या के शिक्षित रंगरूटों को वह भर्ती करे। और, अगर हम थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि जगहें हैं, तो, उस हालत में भी, हमें उन जगहों के लिये लार नहीं टपकानी चाहिए; क्योंकि वे जगहें तो हमारे शुभचिंतक कहलानेवाले अँगरेज़ भाइयों के लिये रिज़र्व रहती हैं। हमारी सरकार को अपनी बिरादरी के मक्खन-मिसरी की ज़्यादा फ़िक्र है। हमें—उसकी प्रजा को—जिसके ख़ून को चूस-चूसकर ये गुलछर्रे उड़ रहे हैं, भले ही सूखी रोटी भी न मिले, इसकी उसे क्यों चिंता होने लगी! नतीजा यह है कि आज हज़ारों पढ़े-लिखे ज्यों-त्यों अपने दिन काट रहे हैं। यह संसार उनके लिये निस्सार है। उनमें न तो कुछ जीवन है, और न उत्साह और साहस। और, सुख-शांति तो शायद स्वप्न में कभी-कभी वे देख लेते होंगे। इस समय हमारे पाठकों का ध्यान कुछ सरकारी उच्च पदों पर पहुँचे हुए हिंदोस्तानियों पर जायगा। पर उन्हें उसी वक़्त यह सोच लेना चाहिए कि ऐसे पदाधिकारी बहुत कम हैं, मुशकिल से दाल में नमक के बराबर निकलेंगे।

इतना कुछ देखकर भी हम सजग नहीं हो रहे हैं, और इसी दूषित प्रणाली के, इस भद्दे रंग में रँगे हुए इसी प्रकार की जनता को बढ़ानेवाले अन्य विश्वविद्यालयों को स्थापित करने के लिये आंदोलन हो रहा है। एक यू० पी० में चार-चार युनिवर्सिटियों के होते हुए भी आगरे में पाँचवीं युनिवर्सिटी की स्थापना होने जा रही है। उधर आंध्र-विश्व-विद्यालय का राग अलग अलापा जा रहा है। अगर यही हालत रही, तो मालूम नहीं, ये विश्वविद्यालय हमें किस ओर ले जायँगे, और हमें किस योग्य बनाकर छोड़ेंगे। सोचने की बात है, क्या वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से सचमुच भारतीय शिक्षित हो रहे हैं, और क्या वास्तव में उनका अज्ञान दूर होकर उन्हें कोई लाभ भी पहुँच रहा है? इन विश्व-विद्यालयों की शिक्षा इतनी महँगी पड़ती है कि भारत की साधारण जनता उससे सर्वथा वंचित ही रह जाती है। कोई भी विश्वविद्यालय ऐसा नहीं, जहाँ कम-से-कम ३०)-३५) मासिक से काम चल सके। उधर हमारे 'बाबू' लोग तो साधारण तौर से ५०), ६०), ७०) ख़र्च करते हैं। पर ख़ूबी तो यह है कि जिस शिक्षा की प्राप्ति के लिये ५०), ६०) और ७०) तक मासिक ख़र्च किया जाता है, उसकी समाप्ति के बाद, डिग्री मिलने पर, हमको उतने रुपए मासिक की, भी नौकरी मिलना असंभव हो जाता है। यह है शिक्षा का जादू! इस समय हमें प्राचीन भारत की शिक्षा-पद्धति की याद आ जाती है। कैसा उच्च आदर्श था, कितनी श्रेष्ठ सभ्यता थी, कितना सुखमय, आनंदमय एवं शांतिमय जीवन था। मनोहर प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण, हरे-भरे लहलहाते हुए उपवनों-जंगलों में हमारे ब्रह्मचर्याश्रम या गुरुकुल होते थे। एक-एक आश्रम में दस-दस हज़ार ब्रह्मचारी रहते थे। न उन्हें खाने की तकलीफ़ थी, और न पुस्तक और फ़ीस की चिंता। मीठे-मीठे फल और सुस्वादु, सात्त्विक भोजन उन्हें मिलता था। गुरु के चरणों में रहकर वे अनमोल

शिक्षा प्राप्त करते थे। रोग और व्याधि का नाम भी न था, और न थी शान-शौक़त की चाह। हरे-हरे सुंदर वृक्षों के नीचे प्रकृति की गोद में वे शिक्षा प्राप्त करते थे। उनके लिये आलीशान इमारतों और शानदार कुर्सी-मेज़ों की ज़रूरत न थी। पर आज तो बात ही और है। आजकल शिक्षा-संबंधी आवश्यकताएँ इतनी बढ़ा दी गई हैं कि साधारण आदमी के लिये शिक्षा प्राप्त करना दुष्कर ही नहीं, असंभव है। जिसे दोनों वक्त भरपेट खाने को नसीब नहीं होता, वह चालीस-पचास रुपए प्रतिमास ख़र्च करके भला कैसे पढ़ सकता है? साथ ही, ऐसे भी बहुत-से विद्यार्थी हैं, जिन्हें समुचित क्या, साधारण तौर से भी मामूली खाना नहीं मिलता। फिर ऐसे विद्यार्थियों के मस्तिष्क और बुद्धि तेज़ और परिमार्जित कैसे हो सकते हैं? आज हमारे लिये प्राचीन भारत के आदर्श ब्रह्मचर्याश्रम की याद भी स्वप्नवत् हो रही है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का फल भारतवर्ष में मौजूदा बेकारी की शकल में कैसा भयंकर देख पड़ रहा है, यह देश के प्रत्येक पढ़े-लिखे की आँखों के सामने है। शिक्षा का आदर्श मनुष्य को 'पूर्णता'-प्राप्ति की ओर ले जाना है, उसे अपने राष्ट्र का एक योग्य और श्रेष्ठ नागरिक बनाना है, और उसे इस लायक़ भी बनाना है कि वह अपने कर्तव्यों और अधिकारों को अच्छी तरह से समझे, उनका पालन करे, और इस प्रकार न तो उसे रोटी के लिये रोना पड़े, और न किसी नौकरी के लिये झींखना। पर भारत की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ऐसी निकम्मी है, उसका असर इतना बुरा पड़ता है कि वह हमें लोक-परलोक, दीन-दुनिया कहीं का नहीं रखती। शिक्षा प्राप्त कर हमें चाहिए था कि इस ग़ुलाम देश के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, इसे समझें, और उसे ग़ुलामी से मुक्त करने के लिये कोशिश करें। पर हमारे दिमाग़ में तो ऐसा बीज बो दिया जाता है कि हम इस ग़ुलामी के दुःख का अनुभव तक नहीं कर पाते। इतना ही नहीं, बल्कि हममें से कितनों को इसमें ही आनंद आता है। उन्हें वर्तमान अँगरेज़ी हुकूमत ही बहुत अच्छी और लाभदायक जँचती है। साथ ही वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से हमारे अंदर पाश्चात्य सभ्यता का रोग धीरे-धीरे इस प्रकार घर करता जा रहा है कि अगर हमने अपनेको उससे नहीं बचाया, तो निकट-भविष्य में ही हम इस सभ्यता-रूपी ... के द्वारा अपने अस्तित्व को भी मिटा हुआ पावेंगे। पुरानी कहावत है—"डेढ़ अक्षर जान लिया, संतन को दुःख दिया।" यही हमारी हालत है। चार अक्षर या चार अँगरेज़ी की किताबें पढ़ीं, और 'सभ्यता' का भूत हम पर सवार हुआ; हमारे दिमाग़ ही फिर गए। हमें हिंदोस्तानी आचार-विचार, रहन-सहन, हिंदोस्तानी सभा-सोसाइटी और हिंदोस्तानी चीज़ों से घृणा होने लगी। तात्पर्य यह कि हमें अपनी मातृ-भूमि, अपने प्यारे वतन और हज़ारों वर्षों के प्राचीन भारत से तथा उसके निवासियों—अपने ही भाइयों—से कोई प्रेम नहीं रह जाता। बल्कि हम अपने भाइयों को देख-कर उनकी ओर से आँखें भी फेर लेते हैं। आज हम अँगरेज़ी पढ़ते ही लगते हैं अँगरेज़ों की नक़ल करने। नक़ल भी किस बात में? उन बातों में, जो हमें और भी भयंकर गढ़े में ढकेले लिए जा रही हैं, जिनसे हमारी जीवन-समस्या की गुत्थी और भी बुरी तरह अधिक उलझती जा रही है। हमारे भाई इस बात को ज़रा भी नहीं सोचते कि जहाँ हम अँगरेज़ों की नक़ल उनके बूट-सूट में, उनके रहन-सहन और उनकी चाल-ढाल में करते हैं, वहाँ उनकी देश-भक्ति, उनकी वीरता, उनके स्वातंत्र्य प्रेम, उनकी नियम-निष्ठा और समय के सदुपयोग की प्रवृत्ति में भी उनकी नक़ल करें। अँगरेज़ों में जितनी देश-भक्ति और स्वाधीनता का प्रेम है, उसका चतुर्थांश भी अगर हिंदोस्तान के आधे भी लोगों में आ जाय, तो देश का आज ही उद्धार हो जाय। पर वह हममें क्यों आने लगा! हमें तो अँगरेज़ों की ग़ुलामी, उनकी सेवा और सत्कार करने तथा उनके समान (मिथ्या) साहब बनने से ही फ़ुर्सत नहीं है। हम अपनी स्वतंत्रता और अपने उद्धार की बात फिर कब सोचें?

गाँव का एक लड़का शहर में आकर शिक्षा पाता है, और उस पर शीघ्र ही पाश्चात्य सभ्यता का रंग चढ़ जाता है। वह अपनेको साहब समझने लगता है। उधर उसके मा-बाप और ही कुछ सोच रहे थे। पर जब वे अपने लड़के को पढ़-लिख तैयार देख केवल नौकरी के ही योग्य पाते हैं, साथ ही जब देखते हैं कि वह 'अधम चाकरी' भी दर-दर भटकने फिरने पर भी नहीं मिलती, तो फिर उनकी निराशा का ठिकाना नहीं रहता। उनकी नौका मँझधार में पड़ जाती है। पर इतना ही नहीं, वहाँ तो और भी दृश्य देखने को मिलते हैं। वह लड़का अब गाँव

वालों से मिलना-जुलना भी नहीं चाहता। वह उन्हें असभ्य समझता है। ग्रामीणों से मिलने-जुलने में उसकी शान में ख़लल पहुँचता है, और इस प्रकार उसकी दृष्टि में ग्राम्य जीवन की सरलता, सुशीलता, पवित्रता और शिष्टता की कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं रह जाती। उसका दिमाग़ ऐसा फिर जाता है, उसकी तंदुरुस्ती का इतना ह्रास हो जाता है कि वह गाँव की खेती आदि मेहनत के कामों को न तो स्वयं कर ही सकता है, और न इस ओर उसकी रुचि ही होती है। मतलब यह कि उस युवक और ग्रामीणों के बीच—पढ़े-लिखे और अपढ़ों के बीच—इस प्रकार एक गहरी खाईं उपस्थित हो जाती है। उस युवक के हृदय में भारतीय सभ्यता और आचार-विचार के लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता। इससे उसे इनमें कुछ तथ्य ही नहीं मालूम पड़ता। धर्म उसको ढोंग मालूम होता है, और हाथ से काम करना शान के बरख़िलाफ़। यह है भारत की वर्तमान अँगरेज़ी शिक्षा का दुष्परिणाम! कहाँ तो इस समय हमें योग्य नागरिकों की आवश्यकता है—कहाँ तो हमें भारतवर्ष में आदर्श जीवन के भावों को जगाना है—कहाँ तो हमें आज पराधीन भारत को स्वाधीन करने के लिये मातृभूमि की वेदी पर बलिदान होने और समर-क्षेत्र में शत्रुओं के दाँत खट्टे करनेवाले रणबाँकुरे, विजयी, बहादुर नवयुवकों की अतीव आवश्यकता है, और कहाँ इस समय हमारे होनहार नौजवान उत्साहहीन, दुर्बल, निराशावादी और संसार को निस्सार समझनेवाले बनाए जा रहे हैं! फिर हम कैसे आशा करें कि वह दिन इतना शीघ्र आनेवाला है, जब हमारे देश के लाखों युवक अपनी बहादुरी से शत्रुओं के भी श्रद्धाभाजन बनकर भारत को स्वतंत्र करेंगे।

भारतीय शिक्षितों की बेकारी के साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता के चढ़ते हुए गहरे रंग को रोकने का प्रश्न भी हमारे सामने कम महत्त्व नहीं रखता। इस प्रकार हमारी समस्या दूनी जटिल हो गई है। इस समय हमारे आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज और संस्कृति पर धावा-सा बोल दिया गया है। हमें इन बातों की रक्षा के लिये जी-जान से कोशिश करनी पड़ेगी, और देश को इस घातक और विनाशकारी रोग से बचाना होगा। यहाँ हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि अपनी संस्कृति की रक्षा करने से हमारा यह मतलब कदापि नहीं कि हम वही पुराना ढोल बजाते रहें, लकीर के फ़क़ीर बने रहें। बल्कि उससे हमारा मतलब सिर्फ़ इतना ही है कि हम अपनी भारतीय सभ्यता की बुनियाद क़ायम रक्खें, अपने को भारतीय बनाए रहें, और सभ्यता की वर्तमान दौड़ में अपनी असली चीज़ को न खो दें। संसार में इस समय एक नई लहर हिलोरें ले रही है। समय बदल गया है, उसके अनुसार सारी पुरानी बातें भी बदल गई हैं। समय की इस प्रगति के अनुसार, देश और काल के अनुसार, हमें भी अपने देश में एक ज़बर्दस्त परिवर्तन करने की आवश्यकता है, उसके बिना हमारा काम नहीं चलने का, और वह होकर ही रहेगा। पर इस परिवर्तन, सुधार और क्रांति का मतलब यह कदापि न होना चाहिए कि हम भी उसी पाश्चात्य सभ्यता की बाढ़ में बह जायँ, उसी यंत्र-वाद, पूँजी-वाद और साम्राज्य-वाद के महासागर में क्रीड़ा करने लगें, जिसमें स्वयं योरप भी डूबने लगा है, जिसमें वास्तव में कोई तथ्य नहीं, जिसकी तह में कोई सार नहीं है, केवल है बाहरी तड़क-भड़क, शान-शौक़त और आँखों को चकाचौंध में डालनेवाली एक बाहरी कृत्रिमता-मात्र। भारत के लिये यह मार्ग श्रेयस्कर नहीं हो सकता। उसके लिये तो वही पुराना और देखा हुआ मार्ग परिष्कृत एवं प्रशस्त है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के दोषों को महात्मा गांधी ने अपने ३०-३५ वर्षों के अनुभव के बाद अच्छी तरह समझा, और उसकी तह तक पहुँचकर उसे अच्छी तरह से देख लिया है। पर यह हमारे अभागे देशवासियों का दुर्भाग्य है कि उन्होंने, इस विशाल भारत के करोड़ों व्यक्तियों के दुःख को दूर करनेवाली, इस जागरूक आत्मा की पुकार सुनकर भी, उसकी अवहेलना की और उससे समुचित लाभ नहीं उठाया। आज भी जो लोग ठंडे दिल और स्वस्थ दिमाग़ से सोचेंगे, उन्हें पता लगेगा कि उस पक्के असहयोगी ने सरकारी स्कूल और कॉलेजों के बहिष्कार की बात यों ही नहीं कही थी। उस महात्मा ने वर्तमान शिक्षा-पद्धति के दुष्परिणाम को—मौजूदा बेकारी और पाश्चात्य सभ्यता के प्रचंड हमले को—अच्छी तरह समझ लिया था। वह भारतीय हृदय और हिंदोस्तानी दिमाग़ पैदा करना चाहता था, देश को महा अँधेरे गढ़े में गिरने से बचाना चाहता था; किंतु देश के लोगों ने उसके

कथन को पागल का प्रलाप समझा, उसकी हँसी उड़ाई, और उसी अंधकूप की ओर पैर बढ़ाए। पर वह महात्मा आज भी अपनी बात पर उसी तरह पक्का, वैसा ही अटल और वैसा ही दृढ़ है। कारण, वह समझता है, उसका अनुभव, उसका विचार तुला-नपा हुआ और आग पर ताया हुआ है, पक्का है और ठीक है। और, जिनके आँखें हैं, जो समझदार हैं, संसार-भर में तथा भारत में होनेवाली घटनाओं और बातों को देखते हैं, उन पर विचार करते हैं, वे ज़रूर समझते हैं कि उस महात्मा का यह अनुभव और कथन निरा निस्सार ही नहीं है; उसमें भी तथ्य है, सार है। ख़ैर, हमें इतना ही संतोष है कि कुछ हिंदोस्तानी तो इस शिक्षा-पद्धति के दोषों को समझने लगे हैं, और जहाँ-तहाँ, थोड़ी-बहुत इसके सुधार की कोशिश भी हो रही है। यह भी इस हतभाग्य देश के लिये कुछ कम आशाप्रद नहीं कहा जा सकता। पर दरअसल हमें इतने ही से संतोष भी नहीं कर लेना चाहिए; क्योंकि यह संतोष हमारी कमज़ोरी और कायरता का परिचायक ही होगा। हमें महात्माजी के अनुभवों के प्रकाश में आँखें खोलकर अपना मार्ग देखना चाहिए। हमें उनके कार्य-क्रम की व्यावहारिकता को समझना तथा उसे काम में लाना पड़ेगा। वही हमारे कल्याण का मार्ग है।

हमें वर्तमान शिक्षा-पद्धति में या तो पूरा सुधार ही करने के लिये जी-जान से लग जाना चाहिए, या इसकी आशा छोड़ अपने पैरों पर खड़े होकर कुछ उपाय करना चाहिए; स्वयं शिल्प, व्यवसाय और उद्योग-धंधों को अपनाकर अपने बच्चों को भी दस्तकारी के कामों में लगाना चाहिए; इन बड़ी-बड़ी डिग्रियों की लंबी पूँछ पीछे लगाने के थोथे प्रलोभनों से बचना-बचाना चाहिए। इस समय हमारे लिये दो उपयुक्त मार्ग हैं। एक तो है राष्ट्रीय शिक्षा को उत्तेजन देना और दूसरा है गवर्नमेंट पर दबाव डालकर, उसे मजबूर करके, वर्तमान शिक्षा-संस्थाओं में सुधार करवाना और भविष्य में अच्छी-अच्छी औद्योगिक, कला-कौशल की तथा व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं के खुलने का प्रबंध करना। संसार के प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र में शिक्षा अनिवार्य है। देश को पूर्ण उन्नत करने के लिये यह अत्यंत आवश्यक है। पर हमारी सरकार शिक्षा को अनिवार्य करना तो दूर रहा, उसके लिये साधारणतः जो व्यवस्था होनी चाहिए, वह भी नहीं करती। भारत-सरकार को हम लोगों की शिक्षा की कितनी कम पर्वा है, यह इसी से मालूम हो जाता है कि जहाँ डेनमार्क में शिक्षा पर प्रति मनुष्य १७), अमेरिका में १६I), इँगलैंड में ९=), फ्रांस में ६) और जापान में ८) ख़र्च किए जाते हैं, वहाँ भारत में प्रति मनुष्य केवल =) ही भारत-सरकार ख़र्च करती है। वह इससे अधिक करना ही नहीं चाहती; क्योंकि उसे भय है कि इतनी थोड़ी शिक्षा प्राप्त करके ही जब ये काले आदमी—भारतवासी—इतनी चिल्ल-पों मचा रहे हैं, तब अगर कुछ और अधिक शिक्षित हो गए, तो न-मालूम किस घड़ी हमें यहाँ से बोरिया-बिस्तरा बाँधकर चले जाने को मजबूर करें! वे यह भी अच्छी तरह से समझते हैं कि भारतवर्ष से उनके हटने का अर्थ एशिया से ब्रिटिश सत्ता का लोप होना है, जिससे बढ़कर ब्रिटिश साम्राज्य की और हानि हो ही नहीं सकती। पाठक स्वयं सोच सकते हैं, इस दशा में हमारी सरकार क्यों भारतीयों की शिक्षा का उचित प्रबंध करेगी। परंतु उसे इतना तो समझ ही लेना चाहिए कि भारतवासी अब सजग हो गए हैं, और राजनीति की चालों को अच्छी तरह समझने लगे हैं। यह धाँधली अब अधिक समय तक नहीं चल सकती।

हमारे देश के बहुत-से विद्यार्थी विदेशों में—ख़ासकर इँगलैंड में—शिक्षा प्राप्त करते हैं, और इस प्रकार भी देश का बहुत-सा धन विदेशियों को प्राप्त होता है। विदेश में पढ़नेवाले हमारे विद्यार्थियों के ख़र्च का अनुमान इतने ही से किया जा सकता है कि इँगलैंड में बहुत मामूली तौर से रहने पर भी प्रत्येक विद्यार्थी का ख़र्च २५०) माहवार से कम में नहीं चल सकता। जिन हिंदोस्तानियों को दोनों वक्त भरपेट खाने को भी नहीं मिलता, उनमें भला कितने आदमी इस अँगरेज़ी शिक्षा से लाभ उठा सकते हैं? पर नहीं, तो भी हमारे कुछ भाई ऑक्सफ़ोर्ड, कैंब्रिज आदि के विश्वविद्यालयों में जाते ही हैं। हम तथा हमारी सरकार भी, विदेशों में—ख़ासकर इँगलैंड में—शिक्षा पाए हुए इन पदवीधारियों की, अपने देश में ही पढ़कर यहीं पदवी पानेवालों की अपेक्षा, अधिक इज़्ज़त करती है। उन्हें प्रायः ऊँचे सरकारी ओहदे मिलते हैं। पर यहाँ भी यह बात ख़ास तौर से ध्यान में लाने की है कि विदेशों में शिक्षा पानेवाले भारतीय शिल्प-विज्ञान तथा कला-कौशल की शिक्षा नहीं प्राप्त करते, बल्कि क़ानून और साहित्य

विभाग की ही शिक्षा प्राप्त करते हैं; क्योंकि इसके द्वारा उन्हें सरकारी नौकरियाँ मिलने की आशा रहती है। इस प्रकार हमारे भाई इतना धन ख़र्च करके विदेश में पढ़कर भी हमारे देश को कोई लाभ नहीं पहुँचा पाते। वे वहाँ से आए, और यहाँ, बस, नौकरशाही के एक अंग बन गए, नौकर ग़ुलाम बन गए, और फिर लगे भारतीयों ही को उलटे उस्तरे से मूड़ने। ब्रिटिश गवर्नमेंट के प्रति राजभक्ति का गहरा रंग इँगलैंड से ही चढ़ कर आता है। यहाँ कुछ अधिकार पाते ही वे 'साहब' बन जाते हैं। उन्हें अपने देश, अपनी मातृभूमि भारतवर्ष और भारतवासियों से घृणा हो जाती है; वे यहाँ के लोगों को असभ्य समझने लगते हैं। हम मानते हैं कि शिक्षा-दीक्षा की कमी, आर्थिक दशा के ख़राब होने तथा सामाजिक कुरीतियों के कारण भारतवासियों की दशा दयनीय है, दुःखद है। पर क्या इस प्रकार घृणा करने, इस प्रकार 'असभ्य' समझने से ही उनकी हालत सुधर सकेगी? क्या उन 'जेंटिलमैनों' का 'असभ्य' हिंदोस्तानी भाइयों के प्रति कोई कर्तव्य नहीं है? और, क्या इँगलैंड में थोड़ी-सी शिक्षा प्राप्त कर लेने से ही भारत की पुण्यभूमि, उनकी जन्मभूमि, उनकी मातृभूमि की वह इज़्ज़त नहीं रही? अगर ऐसा नहीं है, तो क्यों नहीं वे मातृभूमि के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करते?

हम विदेशों में जाकर शिक्षा प्राप्त करने के विरोधी नहीं हैं। बल्कि उसके ज़बर्दस्त समर्थक हैं। हमारा विरोध तो वर्तमान शिक्षा-प्राप्ति के उद्देश्य से, उसके लक्ष्य से है। हम तो विदेशों में जाकर, शिक्षा प्राप्त कर वह लाभ उठाना चाहते हैं, जो लाभ जापान ने उठाया है, और जिसके लिये चीन उद्योग कर रहा है। हम वहाँ से शिक्षा प्राप्त कर स्वतंत्र बनना चाहते हैं, न कि ग़ुलाम; हम वहाँ विज्ञान, कला-कौशल आदि विषयों की शिक्षा प्राप्त कर अपने देश के उद्योग-धंधों की उन्नति करना, अपने अद्भुत आविष्कारों द्वारा जगत् को चकित करना और उन्नत वाणिज्य-व्यवसाय द्वारा अपने देश की आर्थिक दशा का सुधार तथा भारतीयों की रोटी का प्रश्न हल करना चाहते हैं, न कि वहाँ की शिक्षा से नौकरशाही का एक अंग—नौकर—बनकर, बैरिस्टर और 'साहब' बनकर, इस समस्या को और भी जटिल बनाना चाहते हैं। हम चाहते हैं, वहाँ की शिक्षा प्राप्त कर भी दिल और दिमाग़ से, रंग और रक्त से तथा आचार-विचार से, सब तरह से हम भारतीय ही बने रहें। हम अपने ऊपर पूँजीवाद अथवा साम्राज्यवाद की छाया और वर्तमान 'पश्चिमी सभ्यता' की छाप नहीं पड़ने देना चाहते।

भारतवर्ष में औद्योगिक धंधे और विज्ञान से संबंध रखनेवाली शिक्षा-संस्थाएँ—ख़ासकर उन्नत तथा बड़ी शिक्षा-संस्थाएँ—नहीं हैं। इसके लिये हमें उद्योग करना होगा। वह उद्योग ख़ानगी तथा सरकारी, दोनों ही प्रकार का होना चाहिए। इस समय जो भी ख़ानगी शिक्षा-संस्थाएँ खुलें, वे औद्योगिक होनी चाहिए। और, गवर्नमेंट पर दबाव डालकर उससे भी ऐसी संस्थाएँ खुलवानी चाहिए। जब तक यह कुछ नहीं होता, तब तक जो हमारे विद्यार्थी विदेशों में जाते हैं, उन्हें भी अधिकतर इन्हीं विषयों की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। हम यह नहीं कहते कि क़ानून तथा साहित्य की शिक्षा कोई प्राप्त ही न करे; करे, पर कम, और जिसकी उस तरफ़ ख़ास रुचि हो, वही। कारण, भारत को इस समय स्वतंत्र करने की, औद्योगिक धंधों की, बेकारी दूर करने की तथा भरपेट अन्न मिलने की समस्या हल करने की ही सर्वप्रथम आवश्यकता है।

प्रत्येक देश की गवर्नमेंट का फ़र्ज़ होता है कि वह अपनी प्रजा की उन्नति और हित का ध्यान रक्खे, उसके लिये सदा नए-नए उद्योग और प्रबंध करे। पर हमारी सरकार तो जैसे बहरी, और कुछ-कुछ अंधी भी बनी बैठी है। देश में बेकारी का मर्ज़ बढ़ता जा रहा है, रोटी का प्रश्न कठिन होता जा रहा है; पर उसके कान पर जूँ भी नहीं रेंगती। बहुत कोशिश की गई, तो कुछ प्रांतों में जाँच के लिये कमीशन बैठा दिया। पर गवर्नमेंट का कमीशन नियुक्त कर देना प्रजा को एक भुलावे में डाल देना-भर है। सरकारी कर्मचारियों की टालटूल करने की यह भी एक चाल है। जिस संबंध में बहुत आंदोलन किया गया, तो बस, जाँच के लिये एक कमीशन नियुक्त कर दिया। हम आंदोलन करनेवाले इस चाल और भुलावे में आकर चुप हो जाते हैं। भारत के लाखों रुपए प्रतिवर्ष इन कमीशनों के पीछे बर्बाद होते हैं; पर हम देश को उसी परिस्थिति में, जहाँ-का-तहाँ, पाते हैं। कैसा अच्छा मज़ाक़ है! इसी को कहते हैं—"घड़ी-भर में घर जले, ढाई घड़ी भद्रा!"

भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के निवासी ७२ प्रतिशत से भी अधिक किसान हैं। पर देश की इतनी

बड़ी संख्या के लिये और इतने बड़े प्रधान पेशे की शिक्षा के लिये कोई प्रबंध नहीं है। इतने बड़े देश में, जहाँ सैकड़ों लूथर बरबैंकों (अमेरिका के एक प्रसिद्ध कृषि-विज्ञान के विद्वान् एवं किसान) की आवश्यकता है, वहाँ आज एक भी लूथर बरबैंक क्या, साधारण रीति से शिक्षित दस-बीस योग्य किसान भी नहीं हैं। वही बाबा आदम के ज़माने में खेती की जो प्रणाली प्रचलित थी, जो हथियार काम में लाए जाते थे, आज भी मौजूद हैं। इतने बड़े देश में मुश्किल से तीन-चार कृषि-कॉलेज हैं; और स्कूल तो शायद कोई है ही नहीं। इन कॉलेजों की शिक्षा-प्रणाली का ढंग भी ऐसा बेतुका, ऐसा अव्यावहारिक और ऐसा अनुपयुक्त है कि उससे हमें कोई लाभ हो ही नहीं सकता। वहाँ से जो विद्यार्थी निकलते हैं, वे या तो यों ही बेकार बैठ जाते हैं, या वहीं नौकरियों के लिये मारे-मारे फिरते हैं। ऐसे कृषि-कॉलेजों और शिक्षालयों से भारत का काम नहीं चल सकता। उनमें भी सुधार की ज़रूरत है। वहाँ की शिक्षा, भारत की आब-हवा और ज़मीन की परिस्थिति के अनुसार, आजकल के उन्नत तरीक़ों को परिमार्जित और परिवर्द्धित करते हुए, होनी चाहिए। केवल पश्चिमी देशों के वर्तमान उन्नत तरीक़ों और साधनों से काम नहीं चलेगा। उन्हें भारतीय आवश्यकता के अनुसार बनाना होगा। साथ ही इन दो-तीन कॉलेजों से क्या होगा? भारतवर्ष में तो कृषि-शिक्षा-संबंधी सैकड़ों कॉलेजों और हज़ारों स्कूलों के खुलने की महती आवश्यकता है, और इसके लिये भी हमें गवर्नमेंट को घेरना होगा। पाठकों को सरकार का बार-बार नाम आने से घबराना नहीं चाहिए। कारण, देश की शिक्षा और प्रजा की उन्नति करने का काम अथवा ज़िम्मेदारी उसी की है, और जब तक वह इसे पूरा नहीं करती, तब तक हम इसके लिये निरंतर आंदोलन करते रहेंगे। अस्तु, आगे जो भी कॉलेज खुलें, उनमें अधिकांश कृषि और कला-कौशल-संबंधी ही कॉलेज होने चाहिए। इस समय जो कॉलेज मौजूद हैं, वे साधारण शिक्षा-प्रचार के लिये आवश्यकता से अधिक हैं। भारतवर्ष में इस समय उच्च शिक्षा की उतनी ज़रूरत नहीं है, जितनी प्रारंभिक शिक्षा की। हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि केवल कृषि-कॉलेजों और कृषि-स्कूलों से ही हमारा काम नहीं चलेगा। जैसा कि हम पहले भी कह आए हैं, हमें बहुत-से औद्योगिक और विभिन्न शिल्प-कला, व्यवसाय तथा दस्तकारी के स्कूल कॉलेज भी खोलने होंगे। तभी हमारा काम चल सकेगा।

यह तो हुई भविष्य की बात। पर इस समय जो बेकारी का प्रश्न सामने है, उसे किस प्रकार हल किया जाय? यह बात नहीं है कि भारत में आज कामों की कमी है। काम करनेवालों के लिये हज़ारों काम हैं, और वे उन्हें करते ही हैं। दरअसल बात यह है कि हम लोगों का दिमाग़ पढ़-लिखकर बनने के बदले बुरी तरह से बिगड़ जाता है। हम हाथ से काम करना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते हैं। हम बढ़ईगीरी या ऐसे ही और कामों को नीच समझते हैं। यही कारण है कि हमारे दिमाग़ में, बस, नौकरी-ही-नौकरी घर कर लेती है। १५)-२०) की नौकरी करेंगे; पर तीस-चालीस रुपए की आय का कोई स्वतंत्र व्यवसाय नहीं करेंगे। हमें अपने ब्राह्मण, क्षत्रिय और कायस्थ होने का मिथ्या घमंड होता है और यही कारण है कि दफ़्तरों में साहबों की बेहद ख़ुशामद करना और उनकी डाँट-फटकार सुनना तो हम क़बूल करते हैं, पर बढ़ईगीरी, दर्ज़ीगीरी, राजगीरी, बर्तन बनाने-ढालने आदि के कामों से नाक-भौं सिकोड़ते हैं, उनसे अलग ही रहते हैं। हमारे शिक्षित भाइयों को अपने मन से इस भाव को दूर करना पड़ेगा। वे शिक्षा रोटी के लिये न प्राप्त करें, बल्कि मानव-धर्म को समझकर उसके अनुसार चलने के लिये, मानव-जीवन को समुन्नत, श्रेष्ठ, सदाचारी और कर्तव्यनिष्ठ बनाने के लिये शिक्षा प्राप्त करें। शिक्षा को नौकरी के संकुचित दायरे के अंदर बंद करके हम मनुष्यता और सामाजिक उन्नति के बाधक हो पाप के भागी बनते हैं।

जिस समय हमारे बेकार भाइयों का यह मनोभाव बदल जायगा, उसी समय उनकी बेकारी दूर हो जायगी। महात्मा गांधी देश की दरिद्रता और बेकारी को दूर करने के पीछे पड़े हुए हैं। परमात्मा उनके उद्योग को कुछ-कुछ सफल भी कर रहे हैं। महात्माजी द्वारा स्थापित 'चर्खा-संघ' और 'खादी-सेवा-संघ' में हज़ारों कार्यकर्ताओं की ज़रूरत है। प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है कि वह इस काम में मदद करे। इसमें शिक्षित, अशिक्षित, पढ़े और अनपढ़, सभी की ज़रूरत है। देश के उन सभी बेकार भाइयों को, जिन्हें इस काम में रुचि हो, खादी-सेवा-संघ में भर्ती होने की कोशिश करनी चाहिए। उन्हें इस काम से इतना मिलेगा, जिससे

साधारण रीति पर वे अपना गुज़र कर सकेंगे। हाँ, उन्हें शानदार जीवन और ऐश-आराम के साधन के लायक़ धन ज़रूर नहीं मिल सकेगा।

हमारे शिक्षित और अच्छे पढ़े-लिखे लोगों के लिये एक और भी बहुत महत्त्वपूर्ण काम है। वह है ग्रामीणों की सेवा। म० गांधी के खद्दर के कार्य से यह काम जुदा होगा। इसकी योजना भी दूसरे प्रकार की है। भारतवर्ष के गाँववालों की कैसी शोचनीय दशा है, यह किसी से छिपा नहीं। भारत का हृदय, उसकी जीवनी शक्ति और आत्मा इन ग्रामों में ही है। देश के अन्नदाता, पालक और पोषक ये दुखी किसान और मज़दूर ही हैं। पर इन अभागों की दशा को देखने तक की भी किसी नेता को फ़ुर्सत नहीं। सुधारना तो दूर की बात है। देश के सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न है। इसे हल किए बिना, भारत के गाँवों में रहनेवाले भारत के ६० प्रतिशत व्यक्तियों की दशा सुधारे बिना, देश का कभी उद्धार नहीं हो सकता, स्वराज्य नहीं मिल सकता।

हमारे शिक्षित भाइयों को इन्हीं ग्रामों में जाकर बस जाना होगा, इन्हीं की सेवा में अपना जीवन लगा देना होगा, इन्हीं का हो जाना पड़ेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह काम बहुत त्याग का है। इसमें ख़ूब तकलीफ़ें भी झेलनी होंगी। पर भारत की बेकारी दूर करने, उसकी आर्थिक दशा सुधारने, गाँववालों को योग्य बनाने और सर्वोपरांत स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये हमें ये तथा इनसे भी बढ़कर बड़ी तकलीफ़ें और परेशानियाँ झेलनी पड़ेंगी। गाँवों में काम करनेवाले भाई अपने सीधे-सादे आदर्श जीवन और ऊँचे विचारों से ग्रामीण जनता में राष्ट्रीयता, कर्तव्य-परायणता, स्वच्छता, शिक्षा-प्रेम, सेवा-भाव आदि भावों का प्रचार करेंगे। उन्हें इस योग्य बनावेंगे कि वे कर्तव्यों और अधिकारों को अच्छी तरह समझकर अपने जीवन में उन्हें पूर्ण और प्राप्त कर सकें। उन्हें वहाँ रात्रि-पाठशाला, पुस्तकालय, वाचनालय, छोटे-छोटे औषधालय, व्यायामशाला आदि उपयोगी संस्थाएँ खोलनी होंगी, पंचायतें क़ायम करनी होंगी। पशु-पालन और कृषि की उन्नति से संबंध रखनेवाली नई-नई उपयोगी और लाभप्रद बातें बतलानी होंगी। खद्दर का काम करना होगा, और सफ़ाई पर बहुत ज़ोर देना पड़ेगा। परंतु सबसे अधिक उन्हें राष्ट्रीय भाव जाग्रत् करने पर ही ज़ोर देना पड़ेगा, और इसी दृष्टिकोण से वे सभी काम करेंगे। साथ ही उन्हें सामाजिक कुरीतियों पर भी निगाह रखनी होगी। धीरे-धीरे लोगों का रुख़ देख-देखकर अपने व्यावहारिक जीवन द्वारा सारी बुराइयों को दूर करना पड़ेगा। वास्तव में देखा जाय, तो देहातों में काम करनेवालों के लिये काम-ही-काम है; एक-दो नहीं, पचासों काम हैं। पर प्रश्न यह है कि आख़िर इन काम करनेवालों के जीविका-निर्वाह का क्या ज़रिया होगा? इसके लिये स्पष्ट उत्तर यह है कि ऐसे सच्चे, निःस्वार्थी, त्यागी और योग्य काम करनेवालों के लिये जीविका-निर्वाह की अड़चन नहीं होती। जो ग्रामीणों की इतनी सेवा करेंगे, उन्हें हमारे भोले-भाले, सच्चे और उदार हृदयवाले, दयालु ग्रामीण भाई अपने हाथों पर लिए रहेंगे, उनका समुचित सम्मान करेंगे, और अगर कार्यकर्ता महाशय तपाया हुआ खरा सोना निकले, तो उनकी पूजा भी होने लगेगी, उन्हें सच्चा, योग्य और निःस्वार्थी होना चाहिए। हाँ, शुरू-शुरू में जब तक लोग ऐसे कार्यकर्ताओं के स्वभाव तथा गुणों को परख न लें, उन्हें उन पर विश्वास न हो जाय, तब तक के लिये उनकी जीविका आदि का दूसरा प्रबंध ज़रूर करना होगा। पर यह भी आसानी से हो सकता है। महात्माजी के खादी-कार्य से भी इसमें काफ़ी सहायता मिल सकेगी। पर उतनी नहीं, जितनी कि आवश्यक है; क्योंकि उनके कार्यकर्ताओं का ख़ास काम खद्दर-प्रचार ही रहेगा। वास्तव में गाँवों के इस काम के लिये तो एक बहुत अच्छी और सुसंगठित संस्था की आवश्यकता है, जो इसे सुचारु रूप से चलावे। इस समय देश में 'भारत-सेवक-संघ' (Servants of India Society) और 'लोक-सेवा-संघ' (Servant of People Society), ये दो ऐसी संस्थाएँ हैं, जो अगर इस काम को हाथ में लें, तो बहुत अच्छा है। हमारे देश के नेता भी ग्रामीणों की दशा सुधारने, उन्हें उन्नत करने की आवश्यकता का अनुभव अच्छी तरह से कर रहे हैं; पर खेद यही है कि व्यावहारिक रूप से कुछ कार्य होता दिखाई नहीं पड़ता। हम अपने देश के नेताओं और धनी, मानी, उदार देशभक्तों से इस कार्य के लिये प्रार्थना और आशा करते हैं कि वे देश के इस सबसे बड़े महत्त्व-पूर्ण काम की ओर अपना ध्यान देंगे। पर दुर्भाग्य से यदि देश के नेता और धनी, मानी, उदार महानुभाव इधर ध्यान नहीं देते, तो भी हमें यह काम करना ही पड़ेगा। हम आशा करते हैं, देश के वे होनहार नवयुवक, जिनके

हाथों में भारतोद्धार की पतवार है, अवश्य इस बात पर विचार करेंगे, और इसमें लग जायँगे। इससे हमारी बेकारी भी दूरी होगी, और देश का काम भी होगा। एक पंथ दो काज होंगे; लोक और परलोक, दोनों बनेंगे।

पर देश के सभी बेकार आदमी इस काम को नहीं कर सकेंगे। इसको वे ही करेंगे, जिनकी इस तरफ़ रुचि होगी, और साथ ही वे पढ़े-लिखे भी होंगे। दूसरे आदमियों के लिये भी काम की कमी नहीं है। दूसरे लोगों को, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, अपना मनोभाव बदलना होगा, और विभिन्न प्रकार के उद्योग-धंधों, दस्तकारियों तथा वाणिज्य-व्यवसायों में लग जाना पड़ेगा। बढ़ईगीरी, दर्ज़ीगीरी, राजगीरी, बुनाई और कताई, पेंटिंग, घड़ी-साज़ी, जिल्द-साज़ी आदि ऐसे-ही-ऐसे अनेक काम हैं, जो किए जा सकते हैं। देश में आलपीन, सुई, निब, पेंसिलें, क़लम, दावात, दियासलाई, रबड़, चाक़ू, उस्तरे, कंघियाँ, साबुन, खिलौने, विभिन्न प्रकार की छोटी-छोटी मशीनें तथा अन्य ऐसी ही सैकड़ों प्रकार की चीज़ें विदेशों से आती हैं। ये चीज़ें यहाँ बनती ही नहीं, या बहुत कम बनती हैं। इन चीज़ों को बनाने की ओर ध्यान दिए जाने की सख़्त ज़रूरत है। पर इसके लिये भी विना अच्छे स्कूल और कॉलेज खोले काम नहीं चल सकता। इस लाइन में प्रेम-महाविद्यालय का काम प्रशंसनीय है। देश में हज़ारों की संख्या में ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता है। कलकत्ते के टेक्निकल कॉलेज में भी, औद्योगिक शिक्षा की विशेषता के ही कारण, पाँच-छः सौ विद्यार्थी शिक्षा पाते और वहाँ से प्रतिवर्ष पचासों निकलकर स्वतंत्र जीविका प्राप्त करते हैं। असहयोग के ज़माने में खुले हुए स्कूलों और कॉलेजों में से इस समय बहुत कम बाक़ी रह गए हैं। क्या इन राष्ट्रीय संस्थाओं के चलाने-वाले महानुभाव इस ओर ध्यान देंगे? वास्तव में जो राष्ट्रीय स्कूल और कॉलेज देश में इस समय तक बच गए हैं, उन सबों को औद्योगिक शिक्षा की ओर लगा देने की बहुत अधिक आवश्यकता है। देशभक्ति और असहयोग की दृष्टि से अब ये संस्थाएँ और अधिक दिन तक चल भी नहीं सकतीं।

इन संस्थाओं को या तो देश के लिये काम करनेवाले कार्यकर्ताओं का अड्डा और आरामस्थल (Resting Place) बना देना चाहिए, अथवा कला-कौशल की शिक्षा की ओर लगाकर वहाँ ऐसे लोग तैयार करने चाहिए, जो स्वच्छंदता-पूर्वक अपनी जीविका चला सकें, उन्हें दूसरों का मुँह न ताकना पड़े। यह दूसरी योजना ही अधिक उपयोगी और व्यावहारिक मालूम पड़ती है। कारण, पहली योजना के अनुसार बहुत कम संस्थाएँ ही चलाई जा सकती हैं। इस समय भारत में असहयोग-काल के तीन-चार ही विद्यापीठ (काशी, गुजरात, बिहार, पूना और दिल्ली का जामिया-मिल्लिया) रह गए हैं। अगर इन विद्यापीठों के अधिकारी इस ओर ध्यान दें, तो बहुत अच्छा हो—ख़ासकर काशी विद्यापीठ, जिसकी, आर्थिक दशा बहुत अच्छी होने के कारण, नींव बहुत मज़बूत है। उसके दान-पत्र में कला-कौशल की शिक्षा को ही अधिक महत्त्व भी दिया गया है। वह इस ओर यदि विशेष रूप से ध्यान दे, तो एक बड़े अभाव की पूर्ति कर सकता है। पर इस काम में, संसार के सभी कामों के समान ही, सच्चे दिल से और जी-जान से लग जाने की ज़रूरत है। इस प्रकार लगने की ज़रूरत है, जिस प्रकार बुकर टी० वाशिंग-टन ने लगकर अमेरिका के टस्केजी-विश्वविद्यालय को जगत्प्रसिद्ध बना दिया था। क्या इन विद्यापीठों में एक-एक बुकर टी० वाशिंगटन नहीं हैं? क्या ही अच्छा हो, अगर भारत के ये विद्यापीठ भारत में चार-पाँच टस्केजी-महाविद्यालयों का काम कर दिखावें। हम आशा करते हैं, विद्यापीठों के अधिकारी इस ओर ध्यान देंगे, और यह होकर रहेगा।

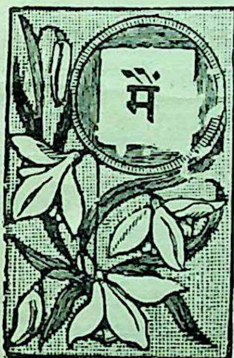
हम यहाँ पर आजकल के गुरुकुलों और ऋषिकुलों के अधिकारियों से भी अपने यहाँ कुछ औद्योगिक या कुछ ऐसी ही शिक्षा का विशेष प्रबंध करने को कहे विना नहीं रह सकते (हर्ष का विषय है कि गुरुकुल, काँगड़ी का इस ओर ध्यान है); क्योंकि हम जानते हैं, इनके स्नातकों के सामने भी 'हम अब क्या करें?' का प्रश्न कम महत्त्व नहीं रखता। गुरुकुलवालों ने आयुर्वेद की शिक्षा का प्रबंध कर रक्खा है। पर इसके साथ ही कुछ दस्तकारी और कला-कौशल की शिक्षा का भी प्रबंध अगर हो, तो बड़ा लाभ होगा।

हिंदोस्तान में इस समय अँगरेज़ी-शिक्षा का कैसा कुफल फल रहा है, उससे हिंदोस्तानियों को क्या-क्या हानि हो रही है, शिक्षितों में बेकारी का मर्ज़ दिन-दिन किस क़दर बढ़ता जा रहा है, और इन आपत्तियों से बचने के क्या

उपाय हो सकते हैं—इन बातों को स्थूल रूप से इस लेख में दिखाने की हमने कोशिश की है। अँगरेज़ी-शिक्षा के और जो बुरे प्रभाव हम लोगों पर पड़े हैं, तथा अन्य जो दुष्परिणाम हमें भुगतने पड़ रहे हैं, उन्हें छोड़ इस लेख में केवल बेकारी पर ही विचार किया गया है। आशा है, ये बातें हमारे पाठकों की आँखों से गुज़रेंगी, और वे विचार करेंगे। हमने इसीलिये ये पंक्तियाँ लिखी हैं कि हमारे प्रेमी पाठक इन्हें पढ़कर विचार करें, और जहाँ तक हो सके, अँगरेज़ी-शिक्षा के दुष्परिणामों से बचने, बेकारी को दूर करने और, भारत की आर्थिक समस्या हल करते हुए भी, इसे शीघ्रातिशीघ्र स्वतंत्र देखने की पूरी कोशिश करें।

देवव्रत शास्त्री

पेरिस की सौंदर्य-कला प्रदर्शिनी

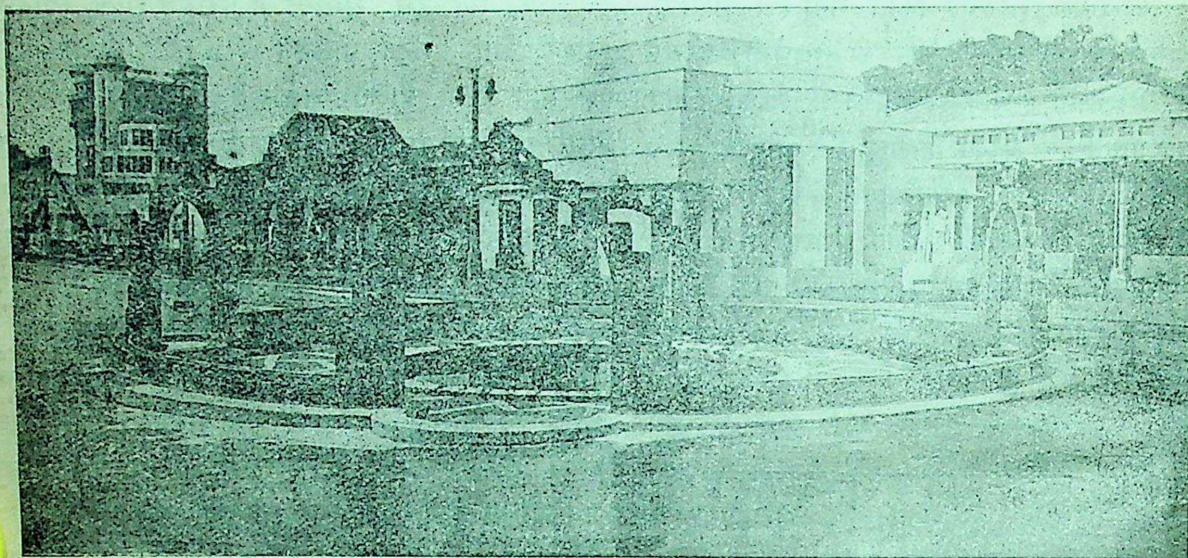


जब पेरिस पहुँचा, तब वहाँ सौंदर्य-कला की प्रदर्शिनी हो रही थी। यह मेरे लिये वास्तव में सौभाग्य का विषय था कि उसे देखूँ। प्रदर्शिनी सभी चीज़ों की होती है। आजकल तो कल-काँटे, मशीन, खद्दर सभी की होती है। यार लोग सुंदर बच्चों और बदसूरत बेडौल स्त्रियों की प्रदर्शिनी करते हैं। योरप में तो अब अंग-प्रत्यंग तक की प्रदर्शिनी होती है। कभी सुंदर पैरों की हाट लगती है, तो कभी आँखों की। मतलब यह कि प्रदर्शिनी शब्द बहुत व्यापक बन गया है। किंतु प्रदर्शिनी का उचित प्रयोग या उपयोग सुंदरता के साथ ही किया जा सकता है। असुंदर का क्या प्रदर्शन और किस वास्ते दर्शन। यह सार्थकता पेरिस की सार्वभौम प्रदर्शिनी ने चरितार्थ की। पेरिस पहुँचने के दूसरे दिन से ही मैं प्रदर्शिनी जाने लगा, और प्रायः डेढ़ महीने में दो-चार रोज़ ही नाग़ा हुई।

संसार में एक भाषा है, जिसे सारा विश्व समझता है। विश्व-भाषा एस्परांटो आदि नहीं, बल्कि यह मौन भाषा है। प्रकृति की यह लीला है—पुरुष का यह प्रताप है कि पशु-पक्षी से लेकर सभ्यतम मनुष्य तक यह भाषा सीखकर गर्भ से निकलता है। अमेरिका के रेड इंडियन, आफ़्रिका के होटेंटो, न्यूज़ीलैंड के माओरी और बोर्नियो के ढाक, सब इसे समझते हैं। रोम्याँ रोलाँ, रवींद्रनाथ ठाकुर, रेमांट, क्नूट हामजून (Knut Hamsun) भी यही भाषा बोलते हैं। यह है "तंत्रीनाद, कवित्तरस, सरस राग, रति-रंग," अर्थात् जीव का सौंदर्य-बोध और प्रकाश-प्रवृत्ति। कौन प्राणी ऐसा है, जो सुषमा की प्रेरणा से प्रेरित न होता हो, और जिसे कभी-न-कभी इस अनुभूति द्वारा प्राप्त आनंद को आत्मप्रबोध के लिये प्रकट करने की अदम्य इच्छा न सताती हो। फल यह होता है कि कला की यह बोली सब समझते हैं, भगवान् की यह भाषा सब बोलते हैं। 'प्राच्य और पाश्चात्य कला' शब्द हमारे संकीर्ण हृदयों के सूचक हैं। जिस समय हम जातियों या देशों के अनुसार साहित्य, संगीत और कला के विभाग करते हैं, उस समय यह भूल जाते हैं कि हमारी गढ़ी हुई कृत्रिम और संकुचित सीमाएँ इस वायुमंडल में लीन हो जाती हैं। "अत्र को देशः का जातिः एकत्व-मनुपश्यतः"—यहाँ कौन-सा देश, कैसी जाति! कला-मर्मज्ञ सर्वत्र एकता देखता है। आब्रह्म-स्तंब-पर्यंत सभी 'रमणीयता' की खोज में, सुंदरता के सागर में होते हुए भी, अपनी आत्मा के प्रबोध और उसकी तृप्ति के लिये दौड़ रहे हैं। फिर कहाँ का भेद, कहाँ की सीमा! यह प्रबोध यह तृप्ति जब हमारे सामने रक्खी जाती है, तब उसका नाम कला, साहित्य, संगीत, नृत्य आदि हो जाता है। इस हालत में तुलसी और टालस्टाय एक ही बोली बोलते हैं। मोलाराम और राफ़ेल एक ही भाषा का प्रयोग करते हैं। इसलिये उन भाइयों को, जो अपनी ज़बर्दस्त लाठी की मार से इस सौंदर्य-सागर के टुकड़े करना चाहते हैं, उदार बनने की कृपा करनी चाहिए। अँगरेज़ों की अनीति या गोरों की प्रभुत्व-पिपासा से जल-भुनकर हमें इसका पूरा यत्न करना चाहिए कि यह शठता रुके; किंतु साहित्य और कला के पवित्र क्षेत्र में राग-द्वेष से ऊपर उठना चाहिए। गोसाईंजी की भाँति कहना पड़ता है—"बंदौं पुनि खल गन सति भाए; जे बिनु काज दाहिने बाँए।" अन्यथा मनुष्य कूप-मंडूक ही नहीं रहता, बल्कि इस विश्व-भाषा को विकृत रूप में समझता है, जिससे कला की हत्या होती

। भला इससे बड़ा पाप और क्या हो सकता है। "मृत्योः मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।" अर्थात् जो यहाँ भिन्नता या नानात्व देखता है, उसकी मौत-पर-मौत होती है।

चिमटा है, इसलिये हम पुस्तक के गुण-दोष-विचार में सबसे पहले पूछते हैं—इस किताब से क्या शिक्षा मिलती है? यदि कुछ शिक्षा नहीं प्राप्त होती, तो कला या किताब किस काम की! गोया कला का ध्येय दूसरा हो ही नहीं



ज्योतिर्मय स्रोत
(रात को इसकी शोभा होती थी)

यह बात मुझे पेरिस की, गत सन् १९२५ की, सार्व-म प्रदर्शिनी ने भली भाँति बता दी। सुंदरता चाहे जैसी , ज़बर्दस्ती हृदय को हर लेती है। मनुष्य किसी भी ा का हो, सुंदरता का बोध उसे एकदेशीयता के ऊपर ा देता है। भारत के ताजमहल को हमारा बड़े-से-बड़ा ु भी कुरूप नहीं बता सकता। कौन ऐसा मनुष्य होगा, उसके सामने खड़ा होते ही उस सुषमा-सागर में डूब जाय? इस वैभव के आगे जातीयता लुप्त हो जाती है; ोंकि कला का संबंध हृदय के उन भावों से है, जिनमें य, शिव और सुंदररूपी अमृत भरा रहता है। कला कृति के दर्शन और उसकी अनुभूति से वह विशुद्ध नंद प्राप्त होता है कि दर्शक नीच और शुद्ध भावों की -बुध खो देता है। इससे कोई यह न समझ बैठे कि ा नीति-शिक्षक का काम करती है, या कला-प्राण मनुष्य रित्रता की सृष्टि करने के लिये अपनी कृति संसार को हैं। नहीं, यह सिद्धांत भ्रामक है। कला में नीति की आती भी है, और नहीं भी आती। चूँकि इस समय लोगों को रस्किन या उसके चेले विलियम मारिस की तकें ही पढ़ने को मिलती हैं, और हमको नीति का भूत

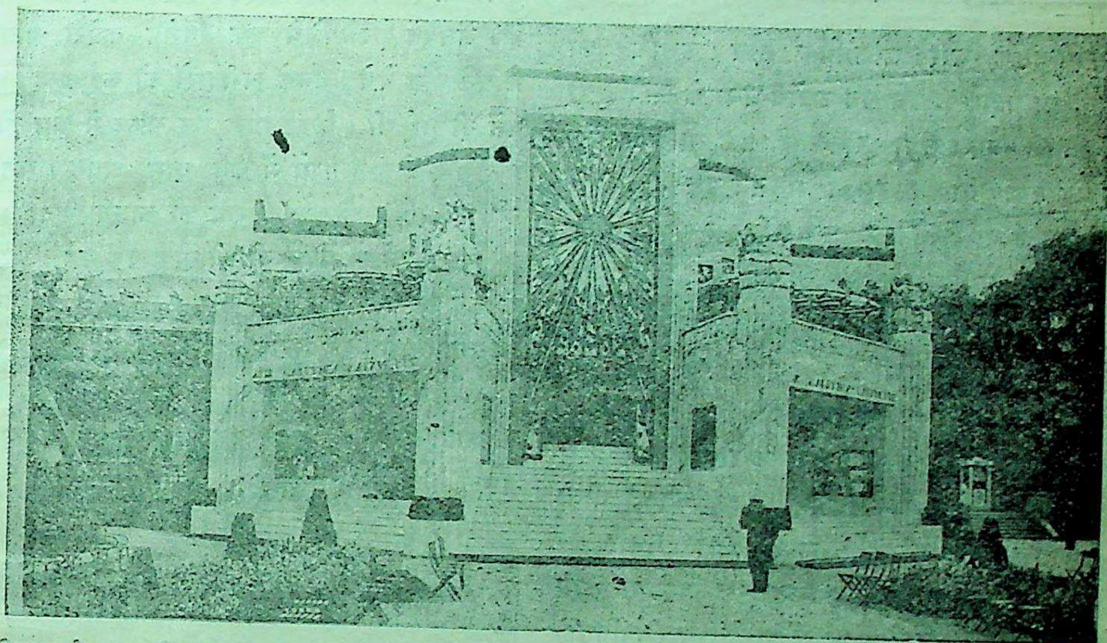
सकता। हम भूल जाते हैं कि इस परीक्षा में कालिदास की शकुंतला फ़ेल हो जायगी, और बिहारी के समान प्रतिभाशाली कवि मणि से काँच हो जायँगे। जो हो, यह सौंदर्य-कला की प्रदर्शिनी रमणीयता की लीलास्थली थी। इसकी विशेषता ही यह थी कि सुंदर पदार्थों को सुंदर ढंग से सजाकर सौंदर्य-प्रेमी जनता की तृप्ति के लिये उनका प्रदर्शन कराया गया था। आज तक की प्रदर्शिनियों में इस बात का ध्यान कम रक्खा जाता था। उनमें यह ध्यान अवश्य रक्खा जाता था कि दर्शकों के मनोविनोद के लिये थिएटर, राग-रंग, नाच-तमाशे आदि का उचित प्रबंध रहे; लेकिन प्रदर्शिनी की सारी सजावट आगंतुकों की आत्मा को आनंद से उल्लसित कर दे—यह भाव किसी को न सूझा। इस प्रदर्शिनी में यह अभाव पूर्ण किया गया था। एक तो शृंगार के साधनों की प्रदर्शिनी, उस पर स्वयं उसका शृंगार किया गया! इस मणि-कांचन-संयोग की प्रशंसा किसके किए हो सकती है? "सुंदरता कहँ सुंदर करहीं; छबि-गृह दीप-शिखा जनु बरहीं।" गोसाईंजी का यह भाव शब्दशः चरितार्थ हो रहा था।

इस प्रदर्शिनी का नाम था Exposition des

art decorative moderne यानी नव्य शृंगार-साधनों की प्रदर्शिनी। हाँ, नव्य शब्द बड़े महत्त्व का है; क्योंकि इस प्रदर्शिनी का सारा दारमदार इसी पर है। शृंगार या सजावट के साधन सदा से चले आ रहे हैं। प्राचीन भारत पूर्ण आध्यात्मिक था; किंतु शृंगार की महत्ता उस समय आज से बहुत अधिक थी। स्वयं राम-राज्य में अयोध्या में "नाकुंडली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान्" लोग थे, यानी कोई नागरिक ऐसा न था, जो बिना सज-धज के बाहर निकलता हो, या जो पूरा भोग न करता हो। समस्त संसार में शृंगार की यह प्रवृत्ति ब्रह्म की तरह व्याप्त है। पशु, पक्षी, जंगली मनुष्य और सभ्य समाज, सर्वत्र सभी यह प्रयत्न करते हैं कि सुंदर बनें। कारण चाहे कुछ हो, किंतु तथ्य वर्तमान है। शृंगार की इच्छा वर्तमान

काम केवल नए फ़ैशनों का प्रचार करना है। कोई दैनिक या साप्ताहिक पत्र ऐसा नहीं, जो इन फ़ैशनों की अग्र गति पाठकों के सामने न रखता हो। बात यह है कि विज्ञान की अकस्मात् तथा द्रुत गति ने परिवर्तन की प्रवृत्ति के साथ वायु-वेग के पंख जोड़ दिए हैं। अब सब विभाग विमान की चाल से चलते हैं। "नोतून किछू कोरो एकटा नोतून किछू कोरो" का रोग भी इसी प्रचंड वेग से धावित हो रहा है।

यह स्वस्थ दशा है या अस्वस्थ, इससे उन्नति होती है या अवनति, यह प्रश्न दूसरा है। मैं समझता हूँ, वेश-भूषा के संबंध में योरप 'अति' कर रहा है, और यह 'अति' उसे खा जायगी। किंतु नवीन को सदा हानिकर समझने की मानसिक वृत्ति इस विषय पर अति होने की अपेक्षा



रेखाओं की रूप-विहीन सुंदरता

रहने पर भी साधन बदलते रहते हैं। भारत में भी यह परिवर्तन होता रहा है। योरप में 'रोकोको', 'बारोक' आदि युग प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त एलिज़बेथ, हेनरी चौथे आदि राजों ने नए-नए फ़ैशन चलाए हैं। इधर डेढ़-दो सौ साल में यहाँ के साज-सरंजाम में बड़ी उलट-पलट हुई है। इधर जिस वेग से फ़ैशन बदलते हैं, उसका अंदाज़ भारत के भोले-भाले भाई नहीं लगा सकते। साल में बीसियों बार वेश-भूषा में बदलाव होता है। हर योरपियन मुल्क में इस एक विषय पर सैकड़ों पत्र निकलते हैं, जिनका

अवांछनीय है। "पुराणमित्येव न साधुसर्वं"—पुराना होने से ही सब अच्छा नहीं होता, यह बात हमारे पूर्वज भी मानते थे; तो भी इस समय भारत और योरप में यही अंतर है कि भारत नए से घबराता है, और योरप पुराने से। भारत नवीन को स्वीकार करने में ढील करता है, योरप तुरंत उसे अंगीकार कर लेता है। योरप में जब कोई दूकान नई खुलती है, तो उसका मालिक विज्ञापन के ढंग पर बाहर तख़्ता लटका देता है कि यह दूकान नई खुली है। बस, ग्राहक टूट पड़ते हैं। हिंदोस्तान

में लोग नई दूकान से दूर भागते हैं। मुझे ख़ूब याद है, म्योर सेंट्रल कॉलेज के एक बंगाली प्रोफ़ेसर बिजली का पंखा कभी नहीं खोलते थे। कहते थे—भाई, इन नवीन आविष्कारों से मैं शैतान की तरह दूर भागता हूँ। यह भी हद है। एम्० ए० में प्रथम स्थान प्राप्त करने पर भी यह दुर्बलता न छोड़ना विशेष प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। अस्तु, योरप में इसका उलटा है। इसके कारण विज्ञान की आश्चर्य-जनक उन्नति हुई है, और विज्ञान की इस अपूर्व उन्नति के कारण यह प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ती जा रही है। इसलिये नएपन की यह धुन योरप को समाई है।

इस प्रदर्शिनी में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि पुराने के लिये यहाँ स्थान नहीं। इसके प्रोग्राम में साफ़ लिखा हुआ था—

"सौंदर्य-वर्द्धक और औद्योगिक नव्य कलाओं की यह सार्वभौम प्रदर्शिनी उन सब उद्योग-धंधों के लिये खुली हुई है, जिनके स्वरूप तथा झुकाव से साफ़ मालूम पड़ता हो कि यह नया ढंग है। इसका मतलब यह है कि हर तरह की नक़ल या शैली का प्रतिरूप इससे बाहर कर दिया जायगा। साथ ही इसका तात्पर्य यह भी है कि सब उद्योग-धंधे इसमें भाग ले सकते हैं। रोज़मर्रा काम की तथा मामूली चीज़ें भी उतना ही सौंदर्य प्रकट कर सकती हैं, जितना बहुमूल्य पदार्थ।

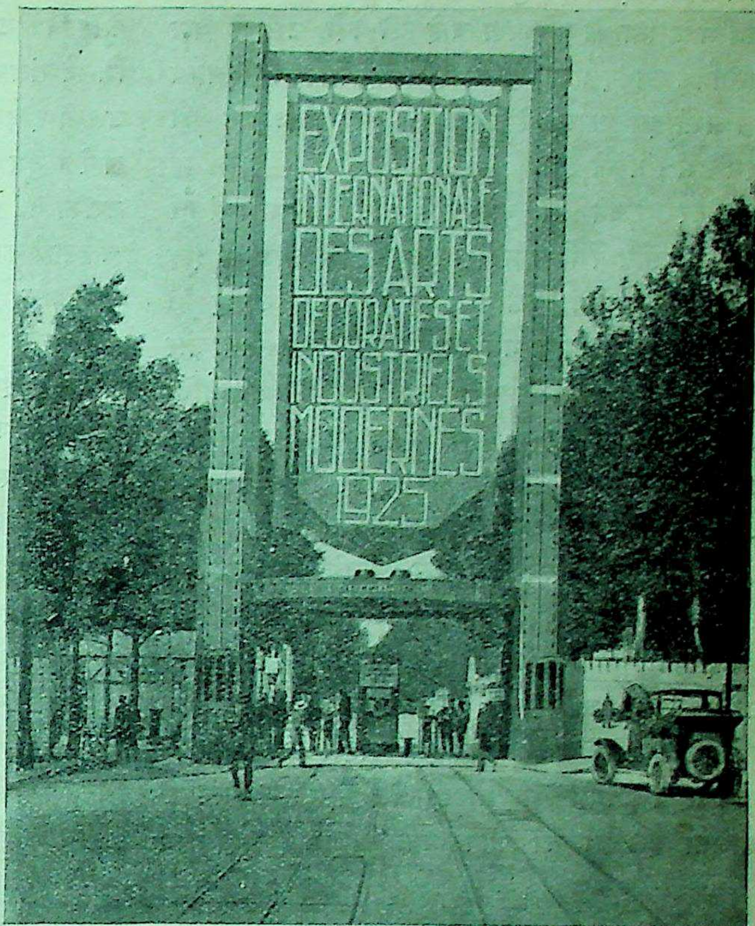
"सब व्यवसायी, कलावंत और कारीगर, चाहे जिस वस्तु पर काम करते हों—लकड़ी, पत्थर, धातु, चीनी काँच, काग़ज़, कपड़ा आदि चाहे जिस आधार पर काम करते हों—वे इनका चाहे जैसा रूप उपस्थित करने की चेष्टा करते हों—अपने काम में अनूठापन (नवीनता) दिखा सकते हैं, और उन्हें यह दिखाना चाहिए।"

यह वही बात है "भाव अनूठो चाहिए, भाषा कोऊ होय।" शब्दों में कुछ भेद है; 'भाषा कोऊ होय' की जगह पर कहा गया है 'साधन कोऊ होय'। यही कला की पहचान है। आप अपनी कृति में वह चमत्कार पैदा कर दें कि वह पाठक या दर्शक का मन चमत्कार से हर ले। चित्त की यह चोरी काव्यानंद या (कला द्वारा उत्पन्न) भावुकता कहलाती है। इस प्रदर्शिनी के संचालक चाहते थे, जनता जाने कि वर्तमान युग की आत्मा ने सौंदर्य का कौन रूप खोज निकाला है। असल में यह रूप सर्वसाधारण के हृदय की उपज है। किंतु सबको यह वरदान नहीं होता कि वे अपना रूप पहचानें। और, उससे भी कम को यह सौभाग्य प्राप्त होता है कि उसे वर्णित या चित्रित करें। जो रस-सिद्ध यह काम करते हैं, वे कला-मर्मज्ञ कहलाते हैं। जब ये अपनी कला प्रदर्शित करते हैं, तब जनता स्वरूप की सुंदरता देखती है। इनकी कृति आदर-पूर्वक यहाँ निमंत्रित की गई थी। इसलिये यहाँ चित्र, पुस्तकों से लेकर मशीनों तक, सब कुछ था। जिन-जिन पदार्थों के द्वारा किसी भी प्रकार की सजावट की जा सकती थी, उनका स्वागत और प्रदर्शन किया गया था। शर्त यही थी कि ढंग और रूप बिलकुल नया हो।

फ़्रांस आजकल निर्धन है, इसलिये पहला सवाल उठा कि ख़र्च कौन उठावेगा। फ़्रेंच सरकार के कंधों पर पुराने ऋण का भार ही इतना है कि वह दबी जा रही है। अतएव इसके लिये एक विशेष कमेटी बनाई गई, जिसने बौंड बेचे। इनके ख़रीदारों को कई तरह की रियायतें दी गई थीं। टिकट माफ़, रेल सफ़र में कम क़ीमत का प्रलोभन, खेल-तमाशों में कम दाम आदि। सन् १९२३ की १० एप्रिल को इस आशय का क़ानून बना। १९२४ की २६ मार्च को प्रदर्शिनी की नीव पड़ गई। ख़ास पेरिस के केंद्र में यह स्थल चुना गया। सेन-नदी के दोनों तरफ़ का तट इसके लिये सुरक्षित किया गया। नियत समय पर यानी १९२५ की एप्रिल को प्रदर्शिनी के पट खोले। योरप में जाति-विद्वेष की प्रचंड ज्वालाओं के रहते हुए भी सब राष्ट्रों ने सह भाग लिया (जर्मनी अपवाद है)। दर्शकों की भीड़ भी काफ़ी रहती थी।

प्रदर्शिनी के जनरल कमिसार मो० पोल लेओ (Paul leon) ने कहा है— de uouvelle dendanaess' offiruent. अर्थात् "नई प्रवृत्ति ने सिर उठाया।" इसका अभिप्राय यह है कि सुंदरता की नई झाँकी के दर्शन हुए। अर्थात् इसका आभास 'प्रास दाला कोंकोर्ड' की ओर जो बड़ा सात खंभों का फाटक बना था, उससे मिल रहा था। ये खंभे सीमेंट के बनाए गए थे। अंदर बिजली जल रही थी, जिसके दर्शन चोटी पर हो रहे थे। ये स्तंभ इस बात के द्योतक थे कि सुंदरता की दीप-शिखा की तेल-बत्ती आत्मा है। यह लौ यदि भीतर से नहीं निकलती, तो सौंदर्य बेजान है, मुर्दा है। "स वेदै तत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति

शुभ्रम् ।" उस परब्रह्म को कौन जाने, जिसकी ज्योति से संसार के प्राणी शुभ्र रूप में चमकते हैं; क्योंकि "प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति"—यही वह जीवन है, जो सब भूतों का आश्रय-स्थल है। यह दर्वाज़ा अपने नवीन विचित्र रूप में यही घोषणा कर रहा था। इसको देखनेवाला भला यह कैसे कहता कि यह कहीं का प्रवेश-द्वार है। कितना विकृत था, किंतु इसकी यह नई बिगड़ी हुई शकल इसीलिये बनाई गई थी कि कला-प्रेमी रमणीयता का वास्तविक अर्थ समझें; इस पवित्र स्थान में घुसने के पूर्व वे जान लें कि प्रत्यक्ष असुंदर के भीतर सुंदर किस भाँति झलकता है—बाहरी बदसूरती की आड़ में ख़ूबसूरती क्या क्रीड़ा करती है। सारांश यह कि सुंदरता आध्यात्मिक पदार्थ है। आजकल कला की जो नई वेश-भूषा Expressionism और Cubism के नाम से विख्यात है, वह कला में आध्यात्मिकता स्वीकार करती है; किंतु भारतीय पाठक सदा ध्यान रक्खें कि आत्मा आत्मा में भी भेद पड़ जाता है। Soul का अर्थ हिंदी में आत्मा किया जाता है; किंतु ये दोनों पदार्थ एक नहीं हैं। योरप में हृदय को ही आत्मा कहते हैं। हम कहते हैं—"यो बुद्धेः परतस्तु सः"—बुद्धि से भी परे जो शाश्वत चैतन्य तत्त्व है, वह आत्मा है। जो हो, झुकाव दोनों का इस दृश्य जगत् से ऊपर उठाने की ओर है। यह मर्त्यलोक किसे संतुष्ट कर सका? कौन इससे न ऊबा? प्रत्येक प्राणी के जीवन में एक समय आता है, जब वह जड़ जगत् से खिन्न होकर मुक्त होना चाहता है। यह अवसाद का काल है। इस स्थिति में निराशा आ घेरती है। बहुधा इस मँझधार में आदमी अपने को नहीं बचा सकता, वह डूब जाता है, या उसका नैतिक पतन होता है, वह चकनाचूर हो जाता है। इस परिवर्तन के समय यदि वह सँभल गया, तो तपा हुआ सोना, कवि बन गया। उसकी तृप्ति हो जाती है। उसे भूमा—आनंद-ब्रह्म—का साक्षात्कार मिल जाता है। यह

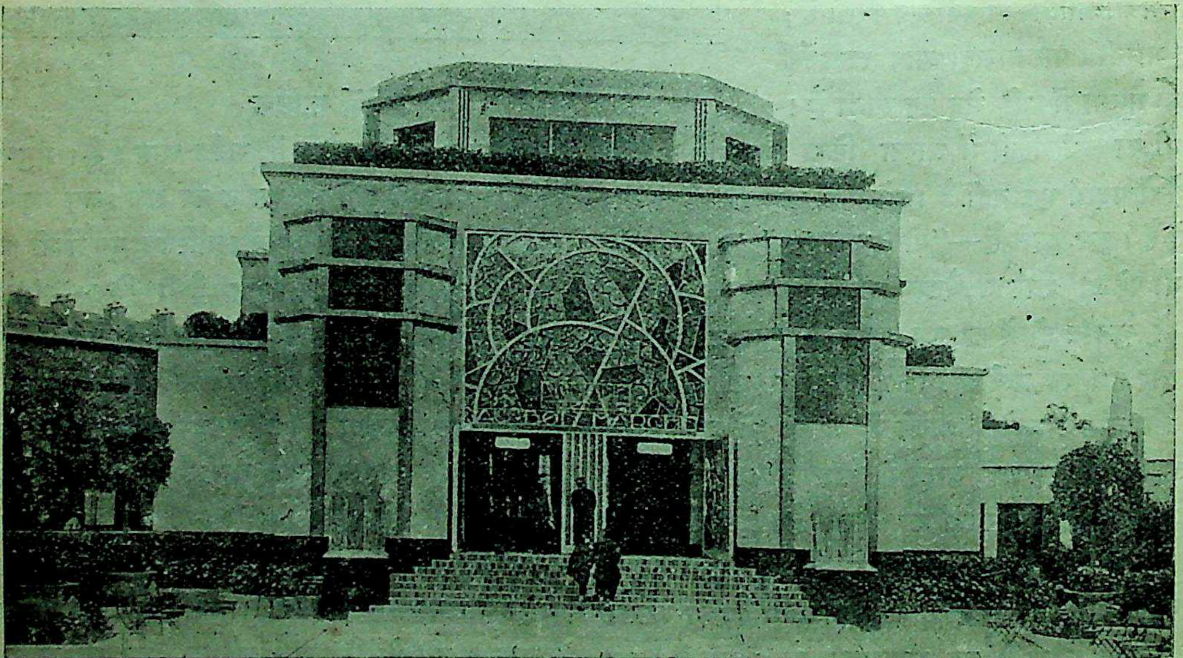


केदोर्जे फाटक

सत्य भारत में और योरप में, सर्वत्र समान है। मनुष्य को सांसारिक पदार्थ कहीं भी तृप्त न कर सके। जड़ प्रकृति का पुजारी योरप इस वैज्ञानिक और नास्तिक युग में भी कविता और कला के लिये तरसता है। वित्त—संसार का साम्राज्य, प्रकृति की वैज्ञानिक लूट—उसे शांति न दे सका। आत्मा को न मानने पर भी उसे चैन पाने के लिये वित्त से ऊपर उठना पड़ता है। और, जहाँ आदमी इस स्थिति पर पहुँचा कि वह आत्मा के राज्य में घुसा। इसके प्रमाण रोम्याँ रोलाँ, रोदां (Rodin), कोहेन पोर्ट हाइम (Cohem Portheim) आदि हैं, जिन्हें स्वभावतः भारत या भारतीय विचार-धारा से प्रेम है; क्योंकि हमारे वनवासी, धन से दरिद्र और तपोधन से धनाढ्य, आत्मारामों ने निर्द्धारित कर लिया था—"अनतिदीर्घजीविते को रमेत" क्षणभंगुर और नश्वर जीवन में कौन रमेगा? इन आध्यात्मिक मनीषियों की कला योरप के असंख्य नर-

नारियों को इस जड़ युग में भी तृप्त कर रही है। इस दशा में आत्मा की परिभाषा चाहे जो करो, उसी के द्वारा वास्तविक आनंद प्राप्त होता है। यह सिद्धांत सर्वमान्य है। सभी इस फाटक के खंभों की तरह अंतर्ज्योति को परमधाम समझते हैं।

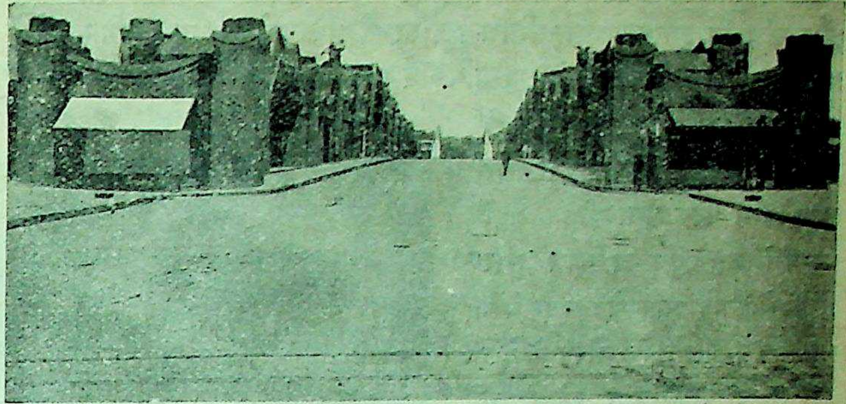
भीतर पहुँचने पर वास्तव में आनंद मिला। संसार की सभ्य जातियाँ किस प्रकार सुंदरता की खोज में दौड़ रही हैं, इसका पता चला। हिंदी के पाठक शायद ही जानते हों कि योरप में गत शताब्दि के अंतिम भाग और इस शताब्दि के प्रारंभ-काल तक कला में अभिव्यक्ति-वाद (और रेखावाद) का दौरा था। अभिव्यक्ति का उद्देश्य प्रकृति की हूबहू नक़ल करना नहीं, बल्कि उसके बाहरी रूप की अवहेलना कर अंतरात्मा को प्रकाशित करना है। उदाहरणार्थ जब इस सिद्धांत का चित्रकार रेल का चित्र अंकित करने लगेगा, तो वह नाम-मात्र को भी इसकी परवा नहीं करेगा कि उसके डिब्बे, खिड़कियाँ, उसके बाहर झाँकनेवाले मनुष्य आदि 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' दिखाए जायँ। उसे इस बाहरी रूप का ध्यान नहीं रहता; क्योंकि वह तो इस रेल के मूल-अस्तित्व को खोजता है। रेल का जीवन क्यों सार्थक है, यह प्रश्न उसके लिये अधिक महत्त्व रखता है। इसलिये वह चेष्टा करेगा कि उसकी कृति में रेल की वह मूर्ति आविर्भूत हो, जिसने संसार को छोटे-से देश में परिणत कर दिया है। यानी उसकी दौड़ का वेग दिखावेगा। इस कला-मर्मज्ञ की आँखों से रेल गुम हो गई। इसने उसका सत निकाला। यानी उसका वह कार्य, जिसके द्वारा उसका जीवन अपने को चरितार्थ करता है—उसकी द्रुतगति, जिससे वह प्राणी-मात्र और पदार्थों को शीघ्रता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाती है। इस दौड़ का क्या रूप है या होना चाहिए, यह कौन निर्द्धारित कर सकता है। समय के प्रवाह का क्या रूप है, कौन बतावेगा? परमात्मा ही जाने। कौन कह सकता है कि वह है, और यदि है, तो रूप जानना ही होगा? इसी प्रकार के दिक्काल से परे या अन-वच्छिन्न रूप को निर्द्धारित करने में नासदीय सूक्त के ऋषि अंत में विवश हो पुकार उठते हैं कि वर्तमान दृश्य प्रपंच के आदि में क्या था, यह परमात्मा ही शायद जानता हो। हाँ, यह भी कौन कह सकता है कि वह यह रूप जानता ही होगा? अभिव्यक्तिवाद का यह प्रयत्न ऐसे बेढब मसलों का उत्तर देता है। सो रेल की गति का रूप विधि के षट्रसों से भी आगे बढ़नेवाला कवि देता है।



पवियों पोमोन

(फाटक पर रेखागणित के आकारों की सुंदरता पर ध्यान दीजिए। यह अभिव्यक्तिवाद का एक चित्र है)

अंततः वह इसकी उस मूर्ति को रेखा और रंग के भीतर घेरने की कोशिश करता है। गति का और उसकी परिस्थिति का प्रकाश इस चित्र में पूरा खुला हो या नहीं, किंतु कला-स्रष्टा का रसमय हृदय इसके भीतर से वैसे ही चमकता है, जैसे आकाश के भीतर से सूर्य। देवतों की क्षुद्र मानसिक वृत्ति से तंग आकर विश्वामित्र अपनी नई सृष्टि खड़ी करने को उद्यत हो गए थे। कला-मर्मज्ञ भी यही करता है। ब्रह्मा की रचना उसे संतोष नहीं दे सकती।



'अलेक्ज़ेंडर तृतीय'-पुल पर प्रदर्शिनी का बाज़ार



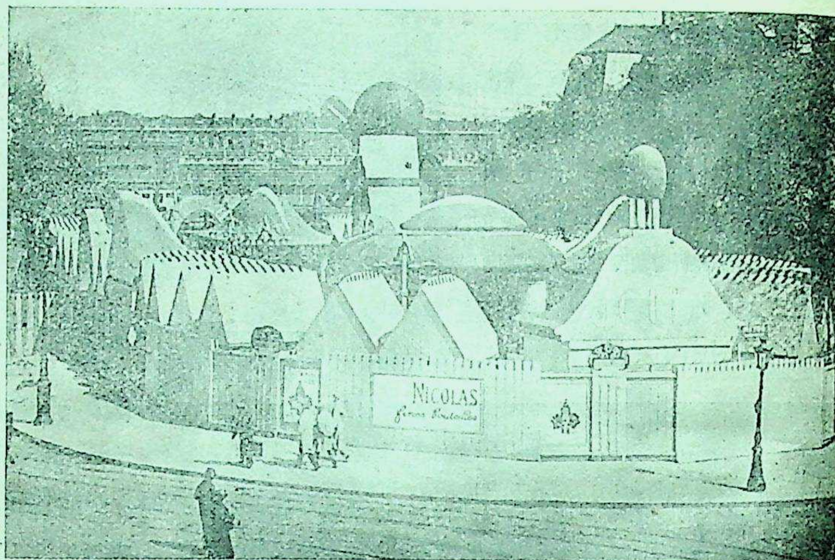
'लूव्र पावियों' निरुद्देश्य रेखाओं का उद्देश्य

(यह भी अभिव्यक्तिवाद का एक चित्र है)

उसे इसमें त्रुटियाँ दिखाई देती हैं। इसलिये विधि के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर वह पुकार उठता है, मैं ही ब्रह्म हूँ, और अपनी आत्मिक सृष्टि से चतुरानन को छिपाना चाहता है। हमारी नज़रों में उसे सफलता मिली हो या असफलता, यह प्रश्न उसे उतना ही स्पर्श करता है, जितना बादल सूर्य के अस्तित्व पर अपना प्रभाव डालते हैं। उसका उद्देश्य उसके आत्मानंद के साथ समाप्त हो गया। आगे समालोचक का काम है। पाठक समझ सकते हैं, पदार्थों से विचित्र गुणों का चित्र बनाना कितना कठिन काम है; क्योंकि इनका अस्तित्व पदार्थमय जगत् में नहीं, बल्कि भावमय प्रतिभा में है। फल यह होता है कि साधारण जन इन टेढ़ी, सीधी, गोल, अर्द्धगोल, चौकोर, तिकोनी रेखाओं द्वारा व्यंजित कला को नहीं समझते, और बहुधा ये लकीरें और रेखा-गणित के रूप अच्छे-अच्छों के लिये पहेली ही रह जाते हैं। पेरिस की अंतरजातीय कला-प्रदर्शिनी में इस अभिव्यक्तिवाद का प्राधान्य था। किंतु वहाँ के नमूनों को देखकर यह साफ़ मालूम पड़ रहा था कि जनता और कला-मर्मज्ञों की रुचि बदल रही है।

प्रायः सब देशों ने अपनी-अपनी शृंगार-कला दिखलाई थी। इसलिये वहाँ स्पष्ट मालूम पड़ रहा था कि एशिया और योरप के साज-सरंजाम में कौन मनोवृत्तियाँ काम कर रही हैं, और फल-स्वरूप इसके द्वारा कितना बड़ा भेद इनके बीच उत्पन्न हो गया है (भारत यहाँ नाम-मात्र को था। प्रदर्शिनी में तो उसका नाम भी न देखा गया। हाँ, कुछ भारतवासी अपनी मूर्खता से योरपियन दर्शकों को हँसा-हँसाकर पैसा पैदा कर रहे थे)। जापान, चीन, टर्की और योरप में गिने जानेवाले (पर हाल ही तक तुर्की के अधीन रहे हुए) यूनान, बलगेरिया आदि देश पूर्वी सजावट का अच्छा निदर्शन करा रहे थे। जापान के घरों की स्वच्छता और वहाँ की सादगी में अत्यंत सुंदरता विख्यात है। वहाँ की चटाइयाँ हमारे नए ग़लीचों को छिपाती हैं। नए से मेरा मतलब वर्तमान काल की उपज से है; क्योंकि कुछ दिन पहले सुंदरता का ज्ञान भारत में किसी देश से कम न था, और वहाँ संसार से निराली कला प्रत्येक पदार्थ में अपना रूप प्रकट करती थी। उनमें कितना सुघड़ सौंदर्य भरा हुआ है, इसे देख मन उनके चारों ओर घूमता ही रहता है। वहाँ के चित्र, जो दीवारों पर लटकाने को नल या बाँस की बनी हुई ज़मीन पर बनाए

जाते हैं, आजकल सर्वत्र आदर पाते हैं। उनमें रंग, रेखा और रुचि का इतना अच्छा सम्मिश्रण होता है कि दर्शक का हृदय मोहना उनके लिये स्वाभाविक है। स्वयं जापान की खड़ाँउओं पर जो कारीगरी दिखलाई गई थी, वह सरलता और रमणीयता का नमूना थी। वहाँ का पोर्सेलन काँच का काम और खिलौने आदि आए थे। सुंदर थे। यद्यपि इन चीज़ों में योरप के देश इस समय बाज़ी मार रहे हैं, तो भी जापानी कला वास्तव में संसार की कला में अपना एक स्थान रखती है, और अपनी राष्ट्रीयता की छाप नहीं खोती। यद्यपि इस समय कुछ जापानी चित्रकार विद्रोही होकर योरप का अंध अनुकरण कर रहे हैं, किंतु यह विचार-धारा अब इसलिये मर रही है कि इसे सफलता नहीं मिली। कारण, जापान से संसार जापानी कला की आशा रखता है, न कि योरप की नक़ल की। वहाँ का लकड़ी का काम और उस पर चित्रकारी सबको पसंद आई। एक छोटा-सा मकान विशुद्ध जापानी ढंग से सजाया गया था। कुर्सी आदि का उसमें नाम न था। परदे, चित्र, काठ के आसन, चटाई आदि से सुशोभित यह भवन सारी प्रदर्शिनी में अपने अनूठेपन की धाक जमा रहा था। वहाँ का रेशम भी आया था। उस पर जो बेल-बूटे और चित्र बनाए गए थे, वे बता रहे थे कि सादगी और कला में वास्तविक मित्रता है। इस भवन में एक जापानी रेस्टोराँ भी था, जहाँ योरो-जापानी चाय और मिठाई बिक रही थी। यह कला की दृष्टि से भवन की शोभा बिगाड़ ही रहा था; क्योंकि कुर्सी-मेज़ पर गोरे योरपियनों के साथ बैठकर चाय-पानी करना जापान की स्मृति हृदय में अंकित करने के स्थान पर उसे भुलाने का साधन बन रहा था। भले ही दो-चार मिनट यहाँ चित्त बहल जाय। तुर्की-भवन में व्यापार चल रहा था। कुछ तुर्क ईरान या तातार से क़ालीन, खिलौने आदि लाए थे। उनकी हाट उन्होंने लगा दी थी। आप यह कारीगरी देख लीजिए, और ख़रीद भी लीजिए। किंतु यहाँ बिक्री का ध्यान ही अधिक था। सुंदरता की खान कई तुर्की युवतियाँ अच्छी बिक्री कर रही थीं। ये तुर्की बनिए दर्शकों के गले पड़ रहे थे। इनके मोल-तोल में भारत की याद आ रही थी। ये लोग तुर्की हलवा बेचना



खिलौनों की प्रदर्शिनी का भवन

भी न भूले। तुर्की सिगरेटें भी इन्होंने शृंगार-कला की प्रदर्शिनी में बिक्री के लिये रख छोड़ी थीं। यह सब होने पर भी ईरान के क़ालीन वास्तव में अपनी निराली शान दिखा रहे थे। इनकी बुनावट तथा बनावट उतना महत्त्व नहीं रखती; योरप के उस्ताद नक़्क़ाल इनकी नक़ल कर सकते हैं। किंतु सदियों से शोधी हुई जो ईरान की कला है, उसकी नक़ल, संभव होने पर भी, असल को कैसे पा सकती हैं? ईरान ने लेखन-कला में अद्भुत उन्नति की है। प्रायः ६०० साल से वहाँ इसका अभ्यास जारी है। इसके साथ वहाँ के कातिबों ने चित्र-कला भी सँवारी है। कौन ऐसा ईरानी कवि है, जिसकी पुस्तकें इन सिद्ध-हस्त लेखकों और चित्रकारों के हाथ से न सजाई गई हों। अलाउद्दीन मोहम्मद ने ख़ुसरो देहलवी के ख़मसे भी अक्षरों और चित्रों से सजाए हैं। चारों तरफ़ ख़मसे और बीच में चित्र। चित्र इस भाव का कि ख़मसों का अर्थ चमका दे। गुलिस्ताँ-बोस्ताँ का तो न मालूम कितनी बार शृंगार किया गया। साथ ही फ़ारिस में क़ालीनों पर बेल-बूटे और सुंदर अक्षर बनने का अभ्यास बढ़ा। उसने अब तक जो उन्नति की है, वह बतलाती है कि वहाँ के कारीगरों ने पुश्त-दर-पुश्त कमाल हासिल किया है। जो

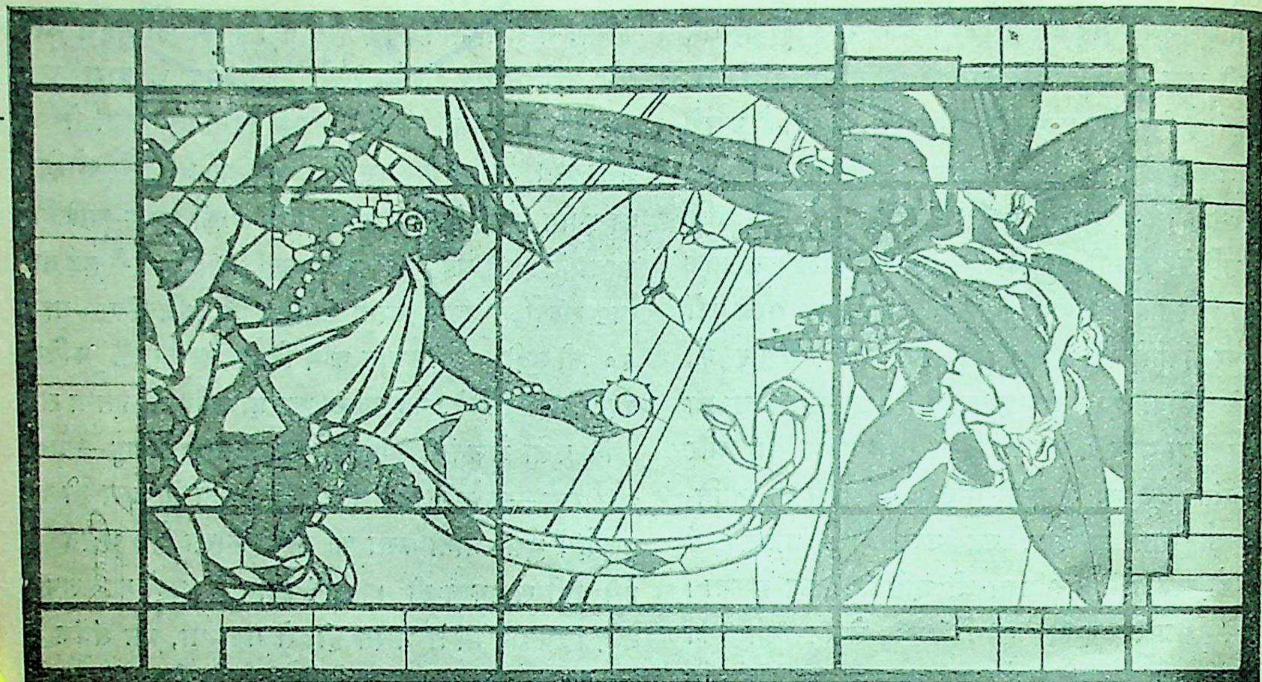
सुघराई और सौंदर्य-रुचि उनके स्वभाव में, उनके रक्त-मांस में घुल-मिल गई है, उसकी नक़ल भले ही मशीन द्वारा की जाय, किंतु हज़ारों नमूनों की नक़ल कहाँ तक हो सकती है ? मशीन असल को बिगाड़ ही सकती है, उसके प्राण, उसकी आत्मा को मार डाल सकती है ; किंतु वह मौलिकता कौन दिखा सकता है, जिसमें जगन्मोहिनी शक्ति है। इसलिये ईरानी ग़लीचे तुर्की बनियों द्वारा ख़ूब बिक रहे थे। मुझे यहाँ यह मालूम हुआ कि तुर्क और अरब क्यों इस हुनर में पीछे रहे। इसलिये कि उनमें संसार को लूटने के अलावा सदा यह प्रवृत्ति रही कि अर्थकरी विद्या का उपार्जन किया जाय। पर इस विद्या तथा कला में ३ और ६ का अंतर है। जो कला के भीतर अर्थ-प्राप्ति या नीति-प्रचार का मार्ग खोजेगा, वह उक्त दोनों उद्देश्यों में सफल हो सकता है, पर कला की सृष्टि नहीं कर सकता। इसलिये यद्यपि कूफ़ी लोगों ने लेखन-कला का श्रीगणेश किया, तो भी वहाँ इसकी जड़, उचित परिस्थिति के न होने से, तुरंत सूख गई। वह बेल ईरान में जा फली-फूली। इसका दूसरा मुख्य कारण यह भी है कि फ़ारस में शिया-संप्रदाय के माननेवाले रहते हैं। ये लोग अली की हत्या और कर्बला में उसके प्यारे पुत्र हुसैन तथा उसके ७१ साथियों की नृशंस बलि का मातम अब तक



रत्नों का प्रदर्शन-भवन

उसी भाँति मनाते हैं, गोया वह घटना हाल ही की है। फलतः ये सभी भाव-प्रवण होते हैं। भावों को ग्रहण करना और उन्हें उचित शब्दों, रेखाओं या नाद के द्वारा व्यक्त करना कला है। इसीलिये ईरान में स्वभावतः कला ने जड़ जमा दी। मैं यहाँ हिंदी-भाषा के ऐतिहासिकों और खोजियों का ध्यान हिंदी के मुसलमान कवियों की ओर आकर्षित करता हूँ। हमें यह ध्यान रखना चाहिए, और मुझे यह बात स्पष्ट शब्दों में प्रकट करनी चाहिए कि अधिकांश—प्रायः ६० फ़ी सदी—मुसलमान कवि शिया हैं। सुन्नी कविता करना नहीं जानते, यह कहना झूठ होने पर भी इतना सच है कि कला में उनका कोई स्थान नहीं। इनके अड्डे—अरब और रूम—वर्तमान काल तक इस क्षेत्र में ऊसर ही पड़े हुए हैं। मुसलमानी कला की नाक फ़ारस है। भारत ने इसे बड़ी सहायता दी। स्वयं ईरान में वहाँ का सबसे बड़ा चित्रकार मानी भारत ही से गया था, इस संबंध में मतभेद होने पर भी इतना निश्चित है कि ईरान में भारत के चित्रकारों ने ही चित्र-कला को पुष्ट किया है। महमूद हिंदी, पहलूल काश्मीरी आदि साफ़ भारतीय थे। हमें भी उन्होंने कुछ दिया है। हाँ, तो अब सब मुसलमान उसी ईरानी कला पर गर्व करते हैं। यहूदियों के जाति-भाई अरब और तुर्क उसी से धन कमाते हैं।

रूस का कला-विभाग कई तरह से अपनी विशेषता दिखा रहा था। प्रथम तो सोवियट कला-भवन का ख़ूनी लाल रंग अहिंसावादियों के ही नहीं, बल्कि योरप के कट्टर हिंसा-वादियों के हृदय में भी भीषण भय का संचार कर रहा था। परंतु उसमें प्रदर्शित पदार्थ कला की दृष्टि से हेय नहीं थे। रूस में जो युगांतर उपस्थित हुआ है, वह केवल राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि साहित्य, संगीत, कला, अर्थ-शास्त्र, नीति, समाज-शास्त्र आदि जीवन के सभी विभागों में उसने अपना प्रचंड प्रभाव डाला है। जब मनुष्य का मनुष्य, समाज, शासन, शासित पुरुष, स्त्री, प्रकृति, परमात्मा आदि सबसे संबंध बदल जाता है, तो वहाँ अवश्य ही नई कला और नया साहित्य जन्म लेता है। रूस में यह काम शुरू हो गया है। इसलिये वहाँ के सौंदर्य-बोध में भी नवीनता आ गई है। इसका यहाँ परिचय मिल रहा था। वहाँ थोड़े ही वर्ष पहले एक समय था, जब "तंत्री-नाद कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।" और देशों के समान ही थोड़े धनिकों के आधिपत्य में



अनाम, स्याम और कंबोज-भवन का चित्रपट

था । इनका दीन दूसरा था, दुनिया दूसरी थी । इसलिये वहाँ का अधिकांश साहित्य और कला उन्हीं के लिये थी । १६१८ में बक़ौल रवि बाबू के "जागिलो रुद्र" याने रुद्र ने रौद्र रूप धारण किया, "तब शिव तीसर नैन उघारा ; चितवत पाप भयो जरि छारा ।"— विप्लव ने उनके हाथ में राज्य-शासन की बागडोर दे दी, जिनमें अधिकांश किसान थे । किसान का संबंध प्रकृति से वैसा ही है, जैसा संतान का अपनी माता से । इनके बीच में किसी तरह का लगाव या दुराव नहीं है । सो जिसे पुराने सुधारक और साहित्यिक कृषक-संगीत या पुराना गाना बताते थे, आज उसमें से जौहर निकल रहे हैं । ये पंक्तियाँ लिखते हुए मुझे अल्मोड़ा और नैनीताल के उन सुधारकों की स्वभावतः याद आ रही है, जो जनता के हर मेले में जाकर उनके अश्लील संगीत बंद करने की धुन में मस्त हो रहे हैं । उनकी राष्ट्रीयता और सदिच्छा पर किसी प्रकार का आक्षेप न करते हुए कहना ही पड़ता है— Wanted reformers, not of others, but of themselves.

आवश्यकता है उन सुधारकों की, जो दूसरों का नहीं, अपना सुधार करें । इन भाइयों से, तथा जहाँ कहीं ऐसे सुधारक हों, उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि देशबंधुओ, जनता पर दया करो । इस विशुद्ध और प्राकृतिक संगीत को खोज-खोजकर प्लेग के चूहों की तरह मत मारो । यह काव्य-कला तुमसे भागकर निसर्ग के वरपुत्र किसानों में जा छिपी है । वहाँ से भी इसका समूल नाश कर उन अपढ़ भाइयों की 'उन्नति' न करो, जो इस संगीत की आनंद-धारा में निमग्न हैं, जीवन रूपी दुःख का महासागर पार कर रहे हैं । इस समय रूस में नाटक का रूप बदल गया है । छोटी कहानियाँ दूसरे ही क़िस्से बयान करती हैं । कविता जनता को दूसरे ही मद में मत्त करती है । चित्र नए रूप में नया प्राण दर्शक के सामने रखते हैं । जहाँ एक समय ज़ार की नादिरशाही थी, वहाँ अब जनता का रौद्र रूप प्रकट है । इसलिये पुरानी और नई कला में ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ हो गया है । रूस के सब नमूनों से उग्र सौंदर्य बरस रहा था । साथ ही सबमें पूँजीपतियों के अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह की बू आ रही थी । इस समय इसका यह रूप स्वाभाविक है । रूस से प्रदर्शिनी को कुछ और पदार्थ की आशा रखना भूल है । किंतु अब भी यहाँ की कला बता रही है कि यह कला वर्तमान काल की मूर्ति है । इसके अतिरिक्त रूसी भवन में रूसी जीवन

के जो लकड़ी तथा हड्डी के दृश्य थे, वे साफ़ बता रहे थे कि वहाँ की जनता में वह निराशा सूर्य के आगे कुहरे की भाँति लुप्त होने की चेष्टा कर रही है, जो पहले रूसी जीवन का स्थिर अंग बन चुकी थी। यह आनंद वहाँ गहरा तथा विस्तृत हो रहा है। चित्रों से वहाँ की आत्मा झलक रही थी। रंग इतने तेज़ और चटकीले थे कि मालूम पड़ता था, मानो आँखों पर आक्रमण करने आ रहे हैं। पुरुषों को देखकर हृदय में कोई संदेह नहीं रहता था कि मधुरता उनके चेहरे से हट रही है, और दृढ़ता तथा सहृदयता उसका स्थान ग्रहण कर रही है। लेकिन पूर्ण स्थिरता का अभी अभाव है। मुझे खेद है कि मेरे ये सब चित्र खो गए, अन्यथा उन्हें देखकर पाठक स्वयं अनुमान कर सकते थे। यूनान, ज़ेकोस्लोवाकिया आदि ने जो सामान दिखाया था, वह भारत की प्रायः नक़ल कहा जा सकता है। मेरा मतलब यह नहीं कि इन लोगों ने हमारी नक़ल की है, किंतु मैं यह बताना चाहता हूँ कि इन देशों के निवासी योरप में रहते हुए भी एशियाई हैं। यूनानवालों ने अपने घरों का दृश्य दिखलाया था। एक कमरे में तख़्त पड़ा था, जिस पर गद्दे, छींट और गबरून की चादरें बिछी हुई थीं। तकिए भारत के ही ढंग के थे। फ़र्श पर बैठने के लिये गद्दे और तकिए पड़े थे। कुर्सी-मेज़ यूनान में बहुत ही कम काम में लाई जाती हैं। उनकी स्त्रियों की पोशाक पूर्वी थी। गहने भी योरप से भिन्न। यही हाल ज़ेकोस्लोवाकिया, बलगेरिया और आरमीनियाँ का था। पोलैंड ने यह चेष्टा कर रक्खी थी कि उसके प्रदर्शित पदार्थों से योरपियनपना झलके; किंतु यह सहज ही मालूम पड़ रहा था कि वहाँ भी योरप की सभ्यता पूरी नहीं फैलने पाई। इस छोटे-से देश पोलैंड ने अपना प्रबंध अपने हाथ में ले लेने के बाद पाठ्य-क्रम में परिवर्तन कर दिया है। शिक्षा भी वहाँ शीघ्रता से फैल रही है। वहाँ के छात्रों के चित्र देख मुझे अपनी दशा पर लज्जा आई। भारत में चित्र खींचना तो दूर रहा, कितने पढ़े-लिखे आदमी चित्र देखना चाहते हैं? इन पोलिश बालकों के कई चित्र वास्तव में कला का प्रताप प्रकट कर रहे थे।



श्रद्धांजलि की मूर्ति

पोलैंड ने अपनी पुस्तकों का भी प्रदर्शन किया था। कैसा सुंदर छपाई का काम था। वहाँ से खिलौने, काँच और मिट्टी का काम आया था। सुंदर छपा हुआ कपड़ा भी आया था। किंतु ज़ेकोस्लोवाकिया ने आश्चर्यमय प्रदर्शन कर रक्खा था। ६० लाख की आबादी का यह देश संसार में व्यापार-वाणिज्य और उद्योग-व्यवसाय में सबसे उन्नत कहा जा सकता है। इस देश का ऐसा कोई गाँव नहीं, जहाँ छोटे या बड़े कारख़ाने न हों। उस पर यह कमाल कि यहाँ के माल में सुंदरता का ध्यान सबसे अधिक रक्खा जाता है। इनका भवन दर्शनीय बना हुआ था। इस विभाग में काँच पर जो बारीक काम दिखाया गया था, वह सब-से बाज़ी मार ले गया। रमणीय मूर्तियाँ, मनोहर प्रति-

माएँ चित्त-चोर दृश्य दर्शक को तन्मय बना रहे थे। क़लम-दावात से लेकर बिजली के झाड़-फ़ानूस तक निराली छवि धारण किए हुए थे। प्रत्येक पदार्थ के भीतर कोई-न-कोई दृश्य खींचा या ढाला गया था, जो उसकी उपादेयता में मनोरमता जोड़ रहा था। ऐसे अवसर पर उपादेयता पीछे हट जाती है, कला प्रधान स्थान ग्रहण कर लेती है। ज़ेकोस्लोवाकिया की छपी हुई पुस्तकें अपना जोड़ जर्मनी में ही पा सकती हैं। अँगरेज़, फ़्रेंच आदि उसके सामने लज्जित हो रहे थे। चित्र छापने का वहाँ का काम वास्तव में सराहनीय था। हिंदी के पाठक इस मुद्रण-कला का अनुभव भी नहीं कर सकते; क्योंकि भारत में छपाई और उस पर चित्र-मुद्रण का काम बहुत ही पीछे पड़ा हुआ है। कपड़ों पर जो चित्रकारी थी, वह भी अद्वितीय। एक परदे पर महायुद्ध का दृश्य इस ख़ूबी से बना था कि दर्शक हटाने पर भी उसका रस लेने को डटे ही रहते थे। जवाहरात और घड़ियों का काम भी अपूर्व था। समझ में नहीं आता कि इन पदार्थों का वर्णन किस प्रकार किया जाय—"गिरा अनयन, नयन बिनु बानी।"

इँगलैंड ने कपड़े की धूम मचा रक्खी थी। वास्तव में इनकी छपाई और बुनाई सराहनीय थीं। पर इँगलैंड का विभाग सुंदरता की दृष्टि से बहुत पीछे था। इससे स्वीडन और डेनमार्क आगे बढ़ गए थे। पोर्सेलान का काम इँगलैंड का अच्छा होने पर भी कोपनहेगन की शाही फ़ैक्टरी का कुछ भी मुक़ाबिला नहीं कर पाता था। स्वीडन का लकड़ी का काम अपना सानी नहीं रखता था। ६० लाख मनुष्यों का देश स्वीडन विज्ञान और उद्योग-धंधों में, योरप में, किसी से पीछे नहीं है। सुख-समृद्धि वहाँ राज्य करती है। इस दशा में यह स्वाभाविक ही है कि वहाँ के निवासी कला-प्रेमी हों। इसका प्रमाण वहाँ के सब पदार्थों में मिल रहा था। किंतु लकड़ी के काम में वह सबसे आगे बढ़ गया था। वहाँ का फ़र्नीचर बड़ा सुंदर बना हुआ था। बेलजियम ने काँच के काम में सफ़ाई दिखाई थी, और फ़्रांस ने सुगंधि द्रव्य, रेशम, पुस्तकों की छपाई आदि में। इनका वर्णन करने को पुस्तकें लिखी गई हैं, और लिखी जा सकती हैं। इसलिये नीचे प्रदर्शिनी के मुख्य विभागों की एक सूची देकर यह लेख समाप्त करता हूँ—(१) स्थापत्य-कला, (२) घर सजाने का सामान—कुर्सी, मेज़, पलँग आदि, (३) घर सजाने का सामान—चित्र, परदे, दीवार का काग़ज़ आदि, (४) पुस्तकें, ब्लॉक का काम, (५) धार्मिक सजावट के सामान, (६) खिड़कियों तथा गिरजों में काम में लाए जानेवाले काँच की कला, (७) काँच का अन्य सामान, (८) पोर्सेलान, (९) लोहे का काम, (१०) सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े तथा उन पर काम, (११) कपड़ों का फ़ैशन, (१२) जवाहरात और सोने-चाँदी का काम, (१३) लकड़ी का काम, (१४) थिएटर, (१५) सिनेमा, (१६) नगर-निर्माण-कला, (१७) वीथि-सौंदर्य, (१८) नव्य संगीत, (१९) उद्यान-कला, (२०) पाठशाला-विज्ञान, (२१) खिलौने, (२२) अर्वाचीन यात्रा के साधन, (२३) नवीन वैज्ञानिक आविष्कार और मनुष्य के सुख तथा शिक्षा में वृद्धि, जैसे रेडियो, बिजली आदि का उपयोग।

हेमचंद्र जोशी

परीक्षा

(१)

मायामय, माया में उलझे प्रश्नों की अवली कैसी?
सघन द्रुमों के दीर्घ देह पर लपटी-सी लवली कैसी?
झलक रही, पर प्रकट न होती ओझल किस पट के पीछे।
भूलभुलैया में भटकी-सी प्रतिछाया धवली कैसी?
गहन विपिन में छोड़ दिया है, पथ भी कुछ बतलाओ तो?
किस कोने से, किन रेखाओं को देखूँ मैं जतलाओ तो?

(२)

बहक गया हूँ मिलती-जुलती इन अभिनव आकृतियों में;
खो बैठा मेधा की महिमा बहुधा पुनरावृतियों में।
बात-बात में पेच और इस हेच 'बोध' की परिसीमा;
दोनों की तुलना ने कंपन उठा दिया कर-द्युतियों में।
भय के भावोदय ने मानो मति का ही अपहरण किया।
भूला भव-वारिधि में पड़कर सीखी सब संतरण-क्रिया।

(३)

इतनी कठिन कसौटी पर भी मिलता कुछ संकेत नहीं;
तव प्रसाद के विना कभी क्या फूला है जड़ बेत कहीं?
उतनी आँख खुलेगी, जितनी होगी तुमने उकसादी;
यह ऊसर का रेत निरा है, उपजाऊ-सा खेत नहीं।
यदि वामिनी माप से तुमने मेरे मन की गति नापी;
तो फिर रहने दो, यों ही मैं रखता हूँ कोरी कापी।

गोकुलचंद्र शर्मा

भक्ति

(१)

जिसमें श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का समागम होता है, वह बंधन संसार में सर्वदा स्थायी रहता है। हरी और प्रभा की भेंट बंबई में हुई थी। दोनों ही उस स्थान में नए थे। हरीसिंह आए थे फ़ौजी शिक्षा पाने के लिये, और कुमारी प्रभावती आई थीं बी० ए० की परीक्षा देने। दोनों की भेंट बंबई के हेंगिंग गार्डन में नहीं, वरन् चौपाटी से थोड़ी दूर पर, समुद्र के किनारे, एक रमणीय स्थान पर, हुई थी। संध्या का समय था। प्रभा अकेली ही स्वच्छ वायु का सेवन कर रही थी। हरी भी उस दिन उसी ओर निकल पड़े थे। उस समय वहाँ पर और कोई भी न था। पहले तो हरी को देख कुमारी प्रभा कुछ ठिठकी और हरी भी कुछ सहमे; पर वर्तमान शिक्षा से प्रभावित सभ्यता के अनुसार हरी ने धृष्टता की क्षमा माँगते हुए बड़े आदर-युक्त शब्दों में कुमारी प्रभा का परिचय पूछा। उत्तर मिलने के पश्चात् हरी को भी अपना पूरा परिचय देना पड़ा। दो-दो बातों के बाद दोनों ने अपना रास्ता पकड़ा।

कुमारी प्रभावती की अवस्था अभी लगभग १७ वर्ष की थी। इस थोड़ी अवस्था में बी० ए० की परीक्षा देना कोई साधारण बात नहीं थी। प्रभा की योग्यता भी ख़ूब बढ़ी-चढ़ी थी। पाँच मिनट की बातचीत ने ही हरीसिंह पर विचित्र असर डाल दिया। प्रभा की विनयशीलता, कुशाग्रबुद्धि, निर्भीकता और भाषा की मृदुलता ने हरी के हृदय में एक अद्भुत हलचल मचा दी। वह मन-ही-मन प्रभा को सराहने लगा। उसके हृदय में प्रभा के प्रति श्रद्धा और प्रेम का अंकुर उग आया। वह मन में विचारने लगा—क्या ही अच्छा हो, यदि भारत की प्रत्येक बालिका प्रभा की तरह बुद्धिमती हो। उसके हृदय से मीठे उत्साह के साथ ये शब्द निकल पड़े—"प्यारे भारत ! प्रभा और प्रभा की बहनें ही तेरा उत्थान करेंगी।"

इधर प्रभा का भी ऐसा ही कुछ हाल हुआ। यद्यपि प्रभा को यह न समझ पड़ा कि उसके हृदय में भी वैसा ही अंकुर उग आया है, पर किसी अनजाने कारण से उसके हृदय में भी कुछ युद्ध-सा मच गया था। हरी के प्रसन्न मुख पर सरलता के भाव झलक रहे थे। उसके चेहरे पर सदाचार का वह रोब था, जो सहसा मनुष्य को अपनी ओर खींच लेता है। उसके शरीर की गठन, मीठी वाणी और उत्साहपूर्ण शब्दों ने प्रभा को प्रसन्न कर दिया। प्रभा के हृदय में हरीसिंह के प्रति आदर उत्पन्न हो गया। उस आदर में प्रेम भी मिला हुआ था, इसे प्रभा न समझ सकी।

जितने दिन बंबई में रहे, दोनों को नित्य ही एक दूसरे से मिलने की इच्छा रहने लगी। संध्या समय अक्सर इनकी भेंट हुआ करती।

प्रभा की परीक्षा समाप्त हुई। उधर हरी का भी घर से बुलौआ आया। हरी के पिता प्रयाग के बाशिंदा थे। धन के लिहाज़ से एक साधारण पुरुष थे। पर समाज में उनका मान बहुत अधिक था। हरी को पहली ट्रेन से घर के लिये रवाना होना था, इसलिये प्रभा उन्हें स्टेशन तक पहुँचाने आई।

प्रभा को अभी तक नहीं समझ पड़ा कि वह हरी को पहुँचाने स्टेशन क्यों आई। पर ज्यों-ज्यों ट्रेन छूटने का समय आता जाता था, त्यों-त्यों प्रभा के हृदय में विशेष खलबली-सी मचती जाती थी। उसे जान पड़ता था, मानो कोई उसके हृदय को बाहर खींच रहा है। उसने अपने को बहुत सँभाला, पर हरी इस बात को ताड़ गया। उस पर भी कुछ ऐसा ही असर पड़ा। हरी अपने डब्बे के दरवाज़े पर खड़ा था, और प्रभा उसके सामने। पास ही खड़े केलेवाले से केले ख़रीदने के लिये हरी ने प्रभा को एक अठन्नी दी। उसमें से बचे हुए दो पैसे प्रभा हरी को देने लगी। हरी ने यह न समझते हुए कि वह क्या कर रहा है, वे दो पैसे अपने ही पास रखने के लिये प्रभा से आग्रह किया। प्रभा कुछ कह न सकी—उसे वे पैसे अपने ही पास रखने पड़े। उन दो पैसों का मूल्य प्रभा को बहुत अधिक जान पड़ा। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो वे दो पैसे उसकी किसी बहुमूल्य वस्तु का मोल हैं।

ट्रेन छूट गई। हरी दरवाज़े पर और प्रभा प्लेटफ़ार्म पर, दोनों चित्र-लिखे की नाईं खड़े रहे! कुछ देर के लिये वे अपने आपे को भूल गए। देखते-देखते ट्रेन दृष्टि के बाहर पहुँच गई। दोनों एक दूसरे की आँखों के ओझल हो गए।

प्रभा लौटकर घर आई, और हरी ट्रेन में एक अख़बार ले ऊपर के बर्थ पर लेट रहा। अख़बार पढ़ने का लाख प्रयत्न करने पर भी वह उसमें सफल न हो पाया। थोड़ी ही देर में अख़बार गिर पड़ा, और प्रभा की मूर्ति उसकी आँखों के सामने रह गई। वह उसे देवी समझने लगा, उसके सामने अपने को एक तुच्छ जीव मानने लगा। उसका हृदय उत्सुक हुआ उस देवी की पूजा करने के लिये, उसके नेत्र उसकी उपासना करने के लिये और उसकी देह उस देवी की सेवा करने के लिये।

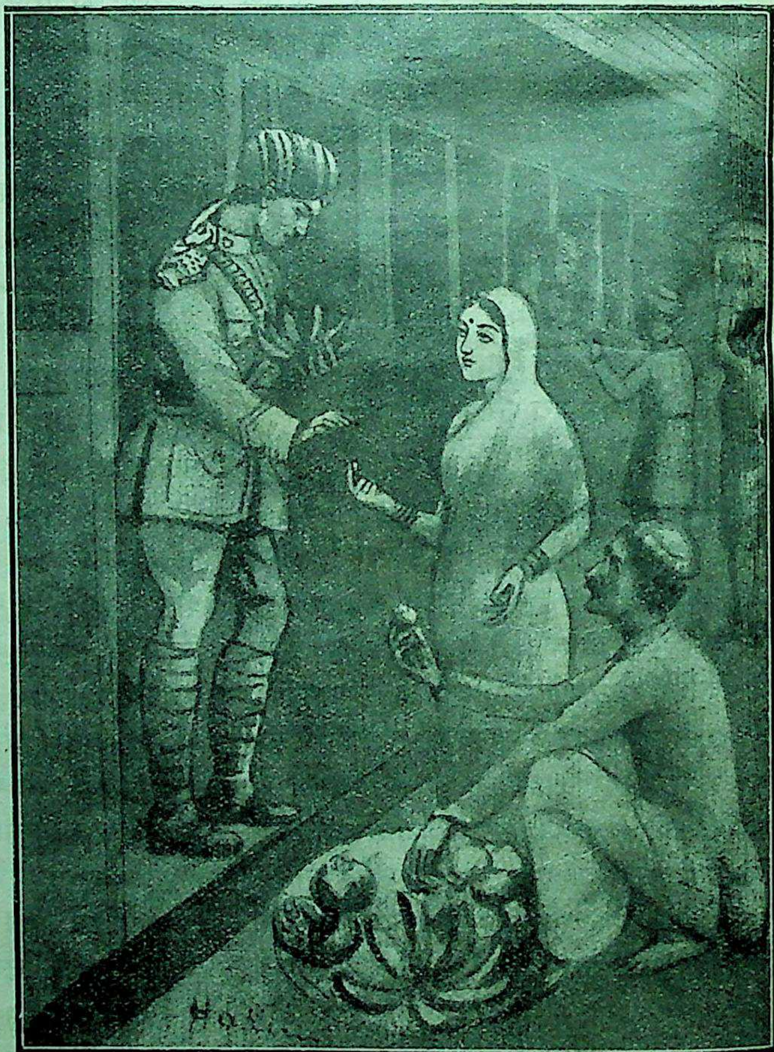
विचित्र स्थिति हो रही थी। वह समझ न सकता था कि उसका वह भाव 'प्रेम' है या 'भक्ति'। जो हो, वह इसी में मस्त था।

दोनों में पत्र-व्यवहार होना अब कोई असाधारण बात न थी। कुछ ही दिन बाद प्रभा को यह सूचना मिली कि हरीसिंह फिर से ट्रेनिंग के लिये छः महीने के वास्ते बंबई जा रहे हैं। उसी समय प्रभा का भी परीक्षा-फल आ चुका था। वह बी० ए० पास हो चुकी थी, और एम्० ए० के लिये उसका बंबई जाना निश्चित हुआ था। प्रभा के हृदय में बड़ी प्रसन्नता उत्पन्न हुई ; वह बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधने लगी। सामाजिक कुरीतियाँ, देश का स्वास्थ्य, युवकों का कर्तव्य आदि विषयों पर हरी से चर्चा करने की उमंग-पूर्ण स्कीमें तैयार होने लगीं। फ़ौरन् एक पत्र द्वारा यह सूचना हरी को भी दी गई।

यह ख़बर पाकर हरी की प्रसन्नता का भी ठिकाना न रहा। यहाँ प्रभा का हृदय उछल रहा था कि वह हरी से वक्तृता देना सीख लेगी, सेवा-संघ के कार्य का कुछ ज्ञान प्राप्त करेगी। हरी परिश्रमी है; वह उसके साथ शार्टहैंड सीख लेगी। और, यहाँ हरी इसलिये प्रसन्न था कि वह प्रभा के सुंदर, ऊँचे आदर्शों को सुन अपना जीवन उच्च बनावेगा; 'फ़ौजी महकमे के आदर्श', 'देश के प्रति कर्तव्य' इत्यादि विषयों पर प्रभा की युक्ति-युक्त मीठी बातें सुन अपना कार्य-क्षेत्र निश्चित करेगा। दोनों अपने-अपने हृदय में ये भाव रख बंबई में दूसरी बार मिले!

(२)

हरी यद्यपि शरीर से बड़ा मज़बूत था, पर हृदय उसका अत्यंत कोमल था। आजकल प्रभा और वह प्रायः नित्य ही मिला करते ह, और नित्य ही किसी-न-किसी विषय पर उनमें विवाद भी होता है। जब कभी हरी विवाद में जीतता



"उसमें से बचे हुए दो पैसे प्रभा हरी को देने लगी।"

और प्रभा कुछ असंतुष्ट-सी जान पड़ती, तो हरी शीघ्र ही बात बदलकर अपनी हार स्वीकार कर लेता था। वह प्रभा को कभी किसी प्रकार हतोत्साह नहीं करना चाहता था। वह उसे उसकी हार का एक बार भी अनुभव नहीं होने देना चाहता था। उसकी यह धारणा थी कि प्रभा अभी छोटी है ; यों हार का अनुभव करने पर वह निराश हो जायगी, और इस प्रकार उसे उसके द्वारा अपनी अयोग्यता का अनुभव होगा, जिससे उसकी भविष्य उन्नति में हानि होने की संभावना है।

पर प्रभा हरी के इन उच्च तथा सरल भावों को न ताड़ सकी। हरी की नित्य भेंट और साथ ही हरी के इस व्यवहार ने प्रभा के हृदय में संदेह सा उत्पन्न कर दिया। प्रभा हरी को उद्देश-रहित, बकवादी तथा हाँ में-हाँ मिलानेवाला समझने लगी।

"Suspicion is the poison of friendship true" इस कहावत के अनुसार प्रभा के हृदय में संदेहरूपी विष ने घर कर लिया। हरी इस भाव को न ताड़ सका। हरी प्रभा को उत्साहित बनाए रखने तथा अनेक अवसरों पर नई-नई बातों का अनुभव दिलाने के लिहाज़ से उसे अपने साथ रखता, अनेक कार्यों का भार सौंपता और सदैव उसके उत्तम विचारों में मग्न हो उसकी स्तुति करता रहता था। कभी-कभी बातें होते-होते प्रेम का विषय छिड़ जाता, तो हरी केवल यही कहता—"प्रभा, मुझे तुम्हीं में सुख जान पड़ता है।" हरी का कोमल हृदय प्रभा को विवाद में हराकर उसे दुखी नहीं किया चाहता था। पर इसका असर प्रभा पर अब उलटा ही पड़ने लगा।

दोनों तरफ़ की बात बढ़ती ही गई ; पर ठीक-ठीक बात कोई भी न ताड़ सका। दोनों अज्ञानवश अपनी-अपनी राह पर बराबर बढ़ते गए। परिणाम भयंकर हुआ। एक दिन दोनों में विवाद होते-होते वही प्रेम का विषय छिड़ गया। हरी ने अपने वे ही उद्गार बड़ी ही सरलता से दुहराए—"प्रभा, मुझे तुम्हीं में सुख जान पड़ता है।"

इन मीठे, प्रेम से भरे शब्दों के बदले हरी पर भयंकर वज्रपात हुआ। प्रभा ने चिढ़कर तथा तिरस्कार-युक्त भाव से हरी की ओर देखा, और कहा—"हरीसिंह, तुम बड़े उजड़ जान पड़ते हो! यह क्या नित्य का राग अलापना सीख लिया है कि मुझ ही में सुख पाते हो, मुझे ही देखकर प्रसन्न होते हो इत्यादि। मैं नहीं समझती कि इन शब्दों का क्या अर्थ है। प्रेम के तो वाणी नहीं होती ; फिर तुम हरबार यह कैसे बक डालते हो ? देखो रस्किन कहता है—Love has its tongue in eyes.

हरी—कुमारी प्रभा, अप्रसन्न मत होओ। क्षमा करो। तुम अभी रस्किन की थ्योरी ही पढ़ी हो। अभी तुमने उस थ्योरी को अपना नहीं बना पाया है। अभी तुम बालिका हो, इसी कारण इतनी उतावली हो। शांत होओ। मैं यदि तुममें ही प्रसन्न रहता हूँ, तो इसमें हानि ही क्या है?

प्रभा—बस, मैं इस प्रकार की बातें अधिक सुनना नहीं चाहती। आप अपने को बड़ा Tactful (चतुर) समझते होंगे कि मीठी-मीठी ठकुरसुहाती बातें कर मुझे उल्लू बनाए रहेंगे। पर मैं आपके Tact (चाल) को ख़ूब समझती हूँ। मुझे यह पसंद नहीं।

इतना कहकर प्रभा एक पुस्तक पढ़ने लगी। हरी को क्षण-भर तो असीम दुःख हुआ, पर शीघ्र ही प्रभा की नासमझी पर वह मुसकिरा दिया। उसे अभी तक प्रभा की अप्रसन्नता का असली कारण नहीं समझ पड़ा। उसका आश्चर्य प्रभा की अज्ञता में छिप गया। प्रभा को अप्रसन्न देख वह उस दिन तो घर चला गया, पर फिर नित्य नियमानुसार गप्पें होने लगीं।

वैमनस्य बढ़ता गया। लगभग ४ महीने व्यतीत हो गए ; पर हरी को यही विश्वास रहा कि इन तीखी बातों से प्रभा केवल उसके हृदय की थाह लेना चाहती है, उसकी परीक्षा करना चाहती है। और, अपनी इस प्रकार परीक्षा का अनुभव कर वह प्रभा की मूर्ति का श्रद्धायुक्त स्मरण कर मन-ही-मन मुसकिराता और "पगली है" कहकर अपनेको प्रभा के ध्यान में भुला देता था।

ऐसा करते-करते अब वह समय आ गया था कि प्रभा को थोड़ी देर के लिये भी भुला देना हरी के लिये असंभव हो गया। वह हरी के निकट आदर्श बालिका थी, उसके भाव पूज्य थे, उसके द्वारा अपना अपमान उसकी दृष्टि में किसी बच्चे द्वारा अज्ञानवश होनेवाला अपमान था। वह उससे अपमानित हो कभी नाराज़ नहीं हुआ, और न कभी प्रभा को अपराधी की दृष्टि से ही देखा। उसकी प्रभा के प्रति श्रद्धा और भक्ति में कभी ज़रा-सा भी अंतर नहीं हुआ।

एक दिन उन्हीं साधारण भावों से हरी ने प्रभा से

उसकी एक फ़ोटो माँगी। प्रभा के संदिग्ध हृदय में यह एक और चोट लगी। यद्यपि प्रभा की आत्मा में इतना बल नहीं था कि वह हरी के सरल प्रेम की इतनी अवहेलना कर सके कि साफ़ इनकार कर दे, पर, तो भी, उसके बात टाल देने से ही हरी को असह्य दुःख हुआ। प्रभा की बात टालने का कारण वह उसका शील ही समझा। उसने मन में कहा—"अच्छा, अब तुम्हें आश्चर्य में तो उसी समय डालूँगा, जब अचानक अपने टेबिल पर तुम्हें तुम्हारी फ़ोटो दिखाऊँगा।

प्रभा के बात टालने पर उसकी फ़ोटो लेने के लिये हरी की उत्सुकता दूनी बढ़ गई। उत्सुक हृदय का समय से बड़ा बैर रहता है। वह जितनी जल्दी हो, अपनी उत्सुकता पूर्ण किया चाहता है। हरी अब बंबई छोड़ने ही वाला था, और वह मीठी स्मृति के रूप में प्रभा की फ़ोटो अपने पास रखना चाहता था।

एक दिन हरी के एक मित्र ने हरी और प्रभा, दोनों को निमंत्रण दिया। वहाँ हरी ने प्रभा के विना जाने तीनों की फ़ोटो लेने का भी प्रबंध कराया था। मनुष्य अपनी इच्छा पूर्ण करने की हज़ार तदबीरें निकाल लिया करता है; पर हरएक का फल मीठा नहीं हुआ करता। प्रभा ने पहले तो बड़ी ही प्रसन्नता के साथ निमंत्रण स्वीकार किया, और हरी ने भी यह जानकर कि प्रभा आज प्रसन्न है, अब फ़ोटो की बात कह देने पर वह इनकार न करेगी, अपना फ़ोटो लेने का प्लॉट उससे कह दिया।

प्रभा के सिर पर चाल का भूत सवार हो गया। वह बुरी तरह बिगड़ी। हरी पर उसका संदेह और भी पक्का हो गया। वह मन-ही-मन कहने लगी—हरी बड़ा धूर्त निकला; मुझे यह धोखा देना चाहा है। अच्छा, इसका भी उत्तर दूँगी। ऐसा सोच फ़ोटो का समय आने पर उसने उसके साथ बैठने से साफ़ इनकार कर दिया। हरी के उत्साह पर पानी फिर गया, चित्त पर उदासी छा गई, हृदय सूख गया। वह बड़ा दुखी हुआ। इधर प्रभा ने उसे ताने दे-देकर और भी क्लेश पहुँचाया।

(३)

बंबई में हरी के छः महीने बीत गए। वह आज घर लौट रहा है; पर पहली बार बंबई से जिस प्रसन्नता के साथ घर लौटा था, आज उस प्रसन्नता के बदले उससे कहीं अधिक दुःख उसके चेहरे पर छाया हुआ है। आज हरी को पहुँचाने के लिये स्टेशन पर यद्यपि पचासों मनुष्य आए हुए हैं, पर उसको संतोष नहीं। वह बार-बार फाटक की ओर देखता है। उसकी आँखें फाटक पर की भीड़ को चीरकर किसी को ढूँढ़ निकालना चाहती हैं। बातें तो मित्रों से करता है, पर उत्सुक आँखें फाटक पर ही मानो पहरा दे रही हैं। यह प्रतीक्षा आज प्रभा की है। प्रभा स्टेशन पर नहीं आई। ट्रेन चल दी। हरीसिंह ने एक लंबी साँस छोड़ सब मित्रों से विदा ली।

घर पहुँचते ही हरीसिंह ने प्रभा के नाम यह पत्र लिखा—

"श्रीदेवी कुमारी प्रभावतीजी, बड़े कष्ट से यह लिखना पड़ता है कि आज हमारे बीच कुछ भ्रम-सा उत्पन्न हुआ जान पड़ता है। कारण यद्यपि अज्ञात है, तो भी मेरा विश्वास है कि मेरे ही किसी अपराध के कारण यह स्थिति आ पहुँची है। अतएव मैं सादर अपने अपराध की क्षमा चाहता हूँ।

मेरे हृदय में आपके प्रति जो भाव थे, वे अब भी हैं और सदा बने रहेंगे। उन्हें मेरे हृदय से हटा देने की सामर्थ्य आज किसी में नहीं देख पड़ती। तुम्हें एक आदर्श कुमारी जानकर मैं तुम पर भक्ति रखता हूँ। मेरी इच्छा है कि देश की अन्य बालिकाएँ भी तुम्हारा अनुकरण करें। तुम्हारे आदर्श भावों की मैं पूजा करता हूँ, और इसी कारण मुझे बंबई-नगर में केवल तुम्हीं में सुख जान पड़ता था। मुझसे जैसा कुछ हो सका, मैंने तुम्हारा साथ दिया। उसके बदले में मैं तुम्हें सदा उन्नतिशील तथा प्रसन्न देखा चाहता था।

तुम्हारी बातें मुझमें नए भाव और कार्य करने की स्फूर्ति उत्पन्न करती थीं। ईश्वर जाने, मेरे व्यवहार का तुम पर कैसा असर पड़ा, जिसका यह दुःखदायी परिणाम हुआ। जो हो, इस समय मुझे यह जान परम शांति मिलेगी कि तुमने मेरे अनजाने अपराध को क्षमा किया। अंत में केवल यही कहना चाहता हूँ—

Go thou thy way and I go mine
Apart, yet not afar,
Only a thin veil hangs between
The pathway where we are,
And God keep watch between thee
and me,

This is my prayer ;
He looks thy way
And he looks mine
And he keeps us near.

तुम्हारा मित्र,
हरी"

पत्र पढ़कर प्रभा का माथा ठनका। उसके हृदय पर अचानक प्रकाश-सा पड़ा। वह मानो स्वप्न से जगी। स्त्री-जाति ही ठहरी, अनेक भाव मस्तिष्क में चक्कर लगाने लगे। बड़ा आघात पहुँचा। वह घबरा गई। सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा—"ओफ़्! हरी!"

(४)

आजकल प्रभा उदास रहती है। जान पड़ता है, एक विशेष चिंता उसे सता रही है। उसे हरी के प्रति अपने कृत्यों पर परम पश्चात्ताप हो रहा है। उसका स्वप्न मानो अचानक टूट-सा गया है। वह उत्सुक है एक बार हरी के दर्शन करने को। वह अपने को कोसती है, चाहती है कि किसी प्रकार हरी से भेंट हो, तो क्षमा माँग ले; पर लज्जावश वह वैसा नहीं कर सकती। हरीसिंह आजकल अपने असली रूप में ही प्रभा के सम्मुख रहते हैं; पर प्रभा एक अपराधिनी की भाँति आँखें नहीं उठा सकती। उसने चाहा, पत्र लिखूँ; पर क़लम न चली। भीतर-ही-भीतर भुनी जाती थी। अंत में उसने यही निश्चित किया कि एक 'स्त्री-सेवा-संघ' खोला जाय, और उसके द्वारा, हरी के सिद्धांतों के अनुसार, समाज की सेवा की जाय। यही पश्चात्ताप का उचित पुरस्कार होगा।

प्रयाग में 'कुंभ' का मेला है। अनेक स्थानों से स्वयं-सेवक-दल समाज की सेवा करने पहुँचे हैं। उन्हीं में एक दल 'स्त्री-सेवा-संघ' का भी है। यही संघ बड़ी मुस्तैदी के साथ मेले में सच्ची सेवा कर रहा है। उसकी नायिका हैं श्रीकुमारी प्रभा एम्० ए०। गंगा-किनारे कड़े पहरे रख स्त्री-यात्रियों की देख-रेख करना, पंडों तथा गुंडों के चंगुल में स्त्रियों को न फँसने देना, एक स्थान से दूसरे स्थान पर सकुशल पहुँचा आना, अशक्तों के लिये सवारी का प्रबंध करना तथा दुखी-रोगी को औषध पहुँचाना, ये सारे कार्य कुमारी प्रभा का दल बड़ी मुस्तैदी से कर रहा था। सारे प्रयाग में इस दल के कार्य की प्रशंसा फैल रही थी। मेले के प्रेसिडेंट, सेक्रेटरी [illegible] और अफ़सरों के साथ, कुमारी प्रभा से मिलने और उन्हें धन्यवाद तथा बधाई देने आए।

प्रभा बड़ी उत्सुकता से सबसे मिलती; पर भेंट के बाद ही उसका चित्त कुछ खिन्न-सा हो जाता। उसे आशा थी कि प्रयाग में हरीसिंह से भेंट अवश्य होगी; पर वह अभी तक पूर्ण नहीं हुई थी। आज मेले का अंतिम दिन है। कल सब अपने-अपने घर चले जायँगे। हरीसिंह से भेंट के कोई आसार ही नज़र न आते देख प्रभा को बड़ा दुःख हुआ।

संध्या हो चुकी थी। सब स्वयंसेवक-दल अपने-अपने डेरों पर लौट रहे थे। गंगाजी बड़े वेग से बह रही थीं।

उनके वक्षःस्थल में अब एक ही दो नौका दिखाई दे रही थीं। बाक़ी सब किनारे लग गई थीं। एक नाव, जो किनारे से कुछ ही दूर थी, यात्रियों से ख़ूब भरी थी। उसमें अधिकांश स्त्रियाँ ही थीं। गंगाजी के प्रबल वेग के कारण मल्लाह भी उसे शीघ्र किनारे पर ला सकने में असमर्थ थे। कुछ अँधेरा-सा हो जाने के कारण स्वभावतः स्त्रियों में कुछ चहल-पहल मची। वे नाव में इधर-उधर फिरने लगीं। अचानक नाव में एक ही ओर को ख़ूब बोझ बढ़ गया। एक ज़ोर की लहर के साथ नाव उलट गई।

मल्लाह चिल्लाए। किनारे पर हाहाकार मच गया। सहायता के लिये पुकारें उठीं; पर क्रुद्ध गंगाजी के तेज़ बहाव में कूदने की, संध्या के समय, किसी की हिम्मत न पड़ी।

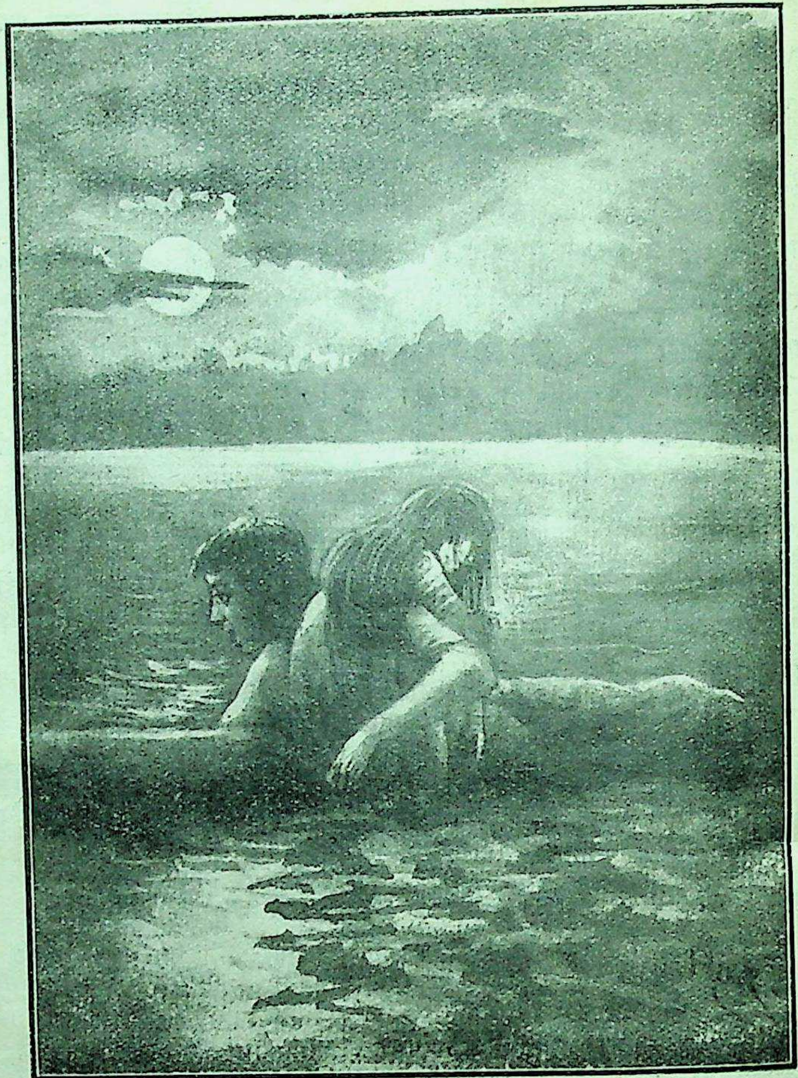
किनारे पर केवल एक स्वयंसेवक घूम रहा था। उसने सहायतार्थ अपने दल को बुलाने के लिये कई बार सीटी बजाई; पर कोई फल न हुआ। सब विश्राम करने चले गए थे। स्वयंसेवक ने जब देखा कि किसी तरफ़ से सहायता के लिये कोई भी नहीं आता, तो वह स्वयं जल में कूद पड़ा। लोग भौचक्के-से देखते ही रह गए। शीघ्र ही डाँड़ के बल तैरती हुई एक युवती के पास पहुँच उस स्वयंसेवक ने सहायता का हाथ बढ़ाया; पर बहुत कोशिश करने पर भी वह बहाव को काटकर किनारे न पहुँच सका। अंत में शक्ति घट जाने पर दोनों ही गंगा के प्रबल वेग के साथ बह चले।

बहुत दूर जाने के बाद उन्हें अचानक एक वृक्ष का सहारा मिल गया। युवक ने उसके सहारे कुछ विश्राम

लिया। युवती तो बेहोश हो ही चुकी थी। यहाँ युवक ने चाँदनी रात में युवती को देखा। उसे देखते ही उसमें नई स्फूर्ति उत्पन्न हो गई, नया बल आ गया।

वह फिर से पानी में धँसा, और इस बार पूरी शक्ति लगाकर उस युवती को साथ ले किनारे आ लगा। किनारे पर लिटाकर उसे Artificial respiration की क्रिया से होश में लाया। पर अब युवक के प्राण-पखेरू भी जाते-से नज़र आने लगे। वह ख़ूब थक गया था। उसका कलेजा सूख गया था।

युवती ने आँखें खोलीं, और एक बार अपनी जान बचानेवाले की ओर देखना चाहा। उसने हाथ जोड़े हुए एक गठीले युवक को ज़ोर-ज़ोर से श्वास लेते अपने पास बैठे देखा। युवती के शरीर में मानों प्रसन्नता की बिजली दौड़ गई। उसने उठने का प्रयत्न किया; पर गिर पड़ी। फिर से एक ज़ोर का प्रयत्न किया, दोनों हाथ फैलाकर युवक के गले से लिपट गई, और चिल्लाई—"भैया⋯ह⋯री⋯"



"वह फिर से पानी में धँसा और इस बार पूरी शक्ति लगाकर उस युवती को साथ ले किनारे आ लगा।"

हरीसिंह में अब अधिक देर ठहरने की शक्ति नहीं थी। उस पर भी प्रसन्नता की बेहोशी के कारण वह अपनेको सँभाल न सका, और यह कहते हुए "बहन⋯प्रभा⋯मु⋯झे⋯क्षमा करना⋯", पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर न उठा। उधर प्रभा को भी मिलाप के आनंद में ऐसी नींद आई कि वह भी फिर न उठी।

भाई-बहन की पवित्र आत्माएँ इस दूषित संसार में नहीं, पर उस स्वर्गलोक में जाकर एक हो गईं।

भवानीशंकर चौधरी

मायावती

(१)

मैं रोती हूँ, मैं निशि-दिन पल-छिन रोती;
मेरी आँखों से बिखरे पड़ते मोती।
मेरे आँसू हैं पद्म-पत्र में कंपित,
कानन है मेरे अश्रु ओस से सिंचित,
मम क्रंदन से तारे हैं नभ में अंकित,
मैं नित आँसू से कलित-केतकी बोती;

(२)

मुझको पावस की घन घन-घटा रुलाती ;
वह सजल उसास कहाँ से है यह लाती ?
व्याकुल करती है नित मुझको घन-धारा,
रोती हूँ देख नदी का यौवन न्यारा,
उमड़ा पड़ता है आँसू का फ़व्वारा,
अविदित विषाद से भर जाती है छाती ;
मुझको पावस की घन घन-घटा रुलाती ।

(३)

मैं देख शरद की शांत नीलिमा रोती ;
मैं देख विजन की छवि नित आकुल होती ।
है मुझे रुलाती करुण बाँसुरी नित-नित,
संध्या मानस को करती आह, तरंगित,
मैं होकर विमना, पागल, बेकल, चिंतित,
हूँ नित नूतन सुमनों में अश्रु पिरोती ;
मैं देख शरद की शांत नीलिमा रोती ।

(४)

मैं हँसती हूँ, मैं नित पगली-सी हँसती ;
मेरे मुख से फूलों की झड़ी बरसती ।
पुलकित प्रभात-सी रहती हूँ नित विधुरा,
उत्फुल्ल कुसुम-सी रहती हूँ मधु-मधुरा,
नव अरुण-राग-सी हूँ मैं मादक-अधरा,
मम हास देखकर ज्योत्स्ना नित्य तरसती ;
मैं हँसती हूँ, मैं नित पगली-सी हँसती ।

(५)

हूँ शरच्चंद्र-सी उजियाली मैं बाला ;
हँसकर करती हूँ त्रिभुवन में उजियाला ।
द्युति-दीप्त दामिनी से मम हास दमकता,
यह प्रखर सूर्य-किरणों से नित्य चमकता,
नव कनक-कांति से आलोकित हो रमता,
है पद्मराग ने भी इसमें रँग डाला ;
हूँ शरच्चंद्र-सी उजियाली मैं बाला ।

(६)

मैं रोती हूँ, हँसती हूँ हो मतवाली ;
मम सजल नयन में छाई कैसी लाली ।
निर्झर-शीकर में मम क्रंदन फुहराता,
रवि-किरणों में मम हास सदा लहराता,
सागर में जब मम अश्रु-वेग गहराता,
ऊषा में सजती हास-कुसुम की डाली ;
मैं रोती हूँ, हँसती हूँ, हो मतवाली ।

(७)

मैं हूँ गंभीरा, हूँ रसवती नवेली ;
मैं हूँ कुहेलिका-सम अति जटिल पहेली ।
मैं निजन-निलय में रहती हूँ अति रुदिता,
मैं रागरंग से हो जाती हूँ मुदिता,
संध्या-सम लीना हूँ, प्रभात-सम उदिता,
रजनी की सजनी रवि-कर-निकर-सहेली ;
मैं हूँ गंभीरा, हूँ रसवती नवेली ।

(८)

मैं महामहिम हूँ भुवनमोहिनी माया ;
निज अश्रु-हास से निखिल जगत् बिरमाया ।
है इंद्रधनुष मेरी माया से अंकित,
मम नयन-वाष्प से होकर नभ में व्यंजित,
मम तरल हास्य से होता है वह रंजित,
है धूप हँसाती मुझे, रुलाती छाया ;
मैं महामहिम हूँ भुवनमोहिनी माया ।

इलाचंद्र जोशी

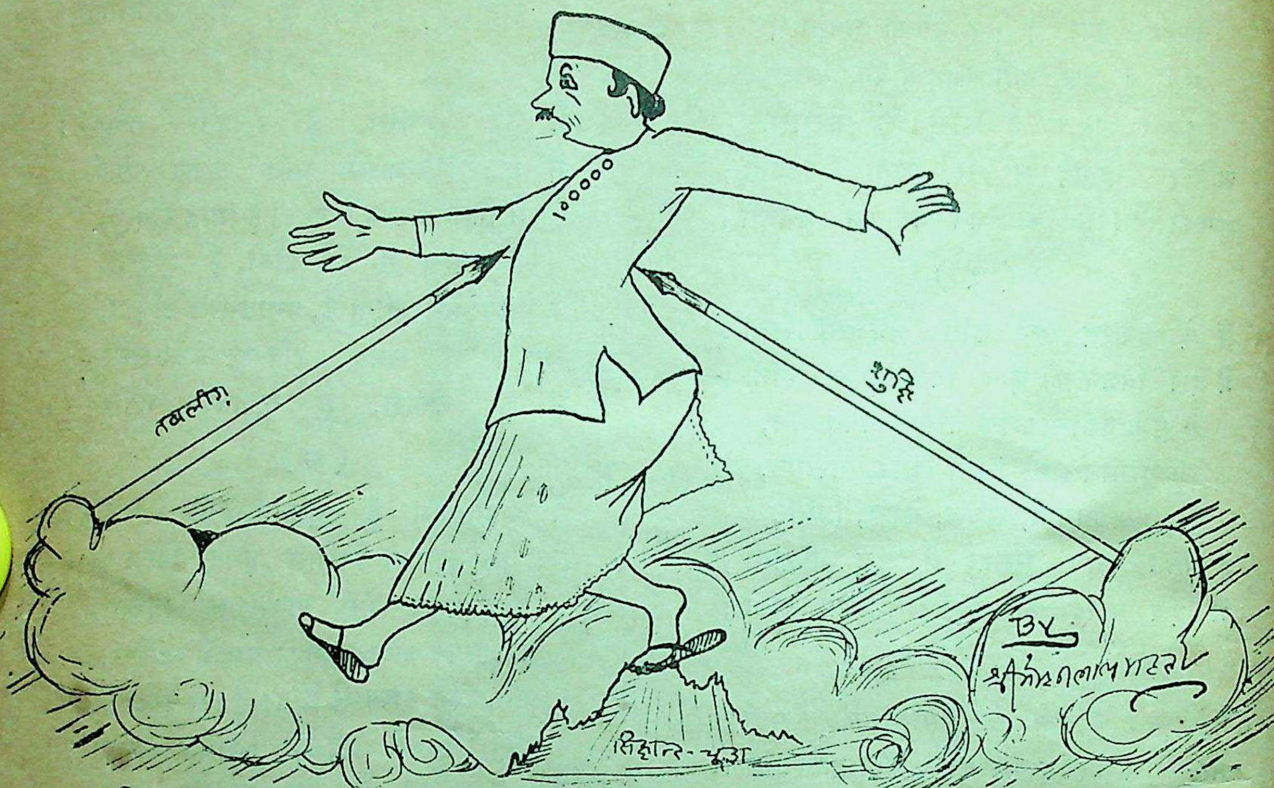
मनुहार

भूल गए हो यदि मुझको प्रभु ! कैसे याद दिलाऊँ मैं ?
रूठ गए हो यदि हे भगवन ! कैसे तुम्हें मनाऊँ मैं ?
विषम वेदना के आँसू हैं, तीखे हैं, ये कड़ुए हैं,
कहाँ हर्ष के निर्मल आँसू पाकर चरण धुलाऊँ मैं ?
हृदय दुःख से विह्वल होकर निशि-दिन है तड़पा करता,
ऐसे डगमग आसन पर प्रभु ! कैसे तुम्हें बिठाऊँ मैं ?
बुझा हुआ है मन का दीपक, करूँ आरती मैं कैसे ?
शक्ति नहीं है, कैसे यश की धूप-सुगंध उड़ाऊँ मैं ?
भूखे हम मरते हैं निशि-दिन, अक्षत भी लाऊँ कैसे ?
पूजा का सामान कहाँ से, कैसे प्रभो ! जुटाऊँ मैं ?
यहाँ नहीं आडंबर हैं ये, भूलो तुम चाहे रूठो,
तुम हो अंतर्यामी प्रभुवर ! तुमको क्या समझाऊँ मैं ?

देवीप्रसाद गुप्त (कुसुमाकर)

असमंजस

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महतो]



दुर्गावती (सचित्र)—लेखक, लखनऊ-युनिवर्सिटी के हिंदी-लेक्चरार पं० बदरीनाथजी भट्ट बी० ए० ; मूल्य १), १॥)

बुद्ध-चरित्र (सचित्र)—अनुवादक, सुधा-संपादक पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ; मूल्य ॥॥), १॥)

वीर भारत—लेखक, पं० भवानीदत्त जोशी बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य ॥॥), १॥)

वेणी-संहार नाटक—लेखक, पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ॥=), १=)

वरमाला (सचित्र)—लेखक, श्रीयुत गोविंदवल्लभ पंत ; मूल्य ॥॥), १॥)

पूर्व-भारत—लेखक, हिंदी के धुरंधर विद्वान् "मिश्रबंधु" ; मूल्य ॥॥=), १।=)

४. व्यंग्य, हास्य और प्रहसन

अचलायतन—मूल-लेखक, श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर ; अनुवादक, सुधा-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न ; मूल्य ॥)

ईश्वरीय न्याय—लेखक, प्रोफ़ेसर श्रीरामदास गौड़ एम्० ए० ; मूल्य ॥)

मूर्ख-मंडली—लेखक, सुधा-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न ; मूल्य ॥=), १=)

मिस्टर व्यास की कथा—लेखक, स्वर्गीय पंडित शिवनाथजी शर्मा बी० ए० ; मूल्य २॥), ३)

रावबहादुर—मूल-लेखक, मौ० मौलियर ; अनुवादक, पं० लल्लीप्रसाद पांडेय ; मूल्य ॥॥), १॥)

लबड़धोंधों—लेखक, लखनऊ-युनिवर्सिटी के हिंदी-लेक्चरार पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य ॥॥), १।=)

५. काव्य

आत्मार्पण—लेखक, द्वारकाप्रसाद गुप्त "रसिकेंद्र"; मूल्य लगभग ॥)

उषा—लेखक, स्व० श्रीशिवदास गुप्त "कुसुम"; मूल्य ॥=)

पराग—लेखक, सुधा-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न ; मूल्य ॥), १)

पुष्पांजलि—लेखक, आनरेबुल श्यामविहारी मिश्र एम्० ए० और रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० ; मूल्य १॥)

भारत-गीत—लेखक, कवि-सम्राट् पं० श्रीधर पाठक ; मूल्य ॥), १)

मानस-मुक्तावली—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू मुकुंदलालजी गुप्त ; मूल्य ।=)

६. गद्य-साहित्य

निबंध-निचय—लेखक, हिंदी के उत्कृष्ट समालोचक पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ; मूल्य १।), १॥)

विश्व-साहित्य—लेखक, सरस्वती-संपादक श्रीपदुमलाल-पुन्नालाल बख़्शी बी० ए० ; मूल्य १॥), २)

साहित्य-सुमन—लेखक, स्व० पं० बालकृष्ण भट्ट ; मूल्य ॥=), १=)

हिंदी—लेखक, लखनऊ-विश्वविद्यालय के हिंदी-लेक्चरार पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य ॥=), १=)

७. समालोचनाएँ

देव और बिहारी—लेखक, पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्०-एल्० बी० ; मूल्य १॥), २)

भवभूति—अनुवादक, हिंदी-संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० ज्वालादत्त शर्मा ; मूल्य ॥=), १=)

हिंदी-नवरत्न—लेखक, हिंदी-संसार के धुरंधर समालोचक "मिश्रबंधु" ; मूल्य ४॥)

८. जीवन-चरित्र

कारनेगी और उसके विचार—लेखक, श्रीउमरावसिंह कारुणिक ; मूल्य ॥=)

केशवचंद्र सेन—लेखक, भारतीय हृदय ; मूल्य १), १॥)

प्रभु-चरित्र—लेखक, पं० शिवराम शुक्ल ; मूल्य ।॥)

प्राचीन पंडित और कवि—लेखक, आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ; मूल्य ॥॥=), १।=)

बंकिमचंद्र चटर्जी—लेखक, सुधा-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न ; मूल्य १), १॥)

सुकवि-संकीर्तन (सचित्र)—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य १।), १॥)

९. इतिहास

इँगलैंड का इतिहास (तीन भाग)—लेखक, डॉ० प्राणनाथ विद्यालंकार पी०-एच्० डी० ; मूल्य ३), ४)

जापान का इतिहास—लेखक, ऑनरेबुल पं० श्यामविहारी मिश्र एम्०ए०, रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० ; मूल्य ॥।≡)

स्पेन का इतिहास—लेखक, ऑनरेबुल पं० श्यामविहारी मिश्र एम्० ए०, रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० ; मूल्य ॥।=)

१०. अर्थशास्त्र और व्यापार

भारतीय अर्थशास्त्र—लेखक, भूतपूर्व प्रेम-संपादक बाबू भगवानदासजी केला ; मूल्य २॥), ३॥)

विदेशी विनिमय—लेखक, प्रयाग-विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र अध्यापक श्रीदयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य १), १॥)

११. कृषि

उद्यान (सचित्र)—लेखक, श्रीशंकरराव जोशी एग्रिकल्चरल ऑफ़िसर ; मूल्य १=), १॥=)

किसानों की कामधेनु (सचित्र)—लेखक, हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ; मूल्य ।=)

कृषि-मित्र—लेखक, पं० गंगाप्रसाद पांडेय L. A. G. सुपरिंटेंडेंट एग्रिकलचर; मूल्य ।~)

कृषि-विद्या—लेखक, पं० अश्विनीकुमार शुक्ल ;मूल्य ।॥), १1)

तरु-जीवन—लेखक, पं० गंगाशंकर पंचोली; छप रहा है ।

१२. स्वास्थ्य और चिकित्सा

तात्कालिक चिकित्सा (सचित्र)—लेखक, बाबू लालबहादुरलाल; मूल्य १।), १॥।)

संक्षिप्त शरीर-विज्ञान—लेखिका, श्रीमती हेमंतकुमारी भट्टाचार्य; मूल्य ॥=)

संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा—लेखिका, श्रीमती हेमंतकुमारी भट्टाचार्य ; मूल्य ॥=)

स्वास्थ्य की कुंजी—लेखक, डॉ० बाबूराम गर्ग ; मूल्य १।), १॥।)

१३. वैज्ञानिक

भूकंप—लेखक, सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू रामचंद्रवर्मा ; मूल्य १)

मनोविज्ञान—लेखक, प्रिंसिपल पं० चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ।॥), १।)

१४. नवयुवकोपयोगी

जीवन का सद्व्यय—अनुवादक, श्रीहरिभाऊ उपाध्या[य] संपादक हिंदी नवजीवन ; मूल्य १), १।

एशिया में प्रभात—मूल लेखक, पाल रिचर्ड ; अनुवाद[क] श्रीठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी० ए०; मूल्य ॥),

भिखारी से भगवान्—अनुवादक, ठाकुर बाबू नंदनसिंह बी[०] ए० ; मूल्य १), १

सुख तथा सफलता मूल्य

१५. योग

प्राणायाम—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए[०] मूल्य ॥।=), १।

कर्मयोग—लेखक, श्रीसंतराम बी० ए०; मूल्य ॥),

हठयोग—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए[०] मूल्य लगभग

योग-शास्त्रांतर्गत धर्म—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसि[ंह] बी० ए० ; मूल्य

योगत्रयी—लेखक, ठा० प्रसिद्धनारायणसिंह बी०ए०; मूल्य

राजयोग—लेखक, ठा०प्रसिद्धनारायणसिंह बी०ए०; मूल्य

योग की कुछ विभूतियाँ—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसि[ंह] बी०ए० ; मूल्य

जीवन-मरण-रहस्य—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसि[ंह] बी० ए०; मूल्य

योग-दर्पण—लेखक, लाला कन्नोमल एम्० ए[०] मूल्य लगभग

१६. महिला-माला की मनोहर मणियाँ

कमला-कुसुम (सचित्र)—लेखिका, श्रीमती गिरिजा दे[वी] मूल्य

रक्षा—लेखक, कविराज श्रीप्रतापसिंह वैद्य, हिंदू-विश्वविद्या[लय] के आयुर्वेद विभाग के सुपरिंटेंडेंट ; मूल्य ॥

गुप्त-संदेश (दो भाग)—लेखक, श्री डॉक्टर यु[द्धवीर] सिंह; मूल्य

देवी पार्वती (सचित्र)—लेखक, मुं० जहूर[बख्श] मूल्य

द्रौपदी (सचित्र)—लेखक, कविवर श्रीरामचरितजी उपाध्याय ; मूल्य ॥)

-उपदेश—लेखक, श्रीगिरिजाकुमार घोष ; मूल्य ॥)

जलि—मूल-लेखक, श्रीसतीशचंद्र चक्रवर्ती ; अनुवादक ० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी ; मूल्य ॥)

की विदुषी नारियाँ—संपादिका, श्रीमती कृष्णाकुमारी; मूल्य ॥)

ीय स्त्रियाँ—अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा; मूल्य १॥), २)

ता-मोद—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसादजी विदी ; मूल्य ॥)

(सचित्र)—लेखक, श्रीगिरिजाकुमार घोष; मूल्य ॥=)

-विलास (सचित्र)—लेखक, भूतपूर्व सरस्वती-संपादक ० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ॥)

१७. बालविनोद-वाटिका के सुंदर सुमन

स की कहानियाँ (सचित्र)—लेखक, मुं० जहूरबख़्श दी-कोविद ; मूल्य ॥=)

कोड़े (सचित्र)—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित ० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ॥=)

ाड़—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी०ए०, ० टी० ; मूल्य ।)

चीसी—लेखक, श्रीप्रतिपालसिंहजी ; मूल्य ।=)

ी कहानी (सचित्र)—लेखक, पं० भूपनारायणजी क्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ॥), १)

पाँड़े (सचित्र)—लेखक, श्री पं० भूपनारायणजी क्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य १), २)

ारी हातिम (सचित्र)—लेखक, मुं० जहूरबख़्श ी-कोविद ; मूल्य १), १॥)

त्ति-कथा (दो भाग)—मूल-लेखक, हिंदू-विश्वविद्यालय, ी के प्रिंसिपल और प्रो-वाइस-चांसलर श्रीयुत ए०बी० ध्रुव ०ए०, एल्-एल्० बी० ; अनुवादक, लखनऊ-विश्वविद्यालय ंदी-लेक्चरार श्रीपं० बदरीनाथभट्ट बी० ए०; मूल्य २॥), ३॥)

-भूषण—लेखक, स्व० श्री बा० गोपालनारायणसेनसिंह ए० ; मूल्य =)

भारत के सपूत (सचित्र)—लेखक, मुं० जहूरबख़्श हिंदी-कोविद; मूल्य ॥=)

लड़कियों का खेल (सचित्र)—लेखक, स्व० श्रीगिरिजा-कुमार घोष; मूल्य ॥)

सुबेह चमेली—लेखक, श्रीयुत रामजीदास भार्गव ; मूल्य =)

हँसी-खेल—लेखक, श्रीजगमोहन 'विकसित'; मूल्य लगभग ॥)

१८. सुकवि-माधुरी-माला के अनुपम रत्न

बिहारी-रत्नाकर—प्रणेता, व्रजभाषा-साहित्य के पारदर्शी विद्वान् बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०; मूल्य ५)

मतिराम-ग्रंथावली—संपादक, पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य २॥), ३)

मिश्रबंधु-विनोद (दो खंड)—लेखक, पं० गणेशबिहारी मिश्र, माननीय पं० श्यामबिहारी मिश्र एम्० ए० और रा० ब० पं० शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए० ; मूल्य
प्रथम खंड २), २॥)
द्वितीय खंड २॥), ३)

१९. प्रकीर्णक पुस्तकें

अयोध्यासिंह उपाध्याय— मूल्य ≋)

देशहितैषी श्रीकृष्ण—लेखक, स्वर्गीय स्वनाम-धन्य पं० राधाचरण गोस्वामी ; मूल्य =)

द्विजेंद्रलाल राय—लेखक, सुधा-संपादक पं० दुलारेलाल भार्गव और पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न ; मूल्य ≡)

पूर्ण-संग्रह—संपादक, पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी०ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य १॥), २)

प्रायश्चित्त-प्रहसन—लेखक, सुधा-संपादक पंडित रूपनारायण पांडेय कविरत्न ; मूल्य ।)

मध्यम व्यायोग—लेखिका, श्रीमती सुशीलादेवी जायसवाल; मूल्य =)

स्कॉउ-मार्चिंग (सचित्र)—लेखक, पं० मनोहरप्रसाद त्रिपाठी ; मूल्य ॥)

सम्राट् चंद्रगुप्त—लेखक, पं० बालमुकुंद वाजपेयी भूतपूर्व लक्ष्मण-संपादक ; मूल्य ।)

Hindi in Thirty days—लेखक, श्रीरामस्वरूप कौशल एम्० ए०, एम्० आर० ए०, एस्०; मूल्य ॥)

गोस्वामी तुलसीदासजी का काव्य-ज्ञान

आनन्दकानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरुः ;
कविता-मञ्जरी यस्य राम-भ्रमरभूषिता ।



स काशीपुरी में अपनी विद्या के घमंड से एक पंडित दूसरे पंडित को पंडित नहीं समझता, जिस काशीपुरी में, पुराने समय में, देव-भाषा संस्कृत का बाहुल्य होने के कारण, भाषा-रचना को लोग हास्यास्पद तथा अपांडित्य-सूचक समझते थे, जिस काशीपुरी में वहाँ के प्रधान देवता बाबा विश्वनाथजी के अतिरिक्त अन्य किसी को इष्ट मानना जोखिम से ख़ाली नहीं था, उसी काशीपुरी के किसी धुरंधर विद्वान् से ऐसी प्रशंसा पाना, जैसी कि ऊपर के श्लोक में वर्णित है, साधारण सौभाग्य नहीं । कहते हैं, गोस्वामी तुलसीदासजी की भाषा-कविता की कोई बात ही न पूछता था । काशी के विद्वानों की धारणा थी कि यथार्थ कविता हो सकती है तो संस्कृत में ही । भाषा में उस समय अधिक ग्रंथ भी नहीं थे, जिनसे भाषा की धाक जमी होती । इसी धारणा से प्रेरित होकर पंडितों ने पहलेपहल तुलसीदासजी की भाषा-कविता का समुचित आदर नहीं किया । परंतु, समय पाकर, जब उन्हें ज्ञात हुआ कि वह कविता साधारण तुकबंदी नहीं, किंतु काव्य के संपूर्ण गुणों से परिपूर्ण है, तब उनकी उपेक्षा ही नहीं जाती रही, बल्कि उस कविता के प्रति रुचि भी बढ़ गई । आज काशी में तुलसीदासजी के ग्रंथ-रत्नों का जो आदर है, वह कदाचित् किसी विरले ही स्थान में होगा । क्यों न हो, योग्यता स्वयं ही आदर करा लेती है ।

तुलसीदास श्रीरामचंद्र के अनन्य भक्त तथा भक्ति-पक्ष के समर्थक थे । उनकी कविता में राम-भक्ति कूट-कूटकर भरी है, सर्वतोभावेन व्याप्त है । वह उसी राम-भक्ति में पिरोई हुई, उसी को पुष्ट करती हुई, उसी को अत्यंत प्रभावशालिनी करती हुई लोकोक्ति-संग्रह-सुधा है । इसी से वह कविता "भवौषध" होती हुई भी "श्रोत्र-मनोऽभिराम" है । परंतु इस लेख में हम इस गुण का विचार करने नहीं बैठे हैं, इसलिये इसे यहीं छोड़कर अपने प्रधान विषय पर आते हैं, अर्थात् यह विचार करते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजी को कितना काव्य-ज्ञान था ।

इस बात का ध्यान आते ही हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं कि हम तुलसीदासजी-सरीखे महात्मा के काव्य पर एक समालोचक की हैसियत से अपनी राय प्रकट करें । हमें कालिदास का श्लोक स्मरण आता है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ;
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।

अथवा—

प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ।

परंतु फिर जब गंधर्वराज पुष्पदंत का यह श्लोक सामने आता है—

ममत्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता—

तब संतोष हो जाता है, और साहित्यिक आह्लाद के लिये अपना विचार प्रकट करना पाप या अहंकार नहीं समझ पड़ता । अनंत आकाश में पक्षी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उड़ते हैं; परंतु यदि उसकी थाह नहीं पाते, तो उनका कोई दोष नहीं ।

अच्छा, तो अब देखना चाहिए, तुलसीदासजी स्वयं अपने बारे में क्या कहते हैं । रामचरित-मानस के आदि में वह कहते हैं—

कबि न होउँ, नहिं चतुर प्रबीना; सकल कला, सब बिद्या हीना ।
आखर अरथ, अलंकृत नाना; छंद-प्रबंध अनेक बिधाना ।
भाव-भेद, रस-भेद अपारा; कबित-दोष-गुन बिबिध प्रकारा ।
कबित-बिबेक एक नहिं मोरे; सत्य कहौं लिखि कागद कोरे ।

और भी—

सूझ न एकौ अंग उपाऊ; मन अति रंक, मनोरथ राऊ ।
मति अति नीच,ऊँच रुचि आछी;चहिय अमिय,जग जुरै न छाछी ।

परंतु यह सब विनीत भाव है, नम्रता का नमूना है । यदि तुलसीदासजी भी विख्यात कवि जयदेव की तरह कहते—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो
यदि विलासकथासु कुतूहलम् ;
मधुरकोमलकान्तपदावलीं
शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ।

या लोलिंबराज की तरह कहते—

समस्तपृथ्वीपतिपूजनीयो
दिगङ्गनाश्लिष्टयशःशरीरः ;
गुणिप्रियं ग्रन्थममुं व्यतानील्-
लोलिम्बराजः कविपादशाहः ।

या राम कवि की तरह कहते—

हठादाकृष्टानां कतिपयपदानां रचयिता
यदि स्पर्द्धीभूयाद्भुवनजयिना रामकविना;
तदेतज्जानीमः कतिपयदिनैरेव भविता
घटानां निर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्च कलहः ।

तो तुलसीदासजी भी कह सकते थे। परंतु ऐसा उन्होंने सीधी-सादी रीति से नहीं कहा। हाँ, कहीं तो इशारा-भर कर दिया है, और कहीं प्रसंगवश बात निकल गई है। देखिए, प्रस्तावना के श्लोक ही में कहा है—

भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।

फिर आगे चलकर कहा है—

जग बहु नर सुर-सरि सम भाई; जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई।
सज्जन सुकृत-सिंधु सम कोई; देखि पूर बिधु बाढ़हिं जोई।

तुलसीदासजी का गूढ़ अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि जो लोग कोई एक शास्त्र या किसी शास्त्र का कोई अंग जानते हैं, वे अभिमान में चूर रहा करते हैं, दूसरों को बड़ाई देना नहीं चाहते; परंतु जो लोग समुद्र की तरह सब विद्याओं के निधान हैं, बहुज्ञ हैं, वे पूर्ण विधु के समान समग्र कलाओं से संपन्न कवि का काव्य देखकर अवश्य ही आह्लादित होते हैं। निश्चय ही तुलसीदासजी ने 'पूर बिधु' शब्दों से अपनी ओर संकेत किया है।

तुलसीदासजी को पूरा विश्वास है कि दुष्ट, दुराग्रही, ईर्ष्यालु लोग चाहे भले ही उनकी कविता में छिद्रान्वेषण करने की चेष्टा करें, परंतु सज्जन प्रसन्न ही होंगे—

पैहहिं सुख सुनि सुजन जन, खल करिहैं उपहास।

परंतु इस उपहास का किंचिन्मात्र भी भय तुलसीदासजी के हृदय में नहीं है। वह कहते हैं—

खल-परिहास होइ हित मोरा; काक कहहिं कलकंठ कठोरा।
हंसहिं बक दादुर चातकही; हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही।

इससे ज्ञात होता है, तुलसीदासजी अपनी कविता को कलकंठ, हंस, चातक, विमल 'बतकही' के समान समझते हैं।

यही नहीं, उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया है कि हमको अपनी कविता से संतोष है—

निज कवित्त केहि लाग न नीका; सरस होइ, अथवा अति फीका।

आगे चलकर प्रसंगवश यह भी कह दिया है कि हमारी कविता जोड़-जाड़ की नहीं है; किंतु हमारे मन में कविता की उमंग भरी है—

संभु-प्रसाद सुमति हिय हुलसी; रामचरित मानस कवि तुलसी।

पहले अपने में जिन गुणों का अभाव दिखाते थे, उन्हीं की विद्यमानता अब बतलाते हैं—

अरथ अनूप सुभाव सुभासा; सोइ पराग मकरंद सुबासा।
धुनि, अवरेब कबित गुन जाती; मीन मनोहर ते बहु भाँती।

कहने का तात्पर्य यह कि तुलसीदासजी की कविता में जो विशेष गुण भरे पड़े हैं, वे 'काकतालीय' न्याय से नहीं आ गए, उनका समावेश गोस्वामीजी ने जान-बूझकर किया है। वे सब 'इत्तिफ़ाक़िया' बातें नहीं हैं; किंतु उत्कृष्ट विद्या तथा विचार एवं कवित्व-शक्ति का परिणाम हैं। विना अर्थ तथा भाव को क्षति पहुँचाए आप उनका एक शब्द भी नहीं बदल सकते।

काव्य की परीक्षा में प्रायः देखा जाता है, उसमें कोई रस है या नहीं; यदि है, तो उसके पोषक भी उचित रीति से हैं या नहीं। काव्य में रस का इतना महत्त्व है कि मम्मट भट्ट ने काव्य की परिभाषा बतलाई है—"काव्यं रसात्मकं वाक्यम्"। उत्तम काव्य पढ़ने से हृदय में एक अलौकिक आह्लाद उत्पन्न होता है, जिसे शब्दों के द्वारा प्रकट करना संभव नहीं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो उस रस के समुद्र में उन्मज्जन-निमज्जन कर रहे हैं।

अब हम गोस्वामी तुलसीदासजी की कविता से कुछ उदाहरण देकर अपने कथन का समर्थन करते हैं।

शृंगार-रस

यद्यपि गोस्वामीजी ने शृंगार-रस पर बहुत कम लिखा है, और रामजी तथा सीताजी के प्रेम पर जहाँ लिखा है, वहाँ दबी ज़बान से, संकोच के साथ लिखा है—"को कबि कहै, अजस को लेई", या स्मरण दिला दिया है कि "जगत-जननि अतुलित छबि भारी"; तथापि जो कुछ लिखा है उसे सर्वांगपूर्ण कर दिया है—

करत बतकही अनुज सन, मन सिय-रूप लुभान;
मुख-सरोज-मकरंद-छबि, करत मधुप इव पान।

यहाँ सीता आलंबन हैं, रूप पर लुभाना रति है और वही स्थायीभाव भी। मुख-सरोज उद्दीपन कहा जा सकता

है, और आगे की चौपाई में 'सीता की चहूँ दिशि चकित चितवनि' अनुभाव है। रामजी की 'मधुप' के समान तल्लग्नता व्यभिचारी भाव है। यह संभोग-श्रृंगार है।

इसी प्रकार—

कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि; कहत लखन सन राम्र हृदयगुनि।
मानहु मदन दुंदुभी दीन्हीं; मनसा बिस्व-विजय कहँ कीन्ही।
असकहिफिरि चितए तेहि ओरा; सियमुखससि भे नयन चकोरा।
भए बिलोचन चारु अचंचल; मनहु सकुचि निमि तजेउ दृगंचल।
देखि सीय-सोभा सुख पावा; हृदय सराहत, बचन न आवा।

इसमें संभोग-श्रृंगार का हृदयग्राही वर्णन है। विप्रयोग या विरह-श्रृंगार का भी नमूना देखिए—

नूतन किसलय मनहु कृसानू; कालनिसा सम निसि, ससि भानू।
कुवलयविपिन कुंतवन सरिसा; बारिद तप्त तेल जनु बरिसा।
जे हित रहे, करत सोइ पीरा; उरग-स्वास सम त्रिविध समीरा।

इसमें भी सीता आलंबन हैं; सीता के प्रति रति स्थायी भाव है; किसलय, निशा, शशि, कुवलय, वारिद, त्रिविध समीर उद्दीपन हैं; क्लेश व्यभिचारी भाव है।

इसी प्रकार—

बिरह-बिकल, बलहीन मोहिं, जानिसि निपट अकेल;
सहित बिपिन मधुकर खगन्ह, मदन कीन्ह बगमेल।

यह भी विप्रयोग-श्रृंगार का अच्छा उदाहरण है।

करुण-रस

हा जगदीस, देव, रघुराया; केहि अपराध बिसारेहु दाया।
हा लछिमन, तुम्हार नहिं दोषा; सो फल पायउँ, कीन्हेउँ रोषा।
कैकेई-मन जो कछु रहेऊ; सो बिधि आजु मोहिं दुख दयऊ।
बिबिध बिलाप करति बैदेही; भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही।

रावण द्वारा हरण होने का शोक स्थायीभाव है; राम, लक्ष्मण आलंबन हैं; कैकेयी तथा विधि की निंदा और विलाप अनुभाव हैं; विषाद, चिंता आदि व्यभिचारी हैं।

इसी प्रकार लक्ष्मण के शक्ति लगने पर—

सो अनुराग कहाँ अब भाई; उठउ न सुनि मम बच बिकलाई।
जो जनतेउँ बन बंधु-बिछोहू; पिता-बचन मनतेउँ नहिं वोहू।
बहुबिधि सोचत सोच-बिमोचन; स्रवत सलिल राजिवदल लोचन।

इसमें भी करुण रस सर्वांग है।

वीर-रस

रामचरितमानस में धनुभंग के पहले लक्ष्मण के वचन—

जो राउर अनुसासन पाऊँ; कंदुक इव ब्रह्मांड उठाऊँ

धनुभंग के समय रामजी की वीरता तथा लंका-कांड के अनेकों स्थल वीर-रस से पूर्ण हैं। कवितावली रामायण के लंका-कांड में हनुमान्‌जी का युद्ध वीर-रस का अद्वितीय उदाहरण है।

नमूने के लिये हम एक छंद लिखते हैं—

कतहुँ बिटप भूधर उपारि अरि सैन बरख्खत;
कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करख्खत।
चरन चोट चटकन चकोट अरि-उर-सिर बज्जत;
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत।
लंगूर लपेटत पटकि महि, जयति राम जय उच्चरत;
तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत।

हनुमान्‌जी के हृदय का उत्साह इस वीर-रस का स्थायी-भाव है; रावण की सेना आलंबन है; विटप, भूधर आदि अनुभाव हैं; गर्जन, 'जय राम' आदि शब्दों का उच्चारण, कौतुक आदि धैर्य प्रकट करते हैं, जो संचारी हैं। जिन लोगों का ख़याल है कि तुलसीदासजी का युद्ध-वर्णन तनिक फीका है, वे कृपा करके कवितावली-रामायण का हनुमद्-युद्ध-वर्णन पढ़ें और देखें कि रस की पुष्टि किस प्रकार की गई है। संयुक्ताक्षरों का प्रयोग, ट-वर्ग का प्रयोग, विकट रचना का प्रयोग आदि किस प्रकार ओज-गुण को बढ़ाकर रस के पोषक हैं।

भयानक-रस

धनुष टूटने पर—"भरि भुवन घोर कठोर रव रबि-बाजि तजि मारग चले;" आदि, लंका-दहन का दृश्य; लंका के युद्ध के कई स्थल इस रस के सुंदर उदाहरण हैं। नमूने के लिये लंका-दहन-विषय का एक छंद कवितावली-रामायण से दिया जाता है—

लागि-लागि आगि भागि-भागि चले जहाँ-तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत ना सँभारहीं;
छूटे बार, बसन उघारे, धूम-धुंध-अंध,
कहैं बारे-बूढ़े बारि-बारि बार-बारहीं।
हय हिहिनात, भागे जात घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारहीं;
नाम लै चिलात, बिललात, अकुलात अति
तात, तात, तौंसियत, झौंसियत झारहीं।

इसमें भय स्थायीभाव है; हनुमान्‌जी आलंबन हैं; बाल छूटना, वस्त्र खुलना, चिल्लाना, अकुलाना आदि अनुभाव हैं; दीनता आदि व्यभिचारी हैं।

बीभत्स-रस

कवितावली-रामायण से—

ओझरीय झोरी काँधे, आँतन की सेल्ही बाँधे,
मुंड के कमंडल खपर किए कोरिकै ;
जोगिनी-जमाति जेरि झुंड बनी तापस से,
नीर-तीर बैठी सो समर खोरि-खोरिकै ।
सोनित सों सानि-सानि गूदा खात सेतुआ-से,
एक प्रेत पियत बहोरि घोरि-घोरिकै ;
'तुलसी' बैताल-भूत साथ लिए भूतनाथ,
हेरि-हेरि हँसत हैं हाथ जोरि-जोरिकै ।

हास्य, रौद्र, अद्भुत-रस

यद्यपि इन रसों के भी सुंदर-सुंदर उदाहरण तुलसीदासजी की कविता में विद्यमान हैं, तथापि विस्तार के भय से हम केवल एक-ही-एक उदाहरण देते हैं—

हास्य (नारद-मोह-वर्णन में)—

मुनि-हित कारन कृपानिधाना ; दीन्ह कुरूप, न जाइ बखाना ।

शिव के गण—

करहिं कूट नारदहिं सुनाई ; नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ।
रीझिहि राजकुँअरि छवि देखी; इनहिं बरिहि हरि जानि बिसेखी ।
पुनि-पुनि मुनि उसकहिं, अकुलाहीं; देखि दसा हर-गन मुसुकाहीं ।
तब हर-गन बोले मुसुकाई ; निज मुख-मुकुर बिलोकहु जाई ।

रौद्र

क्रोधे कृतांत समान कपि, तनु स्रवत सोनित राजहीं ;
मर्दहिं निसाचर-कटक भट बलवंत, जिमि घन गाजहीं ।
माराहिं चपेटन, काटि दाँतन, डारि लातन मींजहीं ;
चिकरहिं मर्कट, भालु छल-बल करहिं, जेहि खल छीजहीं ।

अद्भुत

दिखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखंड ;
रोम-रोम प्रति राजहीं, कोटि-कोटि ब्रहमंड ।
तनु पुलकित, मुख बचन न आवा; नयन मूँदि चरनन सिर नावा ।

शांत-रस

यद्यपि तुलसीदासजी की कविता में सभी रस बहुत सुंदर रीति से वर्णित हैं, तथापि शांत-रस का बाहुल्य है । तुलसीदासजी परम भक्त थे, उनके हृदय का मुख्य रस शांत-रस था । जहाँ विशुद्ध शांत-रस है, वहाँ तो है ही, किंतु अन्य रसों को भी आपने इसी शांत-रस का अंग बना दिया है, और इस रस को अंगी अर्थात् प्रधान । रामचरित-मानस के अनेकों स्थल, कवितावली का प्रायः संपूर्ण उत्तर-काांड और विनयपत्रिका का पूर्ण कलेवर इसी शांत-रस से भरा पड़ा है । शांति इसका स्थायी भाव है; संसार की अनित्यता, निःसारता अथवा परमात्मा का स्वरूप इसके आलंबन हैं; पवित्र आश्रम, रम्य वन, नदी-कूल, सत्संग आदि इसके उद्दीपन हैं; रोमांच आदि इसके अनुभाव हैं; निर्वेद, हर्ष, बुद्धि, भूत-दया आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं । कुछ उदाहरण देखिए—

जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की ;
जन की कहु क्यों करिहै न सँभार, जु सार करै सचराचर की ।
'तुलसी' कहु राम समान को आन है सेवकी जासु रमा घर की ;
जग में गति जाहि जगत्पति की, परवाहि सो ताहि कहा नर की ।

(कवितावली)

मोसम दीन, न दीन-हित, तुम समान रघुबीर ;
अस बिचारि रघुबंस-मनि, हरहु बिषम भव-पीर ।
कामी के जिमि नारि प्रिय, लोभी के जिमि दाम ;
ऐसे है कब लागिहौ, तुलसी के मन राम ।

(रामचरितमानस)

रसों का दिग्दर्शन हो चुका । इसी संबंध में भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भाव-शांति, भावसंधि, भावशबलता आदि विषय भी हैं । परंतु इन सबका अल्प विवरण भी देना इस लेख में संभव नहीं । दिग्दर्शन के लिये केवल एक उदाहरण दिया जाता है—

प्रभुहिं चितै, पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल ;
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधु-मंडल डोल ।

इसमें 'प्रभुहिं चितै' शब्दों से राम-विषयक रति प्रकट होती है, और फिर 'चितै महि' शब्दों से लज्जा सूचित होती है, इसलिये रति और लज्जा, दो भावों की संधि है । यहाँ अनुभाव उद्दीपन, व्यभिचारी आदि के द्वारा रति का भाव पुष्ट नहीं होता; इसीलिये शृंगार-रस नहीं है, किंतु रति का भाव है । अधिक सूक्ष्म होने के कारण, तथा विस्तार-भय से, यह विषय यहीं छोड़ा जाता है । इतना अवश्य कह देना चाहिए कि इन सबके अनेकों उदाहरण तुलसीदासजी की कविता में विद्यमान हैं ।

गुण

काव्य के तीनों गुण—माधुर्य, ओज और प्रसाद—भी गोसाईंजी की कविता में स्पष्ट रूप से पाए जाते हैं । रसों के जो उदाहरण दिए गए हैं, उनमें ये गुण देखे जा सकते हैं । अन्य उदाहरण भी देखिए—

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता; कहँ गए नृपकिसोर मनचीता।
जहँ बिलोकि मृगसावक-नैनी; जनु तहँ बरस कमल सित स्रेनी।

कैसी कविता है ! मानो अमृत की धारा मंद-मंद बह रही है; मार्ग में न कोई कंकड़ है न पत्थर, न कठोर तथा श्रुतिकटु ठोकर है न टक्कर; स, र, ल आदि अक्षर कैसी सरलता बरसा रहे हैं ! इसका नाम है माधुर्य। इसके प्रतिकूल ओज-गुण की छटा भी देखिए—

मत्त भट मुकुट दसकंठ साहस सयल-
स्रृंग बिद्दरन जनु बज्र-टाँकी ;
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज, कमठ,
सेस संकुचित, संकित पिनाकी।
चलत महि, मेरु उच्छलत, सागर सकल
बिकल, बिधि बधिर, दिसि-बिदिसि झाँकी;
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी।

इसमें संयुक्ताक्षरों, ट-वर्ग के अक्षरों तथा विकट रचना से कैसा प्रभाव पड़ता है ! ऐसा प्रतीत होता है, मानो पर्वत की नदी कंकड़ों-पत्थरों से टकराती हुई जा रही है।

रह गया प्रसाद-गुण, सो प्रायः सर्वत्र ही विद्यमान है।

धरि धीरज इक सखी सयानी ; सीता सन बोली गहि पानी।
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू ; भूप-किसोर देखि किन लेहू।

अर्थ और भाव का निश्चय ऐसे ही होता जाता है, जैसे सूखे ईंधन में अग्नि का प्रवेश, अथवा ढालू स्थान में जल का बहाव।

शब्द की शक्ति

अभिधा, लक्षणा और व्यंजना-रूप जो शब्द की तीन शक्तियाँ हैं, उनमें से व्यंजना या ध्वनि से काव्य में विशेष चमत्कार पैदा हो जाता है। गोस्वामीजी की कविता में व्यंजना की तो कमी नहीं। लक्ष्मण-परशुराम-संवाद और अंगद-रावण-संवाद में व्यंजना का भरपूर प्रयोग हुआ है। अन्य स्थलों में भी इसके बहुत उदाहरण मिलते हैं—

पुनि आउब इहि बिरियाँ काली; अस कहि मन बिहँसी इक आली।

कवि स्वयं ही आगे कहता है—

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी।
सत्यसीलता तव जग जागी; पावा दरस हमहुँ बड़भागी।

तात्पर्य इसका अभिधाजनित अर्थ से विपरीत है।

अलंकार

जैसे मनुष्य की शोभा सत्य-दया आदि आंतरिक गुणों से और हार, कंकण आदि बाह्य अलंकारों से होती है, उसी प्रकार काव्य की शोभा रसों, गुणों आदि से तथा शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों से होती है। दोनों प्रकार के अलंकारों में भेद यह है कि जिन शब्दों के कारण कोई अलंकार पैदा हुआ है, उन्हें बदल देने (अर्थात् उनके स्थान पर उनके पर्यायवाची शब्द रख देने) से शब्दालंकार तो जाता रहता है ; परंतु, ऐसा करने से, अर्थालंकार नहीं दूर होता।

शब्दालंकारों में प्रधान ये हैं—अनुप्रास, पुनरुक्तवदाभास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति। तुलसीदासजी की कविता में इन सब प्रकार के अलंकारों का सुंदर समावेश है। इनका विस्तृत वर्णन करने से एक तो लेख का कलेवर बढ़ जायगा, दूसरे कोई विशेष रोचकता भी न आवेगी। अतः हम दो-एक प्रधान अलंकारों के उदाहरण देकर ही संतोष करते हैं—

अनुप्रास—

बंदौं गुरु-पद-पदुम परागा ; सुरुचि, सुबास, सरस अनुरागा।
प्रभु जब जात जानकी जानी ; सुख-सनेह-सोभा-गुनखानी।

श्लेष—

साधु-चरित सुभ सरिस कपासू; निरस, बिसद, गुनमय फल जासू।

यहाँ निरस, विशद, गुणमय शब्द साधुचरित और कपास, दोनों के विशेषण हैं। गुण = (१) दया, धर्म आदि, (२) रेशा। फल-शब्द में भी श्लेष है।

सोइ जल-अनल-अनिल-संघाता ; होइ जलद जग-जीवन-दाता।

यहाँ 'जीवन' शब्द में श्लेष है, अर्थात् (१) जल और (२) ज़िंदगी।

अर्थालंकारों की संख्या बहुत बड़ी है। यदि केवल एक-एक उदाहरण दिया जाय, तो भी एक पोथा बन जायगा। इसलिये अन्य अलंकारों का विचार छोड़कर हम उपमा को ही लेते हैं। उपमा का लक्षण बतलाने की आवश्यकता नहीं। केवल यही कहना है कि जैसे सुवर्ण से हार, कंठा, कंगन, अँगूठी आदि अनेक आभूषण बनते हैं, परंतु सबमें रहता वही एक सुवर्ण है, इसी प्रकार उपमा ही का भाव विविध युक्तियों से प्रकट करने पर अनेक अलंकार बन जाते हैं। उपमा में चार बातें होती हैं—(१) उपमान, (२) उपमेय, (३) साधारण धर्म, (४) चिह्न। जब कविता में ये चारों बातें आती हैं, तो पूर्णोपमा है। यदि कोई बात लुप्त होती है, तो लुप्तोपमा होती है।

पूर्णोपमा—

अरुनोदय सकुचे कुमुद , उडुगन जोति मलीन ;
तिमि तुम्हार आगमन सुनि , भए नृपति बलहीन।

उत्प्रेक्षा—

रचे रुचिर बर बंदनवारे ; मनो मनोभव फंद सँवारे।

रूपक—

चाप स्रुवा, सर आहुति जानू ; कोप मोर अतिघोर कृसानू।
समिध सेन चतुरंग सुहाई ; महा महीप भए पसु आई।
मैं यहि परसु काटि बलि दीन्हे ; समर-जज्ञ जग कोटिन कीन्हे।

अनेक रूपक कई-कई पन्नों तक चले गए हैं। जैसे मानस-वर्णन, ज्ञान-दीपक-वर्णन, रामजी का धर्मरथ वर्णन आदि।

उपमा, मालोपमा, अनन्वय, उत्प्रेक्षा, संदेह, रूपक, अपह्नुति, समासोक्ति, निदर्शना, अप्रस्तुत-प्रशंसा, अतिशयोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत, दीपक, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक, विभावना आदि अनेकों अलंकारों के उदाहरणों से तुलसीदासजी की कविता भरी पड़ी है। इनके उदाहरण देना मानो दीपक हाथ में लेकर सूर्य को ढूँढना है। कोई भी स्थल पढ़िए, कोई-न-कोई सुंदर उपमा या उसका कोई रूप अवश्य मिल जायगा। जैसे संस्कृत के काव्यों में कालिदासजी की उपमाएँ विख्यात हैं, वैसे ही हिंदी में गोसाईंजी के लिये भी कहा जा सकता है। उपमाएँ चुभती हुई हैं, जो सहृदय-के हृदय को आह्लादित कर देती हैं।

यद्यपि उपमाओं के प्रयोग में गोस्वामीजी ने कवियों की परंपरा नहीं छोड़ी, अर्थात् चिर-परिचित चंद्र, कमल आदि उपमानों का ही प्रयोग किया है, तथापि जिस रीति से उनका प्रयोग किया है, उसमें अनोखापन अवश्य है। हमारे पाठकगण देख सकते हैं, मुख की समता चंद्रमा से दिखलाने में तुलसीदासजी ने कितनी युक्तियाँ लड़ाई हैं। कहीं उपमा के रूप में, कहीं उत्प्रेक्षा के रूप में, कहीं रूपक के रूप में, कहीं अपह्नुति के रूप में अनेकों प्रकार से वही बात प्रकट की है। बहुत अच्छा हो, यदि कोई विद्वान् गोस्वामीजी के ग्रंथों से चुनकर यह दिखावें कि कितनी युक्तियों से उन्होंने उपमा का भाव प्रकट किया है।

अन्य अलंकारों के उदाहरण दिखलाना बहुत रोचक तथा उपयोगी न समझकर हम यह विषय यहीं समाप्त करते हैं।

उपसंहार

हमने देख लिया कि काव्य की सुंदरता के लिये जितने अंग आवश्यक होते हैं, वे सभी तुलसीदासजी की कविता में पाए जाते हैं। इसलिये हमको बरबस मानना ही पड़ता है कि तुलसीदासजी में अद्भुत काव्य करने की शक्ति थी। इतना ही नहीं, अधिक विचार करने पर यही विश्वास होता है कि तुलसीदासजी के लिये अप्रत्यक्ष रूप में हनुमान्‌जी की सहायता पहुँचने की जो किंवदंती है, वह सत्य है। हमको पूर्ण विश्वास है कि तुलसीदासजी के लिये अवश्य "संभु-प्रसाद सुमति हिय हुलसी" थी।

रह गई दोषदर्शन की बात, सो कितने ही लोगों ने तुलसीदासजी के काव्यों में कितनी ही अलौकिक तथा अस्वाभाविक बातें निकाली हैं। उनको वे बातें भद्दी तथा अलौकिक प्रतीत होती हों तो हों ; हमें तो उनमें कोई दोषापत्ति नहीं दिखाई देती। बात यह है कि तुलसीदासजी ने परंपरा के विरुद्ध लिखने की चेष्टा ही नहीं की। जैसे अन्य आचार्यों की तरह उन्होंने कोई अपना निज का धर्म या संप्रदाय नहीं बनाया, उसी प्रकार उन्होंने चिर-प्रचलित काव्य-प्रथा में भी परिवर्तन नहीं किया। फिर यदि आज अँगरेज़ी कविता से उनकी कविता की तुलना की जाती है, तो हम यही कह सकते हैं कि पूर्व की तुलना पश्चिम से करना भूल है। फिर भी यदि यही हठ हो कि नहीं, तुलसीदासजी की कविता में कोई-न-कोई दोष मानना ही पड़ेगा, तो हम यही उत्तर देंगे कि "एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।"

यदि सच पूछिए, तो तुलसीदासजी को भाषा-कवियों का सरदार, सबका सिरताज मानना चाहिए। और, यही कारण है कि आज उनकी कविता जितनी प्रचलित है, उतनी अन्य किसी की नहीं। कोई तो उसमें अलौकिक गुण है, जिससे उनकी कविता का आदर राजा से रंक तक सभी करते हैं, जिससे इतनी भाषाओं में उसका अनुवाद हो गया है। उनकी कविता पर जितना ही अधिक विचार किया जाता है, उतना ही अधिक रस उससे निकलता है। हमें आशा है, जिन लोगों को अभी तक पर्याप्त मात्रा में उसका रस नहीं मिला, वे भी परिश्रम करके उसे पाने की चेष्टा करेंगे, और हम विश्वास दिलाते हैं, उन्हें अवश्य आह्लादकारी काव्य-रस मिलेगा।

चंद्रमौलि सुकुल

प्रो० खानखोजे



अनेक शताब्दियों से परतंत्रता की ज़ंजीर से जकड़े हुए हमारे भारत का दुर्भाग्य बड़ा प्रबल है, इसमें संदेह नहीं। उधर अच्छे बुद्धिमान्, होशियार तथा कर्मवीर नर-रत्न हिंदोस्तान के बाहर अपना जीवन बिता रहे हैं, इधर ख़ास भारत में ऐसे कई अनमोल रत्न, परिस्थिति के कारण, जगह-जगह पर दो कौड़ी के हो रहे हैं। सुरेशचंद्र विश्वास-सरीखे नर-रत्न अपने पराक्रम से परदेशों में प्रतिष्ठा पाते हैं; पर यहाँ कर्मवीर और विलक्षण बुद्धि के नवयुवकों को एक-आध ऑफ़िस में आजन्म क़लम घिसते हुए ही समय बिताना पड़ता है। यह भयानक और विचित्र दृश्य देखकर हृदय काँप उठता है, बुद्धि कुंठित होती है, जी घबरा जाता है, और आख़िर को 'कालाय तस्मै नमः' ही कहना पड़ता है ! भारत का यह अभाग्य और कितने समय तक रहेगा, यह ईश्वर ही जानें !

आज इस लेख में एक ऐसे ही नर-रत्न के संबंध में कुछ लिखा जाता है। परिस्थिति के चक्र में फँस जाने से प्रो० खानखोजे-सरीखे अत्यंत पराक्रमी तथा कार्यक्षम भारतीय सज्जन को मातृभूमि में प्रवेश करने की मनाही की जाती है ! उनको अपना सब जीवन परदेशों में बिताना पड़ रहा है ! यह देखकर किस सहृदय भारतीय का अंतःकरण दुःखित न होगा ? आशा है, पाठकों को इस लेख से प्रो० खानखोजे के संबंध में कुछ ज्ञान अवश्य हो जायगा।

वंश-वर्णन और बचपन की शिक्षा

प्रो० पांडुरंग सदाशिव खानखोजे देशस्थ ऋग्वेदी शाखा के महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। आपका जन्म वर्धा में, तारीख़ २७ दिसंबर, १८८४ ई० को हुआ था। वर्धा मध्यप्रदेश में एक ज़िला और बड़ा रेलवे-जंक्शन है। वहाँ की जन-संख्या १६ हज़ार है। प्रो० खानखोजे के पिता श्रीयुत सदाशिव वेंकटेश उर्फ़ आन्याजी खानखोजे वर्धा में ही अर्ज़ीनवीस (Petetion writer) का काम करते हैं। आन्याजी के तीन पुत्र हैं। प्रो० खानखोजे ज्येष्ठ पुत्र हैं, और स्वर्गीय शंकरराव तथा श्री० रामभाऊ क्रम से उनके दूसरे और तीसरे पुत्र। सन् १९१८ के नवंबर में, माता की मृत्यु के बाद, क़रीब छः महीने गुज़रने पर—सन् १९१९ के मई महीने में—श्रीशंकरराव का, भरी जवानी में, क्षयी रोग से देहांत हो गया। श्रीरामभाऊ आजकल फ़ाइनल एल्-एल्० बी० का अभ्यास कर रहे हैं। आन्याजी के सुंदर ताई नाम की एक ही कन्या है। उनके दामाद श्रीनारायणराव काले नागपुर में सेकिंड क्लास मैजिस्ट्रेट के कोर्ट में रीडर हैं।

प्रो० खानखोजे का बचपन का दूसरा नाम 'भाऊ' है। सब लोग आपको इसी नाम से संबोधित करते थे। आपकी प्राथमिक शिक्षा वर्धा के अपर प्राइमरी स्कूल में हुई। आप मराठी का चौथा क्लास १८९६ में—यानी अपनी अवस्था के १२वें वर्ष में—पास हुए थे। आगे आपकी अँगरेज़ी के चार क्लासों की शिक्षा वहाँ के फ़र्स्ट ग्रेड मिडिल-स्कूल में हुई। आप १९०२ में मिडिल-स्कूल की



प्रो० खानखोजे

परीक्षा पास हुए। बाद को, वर्धा में उस समय हाईस्कूल न होने के कारण, हाईस्कूल की शिक्षा प्राप्त करने के लिये आपको नागपुर जाना पड़ा। उस समय आप अपने चचा श्रीगोविंदराव खानखोजे के यहाँ रहते थे। नागपुर के सुप्रसिद्ध नील सिटी हाईस्कूल में आपने मैट्रिक तक की शिक्षा पाई। आप जब मैट्रिक में पढ़ते थे, उस समय श्रीभोजराज उक्त स्कूल के, एक साल तक, हेडमास्टर थे। उस समय टेस्ट-परीक्षाओं में इतिहास तथा भूगोल विषयों में आपको कुछ कारणवश कम नंबर मिले, जिससे उक्त हेडमास्टर ने आपको (इलाहाबाद युनिवर्सिटी की) मैट्रिक की परीक्षा में नहीं भेजा। इस कारण आपने प्रतिज्ञा करते हुए हेडमास्टर से कह दिया -- आगे सिटी-स्कूल में ही क्या, इस दूषित शिक्षापद्धतिवाले भारत में ही मैं शिक्षा प्राप्त नहीं करूँगा।

विद्यार्थी अवस्था से ही प्रो० खानखोजे देशोन्नति के कार्य में बड़े उत्साह से भाग लेते थे। उस समय फैले हुए स्वदेशी-आंदोलन में तो आपने स्वयं भाग लेकर उस आंदोलन को बहुत साहाय्य दिया था। कुछ दिनों तक आपने यवतमाल की राष्ट्रीय शाला में अध्यापक का काम किया। वहाँ के सुप्रसिद्ध हनुमान अखाड़े की स्थापना करनेवालों में आप एक प्रमुख व्यक्ति थे। वर्धा का प्रसिद्ध 'हनुमान-गढ़' तो आपने ही स्थापित किया था, यह कहना भी कुछ अत्युक्ति न होगा।

अमेरिका की तैयारी

परदेश में जाकर शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा प्रो० खानखोजे के मन में पहले से ही थी। पर बाद को तो आपका यह विचार बहुत प्रबल होने लगा। वर्धा में पढ़ते समय आन्याजी ने आपके विवाह का सिलसिला लगाया था। पर इसके कुछ दिन पहले ही आपने उनसे कह दिया था—"मुझे परदेश में शिक्षा प्राप्त करने के लिये जाना है। इसलिये मैं विवाह नहीं करूँगा।" पर आपके इस कहने का ख़याल न कर पिता ने सेलू (ज़िला वर्धा) के श्रीयुत वेदरकार की कन्या से विवाह ठहरा दिया। सगाई भी हो गई। परंतु प्रो० खानखोजे को विवाह करने की रुचि तो बिलकुल ही न थी, इसलिये एक दिन किसी मित्र को कोई पुस्तक देने जाने का बहाना करके आप घर से भाग गए। पास एक पैसा भी न था। शरीर पर के कपड़े के सिवा दूसरा वस्त्र भी नहीं। इस अवस्था में आपने वर्धा शहर छोड़ा। दिन-भर चलकर (कुछ समय तो रात-दिन में १००-१०० मील चलकर) आप कुछ दिनों के बाद माहूर (दक्खिन हैदराबाद का तीर्थयात्रा का एक प्रसिद्ध स्थान) पहुँचे। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद आप हैदराबाद को गए। संध्या का समय हो जाने के कारण, तथा धूप में चलने के परिश्रम से, आप वहाँ के एक हनुमानजी के मंदिर में बैठ गए। ईश्वर की कृपा से कुछ समय के बाद मंदिर के दीपक में तेल डालने के लिये वहाँ एक ब्राह्मणी आई। आपकी यह अवस्था देख उस दयालु स्त्री ने आपसे अपने घर चलने का आग्रह किया। आप उस स्त्री के घर गए। इस प्रकार विवाह के सब मुहूर्त बीत जाने के बाद आप जुलाई के लगभग वर्धा वापस आए।

फिर नागपुर में रहते समय आपके चचा ने आन्याजी को इस आशय का पत्र लिखा कि नागपुर के श्रीदेशकर की कन्या सुस्वरूप है, और उससे भाऊ [illegible] कर देना चाहिए। आन्याजी ने वर्धा से नागपुर [illegible] वह कन्या देखी। वह कन्या आपको पसंद आ गई, अतएव सगाई की तैयारी करने के लिये कहकर वह वर्धा को वापस गए। एक दिन भाऊ स्वयं श्रीदेशकर के घर गए। अपनी इच्छा के बारे में उनसे कहकर विवाह करने से इ[illegible]र कर दिया। तब श्रीगोविंदराव ने तार देकर आन्याजी को नागपुर बुलवाया। वह शीघ्र ही नागपुर आए। सब हाल मालूम होने पर वह भाऊ पर बहुत ही नाराज़ हुए। पर भाऊ ने अंत तक अपना इरादा नहीं छोड़ा। इसलिये अंत में चिढ़कर आन्याजी ने भाऊ से कहा—"अब मुझे तू अपना मुँह न दिखाना। घर से निकल जा।" बस, भाऊ के मन पर पिताजी के इन कठोर शब्दों का बड़ा प्रभाव पड़ा। आपने अमेरिका जाने की तैयारी शुरू कर दी। लाहौर आदि स्थानों में जाकर वहाँ के आर्य-समाज के कुछ प्रमुख सज्जनों तथा विवेकानंद-मिशन के लोगों के सार्टीफ़िकेट और परिचय-पत्र आप ले आए। पर आपके इस विचार से आपकी माता पर तो दुःख का भयंकर पहाड़ ही फट पड़ा। उन्होंने अंत तक आपको हर तरह से समझाने की चेष्टा की। पर उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। अंत में सबसे मिल-जुलकर आप पहले तिलकजी के पास पूने गए। उसके बाद बंबई गए। जाने के पहले आपके कुछ निकटवर्ती मित्रों ने आपको थोड़ी आर्थिक सहायता भी की थी।

अमेरिका में आपकी शिक्षा

बंबई से सन् १९०६ में आपनें अमेरिका के लिये यात्रा की। पर इसके पहले आपने चीन—विशेषकर जापान—में क़रीब एक साल रहकर वहाँ की औद्योगिक तथा कृषि-विषयक परिस्थिति का निरीक्षण और अभ्यास किया। इसके बाद—यानी सन् १९०७ में—आप युनाइटेड स्टेट्स में गए। पहले आपने कॉरवैलीस के ऑरेगॉन एग्रिकलचरल कॉलेज (कैलिफ़ोर्निया-युनिवर्सिटी) में कृषि की शिक्षा प्राप्त की। फिर १९११ में B. S. (यानी बी० एस्-सी०) की उपाधि प्राप्त कर ली और इस परीक्षा (Bachelor of Science in Agriculture) में उत्तीर्ण हुए। २२ अमेरिकन विद्यार्थियों में प्रो० खानखोजे का चौथा नंबर रहा! उस समय आपके २५-३० अमेरिकन मित्रों ने आपको सुशोभित गुलाब के पुष्पगुच्छ भेंट कर तथा दावत वग़ैरह देकर आपका सम्मान किया। पीछे रूखी ज़मीन में फ़सल पैदा करने की रीतियाँ पढ़ने के लिये आपने ऑरेगॉन तथा उसके पास के राज्य के अर्द्ध-शुष्क (Semi-arid) प्रदेशों में बहुत प्रवास किया। फिर आप वाशिंगटन के वालावाला कॉलेज में कुछ दिन तक अध्ययन करते रहे। पर उसे बीच ही में छोड़कर आपने पुलमन के वॉशिंगटन स्टेट कॉलेज (वाशिंगटन-युनिवर्सिटी) में प्रवेश किया। सन् १९१३ में आप M. S. (यानी एम्० एस्-सी०) की उपाधि-परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। तदनंतर वहाँ की कृषि की प्रयोग-शाला (State Agricultural Experiment Station) में, सुप्रसिद्ध प्रोफ़ेसर सी० सी० टॉम की मातहती में, काम कर आपने भिन्न-भिन्न प्रकार की ज़मीनों तथा फ़सलों के बारे में विशेष ज्ञान (Special work in soils and production) प्राप्तकर लिया। पुलमन के दो साल के शिक्षाक्रम में आपने अभ्यास तथा प्रत्यक्ष शिक्षा (Practical work), दोनों में अपनी कुशलता सबको दिखा दी थी। उसी समय आप Fruit Expert (फलों के विशेषज्ञ) प्रसिद्ध हुए थे। इसी स्थान में आपने कुछ दिनों तक असिस्टेंट प्रोफ़ेसर का काम किया। अनंतर आप मिनेसोटा (Minnesota)-युनिवर्सिटी के कृषि-विभाग में लेक्चरार हुए। यह पद मिल जाने से आपको सेंट पॉल नाम के स्थान में जाना पड़ा।

कॉलेज की शिक्षा के अलावा आपने फलों के डिब्बे भरने के धंधे का और दियासलाई, मोमबत्तियाँ, साबुन, टीन की छपाई (Tin printing), संदूक़ें तैयार करना (Box making) आदि व्यापारों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। साथ-ही-साथ आपने सैनिक शिक्षा (Military Training) भी प्राप्त कर ली है, यह सान राफ़ेल (कैलिफ़ोर्निया) के मौंट टॅमाल्पाइ मिलिटरी एकाडमी (Mount Tamalpais Military Academy) के विद्यार्थियों का सूचीपत्र देखने से विदित होता है। सन् १९१३ के उत्तरार्द्ध में आपने वर्जीनिया राज्य (Virginia States) के सुप्रसिद्ध हैंपटन नगर में बहुत दिनों रहकर नीग्रो तथा रेड इंडियन्स की उन्नति के उद्देश और मार्ग का खोज के साथ अध्ययन किया। इसके सिवा युनाइटेड स्टेट्स में ख़ूब प्रवास करके और भिन्न-भिन्न संस्थाएँ देखकर आपने अपने ज्ञान तथा अनुभव की बहुत वृद्धि कर ली है।



मैक्सिको में प्रो० खानखोजे का निवास-स्थान

अमेरिका में आपकी शिक्षा केवल अपने पराक्रम और उद्योग से हुई, यह यहाँ बताने की कोई आवश्यकता नहीं। स्वयं अपने श्रम से जीविका चलानेवाले (Self-supporting) विद्यार्थियों को कितनी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं, इसका ज्ञान पाठकों को प्रायः होगा ही। पर प्रो० खानखोजे ने पहले से ही जिन संकटों में से अपना मार्ग निकाला है, उन्हें वे सुनें, तो खेद और आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता। परतंत्रता की शृंखला में बँधे हुए भारत से निकलकर परदेश में अपने बल पर शिक्षा प्राप्त किए हुए विद्यार्थियों के सिवा अन्य लोगों के लिये उसकी सच्ची कल्पना कर सकना भी असंभव है। प्रो० खानखोजे ने जिस संकट-परंपरा का सामना किया है, वह निश्चय ही बहुत बड़ी और विचित्र है।

अमेरिका में आपके कार्य

सन् १९१३ में आपने भारत में औद्योगिक शिक्षा का प्रचार करने की एक आयोजना की थी, और उसके लिये आप दिन-रात प्रयत्न करते रहते थे। भारत की परिस्थिति के संबंध में भिन्न-भिन्न विषयों पर व्याख्यान देने और यहाँ औद्योगिक शिक्षा की उन्नति करने के लिये आप युनाइटेड स्टेट्स के भिन्न-भिन्न भागों में घूमे। कहना न होगा, भारत में औद्योगिक शालाएँ स्थापित करने के संबंध में वहाँ अध्ययन करनेवाले तथा शिक्षा प्राप्त कर भारत में वापस आने को निकले हुए भारतीय विद्यार्थियों से भी आपको मदद मिलती थी। उसमें विशेषकर श्रीबिशनदास के नाम का उल्लेख यहाँ मुख्य रूप से किया जाना चाहिए। यह सज्जन सन् १९१२ में, वाशिंगटन स्टेट कॉलेज में, मेकानिकल और इलेक्ट्रिक इंजीनियरिंग की शिक्षा पाकर ग्रेजुएट हुए थे। इसके सिवा प्रो० खानखोजे ने भिन्न-भिन्न प्रमुख अमेरिकन सज्जनों और प्रोफ़ेसरों तथा विशेषज्ञों से मिलकर उनकी क्रियात्मक सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। इतना ही नहीं, इस विषय में आपकी सहायता करने के लिये वहाँ America Association for the promotion of Industrial education in India नाम की एक संस्था भी स्थापित की गई थी। भारत में औद्योगिक शालाओं की स्थापना करने के लिये उत्तेजना देकर उस आंदोलन को पूरा सहारा देना, युनाइटेड स्टेट्स की कृषि तथा यांत्रिक कला की शालाओं की सूचना देकर उनके संबंध में सलाह-मशविरा देना, और भारत में होनेवाले इस कार्य की वृद्धि का ज्ञान फैलाना, ये ही इस एसोसिएशन के उद्देश्य थे। वाशिंगटन स्टेट कॉलेज के प्रेसीडेंट मि० ब्रायन इस संस्था के सभापति थे। मि० ब्रायन, मि० हैरीसन (उपसभापति) और मि० कार्डिफ (सेक्रेटरी) के सम्मिलित हस्ताक्षरों सहित 'हिंदुस्तान में औद्योगिक शिक्षा' नाम की जो छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित की गई थी, उसमें उन्होंने प्रो० खानखोजे के बारे में निम्न-लिखित उद्गार निकाले हैं—

"He is a man of marked integrity, and we give him our hearty endorsement, for we believe him to be a man well qualified to prosecute successfully the work he has initiated. Being so thoroughly satisfied in the man and his project, we, together with others, have organised here in Pullman, an association to assist Mr. Khankhoje, and others working along similar lines in India, in this very important work."

अर्थात् वह एक असाधारण व्यक्तित्व के मनुष्य हैं और हम उनके काम की दिल से दाद देते हैं। हमारा विश्वास है, उन्होंने जिस कार्य का श्रीगणेश किया है, उसे सफलतापूर्वक चलाने के वह सर्वथा योग्य हैं। उनसे और उनके कार्य से पूर्णतः संतुष्ट होकर ही हम तथा अन्य लोगों ने 'पुलमैन' में एक संस्था स्थापित की है, जिससे मि० खानखोजे को और भारत में इसी ढंग का काम करनेवाले अन्य लोगों को, इस महत्त्वपूर्ण कार्य के अनुष्ठान में सहायता मिले।

इँगलैंड और योरप के कुछ प्रधान देशों की कृषि-विषयक परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद आप भारत में आनेवाले थे। यहाँ आने पर प्राप्त किए हुए कृषि-विषयक ज्ञान तथा अनुभव के द्वारा मातृभूमि की सेवा करने की आपकी इच्छा थी। उसमें भी औद्योगिक शिक्षा के प्रसार की आपको बहुत चाह थी। यहाँ के कुछ धनी मित्रों की सहायता से आप औद्योगिक शालाएँ स्थापित करनेवाले थे। अपने इस कार्य में सुविधा होने के लिये ही आपकी इस योजना को अमेरिका तथा इँगलैंड के प्रख्यात शिक्षकों और अन्य प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्ता सज्जनों का सहारा

आपको चाहिए था। तदनुसार आपने ज़ोर-शोर से कोशिश की, और बड़े-बड़े सज्जनों की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली। पर आपकी चेती बात न हो सकी। सच है, "मेरे मन कछु और है, बिधना के कछु और।"

अमेरिका में आपका दूसरा महत्त्व का कार्य 'हिंदोस्तान एसोसिएशन ऑफ़ अमेरिका' नाम की सुप्रसिद्ध संस्था है। इस संस्था की स्थापना करनेवालों में आप भी एक थे। इसकी सर्वांगीन उन्नति में आपने बहुत अधिक भाग लिया था। आज यह संस्था जो उपयुक्त कार्य करती हुई दिखाई देती है, उसका सब नहीं, तो बहुत-सा श्रेय तो आपको ही मिलना चाहिए।

प्रो० खानखोजे ने अभी तक भिन्न-भिन्न विषयों पर अनेक सुंदर लेख और छोटी-बड़ी पुस्तकें भी लिखी हैं। चित्रमय जगत्, मनोरंजन, लोक-शिक्षण, शालापत्रक आदि मराठी मासिक पत्रिकाओं तथा मराठी के सुप्रसिद्ध समाचारपत्र 'केसरी' में और सरस्वती, मॉर्डन रिव्यू आदि अन्य हिंदी व अँगरेज़ी की प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं में आपके अनेक सारगर्भ लेख प्रकाशित हुए हैं। उनमें से कुछ तो सुधा के पाठकों ने पढ़े ही होंगे। 'हिंदी-साहित्य-संग्रह,' 'भाषा-सार-संग्रह' आदि हिंदी की पुस्तकों में आपके लेख उद्धृत हुए हैं। पूना के चित्रशाला-प्रेस से प्रकाशित आपकी 'लिंबें वग़ैरे फलें टिकाऊ कशी करावी ?' (नींबू आदि फलों को टिकाऊ कैसे बनाना ?) यह छोटी-सी आपकी पुस्तक तो मराठी के पाठकों ने देखी ही होगी। यह पुस्तक आपने पुलमन से बी० एस्-सी० की उपाधि प्राप्त कर लेने के बाद लिखी है। इसमें फल-रक्षा के उपाय की संक्षिप्त, परंतु सुसंबद्ध विवेचना की गई है। आपने अमेरिका में कृषि-विषय पर "Factors influencing water requirements of plants" नाम की एक उपयोगी पुस्तक छपवाकर प्रकाशित की है।

अमेरिका में किए गए आपके विविध कार्यों का पूरा विवरण देना इस छोटे-से लेख में बिलकुल ही असंभव है। भारत को आगे बढ़ाने तथा अमेरिका-प्रवासी भारतीय विद्यार्थियों की उन्नति के लिये आपने बहुत कष्ट उठाए हैं। अनेक संस्थाओं में मुख्य भाग लेकर आपने अपने शरीर को चंदन की तरह घिस डाला है, और आज भी यही कर रहे हैं।

योरप में आपकी स्थिति

सितंबर, सन् १९१४ में आप योरप की राह से मातृभूमि में वापस आने को निकले। इस मार्ग से आने में आपको न्यूयार्क होकर जाना पड़ता था। इसलिये आपको अमेरिका में बहुत दिनों तक प्रवास करना पड़ा। इस प्रकार आप भिन्न-भिन्न स्थान और शहर देखते हुए न्यूयार्क पहुँचे। आपका यह रेलवे-प्रवास कुल ६,००० मील का हुआ। आपने न्यूयार्क से ७ सितंबर को जो पत्र भेजा था, उसमें स्वयं ही यह बात लिखी है। इसी पत्र में "कल (ता० ८ सितंबर, १९१४ को) यहाँ से चलूँगा" यह आपने अपने पिताजी को लिखा था। अमेरिका छोड़ने के पहले आपने अपना हज़ारों रुपयों का सामान बीमा करके बंबई को भेजा था। बंबई से वर्धा तक वह यहाँ के लोगों को लाना पड़ा था। इस सामान में पुस्तकों से भरे हुए संदूक़ ही बहुत थे! ये सब छोटी-बड़ी हज़ारों पुस्तकें तथा मासिक पत्रिकाएँ कृषि और विज्ञान विषयों की ही हैं। इनमें अधिकांश अँगरेज़ी भाषा में हैं। १६ जुलाई, १९१४ के रोज़ सान-फ्रांसिस्को से टोयो किसेन कैशा कंपनी के 'टेनिओ मारू'-नामक जहाज़ से, उस समय क़रीब तीन हज़ार रुपए मूल्य की (सिनेमेटोग्राफ़ की) एक मशीन तथा अन्य सामान आपने भेजा था। पर आज वह सब उनके बिना वैसा ही पड़ा नष्ट हो रहा है! इस सामान की कुछ पुस्तकें उस समय पुलीस ले भी गई थी। पर उसने उन्हें अभी तक वापस नहीं किया।

ख़ैर, इस तरह आप योरप में आ पहुँचे। लेकिन बीच में छिड़े हुए योरप के महायुद्ध के कारण उस समय इँगलैंड और फ़्रांस में जाने की कौन कहे, भारत में आने का आपका इरादा भी मिट्टी में मिल गया! २९ सितंबर, १९१४ को इटली के पालेर्मो शहर में जब आप थे, तब आपने अपने पिताजी को एक पत्र भेजा था। उसमें आप लिखते हैं—"मैं इटली के पालेर्मो शहर में आकर दाख़िल हुआ। हिंदोस्तान के रास्ते पर यह शहर है। यहाँ से ग्रीस होकर भारत आने का इरादा है। शीघ्र ही आऊँगा।" परंतु विधाता की इच्छा कुछ और ही थी। मानवी शक्ति का वहाँ क्या ज़ोर था? महायुद्ध की बदौलत आप उस समय जिस देश में थे, उससे निकलना आपके लिये असंभव हो गया था। पालेर्मो से यहाँ भेजे हुए पत्र के बाद सन् १९२१ तक आपका कोई पत्र फिर यहाँ नहीं आया।

इन सात वर्षों तक आप कहाँ रहे और क्या करते रहे, इसका यहाँ किसी को भी कुछ पता न था, और अब तक पूरी तौर से किसी को भी नहीं मालूम।

सन् १९१९ में यहाँ से पत्र द्वारा आपके बारे में पूछ-पाँछ की गई थी। पर उसका कुछ फल नहीं हुआ। सेंट पॉल (मिनेसोटा-युनिवर्सिटी, अमेरिका) के डिविज़न ऑफ़् एग्रिकल्चरल केमिस्ट्री के प्रधान मि० थेचर के पत्र से इतना ही विदित हुआ कि वक्त-ज़रूरत के लिये प्रो० खानखोजे ने उनके पास कुछ रुपए जमा कर रक्खे थे, और फिर पत्र द्वारा सूचना दी थी कि अगर एक साल में मेरी ओर से कुछ सूचना न मिले, तो वह रक़म आप वर्धा में मेरे पिताजी को भेज दें। आजकल न्यूयार्क की सुप्रसिद्ध हिंदोस्तान एसोसिएशन की ओर से प्रकाशित होनेवाली 'दि हिंदोस्तानी स्टुडेंट' नाम की मासिक पत्रिका की हाल की एक संख्या में प्रो० खानखोजे का कुछ थोड़ा पता लगा है। उससे विदित होता है कि इस अर्से में आपने योरप के देशों की बहुत यात्रा की थी। बीच में पर्शिया के गाशगई-राज्य (Ghashghai states) के अमीर ने आपको शिक्षा तथा व्यापारी इलाक़े का मंत्री मुक़र्रर किया था। इस पद पर आपने कई साल तक काम किया। आपके इस कार्य के संबंध में वहाँ के अमीर साहब ने आपकी ख़ूब तारीफ़ की। वह कहते हैं—

"He has rendered very useful service to my state and the most of the state officers and subjects praise his valuable work in this country."

अर्थात्, उन्होंने हमारे राज्य की उपयोगी सेवा की है, और अनेक उच्च राजकर्मचारी तथा प्रजा उनके अमूल्य कार्य की प्रशंसा करती है।

इसके बाद आपने नवंबर, सन् १९२१ में उक्त राज्य की नौकरी छोड़ दी। आप फिर बर्लिन चले गए।

बर्लिन में आपने 'इंडिया न्यूज़ सर्विस' और 'इन्फ़रमेशन ब्युरो' की स्थापना की। इसका संगठन साधारणतः 'हिंदोस्तान एसोसिएशन ऑफ़ अमेरिका' नाम की संस्था के आदर्श पर ही आपने किया। आप उसके एक डाइरेक्टर भी बने। इस इन्फ़रमेशन ब्युरो ने 'जर्मनी में शिक्षा' (Education in Germany) नाम का एक सूचना-पत्र प्रकाशित किया है। जर्मनी में शिक्षा प्राप्त करने के लिये जानेवाले विद्यार्थियों के लिये वह बहुत उपयोगी है। जर्मनी और भारत, इन दोनों देशों में व्यापारिक संबंध की वृद्धि करने के कार्य में इस संस्था के किए हुए प्रयत्न प्रशंसनीय हैं। इस प्रकार आपके ७ वर्ष के अज्ञातवास का यह अधूरा विवरण है।

मैक्सिको की यात्रा

आप सन् १९१४ में जर्मनी से मैक्सिको के प्रजातंत्र राष्ट्र (Republica Mexicana) में गए। गत कुछ वर्षों में—और विशेषकर सन् १९२३, १९२४ में—जर्मनी की दशा अत्यंत करुणा-जनक हो गई थी, यह किसी से छिपा नहीं। उस समय आपको आर्थिक कष्ट तथा मानसिक क्लेश बहुत उठाना पड़ा। इसी से आपने जर्मनी छोड़कर मैक्सिको की यात्रा की। अमेरिका छोड़ने के १० वर्ष बाद फिर आपको उसी महाद्वीप में जाना पड़ा। इस प्रकार आपको अभी तक क़रीब-क़रीब समग्र संसार की दो बार यात्रा करनी पड़ चुकी है। परंतु मैक्सिको में भी आपको कुछ कम कठिनाइयाँ नहीं उठानी पड़ीं। वहाँ की पहली और बड़ी अड़चन भाषा की थी। मैक्सिको में स्पेनिश भाषा बोली जाती है। इसलिये पहले तो आपको यही अड़चन दूर करनी पड़ी। पर उससे आपको एक लाभ ही हुआ। आपको आठ-दस भाषाएँ अच्छी तरह आती थीं; अब उनमें और एक भाषा की वृद्धि हो गई।

दूसरी बड़ी अड़चन नौकरी की थी। पर ईश्वर की कृपा से वह भी कुछ दिनों के बाद दूर हो गई। आप आजकल उस देश की राजधानी मैक्सिको शहर (Mexico D. F.) के राष्ट्रीय कृषि-महाविद्यालय (National Agricultural College) में प्रोफ़ेसर हैं। जूनियर तथा सीनियर एग्रिकल्चरल इंजीनियर की उपाधि प्राप्त करने के इच्छुक विद्यार्थियों को 'ज़मीन तथा फ़सल' विषय की आप शिक्षा देते हैं। वहाँ की फ़ैकल्टीसें आपकी प्रशंसा की गई है कि आप एक बहुत ही योग्य सज्जन हैं। मालूम हुआ है, मैक्सिको के कृषि-मंत्री (Ministry of Agriculture) की ओर से फ़सल के बारे में आपकी एक पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है। इसके अतिरिक्त मैक्सिकन सरकार के लिये दो और खोज-पूर्ण पुस्तकें

आप लिख रहे हैं। मैक्सिको के सरकारी चुनाव में जब मंत्रिदल बदलता है, तब सभी को बदल देने की प्रथा उस देश में है। इसी लिये उस कॉलेज की प्रोफ़ेसरी की आपकी नौकरी छूट गई थी, और आपको कुछ मास तक बेकार रहना पड़ा। मैक्सिको-सरीखे देश में काम न मिला, तो बहुत ही कठिनाई होती है। आपको भी बहुत आर्थिक कष्ट का सामना करना पड़ा। पर ईश्वर की कृपा से आपको फिर उसी कॉलेज में पूर्ववत् प्रोफ़ेसरी का काम मिल गया, और इस प्रकार नौकरी की चिंता मिट गई।



प्रो० खानखोजे के पिता

अमेरिका में रहते समय अपने पिता की स्वल्प सेवा के तौर पर आप बीच-बीच में थोड़ा-बहुत धन उनको भेजते रहते थे। पर योरप में जब आप अज्ञातवास में थे, तब आपको आप ही ख़र्च की कमी हो गई थी। उस समय आप एक पैसा भी नहीं भेज सके। अब मैक्सिको में जाने के बाद, प्रोफ़ेसरी मिल जाने पर, आपने अपने पिता को प्रतिमास ६०) रु० भेजना शुरू कर दिया है।

परदेश में इतने वर्षों तक रहते हुए भी प्रो० खानखोजे ने अभी तक मदिरा और मांस नहीं छुआ। आप अभी तक अविवाहित भी हैं! आपकी अवस्था इस समय ४३ वर्ष की है। मातृभूमि को वापस आने तथा पिताजी से मिलने की आपकी प्रबल इच्छा है। भारत-सरकार को चाहिए कि आप सरीखे चतुर विद्वान् और शास्त्र-पारंगत कर्मवीर सज्जन को उत्साहित करके ऐसा अवसर दे कि आप स्वदेश में जनता की सेवा अच्छी तरह कर सकें। प्रो० खानखोजे के संबंध में 'हिंदोस्तानी स्टुडेंट' के संपादक ने लिखा था—"We will be eagerly looking for the day when he will be given equally responsible post in his own line in India where his services are so much needed."

अर्थात्, हम उस दिन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करेंगे, जब उनके ढंग का कोई ऐसा ही उत्तरदायित्वपूर्ण पद उन्हें भारत में दिया जायगा, जहाँ उनके-जैसा काम करने की इतनी ज़्यादा ज़रूरत है।

उनके ये उद्गार जिस दिन सार्थक होंगे, वह दिन कब आवेगा?

प्रोफ़ेसर साहब के पत्र

हिंदोस्तान छोड़ने के समय से अभी तक प्रो० खानखोजे के बहुत-से पत्र आए हैं। उनमें अपने पिता को भेजे हुए पत्रों की ही संख्या अधिक है। सन् १९१४ से १९२१ तक आपका एक भी पत्र नहीं आया था, यह ऊपर कहा ही जा चुका है। उसके बाद—ख़ास कर मैक्सिको में जाने के समय से—आपके पत्र नियमित रूप से आने लगे हैं। परंतु यह भी बता देना आवश्यक है कि आपके भेजे हुए सभी पत्र भारत में शायद नहीं आने पाते। कारण, सेंसर की चलनी से छनकर जितने पत्र निकलेंगे, उतने ही यहाँ आवेंगे। शेष सब दबा लिए जायँगे।

प्रो० खानखोजे के सभी पत्र पढ़ने योग्य हैं। विशेषकर उनमें के कुछ पत्र इतने सुंदर, स्वाभिमान-दर्शक और हृदयद्रावक हैं कि उन्हें पढ़ने से हरएक भारतीय का हृदय उमड़ आए बिना न रहेगा। पिताजी को भेजे हुए सब पत्रों में आप अपनी कुशल-क्षेम लिखकर उनको बार-बार आशीर्वादरूपी पत्र भेजने और अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखने के लिये लिखते हैं। पिताजी के संबंध में

आपके हृदय में असीम भक्ति है। आपने पिताजी को पत्र में लिखा था—"दिन-दिन मेरे बारे में फ़िक्र कर अपने स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हो, यह देखकर मुझे बहुत दुःख होता है।" विशेषकर अपनी स्वर्गीय माताजी के बारे में आप पहले हरएक पत्र में पूछ-पाँछ करते थे। परदेश में जाने के कारण माता-पिता की वृद्धावस्था में उनकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होना आपके लिये असंभव था। इसलिये वह सेवा पूरी तौर से करने के लिये आप अपने दोनों भाइयों—स्वर्गीय शंकरराव और श्रीराम-भाऊ—को हर पत्र में बड़े आग्रह के साथ लिखते थे। पुत्र के बिछोह के दुःख से माई साहब का (आपकी माता-जी का नाम भागीरथी बाई था; किंतु उनको सब लोग माई साहब कहते थे) देहांत सन् १९१८ में होने की बात पहले ही कही जा चुकी है। पर प्रो० खानखोजे को दुःख न हो, इसलिये यहाँवालों ने यह समाचार आपको कई साल तक नहीं भेजा था। आख़िर जब १९२५ में यह बतलाया गया, तब आपको बहुत ही दुःख हुआ।

आप समय-समय पर मैक्सिको से वहाँ के स्थानों और दृश्यों के चित्रों-सहित कार्डों पर पत्र लिखा करते हैं। भारत की पत्र-पत्रिकाएँ भेजने से उन्हें देखकर आपको बड़ी प्रसन्नता होती है।

स्वभाव

प्रो० खानखोजे का स्वभाव सरल, सुशील तथा तेजस्वी है। आप बड़े ही दृढ़ निश्चय व्यक्ति हैं। बचपन से आपके स्वभाव में एक प्रकार की आत्मविश्वासपूर्ण स्वतंत्र वृत्ति दिखाई देती थी। यही वृत्ति आगे चलकर आपके साहसी स्वभाव में बदल गई, यह कहने में हर्ज़ नहीं। पुलमन के स्टेट कॉलेज ऑफ़ वाशिंगटन के रजिस्ट्रार मि० फ़्रैंक टी० बर्नार्ड ने बर्धा को भेजे हुए पत्र में, आपके विषय में, इस प्रकार लिखा है—

"But the understanding here is that Mr. Khankhoje is an adventurer and takes delight in going to places to learn something new."

अर्थात्, लेकिन ख़याल यह है कि मि० खानखोजे एक कौतूहल-प्रिय साहसी पुरुष हैं और नई बात सीखने के लिये बाहर जाने में उन्हें लुत्फ़ आता है।

आपके स्वभाव की मुख्य बात आपकी दृढ़ता है। पहले से ही आपके स्वभाव में इस दृढ़ता की झलक दिखाई देती थी। आपकी कर्तृत्व-शक्ति बहुत बड़ी है। आपको प्रायः अंगीकृत कार्य में सहस्रों कठिनाइयों और भयंकर संकटों का सामना करना पड़ा; परंतु अपने विलक्षण दृढ़ निश्चय के कारण आप बिलकुल हिचके नहीं। बड़े धैर्य से आए हुए संकटों का सामना करके आप अपने उद्योग में सफल हुए हैं। ऑरेगॉन युनिवर्सिटी के डीन तथा डाइरेक्टर मि० कॉर्डले ने आपके बारे में लिखा है—

"Mr. Khankhoje impressed me as a man of exceptional ability, a man who having a distinct purpose in view has the ability and the determination to press forward no matter what the obstacles."

अर्थात्, मि० खानखोजे ने अपनी असाधारण योग्यता से मुझे प्रभावान्वित कर दिया। वह एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनका उद्देश्य निश्चित है, किंतु उनमें ऐसी योग्यता है और ऐसा उनका निश्चय है कि आगे बढ़ने में वह किसी प्रकार के विघ्न या बाधा की पर्वा नहीं करते।

'कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्'—यही आपकी मनोवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के साथ ही स्वाभिमान और दृढ़ता होने से ही आज आपको विदेश में सम्मान तथा कीर्ति प्राप्त हुई है। अभी तक आपको कैसी-कैसी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी हैं, और उनको आपने किस तरह दूर किया है, इसकी पूरी हक़ीक़त आपके अतिरिक्त अन्य किसी को मालूम न होने के कारण, इस संबंध में आप स्वयं जब तक न लिखें, तब तक लोगों को उसकी कल्पना भी होना असंभव है। परदेशों में गए हुए अन्य विद्यार्थियों को अड़चनों का सामना अवश्य करना पड़ा है; पर वे प्रो० खानखोजे की अड़चनों के आगे नगण्य हैं।

वृद्ध पिता की अंतिम इच्छा

प्रो० खानखोजे को भारत छोड़े आज २७ साल हुए। परंतु भारत-सरकार की सख़्त मनाही के कारण आप इस देश में प्रवेश करने में असमर्थ हो रहे हैं। सरकार ने आप पर कौन-सा अभियोग लगाया है, यह हमें मालूम नहीं। परंतु यदि यह माना भी जाय कि आपने परदेश में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आंदोलन किया होगा, तो भी जब अन्य अनेक भयंकर क्रांतिकारी माने गए और आजन्म कालेपानी की सज़ा पाए हुए देश-भक्तों को सरकार ने भारत में आने

दिया है, तब प्रो० खानखोजे-सरीखे कर्मवीर और विद्वान् को मातृभूमि में पैर रखने से रोकना क्या निष्ठुरता की परा काष्ठा नहीं है? प्रो० खानखोजे अगर हिंदोस्तान में आए, तो वह आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हमारी सर्व-शक्तिमान् ब्रिटिश सरकार को अकेले उलट नहीं सकते, यह सरकार को भी अच्छी तरह मालूम है।

प्रो० खानखोजे के पिता अब बहुत वृद्ध हुए हैं। उनकी अवस्था इस समय लगभग ७० वर्ष की है। उनको अभी-तक पेट पालने के लिये अर्ज़ीनवीस का धंधा करना पड़ रहा है। पर इस वृद्धावस्था की अपेक्षा उन पर बीती हुई भयंकर कौटुंबिक आपत्तियों से ही उनका मन तथा शरीर अत्यंत जर्जर हो रहा है। इस प्रकार दुःखाग्नि में तप्त उस वृद्ध पिता के अंतःकरण में प्रो० खानखोजे के आने की असमर्थता से कितना असह्य दुःख होता होगा, यह पाठक ही सोचें! पुत्र के दर्शन की राह देखते-देखते आख़िर आपकी माता का देहांत हो ही गया। और, अब वह प्रसंग आपके वृद्ध पिता पर आने देना या न आने देना पूर्णतया सरकार के अधीन है। क्या हमारी दयालु सरकार वृद्ध पिता की इस अंतिम पुकार का दयार्द्र दृष्टि से ख़याल कर पुत्र के दर्शनार्थ तड़पती हुई आत्मा को शांति देने का पुण्य और श्रेय प्राप्त करने का सुअवसर यों ही हाथ से जाने देगी?

आनंदराव जोशी

परलोक

(४) प्रेत-विद्या की परंपरा



खोज की वैज्ञानिक विधि

खोज की वैज्ञानिक विधि में और किसी विद्या के व्यवहार में बड़ा अंतर है। प्रकृत घटनाओं का, इंद्रियों के द्वारा, अनुभव करके वैज्ञानिक किसी नियम का अनुमान करता है। फिर अपने अनुमित सूत्र की ऐसी परिस्थिति में परीक्षा करता है, जिसमें अन्य कारणों द्वारा पहुँचने-वाली बाधाएँ अत्यंत कम हों, तथा उनके कार्य अलग देखे और समझे जा सकें। अनेक परीक्षाओं की कसौटी पर कसने पर यदि बार-बार वह कल्पित नियम ठीक उतरता है, तो वही सिद्धांत बन जाता है। परंतु इस तरह के सुनिश्चित नियम या सिद्धांत की भी बार-बार परीक्षा होती ही रहती है। यह भी कभी-कभी देखा जाता है कि एक तरह की परि-स्थिति में वह नियम ठीक रूप से चलता रहता है, परंतु परिस्थितियों के हेर-फेर से, निमित्त के बदल जाने पर, कभी-कभी उस नियम के अपवाद भी निकल पड़ते हैं। यदि ऐसे अपवादों की संख्या बढ़ जाती है, तो उस नियम में परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है, उसे सुधारा जाता है। इस प्रकार विज्ञान के अनेक सिद्धांत काल पाकर बद-लते रहते हैं। विज्ञान में इस तरह निरंतर वृद्धि होती रहती है।

यद्यपि इस विधि का आरंभ योरप में चार-पाँच सौ बरस पहले से हो चुका है, तथापि ज्ञान-विज्ञान के संपादन और वृद्धि में इसका व्यवहार बहुतायत से गत डेढ़ सौ बरसों के भीतर-ही-भीतर हुआ है। जाँच की कसौटी बाहरी इंद्रियाँ ही समझी जाती हैं। जो घटनाएँ इन इंद्रियों के अनुभव के बाहर हैं, उनसे आधुनिक विज्ञान कोई संबंध नहीं रखता। प्रत्येक इंद्रिय की परिछिन्नता में सहा-यता देने को अनेक उपकरण भी बने हुए हैं। परंतु उनका व्यवहार भी परिच्छिन्न है। तो भी आजकल वैज्ञानिक खोजें करणों और उपकरणों से ही सीमित हैं।

परान्वेषण-परिषत्वालों ने अपना उपकरण मनुष्यों को ही बनाया। यह विधि और वैज्ञानिकों की दृष्टि में इसलिये दूषित समझी जाती है कि अब तक के प्रयुक्त उपकरण चेतनाशून्य यंत्र थे; वहाँ किसी प्रकार के छल-कपट की संभावना नहीं होती। परंतु मनुष्य-माध्यम-रूपी उपकरण सचेत है, छल-कपट आदि का व्यवहार कर सकता है। वह परीक्षक को धोका दे सकता है। इसीलिये जो वैज्ञा-निक इस परिषत् से संबंध नहीं रखते, वे उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं, और परिषत् के निष्कर्षों का अब भी सम्मान नहीं करते।

अवहेलना

जिस प्रकार की अवहेलना आज वैज्ञानिकों द्वारा प्रेत-विद्या की हो रही है, उस प्रकार की अवहेलना और उपेक्षा और विज्ञानों की भी हो चुकी है। अभी सत्ताईस बरस पहले की बात है कि वायुयान के संबंध में लार्ड केल्विन ने भौतिक विज्ञान और गणित से यह सिद्ध कर दिखाया था कि

वायु से भारी पदार्थ आकाश में उड़ ही नहीं सकता। लार्ड केल्विन ने उस समय के उड़ाकों के साहस और प्रयत्न की दिल्लगी उड़ाई थी। पर आज वायुयान लॉर्ड केल्विन के अनुयायियों के सिर पर आकाश में मँडला-मँडलाकर उनके विज्ञान की हँसी उड़ा रहे हैं। पुराने वैज्ञानिकों की साँसत, देश-निकाला, घर में आग लगाने की बातें तो इस घड़ी पुरानी कहानी हो गई हैं; परंतु दो-चार हाल के ही उदाहरण समझने लायक़ हैं। चालीस बरस हुए, क्रुक्स ने प्रोटील (मूल-पदार्थ) का सिद्धांत विज्ञान-संसार के सामने रक्खा; परंतु जब तक विद्युत्कणों ने इस विषय पर अपना प्रकाश नहीं डाला, तब तक वैज्ञानिकों ने उसे अंधकार में ही फेंक रक्खा था। अभी तो ऐंस्टैन का सापेक्षवाद, जो शुद्ध गणित पर अवलंबित है, यद्यपि विज्ञान के मैदान में दुराधर्ष-सा दिखता है, तथापि आज भी समस्त विज्ञान-संसार उसे मानने को पूर्ण रूप से तैयार नहीं देख पड़ता। उससे तो सभी क्षेत्रों में उथल-पुथल मच रही है। विज्ञानाचार्य जगदीशचंद्र वसु ने, अट्ठाईस बरस हुए, खनिज तक को सजीव सिद्ध कर दिखाया था। कुछ काल तक तो विज्ञान-संसार ने ही उनकी खोज को ठुकराया, फिर कई प्रमुख वैज्ञानिकों ने जी चुराया, फिर बीस बरस के घोर संघर्ष और सतत उद्योग के बाद रॉयल सोसायटी ने माना। इतने पर भी आज तक विज्ञान-संसार ने उनके सिद्धांत को उचित सम्मान नहीं दिया है। जब उन विज्ञानों का यह हाल है, जिनमें परीक्षा और प्रयोग सीधी कसौटी है, किसी तरह का धोका नहीं है, जिनकी विधि पुरानी और निर्विवाद है, जिनके प्रयोक्ता संसार के नामी वैज्ञानिक हैं—जब इन विज्ञानों को भी विज्ञानविशारदों की पुराण-प्रियता, दुराग्रह और पक्षपात का शिकार होना पड़ता है—तब खोज और शास्त्र के क्षेत्र में नए-नए पदार्पण करनेवाले सिद्धांतों की अवहेलना और दुर्दशा यदि हो, तो क्या आश्चर्य की बात है।

परान्वेषण-परिषत्वाले फिर भी अपनी अत्यंत सावधानी के लिये बधाई और प्रशंसा के पात्र हैं। यह जानते हुए भी कि विज्ञान-संसार उनकी कैसी और कितनी अवहेलना करेगा, उन्होंने अपनी विधि में इतनी कड़ाई बरती, जितनी उचित न थी, और यह केवल इसी दृष्टि से कि सत्य की खोज में उन्हें तनिक भी धोका न होने पावे। यद्यपि उनकी रिपोर्टों की सैकड़ों जिल्दें तैयार हो गई हैं, तथापि उनके प्रयोगों के ये बहुत थोड़े अंश हैं, और वे ही अंश हैं, जो कड़ी-से-कड़ी जाँच पर बिलकुल ठीक उतरे हैं, जो हर तरह पर प्रमाणित और सिद्ध हैं, जिनका कोई छोटा-सा अंश भी अप्रमाणित नहीं। शेष जितने प्रयोग ऐसे थे, जिनमें एक रत्ती-भर अंश भी अप्रमाणित है, वे अप्रकाशित पड़े हैं।

परान्वेषण-परिषत् की विधि पर संदेह करनेवाले वैज्ञानिकों की ओर से जो-जो आपत्तियाँ हुई हैं, उनका थोड़ा-सा दिग्दर्शन यहाँ अरोचक न होगा।

विधि पर आपत्ति

जिन माध्यमों पर आवेश होता है, जो या तो बेसुध होकर बोलते या लिखते हैं, अथवा होश में रहते हैं, पर लिखनेवाला हाथ किसी परलोकी के क़ाबू में रहता है और लिखता है, वे प्रायः बड़े सीधे-सादे कम पढ़े स्त्री-पुरुष होते हैं। कभी-कभी अच्छा पढ़ा-लिखा भी माध्यम हो जाता है। अनुमान से जान पड़ता है, इस स्थूल शरीर की योग्यता या अयोग्यता से माध्यम होने का कोई संबंध नहीं। परंतु आपत्ति करनेवाले संदेह करते हैं कि अधिकांश सीधे-सादे बेपढ़े-लिखों में ही आविष्ट होने की योग्यता क्यों होती है? मैं पढ़ा-लिखा, समझदार, छल-कपट की पोल खोलने में समर्थ हूँ; मुझमें आवेश क्यों नहीं होता? यदि कोई पढ़ा-लिखा माध्यम निकल पड़ा, तो उसे धूर्त कहने में तो कोई संकोच ही नहीं रह जाता। अधिकांश आपत्ति-कारक यह कहते हैं कि अमुक अमुक स्त्री ने आविष्ट बनने की नक़ल-भर की होगी, अथवा, उसे योषापस्मार, या हिस्टीरिया हो गई है, और उसे ही लोग प्रेतावेश समझ रहे हैं। *

---

* एक होमियोपैथ ने मुझसे कहा—जब कोई बेसुध रोगी अपना दूसरा कोई नाम बतावे, अपने को कोई अन्य व्यक्ति कहे, तो उसे योषापस्मार समझना चाहिए। वेलेरिएना इसकी उत्तम ओषधि है। जब मैंने उन्हें बतलाया कि मैं कई बार ऐसे रोगी को वेलेरिएना दे चुका हूँ, परंतु लाभ नहीं हुआ, तो बोले कि और लक्षण ठीक न मिले होंगे। यह व्याख्या तो ठीक हो सकती है; परंतु साथ ही वेलेरिएना के अनुरूप योषापस्मार होना भी संभव हो, और किसी में वास्तविक प्रेतावेश भी हो, जो वेलेरिएना के अनुरूप दीखता हो, पर उससे अच्छा नहीं होता, ये दोनों संभावनाएँ डॉक्टर के दिमाग़ में नहीं आतीं। मैंने इस ओषधि के अनुरूप सारे लक्षणों को देखकर आविष्ट पर भिन्न-भिन्न शक्तियों की परीक्षा की, परंतु शिकायत बराबर बढ़ती ही गई।—लेखक

क्रुक्स-सरीखे जगत्प्रसिद्ध और सर्वमान्य विज्ञानाचार्य ने जब अपनी जाँचों का विवरण प्रकाशित किया था, तब अनेक आलोचकों ने दबी ज़बान से यहाँ तक कह डाला कि क्रुक्स महोदय छले गए, मूर्ख बनाए गए। जब इन विज्ञानाचार्यों की यह दशा है, तो साधारण वैज्ञानिकों की तो बात ही क्या है? कितने ही पंडितम्मन्य तो यह कह बैठे कि परान्वेषण-परिषत् की कोई विधि ही नहीं है। यदि जाँच की विधि कोई हो सकती है, तो भौतिक या रसायन की ही विधि समीचीन हो सकती है। अथवा ये बातें अतींद्रिय बताई जाती हैं, और चूँकि हमारे मत से इंद्रियों से बाहर कोई ज्ञान नहीं है, अतः यह दावा ग़लत है।

इसके सिवा पारलौकिक विषयों की खोज में ऐसे लोग भी सम्मिलित थे, रहे हैं, और उसकी विधि के अनुसार होंगे भी, जो आज तक के सर्वमान्य विज्ञानों और उनकी विधियों से पूर्ण परिचित नहीं कहे जा सकते। आपत्ति करनेवाले इनकी खोज को तो अवश्य ही उपेक्षा-योग्य, प्रत्युत उपहासास्पद ठहराते हैं; क्योंकि इन्हें तो वे पूरा अवैज्ञानिक समझते हैं। अनुदार कट्टर दलवालों की ओर से इसी तरह की अनेक और अनंत आपत्तियाँ की गई हैं, और की जाती हैं। किंतु प्रमुख खोजियों और मान्य वैज्ञानिकों ने सबके उचित, तर्क-संगत और मुँह-तोड़ उत्तर दिए हैं। परंतु पक्षपात के कान बहरे हो जाते हैं, वे सुनकर भी नहीं सुनते। आँखें अंधी हो जाती हैं, देखकर भी नहीं देखतीं। स्वयं परान्वेषियों को पुनर्जन्म और कर्म के नियम-संबंधी अनेक बातें मालूम हुई हैं; परंतु उन्हें इसीलिये प्रकाशित नहीं किया गया कि ईसाई-मत के विपरीत बातों के सिद्ध होने के लिये असाधारण प्रमाण अवश्य चाहिए। अनेकों ने इसीलिये इन्हें छिपा रक्खा कि इनसे अपने मुद्दतों के माने हुए मत में फेरफार पड़ जाता है। सर ऑलिवर लॉज ने अपने 'रेमंड'-नामक ग्रंथ में लिखा है* कि पहले से ही असंभव समझकर परान्वेषण का विरोध करने की लोगों की प्रवृत्ति तर्क-संगत नहीं है। लोगों की अनुदार प्रवृत्ति इस विज्ञान के विकास के साथ-

* हमने जिस अंश का अत्यंत संक्षिप्त भाव लिखा है, उसे पूर्ण रूप से अवतरित कर देना अँगरेज़ी जाननेवाले अनेक पाठकों के लिये अवश्य रोचक और संतोषदायक होगा। वह यों है—

"The occurrence of such people, i. e. of people with such exceptional and really simple faculties, could not have been predicted or expected on a basis of every day experience; but if evidence is forthcoming for their existence, even although it be not quite of an ordinary character, and if we can make examination of the subject matter and criticise the statements of fact which are thus receivable, there is no sort of sense in opposing the facts by adducing preconceived negative opinions about impossibility, and declining to look into the evidence or judge of the results. There were people once who would not look at the satellites of Jupiter, lest their cherished convictions should be disturbed. There was a mathematician not long ago who would not see an experimental demonstration of conical refraction, lest if it failed his confidence in refined optical theory should be upset. And so, strange to say, there are people to-day who deny the fact, and condemn the investigation, of any manner of communication outside the realm of ordinary commonplace experience, having no ground at all for their denial save prejudice.

Well, like other little systems, they have their day and cease to be. We need not attend to them overmuch. If the facts of the Universe have come within our contemplation, a certain amount of contemporary blindness, though it may surprise, need not perplex us. The study of the material side of things, under the limitations appropriate thereto, has done splendid service. Only gradually can mental scope be enlarged to take in not only all this but more also.

In so far as those who are open to the less well-defined and more ambitious region are ignorant or un-responsive to what has been achieved in the material realm, it is no wonder that their asserted enlargement of scope is not credited. It does not seem likely that a new revelation has been vouchsafed to them, when they are so ignorant concerning the other and already recognised kind of Natural knowledge. They can not indeed have attained information through the same channel, or in the same way. And it is this dislocation of knowledge, this difference of atmosphere, this barely reconcilable attitude of two diverse groups of people—though occasionally, by the device of watertight

ही-साथ सुधरेगी । जिस तरह उधर अनुदार हैं, उसी तरह परान्वेषियों में भी दूसरे प्रकार की अनुदारता है । दोनों दलों के कट्टरपन से अवश्य ही उन्नति की गाड़ी रुक जाती; परंतु कभी-कभी वालेस और क्रुक्स-सरीखे दोनों दलों के मान्य, सम्मान्य और आचार्य मेल करानेवाले मिल ही जाते हैं, जो सच्ची खोज के मार्ग को प्रशस्त कर देते हैं ।

विधि-हीन खोज

यहाँ तक हमने परान्वेषण-परिषत्-जैसी मान्य संस्था की विधि-युक्त खोज की आलोचना की । परंतु विधि-हीन कहलानेवाली खोज अवश्य ही इतनी अधिक और इतनी विस्तृत हुई है कि एक तो उसका परिशीलन इसलिये असंभव है कि उसके खोजी अधिकांश तो प्रकाशित और प्रसिद्ध लोग नहीं हैं, दूसरे उसका साहित्य अप्रकाशित एवं अनियमित रूप में है, तीसरे यदि वह पूर्णतया वा अंशतः प्राप्य भी हो तो कोई उसके लिये इतना समय और शक्ति देने में सम नहीं हो सकता । परंतु परिशीलन की कठिनाई से हमें यह अधिकार कदापि प्राप्त नहीं होता कि हम हज़ारों खोजियों के काम को सर्वथा उपेक्षणीय समझें । साथ ही यह भी युक्ति-संगत नहीं कि हम इस प्रकार की सभी खोजों को विश्वास के योग्य समझें । इस तरह की खोजों और परीक्षाओं में अनेक तरह के ऐसे दोष आ जाने की अत्यधिक संभावना है, जिनसे परान्वेषण-परिषत्-सरीखी संस्था बराबर बचती रही । यथा—

(क) परान्वेषण-परिषत् की कड़ी जाँच किसी मन में पहले से किसी तरह के विश्वास या पूर्व-धारणा लिये कोई स्थान छोड़ती ही नहीं थी । थियासोफ़िकल सोसाइटी-जैसी धार्मिक विद्वानों की संस्था में श्रद्धालुओं की कमी नहीं । वहाँ की जाँच ठीक हो सकती है; परंतु पूर्व-धारणा के दोष से इस संस्था की खोज ख़ाली नहीं हो सकती ।

(ख) परान्वेषण-परिषत् में वियोगियों के संतोष-मात्र के लिये कोई खोज करके प्रकाशित करने का नियम नहीं है । यदि वियोगियों ने संतोषार्थ कुछ साधन किए, तो वह उनकी निजी काररवाई थी । इसी तरह की सैकड़ों परीक्षाएँ सर ऑलिवर लॉज ने की हैं, और रेमंड-नामक पुस्तक इस तरह की परीक्षाओं की पोथी का एक उदाहरण है । परंतु वियोगी अपने तोष पर दृष्टि रखते हैं, इसलिये यदि वे वैज्ञानिक दृष्टि से जाँच न करें, तो स्वाभाविक है। अतएव वियोगियों के साधन पक्षपात और असिद्ध बातों से ख़ाली नहीं हो सकते ।

(ग) जिन लोगों को पारलौकिक बातों के जानने का कुतूहल-मात्र है, परंतु जो वैज्ञानिक खोज की विधि से अनभिज्ञ हैं, इधर-उधर से कुछ देख-भालकर तिपाई और सीखकर प्लांचेट (तख़्ती) या नवशक्ति चलाने लगते हैं, उनकी क्रियाओं में दो प्रकार के दोष अवश्य रहते हैं। एक दोष तो यह कि वे स्वयं ठीक विधि से अनभिज्ञ हैं, उनमें सत्यासत्य के निर्णय की उचित क्षमता नहीं है, उन्होंने किसी साधन-कुशल से यह क्रिया सीखी नहीं है, अतः वे अनेक प्रकार की भूलें स्वयं कर सकते हैं, और धोखा भी खा सकते हैं । साथ ही जो प्रेत तिपाई या नव-शक्ति पर आते हैं, वे भले-बुरे सभी तरह के हो सकते हैं

---

compartments, the same individual has breathed both kinds of air and belonged to both groups—it is this bifurcation of method that has retarded mutual understanding. There are pugnatious members of either group who try to strengthen their own position by decrying the methods of the other; and were it not for the occurrence from time to time of a Wallace or a Crookes, i. e. of men who combine in their own persons something of both kinds of knowledge, attained not by different but by similar methods—all their theses being maintained and justified on scientific grounds and after experimental inquiry—the chances for a reasonable and scientific outlook into a new region, and ultimately over the border line into the domain of religion, would not be encouraging. The existence of such men, however, has given the world pause, has sometimes checked its facile abuse, and has brought it occasionally into a reflective, perhaps now even into a partially receptive, mood. We need not be in any hurry, though we can hardly help hoping for quick progress if the new knowledge can in any way alleviate the terrible amount of sorrow in the world at present; moreover, if a new volume is to be opened in man's study of the Universe, it is time that the early chapters were being perused." Raymond, or Life and Death, by Sir Oliver Lodge, Methuen, Sixth Edition, 1916, Part III, Chap. X, pp. 340-342.

झूठे, छली, कपटी आकर भाँति-भाँति से छलते हैं, जिसका पता नौसिखिए साधक को नहीं लग सकता। प्रेत ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवी, देवता, महर्षि, साधु, महात्मा, पंडित आदि, जिसमें उसे सुबीता होता है, बन जाता है, ढोंग रचता है, पूजा लेता है। ऐसी अवस्था में उसकी परीक्षा करना नव साधक के लिये कठिन हो जाता है, और दस में से नव मामलों में वह अवश्य ही ठगा जाता है। ऐसों का विवरण दोषों का आगार होगा।

इन्हीं की कोटि के दोषों के कारण विधि-हीन परिशीलन का मूल्य बहुत कम आँका जा सकता है। परंतु इनसे एक बात अवश्य ही प्रमाणित होती है। वह यह कि परान्वेषण की क्रिया ऐसी असाधारण और अनोखी नहीं है, जैसी कि अनुदार कट्टर वैज्ञानिक समझते हैं, और खोज की जाय, तो परलोक से व्यवहार करने के लिये पर्याप्त संख्या में मनुष्य निकल आवेंगे। संभव है, प्रत्येक कुटुंब में कोई-न-कोई माध्यम बन जाने में समर्थ हो, और कोई-न-कोई अच्छा साधक हो जाय। केवल जाँच और परख की देर मालूम होती है।

हमारे देशों में विधि-पूर्वक खोज करने के लिये विद्वानों की कोई संस्था अभी तक नहीं बनी। कुछ विधि-पूर्वक खोज करनेवाले इक्के-दुक्के सज्जन अवश्य रहे हैं, और वे अपने अनुभव प्रकाशित भी करते आए हैं। परंतु परान्वेषण-परिषत् की-जैसी अनुदार कट्टरता व्यक्तियों में होनी असंभव है। इधर चार-पाँच बरस से हमारे देश में भी निजी ढंग पर सैकड़ों प्रयोक्ता हो गए हैं। इस विषय का परिशीलन बढ़ने लगा है। पुनर्जन्म सिद्ध करने में कई सफल प्रयोग हुए हैं। अनेक पढ़े-लिखे सज्जन नवशक्ति का प्रयोग कर रहे हैं, यद्यपि उन्हें ठीक पथ-प्रदर्शक सुलभ नहीं। इनमें से अधिकांश प्रयोगों का प्रवर्तक कुतूहल-मात्र है। शुद्ध खोज शायद ही किसी का उद्देश्य हो। पाश्चात्य खोजियों की ओर से यह भविष्यवाद हुआ था कि महासमर के दस बरस के भीतर इस विद्या का प्रचार संसार में बहुत बढ़ जायगा। सो संसार में जो कुछ इस भविष्यवाणी में सफलता हुई हो, भारतवर्ष में तो प्रत्यक्ष है।

परंतु इस विद्या की ओर एक और प्रवर्तक भी है,

प्रयोग की परंपरा

और वह प्रवर्तक आज का नहीं, गत बीस-पचीस बरसों का भी नहीं, एक-दो शताब्दियों का भी नहीं, बरन् अनेक युगों का है। वह प्रवर्तक है आधिभौतिक बाधा या प्रेत-बाधा। हमारे देश में परलोक और परलोकी प्राणियों के मानने और न माननेवाले, दोनों तरह के मनुष्य सृष्टि के आदि से होते आए हैं। वेदों, स्मृतियों और पुराणों में इस बात के प्रमाण भरे पड़े हैं। उन प्रमाणों की अवतरण-सहित चर्चा हम अन्यत्र करेंगे। परंतु यहाँ इतना कह देना पर्याप्त होगा कि हमारे देश में सर्वशक्तिमान्, सगुण, सच्चिदानंद ब्रह्म और निर्गुण, निराकार, अव्यक्त ब्रह्म के उपासक, देवता और दैत्य दोनों के आराधक, यक्ष और राक्षस, भूत-प्रेत-पिशाचादि सबके पूजनेवाले सभी काल में होते आए हैं। अपनी-अपनी आध्यात्मिक उन्नति के अनुकूल ही उपासना का होना आज भी सर्ववादिसम्मत विधि है, यद्यपि प्रत्येक अनुदार कट्टर स्वधर्मानुयायी अपने मार्ग को ही सर्वोत्तम समझता है, और यह ठीक विधि भी है। "श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।" प्रेतों की उपासना हमारे देश में सबसे नीच प्रकार की उपासना मानी जाती है। परंतु तो भी श्मशान जगानेवाले, जादू-टोना साधनेवाले, ओझे, सोखे, भगत, स्याने, एक-दो नहीं, सभी जगह अच्छी संख्या में हैं। औघड़ या अघोरी और कापालिक आज भी देखे जाते हैं। हमारे देश में इनका रोज़गार ख़ूब चलता है। सतानेवाले प्रेत हमारे देश में असंख्य हैं। उन्हें सताने में वही मज़ा आता है, जो इस स्थूल शरीर में इंद्रियों के भाँति-भाँति के विषयोपभोग में। इनसे बचने के लिये लोग इन प्रेत-पूजकों का आश्रय लेते हैं, और प्रेतों को भगाने के उपाय भी करते हैं। ये स्याने अपने उपास्य प्रेतों द्वारा सतानेवालों को भगाने, बाँधने या राज़ी करके हटाने का उपाय करते हैं। इनको दंड देने या जलाने का कोई अधिकार नहीं होता। स्वार्थी लोग अकसर इन्हीं उपासकों द्वारा अपने क़ैदियों को अथवा जिनके सताने से कुछ मतलब निकलता है, उन्हें सतवाते हैं। इस तरह के नीच काम इन भगतों का सदा से रोज़गार चला आया है। शाबर आदि अनेक मंत्र, यंत्र और तंत्र-त्रोटक (टोटके) इन रोज़गारियों के साधन हैं। हमारे देश में इन विधियों का अनादर करनेवाले अविश्वासी भी हैं, और माननेवाले विश्वासी भी। इन सब साधनों का मूल पारलौकिक है, और युगों से इनकी परंपरा चली आई है। इन विषयों का साहित्य बहुत बड़ा है, जो अधिकांश संस्कृत में है। प्राकृत और देसी भाषाओं के ग्रंथ अत्यंत थोड़े हैं। यह विद्या प्राचीन

काल में चाहे शास्त्रों के अध्ययन के अधीन रही हो, परंतु आजकल शास्त्राधीन नहीं है। इसके विद्वान् इसे अपने पेट में रखते और ऊँचे शिष्यों को ही सिखाते हैं। प्राचीन काल में, युद्ध में विशेष रूप से इस विद्या की सहायता ली जाती थी। मंत्र-प्रेरित बाण-संधान करने की चर्चा सैकड़ों जगह पाई जाती है। ब्रह्म-पाश, ब्रह्म-बाण, अग्नि-बाण, इंद्रास्त्र, पाशुपतास्त्र, वैष्णवास्त्र, नागपाश इत्यादि अनेक तरह के मंत्र-प्रेरित अस्त्रों की चर्चा वाल्मीकीय रामायण और महाभारत में मौजूद है। ये सभी क्रियाएँ और साधन पारलौकिक ही थे। इनके प्रयोक्ता इन अस्त्रों के चलाने और लौटाने की भी विधि जानते थे। आजकल के वस्तुवाद के भयानक आक्रमण से घबराई हुई बुद्धिवाले लोग हमारे विस्तृत साहित्य के ऐसे स्थलों का अर्थ वस्तुवाद के अनुकूल लगाते हैं। जैसे वे यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि अग्निबाण यही भौतिक बमगोला था, और भिन्न-भिन्न अस्त्र आजकल की-सी यंत्र-विद्या के बल पर चलाए जाते थे। परंतु सब शब्दों के ठीक अर्थ नहीं कर पाते। वे अपने यहाँ के बड़प्पन को खोना नहीं चाहते, साथ ही वस्तुवादियों द्वारा परलोक-विद्या के खंडन को भी नत-मस्तक हो स्वीकार कर लेते हैं। वस्तुवाद के ही घोर आक्रमण के कारण हमारे पढ़े-लिखे समाज के एक भारी और महत्त्व के अंश ने प्रेत, पितर आदि योनियों के अस्तित्व से पहले तो इनकार कर डाला, और अब, जब कि पाश्चात्य लोग इन योनियों को मानने लग गए हैं, उन्हीं को फिर से मानने में उन्हें लज्जा आती है।

जैसे आजकल के खोज के युग के पहले से भारतवर्ष में परलोक-विद्या की परंपरा चली आई है, उसी तरह योरप में और अमेरिका में भी इस विद्या के प्रयोग नए नहीं हैं। प्राचीन योरप में डायनों और ओझों की कमी न थी। यंत्र, मंत्र, टोटके, सभी कुछ होता था। एक समय में इनका प्रभाव इतना बड़ा समझा जाता था कि आग लगाने, आँधी उठाने आदि प्राकृतिक उपद्रवों के प्रवर्तक भी ओझे समझे जाते थे। लोग डायनों को बड़ी शक्तिशालिनी मानते थे। Lecky (लेकी) ने अपने विलायती सभ्यता के इतिहास में इनका विस्तृत विवरण दिया है। आज योरप में वस्तुवाद का इतना बड़ा ज़ोर है कि कोई अपनेको डायन या ओझा कहे, तो उसे लोग हँसी में उड़ा देंगे।

परंतु उसी योरप में पहले डायन से अत्यंत डरते थे। ओझा

योरप में जादू-टोना

एक भयंकर मनुष्य था। इन लोगों को साधारण-से-साधारण उपद्रव के खड़े होने का कारण माना जाता था, और इन्हें वे-वे दंड दिए जाते थे, जिनके वर्णन पढ़कर आज पाठक के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अपने Criminal Trials in Scotland-नामक ग्रंथ में Pitcairn (पित्तकर्ण) ने लिखा है—डॉक्टर* फ़ायन-नामक ओझा को समुद्र में तूफ़ान उठाने का अभियोग लगाया गया, जिस पर स्कॉटलैंड के महाराजा प्रथम जेम्स ने स्वयं उपस्थित होकर उसे अनेक यातनाएँ दीं। अभियुक्त की टाँगों की हड्डियों को बूट के भीतर ही मार-मारकर चूरा कर दिया गया। राजा ने स्वयं एक और घोरतम यातना का प्रस्ताव किया, और अपने सामने उसे कार्य में परिणत कराया, अर्थात् दोनों हाथों के नाख़ून चिमटियों से पकड़-पकड़कर उँगलियों से निकाल लिए गए और हर रक्तस्रावक ठूँठ में दो-दो सुइयाँ भरपूर घुसेड़ दी गईं। यह योरप की पुनःजागृति के युग का एक छोटा-सा दृश्य है। पाठक अनुमान कर लें कि योरपियन सभ्यता की नींव में कैसे-कैसे भयानक अत्याचारों का शव गड़ा हुआ है। प्राचीन काल में प्रेत-विद्या पर मुक़दमे नहीं चलते थे। पुनःजागृति के युग से प्रेत-विद्या-विशारदों पर मुक़दमे चलने लगे, और घोर यातनाओं के साथ उनके प्राण लिए जाने लगे। संवत् १५४१ में चौथे इन्नोसेंट-नामक पोप ने प्रेत-विद्या के दमन की आज्ञा निकाली। पीछे उनके विरोधी प्रोटेस्टेंटों ने भी उन्हीं का अनुकरण किया। दो सौ बरस के भीतर प्रेत-विद्या की वेदी पर तीन लाख से ऊपर मनुष्यों का, इन क़ानूनों के हाथ, बलिदान हुआ। अभी संवत् १८२५ की बात है, जॉन वेसली-नामक पादरी ने यह आज्ञा निकाली कि जो कोई प्रेत-विद्या में अविश्वास करे, वह नास्तिक माना जाय †। इँगलिस्तान में प्रेत-विद्या के विरुद्ध अंतिम मुक़दमा संवत् १७६६ में चला

* अँगरेज़ी के 'डॉक्टर' शब्द का ठीक अनुवाद 'ओझा' है। डॉक्टर शब्द का असली अर्थ है 'शिक्षक'। ओझा [= उआज्झा = उआज्झाअ = उपाध्याय] शब्द का अर्थ भी 'शिक्षक' ही है।

† हमारे साहित्य में भी चार्वाक के संप्रदायवाले वे नास्तिक थे, जो परलोक को नहीं मानते थे। नास्तिक शब्द की एक परिभाषा यह भी है।

था, और अंतिम फाँसी स्कॉटलैंड में, संवत् १७७६ में, दी गई थी। अंत को संवत् १७६२ में यह क़ानून रद्द कर दिया गया।

हमने इस प्रसंग में यह चर्चा की है कि आज भी ओझे, सोखे, भगत, स्याने, मौलवी आदि प्रेतों की उपासना, जादू-टोना और श्मशान के भाँति-भाँति के साधन करते हैं और इनसे सीखनेवाले सीखते भी हैं। जिन लोगों को

भय से चेतावनी

प्रेत-विद्या के सीखने का कुतूहल या उत्साह है, वे, संभव है, किसी ओझा आदि से अपने कुतूहल की शांति या ज्ञान-पिपासा की तृप्ति कराना चाहें। उन्हें यह चेतावनी दे देना अत्यावश्यक है कि श्मशान या शावर आदि मंत्र या प्रेत-पिशाच-वेताल-यक्ष-यक्षिणी आदि के साधन बड़ी नीच क्रियाएँ हैं। ये प्राणी बहुधा अत्यंत दुष्ट और हिंसक स्वभाव के होते हैं। ये अपने उपासक पर ही प्रायः पहली चोट करते हैं, उसी को सताने लगते हैं। श्मशान तो प्रेतों का ख़ज़ाना होता है। वहाँ साधक का बचना तो और भी मुशकिल है। साधकों की बड़ी भयानक दुर्दशा होना असाधारण बात नहीं। मैं कई साधकों को जानता हूँ, जो इस साधना में पागल हो गए हैं। श्मशान तो श्मशान, मैं तो कई ऐसे मामलों को जानता हूँ, जिनमें नवशक्ति (प्लांचेट) के प्रयोक्ता तक पागल हो गए हैं। कारण अत्यंत सीधा है। जहाँ प्रेतों का जमावड़ा होता है, वहाँ भले-बुरे सभी आते हैं। बुरे प्रेत शरारत से नहीं चूकते, वे नवशक्ति के चलानेवाले को ही ग्रस लेते हैं। साधक के मन पर प्रभाव डालकर उसे गली-गली फिराते हैं, ठोकरें खिलाते हैं, बात-बात में लड़ा देते हैं, हृदय से विश्वास उठा देते हैं, बीमार कर देते हैं। ऐसी-ऐसी दुर्दशा करते हैं कि देखने में कोई बीमारी नहीं मालूम होती, प्रेत-बाधा नहीं मालूम होती मगर जोड़-बटोरकर कुल ख़राबी पागलपन से भी अधिक हो जाती है। आदमी बेजाने ही विविध कष्ट उठाता और यातनाएँ सहता रहता है। इसलिये पाठकों को मैं यह चेतावनी दिए बिना नहीं रह सकता कि यह मार्ग भयानक है, भलेमानसों के लायक़ नहीं। श्मशान के साधक तो शव और मल-मूत्र आदि से भी घृणा नहीं करते। यह प्रवृत्ति ही क्या कम नारकीय है! मैं प्रसंगानुसार ऐसे साधन भी बताऊँगा, जिनमें कोई भय नहीं।

रामदास गौड़

कविता में रहस्यवाद

(२)



संसार के कवियों का विभाग भिन्न-भिन्न दृष्टि-कोणों से भिन्न-भिन्न हो सकता है। परंतु एक दृष्टि-कोण से उनको दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—वास्तविकता के प्रेमी (Realistic Poe's) और आदर्शवादी (Idealistic Poets)। कवि चाहे वास्तविकता का प्रेमी हो अथवा आदर्शवादी, उसे कल्पना की सहायता अवश्य लेनी पड़ती है। बहुत लोगों का विचार है कि यह कल्पना ही कविता की जान है। कविता में कल्पना का बड़ा ऊँचा स्थान है। इसी-लिये कुछ लोगों ने इसे मस्तिष्क की आँख कहा है; क्योंकि मस्तिष्क भी देखता है। यह कल्पना दर्शक तथा कवि की एक प्रधान इंद्रिय है। सच्चा कवि वही है, जो इस दूसरी आँख से युक्त हो। बहुत लोगों का यहाँ तक कहना है कि जिस कविता में कल्पना नहीं है, वह वास्तविक कविता ही नहीं। जब कविता में कल्पना को इतना ऊँचा स्थान प्राप्त है, तब उस कवि की कविता को रहस्यवादी कविता का पद प्राप्त हो सकता है या नहीं, जो वास्तव में रहस्यवादी नहीं है, किंतु कल्पना के द्वारा अपनेको एक सच्चे रहस्य-वादी के स्थान पर रखता और तब कविता करता है? जो कवि वास्तविकता के प्रेमी हैं, वे तो पहले स्वयं उन बातों का अनुभव कर लेते हैं, जिन पर कविता करते हैं, और जो आदर्शवादी हैं, वे कल्पना द्वारा भी बहुत कुछ लिखते हैं। कल्पना के भी दो भेद हैं। एक तो वह, जो स्वयं होती है, और दूसरी वह, जो प्रयत्न का फल है। इन दोनों में पहली कल्पना सच्ची तथा दूसरी झूठी है। यदि किसी कवि की कल्पना ही झूठी है, तो वह कभी रहस्यवादी कवि नहीं कहा जा सकता। परंतु प्रश्न तो यह है कि यदि किसी कवि की कल्पना सच्ची हो, और यदि वह कवि अपनेको एक रहस्यवादी के स्थान पर रखकर कल्पना द्वारा कविता करे, तो वह रहस्यवादी कवि कहा जायगा या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले हम लोगों को इसका अर्थ समझने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि कोई कवि अपने-को रहस्यवादी के स्थान पर रखता और तब कविता करता

है, तो उस समय उसकी वास्तव में क्या दशा होती है? क्या वह सचमुच एक सच्चे रहस्यवादी के समान हो जाता है?

क्या उस समय कवि की ठीक-ठीक वही दशा होती है, जो एक सच्चे रहस्यवादी की, अनुभव के समय, होती है? यदि इन प्रश्नों का उत्तर स्वीकारात्मक दिया जा सकता है, अर्थात् यदि कवि की ठीक-ठीक वही दशा होती है, जो रहस्यवादी की, तो फिर वह कवि भी रहस्यवादी ही हो जाता है, और उसकी कविता भी रहस्यवादी कविता कहलावेगी। परंतु यदि कल्पना द्वारा, अथवा और किसी तरह से भी, कवि उन सब बातों का ठीक-ठीक अनुभव नहीं करता, और फिर भी रहस्यवादी के अनुभव से संबंध रखनेवाले विषयों पर कविता करता है, तो वह रहस्यवादी कवि नहीं कहला सकता। तब उसे हम छायावादी कवि कह सकते हैं। इस संबंध में एक यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कोई कवि केवल कविता करते-करते ही रहस्यवादी हो सकता है? क्या यह संभव है कि एक कवि कविता करते-करते ही ईश्वर का दर्शन पा जाय, और उसका यथार्थ अनुभव कर सके? इस प्रश्न पर विस्तृत रूप से मैं पीछे विचार करूँगा। यहाँ पर इतना लिख देना ही पर्याप्त होगा कि हाँ, यह संभव है। यदि यह संभव न होता, तो कविता का उद्देश्य ही इतना ऊँचा न रह जाता। कवियों में तल्लीनता की मात्रा बहुत ही अधिक होती है; एक सच्चा कवि ईश्वर में प्रतिदिन तल्लीन हो सकता है। और, इसी प्रकार अभ्यास करते-करते वह ईश्वर का अनुभव कर सकता है। यदि कविता के द्वारा कोई कवि ईश्वर का स्पष्ट दर्शन तथा अनुभव कर सकता है, तो वह रहस्यवादी हो जाता है, और उसकी कृति रहस्यवादी कविता अवश्य ही कहलावेगी। किंतु यदि उसे ईश्वर का स्पष्ट दर्शन तथा अनुभव नहीं हुआ, परंतु उसके अस्तित्व में विश्वास हो गया है, उसकी विभूतियों में भी वह विश्वास करता है, ईश्वर के दर्शन तथा उसका अनुभव करने की इच्छा रखता है, और ईश्वर के दर्शन तथा अनुभव के संबंध में कविता करता है, तो उसकी उस कविता को छायावादी कविता कहते हैं। जिसे ईश्वर का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाया, जिसे ईश्वर का स्पष्ट दर्शन तथा अनुभव नहीं हुआ, परंतु जिसे इन सब बातों में विश्वास है, उसे छायावादी कहते हैं। रहस्यवादी ईश्वर के रहस्य से भली भाँति परिचित हो जाता है; पर छायावादी को ईश्वर की छाया का पता चलता है, ईश्वर की वास्तविकता का नहीं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि रहस्यवादी कवि और छायावादी कवि, दोनों का विषय एक ही होता है। दोनों का ही विषय ईश्वर का स्पष्ट दर्शन, उसका अनुभव तथा उस अनुभव का आनंद आदि होता है। परंतु दोनों की अनुभूति में अंतर होता है। रहस्यवादी कवि ईश्वर का स्पष्ट दर्शन तथा अनुभव करता है, और छायावादी कवि को ईश्वर की छाया ही का पता चलता है। मैंने 'रहस्यवादी कवि' और 'छायावादी कवि' शब्दों का प्रयोग इन्हीं दो भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है। इन सब बातों से स्पष्ट है कि केवल कविता को देखकर यह निश्चय करना बड़ा कठिन हो जाता है कि यह कविता रहस्यवादी कविता है अथवा छायावादी कविता? यह कठिनाई इस बात से और भी अधिक बढ़ जाती है कि दोनों के विषय एक हैं—यदि इस बात को स्वीकार कर लें कि एक सच्चा रहस्यवादी है, और उसने अपनी कविता में ईश्वर के अनुभव के आनंद (ब्रह्मानंद) का वर्णन किया है। यदि कोई दूसरा एक ऐसा मनुष्य हो, जिसे ईश्वर का कुछ भी अनुभव न हो, और जिसने केवल इतना सुन लिया हो कि ईश्वर के अनुभव में आनंद प्राप्त होता है, तो वह मनुष्य भी ईश्वर के अनुभव के आनंद के विषय पर कविता कर सकता है। और, यदि वह एक ऊँचे दर्जे का कवि है, तो यह भी संभव है कि उस मनुष्य की कविता एक सच्चे रहस्यवादी की कविता से श्रेष्ठ भी हो जाय। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है, ऐसी दशा में किस प्रकार यह प्रश्न हल हो सकता है कि एक रहस्यवादी है और दूसरा छायावादी? वास्तव में यह बड़ा कठिन प्रश्न हो जाता है, और इसी कारण से जब कोई सच्चा रहस्यवादी भी हो जाता है, तब भी लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं, उसे झूठा ही मानते हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः यह भी देखा गया है कि कभी-कभी एक झूठा मनुष्य भी रहस्यवादी बन जाता है। परंतु असलियत अंत में अवश्य ही खुल जाती है, और इसके लिये कई कसौटियाँ भी हैं, जिनका उल्लेख दूसरे स्थान पर किया जायगा।

❀ ❀ ❀

इस संसार में बहुत-सी ऐसी बातें होती हैं या रहती हैं, जिनके बारे में हम लोग कुछ नहीं जानते। इसीलिये इँगलैंड का प्रधान कवि शेक्सपियर कहता है—"There are more things in this world Horatio ! than your philosophy dreams of," अर्थात् ऐ होरेशियो, इस संसार में उनसे बहुत ही अधिक चीज़ों का अस्तित्व पाया जाता है, जिनका वर्णन तुम्हारे दर्शन में है।

इस संसार में बहुत-सी ऐसी भी बातें हैं, जिनके बारे में हम लोग बहुत कम जानते हैं; अर्थात् इस संसार की कुछ बातें हम लोगों के लिये रहस्य ही रहती हैं। परंतु संसार के सब रहस्यों में ईश्वर का रहस्य सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे कठिन है। इस रहस्य के खुल जाने पर और सब रहस्य अवश्य ही खुल जाते हैं, और कोई संदेह की बात नहीं रह जाती। पाश्चात्य देशों में इस भारी रहस्य के जाननेवालों का बड़ा मान है, और जो इस रहस्य के संबंध में कविता करता है, वह बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है। पाश्चात्य देशोंवाले यह भी मानते हैं कि कविता के द्वारा भी यह रहस्य खुल सकता है, और ईश्वरीय कविता में अधिक तल्लीन होने से भी ईश्वर का दर्शन तथा अनुभव हो सकता है। यही कारण है कि श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर का पाश्चात्य देशों में इतना नाम है, और उनको 'नोबेल-पुरस्कार' भी मिला है। मैंने अँगरेज़ी की ऐसी कई पुस्तकें पढ़ी हैं, जिनमें अँगरेज़ लेखकों ने इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया है कि कविता से भी ईश्वर का दर्शन तथा अनुभव हो सकता है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कविता से भी ईश्वर का दर्शन हो सकता है? क्या हम लोगों के यहाँ भी ऐसी कोई बात मानी जाती है? क्या कविता से ईश्वर का दर्शन होना भारतवर्ष भी स्वीकार करता है?

जिन लोगों ने संस्कृत का थोड़ा भी अध्ययन किया है, वे भली भाँति जानते हैं कि संस्कृत-साहित्य में इसके बहुत-से उदाहरण मिलते हैं। वेदांतियों ने जिसे ब्रह्म कहा है, योगियों ने जिसे ईश्वर माना है, शैवों ने जिसे शिव जाना है, और अनेक शास्त्रों ने जिसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है, उसी को भारत के काव्य-मर्मज्ञों ने पहले रस कहा था। वे लोग काव्य से मुक्ति का प्राप्त होना भी मानते थे; व्याकरण में जो स्फोट है, साहित्य में वही रस है। जैसे सब शास्त्रों में मुक्ति का वर्णन है, तथा उसके प्राप्त करने का उपाय है, इसी प्रकार साहित्य-कला से मुक्ति का प्राप्त करना संभव माना गया है। यही कारण है कि त्यागी तथा महात्मा भर्तृहरि ने कहा है—

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ;
तृणं न खादन्नपि जीवमान-
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ।

इस श्लोक में तो महात्मा भर्तृहरि ने साहित्य न जाननेवाले की केवल निंदा ही की है, परंतु उन्होंने स्पष्ट रूप से यह नहीं लिखा कि इससे मुक्ति भी हो सकती है। किंतु अग्निपुराण में यह बात स्पष्ट रूप से लिख दी गई है। अग्निपुराण में बहुत-सी बातें कही गई हैं। अग्नि-पुराण में अलंकार-शास्त्र का भी बहुत ही अच्छा वर्णन किया गया है। ३३६वें अध्याय से ३४६वें अध्याय तक इसी अलंकार-शास्त्र का वर्णन है। जब मैं यह कहता हूँ कि अग्निपुराण में अलंकार-शास्त्र का अच्छा वर्णन है, तब मेरा अभिप्राय अलंकारों से नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि हिंदी-भाषा के अधिक शब्द संस्कृत से ही आए हैं। परंतु इनमें से कई शब्दों के अर्थों में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। इसी प्रकार संस्कृत के अलंकार-शास्त्र का अर्थ तथा महत्त्व हिंदी के अलंकारिकों ने कभी नहीं समझा। संस्कृत का अलंकार-शास्त्र वास्तव में एक दर्शन है। परंतु हिंदी में कोई क्रमबद्ध अलंकार-शास्त्र है ही नहीं। हिंदी में कुछ असंबद्ध अलंकारों के समूह अवश्य हैं। अग्निपुराण में 'अलंकार-शास्त्र' का प्रयोग सौंदर्य-शास्त्र के अर्थ में भी किया गया है, जैसा कि उसके अवतरणों से स्पष्ट विदित होता है। यहाँ पर मैं अग्निपुराण तथा उसके अलंकार-शास्त्र का वर्णन नहीं कर रहा हूँ, अतएव इस विषय में अधिक लिखना अनावश्यक है। किंतु यहाँ पर मैं यह दिखलाना अपना प्रधान कर्तव्य समझता हूँ कि रहस्यवाद का विचार अग्निपुराण में स्पष्ट रूप से दिया हुआ है। अग्निपुराण के इस प्रमाण से स्पष्ट हो जायगा कि रहस्य-वादी कविता के जन्मदाता श्रीरवींद्र बाबू नहीं हैं। इस प्रमाण से यह भी स्पष्ट हो जायगा कि रहस्यवाद-संबंधी तथा छायावाद-संबंधी कविता करना पाप नहीं है, और

पुराण भी इसका समर्थन करता है । वह प्रमाण यह है—

अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमजं विभुम् ;
वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम् ।
आनन्दः सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन ;
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया ।
(अग्निपुराण)

ऊपर के श्लोकों में स्पष्ट रूप से लिखा है कि अज, आनंदस्वरूप ब्रह्म की अभिव्यक्ति ही का नाम चमत्कार या रस है । यदि विचार-पूर्वक देखा जाय, तो रहस्यवाद की यह दूसरी (तथा दूसरे शब्दों में) परिभाषा ही है । भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है । इस बात को संसार-भर के विचारशील पुरुषों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है कि भारतवर्ष के लोग धर्म की अधिक चिंता करते हैं, और इसीलिये मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न भी अधिक करते हैं । यही कारण है कि इनके प्रत्येक दर्शन में मोक्ष प्राप्त करने का वर्णन अवश्य रहता है । भारतवर्ष वह देश है, जहाँ व्याकरण-शास्त्र में भी मोक्ष प्राप्त करने के साधन का वर्णन है । इसी प्रकार भारत में काव्य तथा साहित्य से भी ये लोग मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे । ब्रह्म का अनुभव ही अग्निपुराण में रस माना गया है, और यह न्याय-संगत भी है । जब ब्रह्म का अनुभव होगा, तभी मनुष्य को मोक्ष मिल सकता है ; क्योंकि तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है ।

उपनिषद्-काल में भी भारत रहस्यवाद से भली भाँति परिचित था । तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है—"रसो वै सः" । इसके अर्थ पर विचार करने से भी स्पष्ट मालूम हो जाता है कि इस वाक्य का कहनेवाला अवश्य ही रहस्यवादी था । संस्कृत के अन्य ग्रंथों से भी कई और अंश उद्धृत किए जा सकते हैं, जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि रहस्यवाद कोई नई चीज़ नहीं है । श्रीभागवतपुराण तथा श्रीमद्भगवद्गीता में इसके अनेकों उदाहरण पाए जाते हैं । 'तत्त्वमसि' और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' आदि वाक्य बहुत ही प्राचीन हैं ।

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में, भारतवर्ष में, ब्रह्म के अनुभव को ही लोग रस कहते थे । अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि आदि-रस किसे मानना चाहिए ? इस प्रश्न का रहस्यवाद के साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध है, इसलिये इसका अत्यंत संक्षिप्त वर्णन कर दिया जाता है—

धर्मदत्त-नामक संस्कृत के एक विद्वान् ने अद्भुत रस को ही आदि तथा एक रस स्वीकार किया है, जैसा कि निम्न-लिखित श्लोक से प्रकट होगा—

रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते ;
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रसः ।

अर्थात् सब रसों का सार चमत्कार है, और इस कारण सब जगह अद्भुत रस की ही प्रतीति होती है ।

परंतु अधिक लोगों ने शृंगार-रस को ही आदि तथा प्रधान रस माना है । मैं समझता हूँ, इस संबंध में किसी विशेष प्रमाण की आवश्यकता नहीं ; क्योंकि हिंदी के दो-एक ग्रंथों में भी इसका उल्लेख कर दिया गया है ।

शृंगार को आदि-रस माननेवाले ग्रंथों में भोजराज का शृंगार-प्रकाश प्रधान है । सुना है, इसमें लगभग तीस हज़ार श्लोक हैं । अभी तक यह ग्रंथ प्रकाशित न हो सका । मदरास-सरकार के पुस्तकालय में इसकी हस्त-लिखित प्रति विद्यमान है ।

कुछ लोग करुण-रस को भी आदि तथा एक-मात्र रस मानते थे । भवभूति का 'एको रसः करुण एव' इत्यादि श्लोक बहुत ही अधिक प्रसिद्ध है, और इस बात को सिद्ध करता है कि करुण-रस को भी कुछ लोग एक-मात्र तथा आदि-रस मानते थे ।

कुछ वैष्णव-मतावलंबी भक्ति को भी रस मानते हैं, भाव नहीं । श्रीभागवतपुराण की एक टीका में इस विषय पर बहुत ही विस्तृत वाद-विवाद किया गया है कि भक्ति भाव है या रस । कुछ वैष्णव लोग भक्ति को भी रस मानते हैं । वे इसे एक-मात्र तथा आदि-रस मानते हैं । काश्मीर में कुछ शैव हैं । इनमें कुछ ऐसे भी आलंकारिक हैं, जो शांत-रस को ही आदि-रस मानते हैं । बाबू भगवानदास-जी ने अँगरेज़ी में 'भावों का विज्ञान' (The Science of Emotions)-नामक एक ग्रंथ लिखा है । इस पुस्तक से भी लगभग यही ध्वनि निकलती है कि शांत-रस ही आदि तथा प्रधान रस है । रहस्यवादियों के अनुभव भी शांत-रस को ही आदि-रस मानने के लिये संकेत करते हुए मालूम पड़ते हैं । इस अनुभव के अनुसार

'रसो वै सः' ही ठीक है। इस प्रकार कविता तथा दर्शन का मेल हो जाता है, और काव्य, कला तथा दर्शन परस्पर उसी तरह से नहीं लड़ते, जैसे आजकल हिंदू और मुसलमान सिर फुटौवल करते हैं, किंतु भाई-भाई की तरह एक दूसरे से प्रेम-पूर्वक हाथ मिलाते हैं। केवल इतना ही नहीं, धर्म भी तब कविता का मित्र हो जाता है, और दर्शन, धर्म तथा काव्य, तीनों से एक ही फल की प्राप्ति होती है; क्योंकि तीनों का अंतिम उद्देश्य ब्रह्म का दर्शन तथा उसका अनुभव करना ही है।

❀ ❀ ❀

ऊपर इस बात का वर्णन किया गया है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष में भी रहस्यवाद का प्रचार था, और ब्रह्मानंद को ही अग्निपुराण तथा उपनिषद् ग्रंथों में रस कहा है। परंतु धीरे-धीरे कवियों तथा साहित्य-मर्मज्ञों के भाव इस संबंध में बदलने लगे, और साहित्य के रस ने अपना एक स्वतंत्र रूप धारण कर लिया। ऐसा करने में साहित्य के रस और उपनिषदों के रस में बहुत अंतर पड़ गया। हिंदी में साहित्य की सब बातें प्रायः संस्कृत से ही ली गई हैं। परंतु संस्कृत में जो स्वतंत्र विचार थे, वे हिंदी में पूर्ण रूप से कभी नहीं आने पाए। हिंदी के रसों में यह गड़बड़ी और भी विकट रूप धारण कर लेती है, और यह रस तथा ध्वनि आदि का विषय हिंदीवालों के लिये हौआ ही बना रहा है। इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि हिंदी में रस तथा अन्य साहित्य-विषय के आचार्य हुए ही नहीं। मतलब यही है कि इनके ग्रंथों में रस आदि विषयों का यथोचित वर्णन नहीं है। केशवदास, भिखारीदास, देवदत्त तथा मतिराम आदि हिंदी के आचार्यों ने साहित्य पर ग्रंथ लिखे हैं। परंतु इन सब लोगों के ग्रंथों में वह परिपक्वता, वह विचार-पूर्णता, वह विचार-स्वतंत्रता नहीं पाई जाती, जो संस्कृत-ग्रंथों के लेखकों में पाई जाती है। रस पर तो हिंदी-भाषा में अब भी कोई प्रधान ग्रंथ नहीं मिलता। रस का विषय इतना व्यापक तथा गंभीर है कि संस्कृत के लेखकों में भी इस संबंध में मतभेद है। इसमें भी लेश-मात्र संदेह नहीं कि संस्कृत में जो ग्रंथ पीछे लिखे गए हैं, उनमें रस का प्रयोग उसी अर्थ में नहीं किया गया, जिस अर्थ में उपनिषद् के लेखकों ने किया था। हम यह पहले ही दिखला चुके हैं कि अग्नि-पुराण तथा उपनिषदों में 'रस' का प्रयोग 'ब्रह्म के अनुभव' के अर्थ में ही किया गया है। अब हम साहित्य-दर्पण के कुछ अवतरणों को उद्धृत करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे कि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य-दर्पण में रस का प्रयोग स्पष्ट रूप से इस अर्थ में नहीं किया।

साहित्य-दर्पण में रस की परिभाषा यह है—

विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा;
रसतामेति इत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम्।

अर्थात् सहृदयों के हृदय में रति आदि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से व्यक्त होकर रस के रूप को प्राप्त होते हैं।

रस की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि इसमें ब्रह्म के अनुभव की कुछ भी चर्चा नहीं है। इसके बाद साहित्य-दर्पण में लिखा है—

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः ;
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः ;
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।

अर्थात् रस से सतोगुण बढ़ता है। यह अखंड, स्वयं प्रकाशमान, आनंदमय और चमत्कारमय है। रस की उत्पत्ति के समय दूसरे विषय का स्पर्श तक नहीं होता, अतएव यह ब्रह्म के स्वाद के समान होता है। यह अलौकिक चमत्कार है। उस रस का कोई पूर्वजन्म का पुण्यात्मा ही अपने आकार की तरह अभिन्न रूप से स्वाद लेता है।

इन श्लोकों में भी स्पष्ट रूप से रस का ब्रह्म के अनुभव के साथ कोई विशेष संबंध नहीं स्थापित किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि रस के स्वाद को ब्रह्मानंद के समान ही कहा है। परंतु इसके पढ़ने से यही पता चलता है कि यह बात रस की प्रशंसा में ही कही गई है, और रस की ब्रह्मानंद के साथ समता दिखलाना इसका प्रधान उद्देश्य नहीं है।

इसके अतिरिक्त उक्त श्लोक में रस को ब्रह्मानंद के समान कहा है, इसलिये रस और ब्रह्मानंद, दोनों एक नहीं रह जाते। इससे स्पष्ट है कि साहित्य-दर्पण में 'रस' शब्द का प्रयोग ब्रह्म के अनुभव के अर्थ में नहीं किया गया है।

साहित्य-दर्पण में दूसरे स्थल पर लिखा है—

पुण्यवन्तः प्रमिण्वन्ति योगिवद्रससन्ततिम्।

अर्थात् जैसे कोई-कोई योगी लोग ब्रह्म का अनुभव करते हैं, इसी प्रकार कोई-कोई पुण्यात्मा पुरुष ही रस का स्वाद लेते हैं।

इस श्लोक से भी यही पता चलता है कि जिस ब्रह्म का योगी लोग अनुभव करते हैं, वह रस नहीं है। इसलिये ब्रह्म के अनुभव और रस में भेद है। इन कथनों से स्पष्ट है कि साहित्य-दर्पण के रस और ब्रह्म के अनुभव में अंतर है। परंतु ब्रह्म का अनुभव वेदांत-शास्त्र का सिद्धांत है, इसलिये साहित्य-दर्पण और वेदांत-शास्त्र परस्पर लड़ जाते हैं। परंतु उपनिषत्-काल के रस की परिभाषा के अनुकूल वेदांत-शास्त्र भी काव्य का समर्थन करता है; क्योंकि कविता तथा शास्त्र, दोनों के द्वारा उसी एक ही ब्रह्म का अनुभव होता है। ऐसी दशा में वेदांत-शास्त्र काव्य का समर्थन करता है, और दोनों के अंतिम उद्देश्य में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता। रस की इस परिभाषा से रहस्यवाद की पुष्टि हो जाती है, और रहस्यवाद कोई नवीन विषय नहीं रह जाता। यही कारण है कि विष्णुपुराण में काव्य को विष्णु का अंश ही स्वीकार किया है, जैसा कि निम्न-लिखित श्लोक से प्रकट होगा—

काव्यालापाश्च ये केचिद्गीतकान्यखिलानि च;
शब्दमूर्तिधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः।

अर्थात् सब काव्य और संपूर्ण गीत शब्द-रूपधारी भगवान् विष्णु के अंश हैं।

इन सब बातों से और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष के लोग रहस्यवाद से भली भाँति परिचित थे, और दर्शन तथा कविता में पूर्ण रूप से मेल था। यही कारण है कि काव्य-मर्मज्ञों के आगे मोक्ष का भी प्रश्न उठ खड़ा हुआ। इसमें तो कुछ भी संदेह नहीं कि जो व्यक्ति कविता की सहायता से रहस्य-वादी होगा, उसे मोक्ष की प्राप्ति भी अवश्य ही हो जायगी। यही कारण है कि प्राचीन काल में काव्य से भी लोग मोक्ष की प्राप्ति मानते थे, यद्यपि पीछे आकर संस्कृत-ग्रंथों में भी काव्य का यह रूप बहुत लोग भूल गए, तथापि, उस दशा में भी, इन लोगों ने काव्य से मोक्ष की प्राप्ति मानना कभी नहीं छोड़ा। मैंने ऊपर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि साहित्य-दर्पण में भी काव्य का वह प्राचीन रूप नहीं पाया जाता। तथापि ग्रंथ के आरंभ में ही विश्वनाथ कविराज ने लिखा है—

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि;
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते।

अर्थात् केवल काव्य से ही कम बुद्धिवालों को आनंद से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों फ[ल] की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये काव्य के लक्षण [को] निरूपण करते हैं।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि साहित्य-दर्पण[कार] का, रस की उन परिभाषाओं के रहने से, काव्य को मो[क्ष-] प्राप्ति का साधन मानना कहाँ तक युक्ति-संगत है? [इस] प्रश्न पर मैं दूसरे स्थल पर विचार करूँगा; परंतु [य]इतना लिखना अनुचित न होगा कि जिस कवि[का] जीवन नख-शिख-वर्णन ही में चला गया, जिस कवि[ने] जीवन-भर दूसरे कवियों के भावों की चोरी ही में [लगा] दिया, जिसके हृदय में पवित्र भावों ने कभी स्थायी [रूप] से डेरा नहीं डाला, उसे मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं [हो] सकती। वह ब्रह्मानंद का अधिकारी है ही नहीं। [जि]न कवियों के हृदय में कभी पवित्र भाव उत्पन्न ही नहीं हु[ए], जो कवि 'शोहदे' कहे जा सकते हैं, जिन कवियों [की] कृतियों का आधार उनकी अपवित्र भावनाएँ हैं, [भला] उनकी कविता से मन में उच्च भाव कैसे उत्पन्न हो स[कते] हैं? भला उनकी कविता से मोक्ष की प्राप्ति कैसे [हो] सकती है? यह तो सर्वथा असंभव है। यदि किसी कविता से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, तो रहस्य[वाद] कविता उसके लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। लग[भग] इसी बात का समर्थन गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी रामायण में यों किया है—

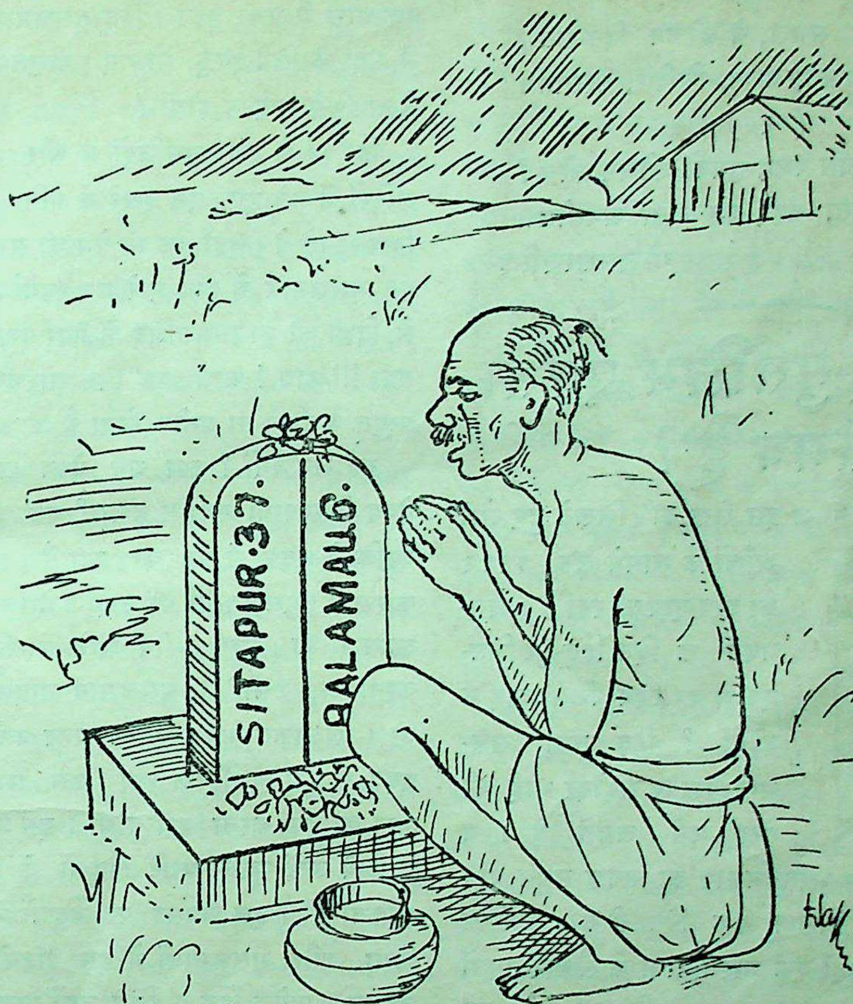
स्याम सुरभि, पय बिसद अति, गुनद करहिं तेहि पा[न];
गिरा ग्राम सिय-राम-जस गावहिं, सुनहिं सुजा[न]।

× × ×

तैसहि सुकबि कबित बुध कहहीं; उपजहिं अनत, अनत छबि ल[हहीं]।
भक्ति-हेतु बिधि-भवन बिहाई; सुमिरत सारद आवत [धाई]।
रामचरित-सर बिनु अन्हवाए; सो स्रम जाय न कोटि उ[पाए]।
कबि-कोबिद अस हृदय बिचारी; गावहिं हरिगुन कलिमल [हारी]।
कीन्हे प्राकृत-जन-गुन-गाना; सिर धुनि गिरा लागि पछि[ताना]।

अवध उपाध्या[य]

अंध-विश्वास



लोचन

(१)

जलते हैं शीतल सजल, ये लोचन दिन-रात ;
एकसाथ रहने लगे, ग्रीष्म, शिशिर, बरसात।

(२)

मोल-तोल से काम क्या, तुमको लोचन लोल ?
जो तुमको भाता वही, बन जाता अनमोल।

गोपालशरणसिंह

क्या हिंदू-मुसलिम एकता संभव है ?



आज इस लेख को लिखते हुए मेरी आँखों के सामने सन् १६१६ का दृश्य नृत्य कर रहा है। रामनवमी के दिन हिंदू-मुसलिम-एकता का दृश्य किसे याद न होगा ? हिंदू तथा मुसलमान परस्पर सहोदर भाई की तरह गले लगते थे। य सन् १६१६ का साल भरत-मिलाप का प्रत्यक्ष समय था। भरत और राम का मिलाप एक पिता के दो पुत्रों का मिलाप था ; परंतु यहाँ एक भारत-माता के सैकड़ों सपूतों का सदियों के पश्चात् सराहनीय सम्मिलन था। इस सम्मिलन में विचित्र आनंद था। राम की झाँकियों को हज़रत के 'बुतशिकन' अनुयायी अपने कंधों पर उठाकर भ्रातृ-स्नेह का देदीप्यमान प्रमाण दे रहे थे। मुसलमान भाई लंबे-लंबे रोली के टीके लगवाकर भारतीयता का नमूना पेश कर रहे थे। इतना ही नहीं, वरन् "सियापति रामचंद्र की जय" की छाप पीठ पर लगवाकर प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। झाँकियों की पवित्र पंक्ति को देखकर मुसलमानों का हृदय भी आनंद के हिलोरे ले रहा था। "सियापत रामचंद्र की जय" के उच्च नाद से आकाश गूँज रहा था। एक नहीं, अनेकों दृश्य देखे। जालंधर का वह शुभ दिन भूलता नहीं, जब मुसलमानों के गिलासों में हिंदुओं ने शर्बत पिया। हिंदुओं के मिठाई के दोनों में से मुसलमानों ने छीन-छीनकर मिठाई खाई। प्रेम की यह अनोखी लीला यहाँ भी समाप्त न हुई। अमृतसर में १३ एप्रिल के दिन जलियाँवाला बाग़ में हिंदू-मुसलिम का भ्रातृत्व-स्नेह एक रक्त-धारा में प्रकट हुआ। हिंदू-मुसलमान परस्पर बाहुपाश में सदा के लिये इकट्ठे सो गए। अमृतसर की यह सुनहरी बेला किसे याद न होगी ?

हिंदुओं के शव मसजिदों में और मुसलमानों के शव मंदिरों में पड़े हुए एक दूसरे के प्रति प्रेम की परा काष्ठा दिखला रहे थे। यहाँ तक भी प्रेम की समाप्ति न हुई। आज एक मुसलमान के हाथ मारे गए स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानंद से, दिल्ली की जामा-मसजिद के मेंबर पर, वेदोच्चार करवाया गया !!! हाय ! आज यह दृश्य आश्चर्य-जनक ही नहीं, प्रत्युत असंभव-सा प्रतीत होता है।

यह सब क्यों ? क्या यह ऐक्य आदर्श न था ? यह ऐक्य चिरस्थायी क्यों न हुआ ? यह प्रश्न आज प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में घर कर रहा है। इसका एक विशेष कारण है। मुसलमानों का उपर्युक्त प्रेम-भाव निज स्वार्थ के लक्ष्य से था। जिस तृतीय शक्ति का हिंदुओं को सामना करना था, उसी से मुसलमान भाइयों को भी लड़ना था। ख़िलाफ़त का ज़बरदस्त प्रश्न प्रत्येक मुसलमान के हृदय में छुरी चुभो रहा था। उस समय ख़िलाफ़त के प्रश्न को हल करना कर्तव्य था। इस प्रश्न को हल करने के लिये उन्हें पचीस कोटि हिंदुओं के सहयोग की आवश्यकता थी। इस अवसर पर हिंदुओं ने पूरा-पूरा सहयोग दिया, और मुसलमानों ने इस सहयोग का पूरा लाभ उठाया। प्रत्येक हिंदू के लिये जहाँ स्वराज और खादी का प्रश्न था, वहाँ हिंदू-मात्र ने ख़िलाफ़त के प्रश्न को ख़ूब अपनाया। ख़िलाफ़त-सभाएँ हुईं, कमेटियाँ बनाई गईं। इनमें हिंदू दल-बल-सहित सम्मिलित हुए। इस विपत्ति के समय पर हिंदुओं ने तन, मन और धन से उनकी सहायता की। इस सम्मिलित भारतीय शक्ति के आगे राज्याधिकारिणी तृतीय शक्ति को झुकना पड़ा। भारत की इस महती शक्ति के सुसंगठित हो जाने से ख़िलाफ़त का प्रश्न श्वेत महाप्रभुओं को हल ही करना पड़ा। बस, फिर स्वार्थपरायण जाति (मुसलमानों) का इस ऐक्य से मुख मोड़ना स्वाभाविक ही था। स्वराज्य आदि का कोई भी प्रश्न उनके लिये महत्त्व न रखता था। ख़िलाफ़त का प्रश्न हल होते ही उन्हें नौकरशाही के साथ हेलमेल करने की सूझी। हिंदुओं ने सच्चे हृदय से जो उनकी

सेवा की थी, उसके लिये अनोखी कृतज्ञता प्रकाशित की गई !

रिफ़ॉर्म ऐक्ट के पास हो जाने के पश्चात् मुहम्मडन प्रश्न को ख़ूब बढ़ाया गया। यहीं से अपने उचित अथवा अनुचित अधिकार जमाने प्रारंभ कर दिए गए। इसी अवसर पर हिंदू नेताओं ने पहली भारी भूल की। हमारे कुछ नेता, ब्राह्मणत्व का आदर्श जतलाते हुए, त्याग का ही उपदेश देते रहे। कुछ नेता हिंदू-जाति को इस समय निर्बल और मुसलिम-शक्ति को बलवती देखकर उसके आगे झुक गए, और अपनी लीडरी को काँख में दबाते फिरे। नाम के 'लीडर' बने हुए लोग अपनी जाति को सैकड़ों अधिकारों से वंचित करते गए।

दूसरी ओर मुसलमान पदाधिकारियों ने अधिकार जमाना शुरू कर दिया। पंजाब तथा अन्य मुसलिम-प्रधान प्रांतों में युनिवर्सिटियों में पढ़ने में, सरकारी नौकरियों को प्राप्त करने में और कौंसिल-प्रवेशादि अधिकारों में हिंदुओं को बहुत कुछ वंचित कर दिया गया। मुसलमानों ने विशेष अधिकार प्राप्त कर लिए। इस समय यदि हमारी आर्य-जाति के अंदर कुछ भी संगठन होता, तो हम प्रति-पक्षी की तरह मुक़ाबला करते, उस समय अपने अधिकारों को सुरक्षित रखते। पर यह सब आर्य-जाति के भाग्य में भला कहाँ ? हम इन्हीं बातों के आदी हैं।

आर्य-जाति के लाल जयचंद ने पारस्परिक फूट के कारण यवनों को भारत में स्वयं आमंत्रित किया। सोमनाथ के त्याग-मूर्ति ब्राह्मण-पुजारियों ने अपने हाथों सर्वस्व यवनों को सौंपा। अब भी उन्हीं की संतति अपने पूर्वजों के आदर्श के पीछे लगी हुई है। फिर अगर हमने सात कोटि मुसलमानों के अत्याचारों से घायल हो अपने अधिकारों को गँवाया, तो कौन-सा आश्चर्य है ?

जब तक यह फूट और व्यक्तिगत स्वार्थ हममें घर किए हुए हैं, तब तक एक तान में तनी हुई एवं सुसंगठित मुसलिम-शक्ति से मेल असंभव है !!

तो क्या इस अवस्था में यह कहना चाहिए कि सन् १९१९ का वर्ष फिर न आवेगा ? क्या हिंदू-मुसलिम-ऐक्य असंभव है ? कदापि नहीं।

इसमें संदेह नहीं कि गत वर्षों की घटनाएँ कुछ ऐसी ही हैं कि उनके देखते ऐक्य का होना एक क्षण के लिये भी असंभव कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी !!

निस्संदेह हिंदू-अबलाओं पर बलात्कार हुए ! मालावार, कोहाट, मुलतान, सहारनपुर, बंगाल और पटने के मुसलमानों ने सैकड़ों अत्याचार किए !! स्त्रियाँ भगाई गईं ! दिन दहाड़े क़त्ल आम हुए !! दुधमुँहे नन्हे-नन्हे बच्चों को माता के स्तनों से छुड़ाकर, पकड़कर, उनकी टाँगें चीर डाली गईं !! बच्चे कुओं में फेंके गए !! सच पूछा जाय, तो इन पैशाचिक अत्याचारों का वर्णन करते हुए हमारा सिर लज्जा के साथ झुक जाता है। अपनी जाति पर गर्व होने की अपेक्षा शर्म तथा खेद के आँसू बहने लगते हैं।

मुसलमानों के प्रसिद्ध नेताओं ने, मोपला-कांड में, हिंदुओं को दोषी बतलाया। इस उद्दंडता को जानते हुए भी किसी हिंदू कांग्रेसी-नेता में विरोध करने का नैतिक बल न आया। ऐसा करने से उनकी कौंसिलों की मेंबरी जो जाती थी। यह है हमारी जाति की अवस्था ! दूसरी ओर मुसलमान-नेताओं में अधिक लोग ऐसे हैं, जो 'काफ़िरों' पर किए गए अत्याचारों के कारण मुसलमान भाइयों को दीनदार समझते हैं।

लिखने का सारांश यह कि इस प्रकार की शक्तिसंपन्न जाति से मेल करने के लिये हिंदू-संगठन को दृढ़ बनाना प्रत्येक आर्य की दृढ़ भावना होनी चाहिए। हिंदू-संगठन करना किसी से विरोध करना नहीं, परंतु अपने ही छिद्रों को बंद करना तथा निर्बल अंगों को सबल बनाना है। कहा जाता है, वायु अग्नि का मित्र है। परंतु वह उसी अवस्था में अग्नि का मित्र रह सकता है, जब अग्नि अपने पूर्ण ओजस्वी रूप में प्रकाशमान हो। जंगल की देदीप्यमान अग्नि के लिये वायु मित्रता का काम देती है। पर अग्नि की ओजस्विता दूर होने पर वही वायु अग्नि के सर्वनाश का कारण होती है। दीपक की अग्नि नष्ट होने का वायु ही कारण बनती है। यही अवस्था आज हमारी जाति की है। हम निर्बल हैं। हमारे प्रत्येक अंग (दलित जातियाँ, विधवाएँ और अछूत) बिखरे पड़े हैं। जब हम संपूर्ण अंगों से युक्त हो, प्रौढ़ होकर यौवनावस्था में खड़े होंगे, तब प्रत्येक मुसलमान भाई हिंदुओं की दाहनी भुजा होगा। जब तक हमारी जाति बलवती तथा यौवनवती हुए विना इन सात कोटि सुसंगठित भाइयों के सम्मुख खड़ी रहेगी, तब तक पच्चीस कोटि हिंदुओं को नष्ट करने में वे अवश्य ही सफल-मनोरथ होंगे।

अपनी निर्बलताओं को दूर किए विना दूसरे को दोष देना जगत् में अपनी ही हँसी कराना है।

विशेष अत्याचार के होने पर हम अलग-अलग चिल्ला उठते हैं कि हम पर अन्याय हुआ ! कहा जाता है, श्वेत महाप्रभु या अन्य राजकर्मचारी मुसलमान भाइयों का पक्ष लेकर हिंदुओं पर अन्याय करते हैं ! ! करें क्यों न ? भारी पल्ले का कौन साथी नहीं होता ?

हिंदू-संगठन का प्रथम उद्देश्य है हिंदू-समाज की कुरीतियों और उनके प्रबल अत्याचारों को— बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह और बलात् वैधव्य आदि विशृंखलताओं को—रोकना । दूसरा उद्देश्य है उन बहिष्कृत भाइयों को, जो अपनी जाति के संकीर्णता-पूर्ण विचारों के कारण विधर्मी बन गए हैं, फिर गले लगाकर अपने धर्म में उनका प्रवेश करवाना । इसका मंगलाचरण मलकानों की शुद्धि से किया जा चुका है । परंतु जितना कार्य आज तक किया जा चुका है, उससे कई गुना अधिक कार्य करने की आवश्यकता है । तभी हम अपनी रक्षा कर सकते हैं । तीसरा उद्देश्य समाज की बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित कर हिंदू-जाति के सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति को दृढ़ करना है । चौथा और अंतिम उद्देश्य है आततायियों को समुचित रूप से दंड देना ।

यद्यपि इस संगठन की बागडोर सुयोग्य नेतागण अपने हाथों में ले रहे हैं, तो भी इन उद्देश्यों के पालन करने में शिथिलता आ जाती है । इस संगठन के कई एक ऐसे व्यक्ति भी मुखिया बन बैठते हैं, जिन्होंने इस नेतृत्व को 'कौंसिल-प्रवेश' का साधन बना लिया है । बस, यहीं से "ईंट का घर मट्टी बनना आरंभ हो जाता है" । कौंसिल-प्रवेश के समय 'हिंदू-संगठन' की दुहाई सुन पड़ती है । जब घुस जाते हैं, तो हिंदू कौन थे, यह सब भूल जाते हैं । कौंसिल में घुसते ही उन्हीं संगठित मुसलमानों की तान के साथ तान मिलाकर नौकरशाही को ख़ुश करना होता है ।

जब हमारी जाति में उपर्युक्त दुर्बलताएँ दूर हो जायँगी, कौंसिल और असेंबली में बैठे हुए भी ध्यान रहेगा कि हम हिंदू-जाति के प्रतिनिधि हैं, जाति के प्रति कर्तव्य-पालन की धुन अंतरात्मा में लगेगी, तभी हिंदू-संगठन की नींव दृढ़ होगी । कौंसिलों, असेंबलियों अथवा एकता-कानफ़्रेंस में सच्चे हृदय से आर्य-जाति के प्रतिनिधि बनकर जब हम आर्यत्व की ध्वनि गुँजाया करेंगे, तभी जाति की आवाज़ एक स्वर से हमारा समर्थन करेगी । तभी जाति की नींव दृढ़ तथा बलवती होगी ।

अपनी निर्बलताओं के कारण हिंदू महा दुःख भोग रहे हैं । हमारे नेता, हमारे गण्य-मान्य संपादक हिंदू-संगठन का कार्य करते हुए पकड़े जाते हैं, गोली के शिकार किए जाते हैं, फिर भी हमारी जाति के व्यक्तियों की यह नादानी कि अपने सच्चे सेवकों के विरुद्ध आवाज़ उठाने की धृष्टता करते हैं । अपने व्यक्तियों के पकड़े जाने पर ज़मानत देने में डर लगता है, कहीं शक्तिशाली मुसलमानों के विरुद्ध हो जाने से नौकरशाही के बुरे न बन जायँ । इधर तो यह हमारी अवस्था है, और उधर मुसलिम-शिरोमणि नेता, 'रँगीला-रसूल' के साथ 'न्याय' हो जाने पर भी खुल्लमखुल्ला कह रहे हैं—"राजपाल यदि रँगीला-रसूल का द्वितीय संस्करण छपवावेगा, तो मैं अपने हाथों उसका क़त्ल करूँगा।" एक आर्य भाई के प्रति ये कठोर शब्द सुनकर नौकरशाही तो भला क्यों कुछ करेगी ! बरन् हमारे ही नेतागण कहते हैं कि सचमुच रँगीला-रसूल व्यर्थ की पुस्तक है । यहीं न, भीतरी संगठन किए बिना एकता-कानफ़्रेंस कर बैठें !!

हमारे नेता क़त्ल किए जाते हैं ; क्योंकि वे दलितों अथवा अबला बहनों की रक्षा करते हैं । पर उधर मुसलमान-जाति का भी संगठन है, जो प्रत्यक्ष बात को छिपाने के लिये भी लाखों की थैली खोल देते हैं, दो बार फ़ैसला सुनकर भी संतुष्ट नहीं होते, और प्रिवी कौंसिल तक दौड़ जाते हैं । यह है जाति-संगठन का प्रत्यक्ष नमूना । उनके बड़े नेताओं से लेकर छोटे ताँगेवाले तक एक ही नीति का अवलंबन करते हैं । यह सब कुछ हिंदू-संगठन की न्यूनता, हिंदू-जाति की निर्बलता और मुसलमानों के सामाजिक संघ का ही परिणाम है ।

हिंदू-सभा का उद्देश्य कौंसिल में प्रवेश करना नहीं है । अछूतोद्धार, संरक्षण-गृह (Rescue Home) आदि बनाने चाहिए । नवयुवकों के लिये व्यायाम-शालाएँ बनें जिससे ये वीर भाई सत्याग्रह आदि में भाग ले सकें । तब भविष्य में मसजिद के सामने बाजा बजने आदि का प्रश्न स्वयमेव मिट जायगा । विजातियों के भली भाँति समझ में आ जायगा कि हम दोनों समान बलधारी हैं । यदि हम कोई अनुचित कार्य व पैशाचिक अत्याचार करेंगे, तो यह पचीस कोटि

सम्मिलित शक्ति बदला लेगी। जब यह बात उनके दिमाग़ में अच्छी तरह घर कर जायगी, तब एकता भी स्थापित हो सकेगी। इस प्रकार की एकता की नींव ऐसी दृढ़ और चिरस्थायी होगी कि फिर नौकरशाही के दिए हुए कुछ प्रलोभनों में एक भी भारत का पुत्र विच्छिन्न न होगा। तब फिर एक दृढ़ भरत-मिलाप होगा। उस मिलाप में कोई विच्छेद न कर सकेगा। तब एक सन् १९१९ का ही नहीं, वरन् अनेकों ऐसे भरत-मिलाप के दृश्य होंगे। इस बलवती शक्ति के सम्मुख सबको झुकना पड़ेगा। तब सम्मिलन की तड़प सबके हृदय में उठेगी, और फिर हिंदू-मुसलिम-एकता भी अवश्य संभव होगी।*

गोपालदेवी हिंदी-प्रभाकर

शांति †

(१)

छान डाला है सारी दुनिया को,
हर जगह और ही नज़ारा है;
खोज मारा, नहीं मिली, जानें,
शांति का किसने खोज मारा है।

(२)

उद्भिजों में है एक संघर्षण,
ख़ार आपस में खाए रहते हैं;
एक की जम के एक छाती पर,
जम-से आसन जमाए रहते हैं।

(३)

मूक हैं, बेज़बाँ हैं, शांत नहीं,
खाके पत्तों को घास को चर के;
सींगवाले हैं, सींगवालों को,
मार देते हैं सींग पर धर के।

(४)

शांति देखी न पक्षियों में भी,
हैं लँडूरे मगर अकड़ते हैं;
कुछ नहीं, चार चोंच चारे पर,
चार ही चार चोंच लड़ते हैं।

(५)

जब है 'व्ल्यू-क्लेक्स-क्लैन' दुनिया में,
क्या हैं सिद्धांत शांति के कोरे;
गाड़ देना ही चाहते हैं जब,
ज़िंदा कालों को ग़ोर में गोरे।

(६)

देखकर कौर और के मुँह का,
राल टपकाते छीन लेने को;
ढूँढते नुक्तःचीं हैं यक नुक्तः,
चीनियों से भी चीन लेने को।

(७)

राक्षसी वृत्तियाँ हैं राष्ट्रों की,
मौक़ा पावें तो बस हड़प जाएँ;
इनकी करतूत का जो नंगा चित्र,
देख लें आप तो तड़प जाएँ।

(८)

मोल लेते लड़ाई फिरते हैं,
क्या नहीं ये ख़बीस करते हैं;
फिर भी दुनिया को पीसने के लिये,
कान्फ़्रेंस ऑफ़् पीस करते हैं।

(९)

क्यों न खलता खले खलों की कहो,
हम क्षमा शांति जानते ही नहीं;
मानरक्षा करें न क्यों हिंदू?
जब मुसलमान मानते ही नहीं।

(१०)

ऐसी हालत में कौन हिंदू है,
अब भी जो शांति धारना सीखे;
मोम की नाक मारवाड़ी भी,
खा के जब मार मारना सीखे।

(११)

क्रांति में शांति! भ्रांति है कि नहीं,
कह दें जो शांति के हों अनुयायी;
विश्व-भर में अशांति है, फिर भी,
शांति यह आपने कहाँ पाई।

जगदंबाप्रसाद मिश्र "हितैषी"

---

* पंजाब-प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में लेखिका ने यह लेख पढ़ा था। उन्हें इस पर सम्मेलन की ओर से पारितोषिक भी मिला था।—सु०-सं०

† कलकत्ता-कवि-सम्मेलन में 'शांति'-विषय पर पठित

अबोध

आधीरात, पुंजीभूत तम से भरी हुई,
मूक, किसी डर से डरी हुई,
पाकर न इष्ट मग मग में,
थम-सी गई थी बीच डग में !

किंतु जानकी की माँ सकी न टाल,
चणकाल
निज चिरयात्रा। विना जाने देश के लिये
चली गई युग्म नेत्र बंद किए।
उस तमसा का मर्म भेदकर,
घोरतर शांति समुच्छेद कर,
हाहाकार घर में हुआ नया ;
निशा का अटूट वह मौनव्रत टूट गया !

किंतु यह सारा हाल
जानकी न जान सकी, बेख़बर सोती हुई।
जागी जब प्रातःकाल,
हेतु कुछ जाने विना शंकित-सी होती हुई,
"माँ-माँ" कह,
रो उठी तुरंत वह।

पोंछ निज नेत्र-नीर अंचल के पट से,
जीजी गई उसके समीप उठ झट-से।
ज्यों-त्यों कर मन को कड़ा किया,
और पुचकार उसे गोद में उठा लिया।

एकाएक अर्थी पर
माँ को पड़ी देखकर,
जीजी की गोदी से कूद पड़ने के लिये,
करके करुण रोर,
रोकर लगाने लगी पूरा ज़ोर।—
"जाते हैं कहाँ वे अरे माँ को लिए !
मुझको इसी पर बिठा दे ; अरी जीजी कह,
खटिया-सी कैसी यह !
छोड़ती नहीं क्यों मुझे,
देख अभी माँ से पिटवाऊँ तुझे !
हा-हा करती हूँ, देख आने दे ;
जीजी अरी, छोड़, मुझे माँ के साथ जाने दे।"

किंतु हाय ! जीजी जकड़े ही रही उसको।
छाती से लगाके पकड़े ही रही उसको।
बस, वह रोती ही रही वहाँ
जान भी सकी न यह—माँ चली गई कहाँ !

सियारामशरण गुप्त

विवाह-विज्ञापन

दूसरा दृश्य

स्थान—दीवान बहादुर के घर का एक भाग

(एक पत्र लिए झुँझलाए हुए दीवान बहादुर का प्रवेश)

दीवान०—हरामज़ादे दो-दो कौड़ी की नौकरी के पीछे सड़ी गलियों में जूतियाँ चटकाते फिरते थे, मैंने नौकरी लगवाकर गधे से आदमी बनाया; उसके बदले में यह सलूक! जाओ सालो, पंद्रह रुपिल्ली महीना पाकर भी अगर तुम मेरी लड़की से शादी करने में नाहीं-नुकर करते हो, तो मैं भी तुम्हें जूते की नोक पर मारता हूँ। कभी तुम्हारे साथ शादी न करूँगा, चाहे लड़की क्वाँरी ही रह जाय। ख़बरदार, अब जो कभी मुझे इसके लिये लिखा, ! इन जाति-बिरादरीवालों को तो जूते-ही-जूते चखावे, और कुछ न करे। तुम्हारी दुम में रस्सा ! ठहरो तो—

(पत्र को पृथ्वी पर पटककर एक हाथ में जूता ले उससे पीटता हुआ) ऐसे जातिवालों को तो भगवान जाने—कुत्तों से नुचवावे ; शहद में डबोकर लाल चींटियों में छोड़ दे।

(तहसीलदार साहब का प्रवेश; उन्हें न देखकर) चाँद हंतरा कर दे ; जीता ही दीवार में चिनवा दे। बस।

(जूता पहनकर पत्र को ठुकराकर खड़ा हो जाता है)

तहसीलदार—कहिए दीवान बहादुर साहब—

दीवान० —(तहसीलदार से) कहिए अपनी ऐसी-तैसी—

तहसील०—आज तो आप—

दीवान०—जी हाँ, आज तो मैं—बस, कहे जाइए। आपको और काम ही क्या है ? न आपके कोई लड़की है, जिसके ब्याह की आपको रत्ती-भर भी चिंता हो। (पत्र की ओर देखकर) उल्लू के पट्ठे !

तहसील०—तो फिर बात क्या है ? कुछ तो बतलाइए !

दीवान०—बात यही है कि कोई दुष्ट नहीं मिलता।

तहसील०—'दुष्ट' नहीं मिलता ! तो क्या बाल्टीदेवी के लिये वर ?

दीवान०—और क्या आपका सर ?

तहसील०—भला आपके लिये लड़कों की क्या कमी ?

दीवान०—मेरे लिये नहीं जनाब, मेरी लड़की के लिये ; होश में हैं या नहीं आप ?

तहसील०—जी, मेरा वही मतलब था।

दीवान०—जी में आता है कि बुढ़ापे में ईसाई हो जाऊँ।

तहसील०—आप तो समाज-सुधारक हैं।

दीवान०—जी हाँ, हूँ तो। पर नतीजा ?

तहसील०—तो फिर जातिवालों को तो मारिए गोली, जैसा कि पहले आप लेखों और व्याख्यानों में कहते रहे हैं, और लड़की का व्याह उसके अनुरूप वर से कर दीजिए, चाहे वह किसी भी जाति का हो।

दीवान०—मैं आपसे यह कहता हूँ—तनिक आप भी सोचिए—कि इस लड़की को पढ़ाते-पढ़ाते मेरी चाँद गंजी हो गई ; जितना धन बटोरा था, उसका आधा ही रह गया। इसकी मा मुझको इस इल्लत में फँसाकर आप स्वर्ग में मौज कर रही है।

तहसील०—(सुनी अनसुनी करके) आपने सच कहा, ईश्वर ने कोई जाति-पाँति नहीं बनाई, मनुष्यों ने बना ली थी, जिसकी केवल अब लीक पीटी जा रही है।

दीवान०—फिर भी इसके लिये कोई वर न मिला !

तहसील०—ऐसी भी क्या जाति-पाँति कि योग्य के सिर पर अयोग्य पैर रख रहा है !

दीवान०—न-जाने दुष्ट कहाँ सो रहे हैं ?

तहसील०—इसी राक्षसी जाति-पाँति की बदौलत पुण्यात्माओं को दुष्टात्मा अपने से नीचा समझ रहे हैं ! सारी हिंदू-जाति धोके के पेड़ की डाल पर चढ़कर उस पर अपने आप ही झूठे घमंड का कुल्हाड़ा मार रही और दिन-पर-दिन नष्ट हो रही है—हँसती हुई !

दीवान०—जी वोही तो, मानो मेरी लड़की ही दुनिया में प्रतिदिन बड़ी हो रही है, लड़के कहीं बड़े ही नहीं हो रहे ! इसलिये अकेले मुझे ही ब्याह की चिंता खाए डालती है, लड़केवालों के कान पर कहीं जूँ भी नहीं रेंगती ! देखो तमाशा !

तहसील०—स्वामीजी ने हिंदू-जाति का रोग पहचाना था।

दीवान०—जब कि मैं रुपए देने को तैयार हूँ, फिर भी कोई मूर्ख इधर नहीं फटकता !

तहसील०—वे तो 'सत्यार्थ-प्रकाश' में साफ़ लिख गए हैं कि जाति गुण-कर्म-स्वभाव से मानी जानी चाहिए।

दीवान०—कौन जानता है कि मैं जाति-पाँति का विचार करता हूँ ? लोग तो मुझे समाज-सुधारक ही समझते हैं। फिर भी, हिंदुओं के दस-बारह करोड़ लड़कों में से मुझे एक भी नहीं मिल रहा है !

तहसील०—यदि कुछ दिन और यह जाति-पाँति का झगड़ा चला, तो हिंदू-जाति निश्चय रसातल को चली जायगी।

दीवान०—भला सोचो तो, क्या किसी इक्केवाले से कर दूँ ?

तहसील०—भला यह कौन-सा न्याय है कि योग्य लड़के को योग्य लड़की न मिले, और योग्य लड़की को योग्य लड़का !

दीवान०—हे भगवन्, ख़बरदार जो तूने अब कभी भी मुझे लड़की दी तो, वरना तू जानियो ! (ठंडे होकर) तहसीलदार साहब, आपने तो कह दिया; भला यह भी तो सोचिए कि जब अपनी ही जाति में नहीं मिल रहा, तो दूसरी जाति में कहाँ से मिलेगा ? जब अपने ही भाई साथ नहीं दे रहे, तो दूसरे क्यों देंगे ? सच बात तो यह है—

तहसील०—यही तो आपकी भूल है। हिंदुओं में तो सनातन से यही बात चली आ रही है कि भाई ही भाई का बुरा चीतता है ; और जिससे किसी तरह का कोई संबंध नहीं, वही साथ देता है ! जहाँ अपने लोग जान लेने को तैयार हैं, वहाँ दूसरे बचाने के लिये भी तैयार हो जाते हैं ! यही कारण है कि यह जाति अभी तक मरी नहीं, और दूसरों के पैरों पर खड़ी होकर लष्टम्-पष्टम् चली जा रही है।

दीवान०—अच्छा, अब इन बातों को जाने दीजिए ; यह बताइए, लड़की का ब्याह कैसे हो—वर कहाँ मिले ?

तहसील०—मैं सच कहता हूँ, बाल्टी-जैसी सुंदरी और सुशीला कन्या के लिये विवाह की इच्छा रखनेवाले लड़कों को नंगे पैरों दौड़ आना चाहिए, और आपके हाथ जोड़कर और पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ाकर

आपसे प्रार्थना पर प्रार्थना करनी चाहिए। मैं लड़का होता, तो मैं तो ऐसा ही करता।

दीवान०—आपका कहना ठीक है, लड़का होता, तब तो मैं भी ऐसा ही करता—पर अब क्या न होना चाहिए, क्या होना चाहिए था, और क्या हो रहा है, इस पर व्यर्थ तर्क-वितर्क न करके यह बतलाइए कि अब होना क्या चाहिए।

तहसील०—(सोचता हुआ) मेरी राय तो यह है कि इसमें कुछ बुराई नहीं है।

दीवान०—किसमें ?

तहसील०—(न सुनकर) मैं आपसे पूछता हूँ, 'स्वयंवर' और क्या था ? ऐसे समय में दुनिया यही करती आई है।

दीवान०—ऐसे समय में दुनिया क्या करती आई है ? क्या दुनिया में कभी और भी किसी पर यह विपत्ति पड़ी है ? मैं तो इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं। यदि कभी किसी पर पड़ी होगी, तो अवश्य ही वह सिड़ी हो गया होगा, या अफ़ीम खाकर सो रहा होगा।

तहसील०—(अपनी धुन में) बस, वही उपाय है।

दीवान०—कौन-सा ? अफ़ीम खा लूँ ?

तहसील०—जो अभी मैंने आपको बताया।

दीवान०—आपने तो मुझे कुछ भी नहीं बताया।

तहसील०—मैंने अभी कहा न कि वह काम यों किया जाय ?

दीवान०—आपने अभी कुछ भी नहीं कहा कि कौन-सा काम कैसे कर दिया जाय।

तहसील०—आजकल तो यह चाल ही चल पड़ी है, और सच पूछिए तो इसमें कोई हानि भी नहीं है।

दीवान०—सच पूछिए तो किसमें कोई भी हानि नहीं है ?

तहसील०—समाचारपत्रों में छपाने में।

दीवान०—(चौंककर) हद हो गई ! क्या मेरे कुनबे की बदनामी कराने का इरादा है ? ख़ूब सोची, वाह ! 'मुल्ला की दौड़ मसजिद तक' !

तहसील०—वह कोई आपके नाम से थोड़े ही छपेगा ?

दीवान०—तो क्या आपके नाम से छपेगा ?

तहसील०—हानि ही क्या है ?

दीवान०—बाप तो मैं, और विज्ञापन आपके नाम छपे ! यह भी एक ही कही !

तहसील०—ऐसा तो होता ही है; एक के लिये दूसरा तीसरे नाम से विज्ञापन छपाता है, जिससे चौथे को कभी यह पता ही न लगे कि यह किसने छपाया है।

दीवान०—जब यही नहीं पता लगता कि किसने छपाया है, तो फिर उससे लाभ ही क्या हुआ ? मैंने विज्ञापन देखे हैं, पर मैं उनका क़ायल नहीं। भला, गुमनाम विज्ञापन पर कौन ध्यान देगा ? हुँः, विज्ञापन हुआ, छायावाद की कविता हो गई, जिसे कल्पित नाम ही छपाने में शोभा है !

तहसील०—क्षमा कीजिए, आपको अभी इसका मालूम नहीं। गुमनाम विज्ञापन पर बहुत-से गुमनाम लोग आकर्षित हो जाते हैं। पीछे यदि काम होता दी तो—एक दूसरे से पूरा परिचय हो जाता है। यदि दो एक दूसरे की सब बातें जानकर संतुष्ट हो जायँ, विवाह हो जाता है, वरना अपना-अपना रास्ता पकड़ते हैं।

दीवान०—तो क्या सचमुच ही आपकी राय है कि—

तहसील०—जी, मेरी तो सचमुच ही राय है कि—

दीवान०—आप इसमें कोई हानि नहीं देखते ?

तहसील०—मैं तो इसमें कोई हानि नहीं देखता

दीवान०—यह भी नहीं कि लोग समझेंगे कि अ जाति में हम कोई ऐसे-ही-वैसे हैं ?

तहसील०—जब लोगों को पता ही नहीं चलेगा किसका विज्ञापन है, तो समझेगा कोई क्या ?

दीवान०—अच्छा, तो फिर लिखिए।

तहसील०—किस नमूने का ?

दीवान०—अब यह सब आप जानें।

तहसील०—(सोचता हुआ) ऐसे विज्ञापन तो छपते ही रहते हैं। (जेब में से 'बाँगड़ू-समाचार' का अंक निकालता है)

दीवान०—इसमें कहाँ से आया, यह तो मासिक पत्रिका है ?

तहसील०—नहीं, यह मासिक पत्रिका नहीं है, 'बाँ समाचार' का विशेषांक है। दूसरे, अब तो मा पत्रिकाएँ भी इस प्रकार के विज्ञापन छापने लगी हैं।

दीवान०—लाओ देखूँ। (खोलता हुआ) बै

तो मैं समाज-सुधारक, पर अब जाति-पाँति तोड़ने की बात सुनते ही न-जाने क्यों मेरा हृदय काँपने लगता है।

तहसील०—बुढ़ापे की आमद के कारण दृढ़ निश्चय का स्थान धीरे-धीरे संशय छीन रहा है।

दीवान०—पर तो भी यदि कोई अच्छा वर मिल गया, तो मैं उससे कर ही दूँगा।

तहसील०—मैं तो पहले ही कह चुका कि इसमें कोई हानि नहीं है।

दीवान०—(कुछ सोचकर, फिर प्रसन्न होकर) मैं देखता हूँ कि इसमें चतुराई की भी आवश्यकता है।

तहसील०—कैसी ?

दीवान०—मान लो, लड़का मुझे पसंद आ गया, तो मैं उससे कह दूँगा, मेरी गुणवती लड़की केवल आपको ही हृदय से चाहती है, यदि आपने उससे विवाह न किया, तो वह संखिया खाकर सो रहेगी।

तहसील०—यह आपने ख़ूब सोची! इससे अवश्य ही उसका दिल पिघल जायगा।

दीवान०—यही नहीं, मैं लड़की से भी उसकी सखी द्वारा कहला दूँगा कि अमुक सज्जन तुम पर सच्चा प्रेम रखते हैं, और प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि यदि तुमसे विवाह न हुआ, तो किसी भी दूसरी से न करके सीधा दक्षिणी आफ़्रिका का टिकट कटा लेंगे।

तहसील०—वाह-वाह ! वाह दीवान, बहादुर साहब, वाह ! कितनी दूर की सोची है! बस, यही तो आपकी तारीफ़ है।

दीवान०—जब मैंने सरकार को चकमा देकर दीवान-बहादुरी प्राप्त कर ली तो क्या मैं एक अनुभवहीन और भावुकता के कारण आधा-सिड़ी लड़का अपनी लड़की के लिये नहीं फँसा सकता था! वह तो यह कहो कि अपनी ही कुछ मानसिक दुर्बलता के कारण अभी तक जाति-पाँति के जाल में फँसा हुआ था, और बाहर निकलने का कोई मार्ग न मिलने से छटपटा रहा था। अब यह विज्ञापन का मार्ग बहुत ही बढ़िया मिला।

तहसील०—ख़ूब !

दीवान०—बल्कि मैं तो यह सोचता हूँ कि लड़की से भी पत्र लिखवा दूँगा। इसका भी असर लड़के पर—

तहसील०—अजी, क्या पूछते हैं!

दीवान०—मेरे मन का लड़का मिल जाना चाहिए ; बस, इतनी ही बात है।

तहसील०—ठीक है, आपने अच्छी सोची।

दीवान०—(समाचार पत्र पर दृष्टि डालते ही) लो ! 'राम मिले, और सो भी पैरों !' एक विज्ञापन तो यह रहा।

तहसील०—क्या है, पढ़िए तो ?

दीवान०—बहुत बड़ा है, बिना चश्मे के इतना बड़ा मैं पढ़ न सकूँगा। लीजिए, आप ही पढ़िए।

तहसील०—लाइए। (पढ़ता है, दीवान बहादुर भी साथ-साथ पढ़ने का प्रयत्न करते हैं, पर पीछे रह-रह जाते हैं; दोनों पढ़ते-पढ़ते एक दूसरे की ओर देखते और हाथ से संकेत करते जाते हैं)

आवश्यकता है

कामदेव के समान एक अत्यंत सुंदर, अत्यंत सुशिक्षित, अत्यंत सुप्रसिद्ध, अत्यंत सुलेखक, अत्यंत सुकवि, अत्यंत सुस्वस्थ, अत्यंत सुसमृद्धिशाली, अत्यंत सुलड़के के लिये, एक अत्यंत सुरूपवती, अत्यंत सुगुणवती, अत्यंत सुशिक्षिता, अत्यंत विनम्रा, अत्यंत मृदु-भाषिणी, अत्यंत आज्ञाकारिणी, अत्यंत साहित्य-प्रेमिका, अत्यंत सुकन्या की। लड़का गद्य व पद्य लिखने में अत्यंत कुशल तो है ही, इंजीनियरी, डॉक्टरी, प्रोफ़ेसरी, एडीटरी, टिकट-कलक्टरी आदि विद्याएँ भी अत्यंत जानता है। स्थावर व जंगम संपत्ति कई लाख की है ; घराना एशिया-भर में नामी है ; मासिक आय दस हज़ार रुपए, ढाई आने की है। अत्यंत समाज-सुधारक होने के कारण जाति-बंधन से अत्यंत मुक्त है, अर्थात् किसी भी जाति की कन्या अत्यंत ग्राह्य होगी, यदि वह इस योग्य समझी गई। विवाह के बाद लड़का अपनी धर्मपत्नी को लेकर विलायत जाने का विचार रखता है। ससुर-पद के इच्छुकों के लिये फ़ोटो सहित पत्र-व्यवहार करना अनिवार्य है। पता—मार्फ़त, संपादक, बाँगड़ू-समाचार।

तहसील०—बस, ऐसा ही विज्ञापन बना दिया जाय।

दीवान०—और मैं यह पूछता हूँ कि यही लड़का क्या बुरा रहेगा ? इसी से क्यों न पत्र-व्यवहार प्रारंभ किया जाय !

तहसील०—बेशक, कोई हानि नहीं है।

दीवान०—दूसरे, लड़का नहीं तो कम-से-कम समा-

चारपत्र तो इसी शहर का है। सब बातों का पता लगा लिया जायगा। जहाँ संपादक को मिठाई खाने को डेढ़ आना पैसा दिया, और उसने सारा भेद बताया !

तहसील०—सच तो है।

दीवान०—अजी, मुझे तो लड़के से मतलब; (विज्ञापन देखता हुआ) कामदेव के समान सुंदर न होगा, तो महादेव के समान तो सुंदर होगा। होना चाहिए लड़का; बस।

तहसील०—जी, और क्या ?

दीवान०—और मेरी लड़की—यद्यपि वह बेचारी सदा सच बोलनेवाली और सुशीला है, पर तो भी—(तहसीलदार के कान में कुछ कहता है; तहसीलदार चौंककर और उछलकर अलग जा खड़ा होता है और दीवान बहादुर की ओर, जल्दी-जल्दी साँस लेता हुआ, अचरज से देखता है)

तहसील०—यह बात है ?

दीवान०—आपको मेरी सौगंद है, किसी से कहिएगा मत—भूलकर भी।

तहसील०—भला कहीं ऐसा हो सकता है ? आप भी क्या बातें करते हैं! अच्छा, तो अब देर करना ठीक नहीं। इस पत्र के संपादक को एक पत्र जल्दी लिख दिया जाय; क्योंकि अपने ही शहर का है, इसलिये पूरा हाल भी ज्ञात हो जायगा कि कौन है, कैसा है। (सोचकर) लड़का भी यहीं का दीखता है, वरना संपादक की मार्फ़त उत्तर न माँगा जाता।

दीवान०—तो और भी अच्छा है। तो पत्र किसके नाम से—

तहसील०—फिर वही! आप घबड़ाइए मत। मेरे नाम से, और किसके नाम से ?

दीवान०—और विवाह के पीछे वह बात जान लेने पर लड़का कचहरी-दरबार करे, तो ?

तहसील०—किया करे; फिर क्या हो सकता है ? 'जो बिंध गया सो मोती।'

दीवान०—यदि छोड़ दे ?

तहसील०—हिंदू-लड़कियों के भाग्य में लिखा ही यह है कि जन्म-भर उनका भविष्य दूसरों की मुट्ठी में बना रहे। यदि उनको यह जन्म-भर की काल-कोठरी पसंद नहीं थी, तो उन्हें हिंदुओं के यहाँ जन्म ही न लेना चाहिए था। आपको तो इस बात की शंका करनी ही नहीं चाहिए; क्योंकि लड़की में गुण ऐसे हैं कि वे सब बातें—

दीवान०—बस, तो अब जल्दी कीजिए।

तहसील०—जवाब ऐसा होना चाहिए—

दीवान०—कि हमारे यहाँ एक बहुत अच्छी लड़की है, झटपट विवाह करना हो, तो आ जाओ।

तहसील०—नहीं।

दीवान०—क्यों ?

तहसील०—यही तो आप नहीं जानते। विवाह-संबंधी बातों में कुछ टेढ़ापन रखना आवश्यक होता है। अपनी बहुत इच्छा दिखाने से काम बिगड़ जाता है। इस विषय में तो उदासीनता ही सफलता की कुंजी है। इस बात को न जानकर बहुत-से सीधे-सच्चे लोग भावुकता या उतावलेपन में अपना काम बिगाड़ बैठते हैं।

दीवान०—अजीब बात कह रहे हैं आप !

तहसील०—हाँ, पर है यह सच।

दीवान०—तो फिर क्या लिखिएगा ?

तहसील०—देखते जाइए। (लिखता है और सुनाता जाता है)

"महाशय,

आपके बाँगड़ू-समाचार में आपके मित्र का विवाह-संबंधी विज्ञापन पढ़ा। मेरे एक अत्यंत धनी मित्र की एक कन्या है, पर वह इतनी रूपवती, गुणवती, सुशीला, सुंदरी, सुशिक्षिता है कि आपके मित्र को शायद ही पसंद करे। यदि कदाचित् कर ले, तो आपके मित्र का भाग्य। मेरी इतनी अवस्था हुई, और मेरे भी कई लड़कियाँ हुईं, पर मैंने ऐसी सर्वगुण-संपन्ना कन्या आज तक स्वप्न में भी नहीं देखी। मेरे मित्र, अर्थात् उस कन्या के पिता, समाज-सुधार के पक्ष में तो हैं, पर अंधाधुंध नहीं। संभव है, पहले तो वही आपके मित्र से संबंध करना स्वीकार न करें। यह पत्र मैं केवल अपने मन की प्रेरणा से लिख रहा हूँ, अतएव आप इसे बिलकुल ही प्राइवेट समझिएगा। यदि आप 'टिड्डा-निवास', मोहल्ला रकाबगंज में कल सबेरे ९ बजे अपने मित्र के साथ आकर मुझसे भेंट करें, तो इस विषय में मैं कुछ बातचीत कर सकता हूँ, जिसे आप लोगों को गुप्त रखने का वचन देना पड़ेगा। इस विषय में पत्र भेजने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि पत्र-व्यवहार के लिये मेरे पास समय नहीं।"

दीवान०—अरे! यह आपने क्या किया?

तहसील०—क्यों?

दीवान०—इससे तो बना-बनाया काम बिगड़ जायगा—वह आता होगा, तो भी न आवेगा।

तहसील०—(हँसकर) यह आपने कैसे जाना?

दीवान०—कैसे जाना? ऐसे रूखे और दो-टूक बात से भरे पत्र से उसके आत्माभिमान पर भारी चोट लगेगी, और भीष्म की तरह वह प्रतिज्ञा कर लेगा कि चाहे अविवाहित रह जाऊँ, पर इस कन्या के लिये कभी बातचीत भी न करूँगा। पहले एक बार आने तो दीजिए; फिर तो जो मैं आपसे कह चुका हूँ, उन्हीं तरकीबों से फँसा लेंगे।

तहसील०—(हँसकर) आपने आत्माभिमान की एक ही कही! जब कोई युवक विवाह करने के लिये उत्सुक होता है, तो आत्माभिमान और ऐंठ को उसे शीघ्र ही तिलांजलि दे देनी पड़ती है। विवाह की उम्मेदवारी के मैदान में आते समय वह अपनी सारी समझदारी को छप्पर पर रख आता है।

दीवान०—सच?

तहसील०—जी। वह सहनशीलता और भलमन-साहत की मूर्ति बन जाता है। यहाँ तक कि अपनी विशेषताओं को भी—जिनके लिये वह सदा गर्व किया करता था—इसलिये छिपाने और दबाने का यत्न करता है कि लड़कीवालों को कहीं वे बुरी न लगें।

दीवान०—ख़ूब!

तहसील०—उसकी बात-बात में नम्रता टपकने लगती है। बुरी-भली बात सुनना तो क्या, यदि दो तमाचे भी उसके गालों पर जड़ दिए जायँ, तो भी वह कुछ न कहेगा, मुसकिराता ही रहेगा!

दीवान०—क्या सचमुच वह इस तरह अपने को खो बैठता है?

तहसील०—यों समझिए कि विवाह की उत्कंठा भी बहुत-से मानसिक मैलों को धोने की प्रबल धारा है; इस धारा की प्रबलता को उत्कंठा की प्रबलता से नापिए। आप स्वयं ही कह चुके हैं कि भावुकता के कारण आदमी आधा सिड़ी हो जाता है।

दीवान०—मैंने माना, पर विवाह के लिये अपमान—

तहसील०—जी हाँ। जैसे-जैसे आप विवाहार्थी को ठुकराइएगा, वैसे-ही-वैसे वह आपके सामने गिड़गिड़ाएगा। यदि आप झट राज़ी हो जायँगे, या वह किसी तरह यह जान लेगा कि आपको आवश्यकता है, तो बस, फिर तन जायगा, जिसका परिणाम सदा उलटा होगा।

दीवान०—(अचरज से) यह सब आप क्या कह रहे हैं? क्या विवाह की उम्मेदवारी की गंगा सदा उलटी ही बहती है? इतना तो मैंने न समझा था।

तहसील०—जी हाँ, बात तो यही है। यों हरएक नियम के कुछ अपवाद भी होते ही हैं।

दीवान०—अच्छा भाई साहब, तो जैसी आपकी इच्छा हो वैसा कीजिए; मुझे तो अपने काम से काम है। मैंने तो न कभी उम्मेदवारी की, और न मैं जानूँ। लड़का हाथ से न निकल जाय, इसी की चिंता है; क्योंकि (समाचार-पत्र पढ़ता हुआ) जैसे-जैसे मैं इस विज्ञापन को पढ़ता हूँ, वैसे-ही-वैसे मेरे हृदय में यह बात जमती जाती है कि मेरी लड़की के लिये यही लड़का सबसे ठीक रहेगा, ऐसा दूसरा लड़का मुझे कहीं न मिलेगा।

तहसील०—ठीक है, आप यही सोचे जाइए, और मेरे पत्र को बार-बार पढ़कर वह लड़का भी यही सोचे जाय कि जैसे बने वैसे इसी कन्या से ब्याह किया जाय; क्योंकि इससे बढ़कर कन्या पृथ्वी पर कहीं भी न मिलेगी। रही बेचारी लड़की, सो जो कहीं उसे पता चल गया कि आपने उसके लिये वह वर सोचा है, तो उसे भी संसार में फिर उससे बढ़कर कोई वर नहीं दीखेगा। उसका खाना-पीना, सोना-बैठना, पढ़ना-लिखना सब छूट जायगा। विवाह के खेल में यही सब बातें होती हैं, यद्यपि यह सब जानते हैं कि सौंदर्य या गुण कहीं एक ही जगह इकट्ठे नहीं हैं, संसार-भर में बिखरे हुए हैं और सब कहीं पाए जाते हैं।

दीवान०—तब तो सचमुच अजीब खेल है यह विवाह का!

तहसील०—और नहीं तो क्या।

दीवान०—तो एक बात तो बताइए। आपने पता तो मेरे घर का दिया है; यदि वह आया, तो मैं उससे क्या बातें करूँगा? आप उस समय न-जाने कहाँ होंगे?

तहसील०—मैं सबेरे ही आपको पार्क में मिल जाऊँगा, और वहीं से आपके साथ हो लूँगा।

दीवान०—कल तो मैं घूमने जाना नहीं चाहता था।

तहसील०—क्यों?

दीवान०—मान लो, वह जल्दी आवे, और यहाँ किसी के न होने पर लौट जाय?

तहसील०—इन सब बातों को छोड़िए। विश्वास

खिए कि यदि यहाँ कोई न भी होगा, तो भी वह जब तक म लोग लौटकर न आ जायँगे, बुत की तरह बैठा रहेगा। अच्छा, तो मैं अब जाकर यह पत्र आदमी के हाथ भिजवाए ता हूँ, या डाक से, जैसे हो सका। (जाने लगता है)

दीवान०—सुनिए तो—

तहसील०—हाँ—

दीवान०—लड़का है तो अच्छा, कहीं हाथ से न निकल जाय।

तहसील०—आप विश्वास रखिए, ऐसा न होगा।

दीवान०—जैसे बने वैसे मामला पटा लेना चाहिए।

तहसील०—ऐसा ही होगा; आप घबराइए मत।

दीवान०—मैं धन-संपदा भी कुछ कम न दूँगा; यह बात उससे स्पष्ट कह देनी चाहिए।

तहसील०—यह बात उसे अवश्य जँचा दी जायगी।

दीवान०—बहुत रूखी बातें न कीजिएगा, जिनसे उसका दिल दुख जाय और वह बुरा मानकर चला जाय; क्योंकि कबीरदासजी कह गए हैं—

"मीठी बानी बोलिए, मन का आपा खाय;
औरन कों सीतल करे, आपहु सीतल होय।"

तहसील०—मैं क्या कोई सिड़ी हूँ ? (जाने लगता है)

दीवान०—हाँ, सुनिए तो—

तहसील०—जी ?

दीवान०—कहीं ऐसा न हो जाय कि—

"का बरषा जब कृषी सुखाने;
समय चूकि पुनि का पछिताने।"

तहसील०—ऐसा कभी न होगा। (जाने लगता है)

दीवान०—देखिए—

तहसील०—जी।

दीवान०—कहीं रहीम कवि की यह बात न भूल जाइएगा कि—

"गुन तें लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि;
कूपहु ते कहुँ होत है, मन काहू कौ बाढ़ि।"

तहसील०—आपका कहना ठीक है। मैं पूरा ध्यान रक्खूँगा। (गया)

दीवान०—जो कहीं यह मामला पट जाय! (हाथ जोड़कर) हे जगत्पिता, तूने ही यह कन्या दी है, अब तू ही इसका बेड़ा पार लगा—पहले समय में एक बार जैसे तूने सोलह सहस्र एक सौ आठ दुखिया कन्याओं का बेड़ा पार लगाया था, बस, उसी प्रकार। मेरी तुझसे यही प्रार्थना है कि—

(गाना)

मिले इस कन्या को वर एक;
सीधा-सच्चा, भोला-भाला, चलता-पुरज़ा नेक।
बात न करे देश-भक्तों से, खोवे नहीं विवेक;
डिप्टीगीरी करे रौब से, रक्खे कुल की टेक।
लेकर राय धर्म-पत्नी की, साधे काम अनेक;
दोनों सुख से रहें सदा ही, वह हलवा यह केक*।

बदरीनाथ भट्ट

एक मित्र को

विज्ञ, विज्ञान-आचार्य, मित्र-प्रवर,
ख़बर-प्रद पत्रिका आपकी प्राप्त ही;
बात सब ज्ञात ही[1]। लीजिए कर लिया
स्निग्ध-आग्रह-भरित, सकृप-कृत, आपका
हरख-धन्योक्ति-युत, "परख"-प्रस्ताव, स्वी[2]

श्वास का ख़ास दौरा इधर बहुत ही
वेग से चल रहा है निरंतर, अतः
स्वास्थ्य जा विगत-इतिहास-आक्रोड़ में
छोड़ सहवास मम, स-सुख है सो गया
या कि क्या हो गया, बात कुछ ज्ञात न्हीं[3]

श्रीपद्म कोट,
प्रयाग, १३। ८। १९२० } श्रीधर पाठक

मिलन

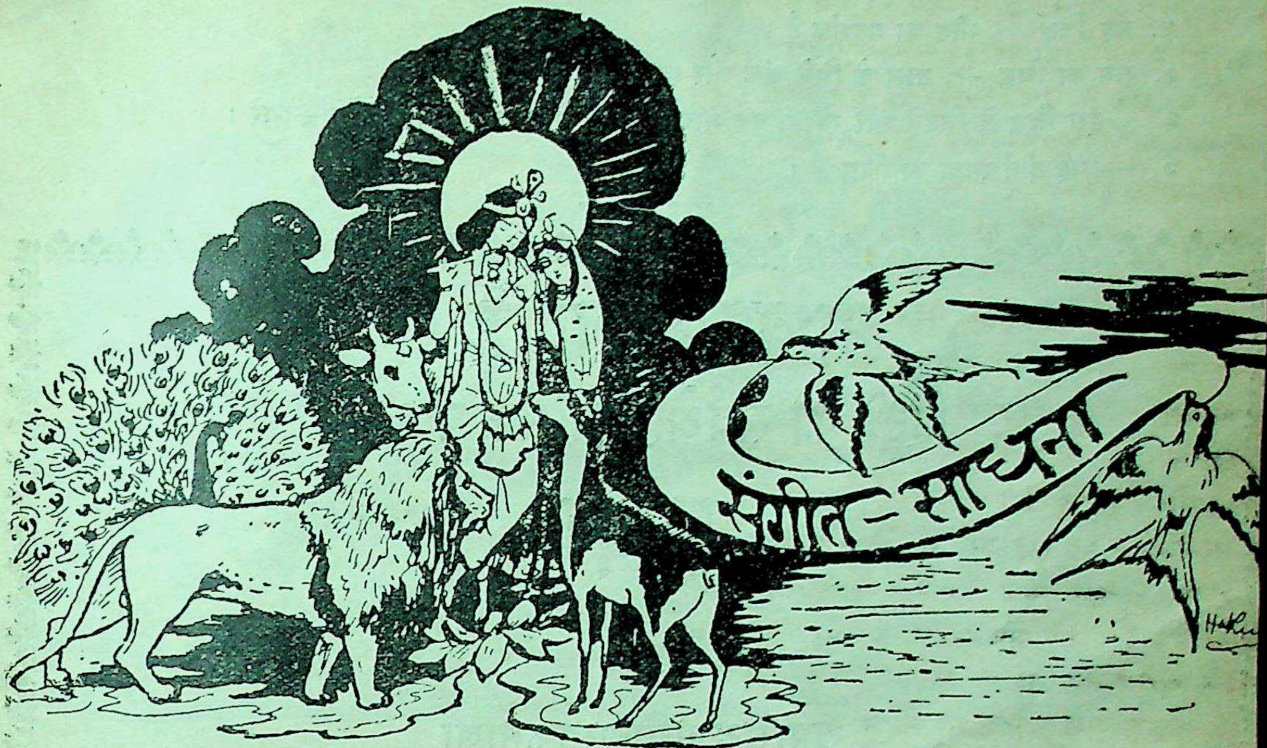
चपला की चारु चमक थी,
या था मधु-मिलन तुम्हारा;
लय हुए हृदय में ऐसे,
ज्यों तप्त धरा में धारा।

सोहनलाल द्विवेदी

---

* एक प्रकार की अँगरेज़ी रोटी।

१. ही = हुई। २. "स्वी" को तीसरी पंक्ति-गत "कर लिया" के साथ मिलाकर पढ़िए। ३. न्हीं = नहीं।



प्रस्थान-वाद्य

[वेल्स-देशीय स्वर]

सां– –नि़ ध़– –नि़	सा रे ग सा	म ग रे सा	नि़ ध़ नि़ प़
सा– –नि़ ध़– –नि़	सा रे ग ध	पग– रे– –ग	सा। — —
रे– –सा नि़– –सा	रे रे	प– –म ग– –म	प प
प– –म ग– –म	प– –म ग– –म	पध पम गरे गम	प प– ग
म– –ध प प	म म ग ग	रे मग रे सा	नि़ ध़ नि़ प़
सा– –नि़ ध़– –नि़	सा रे ग ध	पग—रे– –ग	सा—सा

संकेत

१. जिन स्वरों के नीचे बिंदु हो वे मंद सप्तक के, जिनमें कोई बिंदु न हो वे मध्य सप्तक के तथा जिनके शीर्ष में बिंदु हो वे तार सप्तक के हैं। जैसे—सा, सा़, सां।

२. जिन स्वरों के नीचे लकीर हो वे कोमल हैं। जैसे रे, ग, ध, नि। जिनमें कोई चिह्न न हो वे तीव्र हैं जैसे — रे, ग, ध, नि।

३. शुद्ध मध्यम का चिह्न "म" और तीव्र मध्यम का चिह्न "मॅ" है।

४. यह चिह्न ⌒ मींड का प्रदर्शक है।

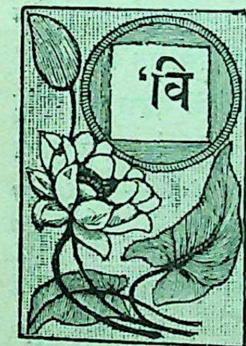
५. सम का चिह्न +, ताल के लिये अंक और ख़ाली का द्योतक ० है।

६. ‿ इस चिह्न में जितने स्वर रहें, वे एक मात्रा में गाए या बजाए जायँगे। जैसे—सारे।

७. — यह दीर्घ मात्रा का चिह्न है।

कुसुम-कुंज

१. विश्वास



'विश्वास' और 'Eternal City' की जो तुलना मैंने सुधा की गत संख्या में की है, उसके उत्तर में प्रेमचंदजी ने लिखा है कि वह 'विश्वास' के आधार का उल्लेख अपने कुछ मित्रों तथा प्रकाशक से कर चुके थे। अपने विचार सुधा में प्रकाशित करके यदि हमने प्रेमचंदजी को कष्ट पहुँचाया है, तो हम उनसे क्षमा माँगते हैं। परंतु, हाँ, हमने उनकी कहानी को मौलिकता के आवरण में लिखी गई समझकर कोई अपराध नहीं किया है। यदि दस हज़ार पाठक विश्वास को पढ़कर उसे मौलिक समझें, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। उनके पास यह जानने का साधन नहीं है कि प्रेमचंदजी ने अपने मित्रों के समक्ष उसके आधार को स्वीकार कर लिया है।

दूसरी बात यह है कि अपने मित्रों से कहकर प्रेमचंदजी अपने उत्तरदायित्व से मुक्त भी नहीं हुए हैं। वह केवल अपनी मित्रमंडली के ही गल्प-लेखक नहीं हैं, बल्कि हिंदी-जगत् के। यदि हिंदी-जगत् के सामने वह एक अनुवादित कहानी लेकर आते हैं, तो उन्हें उसे बतला देना चाहिए कि उनकी कहानी अनुवादित है।

"शिलीमुख"

× × ×

२. अवहेलना

प्राकृत सौंदर्यमयी वस्तुओं में, बड़ी-बड़ी वाटिकाओं की मधुर कलिकाओं में, नदी के कल-कल निनाद में और जीवन की घड़ियों में मुझे जिस प्रियतम की चिरकाल से चाह थी, आज वह तृषित नेत्रों को शांत करने के लिये अचानक ही आ निकले। पर हाय! अभागिनी ने प्रियतम को नहीं पहचाना। पहचानती भी कैसे? जिसका ग्रंथि-बंधन, केवल परोक्ष में, मानस विचारों द्वारा हुआ हो, और इन नेत्रों ने जिसके वास्तविक स्वरूप को एक बार भी न देखा हो, वह जान भी कैसे सकती थी? भोली ने समझा था, स्वामी राजसी ठाट में आवेंगे, तभी तो अपनी कुटिया सजा, अपने ही हाथों से सुगंधित सुमनों की माला गूँथ, स्वागत करने के लिये, प्रतीक्षा में बैठी रही। प्रतीक्षा करते-करते साँझ हो गई, नेत्र थक गए और हृदय भी प्रियतम की इस निठुरता से ऊब गया; पर

उत्सुकता नहीं मिटी। इतने में मुझे किसी की पद-ध्वनि सुन पड़ी। समझा, वही होंगे। हृदय और नेत्र आगंतुक को देखने के लिये विह्वल हो उठे, प्रसन्नता का वारा-पार न रहा। पर वह तो विचित्र वेश में थे। फटे हुए कपड़े, नंगे पाँव, मिट्टी में लथ-पथ शरीर और बिखरे हुए बालों से एक भिक्षुक ज्ञात होते थे। शायद ऐसा मेरी परीक्षा के लिये किया हो। मैंने द्वार पर खड़े भिक्षुक के रूप में प्रियतम को नहीं पहचाना, और मैं निराशा से उठकर चली गई। मेरी इस अवहेलना से अपना अपमान जान वह भी उलटे पाँव लौट गए। हाय! अभागिन को पीछे ज्ञात हुआ, प्राणेश राजसी ठाट में, सुंदर-सुंदर रत्न-जटित वस्त्रों में, गगन-चुंबी विशाल भवनों में नहीं रहते; किंतु उनका निवास दीनातिदीन मानव-समूह में रहता है। यदि मैं जान लेती, तो उनके चरणारविंदों को अपने चिर-संचित प्रेमाश्रुओं से धो डालती और इन सुंदर-सुंदर भूषणों तथा वस्त्रों को उनके चरणों में परित्याग कर, सदैव के लिये भिक्षुका हो, उनकी सेवा में लीन हो जाती।

सत्यवती (डलहौज़ी)

× × ×

३. उड़ीसा के गंगवंशीय राजा नृसिंहदेव (द्वितीय) का शक सं० १२१७ का बृहत् ताम्र-लेख

बँगला 'विश्वकोष'कार श्रीयुत राय साहब नगेंद्रनाथ वसु का नाम हिंदी-संसार में बहुतों को सुपरिचित है। इस ताम्रशासन की प्राप्ति का श्रेय आप ही को है। आपने सन् १८९२, १८९३ और १८९४ में प्राचीन शिला-लेख, ताम्रशासन तथा अन्यान्य ऐतिहासिक सामग्रियों की खोज के लिये उड़ीसे की यात्रा की थी। उन्हें अपनी यात्रा में बहुत-सी महत्त्वपूर्ण सामग्रियाँ प्राप्त हुईं थीं, जिसमें ये ताम्र-पत्र भी थे। वसु महोदय को जो ताम्र-लेख आदि मिले, उनसे उड़ीसे के इतिहास का रूप ही बदल गया।

ये ताम्र-पत्र कटक-ज़िले की 'केंद्रपाड़ा नहर' की खोदाई के समय मिले थे। वौलमाला-नामक पत्थर की एक संदूक़ ज़मीन में १९-२० फ़ीट की गहराई पर मिली। उस संदूक़ में सात-सात पत्रों के तीन भिन्न-भिन्न ताम्र-लेख मिले। उस पत्थर की संदूक़ में सब मिलाकर २१ ताम्र-पत्र थे। सात-सात पत्र एक-एक ताम्र-मुद्रिका या कड़ी से बँधे हुए थे। मु का या कड़ी के मध्य-भाग में चक्राकार पद्मासन पर वृषभ का चित्र है। साथ ही त्रिशूल, अंकुश, डमरू और चंद्र-सूर्य के चित्र भी हैं। वृषभ चित्र की लंबाई ४ इंच और उँचाई ३½ इंच है।

ताम्र-पत्रों की लंबाई १३¼ इंच, चौड़ाई ८¾ इंच और मोटाई ½ इंच है।

The plates of each set are strung together by a copper-ring. At the joint of this ring is a circular copper-piece representing the *Padmasana* or lotus-seat, surmounted by the figure of an ox in an inclined posture, the circumference exhibiting a *Tri-cula*, Ankuca, a Damaru, a crescent and solar orb.

इस ताम्र-लेख में उत्कल के राजा श्रीनृसिंहदेव (द्वितीय) के ग्रामदान का वर्णन है। दान शक सं० १२१७ में भाद्र-शुक्ल ६, सोमवार को दिया गया था। यह तिथि १९ सितंबर, सन् १२९५ ई० को पड़ती है। उस वर्ष नृसिंहदेव राजा के शासन का २१वाँ वर्ष था।

ताम्र-लेख की लिपि १२वीं और १३वीं सदी की कुटिल या नागरी, बंगाली, उड़िया तीनों की मिश्रित लिपि है।

नृसिंहदेव (चतुर्थ) के दान-पत्रों में महाराज अनंग भीमदेव और महाराज भानुदेव के शासन-काल का परिमाण ३३ वर्ष और १७ वर्ष दिया गया है। पर नृसिंहदेव (द्वितीय) के दान-पत्रों में ३४ और १८ वर्ष का समय दिया गया है। एक वर्ष का अंतर कोई बड़ा अंतर नहीं कहा जा सकता।

नृसिंहदेव (प्रथम) ने यवनों पर विजय पाई थी। राढ़ और बरेंद्र-राज्यों के मुसलमान-शासकों को उन्होंने जीता था। श्लोक ८४ से इसका पता लगता है।

श्लोक ८६ से यह ज्ञात होता है कि इन्हीं राजा के समय में कोणार्क का सुविशाल 'सूर्य-मंदिर' बनवाया गया।

'मिनहाज-ई-सराज'-नामक मुसलमान-इतिहासकार लिखता है—

"हिजरी सन् ६४२ में जाजनगर के राय (उत्कल के महाराज) ने कतासिन (Katasin) की लूट का बदला लेने को लखनावती राज्य पर चढ़ाई की। उसके

मदरास की रियासतें	७,४६७	७,४५६	७,४११	६,९०३	६,६४२
कोचीन	७,१५२	६,९३८	६,८२६	६,७६६	६,५९९
ट्रावनकोर	७,३१२	७,३१८	६,८९५	६,६५७	६,३६५
सीमाप्रांत-एजेंसी	+	+	+	१,४८४	४,५६३
मैसूर	९,३०८	९,२४८	९,२०६	९,१९९	९,१६८
पंजाब की रियासतें	५,४९५	५,८४९	५,५८२	४,९५३	५,००१
राजपूताना	८,७५०	८,३५१	८,३२७	८,३११	८,२९६
सिकिम	+	+	६,४९१	६,६७४	६,६७३
युक्त-प्रांत की रियासतें	६,७६४	६,९३४	६,९६२	७,००८	७,८१९

हिंदू-जनता का ध्यान इस ओर शीघ्र आकृष्ट होना चाहिए। बाल, वृद्ध एवं अनमेल विवाहों का समूल नाशकर, छुआछूत को दूर कर इस हिंदू-संख्या-ह्रास के तीव्र वेग को रोकने की चेष्टा करना प्रत्येक हिंदू का परम कर्तव्य होना चाहिए।

नंदकिशोर अग्रवाल 'चौधरी'

× × ×

८. सर्वव्यापी

निखिल विश्व में छाया केवल तेरा ही आभास।
रोम-रोम में,
सूर्य-सोम में,
धरा-व्योम में,
कहाँ नहीं तेरा आवास?
कलियों के विकास में तेरा ही है मंजुल हास।
दिग्-दिगंत में,
आदि-अंत में,
ऋतु वसंत में,
कहाँ नहीं तेरा आवास?
गुप्त अगम स्थानों में भी फैला तेरा विमल प्रकाश।
तारादल में,
जल में, थल में,
अंतस्तल में,
कहाँ नहीं तेरा आवास?
नीरव रात, पवन-सनसन में तेरी चलती श्वास।
क्रंदन-रव में,
बल-वैभव में,
प्रिय शैशव में,
कहाँ नहीं तेरा आवास?
अविरल गिरि-प्रपात-निर्झर में भी तेरा आवास।
आवर्तन में,
परिवर्तन में,
सुख-कीर्तन में,
कहाँ नहीं तेरा आवास?
निखिल विश्व में छाया केवल तेरा ही आभास।

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

× × ×

९. अहिंसा

सुधा की द्वितीय संख्या में १२२ पृष्ठ पर 'अहिंसा'-शीर्षक लेख पाठकों ने पढ़ा होगा।

वास्तव में भारतवासियों ने अहिंसा-तत्त्व का अर्थ विपरीत समझ रक्खा है, या यों कहना चाहिए कि पूर्वज ऋषियों के ऊपर लांछन लगाने का मार्ग खोज निकाला है। अन्यथा "अहिंसा परमोधर्मः" के अनुयायी आज अपनी मा-बहनों की बेइज़्ज़ती, उन पर अत्याचार, न होने देते।

बारह सौ वर्ष व्यतीत हो गए; परंतु किसी-न-किसी रूप में मुसलमानों का अत्याचार भारतीय सतियों को पीड़ित ही करता चला आ रहा है। पर्दे में रहने की प्रथा, बाल-विवाह इत्यादि कुरीतियाँ इन्हीं की कृपा और संगति के कुफल हैं।

पर्दे में रहने से कितनी ही महिलाएँ रोगी हो जाती हैं, क्षयरोग आदि से मर मिटती हैं। इस हिंसा को भारत-वासी नित्य प्रति कर रहे हैं।

इसी प्रकार बाल-विवाह भी अबलाएँ कुचली जा रही हैं। कोई बाला लँगड़ी हो जाती है, तो किसी की आँखों से कम दिखाई देने लगता है, तथा कोई प्रसूति के समय ही मर जाती है। फिर उनकी संतानें भी दूध के विना तड़प-तड़पकर मरती हैं। इस हिंसा को भी प्रतिदिन भारतीय नागरिक चुपचाप करते रहते हैं। परंतु मुसल-

मान गुंडों का मुक़ाबला करके अपनी मा-बहनों की इज़्ज़त बचाने में ये लोग महात्मा गांधी की अहिंसा को बदनाम करते हैं, और इसी की ओट में अपनी कायरता, स्वार्थ-परायणता छिपाना चाहते हैं।

महात्माजी का यह उपदेश नहीं है कि कायर बन जाओ, और अपने शूरत्व को—मनुष्यत्व को—काम में न लाओ। अथवा घर का दरवाज़ा खोलकर शत्रु को भीतर बुला लो। बरन् उनका कथन केवल इतना ही है कि भद्र रीति से, मानुषी भाव से शत्रु पर इस प्रकार विजय प्राप्त कर लो कि फिर वह कभी तुम्हारी हानि न कर सके। तुम्हारे पास गांडीव धनुष न भी हो, तो भी छिपकर मत बैठो। जो कुछ हो, उसी की टंकार से शत्रु को शीघ्र ही परास्त कर दो।

इसी लेख में पृष्ठ १२६ पर लेखक महोदय ने बौद्ध और जैनों को 'अनार्य' बताया है। मैं इसका प्रतिवाद करती हूँ। जैन आर्य हैं या अनार्य, यह लेखक महोदय के लिखने से ही सिद्ध न हो जायगा। अनार्यत्व को सिद्ध करने के लिये उन्हें बहुत कष्ट उठाने की आवश्यकता होगी। जिस अहिंसा-धर्म को लेकर यह वाक्य घटित किया गया है, वह अहिंसा, वर्तमान की झूठी अहिंसा, जैनागम में नहीं बतलाई गई है। उसका स्वरूप अत्यंत स्पष्ट और सर्वोपयोगी वर्णन किया गया है। मुझे पूर्ण आशा है, यदि लेखक महाशय जैनाचार्य-प्रणीत अहिंसा का अध्ययन करेंगे, तो उनका वैमनस्य भारतीय अहिंसा से दूर हो जायगा। जैन-शास्त्रों में चार प्रकार की अहिंसा का उपदेश है—

१ संकल्पी, २ आरंभी, ३ उद्यमी, ४ विरोधी।

से गृहस्थ के लिये केवल संकल्पी हिंसा के त्याग का उपदेश दिया गया है। शेष तीन प्रकार की हिंसा साधु बचा सकते हैं। काम-काज में होनेवाली आरंभी हिंसा गृहस्थ नहीं बचा सकता। न व्यापार में होनेवाली उद्यमी हिंसा को ही छोड़ सकता है। इसी प्रकार शत्रु का सामना करने में होनेवाली विरोधी हिंसा का त्याग गृहस्थ नहीं कर सकता। वह युद्ध-संबंधी हिंसा कर सकता है। इन तीनों हिंसाओं के अतिरिक्त चौथी संकल्पी हिंसा (अर्थात् शौक़-मौज के लिये जान-बूझकर प्राणियों को मारना व मारकर खाना) का त्याग जैन-गृहस्थ के लिये आवश्यक बतलाया है। यह अहिंसा वीर-रस की बाधक नहीं है। न कायरता लानेवाली ही हो सकती है। यह तो पामर प्राणियों पर दया और रक्षा का भाव जगाती व शुद्ध भोजन करने से आत्मसंयम बढ़ाती है। जैन-ग्रंथों में बड़े-बड़े युद्धों का स्पष्ट वर्णन लिखा मिलता है। महत्त्वपूर्ण वीर-रस का व्याख्यान किया गया है। क्षत्रिय को सशस्त्र होकर रक्षा करने का अधिकार दिया गया है। ऐसी परिस्थिति में जैनों को 'अनार्य' लिखना भ्रातृभाव के स्थान में कलुषता का चिह्न है। सब भाइयों को मिलकर मैदान में आना चाहिए, और जननी तथा जन्मभूमि, दोनों की मान-मर्यादा बचानी चाहिए। तभी सच्ची अहिंसा का प्रतिपालन होगा। सच्चा अहिंसक मनुष्य हिंसक मनुष्य से शतगुण अधिक सफल हो सकता है।

चंदाबाई जैन



१. संसार का अद्भुत कारागार



कारागारों की स्थापना किस लिये होती है? अपराधियों के सुधार के लिये। किंतु आजकल के जेल इस उद्देश्य की कहाँ तक पूर्ति करते हैं? वे चोर को डाकू, खूनी को खूँख्वार और साधारण अपराधी को भयंकर अपराधी बना देते हैं। जेल की आधुनिक व्यवस्था को जब तक सर्वथा बदल नहीं दिया जायगा, तब तक अपराधियों का सुधार करना असंभव है। इस देश ही के नहीं, प्रत्युत सारे संसार के जेल-अधिकारियों को उस जेल से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, जो संसार का सबसे अद्भुत जेल कहा जाता है। यह कनाडा के टोरोंटो शहर से कुछ मील दूर पर अवस्थित है। इसकी साधारण जेलों से किसी विषय में समानता नहीं है। न तो उसके चारों ओर ऊँची दीवारें खड़ी हैं, न तो वहाँ लोहे की छड़ों द्वारा घिरी हुई कोठरियाँ बनी हैं, न काल-कोठरियाँ हैं, न संतरी और न वार्डेन। हाँ, खलिहान और खेत तथा किसान जैसी झोपड़ियों में रहते हैं वैसी झोपड़ियों का दृश्य वहाँ अवश्य दिखाई देगा। इस पर आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस कारागार में उत्तरी अमेरिका के भयंकर अपराधी रहते हैं।

आप पूछ सकते हैं, अपराधियों को भागने से रोकने के लिये जब कोई भी साधन वहाँ मौजूद नहीं, तब अपराधियों को रोकना कैसे संभव होता है? इसका उत्तर यह है कि हरएक क़ैदी को उस क़ैदख़ाने में पहुँचने पर वचन देना पड़ता है कि वह भागने की कभी चेष्टा नहीं करेगा। हरएक नया क़ैदी वार्डेन के सामने उपस्थित किया जाता है। वह उस क़ैदी से ये शब्द कहता है—"जैक, यहाँ न तो 'सेल' हैं, न ताले, न अस्त्रधारी संतरी। तुमको स्वतंत्रतापूर्वक यहाँ काम करने दिया जायगा। यदि तुम भागने की चेष्टा करोगे, तो तुम्हें किंगस्टन के जेल में भेज दिया जायगा। मैं सिर्फ़ यही चाहता हूँ कि तुम जब तक मेरे मातहत में रहो, तब तक न भागने की शपथ लो।"

इस आज्ञा को आज तक किसी ने अमान्य नहीं किया है। क़ैदी तुरत शपथ ले लेते हैं। अपराधी अरबों-जैसे होते हैं। यदि आप उन पर विश्वास करें, तो वे प्राण रहते आपको धोका नहीं दे सकते। किंतु यदि आप यह प्रदर्शित करें कि आप उन्हें संदेह की दृष्टि से देखते हैं, तो वे आपको तुरत धोका देने के लिये उतारू हो जायँगे। इसी

कारण इस जेल से साल में भागे हुए बँधुओं का औसत ५०० में सिर्फ़ ४ है। जिन जेलों में सशस्त्र संतरियों का पहरा चौबीसों घंटे रहता है, वहाँ से भागनेवालों की संख्या उक्त संख्या से चौगुनी है। देखिए, विश्वास का कितना असर होता है। जिन लोगों के हृदय में सचाई का लेश-मात्र भी नहीं है, वे ही विश्वास द्वारा वश में किए जा सकते हैं।

इस कारागार में जितने क़ैदी रहते हैं, उन्हें वहाँ की ज़मीन को जोत-बोकर अन्न पैदा करना पड़ता है। वहाँ पशु भी पाले जाते हैं। उनके दूध को क़ैदी ही इस्तेमाल करते हैं। किंतु नाज और दूध वहाँ इतना उत्पन्न होता है कि उसका कुछ हिस्सा फेंक दिया जाता है; क्योंकि कनाडा में किसानों की रक्षा के लिये जो क़ानून बने हैं, उनमें एक ऐसा भी है कि क़ैदी अपनी पैदा की हुई वस्तुएँ किसानों की प्रतियोगिता में नहीं बेच सकते। वहाँ के क़ैदियों को जेल की पोशाक भी नहीं पहननी पड़ती है। कनाडा के किसान जैसी नीले रंग की पोशाक पहनते हैं, वैसी ही पोशाक इन क़ैदियों को भी मिलती है। उनके सोने के कमरे बड़े और हवादार होते हैं। हर एक कमरे में ५०-६० पलँग बिछे रहते हैं। इन पलँगों और बिछौनों की तुलना आजकल के किसी भी देश के जेल के बिछौने और चटाइयों से नहीं हो सकती।

यह कारागार संसार का आदर्श कारागार कहा जा सकता है। अपराधियों के सुधार के लिये ऐसे ही कारागारों की आवश्यकता है, जहाँ भय और डंडे के बदले विश्वास से काम लिया जाय। इस जेल के वार्डेन मेजर जे० डब्ल्यू० मोरिसन हैं। यह मनोविज्ञान के अच्छे ज्ञाता हैं, और क़ैदियों के चेहरे ही से उनके स्वभाव को ताड़ जाते हैं। यह कई साल तक पुलीस और जेल के अधिकारी रह चुके हैं। इन्होंने अपनी अभिज्ञता से कितने ही न सुधरनेवाले अपराधियों को सुधारा है। अब अपना आदर्श जेल खोलकर आपने एक अनुकरणीय उदाहरण संसार के सामने रक्खा है। क्या भारत-सरकार इससे कुछ सीखेगी? एंडमन को आबाद करने के लिये जो लोग उत्सुक हैं, वे मोरिसन के 'जेल फ़ार्म' की ओर देखें।

× × ×

२. छुट्टी मनाना

उस रोज़ महात्मा गांधी का आत्मचरित पढ़ रहा था। उन्होंने एक दिन महामना गोखले से पूछा—"आप घूमने भी नहीं जाते। बीमार हों, तो इसमें नयापन ही क्या है?" जवाब मिला—"मुझे तुम ख़ाली कब देखते हो, जब मैं घूमने-फिरने जा सकूँ।" गोखले देश-कार्य में इतने तन्मय रहा करते थे कि उन्हें घूमने-फिरने, व्यायाम करने तक की भी फ़ुर्सत नहीं मिलती थी। किंतु उनकी यह आदत अकाल-मृत्यु का कारण बनी। इस देश के अनेक नेताओं की अकाल-मृत्यु हो गई है, और उसका एक-मात्र कारण है किसी एक ही काम में दिन-रात लगे रहना—छुट्टी न मनाना। वैज्ञानिकों का कहना है कि जो लोग सालाना छुट्टी मनाया करते हैं, अपने पेशे के काम को एकदम भूलकर किसी दूसरे ही काम में लग जाते हैं, वे उन लोगों से अधिक दिन जीते हैं, जो कभी छुट्टी नहीं मनाते। सर हैंफ़री राल्लेस्टन का कहना है कि युवकों और बढ़ते हुए लोगों को बूढ़े लोगों से आराम करने की अधिक आवश्यकता पड़ती है।

छुट्टी मनाने का अर्थ सिर्फ़ पलँग पर पड़े रहकर आराम करना ही नहीं है, किंतु अपने पेशे के काम को छोड़कर मन बहलानेवाले किसी भी काम में लगना है। मानसिक काम करनेवालों को मन-बहलाव के लिये शारीरिक कार्य करना चाहिए। दूसरी ओर शारीरिक कार्य करनेवालों के लिये पुस्तक या अख़बार पढ़ने से अच्छा मनोविनोद नहीं हो सकता। दिमाग़ी काम करनेवाले लोगों का मन-बहलाव ताश, शतरंज खेलने, थिएटर-बायस्कोप देखने में नहीं है। जो लोग सदा अपने बाल-बच्चों के साथ रहते हैं, उन्हें इन लोगों को छोड़कर कुछ दिनों के लिये किसी दूसरे स्थान में चले जाना चाहिए।

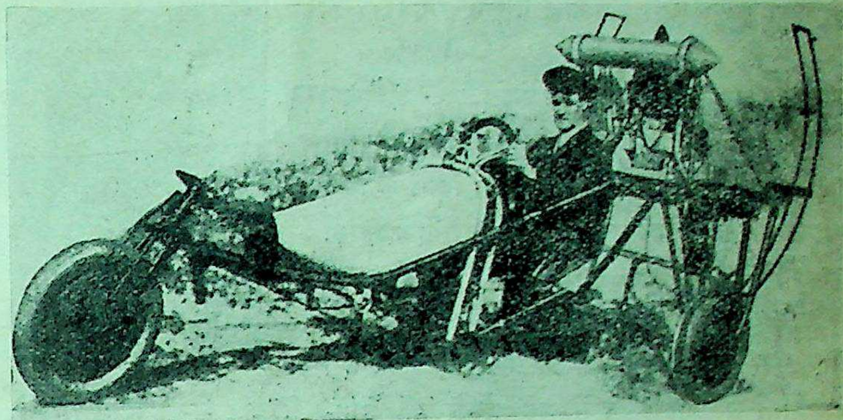
छुट्टी मनानेवालों ने एक बात का अनुभव किया है। मान लीजिए, आप एक महीने तक छुट्टी मनाकर फिर अपने काम में लग गए। शुरू-शुरू में देखिएगा कि आप पहले से भी कम काम करते हैं; किंतु दो-चार दिन काम करने के बाद आपको ख़ुद छुट्टी मनाने का फ़ायदा जान पड़ेगा। छुट्टी मनाने के लिये निकलते समय आपको अपनी शारीरिक अवस्था भी तौल लेनी पड़ेगी। एकाएक दौड़ने, अधिक दूर तक टहलने, धूप में बैठकर मछली मारने और पेड़ों या पर्वतों पर चढ़ने से फ़ायदे के बदले नुक़सान ही उठाना पड़ता है। प्रायः सभी मनुष्यों का मन-बहलाव का कोई-न-कोई तरीक़ा होता है। यदि इन तरीक़ों का ठिकाने से

उपयोग किया जाय, तो मनुष्य अपने जीवन-काल को बहुत बढ़ा सकता है ।

× × ×

३. नए तर्ज़ की मोटर-साइकिल

अमेरिका के जिओन शहर के जॉन स्टाउट-नामक व्यक्ति ने एक नए तर्ज़ की मोटर-साइकिल बनाई है। इसका एंजिन वायु-यानों में व्यवहृत होनेवाला एंजिन है। यह यद्यपि आकार में बहुत छोटा है, किंतु साइकिल को ५० मील फ़ी घंटे की चाल से चला सकता है। साइकिल का आकार ऐसा बनाया गया है कि चलते समय हवा की रुकावट बहुत थोड़ी होती है। चालक भी बड़े आराम से बैठता है ।

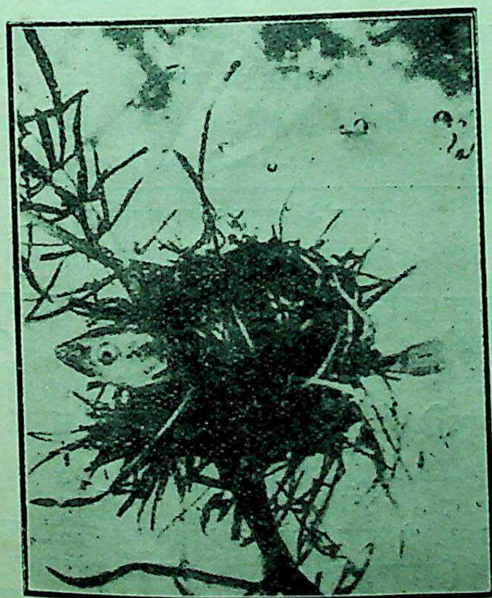


नए तर्ज़ की मोटर-साइकिल

× × ×

४. घोसले में रहनेवाली मछली

संसार विचित्रता की खान है। प्रतिदिन नई-नई वस्तुओं का पता लग रहा है। उन्हें देख-सुनकर हम लोग दंग हो रहे हैं। घोसले में रहनेवाली एक प्रकार की मछली का पता चला है। यह मछली भारत-महासमुद्र में या ऐसे ही गरम जलवाले समुद्रों में पाई जाती है। जल के पौदों की टहनियों से यह अपना घोसला बनाती और उसी में रहती है। उसी में यह अंडा भी देती और उनके फूटने के समय तक उन्हें सेती है। यह मछली बड़ी डरपोक होती है ; किंतु शत्रुओं द्वारा आक्रमण किए जाने पर अपना रंग बदलकर अपनी रक्षा कर लेती है ।



घोसले में रहनेवाली मछली

× × ×

५. दो फ़ीट चौड़ी मोटरकार

न्यूयार्क के आइसिडोर लुविन-नामक व्यक्ति ने एक छोटी-सी मोटरकार बनाई है, जिसमें एक आदमी मज़े



दो फ़ीट चौड़ी मोटरकार

से बैठकर चल सकता है। चौड़ाई में यह दो फ़ीट से थोड़ी ही बड़ी है, किंतु बड़ी-बड़ी मोटरों से चाल में कम नहीं है। मोटर-गाड़ियों की भीड़ में यह उसी भाँति निकल जाती है, जिस प्रकार बाण हवा से होकर। ख़र्च भी कम और बाला-नशीं।

× × ×

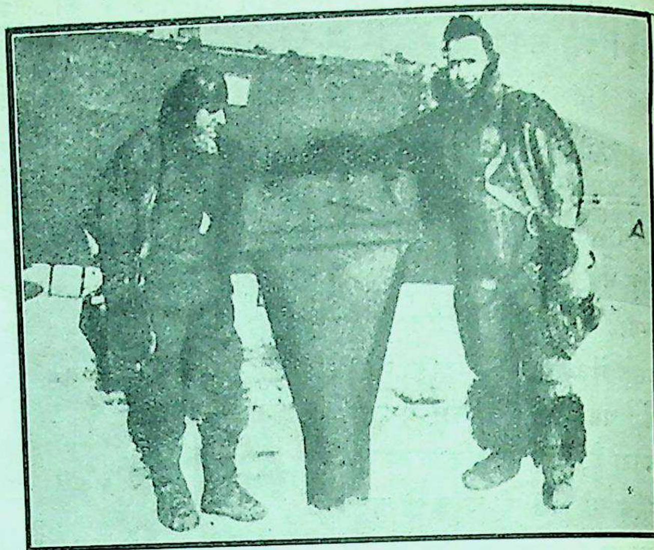
६. वायुयान से फ़ोटो

आजकल फ़ोटो के बारे में बहुत उन्नति हो रही है। रंगीन पदार्थों के फ़ोटो तो बहुत दिनों से लिए जा रहे हैं; किंतु अब जल के नीचे सामुद्रिक पदार्थों का भी फ़ोटो लेना आसान हो गया है। वायुयानों से फ़ोटो लेने की चेष्टा बहुत दिनों से चल रही थी, और अब उनसे भी फ़ोटो लिए जाते हैं। वायुयानों से फ़ोटो लेने में कई प्रकार की कठिनाइयाँ हैं। एक है वायुयानों के निरंतर स्थानांतरित होते रहने से फ़ोकस का ठीक न रहना। दूसरी है फ़ोटो लेने के उपयोगी मौसिम। तीसरी है इतनी उँचाई से फ़ोटो लेना। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये लेफ़्टिनेंट जॉर्ज डब्ल्यू० गोडार्ड ने बहुत बड़ा 'कॅमरा' बनाया है, जो ३५,००० फ़ीट की उँचाई से भी फ़ोटो ले सकता है। कलकत्ता-जैसे बड़े शहर का फ़ोटो केवल २½ इंच लंबा होगा। यह कॅमरा मनुष्य की छाती की उँचाई-भर है।

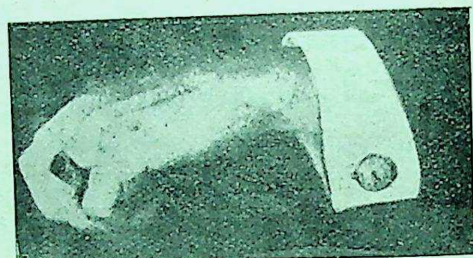
× × ×

७. कफ़ में घड़ी

फ़ैशन का अंत होते नहीं देख पड़ता। कुछ लोग हाथ में घड़ियाँ बाँधते हैं। एक शौक़ीन औरत अपने स्लीपर या चट्टी के 'बकलस' में घड़ी लगाती है। अभी-अभी एक



वायुयान से फ़ोटो लेने का कॅमरा



कफ़ में घड़ी

शौक़ीन बाबू का पता लगा है, जो अपनी कमीज़ के कफ़ के बटन में घड़ी बाँधते हैं। यह फ़ैशनेबुल बाबू जर्मनी के रहनेवाले हैं। घड़ी ठीक-ठीक समय देती है।

रमेशप्रसाद



१. प्राच्य तथा पाश्चात्य चित्रकला



प्राच्य चित्रकला भाव-प्रधान है, और पाश्चात्य चित्रकला रूप-प्रधान। हमारे कलाविद् रूप के अंतस्तल में प्राण की खोज करते आए हैं और पाश्चात्य चित्रकार बाह्य सौंदर्य पर मुग्ध हैं। हमारे कलाकार शरीर-विज्ञान तथा गठन-विज्ञान के नियमों के प्रति उदासीनता का भाव प्रकाशित करते हैं ; पर पाश्चात्य कलाविदों का मूल उद्देश्य शारीरिक सौष्ठव को पूर्णतया रंजित करने का रहा है। हमारे यहाँ Expression (अभिव्यक्ति) पर ज़ोर दिया गया है, और पाश्चात्य कलाविदों ने Impression (प्रतिबिंब) का महत्त्व घोषित किया है।

पाश्चात्य कलाविद् किसी रूप तथा वस्तु के प्रत्येक भाग को सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से अंकित करने के लिये जी-जान से कोशिश करते हैं। इसमें ही वे अपना कर्तव्य पूरा हुआ समझते हैं। किसी फूल को देखकर उसके रूप पर वे मुग्ध हो गए, और लगे तूलिका लेकर उसकी प्रत्येक पँखड़ी को बड़ी बारीकी से चित्रित करने। उस फूल के कारण उनके अंतस्तल के निगूढ़ प्रदेश में कोई गंभीर आध्यात्मिक भाव हिलोरें नहीं लेता। कोई वेश्या यदि अत्यंत रूपवती है, तो उसके शरीर के अंग-प्रत्यंग की छवि अंकित करने के लिये उनका हृदय तलमलाने लगेगा। उसके हृदय का रूप देखने की तकलीफ़ उठाना वे फ़िज़ूल समझते हैं। स्मरण रहे, मैं सभी पाश्चात्य कलाविदों के संबंध में ये बातें नहीं कह रहा हूँ। ग्रीक तथा रोमन लोगों के युग से पश्चिम में सौंदर्य तथा कला का जो सार्वजनीन आदर्श चला आता है, उसी के संबंध में मैं ये बातें लिखता हूँ। प्राचीन ग्रीक लोग शारीरिक सौंदर्य पर कितना ज़ोर दिया करते थे, यह बात सभी को विदित है। यूनान की प्राचीन भास्कर्य-कला का नमूना देखने का जिन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे जानते हैं, शरीर के गठन (Phisiognomy) तथा अस्थिविज्ञान (Anatomy) का ग्रीक लोगों को कितना ख़याल रहता था। ग्रीक लोगों के महाकाव्य 'इलियड' को पढ़कर जिस अनिर्वचनीय सौंदर्यमयी हेलेन का रूप तथा इतिहास लोगों के चित्त में अंकित होता है, उससे उसके बाह्य रूप का महत्त्व ही प्रतिपादित होता है। इस बाह्य सौंदर्य के कारण ही आज तक हेलेन की इतनी ख्याति है, और इसी के कारण प्रसिद्ध भयंकर ट्रोजन-युद्ध घटित हुआ था। हेलेन ग्रीक लोगों के सौंदर्य का आदर्श बनी हुई है। हृदय की कोमल तथा स्निग्ध भावनाओं का रूप उसके चरित्र से प्रतिपादित नहीं होता।

पर भारतवर्षीय कला का यह हाल नहीं है। हमारे कलाविद् शरीर के सौष्ठव तथा गठन पर बिलकुल ज़ोर

नहीं देते। वास्तविकता की दुहाई भी वे लोग नहीं देना चाहते। व्यक्त के भीतर अव्यक्त की जो छाया छिपी हुई है, उसी को प्रस्फुटित करना उनका मुख्यतम उद्देश्य रहा है। वस्तु का रूप चाहे ठीक उतरे या न उतरे, मूल-भाव स्पष्ट प्रस्फुटित होना चाहिए, यह उन लोगों की धारणा है। दाक्षिणात्य प्रदेश तथा उड़ीसा आदि अन्य ऐतिहासिक स्थानों में हमारी प्राचीन भास्कर्य-कला के जो नमूने मिलते हैं, उनमें ऐसे-ऐसे रूप अंकित किए गए हैं, जो बाहर से अत्यंत हास्य-जनक तथा अर्थहीन जान पड़ते हैं; पर उनके भीतर जो निगूढ़ रहस्य छिपा है, वह खेल या दिल्लगी नहीं है। छायात्मक भावों के प्रति हमारे कलाकारों की विशेष रुचि पाई जाती है। रवींद्रनाथ ने अपने किसी लेख में कहा था कि जो कवि कोमल रमणियों की सुहावनी चाल की उपमा देते समय गज-जैसे विकटाकार जंतु को सामने ला खड़ा करता है, यह निश्चय है कि वह उस विकट जंतु की गति की छाया उसके विकट रूप में से ग्रहण करके उसकी भयंकरता को कल्पना से एकदम विलीन करने की माया जानता है। जब हम किसी स्त्री को गजगामिनी कहते हैं, तब हमारे हृदय में गज की चाल की मनोहरता की छाया ही प्रभासित होती है, उसका स्वरूप नहीं; क्योंकि, हम लोग वस्तु में से उसकी अव्यक्त छाया को ग्रहण करने के आदी हो गए हैं। भारतीय कला का आदर्श हमको यही शिक्षा देता आया है। यह बात दोषपूर्ण भी है, और इसमें गुण भी है। दोष यह है कि इससे हम भावुकता की दलदल में बहुत ज़्यादा फँस जाते हैं, और जीवन की कठोर वास्तविकता की बिलकुल अवहेलना करते हैं। गुण यह है कि इसके कारण हम वस्तु के भीतर छिपी हुई उसकी मूल आत्मा को देख पाते हैं। वस्तु का बाह्य रूप बहुत धोका देता है, उसका वास्तविक स्वरूप उसकी अंतरात्मा में ही पाया जाता है।

आजकल 'छायावाद'-नामक भूत की जो माया बंगाल के कुछ श्रेष्ठ चित्रकारों के सिर पर सवार है, वह उनकी नई कल्पना नहीं है। प्राचीनतम युग से ही यह भूत भारतीयों को तंग करता आया है। पाश्चात्य के कुछ कलाविदों ने भी इस भाव को अपनाया है। माइकेल एंजेलो, फ्राँशे, मिले आदि चित्रकार इसके दृष्टांत हैं। इसमें संदेह नहीं कि एंजेलो और मिले ने अव्यक्त की अभिव्यक्ति की चेष्टा की है; पर उनका 'रहस्यवाद' उतना 'छायात्मक' नहीं है, जितना हमारा। हमारी कला कभी-कभी अत्यधिक मात्रा में 'छायात्मक' जान पड़ती है। यही कारण है कि कभी-कभी कला के श्रेष्ठ पारखी उससे उकता उठते हैं। उनका उकताना स्वाभाविक ही है। पर एंजेलो और मिले की कला की छाया अत्यंत सुंदर, स्पष्ट तथा सरल है। इन दो कलाकारों ने प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्श एक रूप में मिलित करके उन्हें अपनी कला में प्रस्फुटित किया है। राफ़ेल ने भी अपने Impressionism (प्रतिबिंबवाद) में Expressionism (अभिव्यक्तिवाद) का समावेश कुछ अंश में अवश्य किया है; पर प्रकृति के बाह्य सौंदर्य से ही उन्हें अधिक प्रेरणा मिली है। यह सत्य है कि प्रकृति के बाह्य सौंदर्य को उन्होंने अपनी आत्मा की नस-नस में मिला लिया था। यह गुण भी अत्यंत महत् है। इसी कारण वे Madonna (मातृमूर्ति) के अपूर्व सुंदर चित्र को अंकित करने में समर्थ हुए हैं, जिनके कारण उनका यश समस्त जगत् में व्याप्त हो गया है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि प्राच्य कला आत्मा है, और पाश्चात्य कला देह। बिना देह की साधना के आत्मतत्त्व का निर्द्धारण नहीं किया जा सकता, और बिना आत्मा के देह व्यर्थ है। इस कारण कहना पड़ता है कि जिन कला-महारथियों के चित्रों में प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्श एक रूप में मिलित हुए हैं, उन्हींने कला का मूल-भाव ग्रहण किया है।

इलाचंद्र जोशी

× × ×

२. चित्रकला पर मिले के विचार

(विगत अंक में मैंने मिले और उसकी कला के संबंध में बहुत कुछ लिखा है। इस अंक में पाठकों को यह जतलाना चाहता हूँ कि कला के संबंध में उसके क्या विचार हैं। रोम्याँ रोलाँ ने अपनी एक पुस्तक में इस विषय में जो मंतव्य प्रकट किए हैं, उनमें से कुछ अंशों का स्वतंत्र अनुवाद मैं नीचे देता हूँ। मैंने अपनी इच्छा के अनुसार अनुवाद को घटाया और बढ़ाया है। इलाचंद्र जोशी।)

मिले उन क्रांतिकारी कलाकारों में नहीं गिना जा सकता, जो नई कला की सृष्टि करना अपना प्रधान कर्तव्य समझते ... का चित्रकार अपने काल की

दुनिया को, भूतकाल की चिर-पुरातन कला के द्वारा व्यक्त करना चाहता था। अपने समसामयिक चित्रकारों की कला से उसे बहुत चिढ़ थी। बूशे (Bouches) की कला को वह अत्यंत घृणा की दृष्टि से देखता था। उसके चित्रों को वह अश्लील बतलाता था। उसके चित्रों में "पतली टाँगोंवाली, ऊँची एड़ीवाली जूतियों से कुंचित पदवाली, पतली-पतली कमरवाली, बेकार हाथ तथा रक्तरहित स्तन-वाली 'भावुक' स्त्रियों" को देखकर उसका मन संकुचित हो जाता था।

प्राचीन चित्रकारों की स्वाभाविक सरलता ने उसका मन हर लिया था। वह कहता था—"प्राथमिक चित्रकारों के प्रति मेरा बड़ा झुकाव है। उनके विषयों में बालकपन की सरलता पाई जाती है; उनके भाव, उनके अनजान में, स्वतः व्यंजित होते हैं। उनका व्यक्तित्व यद्यपि कुछ नहीं बोलता, पर अपनेको जीवन के भार से ग्रस्त हुआ अनुभव करता है, विना किसी शिकायत के उसे सहता है तथा किसी व्यक्ति से सहायता माँगने के विचार के विना दुःख के सनातन नियम का पालन करता है।"

फ़्राँ एंजेलिको तथा मांटेग्ना नाम के इटालियन चित्रकारों की कला पर वह मुग्ध था। उनके विषय में वह कहता था—"इस प्रकार के श्रेष्ठ कलाविद् अद्भुत शक्ति धारण करते हैं। वे तुम्हारे मुँह के सामने अपने आंतरिक सुख और दुःखों की छाया प्रकाशित कर देते हैं।" इसके अतिरिक्त सम-सामयिक कुछ फ़्रांसीसी कलाकारों के प्रति भी उसके मन में श्रद्धा थी। लेज़ुकर को वह फ़्रांसीसी कला के आचार्यों में गिनता था, और पूसाँ (Poussin) को कला का पैग़ंबर तथा मसीहा मानता था। वह कहता था—"मैं पूसाँ के चित्रों को यदि जीवन-भर देखता जाऊँगा, तब भी तृप्त न होऊँगा।" पर उसके ऊपर सबसे अधिक प्रभाव माइकेल एंजेलो का पड़ा था। उसके चित्रों ने उसे वास्तव में पागल कर दिया था। एंजेलो द्वारा अंकित एक चित्र देखकर, जिसमें एक मनुष्य मूर्च्छितावस्था में दिखलाया गया था, मिले अपने मर्म में वास्तविक वेदना का अनुभव करने लगा—वह चित्र इतना सच्चा था! वह कहता है—"मैं भली भाँति जान गया कि जिस व्यक्ति ने वह चित्र अंकित किया है, वह मानव-जाति के सुख-दुःख तथा पाप-पुण्य को एक ही मूर्ति के भीतर जीवित रूप दे सकता है। यह माइकेल एंजेलो की कला है, इतना कह देना ही सब कुछ कह देना है। शेर-बुर्ग में मैंने कुछ साधारण चित्र अवश्य देखे थे, पर यहाँ मैंने उसकी कला के मर्म का स्पर्श किया और उस व्यक्ति की आवाज़ सुनी, जिसका प्रभुत्व मेरे ऊपर मेरी ज़िंदगी-भर रहा।"

इन श्रेष्ठ चित्रकारों की कला से उसकी मैत्री थी। आधुनिक कलाकारों में अधिकांश ही उसे अत्यंत साधारण तथा 'अरुचिकर' जान पड़े। आधुनिक कला के मूल-भाव से ही उसे नफ़रत थी। वह इस संबंध में साफ़ कहता है—"हम लोगों के यहाँ कला केवल 'ड्राइंग-रूम' की सजावट के योग्य समझी जाती है; पर प्राचीन युग में कला तत्का-लीन जीवन की मूल-आत्मा थी, और आध्यात्मिक भावों को प्रतिपादित करती थी।" इस अवनति के लिये केवल चित्रकार ही दोषी नहीं हैं। इसके मुख्य दोषी वे 'पंडित' हैं, जो कला की गति को संचालित करने का दावा रखना चाहते हैं। वह कहता है—"हमारे युग के मनीषियों ने कला के लिये क्या किया है? 'कुछ नहीं' से भी कम। एक श्रेष्ठ तथा प्रसिद्ध विद्वान् को मैं जानता हूँ, वह केवल उन चित्रों पर मुग्ध होता है, जिनमें उसके राजनीतिक तथा कोरे साहित्यिक भावों की पुष्टि हो। विक्टर ह्यूगो इस संबंध में 'टका सेर भाजी, टका सेर खाजा' बेचने की चेष्टा करता है। जॉर्ज सांड इस विषय पर मीठे-मीठे संगीतमय शब्द कहकर असली बात टाल देता है। बाल-ज़ाक, यूजेन सूए, बर्बिए आदि लेखकों की रचनाओं में मुझे एक पेज भी ऐसा नहीं मिला, जिससे उनकी कला की वास्तविक परख का पता चले। प्रूधों ने इस संबंध में जो बातें कही हैं, (अर्थात् कला राजनीति का मुख्य साधन होनी चाहिए), वे सुनने में बड़ी पांडित्यपूर्ण तथा लच्छेदार हैं; पर वे अंधे लोगों के लिये ही उपयुक्त हैं।"

यही कारण था कि मिले अपने को अपने युग से बिल-कुल विच्छिन्न समझता था, और कल्पना द्वारा शतांब्दियाँ पार करके कुछ प्राचीन श्रेष्ठ कलाविदों के साथ निवास करता था।

जो चित्रकार चित्रों में रंगों के विषय को अधिक महत्त्व दिया करते थे, उनके प्रति उसके हृदय में घृणा का भाव वर्तमान था। वह कला में निगूढ़ भावों की अभिव्यक्ति पर सबसे ज़्यादा ज़ोर दिया करता था। पूसाँ की शैली को वह बहुत पसंद करता था। पूसाँ के एक चित्र के संबंध में किसी

ने कहा है—"इसका असर ऐसा ही हुआ, जैसा एक सुंदर आध्यात्मिक वचन का, जिसे श्रोता शांत होकर सुनता और सुनकर चुपचाप चला जाता है; पर उस वचन का प्रभाव उसके हृदय में बना रहता है।" चित्र में रंगों का विषय महत्त्वपूर्ण नहीं है। एक विद्वान् के कथनानुसार वे आँखों को उसी तरह ललचाते हैं, जिस प्रकार कविता में छंदों की सुंदरता मन को ललचाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सुंदरता प्रशंसनीय है, पर इस प्रकार के बाह्य सौंदर्य से महत्त्वपूर्ण है भाव का गांभीर्य।

पूसाँ के कई गुण मिले में मिलते हैं। दर्शन तथा आध्यात्मिकता के भाव दोनों में सम मात्रा में मिलित थे। दोनों वास्तविकता को पसंद करते थे; पर साथ ही उच्च विचारों के प्रतिपादक थे। पूसाँ की तरह उसकी आँखें भी गहरी काली थीं, और हाथ भारी। वह बहुत दिनों से पूसाँ के छपे हुए पत्र पढ़ता आया था, और उन्हें पढ़कर उसके भावों को अपने में मिला लिया था। कला के संबंध में पूसाँ के सिद्धांत उसने अपने बना लिए थे।

मिले ने एक व्यक्ति को लिखा था—"जब पूसाँ ने अपना एक चित्र किसी मित्र के पास भेजा था, तब उसने यह नहीं कहा था कि देखो, इसमें कैसा सुंदर रंग भरा है, यह कितनी सफ़ाई से खींचा गया है। इस प्रकार की बातों को वह कभी महत्त्व नहीं देता था। उसने कहा था, यदि तुम इस चित्र को अच्छी तरह से देखोगे, तो तुम्हें मालूम हो जायगा कि कौन व्यक्ति दुःख से कराह रहा है, कौन करुणा का पात्र है और कौन दया-वितरण कर रहा है।"

वह चित्र को एक ग्रंथ के तौर पर देखता था। वह लिखता है—"भावों की अभिव्यक्ति ही कला का मूल-उद्देश्य है। कोई चित्र अंकित करने के समय चित्रकार के हृदय में क मुख्य भाव वर्तमान होना चाहिए, और उस भाव को दूसरों के हृदय-पट पर अंकित कर देना उसका मूल-लक्ष्य होना चाहिए।" कला का उद्देश्य कोरा रूप प्रदर्शित करना है; पर ऐसा रूप दिखलाना है, जो रसमय तथा भावमय हो। चित्र में जो लोग केवल हाथ की सफ़ाई का काम दिखलाना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझते हैं, उन्हें मिले पसंद नहीं करता। वह कहता है—"उस चित्रकार को धिक्कार है, जो कला से अधिक अपने कौशल की परवा करता है!"

भाव की अभिव्यक्ति तभी सुंदर रूप से हो सकती है, जब किसी भावपूर्ण दृश्य को देखकर हमारे हृदय में गहरा प्रभाव पड़ता है। मिले कहता है—"जो भाव मेरे हृदय में मूल प्राकृतिक दृश्य में अंकित नहीं हो जाता, उसे मैं चित्र द्वारा व्यंजित करना नहीं चाहता। कला की अवनति तभी से हुई है, जबसे लोग उन भावों की अवहेलना करने लगे, जो मूल प्राकृतिक दृश्यों के देखने से प्राप्त होते हैं। प्रकृति का स्थान जब हस्त-कौशल ने ले लिया, तब अवनति के अतिरिक्त और क्या हो सकता था!"

कला के आलोचकों में से अधिकांश सौंदर्य का एक छायात्मक आदर्श अपने सामने रख लेते हैं, और कला पर इसी आदर्श से विचार करते हैं। मिले इस प्रकार के नियम-बद्ध-आदर्श का विरोध करता है। जब किसी कलाकार की कृति पर विचार किया जाता है, तब इस बात का ख़याल नहीं किया जाना चाहिए कि उसकी कला सौंदर्य के किसी विशेष नियम के अनुसार उपयुक्त है या नहीं; परंतु इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि उसका वैयक्तिक भाव क्या है, और उसने अपने इस वैयक्तिक भाव को अच्छी तरह से अंकित किया है या नहीं। मिले का कहना है कि चित्र के बाह्य स्वरूप की सुंदरता अथवा भद्देपन से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। कला में मुख्य बात है वह शक्तिपूर्ण प्रेरणा, जो कलाकार को किसी भाव की अभिव्यक्ति के लिये प्रेरित करती है। वह कहता है—"सौंदर्य केवल मुख में निवास नहीं करता; वह समग्रता में निवास करता है। भाव की व्यंजना ही सौंदर्य है।" पूसाँ ने इसी प्रकार कहा है—"सौंदर्य भौतिक शरीर से परे रहता है।"

मिले सामंजस्य पर बहुत ज़ोर देता था। वह कहता था—"मूल-भाव ही आवश्यक है, अन्य-भाव महत्त्वहीन हैं। मैं चित्र में जिन-जिन वस्तुओं को चित्रित करता हूँ, उन्हें मूल-भाव को परिस्फुट करने के लिये ही चित्रित करता हूँ, न कि ख़ामख़याली से। मूल-भाव से जिसका संबंध न हो, मैं उसे चित्रित करने के ख़िलाफ़ हूँ, चाहे वह वस्तु कितनी ही चित्ताकर्षक क्यों न हो।" कला की संगति को वह कभी ख़र्च नहीं करना चाहता था। वह कहता था—"चित्र को 'फ़िनिश' करने के लिये नाना खंड-खंड बातों की आवश्यकता नहीं होती, समग्रता में ही उसकी महत्ता है। विषय चाहे कैसा ही हो, एक मुख्य भाव की ओर तुम्हारी तूलिका प्रेरित होनी चाहिए। यह मूल-भाव उन लोगों पर भी प्रेरित होना चाहिए, जो तुम्हारा चित्र देखते हैं। इस कार

नाना खंड-खंड रूपों के अंकन में तुम्हें फिर-फिर इसी मूल-भाव की ओर लौटना चाहिए। यदि ऐसा न करके तुम अपने चित्रों में नाना खंड-भावों की सुंदरता दिखलाने में व्यस्त रहोगे, तो, कोई मूल-भाव न होने के कारण, दर्शक-गण तुम्हारे चित्र को उदासीनता की दृष्टि से देखेंगे। तुम प्रत्येक वस्तु का सौंदर्य दिखलाने की चेष्टा करते जाओगे, तो अंत नहीं पाओगे। समग्रता का मूल-केंद्र प्रदर्शित करना ही कला का उद्देश्य है। सारांश यह कि चित्र को रंजित किए बिना भी काम चल सकता है; पर संगति के बिना नहीं चल सकता।"

मिले के चित्रों में उसकी आत्मा की झलक पाई जाती है। उसने किसानों के जीवन के जो नग्न चित्र अंकित किए हैं, उनकी वास्तविकता के भीतर एक उन्नत आध्यात्मिक रहस्य छिपा हुआ है। तुच्छ दृश्यों तथा विषयों द्वारा उन्नत भाव को अभिव्यक्त करना ही उसकी राय में कलाकार का अपनी शक्ति जतलाना है। उसके लिये बाह्य रूप वस्तु की भीतरी आत्मा का रहस्य जानने का साधन है। अपने हृदय की कविता तथा भावुकता को वह प्रत्येक वस्तु के भीतर मिलित कर देना चाहता था। उसकी कला में उसके कौशल से अधिक उसका हृदय प्रतिपादित होता है। उसके उच्च विषाद से पूर्ण हृदय की तुलना केवल माइकेल एंजेलो के हृदय से की जा सकती है। उसकी कला में प्रसन्नता की झलक कहीं नहीं पाई जाती। जीवन की कठोर वास्तविकता तथा गंभीरता ही उसने अपनी कला में व्यक्त की है। इन्हीं भावों को वह श्रेष्ठ समझता था।

मिले की कला ग्राम्य जीवन का काव्य बतलाई जाती है, और यह उचित ही है। मिले के जीवन की पत्री में आमोद-प्रमोद की छाया भी नहीं पाई जाती। उसमें कठोर कर्म तथा कर्तव्यपूर्ण गार्हस्थ्य धर्म का आभास मिलता है। इस पत्री के शीर्षक में, एक विद्वान् की सम्मति के अनुसार, यह धर्म-वाक्य लिखा जाना चाहिए—"प्रमोद के विषयों का त्याग करो।" कला में प्रमोद का भाव व्यक्त करना मिले पाप समझता था।

"चित्रगुप्त"

स्त्री-समाज

१. एलिज़बेथ फ़्राई



भारतवर्ष में जेलख़ानों की जैसी दुर्दशा है, और बेचारे क़ैदियों के साथ जैसा दुर्व्यवहार किया जाता है, उसकी चर्चा प्रतिदिन पत्रों में रहा करती है। यद्यपि राष्ट्रीय जागृति के कारण जेलख़ानों का थोड़ा-बहुत सुधार हुआ है, परंतु अभी तक भारतवर्ष में राजनीतिक क़ैदियों के साथ भी उतना अच्छा सलूक नहीं हो रहा है, जितना कि पाश्चात्य देशों में जरायम-पेशा क़ैदियों के साथ किया जाता है ! अस्तु।

अब से एक शताब्दी पूर्व इँगलिस्तान में भी क़ैदियों के साथ बहुत ही सख़्ती की जाती थी, और क्या पुरुष, क्या स्त्री, किसी के लिये भी जेल के कठोर नियमों में रियायत की गुंजाइश न थी। क़ैद के कष्टों के कारण कमज़ोर स्त्रियों की जो घोर दुर्गति होती थी, उसका वर्णन लेखनी की सामर्थ्य के बाहर है। छोटे बालक व पढ़ी-लिखी महिलाएँ—जिनको दंड मिल चुकता था, या जिनके मुक़दमे चल रहे होते थे—सब बुरे-बुरे दुष्ट पुरुषों के साथ एक ही कमरे में बंद कर दिए जाते थे, और कोई उनकी ख़बर लेनेवाला न होता था।

परंतु एक आदर्श स्त्री के परिश्रम से वहाँ इन दुर्व्यवहारों में सुधार हो गए। इसी समय में एलिज़बेथ फ़्राई नाम की एक आदर्श, बड़े धार्मिक विचारवाली, प्रसिद्ध महिला थीं। दीनों की सहायता ही उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था। उन्हें इसका पूरा-पूरा विश्वास था कि यदि दुष्टों के सुधार का उद्योग किया जाय, तो वे बिलकुल भले आदमी बन सकते हैं। यह महिला अपने जीवन के एक भाग में घमंडी और ऊपरी तड़क-भड़क की इच्छुक थीं, और इसलिये इन्हें पूर्ण अनुभव था कि बुरी आदतों को छोड़कर नेक चाल चलने में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अपने निजी अनुभव से वह दूसरों की दशा का अंदाज़ लगाया करती थीं, और किसी बुरे-से-बुरे मनुष्य के सुधार से भी वह निराश न होती थीं। जब कभी कोई उनसे किसी की बुराई करता, तो वह कहतीं—"दूसरों के पापों का ज़िक्र मत करो। हम सब भी अत्यंत कमज़ोर हैं।"

इस सौम्य मूर्ति ने सुन रक्खा था कि जेल में क़ैदियों के साथ कैसा दुर्व्यवहार होता है, और किस प्रकार एक भला आदमी भी जेल की दूषित वायु के कारण पू

अपराधी बन जाता है। उन्होंने जेल के अधिकारीवर्ग से क़ैदियों से मिलने की आज्ञा चाही। अधिकारियों ने आज्ञा न दी। उत्तर मिला कि एक भली स्त्री इस स्थान पर एक मिनट भी नहीं ठहर सकती। परंतु एलिज़बेथ फ़्राई ने न माना। ज़िद करके आज्ञा प्राप्त की। तत्पश्चात् वह क़ैदियों से मिलीं। क़ैदियों पर इनकी मुलाक़ात का अद्भुत प्रभाव हुआ। दुष्टता और गंदगी के, बंद जेल-जीवन में अब उनको प्रथम बार ही एक सहायिका मिली थी।

अत्यंत शीघ्र एलिज़बेथ फ़्राई ने क़ैदियों और क़ैदख़ानों के कुप्रबंध और दुर्व्यवहारों को ठीक करने का विचार कर लिया। सबसे पहले उन्होंने क़ैदियों की ओर ध्यान दिया, और जेलख़ानों में एक-एक स्कूल खोलने की योजना उपस्थित की। अधिकारियों ने इसे हँसी में उड़ाना चाहा। कहा, इस प्रकार इच्छित फल उपलब्ध न होगा। परंतु इस आदर्श रमणी ने हिम्मत न हारी। फल-स्वरूप उन्होंने एक स्कूल खोल दिया। स्कूल चल निकला, और उसमें शीघ्र ही आशातीत सफलता मिली। इसके पश्चात् उन्होंने विचार किया कि क़ैदियों से भिन्न-भिन्न प्रकार के शिल्प-कार्य कराए जायँ, जिससे उनका जेल-जीवन अच्छी तरह कटे। अधिकारियों ने इसे भी असंभव बतलाया। कहा, इसका कार्य-रूप में परिणत होना कठिन है। परंतु एलिज़बेथ फ़्राई को अपनी इस तजवीज़ में भी अच्छी कामियाबी हुई, और क़ैदियों द्वारा शिल्प-कार्य अच्छी तरह संपन्न होने लगे।

संसार का कौन ऐसा व्यक्ति है, जो नीचे गिरे हुए को ऊपर उठाने का अवकाश रखता हो? वे इस झमेले में पड़ना ही नहीं चाहते। एलिज़बेथ फ़्राई को अपने विचारों में पूर्ण विश्वास था, उनके मत में स्थिरता थी। उनका यह पक्का निश्चय था कि "सचाई का कोई भी काम अधूरा नहीं रह सकता; क्योंकि ईश्वर सदैव सच्चे की ओर रहता है।" यही कारण था कि वह अपने प्रत्येक विचार में सफल-मनोरथ होती रहीं।

यह आदरणीय महिला एक संपत्तिशाली पिता की पुत्री थीं, और एक ऐसे ही व्यक्ति की पत्नी होने का गौरव भी इन्हें प्राप्त हुआ था। वह चाहतीं, तो ऐसी ही अन्य स्त्रियों की भाँति अपने जीवन के दिन आमोद-प्रमोद में व्यतीत कर सकती थीं। वह आराम से घर बैठे-बैठे ही प्रत्येक सत्कार्य के लिये रुपए भेज सकती थीं। परंतु उन्हें प्रत्येक दिन प्रातःकाल ग़रीबों का ध्यान आता था, जिनके फटे-मैले वस्त्र और अन्न के एक-एक दाने के लिये लालायित बालकों को देखकर आपसे भी दो आँसू बहाए बिना न रहा जायगा।

वह दुष्ट-से-दुष्ट व्यक्ति के साथ भी अच्छे-से-अच्छा बर्ताव करती और निराश-से-निराश व्यक्ति को भी सहायता देती थीं। उन्होंने अपने जीवन में सहस्रों कार्य ऐसे किए हैं। जब क़ैदी दूसरे स्थान को जाने के लिये जहाज़ पर चढ़ते, तो वह उनके बीच में खड़ी होकर उनके लिये प्रार्थना करती थीं। जब किसी ग़रीब को फाँसी का दंड दिया जानेवाला होता, तो वह समस्त रात्रि उसके पास बैठकर उसे समझाने और धैर्य बँधाने में व्यतीत कर देती थीं। उनका उपनाम 'क़ैदख़ाने की देवी' पड़ गया था। उनके सदुद्योग और सहायता से तमाम देश के क़ैदख़ाने—जो पहले कष्टों के केंद्र थे—आनंद-भवनों में परिणत हो गए थे, और क़ैदी पहले की अपेक्षा कुछ अच्छी दशा में वहाँ से निकलने लगे थे।

एलिज़बेथ फ़्राई का विचार था कि मुजरिम से इस प्रकार का बर्ताव होना चाहिए कि वह पहले की अपेक्षा एक अच्छा मनुष्य बन जाय, और इस प्रकार कुकर्म करने से स्वयं ही परहेज़ करने लगे। वह कहती थीं, क़ैदख़ाने बदला लेने के लिये नहीं, बल्कि क़ैदियों से दुष्कर्म छुड़ाकर उनको सुकर्मों में प्रवृत्त करने के लिये होने चाहिए।

एलिज़बेथ फ़्राई ने अपने विचारों को कार्य-रूप में परिणत करके एक महत्त्व-पूर्ण कार्य की बुनियाद रख दी। इँगलिस्तान में जेल-यात्रियों के साथ अब अच्छी तरह का व्यवहार होता है, और एलिज़बेथ फ़्राई का नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है।

देखिए, भारतवर्ष में कब कोई महिला एलिज़बेथ फ़्राई का आदर्श ग्रहण करती है।

आनंदीप्रसाद मिश्र "निर्द्वंद्व"

× × ×

२. ईरान में नारी-जागरण

प्रायः देखने में आता है कि सब युग और सब समय में पुरुष स्त्रियों को पीछे रखते आए हैं। सोने की ज़ंजीर में बाँधकर नारी-प्रगति को रोक रखने की चेष्टा वे करते रहे ... पुरुष स्वयं विद्या-बुद्धि में निपुण बनकर देश-देशांतर-

भ्रमण करते और उन्हें चहारदीवारी के भीतर रखकर मूर्खता और कुसंस्कार का नमूना बना देते हैं। किंतु संप्रति पर्शिया की महिलाओं की प्रगति के इतिहास से जाना जाता है कि वे आज शिक्षा-क्षेत्र में पुरुषों से किसी प्रकार भी घटकर नहीं हैं। सभ्यता-विकास के इस उन्नत युग में उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि प्रतिभा तथा शक्ति में स्त्रियाँ पुरुषों से किसी भी अंश में कम नहीं। स्त्रियाँ यदि पुरुष के साथ-साथ समान भाव से नहीं चल सकतीं, तो इसमें उन्हें बिलकुल दोषी मानना युक्ति-युक्त नहीं कहा जा सकता, बल्कि सुयोग का अभाव ही इसका एकमात्र कारण हो सकता है। सुयोग प्राप्त होने पर स्त्रियाँ पुरुषों से बढ़ जा सकती हैं। इसके अनेक प्रमाण दिए जा सकते हैं।

ईरान की नई जागृति का इतिहास बतलाने की आवश्यकता नहीं। नव युग के इस आलोकमय प्रभात में ईरान आज स्वतंत्र वायु-मंडल में विचरण करने के लिये व्यग्र हो उठा है। निस्संदेह यह भी स्वीकार करना होगा कि ईरान शिक्षा-क्षेत्र में और-और समुन्नत देशों की अपेक्षा पिछड़ा हुआ है। ईरान में कन्याओं के लिये केवल दो ही विश्वविद्यालय हैं। किंतु वहाँ पर हम कुछ ऐसी विचित्रता पाते हैं, जिसकी तुलना संसार के इतिहास में कम पाई जाती है। ईरान के दोनों विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनियों की संख्या ६९२ है। उनमें २७३ बालक और ४१९ बालिकाएँ हैं। इँगलिश स्कूलों में कुल मिलाकर ५,९३४ बालक और बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। ५,९३४ छात्रों में २,८८६ पुरुष और शेष ३,०४८ स्त्रियाँ हैं। यहाँ पर भी स्त्रियों की संख्या ही अधिक पाई जाती है।

ईरानी स्त्रियाँ समाचारपत्र-परिचालन में भी यथेष्ट नाम प्राप्त कर चुकी हैं। ईरान ने अब भी इस ओर विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया, साहित्य को उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचाने में जी-जान से कोशिश नहीं की। तथापि वहाँ की महिलाएँ समाचारपत्रों का संपादन करती हैं, और संसार में अपना नाम रक्खे हुए हैं। उनमें 'ख़िजर' की संपादिका मैडम अफ़ीफ़ा ख़ानम और अन्य एक पत्र की परिचालिका मैडम सिद्दीका ख़ानम का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

ईरानी महिलाओं की शक्ति का विकास, उनकी प्रतिभा की स्फूर्ति हम भारतवर्ष के किसी-किसी प्रांत में भी पाते हैं। बंगाल के 'हबलूल मतीन' के संपादक महीउद्दुल्ला की विदुषी कन्याओं का नाम प्रसिद्ध है। उनमें तीन ने तो अभी कलकत्ता-विश्वविद्यालय से, क्रम से, बी० ए०, एम० ए० और बी० एल्० की उपाधि प्राप्त की है, और दो कन्या अभी अध्ययन कर रही हैं। उक्त पत्र के संपादन में वे अपने पिता का दाहना हाथ हैं। वास्तव में महिलाओं की ऐसी ऐसी अपूर्व महिमा की बातें देखकर विस्मित हो जाना पड़ता है। ईरानी महिलाओं की देखा-देखी हमारे यहाँ की महिलाएँ भी उन्नति-पथ में अग्रसर होंगी, ऐसी आशा है।

× × ×

३. दाढ़ी-मूँछवाली एक महिला

फ़्रांस में मेडत्रेली नाम की एक स्त्री है, जिसके दाढ़ी और मूँछ, दोनों हैं। उसे देखने को दर्शकों की भीड़ लगी रहती है। उस पर टिकट लगा दिया गया है। दूर-दूर से फ़ोटोग्राफ़र उसका फ़ोटो लेने के लिये आते हैं।

गोपीनाथ वर्मा

× × ×

४. स्त्री और पुरुष का संबंध

आदमी के वास्ते दांपत्य प्रेम से बढ़कर जीवन सुख-पूर्वक व्यतीत करने का कोई भी साधन शायद नहीं है। जहाँ स्त्री और पुरुष में मेल है, वहाँ कोई मुसीबत पास नहीं आती। पैसे की तंगी अथवा शरीर के रोग भी उतना कष्ट नहीं देते, जितना आपस के मेल की कमी। जहाँ स्त्री-पुरुष मेल से नहीं रह सकते, वहाँ पैसे की जगह चार पैसे तो ख़र्च होते ही हैं, ऊपर से दोनों को मानसिक दुःख हर वक्त सताया करता है। एक अच्छी नीयत से भी जो बात करे, दूसरे को कहीं-न-कहीं पर उसमें बदनीयती अवश्य दिखाई देगी। हरदम सिर पर भूत सवार ही रहता है। यह दुनिया का अनुभव है, और इसी से यह मानना होता है कि सुख से जीवन व्यतीत करने और संतान की शिक्षा तथा तर्बियत के वास्ते इससे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है।

जहाँ दो व्यक्ति साथ रहेंगे, वहाँ आपस में मतभेद होना ज़रूरी है, चाहे आपस में कितना ही प्रेम क्यों न हो। स्त्री और पुरुष में भी मतभेद बहुधा होता है। समझदार लोग मतभेद होने में कोई हानि नहीं देखते, बरन् जागृति के चिह्न देखते हैं। इस पर भी दांपत्य प्रेम क़ायम रहता है, क्योंकि समझ से काम लेने और सलाह देते रहने

काम बन जाता है, और कुल काम हँसी-ख़ुशी हो जाते हैं। इन्हीं बातों का ख़याल करके शायद हमारे पूर्वजों ने विवाह-संबंध की रीति चलाई होगी। जब तक हिंदुओं में विवाह के नियम कड़े न थे, और जब स्त्री और पुरुष दोनों स्वतंत्र थे, तब भी तो हिंदू-धर्म क़ायम था, मगर कुछ लंपटों ने ऐसी हरकतें की होंगी, जिससे हमारे शास्त्रकारों को मजबूर होकर समाज के बंधनों को कड़ा करना पड़ा।

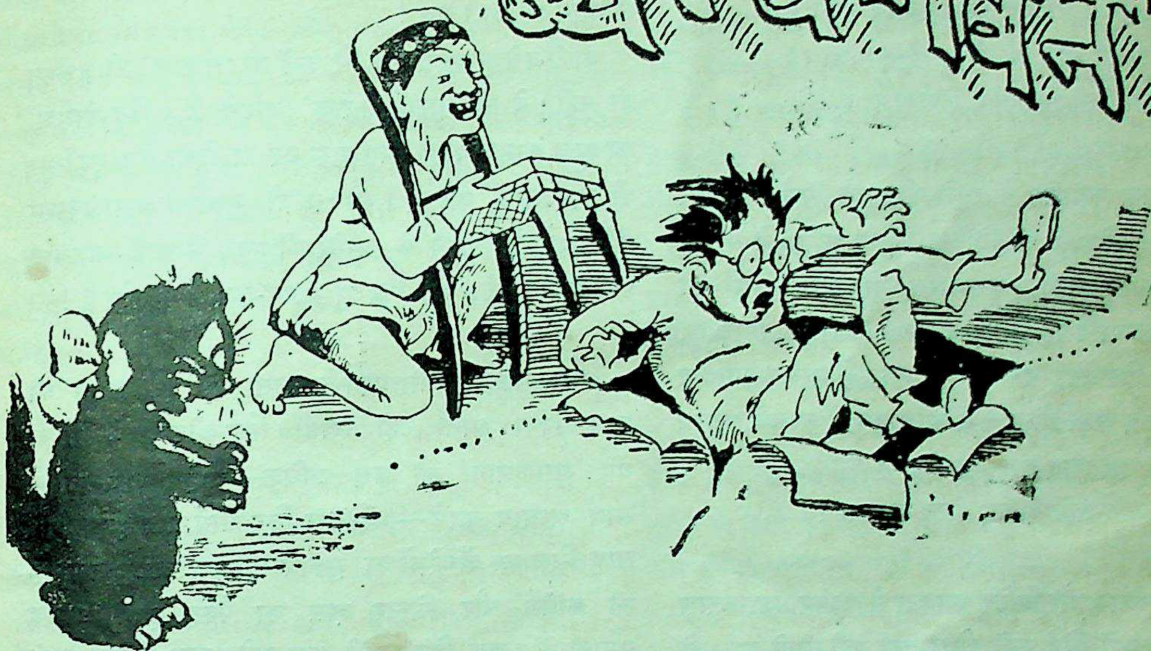
जहाँ तक गार्हस्थ्य धर्म को जटिल करने और उसे क़ायम रखने के वास्ते नियम कड़े किए गए, वहाँ तक तो वे मेरी समझ में आते हैं; किंतु देखने में यह आता है कि समाज ने स्त्री के वास्ते नियम कड़े ही नहीं किए, किंतु उन्हें अत्याचार की हद तक पहुँचा दिया है! स्त्री साधारण दोष पर भी भ्रष्ट और बहिष्कार के योग्य हो जाती है। वह कभी स्वतंत्र नहीं हो सकती—उसका पिता, पति, पुत्र या किसी भी नातेदार के अधीन रहना ज़रूरी है। ख़ैर, इसमें भी कोई इतना अत्याचार नहीं है। मगर नासमझी या भूल से कहीं किसी तरह एक दफ़े ग़लती हो जाय, तो सारा समाज ले-दे करके उसके पीछे पड़ जाता है, और उसे चैन से नहीं रहने देता; हालाँकि पुरुष के वास्ते उससे भी कहीं बढ़कर ज़्यादती बुरी नहीं समझी जाती। खुले ख़ज़ाने वे चाहे जो करें, समझ-बूझकर समाज के नियमों के ख़िलाफ़ चलें, कोई भी चूँ नहीं कर सकता। अंधा, काना, लँगड़ा, लूला, बदचलन, लंपट, कैसा भी पति क्यों न हो, रोज़ाना मारपीट क्यों न करता हो, उसे बस, उसी के गुण गाने हैं, और उसके मरने पर उसी की याद में अपने को भुला और घुला देना है। पतिव्रता के ये ही लक्षण बतलाए गए हैं। मगर क्या पुराने ज़माने में भी पतिव्रता के ये ही लक्षण थे? महाभारत के पढ़ने से बहुत-से ऐतिहासिक तथ्य ऐसे मिलते हैं, जिनसे यह मालूम होता है कि आजकल जो नियम प्रचलित हैं, वे स्त्री को पुराने ज़माने से कहीं ज़्यादा जकड़ रहे हैं। उस ज़माने में भी पुरुष ही स्त्री का पालन-पोषण करता था; किंतु अगर वह निकम्मा निकलता, तो वह दूसरा विवाह कर सकती थी। किताब लिखनेवाला चाहे कितनी ही झूठी बातें लिखे, किंतु जो दस्तूर उसके ज़माने में प्रचलित होते हैं, उन्हें वह ठीक ही लिखता है। लिखा है कि दीर्घतमा ऋषि की स्त्री प्रद्वेषी थी, और उनके कई पुत्र भी थे। दीर्घतमा पैसा पैदा नहीं करते थे, और बाल-बच्चों को खिला-पिला भी नहीं सकते थे। प्रद्वेषी ने पति से कहा—तुम मुझे खिला नहीं सकते, इससे मैं दूसरा पति करती हूँ। उन्होंने कहा—मैं स्त्री के वास्ते दूसरा विवाह करने का तरीक़ा बुरा समझता हूँ। फिर भी प्रद्वेषी ने उन्हें छोड़ ही दिया। लेखक ने यह नहीं कहा कि वह पतिव्रता न थी। राजा पांडु की दो स्त्रियाँ थीं, जिनमें कुंती के तीन और माद्री के दो पुत्र थे। किंतु पांडु के औरस एक भी नहीं। कुंती के मुँह से लेखक यह कहलाता है कि तीन पुत्र से अधिक जो स्त्री अन्य पुरुष के सहवास से पैदा करती है, वह धर्म-च्युत होती है। माद्री आज तक पतिव्रता कहलाती है, और वह पति के साथ सती भी हो गई। सारे कुटुंब को पाँच पांडवों के पैदा होने का असली हाल मालूम था, फिर भी वे राजा पांडु के पुत्र कहलाते थे, और उन्होंने उनका राज्य भी पाया। किसी ने यह न कहा कि इन की माताएँ पतिव्रता न थीं, और ये उनके पुत्र हैं ही नहीं। एक ही स्त्री के गर्भ से पैदा होकर भी एक पुत्र ब्राह्मण और एक क्षत्रिय हो सकता था। वेदव्यास और विचित्रवीर्य एक ही माता के पुत्र थे; पर एक ब्राह्मण था, दूसरा क्षत्रिय। विचित्रवीर्य के मरने पर वेदव्यास द्वारा उनकी रानियों से संतान पैदा कराई गई, और वह भी माता की आज्ञा से। उन रानियों को कौन पतिव्रता नहीं कहता? उन रानियों की संतान क्षत्रिय थी। समाज इन बातों को बुरा नहीं समझता था।

अगर स्त्री के वास्ते वे ही बंधन होते, जो आज हैं, तो महाभारत का इतिहास और ही तरह लिखा गया होता। आज हमारे देश में स्त्री की दशा में ऐसा परिवर्तन हो गया है कि यदि महाभारत के ज़माने के नर-नारी किसी तरह फिर आ जायँ, तो देखकर दंग रह जायँगे। शायद अपना मुल्क ही न पहचानें। उनकी यह समझ में न आवेगा कि स्त्री थोड़ी-थोड़ी-सी बातों में कैसे पतित हो जाती है। कहाँ तो हिंदू-स्त्री स्वतंत्र विचरा करती थीं, कहाँ उनके वास्ते यह बंधन कि अगर किसी स्त्री पर बलात्कार भी किया जाय, तो भी वह पतित हो जाती है। हिंदू-जाति के लिये क्या यह शर्म की बात नहीं कि उसने स्त्री को इतना नीच बना रक्खा है? हमारे सामने राजकुमारी माया का दृष्टांत अभी ताज़ा है। यह छोटी नेपाली लड़की कलकत्ते में कुछ लंपटों के हाथ पड़ गई। उसने निकल भागने की

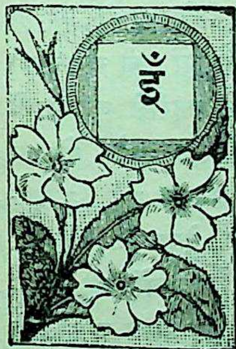
बहुत-सी तरकीबें कीं, और आख़िर में एक वीर नैपाली युवक ने उसे बचाया। किंतु इस बीच में वह भ्रष्ट की जा चुकी थी। अब देखिए, वह किस दशा में है! बाप ने छोड़ रक्खा है, और हिंदू-सभा उसकी तरफ़ से बेख़बर है। वह एक ग़रीब नैपाली मोटर चलानेवाले के पास रहती है, और वह और उसकी स्त्री उसका पालन कर रहे हैं। इसमें शक नहीं कि वह वीर मोटर-ड्राइवर समाज की परवा न कर इस दुखिया की सहायता कर रहा है। क्या ऐसी हालतों में समाज का कोई धर्म नहीं है? मगर दस्तूर ऐसा ही है कि जहाँ किसी भी स्त्री के पाँव ऊँचे-नीचे पड़े—चाहे वशी से, चाहे ज़बरदस्ती से—फिर वह जन्म-भर के वास्ते पतित हो गई, और उसको भ्रष्ट करनेवाले मज़े से मूछों पर ताव देते हुए हिंदू-धर्म के बचानेवाले ही बने रहे! माया का हाल प्रसिद्ध है, और सबको मालूम है, इसी से इस संबंध में ज़्यादा नहीं लिखता हूँ। ऐसे मामले अब कम सुनने में आते रहते हैं। मैं तो यही कहूँगा कि इन सब बातों में अधिक अत्याचार स्त्री के प्रति हो रहा है। इस बेगुनाह लड़की के मामले का मुक़ाबला उन ऐतिहासिक स्त्रियों से कीजिए, जिनका उल्लेख मैंने ऊपर किया है। सत्यवती और कुंती ने क्वाँरेपन में अपनी मर्ज़ी से जो बात की, उस पर वे पतित न हुईं; किंतु राजकुमारी माया बलात्कार होने पर भी पतित हो गई! एक मेम साहब उस लड़की से मिलने गईं, और पूछा कि हिंदू-जाति तुम्हारी सहायता करती है या नहीं, तो उसने कहा कि हिंदू-जाति का नाम मेरे सामने न लो। न-मालूम कितनी ऐसी ही औरतें, इसके अलावा, इसी तरह की होंगी! समाज का अत्याचार हिंदू-धर्म को बदनाम कर चुका है, और कर रहा है। यह बदनामी क्योंकर दूर हो, हिंदू-सभा या हिंदू-जाति के नेताओं के विचार करने की बात है।

हिंदू-समाज की बदनामी केवल भारतवर्ष में ही नहीं, दुनिया-भर में फैलाई जा रही है। बदनामी का एक ही विषय नहीं है, बल्कि बीसियों हैं। उदाहरण के लिये बाल-विवाह, छुआछूत, जातपाँत का भेद, पर्दा, विधवा-विवाह इत्यादि। इन विषयों पर, आगे कभी हो सका, तो अपने विचार लिखूँगा। हिंदू-समाज-सुधारक इस विषय पर पूरा ध्यान दे रहे हैं, और संभव है, देर-सबेर सफल भी हों; मगर अभी तक सुधार में बाधा डालनेवाले लोग बहुत हैं, और उनको सुधार का पक्षपाती बनाना है। समाज के बंधन किसी-न-किसी रूप में क़ायम अवश्य रहेंगे, सुधारकों की कोशिश तो यही होनी चाहिए कि वे अत्याचार की हद तक न पहुँचें।

मोहनलाल नेहरू



१. भारत को पथ-भ्रष्ट करने के लिये



गलैंड के राजनीतिज्ञों का दिमाग़ पटाख़े की तरह चला करता है। यू० पी० के भूतपूर्व छोटे लाट जनाब मेस्टन साहब ने विलायत में अभी फ़र्माया है कि हिंदू-मुसलमानों के झगड़े आजकल भारत में बहुत होते हैं। इसलिये दोनों को ईसाई हो जाना चाहिए। इस सफ़ेद झूठ की पुष्टि के लिये आगे आपने इर्शाद किया है कि यदि मैं ईसाई न होता तो भी यही सलाह देता; क्योंकि सच्ची शांति ईसाई-धर्म में ही मिल सकती है। चे ख़ुश! सलाह तो बड़ी माक़ूल है। मगर चिड़िया के बच्चों को बूढ़े बिल्ले के उपदेश पर विश्वास हो, तब तो! कोई आपसे पूछे, क्या हिंदोस्तान को धर्मोपदेश देते समय ही आप लोग ये 'नानी की कहानियाँ' गढ़ा करते हैं, या विलायत में भी इनसे कुछ काम निकलता है? यदि ईसाइयत की जड़ में शांति की घुट्टी घुली हुई है, तो कई सौ वर्षों से उसे पीनेवाले देश आज एक दूसरे के ख़ून के प्यासे क्यों हैं? इँगलैंड और रूस, फ़्रांस और जर्मनी ईसाई हैं, या कुछ और? क्या इँगलैंड से पैक होकर सात समुद्र पार होने पर ही ईसा- इयत के नुसख़े का मिज़ाज ठंडा हो जाता है? या इसमें कोई राजनीतिक चाल है?

× × ×

सुना है, मध्यप्रांत के मिस्टर क़ादिर वहाँ की कौंसिल में यह प्रस्ताव उपस्थित करेंगे कि "मुसलमानी त्योहारों पर गो-वध बंद कर दिया जाय, क्योंकि क़ुरानशरीफ़ में गो-वध की आज्ञा नहीं है, और पुलीस तथा मैजिस्ट्रेटों को हिंदू जुलूसों के रोकने का अधिकार न रहे। वे केवल शांति-रक्षा का प्रबंध किया करें।" सलाह तो अच्छी है, पर पागल मुल्लाओं की रेगिस्तानी ऊसर खोपड़ी में इस पौदे के पनपने की आशा नहीं। अब रहे पुलीस के कर्मचारी और मैजिस्ट्रेट, सो वे तो सखी नौकरशाही के नाज़-बरदार हैं। उसी के इशारे पर नाचते हैं। क्या डेढ़ सौ बरस से भारत में शासन करनेवाली बूढ़ी नानी को यह पता ही नहीं कि अब तक मसजिदों के सामने बाजे बजा करते थे या नहीं? फिर आज जा-बजा उनकी बंदिश क्यों की जाने लगी है?

क्या 'अमन और क़ानून' की रक्षा का भार उठानेवाली बूढ़ी नानी की रगें कुछ ढीली हो गई हैं ? या पुलीस और सेना की ख़वीद (दाना-घास) में कुछ कमी पड़ गई है ? अथवा रॉयल कमीशन के आगे हिंदू-मुसलमानों को अयोग्य सिद्ध करने के लिये ही यह पट-परिवर्तन हुआ है ?

"किस सोच में हो, नसीम, बोलो।
आँखें तो मिलाओ; दिल कहाँ है ?"

× × ×

उधर रॉयल कमीशन के आने की ख़बर गर्म हुई, और इधर पुलीस-परमेश्वरी की विचित्र 'सूँघन-शक्ति' ने बंगाल से लेकर पंजाब तक उत्तर-भारत में राजद्रोहियों को सूँघ लिया। तलाशियों की धूम मच गई। कारतूस, पिस्तौल, तमंचे, बम, विस्फोटक पदार्थ और राजद्रोहात्मक साहित्य आदि सब कुछ बात-की-बात में आसमान से टपकने लगा।

"इब्तिदाए इश्क़ है रोता है क्या ?
आगे-आगे देखिए होता है क्या ?"

× × ×

भारत-सरकार और ब्रिटिश सरकार से बढ़कर प्रजा-वत्सल सरकार संसार में कोई नहीं। जिस तरह बूढ़ी नानी बच्चे को प्रसन्न करने के लिये उसकी हर बात की नक़ल करती है, उसी प्रकार सरकारें भी करती हैं। देखिए न, इधर हिंदोस्तानी नेताओं ने रॉयल कमीशन के बहिष्कार की चर्चा चलाई और उधर प्रजा-वत्सल गोरी सरकारों ने रॉयल कमीशन से हिंदोस्तानियों का बहिष्कार करा दिया। और क्या प्रजा-वत्सलता के कोई सींग-पूछ लगते हैं ? परंतु हिंदोस्तानी—ख़ासकर हिंदू लोग—इतने मूर्ख हैं कि ज़रा भी नहीं समझते। मंदिर में देवता के पास तक पुजारी लोग ही जाने पाते हैं, भक्त लोग दूर से हो स्तोत्र-पाठ किया करते हैं। दीक्षा के विना चक्र के भीतर प्रवेश करना असंभव है। प्रजा-वत्सल ब्रिटिश सरकार ने भी रॉयल कमीशन के लिये यही नियम बना दिया है। पार्लियामेंट के 'भैरवी चक्र' में 'पूर्णाभिषेकी' गोरे पुजारी ही प्रवेश कर सकेंगे। हिंदोस्तानी नेताओं को चाहिए, भक्ति-पूर्ण स्वर से, गद्गद कंठ से, अश्रुपूर्ण बदन से, और दाँत-निपोरन आकार से लांगूल हिलाते हुए गोरे पुजारी प्रभुओं के सबूट चरणों में अपना वदनोदर दिखाने का अभिनय करते हुए गोरी देवी का स्तोत्र-पाठ करना आरंभ कर दें। यदि गोरे पुजारी इनके करुण क्रंदन से प्रसन्न हुए, तो अपने 'भैरवी चक्र' में 'कारण' का पेग (Peg) चखते और सिगार का धुँआ उड़ाते हुए कुछ कह गुज़रेंगे। अब रही फल होने की बात, सो उसकी ओर तो हिंदुओं को ध्यान ही न देना चाहिए; क्योंकि इनके शास्त्रों में साफ़ लिखा है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' बोल सनातन धर्म की जय !

बाक़ी बचे मुसलमान। सो उन्हें तो 'सोराज' की ज़रूरत ही नहीं। वे तो 'मुसलिम-राज' चाहते हैं। हिंदू-नेताओं का क़त्ल कामयाबी के साथ शुरू कर ही दिया है। मुट्ठी-भर अँगरेज़ बाक़ी बचे हैं। सो ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा और अफ़ग़ानिस्तान के अमीर की मदद से भाई साहबान इन्हें समझ लेंगे। बस फिर मुसलिम-राज में क्या देर है !

× × ×

भारत सरकार भी प्रजा-वत्सलता में बूढ़ी नानी की तरह अपना सानी नहीं रखती। हिंदू-लीडरों ने सोचा था, मुसलमानों को कुछ अधिक—चाहे हिंदू-जनता के साथ अन्याय करके—अधिकार दिए जायँ और इन्हें अपने साथ मिलाकर अँगरेज़ों का मुक़ाबला किया जाय। लखनऊ की कांग्रेस और मिस्टर दास का पैक्ट इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कुछ दिन इसकी धूम रही। बाद में बूढ़ी नानी ने भी अपने प्यारे बच्चों की नक़ल शुरू कर दी। मुसलमानों को अधिक अधिकार देने की नीति जारी कर दी गई। मसजिदों के आगे बाजा बंद, हिंदुओं की रामलीला और जलूस बंद, पागल मुल्लाओं के ज़हरीले व्याख्यानों की रोक-टोक बंद। हिंदुओं का लिखना और बोलना बंद, मुसलमानी षड्यंत्रों का पता लगाना बंद, मुसलमान अधिकारियों के कुकर्मों का दंड देना बंद, हिंदुओं की शिकायतें सुनना बंद, मुसलिम षड्यंत्रों की सत्ता को मानना बंद। यदि इतने पर भी हिंदू प्रसन्न न हों, तो समुद्र में डूब मरें। बेचारी बूढ़ी नानी तो इन्हीं के रिझाने के लिये इनकी नक़ल कर रही है।

× × ×

आजकल मुसलमानों की पाँचों—बल्कि दसों, बल्कि बीसों—घी में हैं। इधर हिंदुओं से अधिक अधिकार मिले, उधर अँगरेज़ों से। फिर भला ऐसे शुभ अवसर से लाभ क्यों नहीं उठाते ? 'यह अवसर नहिं बारंबारा', धड़ाधड़ काफ़िरों का क़त्लेआम शुरू कर दिया। 'सैयाँ भए कोतवाल हमें डर काहे का।'

हिंदोस्तान के कुछ बिगड़े-दिमाग़ लीडरों ने सोचा कि

विलायतवालों को अपनी लेक्चरबाज़ी से रिझाकर आसानी से स्वराज्य की सनद हासिल कर लावेंगे और 'विलायत-विलास' का मज़ा लूटेंगे घाते में। इधर उस्ताद लोग भी बेख़बर नहीं थे। यार लोगों ने ज़ोर लगाकर मिस मेयो को टपका दिया और उनकी प्रस्तावित 'सुधा-धारा' को बात-की-बात में—विना कौड़ी-पैसे के—भक्त जनों के मुखारविंद तक पहुँचा दिया। हिंदोस्तानी लीडरों का बिगड़ा हुआ मिज़ाज एक ही नुसख़े में दुरुस्त कर दिया गया। विलायत में प्रचार करके सात समुद्र पार से स्वराज्य की बूँदें लाने की इच्छा रखनेवाले लीडरम्मन्यों को इस हिकमती नुसख़े से कुछ सबक़ सीखना चाहिए।

"सदानंद"

× × ×

२. छायावाद

छायावाद चलाया किसने, किसकी है यह माया!
हिंदी-भाषा में यह न्यारा शब्द कहाँ से आया!
कौन रसिकवर मज़ा कर गया चुपके-चुपके आकर!
हिंदीवालों को पागल कर छिपा कहाँ वह जाकर!
बड़ा मसख़रा निकला यारो! बड़ा शरारतवाला!
हिंदी-भाषा-रत्न-कोष का गया निकाल दिवाला।
कितने पंडित लड़ चुके, फिर भी मिला न अर्थ;
मचा रहा है शब्द यह कैसा घोर अनर्थ!
हाय! आड़ में छिपकर इसके बुद्धू बने रसिकवर,
कला-पारखी पैदा होते जाते हैं अब घर-घर।
कविता जो न समझ में आई, कहकर 'छायावादी',
बुद्धू मियाँ व्यंग्य करने के हुए हाय! अब आदी!
'मिस्टिसिज़्म' का नाश मारकर, हो उसके प्रतिपक्षी,
'छायावाद' उसे बतलाते हैं साहित्यिक पक्षी!
कोई पूछ नहीं रहा, है क्या छायावाद!
सांख्यिक मायावाद है, या कोरा अपवाद।
बाबा! किस patent mint से हुआ word यह Coin!
इसका पता न चलता है कुछ, छाने वेद, 'रमायन'।
'मिस्टिसिज़्म' की वर्तमान हिंदी में गंध नहीं है,
हाँ, कविता में धाँधागर्दी बेशक कहीं-कहीं है।
पर यह 'छायावाद' कहाँ से उड़कर चिमट गया है!
यह, किस महारथी का भाई, आविष्कार नया है!
ख़ूब बनाया उसने देखो सब हिंदीवालों को,
इतना कोई नहीं बनाता है साली-सालों को।

× × ×

३. कुछ तथ्य

(१) कला में 'ज़नानिया' भावों का रस लेने में वही असमर्थ है, जो नपुंसक हो।

(२) आजकल हमारे यहाँ देश-द्रोहियों का सिरताज वही गिना जाता है, जो प्रेमचंदजी की रचनाओं की प्रशंसा का पुल न बाँध सके।

(३) निरालाजी ने अपनी एक अप्रकाशित काव्य-पुस्तक का नाम 'रेखा' इसलिये रक्खा है कि वह बेमेल, गतिहीन, 'स्वच्छंद' छंदों में हतभागिनी हिंदी-कविता की भावी की रेखा खींचना चाहते हैं।

(४) कौंसिलरों ने नैनीताल में कौंसिल की बैठक होने के लिये इस कारण ज़ोर दिया कि वहाँ उन्हें दो चीज़ें मुफ़्त में खाने को मिलती हैं, एक तो पहाड़ की ठंडी हवा और दूसरा पंतजी के यहाँ का भोजन।

(५) सबसे योग्य संपादक वही है, जो सबकी रचनाएँ छापकर, सभी की रुचि के अनुसार चलकर, सबको प्रसन्न कर सके। पर खेद है कि ऐसा संपादक मूर की 'युटोपिया' में भले ही टिक सके, वास्तविक संसार में नहीं टिक सकता।

(६) "क्या वर्तमान हिंदी-साहित्य में, किसी कवि की रचना में, 'मिस्टिसिज़्म' पाया जाता है?"

"नहीं, 'मिस्टिसिज़्म' तो नहीं पाया जाता; पर छायावाद अवश्य पाया जाता है।"

"यह क्या किसी नई चिड़िया का नाम है?"

"यह चिड़िया तो काव्य-जगत् में बहुत काल से विचरण करती आई है; पर हिंदी के साहित्यालोचकों ने इस पर पहले कभी ध्यान नहीं दिया था, इसलिये उन्होंने इसका अनोखा नामकरण किया है। हमारे Zoologist (जीव-शास्त्र के पंडित) लोग शांतिनिकेतन के सुरम्य कानन को इसकी जन्म-भूमि बतलाते हैं, यद्यपि वर्ड्सवर्थ, ब्राउनिंग, बॉयरन, शेली, टेनिसन आदि पाश्चात्य कवियों के काव्योद्यान में यह, बहुत पहले से, उक्त रूप से, विचरती आई है।"

"मायावादी"

समाज-सुधार

१. वर्तमान शिक्षा और युवकों का स्वास्थ्य



इसमें तो कोई संदेह नहीं कि सच्ची शिक्षा उसी का नाम है, जिससे शरीर और मन, दोनों स्वाभाविक रीति से स्वस्थ रहते हैं। प्राचीन यूनानी लोग तो स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन की उत्पत्ति को ही शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य समझते थे। बात तो यह है कि मन और शरीर का इतना सन्निकट संबंध है कि एक के अस्वस्थ रहते दूसरा स्वस्थ रह ही नहीं सकता। इस सिद्धांत की सत्यता को प्रायः सभी स्वीकार करते हैं, और प्रतिदिन के अनुभव से भी देखते हैं कि एक की विकृत अवस्था में दूसरे पर भी कुछ-न-कुछ असर पड़ता ही है। इसीलिये युवकों की शिक्षा के समय उनके शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा पूर्ण रीति से होनी ही चाहिए। अभिभावकों और शिक्षकों को एक क्षण के लिये भी इस महत्त्व-पूर्ण नियम की अवहेलना न करनी चाहिए।

बड़े ही खेद की बात है कि देश में अविद्यांधकार फैला होने के कारण, अधिकांश अभिभावक तो अपने कर्तव्य को जानते ही नहीं। वे समझते हैं, हमारा कर्तव्य इतना ही है कि बालक को किसी पाठशाला में बैठा देना और प्रतिमास फ़ीस देते जाना। अधिकांश अध्यापक भी अपना कर्तव्य इतना ही समझते हैं कि प्रतिवर्ष बालकों में से अधिकांश को परीक्षा के समय पास करा देना। बस, न तो माता-पिता ही बालक के शारीरिक स्वास्थ्य की इतनी चिंता करते हैं और न शिक्षक। उनके नेत्र तभी खुलते हैं, जब बालक को ज्वरादि रोग हो जाते हैं। बस, थोड़ा-बहुत उपचार करके रोग को दूर कर देने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। यह नहीं देखते कि किन-किन कारणों से बालक को रोग हो गया। शिक्षक का भी कर्तव्य है कि वह बालक के स्वास्थ्य पर ध्यान रक्खे, और समय-समय पर उसका वज़न, छाती की बाढ़ आदि देखकर अनुमान करे कि उसका स्वास्थ्य कैसा है। बालक के प्रफुल्लचित्त रहने या न रहने से और अपने कार्य में दिलचस्पी लेने या न लेने से भी शिक्षक को उसके स्वास्थ्य का बोध हो सकता है। अच्छे कर्तव्यशील शिक्षक इन सब साधनों द्वारा अपने विद्यार्थियों के स्वास्थ्य का अनुमान करते हैं और आवश्यकतानुसार अभिभावकों का ध्यान शारीरिक स्वास्थ्य की ओर आकर्षित करते रहते हैं। कई अ

स्कूलों में समय-समय पर डॉक्टरी परीक्षा भी हुआ करती है। उस समय भी शिक्षक डॉक्टर का ध्यान उस विद्यार्थी की ओर आकर्षित करता है, जिसके गिरते हुए स्वास्थ्य के लक्षण उसे दिखाई देते हैं। डॉक्टर असल बात को निकालकर कुछ उपचार बतला देता है, और शिक्षक अभिभावक से मिलकर या उसे पत्र लिखकर उस बालक के स्वास्थ्य के विषय में उसे सावधान कर देता है। ऐसा होने से समय के भीतर आवश्यक उपचार हो जाता है, और बालक का स्वास्थ्य बिगड़ने नहीं पाता अर्थात् वह रोग से बच जाता है।

जिन पाठशालाओं में शरीर के माप-तौल, डॉक्टरी परीक्षा आदि का प्रबंध है, वहाँ भी यदि शिक्षकगण अपने विद्यार्थियों के स्वास्थ्य के विषय में ध्यान न देते हों, तो समझना चाहिए कि वे अपने कर्तव्य का महत्त्व नहीं समझते। जिन पाठशालाओं में ये साधन नहीं हैं, वहाँ भी उनके शीघ्र ही प्राप्त कर लेने का उद्योग होना चाहिए। सबसे बढ़कर बात तो यह है कि शिक्षकों को भली भाँति समझ लेना चाहिए, परीक्षा पास करा देने के सिवा अपने विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-रक्षा भी उनका प्रधान कर्तव्य है। निरक्षर अभिभावक इन बातों को न समझें, तो कोई आश्चर्य नहीं; पर शिक्षकों को तो समझना चाहिए।

खेद की बात है कि हमारी महत्त्वाकांक्षाएँ तो बहुत बढ़ी-चढ़ी हैं, पर हम निरे पंगु हैं। देश-सेवा आदि उत्तम भाव तो हमारे मुँह से सदा निकला करते हैं; पर वास्तविक देश-सेवा क्या है, सो हम नहीं जानते। वर्तमान दशा में भी हमारे शिक्षित भ्राता कुछ आत्मत्याग दिखलाते हुए, स्थान-स्थान में स्वास्थ्य-सभाएँ स्थापित कर, निरक्षर या नाम-मात्र के साक्षर भ्राताओं को उपदेश देकर विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-रक्षा का मंत्र उनके कानों में फूक सकते हैं। पर खेद है कि इस इतने आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण कार्य को करने की इच्छा उनके मन में उत्पन्न ही नहीं होती। बात तो यह है कि स्वास्थ्य की ऐसी गिरी दशा रहते हमारी जाति 'नेशन' बनकर भी कुछ न कर सकेगी। सबल और स्वस्थ जातियों में से एक-न-एक हमारे कान मलती ही रहेगी। राष्ट्र-निर्माण के लिये हमें सर्व-प्रथम शक्ति प्राप्त करनी होगी। निरा अहिंसा का राग अलापने से कुछ न होगा। शक्ति-संपन्न बनने के पूर्व हमें शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा करनी होगी। इस उच्च उद्देश्य से भी स्वास्थ्य-रक्षा हमारा सर्व-प्रथम कर्तव्य है।

शिक्षकों द्वारा यह कार्य सहज ही हो सकता है। महायुद्ध के समय हम पढ़ते थे कि ४० वर्ष के भीतर जर्मन शिक्षकों ने समस्त जर्मन जाति के विचार बदलकर उसमें राष्ट्रीय भाव भर दिए थे, जिसका परिणाम हम लोगों ने अपनी आँखों से देख लिया। कहने का मतलब यह कि जर्मन शिक्षकों ने विद्यार्थियों को लेकर ऐसा रँगा कि इतने थोड़े समय में सारा देश उनके ही रँग में रँग गया। फिर क्या हमारे भारतीय शिक्षक, जो ऋषि-महर्षियों की संतान होने का दम भरते हैं, अपना प्रधान कर्तव्य करने से भी विमुख रहेंगे?

इसमें संदेह नहीं कि स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा पानेवाली हमारी वर्तमान पीढ़ी स्वास्थ्य-विहीन हो रही है जिसका यह फल है कि गोखले, रानाडे, आशुतोष, तैलंग आदि होनहार भारतीय ५०-६० वर्ष की अवस्था में ही चल बसते हैं। परीक्षा करके देखा गया है कि १०० पीछे ६० लड़के भी ऐसे नहीं निकलते, जिनका शरीर किसी-न-किसी तरह अस्वस्थ न समझा जाय। अधिकांश बालकों के दाँत, कान, आँख आदि अवयवों में, और बहुतेरों के इनमें से कई अवयवों में, कोई-न-कोई विकार पाया ही जाता है। यदि इसी अवस्था में यह विकार दूर कर दिया जाय, तो ठीक, नहीं तो समय पाकर वह घोर रूप धारण करता है। ऐसे बहुत आदमी देखने में आते हैं, जो ४०-५० वर्ष की अवस्था में दाँत खो बैठते हैं। ३०-३५ वर्ष से ये हिलने लगते और कई रोगों को उत्पन्न करते हैं। युवकों की परीक्षा करने से विदित होता है कि शायद ही कोई ऐसा युवक निकले, जिसे किसी प्रकार का धातु-रोग न हो। वीर्य ही शरीर का राजा है। जब वही दूषित हो रहा है, तो ऐसे पुरुष से किसी प्रकार के पुरुषार्थ की क्या आशा? वीर्य के अभाव से या उसके दूषित रहने से शरीर-रक्षा तक कठिन हो जाती है। ऐसे रोगी को साधारण भोजन भी नहीं पचता; दाँत गिर जाने या कमज़ोर हो जाने से पाचन-क्रिया नष्ट हो जाती है।

देश-भर में स्वास्थ्य की ऐसी दुर्दशा क्यों है? क्या वर्तमान शिक्षा-विधि ही इसका एक-मात्र कारण है, जैसा कि कई लोगों का विश्वास है? हमारा तो ऐसा मत नहीं

है। हम यह नहीं मानते कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ही हमारे स्वास्थ्य को नष्ट कर रही है। हम यह अवश्य मानते हैं कि हम लोगों में अब वैसे स्त्री-पुरुष नहीं देख पड़ते, जैसे अभी सिपाही-विद्रोह के पूर्व (सन् १८५७-५८ में) देखने में आते थे। हमारे घर में ही दो-चार ऐसे वृद्ध थे, जो ७०-८० वर्ष की अवस्था में भी दो-चार मील चलते, दो बार भोजन करते और अब के ४०-५० वर्ष की अवस्था-वालों के समान रहते थे। हमने ऐसे भी कई मनुष्य देखे हैं, जो ६० के लगभग विवाह कर संतान छोड़ गए हैं। इसका यह मतलब नहीं कि अब ऐसे मनुष्यों का अभाव हो गया है। अब भी ढूँढने से मिल सकते हैं, पर कम। तो क्या वर्तमान शिक्षा का ही यह फल है ? हम तो कहेंगे कि शिक्षा का इतना दोष नहीं है, जितना वर्तमान परिस्थिति का, या कहिए कि वर्तमान सभ्यता का है। इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान शिक्षा के एक कठिन-से-कठिन विदेशी भाषा द्वारा होने से विद्यार्थियों के ऊपर बड़ा भार पड़ता है। साथ ही शिक्षा का समय हमारे देश की परिस्थिति के अनुकूल नहीं रक्खा गया, इँगलैंड-सदृश शीत देशों के अनुकूल रक्खा गया है। हमारे यहाँ प्राचीन काल में शिक्षा का समय प्रथम और तीसरा पहर था। दोपहर को भोजनांतर विश्राम का समय था। हाल में तो हमारे बालक जैसे-तैसे पेट भरकर तुरंत पाठशाला को दौड़ते और वहाँ नगर के किसी गंदे स्थान में कई घंटे बंद रक्खे जाते हैं। जाड़े के दिनों में तो स्कूल बंद होते-होते शाम ही हो जाती और घर आते-आते दिन डूब जाता है। किसी प्रकार का व्यायाम होने ही नहीं पाता। रात को खा-पीकर बालक एक कोठे में फिर पढ़ने को बैठ जाते हैं। कुछ को तो आराम से बैठने के लिये स्थान भी नहीं मिलता। सामने लैंप के बदले एक मामूली मिट्टी के तेल की डिब्बी टिमटिमाती और कज्जल-शिखा छोड़ती रहती है। न-जाने कितना कज्जल या धुआँ फेफड़ों में जाता है। ग़रीबी के कारण कपड़े या आग का अभाव होने से, और साथ ही डिब्बी के बुझ जाने का भय रहने से, ये विद्यार्थी अपने कमरे को बंद रखते हैं। ऐसी परिस्थिति में बरसों रहकर क्या स्वस्थ-से-स्वस्थ जीवधारी भी अस्वस्थ हुए बिना रह सकता है ? प्राचीन काल में यह परिस्थिति बिलकुल नहीं थी। न तो लोग गंदे नगरों में बसते थे, न सारा समय पढ़ने में बिताते थे, और न सब विद्यार्थियों को आजकल के समान उच्च शिक्षा पाकर बी० ए०, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० आदि उपाधियों के प्राप्त करने की धुन सवार थी। ऋषि-मुनियों के सुरम्य आश्रमों या खुले स्थानों में प्रातःकाल और तीसरे पहर शिक्षा का कार्य हुआ करता था। विद्यार्थियों को मानसिक परिश्रम तो बहुत करना पड़ता था, पर अनुकूल परिस्थिति होने से उनके स्वास्थ्य को इतना धक्का नहीं पहुँचता था, जितना आजकल पहुँचता है। इसके सिवा उन्हें शारीरिक परिश्रम भी अच्छा करना पड़ता था, और व्यायाम की प्रथा भी ज़ोरों से थी, जिससे वे ख़ूब स्वस्थ रहा करते थे।

इसके सिवा आगे सामाजिक संगठन भी आजकल के समान नहीं था। उन दिनों बाल-विवाह बहुत कम होता था। ब्रह्मचारी सच्चा ब्रह्मचारी होता था। उसके ऊपर गृहस्थी का भार नहीं लादा जाता था। यदि देखा जाय, तो आजकल के ऐसे बहुत थोड़े विद्यार्थी निकलेंगे, जो कॉलेज पहुँचते-पहुँचते एक-दो बच्चों के पिता न बन जाते हों ! ऐसी परिस्थिति में स्वास्थ्य-रक्षा हो ही कैसे सकती है ? गृहस्थ विद्यार्थी अपना वीर्य मस्तिष्क के परिश्रम तथा विषय-सुख में इतना ख़र्च करते हैं कि पाचन-क्रिया के लिये वह रह ही नहीं जाता। बढ़नेवाले पौदे में ही जब घुन लग जाता है, तो उसकी बाढ़ मारी जाने और उसके कुसमय सूख जाने में आश्चर्य ही क्या ?

सारांश यह कि आजकल के विद्यार्थियों का स्वास्थ्य अधिकांश अच्छा नहीं रहता। इसका कारण केवल अधिक मानसिक परिश्रम कदापि नहीं कहा जा सकता। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के अनेक दोषों के कारण ही हमारी यह दशा हुई है, ऐसा कहना न्याय-संगत नहीं। सामाजिक दोष हमारी बहुत अधिक हानि कर रहे हैं। सबसे बढ़कर तो ब्रह्मचर्य का अभाव है। ठीक रीति से व्यायाम न होना भी एक बड़ा कारण है। स्कूलों में जो व्यायाम होता भी है, वह कुसमय होने से फलदायक नहीं हो सकता। व्यायाम का समय दोपहर नहीं है। पर स्कूलों में सुबह-शाम उसका प्रबंध होना कठिन है। जब तक शिक्षा का समय न बदला जा सकेगा, तब तक ठीक समय पर व्यायाम आदि का ठीक प्रबंध होना असंभव ही दीखता है।

साथ ही हम देखते हैं, खाने-पीने का स्वाभाविक ढंग न रहने से भी स्वास्थ्य को बड़ी हानि हो रही है। कुछ तो विद्यार्थियों को खाने तक के लिये समय नहीं

मिलता, बहुत जल्दी-जल्दी खाकर स्कूल को भागना और कई को डेढ़-दो मील पैदल चलना पड़ता है। क्या यह अस्वाभाविक नहीं है? भोजन के बाद कुछ देर के लिये विश्राम करना तो रहा, उलटे भागना पड़ता है। इसके सिवा जिस ढंग से खाना चाहिए, उस ढंग से खाने के लिये समय भी नहीं रहता। दूसरे उनके जलपान का कोई ठीक प्रबंध नहीं रहता। बीच में आधे घंटे की छुट्टी तो होती है; पर खाने को क्या मिलता है? बड़े आदमियों के बच्चे तो कुछ-न-कुछ पा ही जाते हैं; पर यदि देखा जाय, तो उन्हें भी अच्छे खाद्य पदार्थ नहीं मिलते, बल्कि जो मिलते हैं, वे उलटे हानिकारक होते हैं। बाज़ारी लोग मिठाई, फल, चना चबेना आदि लेकर बैठते और लड़के कुछ लेकर क्षुधा की तृप्ति कर लेते हैं। कोई नहीं देखता कि ये पदार्थ सड़े या घुने, कैसे हैं। हेडमास्टरों का यह कर्तव्य है। पर ऐसे फ़ालतू कर्तव्यों की परवा कौन करता है। वे तो उतना ही करते हैं, जितना इंस्पेक्टर आकर देखता और "एजुकेशन मैनुअल" (Education manual) में लिखा रहता है। सभ्यता तो कठिन है, जाति के झगड़ों के कारण उचित प्रबंध होना सहज नहीं है; पर तो भी बहुत कुछ हो सकता है। यदि कोई देखनेवाला हो, तो विद्यार्थी हानिकारक फल, मिठाई आदि से बच सकते हैं। हम तो समझते हैं, ठेका दे देने और उचित देख-रेख रखने से यह कार्य भली भाँति हो सकता है।

हम अभिभावकों तथा शिक्षकों से निवेदन करते हैं कि विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-रक्षा को वे निरे पढ़ने-लिखने की अपेक्षा कम महत्त्व का कार्य न समझें। उन्हें स्वीकार करना होगा कि यह उनका अवश्य कर्तव्य है। सरकार को भी इस सुधार में अग्रसर होना चाहिए, और समाज को बाल-विवाह आदि दूषित प्रथाओं को एकदम दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। स्मरण रहे, स्वराज्य-प्राप्ति के साधनों में यह सर्वोच्च साधन है। हमें अपनी भावी पीढ़ियों को स्वराज्य चलाने के योग्य बनाना चाहिए।

रघुवरप्रसाद द्विवेदी



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। पिछले महीने में नीचे-लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुईं—

(१) 'गंगावतरण' (काव्य)—रचयिता, श्रीजगन्नाथदास ''रत्नाकर'' बी० ए० ; मूल्य १)

(२) 'ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट' (प्रहसन)—लेखक, श्रीयुत सुदर्शन ; मूल्य ॥=)

(३) 'गंगा-जमुनी' (द्वितीय भाग)—लेखक, श्री जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य २)

(४) 'हिंदू (काव्य)—लेखक, श्रीमैथिलीशरण गुप्त ; मूल्य १)

(५) 'पुत्री-उपदेश' (स्त्रियोपयोगी)—रचयिता, मुंशी चिम्मनलाल वैश्य ; मूल्य १)

(६) 'अधःपतन' (उपन्यास)—अनुवादक, बा० श्रीकृष्ण ''हसरत'' ; मूल्य ।॥)

(७) 'हिंदी-करीमा' (फ़ारसी की करीमा-नामक पुस्तक का पद्यानुवाद)—अनुवादक, इक़बाल वर्मा ''सेहर'' मूल्य ।-)

(८) 'रसराज' (द्वितीय संस्करण)—महाकवि मतिराम-कृत ; मूल्य =)

(९) 'ज्ञानेश्वरी' (द्वितीय संस्करण)—मराठी ज्ञानेश्वरी गीता-टीका का अनुवाद ; मूल्य ४)

(१०) 'लक्ष्मण-शतक' (काव्य)—कविवर समाधान-रचित; संपादक, अखौरी गंगाप्रसादसिंह विशारद ; मूल्य ≡)

(११) 'बजरंग-बत्तीसी' (काव्य)—रसिकविहारी-कृत; संपादक, अखौरी गंगाप्रसादसिंह विशारद ; मूल्य -)॥

(१२) 'श्रीछत्रसाल-दशक' (सटीक)—महाकवि भूषण-कृत; संपादक, पं० हरिशंकर शर्मा कविरत्न ; मूल्य ।)

(१३) 'भाषा-विज्ञान'—लेखक, डॉ० मंगलदेव शास्त्री एम्० ए०, डी० फ़िल्० (ऑक्सफ़ोर्ड) ; मूल्य २॥=)

(१४) 'कवितावली'—गोस्वामी तुलसीदास-कृत टीकाकार, पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य १॥)



१. व्याकरण

संस्कृत-शब्द-रूपाकर—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत दत्तात्रेय केशव जोशी ; छपाई, सफ़ाई उत्तम ; बढ़िया चिकना कागज़ ; २० × २६ आकार ; पृ०-सं० ७४ ; मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं । ८२०, सदाशिव-पेठ, पूना के पते से, प्रकाशक से, प्राप्य ।

इस छोटी-सी पुस्तक के लेखक श्रीयुत जोशीजी एक अनुभवी विद्वान् हैं । आपने बहुत समय तक संस्कृत-शिक्षण का कार्य, बड़ी योग्यता के साथ, किया है । आप-की विद्वत्ता और सच्चरित्रता की धाक छात्रों में बँधी है । जिन छात्रों ने आपसे शिक्षा प्राप्त की है, वे आज बड़े-बड़े अधिकारी और न्यायाधीश होने पर भी आपको पितृ-तुल्य मानते और बड़े सम्मान तथा गौरव के साथ आपका नाम लिया करते हैं । शिक्षा-विभाग के अधिकारी भी बराबर आपका लोहा मानते रहे । कई इंस्पेक्टर ऑफ़् स्कूल्स तो आपकी कार्य-प्रणाली और शिक्षा-क्रम से इतने संतुष्ट थे कि आपकी श्रेणियों का इंस्पेक्शन करना ही अनावश्यक समझते थे ।

जो छात्र अँगरेज़ी के साथ संस्कृत लिया करते हैं, उनके लिये जोशीजी ने यह 'संस्कृत-शब्द-रूपाकर' लिखा है । यह छः भागों में विभक्त है—१. स्वरांत (अजंत) शब्द, २. व्यंजनांत (हलंत) शब्द, ३. सर्वनाम, ४. संख्यावाचक, ५. धातु साधित और ६. कुछ भिन्नता या विशेषता रखने-वाले शब्द । अंत में मैट्रिक की अनेक परीक्षाओं में आए हुए प्रश्न तथा उनका उत्तर जानने की प्रणाली लिखी है । शब्दों का संग्रह अत्यंत योग्यता के साथ किया गया है । संस्कृत जानने के इच्छुक छात्र इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं । पुस्तक की उपयोगिता इसी से स्पष्ट है कि थोड़े ही समय में इसकी तीन आवृत्तियाँ छप चुकी हैं । इसकी प्रस्तावना, सूचना और नोट आदि महाराष्ट्र-भाषा में होने के कारण दक्षिण-भारत में इस पुस्तक का बहुत प्रचार हुआ है । यदि जोशीजी इसके नोट आदि शुद्ध हिंदी में कर दें, तो यहाँ के हिंदी जाननेवाले विद्यार्थी भी इससे लाभ उठा सकेंगे । संस्कृत सीखने की इच्छा रखनेवाले विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक बड़े काम की है ।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

२. जीवनी

पं० सत्यनारायण कविरत्न की जीवनी—लेखक, पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी; प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या २५० ; मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक श्रीमान् बरोदा-नरेश के दिए हुए धन

की सहायता से संचालित, सम्मेलन की, सुलभ साहित्य-माला का १८वाँ पुष्प है। वर्तमान काल के सर्वोत्कृष्ट ब्रजभाषा-कवि स्वर्गीय पं० सत्यनारायणजी की फुटकल कविताओं का संग्रह 'हृदय-तरंग' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस हृदय-तरंग का संपादन जिस अभिरुचि के साथ किया गया था, उसी ढंग से यह जीवनी भी लिखी गई है। कविरत्नजी का समस्त जीवन ही रहस्य-पूर्ण तथा काव्यमय था। हिंदी-साहित्य की मौलिक जीवनियों में शिवनंदनसहायजी-रचित जीवनियों की तरह इस जीवनी का भी प्रत्येक पृष्ठ उपन्यास के समान रोचक है। लेखक महाशय ने कई वर्ष के घोर परिश्रम से इस जीवनी के लिये यथोचित सामग्री एकत्रित की है। चतुर्वेदीजी के निम्न-लिखित कथन की सत्यता का अनुमोदन मैं भी साक्षी-रूप से कर सकता हूँ—

"आज यह बात मैं नम्रता तथा अभिमान-पूर्वक कह सकता हूँ कि जितना अच्छा संग्रह सत्यनारायण के जीवन के विषय में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के कार्यालय में सुरक्षित है, उतना अच्छा संग्रह शायद ही किसी हिंदी-लेखक के विषय में सुरक्षित होगा।"

लेखक महाशय ने जिस हार्दिक सहानुभूति के साथ यह जीवनी रची है, उतनी सहृदयता तथा तल्लीनता कम लेखकों में देखने को मिलती है। जिनको कविरत्नजी के साथ रहने का कुछ भी सुयोग प्राप्त हो चुका है, वे इस जीवनी में कथित प्रत्येक घटना का हर्ष-शोक-मिश्रित भावों से अवश्य अनुमोदन करेंगे।

भवानीशंकर याज्ञिक

× × ×

३. बालोपयोगी

भारतीय इतिहास की बाल-पोथी—लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानंद वर्मा; संपादक, मुद्रक व प्रकाशक, श्रीआसुदामल-टेकचंद गिदवाणी, विद्यालय-प्रेस, वृंदावन; पृष्ठ-संख्या १७०; मूल्य ।।।=)

यह पुस्तक 'प्रेम-ग्रंथावली' की पहली संख्या है। इस पुस्तक के पढ़ने से भारत के उत्थान व पतन का ज्ञान और यहाँ के महापुरुषों का अच्छा-खासा परिचय मिल जाता है। लिखने का ढंग अच्छा है। यह बालकों ही के नहीं, उन युवकों के भी काम की है, जो अपने देश के ... पुस्तक राष्ट्रीय पाठशालाओं के पाठ्य-क्रम में रक्खी जाने योग्य है।

"स"

× × ×

४. राजनीति

भारतीय शासन—लेखक, श्रीभगवानदास केला; प्रकाशक, व्यवस्थापक भारतीय ग्रंथमाला, वृंदावन; पृष्ठ-संख्या २१०; मूल्य सर्वसाधारण से ।।।=), स्थायी ग्राहकों से ।।=)।।

केलाजी प्रेम-महाविद्यालय में अर्थशास्त्र और नागरिक धर्म के शिक्षक थे। जिस विषय का आपको ज्ञान है, उस पर आप अनेक अच्छी-अच्छी पुस्तकें लिख चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक अब पाँचवीं बार छपी है। अनेक ज्ञातव्य बातों से भरी है। पुस्तक के अंत में पारिभाषिक शब्द भी दे दिए गए हैं। प्रत्येक हिंदी-पाठक का कर्तव्य है कि वह इस बात की जानकारी प्राप्त करे कि हमारे देश के शासन की व्यवस्था क्या है। आशा है, हिंदी-प्रेमी इसे अपनाकर केलाजी को शिकायत का मौक़ा न देंगे। पुस्तक की उपयोगिता देखते हुए मूल्य अधिक नहीं कहा जा सकता।

× × ×

५. उपनिषद्

ईशावास्योपनिषद्—टीकाकार, 'श्रीगुरुपादपद्माश्रित'-जी; प्रकाशक, काशी के भारतधर्म-सिंडिकेट लिमिटेड का शास्त्रप्रकाश-विभाग; पृष्ठ ६६; मूल्य लिखा नहीं।

मंत्र, अन्वय, मंत्रार्थ, शंकरभाष्य, भाष्यानुवाद और उपनिषद्-सुबोधिनी टीका-सहित ईशोपनिषद् वाणी-पुस्तक-माला की पहली संख्या है। उपनिषद्-प्रेमी इससे लाभ उठा सकते हैं। भाषा यदि कुछ और सरल की जा सकती, तो अच्छा होता।

× × ×

केनोपनिषद्—यह उक्त पुस्तकमाला की दूसरी संख्या है। पृष्ठ-संख्या १२२; मूल्य ।।) है।

इसमें भी वही विशेषताएँ हैं, जो ईशावास्योपनिषद् में हैं। हाँ, प्रारंभ में 'भक्तिपुष्पांजलि' के द्वारा महामंडल के संस्थापकजी की जो स्तुति गाई गई है, उसने विष्णु-सहस्रनाम के भी नाक, कान, दोनों काट लिए हैं।

"ह"

× ×

६. फुटकल

रामायणोपदेश—लेखक तथा प्रकाशक, पं० रामरक्खा भट्ट "राम कवि" ; पृष्ठ-संख्या १०० ; मूल्य ॥।) ; पुस्तक मिलने का पता—गोशाला, पटियाला।

इस पुस्तक में रामायण से नीति-संबंधी पद्यों का संग्रह किया गया है। संग्रह अच्छा है ; किंतु छोटा होने के कारण इससे तृप्ति नहीं होती। बालकों को कंठ कराने के लिये यह संग्रह अधिक उपयोगी प्रतीत होता है। प्रत्येक पद्य के साथ रामायण के किसी विश्वस्त तथा सुसंपादित संस्करण के अनुसार पृष्ठांक दिए जाते, तो बालकों को उस पद्य का आदि-अंत समझने में सुगमता होती।

"च"

× × ×

मन-चाही संतान पैदा करना—लेखक, डॉक्टर डी० एन्० भार्गव एच्० एम्० बी०; प्रकाशक, बी० एन्० भार्गव, वासलीगंज, मिर्ज़ापुर ; पृष्ठ १८; मूल्य ।)

पुस्तक संतानेच्छुकों के काम की है। विषय नाम ही से प्रकट है।

"ज्ञ"

× × ×

साहित्य-सुमन—लेखक, स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट ; संपादक श्रीदुलारेलाल भार्गव; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या ११२; मूल्य सादी ॥=), सजिल्द १=)

साहित्य-सुमन वास्तव में साहित्य-सुमन ही है। यह साहित्य-रूपी वाटिका को उसी प्रकार शोभायमान बनाता है, जिस प्रकार पुष्प बाग़ को सुहावना बनाते हैं। जिस प्रकार वाटिका में घूमनेवाला व्यक्ति वाटिका में घूमकर आनंदित होता है, और सुमनों का संचय कर अपने घर को सुवासित करता है, उसी प्रकार साहित्य-सुमन को देखकर उसके गुणों को ग्रहण करनेवाला अपने सारे जीवन को मधुर तथा सुवासित, अर्थात् नेक, बना सकता है।

ऐसी पुस्तकें हिंदी-साहित्य में बहुत ही कम हैं, गंगा-पुस्तकमाला ने ऐसी उत्तम पुस्तक प्रकाशित करके हिंदी-भाषा-भाषियों का बड़ा उपकार किया है। कुछ समय हुआ, मैं अपने छोटे भाई के पढ़ने योग्य हिंदी की अच्छी पुस्तकें ढूँढ़ रही थी। एक-दो लाइब्रेरियों में भी ढूँढ़ा; पर सिवा 'जीवन और श्रम' नाम की पुस्तक के मुझे कोई पुस्तक ऐसी नहीं मिली, जो एक पौगंड या किशोर अवस्थावाले बालक को दी जा सके, जो उसे भविष्य में वास्तव में चरित्रवान् पुरुष बनावे। हर्ष का विषय है, अब गंगा-पुस्तकमाला इस कमी को धीरे-धीरे शीघ्र ही पूर्ण कर देगी।

वर्तमान समय में, हिंदी-साहित्य में, ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है, जो हिंदू-समाज को वास्तविक हिंदू बना दें, जो हिंदुओं में सच्चरित्रता, कर्मपरायणता उत्पन्न करें। अश्लील तथा गंदे उपन्यासों को एकदम भाड़ में झोंकने की ज़रूरत है। इस अधःपतन के समय में शृंगार-रस की ज़रूरत नहीं। इस समय तो वीरत्व तथा सच्चरित्रता की सख़्त ज़रूरत है।

'चरित्र-पालन', 'चारु चरित्र' आदि साहित्य-सुमन में बहुत ही अच्छे लेख हैं। 'चरित्र-पालन' लेख में एक जगह पर क्या ही अच्छा लिखा है—"विंध्य-पहाड़ के वन में भूखा-प्यासा हो मर जाना अच्छा, तिनकों से ढके सर्पों से भरे कुँए में गिरकर प्राण दे देना श्रेष्ठ, पानी के भँवर में डूबकर बिला जाना उत्तम, पर शिष्ट, पढ़-लिखे मनुष्य का चरित्र से च्युत हो जाना अच्छा नहीं।"

चरित्र-पालन को लेखक ने असिधारा-व्रत बताया है, जिसे संसार के अनेक सुखों को लात मार बड़े-बड़े क्लेश उठाने के उपरांत मनुष्य पा सकता है, या उसमें पक्का हो सकता है।

ऐसे ही 'चारु चरित्र' में जगह-जगह पर अति सुंदर तथा शिक्षादायक भाव हैं। जैसे—"धन पास न होने से ग़रीब ग़रीब नहीं है, वरन् जो सद्वृत्त नेकचलनी से रहित है, वही ग़रीब है। × × × दैववश जिसका सब कुछ नष्ट हो गया, पर धैर्य, चित्त की प्रसन्नता, आशा, धर्म पर दृढ़ता, आत्मगौरव और सत्य पर अटल विश्वास बना है, उसका मानो सब बना है।" और भी कई एक लेख इसमें अच्छे हैं।

यह पुस्तक ख़ासकर किशोर या पौगंड अवस्था के बालकों को ज़रूर ही पढ़नी चाहिए। प्रत्येक स्कूल में इसे पढ़ाना चाहिए। जिस अवस्था में बालक स्कूल में होता है, उसी अवस्था में वास्तव में वह चरित्रवान् या कुचरित्र बनता है। उस समय वह कच्चे घड़े के समान रहता है। बाद को पक्की उमर

में अच्छी किताब का वह असर नहीं होता, जो कि बचपन में।

कौशल्यादेवी गोरोवाला

× × ×

भाषा-विज्ञान—रचयिता, श्रीनलिनीमोहन सान्याल; प्रकाशक, इंडियन-प्रेस, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या ३००; मूल्य सजिल्द ३), विना जिल्द २॥)

लेखक महाशय बंगाली हैं, तो क्या हुआ, आपको हिंदी से प्रेम है, और हिंदी-प्रेमियों को आपकी विद्वत्ता का गर्व। आप भाषा-संबंधी तत्त्वों के उद्भट विद्वान् हैं, और हिंदी के बड़े उपकारी भी। प्रस्तुत पुस्तक बड़े मार्के की है। प्रत्येक पृष्ठ लेखक की विद्वत्ता, सिद्धहस्तता तथा रचना-चातुर्य का परिचायक है। विश्वविद्यालयों में इसे पाठ्य पुस्तकों में स्थान देना आवश्यक है। वास्तव में तुलनात्मक दृष्टि से रचित भाषा-विज्ञान की यह पुस्तक हिंदी-साहित्य की एक बड़ी भारी कमी पूर्ण करती है। भारत की अन्य प्रांतीय भाषाओं में भी इस विषय की शायद ही कोई इससे अच्छी पुस्तक हो। लेखक का परिश्रम सराहनीय है। समस्त हिंदी-प्रेमियों को इनके प्रति कृतज्ञता स्वीकार करनी चाहिए।

भवानीशंकर याज्ञिक

× × ×

७. पत्र-पत्रिकाएँ

माधुरी का विशेषांक—संपादक, पं० कृष्णविहारी मिश्र और श्रीयुत प्रेमचंद; प्रबंध-संपादक, पं० रामसेवक त्रिपाठी; प्रकाशक, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या २१६; ६ रंगीन चित्र; इस अंक का मूल्य १)

यह वही विशेषांक है, जिसकी बड़ी धूम थी। इसमें सामग्री तो बहुत कुछ अच्छी है, पर उसका समावेश उचित क्रम से नहीं देख पड़ता। कई उत्कृष्ट लेख पीछे पड़ गए हैं। पहली कविता 'गजेंद्र-मोक्ष' सेनापति की है। इस पुरानी कविता में भक्त की भावना और प्रभु की भक्त-वत्सलता पर कवि ने ख़ूब लिखा है। 'प्रलय-काल' कविता अपने ढंग की निराली है। 'अद्वैतवाद' लेख में मनन करने की अच्छी सामग्री है। 'सरिता-तट पर' साधारण रचना है। 'सुख भरनेवाली वृक्षों की पंक्ति' कुछ समझ में न आई। 'अद्भुत मिलन' अनुवादित कहानी है! सचित्र लेख 'बंगीय रंगमंच' अच्छा बन पड़ा है। 'मेघ' कविता अच्छी है। 'हरियाली में लाली', 'हर्षोत्पादक मरण', 'प्रवाह' और 'जर्जर तरी', ये कविताएँ प्रसिद्ध कवियों की हैं। जान पड़ता है, यथासमय न प्राप्त होने के कारण पीछे से अलग, अच्छे रंग-रूप में, छापकर लगा दी गई हैं। प्रबंध-संपादकजी की यह सूझ सराहने योग्य है। 'वाल्मीकीय रामायण का सार' लेख, काम की चीज़ होने पर भी, विशेषांक के लिये उपयुक्त न था। 'अनेकांतवाद' लेख विद्वत्ता-पूर्ण है। 'मन के धब्बे' कविता सुंदर है। 'समाचारपत्र' लेख पठनीय है; पर 'ऐतिहासिक दृष्टिबिंदु' का महावरा इसमें नया देख पड़ा। दृष्टिकोण से शायद काम न निकलता होगा। 'अंतर से' कविता में भी 'पूछ न पड़ना' एक नया महावरा नज़र आया। 'डाक-रोग' नई चीज़ है, और रोचक है। वसंत-ऋतु-वर्णन और 'कविराज मुरारिदान का पत्र' महत्त्वपूर्ण हैं। 'उषा से' कविता अच्छी है। 'भूत-रहस्य' कौतूहल-वर्द्धक है। 'नंद-नंदन पधारिहैं' कविता साधारण है। 'प्रिया-प्रकाश' की समालोचना विद्वत्ता-पूर्ण है। 'सौभाग्य की संजीवनी' कविता मनोहर है। 'आराधना' कहानी में नवीनता और मौलिकता है। इस अंक में शायद यही सबसे अच्छी कहानी है। इसे शुरू में स्थान देना चाहिए था। 'सोवियट रूस में शिक्षा-प्रचार' एक अच्छे लेख का अनुवाद है। 'तुलसी' कविता सामयिक है। 'पुनर्जन्म' एक कौतूहल-वर्द्धक अच्छा संग्रह है। 'वर्षा' कविता में कवि की प्रतिभा ख़ूब झलकती है। 'आत्मसंगीत' प्रेमचंदजी की छोटी और साधारण रचना है। प्रेमचंदजी इसे कई वर्ष पहले उर्दू में "नग़मए-बुलबुल" (?) के नाम से निकलवा भी चुके हैं। विशेषांक में उन्हें अपनी कोई नई और उत्कृष्ट रचना देनी चाहिए थी। 'राजपूताने के इतिहास को भ्रष्ट करने का प्रयत्न' लेख ऐतिहासिकों के काम की चीज़ है। 'भूल-चूक' प्रहसन में हँसने-हँसाने का अच्छा मसाला है। 'पेंसिल स्केच' कहानी एक अपूर्ण चित्रण है। 'हस्त-रेखा-विज्ञान' हिंदी में नई चीज़ है। 'मंगलामुखी' कविता में एक आवश्यक प्रश्न किया गया है। 'पतिता' और 'रेखा' कविताएँ प्रभावशालिनी हैं। 'गोस्वामीजी' और 'हिंदू-जाति' कविता में शिक्षा का अच्छा समावेश है। कवि-चर्चा, पुस्तक-परिचय, महिला-मनोरंजन, बाल-विनोद, संगीत-सुधा, विज्ञान-वाटिका, सुमन-संचय, संपादकीय विचार और चित्र-चर्चा पुराने ही स्तंभ हैं, और इनमें साधारण अंकों की अपेक्षा इस बार कुछ भी विशेषता नहीं। संपादकीय विचार,

विशेषांक की दृष्टि से, और अधिक अच्छे होने चाहिए थे; उनकी संख्या भी, विशेषांक के कुल पृष्ठों के लिहाज़ से, कम-से-कम ड्योढ़ी होनी चाहिए थी। जीवन-सुधा, ज्ञान-ज्योति, कृषि-कौशल, वाणिज्य और व्यवसाय, सुभाषित और विनोद, ये नए स्तंभ इस संख्या से खोले गए हैं; पर इन सबका समावेश सुमन-संचय में ही हो सकता था। हमारा अनुमान है, इन स्तंभों को आगे साधारण अंकों में, जिनमें पृष्ठ कम होंगे, सुंदर मैटर से भरते रहना मुश्किल हो जायगा। चित्रों में टाइटिल पेज इस बार बदल दिया गया है। सुना है, यह चित्र 'सुधा' के चित्रकार हकीम साहब से माधुरी के एक संपादक ने एक स्त्रियोपयोगी प्रसिद्ध पत्र के लिये बनवाया था; पर फिर उन्होंने विशेष आग्रह से माधुरी के लिये ले लिया। पर माधुरी की अपेक्षा उक्त पत्र के लिये ही यह चित्र अधिक उपयुक्त था। 'राधा-कृष्ण' चित्र में कृष्णचंद्र एक हाथ से दतून की तरह बाँसुरी मुँह में लगाए और दूसरा हाथ राधा के सिर पर रक्खे आशीर्वाद-सा दे रहे हैं। राधा भी हाथ जोड़े खड़ी हैं। 'सुंदरी-विनोद' चित्र में एक स्त्री हाथ में हार लिए खड़ी तोते को दिखा रही है। चित्र अच्छा है। 'हंस-दूत नं० १' चित्र भी साधारणतया अच्छा है। 'कमला' चित्र चित्ताकर्षक नहीं। 'हुमायूँ का उद्धार' चित्र भी हकीम साहब का बनाया हुआ और कला की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है। 'जीवन-तरी के केवट' चित्र में अच्छा विनोद है। ये तो हुए रंगीन चित्र। 'मृत्युदूत' नाम का कार्टून कुछ भी नहीं है। उसके नीचे का परिचय नाम से बिलकुल मेल नहीं खाता। सब मिलाकर अंक बुरा नहीं निकला। छपाई, नया टाइप होने पर भी, उसके अनुरूप नहीं हुई; पर पहले से अवश्य अच्छी है। प्रूफ़ और संपादन की त्रुटियाँ कहीं-कहीं बहुत खटकती हैं। आशा है, हिंदी-प्रेमी इस अंक के ग्राहक बनकर प्रकाशकों का उत्साह बढ़ावेंगे।

इस विशेषांक में क्या है और क्या नहीं है, यह हम लिख चुके। माधुरी के नए प्रबंध के बाद के पहले चार अंकों को देखकर हमें नाम-मात्र भी आशा नहीं थी कि यह विशेषांक इतना अच्छा निकलेगा। हमें इस संबंध में कुछ आश्चर्य हुआ। कारण-विशेष मालूम करने पर ज्ञात हुआ कि इस अंक में एक संपादक बढ़ा दिए गए हैं। उनका नाम रक्खा गया है प्रबंध-संपादक। पर प्रबंध-संपादक से क्या मतलब है, हमारी समझ में नहीं आया। शायद इससे मतलब मैनेजर से हो। मैनेजर के लिये हमारी समझ में यदि 'प्रबंधक' लिखा जाता, [illegible] लेख-संपादक के अलग काम करने पर एक कविता-संपादक की भी आवश्यकता होगी। पर इस तरह निभ नहीं सकता। हमारी तुच्छ सम्मति में प्रबंध-संपादक का नाम भी असली संपादकों के साथ ही जोड़ दिया जाना चाहिए। कारण, अन्य दोनों संपादकों की अपेक्षा इनमें हमें, इस विशेषांक को देखकर, संपादन-कला का अच्छा ज्ञान दिखलाई पड़ता है।

इलाचंद्र जोशी (नैनीताल)

× × ×

विश्वमित्र—संपादक, श्रीयुत मूलचंद्र अग्रवाल बी० ए०। विश्वमित्र-प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित। इस अंक का मूल्य चार आना।

यह 'विश्वमित्र' का दीपावली अंक है। लेख तथा कविताएँ समयानुकूल तथा उपयोगी हैं। पृष्ठ-संख्या ७४ है। अंक अच्छा निकला है। संपादक महाशय को बधाई।

× × ×

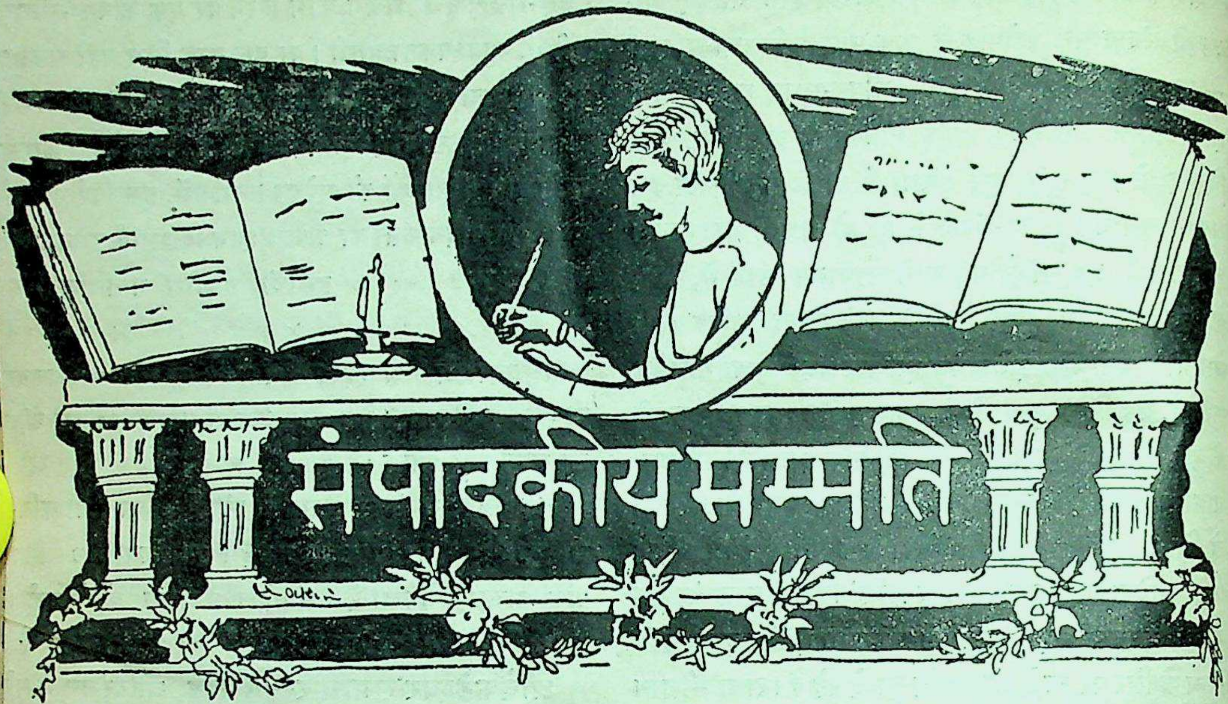
श्रीवेंकटेश्वर-समाचार—संपादक, श्रीनिरंजन शर्मा 'अजित'। इस संख्या का मूल्य ॥)। वेंकटेश्वर-प्रेस, बंबई से प्रकाशित।

वेंकटेश्वर-समाचार का यह विशेषांक सचित्र तथा सुंदर निकला है। लेख, कविता तथा कहानियाँ, सब अच्छी हैं। जब से नए संपादक, श्रीयुत निरंजन शर्मा ने अपने हाथ में इस पत्र के संपादन का भार लिया है, तबसे यह उत्तरोत्तर उन्नति करता जा रहा है। आशा है, उनके संपादकत्व में यह पत्र आगे और भी उन्नति करता जायगा, और हिंदी-पत्र-साहित्य की श्रीवृद्धि करके समाचार-पत्रों में विशेष स्थान प्राप्त करेगा।

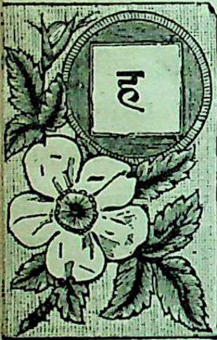
× × ×

त्याग-भूमि—संपादक, श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय और श्रीयुत क्षेमानंद 'राहत'। वार्षिक मूल्य ४)। सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर से प्रकाशित।

यह मासिक पत्र अजमेर से निकला है। पत्र सचित्र है। विजया-दशमी का अंक हमारे सामने है। लेख सुंदर हैं। तीसरे अंक से पत्र का आकार बढ़ाए जाने का प्रबंध किया जा रहा है। यह प्रसन्नता की बात है। राजस्थानी भाइयों को इस पत्र को विशेष रूप से अपनाना चाहिए। कवर-पृष्ठ पर महात्मा गांधी का संदेश भी छपा है। हम पत्र की उन्नति की कामना करते हैं।



१. सुधा के छः विशेषांक



हमारे अनुग्राहक ग्राहक तथा प्रेमी पाठक यह जानकर परम प्रसन्न होंगे कि इतने ही स्वल्प समय में सुधा का प्रचार यथेष्ट हो गया है। यह हमारे प्रेमी पाठकों की गुण-ग्राहकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हमें सुधा की पहली और दूसरी संख्या दुबारा छापनी पड़ी। इस तरह सुधा अपने जन्मकाल से ही ७२०० छप रही है। हिंदी-संसार में यह अभूतपूर्व घटना है! हम सुधा से स्वयं आर्थिक लाभ उठाना नहीं चाहते। सुधा की ग्राहक-संख्या जितनी बढ़ती जायगी, उतनी ही उसके लेखों और चित्रों में उन्नति की जायगी। पृष्ठ-संख्या भी बढ़ा दी जायगी। गत ४-५ मास में ही हिंदी-प्रेमी जनता ने जो सुधा को तेज़ी के साथ अपनाया है, उसे देखकर हमें पूर्ण विश्वास हो गया है कि सुधा की ग्राहक-संख्या १२,००० से ऊपर अवश्य ही हो जायगी। हमने इसी ख़ुशी के उपलक्ष में सुधा के ६ सुंदर विशेषांक निकालने का विचार कर लिया है। विशेषांकों के विषय और संपादक ये होंगे—

२. हिंदू-संगठन-संख्या—संपादक, पं० मदनमोहन मालवीय।

३. समाज-संख्या—संपादक, देवता-स्वरूप भाई परमानंद।

४. सूर-संख्या—संपादक, बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०।

५. साहित्य-संख्या—संपादक, पं० पद्मसिंहजी शर्मा।

६. स्वाधीनता-संख्या—संपादक, बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन एम्० ए०, एल्०-एल्० बी०।

पं० पद्मसिंहजी, टंडनजी तथा रत्नाकरजी ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। भाई परमानंदजी भी अवश्य स्वीकार कर लेंगे। महात्माजी और मालवीयजी से प्रार्थना की गई है। ये अंक सुविधानुसार, संपादकों के अवकाश के अनुसार, निकलेंगे। ये सब हिंदी के स्थायी साहित्य की ख़ास चीज़ होंगे। जिस विषय का जो अंक होगा, उस विषय के अच्छे-से-अच्छे विद्वानों से गवेषणापूर्ण लेख और कविताएँ लिखाने की तैयारी की जा रही है। दो विशेषांकों में तो २२५ पृष्ठ, ८ रंगीन चित्र, ८ व्यंग्य-चित्र तथा ५०-६० सादे चित्र रहेंगे। हमें आशा है, हिंदी-प्रेमी जनता हमारे इस उद्योग का स्वागत करेगी। प्रथम वर्ष की सातवीं या आठवीं संख्या समाज-संख्या या साहित्य-

का विचार है । हम हिंदी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों तथा सिद्धहस्त कवियों से सादर, साग्रह सहायता के लिये प्रार्थना करते हैं। जिसको जिस विषय में अभिरुचि हो, वह इन संख्याओं के लिये लेख व कविता भेजने की अवश्य कृपा करें। जिनके पास पुराने बढ़िया चित्र हों, वे अपने चित्र भेजने की कृपा करें । उनके चित्र सुरक्षित रूप में वापस कर दिए जायँगे। नवीन चित्रकारों को भी हम इस मातृ-भाषा की सेवा के कार्य में आमंत्रित करते हैं । जिन सज्जनों के चित्र पसंद कर लिए जायँगे, उन्हें हम यथाशक्ति पुरस्कार देने के लिये भी प्रस्तुत हैं। कार्टून बनानेवालों से भी हमारी यही प्रार्थना है । हमें आशा—नहीं, पूर्ण विश्वास—है कि हिंदी-प्रेमी विद्वान् लेखक, कवि और चित्रकार हमारी अवश्य सहायता करेंगे। उन्हीं की कृपा पर हमारी सफलता निर्भर है । उनकी सहायता विना हम कुछ नहीं कर सकते। जो सज्जन अभी से सुधा के ग्राहक हो जायँगे, उन्हें ये सब विशेषांक साधारण मूल्य में ही मिलेंगे। अन्यथा केवल विशेषांक मँगानेवालों से पूरा मूल्य लिया जायगा, जो शायद डेढ़, दो रुपए प्रति विशेषांक से कम न होगा।

× × ×

२. हिंदी और फ्रेंच-व्याकरण में लिंग-सादृश्य

हिंदी और फ्रेंच-भाषा के व्याकरण में एक-दो बातों में आश्चर्य-जनक समता पाई जाती है। सभी जानते हैं कि हिंदी-व्याकरण में दो लिंग हैं। एक स्त्री-लिंग और दूसरा पुल्लिंग। संसार-भर का कोई भी संज्ञा-शब्द हो, उसे हमारी भाषा में आकर इन दो लिंगों में से एक के अंतर्गत होना पड़ता है। इस बात से कोई मतलब नहीं कि वह शब्द किसी प्राणी को जतलाता है या वस्तु को। निर्जीव वस्तु के लिये भी हमारे व्याकरण ने उपर्युक्त दो लिंगों में से एक लिंग निर्धारित कर रक्खा है। अँगरेज़ी का Neuter gender हमारे व्याकरण में नहीं। ठीक यही हाल फ्रेंच-व्याकरण का है। वहाँ भी प्रत्येक प्राणी तथा वस्तु के लिये उपर्युक्त दो लिंगों में से एक लिंग काम में लाया जाता है। निर्जीव वस्तु के लिये Neuter gender का प्रयोग वहाँ भी नहीं होता, और संस्कृत का नपुंसक-लिंग भी वहाँ नहीं है। कोई शब्द स्त्रीलिंग या पुल्लिंग क्यों माना जाता है, इस बात का फ्रेंच में भी, इस संबंध में, कोई नियम नहीं पाया जाता; केवल स्मृति तथा अभ्यास से ही काम लेना पड़ता है। वहाँ पुल्लिंग-शब्द के आगे Le 'आर्टिकल' (Article) काम में आता है, और स्त्री-लिंग के लिये La। अँगरेज़ी में केवल 'the' से ही इन दोनों का काम निकल जाता है।

फ्रेंच-व्याकरण का हमारे व्याकरण से एक बात में और सादृश्य है। वह यह कि लिंग तथा वचन के अनुसार जिस प्रकार हमारी भाषा में संज्ञा-शब्द के पहले गुण-वाचक संज्ञा-शब्द का रूप बदलता रहता है, उसी प्रकार फ्रेंच में भी यही हाल होता है। उदाहरण के लिये, हमारे यहाँ 'लड़का' तो 'अच्छा' होता है, पर 'लड़की' 'अच्छी' होती है, और 'लड़के' अच्छे होते हैं। इसी प्रकार फ्रेंच में 'bon garcon' होता है; पर 'bonne fille' होती है, और 'bons garcons' होते हैं। हिंदी में जिस प्रकार 'मेरा'-शब्द के तीन रूप होते हैं—मेरा, मेरी, मेरे; उसी प्रकार फ्रेंच में भी इस शब्द के तीन रूप—me, ma और mes । जब हमारे यहाँ कोई स्त्री अपने लड़के के संबंध में बात करती है, तो स्त्री होने पर भी कहती है,—'मेरा लड़का।' इसी प्रकार फ्रेंच स्त्री भी अपने लड़के से कहती है—'me fils,' यद्यपि me-शब्द पुल्लिंग है। इसी तरह हमारे यहाँ कोई पुरुष अपनी लड़की को 'मेरी लड़की' कहकर पुकारता है । फ्रेंच बाप भी अपनी लड़की को 'ma fillle' कहता है, यद्यपि 'ma'-शब्द स्त्री-लिंग है। बहुवचन में हमारे यहाँ कहा जाता है—'मेरे लड़के।' फ्रेंच में भी कहना होता है—'mes garcons'। संस्कृत में भी संज्ञा-शब्द के पहले का गुण-वाचक शब्द संज्ञा-शब्द के अनुसार ही रूप बदलता है। उदाहरण के लिये संस्कृत-विद्या, नामधारी पंडितों के लिये, 'अनभ्यस्ता' होती है, भारत का 'धनं' 'परहस्तगतं' है, और आजकल के खद्योतसम कवि 'साक्षात् पशुः पुच्छ-विषाण-हीनः' हैं। उसी प्रकार स्त्रियों का आहार 'द्विगुण' होता है, लज्जा 'चतुर्गुणा' होती है, और 'साहसं' 'षट्गुणं' होता है। पर संस्कृत में इतना भेद है कि वहाँ 'नपुंसक-लिंग' होता है। यह बात फ्रेंच और हिंदी में नहीं।

× × ×

३. बाल-विवाह की कुप्रथा का निवारण

मंडी के राजा साहब ने, अभी हाल में, अपनी रियासत

क़ानून क़ायम करने का वादा किया है। यह प्रसन्नता की बात है। हर्ष यह देखकर अधिक होता है कि हमारे रजवाड़ों में बहुत-सी बातों के संबंध में अत्यंत हीन दुर्बलता दृष्टिगोचर होने पर भी बाल-विवाह की कुप्रथा दूर करने के संबंध में वे सबसे आगे बढ़ते हैं। बड़ौदा, मैसूर आदि रियासतें अवश्य उन्नत हैं, और वहाँ इस कुप्रथा का बंद किया जाना आशातीत नहीं। पर मंडी-जैसी अशिक्षिततम रियासत के राजा साहब को समाज-सुधार की लगन लग गई है, यह देख हमें आश्चर्य तथा प्रसन्नता होती है। आशा है, अन्य रियासतें भी, इस संबंध में, राजा साहब के दृष्टांत का अनुकरण करेंगी।

× × ×

४. देश की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति

देश की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति इतनी जटिल होती जाती है कि देखकर आश्चर्य तथा दुःख होता है। जहाँ देखिए, वहीं धाँधली और हुल्लड़शाही के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता। 'इंडिपेंडेंट', 'स्वराजिस्ट' तथा 'लिबरल' दलों के बीच वैमनस्य बढ़ता जाता है, और एक दल का पत्र दूसरे दल के पत्र-संपादक तथा नेताओं को ऐसी-ऐसी भद्दी गालियाँ देने में नहीं चूकता, जिन्हें सुनकर कान में उँगली देनी पड़ती है। कौंसिलों में अलग तू-तू मैं-मैं मची रहती है। 'देशोद्धार' के नाम पर आपस में व्यर्थ का वाद-विवाद चल रहा है। कांग्रेस के भीतर नाना दल फूट निकलने पर सरकार मज़े में मूछों पर ताव दे रही है, और हिंदू-मुसलमानों की तनातनी में उसे डोर ढीली करने का अच्छा मौक़ा मिला है। ऊपर से नियंत्रण का ढोंग दिखाकर अंदर-ही-अंदर आनंद की हँसी हँसी जाती है। तमाम देश की एक अजीब हालत है। इन सब जटिलताओं को चूड़ांत रूप देने के लिये अब विधायक कमीशन नियुक्त हुआ है, जिसमें भारतीयों को सम्मिलित न करके उनका अपमान किया गया है।

हम यह प्रश्न करना चाहते हैं कि देश का क्या भविष्य होनेवाला है? आगामी कांग्रेस में नेताओं ने कौन-सा रुख़ लेने का इरादा किया है? क्या आपस की दलबंदी कभी दूर नहीं होगी? महात्मा गांधी को तो इसी दलबंदी के कारण हमारे नेता शांत कर ही चुके, अब आगे किसके वैराग्य की बारी आती है, यह देखना है। हमारे राजनीतिज्ञ ... स्थिति समझकर, मिलकर कार्य करना उन्हें पसंद नहीं। उस पर तुर्रा यह कि उनकी 'चालें' आपस ही में सिर-फुटौवल करने में कृतकार्य होती हैं, सरकार का बाल भी उनसे बाँका नहीं होता। कौंसिलों में भी सरकार महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के संबंध में अपनी बात आगे बढ़ाकर बाज़ी मार ले जाती है, और हमारे कौंसिलर लोग, आपस की सहकारिता के अभाव में, एक दूसरे का मुँह ताकते रह जाते हैं।

आगामी कांग्रेस में नेताओं के लिये मुख्य रूप से इसी दलबंदी के प्रश्न को हल करना आवश्यक है। इसके कारण देश के वास्तविक कार्य, जैसे खद्दर-प्रचार, हिंदू-संगठन, अछूतोद्धार, समाज-सुधार इत्यादि, बहुत पीछे पड़ गए हैं। फ़ालतू वाद-विवादों में नेताओं की शक्ति का अपव्यय हो रहा है। कांग्रेस में तू-तू मैं-मैं तथा व्याख्यान-वैचित्र्य का तमाशा दिखाने से ही देशोन्नति नहीं होगी। सबको जी-जान से पारस्परिक सहयोग के लिये लग जाना पड़ेगा। गलेबाज़ी, व्याख्यान-प्रदर्शिनी तथा विवाद-विडंबना बहुत हो चुकी, अब कुछ कर दिखाने का समय है। हमें आशा है, आगामी कांग्रेस विशेष महत्त्व की रहेगी, और उससे देश की वर्तमान मोहाच्छन्न स्थिति बहुत कुछ दूर होगी।

× × ×

५. विधायक कमीशन

भारत के भाग्य का निपटारा करने के लिये पार्लियामेंट ने एक 'विधायक कमीशन' नियुक्त किया है। वह नए वर्ष में भारत-भ्रमण करने आवेगा और इस बात की जाँच करेगा कि भारत के लोग 'सुधारों' की कृपा से उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन के योग्य हो गए हैं या नहीं। हम लोगों पर पार्लियामेंट ने निहायत मिहरबानी तो की है, पर इतना ख़्याल उसने नहीं रक्खा कि जिनकी भाग्य-परीक्षा होगी, उनके प्रतिनिधियों को तो कम-से-कम इस कमीशन में सम्मिलित किया जाय। जाँच का ढोंग रचकर परोक्ष रूप में गोया शुरू में ही यह दिखलाया जा रहा है कि भारत में इस कमीशन का सदस्य चुने जाने के क़ाबिल एक भी व्यक्ति नहीं, अर्थात् हम यह अच्छी तरह जान-बूझकर जाँच करने जा रहे हैं कि भारत उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के क़ाबिल अभी बिलकुल नहीं हुआ। बाबा! तब इतने भारी आडंबर का जाल रचने की आवश्यकता ही क्या थी! श्रीगणेश में ही जब तुम लोग भारतीयों को

समझ में नहीं आता कि ब्रिटिश सरकार ने भारत को इतना हीन क्यों समझ लिया है कि इस कमीशन में उसके प्रतिनिधित्व का प्रश्न उठाना ही उसने उचित नहीं समझा। क्या विलायत के राजनीतिक क्षेत्र से दो-चार अँगरेज़ जो भारत-प्रबंध के ज्ञान में एकदम रँगरूट हैं, आकर अच्छी तरह जाँच करने का दम भर सकते हैं, जब तक उन्हें किसी भारतीय से सहायता न मिले ? इस प्रकार की जाँच से लाभ ही क्या होगा ? हमें पूरा विश्वास है कि इस कमीशन के सदस्य मुफ़्तख़ोरी के पैसों से भारत-भ्रमण के लिये आकर, फ़र्स्ट-क्लास होटलों में टिककर, यहाँ की सैर का मज़ा लूटकर, सिविलियनों की स्त्रियों के साथ नाचकर, दो-चार बड़े-बड़े व्याख्यान झाड़कर, अंत में यही मत पेश करेंगे कि अभी इंडिया के असभ्य लोग इस अधिकार के योग्य नहीं बने हैं! असल बात हम पहले ही कह चुके हैं कि वे लोग यह मत प्रकट करने के लिये विलायत से ही तैयार होकर आवेंगे।

वॉयसराय महोदय ने यह कहकर देशवासियों को फुसलाना चाहा है कि इस ब्रिटिश कमीशन ने न तो भारत के प्रतिनिधि ही चुने हैं, और न नौकरशाही के। इसलिये यही कहना होगा कि उसने निष्पक्षता से काम लिया है। लो, निपटारा हुआ ! भूल-चूक, लेनी-देनी, सब साफ़ !

देश में सर्वत्र इस कमीशन के वहिष्कार की धूम मची हुई है। ऐसा होना उचित ही है। सभी भिन्न-भिन्न दलों के लोग इस वहिष्कार पर ज़ोर दे रहे हैं। हमारी नम्र सम्मति में तो अब इस नाज़ुक स्थिति में सारे देश से दलबंदी उठ जानी चाहिए। सभी दलों के नेताओं को चाहिए कि आपस में सहकारिता करके, अपनी सारी सम्मिलित शक्ति से, इस कमीशन का विरोध करें। यह प्रश्न किसी दल या संप्रदाय-विशेष का नहीं, समस्त राष्ट्र का प्रश्न है। इसके निराकरण में राष्ट्रीय, स्वतंत्र, स्वराज्य तथा उदार-दल की एकता तथा हिंदू-मुसलमानों का सहयोग परमावश्यक है। देश की वर्तमान जटिल स्थिति पर फिर नए सिरे से विचार करने का हमें अवसर मिल गया है। यह मौक़ा हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। आशा है, आगामी कांग्रेस में इस प्रपंची कमीशन का विरोध बड़े ज़ोरों से होगा।

× × ×

६. संसार का भविष्य

संसार की भावी का चक्र इस समय भयंकर बवंडरों के बीच में होकर धक्के खा रहा है। आँधी कभी उसे इस तरफ़ ढकेलती है, कभी उस तरफ़। कभी यह बिलकुल अतल सागर के तल-प्रदेश में डूबना चाहता है, कभी भीषण हुंकार से सिर ऊपर उठाता है। इसकी क्या गति होगी, यह कुछ निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। संसार के प्रत्येक राष्ट्र की आत्मानुभूति प्रबल रूप से बढ़ रही है। सभी दलित राष्ट्र अपनी हीनता दूर करने के लिये जी-जान से मर मिटे हैं। भारत का आंदोलन रावण की चिता की तरह अभी तक जलता ही है। बिना पूर्णता को प्राप्त हुए कभी यह शांत नहीं हो सकता। चीन ने भी सहस्रों विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए सिर ऊपर उठाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि इस समय वहाँ पारस्परिक विद्रोह और विग्रह का बोलबाला है; पर यह निश्चित है कि ये सब झगड़े उन्नति के पूर्व-लक्षण हैं। अंत में वहाँ भी भाई-भाई मिलेंगे ही। आपस की फूट से विदेशियों का पदाघात कहाँ तक सहेंगे ? सुदूर आफ्रिका के उत्तर में मोरक्को की ग़ुलाम जाति भी सैकड़ों वर्षों का बंधन तोड़ने की चेष्टा में है। मिसर में तो थोड़े ही अरसे में कितने ही राजनीतिक उलट-फेर हो चुके हैं। इसी प्रकार अन्य पराधीन जातियों में भी विद्रोह का भाव फैल गया है।

स्वतंत्र राष्ट्रों में भी बड़ी तनातनी चल रही है। रूस अपनी चालों में अलग मशगूल है। चीन को भी वह अपनाना चाहता है। पूर्व में उसका गुप्त रूप से ज़बरदस्त प्रचार चल रहा है। जर्मनी अपनी बिगड़ी हुई हालत बनाने में जी-जान से लगकर बहुत कुछ सँभल गया है, और आगामी युद्ध के लिये बहुत-सी तैयारियाँ उसने गुप्त रूप से कर ली हैं, यद्यपि मित्र-राष्ट्रों की कड़ी दृष्टि उस पर पड़ी है। फ्रांस भी मौक़े-बेमौक़े के लिये कमर कसकर तैयार है। इटली में मसोलनी ने वह विकराल रूप धारण किया है, जिसे देखकर ब्रिटेन-जैसे शक्तिमान् राष्ट्रों के छक्के छूट गए हैं। आगामी युद्ध में इटली सबसे अधिक शक्तिमान् राष्ट्रों का पूरा मुक़ाबला करेगा। उसकी वर्तमान हुंकार से सब त्राहि-त्राहि पुकार रहे हैं। टर्की ने दो-चार वर्षों के भीतर ही कैसी उन्नति कर ली है, यह बात सबको मालूम है। आगामी युद्ध में उसका भी विशेष भाग रहेगा। क्षुद्र-क्षुद्र बलगेरियन राष्ट्र भी ख़ूब बने हुए हैं। [illegible] यह कि सब अत्यंत सजग तथा

सचेतन होकर यह देख रहे हैं कि संसार की भावी क्या रुख़ लेती है, उसी के अनुसार चलना होगा।

इन सब लक्षणों से यही जान पड़ता है कि निकट भविष्य में अवश्य ही फिर भयंकर रूप में युद्ध छिड़ेगा। राष्ट्रों के भीतर-ही-भीतर जो धुआँ इकट्ठा होता जाता है, वह एक-न-एक दफ़ा अवश्य ही बाहर को फट पड़ेगा, और समस्त संसार को चकित कर देगा। अस्त्रों के निराकरण का जो निश्चय प्रेसिडेंट हार्डिंज के काल में हुआ था, वह बिलकुल विफल सिद्ध हो चुका है। नित्य नूतन विषैले अस्त्रों का आविष्कार हो रहा है। प्रत्येक राष्ट्र अपने अस्त्रागार को विपुल आयोजन से पूर्ण रखने की चेष्टा में है। एक को दूसरे की बात का विश्वास नहीं। 'लीग आफ़ नेशंस' (राष्ट्रीय लीग) शांति के लिये वृथा अपनी शक्तियाँ नष्ट कर रही है। युद्ध का भयंकर भूत जो प्रत्येक पाश्चात्य राष्ट्र के ऊपर सवार है, उसे दूर हटाना बाएँ हाथ का खेल नहीं। एक दूसरे के ख़ून के प्यासे ये राष्ट्र जब तक अच्छी तरह ग़ारत नहीं होंगे, तब तक शांत नहीं रह सकते।

लोग पूछते हैं, इस आगामी युद्ध का परिणाम क्या होगा? क्या फिर शांति स्थापित हो जायगी? विगत महायुद्ध से सबका भ्रम दूर हो गया है। उसका विकराल परिणाम देखकर लोगों ने समझा था कि अब कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का रक्त-पिपासु बनकर इस प्रकार धन-जन का सर्वनाश करना पसंद नहीं करेगा। पर युद्ध समाप्त होने पर मातम भी न मनाने पाए थे कि विजित तथा पराजित सभी राष्ट्र उत्कट प्रतिहिंसा का भाव मन में पोषित कर नए सिरे से युद्ध की तैयारी करने लगे। ऐसी हालत में यह आशा कैसे की जा सकती है कि आगामी युद्ध के बाद शांति स्थापित हो जायगी?

इस कभी शांत न होनेवाली युद्धाग्नि का कारण क्या है? इसका मूल कारण है राष्ट्रों की प्रतिद्वंद्विता और तथाकथित 'महत्त्वकांक्षा'। यह महत्त्वाकांक्षा किसी राष्ट्र को महत् बनाने के बदले उसे इतना लोलुप, स्वार्थी तथा नीच बना देती है कि फिर वह आगे-पीछे कुछ नहीं देखता। किस प्रकार अपेक्षाकृत शक्तिहीन राष्ट्रों को अपने अधीन करके, शक्तिमान् राष्ट्रों के साथ 'कंपिटीशन' में सबसे बढ़कर उतरे, यही धुन उसे सवार रहती है। इस प्रकार की लोलुपाकांक्षा का अंत नहीं। यही कारण है कि राष्ट्रों में संधि-विग्रह चलते जाते हैं। जब तक प्रत्येक शक्तिमान राष्ट्र, इस लोलुपाकांक्षा का दमन करके, संसार के प्रत्येक राष्ट्र के अधिकारों की समता का ख़याल न करेगा, तब तक यह युद्ध-ज्वाला शांत नहीं होगी। वर्तमान स्थिति से यही पता चलता है कि इस प्रकार का विचार किसी राष्ट्र के राजनीतिज्ञ के मस्तिष्क में प्रवेश-लाभ नहीं कर सकता। इस कारण यह अनुमान होता है कि पूर्णतया अस्त-व्यस्त होने तक ये राष्ट्र इसी चक्र में पड़े रहेंगे।

× × ×

७. वर्तमान हिंदी-साहित्य में 'छायावाद'

वर्तमान हिंदी-साहित्य में 'छायावाद' की कविताओं का ज़ोर बतलाया जाता है; पर हमारी समझ में अभी तक यह बात नहीं आई कि 'छायावाद'-शब्द से हमारे आलोचकों का मतलब क्या है। यदि Mysticism के लिये 'छायावाद'-शब्द काम में लाया जा रहा है, तो यह भयंकर भूल है। क्योंकि विज्ञ पाठक जानते हैं कि हमारे वर्तमान साहित्य में Mysticism का लेश भी नहीं पाया जाता। Mysticism उस अज्ञात अध्यात्म-चेतना से प्रेरित होता है, जिसका मूल भाव कबीर के 'अनहद नाद' में छिपा है। यह निगूढ़ आध्यात्मिक चेतना हमारे वर्तमान कवियों में कहाँ! रवींद्रनाथ की परवर्ती कविता में अवश्य इसका आभास पाया जाता है; पर उनकी जो कोई भी कविता अस्पष्ट है, उसी को Mystic (या, बक़ौल हमारे शब्दकारों के, 'छायावादी') बता देना निरी मूर्खता है।

हिंदी के एक-आध कवि की कविता में छायात्मक (Abstract) भाव अवश्य पाए जाते हैं, और कभी-कभी वे भाव बहुत सुंदर होते हैं; तथापि Mysticism का मूल-भाव उनमें नहीं है, और होना आवश्यक भी नहीं। यदि ठाकुर की सभी कविताएँ Mystic होती हैं, तो शेली, बॉयरन और टेनीसन की कविताएँ भी इसी भाव से भरी हैं। पर इन कवियों को कभी किसी ने Mystic नहीं कहा। जो कविता समझ में नहीं आई, उसे Mystic या 'छायावादी' कहकर त्राण नहीं पाया जा सकता। शेली और टेनीसन की कविता का भाव समझनेवाले कितने व्यक्ति मिलते हैं? पर उनकी दिल्लगी कभी किसी ने नहीं उड़ाई। हाँ, अंडबंड भाव लेकर आजकल जो अधिकांश कवि 'छायावादी' बनना चाहते हैं, उनकी अनुकर

पटुता से हम भी हैरान हैं। इन बरसाती मेंढकों को टर्राने से बरसात के सौंदर्य का मूल-रहस्य समझने का दावा नहीं करना चाहिए।

× × ×

८. भारतीय सभ्यता पर बर्नार्ड शॉ

प्रसिद्ध नाटककार बर्नार्ड शॉ ने भारतीय सभ्यता तथा संस्कार के संबंध में किसी पुस्तक में अपने मंतव्य प्रकट किए हैं। उनकी बातों से ज्ञात होता है कि वह मिस मेयो के समान लेखक-लेखिकाओं के ग्रंथ पढ़कर ही ऐसे संकीर्ण उद्गार प्रकट कर गए हैं। उनका कहना है कि भारत एक बर्बर देश है; वहाँ कई निष्ठुर सामाजिक अत्याचार वर्तमान हैं; वहाँ ऐसी-ऐसी असभ्य प्रथाएँ वर्तमान हैं, जिन्हें देखकर विश्वास नहीं होता कि कभी यह देश सभ्यावस्था में रहा होगा; वहाँ की स्त्रियाँ व्यभिचारिणी होती हैं, नाक में बुलाक पहनती हैं और पर्दे में सड़ती हैं; वहाँ के मंदिरों में भक्ति का ढोंग अवश्य दृष्टिगोचर होता है, पर वास्तव में वे व्यभिचार के अड्डे हैं। उनका यह भी कहना है कि इतने करोड़ आदमियों में यदि ठाकुर और गांधी, ये दो व्यक्ति उच्चशिक्षाप्राप्त मिल भी गए, तो यह कोई बड़ी बात नहीं है। यह देश अशिक्षा तथा असभ्यता के गहन अंधकार में डूबा हुआ है।

इसमें संदेह नहीं कि कई बातें शॉ महाशय ने सत्य तथा अर्द्ध सत्य कही हैं। मिस मेयो ने भी यही बातें फ़रमाई हैं। पर इन लोगों ने जिस भाव से ये सब बातें लिखी हैं, उसे देखकर यही मालूम होता है कि इस गुलाम जाति के प्रति उनकी बिलकुल सहानुभूति नहीं। वे उसे अत्यंत घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यदि जो बातें उन्होंने लिखी हैं, वे सब सत्य भी होतीं, तो भी इस प्रकार की घृणा प्रकाशित करना एक साहित्यिक के लिये उचित नहीं था।

शॉ महाशय ने भारतीय स्त्रियों को व्यभिचारिणी बतलाया है। तीस करोड़ स्त्री-पुरुष की जन-संख्यावाले देश की सभी स्त्रियों को, आम तौर पर, व्यभिचारिणी बतलाना कहाँ तक न्याय-संगत है, यह विचारणीय है। इसमें संदेह नहीं कि शॉ महाशय को विलायत की महा-पतिव्रता, उत्कट सती-साध्वी, पुरुषों को जूतियों की नोक से ठुकरानेवाली, नंगी नाचनेवाली, रात को मोटर में सवार होकर डकैती करनेवाली, बात-बात में कितने ही पतियों को तलाक़ देकर असंख्य पतियों की पूजा से पातिव्रत का अनंत पुण्य संचय करनेवाली, भद्र महिलाओं के संसर्ग का सौभाग्य प्राप्त है। उन्हें देखकर, भारत की दीन-हीन दुःखिनी स्त्रियों की पर्दा-नशीनी के "रहस्य" में, यदि वे व्यभिचार की बू पाएँ, तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात? पर फिर भी, मनुष्यता के नाते, ज़रा लेखनी को क़ाबू में रखकर सब बातें लिखनी होती हैं। यदि शॉ महात्मा हमारी सभ्यता तथा संस्कार को गालियाँ देकर हमारी स्त्रियों पर इतना नीच कलंक आरोपित न करते, तो भी उनकी प्रसिद्धि में कुछ फ़रक़ न पड़ता। पर ब्रिटिश जाति की नस-नस में जो परराष्ट्र के प्रति विद्वेष तथा घृणा का भाव भरा है, वह शॉ महाशय की प्रकृति में कहाँ दबा रहता? हमारे मंदिरों को व्यभिचार के अड्डे बतलाकर भी शॉ महात्मा ने अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय दिया है।

पर हमारे साहित्यालोचक बड़े उदार हैं। वे शॉ की इस संकीर्णहृदयता को अवज्ञा की दृष्टि से देखकर उनकी 'कला' पर मुग्ध हैं। धन्य है यह संकीर्णहृदय तथा अरसिक कलाविद्, और धन्य हैं हमारे साहित्यालोचक, जो उसकी क़दर करना जान गए हैं!

× × ×

९. युक्तप्रांत में स्त्री-शिक्षा

हमारे प्रांत में स्त्री-शिक्षा का इतना कम प्रचार क्यों है? सौ में एक स्त्री भी बड़ी मुशकिल से पढ़ी-लिखी मिलती है। ग्रेजुएट स्त्रियों की संख्या तो इतनी कम है कि इस संबंध में कुछ लिखना ही व्यर्थ है। इसका कारण एक तो यह मालूम होता है कि हमारे यहाँ स्त्रियों के पढ़ने के लिये ऐसे स्कूलों की संख्या बहुत कम है, जिनमें स्त्रियाँ पढ़ सकती हों और, विशेष रूप से, जिनमें विवाहिता स्त्रियों के पढ़ने का भी सुरक्षित प्रबंध हो; दूसरा यह है कि हमारे प्रांत में इस संबंध में समाज का बंधन अन्य प्रांतों से बहुत कड़ा है। हम लोगों की ऐसी धारणा है कि कोई स्त्री पढ़ी-लिखी हुई नहीं कि उसकी चरित्रशीलता जाती रहती है। यह विश्वास हमारे पुरुषों के हृदय में इतना बद्धमूल हो गया है कि किसी तरह दूर नहीं होना चाहता। एक तरफ़ तो हम लोग अपनी स्त्रियों को दृढ़-चरित्रा तथा देवी-तुल्य पूजनीया बतलाते हैं, दूसरी तरफ़ उन पर इतना अविश्वास करते हैं। वह चरित्रशीला कैसी, जो सामान्य प्रलोभन के दल-दल में फँस बैठे! जब तक हम उन पर पूरा विश्वास

स्थापित नहीं करेंगे, तब तक कभी हम अपने समाज की उन्नति नहीं कर सकते। हमारे विश्वास के मूल में जो संशय तथा भ्रम का भाव वर्तमान है, उसे उखाड़ फेंकना होगा। उचित शिक्षा पाने से स्त्री, गार्हस्थ्य-धर्म में विघ्न उत्पन्न करने के स्थान में, उसे अधिक सुंदरता से निभाने में पुरुष की सहायता कर सकती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि शिक्षा का ज़ोर बढ़ने पर कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी निकल पड़ेंगी, जो पाश्चात्य स्त्रियों का अनुकरण करके सिगरेट पीना, पुरुष-समाज में निर्लज्जता से अश्लील परिहास करना, वाहियात नाटक-नाविलों के पढ़ने में व्यस्त रहकर समय बरबाद करना, अपनी शिक्षा के घमंड में चूर होकर पुरुषों से गृहस्थी का सब काम निकाल लेना इत्यादि बहु-बहु गुणों का आभास प्रदर्शित करेंगी। पर जो स्त्रियाँ ऐसा कर सकती हैं, उनमें अशिक्षितावस्था में भी अधिक सद्गुणों की आशा नहीं की जा सकती। सभी स्त्रियों को इसी श्रेणी की स्त्रियों की कसौटी में कसना न्याय-संगत नहीं। शिक्षा का प्रचार जब बढ़ेगा, तब, प्रथमावस्था में, सामाजिक स्थिति में अवश्य बहुत कुछ गड़बड़ पड़ेगी। किंतु पीछे बातें ठीक ढर्रे में आ जायँगी। स्त्री-शिक्षा तथा स्त्री-स्वतंत्रता का आदर्श भारतीय स्त्रियों में किस रूप में प्रकट हो सकता है, इस बात का पता दक्षिण की शिक्षिता तथा अर्द्ध-शिक्षिता स्त्रियों को देखने से लगता है। वहाँ की शिक्षिता स्त्रियों के रंग-ढंग तथा चाल-ढाल में कितनी नम्रता तथा अनुभव-जन्य कितनी गंभीरता दिखलाई देती है! गृहस्थ-धर्म का पालन वे कितने सौजन्य तथा शांति से करती हैं, यह देखते ही बन पड़ता है। वहाँ के पुरुषों को यह अनुभव हो गया है कि स्त्री को स्वतंत्र किए तथा शिक्षा प्राप्त कराए बिना कभी उनकी पूर्ण रक्षा नहीं हो सकती और कभी उन्हें जीवन की जटिलताओं को सुलझाने में सरलता नहीं मिल सकती। ऐसी स्थिति में मुसलमान तथा अन्य अत्याचारियों की मजाल नहीं कि वे उनकी स्त्रियों को भगा ले जाकर उनका धर्म नष्ट करने की हिम्मत करें! इधर हमारे यहाँ की स्त्रियों की गति देखिए! इतने भीतर छिपाने पर भी डरी-डरी रहती हैं, यहाँ तक कि पुरुष भी उनकी रक्षा नहीं कर सकते। कारण स्पष्ट है। स्त्री की आत्मा को संकुचित करके हम मूल "शक्ति" को ही नष्ट कर बैठे हैं। ऐसी हालत में हमें उनकी रक्षा की शक्ति कहाँ से प्राप्त हो!

× × ×

१०. जरायम-पेशा जातियाँ और उनका प्रबंध

भारत में बहुत-सी जातियाँ ऐसी हैं, जिनका पेशा ही जुर्म करना है। इन जातियों की संख्या कई हज़ार बतलाई जाती है। इनके नियंत्रण के प्रबंध का भार सरकार ने "मोक्ष-प्रदायिनी सेना" (Salvation Army) को दे रक्खा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि हज़ारों हिंदू प्रतिदिन ईसाई-धर्म में दीक्षित किए जा रहे हैं। इन दलित तथा निर्धन जातियों को उपदेश तथा संस्कार द्वारा ऊपर उठाने का कार्य ईसाइयों के हाथ में पड़ने से स्वर्गीय बाबू गंगाराम वर्मा ने सन् १६११ में सरकार का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया कि उनके प्रबंध का भार किसी हिंदू-संस्था के ऊपर छोड़ दिया जाना चाहिए। तब सरकार ने यह उत्तर दिया था कि कोई योग्य संस्था यदि यह प्रबंध अपने हाथों में लेना चाहे, तो उसे दिया जा सकता है। इस पर अखिल भारतवर्षीय दलितोद्धार-सभा ने, सरकार को, इस प्रबंध का भार उसे सौंपने के लिये दरख़्वास्त भेजी। सरकार से यह उत्तर मिला कि पुराना प्रबंध बहुत अच्छी तरह से चल रहा है; पर जिन जातियों का प्रबंध सरकार ने अभी तक अपने हाथ में नहीं लिया है, उनका भार दलितोद्धार-सभा को दे दिया जा सकता है।

२४ मार्च, १६२७ को ठाकुर हनुमान्सिंह ने एक प्रस्ताव में फिर इस संबंध में सरकार का ध्यान आकर्षित किया। इस पर श्रद्धानंद-दलितोद्धार-सभा के मंत्री स्वामी रामानंद संन्यासी ने युक्त-प्रांतीय सरकार के उपमंत्री से लिखा-पढ़ी की। इस पर उन्हें वही पुराना उत्तर मिला। अर्थात् जो बस्तियाँ 'साल्वेशन आर्मी' के प्रबंध में हैं, उनका भार सरकार उन्हें नहीं दे सकती; पर हाँ, नई बस्तियों के प्रबंध का भार उन्हें दिया जा सकता है।

सरकार की नीति स्पष्ट है। वह 'साल्वेशन आर्मी' को हर तरह इस संबंध में सहायता देना चाहती है कि वह इन जातियों को ईसाई-धर्म में ले ले। जब हिंदू उन दलित भाइयों का भार अपने हाथ में लेना चाहते हैं, तब उसके सब बहाने व्यर्थ हैं। समस्त प्रांत की हिंदू-सभाओं ने सरकार की इस दुष्ट नीति का विरोध किया है।

यह उचित ही है। कौंसिलरों को इस विषय पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर उनका ज़ोर न चला, तो वे किसलिये कौंसिलों का पहरा दे रहे हैं!

नई बस्तियों का जो प्रबंध किया जा रहा है, आशा है, उसमें हमारी हिंदू-संस्थाएँ जी-जान से भाग लेंगी।

× × ×

११. कुमाऊँ-प्रांत में 'नायक'-सुधार

कुमाऊँ-प्रांत में नायक एक जाति है, जिसका पेशा अपने यहाँ की लड़कियों को वेश्यावृत्ति की वेदी पर बलि देना है। प्रत्येक नायक की लड़की जब कुछ बड़ी होती है, तो अपने पिता द्वारा इस घृणित पेशे के लिये वेश्याओं के अड्डों में भेजी जाती है। यह पाशविक प्रथा बहुत पुरानी है। बहुत वर्षों तक यह बिना किसी सामाजिक नियंत्रण के चली आती थी। सन् १६१३ में लाला लाजपत राय अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिये नैनीताल तथा अल्मोड़े आए। इस अवसर पर उन्होंने वहाँ कई अछूत जातियों की शुद्धि की, और नायक-प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उन्होंने नैनीताल जाकर तत्कालीन लाट मेस्टन साहब से इस संबंध में सरकारी नियंत्रण क़ायम करने की प्रार्थना की, और नायक-कन्याओं की रक्षा के लिये १२५) रु० माहवार हिंदू-महासभा से दिलवाने का वचन दिया। तब से हमारे प्रांत के नेताओं की दृष्टि इस ओर आकर्षित हुई। इसके बाद पं० हृदयनाथ कुँजरू ने पं० गोविंदवल्लभ पंत की सहायता से, इस संबंध में, कुमाऊँ-प्रांत में आंदोलन मचाया। नायकों की प्रधान-प्रधान बस्तियों में जा-जाकर उन्हें इस प्रथा की बीभत्सता के संबंध में व्याख्यान दिए गए। लोगों में बहुत जोश फैल गया। पर एक सवाल बड़ा ज़बर्दस्त लोगों के सामने पेश हुआ। वह यह कि यदि 'नायक' लोग अपनी लड़कियों को वेश्यावृत्ति के चूल्हे में न झोंकें, तो उनका गुज़ारा कैसे हो, और उनकी लड़कियों की क्या हालत हो? पीढ़ियों से इस प्रथा के आदी बनने के कारण वे लोग न तो कृषि-कार्य तथा अन्य साधनों से, जिनके लिये शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता हो, अपनी रोज़ी कमाने के क़ाबिल रह गए हैं, और न उनके अधिकार में कृषि के लिये ज़मीन का कोई टुकड़ा ऐसा है, जिससे उनका काम चल जाय।

इस विकट समस्या का अभी तक कोई समाधान नहीं हुआ। अपनी लड़कियों को वेश्या-बनाकर 'नायक' गुल-छर्रे उड़ाते हैं। एकदम ऐसी आराम की हालत से हाथ धोना वे कभी नहीं चाहते। उनकी एक शिकायत और भी है। वे कहते हैं कि वेश्यावृत्ति स्वीकार करने से हमारी लड़कियाँ बड़े-बड़े राजे-महाराजे तथा सेठ-साहूकारों को गाँठती हैं, और भले-भले कुलीन लोगों के साथ ऐश करती हैं; पर यह प्रथा बंद होने पर क्या कभी कोई कुलीन उनसे विवाह करने के लिये सहमत होगा? उनका कहना है कि यदि कुलीन लोग उनसे विवाह करने के लिये तैयार हों, तो वे यह प्रथा बंद करने को राज़ी हैं। पर ऐसा करने के लिये कोई तैयार नहीं दिखलाई देता। ख़ैर।

अब कौंसिलरों ने ज़ोर लगाकर सरकार का ध्यान इस ओर खींचा है। सरकार 'नायक'-कन्याओं की रक्षा का उपाय करेगी, यह आशा है। पर फिर भी हमें इसमें संदेह है कि इस जटिल समस्या का समाधान बाहरी बहस, मौखिक सहानुभूति अथवा ज़ोर-ज़बर्दस्ती से हो सकेगा। जब तक हमारे कुमायूनी-नेता द्विजों को 'नायक' लोगों का 'हुक्का-पानी' चलाने के लिये सम्मत न कर सकेंगे, तब तक इस प्रश्न का हल होना टेढ़ी खीर है।

× × ×

१२. मुसलमानों का हिंदू-द्वेष

यों तो मुसलमान जब से भारत में आए, तभी से अपनी धार्मिक असहिष्णुता के कारण हिंदुओं से नफ़रत करते रहे हैं। पर कुछ दिन यहाँ रह चुकने के बाद मुसलमान और हिंदू बहुत कुछ हिल-मिल गए; वह धार्मिक असहिष्णुता भी कुछ कम पड़ गई। कुछ अकबर-जैसे समझदार नीति-निपुण बादशाहों ने धर्मांध मौल्वी-मुल्लाओं की नसीहत पर ध्यान न देकर हिंदुओं को उच्च राजकर्मचारी बनाना और उनसे रक्त-संबंध करना ही श्रेयस्कर समझा। परंतु पहले ही की तरह मौलानाओं की यह चेष्टा बराबर जारी रही कि इन काफ़िरों के साथ किसी तरह की रियायत न की जाय, इनसे ग़ुलाम का-सा बर्ताव होता रहे तथा इनके धर्म पर आक्रमण की नीति शासन का अंग बनी रहे। औरंगज़ेब-जैसे हिंदू-द्वेषी बादशाहों पर इनका जादू बराबर काम करता रहा। तथापि उस समय हिंदू-जाति ऐसी निर्जीव नहीं हो गई थी; उस समय हिंदू-धर्म सजीव था, समय-समय पर हिंदू-वीर धर्म की रक्षा के लिये उठ खड़े होते थे। अधिकांश हिंदू मरना क़बूल करते थे; पर अपना धर्म नहीं छोड़ते थे, अपने धर्म का अपमान न देख

सकते थे। मुसलमानों की अमलदारी ख़तम हो जाने पर अँगरेज़ी राज्य हुआ, और प्रजा के धर्म के संबंध में निरपेक्ष रहने की घोषणा की गई। इस समय मौलानाओं का सरपरस्त कोई 'बादशाह' नहीं था, और अँगरेज़ भी आजकल की तरह मुसलमानों को शह देने की नीति के पक्षपाती नहीं थे—बल्कि मुसलमानों को दबाना ही उस समय की नीति थी—इस कारण मौलाना लोग खुल्लमखुल्ला हिंदुओं के धर्म पर आक्रमण करने की चेष्टा छोड़ देने को विवश हुए। पर सुयोग पाते ही छल-बल-कौशल से हिंदुओं को मुसलमान बना लेने का क्रम गुप्त रूप से बराबर जारी रहा, जो कि अब तक चल रहा है। एक समय था, जब हिंदू-धर्म का द्वार उस आदमी के लिये, सदा के लिये, बंद हो जाता था, जो किसी तरह भी—यहाँ तक कि पुलाव की गंध सूँघने पर भी—धर्मभ्रष्ट समझ लिया जाता था। हिंदू एक कच्चा घड़ा था, जिस पर एक छींट पड़ जाने से भी वह निकाल बाहर किया जाता था। यारों के पौ-बारह थे। किंतु इधर कुछ समय से समय ने पलटा खाया। महर्षि स्वामी दयानंद का बोया बीज फूलने-फलने लगा। अपना दिन-दिन क्षय होते देखकर हिंदू-जाति सजग हो उठी। मलकानों की शुद्धि के साथ ही देश में शुद्धि की धूम मच गई। इस शुद्धि-कार्य को आगे बढ़ानेवाले अधिकांश आर्य-समाजी सज्जनों के होने पर भी सनातनधर्मियों ने भी शुद्धि का समर्थन किया। फिर क्या था, अपने शिकार को सदा के लिये हाथ से निकलते देखकर मौलाना लोग पागल हो उठे। उन्होंने अशिक्षित, अल्पशिक्षित, धर्म के नाम पर उन्मत्त हो उठनेवाले मुसलमानों को शुद्धि के विरुद्ध भड़काना शुरू कर दिया। राजनीतिक प्राधान्य प्राप्त करने का साधन बहु-संख्या को समझकर मुसलमान नेता भी इन मौलानाओं से मिल गए। उन्होंने गुप्त रूप से और प्रकट रूप से भी हिंदुओं के विरुद्ध ज़हर उगलना शुरू कर दिया। तबलीग़ और तंज़ीम का ज़ोर हो चला। हिंदुओं के धार्मिक उत्सवों और जलूसों के बाजों को नमाज़ के समय मसजिद के सामने न बजने देने की नई उपज मौलानाओं के दिमाग़ से हुई। बंगाल में तो किसी भी समय बाजे न बजने देने के लिये ज़िद की गई। हिंदुओं को चिढ़ाने के लिये ईद के अवसर पर अधिकाधिक गो-वध करने पर ज़ोर दिया गया। फल-स्वरूप कोहाट, रावलपिंडी, कलकत्ता, लखनऊ, मेरठ, दिल्ली, आगरा, सहारनपुर, पीलीभीत, प्रयाग, लाहौर, इंदौर, बरोदा, गुलबर्गा, मुल्तान, पेशावर, अजमेर, भागलपुर, बेतिया आदि प्रायः सभी बड़े नगरों में दंगे हुए, जिनमें से अधिकांश स्थलों पर छेड़छाड़ और मारपीट का आरंभ मुसलमानों की ही ओर से हुआ। पहले तो हिंदुओं की ही विशेष हानि हुई। वे ही मारे-पीटे गए और लुटे। किंतु पीछे पिटते-पिटते और लुटते-लुटते हिंदुओं में भी साहस का आविर्भाव हुआ। उन्होंने कई जगह डटकर सामना किया और मुसलमान उपद्रवी भाग खड़े हुए। हिंदुओं को आत्मरक्षा के लिये संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई और हिंदू-सभाओं की स्थापना करके संगठन का काम शुरू कर दिया गया। इस संगठन को मुसलमानों ने अपने विरुद्ध समझा और हिंदुओं पर और भी बिगड़ उठे। दोनों ओर घोर अविश्वास बढ़ने लगा। इस विद्वेष और अविश्वास को महात्माजी भी २१ दिन उपवास करके न दूर कर सके। अब कांग्रेस के कर्णधार श्रीयुत ऐयंगरजी ने कलकत्ते में सभा करके मेल का उद्योग शुरू कर दिया है। पर हमें इसके भी सफल होने में संदेह ही है। जब तक मुसलमानों के मन से हिंदू-विद्वेष दूर नहीं होता, तब तक मेल होना असंभव है। मेल के लिये मुसलिम मनोवृत्ति के बदलने की आवश्यकता है।

× × ×

१३. सीमा-प्रांत के हिंदू

हमारे सीमा-प्रांत के हिंदू-भाइयों को वहाँ न रहने देने की फिर चेष्टा की जा रही है। उन पर वज्र-पर-वज्र गिर रहे हैं। उनकी प्रतिध्वनि हमें यहाँ, इतनी दूर बैठे, सुनाई पड़ रही है। उन बेचारों पर कैसी बीत रही होगी, इसका हम केवल अनुमान ही कर सकते हैं। किंतु इस अनुमान के साथ-साथ यदि हम इतना भी सोचें कि यदि हम स्वयं अपने इन पीड़ित भाइयों के स्थान पर होते, अथवा यों कि ब्रिटिश-भारत के अंदर जहाँ भी हम रह रहे हैं, वहाँ से मुसलमान हमें निकल जाने, लाल पगड़ी पहनने, मुसलमानों के सामने ज़मीन पर नाक रगड़ने अथवा निर्विघ्न कोई कार्य न करने देने के लिये तलवार का भय दिखाते, लूट-मार करते, हमारे घर जला देते, हमारी आँखों के सामने हमारे कुटुंब की दुर्गति करते, यहाँ तक कि हमारे साथ भी वस्तुतः वही व्यवहार होता, जो हमारे हिंदू-

भाइयों के साथ सीमांत प्रदेश के भिन्न-भिन्न स्थानों में किया जा रहा है, तो हमारी क्या हालत होती। अपना दीन छोड़कर मुसलमान हो जाओ अथवा देश छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो क़त्ल कर दिए जाओगे, यदि ऐसी-ऐसी धमकियाँ हमें दी जातीं और उनका सबूत भी हमें मिलता रहता, तब क्या होता। जिस वेदना की कल्पना इतनी रोमांचकारी है, सोचिए, वह स्वयं कितनी और कैसी होगी। उसी भयंकर स्थिति में आज वहाँ के हिंदुओं के जीवन का एक-एक क्षण गुज़र रहा है। जो क्षण गुज़र जाता है, वही ग़नीमत है। ज़िंदगी के चंद मिनट जैसे एक कच्चे सूत में नथे हुए हैं और उन पर हर घड़ी ज़ुल्म की तलवार खेल रही है! ग़रज़ यह कि विश्वास में जो सुख है, यक़ीन में जो संजीदगी है, बेफ़िक्री में जो शांति है, उसकी छाया से वे बेचारे कोसों दूर हैं। आज यह हालत है, कल क्या होगा, कौन जाने। न-जाने कितने घर-द्वार छोड़कर भाग निकले, कितने लूटे गए, कितने मारे और कितने क़त्ल किए जा चुके! इसका कोई ठिकाना नहीं।

इन सब बातों से जान पड़ता है कि मुसलमान हिंदू क़ौम को मजबूर कर रहे हैं कि या तो वह उनकी आज्ञाओं का पालन करे, अथवा दूसरी सूरत यह है कि उनके सामने तलवार खींचकर खड़ी हो जाय। जो बात हिंदू नहीं चाहते, उसी के लिये वे मजबूर हो रहे हैं। इसलिये तअज्जुब नहीं कि यह आग पश्चिमी प्रांतों में दूर-दराज़ तक फैल जाय। कारण, इसे बुझाने का कोई सामान नज़र नहीं आता, उलटे भड़काने की कोशिश की जा रही है। पंजाब तथा दिल्ली के कुछ मुसलमानों का वहाँ जाकर खुल्लमखुल्ला हिंदुओं के ख़िलाफ़ बग़ावत फैलाना इसका काफ़ी सबूत है। और, हमको यह देखकर अफ़सोस होता है कि गौहाटी-कांग्रेस के अवसर पर जो तय-शुदा बातें हिंदू-मुसलिम-एकता की रक्षा के लिये मुसलमानों के करने की थीं, वे ख़ुद नेताओं द्वारा भुलाई जा रही हैं। फलतः मनोवृत्तियाँ और परिस्थितियाँ इतनी बदल गई हैं कि हमें आज इस दुराचार—अत्याचार—का कारण ढूँढ़ने का अवकाश ही नहीं। ज़रूरत यह है कि हम अपनी रक्षा कैसे करें। कारणों पर बाद में विचार होता रहेगा।

इस समय हिंदुओं की रक्षा के यही आधार हमें जान पड़ते हैं। एक यह कि मुसलमान ख़ुद ऐसी नाजायज़ हरकत एकदम रोक दें; दूसरे यह कि सरकार इस मामले में हाथ डाले और मुसलमानों के मिज़ाज दुरुस्त करे; तीसरे यह कि हिंदू ख़ुद मुसलमानों के मुक़ाबले में खड़े हों और एक बार अच्छी तरह हर जगह निपट जाय। हमारी समझ में मुसलमानों और सरकार के द्वारा कोई उचित प्रतीकार न किए जाने पर हिंदुओं के लिये तीसरा ही मार्ग रह जायगा। क़ानून और व्यवस्था को मनुष्य अथवा समाज तभी तक मानने को तैयार होता है, जब तक प्राणों पर संकट नहीं उपस्थित होता। जब प्राणों पर बन आती है, तब सब कुछ भूल जाता है। प्रश्न आत्म-रक्षा का—अपने को ज़िंदा रखने का—है, इसलिये यदि यह चिनगारी दूर-दूर तक फैल जाय, तो कोई आश्चर्य नहीं। कारण, मुसलमान अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आ सकते। मुसलमानी इतिहास और भारत में मुसलमानों के आज तक के इतिहास साफ़-साफ़ बतला रहे हैं कि यह उनके स्वभाव की बात है। ज़ोर-ज़ुल्म दिखाकर वे हिंदुओं में कमज़ोरी पैदा कर देना चाहते हैं। उनका ख़याल वही पुराना औरंगज़ेबी का है। दूसरा प्रधान कारण उनके सामने राजनीतिक प्रतिनिधित्व का है। यह छछूँदर सरकार की छोड़ी हुई है। तीसरी बात यह है कि इस वक़्त कुछ मुसलमानी राज्यों के वैभव से भी उनको उत्साह मिल रहा है। मुसलमान भारत में अल्पसंख्या में होकर बहु-संख्यक जातियों पर शासन करने का विचार कर रहे हैं, यही इस समस्या का रूप है। अतएव वे बाज़ नहीं आ सकते। रही सरकार की बात, सो वह यह कब चाहेगी कि हिंदू-मुसलमानों की संयुक्त शक्ति दृढ़ होती जाय। फिर ख़ासकर सर मॉलकम हेली की सरकार। बात यह है कि ब्रिटिश सरकार इस वक़्त मुसलमानी राज्यों को मिलाए रखने की ज़रूरत महसूस करती है, और हिंदोस्तान के मुसलमानों के साथ, मुसलमानों द्वारा हिंदुओं पर ज़ुल्म किए जाने पर भी, वह कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहती, जो मुसलमान-भावना के विपरीत हो। ऐसी शह पाकर मुसलमानों का मिज़ाज रास्ते पर आवे, इसकी कोई वजह नहीं दिखाई देती। स्वामी श्रद्धानंद के क़त्ल के बाद क़ातिल की इतनी ऊँची अदालत तक पैरवी करना, फिर उसकी लाश को ज़बर्दस्ती छीनकर शहर में घुमाना आदि हमारी इस बात का काफ़ी प्रमाण हैं। अतएव सिवा इसके कि हिंदू-जाति अपनी रक्षा के लिये स्वयं सन्नद्ध हो, और कोई चारा नहीं दिखाई पड़ता।

हिंदू-समाज के नेता क्या कर रहे हैं, इसकी सूचना बहुत जल्द हिंदू-मात्र को हो जानी चाहिए। प्रश्न सार्वजनिक है—सामाजिक और समाज की रक्षा के लिये व्यक्तियों के बलिदान की चिंता नहीं की जाती, यह एक स्वीकृत सत्य है, जिसकी साक्षी इतिहास देता आ रहा है। हिंदू-समाज के सामने भी आज यही सवाल है—इस पार या उस पार!

× × ×

१४. अत्याचार का कारण

यह सब उत्तेजना फैलने का कारण यद्यपि वही है, जो हम ऊपर बतला चुके हैं। लेकिन कार्य के लिये कोई कारण तो बतलाना चाहिए। बस, एक बहाना मिल गया। कहते हैं, इस सारी दुर्घटना का कारण 'रँगीला रसूल'-संबंधी आंदोलन है। ख़ैर, इस मामले को हम आगे चलकर साफ़ करेंगे। यहाँ पूछना यह है कि 'रँगीला रसूल' के मामले के पहले जो घटनाएँ हुई हैं, उनका भी कारण यही था? आए दिन जहाँ-तहाँ जो दंगे, मार-पीट, ख़ून-ख़राबा हुआ करता है, उसका कारण क्या है? हम तो अपनी समझ में ऐसे कारणों को बनावटी समझते हैं। हमारी ध्रुव धारणा है कि असली चीज़ मुसलमानों की हिंदुओं के प्रति वही घृणित भावना है, जो मुद्दतों से चली आ रही है।

अब 'रँगीला रसूल' का मामला सुनिए। यह एक पुस्तक है, जो लाहौर के महाशय राजपाल द्वारा प्रकाशित की गई थी। इस पर मुक़द्दमा भी चला, और वह निर्दोष छूट भी गए। मगर तिल का ताड़ तैयार हो गया, जिसका फल सीमांत प्रदेश के हिंदू-भाइयों को मिल रहा है; क्योंकि वहाँ हिंदुओं की संख्या ऐसी ही है, जैसे दाल में नमक। इस पुस्तक में, कहते हैं, मुसलमानों के पैग़ंबर (रसूल) को गालियाँ दी गई हैं। उन्हें ऐयाश बतलाकर बदनाम किया गया है। यह दृष्टिकोण मुसलमानों का है, यद्यपि अदालत के न्यायाधीश ने इन इल्ज़ामात को ख़याली ठहराया है। अब कोई भी व्यक्ति मुसलमानों से यह जानना चाहेगा कि मान लिया कि उस पुस्तिका में ऐसा ही है (जिसको स्वीकार करना ब्रिटिश अदालत के न्याय को अमान्य कर देना है; फिर भी हमने थोड़ी देर के लिये ऐसा ही मान लिया है), तो इससे क्या हुआ? क्या जो बातें पुस्तक में हैं, वे इतिहास की नहीं? फिर चिढ़ने की कौन-सी बात है? लेकिन मुसलमान तो ख़ुद ही पहले धज्जी का साँप बनाकर दिखा चुके हैं। मुसलमान लेखकों ने हिंदू-धर्म पर कैसे-कैसे आक्षेप और कटाक्ष किए हैं—हिंदुओं के दिल को कैसी चोट पहुँचाई है—यह हम नीचे कुछ उदाहरण देकर सिद्ध करते हैं—

सन् १८५६ में (७० वर्ष पहले) 'तोहफ़तुल हिंद' नाम की एक पुस्तक छपी थी, जिसका अब तक प्रचार-कार्य जारी है। इसमें हिंदू-देवतों की निंदा दिल खोलकर की गई है। सन् १९१३ में जनाब मुहम्मद इसमाइल कोकनी ने 'रद्दे हिंद'-नामक पुस्तक छपवाई। इसमें हिंदू-देवी-देवतों को बड़ी फ़ोशकलामी के साथ गालियाँ दी गई हैं। एक उदाहरण लीजिए—

"तुम लोग ऐसे नाक़िसुल अक़्ली बेग़ैरत और बेशर्म राम को और ऐसी ऐबदार सीता को याद करके सीताराम बकते फिरते हो। दससुर रावन ने सीता को ले जाकर सात बरस तक उससे ऐश करके उसके सत को ख़ाक में मिला दिया।"

'तोहफ़तुल हिंद' से भी एक उदाहरण लीजिए—

"ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों बदमाश, दग़ाबाज़ और शहवतपरस्त मुअज़्ज़िज़ ऐसे थे कि एक औरत के जादू से लड़के बन गए।"

यह सब क्या है? क्या 'रँगीला रसूल'-जैसी पुस्तक के लिये उर्दू-लेखकों की इतनी पुरानी-पुरानी पुस्तकें रास्ता नहीं बतलातीं? आख़िर 'तेग़े फ़क़ीर व गर्दने फ़क़ीर', (लेखक, मौलवी मुहम्मदहुसैन), 'तसक़ीने मज़हब' (लेखक, अज़ीज़अहमद फ़तहपुरी), 'आर्यधर्म' (मिर्ज़ा क़ादियानी) 'नियोग का भोग' (अलीख़ाँ) और 'उन्नीसवीं सदी के महर्षि' आदि पुस्तकें क्या हिंदू क़ौम में यही जोश, वही ग़ैरत पैदा करने और यही जाँ-फ़िसानी दिखाने के लिये काफ़ी तौर से नहीं मजबूर करतीं? मगर क्या कोई भी मुसलमान यह कह सकता है कि हिंदुओं ने कभी और कहीं इस हद तक अपने ख़यालातों का इज़्हार किया। लेकिन जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, 'रँगीला रसूल' का तो ख़ाली बहाना है। बात असल यह है कि जाहिल मुसलमान हिंदुओं की बढ़ती हुई ताक़त का भय दिखाकर अपनी क़ौम के दूसरे जाहिल लोगों में नफ़रत के बीज बोते आ रहे हैं। इसी का यह सब नतीजा है। अफ़सोस यह है कि पढ़े-लिखे

मुसलमान नेता भी इन्हीं जाहिलों का साथ देने लगे हैं। यह देश के दुर्भाग्य का लक्षण है।

× × ×

१५. गोवध और बाजा

श्रीयुत श्रीनिवास ऐयंगर महोदय ने अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी के कलकत्ते के अधिवेशन में गोवध तथा बाजे के संबंध में जो प्रस्ताव पास कराया है, वह अत्यंत अनुचित तथा निंदनीय है। हिंदुओं को बाजे की स्वतंत्रता देकर उससे मुसलमानों की जो 'क्षति' होती है, उसकी 'पूर्ति' (Compensation) में, उन्हें हिंदुओं की आँख बचाकर जगह-जगह गो-हत्या करने की आज्ञा दे देना कितना न्याय-संगत है, यह विचारणीय है। बाजे का सवाल क्या इतना महत्त्वपूर्ण है, जितना गोहत्या का? गोहत्या क्या ऐसा उपेक्षणीय विषय है? मसजिद में बाजा बजने की बात को इतना महत्त्व देना, हमारी राय में, बहुत अनुचित है। यह कहना कि मसजिदों के सामने बाजा बजने पर मुसलमानों को बड़ी भारी क्षति उठानी पड़ेगी, अत्यंत मूर्खता है। गोहत्या के संबंध में मुसलमानों को इतनी स्वतंत्रता दे दी गई है, जितनी पहले कभी नहीं थी। इस प्रस्ताव के यह माने भी निकाले जा सकते हैं कि मुसलमान चाहें तो गया, मथुरा, वृंदावन आदि पवित्र स्थानों में भी, जहाँ आज तक गो-हत्या नहीं हुई है, हिंदुओं की आँख बचाकर गायों की क़ुर्बानी कर सकते हैं। देशी पत्रों ने जो बहुमत से इस अनिष्टकारी प्रस्ताव का विरोध किया, वह उचित ही है।

× × ×

१६. पंजाब-मुसलिम-लीग और विधायक कमीशन

वर्तमान शाही कमीशन का विरोध देश में प्रायः सर्वत्र हुआ है। मॉडरेट तथा लिबरल लोगों ने भी इसका तीव्र विरोध किया है। पर पंजाब-मुसलिम-लीग के सर मुहम्मद शफ़ी ने हाल की एक बैठक में इस कमीशन की सराहना की है, और देश के मुसलमानों से अपील की है कि वे उसके साथ सहयोग करें। इसका विशेष कारण उन्होंने यह बतलाया है कि हिंदू-महासभा तथा अन्य हिंदू-संस्थाओं ने जब इसका विरोध किया है, तो मुसलमानों के लिये यह अच्छा मौक़ा है कि वे इस कमीशन को हर तरह अपनावें। क्या ख़ूब! हिंदुओं को सरकार की नज़र में विशेष रूप से गिराकर अपनी प्रधानता स्थापित करने का यह अच्छा अवसर ताका गया है! हिंदुओं के साथ वैमनस्य होने के कारण मुसलमान उनके प्रति विद्वेष के आगे राष्ट्रीयता को भी कोई चीज़ नहीं समझते। सभी जानते हैं कि इस घातक कमीशन ने किसी संप्रदाय-विशेष का नहीं, वरन् सारे राष्ट्र का अपमान किया है। इस पर भी यदि मुसलमान, हिंदुओं को नीचा दिखाने की दुराशा से, इसका पक्ष करें, तो इस संबंध में क्या कहा जा सकता है! ख़ुदा ही ख़ैर करे। यह निश्चित है कि इतनी नीचता का आश्रय पकड़ने से मुसलमान कभी हिंदुओं को नहीं छका सकते। इससे उन्हीं का नुक़सान है। हमें आशा है, देश के श्रेष्ठ मुसलमान नेता लीग के इस निश्चय का विरोध करेंगे।

× × ×

१७. कुछ जानने योग्य बातें

१—पाँच वर्ष से अधिक अवस्थावाली स्त्रियों में औसत हिसाब से फ़ी हज़ार कितनी भारतीय स्त्रियाँ अपनी मातृ-भाषा में और कितनी स्त्रियाँ अँगरेज़ी में लिख-पढ़ सकती हैं, यह नीचे की सूची में दिखाया गया है—

प्रदेश या राज्य	मातृभाषा में	अँगरेज़ी में
आसाम	१४	१·१
बरोदा	४७	१·०
बंगाल	२१	२·३
बिहार-उड़ीसा	६	·५
बंबई	२७	३·७
बर्मा	११२	३·८
मध्य-प्रदेश	६	·६
कोचीन	११५	७·६
मदरास	२२	२·३
मैसूर	१०	३·३
ट्रावनकोर	१७३	५·८
आगरा-अवध	७	१·०

२—किस प्रदेश का घेरा कितने वर्ग-मील है, और उसकी आबादी कितनी है, यह नीचे दी गई सूची में देखिए—

ब्रिटिश-प्रदेश	वर्ग-मील	आबादी
बंगाल	७६,८४३	४,६६,९५,५३६
बिहार-उड़ीसा	८३,१६१	३,४०,०२,१८९
बंबई	१,२३,६२१	१,९३,४८,२१९

बर्मा	२,३३,७०७	१,३२,१२,१६२
मध्यप्रदेश और बरार	६६,८७६	१,३६,१२,७६०
मदरास	१,४२,२६०	४,२३,१८,६८५
पंजाब	६६,८४६	२,०६,८५,०२४
आगरा-अवध	१,०६,२६५	४,५३,७५,७८७

३—स्वास्थ्य-विभाग ने सन् १६२५ की सालाना रिपोर्ट छापी है। इस साल किस प्रदेश में फ़ी हज़ार कितनी पैदाइश हुई, कितनी मौतें हुईं और स्वाभाविक लोक-संख्या-वृद्धि किस हिसाब से हुई, यह नीचे देखिए—

प्रदेश	पैदाइश	मौत	स्वाभाविक जन-संख्या-वृद्धि
मध्य-प्रदेश	४३·६	२७·३	१६·६
पंजाब	४०·१	३०·०	१०·१
बिहार-उड़ीसा	३५·६	२३·७	११·६
बंबई	३४·७	२३·७	११·०
मदरास	३३·७	२४·४	६·३
आगरा-अवध	३२·७	२४·८	७·६
बंगाल	२६·६	२४·६	४·७
आसाम	२६·१	२२·५	६·६
उपसीमांत प्रदेश	२६·६	१६·८	७·१
बर्मा	२५·४	१८·७	६·६

४—सन् १६२४-२५ की निम्न-लिखित प्रधान प्रांतों की लोक-संख्या, सरकारी शिक्षा-व्यय और विद्यार्थियों से प्राप्त फ़ीस का हिसाब नीचे दिया जाता है—

प्रदेश	लोक-संख्या	सरकारी शिक्षा-व्यय	विद्यार्थियों से प्राप्त फ़ीस
बंबई	१,६३,४८,२१६	१,८४,४७,१६५	६०,१३,६६६
मदरास	४,२३,१८,६८५	१,७१,३८,५४८	८४,३२,६६१
युक्तप्रांत	४,५३,७५,७८७	१,७२,२८,४६०	४२,१४,३[illegible]
बंगाल	४,६६,६५,५३६	१,३३,८२,६६२	१,४६,३६,१[illegible]

(प्रवासी)

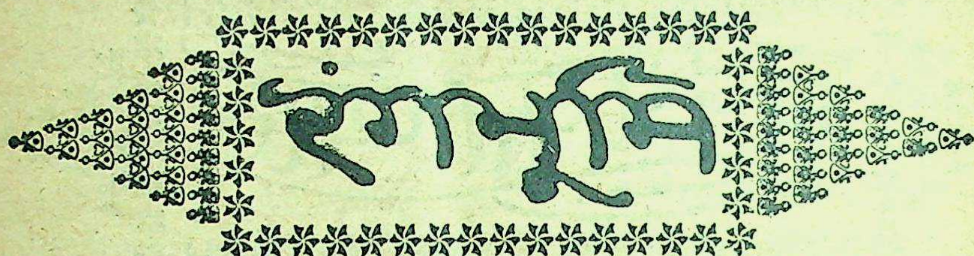
५—सेंट्रल हिंदू-कॉलेज के पोस्ट-ग्रेजुएट क्लास [illegible] निम्न-लिखित विषय पढ़ाए जाते हैं—संस्कृत, अँगरे[illegible] दर्शन, राष्ट्रीय अर्थनीति, राष्ट्रविज्ञान, इतिहास, पा[illegible] अरबी, फ़ारसी, हिंदी, प्राचीन भारत का इतिहास [illegible] सभ्यता, गणित, पदार्थ-विद्या, रसायन-शास्त्र, उद्भिद्-[illegible] जीव-विज्ञान और भूतत्त्व।

६—बेतार के तार से ख़बर भेजने के बारे में [illegible] उन्नति की जा रही है। योरप के देशों और अमेरिका [illegible] भी ख़ासी लागडाँट चल रही है। इन देशों में [illegible] लिया ने हाल में अच्छी सफलता और उन्नति करके [illegible] लाई है। इँगलैंड में डर्बी घुड़दौड़ बहुत प्रसिद्ध है। भि[illegible] भिन्न देशों के लोग प्रतिवर्ष इस दौड़ का फलाफल जा[illegible] के लिये अत्यंत उत्सुक रहते हैं। इस दौड़ के घोड़ों [illegible] करोड़ों रुपए की बाज़ी लग जाती है। अख़बार भी [illegible] दौड़ के फलाफल को सर्वप्रथम प्रकाशित करने की [illegible] में प्रतिस्पर्द्धिता रखते हैं। इस वर्ष 'काल ब्वाय' नाम [illegible] घोड़ा इस दौड़ में जीता है। यह ख़बर घोड़े के जीतने [illegible] ३ सेकिंड बाद ही संसार में पहुँचा दी गई। यह [illegible] बेतार के तार की करामात है। आस्ट्रेलियन प्रेस ए[illegible] सिएशन, आस्ट्रेलियन न्यूज़ पेपर्स केबल सर्विस, एक्स[illegible] टेलीग्राफ़ लिमिटेड कंपनी और आस्ट्रेलियन बीम्स स[illegible] नाम की चार संस्थाओं ने एक साथ मिलकर काम [illegible] जी० पी० ओ० की सहायता से इस ख़बर को सर्वत्र स[illegible] पहले पहुँचाया था।

(आर्थिक उन्नति)

साहित्य-संसार में युगांतर उपस्थित करनेवाला अभूतपूर्व मौलिक उपन्यास

हिंदी-उपन्यासों का चक्रचूड़ामणि



प्रेमचंदजी के अन्य उपन्यासों की तरह इस बृहत् उपन्यास में भी वर्तमान काल की सामाजिक दशाओं का स्वाभाविक चित्र अंकित किया गया है। सेवा-सदन में पतित जीवन की मीमांसा है। प्रेमाश्रम में सभ्य स्वार्थपरता की विवेचना की गई है। इस रंगभूमि में लेखक ने यह दिखलाने की सफल चेष्टा की है कि हम संसार में सुखी क्योंकर रह सकते हैं। इसमें राजनीतिक और औद्योगिक प्रसंगों का प्राधान्य है। कर्मक्षेत्र भी बहुत विस्तृत हो गया है। अब तक लेखक के किसी उपन्यास में ईसाइयों ने पदार्पण नहीं किया था। इसमें भारतवर्ष के तीनों प्रधान धर्मों का समावेश है। लेखक ने समाज के किसी अंग को नहीं छोड़ा—ग्रामीण भी हैं, पूँजीपति भी हैं, देश-सेवक भी हैं; सभी अपनी-अपनी महत्त्वाकांक्षा के साथ रंगभूमि में आते और अपना-अपना खेल दिखा चले जाते हैं। विद्वान्, धनी, अनुभवी, सभी श्रेणी के खिलाड़ी आपके सामने आते हैं, और सभी सुखी जीवन का रहस्य न जानने के कारण असफल होते हैं, सब ठोकर खाते और गिर पड़ते हैं, कर्तव्य से विचलित हो जाते हैं। केवल एक दीन, हीन, निर्बल, अंधा, दरिद्र प्राणी अंत तक आपको अपनी लीलाओं से मुग्ध करता रहता है, और जब उसकी लीला समाप्त हो जाती है, और वह रंगशाला से जाता है, तो आप मन में कह उठते हैं, यही सफल जीवन है, यही जीवन्मुक्त पुरुष है, यही निपुण खिलाड़ी है, यही जानता है कि जीवन-लीला का रहस्य क्या है। इसकी भाषा सरल और सरस है, वर्णन-शैली अत्यंत हृदयग्राहिणी है, भावव्यंजना बड़ी मर्मस्पर्शिनी है, और चरित्र-चित्रण, जो उपन्यास का सर्वप्रधान अंग माना गया है, इतनी सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है कि पढ़कर लेखक के मनोवैज्ञानिक अनुभव का क़ायल होना पड़ता है। इस बृहदाकार उपन्यास के दोनों भागों का मूल्य ५), सुंदर रेशमी जिल्दों का ६)

श्रीयुत बाबू शिवप्रसाद गुप्त—श्रीप्रेमचंदजी ने यह उपन्यास लिखकर हिंदी-भाषियों को एक उत्तम वस्तु भेंट की है। इस उपन्यास में असहयोग और सत्याग्रह का महत्त्व बड़ी उत्तमता से प्रतिपादित किया गया है।

श्रीयुत बाबू संपूर्णानंद बी० एस्-सी०, एल्० टी०—××× वस्तुतः यह पुस्तक प्रेमचंदजी की और पुस्तकों से बहुत अच्छी है।

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ

मनोविज्ञान का एक अद्वितीय उपन्यास

पवित्र पापी

(सुप्रसिद्ध रूसी उपन्यास-लेखक डॉस्टॉय फ़्रिस्की के लोक-प्रिय उपन्यास Crime and Punishment का हिंदी-अनुवाद)

[अनुवादक—पं० व्रजकृष्ण गुर्टू बी० ए०, एल्-एल्० बी० और कविराज विद्याधर विद्यालंकार]

जिज्ञासु ज्ञान-पिपासा शांत करने को क्या नहीं कर सकता, हत्यारे के सिर पर हत्या किस प्रकार सवार होकर बोलती है, पुलिस की तहक़ीक़ात में सत्य की मात्रा कितनी होती है, सशंक मनुष्य कौन-सा अनर्थ ऐसा है, जो नहीं कर सकता—आदि बातें ऐसी सुंदर, सरल और मनोरंजक भाषा में लिखी गई हैं कि उपन्यास पढ़ते ही बनता है। रूस की दरिद्रता, वहाँ की राजनीतिक अवस्था, पुलिस की तहक़ीक़ात का ढंग, साइबेरिया के जेल की दशा, शराबख़ाने का दृश्य, सची मित्रता का अनुपम चित्र और स्वार्थी मनुष्य का प्रेम देखते ही बनता है। एक वार पुस्तक खोलिए, फिर विना समाप्त किए पुस्तक रखने की इच्छा ही नहीं होती। अपने ढंग के इस नए और निराले ५५० पृष्ठ के सचित्र उपन्यास का मूल्य ३)

मिलने का पता—

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

हिंदी-साहित्य के उपन्यास-जगत् के सर्वांग-सुंदर शृंगार

बहता हुआ फूल

(द्वितीय सचित्र संस्करण)

[अनुवादक—'सुधा'-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय]

बंग-भाषा के लेखकों में श्रीयुत बाबू चारुचंद्र वंद्योपाध्याय का नाम ख़ूब प्रसिद्ध है। आपने बँगला में कई उपन्यास लिखे हैं। यह उपन्यास उन्हीं के "स्रोतेर फूल" नाम के सर्वोत्तम, शिक्षा-प्रद, नीति-गर्भित, सामाजिक उपन्यास का हिंदी-अनुवाद है। अनुवाद सरल, सरस, सुबोध और साधारण बोलचाल की भाषा में किया गया है, अतः सर्वसाधारण इसे विना कष्ट के समझ सकते हैं। चरित्र-चित्रण जिस सुंदरता के साथ किया गया है, उसे देखकर आप मुग्ध हुए विना नहीं रह सकेंगे। बँगला मुहाविरों को शुद्ध हिंदी-भावों में परिणत करने में जो कमाल दिखलाया गया है, वह सोने में सुगंध का काम हो गया है। पुस्तक के अंदर शिक्षा कूट-कूटकर भरी है। उपन्यास इतना रोचक और उपदेश-प्रद है कि एक बार हाथ में लेने पर, पुनः समाप्त किए विना छोड़ने को जी नहीं चाहता। पाठक इसे पढ़ते-पढ़ते इसमें ऐसे डूब जायँगे कि खाना-पीना भी भूल जायँगे। यदि आपको उपन्यास पढ़ने का कुछ भी शौक़ हो, तो सब उपन्यास छोड़कर सबसे पहले इसे पढ़िए और अपनी गृहस्थी सोने की बनाइए। लगभग ५०० पृष्ठ के इतने बड़े पोथे का मूल्य केवल २।।), सुंदर सुनहरी रंगीन रेशमी जिल्द ३)

विजया

[अनुवादक—'सुधा'-संपादक पंडित रूपनारायण पांडेय कविरत्न]

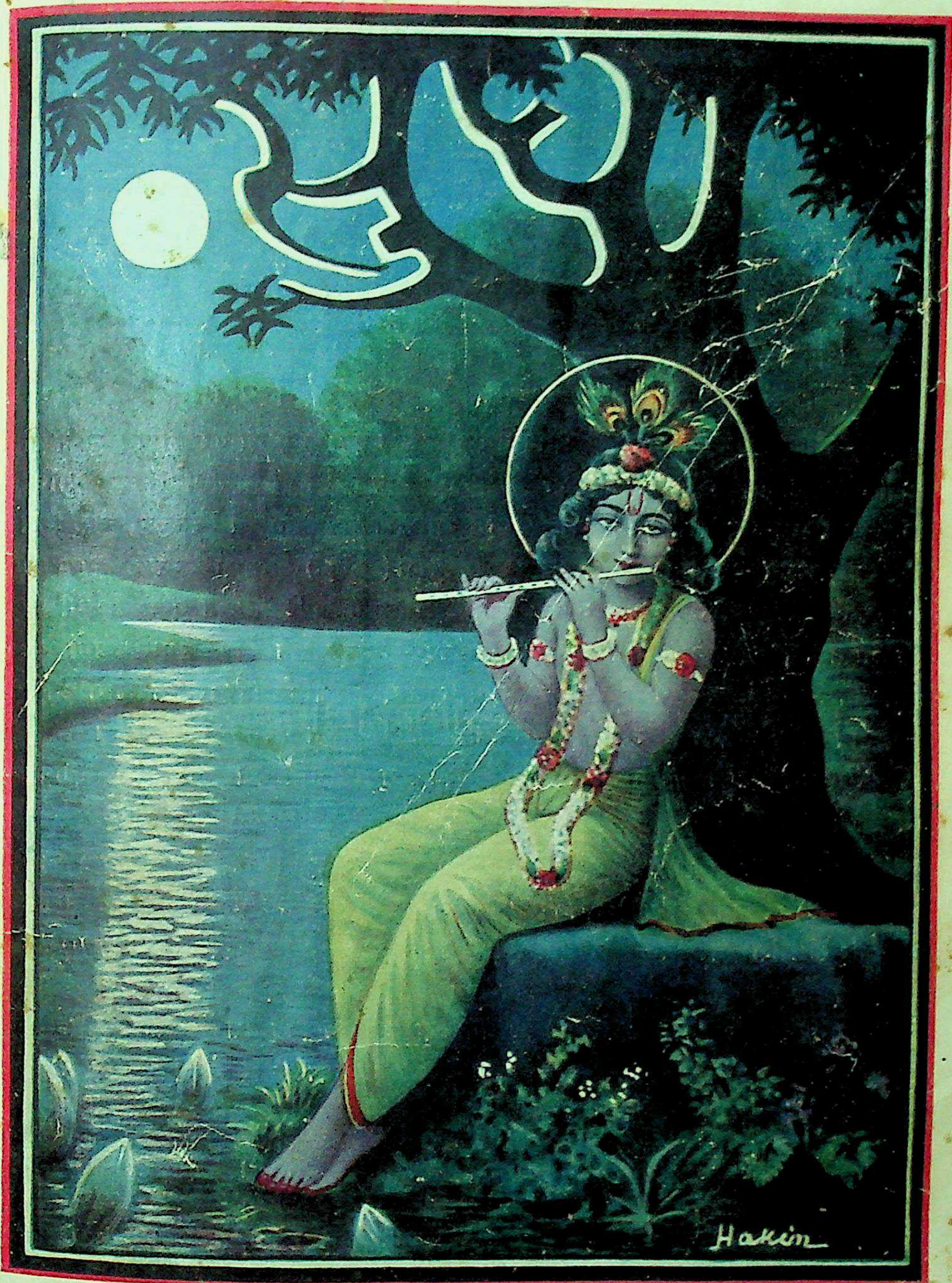
पांडेयजी बँगला के कैसे सिद्धहस्त अनुवादक हैं, यह हिंदी-संसार पर भली भाँति विदित है। आपका अनुवाद मौलिकता से मंडित और स्वाभाविकता से सुसज्जित होता है। इस उपन्यास में सामाजिक चरित्र-चित्रण इतनी बारीकी और सुंदरता से किया गया है कि कहीं पढ़ते-पढ़ते करुणा और सहानुभूति से हृदय पिघल जाता है, और कहीं घटना की वास्तविकता से प्रभावान्वित होकर आठ-आठ आँसू बहाने पड़ते हैं। वर्णन का क्रम बड़ा मधुर और चित्ताकर्षक है। भाषा ललित और ओजस्विनी है। ६-७ रंगीन और सादे चित्र भी दिए गए हैं। मूल्य १।।) सजिल्द २)

सब प्रकार की उत्तमोत्तम पुस्तकें मिलने का पता—

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय,

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

वर्ष २ ; खंड १] पौष, [illegible] तु० सं० [संख्या ६ ; पूर्ण संख्या १८



संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
श्रीरूपनारायण पांडेय
श्रीनंदकिशोर तिवारी

वार्षिक मूल्य ६॥)
छमाही मूल्य ३॥)

राजसंस्करण ११)
एक प्रति का ॥=)

हज़ारों प्रशंसा-पत्र प्राप्त ! हज़ारों प्रशंसा-पत्र प्राप्त !!

सर्वप्रकार की कमज़ोरियों को दूर करनेवाली, आयुर्वेद-महर्षियों से प्रशंसित हिमालय-पर्वत की रामबाण दिव्य औषधि—

शुद्ध शिलाजीत

शिलाजतूष्णं कटुकं योगवाहि रसायनम् । छर्दिप्रमेहवातार्शःकुष्ठयोदर-
पाण्डुता । हन्ति श्वासक्षयोन्मादरक्तशोथकफक्रमीन् ।

शिलाजीत का और औषधियों में भी प्रयोग होता है । वृद्धावस्था को दूर करके मनुष्य को पुनः तरुण करता है और तरुण को पुरुषार्थी बनाता है । यह सब प्रकार के प्रमेह, वातव्याधि, अंग दुखना, हाथ-पाँव में दर्द होना आदि समस्त रोगों को दूर करता है । श्वेतकुष्ठ, गलितकुष्ठ (रक्तपित्त), दद्रु (गजकर्ण) आदि सब प्रकार के कुष्ठ (कोढ़) का नाश करता है । मुख की दुर्गंध, दाँतों से खून बहना, मसूड़ा सूजना, दाँतों का हिलना आदि समस्त मुख के रोगों का नाश करता है । पेट दुखना, अग्निमांद्य आदि उदर-रोग दूर होते हैं । समस्त अंगों की पीड़ा, श्वास-व्याधि, क्षयरोग, उन्माद, रक्त-रोग, सूजन, कफजनित विकार, कृमीरोग आदि अच्छे होते हैं । हम बड़े परिश्रम से इस महौषधि को हिमालय पर्वत से लाए हैं । इसके लिये हमारे पास हज़ारों प्रशंसा-पत्र आए हैं । प्रत्येक गृहस्थ तथा वैद्यों को हमसे मँगाकर लाभ उठाना चाहिए ।

इसके आश्चर्यभरे गुणों को देखकर लोग दाँतों में उँगली देने लगते हैं, इसके कुछ काल ही सेवन करने से वीर्य का पतलापन, सुस्ती, कमज़ोरी, मूत्र के साथ धातु का गिरना, पेशाब में जलन सुर्खी, शिर घूमना, पीड़ा होना, नपुंसकता, नाताक़ती, कमरदर्द, थकावट, भूख न लगना, उदास रहना, मन मलीन, बातों का भूलना, बदहज़मी आदि समस्त रोग जड़ से नष्ट होते हैं । नया वीर्य उत्पन्न होता है, उत्तम संतान, शरीर में बल, दिमाग़ में ताक़त, आँखों में रोशनी, बदन में फुर्ती, स्मरणशक्ति बढ़ती और चेहरे पर रौनक़ आती है । चार भाषाओं में छपी सेवनविधि साथ भेजते हैं ।

मूल्य	५	तोला	२।)	डाक-व्यय	।-)
,,	१०	,,	४।)	,,	।-)
,,	२०	,,	८)	,,	।-)
,,	४०	,,	१५।)	,,	॥)
,,	८०	,,	३०)	,,	१)

मँगाने का पता—प्रोप्राइटर हिमालय डिपो, मुरादाबाद (यू० पी०)

"अमेरिकन स्त्री-शिक्षा"

उपयोगी पुस्तक

पुस्तक में क्या है और वह कैसी है ?

विषय-सूची पढ़कर देख लीजिए। हमारे बताने की ज़रूरत नहीं है।

३२७ पृष्ठ
विलायती पुट्ठे की पक्की जिल्द
मूल्य १।)
डाकख़र्च ।=)

विषय-सूची

पति का आदर, आकर्षक सौंदर्य, साधारण स्त्री, विवाह से लाभ, ईर्षा, लक्ष्य स्थिर करो, महमानों का खाया घर, स्त्री का बिगाड़ना, गृहस्थ के झगड़ों से भागना, भयानक वैरी, बेटियो कुछ काम सीखो, पति त्याग करने का मुक़दमा, इच्छित पुरुष से विवाह करना, क्या तुम अकेला रहना पसंद करती हो, जवानी क़ायम रखना, निंदक ही रक्षक है, मज़दूरिन स्त्री, घरेलू लड़ाई, क्या अपनी पाप कहानी कह दें, घर में कामों से उकताना, शादी करूँ या नहीं, स्त्री का सबसे अच्छा गुण, बुड्ढों के आश्रय रहना, क्या तुम अपनी लड़की के योग्य पिता हो, बच्चों की सदाचार शक्ति, सास का सत्कार, घरवालों से निरादर क्यों प्राप्त होता है, अपने जीवन की बुराई-भलाई अपने हाथ है, पतिहीन स्त्री, मार्था ठीक है कि मैरी, घरवाले को उजड्डता, विवाह की अद्भुत बातें, पति का ज्ञान, परामर्श शक्ति, स्त्रियों के लिये परोपकार वृत्ति, अच्छा पति, बच्चों को सुख पहुँचाओ, अपने बच्चों की सेवा करो, पति सर्वदा अच्छा है, अच्छी स्त्री कैसी हो, बनावटी बीमार, स्वार्थी बनाना, आत्मसंयम, बुड्ढे बाप की जवान बेटी, स्त्री क्यों प्यार नहीं करती, विवाहित पुरुष का आकर्षण, इस बात को भूल जाओ, खोया हुआ प्रेम, धूमधाम की शादी, बच्चों के लिये मा-बाप की मृत्यु, सुख के दाम, आदर्श-माता, अच्छी स्त्री कैसे प्राप्त होती है, भयानक युवती, प्रेम के लक्षण, विवाह से शिक्षा, स्त्रियों में विशेष व्यौपारिक बुद्धि, पुराने के बदले नया आदर्श, पति-विच्छेद का कारण, बच्चों का विचार करो, घर चलाने का ढंग, पिता का प्रभाव, ग़रीब बच्चों का धन, घर का मालिक पति है, मित्र भक्षक मित्र, सुख का मार्ग, बुढ़ापे की तैयारी।

मिलने का पता

सुख संचारक कंपनी

आ गया !

नई घड़ियों का जहाज़

सस्ता ! सस्ता !! बेहद सस्ता !!! कमाल का सस्ता !!!!

३।।।) रु० में हरएक रिस्टवाच घड़ी, गारंटी ५ वर्ष; ११।।) रु०, दीवार-घड़ी घंटा आध दोनों बजाती हैं, गारंटी १० वर्ष; १।।।) रु० में पाकिट वाच, सेकंड सुईवाली २।) रु०, रेडियम २।।।) रु०, गारंटी ५ वर्ष

देखिए

लोग क्या लिखते हैं ।

ता० १७-१२-१६२८

महाशय !

आपकी भेजी हुई तीन घड़ी मिलीं । पसंद हैं और समय ठीक बताती हैं । इन घड़ियों को देखकर बहुत लोगों को लेने की इच्छा हुई है । अब आप १८ घड़ी बी० पी० से और भेज दें ।

मिस्टर सामतख़ाँ

रेलवे जं० कोटा

और देखिए

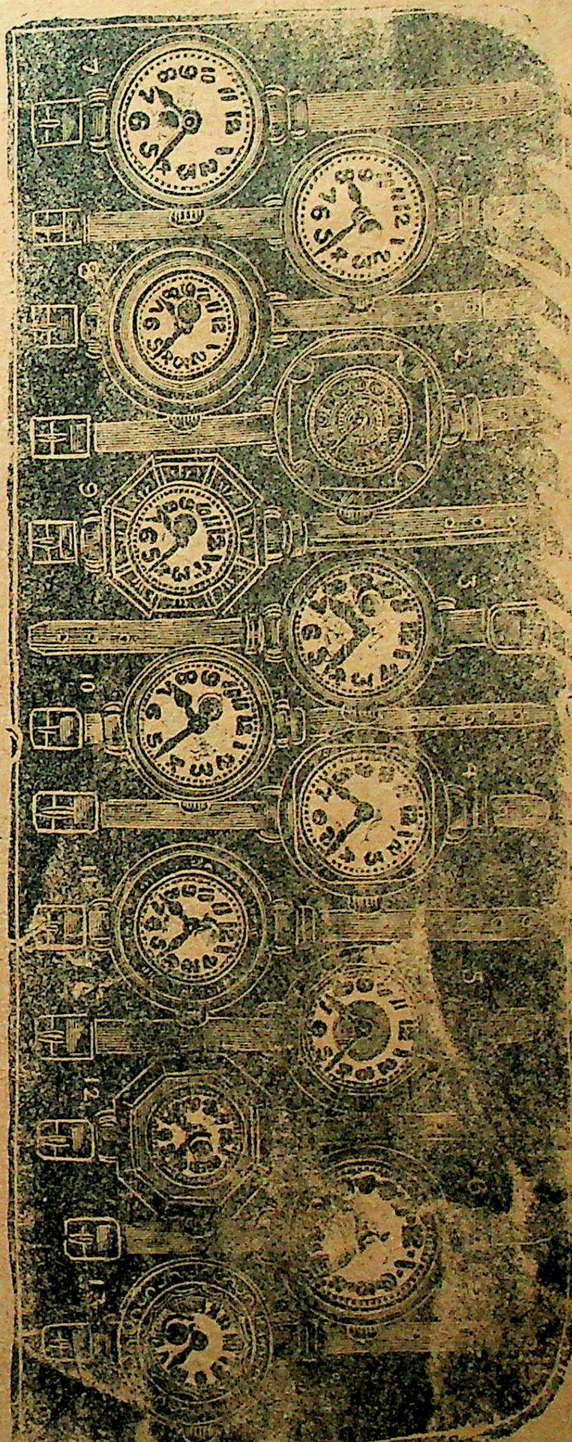
मैनेजर साहब !

आपकी भेजी हुई घड़ी मिली । मैं प्रसन्नता से कहता हूँ कि यह आपकी घड़ी बहुत बढ़िया, सुंदर एवं मज़बूत तथा साथ ही सस्ती भी है । आपको धन्यवाद है ।

भवदीय

बी० जोशी खेडेल

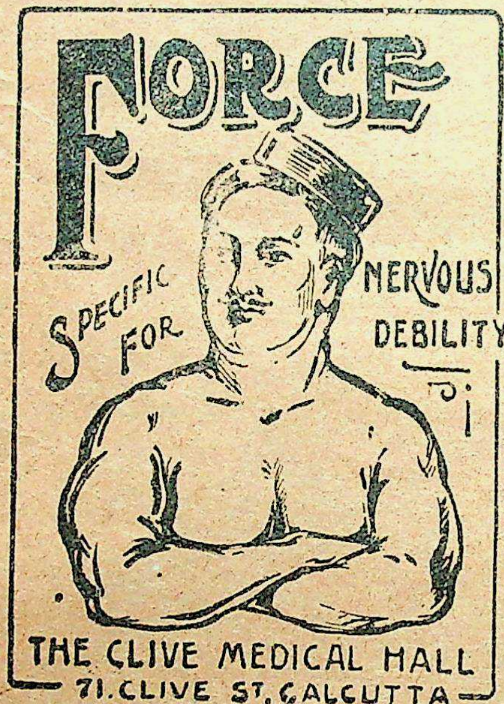
विशारद, काव्य, साहित्य नोमदी का धोन



जहाज़ का आधा माल कलकत्ते के ही थोक ग्राहकों में बात-की-बात में फुर-फुर हो गया । बाहर के खुदरा और थोक ग्राहक भी जल्दी करें, वरना ऐसी सस्ती, बढ़िया और मज़बूत घड़ियाँ जिनकी क़ीमत आज दिन बाज़ार में हरएक कंपनी के यहाँ ६।।) से कम नहीं है लेकिन हमारे यहाँ अब की बार विलायत से बहुत ही सस्ती, अत्यंत सुंदर, मज़बूती में एक नंबर, काट-छाट में निराली, वाह क्या ही शानदार घड़ी है कि देखते ही आँखें चकाचौंक में पड़ जाती हैं । हम कहाँ तक तारीफ़ करें । बस यही समझिए कि दस-पाँच रुपए तो इनकी न्योछावर के होते हैं । एक घड़ी मँगाकर तो देखिए । आपकी आँखें ख़ुद ही कह देंगी कि यह ३।।।) की घड़ी ढाई सौ रुपए-वाली घड़ी के कान काटती है । माल प्रायः ख़तम-सा हो चला है । जो ग्राहक जल्दी करेंगे, वही पावेंगे चूकनेवालों को दूसरे जहाज़ का इंतज़ार करना पड़ेगा । दीवाल-घड़ी मँगानेवाले चौथाई दाम पेशगी भेजें और स्टेशन का नाम लिखें ।

फ़ोर्स

स्वाभाविक दुर्बलता के लिये रामबाण दवा



विद्यार्थी-जीवन में विद्यार्थियों का बंधु!

बुड्ढा आदमी भी इससे नौजवानों की तरह हो जाता है।

"फ़ोर्स" शरीर में ताक़त पहुँचाता है।

स्नायुओं तथा पट्ठों को मज़बूत बनाता है।

आंखों का ज्योति और मानसिक योग्यता बढ़ाता है।

नष्ट स्मरण-शक्ति और पुरुषार्थ को पुनः प्राप्त करा देता है, धारणा-शक्ति बढ़ाता है, विशुद्ध रक्त का संचार करता है। स्त्रियों के सभी आंतरिक दोष—गर्भाशय आदि संबंधी "फ़ोर्स" से दूर होते हैं।

क़ीमत फ़ी बक्स २)
दर्ज़न २०), डाकख़र्च अलग।

थोक ख़रीदारों के लिये ख़ास रेट।
बड़ा सचित्र सूचीपत्र मुफ़्त

दि क्लाइव मेडिकल हाल

[औषधि तैयार करनेवाले, बेचनेवाले तथा इत्रसाज़]

हेड आफ़िस—७१, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता।

टेलीफ़ोन—१७५ फैज़०] कारख़ाना—सलाकया, हावड़ा। [तार—"Debeur.s" कलकत्ता।

लूटो ! लूटो !! ६१ इनाम लूटो !!!

दौलत का खून ! सिर्फ़ नाम के लिये

३॥।≡) दर्जन दाद की दवा पर ६१ बहुमूल्य वस्तुएँ इनाम !

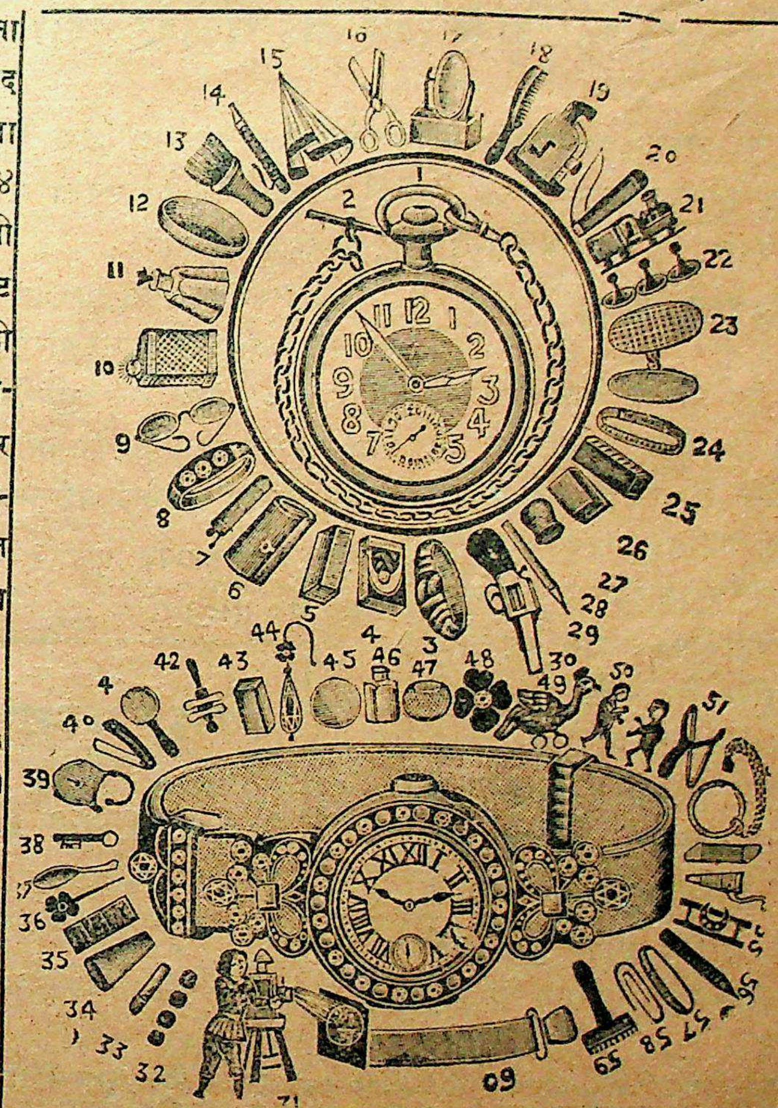
फ़ैशनेबिल "ट्वाय" रिस्टवाच और पाकेटवाच भी इनाम में ही शामिल हैं !!

☞ इनाम की चीज़ों को देखते ही दिल फड़क उठेगा।

कैसा ही नया पुराना ख़राब-से-ख़राब दाद क्यों न हो इस दवा के लगाते ही २४ घंटे में विना किसी कष्ट के जड़ से मिट जाता है। दाद की १२ डिबियों की क़ीमत ३॥।≡) है और साथ में नीचे की बहुमूल्य ६१ चीज़ें मुफ़्त इनाम में दाद की दवा के साथ भेजी जाती हैं।

इनाम की चीज़ें—

१ ट्वाय पाकेटवाच २ घड़ी की चैन। ३ अँगूठी ४ बढ़िया तास। ५ भुनभुना। ६ सूत का गट्ठा। ७ सुंदर सुइज बंडल। ८ नगीनेवाली अँगूठी। ९ बहुत बढ़िया चश्मा। १० ख़ूबसूरत जलछबी। ११ बढ़िया इत्र की शीशी।



१२ ख़ुशबूदार साबुन १३ बहुत बढ़िया ब्रुश १४ फ़ाउंटेन पेन १५ ख़ूबसूरत रूमाल १६ बहुत बढ़िया कैंची १७ ख़ूबसूरत शीशी १८ सुंदर कंघा। १ सुंदर खिलौना। २ ख़ूबसूरत चाकू। २ सुंदर विचित्र शीशा २२ सुंदर बटाम २३ बहुत बढ़िया क के बटाम। २४ ख़ू सुरत बाजी। २५ बहु बढ़िया पियानो जरम हारमोनियम। २६ बा उड़ाने का साबुन। २ बढ़िया शीशे की दवात २८ सुंदर पेंसिल क्लिप २९ ख़ूबसूरत पेंसिल ३० बढ़िया पिस्तौल ३१ पचास तमासावा बायसकोप। ३२ बहु बढ़िया रबड़ की गेंद। ३ ख़ूबसूरत बाँसुरी। ३ बढ़िया जर्मनी सीटी ३५ ख़ूबसूरत मनीबेग ३६ सुंदर सिर में लग का काँटा। ३७ ख़ूबसू चम्मच। ३८ चाभी

३९ मज़बूत ताला। ४० सुंदर चिमटी। ४१ दूध या चाय छानने का यंत्र। ४२ कान से मैल निकालने का यंत्र। ४३ ख़ूबसूरत घुँघरू। ४४ ख़ूबसूरत इयर रिंग। ४५ गोली। ४६ ख़ुशबूदार तेल की शीशी। ४७ सुंदर तमाशे की गेंद। ४८ ख़ूबसूरत नाक का फूल। ४९ आटोमेटिक सुंदर बत्तक। ५० मसख़रा। ५१ विचित्र झिमी। ५२ चाभी का रींग। ५३ दाँत से मैल निकालने का यंत्र। ५४ फ़ौंटेनपेन की क्लिप। ५५ छाती पर लगाने का सेफ्टीपेन। ५६ नीब। ५७ ऐंठदार सुंदर छल्ला। ५८ पेपर क्लिप। ५९ हजामत बनाने का सेफ़्टीरेज़र। ६० सुंदर फ़ीता। ६१ बढ़िया 'ट्वाय' रिस्टवाच।

नोट—जिनका आर्डर ३० इनामी चीज़ों का आ चुका है, उनको भी इनाम में ६१ ही चीज़ें भेजी जायँगी।

अभय हो! अभय हो!! अभय हो!



प्राणसंजीवनी—सब प्रकारके ज्वरको एक दिनमें आराम करनेवाला और अनेक प्रकारके रोगोंको निर्मूल करके ताकत पैदा करनेवाला रामबाण महौषध है। दाम बड़ी शीशी १) रु० छोटी शीशी ।।) आने। डा० मा० १ से ३ शीशी तक ।।=) दश आने है।



बिच्छूकी दवा—इस दवासे बिच्छूका विष तुरंत दूर होता है। रोता हुआ आदमी हसने लगता है। दाम १ एक पैकेटका ।।) आने। डाकमहसूल १ से ३ बक्स तक ≡) आने। ४) चार रुपये भेजनेसे १२ बारह पैकेट भेजा जाता है। डा: म: माफ।



धातुपुष्टकी गोलियां:—(बलवान बटी) यथा नाम तथा गुण—इन गोलियोंके खानेसे दुबला, पतला, कमजोर आदमियोंको भूख खूब लगती है, भोजन पचता है, खून, मांस आदि सातो धातुयें जल्दी २ पैदा होकर शरीरमें बल बढ़ाने लगता है और ८ दिनमें मनुष्य हृष्ट पुष्ट और बलवान हो जाता है। ८ आठ दिनके वास्ते ८ आठ मात्राका दाम १।) रु० डा० मा० १ से ३ शीशी तक ।=) आने।

अबला संजीवनी—(स्त्रियोंका जीवन सुधार)—इसके सेवनसे स्त्रियोंके मासिक धर्म रुक जाना, ठीक समय पर न होना, पेड़ू कमर, सिर दर्द करना, ज्वरांशका रहना, भोजनमें अरुची, गांठदार तथा काला खून गिरना और बिगरे हुए मासिक धर्म को शुद्ध कर सन्तान लाभके लिये एक मात्र दवा है, दाम प्रति शी० २।) रु० डाकमहसूल १ से ३ शीशी तक ।।=) दश आने।



सफेद कुष्ट—हमारे आफिससे आने से एक छोटा सफेद दाग़ मुफ्तमें आराम कर दिया जाता है, ।) भेजनेसे नमूने की दवा मुफ्त भेजी जाती है। छोटी शीशीका दाम २) रुपये। बड़ी शीशीका दाम ३) रुपये। डाकमहसूल १ से ३ शीशी ।=) आने। गलित कुष्टके रोगी भी पत्र द्वारा आराम किये जाते हैं।

दाद और खुजलीकी दवा—इस दवाके लगानेसे दाद (दिनाय) खाज, खुजली तर खुजली तथा अठारहों प्रकारके चर्मरोगका २४ घंटेके भितर जड़से आराम करता है। दाम १ शीशीका १।) डाकमहसूल १ से ३ शीशी तक ।=) आने।

राजवैद्य श्रीबामनदासजी कविराज,

हेड आफिस—नं० १५२, हरिसन रोड, बड़ाबाजार, कलकत्ता।

तार भेजनेका पता—"राजवैद्य" कलकत्ता।

नोट—इनमेंसे कोई भी दवा मंगानेसे १९२९ सालका कैलेण्डर मुफ्त भेजा जाता है। थोक खरिददारको पूरी कमीशन दीजाती हैं। सूचीपत्र और नियम मुफ्त मंगा देखिये।

२०१ चीज़ें मुफ्त इनाम लीजिए

३ घड़ियाँ और चित्र की सारी चीज़ें मुफ़्त इनाम !!

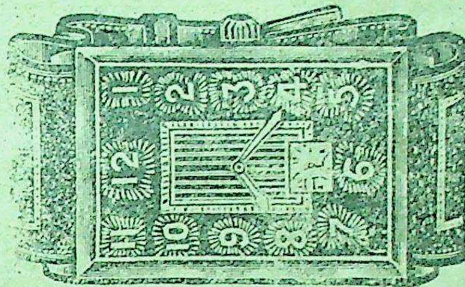
सच्चा टाइम बतानेवाली ऊपर या बीच की रिस्टवाच या पाकेटवाच गारंटी सहित मुफ़्त इनाम !

फ़ैशनेबल ट्वाय रिस्टवाच, गुड ट्वाय पाकेटवाच, दोनों घड़ी यह भी इनाम । १४४ जलछवी भी इनाम !!!

ख़ुशबूदार ओटो मोमेना की ६ शीशी मुफ़्त में यह भी इनाम !

गारंटी सहित घड़ी इनाम । संसार में पहली और नई बात है ।

रिस्टवाच गारंटी ७ वर्ष



पाकेटवाच गारंटी २ वर्ष

इश्तहार छपने न पाया । हज़ारों माँगें कंपनी में पहुँच गईं ।

रूहे अंबरी

नया ईजाद हज़ारों क़िस्म के ख़ुशबूदार ताज़े चुने हुए फूलों का सार यानी हज़ारों तरह की रूहों का सचा है । एक फोहा लगाते ही मीठी सुगंध महककर दिल को मस्ताना बना देती है । एक फोहे की ख़ुशबू १० दिन तक रहती है । एक शीशी ! क़ीमत २॥) की मँगाने से

ऊपर के सब इनाम तरह-तरह के और भी इनाम मिलाकर पूरे २०१ इनाम दिए जावेंगे । जो ग्राहक इस मशहूर और बढ़िया घड़ी को गारंटी सहित मुफ़्त लेना चाहें, तो जल्दी ऑर्डर दें, तभी इस इनाम को भी पा सकेंगे । देर करनेवालों को पछताना ही हाथ लगेगा । गारंटी के भीतर घड़ी मरम्मत करने की कंपनी ज़िम्मेदार रहेगी ।

नोट—इस विज्ञापन को झूठा प्रमाणित करनेवाले सज्जन को ५०) रु० नक़द इनाम ।

माल मँगाने का पता—मरोली ट्रेडिंग कंपनी हाट खोला, कलकत्ता ।

लेख-सूची

चित्र-सूची

ऑर्डर-फ़ार्म

व्यवस्थापक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

प्रिय महाशय,

सुधा के ग्राहकों के साथ की जानेवाली भारी रियायत की सूचना मैंने पढ़ ली है। मुझे पीठ पर छपी हुई पुस्तकों में से बिना कटी हुई पुस्तकें पसंद हैं। कृपया उन्हें वी॰ पी॰ / रेल-पार्सल द्वारा शीघ्र ही पौने मूल्य में भेज दीजिए। मैं सुधा का पुराना / नया ग्राहक हूँ। मेरा ग्राहक-नम्बर ______ है / वार्षिक मूल्य ६॥) भी वी॰ पी॰ के साथ वसूल कर लीजिए।

भवदीय

तारीख़ । । १९२९

पूरा नाम

स्थान या पता पोस्ट

ज़िला रेलवे स्टेशन

नोट—(१) पता-ठिकाना बहुत साफ़ लिखिए। (२) पुस्तकों के नाम और मूल्य पीछे लिखे हैं। जिन पुस्तकों को मँगाना हो, उन्हें छोड़कर बाक़ी पुस्तकों के नाम साफ़-साफ़ काट दीजिए। (३) रेलवे-पार्सल से पुस्तकें मँगाते समय चौथाई मूल्य पेशगी भेजना चाहिए।

हमारे यहाँ की उत्कृष्ट उत्तमोत्तम और सचित्र पुस्तकें

१. उपन्यास

- अबला (सचित्र) १)
- जब सूर्योदय होगा (सचित्र) १)
- हृदय की प्यास (सचित्र) १॥)
- रंगभूमि (दो भाग) ५)
- विजया (सचित्र) १॥)
- बहता हुआ फूल (सचित्र) २॥)
- पवित्र पापी (सचित्र) ३)
- विचित्र योगी १)
- संसार-रहस्य १॥)
- सीधे पंडित १॥)
- कर्मफल (सचित्र) १॥।)
- पतन (सचित्र) १॥।)
- विदा (सचित्र) २॥)
- जुझार तेजा (सचित्र) ॥)
- सौ अजान और एक सुजान १)

२. गल्प और कहानियाँ

- चित्रशाला (सचित्र) २)
- अद्भुत आलाप १)
- नंदन-निकुंज ॥=)
- अश्रुपात (सचित्र) १)
- जासूस की डाली (सचित्र) १॥)
- नाट्यकथाऽमृत (सचित्र) १)
- प्रेम-गंगा (सचित्र) १)
- प्रेम-प्रसून १=)
- प्रेम-द्वादशी (सचित्र) १)
- मंजरी (सचित्र) १।
- तूलिका (सचित्र) १)

३. नाटक

- कर्बला १॥)
- कीचक १)
- कृष्णाकुमारी (सचित्र) १॥)
- खाँजहाँ (सचित्र) १=)
- जयद्रथ-वध ॥=)
- बुद्ध-चरित्र (सचित्र) ॥)
- वेणी-संहार ॥=)
- वरमाला (सचित्र) ॥)
- पतिव्रता (सचित्र) १=)
- पूर्वभारत ॥=)

४. व्यंग्य, हास्य और प्रहसन

- अचलायतन ॥)
- ईश्वरीय न्याय ॥)
- मूर्ख-मंडली ॥=)
- मिस्टर व्यास की कथा २॥)
- रायबहादुर ॥)
- लवड़धोंधों ॥=)
- विवाह-विज्ञापन (सचित्र) १)

५. काव्य

- पराग (सचित्र) ॥)
- भारत-गीत ॥=)
- मानस-मुक्तावली ॥=)
- रति-रानी १॥)
- पूर्ण संग्रह १॥)

६. गद्य-साहित्य

- निबंध-निचय १)
- विश्व-साहित्य १)
- साहित्य-सुमन ॥=)
- सौंदरनंद-महाकाव्य ॥)
- हिंदी ॥=)
- साहित्य-संदर्भ १॥)
- संभाषण ।)

७. समालोचनाएँ

- देव और बिहारी १॥)
- भवभूति (सचित्र) ॥=)
- हिंदी-नवरत्न (सचित्र) ४॥)

८. जीवन-चरित्र

- केशवचंद्रसेन १)
- कारनेगी और उनके विचार ॥=)
- सम्राट् चंद्रगुप्त ।)
- प्राचीन पंडित और कवि ॥=)
- बंकिमचंद्र चटर्जी १)
- सुकवि-संकीर्तन (सचित्र) १)
- द्विजेंद्रलालराय १)

९. इतिहास

- इँगलैंड का इतिहास (तीन भाग, सचित्र) ३॥)
- जापान का इतिहास ॥=)

१०. अर्थशास्त्र और व्यापार

- भारतीय अर्थशास्त्र (दो भाग) २॥)
- विदेशी विनिमय १)

११. कृषि

- उद्यान (सचित्र) १=)
- किसानों की कामधेनु ।=)
- कृषिमित्र ।-)

१२. स्वास्थ्य और चिकित्सा

- तात्कालिक चिकित्सा १)
- संक्षिप्त शरीर-विज्ञान ।=)
- संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा ॥=)

१३. वैज्ञानिक

- भूकंप (सचित्र) ॥=)
- मनोविज्ञान ॥)

१४. नवयुवकोपयोगी

- किशोरावस्था (सचित्र) ॥=)
- जीवन का सद्व्यय १)
- हिंदू-जीवन का रहस्य ॥=)
- नीतिरत्नमाला ।)
- मुक्ति-मंदिर ॥=)

१५. योग

- प्राणायाम ॥=)
- कर्मयोग ॥)
- हठयोग १=)
- योग-शास्त्रांतर्गत धर्म ॥)
- योगत्रयी ॥)
- राजयोग १॥)
- योग की कुछ विभूतियाँ ॥)

१६. स्त्रियों के लिये

- कमला-कुसुम (सचित्र) १)
- जुन्हा ॥=)
- गुप्त संदेश ॥=)
- देवी पार्वती (सचित्र) १)
- देवी सती (सचित्र) ॥=)
- देवी द्रौपदी (सचित्र) ॥)
- नारी-उपदेश ॥)
- पत्रांजलि ॥)
- भारत की विदुषी नारियाँ ॥)
- भारतीय स्त्रियाँ १॥)
- महिला-मोद ॥)
- लक्ष्मी (सचित्र) ॥=)
- वनिता-विलास (सचित्र) ॥)
- नल-दमयंती (सचित्र) ॥=)

१७. लड़के-लड़कियों के लिये

- इतिहास की कहानियाँ ।=)
- कीड़े-मकोड़े (सचित्र) ॥=)
- खिलवाड़ (सचित्र) ।)
- खेत पचीसी (सचित्र) ।=)
- गधे की कहानी (सचित्र) ॥)
- नटखट पाँड़े (सचित्र) १॥)
- परोपकारी हातिम (सचित्र) १)
- बालनीति-कथा (दो भाग) २॥)
- भारत के सपूत (सचित्र) ।=)
- लड़कियों का खेल (सचित्र) ।)
- बाल-विलास (सचित्र) ॥)
- हँसी-खेल (सचित्र) ॥)
- विचित्र वीर (सचित्र) ॥)

१८. सुकवि-माधुरी-माला

- बिहारी-रत्नाकर ४)
- मतिराम-ग्रंथावली २॥)
- मिश्रबंधु विनोद (तीन खंड) ७॥)

१९. फुटकर पुस्तकें

- मदर इंडिया का जवाब १=)
- पाली-प्रबोध १)
- स्काउट-मास्टरिंग (सचित्र) ॥)



"कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू।"
(गो० तुलसीदास)

वर्ष २ | खंड १
पौष, ३०६ तुलसी-संवत् (१९८५ वि०)— जनवरी, १९२९
संख्या ६ | पूर्ण संख्या १८

मोल

[श्रीमती महादेवी वर्मा]

(१)

झिलमिल-तारों की पलकों में,
स्वप्निल-मुस्कानों को ढाल;
मधुर-वेदनाओं से भर के,
मेघों के छायामय थाल;

(२)

रँग डाले अपनी लाली में,
गूँथ नए ओसों के हार;
विजन विपिन में आज बावली !
बिखराया है क्यों शृंगार ?

(३)

फूलों के उच्छ्वास बिछाकर,
फैला-फैला स्वर्ण-पराग;
विस्मृति-सी तुम, मादकता-सी,
गाती हो मदिरा-सा राग।

(४)

जीवन का मधु बेच रही हो,
मतवाले नयनों में घोल।
क्या लोगी ? क्या कहा सजनि,
इसका दुखिया आँसू है मोल ?

संक्रांति

[श्रीयुत महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, एल्० टी०]



साधारण और विशेष अर्थ

संक्रांति का साधारण अर्थ है साथ-साथ चलना, मिलना, एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना, स्थान बदलने की दशा इत्यादि। इसका विशेष अर्थ है किसी ग्रह का, विशेषकर सूर्य का, एक राशि से दूसरी राशि में जाना। इस लेख में संक्रांति के इसी विशेष अर्थ के संबंध में कुछ चर्चा की जायगी।

राशि-चक्र और राशियाँ

मनुष्य से लेकर पशु, पत्ती, कीड़े, मकोड़े आदि सभी जीवधारियों को दिन और रात का ज्ञान सहज ही होता है। सूर्य, चंद्रमा और तारे पूर्व में उदय होते हैं, और दो, चार, छः या आठ घंटे तक ऊपर उठते हुए अपने सबसे ऊँचे स्थान पर पहुँचकर उसी क्रम से ढलने लगते हैं, जिस क्रम से ऊपर उठते हैं, और जितने समय में उदय होकर सबसे ऊँचे स्थान पर पहुँचते हैं, उतने ही समय में उस ऊँचे स्थान से ढलते हुए पश्चिम में अस्त हो जाते हैं। अस्त होने के बाद कुछ समय तक दृष्टि से बाहर रहकर ये फिर पूर्व में उदय होते हुए देख पड़ते हैं। यह क्रम प्रायः २४ घंटे में पूरा होता है। इस समय को वार या दिवस कहते हैं। परंतु सूर्य का उदय होने के समय से उसके अस्त होने के समय तक को लोग साधारणतः दिन, और सूर्यास्त से सूर्योदय तक के समय को रात कहते हैं। इस कारण दुविधा मिटाने के लिये दिन और रात के जोड़े को अहोरात्र या ज्योतिष की भाषा में सावन दिन (Solar Day) कहते हैं। सूर्य, चंद्रमा और तारों का यह फेरा हमारी पृथ्वी के एक बार घूमने से होता है (जिसका वैज्ञानिक प्रमाण देने के लिये एक स्वतंत्र लेख चाहिए); परंतु इसके विपरीत हमको सूर्य, चंद्रमा और तारे ही चक्कर लगाते हुए देख पड़ते हैं, जैसे—

नौकारूढ़ चलत जग देखा ;
अचल मोह-वश आपुहि लेखा।
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी ;
कहहिं परस्पर मिथ्यावादी।
(रा० च० मानस, उत्तरकांड)

इसीलिये अहोरात्र को वार कहना भी युक्ति-संगत है ; क्योंकि जितने समय में पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूमती है, उसी समय को अहोरात्र कहते हैं।

यदि ध्यान से देखा जाय तो सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों में एक और गति देख पड़ती है। यदि शुद्ध घड़ी लेकर आकाश के किसी तारे को एक सप्ताह तक प्रत्येक रात को देखा जाय, और यह लिख लिया जाय कि अमुक तारा अमुक स्थान पर किस समय देख पड़ता है, तो यह प्रकट हो जायगा कि दूसरे दिन वही तारा उसी स्थान पर २३ घंटे ५६ मिनट ४ सेकिंड में फिर देख पड़ेगा, यदि देखनेवाला भी अपना स्थान न बदले। यदि उदय या अस्त हुए तारे को देखा जा सके, तो उससे भी स्पष्ट हो सकता है कि सब तारे २३ घंटे ५६ मिनट और ४ सेकिंड पर फिर उदय या अस्त होते हैं। परंतु एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के समय में पूरे २४ घंटे का अंतर होता है, अर्थात् दूसरे दिन सूर्य के उदय होने में तारे को अपेक्षा प्रायः ४ मिनट की देर हो जाती है। प्रतिदिन चार मिनट का विलंब होते-होते एक सप्ताह में यह अंतर २८ मिनट के लग-भग हो जाता है—अर्थात् यदि सप्ताह के आरंभ में कोई तारा सूर्य से १ घंटा पहले उदय होता है, तो सप्ताह के अंत में वही तारा सूर्य से १ घंटा २८ मिनट पहले उदय होने लगता है। इससे यह परिणाम निकलता है कि सूर्य तारों के बीच पश्चिम से पूर्व की ओर जा रहा है। साथ-ही-साथ एक बात और देख पड़ेगी कि प्रत्येक तारे के उदय या अस्त होने का स्थान क्षितिज पर एक ही रहता है; परंतु सूर्य के उदय या अस्त होने का स्थान बदलता रहता है। इस

प्रकार ६ महीने तक सूर्य के उदय या अस्त होने का स्थान उत्तर की ओर प्रतिदिन हटता रहता है, और ६ महीने तक दक्षिण की ओर। जिस अवधि में सूर्य उत्तर की ओर बढ़ता रहता है, उसको उत्तरायण और जिस अवधि में वह दक्षिण की ओर हटता रहता है, उसको दक्षिणायन कहते हैं। इसीलिये वर्ष के दो भाग दो अयन के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सूर्य की यह गति भी इसकी अपनी गति नहीं है। यह भी पृथ्वी ही की वार्षिक गति के कारण देख पड़ती है। इसी गति के कारण शिशिर, वसंत, ग्रीष्म इत्यादि ऋतुओं का फेरा होता है। इसका वैज्ञानिक प्रमाण भी स्वतंत्र लेख में दिया जा सकता है। इस गति के कारण सूर्य तारों के बीच पश्चिम से पूर्व की ओर चलता हुआ पृथ्वी की एक परिक्रमा ३६५ दिन ६ घंटे ९ मिनट में कर लेता है। जिस मार्ग से सूर्य पृथ्वी की एक परिक्रमा वर्ष में एक बार करता हुआ देख पड़ता है, उसको क्रांतिवृत्त कहते हैं। यह मार्ग बिलकुल गोल नहीं, बरन् दीर्घ-वृत्ताकार है; परंतु सुविधा के लिये यदि इसको गोल मान लिया जाय, तो कोई हानि नहीं।

क्रांतिवृत्त से कुछ उत्तर और दक्षिण ऐसे तारे या तारा-समूह पड़ते हैं, जिनसे ऋतु-विशेष में सूर्य का स्थान बतलाने में बड़ी सुविधा होती है। उस मेखला (Belt) को, जिसमें क्रांतिवृत्त और सूर्य या चंद्रमा का स्थान बतलानेवाले तारा-समूह या नक्षत्र होते हैं, नक्षत्र-चक्र या राशि-चक्र (Zodiac) कहते हैं। नक्षत्र-चक्र के २७ विभाग किए गए हैं, जिनके नाम ये हैं—

१. अश्विनी	१०. मघा	१९. मूल
२. भरणी	११. पूर्वाफाल्गुनी	२०. पूर्वाषाढ़
३. कृत्तिका	१२. उत्तराफाल्गुनी	२१. उत्तराषाढ़
४. रोहिणी	१३. हस्त	२२. श्रवण
५. मृगशिरा	१४. चित्रा	२३. धनिष्ठा
६. आर्द्रा	१५. स्वाति	२४. शतभिष या शतभिषा
७. पुनर्वसु	१६. विशाखा	२५. पूर्वाभाद्रपद
८. पुष्य (चिरैया)	१७. अनुराधा	२६. उत्तराभाद्रपद
९. आश्लेषा	१८. ज्येष्ठा	२७. रेवती

नक्षत्र-चक्र के तारा-समूहों को २७ ही नक्षत्रों में क्यों बाँटा गया, इसका कारण यह है कि चंद्रमा इन्हीं नक्षत्रों में चलता हुआ २७ दिन ७ घंटे और ४३ मिनट में पृथ्वी की एक परिक्रमा कर लेता है। इसलिये एक दिन में चंद्रमा तारों के बीच पश्चिम से पूर्व को जितना चलता है, उसको एक नक्षत्र मान लिया गया। पंचांगों में जो लिखा रहता है कि किस दिन कौन नक्षत्र होता है, उसका भी यही अर्थ होता है कि उस दिन चंद्रमा अमुक नक्षत्र नाम के तारा-समूह के पास है। इसलिये यदि पंचांग में यह देख लिया जाय कि अमुक दिन कौन नक्षत्र है, और उसी अमुक दिन चंद्रमा को आकाश में भी देखा जाय, तो यह पता चल सकता है कि उस नक्षत्र का आकार तथा उसकी पहचान क्या है। मृगशिरा से लेकर स्वाति नक्षत्र तक ११ नक्षत्रों का ज्ञान सभी किसानों को होता है; क्योंकि जब सूर्य अपनी वार्षिक यात्रा में इन नक्षत्रों के पास होता है, तभी वर्षा होती है, और जोतने-बोने के समय का निश्चय किया जाता है। इन ११ नक्षत्रों के संबंध में अनेक कहावतें प्रचलित हैं, जो सूत्र की तरह सभी किसानों को याद रहती हैं, और इन्हीं कहावतों से वे जोतने-बोने के समय का निश्चय करते हैं, जैसे—

चित्रा गेहूँ, आर्द्रा धान; इनके गेरुई न उनके घाम।
पुक्ख-पुनर्बस बोवै धान; अश्लेषा जुँधरी परमान।
रोहिनी, मृगशिरा जो बोवै मका; उर्द मड़वा नहिं आवै टंका।
चना चित्रा, चौगुना, स्वाती गेहूँ होय।
चढ़त बरसे आर्द्रा, उतरत बरसे हस्त;
कितनो राजा डाँड़ ले, आनँद रहे गृहस्त।
(कविताकौमुदी, खेती की कहावतें)

जैसे चंद्रमा की दैनिक गति के कारण क्रांतिवृत्त के भाग, २७ नक्षत्रों के नाम से, किए गए, वैसे ही चंद्रमा की १२ पूर्णमासियों अथवा १२ मासों के विचार से

क्रांतिवृत्त के १२ विभाग भी किए गए, जिनको राशि कहते हैं। राशि और नक्षत्रों का मेल मिलाने के लिये प्रत्येक राशि को सवा दो नक्षत्रों के समान कर दिया गया। जैसे—

१—मेष राशि में अश्विनी, भरणी और कृत्तिका का एक चरण (चौथा भाग);

२—वृष राशि में कृत्तिका के तीन चरण, रोहिणी और मृगशिरा के दो चरण;

३—मिथुन राशि में मृगशिरा के दो चरण, आर्द्रा और पुनर्वसु के तीन चरण;

४—कर्क राशि में पुनर्वसु का एक चरण, पुष्य और आश्लेषा;

५—सिंह राशि में मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी का एक चरण;

६—कन्या राशि में उत्तराफाल्गुनी के तीन चरण, हस्त और चित्रा के दो चरण;

७—तुला राशि में चित्रा के दो चरण, स्वाति और विशाखा के तीन चरण;

८—वृश्चिक राशि में विशाखा का एक चरण, अनुराधा और ज्येष्ठा;

९—धनु राशि में मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ का एक चरण;

१०—मकर राशि में उत्तराषाढ़ के तीन चरण, श्रवण और धनिष्ठा के दो चरण;

११—कुंभ राशि में धनिष्ठा के दो चरण, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपद के तीन चरण;

१२—मीन राशि में पूर्वाभाद्रपद का एक चरण, उत्तराभाद्रपद और रेवती।

इन २७ नक्षत्रों के साथ कभी-कभी २८वें नक्षत्र अभिजित् का नाम भी लिया जाता है, और किसी-किसी मुहूर्त में इसका विचार भी किया जाता है। इसका स्थान उत्तराषाढ़ और श्रवण के बीच में रक्खा गया है *। इस २८वें नक्षत्र के विभाग का कारण यही जान पड़ता है कि चंद्रमा की एक परिक्रमा पूरे २७ दिन में नहीं होती, बरन् २८वें दिन का भी एक-तिहाई समय लग जाता है। इसलिये पहले नक्षत्र-चक्र के २८ विभाग किए गए होंगे, जो पीछे सुविधा के विचार से २७ कर दिए गए।

नक्षत्र-चक्र के राश्यात्मक और नक्षत्रात्मक विभागों का क्रम नीचे दिए हुए चित्र से सहज ही समझ में आ सकता है। गोल रेखा नक्षत्र-चक्र है। इसके २७ समान भाग किए गए, और प्रत्येक भाग को नक्षत्र कहा गया। फिर सवा दो नक्षत्रों की एक राशि मान ली गई।

बड़े-बड़े विद्वानों * का कहना है कि वेदों, ब्राह्मणों और उपनिषदों में इन बारह राशियों की चर्चा नहीं है। उत्तरायण, दक्षिणायन तथा ऋतुओं का क्रम उस प्राचीन-काल में नक्षत्रों के ही आधार पर किया जाता था। जैसे—

अथान्यत्राप्युक्तमन्नं वा अस्य सर्वस्य योनिः कालश्चान्नस्य सूर्यो योनिः कालस्य तस्यैतद्रूपं यन्निमेषादिकालात् सम्भृतं द्वादशात्मकं वत्सरमेतस्याग्नेयमर्द्धमर्द्धं वारुणं मघाद्यं श्रविष्ठार्धमाग्नेयं क्रमेणोत्क्रमेण सार्पाद्यं श्रविष्ठार्द्धान्तं सौम्यं..........................

(मैत्र्युपनिषद् ६ । १४)

भावार्थ—यह अन्यत्र कहा गया है कि इन सब (जीवधारियों) का कारण अन्न है; अन्न का कारण काल है; काल का कारण सूर्य है। इस काल के रूप हैं निमेषादि १२ महीने, जिनका एक वर्ष होता है। वर्ष का आधा अग्नि का भाग है और आधा वरुण का। मघा के आदि से श्रविष्ठा (धनिष्ठा) के आधे भाग तक अग्नि का भाग है, और आश्लेषा से लेकर उलटे क्रम से

---

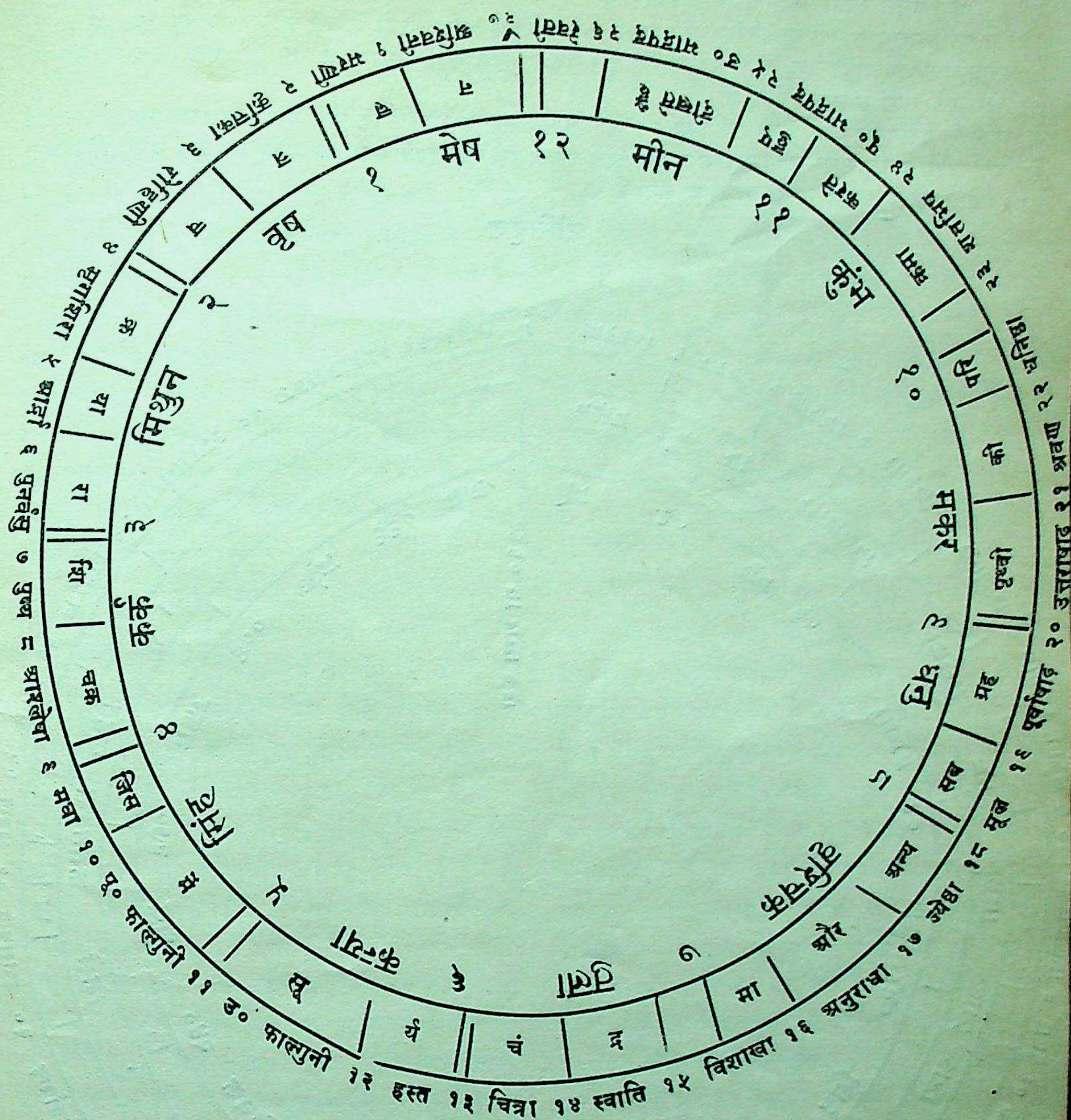
* वैश्वप्रांत्याङ्घ्रिः श्रुतितिथिभागतोऽभिजित्स्यात्।
(मुहूर्त-चिंतामणि)।

* देखो (१) महाभारतमीमांसा (हिंदी) पृष्ठ ४५-५२; लेखक, रावबहादुर चिंतामणि विनायक वैद्य; अनुवादक, पं० माधवराव सप्रे।

(२) मराठी भारतीय ज्योतिष-शास्त्र, पृष्ठ १३९; लेखक, शंकर-बालकृष्ण दीक्षित;

(३) गीतारहस्य, पृष्ठ ५६२; लेखक, लो० बाल-गंगाधर तिलक और माधवराव सप्रे।

नक्षत्र चक्र



चक्र-परिचय

राशि-चक्र के ३६० अंश किए गए हैं। एक-एक राशि में ३० अंश होते हैं, जो भीतरी परिधि पर दिखलाए गए हैं। जहाँ ३० लिखा है, वहाँ मेष राशि का अंत और वृष राशि का आरंभ होता है। इसी तरह औरों के लिये भी समझना चाहिए। जहाँ ३६० लिखा हुआ है, वहाँ मीन राशि का अंत और मेष राशि का आरंभ होता है, इसीलिये यहाँ शून्य भी लिखा हुआ है। ये संख्याएँ अंश बतलाती हैं। भीतरी परिधि के १२ समान भाग करके दिखलाया गया है कि राशि-चक्र १२ राशियों में किस प्रकार विभाजित किया गया है।

बाहरी परिधि २७ समान भागों में विभाजित की गई है। प्रत्येक भाग को नक्षत्र कहते हैं। पहला नक्षत्र

अश्विनी जहाँ आरंभ होती है, वहाँ शरमुख (तीर) का चिह्न है। यहीं २७ भी लिखा हुआ है, जिसका अर्थ यह है कि २७वें नक्षत्र रेवती का अंत भी यहीं होता है। पहला नक्षत्र जहाँ समाप्त होता है, वहाँ १ लिखा हुआ है। यहीं से दूसरे नक्षत्र भरणी का आरंभ भी होता है। इसी प्रकार और नक्षत्रों के बारे में भी समझना चाहिए।

नक्षत्र-चक्र और राशि-चक्र, दोनो पर्यायवाची हैं। एक ही चक्र के दो भिन्न-भिन्न नाम हैं। एक नक्षत्र का विभाग १३ अंश २० कला के समान होता है।

ध्यान से देखने पर जान पड़ेगा कि जहाँ २१ की संख्या लिखी हुई है, उसके पास एक छोटा-सा भाग किया हुआ है। यह २१वें नक्षत्र उत्तराषाढ के एक चौथाई और श्रवण के एक पंद्रहवें भाग को लिए हुए है। यही अभिजित् का स्थान है जो अ अक्षर से सूचित किया गया है।

क्रांतिवृत्त

धनिष्ठा के आधे भाग तक जल का भाग है, अर्थात् जब सूर्य मघा नक्षत्र से श्रविष्ठा के आधे भाग तक रहता है, तब तक का समय अग्नि का होने के कारण गरमी रहती है, और जब सूर्य आधे धनिष्ठा से आश्लेषा तक रहता है, तब तक का समय जल का होने के कारण शीत रहता है। दक्षिणायन सूर्य में गरमी की प्रधानता रहने के कारण दक्षिणायन का समय अग्नि का बतलाया गया है, और उत्तरायण सूर्य में शीत की प्रधानता रहने के कारण यह समय जल के स्वामी वरुण का बतलाया गया है।

संहिता और ब्राह्मण-ग्रंथों में इस प्रकार के अनेक वाक्य हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में, आज से कम-से-कम ४००० वर्ष पहले, जब मघा * नक्षत्र में सूर्य दक्षिणायन और धनिष्ठा के आधे भाग में उत्तरायण होता था, हमारे ऋषि नक्षत्रों के ही विचार से ऋतुओं की गणना करते थे, जैसा कि ऊपर के उद्धरण से प्रकट है।

विवाह

जो कुछ हो, इस समय तो राशियों और संक्रांतियों का प्रभुत्व हमारे विवाह, उत्सव, धर्म और कर्म पर इतना है कि हम इनके बिना कोई काम नहीं कर सकते। सनातन-धर्म के अनुसार हिंदुओं के विवाह केवल उसी समय हो सकते हैं, जिस समय सूर्य मेष, वृष, मिथुन, वृश्चिक, मकर और कुंभ राशियों में होता है। विवाह-संबंधी बहुत-सी बातें सूर्य की राशि से नहीं, बरन् राश्यंश से निश्चित की जाती हैं, जैसे पंचबाण-दोष, संक्रांति-दोष, नवांशक-दोष इत्यादि।

पर्व

प्रयाग का मकर-स्नान पर्व उस समय होता है, जिस समय सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है, अर्थात् जब मकर-संक्रांति होती है। इसके विषय में गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

माघ मकर गत रवि जब होई;
तीरथपतिहि आव सब कोई।

बारहवें वर्ष जब बृहस्पति वृष राशि में रहता है, और सूर्य मकर राशि में, तब प्रयाग में कुंभ का मेला होता है, जिसमें २०-२५ लाख यात्री सारे भारतवर्ष से आते हैं। इस प्रकार १२वें वर्ष प्रयाग में कुंभ-महोत्सव होता है; क्योंकि बृहस्पति का एक फेरा बारहवें वर्ष में होता है। इसी प्रकार हरद्वार, पुष्कर और नासिक के भी कुंभ-पर्व सूर्य और बृहस्पति की संक्रांतियों पर आश्रित हैं।

बंगाल, पंजाब, मदरास के कुछ भाग तथा कुमाऊँ में वर्ष और मास का आरंभ भी संक्रांति के ही विचार से होता है।

संक्रांति और मलमास

यह बात तो प्रायः सभी हिंदू जानते हैं कि हर तीसरे वर्ष कोई-कोई हिंदू-महीने दो होते हैं। इसी प्रथा के अनुसार पिछला श्रावण-मास दो हुआ था। इनमें से पहला मास मलमास कहलाता है, और दूसरा शुद्ध। कोई-कोई इसे लौंद का महीना या अधिमास कहते हैं। यह जानने के लिये कि कौन महीना मलमास होना चाहिए, हमारे साहित्य में अनेक रीतियाँ दी हुई हैं। वेदांग-ज्योतिष-काल में, आज से कोई ३३००* वर्ष पहले, प्रत्येक पाँच वर्ष के युग में दो महीने मलमास के माने जाते थे †। ढाई वर्ष का आधा युग बीतने पर श्रावण का महीना मलमास होता था, और युग के अंत में माघ का महीना मलमास होता था। सूर्यसिद्धांत में मलमास जानने की जो रीति है, वह आजकल नहीं बरती जाती। आजकल जो रीति प्रचलित है, वह भास्कराचार्यजी के सिद्धांतशिरोमणि ‡ के अनुसार है,

* आजकल आर्द्रा नक्षत्र के आदि में सूर्य दक्षिणायन और मूल नक्षत्र के आधे भाग पर उत्तरायण होता है। इसलिये अब ४ नक्षत्र पहले ही दक्षिणायन या उत्तरायण होता है। यह अंतर अयन-चलन या संपातबिंदु की वक्री गति के कारण (Precession of equinoxes) हो गया है। यह अंतर कोई ४००० वर्षों में हुआ है। (देखो सूर्यसिद्धांत, त्रिप्रश्नाधिकार, विज्ञान-भाष्य पृष्ठ ३३८-३७६)

* देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र, पृष्ठ ८७-८८।

† द्युनं द्विषष्टिभागेन हेयं सूर्यात् सपार्वणम्।
यत्कृतावुपजायेते मध्येऽन्ते चाधिमासिकौ॥ ३७॥
(याजुष ज्योतिष)

‡ असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद्;
द्विसङ्क्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्।
(गणिताध्याय)

जो शक १०७२ या संवत् १२०७ विक्रमीय में लिखा * गया था। इसके अनुसार जिस अमांत चांद्र मास में संक्रांति नहीं होती, वही मलमास समझा जाता है, और जिस अमांत चांद्र मास में दो संक्रांतियाँ पड़ती हैं, वह महीना क्षयमास कहलाता है; अर्थात् उस चांद्र मास की गणना ही नहीं की जाती। यह घटना कभी-कभी १९ वर्ष और कभी-कभी १४१ वर्ष उपरांत होती है। ऐसी अवस्था में उसी वर्ष दो-दो महीने मलमास के होते हैं।

इसका कारण यह है कि हमारे यहाँ पर्वों और उत्सवों का निश्चय तथा समय की गणना चांद्र मास के अनुसार होती है, जो शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से आरंभ होकर अमावस को समाप्त होता है; या कृष्ण-पक्ष की प्रतिपदा से आरंभ होकर पूर्णमासी को समाप्त होता है। पहले को अमांत चांद्र मास और दूसरे को पूर्णिमांत चांद्र मास कहते हैं। मदरास, महाराष्ट्र और गुजरात प्रांतों में अमांत चांद्र मास का ही चलन है। आगरा और अवध के प्रांतों में, बिहार, बंगाल, पंजाब, मध्य-भारत और राजपूताने में पूर्णिमांत चांद्र मास का चलन है। परंतु संवत् का आरंभ अथवा मलमास का विचार अमांत मास के ही अनुसार किया जाता है। इसीलिये विक्रम-संवत् का आरंभ फाल्गुन की पूर्णमासी (होली) के बाद ही नहीं होता, जैसा कि बहुत-से लोगों का ख़याल है, बरन् चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा से होता है, जो होली के १५ दिन पीछे होती है। अमावस को भी लोग ३० के अंक से सूचित करते हैं। ज्योतिष-ग्रंथों में भी अमांत चांद्र मास की ही चर्चा है। चांद्र मास के इस द्विविध प्रयोग से कृष्णपक्ष के विषय में बहुत गड़बड़ रहती है। उत्तर-भारत में हम लोग कृष्ण-जन्माष्टमी भाद्रपद के कृष्णपक्ष में मनाते हैं। दक्षिण भारतवाले भी कृष्ण-जन्माष्टमी उसी दिन मनाते हैं। परंतु उसको श्रावण-कृष्ण ८ कहते हैं, भाद्र-कृष्ण ८ नहीं कहते। उत्तर-भारत में दीवाली कार्तिक कृष्ण-अमावास्या को मनाई जाती है। दक्षिण-भारतवाले भी दीवाली उसी दिन मनाते हैं; परंतु कहते हैं आश्विन-कृष्ण अमावस। यह भिन्नता काशी और बंबई के पंचांगों में सहज ही देखी जा सकती है।

यह सब झंझट इसीलिये किया जाता है, जिससे हमारे पर्व और उत्सव चांद्र मास के अनुसार होते हुए भी ऋतुओं के अनुकूल पड़ें। यदि अधिक मास की गणना न की जाय, तो हमारे महीनों और उत्सवों की भी वही दशा हो, जो मुसलमानी पर्वों की होती है। अर्थात्, जैसे मुसलमानी पर्व मुहर्रम, ईद, बकरीद इत्यादि हरएक ऋतु में पड़ते हैं, वैसे ही होली, दीवाली और श्रावणी इत्यादि भी गरमी, वर्षा, जाड़ा इत्यादि में पड़ने लगें। इसका कारण यह है कि १२ चांद्र मास, जिसका एक वर्ष माना जाता है, ३५४ दिन ८ घंटे ४९ मिनट के लगभग होता है, और सूर्य की एक परिक्रमा तारों के बीच ३६५ दिन ६ घंटे ९ मिनट की होती है, जिसे नाक्षत्र सौर वर्ष कहते हैं। ऋतुओं का क्रम सूर्य की गति के अनुसार लगभग ३६५ दिन ६ घंटे के वर्ष में बदलता है; परंतु चांद्र मास के १२ महीने का वर्ष इससे ११ दिन के लगभग छोटा पड़ता है। इसलिये प्रति तीसरे वर्ष जब यह अंतर एक महीने का हो जाता है, तभी एक चांद्र मास अधिक मान लिया जाता है। इससे हमारे पर्वों और उत्सवों का समय सदा ऋतुओं के अनुकूल होता है।

ऊपर जो कुछ संक्षेप में लिखा गया है, उससे यह सिद्ध हो जाता है कि हमारे पर्व और उत्सव, विवाह, मुंडन, इत्यादि सभी संस्कार सूर्य की संक्रांति पर आश्रित हैं। अब संक्षेप में यह बतला देना भी उचित है कि विद्वानों में इस विषय पर कि कौन संक्रांति कब मनाई जाय, कितना मतभेद है।

ऊपर बतलाया गया है कि क्रांतिवृत्त, जिस पर सूर्य चलता हुआ देख पड़ता है, एक गोल रेखा है। रेखा-गणित का साधारण विद्यार्थी भी जानता है कि गोल रेखा का ओर-छोर नहीं होता। हाँ, किसी बिंदु को आरंभ-स्थान माना जा सकता है। इसलिये इस विषय पर एक हज़ार वर्ष से अधिक समय से विवाद चला आ रहा है कि क्रांतिवृत्त या राशि-चक्र का

* रसगुणपूर्णमहीसमशकनृपसमये भवन्ममोत्पत्तिः ;
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः।
(गोलाध्याय)

आरंभ-स्थान क्या है। ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, गणेश-दैवज्ञ इत्यादि के सिद्धांत-ग्रंथों से जान पड़ता है कि ये लोग आरंभ-स्थान रेवती का वह तारा मानते थे, जो क्रांतिवृत्त पर स्थित है, और जिससे चित्रा तारे का ध्रुवभोग १८३ * अंश है। सूर्य-सिद्धांत से जान पड़ता है कि आरंभ-स्थान वह है, जिससे चित्रा तारे का भोग १८० अंश होता है। परंतु आजकल सूर्य-सिद्धांत के जिस नियम से राशि-चक्र का आरंभ-स्थान निश्चित किया जाता है, उससे चित्रा तारे का भोग १८० अंश से कुछ भिन्न है। फिर भी इन दोनो मतों के पक्ष और विपक्ष में महाराष्ट्र-प्रांत के बड़े-बड़े विद्वान् ५०-६० वर्ष से विचार कर रहे हैं, और अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ। जो लोग रेवती तारे को आरंभ-स्थान मानकर पंचांगों में संक्रांति और मलमास का निर्णय करते हैं, वे रैवत-पक्ष के कहे जाते हैं, और जो लोग चित्रा तारे को आरंभ-स्थान से १८० अंश पर मानते हैं, वे लोग चैत्र-पक्ष के कहे जाते हैं। जो लोग चैत्र-पक्ष के कहलाते हैं, वे बिलकुल सूर्य-सिद्धांत के मत को मानते हैं, यह कहना भी ठीक नहीं; क्योंकि वे लोग भी इसके मूलांकों में आवश्यक संशोधन के पक्ष में हैं। रैवत-पक्ष के कुछ विद्वानों के नाम ये हैं—लो० बाल-गंगाधर-तिलक, प्रोफ़ेसर विश्वनाथ-बलवंत नायक, ज्योतिर्विद् रामचंद्र विनायक पटवर्धन इत्यादि पंचांग-प्रवर्तक कमेटी के सभी सदस्य। चैत्र-पक्ष के कुछ विद्वानों के नाम ये हैं—आचार्य वेंकटेश बापूजी केतकर, इनके पुत्र दत्तात्रेय वेंकटेश केतकर, गोपीनाथ शास्त्री इत्यादि।

इन भिन्न-भिन्न मतों के कारण संक्रांतियों और मलमासों में कितना भेद पड़ता है, और इससे समय का निश्चय करने में कितनी गड़बड़ होती है, इसका अनुमान नीचे लिखे उदाहरणों से किया जा सकता है—

संक्रांति का नाम	संक्रांति-काल रैवत-पक्ष (१) के अनुसार	संक्रांति-काल चैत्र-पक्ष (२) के अनुसार	संक्रांति-काल सूर्य-सिद्धांत या मकरंदसारिणी (३) के अनुसार
१—मेष	चैत्र-कृष्ण ३, रविवार, सूर्योदय से ५४ घड़ी १५ पल पर	चैत्र-कृष्ण ७, गुरुवार, सूर्योदय से ५८ घड़ी ४२ पल पर	वैशाख-कृष्ण ७, गुरुवार, सूर्योदय से ५३ घड़ी ५ पल पर
२—वृष	वैशाख-कृष्ण ४, बुधवार, ४३ घड़ी ४६ पल	वैशाख-कृष्ण ८, रविवार, ५१ घड़ी ६ पल	ज्येष्ठ-कृष्ण ८, रविवार, ५० घ० ६ पल
३—मिथुन	ज्येष्ठ-कृष्ण ६, शनिवार, ५८ घड़ी १ पल	ज्येष्ठ-कृष्ण ११, गुरुवार, ८ घड़ी १ पल	आषाढ़-कृष्ण ११, गुरुवार, १६ घ० ६ पल
४—कर्क	आषाढ़-कृष्ण ६, बुधवार, २४ घ० ५४ पल	आषाढ़-कृष्ण १३, रविवार, ३५ घ० १७ पल	शुद्ध श्रावण-कृष्ण १३, रविवार, ५३ घ० ५६ पल
५—सिंह	श्रावण-कृष्ण ११, शनिवार, ४७ घ० ४३ पल	अधिक श्रावण-कृष्ण ३०, बुधवार, ५६ घ० ६ पल (अमावस ३२ घ० २ पल तक थी)	शुद्ध श्रावण-शुक्र १, गुरुवार, २३ घ० ६ पल

* भास्कराचार्य का गणिताध्याय भग्रहयुत्यधिकार श्लोक १, ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मस्फुट सिद्धांत भग्रहयुत्यधिकार श्लोक १, २; गणेश का ग्रहलाघव नक्षत्रच्छायाधिकार श्लोक १।

(१) देखो पंचांग-प्रवर्तन-कमेटी का शुद्ध निरयन पंचांग पूने का छपा।

(२) देखो चित्रशाला-प्रेस का पंचांग पूने का छपा।

(३) देखो गणेश आपाजी का पंचांग काशी का छपा।

६–कन्या	भाद्रपद-कृष्ण, १२ मंगलवार, ५० घ० ५४ पल	भाद्रपद-शुक्ल १, शनिवार, ५५ घ० ४६ पल	भाद्रपद-शुक्ल २, रविवार, २३ घ० ३४ पल
७–तुला	आश्विन-कृष्ण १४, शुक्रवार, २४ घ० ४३ पल	आश्विन-शुक्ल ४, बुधवार, ४ घ० ४२ पल	आश्विन-शुक्ल ३, मंगल, ४८ घ० ५३ पल
८–वृश्चिक	कार्त्तिक-कृष्ण १४, रविवार, २७ घ० ३७ पल	कार्त्तिक-शुक्ल ३, गुरुवार, २४ घ० ३६ पल	कार्त्तिक-शुक्ल ३, गुरुवार, ४१ घ० ३६ पल
९–धनु	मार्गशीर्ष-कृष्ण १४, मंगलवार, ६ घ० २४ पल	मार्गशीर्ष-शुक्ल ३, शनिवार, १ घ० १ पल	मार्गशीर्ष-शुक्ल ३, शनिवार, १० घ० १६ पल
१०–मकर	पौष-कृष्ण १४, बुधवार, ३३ घ० ३५ पल	पौष-शुक्ल २, रविवार, २५ घ० ४९ पल	पौष-शुक्ल २, रविवार, २९ घ० ९ पल
११–कुंभ	माघ-कृष्ण १४, शुक्रवार, ४ घ० २९ पल	माघ-शुक्ल ३, मंगलवार, ०० घ० १७ पल	माघ-शुक्ल २, सोमवार, ५६ घ० २० पल
१२–मीन	फाल्गुन-कृष्ण १३, शनिवार, ५३ घ० ३८ पल	फाल्गुन-शुक्ल २, बुधवार, ५६ घ० ४६ पल	फाल्गुन-शुक्ल २, बुधवार, ४६ घ० २६ पल

चित्रशाला-प्रेस का पंचांग आचार्य केतकर के ज्योतिर्गणित के अनुसार बनाया हुआ जान पड़ता है; क्योंकि इसमें दिया हुआ मेष-संक्रांति-काल गणेश आपाजी के संक्रांति-काल से, जो मकरंदसारिणी या सूर्य-सिद्धांत के अनुसार निकाला गया है, साढ़े पाँच घड़ी के लगभग पीछे है। यदि काशी से पूने का देशांतरकाल, जो डेढ़ घड़ी के लगभग है, इसमें जोड़ा जाय, तो यह अंतर ७ घड़ी का होता है, और इस समय यही अंतर ज्योतिर्गणित और सूर्य-सिद्धांत के मेष-संक्रांति-कालों में भी पड़ता है। इसलिये यह सिद्ध है कि चित्रशाला-प्रेस का पंचांग चैत्र-पक्ष का पंचांग है। इससे यह प्रकट हो जाता है कि चैत्र-पक्षवाला पंचांग भी सूर्य-सिद्धांत के अनुकूल नहीं है। अन्य संक्रांतिकालों में तो यह अंतर अत्यंत अधिक हो गया है। पाठक महाशयों को यह भी देख पड़ेगा कि कृष्णपक्ष के संक्रांति-कालों में तो एक-एक मास का अंतर है, परंतु यथार्थ में यह बात नहीं है; क्योंकि पूने का पंचांग अमांत मास की गणना के अनुसार है, और काशी का पूर्णिमांत गणना से। इसलिये जिस मास को वहाँ चैत्र-कृष्ण या वैशाख-कृष्ण कहा जाता है, वही मास यहाँ क्रम से वैशाख-कृष्ण या ज्येष्ठ-कृष्ण कहा जाता है। यह भेद शुक्ल पक्षों में नहीं पड़ता। इन दोनो पंचांगों के अनुसार श्रावण का महीना मलमास होता है; क्योंकि कर्क-संक्रांति आषाढ़-कृष्ण अमावस से पहले पड़ती है, और सिंह-संक्रांति श्रावण-कृष्ण अमावस से पीछे। इसलिये यह चांद्र मास अधिक मास हो गया, और सिंह-संक्रांति जिस महीने की प्रतिपदा में पड़ी, वही शुद्ध श्रावण मास कहलाया।

परंतु रैवत-पक्ष के पंचांग में प्रत्येक संक्रांति ४ दिन पहले ही हो जाती है; क्योंकि इस पक्ष के अनुसार राशि-चक्र का आरंभ-स्थान चैत्र-पक्ष के आरंभ-स्थान से ४ अंश के लगभग पहले है, जिसके कारण किसी राशि में ४ दिन पहले ही सूर्य का प्रवेश हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि इस पक्ष के अनुसार इस वर्ष मलमास पड़ेगा ही नहीं, बल्कि संवत् १९८८ का चैत्र या वैशाख का महीना मलमास होगा। इससे सिद्ध है कि संक्रांति की गड़बड़ी से समय की गणना में कितना भेद पड़ जाता है, जिससे ऐतिहासिक और लौकिक घटनाओं का समय निश्चित करने में कितनी गड़बड़ होती है, और लोग दुबधा झंझट मिटाने के लिये ईसवी, तारीख़, महीने और सन् का प्रयोग करने लगते हैं।

इन दो पक्षों के अतिरिक्त एक तीसरा पक्ष भी है, जो सायनवादी पक्ष कहलाता है। इसके भी समर्थक और

प्रचारक बंबई के ज्योतिर्विद् विष्णुगोपालन वाथे, श्रीयुत एन्० एस्० मराठे, ज्योतिर्विद् कृष्णराम बालजी भट्ट तथा गुजरात-विद्यापीठ के श्रीयुत हरिहर प्राणशंकर भट्ट इत्यादि हैं। श्रीयुत नवाथेजी अपने मत के समर्थन में कुंडली-विज्ञान-नामक ज्योतिष की एक मासिक पत्रिका बहुत दिन तक निकालते रहे, जिसमें उन्होंने बड़े-बड़े महापुरुषों की कुंडली विज्ञान सायन गणना से बना कर उनके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं का फलादेश सिद्ध किया है। पिछले दो सज्जन अपने मत के प्रचार में किस उत्साह से उद्योग करते हैं, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इन पंक्तियों का लेखक इन सज्जनों से तनिक भी परिचित नहीं था; परंतु इन्होंने 'विज्ञान' में प्रकाशित होनेवाले सूर्य-सिद्धांत के विज्ञान-भाष्य से लेखक का पता लगाकर लिखा-पढ़ी आरंभ की, और महाराष्ट्र-प्रांत में ज्योतिष-संबंधी जो-जो विवाद चल रहे हैं, उनसे परिचित कराया। इन लोगों का मत है कि क्रांतिवृत्त का आरंभ-स्थान वही बिंदु माना जाना चाहिए, जहाँ क्रांतिवृत्त और विषुवद्वृत्त एक दूसरे को काटते हुए देख पड़ते हैं। जब सूर्य इस स्थान पर आता है, तभी भारतवर्ष तथा विषुवत्रेखा के उत्तर सभी स्थानों में १२ घंटे का दिन होता है, इसके बाद ६ महीने तक दिन १२ घंटे से भी बड़ा होता है, और रात बारह घंटे से उतनी ही छोटी होती है। इस बिंदु को वसंत-विषुव-संपात या सायन मेष (Vernal Equinox) कहते हैं। यह बिंदु प्रतिवर्ष ५० विकला के लगभग पश्चिम खिसकता रहता है, जिसको हमारे ज्योतिष-ग्रंथों में अयन-चलन कहा जाता है, और पाश्चात्य ज्योतिषी वसंत संपात चलन (Precession of Equinoxes) कहते हैं। इस समय यह बिंदु चैत्र पक्षीय आरंभ-स्थान से २२ अंश ५० कला के लगभग पश्चिम है। इस अंतर को हमारे ज्योतिष-ग्रंथों में अयनांश कहा गया है। यदि वसंत संपात को मेष का आरंभ-स्थान माना जाय, तो मेष-संक्रांति २३ दिन पहले ही हो जाती है, और इसी क्रम से अन्य संक्रांतियाँ भी २३ दिन पहले ही होती हैं। ऐसी संक्रांति को काशी के पंचांगों में सायन-संक्रांति लिखा जाता है।

ऊपर यह बतलाया गया है कि संक्रांति का विचार किन-किन बातों में किया जाता है, और सनातन-धर्म के अनुसार हमारे कितने लौकिक तथा पारलौकिक काम संक्रांति पर आश्रित हैं। यह भी सिद्ध किया गया है कि इस महत्त्वपूर्ण विषय पर विद्वानों में कितना मत-भेद है। इसलिये क्या यह आवश्यक नहीं कि इस पर अच्छी तरह विचार करके कोई एक मत निश्चित किया जाय?

महाराष्ट्र और गुजरात-प्रांतवाले धन्य हैं, जो ५०-६० वर्षों से इस विषय का ऊहापोह कर रहे हैं। सौभाग्य से महाराष्ट्र-पंचांगैक्य-मंडल के अध्यक्ष औंध-राज्य के चीफ़ साहब हैं, जो इस विषय में बड़ा प्रेम रखते हैं, जिससे आशा है कि किसी दिन सत्य का निर्णय अवश्य ही होगा। परंतु हमारे प्रांत में इस पर क्या हो रहा है? यह बतलाते दुःख होता है कि यहाँ इस विषय की जानकारी भी लोग बहुत कम रखते हैं कि यह सब मतभेद क्या है। जब तक म० म० बापूदेवजी शास्त्री और म० म० सुधाकरजी द्विवेदी काशी में उपस्थित थे, तब तक इस पर कुछ वाद-विवाद होता रहता था; परंतु उसका कुछ स्थायी फल न हुआ। इधर तीन-चार वर्ष हुए, बरेली के ज्योतिषाचार्य पं० लक्ष्मीकांत कन्याल ने 'आज' में इस विषय पर कुछ चर्चा की थी, और यह भी सूचित किया था कि बनारसहिंदू-विश्वविद्यालय में ज्योतिषियों की एक सभा होगी। वह सभा इस प्रकार हुई कि बाहरवालों को इसका बहुत कम पता लगा। हाँ, इतना अवश्य देखने में आया था कि विश्वविद्यालय के ज्योतिषाचार्य पं० रामयत्न ओझाजी ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया था, वह स्वीकृत हो गया, और उसी के अनुसार विश्वविद्यालय के विश्व-पंचांग का जन्म हुआ, जिसके प्रधान संपादक महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी भी हैं। इस विश्व-पंचांग का प्रथम अंक मित्रवर पं० चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी० की कृपा से हमें भी प्राप्त हुआ था, जिससे जान पड़ा कि इसमें ज्योतिष-संबंधी आवश्यक संशोधन की बात तो दूर रही, और भी भूलें बढ़ा दी गई हैं, और इस प्रकार तीन-चार सौ वर्ष पहले के ज्योतिषियों ने जो संशोधन स्वीकृत कर लिए थे,

उनका भी तिरस्कार कर दिया गया है । इसका कारण यह बतलाया गया है कि प्रचलित सूर्य-सिद्धांत में जो कुछ लिखा मिलता है, उसमें 'चूँचरा' करना अशास्त्रीय है, चाहे पंचांग में कही गई बातों और आकाश की घटनाओं में आकाश-पाताल का ही अंतर क्यों न देख पड़े, और चाहे इसके मत के खंडन में हज़ारों वर्षों के ज्योतिषियों की विचार-धारा प्रमाण में क्यों न पेश की जाय ।

जब से विश्व-पंचांग बनने लगा, तब से फिर यह नहीं सुन पड़ा कि इस प्रांत में ज्योतिष-संबंधी बातों का निर्णय करने के लिये किसी सभा की आवश्यकता है । इसका परिणाम यह हुआ कि बाज़ार में बिकनेवाले दर्जनों पंचांगों में कोई यह नहीं बतला सकता कि कौन पंचांग शुद्ध है ।

जिस शास्त्र के संबंध में कोई प्राचीन आचार्य * कह गए हैं कि—

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम् ;
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्राकौं यत्र साक्षिणौ ।
यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ;
तद्वद्वेदाङ्ग शास्त्राणां ज्योतिषं † मूर्द्धनि स्थितम् ।

उसकी दशा तो यह है, जैसा कि इस लेख में बतलाया गया है, तब और शास्त्रों में मतभेद होना तो आश्चर्य ही नहीं है ।

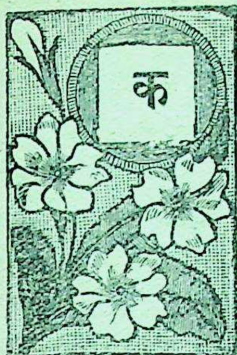
आशा है, इस क्षुद्र लेख पर विद्वान् लोग विचार करेंगे और अपना मत प्रकट करने की कृपा करेंगे ।

* इस लेखक ने यह जानने का बड़ा यत्न किया कि यह आचार्य कौन हैं, जिन्होंने १ला श्लोक लिखा है, और यह किस ग्रंथ में पहलेपहल प्रयुक्त हुआ है, परंतु अभी तक पता नहीं चला । यदि कोई सज्जन प्रमाणसहित यह बतला सकें, तो बड़ी कृपा होगी ।

† गणितं पाठांतर ।

नेपाल की यात्रा

[स्वर्गीय श्रीयुत पं० पाटेश्वरीप्रसाद त्रिपाठी बी० ए०, एल्-एल० बी०]



ई वर्षों से मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि एक बार नेपाल की यात्रा करूँ, और उस रमणीक स्थान को देखूँ। परंतु परिस्थितियों ने बार-बार मुझे इस इच्छा को रोकने के लिये विवश किया। साल में एक ही अवसर ऐसा आता है, जब साधारण जनता को नेपाल जाने के लिये श्रीपशुपति महादेव के दर्शनार्थ शिवरात्र के दिनों में पासपोर्ट मिलता है। कचहरी में काम करनेवाले मुझ-जैसे एक वकील के लिये यह शुभ अवसर अप्राप्य था। अतः इस वर्ष आश्विन की एक माह की छुट्टियों में पासपोर्ट प्राप्त करने की सुविधा नेपाल-गवर्नमेंट से प्राप्त कर मैंने नेपाल की यात्रा की।

रक्सौल

ब्रिटिश-राज्य के भारतवर्ष से नेपाल-राज्य में प्रवेश करने का केवल एक ही रास्ता * है, और वह बिहार-प्रांत के रक्सौल स्थान से आरंभ होता है। रक्सौल से सीधे उत्तर लगभग दो फ़र्लांग की दूरी पर नेपाल-गवर्नमेंट-रेलवे का स्टेशन है, जिसका नाम भी रक्सौल है। प्रातःकाल ७ बजे इसी स्टेशन से रेल में सवार होकर हम लोग नेपाल के लिये रवाना हुए। नेपाल-राज्य के दो एंजिन अब तक तैयार हैं। एक का नाम पशुपति है और दूसरे का नाम गुह्येश्वरी। मार्ग यहाँ से उत्तर-पूर्व-कोण को गया है। कुछ दूर तो देहात व मैदान में होकर रेल गई है, परंतु बाद को जंगलों में होकर रेल आगे को चली गई है। लगभग ३० मील जाकर सामने पहाड़ मिलता है, और वहीं रेल की यात्रा समाप्त होती है। रास्ते में अच्छे-अच्छे स्टेशन और बाज़ार बने हुए हैं, और बन रहे हैं। लगभग ६-७ स्टेशन होंगे। स्टेशनों के मकान भी नेपाली मकानों की तरह बने हैं, अर्थात् हरएक स्टेशन दोमंज़िले से कम नहीं है। स्टेशन के कर्मचारी विशेषतः नेपाली तथा बंगाली सज्जन ही हैं।

आमलेकगंज

जिस स्टेशन से आगे रेल नहीं जा सकती, उस अंतिम स्टेशन का नाम आमलेकगंज है। उसके सामने एक पहाड़ दिखाई देता है, उस पहाड़ का नाम भिक्षाखोर है। भिक्षाखोर के ऊपर बहुसंख्या में पहाड़ी सज्जन बसे हुए हैं। कुछ वर्ष हुए, अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करके नेपाल-राज्य से दासत्व-प्रथा (Slavery) को हटाकर नेपाल-सरकार ने मानव-जाति के साथ बड़ा ही उपकार किया है। नेपाल-सरकार की इस महती अनुकंपा के लिये समस्त संसार ने नेपाल-गवर्नमेंट को मुक्त कंठ से धन्यवाद दिया है। आमलेकगंज-स्टेशन के नाम में 'आमलेक' शब्द भी नेपाल-सरकार की इस महती कीर्ति का द्योतक है। गोरखा भाषा में 'आमलेक' शब्द के माने 'दासत्व-मुक्त' के हैं। कहा जाता है, नेपाल-गवर्नमेंट ने इसी शुभ अवसर की स्मृति में इस स्टेशन का नाम आमलेकगंज रक्खा है, और वह इसी आमलेकगंज में तथा इसके चारो तरफ़ दासत्व-मुक्त समुदाय को बसाने तथा उनके खेती तथा अन्य व्यवसाय करने के संबंध में प्रबंध कर रही है।

हम लोग उसी दिन क़रीब ११ बजे दिन को आमलेकगंज पहुँचे, और कुछ काल तक विश्राम कर पासपोर्ट प्राप्त करके आगे चले। यहाँ से मोटर-सर्विस भीमफेदी तक थी। परंतु वर्षा-काल ने पहाड़ी रास्ते को इस प्रकार बिगाड़ रक्खा था कि मोटर जंगलों और पहाड़ों से होकर भीमफेदी तक नहीं, किंतु केवल सुपारी-टाँड ही तक जाती थी। अतः हम लोग यहाँ से आगे चुरिया-घाटी की तरफ़ रवाना

* हम लेखक महोदय के इस कथन से सहमत नहीं हैं। ब्रिटिश-भारत से नेपाल जाने के कई रास्ते हैं।—संपादक

हुए। रास्ता काफ़ी चौड़ा है, तथा पहाड़ के किनारे-किनारे होकर गया है, जिस पर मोटर तथा पथिक बराबर आते-जाते हैं। रास्ते के दूसरे किनारे पर जंगल पड़ता है, और उस जंगल से कहीं समीप और कहीं दूर पहाड़ की दूसरी श्रेणी लगातार चली गई है। इस स्थान में भी बहुत-से पहाड़ी मनुष्य बसे हुए हैं, और यहाँ एक धर्मशाला तथा एक गवर्नमेंट-हाउस भी बना हुआ है। रास्ते-भर में यत्र-तत्र रास्ते ही पर पहाड़ी लोग दूकान रखते हैं। पहाड़ में सब पहाड़ों पर कहीं ऊपर कहीं मध्य-भाग में और कहीं नीचे के भाग में पहाड़ी लोग बसे हुए हैं और बराबर खेती-बारी करते हैं। यहाँ पर लगभग एक मील तक पहाड़ के भीतर-भीतर मोटर तथा पथिकों का रास्ता चला गया है। रात-दिन इस रास्ते में बराबर बिजली जला करती है। संध्या समय इस रास्ते को पारकर हम लोग चुरिया-घाटी में ठहर गए।

सुपारी-टाँड

रात-भर विश्राम करके हम लोग दूसरे दिन प्रातःकाल उपर्युक्त स्थान के लिये रवाना हुए। रास्ता जैसे पहले था, क़रीब-क़रीब वैसा ही था। नेपाल-सरकार का प्रबंध इतना उत्तम है कि इन निर्जन पहाड़ों तथा वनों में यात्रा करते हुए यात्री को किसी प्रकार का भय नहीं सताता। अतः हम लोग सुखपूर्वक १० बजे दिन को सुपारी-टाँड में पहुँचे। रास्ते में अनेक सुंदर पुल बने हुए हैं, और पहाड़ों तथा जंगलों की प्राकृतिक शोभा अनुपम है। यह स्थान एक बाज़ार है, और यहाँ पर दूकानें ज़्यादातर पहाड़ी लोग रखते हैं। यहाँ से आगे आजकल मोटर नहीं जाती। यह स्थान आमलेकगंज से लगभग १४ मील उत्तर-पूर्व-कोण पर है। यहाँ से आगे चलने के लिये हम लोगों ने भीमफेदी तक के लिये तामदान ठीक किया।

यहाँ से जो रास्ता भीमफेदी तक गया है, उसकी गति विचित्र है। बीच में पहाड़ी नदी बहती है, और उसके दोनो किनारों पर पहाड़ की श्रेणी बराबर भीमफेदी तक चली गई है। कभी नदी के एक तरफ़ से और कभी दूसरी तरफ़ से पहाड़ के अधोभाग से होकर रास्ता गया है। रास्ता लगभग ४-५ हाथ चौड़ा है, और पहाड़ काटकर समतल बना दिया गया है। बीच-बीच में अनेक पुलों से रास्ता पार करना होता है, और कभी ऊँचे कभी नीचे की चढ़ाई-उतराई मिलती रहती है। यहाँ से आगे हम लोग प्रकृति की छटा का अवलोकन करते हुए भैंसादोहन में जा पहुँचे।

भैंसादोहन

यह स्थान सुपारी-टाँड से लगभग ६ मील उत्तर-पूर्व-कोण पर है। एक पहाड़ी नदी कलकल नाद करती हुई बह रही है, और उसके तट पर यह छोटा-सा नगर बसा हुआ है। प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से यह स्थान पहाड़ में सब स्थानों से उत्तम तथा चित्ताकर्षक है। यहाँ पर नेपाल-सरकार की पुलीस ने हम लोगों के पासपोर्ट की जाँच की। पुनः हम लोग आगे बढ़े। साथ में तामदान के वाहक तथा भारिया (क़ुली) थे। पहाड़ी रास्ते से इनका यह कार्य कठिन प्रतीत होता है; परंतु ये अपने कार्य में इतने अभ्यस्त हैं कि बराबर दौड़ते और कूदते हुए इस कठिन कार्य को करते हैं।

यहाँ से आगे लगभग ५ मील जाकर हम लोग सायंकाल में भीमफेदी पहुँचे।

भीमफेदी

भीमफेदी में हम लोग ठहर गए। यहाँ पर भी एक धर्मशाला तथा एक गवर्नमेंट-हाउस बना हुआ है। यहाँ पर एक सैनिक-भवन (Military barrack) भी है, जिसमें केवल उच्च श्रेणी के सैनिक ही ठहरते हैं। यह एक बड़ा नगर है, और यहाँ का बाज़ार भी साधारण नहीं है।

तीसरे दिन प्रातःकाल हम लोग यहीं से भीमफेदी पहाड़ की चढ़ाई में प्रवृत्त हुए। यद्यपि पहाड़ की चढ़ाई के परिश्रमी तामदान-वाहक थे, परंतु तामदान में बैठे हुए भी नीचे दृष्टि डालने से भय प्रतीत होता था। हमारे देश के आदमी तो विना बोझ के भी पहाड़ पर कष्ट से चढ़ पाते हैं; परंतु ये वाहक बड़ी सुगमता से चढ़ते आगे चले। तीन मील की दूरी पर जाकर हम लोग शीशगढ़ी में पहुँचे।

शीशगढ़ी

यहाँ नेपाल-सरकार का एक क़िला बना हुआ है, जिसमें अस्त्र-शस्त्र रक्खे हुए हैं और कुछ सैनिक अफ़सर भी

रहते हैं। यहाँ हम लोगों के पासपोर्ट ही नहीं देखे गए; किंतु पूरी जामा-तलाशी हुई। यहाँ पर कुछ दूकानें तथा कुछ और लोगों के मकान भी हैं। यहाँ से आगे फिर चढ़ाई प्रारंभ हुई। कुछ दूर जाकर हम लोग शिखर पर पहुँचे, और फिर वहाँ उतराई मिली। पहाड़ उतरने का स्थान जब बहुत दूर था, और जब हम लोग पहाड़ के ऊपरवाले समतल पर पहुँच चुके थे, तब हम लोगों ने पहाड़ के ऊपर टेलीफ़ोन के खंभों के अतिरिक्त रेलवे के सिगनल के सदृश बड़े-बड़े युगल खंभों को देखा। इस पहाड़ पर ये युगल खंभे क़रीब चार-चार फ़र्लांग की दूरी पर खड़े हैं, और दूर से देखने से तार के खंभों की तरह देख पड़ते हैं। लोहे के मोटे तार इनमें लगे हैं। ये खंभे इस स्थान से लेकर नेपाल-राज्य की राजधानी काठमांडू तक चले गए हैं। पूछने से पता चला कि ये रोप लाइन (Rope Line) हैं, जिनके ज़रिए से माल, असबाब तथा व्यवसाय के भिन्न-भिन्न पदार्थ काठमांडू में आते-जाते हैं।

पाठकों को जिज्ञासा होगी कि यह रोप लाइन कैसी है, इस लाइन का एक एंजिन इस पहाड़ पर है, और दूसरा काठमांडू में। ये एंजिन बिजली की सहायता से इस लाइन के कार्य का संपादन करते हैं। जिस वक़्त एंजिन अपने चक्कर की गति प्रारंभ करता है, तो इन खंभों के तार भी चक्कर खाते हैं। बहुत-सी लोहे की कुर्सियाँ भी, जो उन तारों में लटकती रहती हैं, उन तारों के साथ चक्कर काटती हैं। पहाड़ पर ऊपर दृष्टि करने से इन्हें देखकर यही प्रतीत होता है कि बहुत-सी चीलहें गगन में उड़ रही हैं। माल-असबाब यहाँ स्टेशन पर तौले जाते हैं, और लेबिल लगाकर रक्खे रहते हैं। कुर्सियाँ इस स्टेशन पर आती हैं, और उनमें जो ख़ाली होती हैं, उन पर माल-असबाब रक्खे जाते हैं। वे काठमांडू की तरफ़ रवाना होती हैं। जिन कुर्सियों में काठमांडू रवाना हुए माल-असबाब होते हैं, वे जब इस स्टेशन में पहुँचती हैं, तब उतार ली जाती हैं। दिन-रात में कुछ काल पर्यंत यह चक्कर की गति जारी रहती है। पहाड़ पर बड़ी ऊँचाई से होकर माल-असबाब आकाश में निर्भय अपना मार्ग तय करते हैं। वहाँ से आगे पहाड़ उतरने पर हम लोग एक नदी के तट पर, शीशगढ़ी से तीन मील पर, एक बस्ती में, क़रीब दो बजे दिन को, पहुँचे, जिसका नाम कुलीख़ानी है।

पहाड़ में नदियों की शोभा निराली होती है।

कुलीख़ानी

भिन्न-भिन्न प्राकृतिक स्रोतों से पानी ऊँचे से नीचे को बड़े वेग से गिरता है। नदी में भिन्न-भिन्न रंग तथा आकार के पत्थर के टुकड़ों का ढेर पड़ा है। नदी का पानी उनसे टकराता हुआ द्रुत वेग से कलकल-ध्वनि करता हुआ बहता है। ऐसा जान पड़ता है, मानो जल और पत्थर में घोर संग्राम हो रहा है। नदी का पानी दूध-सा देख पड़ता है और शब्द तो इतना तीव्र होता है कि रास्ते-भर कान के पर्दे फटे जाते हैं।

इसके अतिरिक्त रास्ते में, जहाँ नदी तथा पहाड़ के झरने से हम दूर रहते हैं, वहाँ हमें विविध प्रकार के कर्णप्रिय शब्द भी सुनाई देते हैं। मैं कह नहीं सकता, वह कौन-सा कीड़ा था, जो रास्ते-भर पहाड़ के किनारे-किनारे बराबर हम लोगों को सीटी की आवाज़ सुनाता था। संभव है, वह कोई वृक्ष या पौदा हो। झींगुर की झनकार ने तो रास्ते में झनकार ही मचा रक्खी थी। प्राकृतिक स्रोत तथा झरने अत्यधिक हैं। कहीं-कहीं रास्ते में इनमें पेंच (Water-pipe) लगा दिए गए हैं, जिनकी वजह से रास्ते में प्यास का दुःख पथिकों के निकट नहीं आने पाता। कहीं-कहीं पर फ़ौवारे (Fountain Spring) भी बना दिए गए हैं। सारांश यह कि रास्ते में खाने और पीने का दुःख नहीं है।

इस स्थान के आगे हम लोगों ने एक झूलना पुल (Hanging Bridge) को पार किया। इसके आगे छोटी-छोटी पहाड़ियों पर चढ़ते और उतरते हम लोग सायंकाल में कुलीख़ानी से आठ मील पर जाकर चितलांग में पहुँचे।

यह स्थान पहाड़ के नीचे से मध्य भाग तक बसा हुआ है। यहाँ पर सब जगहों से

चितलांग

अधिक जाड़ा पड़ता है। यहाँ पर एक धर्मशाला बना है। उसमें हम लोगों ने आश्रय लिया।

प्रातःकाल उठकर हम लोग आगे चले। इसी

स्थान से चंद्रागढ़ी की चढ़ाई आरंभ हुई। चंद्रागढ़ी को पार करते हुए जब हम लोग शिखर पर पहुँचे, तब कुछ अन्य पथिकों ने वहाँ से नेपाल-राज्य की राजधानी काठमांडू दिखाई पड़ने की बात कही। पथिकों की दृष्टि उधर खिंच गई। मुझे भी ढाढ़स आया कि हम लोग भी अब अपने वांछित स्थान के निकट आ गए। उतराई समाप्त कर, अर्थात् ३ मील की दूरी समाप्त करके, हम लोग सानंद थानकोट पहुँचे। इस स्थान पर कुछ ठहरकर हम लोग आगे काठमांडू की तरफ़ बढ़े। रास्ता उतराई का था। पहाड़ से हम लोग उतर चुके थे; परंतु अब जो सड़क काठमांडू के लिये मिली, वह भी बहुत दूर तक ढालू है। इस रास्ते पर पहुँचकर मुझे अपूर्व आनंद हुआ। कई दिन पहाड़ में चलते-चलते हम लोगों को बीत गए थे। पहाड़ में हम लोग तो अपने को कूपमंडूकवत् ही पाते थे, पहाड़ी लोग चाहे ऐसा न ख़याल करें।

काठमांडू

जाते-जाते काठमांडू की चकाचौंध करनेवाली सुवर्ण-मयी शोभा दृष्टिगत हुई। थानकोट से काठमांडू-नगर ६ मील की दूरी पर है। जो सड़क थानकोट से उस राजनगरी को गई है, वह पथिकों से खचाखच भरी हुई मिली। पुरुषों से स्त्रियों की संख्या कम न थी। रास्ते में नेपाल-पुलीस ने फिर हम लोगों की जाँच की, तथा हम लोगों के टिकट, जो हम लोगों को शीशा-गढ़ी में पासपोर्ट देने पर मिले थे, देखे। हम लोगों के नाम, उम्र तथा काठमांडू में ठहरने के स्थान को भी नोट किया। आगे चलकर जब हम लोग थानकोट से ६ मील पर काठमांडू-नगर के निकट पहुँचे, तब हम लोगों को फिर एक पुलीस-स्टेशन मिला। वहाँ भी हम लोगों की जाँच हुई। वहाँ से आगे बढ़कर हम लोगों ने १२ बजे दिन के समय राजनगरी काठमांडू में प्रवेश किया।

कुछ दूर जाने पर इस नगर की सड़कों पर मैंने बड़ी भीड़ पाई। उन चौड़ी सड़कों पर सभी नगर-वासी आबाल-वृद्ध-वनिता उमड़ पड़े थे। उस भीड़ में होते हुए हम लोग जिस तरफ़ भीड़ जा रही थी, उधर को बढ़े। कुछ दूर आगे जाकर अति कठिनता से भीड़ को चीरते हुए हम लोग एक स्थान पर पहुँचे, जिसका नाम मालूम हुआ कि हनुमान-ढोका है।

हनुमान-ढोका

यहाँ पर एक विशाल हनुमानजी की मूर्ति खड़ी है। एक विशाल मंदिर बीच में है, और वहाँ कई तरफ़ से लड़कें आ मिली हैं। उसी के निकट पुराना राजमहल भी है। शोभा यहाँ पर निराली थी। वहाँ उस भीड़ में जब कि मैं अपनी निगाह चारो ओर फेर रहा था, मेरे एक मित्र ने, जो इस राज्य के एक प्रतिष्ठित रईस हैं, मेरे आगे आकर मुझे अकस्मात् संबोधित किया। नमस्कार के पश्चात् मैंने उनसे भीड़ का कारण पूछा। उन्होंने बतलाया, यह समय दशहरे का है। फूल-पाती का उत्सव भी है। आज यहाँ से जलूस टूँडी-खेल (Military Parade) तक जायगा, जहाँ पर आज यहाँ का सेना-प्रदर्शन बड़ी धूम-धाम से होगा। मेरे मित्र ने वहीं मुझे रोक लिया।

पाठकों को ज्ञात होगा कि यहाँ पर परदे की कुप्रथा नहीं है। अतः उस समय जन-संघर्ष की अपूर्व शोभा थी, जिसका अनुभव उत्तर-भारत में रहने के कारण हिंदू-समाज में मैंने नहीं प्राप्त किया था। बड़ी-छोटी सभी स्त्रियाँ कई क़तार में जलूस के रास्ते के एक तरफ़ विराजमान थीं, और पुरुष दूसरी तरफ़। सड़कों पर पुरुषों तथा स्त्रियों की ख़ासी भीड़ थी। मोटर में बैठकर बड़े घरों के पुरुष-स्त्री बड़ी तादाद में आने लगे। आस-पास के मकानों की छतों से स्त्रियाँ खड़ी जलूस देखने की प्रतीक्षा कर रही थीं। यह दिन नगर-वासियों के आनंद का दिवस था। यह विजया-दशमी का आगमन था, जिसने समस्त काठमांडू को उस दिन जगमगा दिया था। सभी पुरुष-स्त्री तथा बच्चे उस दिन आनंद से परिपूरित होकर हिंदू-ख्याति के द्योतक बन रहे थे।

थोड़ी देर के बाद जलूस निकला। नेपाल-सरकार के राजपुरोहित (Royal Priest) की सेना आगे चली। उस सेना के आगे फ़ौजी बाजा बजता रहा। सेना में क़रीब सौ सिपाही थे, और वे फ़ौजी पोशाक में थे। सेना के पीछे राजपुरोहित तथा उनके पीछे

प्रत्येक का मूल्य ३॥)

नए हिंदुस्तानी १० इंच डबल साइड "हिज़ मास्टर्स वाइस" रिकार्ड

Rs. 3/8/. each

माहीराने फ़न्ने मौसीकी — आलातरीन रिकार्ड



असग़री जान P. 10123.	कजरवा ने हाय सैयाँ बड़ा दुख दीना	दादरा
	आज लाड़ी बसंती रँगा लाई मैं ...	होली
बब्बन जान P. 10124.	ख़याल है कि इन्हें बेनक़ाब देखेंगे ...	ग़ज़ल
	हमारी जानपे जाने अल्ला	,,
मिस दुलारी P. 10125.	मेरी मइयत पर अगर वह बेनक़ाब आया तो क्या	ग़ज़ल आसा
	ज़ुल्म पर ज़ुल्म वह हर रोज़ किए जाते हैं	ग़ज़ल पहाड़ी
मिस इंदुबाला अमेर (अमेचपुर) P. 10126	राधे प्यारी कृष्ण मुरारी ...	होली भैरवी
	ना मार पिचकारी कृष्ण	,,
मिस नीलमबाई P. 10127.	दुखवा देना अब चैत की अजरया हो रामा	चैत
	मोरा पिया परदेसिया कहाँ गेले रे	पीलू
अलीहसन (नाबीना गवैया) P. 10128.	मेरे दरदे दिल की न कोई दवा है	ग़ज़ल
	आस ने कहा पहचान ले मैं क़ातिले ख़ूँख़्वार हूँ	,,
आग़ा फ़ैज़ P. 10129.	रसूले हाशमी के लाड़ले गंजे सवा तुम हो	कालंगड़ा
	कमाने अबरू से तीरे निगाह चली होगी	ग़ज़ल
बाबू गनपति P. 10130.	जो ख़ास बंदा है वह बंदए अवाम नहीं	,,
	चंद रोज़ा इन बुतों की आशनाई देख ले	,,
पं० गोस्वामीना० P. 10131.	शबरी रामचंद्र संवाद हिस्सा अव्वल कथा रामायण	
	,, ,, दूसरा हिस्सा ,, ...	
मास्टर हाशिम P. 10132.	आसकी चहुँ से नज़र अपनी लड़ी रहती है	ग़ज़ल
	दीवानापन नहीं है जलवे हैं आशक़ों के	सिंध भैरवी
मास्टर लमु P. 10133.	मोए तेरे आई क़ज़ा	पहाड़ी
	ये सुख नहीं आँख का नशा है	कोनसिया
सैयद मोहम्मद शरीफ़ P. 10134.	इश्क़ की राह में ईशाक है जो काम किया	ग़ज़ल
	नाला पाबंदे नफ़स का दिले नाशाद नहीं	,,
प्यारे साहब P. 10135.	हो टरोद आब पे मेराज के जाने ब ल	,,
	जब तखत नबुत पर महबूब ख़ुदा बैठे	,,
प्यारे क़व्वाल P. 10136.	फ़रोग़ेनूर से कोनैनधश अभी हो जाएँ	ग़ज़ल क़व्वाली
	मैं हूर पर माइल हूँ न शैदा हूँ परी का	,,
मास्टर राहील P. 10137.	निगाह फेर लो क़िस्सा तमाम हो जाए	कालंगड़ा
	कर ले सौतिया का साथ	भैरवी

नाच का रिकार्ड

पं० महादेव प्र० P. 17527.	नाच-तोड़ा-गत	पीलू
	,, ,, ,, ...	मुलतानी

साज़ का रिकार्ड

चुन्नूखान P. 17528.	सरोद	मालकोस
	,, ...	बागेसरी

नोट—ये नए रिकार्ड्स जारी कर दिए गए हैं। हमारे बाज़ाब्ता डीलर के पास जाकर सुनें और पसंद करें। फ़ेहरिस्त मुंदरजा ज़ैल पते पर तलब करें।

दी ग्रामोफोन कंपनी लिमिटेड, पोस्टबक्स नं० ४८, कलकत्ता [शाख़ बंबई]

हिंदी-भाषा का सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक पत्र—

'आर्यमित्र'

संपादक—

पं० हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न'

वार्षिक मूल्य ३॥), विदेश में ४॥)

इस पत्र में राजनीतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक सभी विषयों पर विवेचना-पूर्ण ललित लेख तथा यशस्वी सुकवियों की सरस कविताओं का सुंदर समावेश रहता है। साथ ही देश-विदेश के ताज़े समाचार भी इसमें पढ़ने को मिलते हैं। इसकी संपादकीय टिप्पणियाँ पढ़कर तो हृदय हिलोरें मारने लगता है। शब्द-विन्यास—और अनुप्रास का ऐसा सलिल समन्वय सहसा आपको अन्य किसी पत्र में पढ़ने को न मिलेगा। इसके 'विनोद-बिंदु' तो ऐसे ग़ज़ब के होते हैं कि पढ़कर हँसते-हँसते पेट फूल जाता है। फिर एक पंथ दो काज, इसको दिया गया चंदा तो वेद-प्रचार-फ़ंड में जाता है और पत्र मुफ़्त पढ़ने को मिलता है। कहिए, कितनी विशेषताएँ हैं? आज ही ग्राहक बनिए।

पता—मैनेजर आर्यमित्र, आगरा

सम्मन बग़रज़ क़रारदाद उमूर तनक़ीहतलब मुक़दमा नं० ३ सन् १९२९

बअदालत जनाब पं० हरीशंकर साहब त्रिवेदी, मुंसिफ़ हवाली, फ़ैज़ाबाद।

रामहरख　　मुद्दई

बनाम शेरबहादुरसिंह मुद्दाअलेह।

बनाम शेरबहादुरसिंह वल्द जयकरनसिंह साकिन कयासी परगना मंगली तहसील ज़िला फ़ैज़ाबाद।

वाज़े हो कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत ३६०) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १२ माह मार्च सन् १९२९ ई० बवक़्त १० बजे दिन के असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़दमे के हालात से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल अमूरात अहम मुतअल्लिक़ै मुक़दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो। और तुमको हिदायत की जाती है कि जुमला दस्तावेज़ात जिन पर तुम अपनी जवाबदिही के ताईद में इस्तदलाल करना चाहते हो, उसी रोज़ पेश करो।

मुत्तला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे, तो मुक़दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमू और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ १९ माह फ़रवरी सन् १९२९ ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से जारी किया गया।

द० मुंसरिम
मुंसिफ़-कोर्ट हवाली।

अगर बयानात तहरीरी की ज़रूरत हो तो लिखना चाहिए कि तुमको (या फ़लाँ फ़रीक़ को या जैसी कि सूरत हो) हुक्म दिया जाता है कि बयान तहरीरी बमाबैन

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़दमा
नं० ए० २ सन् १९२९ ई०

बअदालत जनाब बाबू अवधविहारीलाल साहब बहादुर मुंसिफ़ कुंडा मुक़ाम प्रतापगढ़

रामनरेश वल्द त्रिभुवनदत्त क़ौम ब्राह्मण तिवारी साकिन मौज़ा सरखलपुर परगना व तहसील पट्टी ज़िला प्रतापगढ़ मुद्दई

बनाम

रामशरन वग़ैरह　　मुद्दाअलेह

बनाम रामनरायन वल्द परमेशुर क़ौम ब्राह्मण मिसिर साकिन मौज़ा अभाहरा परगना व तहसील ज़िला प्रतापगढ़

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत १६५।।।≡) असल मय सूद बज़रिए जायदाद मरहूना दायर की है। लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ एकुम मार्च सन् १९२९ ई० बवक़्त १० बजे असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल अमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदेही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुकर्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़दमा के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपनी जवाबदेही की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमूअ और फ़ैसल होगा।

आज ब तारीख़ १९ माह फ़रवरी सन् १९२९ ई०

सम्मन वास्ते क़रारदाद अमूर तनक़ीहतलब

नंबर मुक़दमा ११३३ सन् १९२८

अदालत एडीशनली मुंसफी, देवरिया, ज़िला गोरखपुर।

बाबू धूमन शाही वल्द बाबू हरगोनारायन साकिन मौज़ा नवतन नरकचुआर, परगना सलीमपुर, शरक़ी।

बनाम मुद्दई

बाबू राजनारायण शाही वल्द बाबू मन्नी शाही नाबालिग़ बविलायत बाबू शिव शाही चचा हक़ीक़ी साकिन मौज़ा नौतन नरकचुआर, परगना सलीमपुर शरक़ी। मुद्दाअलेह

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत दख़ल व हरजा के दायर की है। लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १८ मार्च सन् १९२९ बवक़्त १० बजे दिन को असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़दमे के हालात से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और कुल अमूरात अहेम मुतअल्लिक़े मुक़दमे का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो कि जवाब ऐसे सवालात का दे सके, हाज़िर हो और जवाबदिही दावा की करो। और तुमको लाज़िम है कि उसी रोज़ जुमला दस्तावेज़ात पेश करो जिन पर तुम बताईद अपने जवाबदिही के इस्तदलाल करना चाहते हो। तुमको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे, तो मुक़दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे …

नोटिस बनाम मुद्दाअलेह नाबालिग़ व वली के

ब अदालत अडीशनल मुंसिफी, देवरिया, ज़िला गोरखपुर

मुक़द्दमा नं० ११३३। सन् १९२८

बाबू धूमन शाही मुद्दई

बनाम

बाबू महाबीर शाही मुद्दाअलेह बनाम बाबू राज नारायण शाही मुद्दाअलेह नाबालिग़ ब विलायत शिवशाही वली क़ुदरती मुद्दाअलेह नाबालिग़ मज़कूर साकिनान मौज़ा नौतन नरकचुआर परगना सलीमपुर

हरगाह मुक़दमे मुंदरजे उनवान में मुद्दई ने दरख़्वास्त गुज़रानी है कि मुद्दाअलेह नाबालिग़ का एक वली शिव सहाय दौरान मुक़दमा मुक़र्रर किया जाय लिहाज़ा तुम नाबालिग़ को और तुम शिवसहाय वली को इसकी … से इत्तिला दी जाती है कि अगर तामिल इत्तिलानामा हाज़ा से १८ मार्च २९ के अंदर एक दरख़्वास्त इस अदालत में निस्बत अपने या किसी दोस्त मुद्दाअलेह नाबालिग के वली दौरान मुक़दमा मुक़र्रर के लिये … की निस्बत न गुज़रानोगे, तो अदालत एग़राज़ मुक़दमा हाज़ा के लिये किसी और शख़्स को नाबालिग़ मज़कूर का वली मुकर्रर कर देगी।

आज बतारीख़ २५ फरवरी सन् १९२९ को मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

सम्मन बनाम मुद्दाअलेह बिनाबर हाज़िरी असालतन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा
(आर्डर ५ क़ायदा ३)
बअदालत मुनसफ़ी शहर मुक़ाम बनारस, ज़िला बनारस
मुक़द्दमा नंबर ५४४ बाबत सन् १९२८ ई०

रामनरायन — मुद्दई

बनाम

अबदुल्ला — मुद्दाअलेह

बनाम अबदुल्लाख़ाँ वल्द नामालू[म]
छीपी टोला, शहर बनारस

हरगाह मुद्दई ने आपके नाम एक नालिश बाबत ७००) के दायर की है लिहाज़ा आप को हुक्म दिया जाता है कि आप बतारीख़ २८ माह २ सन् १९२९ ई० बवक़्त १० बजे दिन के अदालत हाज़ा में असालतन हाज़िर हों और जवाबदिही दावा की करें और हरगाह वही तारीख़ जो आपकी हाज़िरी के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है पस आपको लाज़िम है कि उसी रोज़ अपने जुमला गवाहों को हाज़िर करें व नीज़ जुमला दस्तावेज़ात जिन पर आप बताईद अपनी जवाबदिही के इस्तदलाल करना चाहते हों उसी रोज़ पेश करें।

आपको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर आप हाज़िर न होंगे, तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी आपके मसमूअ और फ़ैसल होगा।

बसब्त मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत के आज बतारीख़ २६ माह १ सन् १९२८ ई० जारी किया गया।

केवल बतलाने के दाम लेते हैं—खेल मुफ़्त में ही दे देते हैं।

इन खेलों का आनंद मँगाकर देखने ही से आवेगा, खिलाड़ी इनको दिखाकर अमीरों से सैकड़ों रुपए क्षण-भर में बटोर लेते हैं और धनी लोग सभा में स्वयं खेल करके सबको मोहित कर लेते हैं। विधि हर खेल के साथ भेजेंगे। २) से कम का पारसल न भेजेंगे। डाक-खर्च बिलकुल माफ़, सब एकदम मँगाने से १०) सैकड़ा कमीशन। तमाम खेलों के ऑर्डर के साथ १०) पेशगी भेजें।

खेल नं० १—यह ताश के पत्ते पहली बार हाथ फेरने से इक्के, दूसरी बार खाली, तीसरी बार पंजे बन जाते हैं; ॥)

खेल नं० २—खाली पत्ते दिखाकर हाथ फेरो अट्ठे बन जायँगे, फिर हाथ फेरो तो खाली; ॥)

खेल नं० ३—इस ताश को सबके सामने फेंटो और फिर खींच लो बाजा बन जायगा ॥)

खेल नं० ४—ताश के पत्ते दिखाकर हाथ फेरो, छोटे हो जायँगे, फिर और छोटे, फिर और छोटे, फिर गुम हो जायँगे। २)

खेल नं० ५—एक रंग की बेगम है, जो सबके सामने दूसरे रंग की हो जायगी, फिर वही हो जायगी; ॥)

खेल नं० ६—ताश हाथ में रक्खो, कोई आदमी एक पत्ता देखकर बीच में मिला दे, उसी के आवाज़ देने पर पत्ता कूदकर बाहर आ जायगा, अत्युत्तम खेल है। १)

खेल नं० ७—पहले कुछ पत्ते दिखाकर ताश में रखकर ग्लास में रख दें, आवाज़ देने से यह बारी-बारी निकलेंगे। २॥)

नं० ८—ताश का एक पत्ता बोतल के मुँह पर खड़ा करके ऊपर ग्लास रख दें। १)

खेल नं० ९—ताश फेंटते-फेंटते बीच में से फूल या मेवा निकल आता है। १॥)

खेल नं० १०—ताश का नहला है, सबको दिखा दो पंजा बन जायगा। ।)

खेल नं० ११—यह एक रूमाल है सबके सामने इसमें ग्लास रक्खें, जो झटका देने से गुम हो जायगा और फिर उसी में से निकलेगा। १॥)

खेल नं० १२—एक टीन की मेज़ है, सबके सामने एक पत्ता जलाकर या फाड़कर रक्खें, साबित हो जायगा। १॥)

खेल नं० १३—खाली डिब्बे में अंडा डालो अंडे के बदले कबूतर निकलेगा। २)

खेल नं० १४—सुर्मेदानी की-सी एक डिबिया है, इसमें एक गोला है, यह गोला आज्ञा पाते ही कभी अंदर से गुम होगा और कभी बाहर ही से निकल आता है। १॥)

खेल नं० १५—इस डिबिया में पूरे ताश रक्खें, लेकिन उसी समय रूमाल रेशमी रूमाल हैं हाथ फेरने से रंग बदल जायँगे। ५)

खेल नं० १७—रूमाल में रुपया लपेटकर किसी के हाथ में दें, रूमाल खाली हो जायगा। १)

खेल नं० १८—एक बैल है, जो क्षण-भर में कई शक्लें बदलता है। १॥)

खेल नं० १९—लकड़ी का गेंद धागे में पिरोया हुआ आज्ञानुसार चलता और खड़ा होता है। ॥)

खेल नं० २०—कपड़े की थैली है कोई चीज़ डालो गुम हो जायगी फिर आज्ञा पाने पर अंदर से ही निकलेगी ॥।)

खेल नं० २१—दियासलाई की डिबिया सबको भरी हुई दिखाओ और फिर उसी समय खाली। ।)

खेल नं० २२—एक चक्कर फूँक मारने से चलता है लेकिन दूसरा फूँक मारे तो आपकी आज्ञा से मुँह उसका काला कर दे। २॥)

खेल नं० २३—एक ताश का पत्ता दिखावें जो उसी समय दियासलाई की डिबिया बन जायगी। ॥)

खेल नं० २४—एक खाली बक्स सबको दिखा दो और झटका मारो तो रूमाल, काग़ज़ आदि निकल आवें। २)

खेल नं० २५—किसी की टोपी सबको खाली दिखाओ और फिर लंबी-लंबी बेलें निकालते जाओ। १॥)

खेल नं० २६—सबके सामने खाली मुँह दिखाकर छोटे-छोटे टुकड़े काग़ज़ के मुँह में डालो जो लंबे होकर निकलेंगे। ॥)

खेल नं० २७—किसी की टोपी खाली दिखाओ फिर मनीबेग निकालो निकालकर ढेर लगा दो। १॥)

खेल नं० २८—किसी की टोपी लेकर सबको खाली दिखाएँ, फिर बहुत लंबा हंटर निकालकर दिखा दें। ॥।)

खेल नं० २९—किसी की टोपी लेकर कहो कि तुम्हारी टोपी फटी है वह कहेगा नहीं, फ़ौरन् उँगली मारकर फाड़ दो, उँगली निकालो तो फिर साबित। ॥।)

खेल नं० ३०—...

खेल नं० ३१—यह लकड़ी के ... हैं, पहले एक होता है फिर ... दो बनते हैं फिर ३ व ४ बनकर ... घटते-घटते एक रह जाता है। २)

खेल नं० ३२—रूमाल में ... लपेटकर दूसरे के हाथ में दें, ... खाली हो जायगा। १)

खेल नं० ३३—सबको दिखाकर ... ताश का बंडल रखकर खड़े हो ... जिस पत्ते को आवाज़ दोगे वह कूद ... बाहर आ जायगा। ३॥)

खेल नं० ३४—किसी के हाथ ... पानी के ग्लास में ताश का पत्ता ... दें, रूमाल उठावें; पत्ता गायब। ...

खेल नं० ३५—किसी के देखे ... पत्ते ताश में से कूदकर दूसरे हाथ ... और दौड़ते हैं। २)

खेल नं० ३६—पूरे ताश फेंट ... एक पत्ता किसी से खिंचवाओ ... अपने हाथ के पत्ते सूँघकर बता दो ... तुम्हारे हाथ में फलाँ पत्ता है। ...

खेल नं० ३७—आँखों पर ... बँधवाकर किसी से पत्ता खिंच ... और बता दो कि फलाँ पत्ता है। ...

खेल नं० ३८—अंडे से रूमाल ... रूमाल से फिर अंडा बन जाता है। ...

खेल नं० ३९—एक पीक है, ... पानी भरकर फिर खाली करके ... दिखा दें, फिर आपकी आज्ञा से ... पानी निकलेगा कभी खाली होगा। ...

खेल नं० ४०—एक लोटा ... आपकी आज्ञानुसार भर भी ... और खाली भी हो जायगा। ३)

खेल नं० ४१—सबके सामने ... काग़ज़ डालें और मशीन घुमावें, ... बनकर निकलेगा। ५)

खेल नं० ४२—जादू का ... दर्शक-मंडली में सबके सामने इस ... को फेंटकर दो-चार, आठ-दस आद... से १-१ पत्ता खिंचवाकर उसी ता... रखते जायँ और कहें कि अपना-अ... पत्ता सब याद रक्खें फिर ताश को ... फेंटकर बारी से सबका पत्ता निक... दिखाते जावें। सबका अपना-अ... पत्ता ही निकलेगा, बड़ा मज़ेदार ...

महाराजाधिराज (His Majesty the King of Nepal), महाराजा (His Highness the Maharaja of Nepal) तथा अन्य राजकर्मचारी और प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुष मोटर, जोड़ी तथा टमटम से चलकर सेना-प्रदर्शन के स्थान पर जा पहुँचे। पीछे उनके पैदल चलनेवाले पुरुषों तथा स्त्रियों की भीड़ चली। शोभा अनुपम थी। थोड़ी देर में हम लोग टूँडी-खेल में जा पहुँचे।

वहाँ हम लोगों ने देखा कि एक विशाल मैदान सामने है। उसके चारो तरफ़ सशस्त्र सैनिक अनेक श्रेणियों में आगे-पीछे खड़े हैं। बंदूकों का निशाना आकाश की तरफ़, ऊपर को है। सैनिकों की पोशाक फ़ौजी है, और फ़ौजी बाजा बज रहा है। सैनिक अफ़सर मैदान के बीच में घोड़ों पर सवार होकर इधर-उधर घोड़े दौड़ा रहे हैं। मैदान के बाहर चारो तरफ़ नगरवासियों की भीड़ खड़ी है, जिसमें स्त्री-पुरुष तथा छोटे-से-छोटे बच्चे भी सम्मिलित हैं। तोप की सलामी शुरू हुई। आकाश में धुआँ छा गया। सैनिक अफ़सरों ने सीटी बजाई कि एकाएक बंदूकों की आवाज़ ने कान के पर्दे फाड़ना शुरू कर दिया। लगभग आधघंटे तक यही अवस्था रही। तदनंतर इस महान् सेना-प्रदर्शन का विसर्जन हुआ। प्रसन्नता-पूर्वक सब लोग अपने-अपने निवासस्थान को वापस गए।

टूँडीखेल

इस सेना-प्रदर्शन का महान् प्रयोजन गोरखा-जाति में प्रतिवर्ष सैनिक ज्योति का जगाना ही है। प्रत्येक पुरुष-स्त्री तथा छोटे-से-छोटा बच्चा भी इस तरह अति सुगमता से सैनिक पराक्रम का आस्वादन तथा अपने को पराक्रमी बनाने का विचार करता है। हमारे पराधीन भारत की-सी दशा उनकी नहीं है। वे स्वतंत्र हैं। उनके मुख पर स्वतंत्रता की झलक ही सर्वोपरि विराजमान रहती है। उनके अनेक दुर्गुण हमारे एक पराधीनता के दुर्गुण के बराबर नहीं। हम उनमें दुर्गुण भले ही देखें, परंतु वे हम लोगों से कहीं अच्छे और प्रसन्न हैं। बेफ़िक्री की नींद सोते हैं। वे बली तथा पुरुषार्थी हैं, हम लोगों की तरह पाश्चात्य सभ्यता की दुःखमय ज़ंजीरों से नहीं बँधे हैं, और न पिशाचिनी परतंत्रता के ग्रास ही बने हैं।

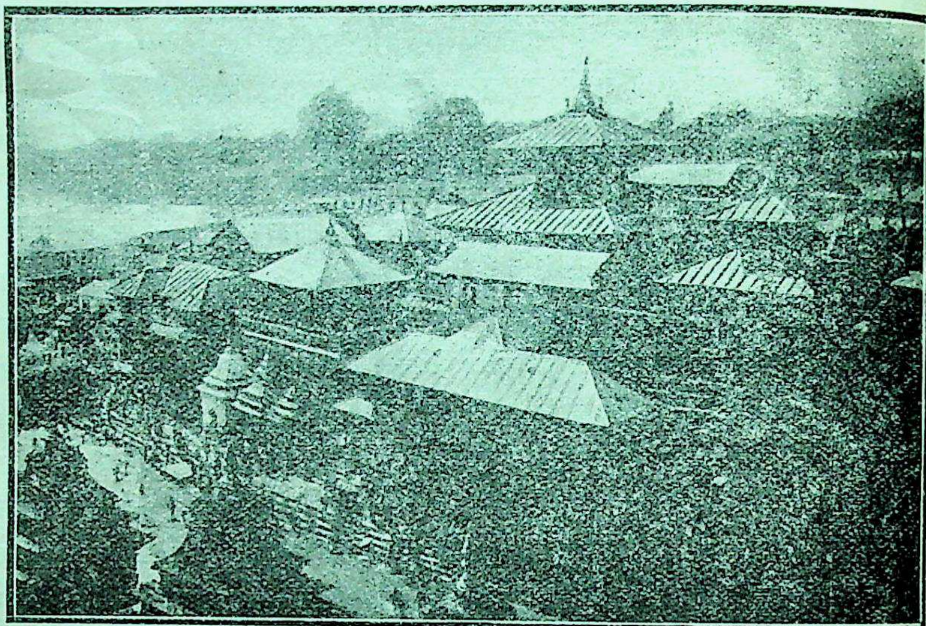
टूँडीखेल से हम लोग काठमांडू-नगर के पूर्व-दक्षिण कोने पर त्रिपुरेश्वर-मुहल्ले में, वाग्मती नदी के तट पर, विराजमान एक धर्मशाला में आकर ठहरे। यह धर्मशाला नेपाल-सरकार की तरफ़ से मुख्यतः भारत-वासियों के लिये बनाई गई है। यह अत्यंत रमणीक स्थान है, और नगर के बिलकुल बाहर है। सब बातों की यहाँ सुविधा है। हम लोग यहाँ सानंद रहने लगे।

पाठक कदाचित् समझते होंगे कि यह राजनगर भी पहाड़-ही-पहाड़ होगा; किंतु ऐसा नहीं है। थानकोट से दक्षिण-पूर्व कोने पर दस-बारह कोस का एक विस्तृत मैदान है। यह नगर इसी मैदान में बसा हुआ है। इसके चारो तरफ़ नदियाँ बहती हैं। उत्तर में रुद्रमती, पश्चिम में विष्णुमती और दक्षिण तथा पूर्व में वाग्मती इसकी शोभा को बढ़ाती हैं। इस मैदान के बीच-बीच में अवश्य छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं; परंतु वे समस्थल हैं और उन पर भी नगर बसा हुआ है। उपर्युक्त विस्तृत मैदान के चारो तरफ़ बहुत ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं, जो उपर्युक्त नदियों की तरह इस नगर की शोभा बढ़ाते तथा इसके रक्षक हैं।

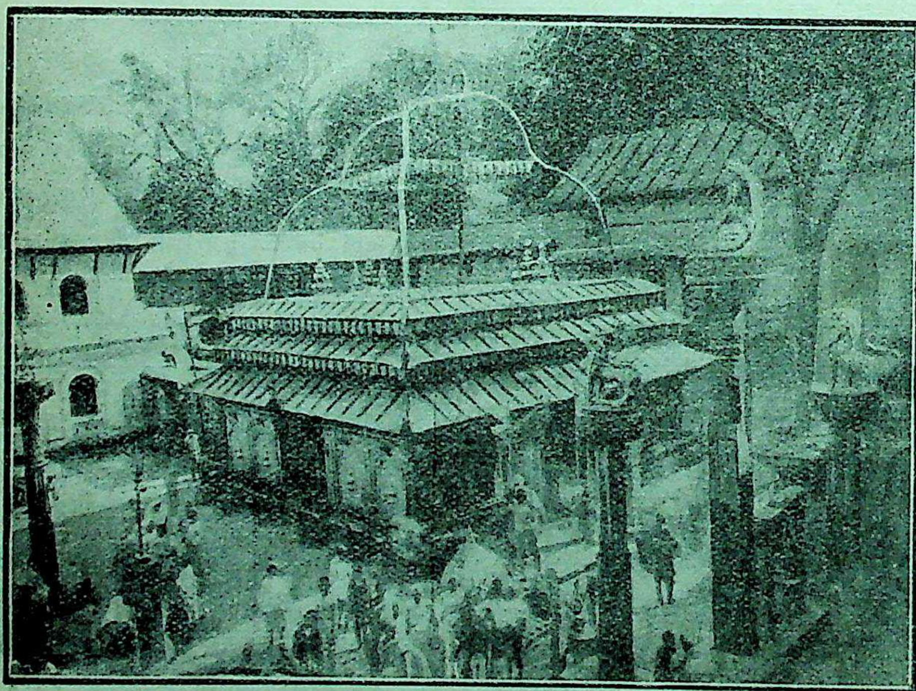
यहाँ की सड़कें सुदृढ़ तथा काफ़ी चौड़ी हैं। सड़कों पर तथा दूकानों और गृहों में बिजली की रोशनी का बहुत अच्छा प्रबंध है। यहाँ पर दो उत्तम चौक हैं। एक इंद्र-चौक, दूसरा आसन-चौक। सर्वत्र पानी की कलें लगी हुई हैं और टेलीफ़ोन का प्रबंध जिस तरह रास्ते में रेलवे-लाइन के किनारे तथा भीमफेदी से इस नगर तक है, उसी तरह इस नगर की प्रधान सड़कों पर भी है। मुख्य राजभवन तो इस टेलीफ़ोन के तार से बँधे हुए हैं। राजभवन (Royal Palaces) विशेष कर इस नगर के पूर्व-भाग में ही हैं, तथा इसी पूर्वी भाग में हाई-स्कूल, कॉलेज, सिविल अस्पताल, मिलिटरी अस्पताल, लाइब्रेरी, हाईकोर्ट, प्रिवीकौंसिल, पोस्टऑफ़िस, धर्मशाला, पार्क और प्रधान राज-कर्मचारियों के भवन इत्यादि बने हुए हैं। नगर के इसी भाग में गुह्येश्वरीदेवी तथा पशुपति महादेव के मंदिर, वाग्मती के तट पर, विराजमान हैं।

यहाँ के मकान छः-सात मंज़िले से कम नहीं हैं। पुराने मकानों की छतें खपड़ों की हैं, और नई इमारतें पुख़्ता छतों की हैं। मकान सभी पुख़्ता हैं। इस नगर को देखकर मुझे काशी का स्मरण आ गया। इस नगर में मंदिर अगणित हैं। प्रायः सभी मंदिरों के शिखरों पर सुवर्ण अधिकांश में झलकता रहता है। यहाँ पर म्युनिसिपैलिटी (Municipality) भी क़ायम है, तथा नगर के भीतर सफ़ाई का बहुत अच्छा प्रबंध है। वर्तमान महाराज सफ़ाई (Sanitation) के विषय में बहुत ही दत्त-चित्त हैं, और हर तरह से इस नगर के उत्थान के लिये तत्पर हैं।

वाग्मती के दाहने तट पर आर्या-घाट पर श्रीपशुपतिनाथ महादेवजी का विशाल मंदिर विराजमान है। स्थान अत्यंत रमणीक है। मंदिर के पश्चिम बाहर खुले मैदान में एक बृहत् सुवर्णमय नंदी बैठा है। उसका आकार देखकर आश्चर्यान्वित हो जाना पड़ता है। पाठक चित्र को देखकर समझ जायँगे कि इस मंदिर की बनावट भारतीय शिवालयों के सदृश नहीं है। इसके अतिरिक्त एक दूसरी बात यह है कि इस मंदिर



श्रीपशुपतिनाथ महादेव का मंदिर



श्रीगुह्येश्वरीदेवी का मंदिर

में पशुपति महादेव की मूर्ति भी भिन्न प्रकार की है। शरीर का संपूर्ण उपरिभाग (Bust) स्थित है, जो सुवर्ण का बना हुआ है। कांति निराली है। मूर्ति के चारो तरफ़ चाँदी के खंभों और तार का घेरा बना है। कोई दर्शक उस घेरे के अंदर नहीं जा सकता। यहाँ तक कि नेपाल-राज्य के सम्राट् भी उसके अंदर नहीं जा सकते। केवल पुजारी उसके अंदर रहता है। घेरे के बाहर से लोग फूल तथा माला आदि की भेंट श्रीमहादेवजी को अर्पण करते हैं, और पुजारी उस भेंट के बदले में चंदनादि प्रसाद दर्शकों को देता है। मैंने भी फूल तथा माला की भेंट श्रीपशुपति महादेवजी को अर्पण की और चंदनादि प्रसाद पाकर अत्यंत आनंदित हुआ।

एक पहाड़ में है, और इसके दक्षिण से मिला हुआ अंश पहाड़ है, जिससे होकर भी वापस जाने का मार्ग है। यही स्थान है, जहाँ गोरखा-स्त्रियों को वाग्मती के तट पर सीढ़ियों पर जल के सन्निकट बैठी हुई संध्या तथा प्राणायाम करते हुए मैंने देखा था। छोटे-छोटे लड़के और लड़कियाँ स्नान के बाद घंटों संस्कृत में ऊँचे स्वर में मंत्रोच्चारण करते हुए देखे गए। श्रीपशुपतिनाथ व गुह्येश्वरीदेवी के मंदिरों में क़रीब-क़रीब दो फ़र्लांग का फ़ासला है। बीच में यहाँ से वहाँ तक पक्की पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हैं। यहीं श्रीगोरखनाथ का मंदिर अगणित मंदिरों के साथ विद्यमान है।

मैं विगत दशहरे के अवसर पर काठमांडू गया था।



नेपाल के सम्राट् तथा उनकी दो सम्राज्ञियाँ

श्रीपशुपति महादेव के मंदिर से ऊपर के मंदिर तक जाने के लिये दो रास्ते हैं। एक सड़क से और दूसरा पहाड़ से। जाते समय मैं सड़क से होकर उपर्युक्त मंदिर को गया। यह मंदिर वाग्मती के बाएँ तट पर स्थित है। यह स्थान एकांत है। मंदिर में प्रवेश करने पर मैंने देखा कि बहुत-से पहाड़ी पंडित संस्कृत में पाठ तथा मंत्रोच्चारण कर रहे थे, और इस प्रकार देवीजी को प्रसन्न करने में दत्त-चित्त थे। यह मंदिर

वह समय वहाँ के बड़े समारोह का है। अतएव जब दर्शक प्रातःकाल उपर्युक्त मंदिरों में जाते थे, तब वहाँ विना प्रयास उन्हें नेपाल-सम्राट् तथा सम्राज्ञी तथा पूर्ण कुटुंब के दर्शन हो जाते थे। सम्राट् नवरात्र में प्रतिदिन नियम से गुह्येश्वरी-घाट पर वाग्मती में स्नान कर देवी की पूजा करते हैं। भारतीय शासकों की लबड़धोंधों यहाँ मैंने नहीं देखी। भारत में तो डिप्टी साहब ग़ुसलख़ाने में भी हों, तब भी वह

डिपुटी साहब बने रहते हैं। और, कलेक्टर या कमिश्नर अगर कहीं निकलें, तो पुलीसवाले कटहे कुत्तों की तरह हर तरफ़ जनता को नोचते फिरते हैं। यदि कभी गवर्नर साहब कहीं गए, तो रास्ते ही में से सरकारी कर्मचारी हौआ-हौआ की पुकार मचाकर जनता का ख़ून सुखाने की फ़िक्र करते हैं। और, यदि 'प्रिंस ऑफ़् वेल्स' कहीं भारत में आते हैं तब तो ग़रीब भारतीय जनता के लाखों-करोड़ों का सत्यानाश का प्रबंध हो जाता है, और जहाँ-जहाँ 'प्रिंस ऑफ़् वेल्स' जायँगे, वहाँ पर्दे में रहेंगे। भला कभी जनता उनके निकट पहुँच तो जाय या वह जनता के निकट आ तो जायँ। श्रीगुह्येश्वरीदेवी के मंदिर में जब मैं पहुँचा, तब वहाँ सम्राट् को भी मंदिर के बाहर सजधज के साथ मैंने उपस्थित पाया। वहाँ मैंने उस भीड़ में देखा, कोई जनता को दुतकारनेवाला नहीं, हटानेवाला नहीं, कोड़ा लगानेवाला नहीं। मंदिर में आगे जब सम्राट् चले गए, तब फ़ौरन् पीछे हम लोग तथा अन्य जनता भी चल दी। आगे-आगे वह चलते थे, और पीछे जनता। जिसने जितना चाहा, उनका दर्शन किया। यह तो है उनकी बात, जो नेपाल के सम्राट् हैं। सम्राट् महोदय का नाम है १०५ श्रीत्रिभुवन वीरविक्रम-शाहदेव। आपकी अवस्था इस समय लगभग २५ वर्ष की होगी।

नेपाल-सरकार का समस्त भार विशेषतः नेपाल-राज्य के प्रधान मंत्री महाराजा चंद्रशमशेरजंगबहादुरराजा के ऊपर है। नेपाल-सरकार आपके कर्णधार हैं। जो उन्नति नेपाल ने इन दिनों प्राप्त की है या प्राप्त कर रहा है, उसका श्रेय आपको ही है। आप के ही अनवरत उद्योग से नेपाल में दासत्व-प्रथा का सर्वनाश हो पाया है। आप नेपाली प्रजा के परम प्रिय हैं। ६४ वर्ष की अवस्था होते हुए भी आप मंत्रित्व का कार्य सुंदर रीति से संपादित कर रहे हैं। नेपाल की प्रजा आपकी सुकीर्ति से अति कृतार्थ है। मेरी प्रतिक्षण ईश्वर से प्रार्थना है कि वह आपको चिरायु रक्खे।

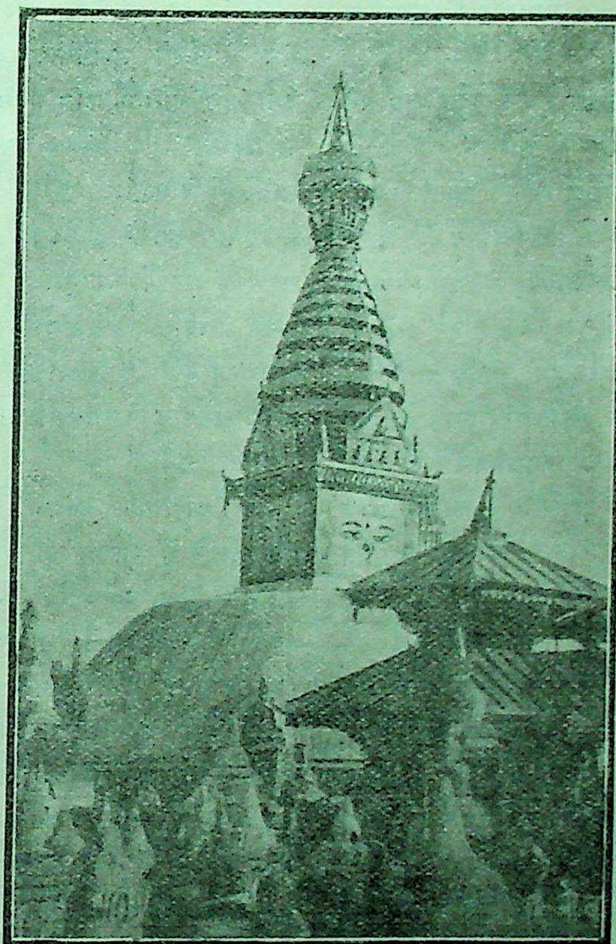

नेपाल-साम्राज्य के प्रधान मंत्री तथा उनकी महारानी

जिस तरह हम प्राचीन भारत के इतिहास में प्रजारंजन के अनेक दृष्टांत पाते हैं, उसी तरह यहाँ भी मैंने एक निराली बात देखी। आबाल-वृद्ध-वनिता सभी स्वतंत्रता-पूर्वक महाराजा के अनुपम निवासस्थान (सिंह-दरबार) पर प्रातःकाल जाकर कुछ निश्चित काल तक अपना दुखड़ा सुनाते हैं। महाराजा सिंह-दरबार में ऊपर आकर खड़े होते हैं। बारी-बारी से दुखियों का दुखड़ा सुनकर महाराज उनके दुःख-निवारण का उचित प्रबंध करते हैं। यही कारण है कि नेपाल में किसी की ज़बर्दस्ती नहीं चलती, कोई किसी को सता नहीं पाता। जरायम बहुत कम है। बूढ़ी विधवाएँ भी लकड़ी के सहारे महाराजा तक पहुँच सकती हैं।

महाराजा राना चंद्रशमशेरजंगबहादुर नेपाल में ठीक वही आज भी कर रहे हैं, जिसे महाराजा अशोक

तथा महाराजा रणजीतसिंह ने अपने शासन-काल में भारत के अंदर किया था। महाराजा अशोक के संबंध में यह कहा जाता है कि उन्होंने अपने राज-महल के सामने एक घंटी लगवा दी थी। जिस पीड़ित प्रजा को जो कहना होता था, वह उस घंटी को बजा देता था। उस घंटी के बजते ही महाराज उस घंटी बजानेवाले की फ़रियाद सुनने के लिये झट घंटी के पास पहुँच जाते थे। यहाँ तक कि यदि महारानी के निवास में रहते थे, तो भी चाहे आधी रात का वक़्त हो, झट वहाँ आ पहुँचते थे। महाराजा रणजीत-सिंह ने तो एक लेटर-बक्स बनवाकर अपने राजमहल के सामने रख दिया था कि जिस व्यक्ति को जो फ़रियाद करनी हो, लिखकर उसमें डाल दे, वह महाराजा के पास पहुँच जायगी। हम नेपाल के प्रधान मंत्री को इस समय में इस कठिन तपस्या के लिये हृदय से धन्यवाद देते हैं।

काठमांडू के उत्तर-पश्चिम कोण पर शंभू नाम के पहाड़ पर बुद्ध-भगवान् का मंदिर, पहाड़ की ऊँची चोटी पर, विराजमान है। इस मंदिर का कुल ऊपरी भाग सुवर्ण का बना हुआ है। पहाड़ के नीचे से ऊपर तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, और उन्हीं के द्वारा पहाड़ पर घंटों में चढ़कर दर्शक इस मंदिर के पास पहुँचते हैं। जितना सुवर्ण इस मंदिर में लगा है, उतना काठमांडू में अन्य कई मंदिरों में नहीं देख पड़ता। यहाँ पर तिब्बत के लामा लोग ठहरे रहते हैं, और अक्सर आया-जाया करते हैं। मैंने इस मंदिर में एक लामा को देखा कि वह बैठा हुआ ध्यानावस्थित था। उसके सामने एक पुस्तक, श्रीमद्भागवत के पत्रों के सदृश, खुली पड़ी थी, बग़ल में कुछ हटकर एक दीपक जल रहा था और कई पात्रों में जल रक्खा था। बहुत देर तक मैं इस प्रतीक्षा में खड़ा रहा कि उस लामा का ध्यान टूटे और उससे कुछ बात करूँ। परंतु जब घंटों मैंने उसे ध्यान में मग्न पाया, तब निराश होकर उस स्थान से एक अन्य स्थान को चल दिया।



बुद्ध-भगवान् का मंदिर

टीका-उत्सव

मैं पहले भी पाठकों से कह चुका हूँ कि काठमांडू में दशहरे के अवसर पर गया था। प्रातःकाल जब सोकर उठा, तो मालूम हुआ, आज विजया-दशमी है। आज से टीका-उत्सव का प्रारंभ है, और यह उत्सव पूर्णिमा तक, अर्थात् पाँच दिवस तक, रहेगा। मैं झटपट कपड़े पहनकर, शहर की तरफ़, इस उत्सव को देखने के लिये बढ़ा। सड़कें भीड़ से खचाखच भरी थीं, रास्ता चलना कठिन था। ज्ञात हुआ, छोटे इन दिनों अपने बड़ों के समीप जाते और उनसे मिलते हैं, और बड़े छोटों को आशीर्वाद-सूचक चंदन या हल्दी का टीका और अक्षत लगाते हैं। सरकारी कर्मचारी अपने बड़े हाकिमों के

पास जाते हैं। विवाहिता तथा अविवाहिता सभी स्त्रियाँ अपने माता, पिता, बड़े भाई इत्यादि के समीप जाकर उनसे टीका ग्रहण करती हैं। ऐसे ही पुरुष भी करते हैं। विजया-दशमी के दिन काठमांडू की शोभा निराली हो जाती है। बड़े घरों की स्त्रियाँ तामदान तथा घोड़ा-गाड़ी और मोटर से दूसरे घरों को जाती रहती हैं। परंतु साधारण घरों की स्त्रियाँ अधिकतर पैदल ही चलती हैं। सिर पर छाता लगाए, पैरों में रंगीन सूती जूती पहने, सुंदर वस्त्रों से सुसज्जित, सिर के केशों को भिन्न रीति से सँवारे हुए, मस्तक में सिंदूर-बिंदु धारण किए, पहाड़ी पोशाक में जिधर देखिए उधर स्त्रियाँ भी सड़कों पर इस समारोह में पुरुषों के साथ सम्मिलित होती हैं।

तारा-हनन

विचित्र सिंह-दरबार की तरफ़ जब मैं बढ़ा, तब मैंने देखा कि उसके द्वार पर पुरुषों की ख़ासी भीड़ है। ज्ञात हुआ, पुरवासी तथा दूर-दूर के लोग टीका-उत्सव में महाराजा चंद्रशमशेर के यहाँ उपस्थित हुए हैं। थोड़ी-थोड़ी संख्या में लोग दरबार के अंदर प्रवेश करने पाते थे, और वहाँ से टीका ग्रहण करके फिर वापस आते थे। ऐसी ही व्यवस्था न्यूनाधिक सभी बड़े राज्य पदाधिकारियों के यहाँ थी। महाराजा चंद्रशमशेर तथा अन्य राज्यपदाधिकारी इस उत्सव में प्रथम महाराजाधिराज के यहाँ भी जाते हैं। सायंकाल, लगभग ४ बजे दिन को, तारा-हनन (चाँदमारी) भी बड़े समारोह के साथ हुआ। फ़ौज के बड़े-बड़े अफ़सर इस अवसर पर तारा-हनन में सम्मिलित होते हैं। थोड़ी देर में बिगुल के शब्द सुनाई दिए। पता चला, महाराज चंद्रशमशेर हवा खाने के लिये निकलने-वाले हैं। मैं द्वार पर से कुछ दूर निकल गया था। बिगुल के शब्द को सुनकर मैं सड़क के एक तरफ़ खड़ा हो गया। चौकड़ी में बैठे हुए महाराज निकले। चौकड़ी के आगे बहु-संख्यक पैदल सिपाही दौड़ते हुए रास्ता साफ़ कर रहे थे, और उनके पीछे घुड़सवार सिपाहियों की भरमार थी। ये सब सिपाही तथा महाराज के साथ चौकड़ी पर दो जनरल फ़ौजी पोशाक में थे। [illegible] उत्सव में ही जनरल रहते हैं, साधारणतः कर्नल रहते हैं। ये दोनो जनरल कोच-बक्स पर सशस्त्र बैठे थे। चौकड़ी हाँकनेवाला चार घोड़ों में से पीछे के एक घोड़े पर बैठकर चौकड़ी हाँकता था। मैंने प्रायः देखा कि जब कभी महाराज बाहर निकलते हैं, तब सड़कों पर दोनो तरफ़ बड़ी भीड़ हो जाती है। महाराज प्रसन्नता से सबके अभिवादन को स्वीकार करते हैं, और अपने शरीर-रक्षक (Body Guard) से, जो उनके समीप बैठते हैं, बराबर पूछते रहते हैं। कभी-कभी उनके साथ महारानी भी होती हैं।

अन्य मुख्य नगर

पाटन-नगर काठमांडू के दक्षिण-पूर्व कोण पर, वाग्मती नदी के दक्षिण तट पर, है, और दस्तकारी तथा उद्योग-धंधे के लिये सुविख्यात है। यहाँ पर लकड़ी तथा हाथी-दाँत के काम बहुत अच्छे होते हैं। यहाँ पर मकानों में अधिकतर लकड़ी का काम होता है। लकड़ियों में नक़्क़ाशी इतनी सुंदर और सूक्ष्म होती है कि उसे देखकर आश्चर्य होता है। यह भी एक बड़ा शहर है। यहाँ पर पुराने नेवार राजा का राजमहल देखने योग्य है। उसके द्वार पर नेवार-राज्य के अंतिम राजा की मूर्ति (Statue) अब तक खड़ी है। यह नगर काठमांडू से मिला हुआ है। बीच में अंतर केवल वाग्मती का है।

यहाँ पर सबसे अधिक आश्चर्यजनक स्थान जो मुझे देखने में आया, वह एक पुराना मंदिर है। पत्थर का बना हुआ यह मंदिर विशाल तथा रमणीक है। इसमें कई मंज़िलें हैं। इसमें पहले और दूसरे दर की जितनी दीवारें हैं, उन सब पर क्रमशः महाभारत और रामायण के अंतर्गत महाजनों की छोटी-छोटी मूर्तियाँ खुदी हुई हैं, और उनके बीच-बीच में महाभारत और रामायण के श्लोक इतने स्पष्ट खुदे हैं कि उन्हें देखते बनता है। जो संस्कृत के श्लोकों को नहीं पढ़ सकते, वे भी केवल चित्रों को देखकर सारा महाभारत और रामायण वहाँ पढ़ सकते हैं। उस मंदिर की दीवारों पर जो चित्र बने हैं, वे ही भली भाँति समस्त महाभारत तथा रामायण को बतला देने में समर्थ हैं। महाभारत तथा रामायण के अंदर की सभी घटनाएँ उस मंदिर की दीवारों में इतनी उत्तमता से अंकित हैं कि उस

मंदिर को देखकर चित्त को बड़ी प्रसन्नता होती है। मुझे इस नगर में अधिक घूमने का अवसर नहीं मिला। अतएव मैं इस नगर के संबंध में पाठकों का अधिक मनोरंजन नहीं कर सकता। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि चौक में वर्तमान महाराज की प्रथम स्वर्गीया महारानी की मूर्ति (Statue) है, जिसकी एक उँगली से पानी की पतली धारा बहा करती है।

मेरी छुट्टी के दिन निकट आ गए, इसलिये नेपाल-राज्य के अन्य नगरों तक जाने का अवसर मैं न निकाल सका। राजधानी काठमांडू तथा इस नगर के अतिरिक्त नेपाल-राज्य में अनेक अन्य बड़े-बड़े उत्तम नगर हैं, जो देखने योग्य हैं। भातगाँव काठमांडू से लगभग ८ मील पूर्व-उत्तर कोण पर है। परंतु समयाभाव से वहाँ तक जाने का मेरा सौभाग्य न हुआ। काठमांडू से इस नगर तक पक्की सड़क गई हुई है। त्रिशूली, नवाकोट, पोखरा, गोरखा, पाल्या इत्यादि दूरस्थ नगरों तक मेरे लिये एक परिमित समय के अंदर पहुँचना असंभव ही था। पर निकटस्थ वृहत् और रमणीक भातगाँव तक भी न पहुँच सका। इसके अतिरिक्त यहाँ के और भी अन्य प्रसिद्ध तथा प्राचीन देवस्थान देखने योग्य हैं। इनमें शहर से पूर्व क़रीब दो कोस की दूरी पर चाँगूनारायण-पहाड़ पर गरुड़ भगवान् का मंदिर तथा इससे एक कोस पूर्व की ओर तारादेवी का मंदिर है। शहर की दक्षिण में दक्षिण-काली का मंदिर है। शहर की उत्तर दिशा में दो कोस पर बालाजी भगवान् का स्थान है। यहाँ एक ख़ासा बाज़ार है। ऊपर नागार्जुन-पहाड़ पर गवर्नमेंट-भवन बना हुआ है, जो गर्मियों में नेपाल-गवर्नमेंट का वासस्थान (Summer Resort) होता है। समयाभाव के कारण इसे भी न देख सका।

शिक्षा-प्रचार

यद्यपि नेपाल-राज्य में शिक्षा का बहुत ही अभाव है, तथापि राजा की दृष्टि अब इधर आकृष्ट हो चली है, और प्रजा को शिक्षित बनाने के लिये नेपाल की गवर्नमेंट अनेक प्रकार के प्रयत्न कर रही है। काठमांडू में एक हाई-स्कूल तथा एक कॉलेज के द्वारा अँगरेज़ी के साथ-साथ अनेक उपयोगी शिक्षाएँ दी जा रही हैं। पाटन-शहर में भी एक हाई-स्कूल है। काठमांडू में अधिकतर गोरखा अँगरेज़ी जानते हैं। अँगरेज़ी-शिक्षा का प्रचार वहाँ दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जाता है; परंतु प्रचार का लक्ष्य उतना ही है, जितना कार्य में आवश्यक है।

अँगरेज़ी-शिक्षा के साथ-साथ यह नहीं है कि वहाँ मातृभाषा गोरखा-भाषा का प्रचार न हो। गोरखा-भाषा का भी ख़ूब प्रचार है। स्कूलों में बच्चों को गोरखा-भाषा में ही समस्त विषयों की शिक्षा दी जाती है। शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष पं० राममणि आदि को इस भाषा के उत्थान के लिये जितना धन्यवाद दिया जाय, वह थोड़ा है। आप गोरखा-भाषा की उन्नति के लिये अनवरत परिश्रम कर रहे हैं, और अपने यत्न को सफलीभूत बनाने के लिये उन्होंने इस भाषा में अनेक पुस्तकें लिखी हैं। मैंने आपका दर्शन किया था। आप बड़े सज्जन हैं, आपने अपने वृहत् पुस्तकालय का अवलोकन मुझे कराया। मुझे अपनी लिखी गोरखा-भाषा की एक पुस्तक 'साधारण चलती की औषध' भी मुझे भेंट की, तथा त्रैभाषिक कोष, जिसे आप आजकल लिख रहे हैं, मुझे दिखाकर उसकी आवश्यकता बतलाई। यह कोष आप गोरखा, संस्कृत तथा अँगरेज़ी-शब्दों का लिख रहे हैं। आपका मैं अत्यंत अनुगृहीत हूँ।

संस्कृत-भाषा का प्रचार वहाँ पर मुझे प्राचीन रीत्यनुसार ही देखने में आया। यहाँ की ऊँची जातियों में संस्कृत का बड़ा महत्त्व तथा प्रचार है। हमारे प्रधान मंत्री महोदय के तृतीय पुत्र श्रीजनरल केशर शमशेरजंगबहादुर राना के पास भी एक विशाल पुस्तकालय है। आप स्वयं एक विद्वान् पुरुष और अनेक भाषाओं के ज्ञाता हैं। आपने महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशी-नाटक की गोरखा-भाषा में अति उत्तम टीका की है। उससे आपकी प्रगाढ़ विद्वत्ता का परिचय मिलता है।

काठमांडू के वीर-पुस्तकालय (State Library) की प्रशंसा मैंने पहले ही सुन रक्खी थी। यह पुस्तकालय नेपाल के भूतपूर्व प्रधान मंत्री महाराजा वीरशमशेर के नाम से विख्यात है। प्रधान मंत्री महोदय के ज्येष्ठ पुत्र जनरल श्रीमोहन-शमशेर जंग

बहादुर राना का दर्शन सिंह-दरबार में मैंने किया। आपसे मेरी बातचीत हुई। आपने मेरी इच्छा को समझकर मेरे साथ एक सैनिक भेजकर मुझे पुस्तकालय दिखलाने के लिये उसे आज्ञा दी। तदनुसार वह सैनिक मुझे पुस्तकालय में ले गया। पुस्तकालय में ताड़-पत्र पर हस्त-लिखित अनेक पुस्तकें रक्खी हुई हैं। वहाँ महाभारत इत्यादि ग्रंथ भी हस्त-लिखित विद्यमान हैं। भारतीय भाषा की लिपि कैसे-कैसे और कब-कब किस-किस रूप को प्राप्त होती गई, यह वहाँ की ताड़-पत्र-लिखित पुस्तकों से भली भाँति प्रकाशित होता है। इस पुस्तकालय का अवलोकन करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। जनरल सर मोहन को इसके लिये मेरा अनेकशः धन्यवाद है।

काठमांडू में मेरी मुलाक़ात मेरे मित्र कर्नल भीम नरसिंह राणा तथा पर-राष्ट्रसचिव-काज़ी मिर्चमान से भी हुई। कर्नल साहब संस्कृत, गोरखा तथा अँगरेज़ी के बड़े विद्वान् हैं, तथा पर-राष्ट्रसचिव महाशय भी अँगरेज़ी के बड़े विद्वान् हैं। आप लोग भी नेपाल में शिक्षा-प्रचार के सहायक हैं। संक्षेप यह कि नेपाल की सारी आधुनिक उन्नति का श्रेय नेपाल के सुविख्यात प्रधान मंत्री महोदय को ही है।

इस पहाड़ी साम्राज्य के अंतर्गत २४ राज्य हैं। इसके दक्षिण भाग में इस साम्राज्य की प्रजा-समुदाय हिंदोस्तानी लोग और उत्तर भाग में भूटानी तथा मध्य-भाग में गोरखा, नेवार तथा अन्य पहाड़ी जातियाँ बसती हैं। हिंदुओं के लिये यह गौरव की बात है कि हिंदुओं के इस कलियुग में भी संसार में नेपाल-राज्य केवल-मात्र स्वतंत्र हिंदू-राज्य है।

यहाँ की विजेता जाति गोरखा-जाति ही है। वह जाति, जिसे हम पराजित जाति कह सकते हैं, नेवार-जाति है। परंतु अब ये दोनो जातियाँ प्रायः गोरखा-जाति ही के नाम से विभूषित हैं। नेवार-जाति यहाँ की प्राचीन जाति है। संसार में अन्य देशों की तरह यहाँ पर इन जातियों में दुर्भाव नहीं पाया जाता। गोरखा-जाति एक वीर तथा सैनिक जाति है, और उसका जीवन सदैव सैनिक जीवन है। गोरखे कभी कायर रहकर जीवन-निर्वाह करना पसंद नहीं करते। वे सदा अपने प्राण हथेली पर लिए ही फिरते हैं। मृत्यु से वे कभी भय नहीं खाते। उनके स्वतंत्र जीवन का कारण भी उनका वीरत्व ही है। इतिहास भी इसका साक्षी है। संक्षेप में उनके स्वभाव का पता उनकी निम्न-लिखित कहावत से भली भाँति प्रकट है।

"कफार हनू भंदा मर्नू राम्रो"

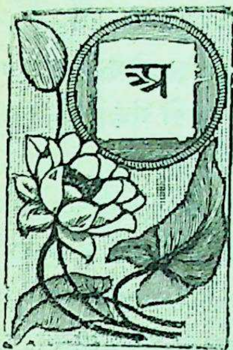
अर्थात् कायर होने से मर जाना ही उत्तम है।

हिंदुओं में चारो वर्णों के लोग यहाँ पाए जाते हैं, और प्रायः सभी सनातनधर्मावलंबी हैं। केवल भूटानी प्रजा तथा कुछ पहाड़ी जातियाँ कुछ अंश में बौद्ध-मतावलंबी हैं। राजधर्म सनातन-हिंदू-धर्म ही है। इस राज्य में हिंदू-समाज के भीतर भारत की-सी अस्पृश्यता, गो-ब्राह्मण-पुकार की आवश्यकता, बाल-विवाह, विधवाओं का करुण क्रंदन, भ्रूण-हत्या तथा पर्दे की घृणित प्रथा नहीं है। राज्य-परिषद् से प्रजा की सुविधा तथा सुख के लिये अनेक क़ानून प्रतिवर्ष बनते रहते हैं। प्रजा को भारत की तरह वहाँ अपने भाग्य को कोसने की आवश्यकता नहीं पड़ती। स्त्रियों को भगाना, कन्याओं से बलात्कार, बच्चों का अपहरण इत्यादि जरायम का लेश-मात्र नहीं। चोरी, डाके, क़त्ल बहुत ही कम होते हैं। गुंडे नज़र नहीं आते। साधारण प्रजा में प्राकृतिक कठिनाइयों के कारण धनाभाव अवश्य है; परंतु वह सुखी है। उसे सुखी बनाने के लिये नेपाल-सरकार प्रतिदिन उद्योग कर रही है, जिसे देखकर मेरा हृदय भर गया। ईश्वर इस पवित्र हिंदू-राज्य को शीघ्र ही समुन्नत करे, और नेपाल शीघ्र ही पूर्ण अंतरराष्ट्रीय स्वतंत्रता का उपभोग करे। यही हमारी मंगल-कामना है।

विलासिनी

[स्वर्गीय श्रीचंडीप्रसाद "हृदयेश" बी० ए०]

(१)



अलौकिक रूप-राशि से विभूषित होकर वह इस विश्व के रंगमंच पर अवतीर्ण हुई थी, आकाश-मंडल से मानो शारदीय सुधाकर की विमल सुधाधारा शरीर रखकर प्रकट हुई थी, समुज्ज्वल तारकावली मानो प्रकाशमयी प्रतिमा के स्वरूप में आविर्भूत हुई थी, नंदन-वन की पारिजात-श्री मानो कांत कलेवर धारण करके प्रस्फुट हुई थी, आनंद-स्यंदिनी मोत्तकला मानो मूर्तिमती होकर अवतीर्ण हुई थी। वह सौंदर्य-सरोवर की कमल-कमला की भाँति कांतिमयी थी।

आनंद-कादंबिनी-जैसी रसमयी, अरुण कादंबरी-जैसी मदमयी, स्वर्ग-संगीत-धारा-जैसी उच्छ्वासमयी, वसंत-कोकिल-जैसी रागमयी, अमृतवाहिनी मंदाकिनी-जैसी पुण्यमयी, आर्ष-कविता-जैसी प्रसन्न-भाव-मयी, प्रभात-लक्ष्मी-जैसी प्रकाशमयी वह इस धरा-धाम को अपने अपूर्व लावण्य की आलोकमाला से समुद्भासित करने के लिये आई थी। वह स्वर्ग की सौंदर्य-राशि थी, और विमुग्ध विश्व ने अपनी समस्त विमल विभूति से उसका मंडन किया था।

नंदन-निकुंज की शीतल छाया के कृष्णांबर से सूक्ष्म तंतु-पुंज लेकर यदि स्वर्ग ने उसकी आपादलंबित कलित कुंतल केश-राशि की कल्पना की थी, तो विश्व ने रत्नाकर के गंभीर विशाल हृदय में वात्सल्य-सुंदर भावों के समान लीला करनेवाले समुज्ज्वल मुक्ताफलों से उसका शृंगार किया था। प्रभात-सूर्य की प्रोज्ज्वल प्रभा के सार को लेकर यदि स्वर्ग ने उसके प्रसन्न-शोभामय ललाट की रचना की थी, तो विश्व ने मणि-मंडित कांचन-किरीट से उसे विभूषित किया था। त्रिपथगामिनी मंदाकिनी के पवित्र, शीतल सलिल में उत्पन्न होनेवाले स्वर्ण-कमल की कांति से यदि स्वर्ग ने उसके विशाल ललित लोचनों को प्रकल्पित किया था, तो विश्व ने प्रणय-प्रदीप के स्निग्ध कज्जल की रेखाओं से उन्हें अंकित किया था। पारिजात-पादप के प्रथम पल्लव से यदि स्वर्ग ने उसके मधुर अधरों को विरचित किया था, तो विश्व ने सुरभित तांबूल-राग से उन्हें रंजित किया था। सुरेंद्र के प्रमोद-वन में विकसित होनेवाली चंपक-कलिका में यदि स्वर्ग ने उसके श्रवणद्वय का सादृश्य प्राप्त किया था, तो विश्व ने हीरकजटित कर्णफूलों से उन्हें मंडित किया था। महालक्ष्मी के कर-कमल में लीला करनेवाले लीला-कमल की कोमल कांति से यदि स्वर्ग ने उसके कपोलों की रचना की थी, तो काश्मीर-केशर के कुंकुम से विश्व ने उन्हें सुशोभित किया था। उर्वशी के पिंजर-बद्ध शुक को देखकर यदि स्वर्ग ने उसकी नासिका को निर्मित किया था, तो विश्व ने अनबिधे मोती को वेधकर उसके नकवेसर को आलंबित किया था। भगवती दुर्गा के सुरा-पात्र को देखकर यदि स्वर्ग ने उसका चिबुक गढ़ा था, तो विश्व ने कृष्ण-बिंदु से उसकी पूजा की थी। स्वर्ग-स्वामी विष्णु भगवान् के पांचजन्य को अवलोकन करके यदि स्वर्ग ने उसके कल-कंठ को चारु कल्पना की थी, तो विश्व ने उसमें चंद्रहार पहनाया था। शुभ्र ऐरावत के कुंभ-द्वय को दृष्टि-पथ पर रखकर यदि स्वर्ग ने उसके पीन पयोधरों को परिपुष्ट किया था, तो विश्व ने उन्हें रत्न-खचित नील कंचुकी से आच्छादित करके उन पर मणिमाल्य को विलंबित किया था। यदि स्वर्ग ने सच्चिदानंद की निराकार धारणा से उसकी कटि के सूक्ष्मत्व की समता करने का प्रयास किया था, तो विश्व ने कल-कलमयी कांचन-किंकिणी से उसे परिवेष्टित किया था। कैलास-स्थित मानसरोवर की विमल तरंगों में यदि स्वर्ग ने उसके कोमल बाहुद्वय का आकार आविष्कृत किया था, तो विश्व ने उन्हें मणिमय कंकणों से आभूषित किया था। प्रस्फुटित गुलाब के माधुर्य से यदि स्वर्ग ने उसके

कोमल चरणों का निर्माण किया था, तो विश्व ने उन्हें अनुराग-राग से परिमंडित किया था। उस स्वर्ग की प्रफुल्ल शोभामयी प्रतिमा का चारु श्रृंगार करके विश्व ने उसे आदर-सहित देवमंदिर में स्थापित किया था।

स्वर्ग ने उसके कोमल कलित कलेवर को कांतिमय बनाया था सौंदर्य की समुज्ज्वल शोभा से, और विश्व ने उसे आभूषित किया था सुवर्ण-वर्ण चीनांशुक से। स्वर्ग ने दिया था रूप, विश्व ने किया था विलासमय श्रृंगार। स्वर्ग ने दी थी सुवर्ण-प्रतिमा, और विश्व ने उसे परिमंडित किया था गुणावली से। स्वर्ग ने दी थी भावमयी कविता, और विश्व ने उसे अलंकृत किया था अलंकार से। स्वर्ग और संसार, दोनो ही के अनुराग और आदर की वह प्रेमपात्री थी!

इस प्रकार वह ललित-लावण्यमयी राजकुमारी अवंतिकेश्वर के राजप्रासाद को आलोकित करती थी!

(२)

अवंतिका-कुमारी ने कुंतल-किशोरी का कर-कमल अपने पाणि-पद्म में लेकर सस्नेह कहा—कुंतल-कुमारी! अवंतिका के राजप्रासाद में मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ।

कुंतल-कुमारी ने मधुर स्वर में कहा—बहन! तुम्हारे दर्शन करके आज मैं धन्य हुई। मेरी बहुत दिनों की साध आज पूरी हुई। तुम्हारे अलौकिक सौंदर्य की महिमा की स्तुति से समस्त संसार संगीतमय हो रहा है। तुम्हारी इस प्रफुल्ल-शोभामयी मूर्ति का मंगल दर्शन करने के लिये ही मैं कुंतल से यहाँ आई हूँ।

अवंतिका-कुमारी ने मुसकिराकर कहा—यह मेरा अहोभाग्य है! कुंतल-कुमारी के प्रफुल्ल पाद-पद्म के पराग से अपने इस प्रासाद को पवित्र होते हुए देखकर आज मैं अपूर्व आनंद से तरंगित हो उठी हूँ।

कुंतल-कुमारी ने गद्गद स्वर में कहा—और मैं तुम्हारी इस आनंद-तरंग से अपने हृदय की अभिलाषा का अभिषेक करूँगी। करने दोगी बहन?

अवंतिका-किशोरी ने प्रणय के उज्ज्वल उल्लास में कहा—अवश्य! यदि स्वीकार करोगी, तो मैं अपनी इस विमल आनंद-धारा से तुम्हारे अरुण-राग-रंजित पाद-पद्मों तक का प्रक्षालन करूँगी? ऐसा अलभ्य अवसर कहाँ मिलता है?

कुंतल-कुमारी ने कहा—बहन, ऐसा न कहो। मैं छोटी हूँ, तुम्हारी सेवा ही मेरी इष्ट साधना है। एक ही दिन के दर्शन से, एक ही मुहूर्त के परिचय से मैं तुम्हें अपनी बड़ी बहन के समान स्नेह करने लगी हूँ।

अवंतिका-कुमारी ने आनंद से प्रसन्न होकर प्रेमाप्लुत वाणी में कहा—तब आओ, हम दोनो मंदाकिनी और कालिंदी के समान परस्पर आलिंगन करें।

दोनो एक दूसरे के गले लग गईं। सारिका कूक उठी, मयूरी नाचने लगी, और सखी-मंडली सुमन-वर्षा के साथ-साथ स्वागत-संगीत की विमल धारा प्रवाहित करने लगी। वह आनंद और अनुराग के सम्मिलन का समुज्ज्वल समारोह था!

❀ ❀ ❀

कुंतल-किशोरी ने आनंद से विभोर होकर कहा—बहन, तुम्हारा यह प्रोज्ज्वल प्रासाद, तुम्हारा यह रस-रंग-मय जीवन-व्यापार एवं तुम्हारा यह स्नेहमय सखी-मंडल, सब-के-सब विलास के मूर्तिमान् महोत्सव के समान प्रतीत होते हैं। जिधर देखो, उधर ही विलास की कलकलमयी धारा प्रवाहित हो रही है, और उसके बीच में साक्षात् सौंदर्य-लक्ष्मी की भाँति सुशोभित हो रही हो तुम—तुम मेरी परम प्यारी बहन।

अवंतिका-कुमारी का मुखमंडल बाल-सूर्य के समान समुज्ज्वल हो उठा। आवेश और उल्लास के साथ उसने उत्तर दिया—बहन इंदुलेखे! विलास ही मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है। देखो, प्रकृति के परम विलास की आभा से विश्व का मनोमंदिर कैसा आलोकमय प्रतीत हो रहा है। प्रणय की प्रोज्ज्वल विलास-धारा निखिल विश्व को शीतल, मधुर और संगीतमय बना रही है। विलास—अहा। कैसा सुंदर, कैसा सरस, कैसा सुरभित, कैसा आनंदमय है! विलास! विलास ही विश्वात्मा का पवित्र अक्षय आलोक है।

कुंतल-कुमारी इंदुलेखा ने अवंतिका-किशोरी के प्रफुल्ल वदन-मंडल पर आनंदमयी शोभा के उस विलास का पुण्य दर्शन किया, जो अरुणोदय के समय ओस-कण-अंकित पद्म-श्री के प्रफुल्ल मुख पर विलसित होता

है, जो शीतल सांध्य-समीर से हिल्लोलित मकरंद-बिंदु-मंडित गुलाब के आनंदपूर्ण आनन पर लीला करता है, जो शांति-धारा में स्नान करती हुई शारदीया रजनी के चंद्रिका-चर्चित वदन-मंडल पर प्रस्फुट होता है, जो चैत्र-चंद्र के पूर्ण प्रतिबिंब को हृदय पर चंद्र-मणि के समान धारण करके प्रवाहित होनेवाली स्वच्छ-सलिला सुर-सरिता के तरंग-नृत्य में समुद्भासित होता है, एवं जो अमरावती के रंगमंच पर पंचम स्वर में वासंत-रागिनी गानेवाली स्वर्ग-सर्वस्व उर्वशी के मदमय लोचनों में स्फुट होता है। वह विश्व-कवि की मूर्तिमती कल्पना के समान उस समय आनंदमयी, रसमयी एवं उच्छ्वासमयी-सी प्रतीत हो रही थी।

कुंतल-कुमारी एकटक देखने लगी। अवंतिका-कुमारी ने हँसकर उसके दक्षिण कपोल को चूम लिया।

सखी-मंडल की उल्लासमयी सरस संगीत-सरिता से राजप्रासाद परिप्लावित होने लगा।

(३)

सांध्य-श्री के अंचल से शीतल समीर क्रीड़ा कर रहा था। पुष्पपुंज उसके चरणों में प्रणिपात कर रहा था। अवंतिका-कुमारी गा रही थीं; कुंतल-किशोरी वीणा बजा रही थी; सखीमाला की मध्यमणि मालती ताल दे रही थी—

गान

लखि सखि! साज आज उपवन को।
फूल-फूल सुरभित करि राख्यो, सीतल कोमल कुंजभवन को;
सुरभि समीर मंद मदमात्यो, चूमत चारु गुलाब-बदन को।
चारु चंद चूमत चित चोरत, सरसावत रति सरस सदन को;
त्यों हृदयेश'हृदय भरि भेंटहि, लहि जीवन फल जीवनधन को।

समीर के शीतल सुरभित हिल्लोल पर आरूढ़ होकर संगीत के चंचल स्वर गगन-मंडल में उन्मुक्त पक्षियों की भाँति विहार करने लगे।

कुंतल-किशोरी ने आनंद से उत्फुल्ल होकर कहा—"बहन! तुम्हारा यह अपरूप माधुर्य कवि की उद्दाम कल्पना से भी अधिक सुंदर है।"

अवंतिका-कुमारी ने मुसकिराकर कहा—"बहन! मुझमें ऐसा क्या अलौकिक है, जो तुम्हारे हृदय को आनंद से इतना उत्फुल्ल बना देता है?"

कुंतल-कुमारी ने आंतरिक अनुराग और आनंद से आवेशमयी होकर प्रेम-परिप्लावित मधुर स्वर में कहा—"बहन! सबसे अधिक लावण्य है तुम्हारे दर्पण-विमल-भाव-विकास में; तुम मानो साहित्य की समस्त नायिकाओं की कल्पना का केंद्र हो, तुम मानो आनंद-शीतल शृंगार की लीला-भूमि हो, संगीत के सरस स्वर तुम्हारे कल-कंठ से निकलते समय मूर्तिमान् से प्रतीत होते हैं। तुम जब हँसती हो, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो तुम्हारी अंतर-विहारिणी आत्मा ही धवल हास्यधारा बनकर सहसा प्रकट हो गई है; जब तुम गाती हो, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो तुम्हारे हृदय की रंग-भूमि पर नृत्य करनेवाली प्रणय-प्रवृत्ति ही उस संगीत में अपने को परिव्यक्त कर रही है। तुम्हारे कमल-लोचनों में तुम्हारी आत्मा का आलोक स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है; तुम्हारे अधर पर तुम्हारे चंचल भावों की लीला सुस्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। तुम्हारा यह कुसुम-कांत कलेवर तुम्हारे आंतरिक माधुर्य का मूर्तिमान् चित्र है। तुम मानो अपनी आत्मा की प्राणमयी साकार प्रतिमा हो। बहन! तुम्हारा बाह्य अंतर का रूपांतर है; तुम्हारा अंतर बाह्य का अविकल आलोक-चित्र है, और वे दोनो—तुम्हारा बाह्य और अंतर, दोनो—सुंदर हैं, सुरम्य हैं। तुम्हारे इस अलौकिक लावण्य का यही एकमात्र रहस्य है।"

अवंतिका-कुमारी करताल देकर कहने लगी—"इंदु-लेखे! तुम तो प्रणय की मूर्तिमती, आनंदमयी कविता हो। यदि तुम कदाचित् पुरुष होतीं, तो अवश्य मेरी इस सौंदर्य-सरिता में आकंठ निमग्न हो जातीं। मेरी इस सौंदर्य-कादंबरी के मद से उन्मत्त होकर तुम कदाचित् मेरे इन चरणों के पथ को अपने पलकों से परिष्कृत करतीं।"

कुंतल-किशोरी ने गंभीर भाव से कहा—"अवश्य! यह तो परम सौभाग्य का विधान होता। ऐसा अमूल्य रत्न, विलास के महासमारोह का ऐसा सजीव चित्र, स्वर्ग-संगीत का ऐसा मूर्तिमान् स्वरूप यदि साधना और सेवा का विषय बनाया जा सके, तो स्वर्ग-सुख उसके सामने नगण्य पदार्थ के समान है।"

अवंतिका-किशोरी ने हास्यमयी होकर कहा—"कौन

जाने ? पर तुम्हारे इस सुखमय साहचर्य से मुझे इसकी सत्यता का कुछ-कुछ आभास अवश्य प्राप्त हुआ है ।''

कुंतल-कुमारी ने गंभीर भाव से कहा—''तब मैं अपना उद्देश्य निवेदन करने का साहस करूँ ? आशा है, बहन ?''

अवंतिका-कुमारी चकित हरिणी की भाँति विस्फारित-लोचना होकर बोली—''उद्देश्य ! उद्देश्य ! बहन ! तुम्हारा क्या उद्देश्य है ? अपने उद्देश्य की तो तुमने कभी चर्चा नहीं की ।''

कुंतल-कुमारी ने स्थिर स्वर में कहा—''बहन ! मैं यह जानना चाहती हूँ कि तुमने अपना यह देवदुर्लभ लावण्य किस महाभाग के चरणों में उत्सर्ग करने का संकल्प किया है ?''

अवंतिका-किशोरी ने शांत भाव से उत्तर दिया—''अभी तक किसी के नहीं; किंतु बहन, जब तुमने पूछा है, तब अपने संकल्प की बात मैं कहूँगी । मैंने संकल्प किया है कि जो महापुरुष मेरे इस माधुर्य के विलास को, चंद्रमा की सुधा-धारा से स्नान कराकर, प्रफुल्ल पुष्पों से सुसज्जित करके एवं प्रकृति के संपूर्ण वैभव से विभूषित करके, अमृतमय आनंद से आलोकित कर सकेगा, उसी के श्रीचरणों में मैं अपना यह यौवन-रत्न उत्सर्ग कर दूँगी । मेरी आत्मा के समुज्ज्वल कुटीर में, मेरे हृदय की रसरंगमयी रंगभूमि में एवं मेरे यौवन-वन के कुसुमित प्रदेश में जो विलास की अमृतमयी मंदाकिनी प्रवाहित करने में समर्थ होगा, वही मेरा हृदयेश्वर होगा । उसी के पाद-पद्मों को मैं अपने अनुराग-राग से रंजित करूँगी, उसके हृदय की प्रणय-पिपासा को मैं अपनी आनंदमयी लीला से शांत करूँगी, और उसी के हृदय पर मैं मणिमाला के समान आलंबित होऊँगी ।''

कुंतल-किशोरी ने उस विस्फारित-लोचना राजकुमारी के लोचनों में एक अभिनव आनंद की ज्योति देखी—उसमें आत्मा का आलोक था, प्रेम की प्रभा थी, मद की अरुणिमा थी । कुंतल-कुमारी विमुग्ध दृष्टि से उस अभिनव आनंद-मूर्ति को देखने लगी ।

उस समय प्राची-दिशा में स्थित होकर पूर्ण चंद्र भी विमुग्ध विस्मयोत्फुल्ल दृष्टि से विलास के उस रसमय दृश्य को देख रहे थे ।

(४)

कुंतल-किशोरी इंदुलेखा ने गद्गद स्वर में कहा—''अब आज्ञा दो बहन ! मेरी माता का समाचार आया है—उन्होंने मुझे बुलाया है ।''

अवंतिका-कुमारी के कमल-नयन मकरंद-बिंदु-पूर्ण हो गए । प्रणय-जन्य शोक से विह्वल होकर वह कहने लगी—''बहन ! तब इस प्रेम के विलास को तुमने इतना परिवर्द्धित क्यों किया ? यह सुखमय संयोग क्या वियोग-वह्नि में भस्मसात् हो जायगा ?''

कुंतल-किशोरी के नयनों से अविरल अश्रुधारा पतित होने लगी—बाष्पावरुद्ध कंठ से उसने कहा—''न-बहन, यह सौहार्द, यह स्नेह, यह प्रणय अक्षय है, अविनश्वर है, स्वर्गीय है । विनाश का विकराल कर हमें स्पर्श तक नहीं कर सकता । विमल, शांत अध्यात्म आनंद की स्मृति की भाँति मैं इस स्नेह को अपने हृदय का आलोक बनाकर रक्खूँगी । जो कुछ भी हो, यह संबंध चिरजीवी है । अमृत से इसका अभिषेक हुआ है, आनंद से इसका शृंगार हुआ है, और पुण्य ने इसका संस्कार किया है । तब क्या यह नष्ट हो सकता है ? ऐसी अनर्थ-कल्पना करने की आवश्यकता नहीं ।''

कुंतल-कुमारी की इस स्नेह-सरस वाक्यावली से अवंतिका-कुमारी को सांत्वना और शांति नहीं प्राप्त हुई । कविता की वाच्यवृत्ति सदा संतोषमयी नहीं होती । अवंतिका-कुमारी कुंतल-कुमारी के वक्षःस्थल पर सिर रखकर रोने लगी—कुंतल-कुमारी की कंचुकी आर्द्र हो गई, और उस आर्द्र नील कंचुकी से सौंदर्य की एक अभिनव शोभा विलसित होने लगी । कुंतल-कुमारी ने कहा—''बहन ! शांति धारण करो । मेरा विश्वास है, मेरी दृढ़ धारणा है कि भगवती चराचरेश्वरी कल्याण-सुंदरी की अनुकंपा से हम दोनो अनंत आनंद के सुमधुर संबंध में आबद्ध होकर चिर-साहचर्य का सौभाग्य और सुख प्राप्त करेंगी ।''

तर्क का समय नहीं था, विश्लेषण की आवश्यकता नहीं थी । अवंतिका-कुमारी ने एक बार लोचन उठाकर कुंतल-किशोरी की ओर देखा, और उसी समय कुंतल-कुमारी ने अपनी आँखों से उसकी आँखों में विश्वास

की वारुणी उँडेल दी। अवंतिका-कुमारी का शोक अनेकांश में उस वारुणी के तीव्र मद में विलीन हो गया। उसने शांति-मधुर स्वर में कहा—"तुम्हारे ये पुण्य वचन मिथ्या नहीं होंगे बहन! तुम्हारी शाश्वत वाणी की सत्यता में मुझे अब संदेह नहीं है। पर प्रतीक्षा की विकलता तो असहनीय है।"

कुंतल-किशोरी ने मधुर स्वर में कहा—"न बहन, देखो, सामने पुण्य पुष्कर में लीला करनेवाली कुमोदिनी को देखो—जन्म-भर चंद्रमा के पाद-प्रक्षालन की प्रतीक्षा करती है। उसे क्या दुःख है?"

अवंतिका-कुमारी के नयन आनंद से उज्ज्वल हो उठे। उसने कहा—"ठीक कहती हो बहन, मेरा यह विलास मेरे ही जीवन-पथ का अक्षय आलोक होगा।"

विश्वास ही प्रेम की लीलाभूमि है।

(४)

अवंतिका की सभा में राजसिंहासन पर आसीन होकर अवंतिका-कुमारी वैजयंती राजकुमारों के लाए हुए उपहारों को देख रही है। जिसका उपहार सर्वश्रेष्ठ होगा, उसी के कंठ में वह विजयमाल पहनावेगी। सब समुत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देख रहे हैं।

किसी के अमूल्य चंद्रहार की ज्योति से राजसभा जगमगा उठी; किसी के गज-मोती की माला से समस्त रत्न-राशि हतप्रभ हो गई; किसी का प्रोज्ज्वल किरीट बालसूर्य की भाँति सभा में समुद्भासित हो उठा; किसी का लाया हुआ चीनांशुक अपनी अनेकवर्ण किरणें विकीर्ण कर रहा था—सहस्रों प्रकार के उपहार आए थे; पर अवंतिका-कुमारी को कोई उपहार नहीं रुचिकर प्रतीत हुआ। उसने निर्विकार भाव से सबकी भेंटें लौटा दीं—भग्न गृह की भाँति सब हताश होकर उदास दृष्टि से राजकुमारी की ओर देखने लगे।

धीरे-धीरे मधुर पादविक्षेप करते हुए कुंतल-किशोरी के सहोदर कुंतल-कुमार अपने आसन से आगे बढ़े। आह! कैसा समुज्ज्वल सौंदर्य था? कैसा ललित मधुर पादक्षेप था? कैसी कवितामयी लोचनद्वयी थी? वह मानो स्वयं ही उपहार बनकर आगे बढ़े। राजकुमारी वैजयंती ने उनको उपहार-स्वरूप स्वीकार कर लिया, और उसके विनिमय में राजकुमारी ने अपने आपको उनके चरण-कमलों पर उत्सर्ग कर दिया। अंतर ने स्वीकृति दे दी; बाह्य आडंबर की अपेक्षा करने लगा।

धीरे-धीरे वह सिंहासन के पाद-प्रांत पर पहुँच गए। अपने हृदय-पट से धीरे-धीरे उन्होंने एक चित्र-पट निकालकर राजकुमारी वैजयंती के कर-कमलों में दे दिया। राजकुमारी ने देखा—चंद्रमा की सुधा-धारा से वन श्री परिप्लावित हो रही थी, मंदाकिनी आनंदमयी होकर बही जा रही थी; उसके सुरम्य तट पर स्थित मालती-कुंज के कुसुम-भूषित तोरण द्वार पर एक स्फटिक-शिला पड़ी थी, और उस पर राशि-राशि सुमन बिछे हुए थे, और उस फूलों के बिछौने पर फूलों से भी अधिक कोमल एवं कमनीय एक अनिंद्य सुषमामयी रमणी बैठी हुई थी। चंद्रमा की प्रफुल्ल मूर्ति की ओर देखते-देखते वह तन्मयी-सी होकर वीणा बजा रही थी, और उस चित्र-पट के निम्न देश में सुंदर रत्न-खचित अक्षरों में अंकित था—

"विलासिनी"

वैजयंती ने देखा—वह विलासिनी और कोई नहीं, वह स्वयं थी। आनंद की आभा से उसका मुखमंडल उज्ज्वल हो उठा—उसके मधुर अधर पर मधुर मुसकिराहट, प्रभात-प्रकाश में खिलनेवाली गुलाब-कली की भाँति, विकसित हो उठी। धीरे-धीरे मंद मातंग-गति से वह सिंहासन से नीचे उतरी, और ब्राह्मणों की आशीर्वादमयी तंडुल-वर्षा में, सखियों की अनवरत संगीत-धारा में, राजकुमारियों की अविरल पुष्प-वर्षा में एवं उपस्थित जनसमूह की जय-जयकार में, उसने अपने कर-कमलों की गूथी हुई विजयमाला कुंतल-कुमार विजयसिंह के कलित कंठ में दोलायमान कर दी।

❀ ❀ ❀

उसी समय एक ओर से आकर कुंतल-किशोरी ने वैजयंती को प्रणय-पाश में बाँध लिया।

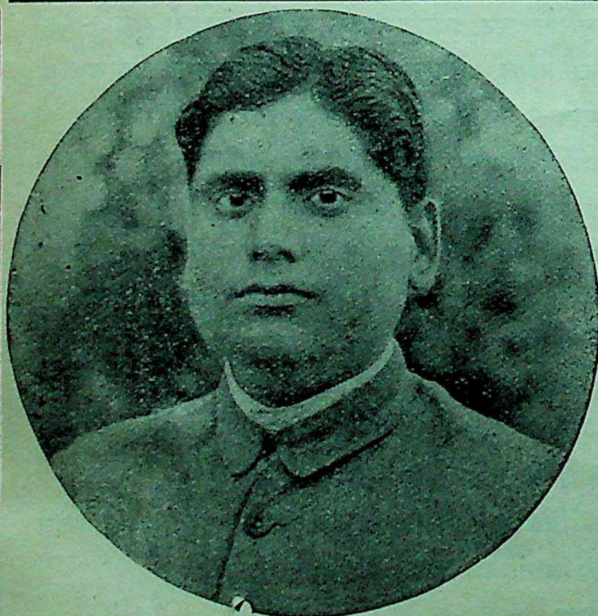
विलास की रस-धारा के तट पर उस समय प्रणय का आनंद-समारोह हो रहा था।

विस्मृत भोर

[पं० सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"]

जीवन की गति कुटिल अंध-तम-जाल ;
फँस जाता हूँ, तुम्हें नहीं पाता हूँ प्रिय,
आता हूँ पीछे डाल—
रश्मि-चमत्कृत, स्वर्णालंकृत, नवल प्रभात,
पुलकाकुल-अलि-मुकुल-विपुल हिलते तरु-पात,
हरित ज्योति-जल-भरित सरित्, सर, प्रखर प्रपात,
वह सर्वत्र व्याप्त जीवन से अलक-विचुंबित सुखकर वात,
जगमग जग में, पग-पग, एक निरंजन आशीर्वाद,
जहाँ नहीं कोई भय, बाधा, कोई नश्वर वाद-विवाद,
बढ़ जाता
प्रति-श्वास-शब्द-गति से उस ओर,
जहाँ हाय केवल श्रम, केवल श्रम,
केवल श्रम, कर्म कठोर—

कुछ ही प्राप्ति, अधिक आशा का
कुटिल अधीर अशांत मरोर ;
केवल अंधकार, करता वन
पार जहाँ केवल श्रम घोर ।
स्वप्न प्रबल, विज्ञान-धर्म-
दर्शन; तम-सुप्ति शांति; हा भोर ;
कहाँ, जहाँ आशाओं ही की
अंतहीन अविराम हिलोर ।
मेरी चाहें बदल रहीं
आहों में नित, क्या चाहूँ और ?
मुझे फेर दो, प्रभो, हेर दो
इन नयनों में विस्मृत भोर !



दक्षिण-आफ्रिका की सामयिक समस्याएँ

(२)

[श्रीभवानीदयाल संन्यासी]

किंबर्ली की ऐतिहासिक कांग्रेस



क्षिण-आफ्रिका की सामयिक घटनाओं में किंबर्ली की भारतीय कांग्रेस भी एक महत्त्व की घटना है। साउथ-आफ्रिकन इंडियन-कांग्रेस के इस अधिवेशन में ऐसे-ऐसे विषयों पर विचार हुए, जिन पर यहाँ के प्रवासी भारतीयों का भविष्य निर्भर है। केपटाउन-समझौते के पश्चात् जोहांसबर्ग में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ था, जिसमें कई अपवादों के सिवा समझौते के सिद्धांत को सामान्यतया स्वीकार कर लिया गया था। किंतु इस बीच में कांग्रेस की स्थिति में बहुत कुछ उथल-पुथल हो गया। ट्रांसवाल ब्रिटिश-इंडियन एसोसिएशन के अधिकारियों को नवीन एशियाटिक ऐक्ट की ५वीं धारा ऐसी आपत्तिजनक प्रतीत हुई कि उन्होंने कांग्रेस को इसका ज़िम्मेवार बताकर उससे अपना संबंध ही तोड़ लिया। एसोसिएशन के अलग हो जाने से कांग्रेस का यह दावा कि वह एकमात्र दक्षिण-आफ्रिका-प्रवासी भारतीयों की प्रातिनिधिक संस्था है, संदिग्ध हो गया। ट्रांसवाल के भारतीयों को मिलाए विना कांग्रेस के नाम के आगे 'साउथ-आफ्रिकन' शब्द का प्रयोग करना निष्प्रयोजन और निरर्थक होता। ख़ैर, ट्रांसवाल के देशभक्त भाइयों ने इस स्थिति को सँभाल लिया। उन्होंने ट्रांसवाल-इंडियन-कांग्रेस नाम की एक नई संस्था की स्थापना कर डाली, और उसे कांग्रेस में मिलाकर बिगड़ती हुई बात बना ली। यदि इस मौक़े पर ट्रांसवाल के संगठन-प्रेमी भाइयों ने बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से न काम लिया होता, तो किंबर्ली में कांग्रेस होती या नहीं, इसमें संदेह है। एशियाटिक ऐक्ट की ५वीं धारा कौन-सी बला है, उससे भारतीयों की वर्तमान अवस्था में क्या अंतर पड़ता है, इसका स्पष्टीकरण इसी लेख में अन्यत्र किया जायगा।

यद्यपि उस समय Appendicitis-नामक रोग के निवारण के लिये मेरे पेट का आपरेशन हुआ था, और उसका घाव भरा भी नहीं था, डॉक्टरों ने भी इतनी लंबी यात्रा करने की मनाही कर दी थी, तो भी सामयिक समस्याओं की गंभीरता पर ध्यान देकर मैंने कांग्रेस के इस अधिवेशन में सम्मिलित होना ही उचित समझा। नेटाल के अन्य प्रतिनिधियों के साथ केप की डाकगाड़ी पर सवार होकर डरबन से मैंने प्रयाण किया, और ऑरेंज फ्रीस्टेट से गुज़रते हुए २४ घंटे में किंबर्ली पहुँचा। यह नगर केप-प्रांत के अंतर्गत है, और यहाँ हीरे की अनेक खानें हैं। हीरे की बदौलत ही किंबर्ली बसा, और संसार में प्रसिद्ध हुआ। इसका इतिहास भी बड़ा मनोरंजक है। सन् १८६६ में एक बालक को एक चमकदार पत्थर मिला, जो उसके लिये कौतूहल की वस्तु थी। चाकवान निकरक-नामक सज्जन ने उस पत्थर के टुकड़े को देखकर उसकी सराहना की। अतएव बालक की माता श्रीमती जेकब्स ने वह पत्थर उक्त सज्जन को भेंट कर दिया। जब जौहरी ने उसकी परीक्षा की, तो मालूम हुआ कि वह तो २१½ केराट का हीरा है। केप-प्रांत के गवर्नर ने उस हीरे को ५००-पौंड में ख़रीद लिया। इसके बाद तो खनिज-विद्या-विशारदों का किंबर्ली में मेला लग गया। खुदाई शुरू हुई; और आज तक जारी है। सबसे बड़ी कंपनी का नाम है 'डिबियर्स'। इस कंपनी के मैनेजर ने एक दिन हमें खान देखने के लिये निमंत्रित किया था, और खान तक आने-जाने के लिये स्पेशल ट्राम की व्यवस्था भी कर दी थी। वहाँ पहुँचकर हमने देखा कि एक जगह खुदाई हो रही है। ज़मीन की तह से पत्थर के चट्टान निकाले जा रहे हैं। एक स्थान पर उनको तोड़-फोड़कर कंकड़



किंबर्ली-सिटी-हॉल में भारतीय कांग्रेस का दृश्य

[प्रधान एडवोकेट गोडफ़े की दाहिनी ओर राइट ऑनरेबल श्रीनिवास शास्त्री हैं और बाईं ओर इस लेख का लेखक]

बनाए जा रहे हैं। फिर वे कंकड़ वैज्ञानिक ढंग से धुलते और मेज़ पर आ जाते हैं। मेज़ ऐसे कलदार पाए पर जमाए हुए हैं, जो बिजली के बल से थर-थर काँपा करते हैं। मेज़ पर कोई रासायनिक पदार्थ लगा रहता है, जिसके प्रताप से हीरे तो उसमें चिपट जाते हैं, और कंकड़ छटककर गिर पड़ते हैं। उन चिपटे हुए चमकदार पत्थरों को एक हाँडी में भरकर भाप की भट्टी में ख़ूब पकाते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि असली हीरा तो हाँडी में रह जाता है, और शेष सब कंकड़-पत्थर गल-पचकर स्वाहा हो जाता है।

किंबर्ली डरबन से ६०८, केप-टाउन से ६४७ और ब्लूमफोंटीन से १०५ मील की दूरी पर है। वहाँ पहुँचने पर दक्षिण-आफ्रिका के अन्य प्रांतों के प्रतिनिधियों से भेंट हुई। हमारे ठहरने के लिये जिस मकान में प्रबंध हुआ था, उसका नाम रक्खा गया था 'नेटाल-कैंप'। मेरे साथ श्रीमेघराज, अध्यापक चुन्नू, श्रीजौन और श्रीपेरुमल ठहरे हुए थे। हमारी सेवा के लिये एक मलाई युवती नियुक्त थी, जिसका नाम था मिस फ़ातमा। किंबर्ली के मुट्ठी-भर भारतीय भाइयों ने भिन्न-भिन्न प्रांत के प्रतिनिधियों के आदर-सत्कार में कोई कोर-कसर नहीं की। आराम के लिये समुचित व्यवस्था कर रक्खी गई थी।

SANYASI ASHRAM SARGODHA'S

चंद्रावली

रजिस्टर्ड

यह भारत के प्राचीन गौरव की एक स्मारक तथा आश्रम की प्राचीन ऋषियों की मौरूसी संपत्ति है, जो स्त्रियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के मासिकधर्म-संबंधी तथा अन्य व्यतिक्रमों से उत्पन्न हुए बंध्यात्व (बाँझपने) को समूल नाश कर देती है। इसका व्यवहार उस उन्नति की आशा की एक ग़तिया झलक दिखाता है, जो भारत के गौरव के दिनों में देसी औषधियों से प्राप्त थी। नीचे लिखे हुए प्रशंसा-पत्रों से हमें आशा है, आप यह मालूम कर सकेंगे कि व्यवहारकर्त्ताओं को इसका गुण कहाँ तक प्रतीत हुआ है—

डॉ॰ प्रतापसिंह एम्॰ बी॰, बी॰ एस॰ नौशहरा *Via Khusab, N. W. Ry.* लिखते हैं कि—"जैसा कि आपको मालूम है, मेरे ब्याह के १२ वर्ष बाद तक मेरी स्त्री के मासिकधर्म ठीक नहीं होता था। कभी होता ही न था, और होता भी था, तो असह्य वेदना के साथ। इसी के फल-स्वरूप उसके कोई बच्चा भी नहीं हुआ। इतना अधिक समय हो जाने का मुझे दुःख न था; परंतु सोच था अपने भविष्य के अंधकार का। मेरी स्त्री की बेचैनी की बाबत तो कहना ही व्यर्थ है। ख़ैर, दैव-प्रेरित आपकी चंद्रावली मुझे मिली। पहली बोतल के पीने से ही उसकी मासिकधर्म-संबंधी सभी बीमारियाँ दूर हो गईं, और आश्चर्य तो यह हुआ कि उसके गर्भ के भी लक्षण प्रतीत होने लगे। मैंने इसी सिलसिले में एक बोतल और भी पिलाई, जिससे गर्भ पक्का हो गया।

मैं इसके लिये आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ, क्योंकि मैंने अपनी स्त्री की दवा-दारू में कोई बात उठा न रक्खी थी। और, यहाँ तक कि उसके गर्भाशय का ऑपरेशन भी करवाया था। परंतु उससे रत्ती भर भी फ़ायदा न हुआ। अब तो मैं यही कहता हूँ कि चंद्रावली ने ही मुझे पुत्र-रत्न प्रदान किया है।"

डॉ॰ ज्ञानसिंह एम्॰ बी॰, बी॰ एस॰ *Incharge Guru Ram Das Hospital* अमृतसर लिखते हैं कि—"सन् १९२४ तक, अर्थात् सन् १९१९ से मेरी शादी के ५ वर्ष बाद, मेरी स्त्री के कोई बच्चा नहीं हुआ। इसका कारण जो हम लोगों को मालूम होता था, मेरी स्त्री की मासिकधर्म की ख़राबी थी। मैंने इसको ठीक करने के लिये अपनी कोई दवा उठा न रक्खी। बाहरी दवाओं का भी ख़ासा प्रयोग किया गया, और यहाँ तक कि लाहौर के सुप्रसिद्ध डॉक्टर कर्नल टेट Col. Godfrey Tate, M. B., Ch. B. (Dob. Univ.), I. M. S. से ऑपरेशन भी करवाया। इससे भी कोई लाभ नहीं हुआ, और दो वर्ष व्यतीत हो गए।

इसी अवसर में आपकी चंद्रावली की प्रशंसा एक मित्र द्वारा मेरे सुनने में आई। मैंने तीन बोतलें मँगाकर सन् १९२३ की अंतिम तिमाही में अपनी स्त्री का इस्तेमाल कराईं। दैव-कृपा से उसी से उसके गर्भ रह गया, और इस समय एक पूर्ण स्वस्थ और सुंदर बालक उत्पन्न हुआ है। मैं चंद्रावली की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपने हताश भाइयों से इसकी सिफ़ारिश करता हूँ।"

[श्रीयुत जे॰ एस॰ बतरा, बैंकर, बखरवार (शाहपुर) से लिखते हैं]

"मेरा प्रथम ब्याह २० वर्ष की अवस्था में, संवत् १९५२ में, हुआ था। मेरी स्त्री ब्याह के उपरांत १४ वर्ष तक जीवित रही। उसके एक बच्चा हुआ था, जो केवल ७ मास तक जीवित रहा। इसके बाद मेरा दूसरा ब्याह संवत् १९६७ में हुआ; लेकिन मेरी यह स्त्री केवल ४ वर्ष तक ही जीवित रहकर संवत् १९७१ में उसका भी प्राणांत हो गया। ४ वर्ष बाद मैंने तीसरी शादी की। इस समय मेरी अवस्था ४५ वर्ष की थी, और मेरी स्त्री युवा होने के साथ ही पूर्णतः स्वस्थ और सुंदर थी। ७ वर्ष आशा करते-करते व्यतीत हो गए परंतु कोई बच्चा न हुआ। अब मुझे यह शंका हुई कि शायद मेरी स्त्री कोई अंदरूनी मर्ज़ से बीमार है, और तदनुसार हमने उसे दो दाइयों को दिखलाया। अंतिम वर्ष जब भलवाल (*Bhalwal*) के हकीम पंजाबसिंह की दवाइयों से भी कोई लाभ न हुआ, तो हमारा सभी आशाओं पर पानी फिर गया। इसी निराशा की अवस्था में मुझे ख़बर मिली कि आपकी चंद्रावली अनेक स्त्रियों के बाँझपने को नाश कर चुकी है। हमने जहाँ तक जल्दी हो सका, उसकी दो बोतलें ख़रीदीं। मेरी स्त्री एक ही बोतल व्यवहार में लाई थी कि उसके गर्भ रह गया। दूसरी आज भी मेरी अलमारी में उसी तरह रक्षित है। आश्रम के प्रति मेरी तथा मेरी स्त्री की कृतज्ञता का भाव, जिसने चंद्रावली के द्वारा ५१ वर्ष की आयु में पुत्र-रत्न-लाभ कराया है, और फिर भी तीसरी स्त्री से, अनुभव ही आ सकता है, लिखा नहीं जा सकता।"

मूल्य १ बोतल ५) २ बोतलें ९), तीन बोतलें १३), और ४ बोतलों का दाम १६) है। पैकिंग और वी॰ पी॰ ख़र्च अलग। बड़ा सूचीपत्र लिखने पर मुफ़्त भेजा जाता है।

मिलने का पता—संन्यासी आश्रम (S.) Sargodha (India)



दो हज़ार वर्ष में नई बात।

भर्तृहरि महाराज के शतक सचित्र !!

९३ हाफ़टोन चित्र! १४४० सफ़ों में ग्रंथ की समाप्ति!!

मूल श्लोक, हिंदी-अनुवाद, सरल व्याख्या,
टीका, कविता-अनुवाद और
अँगरेज़ी अनुवाद।

महाराज भर्तृहरि के नीति, वैराग्य और शृंगारशतक सारे संसार में मशहूर हैं। ऐसा कौन पढ़ा-लिखा है, जो उनकी बाबत नहीं जानता? उनके अनेकों अनुवाद हो चुके हैं, पर आज तक उनका ऐसा विस्तृत और सचित्र अनुवाद कहीं नहीं हुआ। तीनों शतकों में कोई ९३ मनोमुग्धकारी हाफ़टोन चित्र हैं। चित्र देखते ही आत्मा फड़क उठती है। श्लोक का भाव चट दिमाग़ में घुस जाता है। अगर एक-एक चित्र का दाम दो-दो आना भी समझें तो १०) के तो चित्र ही हो जाते हैं। १४४० सफ़ों की पुस्तकें मुफ़्त में हैं। ऊपर मूल श्लोक, नीचे हिंदी अर्थ, उसके नीचे विस्तृत टीका, उसके नीचे कविता-अनुवाद और शेष में अँगरेज़ी अनुवाद है। हम ठीक कहते हैं, ऐसा अनुवाद आपने ख़्वाब में भी न देखा होगा। अनुवाद ही नहीं है, भर्तृहरि महाराज के श्लोकों के भावों से टक्कर खानेवाली उर्दू शायरों, संस्कृत कवियों और अँगरेज़ी, फ़ारसी के विद्वानों की वाणियाँ जगह-ब-जगह अँगूठी में हीरों की तरह अलग-अलग जड़ी हुई हैं। आपने अगर ये तीनों शतक देख लिए तो संसार के नीति, वैराग्य और शृंगार पर कहनेवालों की अनमोल कविताएँ और वाणियाँ भी देख लीं। आप इन्हें अवश्य देखिए। इनके लिये आप भूलकर भी लालच मत कीजिए।

नीतिशतक



राजा से लेकर किसान तक को सुख और शांति से जीवन बिताने के लिये नीति की ज़रूरत है। नीति जानने से ही राज्य चलता है। नीति से ही कारोबार में सफलता मिलती है। नीति से ही गृहस्थी में सच्चा सुख मिलता है। नीति जाने बिना सुख कहाँ? अगर आप सच्चा सुख भोगना चाहते हैं, अगर आप सफलता के साथ जीवन यापन करना चाहते हैं, अगर आप स्त्री और पुत्र का सच्चा आनंद भोगना चाहते हैं, तो आप हमारा "नीतिशतक" मँगाइए। इसमें अनुवादक महोदय ने अपना पचास साल का अनुभव भी लिख दिया है, इसलिये यह ग्रंथ अनमोल हो गया है। अगर आप नीतिशतक पढ़ लेंगे तो आपकी चातुरी की सीमा न रहेगी, संसार-यात्रा में आप कभी भी धोखा न खायँगे, धन और ऐश्वर्य आपके चरणों में लोटेंगे, और सभा-सुसाइटियों में आपकी वाह-वाह होगी। मूल्य अजिल्द का ४॥) और सजिल्द का ५)



वैराग्यशतक

यह संसार सुपना है। मृत्यु ने जन्म को, बुढ़ापे ने जवानी को, कुढ़नेवालों ने गुणों को, तथा चंचलता ने धनैश्वर्य को ग्रस रक्खा है। इस जीवन में कहीं सुख नहीं है। अगर सुख है तो वैराग्य में है। उसी वैराग्य

पर महाराज भर्तृहरि ने १०० अनमोल और अपूर्व श्लोक रचे हैं। एक-एक श्लोक करोड़-करोड़ को भी सस्ता है। उसी वैराग्यशतक का ऊपर के मुताबिक़ अनुवाद किया गया है। साथ ही देश-विदेश के महात्माओं की वाणियाँ भी जगह-जगह सजाकर बहुमूल्य पुस्तक को अनमोल कर दिया है। वैराग्य पर ऐसी-ऐसी कहानियाँ लिखी हैं कि पढ़कर आत्मा फड़क उठती है। संसार की असारता आँखों के सामने नाचने लगती है। सर्वत्र ही स्वार्थ नज़र आने लगता है।

अगर आपको संसार की असारता और स्वार्थपरायणता का जीता-जागता चित्र देखना है, अगर संसार के जाल से बचना और निकलना है, अगर ग़फ़लत की नींद से जागना है, अनंतकाल तक सच्ची सुख-शांति भोगनी है, जन्म-मरण के झंझटों से बचना और परमानंद-पद* प्राप्त करना है, तो आप हमारा "वैराग्यशतक" अवश्य देखिए। आपकी आत्मा ग्रंथ देखकर खिल उठेगी। मूल्य अजिल्द का ४) और सजिल्द का ५) है।

श्रृंगारशतक

यह शतक नौजवान और रसिक पुरुषों के काम का है। नाम की नसों में भी इसे देखते ही तेज़ी आ जाती है। जिस स्त्री-सुख को कामशास्त्रवालों ने परमानंद का दूसरा भाई कहा है, उसी के संबंध में इसमें लिखा गया है। जिन मुनिमनमोहिनी रमणियों ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव तक को अपना दास बना रक्खा है, उन्हीं के रूप, यौवन और नाज़ो-नख़रों का वर्णन इसमें है।

अगर आप ललित ललनाओं के हाव-भाव और नाज़ो-नख़रों का आनंद चाहते हैं, उनके गूढ़ रहस्यों को जानना चाहते हैं, अगर सुंदरी वेश्याओं के कपटजाल से बचना चाहते हैं, अगर अपनी प्यारी स्त्री से सच्चा सुख पाना चाहते हैं तो हमारा "श्रृंगारशतक' अवश्य देखिए। अनुवादक महाशय ने इस शतक में कामशास्त्र या कोकशास्त्र की अनमोल बातें मौक़े-मौक़े से सजाकर इस शतक को भी अनमोल कर दिया है। सच पूछिए तो यह सच्चा कामशास्त्र है। जिसने जवानी में क़दम रखकर इसे नहीं देखा उसने कुछ भी न देखा। मूल्य अजिल्द का ३) और सजिल्द का ३॥)

उत्तमता का प्रमाण—नवीन संस्करण।

तीनों ही शतकों के नवीन संस्करण हो जाना, उनकी उत्तमता के स्पष्ट प्रमाण हैं। फिर भी इस बहमी लोगों के संतोष-विधानार्थ चंद सम्मतियों के सारांश-मात्र नीचे दिए देते हैं—

साहित्यशास्त्री पं० नर्मदाप्रसादजी मिश्र बी० ए०, ऐडीटर "श्रीशारदा" लिखते हैं—

"इस नीतिशतक में पहले मूल श्लोक, उनके नीचे भावार्थ, भावार्थ के नीचे व्याख्या और व्याख्या के अंत में अँगरेज़ी-अनुवाद है। पूर्व और पश्चिम के नीतिकारों की नीतियाँ भी अनेक स्थानों पर दी गई हैं। कहीं-कहीं अनुवादक ने अपना अनुभव भी लिख दिया है, जो ख़ूब हुआ है। श्लोकों के चित्र भी दिए हैं जिससे पुस्तक में विशेषता आ गई है। इतनी सजधज देखते हुए ५) मूल्य कुछ भी अधिक नहीं है।"

---

* वैराग्यशतक मँगानेवालों को वैराग्यशतक के अनुवादक का अनुवाद किया हुआ "हिंदी भगवद्गीता" भी मँगाना चाहिए। दोनों ग्रंथों से निश्चय ही परमपद की प्राप्ति होगी। गीता का इतना सरल अनुवाद आज तक भारत में और कहीं नहीं हुआ है। मोक्ष चाहनेवालों के लिये अब तो गीता का मूल्य भी ३) से घटाकर २।) कर दिया गया है। सजिल्द का दाम ३) है।

(अगले पृष्ठ पर तो पढ़िए)

बहुक्म जनाब मुंसिफ़ साहब बहादुर पीलीभीत

सम्मन वास्ते क़रारदाद उमूर तनक़ीह तलब

(आर्डर ५—क़ायदा १, ५)

नंबर मुक़द्दमा २२८, सन् १९२८ ई०

बअदालत मुंसफ़ी पीलीभीत, ज़िला पीलीभीत

लाला रामगुलाम वल्द लाला गोविंदराम व नरायनदास वल्द लाला कुंदनलाल क़ौम कुर्मी साकिन जहानाबाद मुहल्ला पीली टोला मुद्दई

बनाम फ़ख़रउद्दीनख़ाँ वग़ैरह

मुद्दाअलेह

बनाम फ़ख़रउद्दीनख़ाँ वल्द अब्दुलअज़ीज़ख़ाँ क़ौम पठान साकिन बरेली मुहल्ला आज़मनगर रियासत बेगम बिंत अब्दुलअज़ीज़ख़ाँ ज़ौजे अब्दुलरहमानख़ाँ क़ौम पठान व मुसम्मात अमरीका बेगम उर्फ़ अच्छी बी ज़ौजे हाफ़िज़ सद्दीक़ अहमदख़ाँ क़ौम पठान साकिन बरेली मुहल्ला भूड़

हरगाह कि नंदक़ियाँ ने तुम्हारे नाम एक नालिश ३००० रुपए बग़रज़ बैनामा के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ २५ माह फ़रवरी सन् १९२९ ई० बवक्त दस बजे दिन के असालतन या माफ़रत वकील के जो मुक़द्दमा के हालत से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया है और कुल उमूरात अहम मुताल्लक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदेही दावा की करो और तुमको लाज़िम है कि उसी रोज़ जुमला दस्तावेज़ात पेश करो जिन पर तुम बिनायत अपने जवाबदेही के इस्तदलाल करना चाहते हो।

तुमको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमू और फ़ैसल होगा

बसब्त मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत के आज बतारीख़ ३१ माह जनवरी सन् १९२९ ई० जारी किया गया।

ख़ाका जुडीशल अवध नंबर

कुर्की बहूल्लत इजराय डिगरी

हुक्म इत्तिलाई जिस हाल में कि जायदाद अज़ क़िस्म ऐसे दयून के हो जिनकी बाबत दस्तावेज़ात क़ाबिल व शरा न हों

(आर्डर २१ क़ायदा ४६ ऐक्ट नंबर ५ सन् १९०८ ई०

बअदालत जनाब पं० प्यारेलाल भार्गव साहब बहादुर मुंसिफ़ जनूबी हरदोई मुक़ाम हरदोई पेशी २७ फ़र्वरी सन्

मुक़द्दमा नंबर १०२६ सन् १९२८ ई०

मुक़द्दमा इजराय डिगरी नंबर ६१३ सन् १९२८ ई०

श्यामलाल वल्द रामचरन क़ौम ब्राह्मण साकिन मौ० कौंथिलिया परगना बंगर तहसील व ज़िला हरदोई डिगरीदार

बनाम

केशौ मदयून डिगरी

बनाम केशौ वल्द तिलक क़ौम वैश्य साकिन मौज़ा कौंथिलिया परगना बंगर तहसील व ज़िला हरदोई।

हरगाह मदयून ने ज़र डिगरी जो बनाम केशौ बतारीख़ १७ माह अक्तूबर सन् १९२८ ई० बमुक़द्दमा नं० १०२६ सन् १९२८ ई०

बहक़ श्यामलाल बाबत मुबलिग़ २७३॥।-)॥। सादिर हुई थी नहीं अदा किया है लिहाज़ा बज़रिये तहरीर हाज़ा हुक्म होता है कि मुद्दाअलेह जब तक इस अदालत से दूसरा हुक्म सादिर न हो तुमसे वह क़रज़ा जोकि बिला तुमसे याफ़्तनी मुद्दाअलेह मज़कूर बयान किया गया यानी केशौ वसूल करने से मम्नू किया जाय और रक्खा जाय और नीज़ तुम सरदारसिंह मज़कूर को लिए इस हुक्म के इत्तिला दी जाती है कि जब तक अदालत से दूसरा हुक्म सादिर न हो क़रज़ा मज़कूर उसका कोई जुज़ किसी शख़्स को गोकि वह कोई अदा करने से मम्नू और बाज़ रक्खे गए हो। और तस्फ़िया मरातिब नीलाम आर्डर २१ क़ायदा ६६ ज़ाब्ता दीवानी बतारीख़ २७—२—२९ हाज़िर आओ।

मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से आज बतारीख़ ४ माह फ़रवरी सन् १९२९ ई० हवाले किया गया।

तफ़सील जायदाद

हक़ मुरतहनी बाबत रहननामा सूदी नविश्ता सरदार सिंह बहक़ केशौ तादादी ३००) मुवर्रख़े २५ जून सन् व मुसद्दिक़े ३ जौलाई सन् २६ जिसमें ६ बिस्वांसी कचवांसी हक़ीयत ज़मींदारी मिन्जुम्ला बिस्त बिस्वा मौ० कौंथिलिया परगना बंगर मकफ़ूल है।

इत्तिलानामा बनाम फ़रीक़सानी मशअर इत्तिला इस अम्र के कि हुक्म तैयारी डिगरी क़तई क्यों न सादिर किया जावे

बअदालत मुंसिफ़ी अव्वल मुक़ाम, ज़िला बुलंदशहर बइजलास पं० रेशमल वेकशित साहब बहादुर मुंसिफ़ अव्वल बुलंदशहर

मुक़दमा नंबर ६३ सन् १६२८ ई०

हुसेनबख़्श वल्द कल्लू क़ौम नज्जार साकिन बुलंदशहर

बनाम

अब्दुलग़फ़ूर वग़ैरह

बनाम अब्दुलअज़ीज़ वल्द मौलाबख़्श क़ौम नजार साकिन हाल शहर लखनऊ, स्टेशन रोड कोठी नंबर ३२ एलनबरो कंपनी फ़रीक़सानी

हरगाह मुद्दई डिगरीदार मज़कूरुलसदर ने दरख़्वास्त सदर हुक्म क़तई वास्ते नीलाम जायदाद मरहूना व मकफ़ूला डिगरी नंबरी ६३ सन् १६२८ ई० कि जो बतारीख़ ४ माह अपरैल सन् १६२८ ई० अदालत हाज़ा से सादिर हुई थी बतालिबा मुबलिग़ ८५२१) गुज़रानी है लिहाज़ा तुमको इत्तिला दी जाती है कि अगर तुमको कोई उज्र बनिस्बत सादिर होने हुक्म क़तई नीलाम जायदाद मज़कूरह के हो तो अदालत में बतारीख़ १६ माह मार्च सन् १६२६ ई० बवक़्त १० बजे दिन के असालतन या वकालतन या बज़रिए मुख़्तियार मजाज़ हाज़िर होकर पेश करो

आज बतारीख़ ९ माह फ़रवरी सन् १६२६ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

इत्तिला तारीख़ बग़रज़ तसफ़िया मरातिब इश्तिहार नीलाम

बअदालत दीवानी जनाब पंडित प्यारेलाल भार्गव साहब बहादुर मुंसिफ़ जनूबी मुक़ाम हरदोई

मुक़दमा नंबर ५६ सन् १६२८ ई०

मुक़दमा इजराय डिगरी नंबर ७७२ सन् १६२८ ई०

मथुराप्रसाद वल्द धन्नूलाल ब्राह्मण साकिन बहलोली परगना बंगर तहसील व ज़िला हरदोई डिगरीदार

बनाम

मदनमोहन मदयून डिगरी

बनाम मदनमोहन वल्द सीताराम क़ौम ब्राह्मण साकिन भदैचा परगना बंगर तहसील व ज़िला हरदोई मदयून

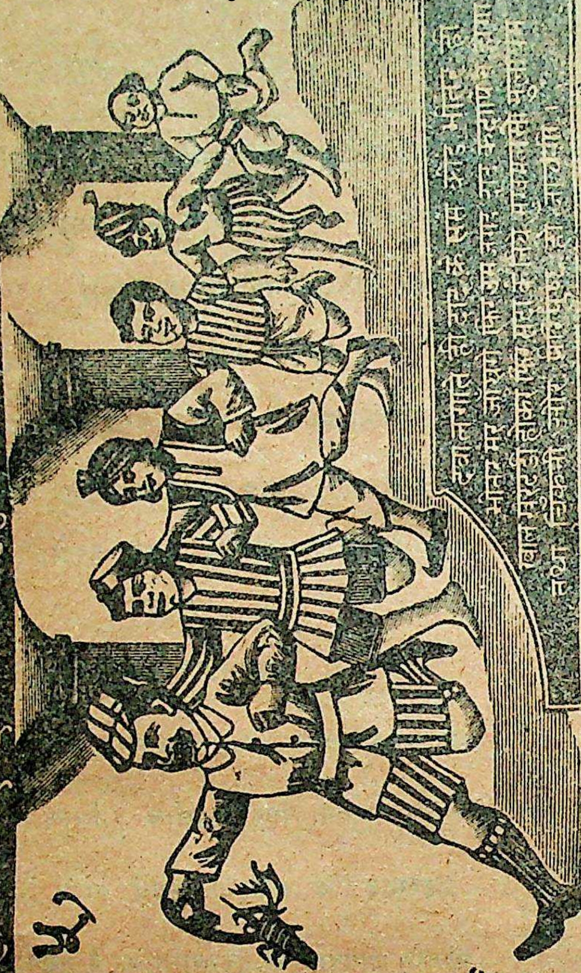
हरगाह कि मुक़दमा मुंदर्जे बाला में डिगरीदार ने नीलाम जायदाद की दरख़्वास्त की है तुमको इस इत्तिलानामा के ज़रिए मुत्तिला किया जाता है कि तारीख़ २१ माह फ़रवरी सन् १६२६ ई० वास्ते तै करने मरातिब इश्तिहार नीलाम के मुक़र्रर की गई है—

आज बतारीख़ ३१ माह जनवरी सन् १६२६ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया—

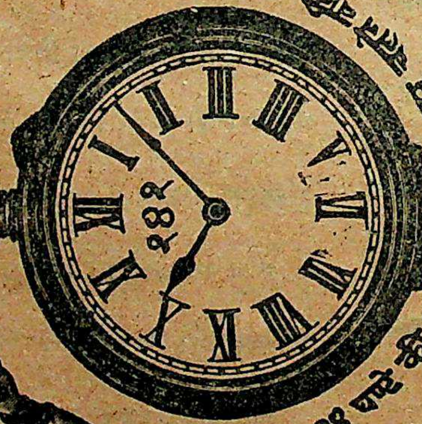
वक़्त हाज़िरी बदफ़्तर दीवानी मुंसिफ़ी जनूबी हरदोई

१० बजे से ४ बजे तक जज

मुफ़्तमें यह जेब घड़ी लीजिये इनाम=दाद जो न छूटे तो वापस करेंगे दाम















१२ वर्ष की पुरानी

गीली तथा सूखी दाद, खाज, और चर्म रोग की दो दिन में शर्तिया जड़ से अवश्य ही

आराम कर दिखाने वाली यह सिंह छाप "दाद की नामी दवा"

शीशी एक का
।=) छः आना;
साथ छः शीशि
मँगाने से प्लेट
वाली १ फ्रीटिं
मुफ़्त इनाम।
ख़र्च १ से ६ शीशि
तक का ।।) जुदा
८ शीशियाँ एक
मँगाने से १
(बी) टाइम
घड़ी मुफ़्त इना
डाक-ख़र्च १ से
शीशियों तक
जुदा लगेगा।
१२ शीशियाँ
साथ मँगाने से
१४१वाली जेब
मुफ़्त इनाम मिले
डाक-ख़र्च एक
का ।।।=) जुदा ल
और २४ शीशि
एकसाथ मँगाने
नं० २५२ वाली
रिस्टवाच मुफ़्त इ
मिलेगी। डाक
दो दर्जन का
जुदा लगेगा।
और ३६ शीशि
एकसाथ मँगाने
नं० ३७
बढ़िया सुनहरी
वाच मुफ़्त मिले
डाक-ख़र्च २ दर्ज
१।।) जुदा ल
और ४८ शीशि
एकसाथ मँगाने से

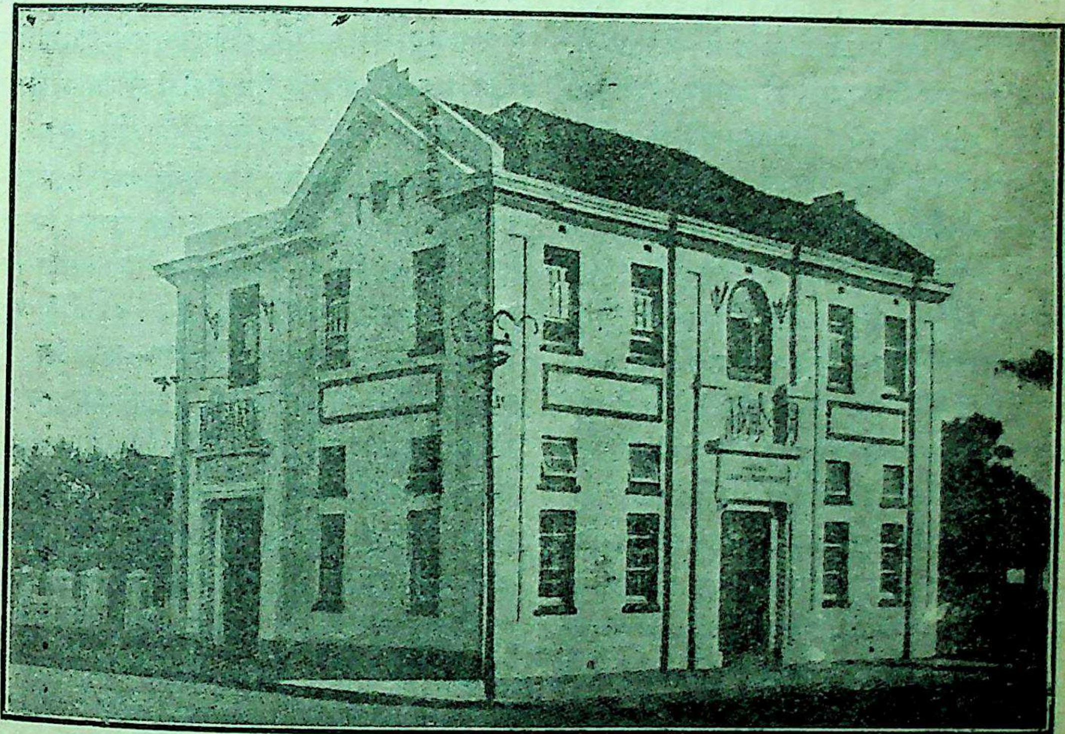
८४दवाली फ़ैंसी सुनहरी बासलेटी रिस्टवाच मुफ़्त इनाम देंगे। डाक ख़र्च चार दर्जन पर १।।।) जुदा लगेगा।

मिलने का पता—जे० डी० पुरोहित ऐंड संस, पोस्टबॉक्स नं० २८८ G.P.O. कलक

इस बार प्रत्येक प्रांत ने पूरी संख्या में प्रतिनिधि भेजे थे। और, विशेष बात यह थी कि रोडेशिया से भी बहुत-से प्रतिनिधि पधारे थे।

सन् १९२८ की दूसरी जनवरी को कांग्रेस का श्रीगणेश हुआ, किंबर्ली का सिटी-हॉल प्रतिनिधियों और दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। महिलाओं की संख्या भी यथेष्ट थी। कांग्रेस के इतिहास में यह पहला ही अवसर था, जब कि भारत-सरकार और दक्षिण-आफ्रिका-सरकार के प्रतिनिधि भी सलाहकार या दर्शक-रूप में उपस्थित हुए थे। नगर के मेयर, डिपुटी मेयर और अनेक प्रभावशाली योरपियन सभा में पधारे थे। मलान, डिफ़ेंस-मंत्री कर्नल क्रासवेल, मदरास-कांग्रेस के प्रधान डॉक्टर अंसारी, साधु एंड्रूज़, सर फ़ीरोज़ सेठना इत्यादि ने तार भेजकर कांग्रेस के प्रति सहानुभूति प्रकट की थी। रेवरेंड बेनी सिगामणि, एक मौलवी और मैंने क्रमशः ईसाई, मुसलमान और हिंदू-धर्म के अनुसार परमात्मा की वंदना की। इसके बाद स्वागताध्यक्ष और प्रधान के अभिभाषण हुए।

इस कांग्रेस में अनेक पुराने प्रस्तावों की पुनरावृत्ति हुई। कुछ नए प्रस्ताव भी पास हुए। किंतु दो प्रस्ताव ऐसे थे, जिन पर विशेष रूप से चर्चा हुई। एक तो देशी भाषा के और दूसरा एशियाटिक ऐक्ट की ५वीं धारा के संबंध



डरबन का हिंदू-तामिल-स्कूल

(यह स्कूल हाल ही में श्रीनिवास शास्त्री द्वारा खोला गया है। इसे बनाने में दो सहस्र पाउंड ख़र्च हुए हैं। स्कूल में पढ़नेवाले लड़कों ने उपयोग के लिये इसमें एक पुस्तकालय का भी प्रबंध किया गया है। देशी भाषा के अतिरिक्त इस स्कूल में अँगरेज़ी पढ़ाने का भी प्रबंध किया गया है)

नेटिव और रंगीन जनता के नेताओं ने खुले तौर पर भारतीय प्रतिनिधियों का स्वागत किया, और उनकी आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति प्रकट की। दक्षिण-आफ़्रिका के गवर्नर जनरल, इंटिरियर मंत्री डॉक्टर में। पहले मैं देशी भाषा-विषयक रोचक कथा का ही वर्णन करूँगा। मास्टर चुन्नू और मैंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि नेटाल में जो शिक्षा-कमीशन बैठनेवाला है, उससे यह कांग्रेस अनुरोध करती है कि वह

ऐसा उपाय सोच निकाले, जिससे वर्तमान सरकारी और सरकार की सहायता से चलनेवाली पाठशालाओं की पाठ-विधि में देशी भाषा को समुचित स्थान मिल सके, अथवा उन पाठशालाओं को सरकारी सहायता देकर प्रोत्साहित किया जाय, जिनमें देशी भाषा की सुचारु रूप से शिक्षा दी जाती है।

हमारे इस प्रस्ताव के विरुद्ध कांग्रेस के मुख्य मंत्री श्रीअब्दुल्ला क़ाज़ी ने एक संशोधन पेश किया, जिसमें देशी भाषावाला अंश उड़ा दिया गया। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि राइट आनरेबुल श्रीश्रीनिवास शास्त्रीजी ने प्रस्ताव के प्रतिकूल और संशोधन के पक्ष में ४० मिनट तक ज़ोरदार स्पीच देकर लोगों से अनुरोध किया कि वे भूल जायँ कि वे भारतीय हैं, और यदि इस देश में रहना है, तो 'साउथ आफ़्रिकन' बनकर रहें। शास्त्रीजी से ऐसी ही आशा भी थी; क्योंकि केपटाउन-समझौते में भारत-सरकार के प्रतिनिधियों ने यह स्वीकार कर लिया है कि जो भारतीय इस देश में रहना चाहें, वे पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अनुयायी बनकर रहें। किंतु जब तक लोग अपनी मातृभाषा को तिलांजलि देकर विदेशी भाषा को अंगीकार न कर लें, तब तक केपटाउन-समझौते की शर्तें और शास्त्रीजी की मनोकामना कैसे पूरी हो सकती है? इसलिये शास्त्रीजी ने प्रतिनिधियों से प्रार्थना की कि वे प्रस्ताव के विरुद्ध और संशोधन के पक्ष में मत देकर अपनी दूरदर्शिता और नीतिज्ञता का परिचय दें। शास्त्रीजी की वाणी ऐसी शक्तिशाली है कि अपनी सानी नहीं रखती। जब मत लिए गए, तो प्रस्ताव के पक्ष में ११ और संशोधन के पक्ष में ४८ मत आए। बहुमत से हमारा प्रस्ताव गिर गया, और देशी भाषा के प्रेमियों की निराशा की सीमा नहीं रही।

ज्यों ही प्रधान एडवोकेट गोडफ़्रे ने यह घोषित किया कि संशोधन बहुमत से पास हुआ, त्यों ही मैंने उठकर निवेदन किया—"मैं समझता हूँ, प्रस्तावों के प्रति घोर अन्याय किया गया है। अतएव मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूँ कि इसके विरोध में इस सभा से उठकर चला जाऊँ।" इतना कहकर मैंने अपने काग़ज़-पत्र उठाए और सिटी हॉल से बाहर निकल गया। उस समय मूसलधार वृष्टि हो रही थी, इसलिये मुझे दरवाज़े पर रुक जाना पड़ा। मेरे पीछे शास्त्रीजी के प्राइवेट-सेक्रेटरी श्रीकोदंडराव और ऑफ़िशियल-सेक्रेटरी मि० टामसन (कलकत्ते के भूतपूर्व प्रेसिडेंसी मैजिस्ट्रेट) दरवाज़े पर पहुँचे, और मुझे सभा में लौट चलने के लिये समझाने लगे—"आप-जैसा व्यक्ति बहुमत का निरादर करेगा, ऐसी मुझे आशा नहीं थी। जो होना था, हो गया। अब आपको बहुमत का निर्णय स्वीकार कर सभा में लौट चलना चाहिए।" यह श्रीयुत राव ने कहा। पर सत्य बात तो यह है कि प्रतिनिधियों की मुँहदेखी नीति और मातृभाषा का अपमान देखकर मैं क्रोध से काँप रहा था। इसलिये मैंने राव महाशय से स्पष्ट कह दिया—"जो होना था, सो हो नहीं गया; अभी, अब होनेवाला है। मैं यहाँ से सीधा नेटाल जाता हूँ। नेटाल के एक छोर से दूसरे छोर तक सभाएँ करके जनता से पूछूँगा कि तुम्हें अपनी मातृभाषा चाहिए या नहीं? यदि नकारात्मक उत्तर मिला, तो मैं अपने मुँह में कालिख पोतकर जो सबसे पहला जहाज़ मिलेगा, उसी से इस देश को छोड़कर चला जाऊँगा, और फिर आपको मुँह नहीं दिखाऊँगा। किंतु यदि लोगों ने मातृभाषा को त्याग देना उचित न समझा, तो मेरा यह कर्तव्य होगा कि स्थान-स्थान पर शास्त्रीजी में और इस कांग्रेस में अविश्वास का प्रस्ताव पास कराऊँ। यहाँ पर आए हुए प्रतिनिधि यदि जनता के सच्चे प्रतिनिधि होते, तो शास्त्रीजी की हाँ में हाँ मिलाकर अपनी राष्ट्रीयता को नष्ट करने पर उद्यत न हो जाते।"

इसी अवसर पर शेरमर्द भाई सोराबजी-रुस्तमजी आ पहुँचे। आप किसी कार्यवश बाहर गए हुए थे और इस अवसर पर उपस्थित नहीं थे। मुझे बाहर खड़ा देखकर सोराबजी का माथा ठनका। आपने इसका कारण पूछा। मैंने संक्षेप में सब कहानी सुना दी। सोराबजी ने कहा—"आप इतनी चिंता क्यों करते हैं! यदि कांग्रेस ने देशी भाषा को तिलांजलि दे दी, तो क्या हुआ? हम लोग रुस्तमजी-ट्रस्ट के रुपए से देशी भाषा का प्रचार करेंगे।" मैंने उत्तर में निवेदन किया—"ऐसा नहीं हो सकता। जब इस कांग्रेस के मंच से इस संसार के सामने यह घोषित कर

रहे हैं कि आज से हमने मातृभाषा की जगह इस देश की भाषा को अपनी भाषा मान लिया, तो फिर घर में बैठकर भारतीय भाषाओं की रक्षा और प्रचार पर विचार करना महज़ मूर्खता होगी।" यह बात सोराबजी के दिल पर असर कर गई। उन्होंने कहा—"अच्छा चलिए। एक बार पुनः प्रयत्न कर देखें। यदि हम अपने प्रयत्न में असफल हुए, तो मैं भी आपके साथ 'वैक-आउट' करूँगा, और अपना सारा जीवन देशी भाषा के लिये अर्पित कर दूँगा।" मैंने 'शाबाश' कहकर सोराबजी के साथ सभा-भवन में प्रवेश किया। उस समय वहाँ मछली-बाज़ार लगा हुआ था। मेरे उठकर चले जाने से लोगों को इस प्रश्न की गंभीरता मालूम होने लगी थी। जो जहाँ बैठा था, अपने पास-वाले प्रतिनिधि से इसी विषय की चर्चा कर रहा था। अतएव सभापति का "ऑर्डर-ऑर्डर" चिल्लाना व्यर्थ हो रहा था। विवश होकर कांग्रेस की बैठक दो घंटे के लिये स्थगित कर देनी पड़ी। इसी मध्य में हम लोगों ने 'रेक्युज़ेशन' तैयार करके उस पर ५३ प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर करा लिए। इसका आशय यह था कि प्रस्ताव पर पुनर्विचार हो।

श्रीसोराबजी-रुस्तमजी ने भारतीय भाषा के प्रश्न पर पुनर्विचार करने के लिये प्रस्ताव को पेश करते हुए शास्त्रीजी के विचारों की कड़ी समालोचना की, और साफ़ कह दिया कि यदि केपटाउन-एग्रिमेंट का यह मतलब हो कि हम अपनी भाषा, सभ्यता और मर्यादा को छोड़ दें, तो ऐसे समझौते को दूर ही से नमस्कार है। इसके बाद एडवोकेट अलबर्ट क्रिस्टोफ़र ने अत्यंत प्रभावशाली व्याख्यान देकर शास्त्रीजी के विचारों की धज्जियाँ उड़ा दीं। महात्मा गांधी के द्वितीय पुत्र मणिलाल गांधी भी ख़ूब बोले। शास्त्रीजी सभा में विराजमान थे, और अपने मित्रों के मुख से अपनी कड़ी आलोचना सुनकर आश्चर्य-चकित हो रहे थे। इस विषय पर ख़ूब वाद-विवाद हुआ, और रात्रि को १२ बजे जब प्रतिनिधियों के मत लिए गए, तो इस बार भारतीय भाषा के पक्ष में ६० और विपक्ष में ८ वोट आए, और तुमुल हर्ष-ध्वनि के साथ प्रस्ताव पास हुआ। अंत में शास्त्रीजी ने उठकर फ़रमाया—"मुझे दुःख है कि मैंने इस विवाद में भाग लिया, और इस झगड़े की जड़ बन गया। मैं भारतीय भाषाओं का विरोधी नहीं हूँ, और अपनी मातृभाषा का तो हो ही नहीं सकता।" इतना कहकर शास्त्रीजी चले गए।

कांग्रेस के बाद नेटाल में इस बात की बड़ी चर्चा हुई, और चारो ओर से शास्त्रीजी के विचारों का विरोध होने लगा। नेटाल की आर्य-प्रतिनिधि-सभा और मेरीत्सवर्ग की हिंदू-युनाइटेड लीग तथा अन्य संस्थाओं ने शास्त्रीजी की मनोवृत्ति का तीव्र प्रतिवाद किया, और उनको विश्वास दिलाया कि यहाँ का भारतीय लोकमत भारतीय भाषा के पक्ष में है। इस पर शास्त्रीजी को अपने विचारों का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक जान पड़ा, और उन्होंने डरबन में तामिल-हिंदू-विद्यालय का उद्घाटन करते हुए कहा—"यदि आपको अपनी मातृभाषा से इतना प्रेम है, तो अलग विद्यालय स्थापित करके उसका प्रचार कीजिए; किंतु सरकारी स्कूलों में भारतीय भाषाओं को स्थान दिए जाने पर ज़ोर मत दीजिए। साथ ही यह भी ख़याल रखिए कि भारतीय विद्यार्थी ९ से ३ बजे तक सर-कारी स्कूल में शिक्षा पाकर देशी भाषा की पाठशाला में पहुँचते हैं, और कम-से-कम दो घंटे वहाँ बैठते हैं। फल यह होता है कि उनको खेलने-कूदने और कसरत करने का अवकाश ही नहीं मिलता, जिससे उनके स्वास्थ्य को भारी हानि पहुँचती है। अतएव बालकों से अधिक परिश्रम कराना घोर अन्याय है।" इसके उत्तर में उसी सभा में मैंने शास्त्रीजी से निवेदन किया—"मैं स्वयं इस सिद्धांत का पक्षपाती हूँ कि बालकों से अधिक परिश्रम लेना मानो उनके स्वास्थ्य को चौपट करना है। किंतु इस दुःखद स्थिति को दूर करने का उपाय केवल यही है कि सरकारी स्कूलों की पाठ-विधि में भारतीय भाषाओं को स्थान मिल जाय। शास्त्रीजी की युक्तियाँ परस्पर-विरोधिनी हैं। पहले तो आप यह कहते हैं कि भारतीय भाषाओं की पाठशालाएँ अलग बनाइए, और अपने बच्चों को मातृभाषा पढ़ाइए, फिर कहते हैं कि बालकों से पढ़ने-लिखने का अधिक परि-श्रम मत लीजिए। एकसाथ दोनो बातें कैसे हो सकती हैं? इस देश में बालकों को अँगरेज़ी पढ़ाना अनि-

वार्यतः आवश्यक है, इसलिये बच्चे सरकारी स्कूलों में अँगरेज़ी पढ़ने के लिये जायँगे ही; साथ ही मातृभाषा का मोह भी नहीं छूट सकता, इसलिये अँगरेज़ी पढ़कर भारतीय भाषाओं की पाठशाला में पहुँचेंगे ही। बालकों को अत्यधिक परिश्रम से बचाने का केवल एक ही उपाय है। वह यही कि सरकारी स्कूलों में घंटे-आधघंटे भारतीय भाषाएँ पढ़ाए जाने की व्यवस्था हो जाय।" एडवोकेट क्रिस्टोफ़र, एडवोकेट गोडफ़्रे, रेवरेंड लेमोंट इत्यादि ने मेरे ही विचारों का समर्थन किया। यह विद्यालय ख़ासकर तामिल-भाषा की शिक्षा देने के लिये ही स्थापित हुआ है। इसका भवन दुमंज़िला है, और इसके बनाने में लगभग २५ हज़ार रुपए ख़र्च हुए हैं।

कांग्रेस में भारतीय भाषा के प्रश्न के अतिरिक्त और जिस महत्त्वपूर्ण विषय पर विचार हुआ, और जिसके कारण आज दक्षिण-आफ़्रिका-प्रवासी भारतीयों के भाग्याकाश पर त्रास और आशंका की घनघोर घटा घिरी हुई है, वह है एशियाटिक ऐक्ट की ५वीं धारा। इस धारा का आशय यह है कि चाहे कोई कितने ही वर्षों तक दक्षिण-आफ़्रिका में प्रवास क्यों न कर चुका हो, किंतु यदि सरकार यह सिद्ध कर दे कि उसका देश-प्रवेश ग़ैर-क़ानूनी था, तो उसे बोरिया-बँधना बाँधकर यहाँ से चले जाना पड़ेगा। यद्यपि सन् १८९७ के इमिग्रेशन ऐक्ट के पश्चात् यहाँ नवीन भारतीयों का प्रवेश रोक दिया गया, तो भी कहा जाता है कि ऐसे बहुत-से आदमी हैं, जो अधिकारियों की आँखों में रिश्वत का अंजन लगाकर यहाँ आ गए हैं, और येन केन प्रकारेणयहाँ बसने की सनद भी हासिल कर चुके हैं। ऐसे ही भारतीयों को निर्वासित करने के लिये एशियाटिक ऐक्ट में उक्त ५वीं धारा जोड़ी गई है। इस धारा से नेटाल और केप के भारतीयों की अवस्था में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता; क्योंकि इन प्रांतों की सुप्रीम कोर्ट ने पहले से ही यह निर्णय दे रक्खा है कि यदि सरकार किसी को वर्जित प्रवासी सिद्ध कर दे, तो देश छोड़ देने के सिवा उसके पास और कोई उपाय नहीं है। किंतु ट्रांसवाल के भारतीयों की स्थिति इससे भिन्न थी। वहाँ रजिस्ट्री की प्रथा है। प्रत्येक भारतीय को अपने नाम की रजिस्ट्री कराकर सार्टिफ़िकेट लेना पड़ता है। वहाँ की सुप्रीम कोर्ट ने यह फ़ैसला किया था कि एक बार मिल गई हुई रजिस्ट्री की सनद—चाहे वह किसी भी प्रकार से क्यों न मिली हो—फिर रद नहीं की जा सकती। अतएव ट्रांसवाल के भाइयों को यह धारा अत्यंत भयावह प्रतीत हुई। वहाँ के प्रतिनिधियों ने इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला।

इसमें संदेह नहीं कि ऐसे बहुत-से भारतीय हैं जो लुक-छिपकर या अधिकारियों की आँखों में धूल झोंककर दक्षिण-आफ़्रिका में घुस आए, और अब यहाँ स्थायी रूप से बस गए हैं। उनके लिये यह धारा ब्रह्मपिशाच का काम देगी। इस धारा के बारे में आपत्ति करने पर अंतर्विभाग के मंत्री डॉक्टर मलान ने माननीय शास्त्रीजी को यह अभिवचन दिया कि ग़ैर-क़ानूनी ढंग से आए हुए भारतीय यदि सरकार के सामने हाज़िर होकर यह सिद्ध कर देंगे कि वे सन् १९२४ की ५वीं जूलाई से पहले इस देश में मौजूद थे, तो उनको क्षमा-पत्र (Condonation Certificate) दे दिया जायगा।

कांग्रेस में इस विषय पर और 'बंद-द्वार-नीति (Close Door Policy) पर ख़ूब गर्मागर्म बहस हुई। सर्वानुमति से निम्न-लिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ—"दक्षिण-आफ़्रिका-प्रवासी भारतीयों की प्रतिनिधि-स्वरूप इंडियन कांग्रेस का यह आठवाँ सम्मेलन अपनी ओर से और अपने अंगीभूत केप ब्रिटिश इंडियन कौंसिल, ट्रांसवाल-इंडियन कांग्रेस और नेटाल इंडियन कांग्रेस की ओर से यह विश्वास दिलाता है कि दक्षिण-आफ़्रिका और भारत-सरकार के मध्य में जिस सद्भाव से समझौता हुआ है, उसका वह समादर करेगा, और उसे कार्य-रूप में परिणत करने को उद्यत रहेगा। साथ ही सदा की भाँति किसी के ग़ैर-क़ानूनी तौर से इस देश में प्रवेश करने की नीति को वह सहन न करेगा।"

यहाँ मुझे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि भारतीयों की ओर से 'बंद-द्वार-नीति' के समर्थन का रहस्य प्रकट कर दूँ। जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ, सन् १८९७ से पहले इस देश में भारतीयों का प्रवेश वर्जित नहीं था। सन् १८९६ में महात्मा गांधी

आक्रमण हुआ, और उसी समय यहाँ की सरकार ने अँगरेज़ जनता को यह विश्वास दिलाया कि एक क़ानून द्वारा भविष्य में भारतीयों का आगमन रोक दिया जायगा। तदनुसार सन् १८९७ में प्रवास-क़ानून (Immigration Act) पास हुआ। इस क़ानून में यह गुंजाइश थी कि शिक्षित भारतीय अँगरेज़ी या किसी अन्य योरपियन भाषा की परीक्षा देकर इस देश में प्रवास करने का अधिकार प्राप्त कर सकते थे। सन् १९१३ में इस क़ानून में सुधार किया गया, और शिक्षित भारतीयों का प्रवेश भी रोक दिया गया। मैं अंतिम व्यक्ति था, जिसने इस इमिग्रेशनी स्कूल में अँगरेज़ी की परीक्षा देकर नेटाल में बसने का अधिकार प्राप्त किया था। इस क़ानून के बनने के समय महात्मा गांधी ने स्वयं 'बंद-द्वार-नीति' को स्वीकार कर लिया था, और सरकार को विश्वास दिलाया था कि भारतीय जनता किसी भी नवीन भारतीयों को यहाँ घुसने देने में सहायक न होगी। कांग्रेस ने वास्तव में एक बार फिर महात्माजी के दिए हुए वचन को दोहरा दिया।

यद्यपि सरकार ने क़ानून बनाकर नवीन भारतीयों का आगमन रोकने की चेष्टा की, किंतु इससे भारतीयों का आना वस्तुतः रुका नहीं। गुजरात-प्रांत के बहुत-से लोग अधिकारियों को धोका या घूस देकर बराबर आते ही रहे। उस दिन एक लेखक ने डरबन के प्रसिद्ध दैनिक 'नेटाल मरक्युरी' (Natal Mercury) में लिखा था कि ऐसे वर्जित प्रवासियों की संख्या २५ हज़ार से कम न होगी। मैं समझता हूँ, यह संख्या निराधार और अप्रामाणिक है—केवल कल्पना के आधार पर ऐसा कहना अपनी मूर्खता का परिचय देना और अपने देश-बंधुओं की गर्दन पर छुरी चलाना है। किंतु इसमें तो संदेह नहीं कि ऐसे भारतीयों की संख्या यथेष्ट है।

यद्यपि मैं सदा से यूनियन-सरकार की कुटिल-नीति का विरोधी रहा हूँ, तो भी अपने कुछ देशवासियों की कुचाल को भी मैं पसंद नहीं कर सकता। कहते खेद होता है कि गुजराती भाइयों ने महात्माजी के दिए हुए वचन की उपेक्षा करने में तनिक भी लज्जा का अनुभव नहीं किया। अभी-अभी 'कारगोला' जहाज़ से ७ नवीन भारतीय यहाँ आ पहुँचे थे, और सुनते हैं, स्टीमर के कर्मचारियों को कुछ दे-दिलाकर अपना मनोरथ सिद्ध करना चाहते थे; किंतु भंडा फूट गया, वे पकड़े गए, डरबन की अदालत में मामला चला, और उनको निर्वासन का दंड मिला। इन वर्जित प्रवासियों की सहायता करने के अपराध में जहाज़ का एक क्लर्क भी फँसा था। किंतु वह निर्दोष होकर छूट गया। ये सातो वर्जित प्रवासी गुजरात-प्रांत के मुसलमान थे, और स्वयं तो निर्वासित हुए ही, किंतु यहाँ के प्रवासी भारतीयों के मुँह पर भी स्याही पोतते गए। इन पंक्तियों को लिख ही रहा था कि मुझे इस प्रकार की एक और सूचना मिली, जिससे मेरे तो होश-हवास गुम हो गए। डेलगोआबे से ट्रांसवाल को जाती हुई डाकगाड़ी में दो ऐसे भारतीय पकड़े गए हैं, जो बिस्तर के गट्ठर में बँधे हुए थे, अर्थात् गट्ठर के रूप में ट्रांसवाल जा रहे थे। भेद खुल गया, और जब गट्ठर खोलकर देखा गया, तो उसमें से दो जीते-जागते आदमी निकल आए। इस घटना से कांग्रेस के अधिकारियों और शास्त्रीजी को मुँह दिखाना मुश्किल हो गया है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, कांग्रेस और शास्त्रीजी के अथक उद्योग से अंतर्विभाग के मंत्री डॉक्टर मलान ने यह स्वीकार किया कि जो लोग १९२४ की ५ जूलाई से पहले इस देश में किसी भी तौर से घुस आए हैं, उनको क्षमा कर दिया जायगा; किंतु शर्त यह है कि वे पहली ऑक्टोबर, १९२८ से पहले सरकार के सामने आकर सब सच्ची-सच्ची बातें बता दें। किंतु उक्त तिथि के बाद आए हुए भारतीयों को किसी भी प्रकार क्षमा नहीं किया जा सकता। पकड़े जाने पर उनके लिये निर्वासन का दंड धरा-धराया है। इसके अतिरिक्त पहली ऑक्टोबर के पश्चात् क्षमा-पत्र के लिये किसी की अर्ज़ी फिर नहीं स्वीकार की जायगी।

इस विषय पर सरकार के साथ आवश्यक बातचीत या लिखा-पढ़ी करने के लिये कांग्रेस द्वारा एक उपसमिति बनाई गई। इस समिति में प्रत्येक प्रांत के दो-दो सदस्य चुने गए। कांग्रेस की इस उपसमिति ने इस मामले में बहुत कुछ उद्योग किया, और अंत में क्षमा-पत्र की ये शर्तें तय हुईं—१९२४ की पाँचवीं

जुलाई से पहले के आए हुए भारतीयों को क्षमा-पत्र दिया जाय; किंतु मिनिस्टर को यह अधिकार होगा कि वह जब चाहे, इस क्षमा-पत्र को रद कर सकता है। दूसरी बात यह कि क्षमा-प्राप्त भारतीय के औरत-बच्चे यदि दक्षिण-आफ्रिका में न आ चुके हों, तो वे भविष्य में भारत से नहीं आ सकेंगे। तीसरी बात यह है कि मिनिस्टर वचन-बद्ध होते हैं कि जब तक क्षमा-प्राप्त व्यक्ति ऐसा कोई अपराध न करे, जिससे देश के वर्तमान विधान के अनुसार वह निर्वासन का पात्र समझा जाय, तब तक यह सनद रद नहीं की जायगी।

शास्त्रीजी और कांग्रेस ने इस बात की बड़ी चेष्टा की कि सन् १९१४ के गांधी-स्मट्स-समझौते से पहले के आए हुए भारतीयों को क्षमा-पत्र लेने के बखेड़े में न डाला जाय, किंतु उनको सफलता नहीं हुई। इसका मतलब यह हुआ कि सन् १८९७ के प्रवास-क़ानून के बाद जितने भारतीय नेटाल में आए हैं, उन सबको क्षमा-पत्र लेना ही चाहिए। ट्रांसवाल के भारतीयों के साथ इतनी रिआयत अवश्य हुई है कि जिनको शांति-रक्षण-सनद (Peace Preservation Permit) के आधार पर रजिस्ट्री की सनद मिली है, उनको क्षमा-पत्र के झमेले से बरी कर दिया गया है।

इस विषय पर कांग्रेस और शास्त्रीजी ने भारतीय हित-रक्षा की दृष्टि से जो कुछ कार्य किया है, वह सर्वथा सराहनीय है; किंतु खेद के साथ कहना पड़ता है कि यहाँ एक ऐसे दल की सृष्टि हो गई है, जो कांग्रेस और शास्त्रीजी के समझौते से संतुष्ट नहीं है, और उनका प्रबल विरोधी बन बैठा है। हाल ही में केपटाउन में इस दल की एक कानफ्रेंस हुई थी, उसमें शास्त्रीजी को डॉक्टर मलान के हाथ की कठपुतली और कांग्रेस को देश-द्रोहियों की संस्था कहा गया तथा जनता को यह सलाह दी गई कि कोई क्षमा-पत्र के लिये सरकार से याचना न करे। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह दल उत्तरदायित्वहीन व्यक्तियों से संगठित हुआ है, और सर्वसाधारण का इस गुट पर ज़रा भी विश्वास नहीं।

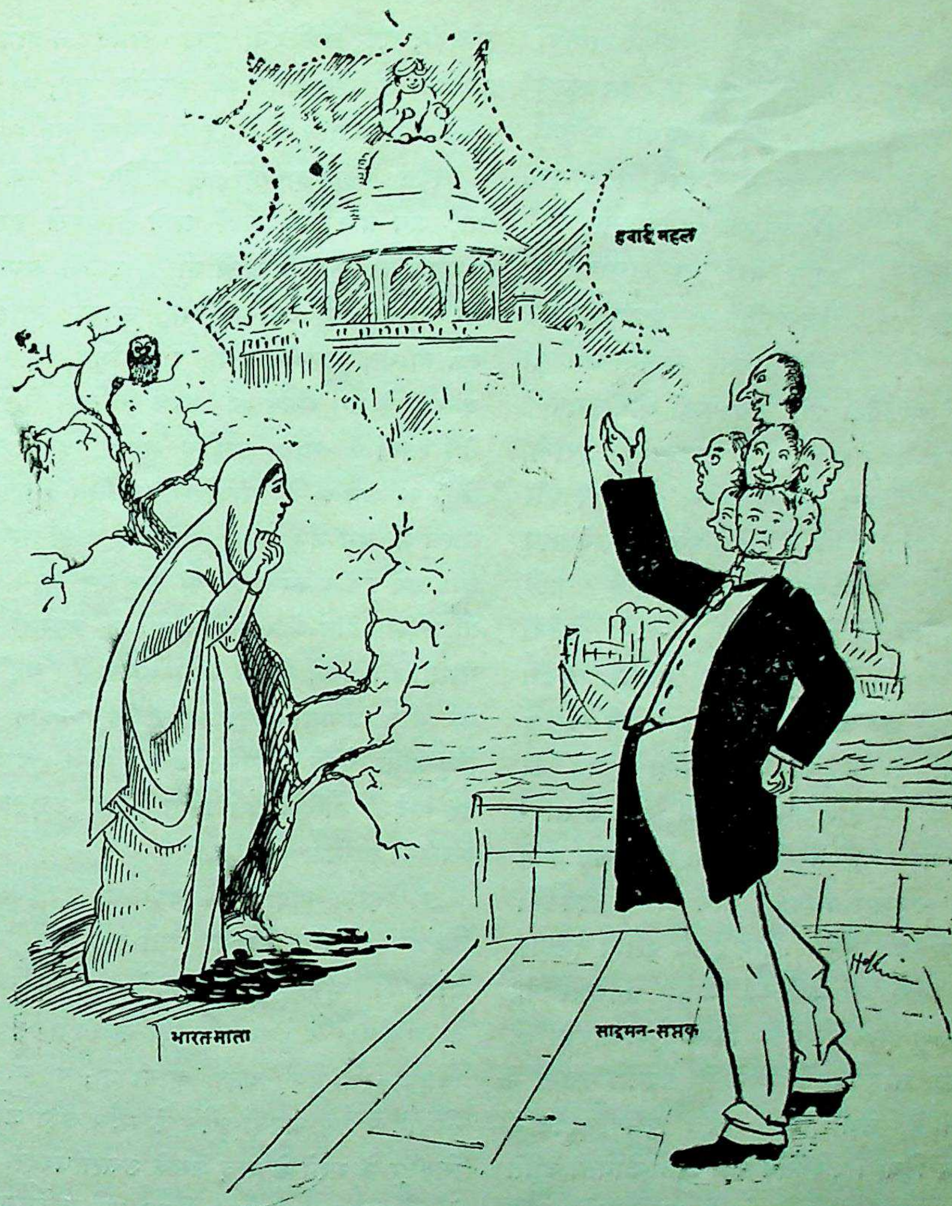
इधर शास्त्रीजी और कांग्रेस के कार्यकर्ता दक्षिण-आफ्रिका में स्थान-स्थान पर जाकर लोगों को यही सलाह देते फिरते हैं कि "ग़ैर-क़ानूनी तौर से आए हुए भारतीयों को इस अवसर से अवश्य लाभ उठाना चाहिए। इस समय पर चूक जाने से फिर पछताने के सिवा कुछ हाथ न लगेगा। 'उलटा चोर कोतवाल को डाँटे'वाली नीति तुम्हारे लिये घातक सिद्ध होगी। क्षमा-पत्र लेकर अपनी स्थिति को दृढ़ कर लो। पहली ऑक्टोबर के बाद जब गिरफ़्तारी और निर्वासन का सिलसिला जारी होगा, तो इच्छा रहते हुए भी हम तुम्हारी कुछ भी सहायता नहीं कर सकेंगे। यदि तुम्हारी सनद में कोई क़ानूनी दोष निकलेगा, तो अंतर्विभाग के मंत्री ने यह वचन दिया है कि वह क़ानून द्वारा उसका संशोधन कर देंगे, और यदि यूनियन सरकार अपने वचन से बदल भी जायगी, तो भारत-सरकार, भारतीय राष्ट्र महासभा, महात्मा गांधी और संसार के न्यायप्रेमी सज्जन तुम्हारा साथ देंगे।"

दूसरा गुट अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पका रहा है। उसका कथन है कि "यूनियन सरकार के वचन पर विश्वास करना धोका खाना है। यह सब वर्जित प्रवासियों को फँसाने के लिये एक चाल चली जा रही है। इस फंदे में कोई मत आना। सरकार भले ही पकड़कर देश से निकाल दे, किंतु स्वयं जाकर यह स्वीकार करना कि मैं वर्जित-प्रवासी हूँ, अपनी मूर्खता का डंका पीटना है।"

इस परिस्थिति में बेचारे वर्जित-प्रवासी बड़ी दुबिधा में पड़ गए हैं। क्या करें, क्या न करें, यह उनकी समझ में नहीं आता। बहुत थोड़े लोगों ने क्षमा-पत्र के लिये अर्ज़ी दी है। इस समय दक्षिण-आफ्रिका का वायुमंडल इसी चर्चा से गूँज रहा है—इसके सिवा और कोई बात ही नहीं सुनाई देती। पहली ऑक्टोबर के बाद जब धर-पकड़ का बाज़ार गर्म होगा—निर्वासन का दंड जारी होगा, उस समय की करुण और भयंकर अवस्था की कल्पना कर अभी से हृदय काँप रहा है। *

* यह लेख ऑक्टोबर से एक-दो मास पहले का लिखा हुआ है। आजकल का वहाँ का हाल अगले लेखों में मिलेगा।—सु० सं०

हवाई महल



साइमन-सप्तक—(भारतमाता से) लीजिए, आपको यही सुंदर महल मिलेगा।

शुद्धि और जाति-पाँति का भेद

[पं० जनार्दन भट्ट एम्० ए०]



हिंदू-जाति अत्यंत प्राचीन जातियों में गिनी जाती है। इस समय संसार में जितनी जातियाँ जीवित हैं, उनमें से दो-एक को छोड़कर कोई भी ऐसी जाति नहीं जो प्राचीनता में हिंदू-जाति का मुक़ाबला कर सके। न-जाने कितनी जातियाँ इसके देखते-देखते पैदा हुईं, फली-फूलीं और समय के गर्भ में विलीन हो गईं। इसकी समकालीन ईरानी, मिसरी, यूनानी, रोमन, बैबिलोनियन, चैल्डियन और असीरियन सभ्यताएँ दुनिया के पर्दे से सदा के लिये लोप हो गईं। पर हिंदू-सभ्यता और हिंदू-जाति न-जाने कितने परिवर्तनों को देखती हुई, न-जाने कितनी ऊँची-नीची दशाओं को सहती हुई, गिरती, पड़ती, और लड़खड़ाती अब तक मौजूद है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि यह जाति सदा समय की आवश्यकता के अनुसार और काल की गति के साथ-साथ अपने अंदर परिवर्तन करती रही है। जब कभी देश-काल के अनुसार परिवर्तन करने की आवश्यकता इसको मालूम पड़ी, तभी फ़ौरन् इसने पुरानी दक़ियानूसी बातों को छोड़कर नई बात अंगीकार कर ली। जब कभी इसने देखा कि किसी पुरानी बात को गुड़-चींटे की तरह पकड़े रहने से अपनी उन्नति में बाधा पड़ती है, तभी उसने तुरंत पुरानी बात में परिवर्तन कर दिया। परिवर्तन को जीती-जागती जाति का चिह्न समझकर यह परिवर्तन से भागी नहीं। इसी तरह इसकी असाधारण जीवन-शक्ति का एक दूसरा कारण यह है कि यह अत्यंत प्राचीन समय से लेकर मुसलमानों के आने तक अपने साथ संघर्ष करनेवाली अनेक जातियों को अपने विशाल पेट के अंदर हमेशा निगलती और हज़म करती रही है। वैदिक समय से लेकर मुसलमानों के आक्रमण तक द्राविड़, ईरानी, यूनानी, शक, सीथियन, हूण आदि न-जाने कितनी जातियों से हिंदू-जाति की मुठभेड़ हुई; पर सब इस विशाल हिंदू-जाति के समुद्र में समाती गईं।

सबसे पहले द्राविड़ों को लीजिए। एक ज़माना था, जब आर्यों के यहाँ आने के पहले इस देश में द्राविड़ों की तूती बोलती थी। उनकी सभ्यता ऊँची थी, उनका धर्म चढ़ा-बढ़ा था, उनका साहित्य ऊँचे दर्जे का था, उनकी भाषा परिमार्जित थी। हर एक बात में वे उस समय की सभ्य जातियों से टक्कर लेते थे। आर्यों के साथ उन्होंने बहुत दिनों तक टक्कर ली। पर अंत में वे आर्यों से पराजित होकर दक्षिणी भारत में बस गए, और धीरे-धीरे आर्य-सभ्यता और आर्य-धर्म ग्रहण करते हुए पूरे हिंदू बन गए। इस समय तो मदरास-प्रांत के रहनेवाले द्राविड़ कट्टरता में उत्तरी भारत के हिंदुओं के भी कान काटते हैं। यह इस बात का जीता-जागता उदाहरण है कि प्राचीन समय में हिंदू-जाति ऐसी संकुचित न थी, जैसी आजकल है। वह विदेशी और विधर्मी जातियों को उदारता के साथ अपने में शामिल करती रही है।

द्राविड़ों के बाद दूसरी बड़ी जाति, जिसका संघर्ष हिंदुओं के साथ बहुत दिनों तक रहा, वह यूनानी जाति थी। यूनानियों का सबसे पहला हमला सिकंदर की अधीनता में हुआ। सिकंदर पंजाब में थोड़ी दूर तक विजय करता हुआ चला आया था; पर व्यास-नदी के किनारे से उसे अपनी फ़ौज के साथ लौट जाना पड़ा। सिकंदर के मरने के बाद उसके उत्तराधिकारी सेल्यूकस ने भारत पर आक्रमण किया; पर चंद्रगुप्त मौर्य के मुक़ाबले में वह न ठहर सका, और उसे अपनी हार स्वीकार कर लेनी पड़ी। इस हार के उपलक्ष्य में उसे अपने साम्राज्य के काबुल, कंधार और हेरात, ये तीनों प्रांत चंद्रगुप्त के हवाले कर देने पड़े, और संधि को दृढ़ करने के लिये उसे अपनी लड़की का पाणिग्रहण भी चंद्रगुप्त मौर्य के साथ कर देना पड़ा। इस प्रकार आज

से दो हज़ार वर्ष पहले हिंदू-जाति इतनी विशाल-हृदय और उदार थी कि उसका एक बड़ा भारी सम्राट् एक विदेशी और विधर्मी राजा की राजकुमारी का पाणिग्रहण विना किसी संकोच के कर सकता था, और वह घृणा का पात्र न होता था। चंद्रगुप्त के बाद अशोक के समय तक भारतवर्ष में मौर्य-साम्राज्य का बोलबाला रहा। अशोक का विदेशियों के साथ बड़ा घनिष्ठ संबंध था। अशोक के भेजे हुए धर्मोपदेशक धर्म का प्रचार करने के लिये मिसर, यूनान आदि दूर-दूर देशों को जाते थे; पर उनका धर्म न जाता था। अशोक की आँखें मुँदते ही मौर्य-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। उसके भिन्न-भिन्न प्रांत स्वतंत्र होकर अलग-अलग राज्य बन बैठे। कोई ऐसी बड़ी शक्ति उस समय भारतवर्ष में न थी, जो सबों पर अपना प्रभुत्व जमाकर उन्हें एक कर सके। देश की ऐसी हालत से फ़ायदा उठाकर यूनानियों ने फिर हमला करना शुरू किया, और पश्चिमोत्तर-प्रांत तथा पंजाब पर अपना क़ब्ज़ा जमा लिया। यूनानियों के अधिकार में पंजाब और पश्चिमोत्तर-प्रांत, दोनो लगातार २५० वर्षों तक रहे। इस अर्से में अनेकों यूनानी राजों ने वहाँ पर राज्य किया, जिनके सिक्के अब तक पाए जाते हैं। इन सिक्कों से पता चलता है कि कम-से-कम चालीस यूनानी राजों ने पंजाब और पश्चिमोत्तर-प्रांत पर राज्य किया। इन यूनानी राजों में से कइयों ने बौद्ध-धर्म और कइयों ने हिंदू-धर्म ग्रहण कर लिया था। जिन राजों ने बौद्ध-धर्म ग्रहण किया था, उनमें से मुख्य मिनेंडर का नाम आता है। बौद्ध-ग्रंथों में यह 'मिलिंद' के नाम से विख्यात है। इसने ईसा-पूर्व १६० से १४० तक काबुल और पंजाब पर राज्य किया। इसने आगे चलकर बौद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया, और बुद्ध का बड़ा भक्त हो गया। पाली-भाषा में 'मिलिंद-पन्हो' एक बहुत ही उत्तम ग्रंथ है। उसमें मिलिंद उस समय के प्रसिद्ध बौद्ध-भिक्षु नागसेन से शंकाएँ तथा प्रश्न करता है, और नागसेन उन शंकाओं का समाधान करता है। यह बड़ा न्यायी राजा था। ऐसा कहा जाता है कि यह इतना लोकप्रिय था कि इसके मरने के बाद लोगों ने इसका भस्मावशेष आपस में बाँटकर उस पर स्तूप बनवाए थे। इसके बाद जिन यूनानी राजों ने हिंदू-धर्म ग्रहण कर लिया था, उनमें मुख्य एंटिएल्काइडस का नाम लिया जाता है। यह विष्णु का परम भक्त था। इसका नाम बेसनगर-नामक गाँव में मिले हुए एक स्तंभ के ऊपर खुदे शिला-लेख में आता है। यह गाँव ग्वालियर-राज्य की दक्षिणी सीमा पर भेलसा के समीप है। प्राचीन विदिशा-नगरी यहीं थी। इसके खँडहर अब तक पाए जाते हैं। इसी जगह बेतवा-नदी के किनारे, एक बड़े टीले पर, 'गरुड़ध्वज'-नामक एक स्तंभ खड़ा है। उस स्तंभ पर निम्न-लिखित लेख खुदा हुआ है—

देवदेवस वासुदेवस गरुड़ध्वजे अयं
कारिते इअ हेलिओदोरेण भाग-
वतेन दियसपुत्रेण तखसिलाकेन
योनदूतेन आगतेन महाराजस
अंतलिकितस भागभद्रस त्रातारस
वसेन चतुदसेन राजेन वधमानस

इसका भावार्थ यह है कि यह विष्णु का गरुड़ध्वज विष्णुभक्त हेलिओडोरस की आज्ञा से बनाया गया। वह यवन (यूनानी) था। इसके पिता का नाम डीओन था। वह तक्षशिला का रहनेवाला था। इसी काम के लिये वह महाराज एंटिएल्काइडस का दूत या प्रतिनिधि बनकर विदिशा के राजा भागभद्र के पास आया था।

इस शिला-लेख से पता चलता है कि न केवल यूनानी राजे-महाराजे, बल्कि सर्वसाधारण यूनानी भी हिंदू-धर्म को स्वीकार कर हिंदू-जाति में मिलते जा रहे थे। इस शिला-लेख में हेलिओडोरस, जो केवल साधारण राजदूत था, अपने को भागवत (विष्णु का भक्त) लिखते हुए अपने को बड़भागी समझता है। हिंदू-धर्म और हिंदू-जाति की यह विशालता और उदारता आज से दो हज़ार वर्ष पहले थी। धीरे-धीरे पंजाब और सीमा-प्रांत पर रहनेवाले यूनानी हिंदुओं में इस क़दर समा गए कि अब उनका कोई चिह्न भी बाक़ी नहीं है।

यूनानियों के बाद दूसरी विदेशी क़ौम जो भारतवर्ष में आई, वह शकों की थी। यूनानियों की तरह शक

भी यहाँ आकर हिंदू-जाति में समा गए । यहाँ तक कि प्रारंभ में उनके भूमक, नहपान, चष्टन आदि नाम मिलते हैं, पर बाद को वे इतने अधिक हिंदू-धर्म में परिवर्तित हो गए कि अपने नाम भी हिंदू-ढंग के रखने लगे । उनके बाद के शिला-लेखों में शक-राजों के नाम रुद्रसिंह, रुद्रसेन, पृथ्वीसेन, ईश्वरदत्त, विजय-सेन आदि पाए जाते हैं । यही नहीं, हिंदू-धर्म और संस्कृत-भाषा के उद्धार में भी उनसे बड़ी सहायता मिली । उनके पहले के जितने शिला-लेख मिलते हैं, सब प्रायः शुद्ध प्राकृत या पाली-भाषा में हैं; पर शकों के ज़माने से शिला-लेख प्राकृत और संस्कृत-मिश्रित भाषा में तथा शुद्ध संस्कृत-भाषा में मिलने शुरू होते हैं । बल्कि सबसे पहला और बड़ा संस्कृत शिला-लेख एक शक-राजा ही का खुदवाया हुआ है । यह शिला-लेख जूनागढ़ में, गिरनार-पर्वत की एक चट्टान पर, खुदा हुआ है, और इसका खुदवानेवाला शकों का महाप्रतापी राजा रुद्रदामन् प्रथम था । शकों का आधिपत्य ईसवी सन् की चौथी शताब्दि तक, चार सौ बरस तक, भारतवर्ष पर रहा । इसी बीच वे हिंदू-जाति में इतने मिल-जुल गए कि बाद को उनका अलग अस्तित्व ही न रह गया । इससे पता लगता है कि कम-से-कम ईसवी सन् की चौथी शताब्द तक हिंदू-धर्म और हिंदू-जाति वैसी संकुचित और अनुदार न थी, जैसी आज-कल है, और उसमें बराबर विदेशियों का ख़ून मिलता जा रहा था ।

शकों के बाद सीथियन या कुषान लोगों का हमला भारतवर्ष पर हुआ । कुषानों का सबसे पहला हमला कुजुल कैडफ़ाइसिज़ की अध्यक्षता में हुआ । पर इसका राज्य केवल सिंधु-नदी तक फैला हुआ था । उसके बाद उसका पुत्र वीम कैडफ़ाइसिज़ उसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसे कैडफ़ाइसिज़ द्वितीय भी कहते हैं । यह बड़ा ही पराक्रमी था । इसने एक-एक करके पंजाब के यूनानी और शक-राजों को जीत लिया । यहाँ तक कि बनारस तक का संपूर्ण उत्तरी भारत इसके अधीन हो गया । इसके सिक्के पूर्व की ओर बनारस तक और दक्षिण की ओर नर्मदा तक प्रायः कुल उत्तरी भारत में पाए जाते हैं । इसके सिक्कों पर हाथ में त्रिशूल लिए हुए शिव तथा नंदी की मू बनी हुई है, और उन सिक्कों पर जो लेख है, उ कैडफ़ाइसिज़ ने अपने को माहेश्वर (शिव का भ लिखा है । इससे पता लगता है कि वह हिंदू-धर्म हिंदू-समाज में पूरी तरह से मिल गया था । कैड सिज़ द्वितीय के बाद कनिष्क राजगद्दी पर बैठा । उ लेखों और सिक्कों से पता चलता है कि उसका साम्रा पूर्व में ग़ाज़ीपुर और दक्षिण में विंध्य-पर्वत तक हुआ था । उसकी गणना बौद्ध-युग के महान् पुरुषों की जाती है । वह बौद्ध-धर्म का अनुयायी था, उसके समय में बौद्ध-धर्म की उन्नति परा काष्ठा पहुँच चुकी थी । उसकी संरक्षकता में, काश्मीर बौद्ध-धर्म की चौथी महासभा हुई, और उसी के में बौद्ध-धर्म का एक नया संप्रदाय, महायान-पं नाम से, निकला । उसके सिक्कों पर बुद्ध-भगवान् मूर्ति, बैठी हुई, पाई जाती है, जिससे पता लगता कि वह बुद्ध का परम भक्त था । पर उसके बहुत सिक्कों पर शिव की मूर्ति भी, नंदी-सहित, पाई है, जिससे पता चलता है कि बौद्ध-धर्म में आने पहले वह शैव-संप्रदाय में था । कनिष्क के बाद उ उत्तराधिकारी और भी अधिक हिंदू-धर्म में मिलते कनिष्क के एक उत्तराधिकारी का नाम वासुदेव इस नाम से ही सूचित होता है कि कुषान लोग को पूरे हिंदू हो गए थे । यहाँ तक कि वे अपना भी हिंदू-ढंग का रखने लगे । इस वासुदेव के पर भी नंदी-सहित शिव की मूर्ति पाई जाती कुषानों के हिंदू-धर्म में आने का इतिहास भी इस का पक्का सबूत है कि प्राचीन भारत में हिंदू-जाति चित और अनुदार न थी, और उसमें धड़ाधड़ वि और विधर्मी मिलते जा रहे थे ।

कुषानों के बाद सबसे बड़ा हमला हूणों का हु ये लाखों की तादाद में भारतवर्ष में आए, बस गए और धीरे-धीरे हिंदू-जाति में पूरी तर मिलते गए । भारतवर्ष पर हूणों का पहला ह ईसवी सन् की पाँचवीं शताब्दि में हुआ । इन का मुखिया तोरमाण था । ई० स० ४९९ के बा यह 'महाराजा' की उपाधि धारण कर मालवे

राजा बन बैठा । तोरमाण के मरने के बाद इसका पुत्र मिहिरगुल इसका उत्तराधिकारी हुआ । राजतरंगिणी में इस राजा के संबंध में लिखा है कि इसने श्रीनगर में मिहिरेश्वर-महादेव की स्थापना की, मिहिरपुर-नामक नगर बसाया, कंदहार के ब्राह्मणों को बहुत-सा दान दिया, और अंत में ७० वर्ष राज्य करके अग्नि में प्रवेश किया । यह शैव-मत का कट्टर अनुयायी था और बौद्धों का परम शत्रु । बौद्धों के न-जाने कितने स्तूप और मठ इसने नष्ट कर दिए । इसके सिक्कों पर भी त्रिशूल और नंदी की मूर्ति बनी है । इसके बाद किसी हूण-राजा का इतिहास नहीं मिलता, और हूण धीरे-धीरे यहाँ के लोगों में मिल गए । अब भी राजपूतों की ३६ शाखाओं में एक शाखा इसी हूण नाम से प्रसिद्ध है । यही नहीं, बहुत-से ऐतिहासकों का यह भी मत है कि अग्निकुल के परमार, परिहार, चालुक्य और चौहान-वंशी राजपूतों की उत्पत्ति इन्हीं हूणों से है । कुछ ऐतिहासिकों के मत में गूजर और जाट भी इन्हीं हूणों के साथ भारत में आए और यहीं बसकर हिंदू-जाति के अंग बन गए ।

ऊपर भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास से विदेशियों के जितने उदाहरण दिए गए हैं, उनसे सिद्ध होता है कि मुसलमानों के आने के पहले तक हिंदू-जाति में, समय के अनुसार, परिवर्तन करने तथा दूसरी जातियों को अपने में पचा लेने की अद्भुत शक्ति बाक़ी थी । लेकिन इधर एक हज़ार वर्ष से, जब से मुसलमान यहाँ आए, इसकी यह शक्ति बिलकुल जाती रही । अभी तो सात करोड़ मुसलमान और कई लाख ईसाई भारतवर्ष में दिखाई पड़ रहे हैं । जब से इसकी यह शक्ति गई, तभी से इसका अधःपतन शुरू हुआ । तब से लेकर आज तक यह कभी ग़ुलामी के पंजे से नहीं छूटी । मुसलमानी ज़माने से हिंदुओं ने अपने पिछले इतिहास से फ़ायदा उठाना छोड़ दिया । उसने मुसलमानों से अपनी रक्षा का उपाय सिर्फ़ इसी में समझा कि जहाँ तक हो सके, हिंदू-जाति के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जायँ, और उन टुकड़ों में जाति-पाँति का बंधन मज़बूती के साथ क़ायम किया जाय । चाहिए था कि हिंदू-जाति मुसलमानों से अपनी रक्षा करने के लिये साहस, वीरता और मर्दानगी के साथ उनका मुक़ाबला करती, अपने में एकता और संगठन पैदा करती, पहले से ही जो भेद-भाव और जाति-पाँति के भेद चले आ रहे थे, उन्हें भी तलाक़ देकर एक जाति बन जाती, और अंत में मुसलमानों को अपने अंदर मिला लेने की भरसक कोशिश करती, या कम-से-कम अपने सामाजिक संगठन को उदारता की बुनियाद पर क़ायम करके अपने भाइयों को ही मुसलमान होने से रोकती । पर उसने इसके बिलकुल विपरीत ही किया । संगठन के बजाय उसने अपने को और भी असंख्य जाति-पाँति के टुकड़ों में बाँट दिया, एकता के बजाय फूट का सहारा लिया, मुसलमानों को मिलाने के बजाय उनसे दूर भागने की कोशिश की । यही नहीं, बल्कि अपना सामाजिक संगठन ऐसा संकुचित और कट्टर बना लिया कि सामाजिक अत्याचारों से पीड़ित होकर हिंदू लाखों की तादाद में मुसलमान बनते गए, और अंत में बढ़ते-बढ़ते सात करोड़ हो गए । ख़ैर, मुसलमान हो गए थे, तो फिर उन्हें हिंदू बना लेते; पर नहीं, जो एक बार हिंदू-जाति से निकल गया, वह हमेशा के लिये बाहर कर दिया गया, और हिंदू-जाति दिन-पर-दिन संकुचित, अनुदार और कम होती गई ।

इधर कई वर्षों से फिर हिंदुओं में संगठन-शक्ति लाने की कोशिश हो रही है । इसी के लिये शुद्धि का आंदोलन भी ख़ूब ज़ोरों से चलाया जा रहा है । बल्कि शुद्धि के संबंध में जितना जोश हिंदुओं में दिखाई पड़ रहा है, और जितनी चिल्लाहट मचाई जाती है, उससे तो यही पता लगता है कि ज़रूर मुसलमानों और ईसाइयों की एक बड़ी भारी तादाद शुद्ध करके हिंदू बना ली गई होगी । आर्य-समाज तो पहले से ही शुद्धि का काम कर रहा है । इधर हिंदुओं की सबसे बड़ी संस्था हिंदू-महासभा भी शुद्धि के पक्ष में प्रस्ताव पास कर चुकी है । जगह-जगह शुद्धि-सभाएँ भी खुल गई हैं । मालवीयजी-जैसे कट्टर सनातन-धर्मी भी, समय का प्रवाह रुकता हुआ न देखकर, शुद्धि के पक्ष में अपनी राय दे चुके हैं । रोज़ ही शुद्धि की

ख़बरें भी अख़बारों में छपा करती हैं। इन सब बातों से मालूम पड़ता है कि शुद्धि के मामले में ख़ासी दिलचस्पी हिंदुओं में मौजूद है। मगर इतनी दिलचस्पी मौजूद होते हुए भी, और लगातार ५-६ वर्षों से शुद्धि का आंदोलन चलते रहने पर भी सवाल यह उठता है कि कितने आदमी अब तक शुद्ध करके मिलाए जा चुके हैं। मुझे नहीं मालूम कि ठीक-ठीक कितनी संख्या उन आदमियों की है, जो अब तक शुद्ध हो चुके हैं; पर क़रीने से यही मालूम पड़ता है कि यह संख्या बहुत ही कम, यानी दाल में नमक के बराबर भी नहीं है। अब सवाल यह होता है कि इतनी कोशिश किए जाने पर भी और बावजूद इतनी दिलचस्पी के शुद्धि के आंदोलन में विशेष सफलता क्यों नहीं मिलती, और शुद्ध होनेवालों की संख्या ज़्यादा क्यों नहीं बढ़ती। इस सवाल को हल करने के लिये हमें अपने वर्तमान सामाजिक संगठन पर और जो लोग शुद्ध होकर हिंदू-समाज में मिलाए जा सकते हैं, उनकी सामाजिक आवश्यकताओं पर एक सरसरी नज़र डालने की ज़रूरत है। तभी हम इस असफलता के असली कारण का ठीक पता लगा सकते हैं।

सबसे पहले हमें यह देखना है कि वे कौन-से लोग हैं, जिनके लिये शुद्धि-आंदोलन चलाया जा रहा है, और जो शुद्ध होकर हिंदुओं में मिल सकते हैं। ऐसे लोग तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं। पहले तो वे मुसलमान हैं, जो आधे हिंदू हैं, और जो दूसरे मुसलमानों से कोई विशेष संपर्क नहीं रखते। इस तरह के मुसलमान मलकाने राजपूत या इसी तरह के दूसरे लोग हैं, जो मुसलमानी ज़माने में मुसलमान बना लिए गए थे। पर उनके बहुत-से रस्म-रवाज अब तक हिंदू-ढंग के ही चले आ रहे हैं। वे कई हज़ार की संख्या में शुद्ध करके हिंदू बना लिए गए हैं। कहीं-कहीं उनके गाँव-के-गाँव भी शुद्ध कर लिए गए हैं। पर उनके शुद्ध करने में कोई सामाजिक अड़चन हिंदुओं के सामने पेश नहीं आती; क्योंकि उनकी संख्या इतनी काफ़ी है कि वे आपस में ही शादी-ब्याह मज़े से कर सकते हैं, और लड़के-लड़कियों की शादी के लिये उन्हें दूसरे हिंदुओं का मुँह देखने की ज़रूरत नहीं है। हिंदू हो जाने के बाद उनकी एक अलग ही जाति बन गई है। फ़र्क़ सिर्फ़ यही है कि पहले वे मुसलमान कहलाते थे, अब हिंदू कहलाते हैं। बाक़ी दूसरे हिंदुओं से उनका कोई संबंध, खान-पान या शादी-ब्याह का, नहीं है। सर्वसाधारण हिंदुओं को तो जाने दीजिए, सर्वसाधारण राजपूतों की भी निगाह में वे कुलीन राजपूत नहीं गिने जाते। शुद्धि के समय या आम सभाओं में दिखाने के लिये कुछ जोशीले राजपूत या दूसरे ख़याल के हिंदू भले ही उनके हाथ की छुई हुई मिठाई ग्रहण कर लें, पर कोई भी राजपूत उनसे अपनी लड़की या लड़के का संबंध करने के लिये तैयार न होगा। उनकी बिरादरी ही अलग है। ख़ाली नतीजा इतना ही पैदा हुआ कि उनके सबब से हिंदुओं की संख्या लाख-दो लाख शायद बढ़ गई और जहाँ नौ हज़ार नौ सौ निन्यानबे टुकड़ियाँ हिंदुओं में पहले से ही मौजूद थीं, वहाँ दो-एक टुकड़ियाँ और भी शामिल हो गईं।

अब दूसरे भाग में वे लोग रक्खे जा सकते हैं, जो ख़ुद अपनी ज़ात से मुसलमान या ईसाई हो गए हैं। शायद आप कहेंगे, उनके बारे में क्या दिक़्क़त है? वे शुद्ध करके अपनी-अपनी बिरादरियों में मिला लिए जा सकते हैं। ख़ैर, मैं माने लेता हूँ कि हिंदुओं की भिन्न-भिन्न बिरादरियाँ इतनी उदार हो गई हैं कि ईसाई या मुसलमान हो गए अपने भाई या बहन को शुद्ध करके उदारता के साथ अपने में मिला लेंगी; पर उन लोगों का क्या होगा, जो ईसाई या मुसलमान होने के बाद ईसाइयों या मुसलमानों में शादी-ब्याह का संबंध भी कर चुके हैं, और उनसे औलाद भी पैदा हो चुकी है? सवाल यह उठता है कि अगर ऐसे लोग शुद्धि के लिये तैयार हों, तो अकेले वे ही शुद्ध करके अपनी-अपनी बिरादरी में मिला लिए जायँगे, या उनके बाल-बच्चे, आल-औलाद भी? अगर अकेले वे ही मिलाए जायँगे, तो उनके बाल-बच्चों का क्या होगा? क्या हिंदुओं में मिलने के लिये वे अपने बाल-बच्चों को तर्क करने को तैयार होंगे? मैं एक मिसाल सामने रखता हूँ। इलाहाबाद में गंगाराम चौबे नाम के एक ईसाई हो गए हैं। कुछ

हुए, उनका देहांत हो चुका है। जाति के वह कुलीन मालवीय ब्राह्मण थे। आज से चालीस वर्ष की बात है कि वह ईसाई हो गए। उन्होंने अपनी स्त्री से भी ईसाई होने के लिये कहा; पर स्त्री ने उनका साथ देने से इनकार कर दिया, और बड़ी दृढ़ता के साथ, बड़ी-बड़ी तकलीफ़ें उठाकर भी, हिंदू-धर्म में डटी रही। ईसाई हो जाने के बाद गंगाराम चौबे मालवीय ने एक ईसाई स्त्री से शादी की, जिससे कई लड़के-लड़कियाँ उनके पैदा हुईं। इस तरह से, इसमें कोई शक नहीं कि गंगारामजी की इन ईसाई-संतानों में आधा हिंदू-ख़ून बह रहा है। अगर मान लिया जाय कि वे शुद्ध होकर हिंदू होना चाहें, तो किस बिरादरी में रक्खे जायँगे? आधे मालवीय होने की हैसियत से उन्हें क्या शुद्धि के पक्ष में राय देनेवाले और हिंदू-संगठन के जन्मदाता मालवीयजी महाराज अपनी बिरादरी में मिलाने और उनके साथ लड़के-लड़की का विवाह-संबंध करने के लिये तैयार होंगे? कदापि नहीं। इसलिये ऐसे लोगों का शुद्ध होकर हिंदू-समाज में मिलना असंभव है। ऐसी हालत में शुद्धि-आंदोलन सिवा धोखे की टट्टी के और क्या कहा जा सकता है?

अब आइए, उन मुसलमानों या ईसाइयों को लीजिए, जो पैदायशी मुसलमान या ईसाई हैं, और जिनकी कई पीढ़ियाँ मुसलमान या ईसाई-धर्म में बीत चुकी हैं। मैं शुद्धि के हामियों से सवाल करता हूँ कि अगर ऐसे लोग शुद्ध होकर हिंदू होना चाहें, तो हिंदू-समाज में उन्हें कौन-सा स्थान मिलेगा? वे किस वर्ण में रक्खे जायँगे, और उनके लड़के-लड़कियों की शादी कहाँ होगी? मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह बिना किसी समाज के नहीं रह सकता। खान-पान, शादी-ब्याह, पर्व-उत्सव, मरगी-बीमारी, हर बात में उसे समाज की ज़रूरत पड़ती है। उसके यहाँ उत्सव होते हैं, जिनमें वह दूसरों को खिलाना-पिलाना चाहता है। उसके लड़के-लड़कियाँ होती हैं, जिनका वह शादी-ब्याह करना चाहता है। अच्छा, अब आप देखिए कि अगर कोई पैदायशी या पुश्तैनी मुसलमान हिंदू हो जाय, और अगर उसके आल-औलाद भी हो, तो वह अपने लड़के-लड़कियों की शादी कहाँ करेगा? मान लीजिए, आज मौलाना मोहम्मदअली शुद्ध होकर हिंदू हो जायँ, तो मालवीयजी महाराज या शुद्धि और संगठन के दूसरे हामी उनके लिये क्या इंतिज़ाम करेंगे? उन्हें किस वर्ण में रक्खेंगे? मौलाना होने की हैसियत से संभव है, वह ब्राह्मण-वर्ण क़रार दिए जायँ। परंतु ब्राह्मणों में भी अनगिनती बिरादरियाँ हैं। उनमें से किस बिरादरी में वे रक्खे जायँगे? शुद्धि-आंदोलन के संबंध के ये सब सवाल आप-से-आप पैदा होते हैं। क्या शुद्धि के हामियों ने इन पर कभी विचार किया है, और अगर विचार किया है, तो इनका क्या उत्तर रखते हैं?

अब आइए, देखिए कि अगर कोई हिंदू मुसलमान बनना चाहे, तो उसका क्या दर्जा मुसलमानों के बीच होगा। पहले तो यह कि इसलाम-धर्म के सब हक़ और फ़ायदे उसके लिये पूरी तरह से खुले हुए हैं। वह मुसलमानों में सबके साथ खा-पी सकता है—कोई उसके साथ इनकार न करेगा। वह जो चाहे सो पेशा अख़्तियार कर सकता है—कोई रुकावट उसके लिये न रहेगी। वह मुल्ला भी हो सकता है। वह अगर क़ाबिल है, तो बड़े-से-बड़े मौलाना के यहाँ शादी कर सकता है। उसके लड़के-लड़कियों की शादी में कोई दिक़्क़त पेश न आवेगी। न उसे दहेज़ और क़रार की चक्की में पिसना पड़ेगा, और न बिरादरी के सामने किसी प्रकार की हेठी सहनी पड़ेगी। इसलाम-धर्म में सब बराबर हैं। वे आपस में बराबरी के साथ खाते हैं, पीते हैं और शादी-ब्याह करते हैं। वे एकसाथ, बिना किसी ऊँच-नीच के भेद के, नमाज़ में शामिल होते हैं। उनमें कोई सामाजिक भेद-भाव नहीं। कोई किसी के साथ खाने-पीने में इनकार नहीं करता। उनमें कोई अछूत नहीं, कोई अलग ब्राह्मण नहीं, अलग क्षत्रिय नहीं, अलग वैश्य नहीं, अलग शूद्र नहीं। समाज में सबका दर्जा बराबर है। सभी मुल्ला और मौलाना हो सकते हैं, सभी सिपाही हो सकते हैं, सभी रोज़गारी हो सकते हैं। उनमें पेशे की आज़ादी है। कोई भी पेशा हो, अगर ईमानदारी के साथ किया जाय, तो उनके यहाँ कोई हिकारत की नज़र से नहीं देखा जाता। कोई कहीं भी आ सकता है—

सी तरह की रुकावट नहीं। कोई कहीं भी शादी कर सकता —किसी तरह की धार्मिक या सामाजिक अड़चन नहीं। ख़ानसामा का लड़का भी, अगर काफ़ी क़ाबिल है, बड़े-से-बड़े मुसलमान के यहाँ शादी कर सकता है। अब ज़रा हिंदुओं की सामाजिक हालत पर ग़ौर ए। जहाँ मुसलमान अपने मज़हब में आनेवालों पूरे अधिकार देने में कोई संकोच नहीं रखते, हिंदू अपने धर्म में आनेवाले विधर्मियों और ातियों को तो जाने दीजिए, स्वयं अपने ख़ून-मांस ाइयों को भी मनुष्यत्व के साधारण-से-साधारण कार देने से भी दूर भागते हैं। सबसे पहली बात यह है कि हिंदू मुसलमानों की तरह एक जाति । उनमें चार बड़े-बड़े फ़िर्क़े हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, और शूद्र। ख़ैर, अगर चार ही भेद होते, तो भी बात न थी। पर ब्राह्मण एक नहीं, अनेक जातियों टे हैं। क्षत्रिय-जाति एक नहीं, अनेक जातियों में री हुई है। वैश्य एक नहीं, अनेक टुकड़ियों में क्त हैं। और, शूद्र भी एक नहीं, असंख्य टुकड़ों में हुए हैं। इस समय अगर गिनती की जाय, तो इन टुकड़ियों की संख्या हज़ारों तक पहुँचेगी। इन ड़ियों के अंदर भी सब एक हों, सो नहीं। उनमें आपस में ऊँच और नीच का भेद है, जिसका हिसाब नहीं। वे आपस में न खायँगे, न पिएँगे, शादी-ब्याह करना तो दरकिनार। इनके अलावा छः करोड़ अछूत अलग हैं, जो आपस में ऊँच और नीच की अनेक टुकड़ियों में विभाजित हैं। ऐसी हालत में शुद्धि की चर्चा चलाना ख़ाली हिमाक़त दिखाना या दुनिया को धोका देना है। असल बात तो यह है कि जब तक हिंदू-जाति अपने समाज का दरवाज़ा उसी तरह से नए शुद्ध होनेवाले मुसलमानों या ईसाइयों के लिये न खोल देगी, जिस तरह मुसलमानों या ईसाइयों ने हिंदुओं के लिये खोल रक्खा है, तब तक कोई पैदायशी या पुश्तैनी मुसलमान अथवा ईसाई हिंदुओं में शुद्ध होकर मिलने के लिये तैयार न होगा। यह काम ख़ाली 'शुद्धि-शुद्धि' चिल्लाने से न होगा। यह तभी होगा, जब हिंदू-लोग जाति-पाँति के भेद को हमेशा के लिये मिटाकर एक जाति बन जायँगे। इसलिये अगर हम शुद्धि के मसले को सफल बनाना चाहते हैं, और दूसरी जातियों के मुक़ाबले में हिंदू-जाति की हस्ती क़ायम रखना चाहते हैं, तो सबसे पहले हमें अपने जाति-पाँति के भेद को हमेशा के लिये दूर करना होगा। उसके पेशतर 'शुद्धि-शुद्धि' चिल्लाना दुनिया के सामने अपनी हँसी कराना है। शुद्धि का सवाल जाति-पाँति के सवाल पर निर्भर है। जाति-पाँति का सवाल हल हो जाने पर शुद्धि का सवाल आप ही हल हो जायगा।

सत्रहवीं शताब्दी की एक राजस्थानी गल्प

[श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ साहित्याचार्य]



आजकल उपन्यासों, क़िस्से-कहानियों और गल्पों का ख़ूब प्रचार हो रहा है। हिंदी-भाषा की प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों में तो अधिक संख्या इस विषय की पुस्तकों की ही रहती है। इसके अलावा मासिक पत्रों आदि में भी एक-आध गल्प का होना आवश्यक समझा जाता है। इससे साहित्य के इस अंग की ओर जनता का कितना झुकाव है, यह स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में इस विषय के साहित्य की अत्यधिक वृद्धि हुई और हो रही है, तथापि आज से कई शताब्दियों पहले भी बड़े आदमियों के मनोरंजनार्थ समय-समय पर ऐसे साहित्य का निर्माण होता रहता था। उसी में से आज हम सुधा के पाठकों को वि० सं० १६०३ की रचित 'ढोला मारवण की बात'-नामक गल्प का रसास्वादन कराते हैं। यह गल्प वि० सं० १६०३ में कवि कल्लोल ने मारवाड़ी-भाषा में लिखी थी *। इसमें कहीं-कहीं दोहे भी रक्खे गए थे, जैसा कि इस दोहे से प्रकट होता है—

गाहा गूढा गीत गुण कवत कथा कल्लोल ;
चतुर तणा चित रीझवण कहई कवि कल्लोल

पाठकों की जानकारी के लिये पुस्तक के प्रारंभ की कुछ पंक्तियाँ नमूने के तौर पर यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

"मुरधर देस मैं पूंगल नांम नगर। तिण नगर रौ धणी पिंगल नामै राजा, मारवाड में नवकोट रो धणी उतराध काँनी समुद्र ताँई आँण दौँण वरताई छै। नगर में च्यारूँ वरण सुखसूँ वसै छै। मोटा साहूकार धनरा भणी रहै छै। रिध सिध रौ वासो छै आठ हजार राजा रै लारै पायदल चढ़ै छै, पाँच हजा घोड़ो चढ़ै छै।"

परंतु इसने इस गल्प को गद्य में लिखा था, औ इसके ४ वर्ष बाद, वि० सं० १६०७ में, यति-जै साधु कुशलचंद ने जैसलमेर के महाराजकुमार हरराज जी के मनोविनोदार्थ इसे दोहा-चौपाइयों में अनूदि किया **। यह बात निम्न-लिखित चौपाइयों से ज्ञा होती है—

गाहा सात सयत्र परिमांण ; दोहाने चौपाई ज.ण
जादव रावल श्रीहरराज; जोडी तास कुतूहल काज
जेणाय पर कवि मुख साँभली; तिण पर मैं जोडी मनरली
दोहा घणा पुराणा अछै; चौपइ बंध कियौ मैं पछै
अधिको ओछौ जोड्यो बहू; सुकवी तिसाँ सहज्यो सहू
पडियो ज्यहाँ वले पांतरौ; तहाँ विचारे करियौ खरौ
संवत सोलह से सतोत्तरै; आखा तीज दिवस मनखरै
जोडी जेसल नयर मँझार; वाचै सुख पामै संसार
संभल सगुण चतुर गहगहै; वाचक कुशल लाभ इम कहै
ऋद्धि वृद्धि सख संपति सदा; संभलतां पांमैं संपदा

---

* केवल एक प्रति के अंत में वि० सं० १६०३ में कवि कल्लोल का उक्त कथा को बनाना लिखा है।

** गुजरात की तरफ़ के विद्वान् "सोलह सौ सतोत्तरै" का अर्थ १६१७ करते हैं। यदि यह ठीक हो, तो इसी साल हरराजजी का गद्दी पर बैठना भी माना जा सकता है। एक प्रति में 'सोलह सौ सोलोत्तरै' पाठ भी पाया गया है।

जैन-गुर्जर-साहित्योद्धारक ग्रंथमाला के ७वें मौक्तिक श्रीआनंदकाव्यमहोदधि में ढोला मारवणी की कथा गुजराती अक्षरों मे छपी है। उक्त ग्रंथ के १४४वें पृष्ठ पर इस कथा का रचना-काल वि० सं० १६१७ की वैशाख-सुदि ३, गुरुवार लिखा है। परंतु न तो १६१७ में और न १६१६ में ही वैशाख सुदि ३ को गुरुवार था। उसी ग्रंथ के पृ० १५२ पर, जहाँ संवत् के विषय में पाठांतर दिए हैं, एक पाठ 'सोलह पनोत्तरै' भी है, और वि० सं० १६१५ की वैशाख-सुदि ३ को गुरुवार भी आता है।

यहाँ पर दो बातें विचारणीय हैं। प्रथम तो यह कि उपर्युक्त चौपाइयों में उक्त कथा का अनुवाद 'संवत् सोलह से सतोत्तरै' में किया जाना लिखा है। अतः इसे संवत् १६०७ में मानें या १६७७ में? इसके उत्तर में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि जोधपुर के इतिहास-कार्यालय में इस कथा की जो प्रति विद्यमान है, वह नागौर से प्राप्त पुस्तक से नक़ल की गई थी। उसके अंत में ये पंक्तियाँ लिखी हैं—

"संवत् १६६६ वर्षे काती सुद ८ दिने नागोर मध्ये श्रीउपकेश गच्छे, भट्टारक श्रीसिद्धसूरीश्वर शिष्य मेहा लिखितं।"

इनसे इसके पद्यमय अनुवाद का रचना-काल १६०७ मानना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

दूसरी यह कि इसमें, वि० सं० १६०७ में इसका जैसलमेर के रावल हरराजजी के मनोविनोदार्थ बनाया जाना लिखा है। परंतु उस समय उनके पिता मालदेवजी वहाँ के रावल थे। हरराजजी का समय जैसलमेर के इतिहास में वि० सं० १६१८ से १६३३ तक दिया है। इसके बाद १६७९ तक हरराजजी के पुत्र भीमजी जैसलमेर के रावल रहे थे। अतः संभव है कि वि० सं० १६०७ में युवराज समझ कर ही कवि ने हरराजजी के नाम के साथ रावल उपाधि लगा दी हो। परंतु यह विचारणीय ही है।

कर्नल टॉड ने अपने इतिहास-राजस्थान के फ़ुटनोट में लिखा है कि लूणकरण के तीन पुत्र थे। हरराज, मालदेव और कल्याणदास। परंतु हरराज के, अपने पिता लूणकरण के जीते जी ही, मर जाने से रावल लूणकरण के पीछे हरराज का पुत्र भीम जैसलमेर की गद्दी पर बैठा। परंतु यह ठीक प्रतीत नहीं होता; क्योंकि मारवाड़ के इतिहास से वि० सं० १६३३ में जैसलमेर के रावल हरराज का पौकरण पर चढ़ाई करना सिद्ध होता है। अस्तु, आगे हम 'ढोला मारवण की बात' की संक्षिप्त कथा देते हैं—

मरु प्रांत में पूँगल-नामक एक नगर है। एक रोज़ वहाँ का राजा पिंगल शिकार को चला। परंतु दैवयोग से जंगल में पहुँचने पर वह अपने साथवालों से बिछुड़ गया। गर्मी का मौसम था; अतः कुछ ही देर में राजा को प्यास मालूम हुई। इसी बीच में उसकी दृष्टि वृक्ष की छाया में बैठे हुए एक आदमी पर पड़ी। उसके पास ही पानी की एक सुराही भी रक्खी थी। यह देख राजा ने उससे जल लेकर पिया, और फिर शांति के साथ वहीं बैठकर बातें करने लगा। बातों-ही-बातों में जब राजा को यह मालूम हुआ कि वह पुरुष भाऊ-नामक भाट है, और अनेक राज-दरबारों में फिरता है, तब उसने अपना परिचय देकर उससे कोई अपूर्व बात देखी हो, तो बतलाने का आग्रह किया। इस पर भाट बोला---महाराज, मैंने अनेक देशों में भ्रमण किया है। परंतु जालोर के अधिपति देवडा सामंतसिंह* की कन्या ऊमा के समान रूपवती दूसरी स्त्री अब तक नहीं देखी। यथा—

चंद-वदन चंपक-वरण अहर अलत्ता रंग;
खंजननयनी खिण कट चंदन परमल अंग।

जिस समय ये दोनो वृक्ष के नीचे बैठे इस प्रकार की बातें कर रहे थे, उसी समय राजा को ढूँढते हुए उसके अनुचर भी वहाँ आ पहुँचे। अतः राजा भी उस भाट को साथ लेकर अपनी राजधानी को लौट गया।

कुछ दिन बाद राजा ने उक्त भाट को अपने आद- मियों के साथ जालोर भेज वहाँ के स्वामी से उसकी कन्या ऊमा का विवाह अपने साथ कर देने को कहल- वाया। परंतु सामंतसिंह ने भाट से कहा कि कन्या की मँगनी तो गुजरात के चावड़ा-नरेश उदयचंद के पुत्र रणधवल के साथ हो चुकी है। अतः इस विषय में अब कुछ नहीं हो सकता। यह सुन जिस समय वे लोग पूँगल को लौटने को उद्यत हुए, उसी समय सामंतसिंह की रानी ने इन्हें बुलवाकर समझाया कि यद्यपि कन्या का वाग्दान हो चुका है, तथापि मेरी इच्छा कन्या को गुजरात-जैसे पौरुषहीन और अस्वास्थ्यकर देश में ब्याहने की नहीं है। तुम अपने राजा से कह देना कि

* जालोर के स्वामी चौहान सामंतसिंह के समय के लेख वि० सं० १३३९ से १३५३ तक के मिले हैं। परंतु ... में उल्लिखित सावंतसिंह कब हुआ, इस विषय में कुछ ... कहा जा सकता।

इधर जैसे ही मैं समाचार भेजूँ, वैसे ही यहाँ चले आवें। उधर मैं ऐसा प्रबंध कर दूँगी कि उदयचंद को लग्न के केवल एक दिन पहले ही सूचना पहुँचे। फिर वह समय पर यहाँ नहीं पहुँच सकेगा। ऐसी हालत में तेल-चढ़ी हुई कन्या को तुम्हारे स्वामी के साथ ब्याह देने में कोई झगड़ा नहीं पड़ेगा। इस पर पिंगल के आदमी प्रसन्न होकर अपने देश को लौट गए। क़रीब एक वर्ष बाद जब विवाह का समय आया, तब रानी ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ही सारा प्रबंध कर दिया। इससे देवडी ऊमा का विवाह पिंगल के साथ हो गया। इसके बाद जालोर के स्वामी सावंतसिंह ने अपने जामाता के साथ थोड़ी-सी सेना देख उसे शीघ्र ही अपने देश को लौट जाने की सलाह दी, और कन्या को कुछ दिन बाद भेजने का विचार प्रकट किया; क्योंकि उसे गुजरात-नरेश के दल-बल-सहित आकर बखेड़ा मचाने का भय था। उसका यह विचार ठीक ही निकला। पिंगल के लौटते ही गुजरात का राजकुमार बरात सजाकर जालोर में आ पहुँचा, और जैसे ही उसे सब समाचार ज्ञात हुए, वैसे ही उसने सवार भेजकर अपने पिता को इसकी सूचना दी। परंतु समय हाथ से निकल चुका था। अतः उदयचंद ने पुत्र को तो वापस बुलवा लिया, और अपने सुभटों को जालोर-राज्य में उपद्रव करने की आज्ञा दे दी। यह हाल देख पिंगल ने अपने ससुर की सहायता के लिये सेना-सहित जालोर पहुँच गुजरात-वालों को दंड देने का विचार किया। परंतु सामंतसिंह ने यह बात पसंद नहीं की, और कहलवा दिया कि व्यर्थ के नर-संहार की आवश्यकता नहीं। कुछ दिनों में गुजरातवाले आप ही थक जायँगे।

इस प्रकार जिस समय इधर गुजरात-नरेश के सैनिक जालोर के चारो तरफ़ उपद्रव मचा रहे थे, उसी समय उधर देवडी ऊमा को जालोर से ले आने के लिये, पिंगल की आज्ञा से, उसके नौकर, जैसल ने बैलों की एक जोड़ी को तैयार करना शुरू किया। जब एक वर्ष के सतत परिश्रम से बैल पूरे-पूरे सध गए, तब एक रोज़ जैसल उन्हें रथ में जोतकर जालोर जा पहुँचा, और सायंकाल के समय अपनी स्वामिनी तथा उसकी दासी को उसमें बिठाकर प्रातःकाल होते-होते पूँगल लौट आया। गुजरातवाले हाथ मलते ही रह गए। नौ मास बाद ऊमा के गर्भ से पिंगल के एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका नाम मारवण रक्खा गया।

दैवयोग से अगले वर्ष बारिश न होने के कारण पूँगल में अकाल पड़ा, और पिंगल को अपने प्रजावर्ग के साथ पुष्कर की तरफ़ जाना पड़ा। वहाँ पर उस समय भी पानी और घास की अधिकता थी। अतः वर्षा होने तक सब लोग वहीं ठहर गए।

भाऊ भाट, जो कि पिंगल के विवाह के बाद उससे आज्ञा लेकर इधर-उधर राज-दरबारों में घूमता फिरता था, एक रोज़ नरवर के राजा नल के दरबार में जा पहुँचा। इस राजा के भी पहले पुत्र नहीं था। परंतु पुष्कर की यात्रा करने की प्रतिज्ञा करने से इसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने इस पर बड़ा उत्सव किया, और कुमार का नाम सालकुमार तथा उपनाम ढोला रक्खा।

जिस समय पिंगल अपने प्रजावर्ग-सहित पुष्कर में ठहरा हुआ था, उस समय ढोला की अवस्था तीन वर्ष की हो चुकी थी। अतः नरवर-नरेश भी पूर्व-प्रतिज्ञानुसार पुष्कर की यात्रा को आ पहुँचा, और इसी बीच वर्षा-ऋतु का प्रारंभ हो जाने से उसे कुछ समय के लिये पूँगल-नरेश के पड़ाव के पास ही पड़ाव डालकर ठहर जाना पड़ा—

ऊनइयो उत्तर दिसा गयण गरज्जै घोर ;
दहदिस चमकै दामणी मंडै तंडव मोर।

कुछ ही दिनों में, वहीं पर, दोनो राजों के बीच मित्रता हो गई। एक दिन दोनो राजा शिकार को गए। परंतु मार्ग में एक ख़रगोश के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ नल पिंगल के पड़ाव में आ पहुँचा। उस समय सब लोग सोए हुए थे। राजा ने ख़रगोश को ढूँढ़ते हुए एक डेरे में रानी ऊमा को और उसके पास ही उसकी कन्या को सोते हुए देखा। इस पर वह वहाँ से लौट गया। परंतु कन्या के रूप को देख उसने उसका विवाह अपने पुत्र ढोला से करने का विचार कर लिया। अतः जिस समय दोनो राजा शिकार खेलकर लौटने लगे, उस समय राजा नल ने पिंगल-नरेश को अपने यहाँ आकर भोजन करने का निमंत्रण दिया। जब वह

नरवरवालों के डेरे पर आया, तब उसने उसकी बड़ी आव-भगत की। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। अंत में नल ने पिंगल से मारवणी का विवाह ढोला के साथ कर देने की प्रार्थना की। पिंगल ने भी ढोला के रूप को देख यह बात अंगीकार कर ली। इसी के अनुसार दोनो का विवाह वहीं पर, बाल्यावस्था में ही, हो गया।

कुछ दिन बाद दोनो राजा अपने-अपने देशों को लौट चले। उस समय मारवणी की अवस्था केवल डेढ़ वर्ष ही की थी। अतः वह सुसराल न जाकर अपने माता-पिता के साथ पूँगल चली गई। धीरे-धीरे जब कई वर्ष बीत गए, और ढोला बड़ा हुआ, तब उसके पिता ने सोचा कि मारवणी का देश बहुत दूर है। ऐसी हालत में पुत्र को उसे लेने को भेजना उचित न होगा। यह विचार उसने सब लोगों को आज्ञा दे दी कि ढोला के सामने मारवणी के साथ उसका विवाह होने का उल्लेख कभी न किया जाय। इसके बाद ही उसने ढोला का दूसरा विवाह उज्जैन के राजा भीमसेन की कन्या मालवनी से कर दिया। इससे ढोला को अपने पहले विवाह का कुछ भी हाल मालूम न हो सका।

एक बार एक घोड़ों का सौदागर नरवर में आया, और पाँच महीने तक वहीं रहा। इससे ढोला और उसके बीच मित्रता हो गई। इसके बाद वह इधर-उधर घूमता हुआ पूँगल पहुँचा। वहाँ पर जिस समय वह घोड़े लेकर दरबार में जा रहा था, उस समय उसकी दृष्टि महल पर बैठी हुई मारवणी पर पड़ गई। उसके रूप को देख सौदागर चकित हो गया, और उसने एक राजकर्मचारी से उसके विषय में पूछ-ताछ की। जब उसे ज्ञात हुआ कि इस राजकन्या का विवाह उसके मित्र ढोला से हो चुका है, तब उसने ढोला के दूसरे विवाह का सारा वृत्तांत उस कर्मचारी को कह सुनाया। परंतु साथ ही ये सारी बातें महल में बैठी हुई मारवणी के कानों में भी पड़ गईं। इससे उसका चित्त एक-दम व्याकुल हो उठा—

सौदागर संदेसड़ा सांभलिया श्रवणेह ;
मारवणी मनदह हुई मूँ[illegible]णेह ।

जब यह सारा समाचार राजा के पास पहुँचा, तब उसने भी सौदागर को बुलवाकर सब हाल मालूम कर लिया। इसके बाद सौदागर तो व्यापार के लिये अन्य नगर को चला गया, और राजा ढोला को पूँगल में बुलवाने का उपाय सोचने लगा।

इसी बीच वर्षा-ऋतु के आ जाने से मारवणी का विरह और भी बढ़ गया, और वह विह्वल हो उठी। यह देख उसकी माता ने राजा से कहकर ढोला को बुलवाने के लिये साँड़नी-सवार भिजवाने शुरू किए।

इसी बीच नरवर में एक रोज़ ढोला की माता ने अपनी पुत्र-वधू मालवणी से कुछ काम करने को कहा। परंतु उसके उठने में देर करने के कारण रानी को गुस्सा आ गया, और उसने पुत्र-वधू से कहा कि मेरी बड़ी वधू मारवणी दूर देश में है, इसी से तुझे इतना अभिमान हो गया है। इतना कहकर रानी चली गई। ढोला भी उस समय वहीं पर आँखें मूँदे लेटा हुआ था। अतः उसने भी यह बात सुन ली। परंतु मालवणी ने अपने हाव-भाव से उसे प्रसन्न कर उक्त बात का ध्यान उसके दिल से निकाल दिया, और साथ ही पूँगल के मार्ग पर अपनी तरफ़ से चौकी बिठाने की आज्ञा भी ले ली। इसके बाद उसने उधर के रास्ते पर अपने आदमी भेज दिए, और उन्हें राहगीरों को मार डालने की गुप्त आज्ञा दे दी। इससे पिंगल के दूत मार्ग में ही मारे जाने लगे। जब यह समाचार पिंगल को मिला, तब उसने अपने पुरोहित को इस कार्य के लिये जाने की आज्ञा दी। इसकी सूचना पाते ही मारवणी ने अपनी माता से जाकर कहा कि ब्राह्मण को इस कार्य पर भेजना उचित नहीं है। ऐसे मामले में तो ढाढ़ियों (ढोलियों) ही को भेजना चाहिए; क्योंकि ये लोग मौक़े पर गा-बजाकर काम निकाल लेते हैं। राजा ने भी इस बात को मान लिया, और एक चतुर ढाढ़ी को नरवर जाने की आज्ञा दी। नरवर को आते हुए जिस समय वह ढाढ़ी मारवणी के महल पर आया, उस समय मारवणी ने उसे कई बातें समझाईं और अपनी तरफ़ से अपने पति के पास यह संदेसा

पिशुनां चीतो मत करे मनह न वीसारेह ;
कुरभाँ लाल बचाह ज्यूँ खिण-खिण चीतारेह ।
पही भमंतो जो मिले तो आखे एहिवत्त ;
धण कणयररी काँब ज्यूँ सूकी तोय सुरत्त ।
जे तू ढोला नावियौ काजलिया री तीज ;
चमक मरेली मारवी देख खिवंता बीज ।
रात जरूनी निसह-भर सुणीज सारै लोय ;
हाथाली छाला पड्या चीर निचोय-निचोय ।
पंथी एक संदेसडो ढोला लग पहुँचाय ;
जोबन-कलियाँ मोरियाँ भँवर न बैठे आय ।
ढाढ़ी एक संदेसडो ढोला लग पहुँचाय ;
जोबन हसती मद चढ्यो थे आँकस देजो आय ।

इस प्रकार संदेश लेकर जब उक्त ढाढ़ी नरवर के पास पहुँचा, तब उसे भी मालवणी के आदमियों ने पकड़ लिया। परंतु अंत में उसने गा-बजाकर उन लोगों को प्रसन्न कर लिया, और उनके हाथों से छूटने पर नरवर में पहुँच एक कुम्हार के घर में ठहर गया। यहीं पर उसने भाऊ भाट से भी मुलाक़ात कर ली। एक रोज़, जिस समय मालवणी सहेलियों के साथ बग़ीचे में गई हुई थी, भाऊ ने उस ढाढ़ी को ढोला से मिला दिया। उसकी ज़बानी सारा हाल सुन ढोला ने उसकी बड़ी आव-भगत की, और बिदाई के समय भाऊ भाट को उसके साथ कर शिकार के बहाने कुछ दूर तक ख़ुद भी पहुँचाने को गया। वहाँ से लौटकर जब वह महल में पहुँचा, तब उसे उदास देखकर मालवणी ने इसका कारण पूछा। इस पर ढोला ने विदेश जाने की अपनी इच्छा प्रकट की; परंतु मालवणी हठ करके उसे रोकने का आग्रह करने लगी, और बोली—

थल तत्ता लू सामुही दाझे लाय हियाँह ;
म्हाँ को कहियो जो करो घर बैठा रहियाँह ।

इस पर ढोला ने पूँगल जाकर मारवणी से मिलने की इच्छा प्रकट कर दी। यह सुन सौतिया-डाह से उसे चक्कर आ गया, और जब होश हुआ, तो उसने और भी अधिक हठ करना शुरू किया। इससे ढोला को दो महीने के लिये रुक जाना पड़ा। परंतु बरसात के आते ही ढोला ने पूँगल जाने का विचार कर मालवणी से कहा—

बाजरियाँ हरियालियाँ बिच-बिच बेलाँ फूल ;
जेभर बूठो भादवो मारू देस अमूल ।

इस पर मालवणी ने पीछा उत्तर दिया—

मह मोरा तंडव करै मनमथ अंग न माय ;
हूँ एकलडी किम रहूँ मेह, पधारो माँय ।
डूंगरिया हरिया हुआ बनै झिगोरै मोर ;
इण ऋतु ताँनो नीकले जाचक, चाकर, चोर ।

उसके इस प्रकार के आग्रह से ढोला को फिर तीन-चार मास के लिये ठहर जाना पड़ा। इसी बीच भाऊ आदि ने पूँगल पहुँच ढोला के कहे हुए समाचार राजा से कह सुनाए। इससे मारवणी को भी ढोला के आगमन की आशा हो गई। परंतु इधर जब ढोला शीतकाल में पूँगल की तरफ़ जाने का विचार करने लगा, तब फिर मालवणी ने उसे रोककर कहा—

जिण दीहे पालो पडै टापर तुरी सुहाय ;
तिण दिन बूढी ही झुरै तरुणी केम रहाय ।

परंतु इस बार ढोला ने चुपचाप चल देने का विचार कर लिया। अतः उसने अर्धरात्रि के समय जाकर अपने ऊँटों के टोले के रक्षक (रैबारी) से एक तेज़ चलनेवाले ऊँट के बाबत पूछ-ताछ की। परंतु इसकी सूचना मालवणी को हो गई, और उसने ढोला के वहाँ से हटते ही उस सबसे तेज़ ऊँट को थोड़ी देर के लिये लँगड़ा कर दिया। इस पर भी जब ढोला ने अपना विचार नहीं बदला, तब उसने यह प्रार्थना की कि कम-से-कम जब तक मैं सो न जाऊँ, तब तक के लिये तो आप यहीं ठहर जायँ। यह बात ढोला ने मंज़ूर कर ली। परंतु मालवणी १५ दिन तक बराबर जागती रही। अंत में जब सोलहवें दिन उसे झपकी आई, तब ढोला ऊँट पर चढ़कर रवाना हुआ। फिर भी जैसे ही रवाना होते हुए ऊँट की बलबलाहट मालवणी के कान में पड़ी, वैसे ही उसकी आँख खुल गई। परंतु उसके सचेत होने तक ढोला बहुत दूर निकल चुका था। यह देख मालवणी ने अपने तोते को ढोला को लौटा लाने के लिये रवाना किया। जिस समय ढोला मार्ग में चंदेरी की सरहद के पास पहुँचा, उस समय तोता भी उसके पास जा पहुँचा, और उसने उसे मालवणी के मरणासन्न दशा में पहुँच जाने का समाचार दिया। परंतु इस पर भी

जब ढोला ने लौट चलने से इनकार कर दिया, तब वह स्वयं लौटकर अपनी स्वामिनी के पास चला गया।

ढोला भी वहीं पर नित्यकर्म से निवृत्त होकर आगे चला। जिस समय वह चंदेरी के बाज़ार में पहुँचा, उस समय वहाँ के एक सौदागर ने उससे कहा कि यदि आप मार्ग के अमुक ग्राम में मेरा एक पत्र पहुँचाते जाओ, तो मैं आपका बड़ा उपकार मानूँगा। इस पर ढोला ने उत्तर दिया कि तुम्हारे पत्र लिखने तक तो मैं यहाँ ठहर नहीं सकता। हाँ, यदि तुम ऊँट पर मेरे पीछे बैठकर पत्री लिख दो, तो मैं उसे कहे हुए स्थान पर पहुँचा सकता हूँ। इस पर वह व्यापारी दावात क़लम और काग़ज़ लेकर ऊँट पर बैठ गया, और पत्र लिखने लगा। परंतु ऊँट की चाल इतनी तेज़ थी कि जब तक उसने पत्र समाप्त किया, तब तक वह स्वयं ही उक्त गाँव में पहुँच गया। ढोला उसे वहीं छोड़ आगे बढ़ा, और पुष्कर के निकट पहुँच उसने ऊँट को पानी पिलाया। इसके बाद जैसे ही वह अर्वली को लाँघकर उस पार से इस पार आया, वैसे ही उसे मार्ग में एक चारण मिला। वह पिंगल-नरेश से नाराज़ होकर लौट रहा था। अतः उसने ढोला को पहचानकर कहा कि ढोला! तू जिस मारवणी के लिये इतना उद्योग कर रहा है, वह तो वृद्ध हो चुकी है। उसके तो केश तक भी श्वेत हो गए हैं। यह सुन ढोला का उत्साह शिथिल पड़ गया, और वह लौटने का इरादा करने लगा। इतने ही में पास खड़ी हुई एक (रैबारी जाति की) स्त्री ने उसे समझाया कि यह चारण तो ऊमरसूमरे का आदमी है, और उसी की तरफ़ से पिंगल के पास, मारवणी का पुनर्विवाह अपने स्वामी के साथ कर देने को कहने को गया था। परंतु वहाँ से विफल-मनोरथ होकर लौटा है। इसी से आपका मन उसकी तरफ़ से हटाने के लिये मारवणी की झूठी निंदा कर रहा है—वास्तव में देखा जाय तो—

> ढौढ वरसरी मारवी तीन वरस रौ कंत ;
> किम वा जोवन वह गई किम तूँ जोबनवंत।

इस पर सारी बात ढोले की समझ में आ गई और वह आगे बढ़ा। मार्ग में उसे पूँगल का एक दूसरा चारण मिला। ढोला ने अपने चित्त का संदेह मिटाने के लिये उससे मारवणी का हाल पूछा। इस पर उसने कहा—

> चंपावरणी खासिमुखी पिक सुर जेही वाँण ;
> ढोला एही मारुवी जाँणै कुरझ निवाँण।

यह सुनते ही ढोला का मन प्रसन्न हो गया, और उसने ऊँट को और भी तेज़ी से चलाना शुरू किया। उधर मारवणी ने ढोला को स्वप्न में देखा, इससे उसे निश्चय हो गया कि आज ढोला अवश्य आवेगा। इस विश्वास की पुष्टि उसकी बाईं आँख के फड़कने से भी हो गई। अतः उसने एक ऊँचे स्थान पर कुछ आदमी बिठा दिए कि वे ढोला को आता हुआ देखें, तो तत्काल ही उसकी सूचना भेज दें। सायंकाल होने पर चित्त की उत्कंठा के कारण वह स्वयं भी सहेलियों को साथ लेकर घूमने को निकली। जैसे ही वह रास्ते के कुएँ पर पहुँची, वैसे ही ढोला भी वहाँ आ गया, और खड़ा होकर ऊँट को पानी पिलाने लगा। उसे देख मारवणी के साथ की सहेलियाँ उसका नाम आदि पूछने लगीं।

इस पर उसने कहा—

> ऊँडा पाणी कोहरे वले चढीजै नीठ ;
> मारवणी रै कारणै देस अदीठा दीठ।

यह सुन सहेलियों सहित मारवणी तो घर को लौट गई, और ढोला ने तत्काल अपने आने का समाचार अपने श्वशुर के पास भेज दिया। इस पर पिंगल ने बड़े समारोह के साथ अपने दामाद की अगवानी की, और उसे राजमहल में लाकर बड़े आदर-मान से स्नान-भोजन आदि करवाया। फिर जब ढोला को एकांत में मारवणी से मिलने का मौक़ा मिला, तब उसने उससे क्षमा माँगी, और कहा कि मेरे माता-पिता ने इस विवाह की बात मुझसे छिपाकर रक्खी थी। परंतु जैसे ही यह बात मुझे ज्ञात हुई, वैसे ही कोशिश करके मैं तुम्हें लेने को आ गया हूँ। इसी प्रकार मारवणी ने भी अपना हाल सुनाया। उसने कहा कि आपके इस प्रकार उदासीन रहने पर ऊमरसूमरा ने हर तरह से आपकी बुराई कर मेरे साथ विवाह करने की कोशिश की थी। परंतु मैंने साफ़ इनकार कर दिया। इस प्रकार दोनो तरफ़ से बहुत देर तक प्रेम-

भरी बातें होती रहीं । इनके इस चिराभिलषित सम्मिलन से चारों तरफ़ प्रसन्नता फैल गई । इसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

ते सज्जन पाधारिया जाँकी जोता वाट ;
थाँभा कूदै घर हसै खेलण लागी खाट ।

इस प्रकार कुछ दिन ससुराल में रहकर ढोला अपने देश लौट जाने को उद्यत हुआ । इस पर पिंगल ने भी अपनी कन्या मारवणी को मय दहेज़ के उसके साथ कर दिया । सायंकाल के समय मार्ग में सब लोगों ने भोजन आदि कर विश्राम किया । परंतु वहीं पर रात्रि में सोती हुई मारवणी को पीणे * साँप ने डस लिया । प्रातःकाल उठते ही मारवणी को मरी हुई देख ढोला ने साथ के लोगों को तो पूँगल लौटा दिया, और स्वयं उसके साथ जलने को उद्यत हो गया । इतने में उधर से एक योगी और उसकी स्त्री आ निकले । योगिनी ने जब ढोला की यह अवस्था देखी, तब वह योगी से मारवणी को फिर से सजीव कर देने का आग्रह करने लगी । इस पर योगी ने उपचार कर उसे पुनर्जीवित कर दिया । यह देख ढोला की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । उसने मारवणी की दासी विद्याधरी को, जो वहाँ रह गई थी, इस समाचार की सूचना देने के लिये पूँगल भेज दिया, और स्वयं मारवणी के साथ ऊँट पर चढ़ नरवर की तरफ़ चला । परंतु जल्दी में ऊँट का एक पैर घुटने के पास से बँधा ही रह गया । मार्ग में ऊमरसूमरा का एक जासूस बैठा था । जैसे ही उसने इनको जाते हुए देखा, वैसे ही इसका समाचार अपने स्वामी के पास भेज दिया । इस पर वह भी एक सौ सवार लेकर अगाड़ी मार्ग में जा पहुँचा, और ढोला के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा । जब ढोला उसके पास से निकला, तब ऊमर ने उसका आदर-सत्कार कर उससे कुछ देर ठहरकर विश्राम कर लेने का आग्रह किया । इस पर लाचार होकर ढोला को कुछ देर के लिये उसके पास बैठना पड़ा । मारवणी कुछ दूर पर ही ऊँट की मुहरी (रस्सी) थामे बैठ गई । ऊमर का इरादा ढोला को मारकर मारवणी को छीन लेने का था । अतः उसने उसे मदिरा पिलाना शुरू कर दिया । उस मजलिस में पूँगल की एक ढोलन बैठी गा रही थी । यह हाल देख उसने इस प्रकार गाना आरंभ किया—

थल माथै ऊजासडो को काहीक कुसंग ;
धण लीजै पिव मारजे छोड विडाणो संग ।

यह सुन मारवणी के जी में खटका हो गया । इतने में ढोलन ने फिर गाया—

मारवणी तूँ चतुरथी दिव तूँ बुज्झ गँवार ;
जो कंथासूँ काम छै तो तूँ करहो मार ।

यह सुनते ही मारवणी ने चुपके से ऊँट को बेत से मारा । अतः वह चमककर भाग खड़ा हुआ । इतने ही में ऊमर के आदमी उसे पकड़ने को उठे । परंतु मारवणी ने उन्हें यह कहकर रोक दिया कि अपने स्वामी के सिवा अन्य पुरुष को देख यह और भी चमक जायगा । इस पर ढोला, जो ऊमर की मीठी-मीठी बातों में आकर निश्चिंत हो रहा था, उठ खड़ा हुआ, और जैसे ही वह ऊँट को पकड़कर वापस लाया, वैसे ही मारवणी ने सारा हाल उससे कह दिया । इससे ऊमर का सारा कपट खुल गया, और ढोला मारवणी-सहित ऊँट पर चढ़ तत्काल वहाँ से रवाना हो गया । इस प्रकार फसा हुआ शिकार हाथ से निकलता देख ऊमर ने भी घोड़े तैयार कर उसका पीछा किया । पर एक पैर बँधा होने पर भी ऊँट की चाल बहुत तेज़ थी, अतः शत्रु लोग उसे नहीं पकड़ सके । इतने में ढोला को सामने आता हुआ एक चारण मिला । उसने ढोला से पूछा कि आप इस ऊँट का एक पैर बाँधकर इस तरह क्यों दौड़ा रहे हैं ? यह सुन ढोला को उसके एक पैर बँधे होने का ख़याल आया, और उसने चढ़े-ही-चढ़े अपनी कटार उस चारण को देकर ऊँट का बंधन काट देने को कहा । चारण ने तत्काल इस अनुरोध का पालन कर दिया । अब क्या था, जो ऊँट लँगड़ी चाल

* मरुस्थल में एक प्रकार का साँप होता है, जो रात्रि में सोते हुए मनुष्य के पास आकर बैठ जाता है । इसके साथ ही उसकी श्वास खुद मुँह में लेता रहता है, और अपनी उसकी नाक में छोड़ता रहता है । सर्प की श्वास के साथ ही उसका विष भी मनुष्य-शरीर में प्रवेश कर जाता है । इससे उसकी मृत्यु हो जाती है ।

से ही ऊमर के घोड़ों द्वारा नहीं पकड़ा जा सका था, वह अब तो हवा हो गया। इसके बाद जब वह चारण मार्ग में ऊमर से मिला, तब उसने ऊँट के बंधन काटने का सारा क़िस्सा कहकर उसे पीछा करने से मना कर दिया; क्योंकि उस वक्त तक ढोला बहुत दूर पहुँच चुका था। इस पर ऊमर तो हताश होकर वापस लौट गया, और ढोला सकुशल नरवर जा पहुँचा। जैसे ही यह समाचार नरवर-नरेश को मिला, वैसे ही उसने बड़ी धूमधाम के साथ उत्सव मनाने की आज्ञा दी। मारवणी ने महल में पहुँच यथानियम अपनी सास के चरण छुए। इसी अवसर पर पूँगल से दहेज़ का सामान लेकर भाऊ भी आ पहुँचा।

एक रोज़, जिस समय ढोला अपनी दोनो पत्नियों (मारवणी और मालवणी) के साथ बातचीत कर रहा था, मालवणी ने मारवणी को छेड़ने के लिये अपने देश मालवे की प्रशंसा और मारवणी के मरुदेश की निंदा करते हुए कहा—

मालवे की प्रशंसा

पग-पग नदियाँ नीर निवाँण, घणा गरथ ने लोक सुजाँण;
सगलै बरसै हुवै सुगाल, सुपनंतर में पड़े न काल।

मारवाड़ की निंदा

बाबल मत दै मारवाँ जावै रावालाँह ;
कंध लहाडो सिर घडो वासौ मज्झ थलाँह।

इस पर ढोला ने मारवणी का पक्ष लेकर उत्तर दिया—

मारूदेश उपन्नियाँ तिहाँ दंत सुस्वेत ;
कुरझ बची गोरांगियाँ खंजर जेहा नेत।

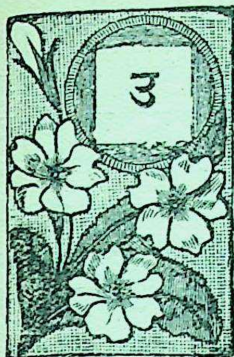
अंत में ढोला ने दोनो के बीच सुलह करवा दी। इस प्रकार दोनो पत्नियों के साथ ढोला का समय सुख से बीतने लगा। कुछ दिन बाद दोनो रानियों से उसके दो पुत्र भी उत्पन्न हुए।

यह क़िस्सा यहीं पर समाप्त होता है। राजस्थान के राजपूत-सरदारों के यहाँ अब तक इसका ख़ूब प्रचार है।

आल्ह-खंड का गद्यात्मक अनुवाद

[श्रीयुत लक्ष्मीनारायणसिंह]

(१)



उत्तरीय भारतवर्ष में आल्हे का प्रचार प्रायः कुछ-न-कुछ सभी जगह है। ख़ासकर युक्तप्रदेश तो इसका मुख्य अखाड़ा ही है। बरसात में बड़े-बड़े अल्हैतों की ख़ूब बन आती है। ढोलक की एक-एक ठनक से मुर्दा-दिल की नस-नस में भी गर्म ख़ून उबलने लगता है। आल्हा-ऊदल-जैसे वीर-चरितों से संप्रति हिंदी-संसार एकांत उदासीन है। किसी भी इतिहासकार ने अपने इतिहास में इन वीर-पुंगवों को स्मरण नहीं किया। पृथ्वीराज और जयचंद्र के वर्णन में सैकड़ों पृष्ठ केवल रंगीन बातों से भर दिए गए हैं, और तत्कालीन ही नहीं, प्रत्युत उनसे संबंध रखनेवाले विख्यात वीर आल्हा-ऊदल के पुण्य वीर-चरितों की उपेक्षा कर इतिहासकारों ने उनके प्रति अक्षम्य अपराध किया है। हिंदू-इतिहासकार भेड़िया-धसान की तरह ऐतिहासिक विषय का वर्णन करते हैं। एक की दृष्टि एक ओर जाते ही सबों की क़लमें उसी ओर फिसलने लगती हैं। बस, सभी इतिहासों में (कुछ अपवाद छोड़कर) केवल अंध-परंपरा ही दृष्टि-गोचर होती है। हिंदू-जाति के समान खोज और श्रम से डरनेवाली विश्व में और कोई दूसरी जाति नहीं है। विदेशी विद्वान् इसके राष्ट्रीय इतिहास के लेखक हैं और यह स्वयं हाँकती है राष्ट्र-प्रेम की डबल डींग !

शिवाजी पहले डाकू थे, लुटेरे थे, और थे एक पहाड़ी चूहा ! परंतु ज़रा-सी खोज और श्रम का कितना महत्त्व-पूर्ण निष्कर्ष निकला ! समस्त हिंदू-जाति की बंद आँखें खुल गईं। हिंदू-जाति का एक खोया हुआ रत्न मिल गया, और अँगरेज़ों की सारी दलीलें लचर साबित हुईं। अब शिवाजी डाकू से हिंदू-धर्म के उन्नायक गिने जाने लगे। "शिवाजी न होते तो, सुनति होती सबकी"-पंक्ति अब कैसी लोक-प्रिय हो गई। विषयांतर होने के लिये पाठक मुझे क्षमा-प्रदान करें।

साहित्य-महारथी आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी को डॉक्टर ग्रियर्सन साहब ने ख़ुद भी सीधे नहीं, द्राविड़ी प्राणायाम का-जैसा चक्कर काटकर, एक और महाशय की मारफ़त, 'आल्हखंड का अँगरेज़ी-अनुवाद' (The lay of Alha) की एक प्रति समालोचनार्थ भेजी थी। उसकी समालोचना पूज्य द्विवेदीजी ने 'माधुरी' की १९वीं पूर्ण संख्या में प्रकाशित कराई थी। उसी समालोचना के प्रसंग में आपने बड़े ही मार्मिक शब्दों में उसके एक हिंदी-गद्यात्मक-रूपांतर की आवश्यकता बतलाई थी। प्रसंग-सूत्र अखंडित रखने के लिये मैं उससे दो-चार अवतरण उद्धृत कर अपने इष्ट विषय की आवश्यकता दिखलाता हूँ। आपने लिखा है, "साधारण जनों—अपढ़ों और मूर्खों तक—को आल्हा इतना प्रिय है, और उसने उनके हृदयों पर इतना अधिकार कर लिया है कि उससे लेने लायक़ शिक्षाओं का असर समाज पर डालकर बड़े-से-बड़े काम कराए जा सकते हैं। यहाँ तक कि आल्हा-छंद में रची गई अभीष्ट विषयों की कविता से भी जन-साधारण का मन मनमानी दिशा की ओर आकृष्ट किया जा सकता है। परंतु बड़े ही परिताप की बात है कि इस ओर आज तक किसी का ध्यान ही शायद नहीं गया। 'आल्ह-खंड' को तो पढ़े-लिखे लोगों ने हेय सा समझकर उसका कोई अच्छा-सा संस्करण तक नहीं प्रकाशित किया। उसकी जितनी पुस्तकें देखी जाती हैं, प्रायः सभी बाज़ारू हैं। किसी में कुछ अधिक है, किसी में कुछ कम। किसी में केवल महोबे या सिरसे ही की लड़ाई है, और किसी में केवल बेला का ब्याह है। पाठांतरों और क्षेपकों की तो गिनती ही नहीं। हमारे दुर्दिन और हमारे साहित्य की दुर्गति का यह दुःख-जनक दृश्य बड़ा ही करुणा-जनक है। और देश होता, तो इस वीर-पूज्य पुस्तक की सहायता से अनेक नए-नए काव्य बन जाते, इसके कथा-भाग के आधार पर अनेक नई-

नई पुस्तकें प्रकाशित हो जातीं । और कुछ न होता, तो सभ्यताभिमानी शिक्षितों के पढ़ने योग्य इसका एक गद्यात्मक रूपांतर तो अवश्य ही तैयार हो जाता ।"

'आल्ह-खंड' के जो दो-एक बाज़ारू संस्करण प्रचलित हैं, वे भी किसी हिंदू की कृति नहीं, उनके कर्ता उसी वीर श्रमशील जाति के अवतंस हैं, जो हमारे घरों के दीपक सप्त-समुद्र नाँघकर जलाते हैं। इस पुण्य-योजना के आयोजक का शुभ नाम है, सर चार्ल्स इलियट। उन्नीसवीं सदी के द्वितीयार्द्ध के प्रारंभ-काल में आप कुछ दिनों तक फ़रुर्ख़ाबाद-ज़िले के मैजिस्ट्रेट और कलक्टर थे। "इन्हें आल्हा से प्रेम हो गया। पर उस समय अर्थात् सन् १८६७ ई० तक आल्हा की कोई पुस्तक न तो छपी हुई मिलती थी, और न लिखी हुई ही। इस कारण इलियट साहब ने क़न्नौज के आस-पास के नामी-नामी अल्हैतों को बुलाकर आल्हा सुना। फिर जैसा पाठ उन्होंने सुनाया, उसी के आधार पर आल्हे को लिखा लिया। भिन्न-भिन्न विषयों के अनुसार उन्होंने उसे तेईस सर्गों या खंडों में विभक्त किया। इस प्रकार जो आल्हा लाखों मनुष्यों के गले का हार हो रहा है, और जो हमारे धर्म, आचार, कर्तव्य, क्षत्रियत्व और वीरत्व आदि के अनूठे भावों का भांडार है, वह हमें एक विदेशी अँगरेज़ अफ़सर की बदौलत प्राप्त हुआ। एतदर्थ हमें सर चार्ल्स इलियट का कृतज्ञ होना चाहिए।"

इलियट साहब हिंदी जानते थे नहीं; अतः आपने तत्कालीन इलाहाबाद के एकाउंटेंट जनरल वाटरफ़ील्ड साहब के पास आल्हे की एक हिंदी-लिपि-बद्ध प्रति अँगरेज़ी-अनुवाद के लिये भेज दी, वाटरफ़ील्ड साहब ने उसके कुछ सर्गों का अँगरेज़ी-अनुवाद किया। 'आल्ह-खंड' के अँगरेज़ी-अनुवाद के प्रथमार्द्ध के मध्य-भाग में ही उक्त साहब ने अपनी लौकिक लीला संवरण की! तत्पश्चात् डॉक्टर ग्रियर्सन ने अवशिष्ट सर्गों का गद्यात्मक सारांश लिखकर कथित पुस्तक को संपादित कर प्रकाशित कराया।

आल्हा-ऊदल के पाठ से बारहवीं सदी के संयुक्त-प्रदेश की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का बहुत कुछ ज्ञान उपलब्ध हो सकता है। हिंदी-साहित्य-संसार तो इस पुण्यमय गौरव से सर्वथा रिक्त ही है। लेकिन महोबे की बात तो इससे भी अधिक ग़ज़ब ढानेवाली है।

जिस प्रदेश के पुनीत अंचल पर आल्हा-ऊदल ने शुभ जन्म ग्रहण कर बाल्य-सहज चपलता से अनेक वीरोचित करामातें कर दिखाईं, उन्हीं ख्यातनामा वीरों का उसी प्रदेश के किसी कोने में भी कोई स्मृति-चिह्न नहीं है! स्मृति-चिह्न की बात तो जाने दीजिए, महोबे के अधिकांश आदमी आल्हा-ऊदल के नाम पूछने पर भौचक-से रह जाते हैं। इससे तो यही भासित होता है कि भारतवासियों ने उन वीरों का बड़ा ही अपमान किया है। न उन्हें बाहर ही स्थान दिया और न हृदय में।

उस समय मैंने पूज्य द्विवेदीजी-कृत समालोचना 'माधुरी' में पढ़ी। उसे पढ़ते ही आल्ह-खंड का गद्यात्मक रूपांतर करने की लालसा उमड़ पड़ी। परंतु यह थोड़ी देर ही टिकी। कारण, आलस्य-देव का मैं परम भक्त हूँ। इसी बहाने हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहा कि आचार्य की मर्मभेदी शब्दमयी ध्वनि अवश्य ही किसी योग्य विद्वान् के कानों तक पहुँच सकेगी। पर थोड़े दिनों के बाद मेरी वह धारणा निर्मूल साबित हुई। यों ही एक दिन मैं 'माधुरी' के पन्ने उलट रहा था कि अचानक मेरी दृष्टि उसी समालोचना पर पड़ी। पहले की बातें पुनः स्मृति-पटल पर अंकित हो गईं। मुझे अपने कर्तव्य का स्मरण हो आया। अयोग्य होते हुए भी मुझे इस महत्त्व-पूर्ण कार्य में हाथ लगाना पड़ा। अब हिंदी-संसार का यह पुण्यमय कर्तव्य है कि वह मुझे सरस्वतीदेवी की मंगलमयी विभूति की पुण्य-कठोर साधना में साहाय्य-प्रदान कर महामाया के पुनीत प्रसाद का अधिकारी बने। मैं चाहता हूँ, हिंदू-धर्म के उन्नायक वीर-केसरी शिवाजी की तरह ही आल्हा-ऊदल का पवित्र आंदोलन किया जाय। इन वीरों के प्रति सुरुचि उत्पन्न करने के हेतु मैं इनकी संक्षिप्त विवेचना करूँगा। मनोयोग-पूर्वक अध्ययन करने से पुस्तक बड़ी सरस प्रतीत होती है। न-जाने क्यों, इससे जनता अब तक एकांत उदासीन रही है।

(क्रमशः)

कानपुर-मेमोरियल वेल पर

[बाबू भगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

तुम प्रतिहिंसा से प्रतिपालित पापों के आख्यान,
तुम पद-दलित देश की छाती पर उसके अपमान,
अरे विजय की गौरव-स्मृति तुम, और हार के व्यंग,
मर मिटनेवालों के बचने के तुम दोष महान,
शक्ति की गुरुता के उपहार,
तुम्हारे वक्षस्थल में व्याप्त,
रोष की और घृणा की ज्वाल,
रक्त के कुछ थोड़े-से बिंदु,
ग़ुलामों के पातक विकराल,
किस नरक की कहते हो कथा,
द्वेष के विष से पूरित व्याल!
"है कलुषित उद्गार प्रतिक्रिया," तुम इस पर विश्वास,
घातक के मग में बाधा पर तुम उसके निःश्वास,
अनाचार था आदि, अंत था भीषण अत्याचार;
तुम पापों से घिरे पाप के छोटे-से इतिहास!
क्रांति! नहीं, था ग़दर, दास भी कर सकते हैं क्रांति?
ग़म खाने में, आँसू पीने में है सारी शांति!
अत्याचारों का विरोध है शासक का अपमान,
उठने की कोशिश ही करना है ग़ुलाम की भ्रांति।
पराजय के ऐ उपसंहार!
याद रखना इतनी-सी-बात,
स्वयम् भी जल जाता है ताप,
"क्रिया-प्रति-क्रिया नियम है एक"
पाप का बदला ही है पाप।
उपेक्षा, निर्दयता, अभिमान,
सदा हैं विजयी के अभिशाप।
तुमने देखा नहीं ग़ुलामों पर यदि अत्याचार,
तो देखा है यही बाग़ियों का भीषण संहार।
तुम सुन पाए नहीं निर्बलों का सकरुण चीत्कार,
किंतु सुना है विधवाओं का तुमने हाहाकार!
अरे तुम्हारे उर में अंकित प्रतिहिंसा का भाव,
और घृणा के दूषित मंडल का यह अमिट प्रभाव,
और मौन-भाषा से कितना विष उगला दिन-रात,
हरा आज भी है शासक का क्या छोटा-सा घाव?
अरे तुम निर्बल के प्रतिघात,
यहाँ मरते, मिटते हैं रोज़,
शासितों का प्रतिपल है ह्रास,
यहाँ जीवित रहना ही इष्ट
शांति ही है सब भोग-विलास,
क्षेम है अपने ही से घृणा,
क्षेम है शासक पर विश्वास।
जो न बुझ सके कभी, तुम्हारे उर में कैसी आग,
तुममें सदा उठा करता है कर्कशता का राग।
अपनी पाप-कथा कहने पर रखना इतना ध्यान,
यहाँ नित्य ही बनते रहते 'जलियाँवाला बाग़'।
तुम पशुता की स्मृति, हमको है अपने पर परिताप;
तुम बदले की हृदय-हीनता के निष्ठुर अभिशाप।
माना, दबे हुए हैं तुममें निरपराध कंकाल,

पर अनुचित है घृणा-प्रवर्तक दूषित पाप-प्रलाप ।

पढ़ो प्रतिहिंसा का इतिहास,
वहाँ अंधे बन जाते नेत्र,
और बहरे बन जाते कान,
मनुज बनते हैं वहाँ पिशाच,
श्रेष्ठ बन जाते नीच महान,
निरामिष बनते हिंसक जंतु;
असंभव भले बुरे का ज्ञान ।

कर लेना तुम याद ग़दर का भीषण उपसंहार,
जब कि लटकते थे पेड़ों पर शत-शत शव प्रतिबार ।
अरे हमारे उर में भी है कसक और विद्रोह,
पर बीती की विस्मृति ही है मनुष्यता का सार ।
अपने किए हुए पर हम तो रोते हैं दिन-रात,
पर तुम व्यंग-हँसी हँसते हो, यही अनोखी बात ।
अरे हमारे उर के काँटे, तुम शासक के गर्व,
कह देना यह, "दबे हुए भी करते हैं प्रतिघात" ।

अरे पाषाण-हृदय पाषाण,
सभ्यता के परदे में यहाँ,
तुम्हारा पशुता का व्यवहार ।
तुम्हारा यह दूषित निःश्वास,
तुम्हारा यह विषाक्त संसार,
मसीहा से तो पूछो ज़रा,
कि कितने ऊँचे हैं उद्गार !

तुम समर्थ की सहनशीलता, असमर्थों के हास;
"श्रेष्ठ हमारे काम, अन्य के दूषित", यह विश्वास।
यहाँ ग़ुलामों का प्रतिपल है आहों का अंबार,
ऐ पापों से घिरे पाप के छोटे-से इतिहास !



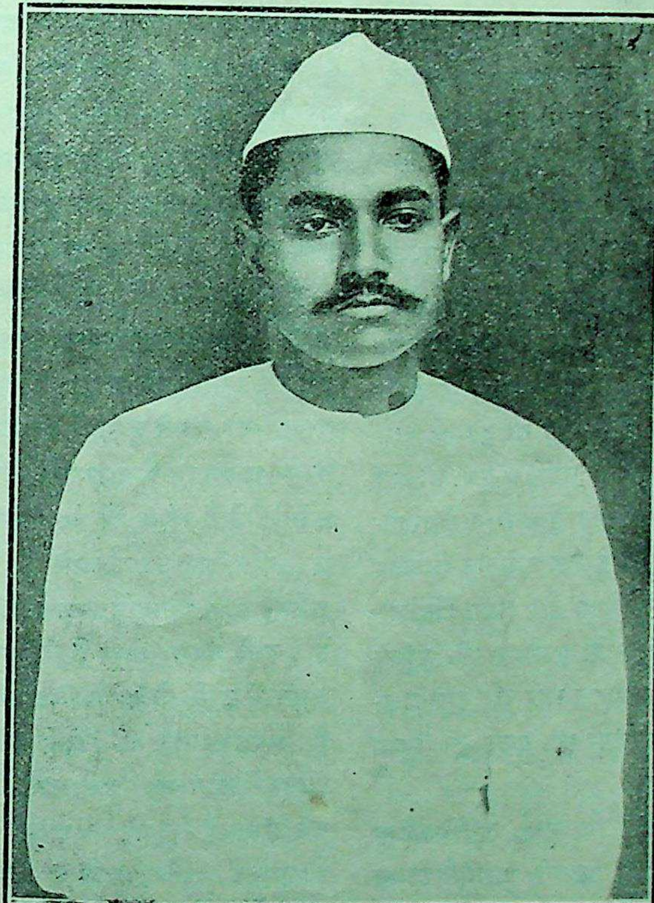


हिंदी-साहित्य-सेवियों की आर्थिक दुर्दशा

[श्रीयुत देवव्रत शास्त्री, सहकारी संपादक "प्रताप"]



आजकल अगर कोई भी विवेकशील और निष्पक्ष भारतवासी विद्वान् अपने देश के किसी भी साहित्य और साहित्य-सेवियों की दशा की तुलना विदेशी साहित्य—ख़ासकर अँगरेज़ी, फ़्रेंच, रशियन आदि साहित्यों तथा उनके साहित्य-सेवियों—से करेगा, तो उसके हृदय से एक गहरी आह निकले विना कदापि नहीं रह सकती। सचमुच हमारे हिंदोस्तानी साहित्य और साहित्य-सेवियों तथा विदेशी साहित्य एवं साहित्य-सेवियों में आकाश-पाताल का अंतर स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। देशी साहित्यों में भी बँगला, मराठी और गुजराती साहित्य एवं साहित्य-सेवियों की दशा कई हालतों में हिंदी की अपेक्षा अधिक अच्छी है। हिंदी जानने और बोलनेवाले हिंदोस्तान में अन्य सभी भाषाओं की अपेक्षा कहीं अधिक हैं, दिनोदिन उनमें और वृद्धि ही होती जा रही है, और हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा होने जा रही है; पर तो भी यह बहुत ही खेद की बात है कि हिंदी-साहित्य और ख़ासकर हिंदी-साहित्य-सेवियों की दशा सर्वथा शोचनीय है। इस लेख में हिंदी-साहित्य की विवेचना अथवा हिंदी-साहित्य-सेवियों की अन्य हालतों के वर्णन में पाठकों का समय बर्बाद न कर केवल उनकी आर्थिक दुर्दशा के संबंध में ही कुछ प्रकाश डाला जायगा।



पं० देवव्रत शास्त्री

हिंदी के अभागे साहित्य-सेवियों की आर्थिक अवस्था का ध्यान कर हृदय क्रोध, निराशा और झुँझलाहट के भयंकर भावों से क्षुब्ध हो जाता है। अपने मस्तिष्क और हृदय को एक कर, दिन-रात का कुछ भी ख़याल न करके, हमारे हिंदी-साहित्य-सेवी लिखते हैं, पुस्तकें तैयार करते हैं; पर उनकी क़द्र करनेवाला, उस रत्न को पहचानकर उसकी समुचित क़ीमत—मज़दूरी—देकर उसको ख़रीदनेवाला कोई जौहरी, कोई पारखी नहीं मिलता! सौभाग्यवश कहीं कोई मिल भी गया, तो उस पारखी की गाँठ इतनी ख़ाली होती है कि वह बेचारा उस अमूल्य वस्तु की महत्ता और गुण का अनुभव करके, अपनी असमर्थता के कारण, जी मसोसकर रह जाता है। पर ऐसे पारखी भी शायद लाखों में दो ही एक मिलते हैं। यह बात ज़रूर है कि

हिंदी के सभी लेखक या कवि ऐसे उत्कृष्ट नहीं हो सकते। साधारण तौर से मध्यम श्रेणी के ही लेखकों और कवियों का प्राचुर्य होता है। पर इसमें भी कोई संदेह नहीं कि तीसरी और मध्यम श्रेणी के हिंदी-साहित्य-सेवियों को अगर समुचित सहायता और प्रोत्साहन मिलता रहे, तो उनमें आज भी ऐसे एक-दो नहीं, बल्कि अनेक प्रतिभाशाली, अध्ययनशील, परिश्रमी और होनहार लेखक एवं कवि तैयार हो सकते हैं, जो अपने साहित्य के गौरव को आगे चलकर एक दिन बहुत अधिक बढ़ा सकते हैं, उसे दूसरों से आदर और प्रशंसा का पद प्राप्त करा सकते हैं। पर इन होनहार सपूतों को परखनेवालों, इन्हें प्रोत्साहित करनेवालों और इनकी अच्छी कृतियों की क़द्र करनेवालों की हिंदी-साहित्य-संसार में बहुत कमी है। बहुत लोग तो इनके नाम के पीछे उपाधि की पूँछ न लगी रहने के कारण इन पर विश्वास भी नहीं करते कि आख़िर यह शख़्स भी कुछ सारगर्भित बातें लिखकर साहित्य-भांडार की कुछ सेवा कर सकता है! यह तो हुई तीसरी और मध्यम श्रेणी के साहित्य-सेवियों की बात। मुझे तो प्रथम श्रेणी के लेखकों के संबंध में भी यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि उनकी कृतियों की हिंदी-संसार में क़द्र भी नहीं होती, समुचित पुरस्कार मिलना तो दूर की बात है। यह कोई कपोल-कल्पित बात नहीं, बल्कि सोलहो आने सच है, और आज उन्हीं महानुभावों ने अँगरेज़ी-साहित्य में दर्शन, इतिहास आदि विषय के ग्रंथ लिखकर बहुत अधिक सम्मान प्राप्त किया है, तथा अँगरेज़ी-साहित्य-सेवा के लिये उन्हें पर्याप्त पुरस्कार भी मिलता है। यह है हमारे हिंदी-साहित्य-संसार की गुण-ग्राहकता और हिंदी-साहित्य-सेवियों की दशा का सूक्ष्म प्रदर्शन।

मेरे एक मित्र कहा करते हैं कि भाई, हिंदी-साहित्य तो ऐसा साहित्य है कि उसे अपनी आजीविका का आधार कदापि नहीं बनाया जा सकता। उसे तो टहलने की छड़ी (Walking stick)-मात्र का स्थान प्राप्त हो सकता है। कितने दुःख की बात है कि जिस प्रकार की साहित्य-सेवा करके विदेशों में लोग न केवल बड़े सुख-चैन से अपना जीवन बिताते हैं, बल्कि लख-पती और करोड़-पती तक बन जाते हैं, उसी साहित्य-सेवा के आधार पर हिंदोस्तान में और ख़ासकर हिंदी-संसार में कोई व्यक्ति अपनी जीविका तक नहीं चला पाता! इसे सिवा हिंदी-साहित्य और उसके साहित्य-सेवियों के दुर्भाग्य के और क्या कहा जा सकता है? पर दुर्भाग्य या सौभाग्य चाहे जो कहें, किंतु है इनकी यही वास्तविक दशा। हिंदी का कोई भी लेखक केवल पुस्तक या लेख लिखकर अपनी जीविका कदापि नहीं चला सकता। क्यों? उत्तर स्पष्ट है। न तो कोई प्रकाशक उसकी लिखी पुस्तक को पर्याप्त पुरस्कार देकर (जब तक कि वह बहुत प्रसिद्ध लेखक न हो) शीघ्र प्रकाशित करता है, और न पत्र पत्रिकाएँ उसे पर्याप्त क्या, साधारण पुरस्कार ही देने को तैयार होती हैं। ऐसी हालत में स्वभावतः उस साहित्य-सेवी को अपनी पेट-पूजा के लिये किसी पूँजीपति या नौकर-शाही का दरवाज़ा खटखटाना पड़ता है, और ग़ुलामी का तौक़ गले में डालकर मजबूरन अपनी स्वतंत्रता, उमंग और उत्साह को कुचल देना पड़ता है।

इस अवस्था में भी बहुत कम ऐसे हैं, जिनकी आर्थिक अवस्था कुछ अच्छी हो। परंतु इस पर भी कुछ ऐसे साहित्यानुरागी अवश्य होते हैं, जो सारी कठिनाइयों को झेलते हुए भी अपनी मातृभाषा की सेवा करना अपना कर्तव्य समझते हैं। इनमें दो प्रकार के लोग होते हैं। एक तो वे, जो अन्यत्र कोई काम करके उदर-पूर्ति का उपाय करते हैं, तथा साहित्य-सेवा के अतिरिक्त थोड़ी आर्थिक-प्राप्ति के उद्देश्य से काम करते हैं। दूसरे प्रकार के वे हैं, जिन्होंने साहित्य-सेवा की लगन में उसी को अपने निर्वाह का साधन बना लिया है। प्रथम श्रेणी के लोगों के लिये, जो सारे दिन दफ़्तर में काम कर अपनी सारी शक्ति खो बैठते हैं, कहाँ तक संभव है कि घर पर आकर अध्ययन के साथ कुछ लिख सकें? और, यदि वे अध्ययन के साथ न लिख सकेंगे, तो उनकी रचना कहाँ तक अच्छी हो सकेगी!

साहित्य-सेवा और उसकी चर्चा के लिये उन्हें और कोई दूसरा समय मिल भी तो नहीं सकता। इस हालत में मजबूर हो उन्हें अपने आराम और घूमने-फिरने के समय को साहित्य-सेवा में लगाना पड़ता

है। इस कारण वे अपना स्वास्थ्य खो बैठते हैं। दूसरी तरफ़ साहित्य-सेवा का जो पुरस्कार उन्हें मिलता है, उसे देख और सोचकर तो उनकी कमर ही टूट जाती है। यह तो प्रथम श्रेणी के लोगों की बात हुई। दूसरी श्रेणी के लोगों की अवस्था पर भी तनिक ध्यान दीजिए। दूसरी श्रेणी के लोग वे हैं, जो मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक और दैनिक आदि पत्र-पत्रिकाओं में कार्य करते हैं। बेचारा लेखक या कवि स्वतंत्रतापूर्वक जीविका-निर्वाह करने में असमर्थ होने के कारण किसी पत्र-पत्रिका में आकर परतंत्रता स्वीकार करता है कि किसी प्रकार अपने परिवार के साथ निश्चिंतता-पूर्वक जीवन व्यतीत करे, और साहित्यिक क्षेत्र में काम करने से उसकी साहित्यिक रुचि को भी कुछ संतुष्टि हो। पर हिंदी-साहित्य-क्षेत्र के इस भाग में काम करनेवाले साहित्य-सेवियों की दशा का ध्यान करते ही रोमांच हो आता है! पत्र-पत्रिकाओं में पढ़े-लिखे योग्य विद्वानों का काम प्रधान संपादक, सहकारी संपादक और रिपोर्टर का काम है। इनमें संपादकों की तो यह हालत है कि किसी भी हिंदी-पत्र के प्रधान संपादक की तनख़्वाह—चाहे वह मासिक हो या दैनिक या साप्ताहिक—आजकल ढाई सौ रुपए प्रतिमास से अधिक नहीं है। बड़े-बड़े दिग्गज और विविध विषयों में प्रकांड पांडित्य रखनेवाले, पंद्रह और बीस-बीस वर्षों से संपादन-कार्य करनेवाले अनुभवी हिंदी-साहित्य-सेवियों को भी आज दो सौ-ढाई सौ रुपए मासिक भी मुश्किल से मिलता है। सहकारी संपादकों की जैसी मिट्टी पलीद होती है, सो तो वे ही जानते हैं। ख़ूब कसकर आठ-आठ, नव-नव घंटे और कभी-कभी बारह से चौदह घंटों तक उनसे काम लिया जाता है; पर ऐसे सहकारी संपादक शायद उँगलियों पर गिनने को भी नहीं मिलेंगे, जिन्हें सौ रुपए भी मासिक मिलता हो। साधारणतया हिंदी के सहकारी संपादकों की तनख़्वाह पचास-साठ रुपए-मात्र होती है। इतनी छोटी रक़म में आजकल कोई भी व्यक्ति क्या अपने परिवार सहित अपनी आजीविका चला सकता है? इसके मुक़ाबले में अँगरेज़ी आदि साहित्य के संपादकों की आर्थिक दशा पर भी ज़रा ग़ौर कीजिए। लंदन के 'टाइम्स' के प्रधान संपादक की तनख़्वाह कभी सारे ब्रिटिश-साम्राज्य के प्रधान मंत्री की तनख़्वाह से कम नहीं होती, और उसके सहकारी संपादकों को भी एक हज़ार से लेकर तीन-चार हज़ार रुपए तक प्रतिमास मिला करता है। अमेरिका के संपादकों को तो इससे भी अधिक तनख़्वाह मिलती है। समाचार-पत्रों में रिपोर्टरों (संवाददाताओं) को भी एक विशेष स्थान प्राप्त है, और इँगलैंड, अमेरिका आदि देशों में इन्हें बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। पर हिंदी-संसार के दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की यह हालत है कि उनमें एक भी शायद ही ऐसा निकल आवे, जो अपने संवाददाताओं को कुछ भी पुरस्कार देता हो। विदेशों में साधारण-से-साधारण रिपोर्टर को भी सवा सौ-डेढ़ सौ रुपए से कम की आमदनी नहीं होती।

पत्र-पत्रिकाओं में लेखकों को सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त है। पर हिंदी-पत्र-पत्रिकाओं के लेखकों की हालत तो और भी दर्दनाक है। जिस प्रकार हिंदी-दैनिक और साप्ताहिक पत्रों के रिपोर्टरों को पुरस्कार नहीं दिया जाता, उसी प्रकार इनके लेखकों को भी (एकआध को छोड़कर) पुरस्कार नसीब नहीं होता। मासिक पत्रों में पुरस्कार की थोड़ी-बहुत गुंजाइश ज़रूर रहती है; पर वह भी उन्हें ही प्राप्त होता है, जो कि प्रसिद्ध लेखक हैं, अथवा जिनका लेख असाधारणतया अच्छा हो। पर इनके पुरस्कार की दर की हालत दिल को दहलानेवाली होती है। हिंदी की कोई भी मासिक पत्रिका किसी उच्च-से-उच्च लेखक को भी—जो कि बहुत कम हैं, या बहुत कम लिखते हैं—५) प्रति पृष्ठ से अधिक नहीं देती। साधारण लेखकों की तो बात ही न पूछिए। उन्हें तो यों ही टरका दिया जाता है। जो मध्यम श्रेणी के हैं, कोशिश तो यही की जाती है कि वे भी मुफ़्त ही लेख दे दिया करें। पर जो नहीं मानते, उन्हें १) से लेकर दो-ढाई रुपए प्रति पृष्ठ तक के हिसाब से पुरस्कार दिया जाता है। इसके साथ ही अधिकांश पत्रिकाएँ तो यह समझती हैं कि लेखकों को उनके लेखों का पुरस्कार—मेहनताना—देकर वे उन पर बड़ी कृपा कर रही हैं, उन्हें आभारी बना रही हैं। कितनी

संकुचित मनोवृत्ति और कितनी करुणाजनक दशा है ! जिस प्रकार एक किसान या मज़दूर खेतों या मिलों में शारीरिक काम करता है, उसी प्रकार लेखक क़लम-दावात और काग़ज़ों को लेकर एक कमरे में अपने मस्तिष्क को ख़ाली करते हुए लेख लिखा करता है। पर उसकी उस मेहनत की मज़दूरी देने में पहले तो आनाकानी की जाती है, और जिन्हें दी भी जाती है, वह भी एक विशेष मेहरबानी के रूप में ! इस प्रकार हमारी पत्र-पत्रिकाओं के स्वामी संपादक और लेखकों की विद्या, बुद्धिमानी और परिश्रम से लाभ तो उठा लेना चाहते हैं, पर मेहनत करनेवाले लेखक को उसकी कमाई का पुरस्कार न दे भूखों मारना चाहते हैं। यह कैसी स्वार्थमय भावना है ! ऐसी हालत में कैसे किसी लेखक का हिम्मत कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिये बढ़ सकती है, अथवा कैसे वह निश्चिंतता-पूर्वक जीवन बिताकर कोई अधिक गंभीर, स्थायी और आकर्षक वस्तु तैयार कर सकता है ? यहाँ पर अँगरेज़ी के पत्र-पत्रिकाओं के लेखकों के पुरस्कार की दर बतला देना पाठकों के लिये कौतूहलवर्द्धक और मनोरंजक होगा। अँगरेज़ी-पत्र-पत्रिकाओं के लेखकों में ऐसा कोई भी शख़्स नहीं मिलेगा, जिसे अपने ख़र्च चलाने-भर के लिये भी रोना पड़ता हो। अँगरेज़ी-पत्र-पत्रिकाओं के साधारण लेखकों को भी ५०)-६०) रुपए प्रति कालम से कम पुरस्कार नहीं मिलता, और प्रसिद्ध लेखकों की तो आमदनी यहाँ के लोगों के लिये सर्वथा आश्चर्य-जनक प्रतीत होगी। प्रसिद्ध लेखकों को वहाँ पर दो-तीन हज़ार रुपए प्रति कालम के हिसाब से पुरस्कार मिलता है, और किसी-किसी के पुरस्कार की दर तो कभी-कभी ६ हज़ार रुपए प्रति कालम तक पहुँच जाती है। अभी कुछ ही दिन हुए, ब्रिटिश-साम्राज्य के भूत-पूर्व प्रधान मंत्री मि० लायड जॉर्ज ने कहा था कि १७ वर्षों तक सरकारी नौकरी करने में मुझे जो कुछ भी आमदनी हुई थी, इधर (सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद से) केवल चार वर्षों में साहित्यिक सेवा द्वारा (लेख और पुस्तकों से) उससे चौगुनी रक़म प्राप्त हुई है। आप इधर चार वर्षों से साहित्यिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और इसी के ज़रिए आपको लाखों की आमदनी हो रही है। आपके अधिकतर लेख अमेरिका की पत्र-पत्रिकाओं में छपते हैं, और साधारण तौर से दो से तीन हज़ार रुपए प्रति कालम के हिसाब से आपको पुरस्कार मिलता है। हिसाब लगाकर देखने से पता चला था कि कुछ दिनों तक तो आपकी दैनिक आय ५,०००) थी। पुरस्कार लिए बिना तो इँगलैंड, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों में कोई लेख देना जानता ही नहीं, और न पत्र-पत्रिकाओं के अध्यक्षों एवं संपादकों के मन में यह बात ही उठती है कि अमुक लेखक का लेख मैं छाप तो दूँ, उससे स्वयं तो लाभ उठाऊँ, पर उसे उसके मेहनताने से वंचित कर दूँ।

यही हाल हमारे पुस्तक-लेखकों का है। वे अपने दिमाग़ का गूदा निकालकर, जी-तोड़ परिश्रम करके, पुस्तक लिखते हैं; पर उनको पर्याप्त पुरस्कार देकर उनकी पुस्तक को प्रकाशित करनेवाला ही कोई नहीं मिलता। अंत में मजबूर होकर लेखक को अपनी पुस्तक बहुत थोड़ी क़ीमत में बेच देनी पड़ती है। किसी भी राष्ट्र के उत्थान और पतन में उसके साहित्य का बहुत बड़ा असर पड़ता है, और उस साहित्य के निर्माणकर्ता एवं साहित्य-व्यापार की जड़ लेखक ही हैं। उन्हीं के सम्मान और निरादर पर साहित्य की उन्नति और अवनति का दारोमदार है। पर हिंदी के ऐसे ही लेखकों को अपनी आर्थिक दुर्दशा के कारण सदा परेशान रहना पड़ता है। उन्हें साहित्य-सेवा से इतनी भी आय नहीं होती कि वे अपने परिवार के साथ शांति-सुख और निश्चिंत जीवन व्यतीत करें। उन्हें अधिक समय तो अपने नमक-दाल की ही चिंता में बिता देना पड़ता है। पर पाश्चात्य साहित्यों के लेखकों, संपादकों आदि की दशा इसके बिलकुल विपरीत है। वे ख़ूब रुपया पैदा करते हैं। वहाँ के उपन्यासकारों को प्रति शब्द के अनुसार उजरत दी जाती है। स्टिवेंसन-नामक एक उपन्यास-लेखक, जो १८९४ ई० में मरा था, हिसाब लगाकर देखने से मालूम हुआ था कि जीवन-भर में उसने जितने शब्द लिखे, उसे छः आने प्रति शब्द के हिसाब से उनकी उजरत मिली। (यहाँ के किसी लेखक की जीवन-भर की उजरत का हिसाब छः आना प्रति पृष्ठ भी शायद ही निकल सकती हो !) पर यह तो बहुत

पहले की बात है। आजकल तो यह दर कुछ भी अधिक नहीं समझी जाती, और अब यह दर ढाई-तीन रुपए प्रति शब्द तक हो गई है। जासूसी और प्रेतवादी कहानियों के प्रसिद्ध लेखक सर आर्थर कोनेन डूवायल को पुराने ज़माने में भी एक-एक कहानी के लिये एक से लेकर डेढ़ हज़ार रुपए तक मिले। वेल्स महाशय अपने प्रति हज़ार शब्दों पर ५००) रुपए पाते हैं। इनके सिवा इस समय ऐसे कई प्रसिद्ध लेखक हैं, जिन्हें बड़े आदर के साथ एक रुपए से लेकर दो-तीन रुपए प्रति शब्द तक पुरस्कार दिया जाता है। अँगरेज़ी-साहित्य के वर्तमान प्रसिद्ध लेखक बर्नार्ड शॉ के संबंध में तो कहा जाता है कि उन्हें इससे भी कहीं अधिक पुरस्कार मिलता है। उनके संबंध में एक बड़ी मनोरंजक कहानी प्रसिद्ध है। एक बार कोई दो मित्र बैठे साहित्य-चर्चा कर रहे थे। इसी बीच उनमें से एक ने कहा—बर्नार्ड शॉ को तो प्रति शब्द एक पौंड (लगभग १३ रुपए) पुरस्कार मिलता है। इस पर दूसरे मित्र ने मज़ाक़ करते हुए कहा—देखो, मैं एक पौंड उनके पास भेजकर एक शब्द उनसे माँगता हूँ; देखूँ क्या शब्द देते हैं? कहते हैं, जब बर्नार्ड शॉ के पास एक शब्द के लिये वह एक पौंड पहुँचा, तो उन्होंने उसके लिये रुपए भेजनेवाले के पास 'धन्यवाद' (Thanks)-नामक एक शब्द लिख भेजा। वह महाशय बर्नार्ड शॉ की चातुरी और बुद्धिमत्ता पर दंग रह गए। तात्पर्य यह कि इस समय अँगरेज़ी, फ़्रेंच आदि साहित्य-सेवियों की आर्थिक दशा इतनी अच्छी है कि उन्हें देखकर दूसरे लोगों को ईर्ष्या होती है। इन साहित्यों के साहित्य-सेवियों और हिंदी के साहित्य-सेवियों की आर्थिक स्थिति और आर्थिक लाभ में कितना विशाल अंतर है, यह उपर्युक्त विवरण से पाठकों ने अनुमान कर लिया होगा।

हिंदी-साहित्य-सेवियों की यह आर्थिक दुर्दशा की समस्या कोई वर्तमान काल की ही समस्या नहीं है। यह समस्या भूतकाल में भी रही है, और अगर इस ओर समुचित रूप से ध्यान नहीं दिया गया, तो भविष्य काल में भी रहेगी। स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० देवकीनंदन त्रिपाठी, पं० काशीप्रसाद खत्री, संपादकाचार्य पं० रुद्रदत्त शर्मा, पं० भगवानदीन पाठक आदि महान् साहित्य-सेवियों को आर्थिक दुरवस्था के कारण अपने जीवन में कैसे-कैसे कष्ट झेलने पड़े, उनके जीवन का किस प्रकार करुणा-जनक अंत हुआ, और उनके बाद उनके परिवार की कैसी शोचनीय दशा रही, इन दुःख-गाथाओं के वर्णन में मैं पाठकों का समय नहीं लूँगा। पाठक वर्तमान साहित्य-सेवियों की आर्थिक दुर्दशा का ख़याल करके ही उनकी परिस्थिति का अनुमान कर सकते हैं। कुछ महीने पहले की बात है कि हिंदी के एक अनुभवी और सुप्रसिद्ध लेखक को अपनी आर्थिक कठिनाई के कारण मजबूर हो एक साप्ताहिक पत्र के संपादकीय विभाग में ४०) मासिक की नौकरी स्वीकार करनी पड़ी थी! वर्तमान हिंदी-संसार के अन्य साहित्य-सेवी भी अगर वकालत, अध्यापन या ऐसे ही अन्य कार्यों से अपनी जीविका न चलाते होते, और केवल साहित्य-सेवा पर ही अवलंबित होते, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्हें अपने को तथा अपने परिवार को भूखों तड़पाना पड़ता। हिंदी के लेखकों और साहित्य-प्रेमियों की आर्थिक दुर्दशा और बेबसी का यह कितना दर्दनाक और दयनीय चित्रण है! हिंदी के लेखक और संपादक आज दर-दर टके-टके के लिये नाक रगड़ते फिरते हैं; पर उनकी कोई क़द्र और पूछ नहीं। उनके स्वाभिमान और उत्साह को बुरी तरह कुचल दिया जाता है; पर वे मजबूर हैं, और उन्हें इसी दुरवस्था में अपना जीवन बिताना पड़ता है।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हिंदी-पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों की खपत कम है, उनकी आमदनी भी परिमित है। इस कारण इनके संचालक तथा अध्यक्ष लेखकों को बहुत अधिक पुरस्कार नहीं दे सकते। पर ऐसे भी प्रकाशक और संचालक हैं, जो लेखकों की मेहनत से काफ़ी लाभ उठाते हैं, और लेखकों को बहुत अधिक क्या, पर्याप्त पुरस्कार भी नहीं देते। जो कुछ थोड़ा-बहुत देते भी हैं, वह बहुत खींच-तान के बाद। इसलिये भी यह प्रश्न और विचारणीय हो जाता है। इसके साथ

ही उन्हें अगर आय कम होती है, खपत कम है, तो इसके लिये लेखक कदापि ज़िम्मेदार नहीं समझा जा सकता। लेखकों का काम सुंदर, मनोरंजक, उपयोगी और लाभदायक लेखों का तैयार करना-मात्र है, और यह प्रकाशक का काम है कि उस वस्तु का अधिक-से-अधिक उपयोग करके अधिक-से-अधिक लाभ उठावे। पर यहाँ यह बात नहीं। यहाँ पर तो प्रकाशक और संचालक-समुदाय अपने ऊपर कुछ भार लेना ही नहीं चाहता। उसे तो अपने लाभ की चिंता रहती है। जो बीतती है, लेखकों पर बीतती है। बहुत-से अध्यक्ष और संपादक पूँजीपतियों को तो अपने धन का एक प्रकार से ग़रूर होता है, और वे साधारण लेखकों की ओर ताकने की भी परवा नहीं करते। ऐसी अवस्था में लेखकों का जीवन कितना दुःखद और करुणापूर्ण होगा, इसे प्रत्येक विचारशील व्यक्ति समझ सकता है। अंत में लेखकों के लिये उनका ज्ञान ही उनका अवलंब होता है, और उसी के आधार पर बड़े धैर्य के साथ वे अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

यह है हमारे हिंदी-साहित्य-सेवियों की आर्थिक दुर्दशा का एक मामूली प्रदर्शन। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे साहित्य की कोटि (Standard) बहुत ऊँची नहीं है, साथ ही इसमें ऐसे बहुत-से ऐरे-ग़ैरे भी अपनी टाँग अड़ाकर साहित्य-सेवी और हिंदी-हितैषी बनना चाहते हैं। पर मेरा यह मतलब कदापि नहीं कि चाहे जिसको भी हम सम्मान और प्रशंसा करके आकाश पर चढ़ा दें, और चाहे जिसे उसके मनमाना पुरस्कार दिया करें। ऐसा हो भी नहीं सकता। मेरा मतलब सिर्फ़ इतना है कि हममें साहित्यिक परख होनी चाहिए, हमें एक चतुर जौहरी बनना चाहिए, ताकि हम अपने साहित्य-सेवियों की कृतियों की पहचान कर सकें, और इस परख में जो उत्तम जँचें, उन्हें उनकी मेहनत का समुचित पुरस्कार अवश्य मिले। जब तक ऐसा नहीं होता, जब तक हम अपने योग्य और प्रतिभाशाली लेखकों की क़द्र करना नहीं सीखते, जब तक अपने होनहार लेखकों को बढ़ावा और प्रोत्साहन नहीं देते, और जब तक उनके पेट की चिंता को हम दूर नहीं करते, तब तक यह निश्चित है कि हिंदी-साहित्य की पर्याप्त उन्नति नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था में यह बहुत ज़रूरी है कि हिंदी-संसार हिंदी-साहित्य-सेवियों की आर्थिक दुर्दशा की ओर ध्यान दे, और उसके निराकरण का समुचित प्रबंध एवं आंदोलन करे। कुछ दिनों से अखिल-भारतीय हिंदी-संपादक-सम्मेलन तथा लेखकों की कई समितियाँ भी क़ायम हैं, पर उनका ध्यान इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर अभी तक नहीं गया। मैं इन संस्थाओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हुए आशा करता हूँ कि वे इसकी महत्ता को समझेंगी, लेखकों एवं संपादकों की कठिनाइयाँ दूर करने का प्रयत्न करेंगी। साथ ही हिंदी-संसार के सभी पत्र-पत्रिकाओं के अध्यक्षों, संचालकों, संपादकों और लेखकों से मेरी यह विनीत प्रार्थना है कि वे अपने साहित्य-सेवियों की आर्थिक कठिनाई की समस्या को सुलझाने के संबंध में अवश्य कुछ सोचें-विचारें। इस बात को एक बार फिर लिख देना अप्रासंगिक न होगा कि किसी भी राष्ट्र के उत्थान में उस राष्ट्र के साहित्य का बहुत बड़ा भाग रहता है, और साहित्य की श्रेष्ठता और उन्नति उसके लेखकों पर ही अवलंबित है। आशा है, हिंदी-संसार इन पंक्तियों को पढ़कर इस प्रश्न पर कुछ विचार करेगा।

एक और विशेषांक लीजिए !

कार्टून-संख्या

इसमें लगभग सभी आवश्यक विषयों पर ख़ास तौर से बने हुए सैकड़ों व्यंग्य चित्र रहेंगे, जिन्हें देखकर दिल हाथों उछले विना न रहेगा। देखने और दिखाने लायक़ चीज़ होगी।

ग्राहकों को मुफ्त

जो सज्जन अभी ग्राहक नहीं हैं, वे कृपया तुरंत ६॥) का मनीआर्डर भेजकर ग्राहक बनें और इस अपूर्व विशेषांक को मुफ्त में प्राप्त करें।

अन्यथा पछताना पड़ेगा,

क्योंकि बहुत संभव है कि फुटकल प्रतियाँ शायद हम न बेंच सकेंगे।

विज्ञापनदाताओं को इसकी उपयोगिता से लाभ उठाना चाहिए।

व्यवस्थापक-सुधा, लखनऊ।

नंबर मुक़द्दमा १६२३ ोती है, खपत कम है, ताकि हम अपने सा

बअदालत मुंसिफ़ अ पे ज़िम्मेदार नहीं समझा चान कर सकें, औ

रामपाल वल्द ज्योत म सुंदर, मनोरंजक, उप- उन्हें उनकी मे

क़स्बे सियाना तैयार करना-मात्र मिले। जब योग्य औ —— मुद्दई

(१) हऊराम, साकिन डेरा फ़िरोज़पुर, परगना सियाना, वारिद हाल मुलाज़िम कारख़ाना दियासलाई, बरेली

(२) ब्रह्मा साकिन डेरा फ़िरोज़पुर, वारिद हाल मुलाज़िम, कांस्टेबुल सेंट्रल जेल, अलमोड़ा

मुद्दाअलेह वारिसान जसकर्ण

हरगाह कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत ७७) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है तुम बतारीख़ २२ माह मार्च सन् १६२६ ई० बवक़्त १० बजे दिन के असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हालात से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल अमूर अहम मुतअल्लिक़ा मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे इज़हार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है तुमको लाज़िम है कि उसी रोज़ अपने जुमला गवाहों को जिनकी शहादत पर वो नीज़ तमाम दस्तावेज़ात को कि जिन पर तुम अपनी जवाबदेही के ताईद में इस्तदलाल करना चाहते हो पेश करो—तुमको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमू और फ़ैसल होगा।

बसब्त मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत के आज बतारीख़ २७ माह फ़रवरी सन् १६२६ ई० जारी किया गया।

(नमूना क़ाबिल फ़रोख़्त)

समन बिनावर इनफ़िसाल मुक़द्दमा

(आर्डर ५ क़ायदा १ व ५)

नंबर मुक़द्दमा ३७८ सन् १६२८

बअदालत मुंसिफ़ साहब फ़र्रुख़ाबाद, ज़िला फ़र्रुख़ाबाद।

शिवदयाल वल्द महराज गंगाराम, क़ौम ब्राह्मण साकिन फ़र्रुख़ाबाद मोहल्ला नवाब लुक़्मानख़ाँ मुद्दई

बनाम

आनंदसिंह वल्द तायरसिंह क़ौम ठाकुर, साकिन मौज़ा धीरपुर, परगना समसाबाद मुद्दाअलेह

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत ११४०) बिनावर रेहननामा के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १६ माह मार्च सन् १६२६ ई० बवक़्त १० बजे असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावे मुद्दई की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है। पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

इत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा। आज बतारीख़ २८ माह फ़रवरी सन् १६२६ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

बहुक्म मुंसिफ़

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़दमा

मुक़दमा नंबर १०१६ सन् १६२६

बअदालत पं० हरीकिशन कौल साहब बहादुर, मुंसिफ़ शुमाली उन्नाव।

लछमनदास वल्द पन्नालाल क़ौम रस्तोगी साकिन मोहल्ला सोंधीटोला शहर लखनऊ। मुद्दई

बनाम

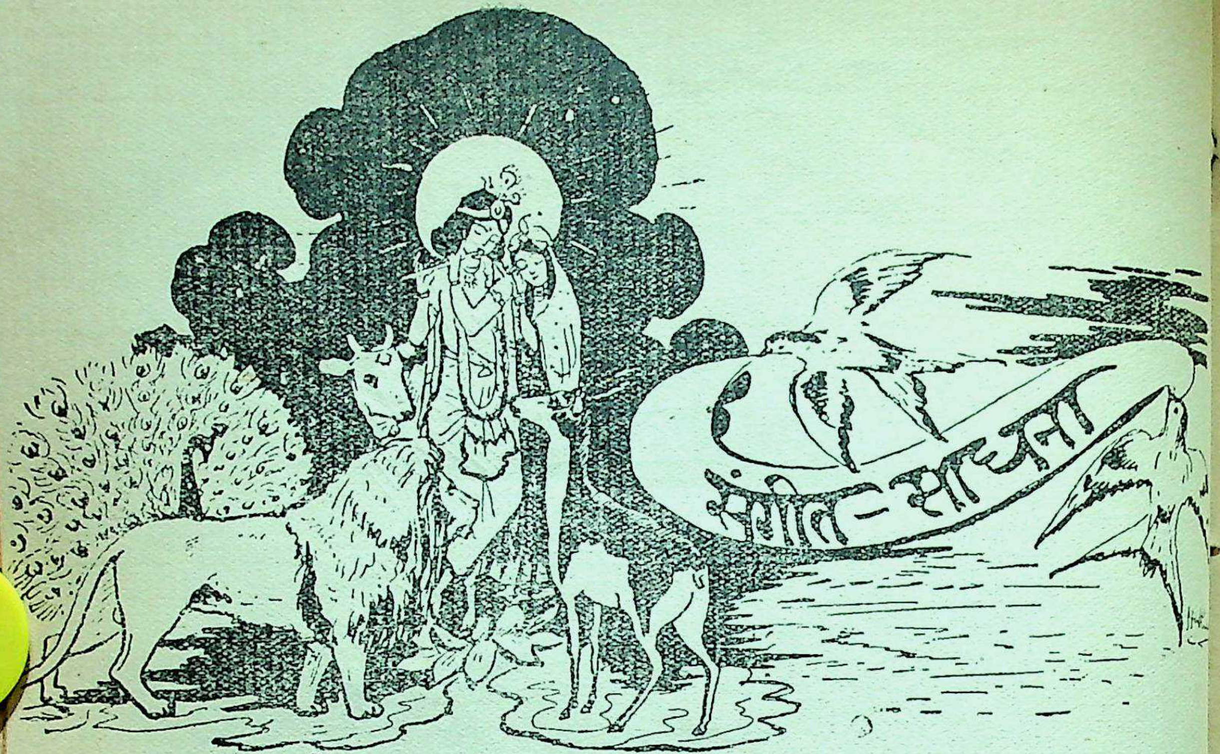
(१) ग़ाज़ी वल्द रेवती पासी
(२) पंचम वल्द दुर्गा पासी } साकिनान फ़िरोज़पुर, परगना मोहान, ज़िला उन्नाव। मुद्दाअलेह

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत मुबलिग़ १००) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १२ मार्च सन् १६२६ ई० बवक़्त १० बजे दिन के असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हालात से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल अमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो। और हरगाह यही तारीख़ जो तुम्हारे इहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि उसी रोज़ अपने जुमला गवाहों को जिनकी शहादत पर वो नीज़ तमाम दस्तावेज़ात जिन पर तुम अपनी जवाबदेही के ताईद में इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ पेश करो। तुमको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमू और फ़ैसल होगा।

ब सब्त मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत के आज बतारीख़ २७ माह फ़रवरी सन् १६२६ ई० जारी किया गया।

सेना का व्यय





शब्दकार—बा० मैथिलीशरण गुप्त] [स्वरकार—श्रीयुत लक्ष्मणदास मुनीम

मालकोश—तीन ताल

गीत

जय जय भगवती भवानी ;
तीनो लोकों की रानी।
उठे बहुत सुर-अरि परिपुष्ट ;
गिरे किंतु कट-कटकर दुष्ट।
रण में अग्नि-शिखा-सी रुष्ट ;
मन में पानी पानी।

स्थायी

		०				३				×				२	
ग	म	ध	म	ग	स	नी	स	ध	नी	स	—	म	—	—	—
ज	य	ज	य	भ	ग	व	ती	ऽ	भ	वा	ऽ	नो	ऽ	ऽ	ऽ
ग	म	ध	—	म	ध	नी	—	नी	—	ध	नी	ध	नी	म	—
ती	ऽ	नो	ऽ	लो	ऽ	कों	ऽ	की	ऽ	रा	ऽ	ऽ	ऽ	नी	ऽ

अंतरा

०				३				×				२			
ग	ग	—	ग	म	म	ध	नी	ध	सं	सं	सं	सं	—	—	सं
उ	ठे	ऽ	ब	हु	त	सु	र	अ	रि	प	रि	पु	ऽ	ऽ	ष्ट
नी	नी	—	नी	—	नी	ध	नी	ध	नी	सं	नी	ध	नी	ध	म
गि	रे	ऽ	किं	ऽ	तु	क	ट	क	ट	क	र				

सं	सं	सं	—	ध	नी	सं	मं	गं	मं	सं	—	ध	नी	म	म
र	ण	में	ऽ	अ	ऽ	ग्नि	शि	खा	ऽ	सी	ऽ	रु	ऽ	ऽ	द्र
ग	म	ध	—	म	ध	नी	—	ध	नी	ध	नी	म			—
म	न	में	ऽ	पा	ऽ	नी	ऽ	पा	ऽ	ऽ	ऽ	नी			ऽ

संकेत

१. जिन स्वरों के नीचे बिंदु हो, वे मंद सप्तक के, जिनमें कोई बिंदु न हो वे मध्य सप्तक के तथा जिनके शीर्ष में बिंदु हो वे तार सप्तक के हैं। जैसे—सा, सा, सां।

२. जिन स्वरों के नीचे लकीर हो वे कोमल हैं। जैसे रे, ग, ध, नि। जिनमें कोई चिह्न न हो, वे तीव्र हैं। जैसे—रे, ग, ध, नि।

३. शुद्ध मध्यम का चिह्न "म" और तीव्र मध्यम का चिह्न "मं" है।

४. यह चिह्न ⌒ मींड का प्रदर्शक है।

५. सम का चिह्न ×, ताल के लिये अंक और ख़ाली का द्योतक ० है।

६. ‿ इस चिह्न में जितने स्वर रहें, वे एक मात्रा में गाए या बजाए जायँगे। जैसे—सारे।

७. — यह दीर्घ मात्रा का चिह्न है।

यह ❀ विश्रांति का चिह्न है।

कुसुम-कुंज

१. गर्ग-संहिता की ऐतिहासिक महत्ता



श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल का इतिहास-प्रेम किसी से छिपा नहीं है। सभी आपकी प्रगाढ़ विद्वत्ता, अनुकरणीय पुरातत्त्व-प्रेम और व्यापक विद्याव्यासंग के क़ायल हैं। बिहार के अनुसंधान-विभाग (Bihar Research Society) के आप प्रमुख सभासद और पटना-म्यूज़ियम के सभापति हैं। सभापति की हैसियत से समय समय पर आपने जो कुछ 'खोज' की है, उसकी महत्ता किसी से छिपी नहीं है। सच तो यह है कि कोई भी इतिहास-प्रेमी श्रीयुत जायसवाल महोदय की ऐतिहासिक खोजों की सहायता के बिना भारत का प्राचीन इतिहास नहीं लिख सकता। पुरातत्त्व के आप एक प्रामाणिक विद्वान् माने जाते हैं। योरप और अमेरिका आदि देशों में आपका काफ़ी नाम है। हाल में आपको एक नई पुस्तक का पता चला है। ऐतिहासिक दृष्टि से उक्त पुस्तक बड़े महत्त्व की है। उक्त पुस्तक से जिन ऐतिहासिक तथ्यों का पता चला है, उन्हें आपने एक लेख में इ[स] प्रकार प्रकाशित किया है—

"महर्षि गर्ग 'ज्योतिष-शास्त्र' के एक प्रमुख आचा[र्य] हैं। वराहमिहिर की लिखी हुई 'बृहत्संहिता' में गर्ग [के] एक ग्रंथ का उल्लेख पाया जाता है। पुस्तक का ना[म] है 'गर्ग-संहिता'। वराहमिहिर का समय ५०० ई[०] निर्द्धारित है। इसलिये यह स्पष्ट है कि गर्ग ने इस[से] पहले ही 'गर्ग-संहिता' की रचना की होगी। सुन[कर] लोगों को आश्चर्य होगा कि इस ग्रंथ में एक इतिहा[स]-संबंधी प्रकरण है। प्रकरण का नाम है 'युग-पुराण'। इस प्रकरण में ऐसी बातों का उल्लेख है, जो इति[]हास-प्रेमियों के लिये बिलकुल नई हैं। जिन बातों [का] उल्लेख इस प्रकरण में किया गया है, उनकी पु[ष्टि] प्राचीन सिक्कों और हाल में पाए गए शिला-लेखों [से] होती है। विदेशी साहित्य में भारतीय इतिहास-संबं[धी] जो उल्लेख है, उससे भी, कुछ अंश में, गर्ग-संहिता [में] वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि हो जाती है। इसलिये गर्ग द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक घटनाओं [को] सत्य मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहि[ए]।

"अभी तक गर्ग-संहिता छपी नहीं। इसकी ह[स्त]

लिखित प्रतियाँ प्रायः अलभ्य हैं। वराहमिहिर-कृत बृहत्संहिता के संपादक भूतपूर्व डॉक्टर 'कर्न' के पास इसकी एक प्रति थी। इसकी दूसरी प्रति 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़् बंगाल' के पास है। कलकत्ते के प्रसिद्ध क़िले 'फ़ोर्ट विलियम' में पुस्तकालय के लिये यह प्रति खोज के बाद १८२५ ई० में उपलब्ध हुई थी। दस वर्ष के कठिन प्रयास के बाद गर्ग-संहिता की एक प्रति मुझे बनारस में मिली है। नागपुर में और जबलपुर के पास एक दूसरे स्थान में, जो कभी गोंड़-नरेशों की राजधानी थी, इसकी चार प्रतियों के होने की बात कही जाती है। मध्यप्रदेश की सरकार के कर्मचारियों के पास उक्त चारो प्रतियाँ भेजने के लिये प्रार्थना की गई है। जहाँ तक मुझे पता है, अभी तक विहार और उड़ीसा में उक्त पुस्तक की एक भी प्रति उपलब्ध नहीं हुई। जिन तीन प्रतियों को देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, उनसे, अभी तक, ऐतिहासिक प्रकरण की खोज संपन्न और संतोषप्रद नहीं कही जा सकती। मध्यप्रदेश की सरकार के पास जो चार प्रतियाँ हैं, उनके मिलने पर पाठ-सुधार की पूरी आशा है। विशेषतः व्यक्तिवाचक नामों में जो गड़बड़ है, वह दूर हो जायगी, ऐसी आशा है।

"युग-पुराण-नामक प्रकरण में वर्णित इतिवृत्त-संबंधी तथ्यों का दिग्दर्शन नीचे किया जाता है—

गर्ग ने कलियुग की दो प्रसिद्ध घटनाओं का उल्लेख किया है। महाभारत-युद्ध के बाद जिस 'युग' का श्रीगणेश हुआ, उसकी ये प्रसिद्ध घटनाएँ हैं। ग्रंथकार ने इस युग का नामकरण यों किया है—"कृष्णा-द्रौपदी के मरणोपरांत का युग"। सम्राट् परीक्षित के पुत्र जनमेजय और ब्राह्मणों के बीच जो विवाद हुआ था, वही इसकी पहली घटना है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी जनमेजय का नाम आया है। दूसरी घटना, जिसका उल्लेख हमारे ग्रंथकार ने किया है, वह है पाटलिपुत्र-नामक राजधानी की स्थापना। अगणित पुष्प-वाटिकाएँ इस नगरी की शोभा को बढ़ाती थीं। जनमेजय की राजधानी तक्षशिला में थी। पर पहले-पहल पश्चिमोत्तर भारत से भारत की राजधानी उठाकर मगध में लाई गई थी। भारत के इतिहास में यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी, इसमें संदेह नहीं। यदि भारत की राजधानी उठाकर मगध में न लाई जाती, तो भारतीय सभ्यता और संस्कृति का मूलोच्छेद हो जाता, इसमें कोई संदेह नहीं। कारण, इस घटना के थोड़े ही दिनों बाद 'तक्षशिला' ईरानियों के हाथ में चली गई। तक्षशिला में राजधानी होने के कारण बहुत-से विद्वान् रावलपिंडी और पेशावर आदि स्थानों में निवास करते थे। इस घटना के बाद वे राज्याश्रय पाकर पाटलिपुत्र में आ बसे। पाटलिपुत्र के विद्वानों में प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि का भी नाम है। ऐतिहासिक खोज की दृष्टि से हम लोग जिस तरह आज पाटलिपुत्र की महत्ता को समझते हैं, उसी तरह गर्ग ने भी पाटलिपुत्र की स्थापना को महाभारत के बाद एक प्रमुख घटना माना था।

"गर्ग ने एक और घटना का उल्लेख किया है। कोई भी इतिहास-प्रेमी इस तरह की घटना का उल्लेख किए बिना नहीं रह सकता था। राष्ट्र के लिये यह जीवन-मरण का प्रश्न था। यूनानियों ने पाटलिपुत्र के ऊपर चढ़ाई की थी। इसका वर्णन महर्षि गर्ग ने किया है। किसी भी इतिहास में इस बात का वर्णन नहीं मिलता। संयोगवश गर्ग के कथन की पुष्टि कुछ निर्भ्रांत प्रमाणों से हो जाती है। इन प्रमाणों का ज़िक्र मैं आगे कर रहा हूँ।

"गर्ग का कथन है कि यूनानी वीर थे। लेकिन वीरता के साथ-साथ उनमें दुष्टता और हृदय-हीनता की मात्रा अधिक थी। इन्होंने मथुरा, साकेत (अयोध्या) और पांचाल आदि देशों को जीत लिया। मथुरा उस समय मध्यदेश की राजधानी थी, तथा साकेत हिंदू-सभ्यता और संस्कृति का केंद्र माना जाता था। प्रायः समूचा मध्यदेश इनके अधीन हो गया। मगध पर भी इन्होंने आक्रमण किया। इस आक्रमण से सब जगह आतंक फैल गया। ये पाटलिपुत्र की प्रसिद्ध दीवार तक पहुँच गए। मिट्टी के बने हुए परकोटे पर रक्खी हुई तोपों की सहायता से यूनानियों के पैर उखड़ गए। विजय-लक्ष्मी हिंदुओं के हाथ रही। शत्रुओं को हटना पड़ा। इस पराजय

के बाद यूनानियों को मध्यदेश भी छोड़ देना पड़ा। इसका कारण उनका गृह-युद्ध था।

"इन ऐतिहासिक घटनाओं के महत्त्व पर प्रकाश डालने के पहले मैं, प्राचीन पाठों को समझने में जो दिक़्क़त होती है, उसका थोड़ा-सा ज़िक्र करना चाहता हूँ। पुराने समय में जो पद और वाक्य साधारणतः बोध-गम्य थे, वे ही आज सर्वथा दुर्बोध हो गए हैं। उस समय का एक साधारण आदमी उन्हें आसानी से समझ लेता था। गर्ग ने पाटलिपुत्र की 'मिट्टी की दीवार' के लिये जिस पद का उपयोग किया है, वह है 'कर्दम-हित'। 'हित' शब्द का विशेष अर्थ क्या हो सकता है, इसका निश्चय करना बड़ा कठिन है। इस शब्द के विशेषार्थ का थोड़ा-सा पता मनुस्मृति के एक पद से चलता है। वह है हित-भाग। मनुस्मृति के टीकाकारों ने इसका अर्थ किया है—"किसी पुल या बाँध में छिद्र करना या बनाना।" पटना-म्यूज़ियम की संरक्षणता में रायसाहब मनोरंजन घोष के द्वारा जो खुदाई का काम इस वर्ष हुआ है, उससे पाटलिपुत्र की प्रसिद्ध दीवार देखने को मिली है। जिस हित-शब्द का अर्थ कुछ दिन पहले लगाना असंभव-सा माना जाता था, वही मनुस्मृति और गवर्नमेंट के द्वारा की हुई खुदाई की सहायता से अब सुस्पष्ट हो गया है।

"डेमिट्रियस हिंदोस्तान के एक बड़े हिस्से का शासक था। यूक्रेडिटिस ने जब उसके तख़्त पर अधिकार कर लिया, तो उसने हिंदोस्तान छोड़ दिया, और अपने देश को चला गया। यूनानियों ने इस घटना का नाम-मात्र को उल्लेख किया है। प्रसिद्ध वैयाकरण पतंजलि ने एक जगह यूनानियों के संबंध में एक बात लिखी है। जिस समय यूनानियों ने मध्यदेश पर अधिकार जमाया, उस समय पतंजलि वर्तमान थे। उनके एक उदाहरण से इसका स्पष्टीकरण हो जाता है। एक ऐसे भूतकाल के उदाहरण में, जिसको लेखक ने नहीं देखा था, लेकिन अगर चाहता, तो देख सकता था, पतंजलि लिखते हैं—'अरुणत् यवनः साकेतम्। अरुणद्यवनो माध्यमिकाम्।' अर्थात् यवन (यूनानी) ने साकेत और मध्यदेश पर आक्रमण किया। यद्यपि पतंजलि ने इस घटना को अपनी आँखों से नहीं देखा था, परंतु यदि उनकी ख़्वाहिश होती, तो देख सकते थे। उड़ीसा में एक शिला-लेख मिला है। वह हाथी-गुंफा-शिला-लेख के नाम से प्रसिद्ध है। इस शिला-लेख में उड़ीसा के राजा 'खारवेल' के १३ वर्षों के शासन का घटना-क्रम से वर्णन है। पतंजलि के उपर्युक्त कथन की पुष्टि इस शिला-लेख से हो जाती है। जिस वर्ष खारवेल ने राजगृह और गोरथगिरि पर आक्रमण किया था, उसी वर्ष यूनानी राजा मथुरा छोड़ अपने देश को चला गया। समय के प्रभाव से ग्रीक-नरेश का नाम मिट गया है, इसलिये उसका नाम नहीं पढ़ा जा सकता। गोरथगिरि आजकल गया-ज़िले में है, और 'बराबर' पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है। इस शिला-लेख में जिस नरेश के नाम का उल्लेख है, वह ईसा के २०० वर्ष पूर्व वर्तमान था। उस समय मगध का सम्राट् पुष्यमित्र था। प्रसिद्ध वैयाकरण पतंजलि ईसा के १८० वर्ष पहले उसके दरबार में राजपंडित था। अयोध्या में जो शिला-लेख मिला है, उससे पता चलता है कि पुष्यमित्र के वंशज साकेत के शासक थे। पुष्यमित्र ज़ाति का ब्राह्मण था। उसने क्रांति की लहर पैदाकर विशाल सेना की सहायता से अशोक के वंश का मूलोच्छेद कर दिया, और स्वयं सम्राट् बन बैठा। पंजाब के शासक डेमिट्रियस तथा उड़ीसा के शासक खारवेल ने पुष्यमित्र के सम्राट् पद का ख़ासा विरोध किया था। सम्राट् बनने का स्वर्ण-सुयोग देखकर दोनो नरपतियों ने इसके लिये प्रबल प्रयत्न किया था।

"प्रसिद्ध इतिहासज्ञ गर्ग ने इस आक्रमण की महत्ता का यथार्थ अनुभव किया था। यह आक्रमण देश के इतिहास का कायापलट कर सकता था। गर्ग ने इन शब्दों में यूनानियों को याद किया है—'यूनानियों को युद्ध करने का नशा-सा था।' वे भयानक अत्याचारी और ज़बरदस्ती कर लगानेवाले थे।

"युग-पुराण में एक और घटना का उल्लेख है। वह है साकेत में अग्निमित्र के शासन के संबंध की। अग्निमित्र, जैसा कि इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है, पुष्यमित्र का लड़का था। गर्ग का कहना है कि अग्निमित्रों के शासन-काल में शकों ने भारत पर आक्रमण किया था। मालवे में सिप्रा-नामक एक नदी

है। वहीं शकों से युद्ध हुआ था। शकों ने बड़े-बड़े अत्याचार किए। हिंदोस्तान से बहुत-सा धन वे लूटकर ले गए। अगणित हिंदुओं को वे क़ैदी की दशा में अपने देश को ले गए। गर्ग ने अनेक समकालीन राजों के नामों का उल्लेख किया है। संभवतः ये राजे पश्चिमोत्तर भाग के रहनेवाले थे। पेशावर के आस-पास शासन करनेवाले यूनानी नरेशों के नाम इन नामों से मिलते-जुलते हैं। क्रमशः वे नाम ये हैं— अमनात (एमिता), गोपालोभम (ऐपोलोफ़ैंस) और सविलो (फ़ोइलस)। केवल प्राचीन सिक्कों में ही इन नरेशों के नाम मिलते हैं। इनके विषय में और कोई लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं। 'युग-पुराण'-नामक प्रकरण के पाठ से यह बात स्पष्टतः हृदयंगम हो जाती है कि प्रायः समग्र हिंदोस्तान के नरेशों के संबंध में हमारे ग्रंथकार ने लिखा है। एक और घटना का उल्लेख गर्ग-संहिता में मिलता है। गर्ग ने एक भयानक दुष्काल का ज़िक्र किया है। नर्मदा-नदी और हिमालय पर्वतमाला के बीच के प्रदेशों में इस दुष्काल की भीषणता दृष्टिगोचर हुई थी।

"उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि गर्ग के पास जो प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध थी, वह हमारे अर्वाचीन पुराण-लेखकों के पास नहीं थी। गर्ग ने जिन पुस्तकों के आधार पर अपना इतिहास लिखा है, वे प्राकृत में थीं। मध्यप्रदेशस्थ गर्ग-संहिता की हस्त-लिखित प्रतियों के मिलने पर इस विषय पर विशेष प्रकाश डाला जा सकेगा। चीनी यात्रियों के कहने के मुताबिक़ यह निश्चित है कि तत्कालीन सरकारी दफ़्तरों में राजकीय इतिहासज्ञों के लिखे हुए बहुत-से सामान रक्खे हुए थे। चाणक्य-कृत अर्थ-शास्त्र में एक ऐसे ही इतिहासज्ञ का नाम पाया जाता है। दैव-दुर्विपाक से भारत की समग्र ऐतिहासिक सामग्री नष्ट हो चुकी है।"

अस्तु, अब यह कहने की जगह नहीं है कि हिंदू इतिहास नहीं लिखते थे।

भुवनेश्वर झा (बी० ए०, ऑनर्स)

× × ×

२. रो दे

(१)

रो दे तनिक भाग्य पर मेरे आँसू आज बहा दे;
चिर-सहचरी वेदने, जिह्वा से कुछ आज कहा दे।
सुनकर जिसे, जगत् अपना उर-अंतर तुरत टटोले;
और वेदना हृदय-द्वार आ आकुलता से खोले।

(२)

रो दे नयन अश्रु-धारा में अपनी शक्ति बहा दे;
और प्रकंपित अधर आज जगती में मौन गहा दे।
होकर हृदय आज पत्थर भी पिघल-पिघलकर बह जा;
मेरी चिर-सहचरी वेदने, विस्मृति में तू रह जा।

(३)

रो दे स्मृति-विस्मृति की मेरी उलझी करुण कहानी;
टूट पड़ें काया के बंधन, ऐसी हो मनमानी।
ममता छोड़, तोड़ दे बंधन, अंतिम बार सदय हो;
जीवन की माया अब आकर, मुझमें ही तू लय हो।

(४)

रो दे जगत् और उससे बह जा करुणा की धारा;
ज्योति, गोद में अंधकार के, हो उसमें जग सारा।
फिर स्मृति में मिलकर अतीत के मैं 'अतीत' हो जाऊँ;
मायाहीन असीम उदधि हो, मैं उसमें सो जाऊँ।

श्यामापति पांडेय

× × ×

३. देश की कारीगरी का नाश

बहुत लोगों का विश्वास है कि देश की कारीगरी का नाश इसलिये हुआ कि वह भाप से चलनेवाली कलों की सहायता से बने हुए माल के साथ प्रति-द्वंद्विता न कर सकी। किंतु उनका यह विश्वास नितांत असत्य है। पलासी-युद्ध के पीछे गोरे व्यापारियों के अत्याचार के कारण कारीगर बहुत दुखी हो गए।

उनकी कठोर आज्ञा से कारीगर स्वतंत्र रूप से कपड़ा बुनने पर बाध्य किए गए। किंतु इससे भी बंगाल की कारीगरी का नाश नहीं हुआ। पचास-साठ सैकड़े दाम कम होने पर भी देशी कारीगरों को यथेष्ट लाभ होता रहा। कंपनी के अधिक कर बढ़ाने पर भी अँगरेज़-व्यापारियों की स्वार्थ-पूर्ति की इतिश्री नहीं हुई। उनके अत्याचारों के वर्णन की सत्यता मीर क़ासिम के पत्र द्वारा विदित होती है। उसने लिखा है कि अँगरेज़-व्यापारी देश की प्रजा तथा व्यापारियों के बल-पूर्वक माल ले जाते और उन्हें चौथाई हिस्सा देते हैं। पुनः प्रजा के गले ज़बरदस्ती विलायती माल मढ़कर एक रुपए के स्थान में उनसे बल-पूर्वक पाँच रुपए लेते हैं। मीर क़ासिम के पत्र के अतिरिक्त २६ मई, सन् १७६२ ईसवी के लिखे हुए ग्रेगो-नामक एक गोरे आदमी के पत्र में लिखा है कि कंपनी के नौकर अपने को असीम शक्तिशाली समझते हैं। कंपनी की चीज़ें गाँव में ले जाते और लोगों की इच्छा के विरुद्ध उनको ख़रीदने के लिये बाध्य करते हैं। इतना ही नहीं, ज़ुल्म की धमकी देकर उन्हें यह मानने के लिये भी लाचार करते हैं कि वे कंपनी के अतिरिक्त किसी से वस्तु न ख़रीदें। इससे भी अधिक विलियम वेल्स-नामक उस समय के जज ने इस अत्याचार का वर्णन 'Considerations of Indian Affairs (1772)'-नामक ग्रंथ में और भी भयानक रूप से किया है। जिसका आशय यह है—"अँगरेज़ व्यापारियों के अत्याचारों के लगातार दृश्य के कहने में सत्यता की मर्यादा कम न होगी। अँगरेज़-व्यापारियों के कठोराघात से ही देशी जुलाहों, कारीगरों का सर्वनाश हुआ। उन बेचारों का इतना भी अधिकार न रहा कि वे स्वयं अपनी बनाई वस्तु पर क़ीमत लगावें; किंतु इसका अधिकार गोरे व्यापारियों के हाथ में ही रहा। वे ही इच्छानुसार मूल्य स्थिर कर देते थे। इसलिये जुलाहों को सिपाहियों के द्वारा कंपनी के नौकरों के पास हाज़िर किया जाता था, और वे माल की क़ीमत तथा उसके देने के रुपए के विषय में अपने सुबीते के अनुसार शर्तें, कारीगरों से, कराकर ज़बरदस्ती हस्ताक्षर करा लेते थे। उनकी सलाह की कोई परवा नहीं करते थे। इसके बाद कचहरी के सिपाही उन्हें चाबुक मारकर निकाल देते थे। अनेक कारीगरों को इस बात पर बाध्य किया जाता था कि वे अन्य स्थान पर काम न करें। रेशम के कारीगर नागोबाड़ जाति पर भी भयानक अत्याचार हुए। वे बेचारे नौकरी छोड़ने पर भी मुक्त नहीं किए जाते थे। कंपनी के कर्मचारी उन्हें मार-पीटकर कपड़े बुनने के लिये विवश करते थे। इससे दुखी होकर अभागे अपने अँगूठे कटाकर निश्चिंत बैठते थे। क्या इन अत्याचारों की परा काष्ठा नादिर-शाह, सिराजुद्दौला से कम है। उन्होंने स्वप्न में भी इन अत्याचारों की कल्पना न की होगी।

"निर्दोष नंदकुमार की फाँसी का रहस्य यही था कि उसने ग़रीब देशी कारीगरों का पक्ष-समर्थन किया था। वह यथार्थ में कंपनी का शत्रु इसीलिये हुआ कि वह बार-बार देशी कारीगरों का पक्ष लेता था। कंपनी के नौकरों ने तो प्रथम ही नवाब के पास से अपने मालिकों का व्यापार बढ़ाने के लिये जुलाहों के साथ मनमाना बर्ताव करने की आज्ञा प्राप्त कर ली है। इसीलिये इस बेचारे (नंदकुमार) को मातृवेदी पर अपना सर्वस्व अर्पण करना पड़ा, अर्थात् वह फाँसी की तख़्ती पर लटकाया गया।" उपर्युक्त कथन से पाठक समझ गए होंगे कि किस प्रकार देश की कारीगरी का सर्वनाश किया गया। अन्यथा हाथ की कारीगरी के सम्मुख मशीनों से बनी हुई चीज़ों की क्या हस्ती थी! इतिहासों से हमें पता लगता है कि हज़ार वर्ष पूर्व भारत का मिसर के साथ व्यापारिक संबंध था। योरप के कवियों, लेखकों और प्रवासियों ने भारत की कला कुशलता और वैभव की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। "उस समय इस देश की वस्तुएँ समस्त देशों में जाती थीं। केवल बंगाल-प्रांत से ही १५ करोड़ का महीन कपड़ा प्रतिवर्ष विदेश जाता था। पटने में ३,३०,४२६ स्त्रियाँ, गोरखपुर में १,७५,६०० स्त्रियाँ और शाहाबाद में १५,९५,००० स्त्रियाँ चरख़ों पर सूत कातकर ३५ लाख रुपए कमाती थीं। सन् १७५७ ई० में क्लाइव जब मुर्शिदाबाद गया, तो वहाँ के विषय में उसने लिखा है कि यह शहर लंदन से भी अधिक मालदार है।"

वेल्स साहब ने भी एक जगह लिखा है कि ढाके के

बने हुए कपड़े को देखकर विदित होता है, मानो वह देवतों ने बनाया है। यह तो निःसंदेह ठीक है कि विलायती जुलाहों ने धोती का किनारा बुनना बंगाल के जुलाहों से ही सीखा। पहले-पहल जब विलायती कपड़े भारत में आए, तो संभव है, उन्हें देखकर, वर्तमान समय के मनुष्य वे कपड़े पसंद न करते।

एक कारीगर ने अकबर बादशाह को एक थान कपड़ा बाँस की एक छोटी-सी नली में भरकर भेंट किया था। वह इतना लंबा था कि उससे अंबारी सहित हाथी ढक गया। इसी प्रकार ढाके में जो थान १०० गज़वाला बनता था, उसकी तौल केवल ८ तोले ४½ माशे होती थी। इस प्रकार के कपड़े का लिपटा हुआ एक थान अँगूठी के सूराख़ के आर-पार हो जाता था।

एक बार औरंगज़ेब की लड़की ढाके की मलमल का कोई वस्त्र पहनकर अपने बाप के पास गई; किंतु जब उसके बाप ने देखा, तो वह बड़ा नाराज़ हुआ। कारण यह था कि उस वस्त्र से उसके सारे अंग दिखाई पड़ते थे। बाप को रुष्ट देख लड़की ने कहा—"कई तह करके मैंने इसको पहना है; लेकिन इसका बारीकपन नष्ट नहीं हुआ, इसमें मेरा क्या दोष?"

इतने ही नहीं, वरन् भारतवर्ष की कला-कुशलता के अनेक प्रमाण हैं। सर टॉमस मुनरो ने स्वयं एक जगह लिखा है कि भारत की शाल को हम ७ वर्ष से काम में ला रहे हैं, किंतु उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सच पूछो, तो इस शाल की अपेक्षा विलायती शाल मुफ़्त में लेना भी ठीक नहीं।

उपर्युक्त थोड़े से प्रमाणों से ही हम सिद्ध कर सकते हैं कि भारतवर्ष के हाथ की कारीगरी का विकास इसलिये नहीं हुआ कि वह विदेशी-कल-मशीनों के बने हुए कपड़ों की प्रतिद्वंद्विता न कर सकी। किंतु इसके विनाश का कारण एकमात्र कंपनी के कर्मचारियों का पाशविक अत्याचार ही है, जिससे हमारे कला-कौशल के साथ ही ऐश्वर्य, धन और लक्ष्मी सभी की इतिश्री हुई।

अँगरेज़-व्यापारियों की स्वार्थपूर्ति की आशा से भारत की कारीगरी नष्ट करने के लिये भारतवर्ष की जानकारी रखनेवाले सर टॉमस मुनरो तथा जॉन स्ट्राची-जैसे लोगों से एक कमीशन के द्वारा यह प्रश्न पूछा गया था—

"From your knowledge of the Indian character and habits are you able to speak to the probab lity of a demand for European Commodities by the p-pulation of India for their own use?"

अर्थात् "हिंदोस्तानियों के आचार-व्यवहार के संबंध में जितनी जानकारी आपको है, उसके बल पर क्या आप कह सकते हैं कि भारतवासी अपने व्यवहार के लिये योरप की बनी हुई वस्तुएँ कहाँ तक ख़रीद सकते हैं।"

इसके उत्तर में यही कहा गया कि भारतीय विलासप्रिय नहीं हैं; वे अपनी आवश्यकता-पूर्ति की चीज़ें स्वयं बना सकते हैं। उसी समय सर टॉमस मुनरो ने भारतवर्ष की बनी हुई शाल की प्रशंसा की थी। किंतु इस प्रकार के निराशाजनक उत्तर से भी कंपनी के व्यापारी निराश नहीं हुए। उन्होंने हिंदोस्तानी कपड़े की क़ीमत पर प्रति सैकड़े साठ से अस्सी रुपए चुंगी-कर लगाया, और इसके साथ ही विलायत से कपड़ा विना किसी कर के आने-जाने लगा। इसी प्रकार अनेक घृणित अत्याचारों से भारत की कारीगरी का नाश हुआ है।

मनोरमादेवी

× × ×

४. साहित्य-गौरव

साहित्य उस अटल सत्य का विजय-बिगुल बजा रहा है, जिसकी खोज में बड़े-बड़े महात्मा और ज्ञानी-विज्ञानी कवि आदि युग से पागल हैं। साहित्य केवल आजकल की ही वस्तु नहीं, पृथ्वी की आयु के साथ-साथ साहित्य की भी आयु बढ़ती जा रही है। साहित्य के बल पर कितनी ही पराधीन जातियाँ स्वाधीन जाति में परिणत हो गई हैं। अगणित गुरु गंभीर प्रतिभाएँ वर्षों के गुलाम और मृत देश को फूलों से सजे हुए राज्य-सिंहासन की ओर खींच ले गई हैं। बात यह है कि हम साहित्य द्वारा कर्म-दृढ़ता के अद्भुत दर्शन करते हैं। साहित्य की सार्थकता यही है। सत्साहित्य वही है, जो जड़ वस्तु में भी चैतन्य-संचार कर सके, मृत शरीर में भी नवजीवन की सुधा बरसा सके। यदि किसी साहित्यकार की ...

इतना दम नहीं, तो उसकी सेवा व्यर्थ है। जातीय उत्थान-पतन के साथ ही साहित्य का भी उदय और अस्त है। जो सिद्धांत साहित्य को संकीर्ण अवस्था में देखना चाहते हैं, वे वास्तव में भूल करते हैं। आत्मप्रकाश ही सत्साहित्य की सृष्टि करने में समर्थ है। जहाँ हमारा आत्मप्रकाश बाधा-हीन है, वहीं हमारी मुक्ति है। सिर्फ़ हमें आवश्यकता है, अपने साहसमय कर्मों में प्रचंड निर्भीकता की! फिर देखें, हमें कौन अपने पथ से हटा सकता है? हमारे उन्नत पथ को रोकनेवाले मार्ग में जितने भी काँटे पड़े मिलेंगे, हम उन्हें बुरी तरह से रौंद डालेंगे। रास्ते के समस्त रोड़ों को पीसकर विजय प्राप्त करना ही हिंदी के प्रत्येक लेखक या कवि का मुख्य धर्म होना चाहिए। स्मरण रहे, सेवा और उत्साह ऐसी वस्तुएँ हैं, जिनके सम्मुख संसार की सभी शक्तियाँ नत-मस्तक हैं। इस समय हिंदी-साहित्य के उत्थान का युग है। हमें हिंदी के प्रत्येक लेखक में संगठन-शक्ति और सद्भाव की आवश्यकता है। यदि किसी के रथ का एक पहिया टूट जाय, तो हम सभी साहित्य-सेवियों का कर्तव्य है कि हम सब एकसाथ ही ज़ोर लगाकर उसे आगे बढ़ावें। यदि किसी महाकवि की इच्छा हुई कि हम इसे पूर्व की ओर खींच ले जायँ, और किसी लेखक महोदय के हृदय में द्वेषवश यह कल्पना उठी कि हम इसे पश्चिम की ओर खींच ले जायँ, तो यह याद रखने की बात है कि इससे हमारा सर्वनाश ही निश्चित है।



पं० गुलाबरत्न वाजपेयी "गुलाब"

आज दिन योरप में, उस योरप में, जिसके आश्चर्यजनक आविष्कारों को देखकर संसार चौंक पड़ा है, बड़े-बड़े महामहोपाध्याय पंडित, जगद्गुरु श्रेणी के मनीषी जीवन की अद्भुत शिक्षा द्वारा अपने स्वतंत्र मतों की ध्रुव वाणी से साहित्य में प्रकाश कर रहे हैं। इससे सरस साहित्य जितनी अधिक अपनी उन्नति कर रहा है, पाठकों की संख्या भी वैसी ही बढ़ रही है। क्या हमारे हिंदी के नवीन लेखक इन पंडितों का अनुकरण करेंगे? हमें राष्ट्रभाषा हिंदी में जातीय साहित्य को पुष्ट करनेवाले अनेकों चिंताशील, प्रतिभा-संपन्न नवयुवकों की आवश्यकता है। इस समय हमें अपने साहित्य को विश्व-साहित्य में परिणत कर देने की आवश्यकता है। आज हिंदी राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर विराजमान है। संसार के भिन्न-भिन्न भाषा-साहित्यों के अनुवाद की आवश्यकता है। इस कार्य की पूर्ति हम अँगरेज़ी-साहित्य से कर सकते हैं। इस समय हिंदी के नौजवान लेखक जो अँगरेज़ी के पंडित हैं, संसार के सुंदर और अमर साहित्य का अनुवाद करें। अनुवादक बनना बुरी बात नहीं, साहित्य में अनुवादक का ऊँचा स्थान है। आज दिन अँगरेज़ी में फ्रेंच और जर्मन साहित्य में मौलिक प्रतिभाओं का अभाव नहीं, फिर भी लोग बड़े गर्व और आनंद से

साथ अन्य भाषाओं के साहित्य का अनुवाद करते हैं। साहित्य को शक्तिशाली बनाने के लिये अनुवाद की बड़ी आवश्यकता है। हिंदी के वे लेखक, जो अन्य भाषाओं के विद्वान् हैं, यह कार्य बड़ी ख़ूबी के साथ कर सकते हैं। यह हम मानते हैं, हिंदी के सभी लेखक संसार की अगणित भाषाएँ नहीं सीख सकते। किंतु नवीन लेखकों में नित्य एक नवीन भाषा सीखने का नशा रहना चाहिए। संतोष की बात है, हिंदी के कुछ प्रवीण लेखक इस क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं। ऐसे अमर लेखकों और अनुवादकों की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

इस समय हिंदी में नवजीवन का संचार हो रहा है। कविताएँ और कहानियाँ बड़े सुंदर ढंग से लिखी जा रही हैं। अमर उपन्यास और नाटकों की भी सृष्टि हो रही है। हिंदी का यह उत्थान देखकर किस हिंदी-सेवक को गर्व नहीं होता? अब नवयुवक लेखकों को अपने को स्रष्टा समझकर आगे पैर बढ़ाना चाहिए। हमें हिंदी का शृंगार करना है। यदि प्रचलित भाषा में हमें भाव-विस्तार के लिये काफ़ी शब्द न मिलें, तो उन्हें प्रादेशिक निकुंज से सुमन की तरह चुन लेना चाहिए। यदि उन फूलों से भी हम सुंदर गजरा न गूँथ सके, तो अंत में विदेशी शब्द-सुमन चुन लिए जा सकते हैं। जिस समय हम अपने आत्मभावों का सुंदर हार राष्ट्र-भाषा हिंदी के गले में पहना देंगे, तब संसार उसकी मनोहर सुगंधि से मतवाला हो जायगा। भाषा अटल पर्वत-राशि नहीं है; प्रत्येक युग में उसका प्रवाह भिन्न है। भाषा समुद्र की लहर के समान है, जो अनेक बार उठती और आगे बढ़ती है। हमारी नवीन भाषा का जितना ही विस्तार होगा, विशाल भारत की मृत जातियाँ उतना ही शीघ्र पुनर्जीवन प्राप्त करेंगी। एक बात हम और कहना चाहते हैं। वह यह है कि हिंदी में सत्समालोचना का अभी बहुत अभाव है। सत्समालोचना साहित्य के गर्व की वस्तु है। खेद है, इस समय हिंदी-संसार में कुछ ऐसे स्वयंभू समालोचक उत्पन्न हो गए हैं कि भ्रष्ट समालोचनाओं का प्रचार करना ही उनका महत् उद्देश्य है। हमें उनकी इस हरकत पर लज्जा आती है। क्या इसी से हमारे साहित्य का गौरव बढ़ेगा? हम इस बात को ज़ोर देकर कह सकते हैं कि हमारी आँखें अभी तक नहीं खुलीं। हम किसी भी लेखक को श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखते। अहंभाव इतना समा गया है, जिसका कुछ ठिकाना नहीं। सत्समालोचना के अभाव से ही हम हिंदी में आज दिन कोई साहित्यिक नेपोलियन, रवींद्रनाथ, रोम्याँ रोलाँ, गांधी, मेटरलिंक या टाल्स्टाय नहीं उत्पन्न कर सके। कितनी शर्म की बात है! हम सबको लज्जा से सिर झुका लेना चाहिए। हिंदी-संसार के भ्रष्ट सिद्धांतवादी समालोचक चेत जाएँ, और वे उन पंडितों का अनुकरण करें, जिनकी समालोचनाएँ आदरणीय हैं। भारतवर्ष का कृषि-वाणिज्य, भारत-वर्ष का शिल्प और शिक्षा, भारतवर्ष की व्यवस्था-प्रणाली, सभी साहित्य-उद्बोधन की आकांक्षा में लीन हैं। किंतु साहित्य के इस गुरु आदर्श और कर्तव्य की अवहेलना कर जो साहित्य-प्रेमी भ्रष्ट सिद्धांतों की पूजा करते हैं, वे निःसंदेह निंदा के पात्र हैं। स्मरण रहे, सच्चा लेखक कर्मवीर है। किसी कर्म का फल शीघ्र होता है, किसी का देर से, और किसी का जन्मांतर के पश्चात् भी! हमें सदैव प्रेम के वशीभूत होकर सत्कर्म की आवश्यकता है। उपयुक्त समय आने पर ही कर्मों का शुभ और अशुभ फल प्राप्त होता है। हिंदी-संसार में जिस दिन सत्कर्मों द्वारा नवीन भावों की पवित्र धारा बहेगी, उस दिन संसार की सभी साहित्य-धाराएँ क्षीण दिखाई देंगी। बिना सत्कर्म द्वारा नवीन ज्योति का प्रकाश किए मृत जातियाँ आँखें नहीं खोलतीं। इस समय हिंदी के प्रत्येक सुलेखक और कल्पना-कुशल कवि के लिये यह आवश्यकता है कि वह हिंदी के विजय-रथ पर सवार होकर "स्वर्गादपि गरीयसी हिंदी" इस पवित्र मंत्रोच्चारण के साथ आचमन करते हुए—संसार की सभी भाषाओं में—हिंदी का जयगान करें, अपनी अमर कृतियों में भावों की पवित्र गंगा बहावें, जिसकी स्वच्छ लहरों में स्नान कर संसार के कोटि-कोटि प्राणी अपने जीवन को धन्य और सार्थक समझें। तभी हमारा और हमारे साहित्य का गौरव है। बोलो—"राष्ट्रभाषा हिंदी की जय!"

× × ×

"गुलाब"

५. कर्तव्य *

शुचि सुंदरता धीरे-धीरे ;
उतरी उषा-लोक से ... -तरंगिनि-तीरे ।
बैठी मौन मूर्ति-सी मंजुल त... गाया ;
परिमल-पूरित-पवन वहाँ बिहँगों ने गौरव ...
जग की कोमल काया ने निज छाया बीच छिपाया ।
उछल-उछल निर्मल जलधारा यौवन-सी मदमाती ;
चल दी चरण चूमने बरबस बार-बार बल खाती ।
सुस्मृति जगी, किया भावों ने क्रमशः फिर से फेरा ;
उथल-पुथल मच गई, हाथ से निकल गया मन मेरा ।
जादू-भरी आँख पर कैसे किया किसी ने टोना ;
मचल-मचल जो लड़ जाती है देख स्वरूप सलोना ।
खोज रही है किसी हृदय को मेरी लघु अभिलाषा ;
अरी, वेदने रुक जा, क्यों इतनी सौंदर्य-पिपासा ।
चतुर चेतना चिरशंकित-सी क्षण-भर छवि से खेली ;
शून्य अंक में ही फिर अलसाकर सो गई अकेली ।
उस बाँकी झाँकी के अब अस्पष्ट चिह्न मिलते हैं ;
छाप मूकता की मन पर है, पर न अधर हिलते हैं ।
मधुर स्वप्न शिशु के आनन पर जैसे करता क्रीड़ा ,
वैसे ही इस अंतस्तल पर नाच रही है पीड़ा ।
पड़ आमोद-प्रमोद-गोद में सोते में सपना देखा ;
सुधा-पूर्ण वसुधा पर मंगलमय जीवन अपना देखा ।
कठिन त्याग की विषम आग में तनिक नहीं तपना देखा ;
लगी लालसा की वेदी पर किंतु न हाँ, खपना देखा ।
तंद्रा टूटी, ध्यान जग उठा, देख दृश्य पर माली का ;
जीवन है 'कर्तव्य' सुन पड़ा संदेशा वनमाली का ।

छैलविहारी दीक्षित "कंटक"

* हिंदू-विश्वविद्यालय के गत कान्वोकेशन के अवसर पर होने-वाले कवि-सम्मेलन में पठित और सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण श्रीदुलारेलाल भार्गव द्वारा स्वर्णपदक से पुरस्कृत ।

× × ×

६. प्रेम-दर्शन *

(१)

झरने झर मिलते सरिता से, सरि... ... सागर से ;
मिलते नभ की अनिल सदा, भावों की मधुर ... से ।
कोई नहीं अकेला जग में, सभी नियति से मिलते—
एक एक में; क्यों न मिलूँ फिर मैं तेरे अंतर से ।

(२)

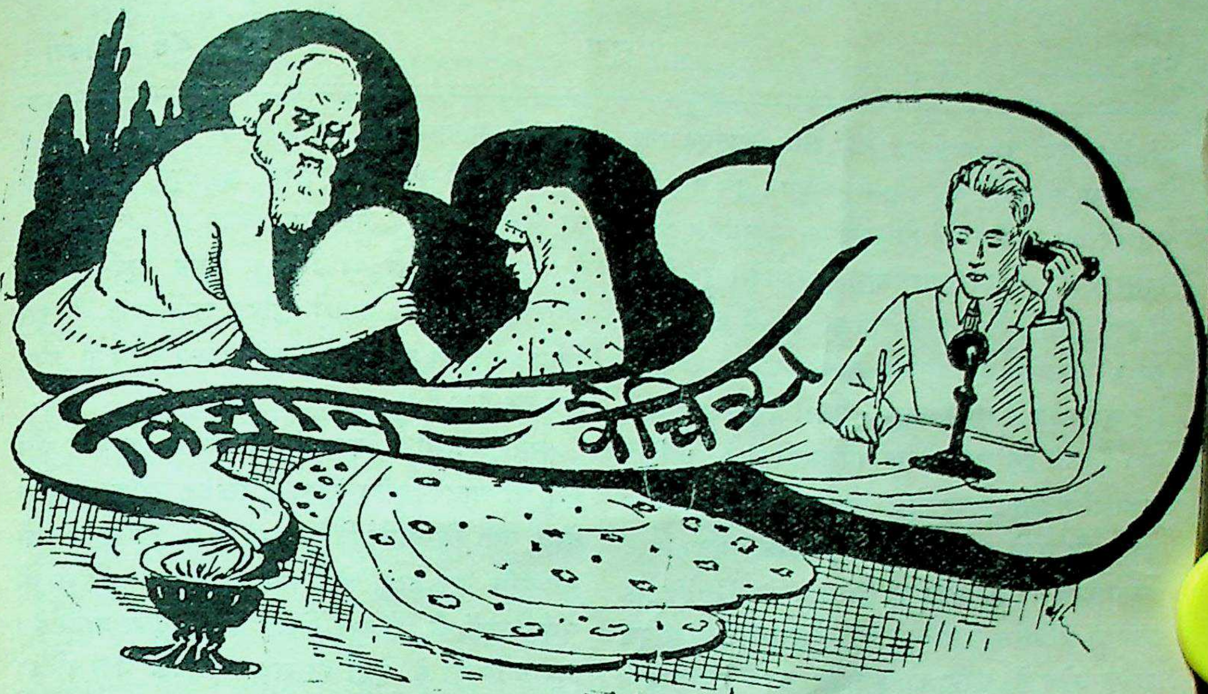
देखो, इस उत्तुंग गगन का चुंबन करते गिरिवर ;
तरल तरंग किया करते हैं, आलिंगन इतरेतर ।
कोई कुसुम-भगिनि पावेगी, क्षमा नहीं, यदि वह भी ;
कभी करेगी किसी सुमन-भाई का कहीं अनादर ।

(३)

रवि-प्रकाश नित ही करता है, वसुधा का आलिंगन ;
शशि-मयूख भी चूम लिया करते सागर का सुवदन ।
अरे विश्व के इस चुंबन का मोल बताओ क्या है !
नहीं निहाल मुझे कर देते तुम ले मेरा चुंबन !

कृष्णानंद

* Shelley कवि के "Love's Philosophy" का भावानुवाद ।—अनुवादक ।



रश्मि-स्नान



भुवनभास्कर सूर्य के संबंध में संसार के सभी लोग कुछ-न-कुछ अवश्य जानते हैं; किंतु उनकी रश्मियों में जो आरोग्यकर गुण पाए जाते हैं, उनसे बहुत थोड़े लोग अवगत हैं। शिशिर-काल के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में सूर्यातप हमें सुखकर प्रतीत नहीं होता; किंतु इतने से ही उसके गुणों में कोई लघुता नहीं आती। अन्य ऋतुओं में भी जीवन-धारण के लिये धूप अत्यंत प्रयोजनीय है। आकाश-मंडल के मेघाच्छादित होने पर सूर्य-रश्मि के अभाव में हमें दिन निरानंदमय जान पड़ने लगता है। किंतु इससे भी बढ़कर आश्चर्यजनक बात तो यह होती है कि इस प्रकार के सूर्यातप-विहीन दिनों में प्रतिक्षण कोटि-कोटि जीवाणु जन्म लेकर पृथ्वी को अस्वास्थ्यकर बना डालते हैं। सूर्य-रश्मियों में ही यह शक्ति पाई जाती है कि वे इन भीषण जीवाणुओं को एकदम विनष्ट कर देती हैं। जल एवं मृत्तिका के समान सूर्य-रश्मि में भी दुर्गंध-नाशक शक्ति वर्तमान है। इन्हीं गुणों के कारण हमारे शास्त्रों में सूर्यदेव की स्तव-स्तुतियों से पूजा की गई है। सिर्फ़ भारतवर्ष में ही नहीं, बल्कि मिसर आदि प्राचीन देशों में भी आदित्य-आराधना की प्रथा प्रचलित थी। जिन स्थानों में सूर्य-किरणें पड़ती हैं, वे स्थान अस्वास्थ्यकर नहीं होने पाते। कोलोराडो-प्रदेश के अंतर्गत डेनवार-नामक स्थान में साल में केवल ६ ही दिन धूप नहीं निकलती। अतएव इस समय संसार में सबसे बढ़कर स्वास्थ्यकर स्थान यही निर्दिष्ट किया गया है। प्रशांत महासागर-मध्यवर्ती पिकेरिन-द्वीप में अब तक किसी को कर्कट रोग नहीं हुआ है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि इस द्वीप में अधिकांश समय सूर्य-किरणें पड़ती हैं, जिससे देह-रोग उत्पन्न होने नहीं पाता। शरीर में सूर्य-रश्मि का संपर्क होने से रक्त में चूने और फ़ासफ़रस का अंश वृद्धि पाता है। दूसरे शब्दों में यदि हम यों कहें कि धूप में जो Ultra-violet रश्मि है, वही हमारी जीवनी-शक्ति है, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। विलायत के चिड़ियाख़ाने में जिस घर में सर्प तथा इस देश से लाए गए अन्यान्य जीव-जंतु रहते हैं, उसमें शीत-काल में धूप के अभाव की पूर्ति के लिये स्फटिकालोक या Quarty Canp द्वारा उत्पादित कृत्रिम Ultra-violet रश्मि से काम लिया जाता है, और इससे उनकी स्फूर्ति एवं श्रीवृद्धि भी होती पाई जाती है। विलायत के किसी-किसी विद्यालय में इस Ultra-voilet रश्मि की प्राप्ति के लिये एक प्रकार का शीशा लगाया जाता है। वायुमंडल के धूलि से आच्छन्न रहने पर Ultra-

violet-रश्मि का कोई फल नहीं होता। अतएव नगर के स्वास्थ्य की उन्नति की दृष्टि से सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान रखना आवश्यक है कि नगर का वायुमंडल कल-कारख़ानों के धुएँ से आच्छन्न न होने पावे। सूर्य-रश्मि में इतना गुण है कि रोग के बीजाणु रक्त में प्रविष्ट होने पर भी शरीर में धूप लगने से वे बीजाणु नष्ट हो जाते हैं। सूर्य-रश्मि में रोग-निवारण की जो यह क्षमता वर्तमान है, उसे इस समय योरप एवं अमेरिका के वैज्ञानिक भली भाँति प्रतिपन्न कर रहे हैं। ग्रीस तथा रोम के प्राचीन अधिवासी अपने शरीर को अनावृत करके आतप-स्नान किया करते थे। इस स्नान को Insolatio Heliosis नाम से अभिहित किया गया है। स्विज़रलैंड के अत्युच्च पार्वत्य प्रदेश में शरीर को अनावृत करके रश्मि-स्नान द्वारा कठिन-से-कठिन व्याधि आरोग्य कराई जाती है। इस प्रकार की चिकित्सा को सौर-चिकित्सा (Sun-treatment) कहते हैं। इन स्थानों में यक्ष्मा, ग्रंथि-संबंधी कठिन क्षयरोग तथा नाना प्रकार के दुःसाध्य क्षयरोगों की चिकित्सा होती है। धूप के अभाव की पूर्ति के लिये लंदन में एक हज़ार बत्तियों की बिजली की रोशनी के नीचे नग्न देह बैठाकर चर्मरोग प्रभृति रोगों की चिकित्सा होती है। इस समय अस्पतालों में रोगियों के रहने के लिये जो कमरे बनाए जाते हैं, उनके संबंध में इस बात पर पूरा ध्यान रक्खा जाता है कि उसके भीतर तक पूर्ण रूप से सूर्य-किरणों का प्रवेश हो सके। सूर्य-रश्मि से केवल शरीर एवं मन में स्फूर्ति ही नहीं मालूम होती, प्रत्युत शरीर के किसी अंश में वेदना, रक्त हीनता, हृदयरोग, ग्रंथि-वात, क्षयरोग, यक्ष्मा-काश आदि नाना प्रकार के कठिन पुरातन रोग भी आराम होते देखे गए हैं।

छोटे-छोटे बच्चों में Rikets-नामक जो व्याधि होती देखी जाती है, उसका कारण भी धूप का अभाव ही है। सूर्यातप-विहीन गृह में वास करने से बच्चों की अस्थि पुष्ट होने नहीं पाती, और इस प्रकार कोमल अवस्था में रहकर अंत में टेढ़ी हो जाया करती है। इसके परिणाम-स्वरूप बच्चे न तो ठीक से खड़े ही हो सकते और न आगे-पीछे दौड़ ही सकते हैं। इस Rikets-व्याधि की प्रधान औषध आतप-सेवन ही है। चूने के जल, काडलिवर आयल प्रभृति औषधियों के सेवन के साथ-साथ आतप-सेवन भी अत्यावश्यक है। हमारे देश में नवजात शिशुओं को धूप में रखने की जो रीति प्रचलित है, वह आतप-सेवन का उत्कृष्ट दृष्टांत है। हमारी स्नायुओं का वैद्युतिक प्रवाह सूर्य-रश्मि से संगृहीत होता है। हमारी प्लीहा सूर्य-किरण से इस स्नायु-प्रवाह को ग्रहण करके उसे समस्त शरीर में प्रवाहित कर देती है।

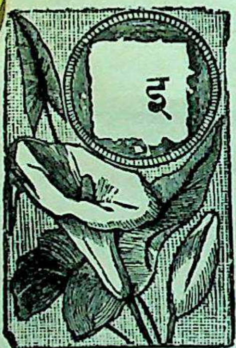
मुर्ग़ी के बच्चों में कुछ को आतपमय स्थान में और कुछ को आतप-विहीन स्थान में रखकर परीक्षा करने से देखा गया कि आतप-विहीन स्थान में रक्खे गए बच्चों का शरीर पुष्ट नहीं होने पाया। वृक्ष-लतादि में भी सूर्य-किरणों की यही चाह विशेष रूप से देखी जाती है। धूप न मिलने से वृक्षों का खाद्य परिपक्व नहीं होता। धूप की ओर ही लतादि को वृद्धि करते देखा गया है। मुख-मंडल एवं नासिका में होनेवाली कुत्सित दद्रु नामक व्याधि आतप-प्रयोग से आराम होती है। पाश्चात्य देशों में Lupus-व्याधि की चिकित्सा रंजन-रश्मि तथा आलोक-रश्मि के प्रयोग से की जाती है। दुर्बल एवं रुग्ण व्यक्तियों के लिये ही आतप-स्नान प्रशस्त है। प्रातःकाल १० बजे से अपराह्न ३ बजे के मध्य में ही आतप-स्नान करना चाहिए। इस प्रकार का स्नान एक बार में आधघंटे तक होना चाहिए। भोजन के आधघंटे अथवा एक घंटे बाद आतप-स्नान करने की विधि है। छत के ऊपर अथवा किसी खुले स्थान में नग्नदेह होकर शयन करते हुए, मस्तक एवं पेट के ऊपर केले के पत्ते का आवरण रखकर आतप-स्नान करना चाहिए। जिस समय वायु प्रबल वेग से बह रही हो, उस समय आतप-स्नान करने से कोई लाभ नहीं होता। इस बात पर दृष्टि रखनी चाहिए कि रश्मि-स्नान से किसी प्रकार की थकावट तो नहीं मालूम होती। यदि सूर्य-किरणों में आधघंटे तक रहने के पहले ही शरीर में पसीना निकल आवे, तो तुरंत वहाँ से उठ जाना चाहिए। आतप-चिकित्सा से शरीर के पुराने घाव भी आराम होते देखे गए हैं। आतप-चिकित्सा की उपयोगिता जानकर ही इस समय योरप, अमेरिका आदि देशों में आतप-चिकित्सा के बहुत-से केंद्र स्थापित हो रहे हैं। इन केंद्रों में बालक-बालिकाओं को आतप-स्नान

कराया जाता है। लंदन नगर के निकटस्थ केनउड स्थान में इसी उद्देश्य से Sun Light League-नामक एक संस्था स्थापित हुई है। जिनेवा में झीलों के तट पर बालक-बालिकाओं को जल-स्नान, वायु-स्नान एवं आतप-स्नान कराया जाता है। फ्रांस देश के अंतर्गत Aumone-नामक ग्राम, स्पेन देश का Cobena ग्राम तथा इँगलैंड के अंतर्गत पोर्टलैंड तथा काइटन प्रभृति स्थान जो अत्यंत स्वास्थ्यकर समझे जाते हैं, इसका प्रधान कारण सूर्य-किरण ही है। भारतवर्ष के अतिरिक्त बलगेरिया एवं स्पेन देश में शतजीवी लोगों की संख्या के आधिक्य का एक अन्यतम कारण सूर्य-किरण की बहुलता ही है। विलायत में यक्ष्मा के रोगियों को स्थान-परिवर्तन कराने के लिये Hasting, Torquay तथा Isle-of-Wight स्थानों में अथवा Madina, Nice या Algeria में भेजा जाता है। यक्ष्मा रोग के संबंध में इन स्थानों की उपयोगिता यही है कि इन स्थानों में समुद्र-वायु के साथ प्रचुर परिमाण में आतप-सेवन करने को मिलता है। उपर्युक्त उदाहरणों से यह सिद्ध है कि सूर्य-रश्मि में मनुष्य-शरीर के उपयुक्त बहुत-से आरोग्यकर गुण वर्तमान हैं। अतएव ईश्वर-प्रदत्त इस अमूल्य वस्तु से हम अत्यंत लाभान्वित हो सकते हैं। हमारे पूर्वज दूरदर्शी ऋषि-मुनि सहस्रों वर्ष पूर्व से भगवान् सूर्य की आराधना का जो आदेश हमें दे गए हैं, उसका रहस्य भी यही है। किंतु सूर्य-किरण के रहस्य का हमें अब ज्ञान हुआ है, जब कि अर्वाचीन वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा उसकी परीक्षा हुई है।

जगन्नाथप्रसाद मिश्र (बी० ए०)



पत्र-पत्रिकाओं के चित्र



इधर कुछ दिनों से पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों में प्रकाशित होनेवाले चित्रों के विरुद्ध आवाज़ उठाई जा रही है। उनके लिये 'कौल मत' इत्यादि विशेषणों का उपयोग किया जाता है। कहा जाता है, वे प्रथम तो 'अनावश्यक' हैं, दूसरे "चित्रों की उच्छृंखल आवश्यकता की पूर्ति के लिये दिए जाते हैं", तीसरे "स्त्रियों के चित्र ही अधिक प्रदर्शित किए जाते हैं", चित्रों द्वारा "स्त्री जाति का अपमान किया जाता है", और उनके द्वारा नवयुवकों के भाव कलुषित होते हैं।

चित्रों के विरुद्ध आंदोलन उठानेवाले महाशय यह मानते हैं कि पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों का सचित्र रहना लाभकारी है। चित्रों का प्रयोग दो कारणों से किया जाता है—एक तो प्राकृतिक सौंदर्य व चित्रकला को प्रदर्शित करने के निमित्त; दूसरे किसी विषय को, जो वर्णन द्वारा न समझाया जा सके, चित्र द्वारा सरल बनाकर समझाने के लिये।

आंदोलन उठानेवाले महाशय सबसे बड़ी यह भूल करते हैं, जब वे समझते हैं कि पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों में जो चित्र होते हैं, उनका उद्देश्य केवल दूसरी आवश्यकता की पूर्ति के लिये ही किया जाता है या किया जाना चाहिए, और प्राकृतिक सौंदर्य तथा चित्रकला के चित्रों को पत्र-पत्रिकाओं में सम्मिलित करना अनावश्यक है। पुस्तकों में जो चित्र होते हैं, वे तो विशेषतः उसी विषय के होते हैं। उनके लिये मुझे कुछ नहीं लिखना। कोई विरला ही चित्र ऐसा निकलेगा, जो किसी पुस्तक में विना प्रयोजन लगा दिया गया हो।

अब रहीं पत्र-पत्रिकाएँ। उनके विषय में यह कहना कि अनावश्यक चित्र नहीं रहने चाहिए, सर्वथा अनुचित है। कोई समझदार मनुष्य तो इसे मानने को तैयार न होगा। पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहक अधिकतर ऐसे मिलेंगे, जो केवल मनोरंजनार्थ पत्रों को लेते हैं। उनका उद्देश्य यह होता है कि अवकाश के समय में कुछ ऐसा विषय पढ़ने को मिले, जिससे संसार की गति भी मालूम हो, मन-बहलाव भी हो, ज्ञान भी उत्पन्न हो और शिक्षा भी प्राप्त हो। लेख द्वारा उनको संसार की गति मालूम होती है, ज्ञान उत्पन्न होता है और शिक्षा भी मिलती है। कहानियों, उपन्यासों तथा चित्रों द्वारा उनके अवकाश के समय को व्यतीत करने में सहायता मिलती है, और मनोरंजन भी होता है। जो मनुष्य प्रातःकाल से संध्या तक संसार-चक्र में

फँसा रहता है, अवकाश के समय में यदि आप उसके मस्तिष्क में केवल ज्ञान और शिक्षा ही भरना चाहेंगे, तो उसका कोई फल न होगा, उलटे वह पत्र या पत्रिका को उठाकर एक कोने में पटक देगा और उसको आगे मँगाना बंद कर देगा। इसके विपरीत यदि पहले आप उसकी मानसिक चिंताओं का अपहरण करने का कोई साधन रक्खेंगे, तभी वह आपके ज्ञान और शिक्षा-संबंधी उपदेशों को सुनने के लिये प्रस्तुत होगा, और आपको अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हो सकेगी, अन्यथा नहीं। इसलिये, मनोरंजनार्थ व्यंग्य-विनोद, चित्र, उपन्यास और कार्टूनों की आवश्यकता है। पत्रों और पत्रिकाओं को त्यागी और संयमी पुरुषों के पास पहुँचाने का ही ठेका तो संपादकों ने लिया नहीं है, और त्यागी तथा संयमी पुरुषों को इनकी आवश्यकता भी नहीं। जिसने संसार त्याग दिया, उसको इस पचड़े से क्या प्रयोजन? पत्र-संपादकों का तो यह कर्तव्य है कि वे अपने पत्रों में सब प्रकार के ग्राहकों के लिये सुविधाएँ रक्खें। मेरे विचार में यदि संपादकगण आंदोलनकारी महाशयों के कथनानुसार "अनावश्यक" चित्र प्रकाशित करना बंद कर देंगे, तो शीघ्र ही उनके अपने ग्राहकों के सामने से अंतर्धान होने का समय आ जायगा। मनोरंजन के विषय पत्र-पत्रिकाओं में उस समय बंद हो सकेंगे, जब प्रत्येक स्त्री-पुरुष संयमी और त्यागी हो जायगा, जो सर्वथा असंभव है। स्वयं बड़े-बड़े संयमी और त्यागी पुरुष भी स्थिति के अनुसार अपनी दशा से विचलित हो गए हैं।

चित्र को जिस भाव से आप देखेंगे, वैसा ही वह आपको दृष्टिगोचर होगा, इसलिये यह कहना कि अमुक चित्र आवश्यकीय है और अमुक अनावश्यक, सर्वथा निरर्थक है। क्या जो भाव अनावश्यक चित्र में होते हैं, वे आवश्यक चित्र में नहीं हो सकते? जिस चित्र को एक संयमी पुरुष आदर की दृष्टि से देखता है, उसी को एक विलासी मनुष्य अपने मनोरंजन का साधन बना सकता है।

चित्र किस विषय के होते हैं? चित्र या तो प्राकृतिक सौंदर्य दर्शाते हैं, या चित्रकला की कला को प्रदर्शित करते हैं, या उन महान् पुरुषों व देवियों के होते हैं, जिनको आदर की दृष्टि से देखा जाता है, या केवल सौंदर्य की ही छटा झलकाते हैं। इसलिये यह कहना कि पत्र-पत्रिकाओं में केवल स्त्री-जाति के ही चित्र निकलते हैं, और उनके द्वारा स्त्री-जाति का अपमान किया जाता है, सर्वथा अनुचित है। वह उलटा उन लोगों के भाव को विदित करता है, जो कहते हैं कि स्त्री-जाति के चित्रों द्वारा स्त्री-जाति का अपमान होता है, अर्थात् जब एक चित्र को आप उनके लिये अपमान-सूचक समझते हैं, तो फिर जब स्त्री-जाति परदा छोड़-कर प्रत्यक्ष संसार-क्षेत्र में उतरेगी, यह भी उसके लिये अपमान-जनक होगा। पहले कहा जा चुका है कि चित्र उनके होते हैं, जिनको आदर की दृष्टि से देखा जाता है। पुरुष-जाति सदा से स्त्री-जाति को आदर की दृष्टि से देखती आ रही है; उसको माता और बहन के नामों से संबोधन करती है। इसलिये यदि वह उसके चित्र प्रकाशित करे, तो इसमें कौन-सा अपमान है? प्रत्युत यह तो एक प्रकार की उपासना है।

इस दल का कहना है कि चित्रों में स्त्री-जाति के अंग-प्रत्यंग दर्शाए जाते हैं, उसके द्वारा नवयुवकों को अनीति के मार्ग में शीघ्रता से ढकेला जा रहा है, और संपादक लोग अपने टके सीधे करने में लगे हुए हैं, उन्हें इस विषय पर विचार करने की क्या आवश्यकता? यदि चित्रकार शरीर के गठन को बतलाने का प्रयत्न करता है, तो उसके विषय में यह कहना कि उसके कलुषित विचार हैं, उसके साथ अन्याय करना होगा। ईश्वर की लीला ही ऐसी है कि कोई कुरूप है और कोई सुंदर। वैसे तो पत्र-पत्रिकाओं में जो चित्र प्रकाशित होते हैं, वे न तो केवल स्त्रियों के ही होते हैं और न सबमें उनके अंग-प्रत्यंग दिखलाने का प्रयत्न ही किया जाता है। प्रयत्न किया जाता है उनके वास्तविक रूप दिखलाने का। जो वस्तु या जो भाग प्रदर्शित करने योग्य होता है, और जिससे चित्र की शोभा बढ़ती है, वही दिखाना चित्रकार ठीक समझता है।

दूसरे यह कहना कि ऐसे चित्रों द्वारा नवयुवक अनीति के मार्ग में ढकेले जाते हैं, अपनी दुर्बलता विदित करना है। क्या आपके नवयुवक इतने पतित और हीन हो गए हैं कि उनकी काम-वासना किसी स्त्री

का चित्र देखते ही उत्तेजित हो जाती है? यदि ऐसा है, तो इससे बढ़कर लज्जा की कौन-सी बात हो सकती है? वे अपने गृह में अपनी माता व बहनों के समक्ष किस प्रकार जाते होंगे? जिस देश के नवयुवक स्त्री-समाज को देखते ही उत्तेजित हो जायँ, उस देश की उन्नति की क्या आशा की जा सकती है? इससे तो वह देश रसातल में ही धँस जाय, तो अच्छा। एक ओर तो आप चिल्लाते हैं कि विना स्त्रियों के उन्नति हो ही नहीं सकती, और दूसरी ओर कहते हैं कि उनका चित्र देखकर ही काम-वासना उत्तेजित होती है।

और, यदि चित्र द्वारा नवयुवक अनीति के पंथ में गिरे जा रहे हैं, तो इसमें चित्रकारों का ही क्या दोष? आजकल की वेष-भूषा भी तो अंग-प्रत्यंग दर्शाती है। कदाचित् जिस समय नवयुवकों के सामने परदा-प्रथा हट जाने के कारण सब स्त्रियाँ नई वेष-भूषा में आवेंगी, तो उस समय नवयुवक उनको देखते ही फिसल पड़ा करेंगे। मेरे विचार में नवयुवकों के प्रति ऐसे विचार रखना उनका अपमान करना है। क्या बड़े-बूढ़ों ने ही संयमी होने का ठेका ले रक्खा है? क्या नवयुवकों के विचार कलुषित ही हुआ करते हैं?

और, इस विषय में संपादकों को ही दोष देना कि वे नवयुवकों में काम-वासना की उत्तेजना के कारण हैं, अन्याय की सीमा लाँघना है। सिनेमा और थिएटर भी तो नवयुवक देखते हैं। वहाँ तो उनको इससे भी गई-बीती वेष-भूषा देखने को मिलती है। चित्र तो पत्रों में महीने में एक ही बार देखने को मिलते हैं, परंतु सिनेमा और थिएटर तो रोज़ देखे जाते हैं। हाँ, यदि ऐसा होता कि संपादकगण किसी दुर्लभ वस्तु को प्रदर्शित करने का प्रयत्न करते होते, तो उनके विरुद्ध तीव्र आंदोलन की आवश्यकता थी। जो नवयुवक चरित्र-हीन हो गए हैं, उनको पत्रिका में चित्र देखने को नहीं मिलेंगे, तो वे तसवीर बेचनेवालों के यहाँ उन्हें देख सकते हैं।

एक महाशय ने इस संबंध में लिखा था—"कुछ पत्रिकाओं या पुस्तकों में स्तनों के ऊपर एक पतला-सा और छोटा-सा आच्छादन दिखला दिया जाता है, अन्यथा कमर के ऊपर का भाग नग्न रहता है। ये चित्र वास्तविकता से बहुत दूर रहते हैं। हम जानना चाहते हैं कि ऐसा कौन-सा सभ्य समाज है, जहाँ स्त्रियाँ इस प्रकार रहती हैं।" क्या लेखक महाशय के समाज में स्त्रियों के कमर से स्तनों तक का भाग दिखता नहीं रहता? और भी कई सभ्य जातियाँ हैं, जिनमें अभी चोलियों की प्रथा विद्यमान है, और चोली पहननेवाली स्त्रियों के ये अंग दिखते रहते हैं, इसको कोई भी भला आदमी न मानने को तैयार न होगा।

आप आगे लिखते हैं—"कुछ पुस्तकों में, यहाँ तक कि पौराणिक ग्रंथों में, स्त्रियों के चारो ओर एक ऐसा बहुत ही महीन वस्त्र दिखला दिया जाता है कि उसमें शरीर का सब भाग साफ़-साफ़ देख पड़े। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, यह अनैतिहासिक है।"

प्राचीन काल में स्त्री और पुरुष नग्नावस्था में रहते थे। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होने लगा, वैसे-वैसे स्त्री-पुरुषों के वेष में सुधार हुआ है। पहले स्त्री-पुरुषों ने अपने गुप्त अंगों को पत्तों द्वारा ढकना आरंभ किया। फिर स्त्रियों ने अपने स्तनों को ढकने के लिये उन पर भी पत्ते बाँधना शुरू किया, जिसका एक रूप "चोली" है। होते-होते जब कपड़ा बनने लगा, तब कपड़े का प्रयोग हुआ। उस समय इतना ही पर्याप्त समझा जाता था कि पुरुष अपनी नाभि से जंघा तक के भाग को ढके रक्खें, और स्त्रियाँ इसके अतिरिक्त अपने स्तनों को भी ढके रक्खें। यही कारण है कि पौराणिक ग्रंथों में आप को ऐसे ही चित्र मिलते हैं। इसका एक और प्रमाण प्राचीन काल की मूर्तियाँ भी हैं। वस्त्रों के महीन दिखलाने के विषय में यह कहना अनुचित न होगा कि प्राचीन शिल्पकला में आजकल का-सा खद्दर तैयार न होता था। उसके विषय में कदाचित् लेखक महाशय को भी विदित होगा कि तीन-चार शताब्दि पूर्व भी जो मलमल बनती थी, उसके १०० गज़ के थान का वज़न ८ तोले ४½ माशे होता था, और उनके बारीक होने का अंदाज़ा इससे भी लगाया जा सकता है कि औरंगज़ेब की लड़की के ढाके की मलमल की कई तहें कपड़े पहनने पर भी उसमें से उसके अंग दिखलाई देते थे।

रामेश्वरदयाल भार्गव

समाज-सुधार

मेहतर और म्युनिसिपैलिटी



खिल भारतवर्षीय अछूतोद्धार कमिटी के प्रतिभाशाली, देशभक्त, निस्पृह और तपस्वी मंत्री पं० बलदेव चौबे ने हमारे पास उपर्युक्त शीर्षक का एक महत्त्व-पूर्ण बुलेटिन प्रकाशनार्थ भेजा है । उक्त बुलेटिन को नीचे प्रकाशित करते हुए हम इस स्थान पर यह निवेदन करना आवश्यक समझते हैं कि हम इससे बिलकुल ही सहमत हैं । मेहतर भाइयों की इस अत्यंत उचित माँग से हमारी आंतरिक सहानुभूति है, और हम भारत की म्युनिसिपैलिटियों के अधिकारियों का भी ध्यान इस न्यायपूर्ण माँग की ओर आकर्षित करते हैं । साथ ही हम मेहतर भाइयों से भी यह अपील करना चाहते हैं कि वे अनवरत परिश्रम से अपनी संघ-शक्ति क़ायम कर इस न्यायपूर्ण संग्राम को तब तक क़ायम रक्खें, जब तक उनके साथ प्रतिदिन होने-वाले सामाजिक अत्याचारों का नाश न हो जाय । उन्हें अपने कर्तव्य, अपनी निष्ठा, अपने सत्याग्रह एवं भगवान् की कृपा में विश्वास होना चाहिए ; सफलता स्वयं ही उनके चरणों पर लोटेगी ।

म्युनिसिपैलिटियों के कर्तव्यों में से सबमें महत्त्व-पूर्ण कार्य नगरों की सफ़ाई तथा नागरिकों के स्वास्थ्य की रक्षा है । बल्कि वास्तविक बात यह है कि म्युनि-सिपैलिटी का मुख्य काम नगर की सफ़ाई ही है । इस काम को जो नगर-सभा अच्छी तरह से निबाहे, उसका कार्य प्रशंसा के योग्य है । सफ़ाई का कार्य स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारियों के अधीन है, जिसमें निरीक्षण आदि कार्यों को छोड़कर सब कठोर परिश्रम तथा घृणित काम मेहतरों को करना पड़ता है । म्युनिसिपैलिटी-क़ानून बन जाने पर मेहतरों के लिये सफ़ाई का काम करना अनिवार्य-सा हो गया है । परंतु अधिकांश म्युनिसिपैलिटियाँ इस बात का बिलकुल नहीं अनुभव करतीं कि जो लोग नागरिकों की सबसे आवश्यक सेवा करते और नगरों को विविध प्रकार के रोगों से सुरक्षित रखते हैं, उनके साथ कैसा बुरा व्यवहार होता है । देश की पुरानी कुप्रथा के अनुसार मेहतरों के परिश्रम को प्रायः मज़दूरी देने योग्य व्यवसाय नहीं समझा जाता, जिसका फल यह है कि मेहतर लोगों को कहीं प्रति घर एक आना मासिक और कहीं

एक रोटी प्रतिदिन तथा कहीं-कहीं दो पैसे मासिक तक भी मज़दूरी दी जाती है। इसी दर की नक़ल करके म्युनिसिपैलिटियों ने मेहतरों को झाड़ू देने, नाली धोने, बमपुलिस पर काम करने तथा गाड़ी हाँकने आदि कामों के लिये ६) मासिक से लेकर २) मासिक तक देने का नियम बना रक्खा है। बेचारे मेहतर माघ और पौष की सर्दी में प्रातःकाल, जब लोग अपनी दुलाइयों में लिपटे पड़े रहते हैं, कठिन परिश्रमपूर्वक गंदे नालों तथा सड़कों पर काम करते हैं। कड़ी-से-कड़ी जेठ और वैशाख की गरमी में सड़कें साफ़ करते हैं, और वर्षा के दिनों में सिर पर मैले की टोकरी लिए और भीगते हुए पाख़ाने साफ़ करते फिरते हैं। मैला भीग-भीगकर उनके शरीर पर भी टपकता रहता है। पर यह ईमानदार सेवक बिना नाग़ा प्रत्येक गृहस्थ के मकान पर पहुँचकर नियत समय पर अपना कर्तव्य पालन करता है। समाज ने उसे इस सेवा के पुरस्कार-स्वरूप 'हलालख़ोर' की उपाधि देकर संतोष कर लिया है।

मेहतरों की मनोवृत्ति सहस्रों वर्षों से ऐसी बन गई है कि उसे अपनी वर्तमान परिस्थिति ईश्वरदत्त और स्वाभाविक प्रतीत होती है। इसलिये यद्यपि वह कभी-कभी दुखी होकर व्यक्तिगत रूप से अपनी दीन-हीन अवस्था पर विचारता है, परंतु आगे कुछ उपाय न देखकर फिर अपने भाग्य को ही दोषी समझकर चुप लगा जाता है।

पर इधर कुछ दिनों से श्रम-जीवियों की मनोवृत्ति परिवर्तित हो रही है, और उसका प्रभाव मेहतरों पर भी पड़ा है। अछूतोद्धार-सभाओं ने भी उनमें प्रचार करके उन्हें यह विश्वास दिलाया है कि यदि सामूहिक प्रकार से नियमबद्ध होकर काम किया जाय, तो उनकी वर्तमान दुर्दशा का अंत हो सकता है। अतएव एक वर्ष के भीतर कलकत्ते से लेकर लाहौर तक अर्थात् उत्तरीय भारत में प्रायः प्रत्येक प्रांत के दर्जनों नगरों में हड़तालें हुई हैं, जिसका कुफल यह हुआ है कि व्यर्थ में नागरिकों को असुविधा तथा कष्ट पहुँचा है, और सुफल यह हुआ है कि मेहतरों की मासिक मज़दूरी में वृद्धि हुई है। इस समय भी देहली, काशीपुर तथा शिमले की म्युनिसिपैलिटियों के मेहतर लोगों ने हड़ताल के लिये नोटिस दे दिया है, और दोनो से युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं।

ऐसी परिस्थिति में विचारणीय विषय यह है कि मेहतर लोगों के बढ़ते हुए असंतोष को क्योंकर कम किया जाय, जिससे उन्हें भी सुख-चैन हो और नागरिकों को भी अधिक कष्ट न पहुँचे। इस प्रश्न का समुचित निर्णय तभी हो सकता है, जब हम मेहतर लोगों की माँगों पर क्रम-बद्ध विचार करें।

मेहतरों की मोटी-मोटी शिकायतें नीचे लिखे प्रकार हैं—

१. हमारा वेतन वर्तमान महँगी को देखते हुए बहुत थोड़ा है। उसमें वृद्धि होनी चाहिए।

२. म्युनिसिपैलिटी की ओर से हमारे बच्चों को पढ़ाने का विशेष प्रबंध हो जाना चाहिए।

३. जमादारी तथा अन्य प्रकार के स्वास्थ्य-विभाग के छोटे कर्मचारियों के स्थानों की पूर्ति हमारे ही आदमियों के द्वारा होनी चाहिए।

४. हमारे लिये स्वच्छ मकान तथा पर्याप्त पानी का प्रबंध होना चाहिए।

५. हमें साल में आकस्मिक, बीमारी तथा अन्य प्रकार की छुट्टी मिलनी चाहिए।

६. गर्भवती अथवा प्रसूता स्त्रियों को छुट्टी देने में विशेष रियायत होनी चाहिए।

७. सैनिटरी इंसपेक्टर, जमादार तथा अन्य कर्मचारियों द्वारा जो रात-दिन घूसे, गाली, मार, बर्ख़ास्तगी, बदली, जुर्माना इत्यादि के रूप में अत्याचार होते हैं, उनकी रोक-थाम के लिये उचित उपाय होने चाहिए।

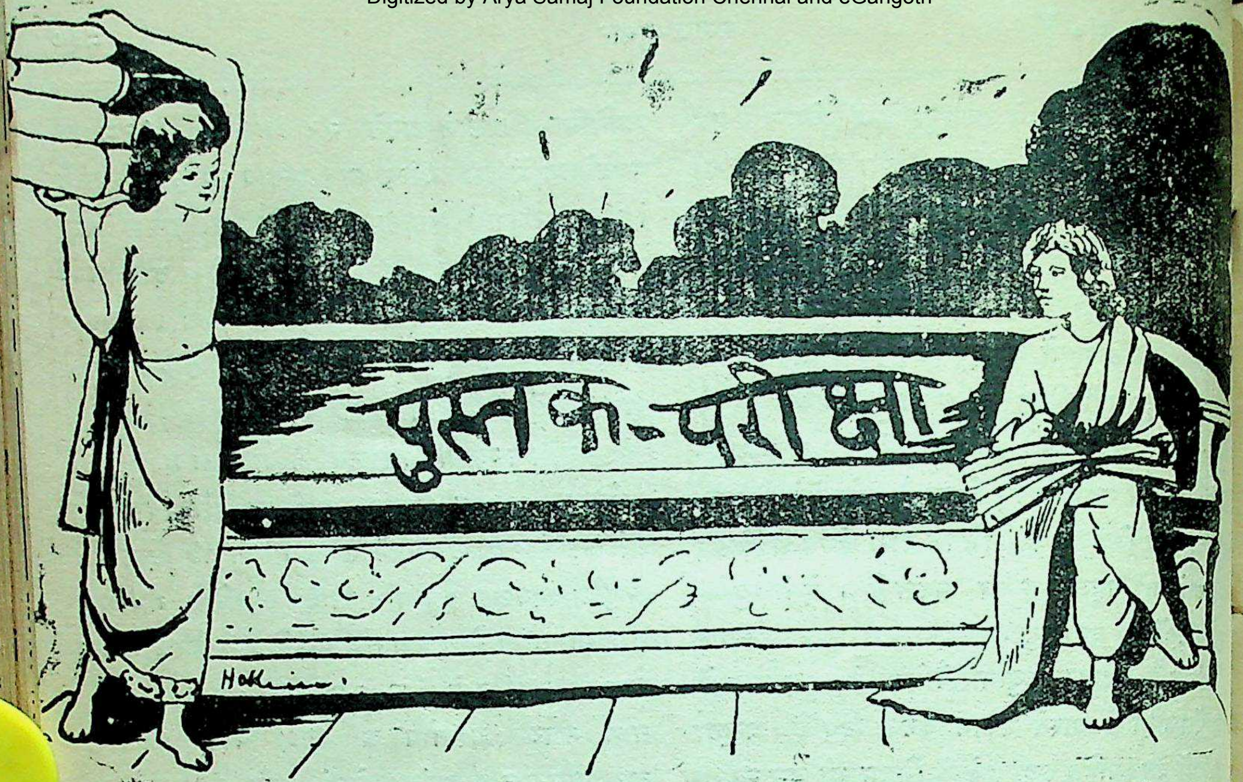
ये हैं मेहतरों के दुखड़े, जिन्हें वे सभ्य जनता के सामने रोते हैं। जो लोग म्युनिसिपैलिटी के स्वास्थ्य-विभाग से संबंध रखते हैं, उन्हें इस बात का ख़ूब पता है कि मेहतरों की ये शिकायतें अक्षरशः सत्य हैं। इन पंक्तियों के लेखक को मेहतरों की दशा का विशेष रूप से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता रहता है। अतएव वह भी साक्षी दे सकता है कि मेहतर लोग अपनी दशा को इन शब्दों में ठीक-ठीक दर्शाते

हैं। हिंदूसभा ने भी अपने जबलपुर के अधिवेशन में एक प्रस्ताव इस आशय का स्वीकृत किया था कि मेहतर लोगों के वास्ते मकान का प्रबंध म्युनिसिपैलिटियों को करना चाहिए। बल्कि यदि वे शिक्षित होते, तो इन माँगों को बड़ी कड़ी भाषा में नगर-सभाओं के सामने रखते। इन कठिनाइयों को दूर किए बिना मेहतरों का अछूतपन दूर नहीं किया जा सकता। हर्ष का विषय है कि उपर्युक्त कुछ माँगों को संयुक्तप्रांत की कुछ म्युनिसिपैलिटियों ने स्वीकार कर लिया है, और ऐसे नियमोपनियम बना दिए गए हैं, जिनके द्वारा हेल्थ-ऑफ़िसर यदि चाहें, तो बहुत कुछ कर सकते हैं। ऐसी म्युनिसिपैलिटियों में बनारस, लखनऊ तथा मुज़फ़्फ़रनगर सम्मिलित हैं। बनारस-म्युनिसिपैलिटी ने कुछ डोमड़ों तथा बँसफोड़ों के वास्ते मकान बनवा दिए हैं। प्रसूता स्त्रियों को वेतनसहित छुट्टी देने के नियम भी उस म्युनिसिपैलिटी ने बना दिया है। लखनऊ-म्युनिसिपैलिटी ने मेहतरों का वेतन इस वर्ष से १) मासिक बढ़ा दिया है, और यह वचन भी दिया है कि जमादार लोग मेहतरों में से ही बनाए जाएँगे। मुज़फ़्फ़रनगर के म्युनिसिपल बोर्ड ने अपने २२ अगस्त, १९२८ के अधिवेशन में इस आशय का प्रस्ताव स्वीकृत किया है कि जो महाशय एक आना मासिक या इससे कम मज़दूरी मेहतरों को देते हैं, वे आगे से दो आना कर दें। दूसरे महाशय, जो दो आने से अधिक और दो रुपए मासिक से कम मज़दूरी देते हैं, वे ५० शतक वृद्धि कर दें अर्थात् ड्योढ़ा कर दें।

अस्तु, इन म्युनिसिपैलिटियों ने पहले से ही अपना कर्तव्य-पालन कर मेहतर लोगों की शिकायतों को आंशिक तौर पर दूर करने का श्रीगणेश कर दिया है। परंतु आवश्यकता इस बात की है कि तनिक गंभीरता और सावधानी से इन बातों पर विचार करके प्रत्येक नगर-सभा शीघ्र-से-शीघ्र इस बढ़ते हुए वास्तविक तथा न्याय्य असंतोष को रोके, वरन् हड़ताल तथा मार-पीट के अनंतर ऐसा करने से व्यर्थ का कष्ट, असुविधा और पारस्परिक अनैक्य देश में फैलेगा, जिसका फल प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्य जान सकता है।

मंत्री, भारतवर्षीय अछूतोद्धार कमेटी, देहली





नाद-तत्त्व प्रकाश—लेखक, पं० चंद्रभूषण चतुर्वेदी; प्रकाशक, शिवशर्मा चतुर्वेदी, मंधना-कानपुर; मिलने का पता—कमर्शल प्रेस, कानपुर। पृष्ठ १७४; मूल्य १॥)

यह संगीत की पुस्तक है। आरंभ में, संक्षेप में, संगीत की प्रारंभिक बातें अर्थात् स्वर की जातियाँ, श्रुतियाँ, मूर्च्छना इत्यादि दी गई हैं। इसके पश्चात् राग-विषय है। कई राग-रागिनियों की स्वरावली ग़लत दी गई है। उदाहरणार्थ 'धनाश्री' में गंधार, मध्यम तथा धैवत, तीनो कोमल और शेष तीव्र लिखे हैं। धनाश्री दो प्रकार की है। एक में तो रिषभ तथा धैवत कोमल है, शेष स्वर तीव्र हैं। दूसरी काफ़ी ठाट की है, जिसमें गंधार, मध्यम और निषाद कोमल तथा शेष स्वर तीव्र हैं। नादतत्त्व के लेखक का ठाठ इन दोनो में से किसी से नहीं मिलता। लेखक ने जो शास्त्र-प्रमाण दिया है, पता नहीं, वह किस ग्रंथ का है; क्योंकि प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों में भी परस्पर मतभेद है। आजकल उपर्युक्त दो ठाठों की धनाश्री प्रचलित तथा मान्य है।

इसी प्रकार 'गौरी' में लेखक ने कोमल मध्यम लिखा है, यथार्थ में तीव्र मध्यम है। शंकरा में रिषभ, मध्यम तथा धैवत वर्ज्य किया है। धैवत तो किसी भी मत से वर्ज्य नहीं है, हाँ, रिषभ और मध्यम वर्ज्य माने गए हैं; यद्यपि आजकल केवल मध्यम को वर्ज्य करके गाया जाता है। कोई-कोई थोड़ा-सा तीव्र मध्यम लगा भी देते हैं। एक बात और है। लेखक के अनुसार यदि 'शंकरा' में तीन स्वर वर्ज्य मान लिए जायँ, तो 'शंकरा' केवल चार स्वर का राग रह जाता है। श्रीमल्लक्ष्य संगीत के रचयिता चतुर पंडित ने 'मालश्री' का लक्षण गीत लिखते समय स्पष्ट लिखा है—"कोऊ कहत तीन स्व[र] मालश्री में............पंचस्वर बिन कबहूँ रागिनी [न] संभवत।" अर्थात् पाँच स्वरों के विना रागिनी संभव नहीं। यदि संभव होती, तो जिस प्रकार पाँच स्वर के लिये ओडव, छः के लिये षाडव नाम प्राचीन ग्रंथों में हैं, उसी प्रकार चार स्वर के लिये भी कोई नाम अवश्य होता। लेखक ने शंकरा और शंकराभरण को एक मा[न] लिया है—वास्तव में दोनो एक दूसरे से बिलकुल पृथक् हैं।

ताल-प्रकरण में लेखक ने एक स्थान में रूपक ता[ल] ४ मात्रा का लिखा है, और एक स्थान में ७ मात्रा का। रूपक यथार्थ में ७ मात्रा का है। पता नहीं, लेखक कि[से] ठीक समझता है, चार मात्रावाले को या सातवाले को। इसी प्रकार की और भी अनेक भूलें हैं, जो स्थानाभाव के कारण नहीं दिखाई जा सकतीं। पुस्तक मोटे स्व[च्छ] काग़ज पर साफ़ सुथरी छपी है।

विश्वंभरनाथ कौशि[क]



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में नीचे-लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुईं—

(१) 'दीपावली' (कविताओं का संग्रह)—लेखक, बाबू चंद्रभानसिंह ; मूल्य ॥)

(२) 'लेखांजलि' (लेखों का संग्रह)—लेखक, हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् पं० महाबीरप्रसाद द्विवेदी; भूतपूर्व संपादक 'सरस्वती' ; मूल्य १॥)

(३) 'कर्मवीर चंड' (ऐतिहासिक नाटक)—लेखक, बाबू चंद्रनारायण सक्सेना ; मूल्य ॥।)

(४) 'भक्त मोरध्वज' (धार्मिक नाटक)—लेखक, श्रीयुत 'दास' और फ़ख़्र ; मूल्य ॥।)

(५) 'झाँसी-पतन' (ऐतिहासिक नाटक)—लेखक, मुं० आरज़ू साहब ; मूल्य ॥।)

(६) 'छाया' (कविताओं का संग्रह)—लेखक, श्रीजगदीश झा 'विमल' ; मूल्य ॥=)

(७) 'वीरों की वाणी' (वीर-रस-कविताओं का संग्रह)—रचयिता, पं० रामवचन द्विवेदी 'अरविंद'; मूल्य।-)

(८) 'राजयक्ष्मा और उपाय'—लेखक आयुर्वेद-मार्तंड, वैद्यराज शिवदयालसाह गुप्त ; मूल्य।=)

(९) 'वाल्मीकि का अपने काव्य में आत्मप्रकाश'—मूल-लेखक, वेणीमाधव बरुआ एम्० ए०, डी० लिट्०; अनुवादक, कुमार गंगानंद सिंह एम्० ए०; मूल्य।)॥

(१०) 'आगे बढ़ो' (निबंध-संग्रह)—लेखक, पं० बुद्धिनाथ झा 'कैरव'; मूल्य ॥)

(११) 'पश्चात्ताप' (उपन्यास)—लेखक, बुद्धिनाथ झा 'कैरव' ; मूल्य ॥=)

(१२) 'ओषधि-विज्ञान' या 'ऐलोपैथिक मेटरिया मेडिका'—अनुवादक, डॉ० महेंदुलाल गर्ग ; मूल्य ६)

(१३) 'धर्म-दिवाकर' अर्थात् 'बालधर्म-शिक्षा' (दूसरा भाग)—लेखक, पंडित रामवचन द्विवेदी 'अरविंद'; मूल्य।)

(१४) 'गो-सर्वस्व' (गाय के लक्षण तथा लाभादि का वर्णन)—लेखक, गुमनाम ; मूल्य।=)

(१५) 'हिंदी-संदेश' (काव्य)—लेखक, पंडित रामवचन द्विवेदी 'अरविंद' ; मूल्य =)

(१६) 'मेहरुन्निसा' (श्रीयुत हरिसाधन मुखोपाध्याय-लिखित एक ऐतिहासिक उपाख्यान का हिंदी-अनुवाद)—अनुवादक, श्रीमंगलप्रसाद विश्वकर्मा 'विशारद' मूल्य ॥)



१. कांग्रेस



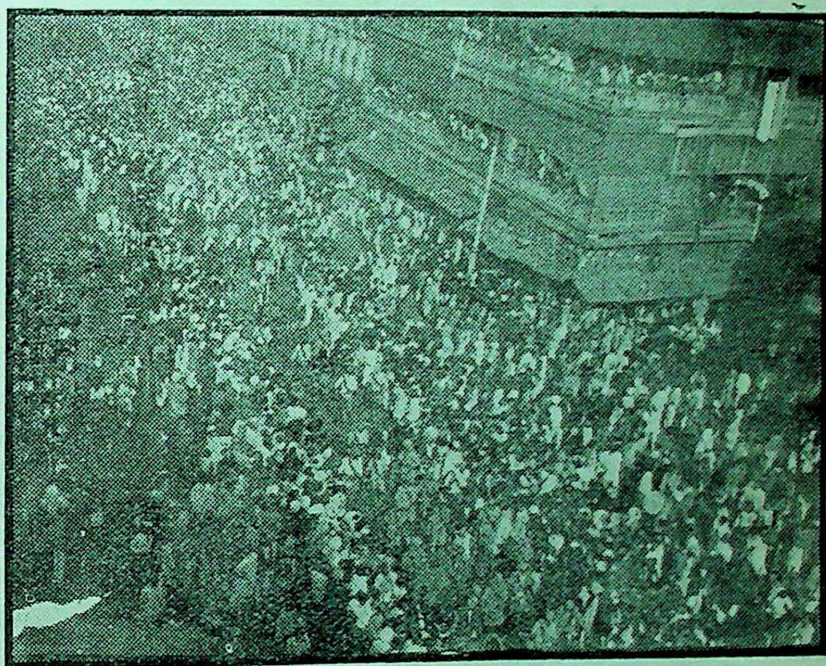
ईस्ट-इंडिया-कंपनी के निरंकुश शासन की याद दिलानेवाली, 'फ़ोर्ट विलियम' के अँगरेज़ी झंडे के नीचे बसने और उजड़नेवाली कलकत्ता नगरी ने उस दिन कांग्रेस के शाही जुलूस और विराट् प्रदर्शन देखे थे। तारीख़ उनतीस, तीस और इकतीस दिसंबर तथा पहली जनवरी सन् १९२९ ई०वाला कांग्रेस-अधिवेशन कांग्रेस के इतिहास का एक पूर्णतः नवीन अध्याय खोलता है। इस नवीन अध्याय के गर्भ में शासक और शासित, स्वतंत्रता और ग़ुलामी, अत्याचारों और बलिदानों, जेलों और फाँसियों की न-जाने कितनी रक्त-रंजित कहानियाँ छिपी हुई हैं। कलकत्ता-कांग्रेस का यह अधिवेशन बहुत अंशों में जातीय स्वतंत्रता के उपसंहार का वह प्राक्कथन है, जिसमें राष्ट्र अपनी सामूहिक शक्ति को एक व्यक्तित्व के रूप में प्रकट कर मातृभूमि की वेदी पर जीवन-निर्माल्य चढ़ाने की शांत, परंतु दृढ़ तैयारियाँ करता है।

'देशबंधु-नगर' का वायुमंडल उन दिनों ऐसा ही था। इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक अधिवेशन की भाँति 'देशबंधु-नगर' में भी लीडरों और प्रस्तावों की कमी न थी। उस अधिवेशन में भी हर बात में टाँग अड़ाकर येन केन प्रकारेण प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाली सूरतें कम न थीं; पर इन सबके होते हुए भी कलकत्ते की विरा[ट्] कांग्रेस, भारतीय तरुणों की मतवाली उत्कंठाओं का वा[स्तविक] सूक्ष्म-प्रदर्शन थी, जो सारे सांसारिक तर्कों से ऊपर उठ[कर] अपने रक्त से इतिहास का निर्माण करते हैं। इसीलि[ये] कलकत्ते की कांग्रेस भारतीय इतिहास के लिये ए[क] अभूतपूर्व वस्तु थी।

कांग्रेस के इस अधिवेशन की सबसे बड़ी और छो[टी] बात महात्मा गांधी का वह प्रस्ताव था, जिसमें महात्मा जी ने मदरास-कांग्रेस के स्वतंत्रता-संबंधी प्रस्ताव [की] मौखिक अवहेलना न करते हुए भी देश के सामने एक [वर्ष] के लिये औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग पेश की थी। सबसे बड़ी बात यह इसलिये थी कि स्वयं महात्मा जी के द्वारा प्रस्ताव उपस्थित होने पर भी देश [के] तरुण आत्माओं ने—उन आत्माओं ने, जिनकी दृष्टि [में] महात्मा गांधी का व्यक्तित्व देश में सबसे बड़ा है—[इस] के विरुद्ध बड़े साहस के साथ आवाज़ उठाई, [और] वह अवाज़ इतनी बड़ी, इतनी बलंद थी कि केव[ल] कई बाहरी परिस्थितियों के कारण ही, जिनकी च[र्चा] हम आगे चलकर करेंगे, महात्माजी इसमें सफलीभू[त] हो सके। परंतु सबसे छोटी बात यह इसलिये [...]

कि राजनीति और इतिहास के पहलुओं पर ध्यान रखते हुए यह प्रस्ताव एक तत्त्वहीन और निरर्थक भ्रम था, और इस भ्रम के फैलाने के लिये महात्मा गांधी-जैसे महान् पुरुष को अपनी सारी शक्ति लगा देनी पड़ी।

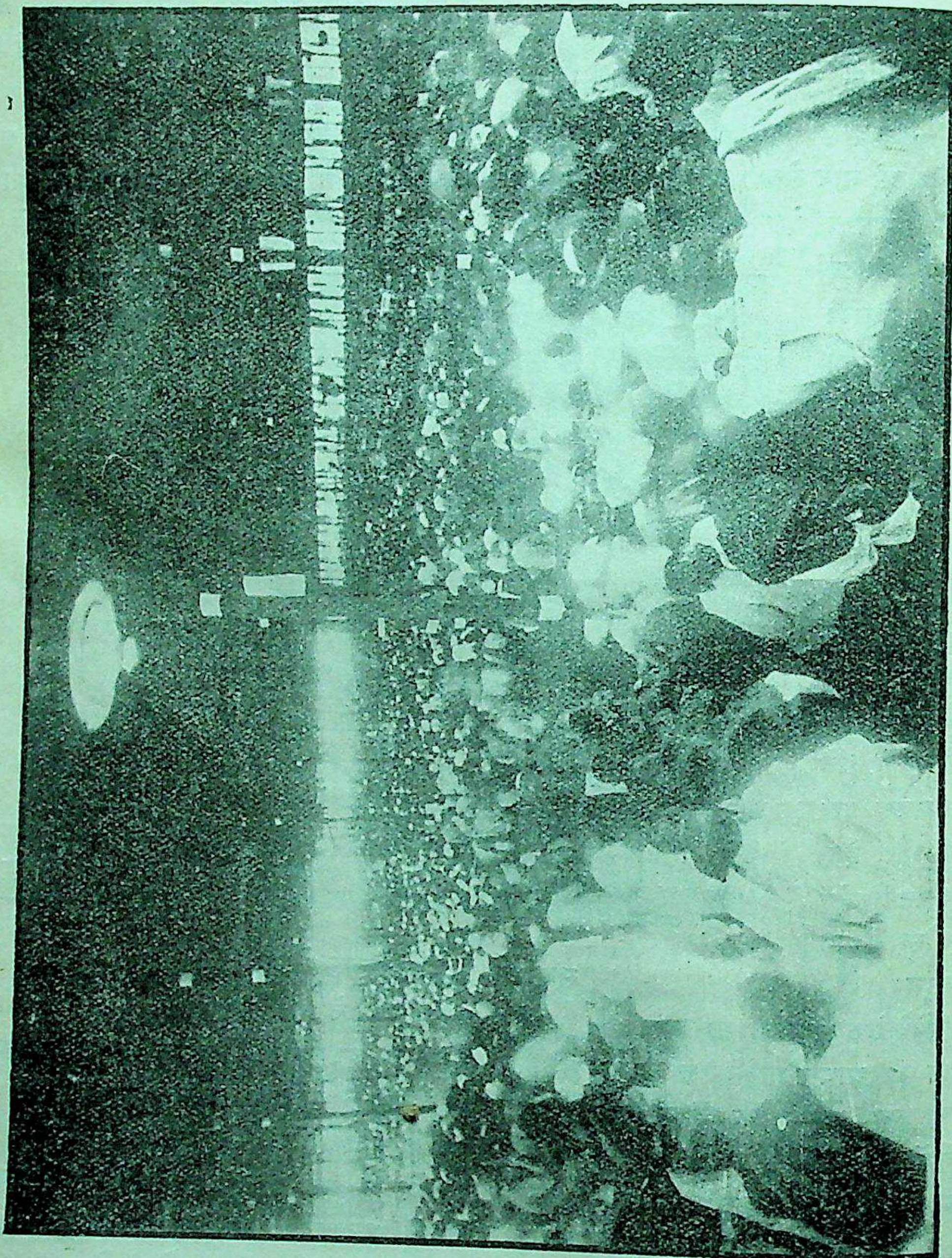
इस प्रकार कांग्रेस-सर्व-दल-सम्मेलन के बनाए हुए विधान को प्रस्ताव-रूप में उपस्थित करते हुए महात्मा गांधी ने कहा—"यदि ३१ दिसंबर, सन् १९२९ तक ब्रिटिश पार्लामेंट इसे मान लेगी, तो कांग्रेस इसे समूल स्वीकार करेगी, अन्यथा देश में पुनः अहिंसात्मक असहयोग का संगठन किया जायगा, जिसका एक भाग कर बंद करना भी होगा।" श्रीयुत सुभासचंद्र बसु ने महात्माजी के इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए इस आशय का संशोधन उपस्थित किया कि कांग्रेस अपने मदरास-अधिवेशन के इस निश्चय पर क़ायम है कि भारतवर्ष का लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता है और इँगलैंड से संबंध-विच्छेद हुए विना पूर्ण स्वाधीनता मिलना असंभव है। कांग्रेस औपनिवेशिक स्वराज्य को देश के भावी शासन-विधान का आधार मानने को तैयार नहीं है, तो भी उसकी यह राय है कि नेहरू-रिपोर्ट में की गई सिफ़ारिशें राजनीतिक प्रगति के साधन हैं, और उसकी ब्योरे की बातों को मंज़ूर करने की प्रतिज्ञा न करते हुए, वह उसे सामान्य रूप से स्वीकार करती है। अंत में कई संशोधनों के गिर जाने के बाद सुभास बाबू के संशोधन पर वोट लिया गया। आधी रात हो चुकी थी। फिर भी लोगों में बहुत जोश था। वोट लेने पर मालूम हुआ कि ९७३ वोट सुभास बाबू के पक्ष में और १,३५० उनके विपक्ष में मिले। इस स्थान पर उन बाह्य परिस्थितियों का उल्लेख करना अनुचित न होगा, जिनके कारण सुभास बाबू का संशोधन गिर गया, और उन कारणों में महात्माजी का व्यक्तित्व प्रधान था; क्योंकि यदि महात्माजी स्वयं प्रस्ताव उपस्थित कर एक वर्ष के लिये औपनिवेशिक स्वराज्य की प्रतीक्षा करने की राय न देते, तो यह निश्चय था कि उस दिन की सफलता स्वतंत्रतावादियों की ओर रहती। महात्माजी के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करने के लिये ही बहुत-से स्वतंत्रतावादियों ने यदि महात्माजी के पक्ष में वोट नहीं दिया, तो विपक्ष में भी हाथ नहीं उठाया, और यह महात्माजी का व्यक्तित्व ही था, जिसके कारण बिहार-प्रांत के अधिकांश प्रतिनिधियों ने अंध-विश्वास से उनके पक्ष में मत दिया। एक और भी कारण था। बिहारी प्रतिनिधियों को सुभास बाबू तथा उनके साथियों के अनुचित व्यवहारों की शिकायत थी, और यह शिकायत इतनी ज़बर्दस्त थी कि इसके विरोध में एक बार बिहार के प्रतिनिधियों ने कांग्रेस में सम्मिलित न होकर सत्याग्रह किया था। इस सत्याग्रह का



सभापति पं० मोतीलाल नेहरू का जुलूस

कुपरिणाम हुए विना न रहा। सुभास बाबू की ओर से बिहारी प्रतिनिधियों की आस्था हट गई थी, और इसलिये उनका सुभास बाबू के विपक्ष में हाथ उठाना बहुत स्वाभाविक था। यह एक कटु, परंतु खरी सचाई है, और इस सचाई को प्रकट करते हुए हमें दुःख भी होता है; परंतु कर्तव्य हमें ऐसा करने को ही विवश करता है। इस प्रकार अंत में महात्माजी की जीत हुई, और उस जीत में सिद्धांत और सचाई की हार हुई—उस जीत में नवयुवकों के बलिदान की भावनाएँ बहुत निर्दयता से कुचल दी गईं।

हमारा आशय महात्माजी के विरुद्ध अशिष्ट होना नहीं है, प्रत्युत हम महात्माजी की सचाई, उनकी निष्ठा, उनकी लगन के सामने मस्तक टेकते हैं। हम महात्माजी को इस समय देश का सबसे बड़ा और



कांग्रेस-पंडाल का भीतरी दृश्य

पवित्र नेता समझते हैं। हमारी दृष्टि में देश के नवयुवक समुदाय में मातृभूमि के लिये हँसते-हँसते मरने की भावना भरने का बहुत कुछ श्रेय महात्माजी को भी है, और इस दृष्टि से यदि महात्माजी के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करने के लिये देश के नवयुवकों को अपना सिर भी दे देना पड़े, तो वे उससे कुछ भी अधिक न करेंगे, जो उनका केवल कर्तव्य-मात्र है। महात्माजी एक प्रकार से तरुण-भारत के प्रातःस्मरणीय व्यक्ति हैं। यह सब कुछ सत्य है; परंतु महात्माजी का औपनिवेशिक स्वराज्य-संबंधी प्रस्ताव सिद्धांत का दयनीय पतन और राजनीतिक पहलू का साकार भ्रम है! इस भ्रम का विरोध करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

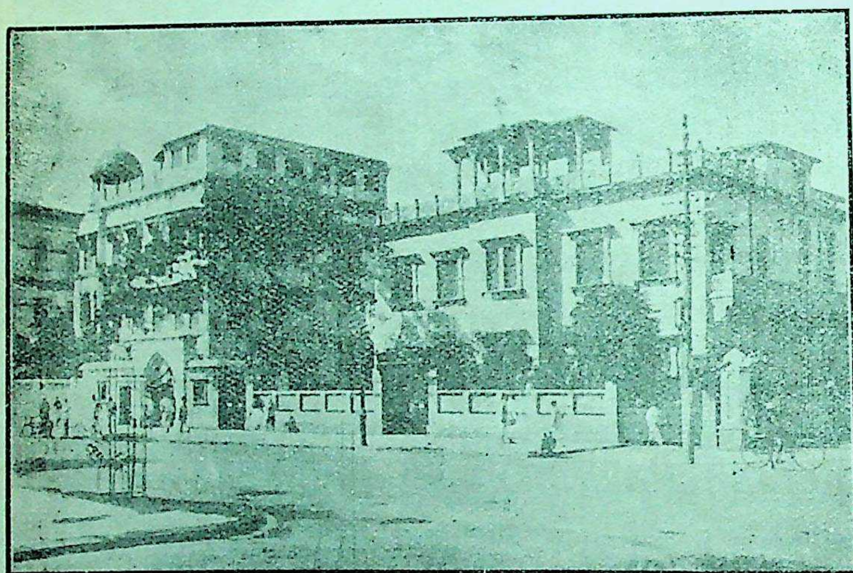
पिछले वर्ष मदरास-कांग्रेस में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास हुआ था। कलकत्ता-कांग्रेस के अवसर पर महात्मा गांधी ने स्वयं अपने प्रस्ताव में मदरास-कांग्रेस में पास हुए पूर्ण स्वतंत्रता के सिद्धांतों पर अचल रहने की बात कही थी। प्रस्ताव के अंत में महात्माजी ने यह भी कहा था कि स्वतंत्रतावादियों को कांग्रेस के नाम पर अपने उद्देश्य के प्रचार का भरपूर अधिकार है। फिर भी उन्होंने एक वर्ष के लिये भारत की अँगरेज़ी सरकार से औपनिवेशिक स्वराज्य पानेवाली जिस शर्त को कांग्रेस के सम्मुख प्रस्ताव के रूप में रक्खा, वह हमारी समझ में नहीं आया। कांग्रेस के प्रस्तावों पर हस्ताक्षर करनेवाले स्वतंत्रतावादी सज्जन एक ओर एक वर्ष के लिये कांग्रेस के नाम पर औपनिवेशिक स्वराज्य और ब्रिटिश-संबंध बनाए रहने के लिये अभ्यर्थना करेंगे, और दूसरी ओर उसी समय उसी कांग्रेस के नाम पर, उसी ईमान और परमात्मा पर विश्वास रखते हुए, पूर्ण स्वतंत्रता और ब्रिटिश-संबंध-विच्छेद का प्रचार करेंगे—यह बात हमारी समझ में नहीं आई, और इसीलिये हम महात्माजी के लिये अपने हृदय में भारी प्रतिष्ठा रखते हुए भी उनके इस प्रस्ताव को आँखों का एक उपहासास्पद भ्रम कहते हैं! यह एक ऐसा भ्रम है, जो देश को सचाई के रास्ते से बहुत दूर फेक देगा।



सभापति पंडित मोतीलाल नेहरू राष्ट्रीय पताका का अभिवादन कर रहे हैं

कांग्रेस द्वारा पास हुए प्रस्ताव पर विश्वास रखते हुए इस बात की आशा करना कि ३१ दिसंबर, सन् १९२९ तक ब्रिटेन भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य दे देगा, और भारतवर्ष की राजनीतिक स्थिति वही हो जायगी, जो आस्ट्रेलिया तथा कनाडा आदि देशों की है, अपने को जान-बूझकर भ्रम में डालना है। भारतवर्ष में अँगरेज़ी राज्य का इतिहास इस धारणा को सर्वथा निर्मूल करता है। भारतीय औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ यह है कि भारत अपने आंतरिक शासन-प्रबंध का स्वयं स्वामी हो जायगा। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि भारत की सेना एवं शासन-प्रबंध भारतवासियों के ही अधीन रहेगा, भारतवासी अपना सारा प्रबंध आप-ही-आप करेंगे। भारतवासी स्वयं अपने वाणिज्य-व्यापार के विधायक होंगे, ब्रिटेन नहीं। भारत-

वासी अपने द्रव्यों को अपनी सुविधा के अनुसार विदेशी द्रव्यों से बदल सकेंगे । तात्पर्य यह कि औपनिवेशिक स्वराज्य-प्राप्त भारतवर्ष ब्रिटेन के आर्थिक और राजनीतिक लाभों को सदा के लिये निर्मूल एवं नष्ट कर देगा । इस दशा में अर्थ एवं राजकीय वैभव से हीन ब्रिटेन क्या किसी भी दशा में ब्रिटिश साम्राज्य की दृढ़ता क़ायम कर सकेगा ? और, जिस दिन ब्रिटिश-साम्राज्य की दीवारें अपने बोझ से आप ही दबने लगेंगी, उस दिन ब्रिटेन—ब्रिटेन के नाम पर छोटे इँगलैंड और स्कॉटलैंड की क्या दशा होगी ? क्या समुद्र पर राज्य करनेवाला ब्रिटेन उस समय भी समुद्र की लहरों पर राज्य कर



कांग्रेस-प्रदर्शिनी

सकेगा ? और यदि नहीं, तो क्या ब्रिटेन इतना मूर्ख है कि वह भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दे ? इस दशा में महात्माजी का प्रस्ताव पास कर कांग्रेस ने एक ऐसी भूल की है, जिसका प्रतिकार उसे एक दिन करना ही पड़ेगा । और, विशेष कर जब हम यह सोचते हैं कि यह भूल उस अवस्था में हुई है, जब कि प्रस्ताव के सूत्रधार, नेहरू-कमेटी-रिपोर्ट के रचयिता, कलकत्ता-कांग्रेस के मनोनीत सभापति श्रीयुत पं० मोतीलाल ने स्वयं ही इस आशय का विचार प्रकट किया था कि हम ब्रिटेन को समझते हैं, और यह आशा कर कि निश्चित अवधि तक ब्रिटेन भारत को औपनिवेशिक पद दे देगा, हम अपने को भ्रम में रखना नहीं चाहते—तो हमारे क्षोभ की सीमा नहीं रहती । कहा जाता है, यह एक वर्ष की अवधि इसलिये दी गई है कि इसके बीच देश अपने को पूर्ण स्वाधीनता के लिये तैयार करे, और स्वयं महात्माजी ने भी अपने भाषण में यह बात बतलाई थी कि यदि देश हमारे बताए मार्ग पर चलेगा, तो हम वचन देते हैं कि एक वर्ष के भीतर उसे स्वराज्य प्राप्त हो जायगा । हम आगे चलकर महात्माजी के इस कार्य-क्रम और देश की तैयारी की चर्चा करेंगे, इस स्थान पर तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि देश स्वराज्य के लिये तैयार नहीं है; देश ने तो एक बार, और वह सदा के लिये, निश्चय कर लिया है कि हम ब्रिटेन का संबंध नहीं चाहते; क्योंकि हमारा दृढ़ विश्वास है कि ब्रिटिश संबंध त्यागे विना भारत अपना राजनीतिक, आर्थिक, आत्मिक एवं नैतिक उत्कर्ष नहीं प्राप्त कर सकता । क्या पिछले वर्ष की मदरास-कांग्रेस ने इस प्रकार का अपना निर्णय साफ़-साफ़ शब्दों में प्रकट नहीं कर दिया था ?

❀ ❀ ❀

कांग्रेस ने महात्माजी का प्रस्ताव पास कर स्वयं ही एक वर्ष के लिये अपने उस झंडे को नीचे गिराया है, जिसे उसने मदरास-कांग्रेस के अवसर पर बड़े गौरव के साथ ऊपर खड़ा किया था । कांग्रेस का यह कार्य निश्चय ही भारत के प्रति अंतरराष्ट्रीय मनोवृत्ति को धक्का दिए विना नहीं रह सकता । निश्चय ही इससे उन राष्ट्रों के हृदय में भारत के प्रति नैतिक सहानुभूति कम हो जायगी, जो आज तक उसके स्वातंत्र्य-संग्राम को आशा एवं सहानुभूति की दृष्टि से देखते रहे हैं । परंतु बात

इतनी ही नहीं है। यह प्रस्ताव, चाहे इसकी अवधि अस्थायी और एक वर्ष के लिये ही क्यों न हो, देश की मनोवृत्ति पर भी विपरीत प्रभाव डाले विना नहीं रह सकता। आज देश को अपनी स्वतंत्रता एवं उत्कर्ष के लिये एक नई मनोवृत्ति की आवश्यकता है। देश के उत्थान एवं हित के निमित्त यह आवश्यक है कि उसमें स्वतंत्रता के नए भाव भरे जायँ, और उन भावों को भरने के लिये इस समय कांग्रेस कदाचित् सबसे अधिक उपयुक्त साधन है। कहना न होगा कि राष्ट्रीय भाव आश्चर्यजनक रीति और गति से राष्ट्र की काया-पलट करते हैं, फ्रांस, रूस, चीन आदि की क्रांतियों को हम भूल नहीं सकते, और साथ ही हम यह भी विस्मरण नहीं कर सकते कि उपर्युक्त देशों की क्रांतियों में अस्त्र-शस्त्रों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण भाग उन देशों की राष्ट्रीय मनोवृत्ति का था। तोप, बंदूक़, अस्त्र-शस्त्र, युद्ध और स्वतंत्रता, ये सभी बातें गौण और पीछे की हैं। पहली और सबसे मुख्य बात देश की मनोवृत्ति का बदलना है। विना राष्ट्रीय मनोवृत्ति के बदले कोई ग़ुलाम राष्ट्र स्वतंत्र नहीं हो सकता, और यदि उसे बलपूर्वक स्वतंत्र कर भी दिया जाय, तो वह उस स्वतंत्रता को क़ायम भी नहीं रख सकता। संसार का इतिहास और स्वयं ब्रिटेन की स्वतंत्रता एवं वैभव ही इस बात के जीते-जागते प्रमाण हैं !!!

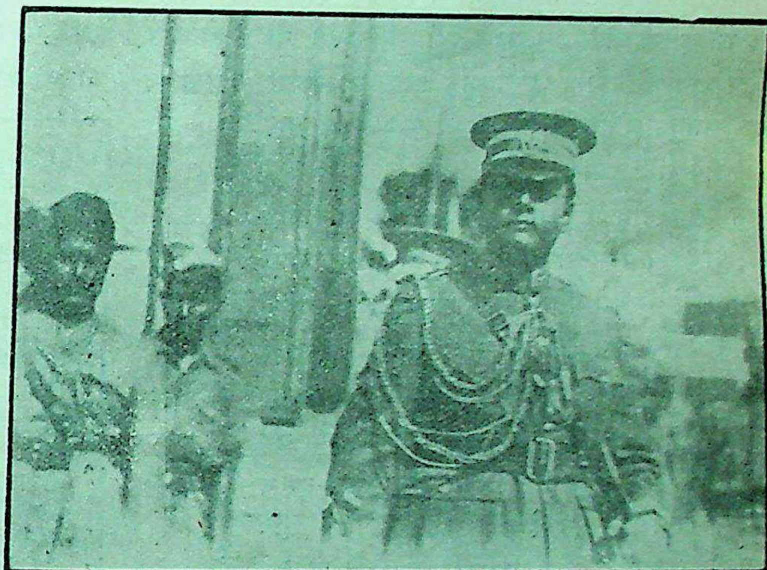
❁ ❁ ❁

स्वतंत्रतावादियों के विरुद्ध और महात्माजी के प्रस्ताव के पक्ष में कहा जाता है कि देश के लिये ३१ दिसंबर, १९२९ तक की अवधि तैयारी की है। इस तैयारी के लिये कांग्रेस ने देश के सम्मुख एक कार्य-क्रम भी रक्खा है। यह कार्य-क्रम भी प्रस्ताव के रूप में विगत पहली जनवरी को स्वयं महात्माजी ने ही रक्खा था। उनका प्रस्ताव यों है—

(१) व्यवस्थापिका सभाओं के भीतर और बाहर शराब और नशे की चीज़ों की रोक के लिये पूरा प्रयत्न किया जाय। दूकानों पर पिकेटिंग तक की जाय।

(२) व्यवस्थापिका सभाओं के भीतर और बाहर विदेशी कपड़े के बायकाट पर ज़ोर लगाया जाय, और खद्दर का प्रचार किया जाय।

(३) अपने कष्टों को दूर करने के लिये बारडोली की भाँति सत्याग्रह किया जाय।



सुभास बाबू सैनिक वेष में

(कलकत्ता-कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर आप स्वयंसेवकों के प्रधान थे)

(४) व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के निर्धारित कामों में अपना समय दें।

(५) कांग्रेस के सदस्य बढ़ाए जायँ, तथा कांग्रेस का संगठन ठीक किया जाय।

(६) स्त्रियों की असमर्थता दूर की जाय, तथा उन्हें राष्ट्रीय कामों में योग देने के लिये निमंत्रण दिया जाय।

(७) देश की सामाजिक कुप्रथाओं को दूर किया जाय।

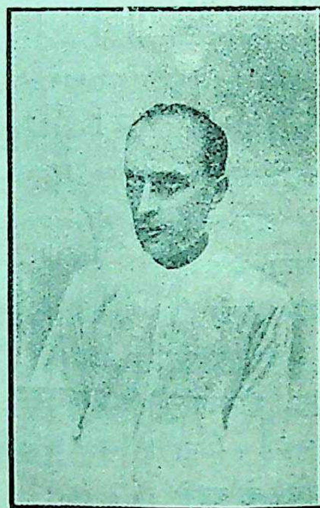
(८) सब कांग्रेसी हिंदू अस्पृश्यता का नाश करें, और अछूत कहे जानेवाले लोगों की स्थिति सुधारने में मदद दें।

(९) राष्ट्र-निर्माण के लिये अन्य काम किए जायँ।

(१०) कांग्रेस का काम सुचारु रूप से चलाने के लिये प्रत्येक कांग्रेसमैन अपनी आय का एक हिस्सा प्रतिमास कांग्रेस को दे।

उपर्युक्त प्रस्ताव, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, स्वयं महात्माजी ने उपस्थित किया था। प्रस्ताव उपस्थित करते हुए महात्माजी ने कहा था—यदि आपमें से प्रत्येक आदमी इस प्रस्ताव को कार्य-रूप में परिणत करने के लिये तैयार नहीं है, यदि आप देश के प्रत्येक झोपड़े तक कांग्रेस का संदेश नहीं सुना सकते, तो मैं आप लोगों से प्रार्थना करूँगा कि आप इसे स्वीकार न करें। श्रीयुत श्रीनिवास आयंगर के समर्थन के बाद यह प्रस्ताव पास हुआ।

हम इस प्रस्ताव में विरोध करने की कोई बात नहीं देखते; परंतु साथ-ही-साथ इस देश का प्रधान कार्य-क्रम भी नहीं समझते। देश के सामने आज एक नवीन और व्यावहारिक कार्य-क्रम की आवश्यकता है। पिछले ६-७ साल की दुहराई-तिहराई बातों को बार-बार दुहराते रहने से काम नहीं चलेगा। हमारा तात्पर्य यह नहीं कि देश में चर्खे-कर्घे न चलें, अस्पृश्यता दूर न की जाय, स्त्रियों को युद्ध-क्षेत्र में आने के लिये निमंत्रण न दिए जायँ, कांग्रेस-सदस्य न बढ़ाए जायँ, देश की सामाजिक स्थिति न सुधारी जाय, कांग्रेसमैन कांग्रेस को सुचारु रूप से चलाने के लिये चंदे न दें आदि-आदि। हम तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि ये सभी बातें ठीक हैं; परंतु पुरानी, गौण और सैद्धांतिक हैं। ये बातें आज देश के उन नवयुवकों को अपील नहीं कर सकतीं, जो मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिये हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करना चाहते हैं। देश आज इन कमबख़्त व्यवस्थापिका सभाओं से उकता गया है, कौंसिलवादी कांग्रेसमैन देश की नब्ज़ भले ही न पहचानें, पं० मोतीलाल नेहरू-जैसे स्वराजी नेता भले ही आज देश की वर्तमान मनोवृत्ति की उपेक्षा करें, परंतु पं० जवाहरलाल, श्रीयुत सुभासचंद्र बसु और इनकी भाँति देश के सहस्रों वीर, साहसी और त्यागी नवयुवक सैनिक आज अपने रक्तों की होली खेलने को तैयार हैं। उनके सम्मुख ये थोथी दलीलें, ये पुरानी, सड़ी हुई, पेचीदा बातें केवल उपहासास्पद हैं। इनमें से अधिकांश न तो कौंसिलों में विश्वास करते हैं और न भारत की विदेशी सरकार में। इनकी दृष्टि में सैद्धांतिक तर्क व्यावहारिक आदर्श से बिलकुल भिन्न वस्तु है। वे इन तर्कों के वायुमंडल से ऊपर उठकर अपने व्यावहारिक आदर्श की उपासना करना चाहते हैं। इस उपासना का मूल्य क्या होगा, वे भली भाँति जानते हैं, और जानते हुए वह मूल्य चुकाने के लिये तैयार भी हैं। वे जानते हैं कि स्वतंत्रता का दुर्ग देशभक्तों के रक्त से तैयार होता है। वे यह भी जानते हैं कि मातृभूमि की स्वतंत्रता उन्हें जीवन की सरल, मृदु हास्य-रेखा में नहीं,



जवाहरलाल नेहरू

(आप एक बहुत प्रसिद्ध स्वतंत्रतावादी हैं)

बरन् मृत्यु की उग्र, परंतु शीतल छाया में मिलेगी, इसीलिये वे मरने को तैयार हैं। अहिंसात्मक असहयोग उनकी नीति और अपना रक्त बहाना उनका सिद्धांत है।

इसीलिये हम कांग्रेस के उपर्युक्त प्रस्ताव को गौण और सैद्धांतिक तर्क से कुछ भी अधिक नहीं समझते, और इसीलिये हम देश के सामने स्वतंत्रता का प्रोग्राम व्यावहारिक आदर्श समझते हैं, और इस व्यावहारिक आदर्श का श्रीगणेश केवल युवक-संगठन के द्वारा ही हो सकता है। चर्खा, खद्दर, अस्पृश्यता-निवा-

रण, कांग्रेस-सदस्य-वृद्धि, कांग्रेस-अर्थ-संचय, स्वयं-सेवक-निर्माण, ये सारी बातें युवक-संगठन का आंशिक कार्य-क्रम हैं। युवकों के संगठन से ये सारी बातें आप-ही-आप हो जायँगी; क्योंकि ये बातें ऊपर की हैं, इनकी आधार-भित्ति संगठित युवकों का कार्य-क्रम ही है।

इस स्थिति में देश के सम्मुख आज सबसे बड़ा काम युवक-संगठन ही है। यदि १६२६ की ३१वीं दिसंबर तक की अवधि केवल देश-भर के युवकों के वास्तविक संगठन में लग जाय, तो देश का सबसे अधिक उपयोगी और महत्त्वपूर्ण कार्य-क्रम समाप्त हो जाता है। संगठित युवकों की कार्य-प्रणाली में न तो वह उच्छृंखलता ही आवेगी, जो असहयोग के सौभाग्यशाली दिनों में देखी गई थी, और न वह अपूर्णता ही। हम तो असहयोग-आंदोलन की असफलता का प्रधान कारण यही मानते हैं कि महात्माजी ने असहयोग-आंदोलन चलाने के पहले युवकों का संगठन नहीं किया था। उस समय देश का जो कुछ संगठन हुआ, जितनी भी कांग्रेस-कमिटियाँ बनीं, उन सभी बातों की तह में देश की जाग्रत् मनोवृत्ति काम कर रही थी। परिस्थितियों के प्रतिकूल होते ही देश की वह मनोवृत्ति नष्ट हो गई, और इस प्रकार असहयोग-आंदोलन असफल हो गया। ठीक यही भूल आज भी हो रही है। हम देश के सम्मुख कार्य-क्रम तैयार करते हैं; परंतु कार्य-कर्ताओं के संगठन का हमें ध्यान ही नहीं है। महात्मा-जी के शब्दों में, देश के प्रत्येक झोपड़े में, कांग्रेस का संदेश सुनाया जाना चाहिए। हम भी कहते हैं, "ज़रूर



पं० मदनमोहन मालवीय

(कांग्रेस-सप्ताह में होनेवाले अखिल भारतीय गो सम्मेलन के आप सभापति थे)

चाहिए; बेशक चाहिए।" पर क्या वह संदेश ग़ुलाम देश के असंगठित नवयुवक सुना सकेंगे ?

× × ×

२· युवकों का संगठन

आधुनिक संसार का सबसे बड़ा दुर्भाग्य और सौभाग्य आजकल की वैज्ञानिक उन्नति है। दुर्भाग्य इसलिये कि आज के संसार का वैज्ञानिक उत्कर्ष बुरी एवं अवांछित भावनाओं की ओर प्रगतिशील किया जा रहा है, और सौभाग्य इसलिये कि इस वैज्ञानिक उत्कर्ष में नए भावों एवं विचारों के फैलने में विलंब नहीं होता। यदि रूस में क्रांति होती है, तो अमेरिका, इँगलैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया आदि सभी देश उसी समय एक बार ही उसे जान जाते हैं। यदि अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र के प्रेसीडेंट कूलिज न्यूयार्क में भाषण देते हैं, तो वह भाषण दो घंटे के भीतर सारे योरप के पत्रों में प्रकाशित हो जाता है। इस प्रकार आज के संसार का सौभाग्य इस बात में है कि आज हम बड़ी आसानी के साथ एक दिन के भीतर सारे संसार से विचार-परिवर्तन कर सकते हैं। इस विचार-परिवर्तन का प्रभाव बहुत शक्तिशाली होता है। दृष्टांत-स्वरूप इस समय प्रायः सारे संसार के उन्नत एवं अर्ध-उन्नत देशों में युवक आंदोलन की जड़ बहुत गहरी एवं स्थायी हो गई है, और संसार के अन्य देशों का प्रभाव भारत पर पड़े विना नहीं रहा है। परिणाम-स्वरूप आज भारत के युवकों की मनोवृत्ति में भी एक प्रकार की क्रांति होने जा रही है, और कौन कह सकता है कि भारतीय युवकों की भावनाओं की यह क्रांति निकट-भविष्य में अपने सत्य, शिव एवं सुंदर रूप में प्रस्फुटित न होगी ?

हाल में ही कांग्रेस-सप्ताह में अखिल भारतीय युवक-सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन बड़े समारोह के साथ संपन्न हुआ। बड़ी भीड़ थी। पंडाल खचाखच भर गया था। लोगों में अपार उत्साह था। श्रीयुत सुभास बाबू स्वागत-समिति के सभापति थे। उनका भाषण सुंदर था। अपने भाषण में उन्होंने गांधी-वाद एवं अरविंद-वाद की कड़ी आलोचना की। देश की इन दो महान् आत्माओं के सिद्धांतों में अविश्वास प्रकट करते हुए उन्होंने उपस्थित जनता को कर्मवाद के सिद्धांतों की ओर प्रगतिशील किया। वह इसमें कहाँ तक ठीक थे, वही समझें; पर हमारी दृष्टि में गांधी-वाद कर्म-वाद से भिन्न कोई भी वस्तु नहीं, और इसे भिन्न समझना अपनी मस्तिष्क-शक्ति पर अविश्वास करना ही है।

सुभास बाबू के भाषण के बाद निर्वाचित सभापति प्रसिद्ध देश-भक्त श्रीयुत नारीमैन का अभिभाषण हुआ। सभापतिजी का अभिभाषण रोचक, सारगर्भित एवं महत्त्वपूर्ण था। आपने चुने और तौले हुए शब्दों में भारतीय युवक-आंदोलन पर अपने विचार प्रकट किए। भारतीय युवक-आंदोलन पर अपने विचार प्रकट करते हुए भारत की विदेशी सरकार की मनोवृत्ति एवं विदेशी शिक्षा की आपने बहुत कटु, परंतु सत्य एवं सुंदर आलोचना की। आपने भारतीय विश्वविद्यालयों एवं पाठशालाओं में पढ़ाए जानेवाले उन गंदे इतिहासों की भी चर्चा की, जिनका उद्देश्य भारतीय मनोवृत्ति को कुंठित, देश-द्रोहपूर्ण, विषैली और घातक बनाना है। भारतीय युवक-आंदोलन की चर्चा करते हुए आपने प्रसंगवश अन्य देशों के नव-युवकों की भी बहुत संक्षिप्त चर्चा की। सारांश यह कि आपका भाषण सारगर्भित एवं विद्वत्तापूर्ण होने के साथ ही हमारे सम्मुख एक व्यावहारिक आदर्श उपस्थित करता है। आपने अपने भाषण के अंत में युवकों से सारे देश को बारडोली का रूप देने की अपील भी की। यह बात देश की राजनीतिक प्रगति में एक महत्त्व-पूर्ण स्थान रखती है, और हमारे विश्वास से सभापतिजी के इन शब्दों में भारतीय युवकों का एक विराट् संगठन निहित है।

आज देश-भर में हज़ारों स्वराज्य-आश्रमों की आवश्यकता है। इन आश्रमों में सम्मिलित हुए युवक-समुदाय को राष्ट्रीय सेवा के भिन्न-भिन्न विभागों की शिक्षा दी जाय। इस शिक्षा का प्रबंध प्रत्येक प्रांत के युवक स्वराज्य-आश्रम के अधीन होना चाहिए। हमने कांग्रेस के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए इस बात की चर्चा की थी कि युवकों का संगठन आज के भारत का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक कार्य है। संगठन से हमारा आशय युवकों का नाम लिखकर एक

रजिस्टर में दर्ज कर लेना नहीं है। हमारा अभिप्राय यह था कि देश के नेता और देश के नेताओं के सिर-मौर स्वयं महात्माजी इस पवित्र कार्य को अपने हाथों में लें। हमारा विश्वास है कि महात्माजी से बढ़कर आज शायद भारतवर्ष में कोई भी दूसरा व्यक्ति भारतीय युवकों का सरदार, उनका नेता नहीं बन सकता। इसीलिये हम इस स्थान पर विशेष प्रकार से महात्माजी का उल्लेख करते हैं।

आज देश में कौंसिल के कांग्रेसी उम्मीदवारों की आवश्यकता नहीं है। साइमन-बॉयकाट में निरर्थक अपनी शक्ति लगाने की आवश्यकता नहीं है। ये तो ऊपरी कार्य हैं। देश का सबसे ठोस काम तो यह है कि इसके भीतर जहाँ तक संभव हो, सुविधा के साथ स्वराज्य-आश्रम खोले जायँ। उन स्वराज्य-आश्रमों में सबसे प्रमुख बात यह होनी चाहिए कि उनकी नींव दृढ़ हो। कहीं ऐसी भूल न हो जाय कि इन आश्रमों की संख्या बढ़ाने के लिये सारे देश में इतने अधिक आश्रम खोल दिए जायँ कि आर्थिक एवं प्रबंध की दृष्टि से उनका चलाना कठिन हो जाय। उदाहरण के लिये असहयोग-आंदोलन के समय स्थापित किए गए राष्ट्रीय विद्यालयों एवं विद्यापीठों की चर्चा पर्याप्त होगी। अर्थ एवं प्रबंध के अभाव में इन बहुत-से टूटे, उजड़े, नष्ट, अर्ध-जीवित विद्यापीठों की अपेक्षा बहुत अच्छा एवं उपयोगी यह था कि असहयोग-काल में सारे देश के भीतर एक ही विद्यापीठ की स्थापना की गई होती। आर्थिक एवं प्रबंध-विषयक मामलों में वह दृढ़ तथा स्थायी होती। इसी प्रकार आज देश में युवकों के संगठन तथा शिक्षा के लिये स्वराज्य-आश्रमों की आवश्यकता है। परंतु हमें यह नहीं भूलना होगा कि इन स्वराज्य-आश्रमों की संख्या उससे अधिक नहीं होनी चाहिए, जिसका प्रबंध देश अथवा देश के नेताओं के लिये कठिन हो। यदि ये आश्रम देश के भीतर सैकड़ों की संख्या में नहीं तैयार किए जा सकते, तो निश्चय प्रत्येक प्रांत में एक तो अवश्य ही बड़ी सुविधा के साथ खुल सकता है। इस प्रकार यदि देश ३१ दिसंबर, सन् १९२९ तक दस सदस्य युवक कार्यकर्ताओं को तैयार कर दे और ये युवक आवश्यक शिक्षा प्राप्त कर लेने पर यदि एक वर्ष भी देश में प्रचार एवं संगठन का काम करें, तो हमारा विश्वास है कि ३१ दिसंबर, १९३० तक देश में कम-से-कम एक लाख निपुण एवं शिक्षित नवयुवक कार्यकर्ता तैयार हो सकते हैं, और एक लाख निःस्पृह, मरनेवाले युवक प्रचार और संगठन के लिये गाँवों में पैठ जायँ, तो काया-पलट हो सकती है। हमारे विश्वास से कार्यकर्ताओं की यह सेना प्रायः सभी भारतीय गाँवों को स्थायी रूप से छा लेगी और उनके प्रचार का प्रभाव १९२१ के असहयोग-काल से बहुत आगे, बहुत बढ़ा हुआ और स्थायी होगा। विस्तार-भय से हम इस स्थान पर इस युवक-संगठन का पूरा ब्योरा नहीं दे सकते; पर हाँ, सुविधानुसार सुधा के किसी आगामी अंक में युवक-संगठन की एक संक्षिप्त योजना प्रकाशित करने का विचार करते हैं।

× × ×

३. अफ़ग़ानिस्तान

अफ़ग़ानिस्तान की राजनीति इस समय मानवीय दृष्टिकोण और कल्पनाओं से ऊँची उठकर भगवान् के नियंत्रण में करवटें ले रही है। कौन कह सकता है, इसका परिणाम क्या होगा? अफ़ग़ानिस्तान स्वयं एक छोटा, अर्ध-शिक्षित और महत्त्वहीन देश है; परंतु अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण वह अपने उत्थान और पतन से संसार के इतिहास का आवरण बिलकुल बदल सकता है।

इधर अफ़ग़ानिस्तान की भूमि क्रांति और विद्रोह, ख़ून और बग़ावत से काँप उठी है। हमें भारत में अफ़ग़ानिस्तान की ख़बरें अर्ध-सत्य और अधूरी मिलती हैं। इसके अतिरिक्त अफ़ग़ानी राजनीति प्रतिक्षण इतनी शीघ्रता से बदल रही है कि निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, कल क्या होगा? फिर भी जिस समय ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं, उस समय की स्थिति पर विचार करते हुए यह सहज ही कहा जा सकता है कि अफ़ग़ानी-राजनीति के संकेत पर आज विश्व की शांति नाच रही है।

शाह अमानुल्ला—जाग्रत अफ़ग़ानिस्तान के १० वर्षों के यशस्वी, कुशल, साहसी, वीर शासक—एशिया के स्वाभिमानी राष्ट्रों की आशा, आज केवल अमानुल्लाख़ाँ हैं।

लिखते-लिखते यह ख़बर मिली है कि क़ंधार में उन्होंने पुनः अपने को अफ़ग़ानिस्तान का शाह घोषित किया है। इतना ही नहीं, क़ंधार और ग़ज़नी-प्रांतों में वह सेना एकत्रित कर रहे हैं, और पुनः काबुल पर आक्रमण कर राज्य-सिंहासन प्राप्त करना चाहते हैं। इस समय उनके पास साठ हज़ार सेना और कई हवाई जहाज़ हैं।



शाह अमानुल्लाख़ाँ

(इन्होंने पुनः अपने को अफ़ग़ानिस्तान का शाह घोषित किया है)

इधर अफ़ग़ानिस्तान का प्रसिद्ध बाग़ी बच्चे-शक्का ने शाह हबीबुल्लाख़ाँ के बाद से काबुल में अपने को सारे अफ़ग़ानिस्तान का शाह घोषित किया है। वह नया मंत्रिमंडल भी बनाना चाहता है; परंतु अभी तक इसमें सफलीभूत नहीं हो सका है।

शाह अमानुल्ला का राज्य-त्याग संसार ने बहुत विस्मय से देखा और सुना। जर्मनी, फ़्रांस आदि के पत्रों ने तो यहाँ तक कह डाला कि अमानुल्ला का राज्य-त्याग रूस की हार और ब्रिटेन की जीत का द्योतक है। परंतु विस्मित संसार को और भी अधिक विस्मय और संतोष इस बात पर होगा, जब वह मानवीय दृष्टिकोण को भगवान् के नियंत्रण द्वारा बदलते देखेगा, और जब उसे मालूम हो जायगा कि आंतरिक एवं बाह्य दूषित प्रभावों को नष्ट कर अमानुल्ला ने एक बार पुनः अफ़ग़ानिस्तान के शासन की बागडोर अपने हाथों में ली है। वह दिन ब्रिटेन की हार और रूस की जीत का दिन भले ही न हो, पर मुल्लापन की हार का दिन अवश्य होगा। इतना ही नहीं, वह दिन—नवीन एवं जाग्रत् एशिया का वह मंगलमय दिन—न-जाने कितने कुचले हुए अरमानों के नवीन जागरण का, कितनी बिखरी हुई आशाओं के शुभ्र-प्रस्फुरण का और कितने दलित राष्ट्रों की कितनी उलझी हुई राजनीतिक परिस्थितियों के सुलझाने का शुभ संदेश-वाहक होगा। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वह दिन शीघ्र ही उपस्थित हो।

हमें अमानुल्ला से स्वाभाविक सहानुभूति है। हम उन्हें स्वतंत्रता का दूत समझते हैं; हम उन्हें मुल्लापन की जड़ खोदनेवाला और देश को मुल्लापन के विषैले वायुमंडल से ऊपर उठानेवाला एक ईमानदार, मज़हब-परस्त, सच्चा और बहादुर सिपाही समझते हैं। हमारी दृष्टि में अमानुल्ला एशिया के नवयुवकों के प्राण, उनकी आशा और उनके नेता हैं। इसीलिये हम अमानुल्ला से सहानुभूति रखते हैं, उनकी हार-जीत को एशिया के युवक-समाज की तथा अपनी हार-जीत समझते हैं। इसी-लिये हम चाहते हैं कि आज भारत के नवयुवक अमानुल्ला के प्रति अपनी सचाई, अपनी वफ़ादारी का सच्चा एवं व्यावहारिक प्रमाण पेश करें। इस अवस्था में हम भारत के—विशेष कर हिंदू-समाज के—नवयुवकों से अपील करते हैं कि वे, जिस भाँति हो सके, अमानुल्ला की सहायता करने के लिये कटिबद्ध हो जायँ। ऐसा दूसरा शुभ अवसर कदाचित् उन्हें कभी हाथ न लगे।

अमानुल्ला की सहायता दो बातों की द्योतक है। पहली, अमानुल्ला के प्रति सचाई की और दूसरी ब्रिटेन तथा भारत-सरकार के प्रति सचाई की। पहली बात प्रत्यक्ष है, उसकी चर्चा की आवश्यकता नहीं। दूसरी बात के संबंध में इतना कहना है कि अमानुल्ला ब्रिटेन और भारत-सरकार के मित्र हैं, और यदि भारतीय नव-युवक आज संकट के दिनों में अमानुल्ला की मदद कर सकें, तो निश्चय ही अमानुल्ला को ब्रिटेन तथा भारत-सरकार की मित्रता का ज्वलंत उदाहरण पेश करेंगे। भारत-सरकार और ब्रिटेन, दोनो को ही उन भारतीय नवयुवकों के साहसपूर्ण कार्यों पर गौरव होगा, हमें ऐसा विश्वास है।

इसलिये आज देश के प्रत्येक विचार रखनेवाले नवयुवक अपनी टोलियाँ बनाकर संगठित रूप से अमानुल्ला की सहायता कर सकते हैं। हम अपने देशवासियों से—



शाह अमानुल्ला की योग्य धर्मपत्नी मलका सुरैया
(इन्हें हाल में ही एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ है)

विशेष कर हिंदू-समाज से—इस बात की अपील करते हैं कि वे एक अफ़ग़ानिस्तान-मिशन तैयार करें। इस अफ़ग़ानिस्तान-मिशन के अधीन भारत का एक बृहत् युवक-समुदाय अमानुल्ला की फ़ौज में भरती होने के लिये जाय। इस मिशन में वैसे लोग भी सम्मिलित हो सकते हैं, जो सैनिक रूप के अतिरिक्त दूसरे रूप में अमानुल्ला की सेवा कर सकें। हमारा विश्वास है, भारत-सरकार और भारत-सरकार के प्रतिनिधि वायसराय महोदय ऐसे नवयुवकों को प्रोत्साहित करेंगे।

इस स्थान पर हमने जानकर ही हिंदू-समाज से अपील की है। इसका कारण है कि हमें मोहम्मदअली, शौकतअली, हसरत मोहानी-जैसे देशद्रोही मुल्लाओं के चंगुल में फँसे हुए भारत के अधिकांश मुसलमानों में विश्वास नहीं रह गया है। वे तो अमानुल्ला को उठाने के बजाय उन्हें और उनके साथ पवित्र इस्लाम को सदा के लिये पतन के भयानक गर्त में डाल देना चाहते हैं। हम हिंदू-समाज को इस प्रकार के मुसलमानों से सावधान कर देना अपना विशेष धर्म समझते हैं। भारत को आज डॉक्टर अनसारियों और अबुलकलाम आज़ादों की ज़रूरत है, मोहम्मद और शौकतअलियों की नहीं। एक समय था, जब हिंदुओं ने ख़िलाफ़त की रक्षा के लिये भारतीय मुसलमानों से अधिक त्याग किया था और तत्परता दिखलाई थी। वह मनोवृत्ति मुसलमानों को ख़ुश करने की थी। हम हिंदुओं के उस त्याग और तत्परता की प्रशंसा करते हुए भी उनकी उस मनोवृत्ति की निंदा करते हैं। हमारी मनोवृत्ति मुसलमानों तथा अन्य किसी धर्मवाले की ख़ुशामद और चापलूसी करने की नहीं होनी चाहिए। यह तो कायरता है। इसमें सचाई और निर्भीकता का अभाव है, और इसलिये यह घृणास्पद है। हमारी मनोवृत्ति अन्याय के विरुद्ध लड़ने, न्याय के लिये जीवित रहने और सत्य की रक्षा के लिये मरने की होनी चाहिए। न्यायी और सच्चा चाहे हिंदू हो या मुसलमान, ईसाई हो या यहूदी, हम उसकी सेवा करने में अपना ख़ून-पानी एक कर देंगे। अन्यायी और उपद्रवी चाहे हिंदू हो अथवा अपना निकट-से-निकट संबंधी, हम उसके विरुद्ध लड़ेंगे और उससे घृणा करेंगे। अमानुल्ला ईमानदार और सच्चे, वीर और साहसी, दीनदार और मज़हब-परस्त हैं। इसलिये उनकी सेवा और सहायता करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। उनकी सेवा करते-करते मर जाना हम अपने और हिंदू-जाति के लिये गौरव और अभिमान की वस्तु समझते हैं। अमानुल्ला हमारे दिलों का बादशाह है, हम उसके लिये लड़ने और मरने को तैयार हैं। इसमें हमारा गौरव है; ब्रिटेन, भारत-सरकार, भारतवर्ष और हिंदू-समाज का गौरव है! क्या हिंदू-समाज हमारी इस अपील पर ध्यान देगा?

× × ×

४. अखिल भारतीय सामाजिक कानफ़्रेंस

विगत कांग्रेस-सप्ताह में अखिल-भारतीय सामाजिक कानफ़्रेंस का ४४वाँ अधिवेशन श्रीयुत जयकर महोदय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। स्वागत-समिति के

अध्यक्ष श्रीयुत एम्‌-सी० चंद्र का भाषण संक्षिप्त और सुंदर था। बंगाल की सामाजिक सेवाओं की चर्चा करते हुए उन्होंने इस आशय की बात कही—

"बंगाल में ही प्रथमतः सामाजिक युद्ध का झंडा, राजा राममोहन राय के द्वारा, फहराया गया था; बंगाल में ही वह झंडा उसी अवस्था में पं० ईश्वरचंद्र विद्यासागर के द्वारा गाड़ा गया था; बंगाल में ही केशवचंद्र सेन और स्वामी विवेकानंद ने हिंदू-समाज की भयानक अंध-रूढ़ियों का नियंत्रण किया था। भगवान् करे, इस बंगाल में ही समाज-सुधारक सज्जन एकत्र होकर एवं एकव्यक्तित्व का रूप धारण कर यह निश्चय करें कि समाज-सुधार का युद्ध वे तब तक नियमबद्ध रूप से जारी रक्खेंगे, जब तक भारतीय समाज का पुनर्निर्माण पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता की पद्धति पर न हो जाय।"

स्वागत-समिति के अध्यक्ष के भाषण के बाद सभापति श्रीयुत जयकर महोदय का भाषण हुआ। सभापति का अभिभाषण सुंदर, ओजस्वी, ऐतिहासिक एवं विद्वत्तापूर्ण था। उन्होंने अपने भाषण में वर्तमान हिंदू-समाज का बड़ा ही यथार्थ चित्र चित्रित किया। जाति-पाँति के संबंध में जयकर महोदय की राय अनुकरणीय थी। आपने हिंदू-समाज की सारी विश्रृंखलताओं का कारण आधुनिक काल की जातीय पद्धति को ही बताया। आपने समाज-सुधारकों को इस विषय का ऐतिहासिक अध्ययन करने की राय दी, और कहा कि ये जातीय संस्थाएँ प्राचीन काल में उस समय की परिस्थितियों के अनुसार भले ही उपयोगी हों, पर देश की वर्तमान प्रतिकूल परिस्थितियों और वातावरण में इनका अस्तित्व हानिकर है। हम श्रीयुत जयकर महोदय से इस बात में बिलकुल सहमत हैं।

शुद्धि और संगठन की सेवाओं की भी जयकर महोदय ने प्रशंसा की, और समाज-सुधार के लिये उपयोगी बतलाया। इसके बाद आपने समाज-सुधार-संबंधी क़ानूनों के निर्माण के लिये सरकार की उदासीनता की शिकायत की। इस संबंध में चर्चा करते हुए आपने कहा—जब सरकार को अपने स्वार्थ का कोई बिल पास करना होता है, तो वह जनता की राय की परवा नहीं करती; प्रत्युत ऐसे क़ानूनों को वह जनता के विरोध की उपेक्षा करते हुए भी बनाती है, और ऐसे अवसर पर कहती है कि सरकार जन-समूह की राय के अनुसार नहीं काम कर सकती। वह जनता की भलाई उससे भी अधिक जानती है। परंतु जब व्यवस्थापिका सभाओं में सामाजिक बिल पेश किया जाता है, तब सरकार की यह मनोवृत्ति एकदम ही बदल जाती है, और उन प्रश्नों पर, जिनमें थोड़ा भी विवाद है, पर जो नैतिक, सामाजिक आदि दृष्टि से सर्वथा उपयोगी हैं, वह सहसा उदासीनता धारण कर लेती है। इसके बाद आपने हिंदू-समाज में स्त्रियों की हीनावस्था का वर्णन किया और विशेष कर हिंदू-क़ानून की दृष्टि से हिंदू-कन्याओं, स्त्रियों तथा विधवाओं की दयनीय आर्थिक विवशता का प्रभाव-जनक एवं महत्त्वपूर्ण चित्र खींचा। अंत में सभापतिजी ने देश की वर्तमान मनोवृत्ति को आशा-जनक बतलाते हुए अपना भाषण समाप्त किया।

सभापतिजी के भाषण के बाद उसी दिन—अर्थात् मंगलवार, १९२८ की २५वीं दिसंबर को—लाला लाजपतराय, श्रीयुत एस्० आर० दास, श्रीयुत पीयूषकांति घोष और श्रीयुत पृथ्वीशचंद्र राय की अचानक, असामयिक एवं शोकजनक मृत्युओं के संबंध में चार प्रस्ताव पास हुए, जिनमें उक्त नेताओं की सामाजिक सेवाओं की प्रशंसा करते हुए उनके संतप्त परिवार के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। इस प्रकार पहले दिन की कार्यवाही समाप्त हुई।

दूसरे दिन—अर्थात् बुधवार, ता० २६वीं दिसंबर, सन् १९२८ को—अन्य प्रस्तावों के साथ दो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए, इसलिये हम इन पर अपना विचार प्रकट करना आवश्यक समझते हैं।

पहला प्रस्ताव जाति-पाँति के विरुद्ध था। उसका आशय यह था कि हिंदू-समाज के संगठन में जाति-पाँति का झगड़ा बहुत बाधक है। इस दशा में जाति-पाँति के निर्मूल करने के निमित्त आवश्यक है कि (१) हिंदू-समाज में अंतर्वर्गीय खान-पान की प्रथा प्रचलित की जाय; (२) अंतर्वर्गीय विवाह किए जायँ; (३) अस्पृश्यता-निवारण किया जाय।

इस प्रस्ताव को उपस्थित करनेवाले देश के प्रसिद्ध

विज्ञानाचार्य और असहयोगी नेता श्रीयुत पी० सी० राय थे। श्रीयुत रसिकलाल विश्वास तथा स्वामी रामानंद के समर्थन के बाद यह प्रस्ताव पास हो गया।

अखिल भारतीय सामाजिक कानफ़्रेंस के इस उपयोगी प्रस्ताव का हम हृदय से समर्थन करते हैं। हिंदू-सभ्यता एवं हिंदू-संस्कृति में हमारा अटल तथा दृढ़ विश्वास है। हमारी राय में भारत में हिंदू-सभ्यता एवं हिंदू-संस्कृति को जागरित किए विना हमारी धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उन्नति असंभव है। परंतु हिंदू-संस्कृति एवं सभ्यता को जाग्रत् करने तथा अमर बनाने के लिये इस बात की अत्यंत आवश्यकता है कि हम सारे हिंदू-समाज का सुदृढ़ संगठन कर सकें। दूसरे शब्दों में जब तक सारा हिंदू-समाज एक व्यक्तित्व का रूप नहीं धारण कर लेता, तब तक हम अपनी वर्तमान अधोगति से नहीं उठ सकते। परंतु जब तक ब्राह्मण क्षत्रिय से, क्षत्रिय वैश्य से, वैश्य शूद्र से और इस प्रकार हिंदू-समाज के सारे वर्ण एक दूसरे से पृथक् रहेंगे, जब तक हिंदू-जाति की ये सारी उप-जातियाँ रोटी-बेटी के बंधन में नहीं बँध जातीं, तब तक यह असंभव है कि हम हिंदू-जाति में एकता का दृढ़ सूत्र पैदा कर सकें, और विना इसके हमारा संगठन होना नितांत असंभव है। इस एकता का बंधन तथा इसकी नींव इतनी दृढ़ होनी चाहिए कि हम बहुत सुलभता से उन अहिंदुओं को भी अपने भीतर पचा लें, जो हिंदू-धर्म की छाया में शरण लेना चाहते हैं। तभी हमारा कल्याण है, अन्यथा हम नित्य ही मरते जा रहे हैं, और यदि हमारे पतन की यह भयानक गति बंद न हुई, तो वह दिन दूर नहीं है, जब कि संसार केवल इतिहास के पन्नों में यह पढ़ता हुआ देखा जायगा—"हिंदू-जाति भी किसी समय अपने उत्कर्ष एवं वैभव में उन्नति की सर्वश्रेष्ठ सीमा पर पहुँच गई थी; पर काल-गति से वह संसार के आवरण पर से सदा के लिये विलीन हो गई, और इसका कारण हिंदू-समाज का असंगठन और उसके वैषम्य-भाव ही थे।" हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि जाति-पाँति की कठिनाइयों से ही आज हम अपने भीतर आए हुए ग़ैरहिंदुओं को स्थान नहीं दे सकते।

हिंदू-जाति को, हिंदू-समाज को आज संगठन की आवश्यकता है। विना संगठन के वह एक नहीं हो सकता। परंतु यह संगठन तब तक नहीं हो सकता, जब तक हमारे बीच वैषम्य के भाव बने रहें। असमानता हमारा नाश कर देगी, और देखते-देखते ही हमारी संस्कृति, हमारी धार्मिक थाती सदा के लिये पतन के भयानक गह्वर में विलीन हो जायगी। इसलिये इस असमानता एवं वैषम्य भाव को दूर करने के लिये यह बात सबसे अधिक आवश्यक है कि हिंदू-जाति अस्पृश्यता को निर्मूल करे, तथा हमारी प्रत्येक उपजाति अपने भीतर रोटी-बेटी का संबंध स्थापित करे। इसी से हम अपने भीतर आए हुए ग़ैरहिंदुओं को मर्यादापूर्ण स्थान देकर अपने में मिला सकेंगे।

दूसरा प्रस्ताव भी महत्त्वपूर्ण है; परंतु वह महत्त्वपूर्ण इसलिये है कि विना उसका विरोध किए हमारा कल्याण नहीं। साथ ही यदि अखिल भारतीय सामाजिक कानफ़्रेंस के उक्त अधिवेशन के उस प्रस्ताव पर हिंदू-समाज अमल करेगा, तो उसका सर्वनाश हुए विनो नहीं रह सकता।

दूसरा प्रस्ताव श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने उपस्थित किया। उसका आशय था कि राष्ट्रीय एकता बढ़ाने के लिये यह कानफ़्रेंस इस बात की सिफ़ारिश करता है कि (१) हिंदू-समाज में अंतर्वर्गीय खान-पान तथा भारत की भिन्न-भिन्न जातियों और समुदायों में परस्पर खान-पान हो; (२) हिंदू-समाज में अंतर्वर्गीय तथा भारत की भिन्न-भिन्न जातियों और समुदायों में परस्पर विवाह-बंधन हो। गुरुकुल-काँगड़ी के श्रीयुत रामदेव महोदय ने इसका विरोध किया, और साथ ही यह संशोधन पास किया कि भारत की भिन्न-भिन्न जातियों और समुदायों में परस्पर विवाह-संबंध इस मूल-प्रस्ताव से हटा लिया जाय। दोनो पक्ष में बहस होने के बाद वोट लिया गया। मूल-प्रस्ताव के पक्ष में ८२ और विपक्ष में ४२ वोट आने के कारण वह स्वीकृत कर लिया गया।

हम इस प्रस्ताव का विरोध करना अपना परम पवित्र कर्तव्य समझते हैं। इस प्रस्ताव के अमल करने से हिंदू-सभ्यता एवं हिंदू-संस्कृति को बहुत बड़ा धक्का लगेगा। समाज-सेवा करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं, हमारे हृदयों में भी राष्ट्रीय एकता एवं सामाजिक उत्कर्ष की उतनी ही चिंता है, जितनी किसी भी समाज-प्रेमी को। फिर भी हम इस प्रस्ताव के विरुद्ध हिंदू-समाज का ध्यान आकर्षित करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। सच बात तो यह है कि हम अंतर्जातीय विवाह को राष्ट्रीय एकता का कारण ही नहीं मानते। राष्ट्रीय एकता हिंदू-संस्कृति को जाग्रत् करने में ही होगी। अंतर्जातीय विवाह तो हिंदू-संस्कृति को निर्मूल कर देगा। अंतर्जातीय विवाह के पक्षवाले लोगों का कहना है कि इससे पारिवारिक जीवन सुखमय होगा, और सुंदर परिवार का निर्माण होगा। इस प्रकार सुंदर परिवार का निर्माण होने से राष्ट्र का सुंदर निर्माण होगा। हम इन बातों को बिलकुल निराधार समझते हैं। अंतर्जातीय विवाह किसी भी अवस्था में सुंदर परिवार का निर्माण नहीं कर सकता। यह विवाह काम-तृप्ति की पूर्ति कर अस्थायी रूप से परिवार को सुखमय भले ही बनावे; पर कुछ ही दिनों में उस सुखमय परिवार को मिट्टी बनाए बिना नहीं रह सकता। कारण, इस प्रकार के विवाह से दो संस्कृतियों, दो सभ्यताओं के, जो एक दूसरे के सर्वथा विपरीत हैं, संघर्ष की संभावना है। यह संघर्ष स्वाभाविक रूप से पति और पत्नी के जीवन को दुःखमय बनाए बिना नहीं रह सकता। सामाजिक प्रश्नों को राजनीतिक रूप देकर हमारे देश में उनका अनुचित उपयोग किया जाता है। अंतर्जातीय विवाह को राजनीतिक रूप देकर कहा जाता है, इससे देश की भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ एक दूसरे से मिलेंगी, और फलस्वरूप उनका मिलना हमारे राजनीतिक उद्धार का कारण होगा। यह तर्क जितना ढीला है, उतना ही तथ्यहीन। कम-से-कम संसार का इतिहास इस बात का समर्थन नहीं करता। क्या सारे योरप की संस्कृति प्रायः एक होने पर भी वहाँ एकता है? क्या योरप के भिन्न-भिन्न देशों के ईसाई एक दूसरे के रक्त की पिपासा से उतावले नहीं हैं? क्या अमेरिका में नीग्रो और सफ़ेद चमड़ेवाले ईसाइयों की एक ही सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति है? ये बातें ऐसी हैं, जिन पर विचार किए बिना काम नहीं चल सकता।

यदि थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय कि अंतर्जातीय विवाह राष्ट्रीय एकता में सहायक होगा, तो भी हम इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। हम देश की एकता के लिये संसार की सबसे बड़ी संस्कृति एवं विश्व की सबसे बड़ी सभ्यता का नाश नहीं कर सकते। हम भारतीय स्वतंत्रता चाहते हैं; पर उसका मूल्य हिंदू-जाति, हिंदू-संस्कृति एवं हिंदू-सभ्यता के सर्वनाश के रूप में चुकाना नहीं चाहते। यह आदर्श का व्यावहारिक एवं निकृष्ट पतन होगा, और वह स्वतंत्रता, जो किसी आदर्श के पतन पर ख़रीदी जा सकती है, स्थायी नहीं रह सकती। उसे स्थायी बनाने के लिये तो हमें एक

आदर्श की उपासना करनी होगी। संभव है, अस्थिर रूप से हमारी उपासना के मार्ग बाधाहीन न हों; पर अंत में साधना एवं उत्कृष्ट आदर्श-पूजा की ही विजय होगी। इसी प्रकार की कुछ दलीलें हिंदू-समाज के अंतर्वर्गीय विवाहों के संबंध में भी दी जा सकती हैं; पर यहाँ यह जानना आवश्यक है कि हिंदू-समाज के अंतर्वर्गीय विवाह और भारत का अंतर्जातीय विवाह—ये दोनो ही बातें एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों का परस्पर विवाह हिंदू-मुस्लिम, हिंदू-ईसाई और हिंदू-यहूदी विवाहों से सर्वथा पृथक् है। पहले प्रकार के विवाह में एक ही संस्कार एवं सभ्यता की भिन्न-भिन्न बिखरी शक्तियाँ मिलती हैं, और दूसरे प्रकार के विवाह में दो भिन्न-भिन्न एवं एक दूसरे से विपरीत संस्कार पारिवारिक जीवन की जड़ खोदते हैं।

× × ×

५. हिंदू-समाज का नग्न चित्र

खंडवा से निकलनेवाले प्रसिद्ध सहयोगी "कर्मवीर" के विगत १२ जनवरीवाले अंक में प्रकाशित स्थानीय 'घटनाओं' में एक घटना यह भी थी—

ता० ३०। १२। २८ को रात्रि में लगभग ८ बजे तीन-चार दिन की एक कन्या, अनाथालय के टिन के कंपाउंड के बाहर कोई व्यक्ति डाल गया। कन्या के रोने पर अनाथालय के मेहतर ने इस बात की सूचना दी। कन्या फाटक के पास पड़ी थी। उसके पास एक पत्र भी पड़ा मिला, जिसका अविकल रूप यों है—

"ओं"

"श्री माहासे कृपा करके यह लड़की आपके सूपरत करी है आप हिंदू धर्म कि रक्षा करना यही धर्म है ओर में जाति की ऊँची हूँ अपनी इज्जत रखने को आपके पास भेजी है अब में प्रतीगा करती हूँ कि भर यह काम नहीं करूँगी और में किसी भी रूप में इस लड़की

की साहता अनाथले में भेजो और इसकी जान बचान यह आपसे प्रथन्या है इसके दोसी आप होवोगे अगर रचा नहीं करोगे तो मेरा आप सबको प्रनाम है ।

द० हिंदू कि बालिका
फिर से मैं अपना पता दूँगी ।''

उपर्युक्त पत्र मानसिक भावनाओं के उस सत्य, परंतु दारुण; कोमल, परंतु क्रूर; पतन परंतु पश्चात्ताप से भरे हुए अध्याय को खोलता है, जहाँ मानवी तर्क कुंठित हो जाते हैं, और मनुष्य की मनोवृत्तियाँ अपनी अर्ध-विक्षिप्तावस्था में काँप उठती हैं। उपर्युक्त पत्र से कोई भी हृदय रखनेवाला मनुष्य उस अभागिनी माता की संघर्षमय, दयनीय भावनाओं पर आँसू बहा सकता है ! एक ओर अपनी प्यारी बच्ची की ममता, अपने रक्त और मांस-पिंड के प्रति स्वाभाविक प्रेमातिरेक और दूसरी ओर मर्यादा का विचार तथा जातीय बहिष्कार का भय; एक ओर प्रेम का नैसर्गिक उद्रेक, और दूसरी ओर जातीय अपमान के भय से अपनी सबसे प्यारी वस्तु को सदा के लिये अपनी गोद से अलग कर देना; एक ओर हृदय को वेधनेवाली अशुभ अतीत की यंत्रणामय स्मृतियाँ, और दूसरी ओर उन स्मृतियों को मिटाने का असफल प्रयत्न । ये सारी बातें उस अभागिनी माता के मस्तिष्क में एक ही साथ ज्वालामुखी के प्रस्फुटन की भाँति काम कर रही थीं। ऐसी घड़ियों में न-जाने इस देश के अभागे हिंदू-समाज में प्रतिदिन कितनी भ्रूण-हत्याएँ होती हैं; कितनी अभागिनी हिंदू-ललनाएँ हिंदू-धर्म से प्रेम रखते हुए भी विधर्मियों के दामन पकड़ती हैं !

हमारी उस अभागिनी माता के प्रति सहानुभूति है, और हम उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते । अनाथालय में अपनी बच्ची रखकर उसने एक अद्भुत साहस एवं विवेक का काम किया है, और हम उस पर दया करते हुए भी उस पर श्रद्धा किए बिना नहीं रह सकते । अब रही उसके अतीत के संबंध में—उस अतीत के संबंध में जिसके विराट् प्रायश्चित्त में उसे यह मर्मांतिक यातना सहनी पड़ी । उसके अतीत पर विचार करते हुए भी हम किसी भी अवस्था में उसको दोषी क़रार नहीं दे सकते । ऐसा करना अपनी आत्मा एवं परमात्मा के विरुद्ध विद्रोह करना होगा। उसका पतन उसकी स्वाभाविक मानवी आवश्यकताओं और प्रवृत्तियों की माँग थी । समाज की परिस्थितियों ने उस माँग को रोक रक्खा था । निश्चय ही वह अभागिनी विधवा है, जैसा कि उसकी परिस्थितियों से मालूम होता है । वह उच्च कुल और कदाचित् संभ्रांत-कुल की भी है । इस दशा में वर्तमान हिंदू-समाज के दूषित वायुमंडल में उसका पुनर्विवाह न होना एवं उसका पतन हो जाना वैसे ही स्वाभाविक है, जैसे सूर्य का उदय और अस्त होना, और पुनर्विवाह न होने का जो कुछ भी कुपरिणाम हो सकता है, वही हुआ भी। ऐसी परिस्थिति में उस अभागिनी के पतन का दायित्व उस समाज पर ही है, जिसने अपनी संकीर्णता के कारण उसे इस कुपथ की ओर अग्रसर होने में प्रोत्साहित किया ! वह महिला—वह अभागिनी अज्ञात माता—चूँकि आज भी उस समाज से संबंध रखना चाहती है, उसे प्यार करती है, इसलिये उसे उस समाज के पापों का प्रायश्चित्त करना पड़ता है !

परंतु समाज कब तक ऐसे पाप करता रहेगा ? क्या हिंदू-समाज में होनेवाले प्रतिदिन ऐसे सहस्रों पापों की पुनरावृत्तियाँ होती रहेंगी ? इसका उत्तर नवयुवक भारत—हिंदू-समाज की लाज रखनेवाले तरुणों को देना होगा।

× × ×

६. 'मा' उपन्यास

सुधा में पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक-लिखित 'मा' उपन्यास साल-भर से क्रमशः प्रकाशित हो रहा है। उपन्यास बड़ा है और कई पाठकों का यह तक़ाज़ा है कि संपूर्ण उपन्यास वे शीघ्र ही पढ़ना चाहते हैं। अतः वह उपन्यास अब पुस्तकाकार छप रहा है, और शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगा । यदि पाठकों ने पसंद किया, तो और कोई छोटा रोचक उपन्यास अब क्रमशः सुधा में प्रकाशित किया जायगा । मा-उपन्यास का मूल्य वग़ैरह आगामी संख्या के विज्ञापन में देखिएगा।

श्रीः



विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र

मासिक पत्रिका

वर्ष २, खंड १

श्रावण-पौष, ३०६ तुलसी-संवत् (१९८५ वि०)

अगस्त-जनवरी, १९२८-२९ ई०

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव
श्रीरूपनारायण पांडेय
श्रीनंदकिशोर तिवारी

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

वार्षिक मूल्य ६।)]   [छमाही मूल्य ३।)

मुद्रक तथा प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव, अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-
कार्यालय और गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस,
लखनऊ

लेख-सूची

१—पद्य

२—गद्य

चित्र-सूची

क—रंगीन

ख—व्यंग्य

ग—सादे

वर्ष ४ ; खंड २

चैत्र, ३०८ तु० सं०

(APRIL, 1931)

संख्या ३ ; पूर्ण संख्या ४५



साधारण संस्करण	
वार्षिक मूल्य	६॥)
छमाही मूल्य	३॥)
एक प्रति का	॥–)
विदेश में	७॥)

प्रधान संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(संपादक गंगा-पुस्तकमाला)

[illegible] संस्करण	
वार्षिक मूल्य	[illegible]
छमाही मूल्य	५)
एक प्रति का	१)
विदेश में	१२)

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

लेख-सूची

चित्र-सूची

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

[निस्बत अवाम फ़रोख़्त के लिये]

(ऑर्डर ५ क़वायद १ व ५ मजमूआ ज़ाब्ता दिवानी सन् १९०८ ई०)

नंबर मुक़द्दमा ७७१ सन् १९ ० ई०

बअदालत दिवानी मुंसिफ़ी रसरा मुक़ाम रसरा ज़िला बलिया।

१—हाफ़िज़ नज़ीरअहमद पिसर शेख़ अमजदअली मरहूम २—शेख़ नसाय उल्लाह पिसर मौलवी मुहम्मदअली मरहूम ३—शेख़ ख़मीरअहमद पिसर हाफ़िज़ अहमदअली मरहूम अक़वाम शेख़ पेशा ज़मींदारी व महाजनी साकिनान क़सबा रसरा परगना लखीज़ ज़िला बलिया मुद्दइयान

बनाम

शेख़ तफ़ीलअहमद पिसर शेख़ तफ़ज्जुलहुसेन उर्फ़ शेख़ जोखु मियाँ मरहूम क़ौम शेख़ पेशा ज़मींदारी साकिन क़सबा ज़हूराबाद इलाक़ा मुंसिफ़ी महम्मदाबाद जिला ग़ाज़ीपूर मुद्दाअलेहुम

वाज़ेह हो कि मुदई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत २५०) रु० के दायर की है, लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ९ माह एप्रिल सन् १९३१ ई० बवक़्त १० बजे बमुक़ाम रसरा असालतन या माऱ्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हालात से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारी हाज़िरी के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि उसी रोज़ अपने जुमला गवाहों को जिनकी शहादत पर नीज़ जुमला दस्तावेज़ात जिन पर तुम बताईद अपने जवाबदिही के इस्तदलाल करना चाहते हो पेश करो।

और तुमको इत्तला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमू और फ़ैसल होगा।

बसब्त मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत के आज बतारीख़ २४ माह मार्च सन् १९३१ ई० जारी किया गया।

दस्तख़त मुंसरिम।

महिला-संसार में एकदम जीवन, जागृति
और बलिदान की भावना उत्पन्न करनेवाली

सचित्र मासिक पत्रिका

महिला

बड़ी सजधज के साथ शीघ्र ही प्रकाशित होगी

वार्षिक मूल्य ३)

प्रकाशक—आर्य-साहित्य-मंडल लिमिटेड, अजमेर

इसमें भारत के प्रतिभा-संपन्न एवं सिद्ध-हस्त विद्वान् लेखक-लेखिकाओं द्वारा लिखे गए सामाजिक, धार्मिक और ऐतिहासिक निबंध, वीर गाथाएँ, अनूठी कविताएँ, हृदय-ग्राही गल्पें, बालकोपयोगी सदुपदेश, कथा-कहानियाँ, मनोरंजन, विनोद, संगीत-विज्ञान, गृह-प्रबंध, गृह-चिकित्सा, पाकशास्त्र इत्यादि गृहस्थोपयोगी सभी बातों का समावेश योग्यता-पूर्वक किया जावेगा। इसके अतिरिक्त एक तिरंगा, कई सादे चित्र, कार्टून प्रतिमास प्रकाशित होंगे।

छपाई-सफ़ाई

"सुधा" के साइज़ में चिकने काग़ज़ पर लगभग ८० पृष्ठों में "महिला" की सुंदर छपाई को देखकर आपके नेत्र प्रसन्न होंगे। भाषा सरल, सुबोध और भाव-पूर्ण होगी।

यदि आप

सुखमय दांपत्य जीवन बिताना चाहते हैं, यदि आप अपने गृहस्थ को सुशिक्षा से उत्तम जीवन-युक्त बनाना चाहते हैं, यदि आप अपनी संतान को हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी बनाना चाहते हैं, यदि आप चाहते हैं कि हमारा गृहस्थ स्वर्गोपम बन जाय, तो उसका एक उपाय यही है कि "महिला" की एक-एक प्रति अपनी बहनों के हाथ में दीजिए, फिर आपको हमारे कथन की सार्थकता ज्ञात होगी। अतः आज ही ग्राहक बनें और अपने इष्ट-मित्रों को भी सम्मति दें।

विज्ञापनदाताओं से

"महिला" बहुत बड़ी संख्या में प्रकाशित हो रही है, और वह भारत के प्रत्येक प्रांत की पढ़ी-लिखी स्त्रियों के हाथ में पहुँचेगी। कुछ प्रतियाँ विदेश तक पहुँचेंगी। ऐसी स्थिति में विज्ञापनदाताओं को इसमें विज्ञापन देकर लाभ उठाना चाहिए।

पता—

मैनेजर

आर्य-साहित्य-मंडल लिमिटेड, अजमेर



विश्वामित्र-स्वागत

पुनि चरनन मेले सुत चारी ; राम देखि मुनि बिरति बिसारी ।

(तुलसीदास)

Ganga Fine Art Press, Lucknow.

नम्र निवेदन !

सुधा में परिवर्तन की योजना !!

प्रिय महोदय,

सुधा के प्रेमी की हैसियत से हमने आपसे पिछले मास एक परामर्श चाहा था । [illegible] भेजी है । जिन अनुग्राहक ग्राहकों ने कोई राय नहीं भेजी, उनसे भी प्रार्थना है कि [illegible] अपनी मूल्यवान् सम्मति देकर हमारी सहायता करें ।

इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि 'सुधा' ने [illegible] लिया है, उसका ध्येय यही रहा है कि हिंदी-पत्रों में वह सर्वोच्च रहे, और अपने परिवार का [illegible] और प्रिय रहे । ईश्वर की कृपा से वह अपने ध्येय में सफल रही है, परंतु [illegible]', इसलिये हम 'सुधा' को और भी सुंदर, आकर्षक, लोक-प्रिय तथा उपयोगी बनाना चाहते हैं ।

यद्यपि यह सच है कि हिंदी मासिक पत्रों की [illegible] के इस युग में, पारस्परिक प्रतियोगिता के इस [illegible] में, मासिक पत्रों की अपनी प्रतिष्ठा और मर्यादा बनाए रखना साधारण साहस और [illegible] का काम नहीं, पर हमें आपके सहयोग का बल और सर्वशक्तिमान परमेश्वर का आसरा है, इस [illegible] 'सुधा' को उन्नततर करने की बात सोचते रहेंगे, और [illegible] कभी संतुष्ट न होंगे । हम [illegible] आपसे यह चाहते हैं कि आप भी सदैव सुधा को अपना समझते रहें, और उसकी त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान दिलाते रहें । [illegible] ही उसे उन्नत एवं अधिकाधिक उपयोगी बनाए रखने के रास्ते सुझाते रहें । विश्वास रखिए, हम [illegible] भी आपके सत्परामर्शों की क़द्र करेंगे ।

अभी हम आपके सम्मुख तीन प्रस्ताव रखते हैं—

१—सुधा का वार्षिक मूल्य बढ़ाकर ७।) कर दिया जाय, और उसकी पृष्ठ-संख्या १६० तथा ३ तिरंगे, ६ दुरंगे, ४ व्यंग्य तथा ४० सादे चित्र कर दिए जायँ ।

२—उसमें १४४ पृष्ठ तथा २ रंगीन, ६ दुरंगे, २ व्यंग्य तथा १५ सादे चित्र रक्खे जायँ, जैसा कि अब है और वार्षिक मूल्य घटाकर सिर्फ़ ६) कर दिया जाय ।

३—उसकी पृष्ठ-संख्या १२० कर दी जाय, और उसमें २ रंगीन, ४ दुरंगे तथा १० सादे चित्र और दो कार्टून रहें तथा वार्षिक मूल्य ४।।) कर दिया जाय ।

४—उसकी पृष्ठ-संख्या तो १०० कर दी जाय, किंतु चित्र तीसरे प्रकार के ही रहें । हाँ, वार्षिक मूल्य ४) कर दिया जाय ।

कृपा कर आप लिखें कि कौन-सी तजवीज़ आप [illegible] करते हैं ? प्रेमी ग्राहकों की बहुसम्मति के अनुसार ही हम कार्य करेंगे । आशा है, हिंदी-संसार में इस प्रकार सुधा [illegible] भी हो सकेगी ।

भवदीय

मैनेजर सुधा



विश्वामित्र-स्वागत

मुनि चरनन मेले सुत चारी, राम देखि मुनि बिरति बिसारी।

Ganga Fine Art Press, Lucknow

नम्र निवेदन !

सुधा में परिवर्तन की योजना !!

प्रिय महोदय,

सुधा के प्रेमी की हैसियत से हमने आपसे पिछले मास एक परामर्श चाहा था। हज़ारों ग्राहकों ने अपनी राय लिख भेजी है। जिन अनुग्राहक ग्राहकों ने कोई राय नहीं भेजी, उन्हें भी चाहिए कि विचार कर अति शीघ्र अपनी मूल्यवान् सम्मति देकर हमारी सहायता करें।

इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि 'सुधा' ने जब से जन्म लिया है, उसका ध्येय यही रहा है कि हिंदी-पत्रों में वह सर्वोच्च रहे, और अपने परिवार को अधिक-से-अधिक हितकर और प्रिय रहे। ईश्वर की कृपा से वह अपने ध्येय में सफल रही है, परंतु कवि का वचन है—'श्रेयसि केन तृप्यते', इसलिये हम 'सुधा' को और भी सुंदर, आकर्षक, लोक-प्रिय तथा उपयोगी बनाना चाहते हैं।

यद्यपि यह सच है कि हिंदी मासिक पत्रों की उन्नति के इस युग में, पारस्परिक प्रतियोगिता के इस प्रवाह में, मासिक पत्रों को अपनी प्रतिष्ठा और मर्यादा बनाए रखना साधारण साहस और अध्यवसाय का काम नहीं, पर हमें आपके सहयोग का गर्व और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का आसरा है, हम प्रतिक्षण 'सुधा' को अग्रसर करने की बात सोचते रहेंगे, और अंततः कभी संतुष्ट न होंगे। हम केवल आपसे यही चाहते हैं कि आप भी सदैव सुधा को अपना समझते रहें, और उसकी त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान दिलाते रहें। साथ ही उसे उन्नत एवं अधिकाधिक उपयोगी बनाए रखने के रास्ते सुझाते रहें। विश्वास रखिए, हम सर्वस्व देकर भी आपके सत्परामर्शों की क़द्र करेंगे।

अभी हम आपके सम्मुख तीन प्रस्ताव रखते हैं—

१—सुधा का वार्षिक मूल्य बढ़ाकर ७।।) कर दिया जाय, और उसकी पृष्ठ-संख्या १६० तथा ३ तिरंगे, ६ दुरंगे, ४ व्यंग्य तथा ४० सादे चित्र कर दिए जायँ।

२—उसमें १४४ पृष्ठ तथा २ रंगीन, ६ दुरंगे, २ व्यंग्य तथा १५ सादे चित्र रक्खे जायँ, जैसा कि अब है और वार्षिक मूल्य घटाकर सिर्फ़ ६) कर दिया जाय।

३—उसकी पृष्ठ-संख्या १२० कर दी जाय, और उसमें २ रंगीन, ४ दुरंगे तथा १० सादे चित्र और दो कार्टून रहें तथा वार्षिक मूल्य ५।।) कर दिया जाय।

४—उसकी पृष्ठ-संख्या तो १०० कर दी जाय, किंतु चित्र तीसरे प्रकार ही रहें। हाँ, वार्षिक मूल्य ५) कर दिया जाय।

कृपा कर आप लिखें कि कौन-सी तजवीज़ आप पसंद करते हैं ? प्रेमी ग्राहकों की बहुसम्मति के अनुसार ही हम कार्य करेंगे। आशा है, हिंदी-संसार में इस प्रकार सुधा सबसे सस्ती भी हो जायगी।

प्रार्थी

मैनेजर सुधा



"कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू ।"
(गो० तुलसीदास)

वर्ष ४ खंड २ — चैत्र, ३०८ तुलसी-संवत् (१९८८ वि०)— एप्रिल, १९३१ — संख्या ३ पूर्ण संख्या ४५

अद्भुत बरदान

[श्रीयुत बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर बी० ए०]

छूटै जटा-जूट सों अटूट गंग-धार धौल, मौलि सुधा-धार को अधार दरसत है ;
कहै "रतनाकर" रुचिर रतनारैं नैन, कलित कृपा को चारु चाव सरसत है ।
चारौं कर चारौं फल बितरत चारौं ओर, और लेनहारे ना निहारैं अरसत है ;
दै-दै बरदान ना अघात पंच-आनन सौं, देखि सहसानन सिहात तरसत है ।

अरे......इस ओर......!

[कुमारी रामेश्वरीदेवी गोयल बी० ए०]

[१]

भग्न हृदय का स्वप्न-राज है,
मुरझाया सुख-सुमन-साज है,
पथिक-रहित पथ शून्य पड़ा है,
मिलता ओर न छोर।
अरे......इस ओर......!

[२]

भूमि कठिन, कंटकमय अतिशय,
स्मृति में है विस्मृति का विस्मय !
नियति, हास करती, विषाद-तम
छाया है अति घोर।
अरे......इस ओर......!

[३]

टूटी-फूटी कहीं कुटी है,
सुषमा जिसकी सभी लुटी है,
छुटी सकल ममता जग की, बस
लगे वहीं दृग-कोर।
अरे......इस ओर......!

[४]

अश्रु निरंतर नृत्य रचाते,
झर-झर हृदय-व्यथा बरसाते,
गाते-गाते राग अलख का
करते रहते भोर।
अरे......इस ओर......!

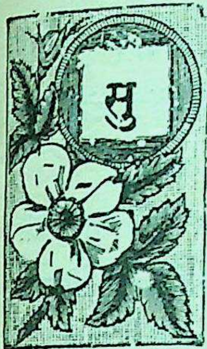
[५]

सिसक रहीं जीवन की घड़ियाँ,
टूट गईं मानस की कड़ियाँ,
बिखरीं आशाओं की लड़ियाँ,
आओ अब चित-चोर !
अरे......इस ओर......!

ठग

[अध्यापक पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०, लखनऊ-विश्वविद्यालय]

(१)



सुनते हैं, पुराने ज़माने में अनेक ठग और डकैत दिन-दहाड़े लूट-पाट किया करते थे। इतिहास में ठग-रत्न अमीरअली और ठग-कुल-कमल-दिवाकर चीतू तथा मोक्ष-स्थान बैरगिया-नाला आदि के वर्णन मिलते हैं। अँगरेज़ इतिहास-लेखकों का दावा है कि सर विलियम बेंटिंक की कृपा से ठगों और डकैतो का अस्तित्व यहाँ से मिट गया। हमारी राय है—जैसा कि हिंदू-शास्त्रकार मानते हैं—कि अस्तित्व किसी का नहीं मिटा करता, केवल रूपांतर हो जाया करता है। हरा पेड़ जब काट डाला गया, तो उसका रूपांतर हुआ बड़े-बड़े लकड़; फिर जलाने के चैले; फिर आग; फिर राख; फिर और कुछ—बस यों ही समझिए। अच्छा, अब यदि हम यह बतला दें कि पुराने ठगों का रूपांतर आजकल क्या है, और आधुनिक बैरगिया-नाला कहाँ है, तो अभी मान-हानि के दावों के मारे हमारा नाक में दम हो जाय। संभव है बड़े घर की हवा भी खानी पड़े, क्योंकि आजकल तो आप जानते ही हैं कि 'स्पष्टवादी सदा दुखी।'

देश में विलायती कपड़े का बहिष्कार हुआ है। इससे जिनको हानि पहुँची है, उनका घबराना स्वाभाविक है। यदि कितने ही हिंदोस्तानी व्यापारी, तरह-तरह की तरकीबों से कांग्रेस की आँखों में धूल झोंककर, विलायती कपड़े की निकासी करके धर्म की रक्षा कर रहे हैं, तो उधर अँगरेज़ व्यापारी भी इसकी खपत जारी रखने में प्रयत्नवान् हैं। लोग भूखों मर रहे हैं, सरकार असहयोगियों को दोष दे रही है, असहयोगी सरकार की विनिमय-नीति की पोल खोल रहे हैं, अमीर को इज़्ज़त बचाना कठिन है, ग़रीबों की कोई सुनता नहीं—अजब खींचा-तानी मची हुई है। ऐसे शुभ समय में कानपुर के दो चलते-पुर्ज़ों ने आपस में कुछ सलाह की। इस अभूतपूर्व सलाह में मौलिकता थी। सलाह क्या थी, सफलता की कुंजी थी।

(२)

प्रयाग के मिस्टर डंपलाट एक कारख़ाने में काम करते हैं। आप अँगरेज़ हैं, सो भी कैसे कि हिंदोस्तानी से घृणा करना आप अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझते हैं। आपको आश्चर्य होता है कि अँगरेज़ी सरकार बायकाटियों का झटपट कचूमर क्यों नहीं निकाल देती! हिमालिया से लगाकर कन्याकुमारी तक विजय करने के

लिये केवल एक मशीनगन काफ़ी है। आपके यहाँ जब आपके मित्र इकट्ठे होते हैं, तो इसी बात की चर्चा छिड़ी रहती है। ऐसा ज्ञात होता है, मानो भारतवर्ष में शांति रखने का बोझ ब्रह्मा ने अकेले आपके ही कंधों पर लाद दिया है।

मि० डंपलाट एक दिन बरामदे में अकेले बैठे टारपीडो की सूरत का सिगार पी रहे और इस देश में विलायती व्यापार के चौपट होने पर क्रोध कर रहे थे। आपका बस चलता, तो आप अपने सिगार के धुएँ से ही बायकाटियों को भस्म करके उनकी राख कर देते। इतने में दो भारतवासी—सूट-बूट से लैस—आपके अहाते में घुसते दिखाई दिए। उन्हें देखकर आपको कुछ क्रोध और कुछ अचरज हुआ। हिंदोस्तानियों में से एक ने बढ़कर फ़र्शी सलाम झुकाते हुए आपके हाथ में एक पत्र दिया। पत्र आपके एक मित्र का था। उसमें लिखा था—"ये लोग सब तरह से विश्वास-योग्य हैं; इनकी सहायता करना हम लोगों का कर्तव्य है।" साहब ने फिर भी इन लोगों को खड़ा ही रक्खा, और बातचीत आरंभ की।

साहब—वैल, टुम कौन है, क्या चाहटा ?

एक आदमी—हजूड़, हम व्यापाड़ी हैं विलायती कपड़े के। इन सतियागढ़ैयों ने हमाड़ा काम चौपट कड़ दिया है।

साहब—हाँ, उसके बाड ?

आदमी—हजूड़, हमाड़ी बिकड़ी बंद कड़ दी, गाहकों को माड़ा, कपड़ा लूट लिया, आग लगाई।

साहब—(क्रोध और आश्चर्य से) और पुलिस ने ?

आदमी—हजूड़, कुछ नहीं किया।

साहब—हम अभी सुपरिंटेंडेंट को चिट्ठी लिखटा है कि कुछ क्यों नहीं किया।

यों कहकर साहब भीतर चले गए, और लिखने का सामान ले आए। पत्र लिखकर आदमी को दे दिया, और बोले—"वैल, टुम जाओ, नाम बटाओ, रिपोर्ट लिखाओ, मट डरो, हम डेख लेगा।"

आदमी—हजूड़, जड़ूड़ जायँगे, पड़ बात ये है कै अब हमाड़ा विलायती कपड़ा कैसे बिके, हमें क्या कड़ना चाहिए ? हमाड़े बाल-बच्चे भूखे मड़ ड़हे हैं।

साहब—ओह, अब समझा, टुमारा रोज़ी गया, टुम भूखा मरटा !

दोनों—हाँ, हजूड़।

साहब—आज क्लब में हम सब साहब लोग से बोलेगा। टुमारे वास्टे चंडा कराएगा। टुम कपरा साहब के बँगले में बेचेगा। कोई नहीं बोलने सकेगा।

एक—आपकी पड़वस्ती है, जो हजूड़ ने मदद कड़ी। दो दिन से खाना भी नहीं खाया हजूड़।

साहब—( ) का नोट देता हुआ) हम टुमारा मडड करा डेगा। टुम विलायती कपरा

बेचना छोड़ो मट । हम कांग्रेसवालों को पिटवाएगा ।

आदमी—(सलाम करते हुए) हजूड़ की महड़बानी है। हम कल कपड़े लेके आएँगे। हजूड़ हमें चिट्ठी देंगे, वहीं हम बेचेंगे । (हाथ जोड़कर) गड़ीब ब्यापाड़ी हैं। आप ही का काम कड़ते हैं।

साहब—अच्छा, टुम शाम को चार बजे आओ। हम टुमको एक जगह ले चलेगा, अपने मोटर में बिठलाकर। वहाँ अफ़सरों से मुलाकाट करा डेगा।

आदमी 'बहुत अच्छा' कहकर चले गए।

(३)

आधुनिक ढंग के एक सुसज्जित कमरे में आठ-दस मनुष्य आपस में बैठे कुछ परामर्श कर रहे हैं। मनुष्यों में कुछ अँगरेज़, कुछ मुसलमान और दो हिंदू हैं । ये लोग व्यापारी हैं या दलाल हैं, यह तो पता नहीं, लेकिन बातचीत इस ढंग से कर रहे हैं, मानो 'एक जान, कई क़ालिब हों ।' परामर्श इस बात का हो रहा है कि विलायती कपड़ा किस ढंग से बेचा जाय। बहुत देर के बाद अंत में यह निश्चय हुआ कि (१) विलायती कपड़े की एक बड़ी भारी दूकान खोली जाय, और वह दोनो हिंदुओं के नाम से। दूकान का नाम रहे दिवाड़ामल्ल-सूपचंद। (२) गांधी-टोपी और खद्दर के कुरते पहनाकर कुछ हिंदुओं को देशी के साथ विलायती कपड़ा बेचने पर तैनात किया जाय। इस काम के लिये उन्हें छोटे-छोटे ठेले दिलवा दिए जायँ, जिनमें नीचे विलायती और ऊपर देशी कपड़ा रखकर वे फेरी लगाया करें। मुसलमान विलायती कपड़ा खुल्लमखुल्ला बेचें। यदि कोई वालंटियर उनसे छेड़-छाड़ करे, तो वे अपनी रक्षा करें, और शोर मचावें कि हिंदू लोग मुसलमानों को रोज़गार न करने देकर भूखा मारना चाहते हैं। झगड़े को तुरंत ही हिंदू-मुस्लिम-विद्वेष का रूप दे दिया जाय, और मुसलमानों के हृदय में हिंदुओं के प्रति द्वेष उत्पन्न किया जाय। पुलिस इन फेरीवालों की रक्षा करे। (३) दिवाड़ामल्ल-सूपचंद की दूकान पर खुल्लमखुल्ला विलायती कपड़ा बेचा जाय, धरना दिए जाने पर पुलिस से मदद ली जाय, और ख़ूब गिरफ़्तारियाँ कराई जायँ।

(४)

दिवाड़ामल्ल सूपचंद के गोदाम में विलायती कपड़ा पटा पड़ा है । साँझ को रोज़ धरना, पुलिस के हाथ और गिरफ़्तारियाँ देखने में आती हैं। इधर शहर में विलायती कपड़ा छिपा-चोरी धड़ाधड़ बिक रहा है। जो बातें सोची गई थीं, वे सभी लगभग पूरी उतर रही हैं। दूकान के असली संचालक बड़े प्रसन्न हैं।

किसी का बिक रहा कपड़ा, किसी का फट रहा सर है;
किसी का है उजड़ता, तो किसी का बस रहा घर है।

लोग कहते हैं, दिवाड़ामल्ल बड़ा प्रेत है, जो

अपने ही भाइयों और बहनों को जेलखाने में भरवा रहा और उन पर अत्याचार करा रहा है। थोड़े दिनों तक शहर में बड़ी चहल-पहल रही। कुछ दिनों बाद एक दिन दिवाड़ामल्ल-सूपचंद की दूकान बंद रही! फिर एक दिन के लिये खुली, और बंद हो गई। कभी बंद रहे, और कभी खुले—कुछ दिनों यही ढर्रा रहा। फिर जो एक दिन बंद हुई, सो न खुली।

(५)

एक दिन सबेरे, कोई ९ बजे, मैं उधर होकर कहीं जा रहा था, तो देखा कि इस सुप्रसिद्ध दूकान पर बड़ी भीड़ जमा है। ज्ञात हुआ, कुछ दावेदार माल कुड़क कराने के लिये दूकान खुलवा रहे हैं। दीवानी कचहरी का एक आदमी—अमीन या बेलिफ़—दूकान का ताला तोड़ने आया है। जो लोग दावेदार हैं, उनमें अँगरेज, मुसलमान, हिंदू सभी हैं। एक लुहार को बुलाकर, ।) पैसे देकर ताला तुड़वाया गया। भीतर देखा, तो कपड़े का एक टुकड़ा भी नहीं! यहाँ तक कि जो दरियाँ बिछी थीं, वे भी नदारद! बिजली की बत्तियाँ और पंखे भी कोई उतार ले गया! हाँ, चीड़ की टूटी संदूक़ों के कुछ तख़्ते जहाँ-तहाँ पड़े हैं। जहाँ पर बड़ी बत्ती लटकी थी, वहाँ पर काग़ज़ की एक गेंद-सी बनी हुई लटक रही थी। खोलने पर देखा गया, उसमें कुछ लिखा हुआ है। पढ़ा गया—"साहब, हम रुपया कमाने निकले थे, सो आपकी बदौलत खूब कमा लिया। आपको सोचना चाहिए था कि जब हम अपने देश वालों के ही सगे नहीं हुए कि जिनसे हमारा रोज़ वास्ता पड़ता है, तो भला आपके सगे कब हो सकते थे! खैड़, अब जाने दोजिए। आप किसी और बेवक़ूफ़ को पकड़िए, और हम भी किसी और को पकड़ें। बस।"

चिट्ठी सुनकर दावेदार एक दूसरे की ओर देखने लगे।

एक से मैंने पूछा—"और क्यों साहब, गोदाम में—"

बात पूरी होने से पहले ही वह मेरी ओर आँखें निकालकर चिल्ला उठा—"सूअर का बच्चा टाट का बोरा तक उठा ले गया!"

कविता और हृदयावेश

[श्रीयुत सत्यप्रकाश एम्० एस-सी०]



यह सौभाग्य की ही बात है कि हिंदी-साहित्य के वर्तमान परिवर्तन-काल में कविता के भिन्न-भिन्न स्वरूपों की आलोचना की जा रही है। भारतीय प्रवृत्ति के अनुसार इस समय से पूर्व यह प्रश्न कभी नहीं उठाया गया था कि कविता की उपयोगिता क्या है, अथवा मनुष्य कविता को क्यों चाहे? यह बात स्वतःसिद्ध समझी जाती थी कि जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपनी आंतरिक प्रेरणा से, बिना तर्क-वितर्क किए हुए ही आहार-विहार करता है, इन कार्यों को वह आवश्यक नहीं, प्रत्युत स्वाभाविक समझता है, उसी प्रकार कविता भी मनुष्य का, विशिष्ट भावनाओं की दृष्टि से, स्वाभाविक अंग है। उपयोगिता और आवश्यकता का प्रश्न कवि एवं कविता के प्रेमियों के लिये व्यर्थ ही है, यद्यपि इसका तात्पर्य यह नहीं कि कविता उपयोगिता एवं आवश्यकता-शून्य है। स्वाभाविक वृत्तियों को भी जीवन में विशेष स्थान है, पर ये वृत्तियाँ इसका आसरा नहीं देखतीं कि मस्तिष्कोत्पन्न तर्क-वितर्क द्वारा इनका समर्थन होता है या नहीं। ये वृत्तियाँ सदसद्विवेकवती बुद्धि की गवाही की भी इच्छुक नहीं।

मनुष्य के शरीर-संस्थान में बाह्य अनुभूतियों के अतिरिक्त हृदय और मस्तिष्क ही प्रधान हैं। हृदय और मस्तिष्क के व्यापारों में जहाँ बहुत कुछ संबंध है, वहाँ एक प्रकार की प्रतियोगिता का भाव भी है। हृदय मस्तिष्क के ऊपर अपना आधिपत्य रखना चाहता है, और मस्तिष्क भी हृदय को अपने आश्रित रखने का प्रयत्न करता है। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में इस संघर्ष में कभी मस्तिष्क की विजय होती है, और कभी हृदय की। मस्तिष्कोन्नत विचारवान् व्यक्ति बहुधा हृदय-शून्य पाए जाते हैं, और भावुकता में तल्लीन सहृदय व्यक्तियों का मस्तिष्क कुंठित हो जाता है। प्रेमोन्मादित हृदय अपने प्रेमी के लिये सर्वस्व निछावर करने के लिये उत्कंठित हो उठता है, पर मस्तिष्क उसके सामने तर्क-वितर्क उपस्थित करके उसके आवेश को शिथिल कर देता है। हृदयवान् व्यक्ति अपने प्रेमी के निर्वाचन में गुणावगुण की मीमांसा करने में व्यर्थ समय नहीं खोता। उसकी दृष्टि, उसका हृदय और उसकी संपूर्ण भावनाएँ स्वतः किसी-न-किसी तक पहुँचकर झंकृत होने लगती हैं। उसकी आँखों ने जिसको चाहा, मन ने भी उसी का समर्थन किया, और कानों ने भी उसी झंकार का अनुमोदन किया। नेत्रों ने उसके रूप की सराहना की, और कानों ने उसके प्रत्येक शब्द में अलौकिक आकर्षण का अनुभव किया। हृदयवान् व्यक्ति की संपूर्ण वृत्तियाँ प्रेमी का समर्थन करने लगती हैं। हृदयवान् व्यक्ति को इसका अवसर ही नहीं मिलता कि वह यह सोचे कि आगे क्या होगा, और पीछे क्या था। पर विचारवान् व्यक्तियों का स्वयंवर इसके बिलकुल ही विपरीत है। कानों ने जिसके स्वर की सराहना की, नेत्रों ने उसकी उलटी ही गवाही देनी आरंभ की, उस कर्णाकर्षक वस्तु के रूप में उसने कुछ दोष ढूँढ़ निकाले। मन इससे भी आगे बढ़ा, और उसने कुछ अलग ही भावनाएँ प्रस्तुत कीं, और बुद्धि ने सब बना-बनाया काम ही बिगाड़ दिया। विचारवान् व्यक्ति प्रेमी को कसौटी पर चढ़ाकर यह देखना चाहता है कि उसकी योग्यता क्या है, उसमें विद्या कितनी है, धन-संबंधी उसकी अवस्था क्या है, और उसका स्वभाव कैसा है। यही नहीं, उसके अन्य संबंधियों की परिस्थिति कैसी है।

कहने का तात्पर्य यह कि मनुष्य की संपूर्ण वृत्तियाँ

हृदय से संयोजित रहती हैं, और यदि हृदय ही किसी पर मचल जाय, तो ये सभी वृत्तियाँ एक स्वर से हृदय का साथ देती हैं, यदि हृदय किसी से रुष्ट है, तो ये संपूर्ण वृत्तियाँ भी उसमें कुछ-न-कुछ दोष ढूँढ़-कर हृदय का ही समर्थन करेंगी। पर मस्तिष्क में ऐसा नहीं है। वृत्तियाँ इस बात के लिये बाध्य नहीं कि वे मस्तिष्क की अनुगामिनी बनें। हाँ, कभी-कभी मस्तिष्क हृदय को भी अपने अनुकूल कर लेता है, और तब स्वतः सभी वृत्तियाँ उसके अनुकूल हो जाती हैं।

मस्तिष्क कल्याणमय है, पर हृदय भावुक है, और दोनो के संपर्क से मानवी जीवन का उद्भव होता ह। मस्तिष्क-हीन पशुओं का जीवन भावुक हो सकता है, क्योंकि उनके जीवन में हृदय की वृत्तियों की प्रधानता है। हृद्गत भावों की वेदी पर जितना पशुओं का बलिदान होता है, उसकी समता मनुष्य कर ही नहीं सकता। एक दीपक पर, केवल हृदयावेश के कारण, सहस्रों पतंगे क्षण-भर में ही अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर देते हैं। अनेक जाति के जीवों की तो एक बार की दांपत्य-प्रवृत्ति के पश्चात् ही मृत्यु हो जाती है। हृदयावेश के विषय में पशु ही निस्संदेह मानव-विकारों के गुरु हैं, और यही कारण है कि काव्य-साहित्य में भ्रमर, चातक और पतंगों का इतना वर्णन है।

यदि मनुष्य में हृदय न होता, और इसकी संपूर्ण वृत्तियाँ मस्तिष्क के ही अधीन रहतीं, तो मनुष्य एक विचित्र जंतु बन जाता। दर्शन-शास्त्र का यह साक्षात् अवतार होता, अपने विचारों की छान-बीन में यह स्वयं मर मिटता, भूख लगते समय यह भूख के कारणों की मीमांसा करता, और इस मीमांसा में ही उसका जीवनांत हो जाता। मस्तिष्क के कारण प्रत्येक समस्या के समाधान में विलंब होता है, पर हृदय में तत्परता होती है। प्रश्न सम्मुख उपस्थित होते ही वह अपनी सम्मति प्रदान कर देता है, और यह सम्मति जब तक मनुष्य का मस्तिष्क उस विषय में अपना निर्णय न दे दे, तब तक कल्याणमय समझी जा सकती है, पर अंततो गत्वा इसे कल्याणमय होने के लिये मस्तिष्क के समर्थन की आवश्यकता है।

हृदयावेश ने जिस विज्ञान को जन्म दिया, उसका नाम कविता है, और मस्तिष्क ने जिसकी उत्पत्ति की, वह तत्त्वज्ञान या दर्शन है। दर्शन के अंतर्गत अध्यात्म-वाद से लेकर प्रयोगिक विज्ञान और इतिहास, अर्थ-शास्त्र आदि सभी का समावेश है। मनुष्य-हृदय और मस्तिष्क का संपर्क है, अतः इसके प्रत्येक मस्तिष्कवान् कार्य में हृदय का कुछ-न-कुछ आभास बना ही रहता है। इसी प्रकार की भावनाओं से प्रेरित होकर उपनिषद्कार दार्शनिक ऋषि भी कभी-कभी कवियों के-से आलाप करने लगते हैं। यही नहीं, मनुष्य के हृदयवान् कार्य में भी मस्तिष्क का सहयोग हो जाता है, और इसकी प्रधानता होने पर ही वाल्मीकि, व्यास, तुलसीदास आदि कवि स्मृति और धर्म-नीति के उल्लेखों में अपने कवित्व को भूल जाते हैं। मस्तिष्कोत्पन्न कल्याणमय भावनाएँ कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतल में बाधक नहीं होती हैं, पर भव-भूति के उत्तर-राम-चरित में ये कहीं-कहीं प्रबल हो उठती और सीता के परित्याग में राम की हृदय-शून्यता का भी समर्थन कराती हैं।

कविता का मूलांकुर हृदय में उत्पन्न होता है, और इस दृष्टि से प्रत्येक हृदयवान् व्यक्ति कवि है। एक निरक्षर भट्ट भी हृदयवान् होने के कारण काव्यानंद-मग्न होकर मतवाला हो सकता है, उसके हृदय में भी कालिदास और सूर के समान ही आवेश और कल्पना उत्पन्न हो सकती और होती भी है, पर साधारण भाषा में इन भावों और आवेशों की उत्पत्ति मात्र से ही कोई कवि नहीं कहला सकता। कवि वही है, जो शब्द-साधन द्वारा इस प्रकार के भावों को यथा-शक्य मौलिक रूप में व्यक्त कर सके। कविता का प्रथम संस्करण हृदय में होता है, और कवि उसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित करता है। कवि की श्रेष्ठता का

सफलता इसी में है कि उसका यह दूसरा संस्करण मौलिक संस्करण के कितने अनुकूल है। दूसरे संस्करण में वह हृदयावेश भ्रष्ट न होने पावे, इसी में उसकी कुशलता है। जो व्यक्ति इस आदर्श में जितना ही सफल होता है, उतना ही उसे महत्त्व दिया जाता है।

अरस्तू के विचार में प्रत्येक कला का उद्भव अनुकरण के कारण होता है। चित्रकारी, शिल्प आदि के संबंध में उसके ये विचार कुछ ठीक भी समझे जा सकते हैं, पर वह कविता को भी एक कला मानता है, और उसकी उत्पत्ति का कारण भी अनुकरण ही समझता है। उसके विचारानुसार मनुष्य में अनुकरण करने की प्रवृत्ति होती है, और इसी प्रवृत्ति के कारण कविता का आविर्भाव होता है। बड़े-बड़े राजों या महान् पुरुषों के अनुकरण के आधार पर महाकाव्य और ऐतिहासिक काव्यों (Epics) की रचना की जाती है। इस अनुकरण में आवेशों और संवेदनाओं को भी स्थान दिया जाता है, जिनकी प्रबलता होने पर दुःखांत काव्य, जो काव्य की परा काष्ठा समझे जा सकते हैं, प्रादुर्भूत होते हैं।

अरस्तू के ये कविता-संबंधी विचार सर्वथा भ्रम-मूलक हैं, और कविता के बाह्य रूप की दृष्टि से चाहें ये कुछ उपयुक्त भी क्यों न हों, पर आंतरिक दृष्टि से इनका समर्थन नहीं किया जा सकता। कविता को कला मानना ही दोष-युक्त है। कला-शब्द के साथ-साथ कृत्रिमता का भाव है। कला-शब्द मस्तिष्क-प्रधान है, पर कविता का संबंध तो हृदय से है। कला का प्रवाह नहर के समान एक निर्दिष्ट मार्ग में होता है, पर कविता स्वच्छंदचारिणी सरिता है, जो स्वतः बह निकलती है। हृदय-शून्य मरुस्थली में कृत्रिम नहर बहाकर निकाली जा सकती है, पर कविता का पथ स्वनिर्मित होता है।

मस्तिष्कवान् व्यक्तियों ने कविता की सुंदर मनोरम नहरें बहाने का प्रयत्न किया, उनकी विद्वत्ता के कारण उन्हें सफलता भी मिली, पर उनकी रचनाओं को कविताभास ही कहना चाहिए, क्योंकि उनमें कविता की नक़ल उतारी जाती है। इस अनुकरण की प्रवृत्ति से जिस रचना का जन्म होता है, वह निर्जीव मूर्ति के समान है, जो न स्वयं हँस सकती और न रो सकती है। शिल्पकार ने उसे जैसा रूप दे दिया, उसके अतिरिक्त अन्य भावों की उसमें स्थापना ही नहीं हो सकती है।

मानव-जीवन की तीन अवस्थाएँ हैं—शैशव, यौवन और जरा। इन तीन अवस्थाओं ने तीन प्रकार के भावों को जन्म दिया है—वैचित्र्य, अनुराग और निवृत्ति। शिशु प्रत्येक दृश्य को कौतूहल-पूर्ण दृष्टि से देखता है, प्रत्येक स्थान पर उसे नवीनता, विचित्रता दिखाई पड़ती है। पर उसे न किसी से वैराग्य होता है, न अनुराग। उसे तो प्रत्येक स्थान पर नवीनता चाहिए। पर ज्यों-ज्यों उसकी अवस्था प्रौढ़ होती जाती है, उसके निरंतरानुभव के कारण, उसकी शैशव-प्रवृत्ति में क्षीणता आने लगती है। वैचित्र्य का भंडार उसके लिये समाप्त हो जाता है। उसका उमड़ता हुआ यौवन उसे सौंदर्य के उद्यान में ले जाता है। शैशव के कौतूहल-पूर्ण पुष्पों में उसे आसक्ति का अनुभव होता है। वह मतवाला युवक अपने हृदय में संपूर्ण व्याप्ति को अंकित कर देता है। उसे संपूर्ण सृष्टि युवा प्रतीत होती है। गति, हास, अश्रु, स्पर्श, स्वर और रूप सभी में नवीन भावनाओं की जागृति होती है। उसका यौवन संसार को एक नए रंग में रँग देता है। पर यह अवस्था बहुत दिनों नहीं रहती। वृद्धावस्था में शरीर शिथिल होने के कारण वैराग्य की उत्पत्ति होती है। प्यारे फूलों से घृणा हो जाती है, कोमल-स्पर्श भी काँटों के समान चुभने लगते हैं, मीठे स्वरों में कर्कशता आ जाती है। वृद्ध की मुसकान और उसकी अश्रु-धारा में बीभत्सता की मात्रा प्रतीत होने लगती है। वैराग्य ही वृद्ध का सौंदर्य है।

कविता के भी ये ही तीन अंग हैं—वैचित्र्य, अनुराग और निवृत्ति। युवा होते हुए भी कवि इस सृष्टि का शिशु है, वह तितलियों के पंखों पर आरोहित होकर पुष्पों की पँखुड़ियों पर नृत्य कर सकता है,

और प्रकृति-निहित वैचित्र्य का अनुभव करके बालक के समान प्रफुल्लित हो सकता है। पर इस वैचित्र्य-कानन का अनुभव व्यक्त करना कवि के लिये कुछ अस्वाभाविक-सा हो जाता है। वैचित्र्य का शैशव से संबंध है। शैशवी शिशु भावों को भाषाबद्ध व्यक्त करने के अयोग्य होते हैं, अतः वे अपने अनुभव को कविता के रूप में प्रकट कर ही नहीं सकते। यौवन आते ही शैशव प्रवृत्तियों पर अनुराग का रंग चढ़ जाता है, अतः युवा कवि के लिये अनुराग-हीन वैचित्र्य का उल्लेख करना असंभव हो जाता है। यही कारण है कि कवि की कृतियों में बालोचित वैचित्र्य का अभाव पाया जाता है। जो कुछ कवि को अनुभव होता है, वह दूसरे बालकों की प्रवृत्ति देखकर अनुमान द्वारा, क्योंकि बालक के हृदयस्थल में प्रवेश करना तो संभव ही नहीं, और इस अनुभव में भी अनुराग की मात्रा ही विशेष रहती है।

यौवन अनुराग-प्रधान है, इसमें तो संदेह नहीं; पर यौवन शैशव और जरावस्था का संगम भी है, और संगम होने के कारण यौवन में कभी-कभी सभी प्रवृत्तियों का संपर्क भी हो जाता है। इस संपर्क के कारण युवा कवि एक नई सृष्टि की रचना करता है, जिसमें शैशव की चंचलता, यौवन का अनुराग और वृद्धावस्था का वैराग्य तीनो ही उपस्थित रहते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण ही वह अपनी शांत दृष्टि से अनंत की कल्पना करता और असीम देश में परदार शिशुओं के साथ विहार करता है। इन प्यारी परियों की क्रीडास्थली में जीवन के निहित रहस्यों को उद्घाटित करता है। परमात्मा की इस रची हुई सृष्टि को वह युवक एक दूसरा ही रूप दे देना चाहता है। इन भावनाओं को विना समझे केवल शुष्क तर्क के आधार पर निम्न-लिखित प्रकार के विचारों में कुछ भी तथ्य नहीं प्रतीत होता—

"अब विचारने की बात है, किसी अगोचर और अज्ञात के प्रेम में आँसुओं की आकाश-गंगा में तैरने, हृदय की नसों का सितार बजाने, प्रियतम असीम के संग नग्न प्रलय-सा तांडव करने या मुँदे नयन-पलकों के भीतर किसी रहस्य का सुखमय चित्र देखने को ही—'भी' तक तो कोई हर्ज न था—कविता कहना कहाँ तक ठीक है? चारो ओर से बेदख़ल होकर छोटे-छोटे कनकौवों पर भला कविता कब तक टिक सकती है। असीम और अनंत की भावना के लिये अज्ञात और अव्यक्त की ओर झूठे इशारे करने की कोई ज़रूरत नहीं। व्यक्त पक्ष में भी वही असीमता और अनंतता है। व्यक्त और अव्यक्त में कोई पारमार्थिक भेद नहीं।..." ('काव्य में रहस्यवाद')

किसी नियमित रीति पर पद्य-रचना कर देना कविता नहीं। महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार नायक की प्रशंसा में सर्गबद्ध विस्तृत वर्णन लिखकर नगरों, रणक्षेत्रों, उपवनों, ऋतुओं और ऐसे ही अन्य विषयों पर पोथे तैयार कर देना और उनके वाक्यों को अनेक चित्र-मय अलंकारों से सुसज्जित कर देना पुरुषार्थी और बुद्धि-मान् के लिये कौन कठिन बात है। पर हृदयोद्भव काव्य इससे सर्वथा विपरीत है। कविता निरर्थक शब्द-जाल नहीं। कर्णकटु संयुक्ताक्षरों पर अमृत-ध्वनि लिख देने से ही कविता नहीं बन सकती, और न श्लेष और यमकों के बलात्कार से। रूपकों, उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के संग्रह का नाम भी कविता नहीं। शब्द-जाल और अर्थ-जाल, दोनो से ही कविता दुःखी है। लेखनी उठाकर शतावधानी हो जाना कविता का उपहास करना है। कविता मुशायरों या मुजरों में गाने की चीज़ नहीं, और न भाटों द्वारों विरदावली और या आश्रयदाता की चाटुकारी की। बड़े-बड़े धनियों की पाशविक प्रवृत्ति को उत्तेजित करने का भी यह साधन नहीं। वैचित्र्य, अनुराग और वैराग्य द्वारा झंकृत हृदय को समझना और उसको व्यक्त करना ही कविता है।

यह कहा जा चुका है कि हृदयावेश से जिस विज्ञान का जन्म होता है, वह कविता है। जिस 'सत्य' का कविता द्वारा प्रतिपादन किया जाता है, वह सत्य उससे सर्वथा भिन्न है, जिसका समर्थन मास्तिष्क

विज्ञानों द्वारा कराया जाता है। मस्तिष्क शरीर को अस्थि, रुधिर, मज्जा, मांस आदि पदार्थों का संघट्ट समझता है, पर हृदय जिस शरीर का अनुभव करता है, वह प्रेम, हास, उन्माद, आसक्ति, स्नेह, सौंदर्य अथवा इनके प्रतिद्वंद्वी विकारों द्वारा बना होता है। जिस रूप पर हृदय की आसक्ति होती है, उसके लिये यह आवश्यक नहीं कि वह मस्तिष्कोद्भव उपमाओं द्वारा समर्थित हो ही जाय। सौंदर्यवान् व्यक्ति की नासिका तोते की-सी हो या न हो, उसके स्कंध वृषभ के-से, उसकी ग्रीवा शंख-सी, उसके केश सर्प-से, उसकी गति गज-गति या हंस-गति-सी हो या न हो, उनमें इन सबके विना भी आकर्षिणी शक्ति विद्यमान रहती है। एक प्रेमी दूसरे प्रेमी के हाव-भाव और कटाक्षों में जिस भावुकता का अनुभव करता है, उनको इस प्रकार की उपमाओं द्वारा समर्थित करना सर्वथा हास्यास्पद ही है। ये उपमाएँ अधिकांशतः बाद को मस्तिष्क द्वारा आरोपित कर ली जाती हैं, और जिस व्यक्ति का पांडित्य जितना ही अधिक हो, वह उतनी ही उत्प्रेक्षाएँ और उपमाएँ ढूँढ़कर प्रदर्शित कर सकता है, पर कृत्रिम प्रदर्शिनी का नाम कविता नहीं।

किसी युवा में यदि आकर्षण है, तो वह उसकी नासिका, नेत्र, कपोल, ओष्ठाधर, भुजा, स्कंध, चरण आदि की बनावट-विशेष के कारण नहीं। यह सौंदर्य वस्तुतः उसके मादक यौवन के कारण है, जो उसके अंग-प्रत्यंग से फूटकर वह निकल रहा है। यदि किसी वयोवृद्ध संन्यासी में सौंदर्य है, तो इसका कारण उसके वस्त्र, सघन दाढ़ी, और जटा-जूट नहीं हैं, संन्यासी का सौंदर्य उसकी तपस्या, त्याग, निःस्वार्थ, परोपकारशीलता और वैराग्य के कारण है। यदि किसी नन्हे बच्चे में सौंदर्य है, तो वह भी उसके अंग-प्रत्यंगों के कारण इतना नहीं है, जितना कि उसकी शैशवी चपलता, चंचलता और उत्सुकता के कारण है। मजनू की लैला चाहे संसार-भर के लिये कुरूपतम ही क्यों न हो, पर मजनू के लिये उसमें अद्वितीय सौंदर्य है, क्योंकि लैला के यौवन-सौंदर्य ने मजनू के यौवन-सौंदर्य को झंकृत कर दिया है। कोई बच्चा कितना ही कुरूप क्यों न समझा जाता हो, पर यदि उसने अपनी माता या भगिनी के हृदय में शैशवी चपलता के कारण वात्सल्यता उत्पन्न कर दी है, तो वही उनके लिये सुंदरतम हो जाता है। यदि किसी वैरागी का त्याग आपकी विशेष भावनाओं को झंकृत कर देने में समर्थ हुआ है, तो आप उसके चरणों में अपनी समस्त श्रद्धांजलि भेंट कर देंगे, और वह वैरागी ही आपको अनन्यतम सौंदर्य का भंडार प्रतीत होगा।

इस प्रकार इस रूपवान् जगत् के सौंदर्य को अनुभव करने के लिये हृदय के अंदर तदनुरूपी सौंदर्य की भावनाओं का होना परमावश्यक है। इस हृदयानुभूत सौंदर्य को व्यक्त करना ही कविता है, पर हृदयानुभूति में मस्तिष्कोद्भव कल्पनाओं को अधिक हस्तक्षेप न करना चाहिए। पांडित्य द्वारा उनमें जटिलता प्रदान करना वस्तुतः कविता का प्राणांत करना है।

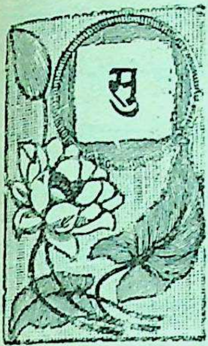
हृदयवान् कवियों की रचनाओं में मौलिकता होती है, पर मस्तिष्कवान् कवि किसी भी सहृदयी कवि की रचनाओं का अनुकरण करके मौलिकता की झूठी छाप देने का प्रयत्न करता है। तुलसीदास का हृदय राम पर निछावर था, अतः राम-चरित-मानस में उन्हें अपूर्व सफलता मिली, पर केशव की राम-चंद्रिका या पद्माकर के राम-रसायन एवं अन्य कवियों की रामायणों में मस्तिष्क प्रधान होने के कारण कवितादेवी का भयंकर और बीभत्स रूप ही तैयार किया गया है। रामचंद्रिका के पांडित्य-पूर्ण ग्रंथकार के लिये सैकड़ों नए छंद और बहु-अर्थक श्लेष या विरोधाभास रख देना बाएँ हाथ का खेल था, पर फिर भी उसकी संपूर्ण रचना मृत काव्य अथवा कविताभास ही है। सूरदास ने भक्ति और वात्सल्य का जो भावुक चित्र खींचा है, उससे स्पष्ट है कि उनकी रचनाओं का स्रोत उनका हृदय था, न कि मस्तिष्क। उनके इस मौलिक पथ पर दूसरों ने भी पैर बढ़ाए, पर हृदय की झंकार ने उनका साथ न दिया, उन्होंने

कविता के साथ बलात्कार किया। नक़लचियों की कमी भला कब होती है, बिहारी को अपनी सतसई में सफलता मिली, तो उसके ढंग पर नक़ल करनेवाले बहुत-से पैदा हो गए। आजकल ही देखिए, पंत का-सा हृदय रखनेवाले तो विरले ही होंगे, पर उनकी रचनाओं का अनुकरण करनेवाले बहुत हैं।

हृदयवान् व्यक्तियों की रचनाओं में कवि का व्यक्तित्व प्रतिबिंबित होता रहता है, पर मस्तिष्कवान् पंडितों की रचनाओं में व्यक्तित्व का अभाव पाया जाता है। व्यक्तित्व वस्तुतः बहुत ही महत्त्व-पूर्ण गुण है, और यह सर्व-व्यापी होता है। इस व्यक्तित्व के कारण ही दो मनुष्यों की आवाज़, चाल-ढाल, बोल-चाल, हँसी, यही नहीं हस्ताक्षरों में भी विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है, और इसके द्वारा ही मनुष्य की पहचान होती है। इसी प्रकार हृदयता में भी व्यक्तित्व होता है। मस्तिष्क की सहायता से इस व्यक्तित्व में विचार उत्पन्न किए जा सकते हैं। मेरी हृदयता मेरी है, और आपकी हृदयता आपकी है, दोनो में दो प्रकार की छापें लगी हुई हैं। आपकी कविता आपकी हृदयता का प्रतिबिंब होनी चाहिए, और मेरी कविता में मेरी हृदयता का प्रतिरूप होगा। जिस प्रकार जालसाज़ी करके दूसरे के हस्ताक्षर बनाए जा सकते हैं, इसी प्रकार मस्तिष्क की सहायता से अपनी हृदयता विकृत करके दूसरे की हृदयता का कपट-जाल रचा जा सकता है। कवि को चाहिए कि वह अपने हृदय को समझे, उसका निजी हृदय ही उसकी रचनाओं में मौलिकता ला देने के लिये पर्याप्त है। दूसरे का हृदय कहीं से मोल तो मिल ही नहीं सकता। तुम्हारी कविता तुम्हारे हृदय की प्रतिछाया होनी चाहिए; तभी उसमें मौलिकता, व्यक्तित्व और सत्यता होगी। मस्तिष्क की सहायता से अनुकरण-वृत्ति द्वारा अपनी भावुकता को कुंठित न करना चाहिए।

जड़-विज्ञान का नवीन रूप

[श्रीनलिनीमोहन सान्याल भाषातत्त्वरत्न, एम्० ए०]



सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर ऑलिवर लॉज ने न्यूयार्क के "साइंटिफ़िक अमेरिकन" - पत्र में जड़-विज्ञान के नूतन रूप के विषय में एक संक्षिप्त लेख प्रकाशित किया है। संक्षेप में, सर ऑलिवर लॉज का विश्वास है कि हमारे चारो ओर चिर-परिचित जो सब जड़ पदार्थ हैं—यथा वस्तु, ओजः, विद्युत्, माध्याकर्षण, यहाँ तक कि जीवन भी—क्रमशः ऐसा मालूम होता है कि वे महाकाश या महाशून्य के भिन्न-भिन्न रूप-मात्र हैं। यह महाकाश क्या है ? इसका रूपांतर ही क्या है, जिसके प्रभाव से यह इतने विभिन्न रूप ग्रहण कर सकता है ? इसी का आविष्कार ही वर्तमान जड़-विज्ञान की एक बड़ी भारी समस्या बन रही है। कुछ समय पहले हम असंख्य समस्याओं से व्याकुल हो रहे थे। वे सब समस्याएँ अब नहीं हैं—अब एक-मात्र यह समस्या आ पड़ी है। पर यह एक ही समस्या अत्यंत कठिन और जटिल है।

सर ऑलिवर लिखते हैं कि वर्तमान शताब्दि के आरंभ में अन्यान्य पदार्थों में "इलेक्ट्रोन" वा विद्युदणु ने वैज्ञानिक पर्यवेक्षणकारियों की दृष्टि विशेषतया आकर्षित की थी। उन्होंने खयाल किया था कि जड़-विज्ञान के अंधकारमय जगत् में यह विद्युदणु ही एक-मात्र दिङ्निर्णायक वस्तु है, जो ध्रुव-नक्षत्र की भाँति जड़-वैज्ञानिकों का विज्ञान-समुद्र में पथ-प्रदर्शक होगा। परंतु इस विद्युदणु का स्वरूप जितना ही प्रकाश पा रहा है, उतना ही अनुमान होता है कि यह तो अचल तारा नहीं है, यह धूम्रकेतु के सदृश है, इसकी चतुःसीमा अस्पष्ट हो रही है, इसका अवस्थान अनिश्चित हो रहा है। यहाँ इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि जिस दृष्टि से वैज्ञानिक लोग विद्युदणु को अब तक देख रहे थे, उस दृष्टि से अब नहीं देखते। अब समग्र जड़-जगत् में अधिकतर ऐक्य-भाव दृष्ट होना आरंभ हुआ है। सब जड़ वस्तुओं के एकत्व का बोध होने लगा है। यह वर्तमान काल में जैसा कौतुकावह है, भविष्यत् के लिये वैसा ही आशाप्रद है।

जड़ वस्तुओं के रूप और गठन की विभिन्नता मिटकर किस तरह वे एक-मात्र वस्तु में पर्यवसित हो सकती हैं, अब उसकी आलोचना की जाती है।

परमाणुओं के जीवन के अनेक रहस्य प्रकाश में आ गए हैं। नक्षत्र-जीवन के भी अनेक

रहस्य ज्ञात हो गए हैं। आयात-दृष्टि से परमाणु और तारका में कितनी ही विभिन्नता देख पड़ती है, इनमें कोई सादृश्य रह सकता है, ऐसी प्रत्याशा कौन कर सकता था? अब देखा जाता है कि दोनो एक ही वस्तु हैं। एक के विषय में अनुसंधान करते हुए दूसरे के जीवन की बहुत-सी बातें ज्ञात हो रही हैं। कदाचित् यह ठीक है कि किसी तारा का अभ्यंतरीण तथ्य जितना जाना गया है, पृथिवी की अभ्यंतरीण ख़बर उतनी नहीं जानी गई। कुछ तारे आलोक-च्छटा विकीर्ण कर खंड-खंड हो जाते हैं। कुछ परमाणुओं का भी धर्म ऐसा ही है। कोई जड़ वस्तु स्थायी नहीं। हरएक वस्तु गतिशील या प्रवहमान अवस्था में है, अर्थात् परिवर्तनशीलता ही जड़ वस्तु का धर्म है। वैज्ञानिक लोग कह रहे हैं कि उनमें रक्षणशीलता या अपरिवर्तनीयता बिलकुल नहीं। यहाँ तक कि वैज्ञानिकों में ओज-वस्तु (या प्राण) में संदेह-युक्त होने का लक्षण देखा जाता है।

अभी से वस्तु और ओज, इन दोनो में अभेद्य संबंध खड़ा हो गया है, अर्थात् जो जड़ वस्तु है, वही ओज या प्राण-वस्तु है। ओज और जड़ वस्तु एक ही और अभिन्न हैं। ज्यामिति-शास्त्र के अनुसार दोनो वस्तुएँ महाकाश का एक-एक धर्म है, ऐसा विवेचित हो रहा है। इस विषय की और भी साधारण तौर से व्याख्या करके कहा जा रहा है कि जड़ वस्तु और ओज महाकाश और महाकाल के भिन्न-भिन्न रूप हैं। इस तरह से एक महान् एकत्व की सूचना दिखाई दे रही है। विज्ञान की स्थिति वर्तमान में भले ही कठिन हो; पर लक्षणों से प्रतीयमान हो रहा है कि एक दिन ऐसा आवेगा, जब सब जटिलताएँ दूर होकर सरलता प्रकट होगी। तब वस्तुओं की विभिन्नता का ज्ञान नहीं रहेगा, सब वस्तुएँ एक ही प्रतिभात होंगी। वस्तु परिणाम में विद्युत् या चुंबक मानो या न मानी जायँ, फ़िलहाल इन्हीं ने प्राधान्य प्राप्त किया है। अभी से दृष्टि-ज्ञान और आलोक-विज्ञान के ऊपर इन्होंने प्राधान्य फैलाया है। वस्तुओं का संशक्ति-धर्म इन्हीं पर निर्भर है। माध्याकर्षण के मूल भी ये ही हैं, ऐसा समझा जा रहा है। अभी से वस्तुएँ प्रधानतः विद्युत्-मूलक निर्धारित हुई हैं। किसी-किसी के मत में वस्तु विद्युत् के सिवा और कुछ भी नहीं—वह पूर्णतया विद्युत्-मात्र है। अब निश्चय के साथ जाना गया है कि ओजः शक्ति या तो विद्युत्-शक्ति के, नहीं तो चुंबक-शक्ति के आकार में प्रकाश पा सकती है।

ओज-वस्तु यथार्थ में क्या है, इस विषय में मतभेद रहने पर भी, वस्तु की क्रियाशीलता इस ओज-शक्ति का किसी-न-किसी आकार में बाहरी विकास-मात्र है। आकाश में भी जड़ धर्म है, यह आविष्कृत हो चुका है। वस्तु सब जड़-जगत् का एक क्षुद्र अंश-मात्र है, जो हमारे सामने अब जड़ वस्तु नाम से प्रतिभात होता है

वह अनंत जड़ वस्तु के अंश-मात्र की सामयिक विकृति है। परमाणुओं के ग्रह-उपग्रहों के और तारका-मंडलों के भीतरी अवकाशों के भीतर ही संभवतः जड़ वस्तुओं की क्रिया का प्रकाश होता है। पर बात यह है कि इस क्रिया का स्वरूप निर्णीत नहीं हो सकता।

वस्तुओं की खंडता और संहति के भावों की ओर अब तक जड़-वैज्ञानिकों की दृष्टि लगी थी। हमारा ध्यान इन्हीं के भीतर सीमाबद्ध था। किंतु अब हमारा मन अनुभूति-मात्र से संतुष्ट नहीं रह सकता। अब मन अनुभूति की सीमा पार करके ऊपर चढ़ रहा है—वस्तु जिस मौलिक अवस्था में अवस्थित है, वैज्ञानिक उसी की खोज में लगे हुए हैं। प्रत्येक तारा एक महाकाश के भीतर क्रियाशील है। प्रत्येक परमाणु भी उसी प्रकार महाकाश के भीतर गतिशील है—उसके चारो ओर आकाश है।

शून्य के विषय में हम कुछ-कुछ पहले से ही जान चुके हैं। हम जानते हैं कि आलोक-रश्मि शून्य के भीतर होकर विकीर्ण होती है। आलोक-रश्मि किस वेग से चलती है, यह भी हमें अज्ञात नहीं। प्रकाश-रश्मि के इन सब धर्मों के विषय में अब हमें कुछ संदेह नहीं। केवल उसकी भीतरी और अंतिम प्रकृति के विषय में हम अभी तक अधिक नहीं जान सके। हम समझते हैं कि यह आकाश ही का एक रूप है। किसी समय हमें इस रूप का यथार्थ परिचय मिलेगा, ऐसी आशा है। परंतु रूप-हीन आकाश कैसी वस्तु है, और समय ही कौन-सी वस्तु है—यह हम नहीं जानते।

शून्यमय आकाश के और एक रूप या स्थिति को हम वैद्युतिक शक्ति कहते हैं। इसको लेकर हम नाना प्रकार की परीक्षाएँ भी कर सकते हैं। आश्चर्य का विषय यह है कि तड़ित् की एक निश्चल अवस्था भी है। यह यांत्रिक शक्ति के अधीन है। इसमें कोई संदेह नहीं कि तड़ित् में भार भी है। अस्पष्ट ओज-शक्ति के एक और रूप को हम चौंबक क्षेत्र के नाम से अभिहित करते हैं। ये सब आकाश के विभिन्न रूप-मात्र हैं। संभवतः वस्तुओं के परमाणु के गठनोपादान समूह भी आकाश ही का एक विशेष रूप-मात्र हैं; क्योंकि परमाणु योग-तड़ित् और वियोग-तड़ित् शक्तियों के संयोग से गठित है। परमाणुओं के आकार के अनुपात से ही इन दोनो वैद्युतिक शक्तियों का दूरत्व निर्द्धारित होता है। परमाणुओं के गठनोपादान के इस धर्म के रहने के कारण ही परीक्षा संभव है। वर्तमान जड़-विज्ञान की प्रधान समस्या इसके सिवा और कुछ नहीं कि इन चिर-परिचित व्यापारों को समझने की चेष्टा करनी और इस प्रकार का एक चरम सिद्धांत खड़ा करना, जो अभी समझा नहीं भी जाय, तो कुछ हानि नहीं।

वास्तवता और युक्ति में जब ऐसा विरोध

उपस्थित होता है, जिसकी मीमांसा संभव नहीं, तब हम ऐसा सिद्धांत कर सकते हैं कि विश्व-जगत् में कोई त्रुटि नहीं है। जो कुछ त्रुटि है, वह हमारी अनुभूति या युक्ति की है। इस प्रकार का सिद्धांत करना हमारी विश्वास-प्रवणता का फल है, ऐसा कहा जा सकता है; परंतु विश्वास-प्रवणता तुरंत फल देनेवाली है, यह विशेष-विशेष घटनाओं से असंख्य बार सिद्ध हो चुका है। हम हवा खाते हुए टहलते-टहलते यदि सब प्रश्नों को हल कर सकते, तो हमारा जीवन वैचित्र्य-हीन हो जाता। उसमें कुछ उत्तेजना ही नहीं रहती।

प्रकाश और माध्याकर्षण के अतिरिक्त वस्तु के साथ संबंध रखनेवाले और भी कई व्यापार हैं। वस्तु के साथ जीवन का एक संबंध है। किंतु जीवन कैसी वस्तु है, और वस्तु के साथ उसका कैसा संबंध है, यह हम नहीं जानते। बायो-फिज़िक्स या शारीरिक जड़-विज्ञान-नामक एक शास्त्र बन रहा है। जड़ वस्तु और प्राण-शक्ति के बीच जो कार-बार चलता है, इसी का अनु-संधान करना इस नवीन शास्त्र का लक्ष्य है। क्या प्राण भी आकाश का एक रूप-मात्र है?

साधारण जड़ वस्तु जिस प्रकार पदार्थ-विज्ञान और रसायन-विज्ञान के और नियमों का अनु-सरण करती है। प्राण-संपन्न वस्तु भी ठीक वैसे ही इनका अनुसरण करती है। किंतु, तथापि, प्राण-संपन्न वस्तु में इसके अतिरिक्त कुछ तत्त्व है। यह अतिरिक्त तत्त्व है स्व क्रियमा अवस्था या आत्मनियंत्रण। जब उन्नत अवस्था प्राप्त कर प्राण-शक्ति ज्ञान में पर्यवसि होती है, तब हम सबसे पहले जान जाते कि इसमें केवल अतीत की बातों की ही स्मृ नहीं रहती, भविष्यत् की आशा-आकांक्षा भी है अतएव यह ज्ञान-युक्त प्राण-शक्ति अपनी का प्रणाली भी नियंत्रित कर सकती है, के प्राणवान् वस्तुओं में ही यह शक्ति है। चल हुई कलों में यह शक्ति नहीं; क्योंकि उन क्रियावान् होने पर भी उनमें प्राण-नामक व नहीं। यहीं कलों पर हमारा प्राधान्य है।

अदूर भविष्य की समस्या पुरातन नूतन आविष्कारों को सम्मिलित कर एक जनमान्य पद्धति स्थापित करना है। हमें का विचार छोड़ना पड़ेगा। उसके बदले आकाश हमारे सामने विस्तृत है, जो काला है, उस मूल-सत्ता का स्वरूप निर्द्धारण होगा। अपनी मानसिक शक्ति के सार यथासाध्य हमने अब तक चेष्टा की पर हमें हताश नहीं होना चाहिए। विश्व- के साथ हमारे मन का एक सामंजस्य मन जब ज्ञान लाभ कर पूर्णता प्राप्त करता जब वह सत्य के माहात्म्य और माधुर्य अनुभव करने के लिये उन्नत अवस्था को पहुँ है, तब विश्व-जगत् के साथ उसका सुसं योग-सूत्र स्थापित होता है।

अभिज्ञता के द्वारा नियमित रूप से जाना गया है कि प्रत्येक विषय के पीछे एक सुसमंजस कार्य-पद्धति है। जो कुछ संघटित हो रहा है, उसकी उपलब्धि करना—जड़-रहस्य के अंतरतम प्रदेश में यथासाध्य प्रवेश करना—ही विज्ञान का विशेष अधिकार है।

अभी मानवता का शैशव है, तो भी हम नियमित रूप से उन्नति के पथ में अग्रसर हो रहे हैं। अतीत काल में जो सब प्रतिभावान् मनुष्य पैदा हुए थे, उनके समान प्रतिभा-संपन्न लोग हमारे बीच अब भी विद्यमान हैं, और काम कर रहे हैं। एक विराट् समन्वय का समय उपस्थित हुआ है। गणित-पदार्थ-विद् पंडितगण सारी पृथ्वी में इस प्रकार से कार्य में लगे हैं कि समन्वय-साधन की यथेष्ट सहायता हो। ऊषा की मलिनता तथा कुहासे के भीतर से हम आशा-पूर्ण प्रभात की गुलाबी आभा देख रहे हैं।

प्रसादजी और उनका आकाशदीप

[युवराज रघुवीरसिंह बी० ए०, एल्-एल० बी०]

(गतांक से आगे)



अब हम प्रसादजी की इन कहानियों की पाँच विशेषताओं पर विचार करेंगे। वे पाँच विशेषताएँ ये हैं—

(१) कहानियों में काव्यत्व तथा भावुकता का प्राधान्य।

(२) कहानियों में साधारण पात्रों का प्राधान्य।

(३) उनका निराशावाद।

(४) उनकी साहित्य-भाषा तथा शैली-विशेष।

(५) कहानियों में देश-काल का प्रभाव।

यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय, तो ये पाँचो विशेषताएँ प्रायः प्रत्येक कहानी में पाई जाती हैं। ये पाँचो बातें प्रसादजी के व्यक्तित्व के साथ इतनी घुल-मिल गई हैं कि उनकी प्रायः प्रत्येक कृति में उनका पाया जाना अवश्यंभावी है। यह बात अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी कि कहानी के कथानक या उद्देश्य आदि के साथ भिन्न-भिन्न विशेषताओं की सापेक्ष घटा-बढ़ी अवश्य होती है।

प्रसादजी मुख्यतः एक कवि हैं, अतएव उनकी प्रत्येक कृति में काव्य का प्राधान्य पाया जाता है। उनकी कहानियों में भी भावुकता तथा कल्पना की उड़ान इतनी बहुतायत से पाई जाती है कि प्रायः उनकी प्रत्येक कहानी में घटनाएँ भावों के आश्रित रहती हैं। इसी कारण श्यामसुंदरदासजी लिखते हैं कि "प्रसादजी की आख्यायिकाएँ कवित्व-पूर्ण रहती हैं। उन्हें एक बार पढ़कर कई बार पढ़ने की इच्छा होती है।" उनके विचारानुसार प्रसादजी की कहानियों में भावों का ही प्राधान्य है, अतएव उन्होंने उनकी कहानियों को 'भावात्मक' कहा है। आकाशदीप की कहानियों को पढ़कर बाबू श्यामसुंदरदासजी का उपर्युक्त कथन पूर्णतया सत्य जान पड़ता है। प्रायः प्रत्येक कहानी में कई भाषण ऐसे पाए जाते हैं, जिनमें भावुकता ओत-प्रोत है। इस भावुकता का लेखक की लेखन-शैली पर भी बहुत प्रभाव पड़ा है, जिसका यथास्थान विचार करेंगे।

प्रसादजी की कथाओं की दूसरी विशेषता है उनकी कहानियों में साधारण पात्रों का ही प्राधान्य। उन्होंने कहानियों के लिये आस-पास के साधारण जन-समाज से ही पात्रों को चुना है। एक पात्र को छोड़कर (समुद्र-संतरण के राजकुमार के अतिरिक्त) प्रायः सब पात्र या तो मध्य कक्षा के हैं या दरिद्रियों में से।

पात्रों का यों चुनाव करके लेखक ने इस बात का बहुत प्रयत्न किया है कि वह मानव-जीवन की अंतरतम भावनाओं को स्पष्ट करे, मनुष्य-हृदय में उठनेवाले भिन्न-भिन्न भावों तथा उनमें निरंतर होनेवाले परिवर्तनों को ठीक-ठीक रीति से प्रदर्शित करे। बाबू श्यामसुंदरदास के कथनानुसार प्रसादजी की "कुछ कहानियों में प्राचीन इतिहास की खोई हुई बातों की खोज की गई है, कुछ में मानस-तत्त्व की सूक्ष्म समस्याएँ समझाई गई हैं, और कुछ में व्यक्ति का व्यक्तित्व स्पष्ट किया गया है।" आकाशदीप में दूसरी और तीसरी प्रकार की कहानियाँ ही पाई जाती हैं। प्रसादजी चरित्र-चित्रण में बहुत सफल हुए हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, इस संग्रह की सात कहानियों में तो चरित्र-चित्रण ही प्रधान विषय है। उन कहानियों में उन्हें बहुत सफलता मिली है। गत जुलाई मास के 'विशाल भारत' में इसी गल्प-संग्रह की आलोचना करते समय उस पत्र के श्रद्धेय संपादकजी ने यह आक्षेप किया है कि प्रसादजी के पात्र उनके "मस्तिष्क की उपज हैं। वे निर्जीव-से हैं, उनका अपना कोई

व्यक्तित्व नहीं, और उनके भीतर जो कुछ भरकर रख दिया है, वही वे बोलते जाते हैं।" श्रद्धेय चतुर्वेदीजी के इस मत से हमारा मतभेद है। जैसा हम आगे चलकर उल्लेख करेंगे, किसी-किसी स्थान पर प्रसादजी के पात्रों में कुछ अस्वाभाविकता आ गई है, किंतु ऐसे स्थान बहुत थोड़े हैं। बुद्धगुप्त, चंपा, मीना, किन्नरी, विलासिनी, साजन, रमला और शीरीं आदि सजीव पात्र हैं।

प्रसादजी की कहानियों के पात्रों के विषय में एक और बात विशेष रूप से ज्ञेय है कि ये सारे पात्र साधारण, दुर्बल मानव जीव हैं, वे न तो देव हैं, न महात्मा और न राक्षस। थोड़े-से धक्के का भी उन पर प्रभाव पड़ता है, और जिन पात्रों को अपने व्यक्तित्व को बनाए रखने का विचार आता है, वे भाग खड़े होते हैं। कई एक द्वीपों का विजेता बुद्ध-गुप्त भी कह उठता है—"तब मैं अवश्य चला जाऊँगा चंपा! यहाँ रहकर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँगा, इसमें संदेह है।" विजयकृष्ण हृदय में सोचते थे कि "बहूजी का कुल-वधू जनोचित्त सौंदर्य और वैभव की मर्यादा देखकर चूड़ीवाली स्वयं पराजय स्वीकार कर लेगी, और अपना निष्फल प्रयत्न छोड़ देगी, तब तक यह एक अच्छा मनोविनोद चल रहा है, किंतु उन्हीं के हृदय में बहूजी के आज के दुर्व्यवहार ने प्रतिक्रिया उत्पन्न कर दी, और चोट खाकर उसने सरकार को (विजयकृष्ण को) घायल कर दिया।" पुनः "अटल-अचल वैरागी के भी हृदय में सनसनी हो रही थी", और "मुझे कोई पुकारता है, तुम इस कुटी को देखना" कहकर वहीं वैरागी "अंधकार में विलीन हो गया।" 'समुद्रसंतरण' का राजकुमार भी सरलता-पूर्वक इस बात को स्वीकार कर लेता है कि "तुम्हें देखकर मेरी सोई हुई सौंदर्य-तृष्णा जाग गई।" "मेरा यहाँ पर कुछ खो गया है।" ऐसा बहाना बनाता है, और फिर जब "उसे ध्यान आया कि मुझे (उसे) लौटा ले जाने के लिये कुछ लोग आ रहे हैं, वह चंचल हो उठा। फेनिल जलधि में फाँद पड़ा। लहरों में तैर चला।" लक्ष्मी और ममता का वह पुत्र कितना सरल-सीधा है! उसे इस बात के जानने की इच्छा नहीं होती कि वह किधर जा रहा है, और आगे क्या करेगा। जिसने भौतिक संसार में पदार्पण नहीं किया, उसके मस्तिष्क को ऐसा साधारण-सा, किंतु कठोर सत्यों का विचार नहीं सताता।

प्रसादजी की तीसरी और सर्व-प्रधान विशेषता है उनका निराशावाद। बाबू श्यामसुंदरदासजी ने प्रसादजी के नाटकों पर विचार करते समय लिखा है कि "दूसरी बात जो उनकी कृतियों में खटकनेवाली है, वह उनका सांसारिक बातों में एकपक्षीय ध्येय है। सांसारिक जीवन में सब कुछ कलुषित और गर्हित नहीं है, उसका एक अंश उज्ज्वल और प्रशंसनीय भी है। प्रसादजी की रुचि पहले पक्ष की ओर अधिक दीख पड़ती है।" यह वाक्य उनकी कहानियों पर भी चरितार्थ होता है, किंतु इस बात में हमारा श्रद्धेय बाबू साहब से मतभेद है कि उनकी यह प्रवृत्ति पाठक को खटकती है। प्रोफ़ेसर रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' ने अपनी 'प्रसादजी और उनकी नाट्यकला'-नामक विद्वत्ता-पूर्ण पुस्तक में प्रसादजी की इस प्रवृत्ति को निराशावाद नाम दिया है, और इस पर बहुत विचार किया है। 'शिलीमुख' लिखते हैं कि "प्रसाद की योजना में—ध्यान रखना चाहिए, योज्य में नहीं—निराशावाद ओत-प्रोत है। अशांति, तितिक्षा, वैराग्य, इनमें से एक या अनेक उनके अधिकांश पात्रों के चरित्र-लक्षण है।" उनका यह कथन बहुत कुछ अंशों में 'आकाशदीप' पर भी लागू होता है।

प्रसादजी की इस मनोवृत्ति के केवल दो ही कारण हो सकते हैं। या तो देश की आधुनिक पतितावस्था को देखकर उनका हृदय दहल उठता है, रो पड़ता है, और अपनी विवशता को देखकर निराश गिर पड़ता है। उनकी निराशा के उद्गम का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अपने प्रारंभिक जीवन में लेखक को कोई भीषण मानसिक या हार्दिक चोट लगी हो, जिसकी कसक आज भी बाक़ी हो, और जिसके फल-

स्वरूप आज भी उनकी कृतियों में करुण क्रंदन सुनाई पड़ता है । हमें प्रसादजी के जीवन का कुछ भी परिचय नहीं, अतः हम नहीं कह सकते कि किस कारण उनके हृदय में इस निराशावाद का उद्गम हुआ है ।

किसी भी कारण हो, किंतु यह बात पूर्णतया सत्य है कि प्रसादजी की कृतियों में उनके हृदय का करुण क्रंदन सुन पड़ता है । मानव-जीवन-संबंधी बातों में ही नहीं, किंतु प्रकृति के वर्णन में भी उनके हृदय की कसक दृष्टिगोचर होती है । कहीं "एक गहरे खड्डे में गिरकर यह नाला बनता हुआ, ठुकराए हुए जीवन के समान, कहीं भागा जाता है", तो कहीं "हृदय में सौंदर्य का करुण संगीत" सुन पड़ता है । "रात भी चुपचाप ओस के आँसू गिराकर चल देती है ।" इसका यह अर्थ नहीं कि प्रकृति-वर्णन में सर्वत्र प्रसादजी ने निराशा-पूर्ण भावनाओं को ही व्यक्त किया है । कई स्थानों में उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों का बड़ा ही मादक वर्णन किया है । किसी-किसी स्थान पर उन्होंने प्रकृति को इतना सुख-पूर्ण प्रदर्शित किया है कि पाठक का हृदय सुखमय प्रवाह में बह जाता है । 'देवदासी'-कहानी में पत्र ६ का दूसरा और तीसरा पैराग्राफ़ ऐसे ही सफल वर्णन का एक अच्छा नमूना है, किंतु ऐसे सफल वर्णन बहुत थोड़े हैं ।

प्रसादजी का यह निराशावाद एक अनोखी ही धारा में बहता है । इस निराशा-पूर्ण दृष्टि-कोण के फल-स्वरूप उनकी कहानियों में दो विचार-धाराएँ प्रवाहित हुई हैं । प्रथम तो उनकी कहानियों में भाग्यवाद का प्राधान्य देख पड़ता है । शिलीमुख के विचारानुसार प्रसाद के निराशावाद का एक प्रधान उद्गम यह भाग्यवाद है, किंतु हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि भाग्यवाद कारण न होकर निराशावाद का एक प्रधान प्रभाव है । अपनी विवशता देखकर, देखती आँखों अपनी आशाओं का नष्ट होना देखकर धीरे-धीरे प्रसादजी भाग्यवाद की ओर झुक गए, उनके निराशावाद ने इस स्वरूप को ग्रहण कर लिया । 'आकाशदीप' की कहानियों में भी यत्र-तत्र नियति के विरुद्ध वाक्य निकल पड़े हैं । कुछ वाक्यों को हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"कठोर नियति जब अपना विधान पूर्ण कर चुकी, तब कामिनी किशोर के शव के पास पहुँची ।" (पृ० १७०)

"परंतु कठोर अदृष्ट लिपि ! उसके भाग्य में एकांत-वास ज्वलंत अक्षरों में लिखा था ।" (पृ० १७९)

"नावस्वयं बहेगी, मैं केवल देखूँगा ।" (पृ० १८४)

"खेनेवाला जिधर जा रहा है, उधर देखता ही नहीं । उलटे बैठकर डाँड़ा चला रहा है । कहाँ जाना है, इसकी उसे चिंता नहीं ।" (पृ० १९०-१)

"अदृष्ट मुझे अज्ञात पथ पर खींच रहा है, परंतु तुमको लिखे विना नहीं रह सकता ।" (पृ० ११४)

इन सब वाक्यों में हमें जान पड़ता है कि लेखक नियति का अदृष्ट हाथ देखता है । यद्यपि स्कंदगुप्त आदि नाटक के पात्रों के विपरीत 'आकाशदीप' में 'नियति' पात्रों का आश्रय-वचन नहीं है, किंतु फिर भी यत्र-तत्र भाग्यवाद का निराशामय स्रोत प्रवाहित हुए विना नहीं रह सका है ।

निराशावाद के फल-स्वरूप 'आकाशदीप' की कहानियों में दूसरा प्रवाह उनके आधुनिक संसार के विरुद्ध, असंतोष के स्वरूप में, बह निकला है । यत्र-तत्र ऐसे वाक्य बिखरे पड़े हैं, जिनके द्वारा या तो लेखक ने स्वयं या किसी पात्र के मुख से आधुनिक मानव-जीवन की आलोचना की है या उसके प्रति उदासीनता प्रकट की है । यहाँ हम कुछ ऐसे वाक्य उद्धृत करते हैं, जिनसे उपर्युक्त कथन स्पष्ट हो जायगा—

सुदर्शन के प्रश्न "कहाँ ले चलोगी" के उत्तर में धीवर-कन्या कहती है—"पृथ्वी से दूर जल-राज्य में, जहाँ कठोरता नहीं, केवल शीतल, कोमल, तरल आलिंगन है, प्रवंचना नहीं, सीधा आत्म-विश्वास है, वैभव नहीं, सरल सौंदर्य है । (पृ० १२९)

"क्या अब वे दिन लौट आवेंगे ? वे आकाश-भरी संध्याएँ, वह उत्साह-भरा हृदय, जो किसी के संकेत

पर शरीर से अलग होकर उछलने को प्रस्तुत हो जाता था, क्या हो गया ?''

''अभागों को सुख भी दुख ही देता है।'' (पृ० १६२)

इन वाक्यों तथा अन्य कई कथनों से यह स्पष्ट भालूम पड़ता है कि अपनी विवशता के फल-स्वरूप प्रसादजी के हृदय में जो निराशा उठी है, उसी कारण प्रसादजी आधुनिक जीवन से उदासीन हो गए हैं। उनका संतप्त हृदय आधुनिक जीवन की कठोरता तथा क्रूरता से ऊब गया है। किंतु स्वयं कुछ भी करने की, किसी भी प्रकार उन दुःखों को तथा उस क्रूरता को घटाने में अपनी असमर्थता का अनुभव करके इस ओर प्रयत्न करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के प्रति प्रसादजी कह उठते हैं--''स्वर्ग ! इस पृथ्वी को स्वर्ग की क्या आवश्यकता है शैख़ ? ना, ना, इस पृथ्वी को स्वर्ग के ठेकेदारों से बचाना होगा। पृथ्वी का गौरव स्वर्ग बन जाने से नष्ट हो जायगा। इसकी स्वाभाविकता साधारण स्थिति में ही रह सकती है। पृथ्वी को केवल वसुंधरा होकर मानव-जाति के लिये जीने दो, अपनी आकांक्षा के कल्पित स्वर्ग के लिये, क्षुद्र स्वार्थ के लिये, इस महती को, इस धरती को, नरक न बनाओ, जिसमें देवता बनने के प्रलोभन में पड़कर मनुष्य राक्षस न बन जाय।'' कितनी भीषण चेतावनी है !

किंतु प्रसादजी की इस उदासीनता का, आधुनिक मानव-जीवन के प्रति असंतोष का प्रभाव यह होता है कि वह एक महान् आदर्श का प्रतिपादन करते हैं। मानव-जीवन के विरुद्ध विद्रोह आज दोनो सभ्यताओं में—पूर्वीय तथा पश्चिमी सभ्यताओं में—उठा है, किंतु भौतिकवाद-पूर्ण पश्चिमी सभ्यता में यह विद्रोह या तो आधुनिक जीवन के विरुद्ध पूर्ण विद्रोह का स्वरूप ग्रहण करता है, और फिर मनुष्य विवाह आदि सामाजिक संस्थाओं का तथा राज्य आदि राजनीतिक संस्थाओं का अंत करने के लिये उतारू हो जाता है। नहीं तो वह निराश व्यक्ति विलास तथा विस्मृति-मदिरा के सागर में गर्त होकर नारकीय जीवन बिताते-बिताते यह लीला समाप्त करता है। किंतु इसके विप... भारत में, जहाँ आज भी आध्यात्मिक विचार विद्यमा... हैं, यह असंतोष एक दूसरी ही ओर बहा है। प्रसाद... जी की लेखनी में प्रथम बार इस नवीन भावना का उद्भव हुआ है। निराशावाद से ओत-प्रोत रहते हु... भी, क्रूर भाग्य तथा कठोर संसार के थपेड़े खाते-खाते दुःखों को झेलते हुए भी प्रसादजी के पात्रों का प्रा... सुखांत ही हुआ है। उनके इस सुखांत में प्राची... भारतीय तथा आधुनिक पाश्चात्य आदर्शों का ... अपूर्व सुखद सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। 'शिलीमु... लिखते हैं—''प्रसादजी की सुखाँत-भावना ... वैराग्य-पूर्ण अथवा मानव-प्रेम से भरित, शांति ... होती है। उनके पात्र किसी सांसारिक उद्देश्य के लि... भयानक संघर्ष में प्रविष्ट होकर उसे प्राप्त करें, चा... न करें, उन्हें शांति अवश्य मिलती है।'' 'रमला' कहानी का 'साजन' इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। उसकी उदासीनता में, उसकी निराशा में ... उल्लास फूट पड़ता है।

किंतु अपने नाटकों से विपरीत अपनी कहानि... में इस सुखांत अवस्था की अवतारणा के लिये प्रसाद... जी ने न तो किसी महात्मा की सृष्टि की है, और ... उन्होंने किसी बाह्य प्रभाव को प्रदर्शित किया। उन्हों... प्रायः अपनी घटनाओं को ही ऐसा जमाया है ... जिस किसी भी कहानी का सुखांत हुआ है, वहाँ धी... धीरे उस पात्र के हृदय में एक महान् आदर्श ... उद्गम हुआ है।

प्रसादजी ने निराशा से पूर्ण जगत् में भी सुख... अवस्था को बनाए रखने के लिये एक महान् आद... का प्रतिपादन किया है। एक ही उद्देश्य को उन्हों... संसार के दुःखों से छुटकारा पाने का उपाय बता... है। यह आदर्श है 'सेवा-धर्म'। ममता तथा प्रेम ... ठुकराकर चंपा बुद्धगुप्त से कहती है—''और ... छोड़ दो इन निरीह भोले-भोले प्राणियों के दुःख ... सहानुभूति और सेवा के लिये।'' बैरागी भी चा... है—''अनंत काल तक प्राणियों की सेवा का सौ...

मुझे मिले।" पुनः जिस चूड़ीवाली ने खुले बाज़ार बैठकर सुख-प्राप्ति के लिये प्रयत्न किए, जिसने कुल-वधू बनने के लिये अनेकों प्रपंच किए, अंत में वही कह उठती है—"सरकार ! मैंने गृहस्थ-कुल-वधू होने के लिये कठिन तपस्या की है । इन चार वर्षों में मुझे विश्वास हो गया है, कि कुल-वधू होने में जो महत्त्व है, वह सेवा का है, न कि विलास का।"

लेख बहुत बढ़ गया है, अतः हम रही हुई दो विशेषताओं का अब संक्षेप में वर्णन करके अंत में इस संग्रह में हमारे विचारानुसार आए हुए तीन दोषों का उल्लेख करके पाठकों से विदा लेंगे।

प्रसादजी की कहानियों की चौथी विशेषता उनकी साहित्यिक भाषा तथा लेखन-शैली-विशेष है। प्रसाद-जी ने साहित्यिक भाषा को ही उपयोग करना अपना एक उद्देश्य-सा बना लिया है, ऐसा प्रतीत होता है। उनकी कहानियों के भिन्न-भिन्न संग्रहों के पढ़ने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि निरंतर वह अधिकाधिक परिष्कृत भाषा लिखने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस विशेषता को दोष या गुण समझना चाहिए, यह समालोचक की रुचि पर निर्भर है। श्रद्धेय बनारसी-दासजी चतुर्वेदी ने इस बात को दोष माना है कि "प्रसादजी के पात्र दनादन संस्कृत बोलते जाते हैं।" किंतु कई व्यक्ति ऐसे भी मिलेंगे, जिनको यह परिष्कृत भाषा ही रुचिकर होगी। हम केवल एक बात का उल्लेख कर देना चाहते हैं कि अन्य कारणों के साथ ही इस परिष्कृत भाषा के प्रयोग से भी प्रसादजी की कहानियाँ सर्व-साधारण के मनोरंजन की वस्तु नहीं रह गई हैं, उनसे केवल विशेष व्यक्तियों का ही मनो-रंजन हो सकता है।

प्रसादजी ने प्रायः छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है, और विशेषतया भाषणों में तो उन्होंने शब्द-प्रयोग में पूरी कंजूसी प्रदर्शित की है।

प्रसादजी ने अपनी कहानियों में एक शैली-विशेष का प्रयोग किया है। कई एक कारणों के फल-स्वरूप ही शैली-विशेष का उद्भव हुआ है। 'शिलीमुखजी' ने अपने ग्रंथ में इस विषय पर पूर्ण विचार किया है, अतः हम इस पर अधिक विचार न करके केवल प्रधान कारणों का ही उल्लेख कर देते हैं। प्रथम तो प्रसादजी में कवित्व का प्राधान्य है, अतः उनकी कहा-नियों में भी यही कवित्व कई बार दिखलाई देने लगता है, और विशेषतया जब वह प्रकृति का वर्णन करने लगते हैं, उस समय तो यह उमड़ पड़ता है। प्रसादजी की उच्च कल्पना-शक्ति तथा उनकी भावुकता का भी इस शैली-विशेष के निर्माण में बहुत हाथ है।

प्रसादजी की पाँचवीं और अंतिम विशेषता यह है कि वह देश-काल के प्रभाव से भी अछूते नहीं रहे, जैसा हम पहले ही लिख चुके हैं। संभव है, उनका निराशावाद भी देश-काल की दशा का ही परिणाम हो। किंतु उनकी कहानियों में यत्र-तत्र धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्या-संबंधी विचार भी आ गए हैं। देवदासी-कहानी में तो उन्होंने एक अतीव पतित सामाजिक, किंतु धर्म-सम्मत संस्था के द्वारा होनेवाले पापों का उल्लेख किया है। स्वर्ग के खँडहर में भी लज्जा द्वारा उन्होंने धर्म की आधुनिक पतितावस्था के विरुद्ध बहुत कुछ कहलाया है। पुनः कुल-वधू न हो सकने पर, निराश होकर, चूड़ीवाली ने जो कुछ कहा है, उसमें भी उन्होंने आधुनिक समाज के संकीर्ण विचारों की भर्त्सना की है, ऐसा प्रतीत होता है।

अब तक हमने यह बतलाया है कि प्रसादजी कहाँ तक सफल हुए हैं। यदि हम यहीं विश्राम ले लें, तो यह समालोचना एकांगी ही रह जायगी। इसे पूर्ण करने के लिये हम उनकी कहानियों में आए हुए तीन दोषों का भी उल्लेख कर देना उचित समझते हैं।

पहला दोष, जो किन्हीं लेखकों के अनुसार दोष न भी हो, यह है कि 'आकाशदीप' साधारण जन-समाज की वस्तु नहीं। प्रेमचंदजी की कहानियों की लोक-प्रियता का एक महान् कारण उनकी सीधी-सादी भाषा तथा सरल शैली है। प्रसादजी की कहानियों की भाषा साहित्यिक है। उनकी कल्पना की

उड़ान बहुत ऊँची होती है, जिसको पहुँचना साधारण व्यक्तियों के लिये सरल नहीं। पुनः प्रसादजी का कवित्व तथा उनकी भावुकता से तो यह कठिनाई अधिकाधिक बढ़ जाती है। कई समालोचकों के अनुसार यह दोष एक गुण भी हो कि उन्होंने ऐसे महान् साहित्य की सृष्टि की है।

दूसरा दोष यह है कि प्रसादजी के पात्रों में यत्र-तत्र अस्वाभाविकता आ जाती है। 'ज्योतिष्मती' में साहसिक का विरोधी से एकबारगी 'विश्वस्त अनुचर' हो जाना अस्वाभाविक प्रतीत होता है। इस बात का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि प्रसादजी के पात्रों में सजीवता कूट-कूटकर भरी है, अतः उनमें जहाँ कहीं कुछ भी अस्वाभाविकता आ जाती है, वह बहुत खटकती है। संभव है, इस अस्वाभाविकता के पक्ष में लेखक कोई संतोषप्रद कारण दे सके, किंतु हमें तो यत्र-तत्र पाई जानेवाली अस्वाभाविकता बहुत खटकती है।

प्रसादजी का तीसरा दोष यह है कि कहीं-कहीं उनकी कहानियों में अस्पष्टता आ गई है। प्रसादजी की कल्पना बहुत उच्च स्थान तक पहुँच जाती है, और लिखते समय ये सारे दृश्य लेखक के मस्तिष्क में स्पष्ट रूप से उपस्थित से रहते हैं, किंतु लेखक जब उन्हीं को चित्रित करने लगता है, तब कहीं-कहीं उनका स्पष्ट चित्रण नहीं होता है! लेखक के मस्तिष्क-पटल पर समूचा चित्र उपस्थित रहने के कारण उन्हें इस अस्पष्टता का पता नहीं लगता, किंतु पाठक को तो यह अस्पष्टता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। यह अस्पष्टता विशेषतया दो कहानियों में बहुत खटकती है प्रथम तो 'रूप की छाया' में अंतिम भाग का अर्थ स्प[ष्ट] नहीं, और न वह दृश्य ही स्पष्टतया चित्रित हो सका है। दूसरे अंतिम कहानी 'बिसाती' को पढ़ते-पढ़ते ऐसा प्रतीत होता है कि घटनाओं का सोता यत्र-तत्र लेखक के कल्पना-पूर्ण बालुकामय प्रदेश में अदृष्ट हो जाता है। यदि ये अदृष्ट भाग कुछ स्पष्ट हो जाते, तो यह कहानी अधिक मनोरंजक हो जाती। प्रसादजी ने छोटे वाक्यों का उपयोग करके इस अस्पष्टता को बहुत कुछ ... दिया है।

अंत में इस पुस्तक के गुण-दोषों पर विचार कर हम यह लिखे बिना नहीं रह सकते कि प्रसादजी ... संग्रह में एक सफल कहानी-लेखक के स्वरूप में पाठ[कों] के सम्मुख आते हैं। उन्हें आशातीत सफलता मि[ली] है। उन्होंने 'आकाशदीप' का निर्माण कर हिंदी-... साहित्य-गगन में एक स्थायी ज्योति प्रकट की है, ... चिर काल तक हिंदी-भाषा-भाषियों के लिये आनंद ... गर्व की वस्तु रहेगी। ऐसी उच्च कोटि की कहानि[याँ] लिखकर प्रसादजी ने हिंदी-साहित्य की श्री-वृद्धि ... है, अतएव वह धन्यवाद के पात्र हैं। प्रेमचंदजी ... घटना-प्रधान कहानियाँ लिखने में पूर्ण चातुर्य प्रदर्शि[त] किया है, तो इधर प्रसादजी भी भावात्मक कहानि[याँ] लिखने में अभी तक हिंदी-साहित्य-संसार में अद्वि[तीय] हैं *।

(समाप्त)

* यह लेख लिखने में हमें 'शिलीमुखजी' ... 'प्रसाद और उनकी नाट्यकला'-पुस्तक से बहुत कुछ ... यता मिली है, अतएव हम उनके कृतज्ञ हैं।—लेखक

दि ढाका आयुर्वेदीय फ़ार्मेसी लिमिटे

संपूर्ण भारतवर्ष में सुप्रसिद्ध, सबसे बड़ा, सर्वश्रेष्ठ, सस्ता औषधालय

मकरध्वज ४) तोला	हेड ऑफ़िस—आर्मेनियन स्ट्रीट, ढाका ।	च्यवनप्राश ४) सेर

शाखाएँ—कलकत्ता २१२ बहूबाज़ार स्ट्रीट, १४८ अपर चितपुर रोड, ६ रसा रोड (भवानीपुर), पटना, भागलपुर, दिनाजपुर, रंगपुर, श्रीहट्ट, खुलना, मालदह, राजगंज, फ़रीदपुर, राजशाही, पुरुलिया, कुष्टिया इत्यादि-इत्यादि ।

ज्वरकेशरी—१) सर्व प्रकार का मलेरिया-ज्वर, प्लीहा और यकृत-रोग, रक्त-हीनता, सूजन, मंदाग्नि आदि रोगों की अचूक औषध ।	आमलकी-रसायन—१) अम्ल, अजीर्ण, अग्नि-मंद या डिस्पेप्सिया की अव्यर्थ औषधि एवं लिवर, यकृत-रोग तथा स्नायु-दुर्बलता-नाशक ।	अमृतप्राश (कस्तूरी-मिश्रित)—२) पति-पत्नी के स्वास्थ्य और आनंद-वृद्धि का मार्ग तथा बल, कांति, पुष्टि और शक्ति को बढ़ानेवाला ।	अशोक-रसायन-क्षीर-कल्याण-घृत-स्त्री-रोगों की औषधि, ऋतु-संबंधी सूतिका रोग-नाशक
ब्राह्मीघृत—१) ब्राह्मी-रसायन—१॥) आश्चर्य-जनक रीति से स्मरण-शक्ति को बढ़ानेवाला, बलकारक और मस्तिष्क की शक्ति का आधार । शारीरिक और मानसिक थकावट दूर करता है ।	दशमूलारिष्ट—१) बहुत परिश्रम से तैयार किया हुआ स्त्री-पुरुष के लिये समान-रूप से व्यवहार करने योग्य । कांति, पुष्टि और बलवर्द्धक तथा अकाल वार्धक्य-नाशक ।	वज्रशक्ति-सालसा—१॥) पंचतिक्त-घृत गुग्गुल—१) रक्त-दोष की अचूक औषध ।	सारिवासासव-सब तरह के रक्त... की अव्यर्थ महौषधि सब रक्त-दोष व ... आश्चर्य-जनक ... आराम ... सर्वश्रेष्ठ टॉनिक ।

व्यवस्था और सूचीपत्र मुफ़्त में भेजा जाता है, किंतु चिट्ठी के साथ एक आने का टिकट होना चाहि[ये]

१०००) रु० इनाम !

झूठे विज्ञापनदाताओं की मट्टी पलीद !!

हमारी सच्चाई का पत्थर पर लिखा सबूत !!!

अमीर-ग़रीब सभी से प्रशंसा-पत्रों की भरमार !!!!

गवर्नमेंट की सर्वोच्चोपाधि-प्राप्त, चिकित्सा के सिद्ध-हस्त, धुरंधर विद्वान् हमारे चिकित्सक बाँझपन, स्त्री-पुरुष के सभी गुप्त रोग तथा हिस्टीरिया को खुला चैलेंज देते हैं । इनकी सिद्धौषधों से दूर करो या नुस्ख़ा पूछकर दवा स्वयं करो । इलाज या नुस्ख़ों के हानिप्रद या बेकाम होने पर १००० रु० इनाम । झूठे वैद्यों के झूठे विज्ञापनों की तरह यह सूचना बार-बार नहीं निकलेगी । न समय है, न ... की इच्छा है, केवल उपकार ही का ख़याल है । पेज को उलटाने से प्रथम झट अपना हाल लिखना, ... भाग्य है, पत्र गुप्त । उत्तर के लिये टिकट ।

पता—कुशाल-भवन, फ़िरोज़पुर

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है ।

वृद्ध व्याघ्र *

[आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री]

(१)

ओ वृद्ध व्याघ्र !
किस वनस्थली के नाहर थे तुम ।
कहाँ लीन हो गए !!
अभी तो थे ;
अरे तुम घायल थे,
मर्माहत थे, निःश्वास कष्ट से लेते थे ।
उन निःश्वासों से आश्वासित थे हम !
वे जीवन की रखवाली साँसें
किस अदृष्ट बल से अदृष्ट हो गईं हाय !!
ओ वृद्ध व्याघ्र !

(२)

मत्त हाथियों के गंडस्थल तुमने
अनायास ही विदीर्ण कर डाले ।
निज गर्जन से
भू-लोक प्रकंपित किया,
धमक चाल जब चली अरे !
भूतल पर चरण-चिह्न धँस गए !

(३)

अर्द्ध शताब्दि व्यतीत हुई,
इस युग में—
अरे केसरी !
किसे प्राण भारी थे ?
किसे अरे साहस था,
जो हड़-कंप हुए बिन सम्मुख तेरे आता ?

(४)

महासाम्राज्ञों के सिंहासन
तेरी धमक चाल से हिले ।
तेरे घोर गर्जन से पवन प्रकंपित हुई ।
आज ध्वंस के भय से वे—
भयभीत हुए—बैठे हैं ।

(५)

उस व्याधा ने कौशल-बल से
आबद्ध किया था तुमको ।
उस लोह-पींजरे में
भाग्य-रेख से बद्ध बसेरा लिया !
अधम दर्शकों की क्रीड़ा के जीव बने !!

(६)

पर,
बद्ध बसेरे में बैठे तुम
दुस्साहस करते रहे ।
अरे !
इन टूटे नख-रद के बल पर,
इस पुरुषार्थ पुराने के बल पर,
तुम लक्ष्य वेध-सा किए हुए,
ध्रुव ध्येय खोजते रहे सदा ।

(७)

अरे नाहरों के वंशज,

* पूज्यपाद, प्रातःस्मरणीय पंडित मोतीलालजी नेहरू के स्वर्गारोहण पर लिखित !— सुधा-संपादक

तुमने जब उसी पींजरे में
फिर वज्र-गर्जना की,
पद-प्रहार से धँसी धरा !
वह इस्पाती दुर्ग हिला जड़ से,
वन-पर्वत कंपायमान होकर
प्रतिध्वनित हुए-से बोले !!
वह शिशिर विकंपित श्वेत दर्प
मूर्च्छित हो तेरे पाद-पद्म में लोटा !!!

(८)

वह सिंहों का काल-रूप,
कलुषित लोह-पींजरा,
छिन्न-भिन्न हो ध्वंसित हो गया !

(९)

कितने विकराल व्याघ्र,
कितने नाहर के जाए,
कितने वीर केहरी,
वनस्थली के सुखद और स्वच्छंद निजू विचरण से
वंचित होकर,
इसी घृणित पापिष्ट पींजरे में घुट-घुटकर
वीर प्राण दे गए !

(१०)

अपनी सफल कुशलता पर
वह व्याधा हँसता था,
यह हास्यास्पद स्पर्धा !
"व्याघ्र बद्ध कर लिया",
कुटिल का यह ही हास्य-विषय था।

(११)

यह छल-बल का अभ्यासी था,
जो लोकोत्तर तप-तेज-पुंज को
क्रय-विक्रय करता था !
वह अब तक तो हँसता था,
अब उस पर जगत् हँसेगा !!

(१२)

तुम कहाँ लीन हो गए !
अरे, यह कैसी आँखमिचौनी !!
यह वनस्थली अब शून्य हुई रोती है।
शश, मृग, शृगाल यहाँ निर्भय विचरण करते हैं।

(१३)

उस सुदूर नभ में,
रवि-मंडल के पार खड़े
क्या सोच रहे हो ?
क्या ताक रहे हो ?
यह वज्र दृष्टि तो अग्नि-बाण-सी हृदय बेधकर
आरपार जाती है।
किस अहार पर दृष्टि दिए बैठे हो !
वह अदृष्ट आखेट कहाँ है ?

(१४)

मृत्यु सिंह-शिशुओं का क्रीड़ा-कंदुक है।
अरे सिंह,
तुम्हें मृत्यु का भय क्या था !
वह अब आई या क्षण-भर पीछे आती !!
वह क्षण भी क्षण में आया,
अथवा युग व्यतीत होने पर आता।

इस काल-भेद पर
तुम्हें सोचने का अवकाश कहाँ था !!

(१५)

यह शरीर तो नश्वर था ।
फिर
सिंह पैंतरा बदल नहीं सीखे बचना ।
वे गोली खा वक्षःस्थल पर,
तड़िद्गामिनी की द्रुत गति से
भीषण गर्जन करके,
टूट शत्रु पर, नख-रद से
हृत् विदीर्ण कर उष्ण रक्त पीते-पीते मरते हैं ।

(१६)

तुम जहाँ कहीं भी रहो,
असल केसरी कहलाओगे ।
तुम कभी मरोगे नहीं,
भले ही यह शरीर ध्वंसित हो,
ओ नाहर के वंशज,
ओ वृद्ध व्याघ्र !

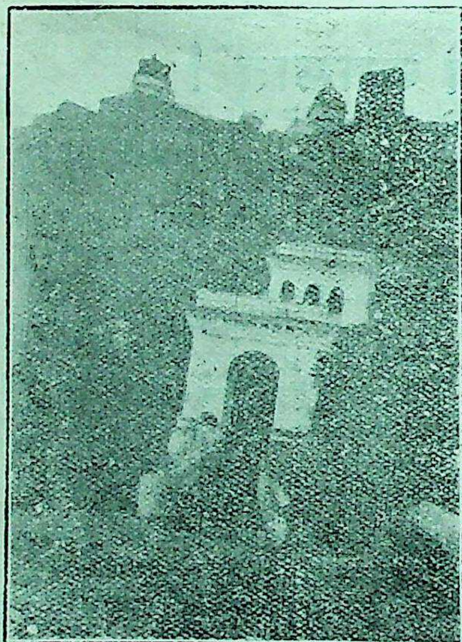
भेड़ाघाट के गर्भ में

[श्रीयुत केशवप्रसाद वर्मा]



ह दिन भी कितना सुखमय था, जब अपने मित्र ओंकारप्रसादजी के भाई वग़ैरह के साथ, मोटर में, भेड़ाघाट को रवाना हुआ। हमारी मोटर क़रीब साढ़े दस बजे साठिया कुआँ, जबलपुर से रवाना हुई।

मार्ग में हम लोगों ने देखा, एक पहाड़ी पर एक छोटा मंदिर है, जिसका नाम है 'पिसनहारी की मढ़िया'। कहते हैं, इसे एक आटा पीसनेवाली



भेड़ाघाट के माग में पिसनहारी की मढ़िया

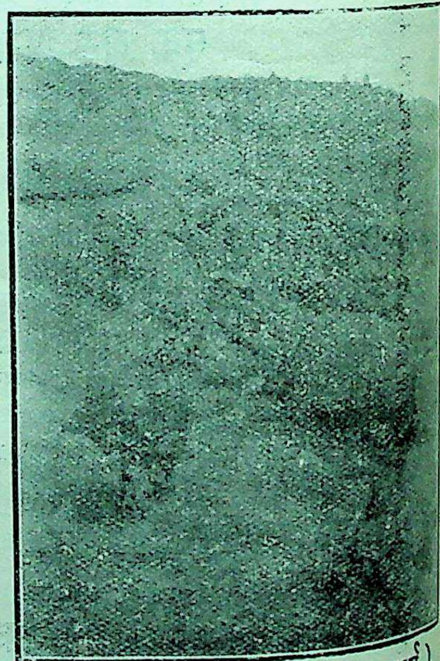
स्त्री ने आटा पीस-पीसकर पैसे बचाकर बनवाया था। इस स्थान में प्रतिवर्ष मेला भी लगता है।

जबलपुर से तेरह मील की दूरी पर भेड़ाघाट है। तेवर आदि गाँवों को मिनटों में ही पारकर हम लो[illegible] ११ बजे के क़रीब भेड़ाघाट पहुँचे।

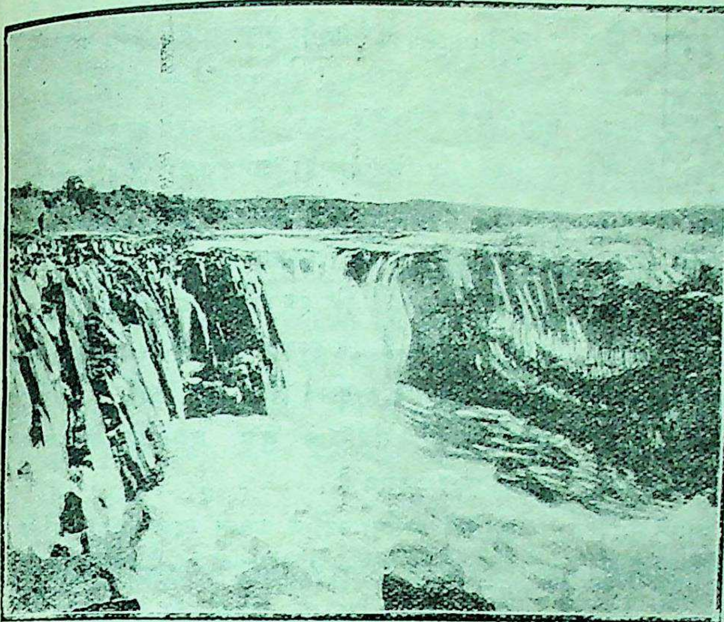
मोटर से उतरते ही हमें एक ढीमर मिला, जि[illegible] हमें भेड़ाघाट के उन-उन दृश्यों तथा स्थानों को बता[illegible] जिसे देखने को मेरी आँखें वर्षों से लालायित [illegible] और मेरी ही नहीं, अन्य लोगों की भी—यहाँ [illegible] कि विदेशियों तक की।

उस ढीमर के साथ हम लोग धुआँधार के लि[illegible] रवाना हुए। जहाँ हम लोगों [illegible] मोटर खड़ी थी, वहाँ से कोई [illegible] मील की दूरी पर भेड़ाघाट का प्रसिद्ध धुआँधार [illegible] यहाँ नर्मदा देखने योग्य हैं। ऊबड़-खाबड़ चट्टानों [illegible] बहती हुई नर्मदा यहाँ ४०-५० फ़ीट की गहराई [illegible] भयानक गर्जन के साथ, गिरती हैं। जल के गिरने [illegible] कारण बड़ा भयंकर पानी का मंथन होता है, जि[illegible]

धुआँधार



भेड़ाघाट (धुआँधार जाने का मार्ग)



भेड़ाघाट का धुआँधार अर्थात् नर्मदा-प्रपात

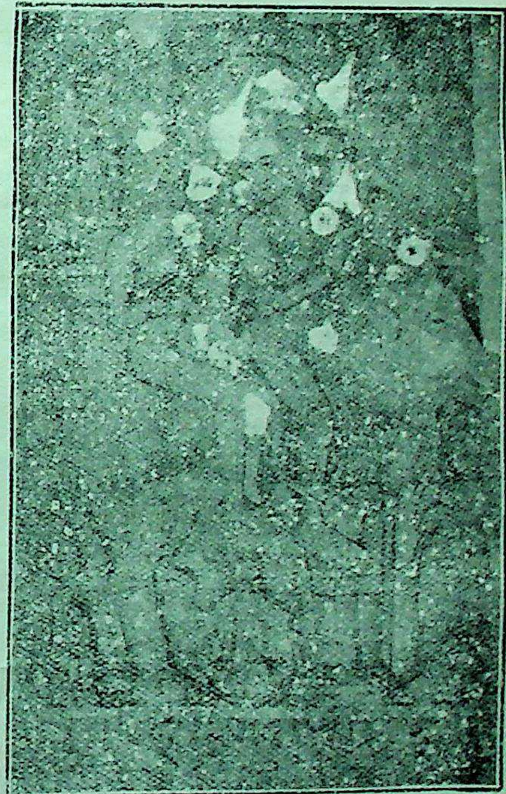
उन मूर्तियों को बिलकुल निर्दयता से तोड़ा है। किसी के स्तन, तो किसी की नाक, किसी के हाथ, तो किसी के पैर व धड़, इस प्रकार प्रायः प्रत्येक का खंडन किया है। गौरीशंकर की मूर्ति पर भी इसने प्रहार किया, और महादेव के पैर पर दो टाकें (गट्टे) लगवाईं। कहते हैं, उसमें से रक्त और दूध की धाराएँ (जो अब बंद हैं) बहते देख वह भाग गया। औरंगज़ेब के इस अत्याचार को देखकर कौन सनातनी उसे 'दुष्ट' न कह उठेगा? इस मठ में एक बड़ा भारी घंटा है,

पानी सफ़ेद दूध के समान उज्ज्वल प्रतीत होता है। पानी के वेग से बहने के कारण जल-कणों का उड़ना धुआँ-सा दिखाई देता है, जिससे इसे 'धुआँधार' कहते हैं। इस स्थल की मनोहरता का वर्णन करना मेरी लेखनी-शक्ति के बाहर की बात है। इसकी मनोहरता का वर्णन कालिदास या शेक्सपियर ही शायद कर सकें। प्रकृति की मनोहर चित्रकारियों का प्रत्यक्ष उदाहरण धुआँधार' है। आजकल, जब विज्ञान का ज़माना है, लोग इन्हीं वस्तुओं को देखकर ही तो प्रकृति की महत्ता स्वीकृत करते हैं।

वहाँ से हम लोग गौरीशंकर का मंदिर देखने गए।

गौरीशंकर का मंदिर

यह भी एक ऊँचे स्थान पर, क़िले के सदृश, बना हुआ है। भीतर एक मंदिर है, जिसमें महादेव और पार्वती—गौरीशंकर—की एक बैल पर बैठी हुई मूर्ति है। मठ के चारो ओर ६४ योगिनियों की मूर्तियाँ, भंगित अवस्था में, दिखाई देती हैं। कहते हैं, औरंगज़ेब यहाँ आया था, और उसने इन मूर्तियों को तोड़कर अपनी दुष्टता का परिचय दिया था। इसने



भेड़ाघाट के गर्भ में गौरीशंकर की मूर्ति
(नं० १ और २ टाकों के चिह्न हैं)

जिसकी आवाज़ एक मील तक जाती है। कहते हैं, इस मंदिर को स्यालकोट के राजा शालिवाहन ने २,००० वर्ष पूर्व बनवाया था।

भृगु-आश्रम

गौरीशंकर के मठ से सीढ़ियों-पर-सीढ़ियाँ उतरकर हम नीचे आए। यहाँ कुछ ही दूर पर, एक रम्य स्थान पर, एक कुंड मिला, जो चौखटे के आकार-सा पुरा हुआ था। उसमें एक वृक्ष भी लगा है। पास ही आराम-घर (Rest House) था। कहा जाता है, इसी जगह पर भृगु-ऋषि तपस्या करते थे। कुंड हवन-कुंड था। इस स्थान को भी देखकर मन आप-ही-आप ऋषि को सराहने लगा। वाह ऋषिगण! आप लोग भी तपस्या के लिये कैसी रम्य प्रकृति पसंद करते थे। सामने नर्मदा का शांत तथा मनोहर दृश्य, पीछे गौरीशंकर का प्रसिद्ध मठ।

पंचवटी

तदुपरांत हम 'पंचवटी' पहुँचे। यह भेड़ाघाट का एक प्रसिद्ध घाट है। यहाँ नर्मदा नहाने योग्य हैं। रमणीय होने के अतिरिक्त यह स्थान सुखदायक भी है। हम लोगों ने यहीं पुण्य-सलिला नर्मदा में स्नान कर अपने को कृतार्थ किया। फिर हाथ की वहीं बनी रोटियों तथा भटे की तरकारी से पेट की अग्नि को शांत किया। फिर एक नाव दो रुपए चौदह आने में किराए पर लेकर संगमर्मर की चट्टानें देखने चल पड़े।

संगमर्मर की चट्टानें

यहाँ पर नर्मदा का स्वरूप देखने योग्य है। बड़े-बड़े ऊँचे पहाड़ों को काटकर बहने से नर्मदा की सुंदरता और भी झलक उठती है! इन चट्टानों के बीच नर्मदा डेढ़ मील तक बही है। गर्मियों के दिनों में—चाँदनी रात में—इस मार्ग पर दरयाई सैर करने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो स्वर्ग यही है! एक अँगरेज़ कप्तान का कहना है—

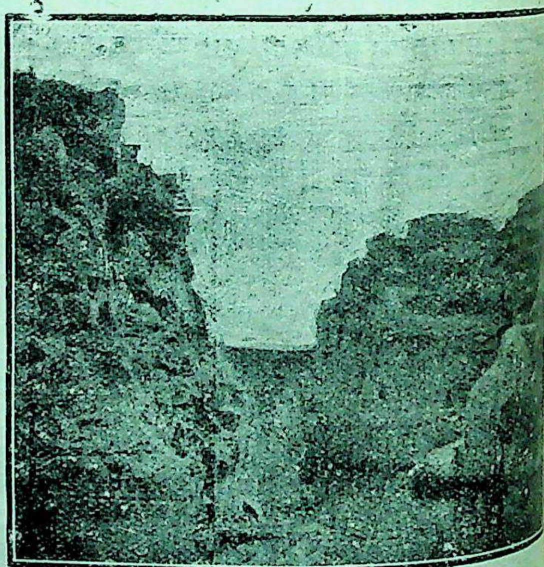
"कौन ऐसा पुरुष होगा, जो भेड़ाघाट देखकर संगमर्मर की चट्टानों को भूल जाय?"

बंदर-कूदनी

बड़े लंबे-चौड़े पाटवाली नर्मदा की एक स्थान की चौड़ाई देखकर हम तो दंग रह गए! इस स्थान का नाम 'बंदर-कूदनी' है। कहते हैं, यहाँ एक बंदर आर-पार कूद गया था। इसके पास ही 'जनेऊधारा' है। यहाँ तो नाव पार नहीं जा सकती। मधु मक्खियों ने भी किस रमणीय स्थान पर डेरा डालना सोचा है। यहाँ इनकी इतनी अधिकता है कि इनका डर बना ही रहता है। सुनने में आया है कि इन्होंने एक-दो मुसाफ़िरों को तंग भी किया है। इसके लिये मुसाफ़िरों को सचेत रहना चाहिए। तंबाकू का धुआँ तथा घी की बास इनकी कट्टर दुश्मन हैं।

बूढ़ी नर्मदा

कहते हैं, नर्मदा-नदी ने अपनी चाल कुछ वर्षों से बदल दी है। पहले गौरीशंकर के मंदिर के सामने से बहती थीं, किंतु महादेवजी ने उनसे कहा—"अच्छा होता, यदि आप हमारे पीछे, किंतु पास ही, बहतीं! क्योंकि आप के सामने होने के कारण लोग हमारे पास नहीं आ पाते।" इससे उन्होंने अपना मार्ग बदल दिया।



नर्मदा का दृश्य

अब उनके प्रथम मार्ग में कुछ नहीं—सिर्फ़ पत्थरों में चट्टानें ही नज़र आती हैं।

गोरा पत्थर, जिसके पाउडर आदि बनाए जाते हैं, यहाँ बहुतायत से मिलता है।

अन्य बातें

इस पत्थर का रंग सफ़ेद तथा चमकीला होता है। हाथ से छूने से उसके कण हाथ में, सूर्य की किरणों में, बहुत चमकते हैं। यहाँ संग-मर्मर की बनी अच्छी-अच्छी चीज़ें मिलती हैं। शंकर की मूर्तियाँ, क़लमदान, हाथी इनके उदाहरण हैं।

इस लेख को समाप्त करने के पूर्व मैं भेड़ाघाट

यात्रियों से

देखने के इच्छुकों से यह बतला देना अपना धर्म समझता हूँ कि उन्हें इस स्थान की यात्रा विशेषकर गर्मियों में ही करने में सुबीता होगा। यहाँ एक रोज़ रहकर प्राकृतिक शोभा देखने में आराम मिलेगा। इसके लिये यहाँ जबलपुर के सेठजी ने धर्मशाला बनवाई है कि यात्री ठहर सकें। यहाँ सभी आवश्यक सामान मिल सकते हैं। हाँ, जो ढीमर आपको स्थान तथा मंदिर आदि दिखाने ले जायगा, वह आपसे माँगेगा ज़्यादा, पर सोच-समझकर दिया जाय। अस्तु।

हम लोग रात को क़रीब दस बजे लौट आए। यह दिवस भी हमारे जीवन का एक महत्त्व-पूर्ण अंश था, जिसे पाठकों की सेवा में समर्पित किया है।



सर चंद्रशेखर वेंकट रमन

[आप पहले भारतीय विज्ञान-वेत्ता हैं, जिन्हें इस वर्ष का भौतिक विज्ञान-संबंधी नोबल-पुरस्कार मिला है ।]



श्रीमती सजनकुमारीबाई मनोत

आप उज्जैन-निवासी श्रीसरदारसिंहजी मनोत (जैन) की धर्मपत्नी हैं। कलकत्ते की महिला-पिकेटर्स की सेक्रेटरी थीं। गत महीने में दूसरी बार फिर जेल गई हैं।

राजनीति के क्षेत्र में !

कुमारी श्रीमोतीबाई

❁ ❁ ❁

श्रीसरदारसिंहजी की भतीजी हैं। चार मास जेल के भीतर रहने के बाद जब आप दूसरी बार पकड़ी गईं, तो मजिस्ट्रेट ने आपकी अल्पावस्था का विचार करके छोड़ दिया।



Ganga Fine Art Press, Lucknow.

Sanyasi Ashram, Sargodha's

चंद्रावली

[रजिस्टर्ड]

यह भारत के प्राचीन गौरव की एक स्मारक तथा आश्रम की प्राचीन ऋषियों की मौरूसी संपत्ति है, जो स्त्रियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के मासिक धर्म-संबंधी तथा अन्य व्यतिक्रमों से उत्पन्न हुए वंध्यात्व (बाँझपने) को समूल नाश कर देती है। इसका व्यवहार उस उन्नति की आशा की एक शर्तिया झलक दिखाता है, जो भारत के गौरव के दिनों में देशी औषधियों से प्राप्त थी। नीचे लिखे हुए प्रशंसा-पत्रों से, हमें आशा है, आप यह मालूम कर सकेंगे कि व्यवहारकर्ताओं को इसका गुण कहाँ तक प्रतीत हुआ है—

डॉ० प्रतापसिंह एम्० बी०, बी० एस्०, नौशहरा *Via khusab. N. W. Ry.* लिखते हैं कि—"जैसा कि आपको मालूम है, मेरे ब्याह के १३ वर्ष बाद तक मेरी स्त्री के मासिक धर्म ठीक नहीं होता था। कभी होता ही न था, और होता भी था, तो असह्य वेदना के साथ। इसी के फल-स्वरूप उसके कोई बच्चा भी नहीं हुआ। इतना अधिक समय हो जाने का मुझे दुःख न था; परंतु सोच था अपने भविष्य के अंधकार का। मेरी स्त्री की बेचैनी की बाबत तो कहना ही व्यर्थ है। और, दैव-प्रेषित आपकी चंद्रावली मुझे मिली। पहली बोतल के पीने से ही उसकी मासिक धर्म-संबंधी सभी बीमारियाँ दूर हो गईं, और आश्चर्य तो यह हुआ कि उसके गर्भ के भी लक्षण प्रतीत होने लगे। मैंने इसी सिलसिले में एक बोतल और भी पिलाई, जिससे गर्भ पक्का हो गया।

मैं इसके लिये आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ, क्योंकि मैंने अपनी स्त्री की दवा-दारू में कोई बात उठा न रक्खी थी। और, यहाँ तक कि उसके गर्भाशय का ऑपरेशन भी करवाया था। परंतु उससे रत्ती-भर भी फ़ायदा न हुआ। अब तो मैं यही कहता हूँ कि चंद्रावली ने ही मुझे पुत्र-रत्न प्रदान किया है।"

डॉ० ज्ञानसिंह एम्० बी०, बी० एस्०, *Incharge Guru RamDas Hospital*, अमृतसर लिखते हैं कि—"सन् १९२४ तक, अर्थात् सन् १९१५ से मेरी शादी के ९ वर्ष बाद, मेरी स्त्री के कोई बच्चा नहीं हुआ। इसका कारण जो हम लोगों को मालूम होता था, मेरी स्त्री की मासिक धर्म की ख़राबी थी। मैंने इसको ठीक करने के लिये अपनी कोई दवा उठा न रक्खी। बाहरी दवाओं का भी ख़ासा प्रयोग किया गया, और यहाँ तक कि लाहौर के सुप्रसिद्ध डॉक्टर कर्नल टेट Col. Godfrey Tate, M. B., Ch B. (Dob. Univ.). I. M. S, से ऑपरेशन भी करवाया। इससे भी कोई लाभ नहीं हुआ, और दो वर्ष व्यतीत हो गए।

इसी अवसर में आपकी चंद्रावली की प्रशंसा एक मित्र द्वारा मेरे सुनने में आई। मैंने तीन बोतलें मँगाकर सन् १९२३ की अंतिम तिमाही में अपनी स्त्री को इस्तेमाल कराई। दैव-कृपा से उसी से उसके गर्भ रह गया, और इस समय एक पूर्ण स्वस्थ और सुंदर बालक उत्पन्न हुआ है। मैं चंद्रावली की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपने हताश भाइयों से इसकी सिफ़ारिश करता हूँ।"

श्रीयुत जे० एस्० बतरा, बैंकर, बखरवार (शाहपुर) से लिखते हैं—

"मेरा प्रथम ब्याह २० वर्ष की अवस्था में, संवत् १९५२ में, हुआ था। मेरी स्त्री ब्याह के उपरांत १९ वर्ष तक जीवित रही। उसके एक बच्चा हुआ था, जो केवल ७ मास तक जीवित रहा। इसके बाद मेरा दूसरा ब्याह संवत् १९६७ में हुआ; लेकिन मेरी यह स्त्री केवल ४ वर्ष तक ही जीवित रहकर संवत् १९७१ में उसका भी प्राणांत हो गया। ४ वर्ष बाद मैंने तीसरी शादी की। इस समय मेरी अवस्था ४४ वर्ष की थी, और मेरी स्त्री युवा होने के साथ ही पूर्णतः स्वस्थ और सुंदर थी। ४ वर्ष आशा करते-करते व्यतीत हो गए, परंतु कोई बच्चा न हुआ। अब मुझे यह शंका हुई कि शायद मेरी स्त्री कोई अंदरूनी मर्ज़ से बीमार है, और तदनुसार हमने उसे दो डाक्टरों को दिखलाया। अंतिम वर्ष जब भलवाल (*Bhalwal*) के हकीम पंजाबसिंह की दवाइयों से भी कोई लाभ न हुआ, तो हमारी सभी आशाओं पर पानी फिर गया। इसी निराशा की अवस्था में मुझे ख़बर मिली कि आपकी चंद्रावली अनेक स्त्रियों के बाँझपने को नाश कर चुकी है। हमने जहाँ तक जल्दी हो सका, उसकी दो बोतलें ख़रीदीं। मेरी स्त्री एक ही बोतल व्यवहार में लाई थी कि उसके गर्भ रह गया। दूसरी आज भी मेरी अलमारी में उसी तरह रक्षित है। आश्रम के प्रति मेरी तथा मेरी स्त्री की कृतज्ञता का भाव, जिसने चंद्रावली के द्वारा ५१ वर्ष की आयु में पुत्र-रत्न लाभ कराया है, और फिर भी तीसरी स्त्री से समझा ही जा सकता है, लिखा नहीं जा सकता।"

मूल्य १ बोतल ५), २ बोतलें ९), तीन बोतलें १३), और चार बोतलों का दाम १६) है। पैकिंग और वी० पी० ख़र्च अलग। बड़ा सूचीपत्र लिखने पर मुफ़्त भेजा जाता है।

मिलने का पता—संन्यासी-आश्रम (*S*), *Sargodha* (*India*)

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

विश्वासी आयुर्वेदीय औषधियाँ ख़रीदने के लिये पता नोट कर लीजिए—

दवा बढ़िया

श्री विशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी अस्पताल

११८ एमहर्स्ट स्ट्रीट कलकात्ता

कीमत कम

विशुद्ध बादाम का तैल

माथे की कमज़ोरी यानी दिमाग़ की समस्त बीमारियों को दूर करने के लिये प्रधान दवा है। मूल्य १ शीशी का ॥।=)

गृहलक्ष्मी-तैल

विशुद्ध तिल-तैल से निर्मित महासुगंधित तैल है। लगाने से २४ घंटे तक बराबर ख़ुशबू बनी रहती है।

दंत-मंजन

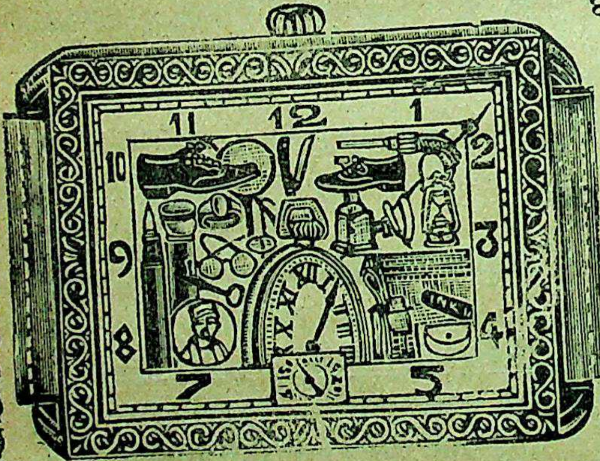
ख़ुशबूदार है। व्यवहार करने से दाँतों में किसी तरह की बीमारी नहीं होती, और दाँत सदैव स्वच्छ तथा दृढ़ बने रहते हैं। मूल्य ।) डिब्बी।

कर्पूरासव

बदहज़मी को दूर करता और भूख बढ़ाता है। हैज़े के लिये तो रामबाण दवा है। मूल्य ॥) शीशी।

सपरिवार नीरोग रहना चाहते हों, तो हमारा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाकर देखिए। दवा बेचनेवाले एजेंट, डॉक्टर, वैद्य तथा धर्मार्थ औषधालयों के लिये विशेष सुविधा है। ४६

३॥।≡) रु० में सब बढ़िया माल ख़रीदिए, साथ में एक जोड़ा जूता, चलनेवाली घड़ियाँ और एक लालटेन भी इनाम।



हमारा ओटो सुगंधराज एक बिलकुल नई ईजाद चीज़ है। यह बाज़ारू ओटो की तरह नहीं। शीशी की सुगंध २४ घंटे तक ठहरती है। खोलते ही मन मस्त हो जाता है। इस्तेमाल करते ही चारों तरफ़ ख़ुशबू फैल जाती है। आस-पास के बैठनेवाले ख़ुशबू से मस्त हो जाते हैं। शीशी का दाम १) रु०। ६ शीशी ओटो ३॥ में लेने से चश्मा, संकट-हरण अँगूठी, मनोहर अच्छे-अच्छे चित्र, फ़ाउंटेन पेन, ताश, महात्मा गांधी की सबसे प्यारी चीज़ अधिक कातनेवाली तकली (जेबी चर्ख़ा), चाक़ू, (खिलौना) साथ में पैर के नाप का डबल पालिशदार रबड़ सोल जूता, १ सुंदर चलती हुई बढ़िया ठीक समय बतानेवाली १० वर्ष की गारंटीवाली जर्मन बी० टाइमपीस या १ सुंदर चलती हुई की गारंटीवाली पाकेटवाच और एक ५० कैंडिल पावर की सारे कमरे में रोशनी देने वाली आविष्कार की हुई लालटेन मुफ़्त भेजी जाती है। डाक-ख़र्च अलग।

मैनेजर फ़्रेंड्स ऑफ़ इंडिया, हाटखोला, कलकत्ता

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

भाग्य

(सामाजिक उपन्यास)

[श्रीयुत ऋषभचरण जैन]

(६)



गाड़ी घड़-घड़ करती कोठी पहुँच गई।

बड़ी आलीशान, बड़ी सुंदर और बड़ी सुहावनी जगह है। गोल बरांडा है, ऊँचे-ऊँचे कमरे हैं, बाहर बग़ीचा है, सीढ़ियों पर फूलों के गमले हैं। हवा चलती है, तो ऐसा लगता है, मानो सुगंध की वर्षा हो गई।

जब करुणा के पिता ने यह कोठी ली थी, चार साल हुए, कुमारी मैट्रिक में पढ़ती थी, तब गृह-प्रवेश की रस्म में आई-आई वह अब आई है। काफ़ी परिवर्तन हो चुका है। एक तरफ़ नौकरों के लिये कच्चा मकान बन गया है। गाड़ी है, तो अस्तबल कैसे न बनता? बग़ीचा तैयार हो गया है; पेड़ फलों से लदे पड़े हैं, अंगूर की बेल बढ़कर बरांडे के दर्वाज़ों पर झुकी पड़ती है।

जिस उत्साह से आई थी, कुमारी के मन का वह उत्साह सहसा नष्ट हो गया। पर देखिए, ठंडी साँस उसके मुँह नहीं निकली, एक प्रकार का रोब और संकोच उस पर छा गया, और वह कुछ परेशान-सी दिखाई देने लगी।

गाड़ी अहाते में घुसी ही थी, और पहियों की आवाज़ मुश्किल से भीतर पहुँची होगी कि हिरनी की तरह छलाँगें भरती, उछलती-कूदती, करुणा बरांडे में दौड़ आई। सिर खुला हुआ है, बाल अस्त-व्यस्त हैं, शरीर पर एक गुलाबी, रेशमी साड़ी है, पैरों में पतला स्लीपर है, और हाथ न-मालूम किस चीज़ में सनकर काले हो गए हैं; गाड़ी की आहट सुनकर हाथ धोने तक का सब्र उसे न हुआ।

"अरे मा"—गाड़ी के पास पहुँचकर उसने पूछा—"अम्मा नहीं आईं?"

"नहीं", कुमारी के स्वर में अपने घर के उस पहले दिन के अधिकार-पूर्ण स्नेह की जगह कुछ संकोच और एक प्रकार की दबी हुई नम्रता थी। "सहसा आज उसे ज्वर चढ़ आया। बल्कि मैं भी नहीं आ रही थी, उन्होंने ज़िद करके भेजा है।"

"ख़ैर!" कहकर यह चंचल लड़की बुढ़िया मा की और उसकी बीमारी की बात भूल गई, और सखी की बग़ल-से-बग़ल मिलाए, उसका हाथ पकड़े, बरांडे की तरफ़ चली।

मा के प्रति करुणा की यह उपेक्षा देखकर, अगर्चे मैं जानता हूँ, उपेक्षा न होकर यह उसकी स्वाभाविक लापर्वाही, उत्साह और हर्ष-जनित जिज्ञासा के अभाव का कारण था, कुमारी एक बार अप्रतिभ हुई। पर अपने उस भाव को प्रकट कैसे करे? करुणा ने उसके घर जाकर तो ऐसी भूल की ही नहीं है, जो झिड़ककर, डाँटकर या 'पगली' बनाकर उसे समझा दे, अब तो वह स्वयं उसके घर पर आई है, और घर भी कैसा?—राजों-महाराजों के मुक़ाबले का! भला इस जगह पेमक-लगी मैली धोती पहने हुए यह दीन-हीन कुमारी कैसे उस वैभव और ऐश्वर्य की एक-मात्र स्वामिनी, क़ीमती रेशमी और झलक-झलक चमकती साड़ी पहने हुए करुणा को डाँटने का साहस करे?

तीसरी सीढ़ी पर पैर रखते हुए करुणा ने कहा—"बड़ी बाट दिखाई तुमने, मुझे तो निश्चय हो गया था, अब तुम न आ......" कहते-कहते उसने जीभ

दबाकर कहा—"मुझे तो बड़ा आश्चर्य हो रहा था, इतनी देर क्यों लगी ?"

कुमारी चुप है। मुँह से शब्द निकालने की उसकी इच्छा नहीं होती। कुछ तो वैसे ही कम-बोला है, पर यहाँ आकर तो जैसे उसकी जीभ ऐंठी जा रही है।

करुणा ने उसकी बग़ल में धीरे से गुदगुदी की, और कहा—"कहो तो, कुछ बोलो तो, देवीजी, कैसे इतनी देर लग गई ?"

प्रश्न बहुत साधारण था, और स्वयं करुणा भी उसकी तथ्य-हीनता समझती थी, पर वह तो कुमारी का मुँह खोलना चाहती है, उसे प्रश्न से क्या ग़र्ज़ ? प्रश्न में महत्त्व ही क्या था ? अगर कुमारी दुहरा देती—'मा की तकलीफ़ के कारण मैं आना न चाहती थी; उसने जब बहुत आग्रह किया, तो आई हूँ।" या केवल इतना ही कह देती कि "यों ही देर हो गई", तो अवश्य बात यहीं-की-यहीं रह जाती, और एक ख़ास चीज़ की तरफ़ करुणा का ध्यान आकृष्ट न होता।

पर कुमारी होश में कहाँ है ? देखिए, उसने लड़-खड़ाती जीभ से क्या मज़ेदार जवाब दिया है। कहती है—"ज़रा कपड़े-वपड़े पहनने में देर हो गई !"

सहसा करुणा की नज़र कुमारी की धोती पर पड़ी, और पलक मारते उसके चेहरे पर जो भाव प्रस्फुटित हुआ, हम ख़ूब ग़ौर के साथ उसे देखने पर भी आपको समझाने में असमर्थ हैं। दुःख, खेद, दया, सहानुभूति, ग्लानि, घृणा-युक्त नहीं, और लज्जा के सम्मिलित धक्के से उसका हृदय एकबारगी द्रवित हो उठा, मुख विवर्ण हो गया, और आँखों में आँसुओं के अर्द्धांश या चतुर्थांश चमकने लगे।

हा कुमारी ! आज क्या इस मैली, सूती, पुरानी धोती को भी तुझे चाव के साथ सम्हालकर देर लगाकर पहनने की आवश्यकता पड़ी ?

करुणा के इस प्रकार सहसा चुप हो जाने की तरफ़ अवश्य कुमारी ने लक्ष्य दिया, पर जो भाव इसके मन में उत्पन्न हुआ था, उसे वह न समझी। वह समझी, मेरा अन्यमनस्क भाव देखकर करुणा असंतुष्ट हो गई है।

देखा आपने, अपने घर पर कुछ दिन पहले तक जो कुमारी करुणा के गाल पीटकर और उसे रुलाकर भी उसके असंतुष्ट होने की आशंका या चिंता न करती थी, आज, इस समय, कैसी दुर्बल-हृदय और दीन बन गई है ?

हाँ, तो 'करुणा असंतुष्ट हो गई है ! मुझे अपना अन्यमनस्क भाव त्यागकर उसकी प्रसन्नता और उमंग में योग देना चाहिए, और उससे अच्छी तरह मिलना-बोलना चाहिए', यह विचारकर कुमारी बोली—"और करुणा—"

आँसुओं के रत्ती भर जल को पलकों में छिपाकर करुणा ने अपने बड़े-बड़े नेत्र कुमारी की तरफ़ उठाए।

कुमारी पूछती थी—"प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र महोदय..." पर न पूछ सकी। क्यों न पूछ सकी ? यह आप स्वयं अनुमान कीजिए, या मौक़ा मिले, तो क़सम दिलाकर उसी से पूछ लीजिए, हमें तो अपनी सर्वज्ञता पर अब विश्वास नहीं रहा, और इसीलिये हमें जो मालूम हुआ है, उसे हम इस डर से आपको नहीं बता सकते कि कहीं इस बेचारी कुमारी के साथ अन्याय न हो जाय।

बस, हम तो आपको यही बता सकते हैं कि वह प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र की बात पूछकर करुणा का उपहास करना चाहती थी, पर झट से बात फेर गई; शायद स्वयं उपहासास्पद बनने का भय हो...या राम-जाने क्या हो... हम यह नहीं कहेंगे।

हाँ तो, कहने लगी—"और करुणा—हाँ, तुम्हारी मा कहाँ हैं ?"

"मेरी मा ?"—करुणा सहसा कहने को हुई, 'मेरी मा को तुम अभी अपने घर छोड़कर आई हो', पर कुमारी के स्वर में प्यार या हास्य का अभाव देखकर उसने सीधी-सीधी आवाज़ में कहा—"मेरी मा को तो फ़ालिज आ गया है, हाथ-पैर बेकार पड़ गए हैं, धड़ शिथिल हो गया है। बस, मुँह से थोड़ा-बहुत बोल सकती है। क्यों, क्या मिलने चलोगी ?

कुमारी के 'हाँ' कहने पर करुणा उसका हाथ पकड़े हुए दूसरी तरफ़ घूम गई।

एक सजे-सजाए छोटे कमरे में, कोमल शय्या पर, करुणा की मा निश्चल पड़ी हुई थी। पतला-सा, सुंदर पंखा हाथ में लिए एक शुक्लवसना दासी, पत्थर की मूर्ति की तरह, सिरहाने खड़ी थी, और दर्वाज़े की तरफ़ पीठ किए कोई प्रौढ़ पुरुष, झुके हुए, किसी औषधि का मिश्रण रोगी के मुँह में बूँद-बूँद टपका रहे थे।

दोनो सखियों के पैरों की आहट सुनकर प्रौढ़ पुरुष ने मुँह फिराया। कुमारी ने पहचान लिया, करुणा के पिता थे।

औषधि पिला चुके थे। उन्होंने बर्तन दासी के हाथ में दे दिया, माथे पर से चिंता और उद्वेग की शिकन दूर की, और कुमारी के प्रणाम करने के पूर्व ही हँसते हुए बोले—"ओहो! कुमारी बेटी आई हैं। कहो बिटिया, अच्छी हो?"

कुमारी ने संकुचित होकर नमस्कार किया।

करुणा के पिता ने सिर पर हाथ रखकर कुमारी को आशीर्वाद दिया, और कहा—"बड़े दिनों बाद आईं बिटिया! कहो, तुम्हारी मा तो प्रसन्न हैं? अच्छा, क्या इन मा को देखने आई हो? क्यों, भूल तो नहीं गईं—जब तुम छोटी-सी करुणा के साथ आया करती थीं, और उन्हें हज़ारों बार 'मा! मा!!' कहकर जल-पान का सामान माँगा करती थीं? और करुणा की मिठाई छीन-छीनकर खाया करती थीं? और क्यों, भूली तो नहीं हो, जब अभियोग उपस्थित होने पर तुम्हारी यह मा सदा तुम्हारे पक्ष में फ़ैसला देकर न्याय का तिरस्कार और अपने अधिकार का दुरुपयोग किया करती थीं? क्यों बेटी, वे बातें तुम्हें भूली तो न होंगी? कैसे भूल सकती हो?—अच्छा किया बेटी, जो आ गईं! मिल लो, बोल लो, अपनी मा को बिदा दे दो, बिटिया, जिसमें अंतिम समय में उन्हें कष्ट न हो......।"

एक स्वर में और एक साँस में उपर्युक्त वक्तव्य समाप्त कर करुणा के पिता, आँखें पोंछते हुए, बाहर चले गए।

करुणा के पिता रायबहादुर रामकिशोर का थोड़ा परिचय दिए बिना नहीं बनेगा।

पिता शहर के नामी रईस थे, और ख़ुद बड़े भारी वकील हैं—'हैं' क्या, इन्हें भी 'थे' ही कहना चाहिए। अब तो एक मुद्दत से उन्होंने वकालत छोड़ ही दी है। पिता की भारी जायदाद और दौलत को पुत्र ने खोया नहीं, उसमें वृद्धि की। वकालत ख़ूब चमकी, और ख़ूब चली। अब उनकी संपन्नता का अनुमान आप इसी से कर लीजिए कि छः हज़ार रुपया महीना तो जायदाद का किराया ही वसूल होता था। कई संतानें हुईं, पर अब ले-देकर एक यह करुणा बची है। दो जवान बेटे कॉलेज में पढ़ते-पढ़ते, कई वर्ष हुए, जमना में डूब गए। बड़े के ब्याह की बातचीत हो रही थी। बस, इस सदमे ने उनकी कमर तोड़ दी। ओफ़्! दो-दो जवान, कड़ी-से, बेटों का इस प्रकार एक साथ अकाल-मृत्यु को प्राप्त हो जाना—ज़रा सोचिए तो—कैसा भयानक आघात होगा!

होने को वकील हैं, पर प्रकृति बड़ी भावुक है, बेटों की मृत्यु के बाद पागल-से हो गए, संसार से वैराग्य हो गया, एक बार घर-बार छोड़कर कहीं चल देने की ठानी।

पर जब शोक का वेग हलका हुआ, लोगों ने समझाया, उज्ज्वल-मुखा बेटी करुणा सामने आई, तो बेटों का सारा मोह उन्होंने बेटी में केंद्रित कर दिया, और नीरस जीवन को भरसक सरस बनाकर अभागे रामकिशोर दिन बिताने लगे।

ख़ुद तो इस तरह सह गए, पर गृहिणी न सह सकीं। बेटी का क्या, उस पर कैसे सबर बाँधे, वह तो पराए घर की वस्तु है। हाय! दोनो जवान बेटे हँसते-खेलते जलते चिराग़, खिले हुए फूल तो सदा के लिये न-जाने कहाँ विलीन हो गए! उन्हें अब किस प्रकार पाए!!

बस, माता ने उसी दिन से खाट पकड़ ली।

मेरे पाठकों में जो वयस्क हैं, प्रौढ़ हैं, वृद्ध हैं, वे जानते हैं, इस अवस्था में स्त्री के बिछोह की कल्पना कैसी कष्टकर होती है ! वह पुराना स्नेह, वह जवानी के चोचले, वह मान-भंग के अनोखे प्रयोग, वह उन्मत्त प्रणय के मीठे-मीठे राग, सब अपनी अलग-अलग मूर्ति बनाकर सामने खड़े हो जाते हैं। इस अवस्था में ये सब कैसी संकटमय परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं—मुक्त-भोगी के अतिरिक्त उसे कौन समझ सकता है, और कौन समझा सकता है ?

रायबहादुर रामकिशोर सारा वैराग्य, सारा शोक, सारा विवेक और सारा औचित्य भूलकर अब दिन-रात स्त्री की परिचर्या में लगे रहते हैं। नौकर इतने कि अलग-अलग सबका नाम लें, तो आध घंटा लग जाय, मगर स्त्री को औषधि अपने हाथ से ही पिलाते हैं। डॉक्टर, वैद्य, हकीम से लेकर स्याने, ज्योतिषी और अघोड़ी तक की शरण गह चुके हैं। पर सबने हार मानी है। कलकत्ते से कई हज़ार रुपया ख़र्च कर एक नामी डॉक्टर बुलाए गए। उन्होंने भी, वृद्ध रामकिशोर की दशा से द्रवित न होकर, साफ़ जवाब दे दिया।

सब तरफ़ निराशा है ! सब तरफ़ अँधेरा है !! रायबहादुर रामकिशोर पत्नी के विच्छेद की आशंका से अधीर हो रहे हैं।

अर्द्धोन्मत्त वृद्ध अब भी पत्नी के इलाज में पानी की तरह रुपया बहाए चला जा रहा है। कुछ लोग हँसते हैं, कुछ दया प्रकट करते हैं, कुछ आँसू बहाते हैं, पर पत्नी पर वृद्ध रामकिशोर का यह उन्मत्त और असामयिक अनुराग देखकर लोग कुछ-कुछ चिढ़ते भी हैं !

और-तो-और, स्वयं उनकी बेटी करुणा, पिता का रुदन सुनकर, समय-समय पर खीझ उठती है।

क्या बताएँ—कहना ही पड़ेगा, करुणा मा के प्रति लापरवा है, और मा से उचित स्नेह उसे नहीं है। जीवन का प्रारंभिक दस वर्ष का अत्यंत कोमल समय करुणा ने एक ऐंग्लो-इंडियन दाया की गोद में बिताया है। उसका वह समय, जब गर्भ में आरोपित सं[illegible] श्रद्धा और भक्ति का स्वच्छ बीज माता की गोद [illegible] उष्णता पाकर प्रस्फुटित होता है, ऐंग्लो-इंडियन [illegible] के स्तन-पान में या कोमल पालने में लेटे हुए [illegible] था।

हाय ! उसी कुसंस्काराच्छन्न दीर्घ दुर्घटना—[illegible] दुर्घटना के कारण लेखक को इस करुणा के व्यक्ति[illegible] में थोड़ी दुर्बलता का दर्शन और चित्रण करना पड़ा, और सच कहें, तो उसी सूक्ष्म दुर्बलता को [illegible] उपन्यास का माध्यम बनाना पड़ा !

रामकिशोर आँखें पोंछते हुए चले गए, तो करु[illegible] की मा ने टिपटिपाती आँखें खोलकर कुमारी को [illegible]चाना, और काले, रूखे ओठों पर मुस्किराहट [illegible] का प्रयत्न किया।

कुमारी ने आगे बढ़कर रोगिणी के चरण छुए, [illegible] द्रवित कंठ से पूछा—"मा, तुम्हारी यह क्या [illegible] हो गई ?"

कुमारी के इस प्रश्न ने दूसरे शब्दों में इसी [illegible] की अंतर्ध्वनि की—"तुम्हारी वह हृष्ट-पुष्ट देह, [illegible] तपे हुए सोने का-सा रंग, वह कमल के फूल-सा वि[illegible]सित यौवन कहाँ चला गया ?"

रोगिणी ने अपना शीर्ण, हड्डीला हाथ धीरे[illegible] उठाया और निराश-भाव बनाकर उँगली से ऊप[illegible] संकेत किया। अर्थात् कहा—"ईश्वर की यही [illegible] थी !"

कुमारी किसी प्रकार अपने आँसू न रोक स[illegible] और आँखें पोंछती हुई धीरे-धीरे खाट पर, एक [illegible] बैठ गई।

रोगिणी ने आधा-आधा इंच करके अपना [illegible] आगे बढ़ाया, और कुमारी के हाथ पर रख दि[illegible] बोलने की चेष्टा में कुछ देर उसके ओठ हिलते [illegible] और तब अत्यंत क्षीण स्वर में सुनाई दिया—"[illegible] तो रही बेटी ?"

कुमारी ने कहा—"हाँ मा, मैं तो अच्छी हूँ, [illegible] तुम्हारी यह क्या हालत......"

कहकर कुमारी फिर आँखें पोंछने लगी।

रोगिणी के भाव में कोई परिवर्तन न हुआ, शायद शिथिलता के कारण चेष्टा करने पर भी न हो सका, अथवा चेष्टा ही न की गई। उसी प्रकार स्थिर नेत्रों से ताकते हुए रोगिणी ने तीन-चार बार ओठ हिलाकर कहा—"मा अच्छी है?"

कुमारी ने कहा—"आज सुबह से बुखार में पड़ी हैं। आना चाहती थीं। दर्वाज़े तक आईं, पर शिथिल होकर गिर पड़ीं। कहा है—'फिर कभी आऊँगी।' मा, तुम्हारे लिये वह भी बड़ी चिंतित हैं। कहा है—जल्दी अच्छी हो जाओ, जो रोज़ जमनाजी पर भेंट हो सके।"

अब की बार उल्का-पात की तरह रोगिणी के ओठों पर हँसी की रेख दिखाई दी, और उसने फिर उँगली उठाकर ऊपर की तरफ़ संकेत कर दिया।

कुमारी खेद की मुद्रा बनाकर कुछ देर सिर झुकाए बैठी रही। सहसा रोगिणी ने फिर उसी क्षीण स्वर में पूछा—"कह तो बेटी, ब्याह कब होगा? अरे, शर्माती है!.........करुणा.........!"

रोगिणी "करुणा.........!" कहकर रुक गई, क्योंकि करुणा वहाँ न थी। वह अनुभव-हीन उच्छृंखल लड़की, अपनी उमंग और प्रसन्नता का मधुर समय वहाँ नष्ट न कर, न-जाने कहाँ, किस फ़िक्र में चल दी थी!

रोगिणी का श्याम मुख अधिक श्याम-वर्ण हो गया, और वह प्रायः अचेत हो गई।

दासी ने जल्दी से वस्त्र उनके शरीर पर डालकर कहा—'ओफ़्! फिर घंटे-भर की मूर्च्छा.........!"

(७)

कमरे से बाहर होते ही करुणा आती दिखाई दी। कुमारी उस पर रुष्ट है। छिः! ऐसी निष्ठुरता!

उस रोष को प्रकट करने का साहस अभी उसमें नहीं आया है, और कृत्रिमता का अभ्यास उसे है नहीं, अतः देखकर उसने एक बार उपेक्षा से मुँह फेर लिया।

करुणा उसकी उपेक्षा और गंभीरता का अत्याचार सहने की अभ्यस्त है, इसलिये इस भाव पर उसने लक्ष्य न दिया।

बाल उसके सँवरे हुए हैं, शरीर पर ख़ुशनुमा बादामी रंग की साड़ी है, झालरदार क़मीज़ है, और हाथ में नीली 'स्वान' इंक (स्याही) की भरी हुई शीशी है।

दस क़दम परे से ही पुकारकर उसने कहा—"चलो न कुम्मो, बाग़ की सैर करें।"

कुमारी उसके पास पहुँचकर चुपचाप खड़ी हो गई, और विषाद-पूर्ण नेत्रों से उसका मुँह निहारने लगी।

सखी की इस अनोखी चितवन से करुणा घबरा गई।—घूर-घूरकर क्या देख रही है!—इस घबराहट को छिपाने के लिये पगली झट से हँस पड़ी, और स्याही की शीशी की तरफ़ संकेत करके बोली—डॉक्टर ने मदर के लिये जो दवा दी है, उसका रंग इस स्याही से बिलकुल मिलता है। मैं ज़रा दोनो को पास-पास रखकर फ़ादर को दिखाना चाहती हूँ।"

कुमारी के द्रवित हृदय में गहरी ठेस लगी। क्रोध से उसका मुख एक बार लाल हो उठा। तब उसने अत्यंत तिरस्कार-पूर्ण स्वर में कहा—"छिः करुणा! माता-पिता के प्रति तुम्हारा कैसा गर्हित व्यवहार है! तुम्हें लज्जा नहीं आती?"

क्षण भर में वह प्रफुल्लित हास्य लोप हो गया, चेहरा उतर गया, और उसने अपराधी की भाँति सिर झुका लिया।

"शर्म की बात है, करुणा!" कुमारी ने हृदय के आवेग को न सँभालकर कहा—"पिता तुम पर जान देते हैं, माता तुम्हारी सूरत देखने को भटकती है, और तुम? तुम उनकी सेवा-टहल-परिचर्या करना तो दरकिनार, उनका उपहास करती हो, उन्हें दुःख पहुँचाती हो! तुम कितनी बदल गईं, मेरी करुणा!"

जब देखा, करुणा लाज से गड़ी जा रही है, तो कुमारी ने अपने तिरस्कार के अंतिम अंश को स्नेह-पूर्ण बनाकर उसके क्षोभ को हलका करने की चेष्टा

की, और सचमुच उसका क्षोभ हलका हो गया, और कुमारी की छाती पर सिर रखकर उसने दोषी बालक की भाँति रुक-रुककर कहा—"मैं तो यों-ही कहती थी......मेरा यह मतलब नहीं था।"

कुमारी ने स्नेह-पूर्वक करुणा की पीठ थपथपाते हुए कहा—"ना, करुणा, यह अच्छा नहीं है। देखो, मा मूर्च्छित हो गई थीं!"

"मूर्च्छित?"

"हाँ, उन्होंने तुम्हें पुकारा था। तुम वहाँ से ग़ायब हो गई थीं। इस आघात से मा मूर्च्छित हो गई हैं।"

करुणा चुप खड़ी रही।

"जाओ, भीतर जाओ", कुमारी ने कहा—"और मा के चरणों पर सिर रखकर सच्चे मन से क्षमा माँगो। जाओ!'

हम नहीं कह सकते, मन से या बे-मन से, पर करुणा आज्ञाकारिणी छात्रा या आश्रिता की भाँति चुपचाप भीतर चली गई, और कुमारी के कथनानुसार अचेत मा के चरणों पर सिर रखकर मन-ही-मन क्षमा माँग आई।

बाहर खड़ी-खड़ी कुमारी ने सब देखा। पर उसका क्षमा माँगने और सिर झुकाने का ढंग देखकर उसे यह समझते देर न लगी कि उसके आज्ञा-पालन में 'सच्चे मन' का अभाव है।

अफ़सोस! टूटे हुए, सूखे हुए संस्कार-तंतु किस प्रकार झटपट जोड़े जा सकते हैं! कुमारी के मुँह से एक हलकी-सी ठंडी साँस निकल ही गई।

"माँग आई!"—करुणा ने स्याही की शीशी क़मीज़ की जेब में डालकर कहा—"अब तो नाराज़ नहीं हो?"

कुमारी ने गंभीर होकर कहा—'ठीक है!'

करुणा ने समझा—बात समाप्त हो गई।

पर नहीं, कुमारी के मन का असंतोष नष्ट न हो सका।

"आओ, ज़रा बग़ीचे में टहलें! माली से कहकर केवड़ा खुदवाती हूँ—तैयार हो गया!"

"चलो!"—कुमारी अब कोई ऐसी बात नहीं कहना चाहती, जिससे करुणा दुखी हो।

करुणा पास आई, और क़मीज़ की जेब से स्याही की शीशी निकालकर आप-ही-आप बोली—"इसे यहीं रख दूँ!" फिर सहसा उसे जेब में डालकर कहने लगी—"चलो, लौटकर दफ़्तर में रख दूँगी; यहाँ कोई नौकर का छोकरा तोड़ देगा।"

दोनो सखियाँ बाग़ में टहलने लगीं। बातें भी हो रही थीं। कुमारी ने सूरज की तरफ़ देखकर कहा—"मुझे जल्दी ही लौटना होगा।"

"वाह! क्यों? आज नहीं, कल जाना। इतने दिन बाद..."

कुमारी ने कड़ी बात न कहकर साधारण भाव से कहा—"मा बीमार जो है!"

"ओह!" भुलक्कड़ करुणा ने कहा—"क्या तकलीफ़ है?"

"कहा तो—ज्वर से पीड़ित हैं; अपने वचन का पालन करने के अभिप्राय से ही उन्होंने मुझे भेज दिया है, अन्यथा..."

"अरे! क्या बहुत तकलीफ़ है?" करुणा ने साश्चर्य पूछा।

आश्चर्य! कैसी अद्भुत है! अपनी मा से ऐसी विरक्ति और दूसरी पर इतना स्नेह! कुमारी ने सोचा—'कृत्रिमता तो नहीं!' पर नहीं, वह भोला चेहरा कपट की छाया से आच्छादित न था, उन हिरनी के बच्चे के-से जिज्ञासु नेत्रों में छल की गुंजाइश नहीं थी!

कुमारी एक बार मुग्ध हो उठी! कैसी सरलता है! बोली—'ज्वर से शिथिल हो रही थीं......'

करुणा ने क़मीज़ की जेब से स्याही की शीशी निकाल ली थी, और बच्चों की तरह उसे इस हाथ से उसमें और उससे इसमें उछाल रही थी।

...सहसा यह क्या हो गया! शीशी का कार्क खुल गया, और उसकी गाढ़ी, नीली स्याही थल्-थल् करके बिखर गई। वह क़ीमती बादामी साड़ी और

क़मीज़ स्याही से तर हो गई, कुछ स्याही कुमारी की उस पेमक-लगी घटिया धोती पर भी गिर पड़ी।

उछलकर करुणा पीछे हटी, और आश्चर्य और खेद का प्रदर्शन करती हुई बोली—"छिः ! मैं कैसी मूर्ख हूँ। तुम्हारी धोती भी ख़राब कर दी ! चलो, बदल डालो।" फिर सहसा ज़ोर से हँसती हुई कहने लगी—"शायद तुम्हारी नज़र......"—रुककर दाँत-तले जीभ दबाई, और बोली—"चलो, कपड़े बदलें, जल्दी चलो, उन लोगों के आने का समय हो रहा है।

अपनी वह मैली धोती ख़राब हो जाने का जितना दुःख कुमारी को हुआ, वही जानती थी। क्षोभ और खेद से उसकी आँखों में आँसू छलछला आए, हाय ! अभागिनी को दूसरे का कपड़ा पहनना पड़ेगा।

पर इस संकटमय स्थिति में भी करुणा का अंतिम वाक्यांश सुनकर वह सहसा रोमांचित हो उठी। कितनी देर से वह प्रश्न उसके मन में चक्कर लगा रहा है ! कितनी देर से वह अधीरता-पूर्वक उनकी बाट तक रही है, कितनी देर से !........

ओफ़् ! उस विद्वान् से भेंट होगी !

दोनो चलीं। अब उसे पर्याप्त साहस प्राप्त हो गया था। करुणा ने उसका थोड़ा अपराध किया है। अब उसके समक्ष कोई छोटी-मोटी दुर्बलता प्रकाशित करने से उसे हास्यास्पद बनने की आशंका नहीं है। बोली—"हाँ, तुम्हारे प्रोफ़ेसर साहब कब पधारेंगे ?"

करुणा ने कहा—"साहब ?—हाँ, आप तो शायद साहब ही......आते ही होंगे। तीन बजे की बात है।"

कुमारी बोली—"साहब सुनकर क्यों चौंकीं ? अरे, वह साहब, तुम मेम।"

सहसा करुणा का मुँह उतर गया, बोली—"चलो, झटपट कपड़े बदल डालें।"

कुमारी ने रसिकता से कहा—"ओहो ! अभी से साहब का इतना डर है।"

उच्छृंखल, चंचल करुणा उदास होकर बोली—"जीजी, हँसी अच्छी नहीं लगती। चलकर पहले कपड़े बदल डालो। ये बातें तो फिर होती रहेंगी। हा ! हा ! बुरा मान गई ? अरे बाबा, चाहे जितनी हँसी कर लेना, पहले कपड़े बदल डालो।"

परंतु विचारशीला कुमारी बुरा न मानकर सहसा गंभीर आश्चर्य में डूब गई थी, यह कैसा भाव ! यह उपेक्षा क्यों ? यह तो कृत्रिम नहीं, खिलने की जगह यह मुर्झा क्यों गई ? मुझे भ्रम तो नहीं हुआ ?

अब उस भ्रम को दूर करने के अभिप्राय से बोली—"नहीं, बुरा तो नहीं मानी, यह सोचती हूँ कि तुम्हारे साहब बड़े ही रोबदार, ज़बर्दस्त हैं, जो तुम-सी......उनसे इस प्रकार काँपती है।"

पर करुणा का भाव हास्य-पूर्ण न हुआ; न वह गंगा-जमनी हलकी मुसकान दिखाई दी, न गर्दन झुकाकर मीठी लज्जा का प्रदर्शन। बस, उदास होकर उसने इस प्रकार सिर झुका लिया, मानो अपने बड़प्पन का दुरुपयोग करके कुमारी ने कोई अनुचित बात उससे कह दी है।

साँस रोककर और पूरी आँखें खोलकर कुमारी ने सखी के इस अभूतपूर्व भाव पर लक्ष्य किया, और फिर बिना कुछ बोले उसके साथ-साथ चल दी।

सखी को साथ लिए करुणा कपड़ा बदलने के कमरे में गई। कई ऊँची-ऊँची शीशे की आलमारियाँ साड़ी, जैकेट, क़मीज़ इत्यादि कपड़ों से भरी हुई थीं। सखी का वैभव देख आज पहलेपहल कुमारी को अतीत काल की याद आ गई ! उसकी आलमारियाँ भी इतनी ही बड़ी-बड़ी थीं, उसके भी इसी तरह बे-शुमार वस्त्र थे, उसने कभी क़ीमती-से-क़ीमती कपड़ों के लिये इतनी ही लापरवाही दिखाई थी।

और आज ?

हाय ! आज—उस पेमक-लगी, पुरानी धोती के बिगड़ने से उसे एक बार कितना कष्ट हुआ है..... !

'पेमक-लगी धोती ! मैली ! गंदी ! पुरानी ! ओह !' कुमारी के मन में सहसा एक नवीन भाव की सृष्टि हुई। स्याही की शीशी, करुणा की बहानेबाज़ी, जेब

में रखना, सहसा कार्क का खुलना और उसी वक्त साड़ी बदलने के लिये बहाना—इन सब कड़ियों को सिलसिलेवार रखने से—मेरे राम—यह क्या बन जाता है ? कौशल ! अद्‌भुत कौशल ! ओफ़्...... !

उसने सहसा चमककर करुणा की तरफ़ देखा। संदेह नहीं, विश्वास हो गया। क्या देखा ? करुणा दुःख, दया और स्नेह का आर्द्र भाव बनाए, कुमारी की उस मैली, पुरानी, घटिया धोती की तरफ़ देख रही थी।

कुमारी ने यह देख लिया, और फिर बिजली की तरह घूमकर ज्यों-की-त्यों हो गई !

हाय करुणा ! तेरी इस उच्छृंखलता के मध्य क्या कुमारी का इतना सम्मान, इतना स्नेह छुपा हुआ है ?

कुमारी की चेष्टा पर करुणा ने भी लक्ष्य दिया, और एक बार उसका हृदय काँप उठा। क्या कौशल खुल गया ? अब कुमारी क्या कहती है ?

पर कुमारी ने कुछ नहीं कहा, और जब उसने कुछ नहीं कहा, तो वह क्यों पूछे ? संभव है, भ्रम हो, और पूछने-ताछने में भेद खुल जाय।

बस, उसने, स्वभाव के विरुद्ध, आज पहली बार अपनी जिज्ञासा दबाकर गंभीरता का परिचय दिया।

यदि थोड़ा-बहुत संदेह बाक़ी रह गया था, तो करुणा की इस अस्वाभाविक गंभीरता ने वह भी दूर कर दिया, और सखी के अलौकिक स्नेह-सम्मान पर मुग्ध हो, कुछ क्षण के लिये कुमारी अचेत-प्राय हो गई।

'......पर, मैं इसका कपड़ा न पहनूँगी......'

करुणा ने एक आलमारी खोली, और कहा—"लो बहन, पसंद करो !"

"मैं पसंद करूँ ? अरे, तुम पहनोगी, तुम्हीं पसंद करो।"

"वाह ! पर अपने लिये... .."

"मैं ? न बदलूँगी।"

"क्यों ?" कलेजा ज़ोर से धड़कने लगा।

"न, मेरी धोती ज़्यादा ख़राब नहीं हुई है, ज़रा धोकर ठीक किए लेती हूँ।"

"यह कैसे ? वाह ! सारी धोती तो मैली... न, न, ख़राब हो गई है !"

जल्दी में असल बात आख़िर निकल ही गई !

करुणा ने देखा, काम बिगड़ रहा है। झट-पट ... धोतियों की थई-की-थई निकाल-निकालकर पटकने लगी, और कहने लगी—"वाह ! यह कैसे हो सकता है ! जब धोतियाँ मौजूद हैं, तो क्यों ख़राब धोती पहनो ! वाह......लो जल्दी से छाँटो—क्यों, यह संदली रंग तुम्हें पसंद है ?"

वाह कैसी फ़ैंसी साड़ी है। पाठक चाहे बुरा मानें, मैं तो उसकी कमज़ोरी को छिपाऊँगा नहीं, एक बार तो उसका जी ललच उठा ! परंतु कहने लगी—"ना करुणा, मैं धोती न बदलूँगी, तू रख डाल !"

"क्यों ?"

"देख तो—कहीं ख़राब भी हुई है; ज़रा-सा धब्बा लगा है। ना, मैं नहीं बदलने की।"

"नहीं बदलने की ?"

"नहीं।"

"तो मैं भी नहीं बदलती।" कहकर करुणा ... से उन नई, क़ीमती साड़ियों को उठाकर इधर-उधर फेंकने लगी।

कुमारी ने उसका हाथ पकड़ा, और कहा—"... यह क्या पागलपन ?"

"तो तुम बदलतीं क्यों नहीं ?" कहती-कहती करुणा रो पड़ी। कुमारी ने सखी को छाती से लगा लिया, और प्यार से उसका गाल चूमकर कहा—"धत् तेरे की, मैं तो हँसी करती थी, आप...... वाह रे तेरा रोना ! पगली कहीं की !"

करुणा ने गुनगुनाकर कहा—"तो पहनो !"

"ला, बाबा, दे।"

"कौन-सी दूँ ?"

कहकर उसने कुमारी की तरफ़ देखा, और ... हँसते देख, बच्चों की तरह ठिनककर हँस पड़ी !

आख़िर एक साड़ी पसंद हुई। अब ...

बोली—"क़मीज़ किस रंग की निकालूँ ? जल्दी बोल !"

साड़ी पहनते-पहनते कुमारी ने रसिकता से कहा—"अच्छा, एक बात बता ?"

सारी जल्दबाज़ी भूलकर करुणा ने सरलता से पूछा—"क्या ?"

"साहब बहादुर से इतना क्यों डरती है ?"

कुमारी ने देखा, करुणा फिर पहले की तरह श्री-हत हो गई, मुर्झा गई।

फिर भी उसने पूछा—"बता ! बता !"

करुणा रुआँसी होकर बोली—"देख, मैं फिर रो पड़ूँगी।"

"अच्छा तो रो !" कुमारी ने आधी पहनी हुई साड़ी उतारते हुए क्रोध का प्रदर्शन कर कहा—"मैं तेरी साड़ी-वाड़ी नहीं पहनने की !"

"अरे बाबा, अरे !" करुणा ने घबराकर कहा—"अच्छा-अच्छा, बोलो, क्या कहती है ?"

"पहले यह बता, तू साहब बहादुर का नाम सुनकर इस तरह बिदकती क्यों है ?"

"पहले-पीछे नहीं", करुणा ने अनमनी होकर कहा—"एक प्रश्न पूछ लो, कोई-सा पूछो।"

"अच्छा यही बता।"

"और कुछ नहीं बताऊँगी।"

"अच्छा।"

अब उसने हँसकर कहा—"अरे वाह ! मैं बिद-कती कहाँ हूँ—यह तो यों ही........"

"झूठ !" कुमारी ने डाँटकर कहा—"तो ले, साड़ी उतारती हूँ।"

"फिर वही ! अच्छा क्या कहती है ? बोल !"

"अब बार-बार प्रश्न करूँ ? बता।"

करुणा ने सिर नीचा कर लिया, और सोच-साच-कर बोली—"तू 'साहब-साहब' मत कहा कर !"

"क्यों ?"

"मुझे चिढ़ छूटती है।"

"क्यों ?"

"साहब कहाँ, ही इज़ जस्ट लाइक एन इल्लिट्रेट वन *।— गँवार !"

अरे ! यह क्या ! आश्चर्य से मुँह खोलकर कुमारी ने पूछा—"इल्लिट्रेट ? गँवार ? यह कैसे ?"

"मोटी दरी की-सी टोपी, खद्दर का लंबा-चौड़ा कुर्ता, घुटने तक की धोती, तीन आने की चप्पल"—करुणा ने सूखी हँसी हँसकर कहा—"ले चल, अब तो एक की जगह कई प्रश्न हो चुके !......हाँ, आज देखो—शायद साहब बहादुर......।"

ओफ़् ! लड़की फ़ैशन की भूखी है !

(८)

दोनो सखी बाहर आईं। सहसा दासी ने आकर कहा—'ठाकुर साहब आए हैं।"

"ठाकुर साहब ?—या प्रोफ़ेसर साहब ?"—कुमारी ने सोचा—'शायद दासी प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र को ठाकुर साहब कहती है।'

करुणा ने पूछा—"कहाँ हैं ?"

"बाहर के कमरे में।"

कुमारी का हाथ पकड़कर करुणा बाहर के कमरे की तरफ़ चली। एक चौड़ी मेज़ के इर्द-गिर्द क़रीने से पाँच कुर्सियाँ रक्खी हुई थीं। मेज़ पर छुरी, चम्मच, काँटे और थाली, तश्तरी इत्यादि रक्खी थीं, बीचो-बीच तश्तरी में ताज़ा खुदा हुआ केवड़ा रक्खा था, जो सारे कमरे में मनोहर सुगंध फैला रहा था। कमरे में इधर-उधर बहुत-सी गद्देदार कुर्सियाँ और सोफ़े, कोच इत्यादि सामान रक्खा हुआ था।

इस कमरे के द्वार पर पहुँचकर सहसा कुमारी की दृष्टि आगंतुक पर पड़ी। अब उसे कुछ शंका हुई। दो क़दम पीछे हटकर उसने करुणा से पूछा—"यह कौन सज्जन हैं ?"

"मेरे एक सहपाठी हैं। इसी वर्ष बी० ए० पास किया है। दो वर्ष से बेचारे फ़ेल हो रहे थे। इन्हें भी निमंत्रण दिया गया है।"

---

* He is just like an illiterate one.

कुमारी ने स-रोष कहा—"तुमने मुझसे पहले क्यों नहीं कहा ?"

"क्या ?"

"कि किसी अपरिचित व्यक्ति को भी निमंत्रित किया गया है। मैं ऐसी बे-पर्दगी........ ! कोई सुने, तो......"

"कहती क्या हैं आप देवीजी ? कुछ होश भी है ? क्या मैंने आपसे यह नहीं कहा कि आज कोई और भी निमंत्रित किए गए हैं ?"

"तो", कुमारी ने मुस्किराकर कहा—"वह 'और कोई' तो आपके साहब—न, इन्जिस्ट्रेट—बहादुर थे न ?"

"तो महाशया, वे आपके लिये अपरिचित नहीं हैं क्या ? या उनसे घूँघट काढ़कर बातें करतीं ?"

बेशक, बात तो सच है ! इस समय तो सच-मुच कुमारी को चकराना पड़ा। अगर लेखादि पढ़े हैं, तो इससे क्या हुआ, कोई व्यक्तिगत भेंट-परिचय तो नहीं है ! कुमारी से उत्तर देते न बना।

अपनी विजय पर मुस्किराकर करुणा ने कहा—"चलिए, मेरी पर्दे-नशीन देवीजी, यह महाशय भी कोई गुंडे या बदमाश नहीं, अच्छे सज्जन पुरुष हैं ! इनसे भेंट करके भी आप अवश्य प्रसन्न होंगी।"

कुमारी ने और कोई उपाय न देखकर पूछा—"अच्छा, और कौन-कौन आवेगा ?"

"बस, तुम्हारे वही 'और कोई' आएँगे।"

"बस ?"

"हाँ, बस।"

तब कुमारी, अपने भरसक लज्जा और संकोच दूर कर, सखी के पीछे-पीछे उस कमरे में प्रविष्ट हुई।

सामने गद्देदार कुर्सी पर एक हृष्ट-पुष्ट, बल्कि स्थूलकाय, साँवला युवक बैठा कुछ पढ़ रहा था। हैट उसने उतारकर छोटी मेज़ पर रख दी थी। सिर के बाल उसके काले, चिकने, पतले और घुँघराले, भौंहें घनी और मोटी, आँखों की पुतलियों में सूक्ष्म-सा पीलापन, ऊपर का ओष्ठ पतला, गर्दन बगुले की-सी—मुड़ी हुई—छाती निकली हुई और हाथ-पैर लंबे-लंबे थे। पोशाक उसकी अँगरेज़ी ढंग की थी।

कमरे में पहुँचकर करुणा ने परस्पर दोनों अपरि-चित व्यक्तियों का परिचय कराया। नाम उनका था—ठाकुर रामशरण सिनहा बी० ए०, एक ज़मीं-दार के पुत्र हैं, स्वयं शहर में रहकर पढ़ते हैं, परि-वार के लोग देहात में हैं।

रामशरण ने कुमारी से हाथ मिलाकर निस्संकोच भाव से कहा—"आपको देखकर सुखी हुआ !"

कुमारी के मुँह से शिष्टाचार का कोई शब्द नहीं निकला, उसने सकुचकर सिर झुका लिया।

कलाई पर बँधी हुई घड़ी की तरफ़ देखकर रामशरण ने करुणा को लक्ष्य करके कहा—"क्यों, प्रोफ़ेसर साहब अभी नहीं पधारे ?"

करुणा ने लापरवाही से सिर हिलाकर कहा—"ना !"

"किसी दार्शनिक तत्त्व के विवेचन में लगे होंगे!" कहते-कहते रामशरण बे-ज़रूरत 'ही-ही' करके हँस पड़े।

कुमारी को रामशरण का यह परिहास भद्दा लगा। करुणा भी उसकी हँसी में पूर्ण सहयोग न देकर धीरे से मुस्किरा पड़ी।

बात जमी नहीं, यह देखकर रामशरण कुछ अप्रतिभ हुए। क्षण-भर बाद ही बोले—"और कहिए, आपके पिताजी कहाँ हैं ?"

"आते होंगे, अभी तो घर में ही थे।...... कितना बज गया है ?"

रामशरण अभी घड़ी देख चुका था, तो भी उसने पुनः देखी, और जल्दी से बोला—"इसमें तो छः बजकर चौदह मिनट हुए हैं।......देखिए, इसके अनुसार मैं तो ठीक समय पर ही आ गया।...... ऐसा मालूम होता है, मेरी घड़ी कुछ 'फ़ास्ट' है। असल में ये घड़ियाँ कुछ महीने तक 'फ़ास्ट' चलती ही हैं; बिल्कुल नई ही तो है, आज ही ख़रीद लाया

एक मित्र के साथ घूमने चला गया। रास्ते में एक घड़ियों की दूकान पर यह चीज़ देखी, तो लट्टू हो गया। ढाई सौ रुपया दाम तो कुछ ज़्यादा जँचा, मगर चीज़ नज़र पर चढ़ गई थी, छोड़ने को जी न चाहा। ......शक्ल-सूरत तो अच्छी है, अब देखूँ, काम कैसा करती है!"—कहते-कहते वह पुनः हँसने लगा।

कुमारी की विरक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। करुणा ने अन्यमनस्क भाव से मुस्किरा दिया!

अब रामशरण कुमारी की तरफ़ आकृष्ट हुआ! यों तो रह-रहकर वह बराबर कनखियों से उसकी ओर ताकता जाता था, पर बोला अभी —"कहिए, आपकी 'क्वालिफ़िकेशंस' * क्या हैं?"

"मेरी?" कुमारी ने कुछ चिहुँककर कहा—"कुछ नहीं, मैंने तो केवल मैट्रिक पास किया है!"

सहसा करुणा ने कहा—"लेकिन ठाकुर साहब, योग्यता से आधुनिक 'क्वालिफ़िकेशंस' का कोई संबंध नहीं। आपकी आध्यात्मिक योग्यता बहुत बढ़ी-चढ़ी है। शायद आपने '......'-पत्रिका में श्रीमती कु० महाशया के लेख पढ़े हों! आप ही वह श्रीमती कुमारी हैं!"

"श्रीमती कु० ?—श्रीमती कु० ?"—रामशरण ने चौंककर कहा—"ओह यस, याद आ गया! प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र के घर पर आज ही तो—ठीक है! —अच्छा!—आप ही श्रीमती कु० हैं?—गीता के संबंध में अभी हाल में आपका एक लेख प्रोफ़ेसर साहब ने मुझे पढ़कर सुनाया था। मैं तो ख़ैर मूर्ख आदमी हूँ, मगर ख़ुद प्रोफ़ेसर साहब भी मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा कर रहे थे।"

कुमारी का हृदय पेंगें ले-लेकर उछलने लगा, और न-जाने कैसे और क्यों—क्षण-भर में ही उसके मन में ठाकुर रामशरण के प्रति उत्पन्न हुई विरक्ति नष्ट होकर एक अद्भुत पवित्र स्नेह का प्रादुर्भाव हो गया। मुस्किराकर कहने लगी—"वाह! आप अपने को मूर्ख क्यों कहते हैं?"

* Qualifications

"मूर्ख नहीं तो क्या हूँ?"—रामशरण ने उदासीन होकर कहा—"एक बार एफ़० ए० में फ़ेल हुआ, दो बार बी० ए० में। और अब की बार पास भी हुआ, तो थर्ड डिवीज़न में।"

"वाह! यह भी कोई मूर्खता का लक्षण है! ना ठाकुर साहब, आपको अपनी पढ़ली असफलताओं पर इतना दुखी न होना चाहिए।"

"नहीं, दुखी तो नहीं" ठाकुर साहब ने मुस्किराकर कहा—"आप-जैसी विदुषी के दर्शन करके भी दुखी रहना बड़े दुर्भाग्य की बात है।......मैंने सुना है, आप कोई पुस्तक लिख रही हैं?"

"पुस्तक? आपको कैसे पता लगा?"

"प्रोफ़ेसर साहब कहते थे।"

"अरे! प्रोफ़ेसर साहब?......"

"जी हाँ, आपका वह गीता-संबंधी लेख—क्या नाम उसका? शायद गीता की व्यापकता—पढ़कर वह आपका पता पाने को अधीर हो उठे। आपको शायद मालूम हो—उनके लेख भी उस पत्रिका में छपते हैं......"

कुमारी ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा।

"हाँ, तो उन्होंने पत्र लिखकर संपादक से आपका परिचय और पता पूछा। आज सुबह ही तो उत्तर आया है। याद नहीं आता, कौन-सी गली लिखी थी, इसी शहर का पता दिया था। मैं तो आपका नाम सुनते ही चौंका था, पर यह सोचकर रह गया कि एक नाम के दो व्यक्ति क्या नहीं हो सकते! जब इन्होंने (करुणा ने) श्रीमती कु० कहा, तो याद आया, पत्रिका में आप अपना पूरा नाम नहीं छपवाती हैं......।"

रामशरण यह सब कुछ कह रहा है, पर करुणा तो होश में नहीं है। उसका तो शरीर रोमांचित हो रहा है, कुर्सी से उछल पड़ने को मन होता है, और एकांत में जाकर ख़ूब नाच-नाचकर हँसने-रोने की इच्छा होती है!

पर ये सब भाव उसने रोके, और धीरे से पूछ बैठी—"मगर वह पुस्तक लिखने की बात......"

"हाँ, वही तो" रामशरण ने कहा—"शायद

आपने संपादक को इस बात की सूचना दी होगी। उन्होंने अपने पत्र में आपके परिचय के साथ-साथ लिखा था। बल्कि प्रोफ़ेसर साहब तो कहते थे, वह इस पते पर जाकर आपसे भेंट करेंगे......"

ओफ़् ! कुमारी को कैसा बीभत्स हर्ष हुआ !

अब वह क्या बोले ?—जीभ तो उसकी खुलती ही नहीं !

पर यह करुणा के हृदय में आग-सी क्यों दहक उठी ? उसके नेत्रों में यह रोष कहाँ से आ गया ? उसके चेहरे का रक्त सुतकर कहाँ चला गया ? अस्थिरता और आवेग से उसका अंग-अंग क्यों फड़कने लगा ?

आख़िर रहा न गया ! कहने लगी—"क्यों कुम्मो ! अहा हा !—कैसा हर्ष हो रहा है !"

इस वाक्य में कितना व्यंग्य था, कितना उपहास था, कितना विद्रूप था, और कितना गहरा द्वेष था ! क्या आप उसकी कल्पना कर सकते हैं ? क्या आप उसे समझ सकते हैं ? क्या आप......?

बला से आप समझें या न समझें, पर कुमारी कैसे न समझे ? सहसा नश्तर लगाकर किसी ने उसके शरीर का तो मानो सारा रक्त खींच लिया ! या दोनो गालों पर किसी ने कस-कसकर दो तमाचे मार दिए। या पहाड़ की चोटी पर चढ़ाकर किसी ने उसे घृणा-पूर्वक धक्का दे दिया !

मेरे ईश्वर ! क्षण-भर में यह क्या-से-क्या हो गया !

भयानक लांछना, व्यथा और कष्ट से अधीर होकर कुमारी ने सिर झुका लिया—झुका क्या लिया, झुक गया ! पलक मारते महफ़िल जैसे श्मशान बन गई। कुमारी अब किसी प्रकार मर जाय, गड़ जाय, अदृश्य हो जाय !

इधर करुणा ने—उस चंचल, उच्छृंखल, आज्ञा-कारिणी करुणा ने—देखा, वार बहुत गहरा हुआ, और बात भावुक सखी के अंतःप्रदेश तक घुस गई। ओफ़् ! उसने क्या कर डाला ! उसके घर आई है, उसका दिया कपड़ा पहने हुए है, ओफ़् ! उस सुई की-सी सूक्ष्म खरोंच ने कितना गहरा घाव उसके हृदय में किया होगा !!

पर बात सम्हल गई ! सहसा करुणा ने कहा—"क्यों कुमारी, अपनी प्रशंसा सुनकर क्या तुम्हें दुःख हुआ ? ठाकुर साहब, ठाकुर साहब, आप इनके लेख को रद्दी और वाहियात बताइए, और इनकी ख़ूब निंदा कीजिए। अब घर बुलाकर इन्हें दुखी करना तो मंज़ूर नहीं है न !"

असली तथ्य तो ठाकुर साहब की कल्पना के बाहर था, हाँ, परिस्थिति की गंभीरता को वह अवश्य समझ गए थे। जल्दी-जल्दी, एक के बाद एक जैसे तरह-तरह के रंग अभी-अभी दोनो सखियों के मुख पर आए थे—एक बी॰ ए॰-पास वयस्क युवक के लिये उन पर कुछ भी लक्ष्य न देना, या उन्हें बिलकुल निरर्थक और तथ्य-हीन समझना तो बहुत अस्वाभाविक है। पर स्त्री-हृदय को वह अभुक्त-भोगी अनुभव-शून्य छात्र कैसे पढ़े ?

जब करुणा ने बात हँसी में उड़ाई, तो ठाकुर रामशरण को उसमें योग देने में भी कोई आपत्ति न हुई, और कहने लगे—"बहुत अच्छा, अगर आप मेरी प्रशंसा से असंतुष्ट होती हैं, तो मैं कान पकड़ता हूँ, कभी आपकी प्रशंसा न करूँगा।"

कहकर उसने सचमुच कान को हाथ लगाया।

"अरे रे ! यह क्या !" कुमारी ने कहा—"यह आप क्या करने लगे !!"

"तो सच बताइए, आप मेरी किसी बात से रुष्ट हुईं ?"

"ना," कुमारी ने हँसकर कहा—"करुणा भी वैसी है।"

"वाह !" करुणा ने दोनो हाथों और मुख की चेष्टा में 'वाह !' का भाव ख़ूब अच्छी तरह भरकर कहा—"मुझे ऐसी-वैसी क्यों बताती हो ! मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया ? वाह ! ख़ासी रहीं !!"

"नाउ, लेट दि मैटर गो टु हेल।*" रामशरण ने कहा—"ख़त्म कीजिए, सुनिए, एक बात है। कॉलेज खुलते ही मैं तो एम्० ए० में दाख़िल हो रहा हूँ। कहिए, आपकी क्या इच्छा है?"

लक्ष्य सरीहन करुणा की तरफ़ था, तो भी वह कुछ न बोलकर कुमारी की तरफ़ देखने लगी।

और, कुमारी ने ठीक अभिप्राय समझकर उसकी रक्षा कर ली—"यह तो कहती थीं, आगे नहीं पढ़ूँगी। क्यों करुणा?"

विपत्ति फिर करुणा पर आई। न वह बोलना चाहती है, न बात आगे बढ़ने देना चाहती है।

दोनो सखियों की आँखें चार हुईं।

सहसा ठाकुर साहब चिल्ला उठे—"ऐ लो, प्रोफ़ेसर साहब भी आ पहुँचे। हल्लो, मिस्टर नकुलचंद्र... !"

(६)

दर्मियाने क़द का एक भोला-भाला पुरुष द्वार पर खड़ा था। पैरों में धूल-भरी चप्पल, मोटी, देहाती गाढ़े की धोती, वैसी ही क़मीज़, गले में काले रंग का डोरा, जिसमें बँधी घड़ी क़मीज़ की जेब तक जाती हुई—और सिर नंगा! सिर के बाल छोटे-छोटे, सख़्त और सीधे कटे हुए, मस्तक चौड़ा, मूछें पतली, नाक लंबी और आगे से कुछ मुड़ी हुई, आँखें उज्ज्वल और पास-पास, ओंठ परस्पर अच्छी तरह मिले हुए और हजामत बढ़ी हुई थी। मस्तक पर एक अलौकिक तेज था, और हाथ-पैर ख़ूब लंबे-लंबे और हृष्ट-पुष्ट थे।

यही प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र एम्० ए०, बी० टी० हैं। वहीं खड़े-खड़े उन्होंने कमरे में झाँका, और हाथ जोड़कर सबको एक ही बार नमस्कार किया। तब अत्यंत कोमल स्वर में कहा—"बाबूजी अभी नहीं आए हैं?"

रामशरण ने कहा—"अभी नहीं आए हैं; शायद अम्माजी को औषधि दे रहे हों।"

"एक मिनट—एक मिनट के लिये क्षमा—" कहकर प्रोफ़ेसर साहब वापस लौट गए।

कोई दस मिनट में वापस लौटे। अकेले ही थे। आकर एक ख़ाली कुर्सी पर बैठ गए। रामशरण ने पूछा—'कहिए, बाबूजी मिले?'

"जी हाँ, मिले।"

"आए नहीं?"

"न, अम्माजी को दौरा हो गया है। वह अचेत हैं। बाबूजी उन्हीं की देख-भाल में व्यस्त हैं।"

"अच्छा, आइए, मैं आपका परिचय कुमारी कुमारीदेवीजी से करा दूँ।"—रामशरण ने उठकर दोनो का परिचय करा दिया।

"ओह!—मैंने देखते ही आपको पहचान लिया था!" प्रोफ़ेसर साहब ने कहा—"बात यह है कि ......कि मैं आपके घर होकर आया हूँ।"

कुमारी अपने हर्षावेग का प्रदर्शन कैसे करे? वह मेरे घर गए थे!—हाय!—मैं न आती......!!

नकुलचंद्र कहते रहे—"आपकी माता ने आकर द्वार खोला, कुछ अस्वस्थ-सी मालूम होती थीं। मैंने अभिप्राय उन्हें बताया, तो कहने लगीं—आप निमंत्रण में यहाँ आई हैं!......देखिए, संयोग......!"

रामशरण ने कुमारी को लक्ष्य कर कहा—"देखिए, मैंने कहा न था!—आपका लेख......इतना...... इतना भद्दा और वाहियात था कि प्रोफ़ेसर साहब आपसे भेंट करने को पागल हो उठे!"

कहकर उसने करुणा की तरफ़ देखकर हँस दिया।

अब करुणा ने कहा—"और कुमारी भी तो आपसे भेंट करने को व्याकुल थीं!—सच पूछिए, तो मेरा निमंत्रण भी उन्होंने इसी लालच से स्वीकार किया है!"

कुमारी की ओर कोई इस समय न देखे। कहते भी हैं—न देखिए, कहीं ऐसा न हो, वह लाज से मर जाय, गड़ जाय, वाष्प बनकर उड़ जाय!—अधीर न हूजिए, मैं अपने सूक्ष्म नेत्रों द्वारा उसकी

* इस अप्रिय प्रसंग को बदल ही दें।

भाव-भंगी का चित्रण करता हूँ। नथुने जल्दी-जल्दी फरक रहे हैं, चेहरा बारी-बारी लाल, पीला, सफ़ेद रंग बदल रहा है। सिर नीचा हो गया है। आँखें झिपी पड़ती हैं।

हाय !—यह करुणा मर जाय !—इसने सारा भंडा फोड़ दिया !—क्या इतनी तमीज़ भी इसे नहीं ?—क्या बी० ए० पास करके भी इसे सभ्य-समाज के नियमों से परिचय नहीं हुआ ?—क्या इसीलिये इसने मुझे अपने घर बुलाया है ?—हाय !—कैसे यह बात वापस हो ?—कैसे यह लाज......

और करुणा ?

उसकी मानसिक अवस्था का वर्णन कैसे करूँ ?—जैसे उसने दाँत पीसकर अपने शत्रु पर भरपूर वार कर दिया !—जैसे ज़रा-से अपराध का अत्यंत क्रूर और प्रचंड बदला उसने ले लिया !—जैसे उसने अपने हृदय की प्रज्वलित अग्नि का पूर्ण प्रतिकार कर डाला !

पर इस प्रतिकार की इस क्रोध की, इस वार की आवश्यकता उसे क्यों पड़ी ?—क्या इस पर भी आप ग़ौर करेंगे ?

यह कुमारी सहसा क्यों उसके बीच में आ रही ?—इस पर सहसा सब लोग क्यों इतने स्नेहार्द्र हो जाते हैं ? मेरे घर आकर ही इसे हर किसी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेने का क्या अधिकार है ? और, मैंने ही अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारकर क्यों इसके सामने अपने आपको हत-प्रभ कर डाला है ?

नकुल बोले—"आपका लेख पढ़कर मैं मुग्ध हो गया ! आपमें इसी अवस्था में ऐसी आध्यात्मिक प्रतिभा है, यह सचमुच आश्चर्य और गर्व का विषय है।"

कुमारी को बोलना चाहिए। इस तरह लजाकर चुप रहना था, तो आई ही क्यों, और लजाने की बात ही क्या है ?

चेहरे पर लाल रंग था। कहने लगी—"मैं आपको धन्यवाद......"

रामशरण ने आँखों में रहस्य भरकर एक बार करुणा की ओर देखा, और तब मुस्किराकर कुमारी के प्रति बोला—"मगर यह तो बताइए, 'आप' इनसे मिलने को क्यों व्याकुल थीं ?"

वाह ! करुणा के मन का प्रश्न हुआ ! अब कुमारी ख़ूब छकेगी—देखें, क्या जवाब देती है ?—ओह ! बड़ी भारी लेखिका है न !

कुमारी को छकाने, लजाने या जलाने की इच्छा करुणा के मन में उत्तरोत्तर तीव्र होती जा रही है !

पर कुमारी सम्हल चुकी है—वह घबराएगी नहीं, साहस-पूर्वक इनका सामना करेगी। क्यों घबराए ! कोई परीक्षा नहीं हो रही है, कोई कष्ट नहीं पड़ रहा है, कोई विपत्ति नहीं आ रही है ! इस छोटी करुणा और इस पागल रामशरण के गधेपन पर क्यों वह शर्म से गड़े ? और, क्यों न थोड़ी बेहया बनकर उन्हें ला-जवाब कर दे ? क्यों न उनकी उपेक्षा करके उन्हें ही लजा दे ?

आँखें उसने प्रोफ़ेसर साहब के गोल और तेज़ पूर्ण मुख पर जमाईं, और अस्फुट स्वर में कहा—"मैं भी बहुधा आपके......लेखों का......लेखों को पढ़ती रहती हूँ।"

कहना वह यह चाहती थी—"आपके पांडित्य-पूर्ण लेखों का रसास्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त करती हूँ।" पर चाहे जितनी दृढ़ हो चुकी थी, यह बात सहसा उसके मुँह से न निकल सकी।

नकुलचंद्र बोले—"जी हाँ, मैं भी उसी पत्रिका में लिखा करता हूँ—मेरा और आपका विषय लगभग एक-सा ही है, पर वर्षों से अध्ययन और अन्वेषण में लगे रहकर मैंने जो कुछ समझा है, मेरे ख़याल में आपने उससे अधिक और ठीक समझा है। गीता की महत्ता को, जान पड़ता है, आपने ख़ूब अच्छी तरह और ख़ूब स्पष्ट देख लिया है। और, आगे चलकर न-मालूम......"

कुमारी सोच रही थी, कह दे—"कई अंशों में आप ही मेरे गुरु हैं, आपके लेखों ने मेरे लिये पथ-प्रदर्शक का काम किया है।" —इत्यादि।

पर इस करुणा का बुरा हो ! बीच ही में गंभीर भाव से बोल पड़ती है—"आगे चलकर जो होगा, मैं जानती हूँ। आगे चलकर ब्याह होगा, और सारा अध्यात्म-रस बच्चे-कच्चों के पाख़ाने की बदबू सूँघकर बह निकलेगा।"

भोजन आ गया था, फल और नमकीन की तश्तरियाँ रक्खी जा चुकी थीं : एक नौकर, एक दासी परस रहे थे, उन्होंने भी और उस कमरे में उपस्थित तीन आमंत्रित व्यक्तियों ने भी करुणा के इस गंदे, अशिष्ट और अनुपयुक्त उपहास को सुना......

कुमारी की बात तो पीछे कहेंगे, नकुलचंद्र के सतेज मुख पर भी लाज और संकोच की सलवटें पड़ गईं, आँखें निष्प्रभ हो गईं, और गर्दन कुछ नीचे झुक गई। भयानक खेद और परिताप उनकी प्रत्येक भाव-भंगी से प्रकट होने लगा।

यहाँ तक कि रामशरण भी लज्जित हास्य-पूर्ण नेत्रों से एक बार करुणा को ताककर चुप हो गया।

अब कुमारी की सुनिए—

एक बार उसकी इच्छा हुई, ज़ोर से एक तमाचा करुणा के मुँह पर मारे, फिर क्षण-भर बाद ही इच्छा में परिवर्तन हुआ, और उसने फ़ौरन् कुर्सी छोड़कर उठ जाने और इसी दम अपने घर चले जाने का विचार किया।

पर दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता और परिस्थिति उसके लाल चेहरे को और अधिक लाल कर देने के अतिरिक्त उपर्युक्त और कोई आज्ञा उसे न दे सकीं, और कुमारी पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल, निर्वाक् जमी बैठी रही।

आँखें उसकी छलछला आईं।

इस पल-भर की निस्तब्धता के कारण करुणा का मन धिक्कार और पश्चात्ताप की ज्वाला से दग्ध हो उठा, और अनुताप, खेद, वेदना के रंग से उसका सारा शरीर रँग उठा।

यह क्या-से-क्या हो गया? मेरे ईश्वर! यह करुणा का ब्रह्मास्त्र दुगनी, चौगुनी, सौगुनी, हज़ार-गुनी ज्वाला और वेग-सहित किस प्रकार उलटा उसी पर आ पड़ा? इस चार आदमियों के संक्षिप्त समाज में सबको दुःखी करके, सबको असंतुष्ट बनाकर, सबकी अप्रिय पात्री बनकर कैसे वह असहाया अपनी मान-रक्षा कर सकेगी, और ऐसा भयानक अपमान, ऐसी तीव्रयंत्रणा, ऐसी कड़वी लांछना, ऐसा बीभत्स त्रास, और ऐसा विलक्षण विद्रूप सहकर कितने क्षण उसका कलेजा फटे बिना रह सकेगा?

सहसा रामशरण ने नश्तर लगाकर फोड़ा खोल देने की महती अनुकंपा दिखाई, या कहें, करुणा का महान् उपकार किया। बोला—"आपकी यह बात तो कुछ ठीक नहीं जँची।"

बस!—फिर क्या था, बात सम्हल गई। करुणा झट बोल उठी—"क्यों, जँची क्यों नहीं?—आप ही बताइए, विवाह के बाद अभागिनी हिंदू-बाला को पढ़ने-लिखने या किसी गंभीर विषय का विवेचन करना कहाँ सूझता है, और कहाँ इतना अवकाश मिलता है?"

ओफ़्! कितनी बड़ी बात थी, और कैसी आसानी से सम्हल गई! नकुलचंद्र का संदिग्ध, स्तंभित हृदय तो एकबारगी, पहले की तरह, निर्मल और स्वच्छ हो गया कहने लगे—"कुछ हद तक यह बात सच हो सकती है। माना, विवाह के बाद किसी गंभीर विषय के अध्ययन और अन्वेषण के लिये समुचित समय नहीं मिल सकता, पर इस बात से कैसे इनकार किया जाय कि उद्योगी व्यक्ति भयानक-से-भयानक कठिनता में भी समय निकाल सकता है, शिक्षित परिवार और सु-संस्कृत पति-पत्नी तो सहज ही में एक दूसरे को समझकर, परस्पर उदार हो सकते हैं?............"

"जैसा कि अवश्य आपके 'केस' में होगा!"—रामशरण ने भद्दे हास्य का पेवंद लगाया।

करुणा एक नई बात बताने का लोभ न त्याग सकी। इसमें कितनी उसकी चपलता थी, कितनी

दुर्बलता और कितनी ईर्ष्या, यह मैं नहीं कह सकता। कहने लगी—"अभी तो कुछ निश्चय ही नहीं हुआ है!"

हम इस बात को शुरू से नोट करते आ रहे हैं कि करुणा के प्रति नकुलचंद्र के भाव में सूक्ष्म-सी विरक्ति और उपेक्षा विद्यमान है, और करुणा की बातों पर वह अधिक ध्यान देना नहीं चाहते हैं, न उसकी बात का जवाब देना ही उन्हें अभीष्ट है, बल्कि उससे नज़र चुराने की भी ज़रा-ज़रा चेष्टा वह करते हैं, पर उसकी यह बात सुनकर उनके भाव में सहसा एक अद्भुत परिवर्तन हुआ, और उनके मुँह से निकल पड़ा—"सच ?", और साथ ही करुणा के मुँह का भाव बदल गया।

नोट—आॅर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

वर्ण-व्यवस्था

[प्रोफ़ेसर जीवनशंकर याज्ञिक एम्० ए०, एल्-एल्० बी० काशी-विश्वविद्यालय]

(२)



र्ण-व्यवस्था के पक्षपाती भी इस बात को स्वीकार करेंगे कि जिस रूप में वह आजकल देश में व्याप्त है, उसको शास्त्रानुकूल नहीं कहा जा सकता। शास्त्र की मर्यादा उल्लंघन किए बिना भी उसमें सुधार संभव एवं आवश्यक है। जिन लोगों की यह दृढ़ धारणा है कि इस व्यवस्था को समूल नष्ट किए बिना हिंदू-जाति का भला हो ही नहीं सकता, उनके लिये तो एक ही उपाय है, और वे उसका उपयोग उत्साह से कर भी रहे हैं। असवर्ण विवाह देश में नित्य हो रहे हैं, और जैसी लोगों की धारणा है, ऐसे विवाहों की संख्या बढ़ती ही जायगी। परंतु जो लोग वर्ण-व्यवस्था को किसी रूप में रखना चाहते हैं, उनको तो जन्म से ही व्यवस्था माननी पड़ेगी। इस बात की चर्चा पूर्व लेख में हो भी चुकी है*।

प्रस्तुत लेख में उन्हीं उपायों पर विचार करना है, जिनका आश्रय लेकर वर्ण-व्यवस्था में सुधार हो सके, और साथ ही शास्त्र की भी अवहेलना न हो। समाज को बल भी प्राप्त हो, और वर्ण व्यवस्था की रक्षा भी हो सके। यह तो मानी हुई बात है कि वर्ण चार ही थे। अब अनेक जाति और उप-जातियाँ बन गई हैं। इनका इतिहास है तो बड़ा रोचक, और जिन कारणों से ये समय-समय पर बनती गईं, उनका जानना भी आवश्यक है; परंतु यहाँ इतना ही कहना काफ़ी है कि वर्ण-निर्णय जन्म से ही मानकर अनेक उप-जातियों का समर्थन नहीं हो सकता! वर्ण-भेद का विचार खान-पान और विवाह में होता है। अस्पृश्यता की बात यहाँ नहीं उठानी। एक ही वर्ण में आज अनेक उप-जातियाँ बन गई हैं, और 'बेटी-रोटी' में रोक-टोक के कारण सबने अपने अखाड़े अलग जमा रक्खे हैं। समान आचार-वाली एक ही वर्ण की उप-जातियाँ यदि परस्पर खान-पान और फिर विवाह-संबंध करने लगें, तो इसमें शास्त्र कोई बाधा नहीं डालता। आचार की विभिन्नता के ही कारण एक वर्ण में विभाग हो गए हैं। उनके दूर करने का उद्योग हो सकता है। जैसे ब्राह्मणों में अनेक भेद हैं, उनको दूर कर केवल दो दल रह जाँय—एक शाकाहारी और दूसरा मांसाहारी। यदि वर्ण-व्यवस्था को समूल नष्ट करने में उत्साही सुधारक कृतकार्य हो रहे हैं, तो प्रयत्नशील होने पर ब्राह्मणों के नाना भेद भी मिटाए जा सकते हैं। इसी प्रकार अन्य वर्णों में भी परस्पर संबंध आचार की समानता पर निर्भर होना चाहिए। यह बात शास्त्र-विरुद्ध न होते हुए भी लोगों के ध्यान में भले प्रकार नहीं समाई। चर्चा तो कभी-कभी हो जाती है, परंतु जात्यभिमान के कारण कोई क्रियात्मक सुधार नहीं होने पाया। इस विस्तृत कार्य-क्षेत्र में शिक्षित सुधारक और धर्म के मानी सहयोग कर सकते हैं।

बहुत-सी जातियाँ व्यवसाय से बन गई हैं। दूसरे व्यवसायवाले चाहे एक ही वर्ण के हों, उनसे विवाह और प्रायः खान-पान का संबंध नहीं रखते। इसमें शिथिलता होनी चाहिए। केवल व्यवसाय भिन्नता के कारण एक ही वर्ण की दो उप-जातियों में ऐसे बंधन रखना अनावश्यक है।

इस प्रकार समान आचार पर ज़ोर देकर और व्यवसाय-भिन्नता की उपेक्षा कर हमारे समाज में उप-

* सुधा अगस्त, १९३०

जातियों की कमी हो सकती है, और जिन जातियों में जन-संख्या बहुत घट गई है, उनको विवाह के लिये अनुकूलता भी हो जाती है । इस कार्य में ध्येय यही रखना है कि यथासंभव वर्ण की जाति और उप-जातियों की संख्या कम हो सके ।

इनके अतिरिक्त एक और भी उपाय है, जिससे वर्ण-धर्म को माननेवाले अपनी रक्षा कर सकते और साथ ही उनके विरोधी भी हिंदू-जाति को अपने मतानुसार बलवती बना सकते हैं । वैसे तो दोनो पक्षों के उद्देश्य भिन्न ही नहीं, बल्कि परस्पर विरोधी हैं । परंतु जिस उपाय पर विचार किया जाता है, उसमें दोनो में, इच्छा न रहते हुए भी, सहकारिता हो जाती है ।

वर्ण-धर्म के पक्षपातियों से इतनी आशा तो करनी ही चाहिए कि समान आचार की रक्षा करते हुए जो बंधन उन्हीं के वर्ण में आज मान्य हो रहे हैं, उनको शिथिल करने की चेष्टा करें । वे केवल अपने घर का ही सुधार करें, और यही उनकी सेवा हिंदू-जाति के लिये मानी जा सकती है । इतना भी सुधार यदि वे करने का प्रयत्न करें, और उसमें कुछ सफलता हो, तो स्वयं अपना सुधार करते हुए वर्ण के पूर्ण विरोधियों के आक्रमणों से कुछ रक्षा भी हो जायगी । थोड़ी संकीर्णता कम होने से विरोधियों का आक्षेप कुछ तो निर्बल होगा ही । साथ-ही-साथ इसका भी प्रयत्न होना चाहिए कि वर्ण-धर्म के पालन में उसके विशेष गुणों के उत्कर्ष का भी ध्यान रक्खा जाय । आजकल अपनी जाति का अभिमान तो लोग करते हैं, परंतु उसके साथ जो उत्तरदायित्व और शास्त्र की आज्ञानुसार जिस तरह का जीवन होना चाहिए, उस पर ध्यान दिया ही नहीं जाता । ब्राह्मण होने का यदि गर्व कोई करता है, तो उसको यह भी याद रखना चाहिए कि विद्या, त्याग, तपस्या आदि गुण उसमें किस परिमाण में हैं, और समाज के लिये वे उपयोगी होते भी हैं, कि नहीं कहने का तात्पर्य यह कि वर्ण के विशेष गुणों का भी उत्कर्ष होना चाहिए । केवल जन्म के कारण जाति पाकर संतोष कर बैठना शास्त्र से कभी अनुमोदित नहीं जा सकता । इस प्रकार यह लक्ष्य तो वर्ण की करनेवालों का होना चाहिए । यदि हिंदू-जाति जीवित रखने में वर्ण-विभाग की आवश्यकता हुई, उसे नष्ट होने से बचाने का श्रेय इन्हीं लोगों होगा । कुछ लोगों की धारणा है कि जाति-विभाग कारण हिंदू अपनी रक्षा कर सके हैं । यदि यह सर्वथा सत्य है, तो जाति या वर्ण के पक्षपातियों बड़ी भारी ज़िम्मेदारी है । संभव है, कालांतर में उद्योग का फल समाज को प्राप्त हो ।

अब जो सुधारक-पक्ष जाति-बंधन नहीं मान उसके कर्तव्य की समीक्षा कीजिए । इनमें दो हो सकते हैं—एक तो वह, जो हिंदुओं की एक जा बिना वर्ण-भेद के, मानता है, और दूसरा वह, जो मनु मात्र की एक जाति मानता है, और हिंदू, मुसलमा ईसाई आदि में भी कोई भेद नहीं मानता या चाहता । दूसरे पक्षवालों की संख्या अति अल्प है, उनके लिये यहाँ कुछ विचार भी नहीं करना । हिंदू तो रहना चाहते हैं, परंतु जाति या वर्ण को मानते, उनका क्या कर्तव्य है, यही देखना है ।

जब कभी वर्ण-विभाग पर संकट पड़ा है, तो नई जाति बन गई है । क्या आज वही उपाय नहीं हो सकता ? वर्ण-व्यवस्था पर दो तरह के हो रहे हैं : एक तो यह कि लोग इसे न मानकर को छोड़ देते हैं, या किसी कारण धर्म-परिवर्तन लेते हैं, और दूसरी आपत्ति इस कारण उपस्थित गई है कि अन्य धर्म से लोग शुद्धि द्वारा इसमें से आना चाहते हैं, और दूसरे उन लोगों के मिल से, जिन्होंने अन्य धर्म में जन्म लिया है, जैसे के मुसलमान, ईसाई आदि ।

इस तरह के सब लोगों की एक जाति बनाई सकती है । उसमें एक ओर तो वर्ण-धर्म से च्युत जाति से बहिष्कृत लोग हों, और दूसरी ओर द्वारा मिलाए हुए लोग हों । इनका कोई वर्ण न जो वर्ण नहीं मानते, परंतु हिंदू बने रहना चाहते

उनको भी इसी में स्थान मिलेगा। ये सब लोग अपने को हिंदू कहें। किसी जाति का भी कोई क्यों न हो, अन्य धर्म से हिंदू बनना चाहता हो, वह भी—ऐसे सब इस हिंदू जाति के अंतर्गत हो जायँगे। बहुत-से हिंदुओं ने अँगरेज़ मेमों से विवाह कर रक्खे हैं। वे और उनकी संतति भी इसी महान् हिंदू-जाति में स्थान पा सकते हैं। इसमें वर्ण का विचार न होने से परस्पर विवाह-संबंध भी स्वच्छंद हो सकेगा।

जाट लोगों में ऐसा रिवाज है कि किसी भी जाति की स्त्री को वे जाटिनी बना लेते हैं। ब्राह्मण-स्त्री को छोड़कर, और शायद अब यह भी रोक टोक नहीं रही, चाहे जिस हिंदू-जाति की स्त्री हो, कोई जाट अपनी बिरादरी की आज्ञा से जाति में ले सकता है। परंतु कोई पुरुष दूसरी जाति से जाट बनना चाहे, तो जाट लोग उसको अपनी बिरादरी में नहीं लेते। स्त्री जाटिनी बन सकती है, परंतु पुरुष जाट नहीं बन सकता। इससे भी आगे बढ़े हुए सिक्ख लोग हैं, उनमें दो विशेषताएँ हैं—एक तो स्त्री-पुरुष दोनो समान रूप से सिक्ख बन सकते हैं, और दूसरे वे अन्य धर्मावलंबियों—जैसे मुसलमान, ईसाई—को भी अपने धर्म की दीक्षा देकर सिक्ख बना लेते हैं। सिक्खों में भी ऐसे लोग हैं, जो वर्ण-धर्म का पालन करते और हिंदुओं की तरह विवाह आदि में जाति का विचार रखते हैं। परंतु ऐसे सिक्खों की संख्या भी कुछ कम नहीं, जो किसी प्रकार भी वर्ण-धर्म को नहीं मानते। वे केवल सिक्ख-धर्म को मानते हैं। जो उसका अनुयायी हो जाय, पहले चाहे जिस जाति या धर्म में रहा हो, पक्का सिक्ख बन जाता है, और उन लोगों में जाति-विभाग न होने से ऐसे नए सिक्ख को कोई प्रतिकूलता नहीं होती। आर्य-समाज द्वारा शुद्ध किए गए व्यक्तियों को जो कठिनाई होती है, उससे सिक्ख लोग बच जाते हैं।

परंतु जिन सिक्खों में वर्ण-भेद का विचार बिलकुल नहीं, वे अपने को प्रायः हिंदू नहीं कहते। यदि वे अपने को हिंदुओं की एक जाति की तरह मान लें, तो फिर कोई कठिनाई नहीं रहती। हम तो उनको हिंदू ही कहते हैं, किंतु वे अपने को हिंदू कहने में चौंकते हैं। उनको भय है कि हिंदुओं में मिलकर किसी दिन उनका अस्तित्व ही न मिट जाय। इसीलिये हमको एक जाति-विशेष की योजना आवश्यक मालूम होती है, जिसमें सिक्खों की तरह सबके लिये मुक्त द्वार रक्खा जाय, और वर्ण-व्यवस्था के बंधनों से अलग रहते हुए उनको पूरी स्वतंत्रता प्राप्त हो। एक ही शर्त उनको मान्य होनी चाहिए कि वे अपने को हिंदू कहें, और हम भी उनको हिंदू मानें। आवश्यकता हो, तो विवाह आदि दायभाग आदि के लिये हिंदू आईन में संशोधन हो जाय या कोई नया क़ानून बना दिया जाय। वर्ण-मुक्त हिंदुओं की इस प्रकार एक जाति ही बन जायगी।

आर्य-समाज के कुछ नेता इस उद्योग में लगे हैं कि अपने को आर्य-समाज कहनेवाले दो व्यक्तियों में, चाहे वे भिन्न वर्ण के हों, विवाह-संबंध हो सके। इसके लिये वे एक क़ानून बनवाने की योजना कर रहे हैं। यदि ऐसा कोई क़ानून बन गया, तो वर्ण-विरोधी लोगों को सुविधा हो जायगी। हमारा कहना यह है कि आर्य-समाज के लिये ही क्यों, अपने को हिंदू कहनेवालों के लिये ऐसी योजना हो जाय, तो ठीक है।

ऐसी व्यवस्था का घोर विरोध वर्णाश्रम धर्मवाले अवश्य करेंगे। उनसे इतना ही निवेदन है कि असवर्ण विवाह यदि कोई होता है, तो उसको क़ानूनन् जायज़ हो जाने में इतनी हानि नहीं, जितनी कि इस समय के भ्रष्टाचार से हो रही है। फिर असवर्ण-विवाह करनेवाले के लिये आज और कोई रास्ता ही नहीं। वह हिंदू-जाति से पृथक् होने के लिये बाध्य हो जाता है। ऐसे लोग कम-से-कम हिंदू तो बने रहें, और उनको अपने समाज से बिलकुल तो नहीं निकाल देना चाहिए। असवर्ण-विवाह का पक्ष लेना, उसको देश-काल के लिये आवश्यक समझकर प्रचार करना एक बात है, और जाति-ह्रास को रोकना दूसरी बात।

यह तो हम कदापि नहीं चाहते कि असवर्ण-विवाह के कारण कोई भी व्यक्ति हिंदू-जाति से निकाल दिया जाय। आप उसे अपने वर्ण या जाति में भले ही न लें, परंतु उसका हिंदुत्व भी छीन लेने का कोई अधिकार नहीं।

'हिंदू-जाति' की जो नवीन व्यवस्था बनाई गई है, उससे वर्ण-प्रतिपालक और सुधारक दोनो को सुबीता हो जाता है। वह इस प्रकार। यह तो इससे लाभ है ही कि जो लोग हिंदू-समाज छोड़ने पर आज बाध्य होते हैं, और जो अन्य धर्मावलंबी इसमें आते हैं, उनके लिये एक जाति-समुदाय समावेश के लिये मिल जाता है। साथ-ही-साथ वर्ण-धर्म की भी रक्षा हो जाती है। वर्ण-धर्म केवल मानसिक भाव तो है ही नहीं, वह तो एक ही वर्ण में विवाह-संस्कार होने से बच सकता है, और इसी प्रकार उसकी रक्षा हो सकती है। यदि किसी कारण वर्ण का मिश्रण जानकर या अनजान से हो जायगा, तो वर्ण-धर्म पर आघात पहुँचेगा। अतएव उसको शुद्ध रखने का एक उपाय यह भी है कि संकरता न होने पावे। समाज-भय से जो लोग वर्ण-धर्म का बाह्य रूप से पालन करते हैं, उनके लिये 'हिंदू-जाति' में ठिकाना मिल जाता है। नहीं तो वे वर्ण-धर्माव-लंबियों में मिले रहेंगे।

इस व्यवस्था के विरुद्ध एक बात यह कही जा सकती है कि वर्ण माननेवालों की संख्या कम हो जायगी। संभव है, ऐसा हो, परंतु जो वास्तव में उसको मानते हैं, और उसका पालन करते हैं, वे वर्ण में रह जायँगे, और देश का कल्याण वर्ण-धर्म से होनेवाला है, तो ऐसे ही व्यक्ति तो कर सकेंगे। दूसरी आपत्ति यह भी हो सकती है कि जो वर्ण-जाति के विरोधी हैं, वे एक जाति और नई जाति बनाने लगे। वह तो करना ही पड़ेगा, अन्यथा हिंदू-समाज पर आघात होगा। इस नवीन जाति की वृद्धि दोनो ओर से होगी। वर्ण-धर्म को छोड़नेवाले उसमें आवेंगे, और अन्य धर्मावलंबियों का भी उसमें समावेश होगा।

कालांतर में यदि इस देश को यही उचित जान पड़ेगा कि वर्ण-रक्षा से केवल हानि ही होती है, तो नवीन हिंदू-जाति की बराबर वृद्धि होता जायगी और धीरे-धीरे वर्णानुयायी आप ही न रह जायँगे, पर यदि असवर्ण-विवाह, शुद्धि आदि के कारण हमारे समाज में दोष आवेंगे, तो वर्ण-धर्मवाले इस नवीन जाति से अलग रहकर अपनी रक्षा करेंगे। वर्ण का सर्वथा लोप न होने पावेगा, और वह पुनः सजीव होकर अपनी उपयोगिता प्रमाणित करेगा।

इस प्रकार परस्पर विरोधी होने पर वर्ण-धर्म और सुधारक-पक्ष को अपनी-अपनी उन्नति करने का पूरा अवसर मिल जायगा। नवीन हिंदू-जाति की योजना शास्त्र-सम्मत न भी हो, तो भी आवश्यक है, क्योंकि उसके द्वारा शास्त्र-मर्यादा की रक्षा होती है।

छाया-पथ

[श्रीयुत सत्याचरण 'सत्य' बी० ए०, विशारद]

छाया-पथ की उज्ज्वल रेखा

(१)

अर्ध-विनिद्रित नत पलकों पर
चल-दल-सा रख धवल ज्योति कर,
खोल मदिर नयनों के द्वार,
देती नभ नीरव उपहार ।
छाया-पथ की उज्ज्वल रेखा

(२)

परिमल भर-नत मंद समीरण,
लास्य-सहित कर मंजुल विचरण,
अगणित पंख बिछाकर जाल,
उड़ा प्राण ले, दे मृदु ताल ।
छाया-पथ की उज्ज्वल रेखा

(३)

सस्मित तारकमय नीलांबर
दीप-शिखा-सम चित्रित सागर ।
रजनी करती अलस सचेत;
झिलमिल अंचल कर संकेत ।
छाया-पथ की उज्ज्वल रेखा

(४)

मधुर झकोरों से कल कंपित,
चंद्र-तरी में बैठा प्रमुदित ।
चल नक्षत्र-पुलिन की ओर,
शनैः-शनैः पहुँचा नभ-छोर ।
छाया-पथ की उज्ज्वल रेखा

(५)

जग के निर्मम उपहासों से,
करुणा-पूर्ण मृत्यु-त्रासों से,
विलग, असीम स्वर्ग-आनंद
थिरक नाचता है स्वच्छंद ।
छाया-पथ की उज्ज्वल रेखा

(६)

शतशः रवि-आलोक स्रवित हो;
कोटि हेम-गिरि निरत द्रवित हो ।
कांति प्रवाहित, मधुमय-धार,
शुभ्र, अखंड ज्योति-प्रस्तार ।
छाया-पथ की उज्ज्वल रेखा

(७)

क्षितिज-हीन इस पथ पर मेरा,
जीवन लगा रहा नित फेरा ।
ढूँढ़ रहा अनंत की राह;
विश्व-पोत माँझी की चाह ।
छाया-पथ की उज्ज्वल रेखा

सुधा और गंगा-पुस्तकमाला की श्रेष्ठ पुस्तकें



सारा हिंदुस्थान पढ़ रहा है !

आप भी मँगाकर पढ़िए !!

सूचीपत्र मुफ़्त

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

हमारी विदेश-यात्रा

[रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० (मिश्रबंधुओं में से एक)]

(३)



१ मई तथा १ जून, १९३० को सात-आठ घंटे घूमकर वेनिस की ख़ूब सैर की। लौटते समय ७-८ नवंबर को भी वेनिस के बचे-खुचे स्थान देख लिए, और अच्छी इमारतें एक बार और देखीं। १ जून को अपने एजेंट अमेरिकन एक्सप्रेस-कंपनी के पास जाकर वियना के लिये तार द्वारा होटल तय कराया। दूसरी जून को, प्रायः ७ बजे सबेरे की गाड़ी से, वियना चलने का विचार हुआ। टिकट अमेरिकन एक्सप्रेस से ही ले लिया। गाड़ी साढ़े दस बजे शाम को वियना पहुँचती थी। योरप की गाड़ियों में अव्वल दर्जे का टिकट ले तथा स्थान ख़ाली भी हो, तो भी लेटने का अधिकार नहीं। गाड़ियों में प्रायः कंडक्टर रहा करता है, जो लेटने से अथवा अपनी या सामने की सीट पर पैर तक रखने से रोक देता है। यदि एक बार रोकने से कोई न माने, तो तुरंत एक पाउंड या आधा पाउंड जुर्माना कर देता है। गाड़ियाँ ऐसी थोड़े स्थानवाली होती हैं कि सामने की सीट पर पैर रखने से आराम मिलता है। गद्दियाँ बहुत कम चौड़ी होती हैं। बैठने में आराम कम मिलता है। अव्वल दर्जे और दूसरे दर्जे में लेश-मात्र अंतर नहीं होता, केवल गद्दी के रंग में भेद रहता है। अव्वल दर्जे की गद्दियों का कपड़ा कभी-कभी नया होता है। मतलब यह कि सिवा अधिक भाड़े तथा ऊँचे दर्जेवाले यात्रियों के साथ के दोनो में कोई भेद नहीं। सामान का भाड़ा भी भारत की अपेक्षा बहुत अधिक पड़ता है। हरएक यात्री अपने साथ दो बंडल ही ले जा सकता है। वे भी इतने बड़े न हों कि सीट के नीचे या ऊपर के स्थानों पर न आसकें। एकाध छोटी-मोटी वस्तु अधिक हो जाने से कोई टोकता भी नहीं। कंडक्टर लोग चाहें, तो अधिक सामान ले जाने पर शेष भाड़ा वसूल कर सकते हैं, किंतु ऐसी दशा में वे स्वयं सामान लदवाने तथा उतरवाने में मदद कर देते हैं, जिसमें उन्हें भी कुछ मिल जाय। ऐसे इनाम को टिप कहते हैं।

टिप का योरप में बड़ा चलन है। गांडोले पर स्टेशन जाइए, तो एक आदमी तकुआदार लठिया लिए मिलेगा, और आपके गांडोले को उससे पकड़कर किनारे लगा देगा। चाहे इस मदद की आवश्यकता हो या न हो, एक लिरा देना ही पड़ेगा। इसी तरह टैक्सी पर चढ़ने या उतरने लगिए, तो कोई आदमी उसका पट कभी-कभी टिप के लिये खोल देता है, चाहे आप ख़ुद आराम से खोल सकते हों। ऐसों को कुछ न देना भलमंसी के प्रतिकूल है। टैक्सी (किराए का मोटर)-वाले जितना भाड़ा माँगें, उसका प्रायः दशमांश अधिक टिप में दीजिए। एक मित्र ने कथा सुनाई कि एक सज्जन अविवाहितों के क्लब के सदस्य थे, और एक टैक्सी से वहीं उतरने पर बिना टिप दिए, केवल भाड़ा देकर, जाने लगे। इस पर टैक्सीवाले ने कहा कि शायद आपके पिता भी इसी क्लब के आजीवन मेंबर रहे होंगे। प्रयोजन यह निकला कि आपके पिता का आपकी माता से विवाह न हुआ होगा। केवल टिप न पाने से ध्वनि द्वारा उसने उन्हें दोग़ला बता दिया।

स्टेशन के कुलियों को मिस्टर पोर्टर कहकर पुकारना, और उनसे भद्र पुरुषों-सा व्यवहार रखना होता है। अबे-तबे से बात करना या उन्हें कुली कह कहना

अनुचित क्या, असंभव है। जो भाड़ा माँगें, वही दीजिए; किंतु जो बँधा हुआ भाड़ा है, वही माँगते हैं। कॉंटिनेंट में कुली लोग भाड़ा अधिक माँगते हैं, विशेषतया स्विट्ज़रलैंड में, जहाँ सब कुछ महँगा है। इँगलैंड में भाड़ा कुली लोग कम माँगते हैं। उन्हें रेल के महक्मे से कुछ थोड़ा-सा वेतन भी मिलता है, सो उन्हें जो कुछ दिया जाता है, वह मानो भाड़ा नहीं, केवल टिप है। एक शिलिंग से कम न लेंगे, किंतु छ-सात बंडलों तक ढोने में एक ही शिलिंग से संतुष्ट रहते हैं। दो दीजिए तो अच्छा, किंतु एक देने से भी माँगेंगे नहीं। यदि अधिक देर तक ठहरना पड़े, तो डेढ़ दे दीजिए। इँगलैंड में रेल पर अव्वल और तीसरे दर्जे-मात्र होते हैं, दूसरा दर्जा नहीं होता। वहाँ का तीसरा दर्जा भी कॉंटिनेंट के अव्वल दर्जे से उत्तम है। गद्दियाँ अच्छी तथा चौड़ी हैं। अव्वल दर्जे की गद्दियाँ अधिक चौड़ी और मुलायम हैं। कॉंटिनेंट का तीसरा दर्जा भारत के तीसरे दर्जे के समान और अव्वल तथा दूसरा भारत के दूसरे दर्जे से प्रायः कुछ ख़राब है। सोना या लेटना चाहें, तो सोने की गाड़ी लीजिए, जिसे वैगन ली कहते हैं। उसका भाड़ा अव्वल से प्रायः ड्योढ़ा होता है। उसमें कंबल आदि सब मिल जाते हैं। इँगलैंड में सामान तौलने की चाल बहुत ही कम है। तीसरे दर्जे तक का टिकट लेकर तीन-चार बंडल भी गार्ड तक के पास रखवा दीजिए, तो भी कोई भाड़ा नहीं माँगता। कॉंटिनेंट में ऐसा नहीं। तीसरे दर्जे तक का टिकट लेकर इँगलैंड में स्टेशन के भीतर टहलिए, तो कोई बाहर जाने को न कहेगा। स्टेशन के लोगों से जो कुछ पूछिए, तो बड़े अदब से सर करके बात करेंगे। तीसरे दर्जेवालों का अनादर बिलकुल नहीं। इँगलैंड में तीसरे दर्जे का भाड़ा भारत के प्रायः दूसरे के बराबर है, और आराम भी वैसा ही है। हम लोगों ने पहले कॉंटिनेंट तथा इँगलैंड, दोनो जगह अव्वल दर्जे का टिकट लिया, किंतु पीछे से मित्रों ने समझाया कि आपकी हैसियत के लोग कॉंटिनेंट में दूसरे तथा इँगलैंड में तीसरे दर्जे का टिकट रेल पर लेते हैं। ... से ऐसा ही करने लगे।

वियना चलने पर पहले तो सोचा, सोलह ... का सफ़र है, शायद थक जायँ, सो वैगन ली ... किंतु मित्रों ने कहा कि बातें करते चले चलेंगे, ... क्या! अव्वल दर्जे में ही गए। योरप में हर गाड़ी ... भोजन का प्रबंध होता है, किंतु कॉंटिनेंट में ... ख़राब मिलता है, और इँगलैंड में अच्छा। दाम ... समान पड़ते हैं। जब इटली की हद के बाहर निकल ... तथा आस्ट्रिया की हद में जाने लगे, तब एक ... पर चुंगी के अफ़सरों ने आकर सब माल और ... पोर्ट देखे। माल देखने में कष्ट न दिया। छ ... में केवल एक खोलवाकर थोड़ा-सा देख लिया, ... पास कर दिया। गार्ड की गाड़ीवाले माल की ... दशा थी। पास के माल को देखा भी नहीं, ... इतना कहला लिया कि कोई महसूली वस्तु तो ... है। यह न बतलाया कि महसूली वस्तु होती ... है? बतलाते कहाँ से, वे जर्मन बोलते थे, और ... अँगरेज़ी। किसी प्रकार इशारों से बातें होती ... इँगलैंड में उन्होंने महसूली वस्तुओं का सूचीपत्र ... लाकर उत्तर पूछा था। चुंगीवालों ने कहीं भी ... न किया। भारत में भी कोई कष्ट न हुआ। ... में अँगरेज़ी ऐसी बोलते थे, जैसे जेंटिलमैंस लंच (... शयगण, खाना)। यह न कहा कि तैयार ... चलिए। इतना बोल ही न सकते थे। दो शब्दों ... भी दोहरा बहुवचन बोल गए। रास्ते-भर पहा... तथा ग्रामों का दृश्य, इटली तथा आस्ट्रिया दोनो ... में, परम रमणीय था। ईश्वर ने योरप को जल-... बहुत ही बढ़िया प्रदान की है। इसी से वहाँ के ... बल एवं शस्य-संपन्न होते हैं। रास्ते-भर कोई ... ऐसा न मिला, जहाँ कुछ-न-कुछ उगा न हो। नहीं ... तो घास ही सही। पानी बहुत अच्छा बरसता ... है। ठंडक अच्छी है। पृथ्वी हर जगह ख़ूब उप... है। सब कहीं छोटे-छोटे नदी-नाले मिलते ... मनुष्य ने भी ऐसा श्रम किया है कि एक ...

भूमि तक पड़ी नहीं है। सभी कहीं, जहाँ कुछ उग सकता था, परिश्रम हुआ है, और भूमि माता से कुछ-न-कुछ प्रसाद प्राप्त किया गया है। इटली में समथर भूमि मिली। सब कहीं पानी था। अंगूर के भी पेड़ थे। देवदार के तथा अन्य पेड़ भी बहुतायत से लगाए गए थे। घास खेतों में कटकर उसी में यत्र-तत्र ढेर लगी हुई थी। डंडों के सहारे होली के-से ढेर लगे थे। जहाँ वे ढेर थे, उनके अतिरिक्त स्थानों पर नई घास लग रही थी। इटली में छोटे-छोटे गाँव थे। रेल के किनारे-किनारे दस-दस, पाँच-पाँच घरों की टुकड़ियाँ बराबर रास्ते-भर मिलती रहीं। कहीं-कहीं बड़े गाँव तथा क़स्बे, शहर आदि भी मिलते थे। गिरजाघरों की बहुतायत थी। ऐसा कोई भी साधारणतया बड़ा गाँव न दिखा, जिसमें गिरजाघर न हो। रोमन-कैथोलिक मत की दोनो देशों में प्रधानता है। रास्ते-भर सामने पहाड़ और उसकी ओट में घास तथा कुछ घर थे, और रेल तक प्रायः ढलवाँ भूमि-सी आती थी। बीच-बीच में घर और रहते थे। कहीं-कहीं नदी-नाले भी दृष्टि में आते थे। कहीं-कहीं पहाड़ों पर बर्फ़ पड़ी थी। आल्प्स-पहाड़ था। कुल मिलाकर दृश्य सुहावना चित्र-सा बना था। रास्ते-भर पहाड़ी दृश्य तथा मकानों, खेतों, ग्रामों आदि को देखते चले गए। जी ज़रा भी न ऊबा। सोलह घंटे का रास्ता पलक मारते कट गया। स्टेशनों पर रेल बहुत कम ठहरती है। अपने यहाँ के समान नहीं कि रेल के खड़े-खड़े जी ऊब जाय। एक दिन टारकी (इँगलैंड का एक शहर) में अपने एक मित्र के स्वागत को स्टेशन पर गए, और उनकी गाड़ी लेट होने से वहाँ प्रायः सवा घंटा ठहरे, तो उतनी ही देर में कम-से-कम दस गाड़ियाँ आई-गई। रास्ते में साथ कंबल, बिस्तर, गिलास, तौलिया आदि कोई कुछ नहीं रखता। गाड़ी में पेशाब आदि करने जाइए, तो वहीं साबुन और कहीं-कहीं तौलिया भी मिलता है। स्टेशनों पर पानी-पाँड़े का पता नहीं। प्यास भी नहीं लगती।

ठीक समय पर वियना पहुँचे। माननीय जस्टिस विश्वेश्वरनाथ ने पहले से ही लिख रक्खा था, सो उनके एक मुलाक़ाती स्टेशन पर मिले। वह वियना में डॉक्टरी पढ़ते थे। दो टैक्सियाँ करके हम छहो आदमी क्रांज़ ऐंबैसेडर होटल में प्रायः साढ़े ग्यारह बजे रात को पहुँचे। तुरंत कमरे बतला दिए गए, और होटल-वालों ने तुरंत सबका सामान उनके कमरों में भिजवा दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल से ही डॉक्टरों की तलाश पड़ी। मेरे भतीजों को छोड़कर सब लोग इलाज ही के डौल में गए थे। वियना के डॉक्टर स्नायु-रोग, हृदय तथा चीड़-फाड़ के कामों में जगत्-प्रसिद्ध हैं। मैंने जहाज़ पर ही मित्रों से पता पूछ रक्खा था। डॉक्टर अटल ने भारत में बतला रक्खा था कि मुझे हृदय-रोग शायद ही निकले, सो पहले स्नायु-रोग के ही डॉक्टर के पास जाना चाहिए। जहाज़ पर ही पता लग चुका था कि प्रोफ़ेसर डॉक्टर वागनेर जौरेग स्नायु-रोग के प्रधानतम डॉक्टर हैं। आप पागलपन की नई दवा ईजाद करने में नोबेल का इनाम पा चुके हैं। हृदय के सबसे बड़े डॉक्टर वैंकेबाख़ हैं। कुछ लोगों का मत है कि योरप में इन बातों के लिये इन डॉक्टरों के जोड़ का कोई डॉक्टर नहीं है। कहते हैं, पैरिस में हृदय की दवा सर्वोत्कृष्ट होती है तथा वियना और बर्लिन में स्नायु-रोग की। वियना में जाकर अपने एजेंट से पूछा तथा अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन के एक मित्र प्रोफ़ेसर एवं दो भारतीय विद्यार्थियों से सलाह की, तो सबों ने डॉक्टर वागनेर को ही अपने लिये सर्वोत्कृष्ट बतलाया। उनसे पुछवाया, तो उन्होंने पाँच जून के तीसरे पहर बुलाया। पहुँचे दूसरी जून की रात को थे। तीन दिन सैर-सपाटे को मिले।

तीन जून को ट्रैम पर बैठकर शहर देखने चले। ट्रैम-वाले ने पूछा, कहाँ का टिकट दूँ? मैंने कहा, दूर-से-दूर स्थान का दीजिए। यहाँ अपने को कहीं जाना तो था नहीं, केवल ट्रैम पर चढ़कर शहर देखना था। वहाँ लोग जर्मन बोलते हैं, और हम अँगरेज़ी बोलते थे। न वे हमारी बात समझते थे, न हम उनकी।

बड़ी मुश्किल पड़ी । कंडक्टर सबको टिकट बाँटकर हमारे पास फिर आकर इशारों से मतलब समझाने लगा। हमने भी भरसक इशारों से उसे समझाया, पर फल कुछ न हुआ । विदेशों में औरतें प्रायः बहुत भाषाएँ जानती हैं । एक औरत ने टूटी-फूटी अँगरेज़ी में मुझसे मतलब पूछा, और मैंने बहुत समझाया, किंतु वह भी कुछ समझ न सकी । अंत में भाग्य-वश एक गाइड (सैर करानेवाले) ने यह गड़बड़ देखकर अच्छी अँगरेज़ी में मुझसे मतलब पूछा, और हाल जानकर कहा, अमुक स्थान का टिकट लीजिए। चलिए, मैं आपको पदच्युत शाहंशाह का महल दिखाऊँ। उसके साथ महल पहुँचे, और महल देखने तथा छड़ी-छाते रखने का भाड़ा देकर अंदर घुसे । उसमें बहुत-सी वस्तुएँ दर्शनीय मिलीं । आस्ट्रिया पहले भारी देश था, किंतु गत महायुद्ध में उसका शाहंशाह पदच्युत होकर देश कट-छट गया, और अब वह एक बहुत छोटा प्रजातंत्र राज्य है । महल में पुराने शासकों के बहुत-से चित्र तथा अन्य दर्शनीय पदार्थ कमरों में सजे हैं । अन्य प्रकार के भी बढ़िया-बढ़िया चित्र दीवालों, छतों आदि में हैं । एक कमरे में अब तक वह पलंग, गद्दा आदि सजे हैं, जिन पर वियना जीतकर नेपोलियन बोनापार्ट ने विश्राम किया था । वे सब सामान जैसे-के-तैसे उसी कमरे में रक्खे हैं, जिनमें वह ठहरा था ।

महल देखकर प्रायः साढ़े बारह बजे होटल वापस आए। दिन-भर कमरे में बैठना पड़ा, क्योंकि होटल में कोई अच्छा ड्राइंग रूम (गोल कमरा) न था, और पढ़ने का कमरा भी साधारण था। होटल में हर ओर से वायु का आना रुका हुआ था। जो कमरा, बीच में, प्रायः आँगन-सा था, उस पर भी शीशे की छत लगी थी, जिससे रोशनी तो आती थी, किंतु हवा नहीं । अपने को ऐसे कमरों में बैठने का अभ्यास न था, और हर समय हवा दरकार थी। लक्ष्मीशंकर से पूछा, तो उन्होंने कहा कि यह भारत नहीं है । जैसे भारत में मकानों की बनावट ऐसी है कि हर ओर से हवा आवे, वैसे ही योरप में हवा न आने देने का ढंग है । कमरे में बैठिए, तो भी खिड़की बंद, ज़रा-सी, चार अंगुल खुली रहने दी, तो बहुत है। बाहर की ओर के किवाड़े शीशेदार होते हैं, जिनमें दृश्य तो बाहर का देखिए, किंतु हवा न आवे । मैंने कहा, यह तो पूरी आफ़त है । लोग बोले, ड्राफ़्ट (हवा का झोंका) आया, और चिल हुई । चिल ही से तो योरप में बचना चाहिए । बोले कि चिल का फल बुरा होता है । जैसे भारत में ज़ुकाम तथा बुख़ार जल्दी से हो जाते हैं, वैसी ही दशा योरप में चिल (सर्दी) की है । चार जून को प्रातःकाल पानी बरसने लगा । बाहर जाने का डौल न लगा । होटल के फाटक पर सड़क से मिला हुआ थोड़ा-सा खुला स्थान था । उसी में आध घंटा चल-फिर कर जी... तीसरे पहर बाहर जाने का विचार था, सो लंच के पीछे घूमने-घामने निकले । प्रायः एक घंटा घूमने पर ही कमज़ोरी की तकलीफ़ समझ पड़ी, जैसी कि भारत में समझ पड़ती थी । उससे कम थी, किंतु थी अवश्य । होटल वापस आए। बैठे-बैठे कमरे की चार दीवारें असह्य हो गईं । लक्ष्मीशंकर से कहा, यह तो पूरी आफ़त आई। क्या योरप में ऐसा ही जीवन बिताना होगा ? वह बोले, मकान के अंदर तो हवा बचानी ही पड़ेगी, किंतु यदि हवा खानी है, तो पार्क चलिए। तुरंत पार्क पहुँचे। वहाँ कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं । थोड़े-से दाम देकर बैठे । सैकड़ों लोग इसी प्रकार बैठे थे । लड़के खेल-कूद रहे थे। बाहर की हवा अवश्य थी, किंतु मन लगने की कोई सामग्री न मिली । थोड़ी देर पीछे होटल वापस आए।

पाँच जून को प्रोफ़ेसर डॉक्टर वागनेर जौरेग ... यहाँ ठीक चार बजे पहुँचे। एक मेम सिफ़त्तर दे... थोड़ी देर बैठने के पीछे डॉक्टर साहब से साक्षात् कराया। वह जर्मन-भाषा बोलते थे, अँगरेज़ी समझते तक न थे। एक भारतीय छात्र मिस्टर के० ... माथुर महाशय साथ गए थे। वह वहाँ सात साल से डॉक्टरी पढ़ते हैं। वियना में तीस पतीस भारतीय

छात्र हैं। बेचारे बड़े ही सज्जन हैं। भारतवासियों पर केवल भारत के ही नाते दया करते हैं। जब तक मैं आस्ट्रिया रहा, तब तक माथुर महाशय ने बराबर मुझे हर प्रकार की सुविधा पहुँचाई, और अपना बहुत समय व्यय करके मुझे कोई कष्ट न होने दिया। बाहर, लंदन को छोड़कर, जहाँ कहीं भारत-निवासी मिलते हैं, इसी नाते से भाई के समान बर्ताव करते हैं। लंदन में प्रायः २,००० भारत-निवासी होंगे, सो वहाँ भारतवासी होने का नाता बहुत शिथिल है। बिना किसी के मिलाप देने के वहाँ भारत-वासी एक दूसरे से बात ही नहीं करते। बिना मिलाए हुए यदि किसी से कुछ कहिए भी, तो बिना बोले चले जाते हैं। पूछने पर ज्ञात हुआ कि उनको अज्ञात पुरुषों पर पुलिस के जासूस होने का संदेह रहता है, जिससे डर के मारे खुलकर बात करना भयप्रद समझते हैं।

वियना में भारत-निवासी इन झगड़ों में नहीं पड़ते, और एक दूसरे को देखते ही बड़ा प्रेम-पूर्ण बर्ताव करते हैं। डॉक्टर वागनेर से उन्हीं माथुर महाशय की सहायता से बात हुई। उन्होंने दुभाषिया का काम किया। डॉक्टर साहब ने भली भाँति मेरी परीक्षा करके कई बातें पूछीं, और अंत में पूछा कि अच्छे होने की आपको कैसी आशा है? मैंने उत्तर दिया कि मुझे तो सौ में सौ अंश अच्छे होने की आशा है। इस पर बहुत प्रसन्न हुए, और बोले कि तब तो आप अभी से अच्छे हैं। जब आप नवंबर तक योरप में रहना चाहते हैं, तब दस बार अच्छे होने का आपके पास समय है। आपका हृदय घड़ी के समान ठीक-ठीक चलता है। कोई भय न कीजिए, और सेमरिंग में जाकर मेरी दवा का सेवन कीजिए। वहाँ मेरे एक मित्र डॉक्टर आपकी दवा मेरे मतानुसार करेंगे। मुझे अधिक दिखलाने की आपको आवश्यकता नहीं। जो कमज़ोरी आपको जान पड़ी है, वह ऐंबैसेडर होटल में रहने के कारण है, क्योंकि वहाँ गर्मी अधिक है। आप साल-छ महीने बड़े शहरों को बचाइए, और स्वास्थ्य-प्रद स्थानों पर रहिए। मैंने कहा, जो आज्ञा।

वियना एक बड़ा शहर है। उसकी जन-संख्या प्रायः १८ लक्ष है। डैन्यूब-नदी के किनारे बसा है। पहले आस्ट्रिया तथा हंगरी दोनो एक रियासत थीं, किंतु गत भारी युद्ध से आस्ट्रिया का राज्य मानो मिट ही गया। भारी साम्राज्य से वह अब एक छोटा-सा राज्य रह गया है, किंतु उसकी राजधानी वियना की अब तक कोई अवनति नहीं हुई है, केवल अदालतों से संबंध रखनेवालों की आय घट गई है। वियना से हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट तक, डैन्यूब, नदी के सहारे, एक स्टीमर चलता है, जो यात्री को डेढ़ दिन में वियना से बुडापेस्ट पहुँचा देता है। बुडापेस्ट भी भारी शहर है, जिसकी जन-संख्या प्रायः छ लाख होगी। वियना से बुडापेस्ट तक का जल-मार्ग बड़ा ही सुहावना है। लोग कहते हैं, इसे देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। बुडापेस्ट-शहर भी बड़ा सुंदर है। वियना देखने के लिये अमेरिकन एक्सप्रेस, टॉमस कुकसन आदि एजेंट टैक्सी, बस आदि दिन तथा रात में चलाते हैं। इन पर बैठकर द्रष्टा शहर के अच्छे-अच्छे स्थानों की सैर, थोड़े व्यय से, कर सकता है। यात्रियों को चाहिए कि योरप जाने में इन लोगों की टैक्सी या बस पर बैठकर सैर अवश्य करें, क्योंकि इनसे बहुत अच्छी सैर हो जाती है। हमने जल्दी नहीं की थी, क्योंकि समझते थे कि वियना में बहुत दिन रहना ही है, सो आराम से सैर कर लेंगे। इधर डॉक्टर से मिले, तो उन्होंने तुरंत सेमरिंग जाने की आज्ञा दे दी।

झट एक टैक्सी (मोटर) करके शहर की सैर देखने चले। कोबलेंज़ल-होटल एक छोटी-सी पहाड़ी पर है। वहाँ से शहर तथा नदी का दृश्य अच्छा दिखलाई देता है। देखा। जब वियना में रहने की आशा थी, और अपने होटल का मुहल्ला घना होने से ना-पसंद आया था, तब एक ऐसे मुहल्ले में एक और होटल तजवीज़ा था, जहाँ ख़ूब पार्क थे, और प्रायः सब घरों तथा होटलों में बहुत पेड़ लगे थे। कोबलेंज़ल की आब-हवा वहाँ से भी अच्छी है, किंतु स्थान शहर

से दूर है। शहर में ही पार्क-होटल बहुत अच्छा है। वहाँ की हवा अच्छी है। शहर से वह बहुत दूर भी नहीं। वियना का आपरा योरप-भर में सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है। आपरा एक प्रकार का थिएटर है, जिसमें गाना-बजाना विशेष रहता और प्रायः सुखांत होता है। सिनेमा भी अच्छे-अच्छे हैं, किंतु सबमें अँगरेज़ी-भाषा का प्रयोग न होने से उनके समझने में कठिनाई पड़ती है। थिएटर भी बहुतेरे हैं। योरप में जी लगने के डौल ख़ूब रहते हैं। इधर-उधर घूम-घामकर शहर अच्छी तरह देखा। पार्लामेंट-घर, रोशनी आदि अनेकानेक वस्तुएँ देखने में आईं।

दूसरे दिन, छ जून को, दोनो भतीजों तथा माथुर महाशय के साथ सेमरिंग पहुँचे। वियना से यह स्थान प्रायः ७० मील की दूरी पर है। एक पहाड़ पर छोटा-सा ग्राम है। प्रायः १०० घरों की बस्ती है, जिसमें ८८७ स्थायी रहनेवाले कहे जाते हैं। ३,२०० फ़ीट ऊँचा है। लोग यहाँ वैसे ही जाते हैं, जैसे अपने यहाँ मंसूरी आदि को। स्थान इतना छोटा है, किंतु दो बड़े होटल, दो-तीन अच्छे सैनिटोरियम (स्वास्थ्य सुधारने के घर), दो-तीन साधारण होटल तथा पंद्रह-बीस पैंज़ियाँ इसमें हैं। बाज़ार, दवा बेचनेवाले, दरज़ी, फ़ोटोवाले तथा बहुत-से अन्य लोग भी हैं। दो-तीन बसें यहाँ से नित्य सैर के लिये बाहर जाती हैं। वैद्युत रोशनी है। पानी के नल हैं। पैंज़ियों को भी छोटा होटल ही समझना चाहिए। उनमें ठहरने तथा भोजन का प्रबंध रहता है। मोटरें सेमरिंग-भर में ख़ूब दौड़ा करती हैं, किराए पर भी मिल जाती हैं, किंतु भाव बहुत महँगा है। एक मील के लिये भी ४ शिलिंग लेते हैं। ऑस्ट्रिया के ३४½ शिलिंगों का एक अँगरेज़ी पाउंड होता है। वियना में टैक्सियाँ सस्ती हैं। हम लोग सूदबान-होटल में ठहरे। यह होटल रेल की ओर से चलाया जाता है। बहुत ही अच्छे स्थान पर है। पिछवाड़े ऐसी कुर्सियाँ पड़ी रहती हैं, जिन पर बैठते और एक प्रकार से लेट भी सकते हैं। मानो डेक-चेयर्स हैं। वहाँ बैठने से दूर तक का दृश्य देख पड़ता है, और कई पहाड़ भी दिखलाई पड़ते हैं, जिनमें से कुछ पर जून में भी थोड़ी-बहुत बर्फ़ पड़ी थी। देवदार के पेड़ बहुतायत से थे, जिनकी हवा से स्थान अच्छा स्वास्थ्य-प्रद था। योरप के लिये ३,२०० फ़ीट की ऊँचाई बहुत समझी जाती है, क्योंकि साधारणतया वहाँ ठंढक भी रहती है, सो इतनी ही ऊँचाई से काफ़ी सर्दी मिल जाती है। सेमरिंग ऑस्ट्रिया का प्रायः सर्वोत्कृष्ट पहाड़ी स्थान है। जब नीचे गर्मी प्रधान पड़ती है, तब लोग सेमरिंग चले जाते हैं। स्त्रियाँ बहुतायत से आती हैं। प्रति शनिवार के तीसरे पहर से सोमवार के दोपहर तक भीड़-सी रहती है। [illegible] दिनों में मर्द भी आते हैं। जब ऑस्ट्रिया के दिन अच्छे थे, और राज्य भारी था, तब कुल साम्राज्य के लोग वायु-परिवर्तनार्थ यहाँ आया करते थे। वे ही लोग, पुरानी आदत के कारण, यहाँ अब भी आते हैं, यद्यपि उनके देश अब ऑस्ट्रिया से पृथक् हो गए हैं। लड़ाई के पीछे चार-छ बरस तक यहाँ यात्रियों की इतनी भीड़ हुई कि इतने ही दिनों में पैनहँस-नामक एक भारी होटल भी बन गया। कहते हैं, युद्ध के कारण उन दिनों लोगों के पास धन अधिक था, सो पहाड़ पर वे ख़ूब जाते थे। योरपियन लोग धन पास होने पर उसे मुक्त-हस्त होकर ख़र्च करते हैं। अब धनाभाव से यात्रियों की संख्या कम हो गई है।

ऑस्ट्रिया के लोग देखने में सज्जन दिखलाई देते हैं, किंतु उनमें कार्य-कुशलता की मात्रा कम समझ पड़ती है। उनकी दशा कुछ-कुछ बिगड़े हुए बड़े आदमियों की-सी है। सेमरिंग में ही मुझे दो महीने बिताने पड़े, सो यहाँ रहकर मध्य योरप के लोगों का बहुत-कुछ हाल ज्ञात हुआ। यहीं रहकर मैंने अमेरिका, इटली, स्पेन, जर्मनी, फ़्रांस, रूस, इँगलैंड, सर्बिया, ज़ेको-स्लाविका, ज़्यूगोस्लाविका, रोमेनिया, अलबेनिया, ग्रीस, ईजिप्ट तथा हॉलैंड के लोगों को देखा। योरप में लोगों से किसी प्रकार का बुरा बर्ताव किसी ने

नहीं किया। सब लोग बराबरी का व्यवहार रखते थे। भद्र पुरुष तथा मेमें सब हँसकर बोलती थीं, और घंटों ताश आदि खेलने तथा बातों में लग जाते थे। बाहर सैर करने भी लोग प्रायः साथ जाते थे। योरप में मुलाक़ात करने के साधारणतया तीन ही चार मार्ग हैं, अर्थात् नाच, बार-रूम (शराब पीने का स्थान), ताश और सैर। वहाँ का जीवन शक्ति पर बहुतायत से अवलंबित है। ऐसे बहुत कम लोग मिलेंगे, जो बैठे ही रहते हों। कुछ-न-कुछ किया ही करते हैं। एक महीने के भीतर लक्ष्मीशंकर भारत को वापस आए, क्योंकि बहुत दिन वहाँ रहने से उनकी बैरिस्टरी में हानि होती। २७ जून को उन्हें वियना में छोड़कर हम फिर सेमरिंग वापस आए। २६ जून को वह वहाँ से जेनोवा शहर जाते हुए रेल पर सेमरिंग होकर निकले, तो स्टेशन जाकर उनको योरपीय अंतिम बिदा दे आए। यह छंद बहुत याद आया कि "आनि परी सिर आपने, छोड़ पराई आस।"

उनके जाने से पूर्व लखनऊ के बैरिस्टर टॉमस साहब भी सेमरिंग आ गए थे। उनको भी मेरे ही समान स्नायु-रोग का कुछ-कुछ कष्ट था। लक्ष्मीशंकर के जाने से पहले ही मित्रों की तलाश थी, जिसमें किसी प्रकार जी लगे। सात जुलाई तक सैर करने सुबह-शाम केवल पंद्रह-पंद्रह, बीस-बीस मिनट ही जाते थे, इससे अधिक कष्ट असह्य था। दिन-भर बैठे रहने से जी न लगता था। मित्रों की प्राप्ति कठिन थी, क्योंकि अपने असामर्थ्य के कारण लोगों के पास बैठने का मौक़ा कम था। सोचा, प्रतापनारायण को नाचना सिखलवावें, तो कुछ मित्र-मंडली प्राप्त हो। १०० शिलिंग देकर उन्हें नाचना सिखलवाया। इसमें कठिनता यह भी पड़ती थी कि सुबह को दो घंटे तथा शाम को पाँच घंटे वह नाच-घर को चले जाते थे, और हम अकेले रह जाते थे। कभी टॉमस साहब पास होते थे, कभी वह भी नहीं।

नाच देखने में मेरा मन न लगता था। प्रतापनारायण प्रतिदिन छ-सात महिलाओं के साथ नाचते थे। कभी कोई स्त्री उनके भारतवासी होने के कारण नाच से अनिच्छा नहीं प्रकट करती थी, वरन् बड़े चाव से सब उनके साथ नाचती थीं। कभी-कभी मैं भी नाच देखता था, किंतु मेरा मन इसमें बिल्कुल न लगता था। बार-रूम में जाना एक तो शराब न पी सकने के कारण नहीं हो सकता था, दूसरे वहाँ की बैठक प्रायः दस बजे रात से तीन-चार बजे तक रहती थी। अपने को डॉक्टरी आज्ञा नौ बजे से ही शयन की थी। बार-रूम में जाने के लिये मद्य-पान आवश्यक नहीं। लोग केवल नाचने को भी वहाँ जाते हैं, किंतु अधिकतर लोग पीते भी हैं। ताश खेलने की अपनी इच्छा रहा करती थी, किंतु भाषा-पार्थक्य के कारण खेलनेवाले कम मिलते थे। प्रायः एक मास तक अपनी पुरानी आदत के कारण बाज़ी लगाकर ताश खेलने से इनकार करते रहे, और योरप में बिना बाज़ी के ताश खेलनेवाले कब मिले जाते थे! दूसरी कठिनाई यह पड़ी कि वहाँ लोग प्रायः कांट्रैक्ट ब्रिज खेलते थे, और अपने को आक्शन ब्रिज का अभ्यास था। दोनो में भेद थोड़ा ही है, किंतु न जानने से गड़बड़ अधिक दिखलाई देती थी। अंत में प्रतापनारायण के द्वारा कुछ मित्र खेलनेवाले मिले, और कुछ यों भी मिले। उन्होंने खेलना बतलाया, और रमी-नामक एक और खेल सिखलाया। रमी सिखलानेवाले सज्जन हुंगारियन थे। वह अँगरेज़ी न जानते थे, और जर्मन में तथा इशारों से खेल सिखलाते थे। एक लेडी साहबा हमको रमी सिखलाने को ही स्वयं सीखने लगीं। वह जर्मन में उनसे खेल के नियम जान-जानकर अँगरेज़ी में हमको भी बतलाती जाती थीं। खेलने की इच्छा न थी, किंतु हमारे ही कारण खेलने लगीं, और होते-होते इतनी इच्छा बढ़ी कि चार-चार घंटे खेलने लगीं। रात को दस बजे तक खेल होता था। इसके पीछे हम अवश्य ही सोने चले जाते थे। साधारणतया इसके पहले ही चले जाते थे।

'नवीन भारत' की ताज़ी सम्मति

माघ की सुधा

देखा जी लोट-पोट हो गया। मुख पृष्ठ पर का सुंदर मनमोहना चित्र देखा, तो बड़ी देर तक उसी को देखा किया। 'सुधा' की छपाई-सफ़ाई और सौंदर्य पर तो जी करता है बलिदान हो जाऊँ। लेखों, कविताओं और चित्रों की ओर ध्यान देता हूँ, तो गर्व से मस्तक ऊँचा उठ जाता है। आज हिंदी में 'सुधा' ऐसी उच्च कोटि की मासिक पत्रिका निकल रही है, यह देखकर किसका हृदय बाग़ बाग़ न हो जायगा। माघ की 'सुधा' एक चीज़ है, सँभालकर रखने की चीज़ है। श्रीचतुरसेन शास्त्री की 'भिक्षुराज'-शीर्षक कहानी, बस पढ़ते ही बनती है। श्रीजंगबहादुरसिंह द्वारा लिखित 'कहीं धूप, कहीं छाया शीर्षक पर्वत-यात्रा का वर्णन ऐसी प्रांजल भाषा में, इतने रोचक ढंग से लिखा गया है कि एक बार पढ़ने लगिए, तो छोड़ने को जी नहीं करता। कहाँ तक गिनाऊँ, एक के बाद दूसरी रचना जो भी नज़र से गुज़री, उसी पर आँखें अटक गईं। इसी अंक में हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० की ओजस्विनी, प्रतिभाशालिनी लेखनी से निकली हुई 'हमारी विदेश-यात्रा'-शीर्षक रचना का एक अंश प्रकाशित हुआ है। इनके अतिरिक्त साहित्याचार्य श्रीयुत रामदीन पांडेय, श्रीयुत सिद्धनाथ माधव, श्री पं० लज्जाराम मेहता तथा कविरत्न पं० रमाशंकरजी 'श्रीपति' आदि की सुंदर रचनाएँ भी माघ की 'सुधा' की प्रतिभा द्विगणित कर रही हैं। प्रस्तुत सुधा के अंक में सभी के रुचि की चीज़ें मिलती हैं—सुंदर, कविताओं, कहानियों, सचित्र यात्रा विवरणों, स्त्री-उपयोगी लेखमालाओं, लेखों, मनमोहक गाथाओं तथा उन्नतिकारी सामाजिक, सुंदर साहित्यक और रुचिर राष्ट्रीय नोटों से यह संख्या ओत-प्रोत है। समझ में नहीं आता कि यह मासिक पत्रिका है या हिंदी की 'इंसाइक्लोपीडिया'।

सुधा के इस अंक को देखकर हम यह गर्व के साथ स्वीकार करते हैं कि 'सुधा' हिंदी-संसार की मासिक पत्रिकाओं की रानी है। 'सुधा' को हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका बना देने का श्रेय पं० दुलारेलाल भार्गव को ही प्राप्त है। पं० दुलारेलालजी ने 'माधुरी' का सम्पादन किया, तो उसे सर्वश्रेष्ठ पद पर आरूढ़ करके दिखा दिया। अब 'सुधा' का संपादन कर रहे हैं, तो उसे भी चमकाकर दिखा दिया। 'सुधा' द्वारा आज हिंदी की जो सेवा हो रही है, उसके लिये हिंदी-संसार 'सुधा' का सदा ऋणी रहेगा। 'सुधा' डेढ़ सौ पेज की सुंदर सचित्र मासिक पत्रिका है। इसका वार्षिक मूल्य केवल ६।) है। ग्राहकों को श्रीकृष्णानंद गुप्त द्वारा लिखित उपन्यास उपहार में दिया जाता है, जिसका मूल्य १) है। उपहार का मूल्य निकाल देने से सुधा का वार्षिक मूल्य केवल ५।।) ही रह जाता है। हम तो हिंदी-मासिक पत्रिकाओं के प्रेमियों को यही सलाह देंगे कि यदि वे सचमुच आदर्श-मासिक पत्रिका का स्वाद लेना चाहते हैं, तो सुधा पढ़ें। 'सुधा' स्थानीय गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस से प्रकाशित होती है। घर बैठे, बहती गंगा में, डुबकी लगाइए।

शरणागत

[श्रीयुत वृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(१)



रजब अपना रोज़गार करके ललितपुर लौट रहा था। साथ में स्त्री थी, और गाँठ में दो सौ-तीन सौ की बड़ी रक़म। मार्ग बीहड़ था, और सुनसान। ललितपुर काफ़ी दूर था, बसेरा कहीं-न-कहीं लेना ही था, इसलिये उसने मड़पुरा-नामक गाँव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी पत्नी को बुख़ार हो आया था, रक़म पास में थी, और बैलगाड़ी किराए पर करने में ख़र्च ज़्यादा पड़ता, इसलिये रजब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परंतु ठहरता कहाँ ? ज्ञात छिपाने से काम नहीं चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों में चाँदी की बालियाँ डाले थी, और पैजामा पहने थी। इसके सिवा गाँव के बहुत-से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गाँव के बहुत-से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर ख़रीदकर ले जा चुका था।

अपने व्यवहारियों से उसने रात-भर के बसेरे के लायक़ स्थान की याचना की। किसी ने भी मंज़ूर न किया। उन लोगों ने अपने ढोर रजब को अलग-अलग और छिपे-लुके बेचे थे। ठहराने में तुरंत ही तरह-तरह की ख़बरें फैलतीं, इसलिये सबों ने इनकार कर दिया।

गाँव में एक ग़रीब ठाकुर रहता था। थोड़ी-सी ज़मीन थी, जिसको किसान जोते हुए थे। निज का हल-बैल कुछ भी न था। लेकिन अपने किसानों से दो-तीन साल का पेशगी लगान वसूल कर लेने में ठाकुर को किसी विशेष बाधा का सामना नहीं करना पड़ता था। छोटा-सा मकान था, परंतु उसको गाँव-वाले गढ़ी के आदर-व्यंजक शब्द से पुकारा करते थे, और ठाकुर को डर के मारे 'राजा' शब्द से संबोधन करते थे।

शामत का मारा रजब इसी ठाकुर के दरवाज़े पर अपनी ज्वर-ग्रस्त पत्नी को लेकर पहुँचा।

ठाकुर पौर में बैठा हुक़्क़ा पी रहा था। रजब ने बाहर से ही सलाम करके कहा—"दाऊजू, एक बिनती है।"

ठाकुर ने बिना एक रत्ती-भर इधर-उधर हिले-डुले पूछा—"क्या ?"

रजब बोला—"मैं दूर से आ रहा हूँ। बहुत थका हुआ हूँ। मेरी औरत को ज़ोर से बुख़ार आ गया है। जाड़े में बाहर रहने से न-जाने इसकी क्या हालत हो जायगी, इसलिये रात-भर के लिये कहीं दो हाथ जगह दे दी जाय।"

"कौन लोग हो ?" ठाकुर ने प्रश्न किया।

"हूँ तो क़साई।" रजब ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिड़गिड़ाहट थी।

ठाकुर की बड़ी आँखों में कठोरता छा गई। बोला—"जानता है, यह किसका घर है ? यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे की तूने ?"

रजब ने आशा-भरे स्वर में कहा—"यह राजा का घर है, इसीलिये शरण में आया हूँ।"

तुरंत ठाकुर की आँखों की कठोरता ग़ायब हो गई। ज़रा नरम स्वर में बोला —"किसने तुमको बसेरा नहीं दिया ?"

"नहीं महाराज", रजब ने उत्तर दिया—"बहुत कोशिश की, परंतु मेरे खोटे पेशे के कारण कोई सीधा नहीं हुआ।' और, वह दरवाज़े के बाहर ही, एक कोने से चिपटकर, बैठ गया। पीछे उसकी पत्नी कराहती, काँपती हुई गठरी-सी बनकर सिमट गई।

ठाकुर ने कहा—"तुम अपनी चिलम लिए हो ?"

"हाँ, सरकार !" रज्जब ने उत्तर दिया।

ठाकुर बोला—"तब भीतर आ जाओ, और तमाखू अपनी चिलम से पी लो। अपनी औरत को भी भीतर कर लो। हमारी पौर के एक कोने में पड़े रहना।"

जब वे दोनों भीतर आ गए, ठाकुर ने पूछा—"तुम कब यहाँ से उठकर चले जाओगे ?' जवाब मिला—"अँधेरे में ही महाराज! खाने के लिये रोटियाँ बाँधे हूँ, इसलिये पकाने की ज़रूरत न पड़ेगी।"

"तुम्हारा नाम ?"

"रज्जब।"

(२)

थोड़ी देर बाद ठाकुर ने रज्जब से पूछा—"कहाँ से आ रहे हो ?"

रज्जब ने स्थान का नाम बतलाया।

"वहाँ किसलिये गए थे ?"

"अपने रोज़गार के लिये।"

"काम तो तुम्हारा बहुत बुरा है।"

"क्या करूँ, पेट के लिये करना ही पड़ता है। परमात्मा ने जिसके लिये जो रोज़गार मुक़र्रर किया है, वही उसको करना पड़ता है।"

"क्या नफ़ा हुआ ?" प्रश्न करने में ठाकुर को ज़रा संकोच हुआ, और प्रश्न का उत्तर देने में रज्जब को उससे बढ़कर।

रज्जब ने जवाब दिया—"महराज, पेट के लायक़ कुछ मिल गया है। यों ही।" ठाकुर ने इस पर कोई ज़िद नहीं की।

रज्जब एक क्षण बाद बोला—"बड़े भोर उठकर चला जाऊँगा। तब तक घर के लोगों की तबियत भी अच्छी हो जायगी।"

इसके बाद दिन-भर के थके हुए पति-पत्नी सो गए। काफ़ी रात गए कुछ लोगों ने एक बँधे इशारे से ठाकुर को बाहर बुलाया। एक फटी-सी रज़ाई ओढ़े ठाकुर बाहर निकल आया।

आगंतुकों में से एक ने धीरे से कहा—"... आज तो ख़ाली हाथ लौटे हैं। कल संध्या का ... बैठा है।"

ठाकुर ने कहा—"आज ज़रूरत थी। ख़ैर, ... देखा जायगा। क्या कोई उपाय किया था ?"

"हाँ," आगंतुक बोला—"एक क़साई रुप... मोट बाँधे इसी ओर आया है। परंतु हम लोग ... देर में पहुँचे। वह खिसक गया। कल देखेंगे ... जल्दी।"

ठाकुर ने घृणा-सूचक स्वर में कहा—"क़साई ... पैसा न छुएँगे।"

"क्यों ?"

"बुरी कमाई है।"

"उसके रुपयों पर क़साई थोड़े ही लिखा है।"

"परंतु उसके व्यवसाय से वह रुपया दूषि... गया है।"

"रुपया तो दूसरों का ही है। क़साई के ... आने से रुपया क़साई नहीं हुआ।"

"मेरा मन नहीं मानता, वह अशुद्ध है।"

"हम अपनी तलवार से उसको शुद्ध कर लें..."

ज़्यादा बहस नहीं हुई। ठाकुर ने कुछ सोचक... साथियों को बाहर-का-बाहर ही टाल दिया।

भीतर देखा, क़साई सो रहा था, और ... पत्नी भी।

ठाकुर भी सो गया।

(३)

सवेरा हो गया, परंतु रज्जब न जा सका। ... पत्नी का बुख़ार तो हलका हो गया था, परंतु ... भर में पीड़ा थी, और वह एक क़दम भी न... सकती थी।

ठाकुर उसे वहीं ठहरा हुआ देखकर कु... गया। रज्जब से बोला—"मैंने ख़ूब मिहमान... किए हैं। गाँव-भर थोड़ी देर में तुम लोगों ... पौर में टिका हुआ देखकर तरह-तरह की ... करेगा। तुम बाहर जाओ। इसी समय।"

सुधा



कुमारी सुमित्रादेवी रोहतगी

[आप कानपुर की स्त्रियों में सबसे अच्छी धुनाई जानती हैं, और गत जुलाई मास में आपने अपने बँगले पर धुनाई-कताई का क्लास भी खोला था। आप कानपुर के सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक और राष्ट्रीय नेता डॉक्टर जवाहरलाल की सुयोग्य कन्या हैं।]

Ganga Fine Art Press, Lucknow.



कानपुर की चर्खा कातनेवाली स्त्रियाँ

पहली पंक्ति (बैठी हुई)—सुमित्रादेवी, सावित्रीदेवी, शांतिदेवी, पार्वतीदेवी, श्यामसुंदरीदेवी, इंद्राणीदेवी, विद्यादेवी, शिवदुलारीदेवी।

दूसरी पंक्ति (कुर्सी पर)—श्रीमती रानीदेवी, स्वरूपरानी रोहतगी, राजकुमारी बैजल, फूलकुमारी, सावित्रीजी, गोमतीदेवी, शिवरानीदेवी।

तीसरी पंक्ति (खड़ी हुई)—पार्वतीदेवी, गुलाबदेवी, रामदेई, राधादेवी, सरोजिनीदेवी, कुमुददेवी, तारावतीदेवी।

चौथी पंक्ति (खड़ी हुई)—चंद्रवतीदेवी, शकुंतला, शिवरानी, सावित्री, विद्यादेवी, पार्वतीदेवी, शिवप्यारी, सुशीलादेवी।



असली

कश्मीरीकोकशास्त्र

शशक, वृषभ, मृग, अश्व, पद्मिनो, चित्रिणी शंखिनो, हस्तिनो

स्त्री-पुरुष की पहचान, वर्णन, स्त्री-पुरुष का जोड़ा, स्त्री को आयु-भर स्वस्थ, सुंदर, सौंदर्य की देवी और अपनी आज्ञा माननेवाली बनाए रखना, मनचाही सुंदर बलिष्ठ संतान उत्पन्न करना। कुमारीभेद और स्त्री-पुरुष का पारस्परिक संबंध, स्त्रियों का रजोदर्शन, ऋतु और उसका सामयिक प्रभाव, विलासियों के लिये वास के नियम, गर्भाधान, चौरासी आसन; स्त्री के योग्य यौवन-वर्द्धक, आनंददायक मसाले, स्त्री-पुरुषों के रोग, उनकी औषधियाँ, वशीकरण, ८४ तस्वीरें तथा ८४ आसनों के दिलचस्प हालात दर्ज हैं। दाम सिर्फ ३) रुपया।

सुपारी-पाक

आजकल की अधिकांश स्त्रियाँ बाधक प्रदरादि अथवा उसी प्रकार के बहुत-से रोगों का दुःख उठाया करती हैं, मगर शर्म के कारण किसी से रोग का हाल नहीं कहतीं और छिपे तौर पर अंडबंड घरेलू दवाइयों का सेवन किया करती हैं, जिससे रोग यहाँ तक बढ़ जाता है कि स्त्री का गर्भाशय सदा के लिये नष्ट हो जाता है, संतान नहीं होती या होते ही मर जाती है। यदि आप हमारे 'सुपारी-पाक' के दो डब्बे साल में खिला दें, तो स्त्री आयु-भर सुंदर, बलिष्ठ तथा संतान उत्पन्न करने योग्य बनी रहे। स्तन भी ढीले न होंगे। मूल्य २॥) रुपया।

असरी तिला

हस्त-मैथुन, लौंडेबाज़ी अथवा अधिक मैथुन करने से जिनकी इंद्री छोटी, पतली, टेढ़ी अथवा सिकुड़ गई हो, सुस्त अथवा पूरे ही नामर्द हो गए हों, उनके लिये इससे बढ़कर और कोई तिला संसार में नहीं है। यदि आपको इससे भी लाभ न हुआ, तो बस फिर समझ लेना कि दुनिया में नामर्दी की कोई दवा ही नहीं है। क़ीमत १०) रु०; नमूने की छोटी शीशी ४) रु०, यह स्तंभन यानी रुकावट भी करता है।

राजे, नवाब ऐसे तिला पर १००) रु० ख़र्च करते हैं।

हुस्न की देवी उबटन

यदि उमर-भर अपने को और अपनी प्यारी को सुंदर बनाए रखना है, तो इसे सेवन करें। मुख पर लगाने से चेहरे की झुर्रियाँ, कील, मुहासे, फुंसियों के दाग़ दूर होकर चेहरे की रंगत गुलाब के फूल के समान हो जायगी। मू० २॥)

मिश्र का जादू

(मूसा फ़िरऊन के समय की मिश्र देश में प्रचलित एक हस्तलिखित पुस्तक का हिंदी-अनुवाद)

अपनी छाया, सूर्य, चंद्र, शनि, मंगल तथा दुर्गा, काली, भैरव, हनुमान आदि को सिद्ध करना।

प्रत्येक ग्रह तथा स्त्री-पुरुष का वशीकरण व अन्य कई चीज़ों के वशीकरण करने के लिये विचित्रतापूर्ण विधियाँ जो कभी चुकनेवाली नहीं। रोगों पर पर दम करना; घर बैठे कुल देशों की सैर करना; पवन में उड़ते फिरना; जिसको चाहना बस कर लेना; देवी-देवता, भूत, परी आदि को अपने अधिकार में रखना; उनसे काम लेना, मुर्दा-ज़िंदों की बातचीत इत्यादि दर्ज है। मू० १॥=)

करामात

ऐसी पुस्तक आज तक हिंदी में नहीं छपी थी। इसकी भी नक़ल लोग अब छापने लगे हैं। उनके धोखे से बचें। यह संसार में अद्भुत पुस्तक है, इसमें उन सब बातों को प्रमाण से ठीक साबित किया है जिन्हें लोग अब तक झूठा समझते थे। इसमें योगविद्या, साबरीविद्या, शक्तविद्या, यंत्र, मंत्र, मिस्मरेज़्म, हिपनाटिज़्म, नज़रबंदी, अंजनयोग, दूरदर्शी मोहन, वशीकरण, इच्छापूर्ण हाज़ीरात, झाड़ फूँक, तंत्र-टोना इत्यादि सब हैं। सौ पुस्तकों का मज़मून एक में! मूल्य सिर्फ़ २) रु० मिस्मरेज़म सीखनेवालों के काम की है।

बिजली की गोलियाँ

निश्चय जानें कि आपकी वह तमाम गुप्त बीमारियाँ तथा शिकायतें जिन्हें आप लिखते अथवा बतलाते हुए शरमाते हैं "बिजली की गोलियाँ" थोड़े ही दिनों में उन्हें दूर कर आपको हट्टा-कट्टा जवान बना देंगी। सुस्ती और नामर्दी, कमर, पिंडलियों का दर्द, आँखों की कमज़ोरी, दिल की घबराहट दूर करके चेहरे की रंगत सुर्ख़, शरीर फ़ौलाद-जैसा बना देंगी। इसके सेवन से नपुंसक को भी पूरी ताक़त हो जायगी तथा आपकी शक्ल देखकर हरएक का दिल फड़क उठेगा। नमूना १८ गोली २॥) रु०, ... गोली ४) रुपया।

पता—भारतमित्र औषधालय गुलचमनकली ६ लुधियाना, पंजाब

रज्जब ने बहुत बिनती की, परंतु ठाकुर न माना। यद्यपि गाँव-भर उसके दबदबे को मानता था, परंतु अव्यक्त लोकमत का दबदबा उसके भी मन पर था। इसलिये रज्जब गाँव के बाहर सपत्नीक एक पेड़ के नीचे जा बैठा, और हिंदू-मात्र को मन-ही-मन कोसने लगा।

उसे आशा थी कि पहर-आध पहर में उसकी पत्नी की तबियत इतनी स्वस्थ हो जायगी कि वह पैदल यात्रा कर सकेगी। परंतु ऐसा न हुआ, तब उसने एक गाड़ी किराए पर कर लेने का निर्णय किया।

मुश्किल से एक चमार काफ़ी किराया लेकर ललित-पुर गाड़ी ले जाने के लिये राज़ी हुआ। इतने में दोपहर हो गई। उसकी पत्नी को ज़ोर का बुख़ार हो आया। वह जाड़े के मारे थर-थर काँप रही थी, इतनी कि रज्जब की हिम्मत उसी समय ले जाने की न पड़ी। गाड़ी में अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय तक के लिये यात्रा को स्थगित कर दिया, जब तक कि उस बेचारी की कम-से-कम कँपकँपी बंद न हो जाय।

घंटे-डेढ़ घंटे बाद उसकी कँपकँपी तो बंद हो गई, परंतु ज्वर बहुत तेज़ हो गया। रज्जब ने अपनी पत्नी को गाड़ी में डाल दिया, और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

गाड़ीवान बोला—"दिन-भर तो यहीं लगा दिया। अब जल्दी चलने को कहते हो!"

रज्जब ने मिठास के स्वर में उससे फिर जल्दी करने के लिये कहा।

वह बोला—"इतने किराए में काम नहीं चल सकेगा। अपना रुपया वापस लो। मैं तो घर जाता हूँ।"

रज्जब ने दाँत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत होकर कहने लगा—"भाई, आफ़त सबके ऊपर आती है। मनुष्य मनुष्य को सहारा देता है, जानवर तो देते नहीं। तुम्हारे भी बाल-बच्चे हैं। कुछ दया के साथ काम लो।"

क़साई को दया पर व्याख्यान देते सुनकर गाड़ी-वान को हँसी आ गई।

उसको टस-से-मस न होता देखकर रज्जब ने और पैसे दिए। तब उसने गाड़ी हाँकी।

(४)

पाँच-छः मील चलने के बाद संध्या हो गई। गाँव कोई पास में न था। रज्जब की गाड़ी धीरे-धीरे चली जा रही थी। उसकी पत्नी बुख़ार में बेहोश-सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली। रक़म सुरक्षित बँधी पड़ी थी।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुख़ार के कारण अंटी का कुछ बोझ कम कर देना पड़ा है—और स्मरण हो आया गाड़ीवान का वह हठ, जिसके कारण उसको कुछ पैसे व्यर्थ ही और दे देने पड़े थे। इसको गाड़ीवान पर क्रोध था, परंतु उसको प्रकट करने की उस समय उसके मन में इच्छा न थी।

बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप आरंभ किया—

"गाँव तो यहाँ से दूर मिलेगा।"

"बहुत दूर। वहीं ठहरेंगे।"

"किसके यहाँ?"

"किसी के यहाँ भी नहीं। पेड़ के नीचे। कल सबेरे ललितपुर चलेंगे।"

"कल का फिर पैसा माँग उठना।"

"कैसे माँग उठूँगा? किराया ले चुका हूँ। अब फिर कैसे माँगूँगा?"

"जैसे आज गाँव में हठ करके माँगा था। बेटा, ललितपुर होता, तो बतला देता।"

"क्या बतला देते? क्या सेंतमेंत गाड़ी में बैठना चाहते थे?"

"क्यों बे, क्या रुपए देकर भी सेंतमेंत का बैठना कहता है? जानता है, मेरा नाम रज्जब है। अगर बीच में गड़बड़ करेगा, तो साले को यहीं छुरे से काटकर कहीं फेंक दूँगा, और गाड़ी लेकर ललितपुर चल दूँगा।"

रज्जब क्रोध को प्रकट नहीं करना चाहता था, परंतु शायद अकारण ही वह भली भाँति प्रकट हो गया।

गाड़ीवान ने इधर-उधर देखा। अँधेरा हो गया था। चारो ओर सुनसान था। आस-पास झाड़ी खड़ी थी। ऐसा जान पड़ता था, कहीं से कोई अब निकला और अब निकला। रज्जब की बात सुनकर उसकी हड्डी काँप गई। ऐसा जान पड़ा, मानो पसलियों को उसकी ठंडी छुरी छू रही हो।

गाड़ीवान चुपचाप बैलों को हाँकने लगा। उसने सोचा—"गाँव के आते ही गाड़ी छोड़कर नीचे खड़ा हो जाऊँगा, और हल्ला-गुल्ला करके गाँववालों की मदद से अपना पीछा रज्जब से छुड़ाऊँगा। रुपए-पैसे भले ही वापस कर दूँगा, परंतु और आगे न जाऊँगा। कहीं सचमुच मार्ग में मार डाले!"

(५)

गाड़ी थोड़ी दूर और चली होगी कि बैल ठिठककर खड़े हो गए। रज्जब सामने न देख रहा था, इसलिये ज़रा कड़ककर गाड़ीवान से बोला, "क्यों बे बदमाश, सो गया क्या?"

अधिक कड़क के साथ सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टुकड़ी में से किसी के कठोर कंठ से निकला—"ख़बरदार, जो आगे बढ़ा।"

रज्जब ने सामने देखा कि चार-पाँच आदमी बड़े-बड़े लठ बाँधकर न-जाने कहाँ से आ गए हैं। उनमें तुरंत ही एक ने बैलों की जुँआरी पर एक लठ पटका और दो दाएँ-बाएँ आकर रज्जब पर आक्रमण करने को तैयार हो गए।

गाड़ीवान गाड़ी छोड़कर नीचे जा खड़ा हुआ। बोला—"मालिक, मैं तो गाड़ीवान हूँ। मुझसे कोई सरोकार नहीं।"

"यह कौन है?" एकने गरजकर पूछा।

गाड़ीवान की घिग्घी बँध गई। कोई उत्तर न दे सका!

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक हाथ से सँभालते हुए बहुत ही विनम्र स्वर में कहा—"मैं बहुत ग़रीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है। मेरी औरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिए।"

उन लोगों में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उबारी। गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड़ लिया।

अब उसका मुँह खुला। बोला—"महाराज, मुझको छोड़ दो। मैं तो किराए से गाड़ी लिए जा रहा हूँ। गाँठ में खाने के लिये तीन-चार आने पैसे ही हैं।"

"और यह कौन है? बतला।" उन लोगों में से एक ने पूछा।

गाड़ीवान ने तुरंत उत्तर दिया—"ललितपुर का एक क़साई।"

रज्जब के सिर पर जो लाठी उबारी गई थी, वह वहीं रह गई। लाठीवाले के मुँह से निकला—"तुम क़साई हो? सच बतलाओ।"

"हाँ, महाराज" रज्जब ने सहसा उत्तर दिया—"मैं बहुत ग़रीब हूँ। हाथ जोड़ता हूँ, मुझको मत सताओ। मेरी औरत बहुत बीमार है।"

औरत ज़ोर से कराही।

लाठीवाले उस आदमी ने अपने एक साथी के कान में कहा—"इसका नाम रज्जब है। छोड़ो। चलो यहाँ से।"

उसने न माना। बोला—"इसका खोपड़ा चकनाचूर करो। दाऊजू यदि वैसे न माने तो। असाई क़साई हम कुछ नहीं मानते।"

"छोड़ना ही पड़ेगा," उसने कहा—"इस पर हाथ नहीं पसारेंगे और न इसका पैसा छुएँगे।"

दूसरा बोला—"क्या क़साई होने के डर से दाऊजू, आज तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गए हैं! मैं देखता हूँ।" और, वह तुरंत लाठी लेकर गाड़ी में चढ़ गया। लाठी का एक सिरा रज्जब की छाती में अड़ाकर उसने तुरंत रुपया पैसा निकालकर दे देने का हुक्म दिया। नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने ज़रा ठंडे स्वर में कहा—"नीचे उतर आओ। उससे मत बोलो। उसकी औरत बीमार है।"

"हो, मेरी बला से," गाड़ी में चढ़े हुए लठैत ने उत्तर दिया—"मैं क़साइयों की दवा हूँ।", और उसने रज्जब को फिर धमकी दी।

नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने कहा—"ख़बरदार, जो उसे छुआ। नीचे उतरो, नहीं तो तुम्हारा सिर चूर किए देता हूँ। वह मेरी शरण आया था।"

गाड़ीवान लठैत झख-सी मारकर नीचे उतर आया।

नीचेवाले व्यक्ति ने कहा—"सब लोग अपने-अपने घर जाओ। राहगीरों को तंग मत करो।" फिर गाड़ीवान से बोला—"जा रे, हाँक ले जा गाड़ी। ठिकाने तक पहुँचा आना, तब लौटना। नहीं तो अपनी ख़ैर मत समझियो। और, तुम दोनो में से किसी ने भी कभी इस बात की चर्चा कहीं की, तो भूसी की आग में जलाकर ख़ाक कर दूँगा।"

गाड़ीवान गाड़ी लेकर बढ़ गया। उन लोगों में से जिस आदमी ने गाड़ी पर चढ़कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी, उसने क्षुब्ध स्वर में कहा—

"दाऊजू, आगे से कभी आपके साथ न आऊँगा।"

'दाऊजू' ने कहा—"न आना। मैं अकेले ही बहुत कर गुज़रता हूँ। परंतु बुंदेला शरणागत के साथ घात नहीं करता, इस बात को गाँठ बाँध लेना।"

प्राण-चिकित्सा

८. भूत-प्रेतों का अस्तित्व

[डॉ० दुर्गाशंकरजी नागर, संपादक कल्पवृक्ष]



स प्रकार शारीरिक या मानसिक कारणों से रोग उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार भूत-प्रेतों के लगने से शारीरिक पीड़ा और मानसिक त्रास होते हैं। क्या भूत-प्रेत वास्तव में स्वतंत्र देहधारी मनुष्य के समान प्राणी हैं या मानसिक तथा शारीरिक शक्ति की उत्तेजना तथा स्तब्धता से ज्ञान-तंतुओं में विकार उत्पन्न होकर केवल भ्रम-मात्र उत्पन्न होता है? यह विवादास्पद विषय है। भूत-प्रेत के माननेवालों को ही भूत-प्रेतों से विशेष त्रास और दुःख होता है। बहुतों का मत है कि भूत-प्रेतों की कल्पना और भय ही इन सब उपद्रवों का मूल है।

किंतु इस सिद्धांत के विरुद्ध ऐसे अनुभव भी देखने में आते हैं कि यह विषय विचारणीय हो जाता है। भय की कल्पना ही भय का कारण है, इसलिये किसी को भी भूत-प्रेतों से भयभीत नहीं होना चाहिए। इस सिद्धांत को पूर्ण हृदयंगम कर लो कि जीवित मनुष्य की इच्छा-शक्ति (मानसिक शक्ति) मरे हुए मनुष्यों की इच्छा-शक्ति पर अधिकार कर सकती है। जीवित मनुष्य का मनोबल मृतात्मा के इच्छा-बल से अधिक सामर्थ्यवान् है। मानस-शास्त्र का यह एक अचूक सिद्धांत है।

भय के भूत से जितनी अधिक संख्या में मनुष्य मरते हैं, उतने सच्चे भूत-प्रेतों के उपद्रव से नहीं। एक कहावत प्रसिद्ध है कि किसी व्यक्ति को मार्ग में मनुष्य-रूप में प्लेग महाशय मिले। उस व्यक्ति ने प्लेग महाशय से पूछा, आप कहाँ पधार रहे हैं? उत्तर दिया, इस प्रांत में जाकर पाँच हज़ार आदमियों को मारूँगा। कुछ दिन बाद लौटने पर प्लेग महाराज के पुनः दर्शन हुए। उक्त व्यक्ति ने प्रश्न किया, प्लेग महाशय, आप तो कह रहे थे कि ५,००० मनुष्यों को ही मारूँगा, किंतु उस प्रांत में तो १,००,००० मनुष्य मर चुके। प्लेग ने उत्तर दिया, मैंने तो पाँच हज़ार ही मारे हैं, बाक़ी डर से मरे हैं।

आजकल योरप और अमेरिका में भूत-प्रेतों की बड़ी चर्चा हो रही है। किंतु वहाँ पर भी धूर्त और ठग लोग ही विशेषकर कई प्रकार के झूठे चमत्कार बतलाकर भोले-भाले लोगों को ठगते हैं। इन धूर्तों के अतिरिक्त बड़े-बड़े विद्वान् और विज्ञानी पुरुष भी हैं, जिन्होंने भूत-प्रेतों के विषय का अध्ययन और अभ्यास करके स्वयं अनुभव प्राप्त किया है, किंतु वे सबको संतुष्ट नहीं कर सकते। जिन लोगों को इस विषय की सच्ची जिज्ञासा हो, वे स्वयं अभ्यास करके अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। पाश्चात्य देशों में भूत-प्रेतों से वार्तालाप करने के लिये कई हठयोग के और मानसिक शक्ति के प्रयोग करते हैं—

१. क्रिस्टल् गेज़िंग् (Crystal Gazing)—काच के गोले पर एकाग्रचित्त होकर, दृष्टि स्थिर करके, कुछ देर देखने पर अजीब दृश्य दिखाई देते हैं।

२. प्लांचेट द्वारा लेखन—पान के आकार की लकड़ी के यंत्र पर, जिसमें दो पहिए लगे होते हैं, और पेंसिल लगाने के लिये एक छेद होता है, हाथ रखकर मृतक आत्मा का ध्यान करने से वह यंत्र लिखता है।

प्रेतात्मावादी मानते हैं कि भूत-प्रेत लिखते हैं,

और कइयों का कथन है कि अपनी निजी मानसिक शक्ति-द्वारा वह यंत्र चलता है।

३. टेबिल टिल्टिंग—तीन पाए की टेबिल के खटके से संकेतों से बातचीत करना।

४. ऑटोमेटिक राइटिंग (स्वलेखन)—अपने हाथ में पेंसिल पकड़कर काग़ज़ पर लगाना और मृतात्मा का ध्यान करना एवं प्रार्थना करना कि हमारे हाथों का उपयोग कर मृतात्मा संदेश भेजे।

५. मीडियम (मध्यस्थ)—किसी के शरीर में मृतात्मा का संचार होकर संभाषण करना।

६. साइकोग्राफ़ी मध्यस्थ (मीडियम) के हाथों में दो कोरी स्लेट इस प्रकार बाँधकर रक्खी जाय कि उसमें अपने आप स्वयं लिखा जाता है। इन सब साधनों में विशेष विश्वास-योग्य मीडियम के द्वारा भूत-प्रेतों का संचार होकर उनसे वार्तालाप करना है। इसमें कभी-कभी विलक्षण बातें मालूम होती हैं। जिन्हें वास्तव में कुछ भूत-प्रेतों के अस्तित्व के संबंध में जानकारी प्राप्त करनी हो, वे स्वयं दत्तचित्त होकर अनुसंधान कर अनुभव करें। दूसरों पर विश्वास कर बैठने से बहुत बार धोखा खाना पड़ता है अथवा व्यर्थ में ऐसी बातों में समय नष्ट होता है।

श्रीयुत वी० डी० ऋषि* बी० ए०, एल्-एल्० बी०, अपनी मृत पत्नी के संस्कार करने उज्जैन आए थे। उनको अपनी पत्नी से अत्यधिक स्नेह था। उनके वियोग से वह बड़े दुखी थे। उस समय उनका शोक-शमन करने के लिये किसी मित्र ने उन्हें मेरे पास भेज दिया। वह इस विषय से नितांत अनभिज्ञ थे कि प्रेतात्मा का अस्तित्व है। उस समय ऋषिजी बहुत ही शोक-मग्न थे, और बहुत ही अशांत। उनका श्रीगणेश इस विषय की ओर किया गया, और उनमें स्वयं प्रयोग करने की रुचि उत्पन्न हो गई। अब वह कहते हैं कि तब से वह इस कार्य-क्षेत्र में दत्तचित्त होकर इसी धुन में लगे हैं। दूसरे लोग चाहे उन पर विश्वास करें या न करें, किंतु उनका शोक शमन होकर स्वयं आत्मसंतृप्ति हो गई है।

जिन स्त्री-पुरुषों के शरीर में भूत-प्रेतों का संचार होता है, उनका निरीक्षण और उनकी चिकित्सा करने का हमें रात-दिन अवसर प्राप्त होता रहता है। वास्तव में सब लोगों के शरीर में भूत-प्रेत नहीं लगते। गुप्त मन पर निद्रावस्था, अर्द्ध निद्रावस्था या जाग्रत् अवस्था में, चेतन या अचेतन अवस्था में मिथ्या, भ्रामक कल्पनाओं से, भूत-प्रेत लगते हैं। इसी भूत-प्रेतों के उन्माद से पीड़ित स्त्री-पुरुषों में सच्चे भूत-प्रेत-बाधावाले इने-गिने होते हैं। किंतु विशेषकर गुप्त मन में भ्रामक विचारों के प्रवेश से भूत-प्रेत-संचार के समान ही चेष्टाएँ होती हैं, और उनकी चिकित्सा भी उनके विचार एवं विश्वास के अनुकूल करने से ही शांति होती है—

(१) अति हर्ष करने से, अत्यंत रोने से, हँसने से या किसी भी कारण मनोवृत्ति के उत्तेजित होने से मानसिक शक्ति के क्षीण होने से भूत-प्रेत-बाधा की—मनुष्यों में भूत-प्रेतों से संबंध होने की पात्रता होती है।

(२) भय, उदासीनता, अशक्तता या वृत्ति विलीन होकर मनःशक्ति का ह्रास हो जाता है। उस समय अधिक काल तक एकांत में रहने या विजन निर्जन स्थान में भ्रमण करने से भूत-प्रेत लग जाते हैं।

(३) किसी व्यक्ति के प्राण-हरण करने की चेष्टा या किसी से द्रव्य छीनने की लालसा या बदला लेने की तीव्र भावना करते समय यदि उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाय, तो मन की कल्पना में तीव्र भावों के उत्पन्न होकर उक्त व्यक्ति के प्रेत से संबंध होता है।

(४) निद्रावस्था में भयंकर स्वप्न या स्वप्न में भयंकर दृश्य देखने से मस्तिष्क का विद्युत्-प्रवाह क्षीण हो जाता है, और भूतों की मूर्तियाँ दिखलाई देने लगती हैं।

(५) जब किसी निर्बल व्यक्ति पर मेस्मेरिज़म का प्रयोग किया जाता है, और उस समय प्रयोगकर्ता की शक्ति के अधीन न रहकर वह अत्यंत गाढ़ निद्रा

---

* श्रीयुत ऋषि ने, लखनऊ में, हमारे साथ दो बार टेबिल-टिल्टिंग और ऑटोमेटिक राइटिंग का प्रयोग किया था, किंतु उससे हमें तो संतोष न हुआ।—सुधा-संपादक

चला जाता है, तो उसकी अंतर्दृष्टि जाग्रत् होकर अंतर् अवस्था में जाकर प्रेत से संबंध हो जाता है।

(६) योग की प्रक्रिया करते समय किसी प्रकार की ग़लती हो जाने, मंत्र-जप, इष्ट-साधन या अनुष्ठान-प्रयोग में भ्रष्ट होने से भी शारीरिक और मानसिक उत्तेजना होकर प्रेतों से संबंध हो जाता है।

इस प्रकार भूत-प्रेतों से संबंध स्थापित होने से शारीरिक पीड़ाएँ, मानसिक वेदनाएँ या बार-बार शरीर में भूत-प्रेतों का संचार होना, जाग्रत् अवस्था में भी नाना प्रकार के विचित्र रूप और दृश्य दिखाई देना, दूर की आवाज़ सुनाई देना, एकदम शरीर का कँपकँपाना, घरों में से चीज़ों का इधर-उधर हो जाना आदि कई प्रकार की विलक्षण बातें होती हैं। सच्चे भूत-प्रेतों की परीक्षा करने के लिये सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन और निरीक्षण करने की आवश्यकता है। सर्व-साधारण मनुष्यों में जो भूत-प्रेतों का संचार होता है, उसमें विशेष चमत्कार की बातें नहीं मालूम होतीं।

मानस-चिकित्सक को भूत-प्रेत की भ्रामक भावना से पीड़ित रोगी में वही भावना पुष्ट करके उन भूत-प्रेतों को अपने मनोबल द्वारा दूर करना चाहिए। इसके विपरीत ऐसे बीमार से यह कह देने से कि भूत-प्रेत कुछ नहीं है, मिथ्या शंका और वहम है, काम न चलेगा, क्योंकि रोगी को तो बड़ी भारी मानसिक वेदना हो रही है। वह तो मरा जा रहा है। उसे इस प्रकार की सांत्वना से लाभ नहीं होता, क्योंकि उसमें आत्मबल का अभाव हो गया है। एक महाराष्ट्र सज्जन अपना इलाज करवाने हमारे यहाँ आए। उनके मुँह से सप्ताह में दो बार रक्त की गाँठें गिरती थीं। शरीर बहुत ही कृश और क्षीण हो गया था। सब प्रकार की चिकित्सा करा चुके थे। सायंकाल को भूत-प्रेत के रोगियों की चिकित्सा की जाती थी। वह भी इसी समय अपने इलाज के लिये आया करते थे। भूत-प्रेतों को दूसरों के शरीर में देखकर ठठौल किया करते थे, और कड़ी आलोचना किया करते थे कि ये सब बातें मिथ्या हैं—यह सब मन का भ्रम या ढोंग है।

एक दिन सायंकाल वह कुरसी पर बैठे हुए थे। एकदम चिल्लाकर कुरसी से नीचे कूद पड़े, और बेहोश हो गए, और उस मूर्च्छित अवस्था में आप बोलते हैं कि क्या आप इस व्यक्ति के इतिहास से परिचित हैं। यह बड़ा विश्वासघाती और निर्दयी मनुष्य है। अब आप मेरा हाल सुनिए। मैं इंदौर की रहनेवाली अमुक ब्राह्मण महाराष्ट्र की लड़की हूँ। मेरा नाम......है। यह सज्जन मुझे घर पर आकर प्राइवेट पढ़ाते थे। इनकी तत्त्वज्ञान की ओर विशेष रुचि है। मेरा इनसे गाढ़ स्नेह हो गया था, और हार्दिक इच्छा थी कि मेरा वैवाहिक संबंध इनसे जुड़ जाय। मेरे प्रस्ताव से यह सहमत भी हो गए थे, किंतु कुछ दिन बाद यह अपने घर देवास चले गए। मैंने पत्र-व्यवहार किया। मेरे एक पत्र का भी इन्होंने उत्तर न दिया। मैं साहस करके मोटर-लारी से इनके पास पहुँची, किंतु मुझे देखते ही यह घर से चल दिए। इनकी माता से वार्तालाप करके मैं इंदौर लौटी। इनके इस दुर्व्यवहार से मुझे बड़ा संताप हुआ। मैंने आत्मघात करने के लिये अफ़ीम खा ली। मैंने अपने पिता से यह सब हाल कह दिया। डॉक्टर बुलाया गया, और इनको भी आने को तार दिया गया। यह मेरी मृत्यु के बाद मेरे यहाँ पहुँचे। मैं तभी से इनके साथ हूँ। यह राजयक्ष्मा का रोग मेरे ही कारण है। जब-जब इनकी माता इनके विवाह की चर्चा करती है, मैं अधिक त्रास देती हूँ। उस दिन इनके मुँह से अधिक ख़ून गिरता है। आप जिनके यहाँ यह ठहरे हैं, उनसे कहिए कि रात को इस व्यक्ति का क्या हाल होता है। मैं कभी रात-रात-भर इनसे तत्त्वज्ञान की चर्चा किया करती हूँ। मेरे साथ इनका संबंध हो चुका है। मैं आजन्म इनके साथ रहूँगी। अब यह दूसरा विवाह नहीं कर सकते। यदि इसके विरुद्ध कार्यवाही हुई, तो इनकी मृत्यु हो जायगी।

जिनके यहाँ यह ठहरे थे, उनसे प्राइवेट में कहा गया

कि आप कभी किसी दिन देखिए कि रात्रि को यह सज्जन क्या करते हैं। उनसे पता लगा कि यह स्वयं अपने आप बातें करते रहते हैं, और मालूम होता है कि किसी स्त्री से संभाषण कर रहे हैं, और उसको उत्तर दे रहे हैं। इनके घरवालों को बुलाकर उनसे इस घटना के संबंध में अन्वेषण किया, तो यह घटना बिलकुल सत्य निकली। उनकी माता के समक्ष प्रयोग करके उन्हें संतोष करके समझा दिया कि आप विवाह स्थगित करें। उक्त सज्जन के स्वास्थ्य में उसी दिन से परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा, और वह उस भीषण रोग से मुक्त होकर पूर्ण स्वस्थ हो गए। इस घटना को हुए दस वर्ष हुए। महाराष्ट्र सज्जन जीवित हैं। शिक्षक का कार्य करते हैं। गत दिसंबर, ३० में आकर मुझसे मिले थे, और नीरोग दशा में हैं।

उज्जैन के एक सुप्रसिद्ध सेठ के एक ही पुत्र होकर उसकी मृत्यु हो गई। आठ वर्ष से कोई बच्चा न होता था। उनकी स्त्री को कभी-कभी सिर-दर्द होता था। साधारण हिस्टीरिया-सा हो गया था। धनिकों को संतान न होने से विशेष चिंता होती है। घर के कुटुंबी और उनके पिता उनके पीछे पड़े कि तुम दूसरा विवाह कर लो, किंतु उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मैं दूसरा विवाह न करूँगा। चिकित्सा कराने को हमारे यहाँ उस बाई को लाए। दो-तीन दिन उक्त बाई की मानसिक चिकित्सा होती रही। चौथे दिन प्रयोग करते ही बड़े ज़ोर से चीख़ मारकर रोने लगी, और कहने लगी कि ये घर-भर के सब लोग बड़े दुष्ट हैं, मुझे अत्यंत त्रास हो रहा है, मुझे बड़ा कष्ट है।

यह दशा देखकर बाई के साथ जो ससुर आए थे, बड़े ही आश्चर्य-चकित हुए कि यह क्या बात है। मैं भूत-प्रेतों पर विश्वास नहीं करता, किंतु यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि है क्या! आप इनसे साफ़-साफ़ पूछिए कि यह आत्मा इनके शरीर में कौन है।

उसने कहा—मैं तुम्हारा नाती हूँ; मेरे पिता को, जो इस समय अमुक स्थान में हैं, बुलाओ। उनसे बातें लाप करूँगा। दूसरे दिन तार देकर सेठ सा बुलाए गए। बातचीत हुई। उस आत्मा ने कहा— मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। तुम लोग मुझे ऐसे स्थान में ग आए थे कि मेरे शरीर को तांत्रिकों ने उखाड़कर मु बड़ा त्रास दिया। अब मैं पुनः अपनी माता के ग में आना चाहता हूँ। आप मेरे लिये इतना कार्य क दीजिए, ताकि मेरी आत्मा इस संकट से मुक्त हो जा

जिस प्रकार गुप्त मन द्वारा आत्मा ने अपने प्रकट किए, तदनंतर सब कार्य किया गया, और दू वर्ष सेठ साहब को पुत्र तो नहीं, कन्या-रत्न प्रा हुआ।

एक सुप्रसिद्ध स्टेट के चीफ़ मेडिकल ऑफ़ि डॉक्टर महोदय की धर्मपत्नीजी के रोग का नि ही नहीं होता था। उस बाई की मानसिक अवस्था के कारण सब घर-भर दुखी रहते थे। बाई स इन बातों पर विश्वास नहीं रखती थी, वरन् प्रेतों का खंडन करनेवाली थी।

प्रयोग करने पर वह इतनी गाढ़ निद्रा में चली गई कि डॉक्टरों के सुई चुभाने पर भी कुछ न मालूम होता था। उक्त गाढ़ अवस्था में बीस पृष्ठ भरकर अपना सब हाल लिखा। उस में बहुत-सी घरेलू बातें लिखी हुई थीं, उनके करने की आवश्यकता नहीं।

मृतात्मा के वार्तालाप का सारांश यह था कि जी के पिता बंबई में थे। उन्होंने गले का ऑप कराया था। वह मुँह से बोल नहीं सकते थे। पर अत्यंत प्रेम करते थे, और उनकी इच्छा यह उनकी सेवा में बंबई में रहे, किंतु यह उनकी इच्छा के विरुद्ध अपने ससुराल चली जाते समय इनके पिता ने इनकी ओर देखकर सन्नता प्रकट की। बाई वहाँ से, ट्रेन से, रवाना चार घंटे बाद पिता की मृत्यु हो गई। उन्होंने सब हाल लिखा, और कहा कि मैं अपनी पु अत्यंत प्रेम करता हूँ, इसकी रक्षा करता हूँ, और

दूसरी दुष्ट आत्मा से, जो इसे त्रास दे रही है, बचाता हूँ। मुझे मुक्त करने का उपाय करो, सब शांति हो जायगी। तब से बाईजी के स्वास्थ्य में परिवर्तन है, और मन भी स्वस्थ और शांत है।

ऐसी कई विचित्र घटनाएँ होती हैं। मानसिक जगत् के सूक्ष्म अंतस्तल में गड़े हुए संस्कारों को जाग्रत् कर, उनका पता लगाकर, मनस्तत्त्व-विश्लेषण द्वारा इनका सदुपयोग किया जा सकता है, और लोगों के कष्ट-निवारण किए जा सकते हैं। इस प्रकार की घटनाओं से मन की गुप्त शक्ति का ज्ञान प्राप्त होता है।

इस लेख के लिखने का तात्पर्य भूत-प्रेतों को मनवाना नहीं है, किंतु इस तत्त्व का शोधक दृष्टि से अन्वेषण कर सृष्टिशास्त्र और मानसशास्त्र (Practical Psychology) के नियमों के रहस्य का उद्घाटन करना है। चाहे जैसे भी अद्भुत चमत्कार हों, वे नियम-बद्ध हैं।

अतीत-स्मृति

[पं० ब्रह्मदत्तजी शर्मा "शिशु"]

अभी चुराकर मेरा शिशु-मन
गई सिंधु-तट के उस पार ;
विकल व्यथा से मैं इस तट पर
देख रहा हूँ नयन उघार ।
रे सागर ! तू निज गर्जन में
मिला न मेरी करुण पुकार ;
नीरव हो ! उस तक जाने दे
शून्य हृदय का हाहाकार !!
रत्नाकर ! तू रत्न-गर्भ हो
उठा न इतना गर्व-उफान ;
तुझमें उस-सा उज्ज्वल मोती
निकल सके ? झूठा अभिमान !
माना, तूने चंद्र - सूर्य - सा
किया लोक-हित तेजस-दान ;
पर न कर सका मम अंतर की
कुहू-निशा का आज बिहान ।
हे जलेश ! क्या जानें तुझको
तृषित भूमि का है आधार ;
तेरे कोटि पयोद हृदय में
कर न सके शीतल संचार ।

पर मेरी वह लुप्त निर्झरी
शून्य शिखर से अमृत झार ;
उड़ा रही थी हृदय-व्योम में
शीतल, सुरभित प्रेम-फुहार ।
तेरे नील गगन-सम तल से
उठकर तरल तरंग अपार—
द्रवित देह करतीं, पर नीरस
पड़ा हुआ है हृदयागार ।
पर उसके मृदु रम्य अंग से
आलिंगित करता था प्यार ;
पीकर मादक मधु-अधरामृत
भूल रहा था सब संसार ।
हे लहरी ! अपनी लहरों में
मम जीवन-लहरी लेकर ;
पहुँचा दे उस पार दया कर,
मृदुल तरंगों से खेकर ।
या उसको ही पूर्व-प्रेम की
ले आ ! प्रेम-शपथ देकर ।
कहना, उस तट पड़ा हुआ
वह तड़प रहा है शिशु बेपर ।

विभूति

सप्तम सर्ग

[कविवर पं० श्यामाकांत पाठक]

हस्तिनापुर उत्सव-मंदिर बना है।
सुषमा-ज्योति से ज्योतित सब हो उठा;
आनंद-गूँज से गुंजित वातावरण।
सजा सामोद है, यथा प्रभात सजता
निशीथ-नाश पर, मधु-ऋतु पा धरा।
भारत-मुकुट-मणि पावन पुरी में,
स्वर्ण-सिंहासन पर स्वयं त्रिलोकेश
करते अभिषिक्त सम्राट् युधिष्ठिर को।
आदर्श शासन की व्यवस्था हुई सब।
दिव्यालोक से आलोकित साम्राज्य सभी,
सौंदर्य-ऐश्वर की गंगा-यमुना बहीं।
दिग्वधुएँ मोद में उन्मत्त-सी हो उठीं,
गौरव-गान गूँज रहा है दिगंत में--

(गान)

राष्ट्र के कर्णधार आदर्श,
ऋणी यह तेरा भारतवर्ष।
सत्य के रूप, त्याग की मूर्ति,
तुम्हीं प्रिय बलिदानों की स्फूर्ति।
तुम्हारी लीला जीवन-गान,
तुम्हारा स्नेह हमें वरदान।
अतुल आनंद, विभूति अनूप,
सगुण-निर्गुण-सम्मेलन-रूप।

(समाप्त)

निहोरा

[श्रीयुत शुकदेवप्रसाद तिवारी बी० ए०]

मत ललचाओ, विलग प्राण में कौन साध बाक़ी है ?
पी न सकूँगा बूँद लेश भी, दूर आज साकी है।
अतुल स्वर्ग-निधियों से भर मत मेरा घर मनमाना;
चाह रहा हूँ, देखूँ अपना लुटता हुआ ख़ज़ाना।
मत छिन जाए देव ! कभी मुझसे मेरी लाचारी;
हो पाया हूँ शहंशाह बनकर मैं आज भिखारी।

सच्ची शक्ति का संग्रह क्यों नहीं करते ?

आँतों को खराब होने से रोकती हैं

पाचन-शक्ति खूब बढ़ाती
भारी-से-भारी भोजन पचाती हैं

ज्ञान-तंतु की कमज़ोरी

साधारण कमज़ोरी

हर प्रकार की कमज़ोरी दूर करती हैं—

तंदुरुस्ती-ताक़त को बढ़ाती हैं।

—:०:—

प्रत्येक ऋतु में उपयोगी हैं।

क्या ?

झंडू की

सुवर्ण-मिश्रित

मकरध्वज गुटी

स्वरूप चंद्रोदय मकरध्व
भैषज्यरत्नावली ६०

पूर्ण चंद्रोदय तथा सुवर्ण और चंद्रोदय का अनुपान मिलाकर बनाई हुई सुनहरे खोलवाली

सुंदर मनोहर गोलियों से

सच्ची शक्ति का संग्रह करो

मकरध्वज का विवरण पत्र और
आयुर्वेदिक दवाइयों का **सूचीपत्र** आज ही मँगाइए।

क़ीमत एक तोला ५)

झंडू फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बंबई, नं० १४

लखनऊ के एजेंट—बंगाल-आयुर्वेद फ़ार्मेसी, ८, श्रीरामरोड, अमीनाबाद।
दिल्ली के एजेंट – बालबहार फ़ार्मेसी, चाँदनी चौक।
कानपुर के एजेंट—पी० डी० गुप्ता एंड को०, जनरलगंज।
प्रयाग के एजेंट—एल० एम० धोलकीया ब्रदर्स, ४६ जॉनस्टनगंज

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

प्रसूति-तंत्र अर्थात् ज़च्चा-बच्चा

[डॉ० रामदयाल कपूर एम्० बी०, बी० एस्०, प्रोफ़ेसर गुरुकुल कांगड़ी]

पाँचवाँ अध्याय

साधारण प्रसव-विधि तथा उसका उपचार



प्रसव उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसके द्वारा गर्भित पदार्थ या जिनको परिस्रव कहते हैं, अर्थात् कमल, गर्भोदक, भ्रूणावरण तथा भ्रूण ये सब गर्भाशय से पृथक् होकर बाहर निकलते हैं।

प्रसव आरंभ होने से पूर्व निम्न-लिखित लक्षण प्रतीत होते हैं—

प्रसव से दो या तीन सप्ताह पूर्व गर्भवती अपने को पहले से कुछ हलका अनुभव करने लगती है। इस समय गर्भाशय की ऊँचाई भी पहले से कम हो जाती है, और इस कारण श्वास लेने में पहले की तरह कठिनता नहीं होती, परंतु चलने-फिरने में अधिक कष्ट होता है, और मूत्राशय पर भार पड़ने से बार-बार मूत्र आता है। इस हलकेपन१ के साथ ही पहलौठी स्त्री में भ्रूण का सिर भी वस्ति के प्रवेश-द्वार में स्थिर हो जाता है। प्रजाता स्त्रियों में भ्रूण का सिर प्रसव के प्रारंभ होने पर ही स्थिर होता है, पहले नहीं। प्रसव से कुछ दिन पहले जननेंद्रिय से स्राव अधिक होने लगता है।

इन दिनों में ही कोई चिकित्सक अथवा धाय नियुक्त कर लेनी चाहिए।

जिस कमरे में प्रसव कराना हो, वह निश्चित कर लेना चाहिए। सूतिकागार स्वच्छ होना चाहिए, जिसमें शुद्ध वायु तथा प्रकाश भले प्रकार आ सकें। तसवीरें तथा अन्य फ़ालतू वस्तुओं को वहाँ से निकाल दें। प्रसव की आनुमानिक तिथि से एक मास पूर्व ही निम्न-लिखित सामान तैयार कर रक्खे—

(१) दो मोमजामे (१ गज़ चौड़े १½ गज़ लंबे)।
(२) दो साफ़ चादरें।
(३) दो बंडल विलायती रुई जो पानी चूस सके।
(४) चार औंस लाईसोल।
(५) छोटी शीशी में एरंड-तेल।
(६) छोटी बोतल में मीठा तेल या ज़ैतून का तेल।
(७) चार-पाँच चिलमची।
(८) मल-पात्र, गरम पानी की बोतल, दूध पिलाने का प्याला।
(९) पेट पर बाँधने की पट्टी अथवा तौलिए।
(१०) एक बंडल कृमिहीन गाज़।
(११) डस्टिंग पाउडर।
(१२) बोरिक एसिड।
(१३) फ़लालेन की पट्टी, बालक के पेट के लिये।
(१४) नाल के बाँधने का धागा तथा क़ैंची।
(१५) एक औंस एक्सट्रेक्ट अरगट लिक्विड।
(१६) सेफ़्टी पिन।
(१७) सुलाने की औषधि।

प्रसव की तीन अवस्थाएँ

१. प्रथम अवस्था१—यह प्रसव-वेदना आरंभ होने से लेकर गर्भाशय की ग्रीवा२ के पूरे चौड़े हो

---

१. Lightening

१. First stage or stage of dilatation
२. Cervix

जाने तक होती है, और प्रायः इस अवस्था के अंत में ही गर्भोदक की थैली फटती है, परंतु कभी-कभी असाधारणतः इससे पहले ही फट जाती है, जिससे प्रसव कष्टप्रद हो जाता है।

२. द्वितीय अवस्था१—यह अवस्था गर्भाशय की ग्रीवा के पूरा चौड़ा होने से लेकर बच्चे के उत्पन्न हो जाने तक होती है।

३. तृतीय अवस्था२—यह अवस्था बच्चे के पैदा हो जाने से लेकर अपरा के निकलने तक होती है।

अब हम वाम सम्मुख पश्चादस्थि आसन३ में प्रसव की विधि का वर्णन करते हैं, क्योंकि ⅔ के लगभग प्रसूता स्त्रियों में यही आसन पाया जाता है।

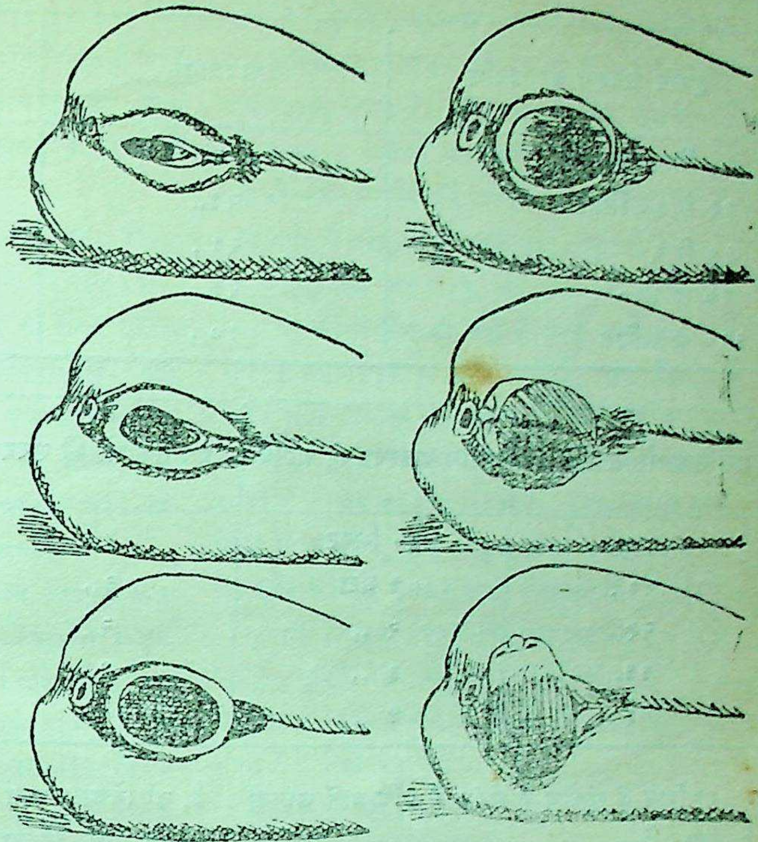
प्रथम अवस्था—जब प्रसव आरंभ होता है, तब गर्भाशय थोड़ी-थोड़ी देर के बाद संकुचित होने लगता है, और इस संकोच से बड़ी पीड़ा उत्पन्न होती है। पहले तो वेदना थोड़ी होती है, परंतु धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। यह पीड़ा पीठ की ओर से उठकर सामने पेड़ू तथा जाँघों की ओर जाती है। वेदना की वृद्धि के साथ गर्भाशय की ग्रीवा धीरे-धीरे फैलने लगती है, और इसके फैलने के कारण गर्भोदक की थैली इससे पृथक् हो जाती है, और दोनो के मध्य में से कुछ रक्त तथा श्लेष्मा का स्राव४ होने लगता है। अंत में वेदना बहुत बढ़ जाती है, और जब गर्भाशय की ग्रीवा पूरी फैल चुकती है, उस समय गर्भोदक की थैली फट जाती है, और जो तरल बालक के सिर के आगे था, वह निकल जाता है। कभी यह थैली (भ्रूणावरण) कठोर होने के कारण स्वयमेव नहीं फटती, और चिकित्सक को उसका छेदन करना पड़ता है।

द्वितीय अवस्था—प्रथम अवस्था समाप्त होने पर द्वितीय अवस्था आरंभ हो जाती है। इस समय पीड़ा और भी अधिक होने लगती है, और गर्भाशय के अतिरिक्त उदर की मांसपेशियाँ भी सिकुड़ने लगती हैं। वेदना के समय प्रसूतिका अपना श्वास रोक लेती है, और अपने पैरों को चारपाई के सिरे पर लगाकर अथवा हाथों से किसी कपड़े को जो उसके सिर की ओर बँधा हुआ हो, पकड़कर प्रवाहण करती अर्थात् ज़ोर लगाती है। वेदना तथा श्रम होने के कारण शरीर पर पसीना भी आने लगता है। गर्भाशय तथा उदर के संकोच का यह प्रभाव होता है कि बालक का सिर आगे को धकेला जाता है, और जब वह भग के समीप पहुँचता है, तो भग खुलने लगता है, और सीवन-प्रदेश१ बहुत उभर जाता है। प्रत्येक प्रसव-वेदना बालक के सिर को पहले से अधिक नीचा कर देती है, और जब वह और नीचे को आता है, तो भग तथा इसके आस-पास की चमड़ी बड़ी कस जाती है, और मल-द्वार "D" चिह्न की तरह दिखाई देता है। ज्यों-ज्यों सिर आगे को बढ़ता है, सिर की पश्चादस्थि भग-संधि पर अधिक दबाव डालती है, और इसके पश्चात् एक तीव्र वेदना के साथ सिर का सबसे बड़ा व्यास बाहर निकल आता है। अर्थात् पहले ब्रह्मरंध्र२, फिर ललाट३, फिर मुख४, इस क्रम से सिर बाहर निकलता है। तत्पश्चात् बालक का मुख माता की दाहनी जाँघ की ओर मुड़ जाता है, अर्थात् यदि वह इस समय अपनी वाम करवट पर हो, तो बालक का मुख ऊपर की ओर हो जायगा६। (चित्र ४२-४०) यह पूर्वोक्त गति इसलिये होती है कि बालक के कंधे घूमकर बस्ति के निर्गम द्वार के अग्र पश्चिम व्यास में आ जाते हैं। अब सामने की ओर का कंधा भग-संधि पर दबाव डालता और पिछला कंधा शीघ्रता से बाहर निकल आता है। बालक का धड़ तथा शाखाएँ भी इसी समय बाहर निकलती हैं, और शेष का गर्भोदक भी निकल जाता है।

---

१. Second stage or stage of expulsion २. Third stage or stage of delivery ३. (L. O. A.) ४. "Show"

१. Perineum २. Bregma ३. Brow ४. Face ५. Extension ६. External rotation of the head



चित्र ५२-५७—सिर का निष्क्रमण

तृतीय अवस्था—अब प्रसूतिका को कुछ शांति प्रतीत होती है, परंतु थोड़ी देर के पश्चात् ही पीड़ा फिर आरंभ हो जाती और गर्भाशय सिकुड़ने लगता है; और अपरा गर्भाशय की दीवार से अलग होने लगती है। प्रायः आध घंटे के पश्चात् यह गर्भाशय से निकलकर योनि के भीतर प्रवेश करती है या बिलकुल ही बाहर निकल आती है। अपरा दो प्रकार से भूमिष्ठ होती है—या तो उलटे हुए छाते की तरह अर्थात् पहले उसका भ्रूण की ओर का पृष्ठ निकलता है, और झिल्ली पीछे आती है१ अथवा अपरा का एक किनारा पहले बाहर आता है, और शेष पीछे से निकलता है२।

प्रथम अवस्था को सामान्यतः १२ से १८ घंटे लगते हैं, और द्वितीय अवस्था को पहलौठी स्त्री में २-३ घंटे तथा प्रजाता स्त्री में १½-२ घंटे लगते हैं। पहलौठी में संपूर्ण प्रसव को लगभग १८ घंटे और प्रजाता में १२ घंटे लगते हैं—

संपूर्ण प्रसव की अवधि	अप्रजाता	प्रजाता
६ घंटे से न्यून	१५%	४२%
६ से १२ घंटे तक	४०,,	४०,,
१२ से १८ घंटे तक	२६,,	११,,
१८ से २४ घंटे तक	६,,	५,,
२४ घंटे से अधिक	७,,	२,,

१. Schultze's method २. Duncan's method

टिप्पणी—जब कि तृतीय अवस्था प्राकृतिक रूप से हुई हो।

द्वितीय अवस्था की अवधि	अप्रजाता	प्रजाता
१५ मिनट से न्यून	२२%	६९%
१५ से ३० मिनट तक	२१,,	१७,,
३० से ६० ,, ,,	२६,,	९,,
६० से १२० ,, ,,	२१,,	४,,
१२० से अधिक	१०,,	१,,

प्रसूतिकाओं की संख्या	तृतीय अवस्था की अवधि	प्रसूतिकाओं की संख्या	तृतीय अवस्था की अवधि
२४%	३० मिनट	५%	५ घंटे
२०,,	१ घंटा	३,,	६ ,,
२५,,	२ ,,	२,,	८ ,,
११,,	३ ,,	१,,	१२ ,,
९,,	४ ,,	योग १००	

गर्भाशय के संकोच के संबंध में पाँच बातें जाननी आवश्यक हैं—

(१) जब गर्भाशय सिकुड़कर फिर ढीला होता है, तो इसके मांस-तंतुओं में कुछ संकोच सदा के लिये रह जाता है, अर्थात् संकोच के पश्चात् मांस-तंतु ढीले होने पर पहले-जितने ही लंबे नहीं होते, परंतु सदा के लिये कुछ छोटे हो जाते हैं१ ।

(२) गर्भाशय के गात्र का निचला भाग, जो ग्रीवा के अंतर्मुख से दो इंच ऊपर तक होता है, गर्भावस्था के पिछले दिनों में पतला हो जाता है। इससे ऊपर का भाग मोटा रहता है२। ज्यों-ज्यों गर्भाशय सिकुड़ता है, निचला भाग अधिक लंबा और पतला होता जाता है।

(३) जब गर्भाशय का ऊपर का भाग सिकुड़ता है, तो निचला भाग तथा ग्रीवा फैलते हैं, और जब निचला भाग सिकुड़ता है, तो ऊपर का भाग ढीला होता है१ ।

(४) जब गर्भाशय के सिकुड़ने से ग्रीवा बहुत फैल चुकी हो, तो अंत में गर्भाशय का निचला भाग तथा ग्रीवा एक हो जाते हैं, और इनमें भेद नहीं रहता२ ।

(५) गर्भाशय के ऊपर के मोटे भाग का निचला सिरा एक किनारे के रूप में होता है३, और विषम प्रसव में यह पेड़ू पर हाथ से अनुभव हो सकता है तथा देखा भी जा सकता है।

वाम सम्मुख पश्चादस्थि आसन (वा० स० प०४) के प्रसव में बालक के सिर की गतियाँ और निष्क्रमण-विधि (चित्र ४१)—

१. Retraction of the uterus २. Upper and Lower Uterine segments

१. Polarity of uterus २. Taking-up of cervix ३. Ret raction or Bandl's Ring ४. L. O. A.

प्रसव के आरंभ में बालक का सिर इस तरह पड़ा होता है कि पश्चादस्थि तो वाम अनामिका के अंदर के उभार के समीप होती है। मस्तक दक्षिण अनामिका-त्रिक संधि के समीप और बृहत्स्यूति वस्ति के दक्षिण तिर्यक् व्यास में होता है।

निम्न-लिखित वर्णन में यह स्मरण रखना चाहिए कि सब गतियों के साथ बालक आगे बढ़ रहा है१—

(१) पहली गति अर्थात् सिर का आगे वक्ष पर अधिक झुक जाना२—इससे प्रजापतिरंध्र और नीचे को हो जाता है, और हनु वक्षोऽस्थि के साथ लग जाती है। पश्चादस्थि बालक का सबसे अग्रगामी भाग३ बन जाता है। जब बालक आगे को बढ़ता है, तो दूसरी गति होती है अर्थात्

(२) पश्चादस्थि का सामने मध्य रेखा की ओर घूमना४—यह ४५° में से होता है। पश्चादस्थि के इस प्रकार घूमने से बृहत्स्यूति, जो पहले वस्ति के दक्षिण तिर्यक् व्यास में थी, अब अग्रपश्चिम व्यास में आ जाती है। जिस समय पश्चादस्थि गुदोत्थापिका पेशी५ से टकराती है, तभी यह गति होती है। जब बालक और आगे बढ़ता है, तो पश्चादस्थि भग-संधि के नीचे स्थिर हो जाती है, और अब तीसरी गति आरंभ होती है अर्थात्

(३) सिर का पीछे मेरुदंड की ओर मुड़ना६—इस गति के समय पश्चादस्थि भग-संधि के नीचे ही स्थिर रहती है, और ब्रह्मरंध्र, मस्तक तथा मुख इस क्रम से बाहर निकलते हैं। यह गति उस समय होती है, जब सिर भग में से निकल रहा हो। इसके पश्चात् चौथी गति होती है अर्थात्

(४) सिर का अपनी पूर्व अवस्था में आ जाना७—दूसरी गति के समय अर्थात् जब सिर अंदर की ओर घूमता है, उस समय सिर के अतिरिक्त बालक का शेष धड़ नहीं घूमता, इसलिये अब जब कि सिर बाहर निकलकर स्वतंत्र हो जाता है, तो ग्रीवा का बल निकल जाता है, और सिर अपनी पूर्वावस्था में आ जाता है, अर्थात् पश्चादस्थि फिर कुछ बाईं ओर को हो जाती है, जैसे कि प्रसव आरंभ होने से पूर्व थी। इस गति के पश्चात् पाँचवीं गति होती है अर्थात्

(५) सिर का बाहर की ओर घूमना१—यह गति वास्तव में सिर की नहीं है, परंतु जब भीतर कंधे घूमकर अग्रपश्चिम व्यास में आते हैं, तो सिर भी उनके साथ स्वयमेव घूम जाता है, और पश्चादस्थि सामने से हटकर माता की वाम जाँघ की ओर हो जाती है। अब सामने का कंधा भग-संधि के नीचे स्थिर हो जाता है, और पिछला कंधा तथा बालक का धड़ और शाखाएँ घूमकर बाहर निकलते हैं।

दक्षिण सम्मुख पश्चादस्थि आसन२ (द० स० प०)—इसमें भी उपर्युक्त गतियाँ ही होती हैं। भेद केवल इतना है कि वे इससे विपरीत दिशा में होती हैं (चित्र ४२)।

साधारण अर्थात् स्वस्थ प्रसव का उपचार

साधारण अर्थात् स्वस्थ प्रसव—लगभग ६०% प्रसूतिकाओं में बालक शिरोदय में पड़ा होता है, और प्रसव २४ घंटे में, बिना किसी प्रकार की सहायता के और बिना किसी उपद्रव के, स्वयमेव समाप्त हो जाता है। स्फिक् के उदय तथा मुख के उदय को भी स्वस्थ प्रसव कह सकते हैं, क्योंकि वह भी प्राय: २४ घंटे में समाप्त हो जाते हैं।

प्रसव कराते समय हमें इस विषय में विशेष ध्यान रखना चाहिए कि हमारा सब कार्य रोगोत्पादक कीटाणुओं से रहित हो, और इस कृमि-हीनता३ की ओर जितना भी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाय, उतना ही थोड़ा है, क्योंकि इसकी उपेक्षा से ही प्रसूत के सब भयानक रोग उत्पन्न होते हैं। सामान्यतः योनि-स्राव अम्ल होता है, क्योंकि एक विशेष प्रकार

१. Descent २. Flexion of the Head ३. Leading part ४. Internal Rotation of the Head ५. Levator Ani ६. Extension of the head ७. Restitution.

१. External Rotation of the Head २. (R. O. A.) ३. Asepsis

के कीटाणु१ योनि में रहते हैं, जो तक्राम्ल२ बनाते हैं। यह अम्ल सब प्रकार के अन्य कीटाणुओं के लिये घातक होता है, और यदि किसी तरह योनि का अम्लत्व कम हो जाय (जैसे प्रसव के पश्चात्, क्योंकि इस समय गर्भाशय का चारीय स्राव३ नीचे को बहता है), तो इन दिनों में योनि में कई एक कीटाणु प्रवेश करके जीवित रह सकते हैं। परंतु जब गर्भाशय से स्राव बंद हो जाता है, तो योनि का अम्ल फिर ठीक हो जाता है, और कीटाणु मर जाते हैं। प्रसव से पूर्व डूश करने की इसीलिये आवश्यकता नहीं होती, और कई बार डूश से अम्लत्व कम हो जाने से तथा संभवतः डूश के द्वारा रोगोत्पादक कीटाणुओं के योनि में चले जाने से हानि भी होने की आशंका है। प्रसव के पश्चात् गर्भोदक सब कीटाणुओं को योनि से धोकर निकाल देता है।

हम प्रसव के समय कृमि-हीनता कैसे रख सकते हैं ?

(१) चिकित्सक के हाथों और यंत्रों की कृमि-हीनता।

(२) प्रसूतिका की जननेंद्रिय की कृमि-हीनता।

(३) योनि-परीक्षा यथासंभव न करना।

यदि हो सके, तो पानी में उबाले हुए रबड़ के दस्ताने हाथों में पहनकर प्रसव कराना चाहिए, और इन्हें पहनने से पूर्व अपने हाथों को भी अच्छे प्रकार कृमि-हीन कर लेना चाहिए। उसी विधि से प्रसूतिका की जननेंद्रिय को भी स्वच्छ, गरम जल तथा साबुन से स्वच्छ कर लाइसोल के घोल (१० छटाक पानी में १ चमचा) से धोना चाहिए। इस घोल में रुई भिगो-भिगोकर सामने से पीछे की ओर भग को पोछना चाहिए, और प्रत्येक रुई के फाए को केवल एक बार ही आगे से पीछे की ओर ले जाकर फेंक देना चाहिए, और दूसरी बार नया फाया लेना चाहिए। पीछे से आगे ले जाने में यह भय होता है कि मल-द्वार से आंत्र बेसिलाई (B. coli) योनि में न चले जायँ।

जननेंद्रिय को स्वच्छ करने से पूर्व पहले प्रसूतिका को गरम जल से स्नान कराया जाता है, और मलाशय और मूत्राशय को ख़ाली कराया जाता है। यदि आवश्यकता हो, तो मूत्रशलाका१ द्वारा मूत्राशय को ख़ाली कराया जाता है, और मलाशय को अवश्य ही प्रत्येक प्रसूतिका में वस्ति२ के द्वारा ख़ाली कर लेना चाहिए, ताकि वस्तिगुहा में और स्थान निकल आवे।

ततः पयोमधुरकषायासिद्धेन तैलेनानुवासयेत् अनुलोमे हि वायौ सुखं प्रसूयते निरुपद्रवा च भवति (सुश्रुत)

अर्थ—मधुर और कषाय द्रव्यों से सिद्ध किए हुए तेल से अनुवासन (वस्ति) करावे। इससे वायु का अनुलोमन तथा सुख-पूर्वक प्रसव होता है, और कोई उपद्रव नहीं होता।

यदि प्रसव की प्रथम अवस्था रात्रि के पिछले भाग में प्रारंभ हो जाय, तो प्रसूतिका को सुलाने की चेष्टा करनी चाहिए, और सुलाने की ओषधि यदि हो, तो इस समय पिला देनी चाहिए। यदि प्रसव दिन के समय आरंभ हो या गर्भिणी का पहले निरीक्षण न किया हो, तो अब उसकी उदर-परीक्षा करनी चाहिए, ताकि पता लग जाय कि प्रसव आरंभ हो गया है अथवा नहीं ? और, बालक का उदय ठीक है या नहीं ? उदर-परीक्षा से यह भी देखना चाहिए कि बालक का सिर वस्तिगुहा में स्थिर हो गया है या नहीं ! सिर आगे को ठीक झुका हुआ है या नहीं ! सिर वस्ति में कितना नीचे चला गया है ? बालक के हृदय की स्पंदन भी सुननी चाहिए, और प्रति मिनट उसकी गणना निश्चित करनी चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि मूत्राशय भरा हुआ तो नहीं ? यदि वेदना के समय गर्भाशय सिकुड़ रहा हो, तो वास्तविक वेदना

१. Doderlein's Bacilli २. Lactic acid ३. Lochia

१. Catheter २. Enema ३. True pains

समझनी चाहिए। उदर-परीक्षा के पश्चात् यदि आवश्यकता हो, तो योनि-परीक्षा करनी चाहिए। अशिक्षित दाई को योनि-परीक्षा की आज्ञा कदापि नहीं देनी चाहिए। योनि-परीक्षा से देखना चाहिए कि गर्भाशय की ग्रीवा कितनी खुली है तथा प्रजापतिरंध्र की स्थिति से उदय तथा आसन का भी पता लग सकता है। यह भी देखना चाहिए कि गर्भोदक की थैली अभी फटी है या नहीं? और, त्रिकास्थि के अंदर का उभार स्पर्श किया जा सकता है या नहीं? संकुचित वस्ति में यह स्पर्श हो सकता है।

योनि-परीक्षा से यह भी पता लगाना चाहिए कि नाल का स्थानभ्रंश१ तो नहीं हुआ? पहलौठी स्त्री में गर्भाशय की ग्रीवा का अंतर्मुख पहले खुलता है, और अंत में बहिर्मुख खुलता है, जो कि उँगली को चक्र-सा प्रतीत होता है। प्रजाता में गर्भावस्था के पिछले महीनों में गर्भाशय की ग्रीवा में कई बार एक उँगली प्रविष्ट हो सकती है, और प्रसव के आरंभ में भी यह नलिकाकार होती है। अप्रजाता में यदि गर्भाशय की ग्रीवा में एक उँगली प्रविष्ट हो सके, और इससे गर्भोदक की थैली को स्पर्श किया जा सके (यह स्मरण रक्खें कि भ्रूण-कोष-वृद्धि२ उपस्थित न हो), तो समझ लेना चाहिए कि प्रसव आरंभ हो गया है। प्रजाता में यदि ऐसी अवस्था हो, तो संभवतः प्रसव आरंभ हो गया है, परंतु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

प्रसव के आरंभ होने का निर्णय

प्रसव आरंभ होने के निम्न-लिखित लक्षण हैं—

(१) गर्भावस्था में गर्भाशय के संकोचन वेदना-युक्त नहीं होते, परंतु प्रसव के समय यह वेदना-युक्त हो जाते हैं, अर्थात् वास्तविक वेदना३ आरंभ होने से ही समझा जाता है कि प्रसव प्रारंभ हो गया। वास्तविक वेदना उसे कहते हैं, जिसकी उपस्थिति में गर्भाशय सिकुड़ रहा हो, जो वेदना कटिप्रदेश से आरंभ होकर पेड़ू और जाँघों की ओर आए, और जिस वेदना के साथ गर्भाशय की ग्रीवा योनि-परीक्षा के द्वारा खुलती हुई अनुभव हो तथा गर्भोदक की थैली भी नीचे को उभरती हुई प्रतीत हो।

(२) भग में से थोड़ी-सी रक्त-मिश्रित श्लेष्मा निकलती हुई दिखाई देगी१, जिसका वर्णन पहले कर आए हैं, परंतु इसके अभाव से प्रसव की अनुपस्थिति नहीं समझनी चाहिए।

(३) प्रसव-वेदनाओं के अंतर में बालक के सिर को स्थिर हुआ अनुभव करना। यह उदर-परीक्षा की तृतीय स्पर्शन-विधि२ से मालूम हो सकता है, अर्थात् इस प्रक्रिया से प्रसव-वेदनाओं के अंतर में बच्चे के सिर को हिलाया नहीं जा सकता अथवा बहुत ही थोड़ा हिलाया जा सकता है। यह लक्षण केवल प्रजाता स्त्रियों में ही लाभदायक होता है। क्योंकि पहलौठी स्त्रियों में सिर प्रसव आरंभ होने से तीन या इससे भी अधिक सप्ताह पूर्व ही स्थिर हो जाता है। यदि सिर को सुगमता से हिलाया जा सके, और वेदनाएँ अधिक न हों, तो समझ लेना चाहिए कि प्रसव आरंभ नहीं हुआ। विषम प्रसव३ में प्रसव आरंभ हो जाने पर भी सिर स्थिर नहीं होता।

(४) गर्भाशय की ग्रीवा के अंतर्मुख का चौड़ा होना। यह योनि-परीक्षा द्वारा ही मालूम हो सकता है, परंतु योनि-परीक्षा तभी करनी चाहिए, जब कि उदर-परीक्षा से प्रसव के आरंभ होने का निर्णय न हो सके। योनि-परीक्षा करने से उँगली पर रक्त-मिश्रित श्लेष्मा भी लगी हुई दिखलाई देगी४। यदि गर्भाशय के मुख के किनारे अनुभव न हो सकें, तो ग्रीवा को पूर्ण प्रसारित५ कहते हैं। ग्रीवा के पूर्ण प्रसारित होने पर भी यदि गर्भोदक की थैली न फटे, तो उसका नख या अन्य किसी तीक्ष्ण यंत्र से छेदन करना चाहिए।

अवास्तविक वेदना किसे कहते हैं?—यह एक

१. Prolapse of the cord २. Hydramnios ३. True pains

१. 'Show' २. Pawlik's grip ३. Abnormal labour ४. 'Show' ५. Full dilatation

प्रकार की वायु-जन्य उदर-शूल होती है । इसकी उपस्थिति में गर्भाशय सिकुड़ता नहीं, ग्रीवा भी नहीं खुलती और न गर्भोदक की थैली नीचे को उभरती है, और यह वेदना कटि से आरंभ भी नहीं होती, परंतु केवल आगे की ओर ही होती है, इसलिये इसे अवास्तविक वेदना१ कहते हैं ।

प्रसव की प्रत्येक अवस्था का उपचार

प्रथम अवस्था—इस अवस्था में यह आवश्यक नहीं कि प्रसूतिका लेटी रहे, परंतु उसे अपने इच्छानुसार चलना-फिरना या बैठना चाहिए। बालक के विषम आसनों तथा संकुचित वस्ति और अन्य विकारों की उपस्थिति में माता का प्रसव की प्रथम अवस्था में भी लेटे रहना आवश्यक है । उसको इस अवस्था में प्रवाहण नहीं करना चाहिए । प्रसूतिका को गुनगुने जल से स्नान करना चाहिए । प्रसव के आरंभ में उसे विरेचन देना चाहिए । रेंड़ी का तैल एक औंस या Pulv. Glycyrrh·Co एक ड्राम या Ext. Cascara-Liq एक ड्राम, और जब प्रसव तीव्रता से हो रहा हो, तो वस्ति२ देनी चाहिए । प्रसूतिका को बार-बार मूत्र त्यागने के लिये जाना चाहिए, और यदि उसमें शक्ति न हो, तो मूत्रशलाका-यंत्र३ द्वारा मूत्र निकाल लेना चाहिए । यह स्मरण रहना चाहिए कि साधारण स्वस्थ प्रसव में भरा हुआ मूत्राशय तथा भरा हुआ मलाशय ही केवल-मात्र बाधा पहुँचाते हैं । यदि मलाशय मल से भरा हो, तो प्रसव के समय जब सिर बाहर निकलता है, उस समय कुछ मल-त्याग भी हो जाता है, और उसके द्वारा भग तथा योनि में रोगोत्पादक आंत्र कीटाणुओं४ के अंदर प्रविष्ट हो जाने की आशंका होती है, और प्रविष्ट होकर ये रोगों का कारण बनते हैं । प्रसव की पहली अवस्था में ही प्रसव कराने के लिये जिन उपकरणों की आवश्यकता होती है, वे सब तैयार किए जाते हैं । प्रक्षालन५ को तैयार रखना चाहिए और पानी उबालने को रख देना चाहिए, ता[कि] यदि प्रसव के पश्चात् रक्त-स्राव हो, तो गरम ज[ल से] प्रक्षालन जल्दी किया जा सके । सूचिवेधन१ का य[न्त्र] करण भी तैयार रखना चाहिए, रबड़ के दस्ताने२, बंधन३, क्लैंप फ़ॉर्सेप्स४, नखों को स्वच्छ क[रने] का बुरुश५, क़ैंची६, स्वच्छ कपड़ा७, लाइसो[ल] को घोल तथा उसमें डुबोए हुए रुई के फाए इत्या[दि] सब तैयार रखने चाहिए । माता की नाड़ी-परी[क्षा] की जाती तथा ताप देखा जाता है, और उदर-परी[क्षा] तथा भ्रूण-हृदय-स्पंदन की प्रति मिनट संख्या भी [देखी] जाती है । जब वेदनाएँ बड़ी तीव्रता से होने ल[गें] अर्थात् प्रथम अवस्था समाप्त होने को हो या गर्भोद[क] की थैली फट जाय अर्थात् प्रथम अवस्था समाप्त [हो] जाय, तो उस समय प्रसूतिका को एक सम-पृष्ठ [वाले] कठोर बिस्तरे (जैसे तख़्तपोश) पर लिटा दि[या] जाता है, क्योंकि अब द्वितीय अवस्था आरंभ [होती] है ।

नोट—प्रसव की प्रथम अवस्था में अथवा प्रसव [में] बाधा हो, तो पिटुईट्रीन (Pituitrin) का सूचि[वेधन] कदापि न करें । इससे गर्भाशय दारी तथा गर्भा[शय] की ग्रीवा में घाव हो जाने का डर होता है ।

द्वितीय अवस्था—गर्भोदक की थैली फटने [पर] माता की नाड़ी की गति मालूम की जाती है । [यदि] थैली के फटने से पूर्व बालक का सिर स्थिर८ हो, तो यो[नि-] परीक्षा की आवश्यकता नहीं । परंतु यदि सिर स्थि[र] न हो, तो इस समय योनि-परीक्षा करनी आवश्[यक] है, ताकि पता लग जाय कि नालभ्रंश९ तो [नहीं] हो गया ? और, बालक के उदय तथा आसन ठी[क हैं] या नहीं ? योनि-परीक्षा में कृमि-हीनता१० का [पूरा] ध्यान रखना चाहिए । अधिकतर प्रसव में इस[लिये] ही योनि-परीक्षा की आवश्यकता होती है, [क्यों-]

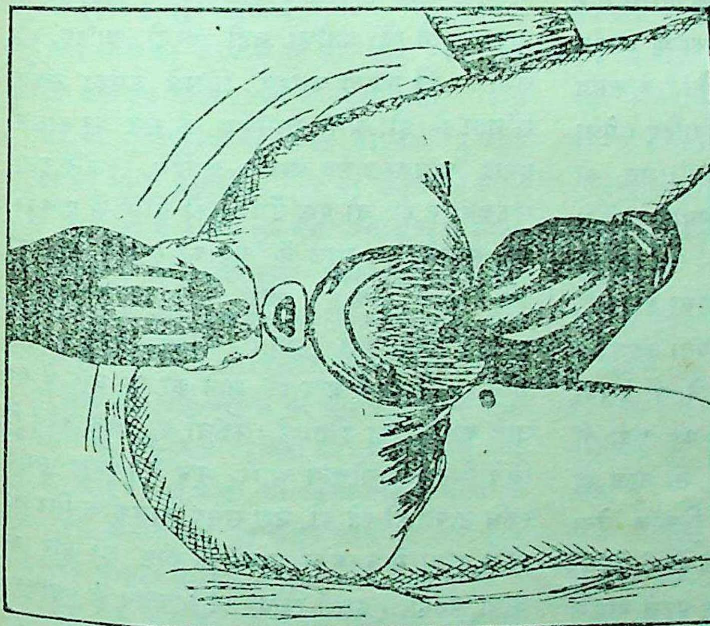
१. False pains २. Enema ३. Female catheter ४. B. coli ५. Douche

१. Hypodermic Syringe २. Rubber gl[oves] ३. Ligatures ४. Clamp Forceps ५. N[ail] Brush ६. Scissors ७. Clean linen ८. Fi[xed] ९. Prolapse १०. Asepsis

उदर-परीक्षा की चतुर्थ स्पर्शन-विधि१ से हम पता लगा सकते हैं कि सिर वस्ति में कितना नीचे तक चला गया है। यदि वस्ति में सिर इतना नीचे चला गया है कि हम उदर-परीक्षा से उसे अनुभव नहीं कर सकते, तो पुच्छास्थि२ तथा मल-द्वार३ के मध्य में उँगलियों को दबाने से वह अनुभव हो सकेगा। प्रसव की द्वितीय अवस्था में प्रसूतिका को वेदना के समय प्रवाहण करने के लिये उत्सुक किया जाता है। माता के सिर की ओर एक कपड़ा या तौलिया बाँध दिया जाता है, जिसे पकड़कर वह श्वास रोककर ज़ोर लगाती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रवाहण केवल वेदना के समय ही करना चाहिए, अन्यथा नहीं। माता के प्रवाहण के अतिरिक्त चिकित्सक गर्भाशय के मुंह पर हाथ से दबाए रखने से भी प्रसव में सहायता दे सकता है, परंतु कभी-कभी ऐसा करने से अत्यंत वेदना होती है; कई बार गर्भाशय पर दबाव का रखना प्रसूतिका को फ़ॉर्सेप्स१ लगाने से बचा देता है।

यदि गर्भाशय का मुख पूर्णतया चौड़ा हो चुका हो, और गर्भोदक की थैली न फटी हो, तो उसका नख से या स्वच्छ२ तार३ से अथवा किसी कृमि-हीन तीक्ष्ण चीज़ से भेदन४ कर देना चाहिए। यदि गर्भोदक की थैली भग में दिखाई दे रही हो, और बालक का सिर अभी वस्ति में हो, तो थैली का छेदन कर देना चाहिए। यदि बालक गर्भोदक की थैली के भीतर ही रहता हुआ (उसके बिना फटे) उत्पन्न५ हो, तो तुरंत ही उस थैली को फाड़कर बालक को निकाल लेना चाहिए, अन्यथा उसकी मृत्यु हो जायगी। जब तक द्वितीय अवस्था समाप्त न हो, बालक के हृदय-स्पंदन की गति १५-१५ मिनट के पश्चात् मालूम करते रहना चाहिए।

जब तक बालक का सिर भग में दिखाई न दे, तब तक प्रसूतिका को पीठ के बल लेटे रहना चाहिए, परंतु जब वह भग में दीखने लगे, तो उसे बाईं करवट पर कर दिया जाता है, और उसकी दाहनी टाँग को एक परिचारिका६ उठाए रखती है; परंतु बहुत ऊँचा नहीं उठाना चाहिए, क्योंकि इससे सीवन-प्रदेश७ बहुत कस जायगा। अब प्रसूतिका की पीठ की ओर खड़े होकर अपना वाम हाथ प्रसूतिका की ऊपर की (दक्षिण) टाँग के ऊपर से भग की ओर टाँग के नीचे तक ले जाकर बालक के सिर पर रक्खो, और सिर को भग-संधि की ओर दबाए रक्खो (चित्र ५८) और यह भी ध्यान रक्खो कि सिर बालक की छाती पर पूर्णतया झुका रहे, जब



चित्र ५८—सीवन-प्रदेश की रक्षा

१. Pelvic grip २. Coccyx ३. Anus

१. Forceps २. Aseptic ३. Stilette ४. Rupture ५. Birth in caul ६. Nurse ७. Perineum

तक कि पश्चादस्थि भग-संधि से नीचे नहीं निकल आती। जब पश्चादस्थि भग-संधि से नीचे निकल आवे, तो उस समय दक्षिण हाथ या उसकी मुट्ठी बाँधकर[1] उसे पुच्छास्थि तथा मल-द्वार के मध्य में दबाओ (तब संभवतः अंतिम वेदना से एक पहली वेदना का अंत हो रहा होता है)। ऐसा करने से बालक का सिर सीधा होने लगेगा[2], और सुगमता से भग में से निकल आवेगा। इस प्रक्रिया के समय यदि वेदना होने लगे, तो प्रसूतिका को पहले की भाँति प्रवाहण नहीं करना चाहिए, परंतु लंबे-लंबे श्वास लेने चाहिए अथवा लंबा शब्द (चीख़) निकालना चाहिए। यदि सिर अभी पूरा नीचे न आ लिया हो, और दक्षिण हाथ से उपर्युक्त विधि द्वारा दबाया जाय, तो सिर ऊपर को गर्भाशय में धकेला जायगा। इस अवस्था में आगामी वेदना की प्रतीक्षा करनी चाहिए, और फिर इस प्रक्रिया को दुहराना चाहिए। यदि सिर के पूरा नीचे आ जाने पर भी उसके उत्पन्न होने में भग की चमड़ी की बाधा होने के कारण उपर्युक्त विधि से वह उत्पन्न न हो सके, तो वेदना के समय प्रसूतिका को धीरे से प्रवाहण करना चाहिए। ऐसा करने से प्रायः सिर उत्पन्न हो जायगा। भग को निरंतर लाईसोल के गरम घोल से भिगोते रहने से भी चमड़ी के चौड़ा होने में सहायता मिलती है, क्योंकि लाईसोल के अंदर जो साबुन मिला होता है, वह सिर के भग में से फिसलने में सहायता देता है।

जब बालक का सिर बाहर निकल आवे, तो देखना चाहिए कि उसकी ग्रीवा के ऊपर नाल का फंदा तो नहीं लिपटा है, और यदि लिपटा हो, तो नाल को थोड़ा खींचकर सिर के ऊपर से फंदा निकाल देना चाहिए। नाल के फंदे को देखने के लिये दो उँगलियों को भग में प्रविष्ट करना चाहिए, परंतु पहले बालक के सिर को माता की पुच्छास्थि की ओर दबा देना चाहिए। अब यदि नाल का फंदा ग्रीवा पर लिपटा होगा, तो स्पष्ट दिखाई देगा। ऐसा करने से भग को छूने की आवश्यकता नहीं होती। यदि नाल के फंदे को सिर के ऊपर से खींचकर न निकाला जा सके, तो नाल को क़ैंची से काट देना चाहिए, और बालक को तुरंत उत्पन्न करा देना चाहिए, परंतु ऐसा बहुत ही कम देखने में आता है। बालक के उत्पन्न होते हुए नाल इतना दबा होता है कि उसके कटे हुए सिरे से रक्त-स्राव नहीं होता।

भग में से बालक का सिर निकलने के पश्चात् किसी स्वच्छ कपड़े से या गीली रुई (बोरिक लोशन में) से बालक की आँखों को पोंछ देना चाहिए, और अपनी कनिष्ठिका उँगली पर स्वच्छ कपड़ा लेकर बालक के मुख के अंदर से भी अच्छे प्रकार पोंछ देना चाहिए।

सिर के निकलने के पश्चात् आगामी वेदना के साथ-ही-साथ बालक भूमिष्ठ होता है, परंतु यदि बालक का मुख नीला पड़ने लगे, तो बालक के अपने आप उत्पन्न होने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, और गर्भाशय को मलना चाहिए, जिससे उसका संकोच शीघ्रता से हो, और गर्भाशय के मुंड पर हाथ से दबाव डालकर प्रसव कराना चाहिए। यदि इससे सफलता न हो, तो एक उँगली को योनि में डालकर, उसे सामने कक्ष-स्थल में अड़ाकर सामने स्कंध को भग-संधि के नीचे तक खींच लो। दोनो स्कंधों को इकट्ठा उत्पन्न नहीं कराना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से चमड़ी में घाव हो जाने की या घाव के बढ़ जाने की आशंका होती है। स्कंधों को उत्पन्न करने के लिये सिर को खींचना भारी भूल है। जिस समय स्कंध उत्पन्न हो रहे हों, उस समय बालक के सिर को दोनो हाथों में पकड़कर माता के कोष्ठ की ओर ले जाना चाहिए। इससे स्कंधों को निकलने में सहायता मिलती है। जब बालक उत्पन्न हो जाय, माता को फिर पीठ के बल लिटा देना चाहिए, और उसकी नाड़ी-स्पंदन गिन लेना चाहिए। माता की नाड़ी की परीक्षा समय-समय पर और विशेषतः तृतीय अवस्था में

---

१. Folded right hand २. Extension

करनी परमावश्यक है। अंतरीय या बाह्य रक्त-स्राव की उपस्थिति में नाड़ी बड़ी तीव्र चलती है।

बालक उत्पन्न होने के साथ ही रोने लगता है, जिससे उसके दोनो फुप्फुसों में वायु प्रविष्ट हो जाती है, और फुप्फुस फैल जाते हैं। यदि बालक न रोवे, तो उसे पैरों से पकड़कर उलटा लटका देना चाहिए, और मुख तथा गले को अंदर से भले प्रकार कपड़े से पोछना चाहिए, और पीठ पर दो-तीन बार थप्पड़ लगाने चाहिए, और यदि आवश्यकता हो, तो यंत्र१ द्वारा श्वास-प्रणाली से श्लेष्मा का आचूषण करना चाहिए, और ठंडे पानी के छींटे मुख पर देने चाहिए। उपर्युक्त विधियों से सामान्यतः बालक रोने लगता है (श्वास-रोध की चिकित्सा के लिये आगे दसवाँ अध्याय देखो)। जब बालक अच्छे प्रकार से श्वास लेने लगे, इसे पार्श्व के बल (पीठ के बल लिटाने से श्लेष्मा के श्वास-प्रणाली में चले जाने से श्वास-रोध की आशंका होती है), माता की जाँघों के मध्य में, लिटा दो, और नाल को हाथ में ले लो, और यह देखते रहो कि कब तक उसका स्पंदन अनुभव होता रहता है। जब स्पंदन अनुभव होना बंद हो जाय या बहुत ही मंद पड़ जाय, उस समय नाल पर बालक की नाभि से २" परे पानी में उबाले हुए एक पक्के धागे से शल्य-कर्म बंधन२ की तरह पक्की गाँठ दे दो। एक और ऐसी ही गाँठ भग से तीन इंच दूरी पर नाल पर बाँधो, और स्वच्छ३ क़ैंची से नाल को बालक की ओर की गाँठ से ½" परे काट दो, और बालक की ओर के सिरे को देखो कि उसमें से रक्त-स्राव तो नहीं हो रहा अर्थात् गाँठ पक्की है। यदि रक्त-स्राव हो, तो पहली गाँठ से नीचे एक और गाँठ लगावें। काटते समय नाल को सदा हाथ में उठाकर काटना चाहिए, ताकि क़ैंची बालक को न लगे। जब तक नाल का स्पंदन समाप्त न हो, नाल को काटना नहीं चाहिए। यदि बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् तुरंत ही नाल को काट लिया जाय, तो बालक

१. Mucus sucker २. Surgical or Reef Knot ३. Sterilised

लगभग डेढ़ छटाक रक्त से वंचित रहता है, जो नाभि-शिरा द्वारा बालक में न जाकर कमल में ही रहता है, और इस कारण बालक की वृद्धि भले प्रकार नहीं हो सकती। धागे के बंधनों को प्रयोग से पहले मरकरी-बिन-आयोडाइड (Mercury Biniodide) के (१:२०००) घोल में रख छोड़ना चाहिए।

नाल को काटने के पश्चात् बच्चे को फ़लालैन में लपेटकर किसी परिचारक को दे दो, ताकि वह उसे तोलकर अलग स्थान में कपड़े में लपेटकर लिटा दे।

तृतीय अवस्था—बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् से कमल के निकलने तक तृतीय अवस्था होती है। यह देखो कि बालक के निकलने से योनि-द्वार तथा सीवन-प्रदेश की चमड़ी में घाव तो नहीं हुआ? यदि कोई घाव हो, तो उसी समय उसे सी देना चाहिए, क्योंकि इस समय यह स्थान संज्ञा-हीन होता है, परंतु गाँठें कमल के निकल चुकने के पश्चात् देनी चाहिए। अप्रजाता में ही घावों के होने का अधिक डर होता है। बड़े घावों१ को क्लोरोफ़ार्म सुँघाकर और पूरी सहायता मिलने पर ही सीना चाहिए, और इसके लिये १२ से ३६ घंटे तक प्रतीक्षा करने में कोई हानि नहीं।

बालक के पैदा होने के प्रायः ४० मिनट के अंदर आँवल निकल आती है। यदि इतने समय तक न निकले, तो गर्भाशय को एक हाथ में सामने तथा पीछे से पकड़कर तीन बार केवल प्रसव-वेदनाओं के समय दबावें२। यदि फिर भी असफलता हो, तो कृमि-हीन हाथ गर्भाशय में डालकर अपरा को गर्भाशय से पृथक् किया जाता है और निकाला जाता है।

जब आँवल बाहर निकल आवे, तो उसे दोनो हाथों में लेकर उसका ऊपर का पृष्ठ देखें कि उसका कुछ टुकड़ा भीतर तो नहीं रह गया। आँवल के निकलते समय भी उसे दोनो हाथों में पकड़कर एक ओर को घुमा-घुमाकर झिल्लियों को निकालना चाहिए। इस

१. Third degree २. Crede's method.

प्रकार संपूर्ण अपरा तथा झिल्लियाँ विना टूटे निकल आते हैं।

कमल निकल चुकने के पश्चात् प्रजाता स्त्रियों को एक्सट्रैक्ट अरगट लिक्विड (Ext. Ergot. Liquid) दो ड्राम, एक औंस पानी में मिलाकर देना चाहिए, जिससे गर्भाशय भले प्रकार सिकुड़ जाय। अप्रजाता में इसकी आवश्यकता नहीं होती। अब प्रसूतिका की नाड़ी-गति गिन लो।

प्रसूतिका की सफ़ाई—कमल के निकलने के ½ घंटे पश्चात् गर्भाशय को बाहर से पकड़कर जमा हुआ रक्त दबाकर निकाल दो, और भग को पोछकर उसके ऊपर १०" लंबी और ४" चौड़ी, स्वच्छ कपड़े में चोषक[1] रुई लपेटी हुई की गद्दी[2] पहले जलते कोयलों के सामने रखकर कृमि-हीन करके अर्थात् जब उसका रंग भूरा-सा हो जाय, तो ठंडा होने के पश्चात् भूरा पृष्ठ भग पर लंबाई के रुख़ रख दो। सूखी गद्दी गीली की अपेक्षा जल्दी स्राव को चूस लेती है। तत्पश्चात् कोष्ठ पर एक चौड़ी पट्टी[3] कसकर बाँध दो। इसका निचला सिरा ऊर्वस्थियों के ऊपर के बड़े उभारों[4] से दो इंच नीचे होना चाहिए, और सेफ़्टी पिनों से कस देना चाहिए। पहले निचले सिरे पर पिन लगानी चाहिए। इस पट्टी के लिये चार पिन चाहिए—एक निचले सिरे पर, दूसरी भग-संधि[5] पर, तीसरी नाभि तथा भग-संधि के मध्य में, और चौथी ऊपर के सिरे पर, परं यहाँ इतना कसने की आवश्यकता नहीं है, औ चौथी पिन लगाने से पूर्व गर्भाशय के ऊपर के भाग को सामने की ओर दबा देना चाहिए, ताकि पट्टी का ऊपर का किनारा उसके पीछे हो जाय, और उसे पा रक्खे। पट्टी के निचले किनारे भग के कपड़े को अपने स्थान से नहीं हटने देते। यदि गर्भाशय ठीक प्रकार से सिकुड़ा हुआ हो, तो अधिक रक्त-स्राव नहीं होता, और जमा हुआ रक्त उसमें इकट्ठा नहीं हो पाता। दो घंटे के पश्चात् पट्टी को खोलो, भग को लाइसोल लोशन से साफ़ करो, मूत्र निकालो, गर्भाशय को दबाकर जमा हुआ रक्त निकाल दो, फिर गाढ़े लाईसोल लोशन से योनि का प्रक्षालन करो। फि देखो कि गर्भाशय ठीक प्रकार से संकुचित है या नहीं? और, रक्त-स्राव तो नहीं हो रहा है? इस प्रकार साफ़ करके फिर से पट्टी और भग का कपड़ा पहले की तरह लगा दो। प्रसूतिका का ताप और नाड़ी देखकर उसे दूसरे बिछौने पर लिटा दो। यह देखना चाहिए कि उसकी नाड़ी वेग से जल्दी-जल्दी तो नहीं चल रही। तत्पश्चात् उसके पास न्यून-से-न्यून एक घंटा बैठे रहो, ताकि पता लग सके कि रक्त-स्राव तो नहीं हो रहा। भग के कपड़े को, जब-जब उसमें रक्त बाहर दिखाई देने लगे, बदलते रहना चाहिए और अधिक-से-अधिक ६-६ घंटे बाद तो अवश्य बदल देना चाहिए। जब तक प्रसूतिका चलने-फिरने न लगे, तब तक पेट की पट्टी बँधी रहनी चाहिए।

---

१. Absorbent २. Pad ३. Binder ४. Greater trochanters ५. Pubis

---

जॉनबुल का सोच



जॉनबुल ऐं ! क्या ११ शर्तें पूरी हो करनी पड़ेंगो !



स्वरकार—"ध०"] [शब्दकार—"ग०"

भैरवी—तीन ताल

गीत

मोर-मुकुट की, लटकी लट की,
नागर-नट की छवि मन अटकी।

[१]

मिली व्यथा चुप हो सहने को,
मन की कथा नहीं कहने को;
सुन, फिर मुखरित हुई है पवन
सात स्वरों से यमुना-तट की।

स्थायी

०				३				×				२		
सा	—	ध	ध	प	प	प	—	प	नि	ध	प	म	प	म
मो	—	र	मु	कु	ट	की	—	ल	ट	की	—	ल	ट	की
ग-	सा	रे	नि	सा	रे	ग	म	रे	ग	रे	ग	सा	रे	सा
ना	‿	ग	र	न	ट	की	—	छ	वि	म	न	अ	ट	की

अंतरा

०				३				×				२			
ध	म	—	म	ध	—	नि	नि	सां	—	सां	सां	रें	—	सां	—
मि	ली	—	व्य	था	—	चु	प	हो	—	स	ह	ने	—	को	—
नि	नि	नि	—	सां	सां	—	सां	निसां	रें	सां	नि	ध	—	प	—
म	न	की	—	क	था	—	न	ही	—	क	ह	ने	—	को	—
ग	ग	प	प	प	प	प	प	प	नि	—	ध	—	प	प	प
सु	न	फि	र	मु	ख	रि	त	हु	ई	—	है	—	प	व	न
ग	—	म	म	ध	—	प	म	ग	रे	ग	—	सा	रे	सा	—
सा	—	त	स्व	रों	—	से	—	य	मु	ना	—	त	ट	की	—



१. विश्वास

(गद्य-गीत)



तनी बार मैंने चेष्टा की है कि इन छलछलाती हुई तरंगों के नाद को अपने संगीत में बाँध सकूँ, परंतु रेणु के प्रसाद के समान वे तरंगें बिखर जाती हैं, और मेरे ये असफल टूटे तार झनझना उठते हैं !

कितनी बार मैंने प्रयत्न किया है कि डूबते हुए दिवस के इन कोमल रंगों को अपने चित्रों में भर सकूँ, परंतु मेरी भद्दी बाह्य रेखाओं में ` बुरी तरह से फैल जाते हैं, और मेरी इच्छा नहीं होती कि अपनी इन कृतियों को विश्व की चित्रशाला में रक्खूँ !

सूर्यास्त का सनसनाता हुआ समीर मेरे हृदय को स्पर्श तो कर देता है—मैं किसी अस्पष्ट-से धुँधले लोक में अपने हृदय की कसक को मिटाने की चेष्टा करता हूँ—परंतु मेरी तंत्री से कोई ऐसा स्वर नहीं निकलता, जो तुम्हारे इस विश्व-संगीत की [illegible] में एक रूप हो सके।

परंतु जिस प्रकार नदियाँ समुद्र की ही ओर [illegible] होती हैं, उसी प्रकार, मुझे विश्वास है, मेरे ये [illegible] अंत में तुम्हारे हाथ की बाह्य रेखाओं से, और तुम्हा[illegible] ही प्रकृति के रंगों से, चमक उठेंगे।

शांतिप्रसाद व[illegible]

× × ×

२. अंक छ

सारे संसार में चार ऋतु होती हैं, परंतु भार[illegible] ही एक ऐसा देश है, जो छ ऋतुओं से सुशोभित [illegible] अद्वितीय होने का सम्मान प्राप्त कर रहा है। [illegible] ही नहीं, वरन् इस देश को छ भिन्न-भिन्न प्रकार के [illegible] प्राप्त होने का सौभाग्य भी प्राप्त है।

आधुनिक काल में शिक्षा का प्रचार अत्यंत वि[illegible] हो गया है, ऐसा सुना जाता है। परंतु यह भी दे[illegible] चाहिए कि जहाँ पर आजकल एम्० ए० तथा [illegible] डिग्रीधारी व्यक्तियों को विशेषज्ञ माना जाता है, [illegible] भारतवर्ष की विशेषज्ञता की कसौटी क्या थी ! [illegible] पर यह बता देना अनुचित न होगा कि भारतवर्ष [illegible]

ध्येय मुख्यतया ऐसे सिद्धांतों पर निर्भर था, जिनसे मनुष्य का शेष जीवन सुख-पूर्वक व्यतीत हो सके। इसलिये तब विद्वान् उसी को समझते थे, जो कम-से-कम (१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण, (४) निरुक्त, (५) ज्योतिष, (६) छंद से पूर्णतया परिचित हो। इसका जो फल हुआ, वह तो पाठकों को प्राचीन दिग्गज विद्वानों को देखते हुए प्रत्यक्ष ही है। आशा है, कुछ काल में यही नियम फिर प्रचलित हो जायगा।

संसार में बहुत से बंधु-बांधव हैं। वे ऐसे हैं कि उनमें से बहुत-से सुख-समृद्धि के समय में हम को घेर लेते हैं, और दुःख के समय किसी का भी पता नहीं लगता। कहने का सारांश यह कि यथार्थ रूप से वे सच्चे बंधु नहीं कहे जा सकते। हमारा "बंधु" से तात्पर्य है उनसे, जो स्वयं उन्नति करते हुए हमें भी सत्पथ पर अचल रखकर उसमें उत्साहित करने के लिये हमारे अटल सहायक बने रहें। यदि देखा जाय, तो ऐसे संबंधी केवल ६ ही हैं, और यह यश केवल (१) सत्य बोलना, (२) ज्ञान, (३) धर्म, (४) दया, (५) शांति, (६) क्षमा को क्रमशः माता, पिता, भाई, मित्र, स्त्री और पुत्र मान लेने से प्राप्त है। यदि देखा जाय, तो संसार को भ्रमात्मक राह से सुमार्ग पर लगानेवाले, सच्चे आनंद-दाता, विपत्ति-काल के सच्चे सहायक और सच्चे मित्र तथा बांधव ये ही हैं। आशा है, जो मनुष्य अपने जीवन को सफल करके उससे सात्विक आनंद प्राप्त किया चाहते हैं, वे अवश्य ही अंक छ के आदेशानुसार छ बंधुओं को अपनावें।

इस विकट संसार में मनुष्य का सफल होना, और वह भी प्रत्येक दिशा में, प्रायः असंभव-सा ही प्रतीत होता है, क्योंकि जहाँ देखो, वहीं पर मनुष्य के लिये काँटे बिछे हुए हैं, जहाँ देखो, वहीं छल, कपट इत्यादि से संसार भरा हुआ है। इस पर काम, क्रोध, लोभ, मोह-जैसे बड़े-बड़े जाल इस संसार में बिछे हुए हैं। किसी कवि ने कहा भी है—

बुद्धि-विवेक की ज्योति बुझी,
ममता-मद-मोह-घटा घन घेरी;
है न सहारो, अनेकन हैं ठग,
पाप के पन्नग की रह फेरी।
त्यों अभिमान को कूप इतै,
उतै कामना-रूप शिलानि की ढेरी;
तू चलु मूढ़ सँभारि अरे मन,
राह न जानि है, रैन अँधेरी।

ऐसी विकट अवस्था में हमारा अंक छ बातों पर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। उसके आदेशानुसार हमें (१) समय कैसा है, (२) कौन मेरे सच्चे मित्र हैं, (३) कौन-सा तथा कैसा देश है, (४) मेरे ऊपर कितना व्यय है, (५) मैं किसका हूँ और (६) मेरी क्या शक्ति है, इन बातों पर प्रतिदिन विचार करके प्रत्येक दिन के कार्य करने चाहिए। आशा है, प्रत्येक मनुष्य इन छ बातों का निरंतर ध्यान रखकर अपना कार्य सुचारु रूप से संपादित करने में समर्थ हो सकेगा।

कुत्ता एक कितना तुच्छ पशु है, परंतु उसमें भी ऐसे गुण हैं, जो मनुष्य को अवश्य ग्रहण करने चाहिए, क्योंकि वे उसके लिये अत्यंत हितकर प्रमाणित होंगे। उन्हीं गुणों का स्मरण दिलाते हुए स्वयं महर्षि चाणक्य ने कहा है—

बह्वाशी स्वल्पसंतुष्टः सुनिद्रो लघुचेतनः;
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुणाः।

अर्थात् (१) अधिक भोजन की रुचि, (२) थोड़े से ही संतुष्ट होना, (३) गहरी नींद सोना, (४) थोड़ी-सी आहट से सावधान होना, (५) स्वामी की भक्ति करना और (६) शूरवीर होना, ये कुत्ते के छ विशेष गुण हैं। उन्होंने प्रत्येक पशु तथा पक्षी से मनुष्य को क्या शिक्षा लेनी चाहिए, इस बात का विचार करते हुए उपर्युक्त छ शिक्षाओं का आदेश प्रत्येक मनुष्य को किया है। आशा है, प्रत्येक मनुष्य महर्षि चाणक्य-जैसे कूटनीतिज्ञ की गूढ़ शिक्षा को मानने का प्रयत्न करेगा। इस स्थान पर हमारे अंक की यही शिक्षा है।

हमें अपने जीवन में, चाहे कुछ भी क्यों न हो जाय, छ बातों से अवश्य पृथक् रहने का प्रयत्न करना चाहिए, अन्यथा सारे जीवन में सुख तथा शांति के दर्शन तक न होंगे, वरन् सारा जीवन नारकीय तथा नाना दुःख-संपन्न हो जायगा। हमें (१) बुरे गाँव या नगर में रहना, (२) नीच मनुष्यों की सेवा, (३) बुरा भोजन, (४) क्रोध करनेवाली स्त्री, (५) मूर्ख पुत्र और (६) विधवा कन्या, इन छ बातों से अवश्य बचते रहना चाहिए, क्योंकि उपर्युक्त छ बातों से मनुष्य का सुख विलीन होकर मन चिंता-रूपी दावानल से भस्म हो जाता है।

ऊपर हमें "नीच मनुष्य" ये शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। परंतु संसार में नीच मनुष्यों के कोई सींग तो रहते ही नहीं कि उन्हें उनके द्वारा पहचान लिया जाय। वे तो अन्य मनुष्यों में इस प्रकार मिल जाते हैं कि आपको उन्हें पहचानना ही दुर्लभ हो जाता है, और कहीं-कहीं तो लोग उन्हें, उनके चकमे में आकर, अपने इष्ट-मित्रों में से मान बैठते हैं। परंतु उन्हें ढोल की पोल तभी ज्ञात होती है, जब वे मित्र पर कुछ-न-कुछ कृपा करते हैं। ऐसे मनुष्यों को पहचानने में भी हमारा अंक आपकी सहायता कर सकता है। उसका कथन है कि जो (१) कठोर वचन बोलते हों, (२) दरिद्र हों, (३) अपने घरवालों से जलें, (४) जिनके कुपथगामी मित्र हों, (५) दुष्ट मनुष्य ही जिनके पूज्य हों, और (६) बहुत क्रोध करते हों, ऐसे मनुष्य सर्वथा त्याज्य हैं। आशा है, प्रत्येक मनुष्य व्यवहार करते समय मनुष्य की उपर्युक्त प्रकार से परीक्षा कर ले।

आधुनिक काल में स्त्रियों की समस्या बड़ी ही विलक्षण हो गई है। कोई तो उन्हें स्वतंत्रता की राह दिखाते हैं, कई मनुष्यों की बराबरी का दावा रखती हैं, कई उन्हें परतंत्रता की बेड़ियाँ पहनाना चाहते हैं, परंतु हमारे अंक की, इस स्थान पर, इस विषय में, यही सम्मति है कि उन्हें (१) रुपए-पैसे का संग्रह, (२) ख़र्च करना, (३) शरीर और उपयोगी वस्तुओं को साफ़ रखना, (४) पति की सेवा, (५) रसोई बनाना और (६) घर की सभी वस्तुओं की देख-भाल करना चाहिए। यही स्त्रियों के योग्य कार्य हैं, और इन्हीं में निरंतर लगे रहने में उनका भला है। आशा है, पाठकगण छ अंक के आदेशों से अवश्य लाभ उठावेंगे।

रामचंद्र गौड़ 'विशारद'
ए० एम्० टेक० आई० (जीटी-ग्रिट)

× × ×

३. अतीत

यौवन की सुषमा लेकर वह
प्रकट हुआ था नवल प्रभात;
चमक उठे थे रूप-छटा से
स्वर्ण-राशिमय कण अवदात।
दूर निकुंजों में कोयल ने
छेड़ी थी मदमाती तान;
गूँज उठा था सारे वन में
नव यौवन का मधुर विहान।
तुम आए मेरे उस नभ में
लेकर आशा का मृदु दीप;
(अतल-वासिनी कन्याओं ने
समझा—है मुक्तामय सीप)
मैंने तुम्हें आँख भर देखा,
आँखें थीं कितनी जलमय!
बूँद-बूँद जल सोच रहे हों
'आनेवाला महा प्रलय'।
तुम समीप औ' उठे हृदय में
सूर्य-चंद्र तक भाव-तरंग;
कहाँ-कहाँ, वह रूप किधर है?
हैं क्यों पुलकित मेरे अंग!

जीवन-भर सुनती रहती हूँ
मन में वही रूप-उन्माद ;
तारे, फूल, नदी, पर्वत, वन
करते हैं अतीत क्यों याद ?

श्रीरत्नचंद्र छत्रपति बी० ए०

× × ×

४. अश्रु-कण !

नयन-कोष की निधि अमूल्य, हे !
सुख-सुषमा के पारावार !
मानस-तल की मृदुल मंजुता,
छिपे हुए उर के उद्गार !
नीरव, निश्छल विरह-वेदना
की अनूप प्रतिकृति, मनुहार !
अंतरतम से छुटकर आती
विकल हृदय की मूक पुकार।
दीन जनों की सह विभूति औ'
एक-मात्र अंतिम आधार ;
अबलाओं की करुण-कथा के
मुक्त-कंठ गायक अविचार !
काव्य-जगत की मधुर कल्पना,
भाव-तंत्रिका के स्वरकार।
श्री-चरणों में सजल नयन-युत
अर्पित अमल, क्षुद्र मणिहार !
शोक-सिंधु के अनुपम मुक्ता,
वशीकरण के वर अभिचार ;
दो वियोगियों के आपस में
दिए गए टूटे उपहार !
छलक पड़ो तनि नयन-युग्म में,
अहे अश्रु-कण ! मेरे आज।
मुझको भी दिखला दो अपना
वह स्वरूप, वह अनुपम साज।

हरिशंकर गौतम "हरि" विशारद

× × ×

५. मलाबार में सर्प-पूजा

केरलोत्पत्ति के विषय में मलयालय ग्रंथ में, जिसका नाम "केरल-उत्पत्ति" है, लिखा है कि श्रीपरशुरामजी के हृदय में अनेकानेक बार क्षत्रियों का संहार करने के पश्चात् कुछ ग्लानि उत्पन्न हुई। मन में समझा, अब तक महान् पातक मेरे हाथों हुए हैं, और उन पातकों से मुक्त होने के लिये गोकर्ण में जाकर उन्होंने वरुण देवता की उपासना की। वरुण देवता प्रसन्न हुए, और उन्होंने उन्हें मलाबार-प्रदेश प्रदान किया। श्रीपरशुरामजी ने उसके १४ खंड अथवा ज़िले किए, और उनमें ब्राह्मणों को बसाया। सारे भारत के ब्राह्मणों की अपेक्षा वहाँ के ब्राह्मणों में विशेषता दिखलाने के लिये उन्होंने अनेकानेक नियम निर्माण किए। उनमें कइयों का तो लोप हो गया है, और कई एक आज दिन तक भी चल रहे हैं। समय और काल के चक्कर में पड़कर सभी नियमादि बदल जाते हैं। उसी के अनुसार उन नियमों के बंधन ढीले पड़ जाना एक साधारण-सी बात है। उन्हीं नियमों में से एक नियम यह भी था कि वहाँ के ब्राह्मण पीछे की ओर चोटी नहीं रखते, जैसे और ब्राह्मण रखते हैं। वे सामने की ओर रखते हैं। उन ब्राह्मणों को देखते ही पाठक जान जायँगे कि ये मलाबारी हैं।

अब जब वह मलाबार-देश उनको मिल गया, तब उन्होंने उस पर अपना पूर्ण अधिकार चलाया। श्रीपरशुरामजी ने ३६,००० ब्राह्मणों को शस्त्रधारी बनाया, और उनको मलाबार की रक्षा के लिये निर्धारित किया। उस समय उनका बड़ा ज़ोर था। उनकी धाक चारो ओर समा गई थी। उन्हीं दिनों में उन्होंने सर्प-पूजा की आज्ञा दी। मलाबार सर्प देवता

की शपथ आदि को मानने लगा । सर्प देवता की उन दिनों में बड़ी धाक जमी, और मानता आदि मानी जाने लगी । वह आज दिन भी, किसी न्यूनाधिक रूप में, चली जा रही है । सर्प-राज ही वहाँ के मुख्य देवता थे, और हैं । इसीलिये प्रायः प्रत्येक मलाबारी अपने-अपने घरों के सामने अथवा आँगनों में थोड़ा-सा और छोटा-सा वन-कुंज लगाते हैं । यह वन-कुंज दक्षिण अथवा पूर्व दिशा की ओर रहता है । इस वन-कुंज के मध्य में पत्थर के नाग और नागिन की मूर्तियाँ बनाकर स्थापित करते हैं । उसी के पास कोई तीन या चार बालिश्त ऊँचा, छोटा-सा मंदिर बना देते हैं, और उसे "चित्रकूटम्" कहते हैं ।

उसी चित्रकूटम्, वन-कुंज और नाग-नागिन की मूर्ति को वे लोग कुल-देवता मानते और उसी की पूजा करते हैं । प्रसंगवशात् यदि कोई मनुष्य दूसरी जगह जाकर रहने लग जाय, तो उसको यथावकाश किसी बड़े त्योहार पर अपने चित्रकूटम् पर आना पड़ेगा, और उसकी उसे पूजा करनी होगी । यथाशक्ति दान आदि भी करना होगा । पूर्व काल में तो जब मकान एक दूसरे से लिया-दिया जाता था, अथवा जब मकानों का क्रय-विक्रय होता था, तब इस वन-कुंज, चित्रकूटम् आदि का ब्योरा भी उसके लेन-देन की लिखा-पढ़ी में डाला जाता था, और इसका भी लेन-देन उस मकान के साथ होता था ।

वहाँ पर नंबूदरी-नामक ब्राह्मण सर्प की पूजा करते हैं । जब कोई किसी के घर में बीमार पड़ जाता अथवा और कोई आपत्ति आती है, तब वही नंबूदरी (सर्प का पुजारी) बुलाया जाता है । वह एक बर्तन में तिल का तेल डालकर देखता और फिर सर्प देवता को प्रसन्न करने के अनेकानेक उपाय बताता है । वहाँ के लोगों का यह विश्वास है कि जो कुछ बुरा-भला, बीमारी आदि होती हैं, वे सब सर्प-राज की ही कृपा और अकृपा का कारण है । उनके सिवा और कोई उस प्रदेश में कुछ भी नहीं कर सकता है ।

सर्प-राज के मंदिर प्रत्येक घरों में तो होते ही हैं, परंतु उनके पाँच बड़े-बड़े तीर्थ-स्थान भी हैं । वाय तालुकाना, छेथालुट, अंशमां में दो धाम हैं । इन अतिरिक्त एक और धाम पालघाट-प्रांत में है । छ धामों से भी बड़ा धाम पंप में है । पंप में प्रति वर्ष बड़ा भारी मेला लगता है । वहाँ पर कोढ़ चर्म-रोग के रोगी तथा आँख के रोगी जाते और अपनी अपनी मानता मानते हैं । जो अच्छा हो जाता है वह मानता उतारता है । यहाँ पर एक बड़ा मंदिर है उसमें एक नागिन की मूर्ति है । उसके आस-पास कोई तीन सौ के लगभग और-और नागों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं । लोग इन्हीं का दर्शन करते और से मुक्ति पाने की आराधना करते हैं । वे वहाँ स्वरूप सोने-चाँदी के नाग चढ़ाते हैं, जो वास्तव पुजारीजी को मिलते और उन्हीं के काम में हैं । जैसा और तीर्थों का हाल है, वैसा ही का भी ।

कहीं-कहीं इन मंदिरों से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर छोटे-छोटे मंदिर होते हैं । वे अछूतों के लिये होते हैं । वहाँ पर वे ही लोग जा सकते हैं । पहले ये नहीं थे । परंतु उनका पाखंडी इतिहास ऐसा बत जाता है कि इल्लभ का एक नंबूदरी ब्राह्मण गया था । इसी बीच एक बेचारा ग़रीब चे (अंत्यज अथवा गुलाम), जिसकी आँख दुखती मंदिर की टेकरी पर पहुँचकर नंबूदरी की आर करने लगा । वह तो घर में था ही नहीं, कुछ कहता, परंतु घर के किसी बदमाश और नि बालक ने उसका उपहास किया, और कहा कि घास की काड़ी आँख में ठूस ले, और ऊपर से का रस डाल लेना, तेरी आँख अच्छी हो जाय बेचारा चेरुभा अज्ञान था । वह ब्राह्मण-पुत्र निर्दयता न समझ सका । उस बेचारे ने " वाक्यजनार्दनः"-वाली कहावत ठीक मानी, और वैसा ही किया । बेचारे ग़रीब चेरुभा की आँखें के लिये चली गईं ।

फिर बेचारा चेरुभा मंदिर में भेंट के लिये

और अपनी आँखों के लिये प्रार्थना की। उसने अपनी पूर्व बीती सब कथा सुनाई। उस समय वह नंबूदरी भी त्रावणकोर से वापस आ गया था। उसने सब क़िस्सा सुना, और कहा कि तेरे सिरहाने, जिसका तू उसीसा करता है, उसमें एक सोने का साँप है, उसी की अकृपा का यह फल है। वह बेचारा बहुत चिल्लाया, और प्रार्थना की कि मैं अंधा आदमी हूँ, मैंने जान-बूझकर इसको नहीं रक्खा है, और मैं जानता भी नहीं हूँ कि यह मेरे सिरहाने कैसे आया, परंतु किसी ने न सुनी। उसके सिरहाने वास्तव में सोने का एक साँप मिला था। वह साँप भी उसी मंदिर का था। नंबूदरी ने उस साँप को तो पानी डालकर पवित्र करके मंदिर में ले लिया, और चेरुमा बेचारा रो-पीटकर घर चला गया। उसी समय से नंबूदरियों ने अंत्यजों के लिये पृथक् मंदिर बनवा दिए हैं। अछूत लोग अब उन्हीं मंदिरों में जाते हैं।

सर्प-पूजा का मुख्य फल स्त्रियों के लिये संतति बतलाई जाती है, और अनेकानेक फल भी बताए जाते हैं। जो जिस बात की कामना करता है अथवा जिसको जिस बात की आवश्यकता होती है, वे सब सर्प-राज की पूजा और उनकी प्रार्थना से सिद्ध हो सकते हैं। ऐसी कोई वस्तु या कार्य नहीं, जो वे न कर सकते हों, और नंबूदरी उनकी प्राप्ति के उपाय न बता सकते हों। वहाँ के लोगों के लिये मनोकामना पूर्ण करने का केवल सर्प-पूजा ही साधन है।

कई एक बार स्त्रियों और जवान लड़कियों को सर्प ब्याहा भी जाता है। यह कहा जाता है कि कई एक बार सर्प स्त्रियों और युवतियों को देखकर उनके प्रेम में पड़ और मस्त हो जाता है। कई एक बार प्रेम में पड़कर हमला भी करता है। जब कोई स्त्री भोजन करते समय, स्नान करते समय, सोते समय अथवा इधर-उधर घूमते समय किसी सर्प को देख लेती है, तब कहा जाता है कि वह सर्प उसके साथ प्रेम की दृष्टि से देखता है, और वह उसके साथ संबंध (विवाह) किया चाहता है। यदि वह युवती अविवाहिता होती है, तो सर्प की मूर्ति के साथ अपना विवाह कर लेती है, और जो स्त्री विवाहिता होती है, वह इस प्रकार नहीं छूट सकती। उसका तो वह सर्प सर्व-नाश ही करके धर देगा। उसका पति भी उसी के साथ दंड का भागी होगा। सर्प-राज अवश्य ही प्राण लेकर छोड़ेंगे अथवा सत्यानाश कर देंगे या और कोई पीड़ा आदि पहुँचावेंगे। परंतु हाँ, इससे भी छुटकारा पाने के थोड़े-से साधन नंबूदरियों के पास हैं।

जिस प्रकार महाराष्ट्र में मुरलियों को आजीवन कुँवारा रहना पड़ता है, वे देवता की भेंट चढ़ाई जाती हैं, उसी प्रकार मलावार में युवतियाँ सर्प-राज को ब्याही जाती अथवा चढ़ाई जाती हैं।

इसी कारण बेचारी मलावार की स्त्रियाँ घर के बाहर झाड़ी आदि में जाने के लिये बुरी तरह डरती हैं। उनमें जाने की हिम्मत ही नहीं होती। वे जानती हैं कि बाहर कूड़ा-करकट अथवा झाड़ी आदि में कहीं गईं, और सर्प-राज ने देखा, और उनका उन पर प्रेम गिरा। इसलिये घरों में अथवा साफ़ जगहों में रहना ही अच्छा।

मलावारी लोग सर्प-हत्या को गो-हत्या से कहीं बढ़कर समझते हैं। जो कहीं मस्तक पर घाव लगा सर्प दिखाई दे जाय, तो उसे वे बड़ा अप-शकुन समझते हैं। जो सर्प अपने आप मृत्यु से मर जाता है, उसे वे लोग उठाकर ले जाते और उसे रेशमी कपड़ा (कफ़न) उढ़ाते हैं। उसकी विधि-पूर्वक उत्तर क्रिया करते हैं। एक ब्राह्मण के द्वारा उसका तीन दिन तक अथवा दस दिन तक सूतक मनवाते हैं, और फिर बारहवें दिन तर्पण आदि कर्म करते हैं।

यदि किसी मलावारी के घर में सर्प निकले, तो उसके पकड़ते समय ज़रा-सी भी वेदना न होनी चाहिए। उसके पकड़ने के लिये कोई संसी आदि औज़ार काम में नहीं लाते। ऐसा करने से उसे कहीं तकलीफ़ न हो जाय। उसके पकड़ने के लिये मामूली-सी लकड़ी उसके मस्तक पर रखकर छोटी-सी मटकी

का मुँह उसके मस्तक के पास थाम रखते हैं। साँप उस मटकी में चला जाता है। फिर उसके मुँह पर कपड़े का अथवा और कोई चीज़ का ढकना बाँध देते हैं। फिर उसे बाहर, सर्प-मंदिर में, छोड़ आते हैं। पकड़ने से इस महान् आत्मा को जो कुछ कष्ट होता है, उसकी क्षमा-प्रार्थना करते हैं, और मंत्रों द्वारा उसके ऊपर पानी डालते हैं। वहाँ पर करवन-जाति के लोग सर्प को पकड़ने का रोज़गार करते हैं। उनके पास से सर्प को ख़रीदकर छोड़ देते हैं। उसका फल इस प्रकार समझते हैं कि मानो उन्होंने क़साई के हाथों से एक गाय छुड़ाई हो।

यहाँ पर यह लिख देना अप्रासंगिक न होगा कि कई एक देशों के लोग ऐसे विषैले जानवर को मार डालने में ही अपना कल्याण समझते हैं, परंतु मलाबारी लोग वर्ष में अंदाज़न् चालीस हज़ार केवल सर्प-दंश से ही मर जाते हैं। तो भी वे उनको मारने का साहस नहीं करते, और इसीलिये वे लोग सर्प की अधिक पूजा करते हैं, जिससे वे प्रसन्न रहें, और उनको त्रास न दें। यह प्रत्येक मलाबारी के हृदय में समाया हुआ है कि सर्प पूजा से ही प्रसन्न होता है। यह समझ उनके हृदय में इतनी पक्की बैठी हुई है कि उनका उन्हें मारने तक का साहस नहीं होता। वे जानते हैं कि मारने से सर्प सर्वनाश किए विना न रहेगा। परंतु, इतने पर भी, वहाँ सर्प को मार डालनेवाले हैं, और वे सर्प को मार डालते हैं, परंतु जब कभी कोई बीमारी अथवा कोई आपत्ति उन पर आती है, तब वह सर्प की ही अकृपा कही जाती है, और फिर उन्हीं की पूजा आदि करते हैं। भारत में हरएक संप्रदाय अपनी-अपनी विचित्रता रखता है। उन्हीं में से एक यह भी है।

लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी

× × ×

६. साहित्य और जाति

ज्ञान-राशि के संचित कोष का नाम 'साहित्य' है। अपनी जाति को उच्च बनाने के लिये या उसे चिरजीवित रखने के लिये साहित्य ही एक अमूल्य रत्न है। जाति का साहित्य से गहरा संबंध है। जाति की शोभा, उसकी मान-मर्यादा साहित्य पर ही अवलंबित है। जाति-विशेष के उच्च भावों का, उसके धार्मिक तथा सामाजिक विचारों का, उसके ऐतिहासिक घटना-चक्रों का, राजनीतिक परिस्थितियों का अगर कुछ पता लग सकता है, तो उसके साहित्य में ही। जिस जाति में साहित्य का अभाव है, तो निस्संदेह समझो कि वह जाति सभ्यता से गिरना चाहती है। जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है, उसके साहित्य में भी वैसी ही झलक दिखाई देती है। सामाजिक सभ्यता अथवा असभ्यता का निर्णय-कर्ता साहित्य ही है। जो मनुष्य अपनी जाति की उन्नति, अवनति, सभ्यता आदि। प्रत्यक्ष रूप में, देखना चाहता है, वह सब साहित्य-रूपी कोष में ही मिल सकती है। जाति का साहित्य से अत्यंत गूढ़ संबंध है। जो जाति उन्नत होगी, उसका साहित्य भी उन्नत होगा, और भविष्य में भी उन्नति करता रहेगा। यह निश्चय जानिए, जाति का ऊँच या नीच होना साहित्य पर ही निर्भर है।

यदि हमें सभ्यता में अन्य जातियों से मुक़ाबला करना है, तो परिश्रम से जाति के साहित्य का संगठन करना चाहिए। शासक जाति का भारतीयों के सामने प्रत्यक्ष प्रमाण है। गौरांग-जाति की उन्नति का मुख्य कारण उसका साहित्य है। योरप में दुनिया-भर का साहित्य एकत्रित है। यह जाति जितनी साहित्य की वृद्धि कर रही है, शायद ही आज तक किसी ने की हो। प्रत्येक भाषा की अनूदित पुस्तकें इनके पुस्तकालयों में विराजमान हैं। यही कारण है, कुल दुनिया पर वे अपनी सभ्यता का प्रभाव डाल रहे हैं। उन्हें साहित्य से प्रेम है। वह भाषा तथा साहित्य की रक्षा करना जानते हैं। इसी बल पर वे संसार में पग बढ़ाते चले जा रहे हैं।

भारतीयों की अवनति का एक कारण यह भी है कि वह साहित्य की रक्षा करनी नहीं जानते।

भाषा की महत्ता नहीं समझते। पराई भाषा को अपनाने से साहित्य की वृद्धि नहीं हो सकती, जब तक निज भाषा पर स्वत्व न प्राप्त कर ले, तब तक उसका किसी भाषा पर पूर्णाधिकार नहीं हो सकता।

हमारी गुलामी का मुख्य कारण यही है। हम निज राष्ट्र-भाषा की महत्ता को अनुभव नहीं करते। उसके साहित्य की वृद्धि करनी तो दूर रही, पढ़ते भी अपमान अनुभव होता है। जो मनुष्य अपनी भाषा को छोड़कर दूसरों की भाषा को प्रधानता देता है, वह देश-द्रोही है, देश की उन्नति का घातक है। अपने देश का, अपनी जाति का कल्याण अपनी भाषा, अपने साहित्य से ही हो सकता है। देशी साहित्य धार्मिक कोष है।

अगर शरीर का खाद्य भोजनीय पदार्थ है, तो मस्तिष्क का खाद्य साहित्य। मस्तिष्क के बिना कुछ नहीं हो सकता। अगर मस्तिष्क की रक्षा करनी है, तो उसे उसका खाद्य पदार्थ मिलना चाहिए। यह न मिला, तो उसमें निष्क्रियता आ जायगी, वह निर्जीव बन जायगा। अतएव उसे साहित्य-रूपी भोजन से पुष्टि देनी चाहिए। विकृत भोजन से जैसे शरीर विकृत हो जाता है, उसी तरह विकृत साहित्य से मस्तिष्क विकार-ग्रस्त हो जाता है। उसका बलवान्, शक्ति-संपन्न होना साहित्य पर आश्रित है। यदि जीवित रहना है, सभ्यता की दौड़ में अपना पग आगे बढ़ाना है, तो परिश्रम-पूर्वक साहित्य का हमें उत्पादन करना चाहिए।

आँख उठाकर अगर अन्य जातियों की तरफ़ देखे, तो पता लगता है कि वहाँ के साहित्य ने सामाजिक स्थितियों में कैसे परिवर्तन कर डाले हैं। साहित्य ने वहाँ की दशा कुछ-की-कुछ कर दी है। शासन-प्रबंध में उथल-पुथल मचा दी है। साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है, वह तोप या बम के गोलों में नहीं पाई जाती। फ्रांस, रोम और इटली की सभ्यता को [illegible]कांत करनेवाला उसका साहित्य ही है। जिस [illegible] में इतनी शक्ति है, उसे जाति की संजीवनी बूटी समझना चाहिए। निस्संदेह अपनी भाषा ही जाति की उन्नति का साधक है। विदेशी भाषा पर कितना भी मनुष्य स्वत्व प्राप्त कर ले, वह उतना प्रवीण नहीं हो सकता, जितना निज भाषा को अपनानेवाला हो सकता है।

उन्नत देशों से हमें यही बात सीखनी चाहिए। वे लोग भूलकर भी पराई भाषा नहीं अपनाते। उनका बच्चा-बच्चा देश और भाषा से प्रेम करता है। जननी की प्रत्येक बात का अनुभव करता है।

बालकों में इस प्रकार के जाति-रक्षा के भाव भविष्य में देश को उच्च शिखर पर चढ़ानेवाले होते हैं। पराई भाषा कदापि न सीखे, यह मेरे लिखने का अभिप्राय नहीं। आवश्यकतानुसार अपने साहित्य की उन्नति के लिये सभी भाषाएँ सीखनी चाहिए। किसी भाषा से द्वेष न हो। जहाँ जो भाषा मिले, ग्रहण कर लेनी चाहिए। लेकिन उसे मातृ-भाषा का स्थान देना जननी का अपमान करना है। वह व्यक्ति देश का विद्रोही, विश्वास-घातक समझा जायगा, जो अपनी निस्सहाय मा को निर्धन दशा में छोड़कर दूसरी मा की सेवा-सुश्रूषा में रत रहता है। वह क्षुद्र हृदयवाला है।

इन सब बातों को विचारते हुए यह निर्णय करना पड़ता है कि जाति और साहित्य का गहरा संबंध है। देश तथा जाति को सुरक्षित रखने के लिये उसके साहित्य की वृद्धि करना उस देश के निवासियों का परम धर्म है—

किसी कवि ने ठीक कहा है।

अंधकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है;
है वह मुर्दा देश, जहाँ साहित्य नहीं है।

(कुमारी) गोपालदेवी हिंदीप्रभाकर

× × ×

७. संगीत-कला और बड़ौदा-नरेश

गुणी जनो, आप-से संगीत-कला-निष्णात महाशयों के कृत्य को देख और संगीत को सुनकर जो संतोष तथा हर्ष हमें हुआ है, वह हम प्रकट करते हैं।

यदि हम इस समय संगीत के विषय पर कुछ शब्द कहें, तो असंगत न होगा। संगीत-शास्त्र और कला का जन्म निस्संदेह भारत में आर्य ऋषियों द्वारा हुआ, यह ऐतिहासिक सत्य सब जानते हैं। सामवेद में 'नोटेशन' अर्थात् स्वर-लेखन-पद्धति विद्यमान है, जिससे सब विद्वान् मानते हैं कि उस समय संगीत भारत में उन्नति के शिखर पर पहुँच चुका था। वीणा, तानपूरा आदि संगीत-कला के प्राचीन वाद्य अभी तक गौरव से अपना सिर ऊँचा किए हुए हैं। विक्रमादित्य, भोज आदि महान् महाराजों ने भी इसकी पूर्ण रूप से सहायता की थी। मुसलमानी युग में अकबर बादशाह ने इसको भारी उत्तेजन दिया, और तानसेन आदि उस समय के नामी रागी प्रख्यात हैं। सितार आदि नए वाद्य इस युग में प्रचलित हुए। आँग्ल-राज्य ने भी इसे अपनाया, और मुसलमानी रियासतों में हैदराबाद आदि ने भी इस कला की बहुत मदद की है। यही कारण है कि भारत की जनता में यह विद्या जीवित है। हिंदुओं में विवाहादि संस्कारों पर इससे पूरा लाभ उठाया जाता है।

संगीत की महिमा कहाँ तक वर्णन करें? बच्चे से लेकर वृद्ध पर्यंत सभी राग अथवा संगीत सुनकर प्रसन्न होते हैं। भयंकर साँप तक भी राग से मोहित हो जाता है। संगीत रोगियों के मन को शांत कर उनकी पीड़ा भुला देता है। सभ्य देशों में नाटक द्वारा साधारण जनता पर जो सुधार का काम किया जाता है, उसमें संगीत का स्थान प्रधान है। न केवल यही, किंतु रण-संग्राम में भी संगीत से बढ़कर कोई दूसरी वस्तु सैनिकों को वीरत्व प्रदान करनेवाली नहीं। हमारी माताएँ, बहनें व सर्व स्त्री-समाज संगीत से जो परम प्रेम रखता है तथा उसको सीखने के लिये उत्सुक रहता है, यह कौन नहीं जानता? संगीत-कला-निपुण गृह-देवी रात को अपने घर में गा-बजाकर अपने परिवार को आनंदित कर सकती है, यह आपको विदित ही है।

संगीत कितना मनोहर और प्रभावशाली है, यह निम्न-लिखित श्लोकों से विदित होगा—

वनेचरस्तृणाहारश्चित्रं मृगशिशुः पशुः ।
लुब्धो लुब्धक संगीते गीते त्यजति जीवितम् ।
अज्ञातविषयास्वादो बालः पर्यंकिका गतः ।
रुदन् गीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते ।
तस्य गीतस्य माहात्म्यं के प्रशंसितुमीशते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामिदमेवैकसाधनम् ।

'गायनःपंचमो वेदः' अर्थात् संगीत पाँचवाँ वेद … जाता है। उसकी संस्कृत-साहित्य में बड़ी प्रशंसा … गई है। गीत, वाद्य और नृत्य जो नहीं जानते हैं, … को अपंडित कहते हैं—"गीतं वाद्यं च नृत्यं च … न जानात्यपंडितः।" जो मनुष्य संगीत-कला … जानता, वह बिना पूछ-सींग का पशु कहलाता है … संगीत बिना मनुष्य का जीवन व्यर्थ समझा जाता …

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यै-
र्विज्ञानविक्रमयशोभिरभज्यमानम् ।
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुंक्ते ।

इस कला के महत्त्व और उपयोग को … रखकर, जिसके बिना मनुष्य का जीवन केवल दु… रहता है, हमने अपने पूर्वजों के मार्ग पर चलकर … कला को उत्तेजन देने तथा उन्नति के शिख… पहुँचाने के लिये अपने राज्य में गायन-शालाएँ स्था… की हैं, ताकि इस महान् कला का लाभ न … मुट्ठी-भर ही मनुष्य लें, किंतु सर्व साधारण जनता … इसका लाभ पूर्ण रूप से ले सके। क्योंकि कोई … राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता, जब तक कि उसकी … उन्नत न हो। गायन, नृत्य और वादन-कलाएँ … राज्य की एक निशानी हैं। सर्वसाधारण … में इसकी अभिरुचि बढ़नी चाहिए, ताकि वे … समझकर खुश हों, और संगीतज्ञों को मान … पारितोषिक देकर उत्तेजन दें। श्रीमान् लोग इन … को पारितोषिक दे सकते हैं। लेकिन ग़रीब लोग … मिलकर यदि थोड़ा-थोड़ा कुछ दें, तो जो प्रशंसा … होती है, उससे भी अधिक गुणी जनों की … और कला की क़दर होगी। इसीलिये हम …

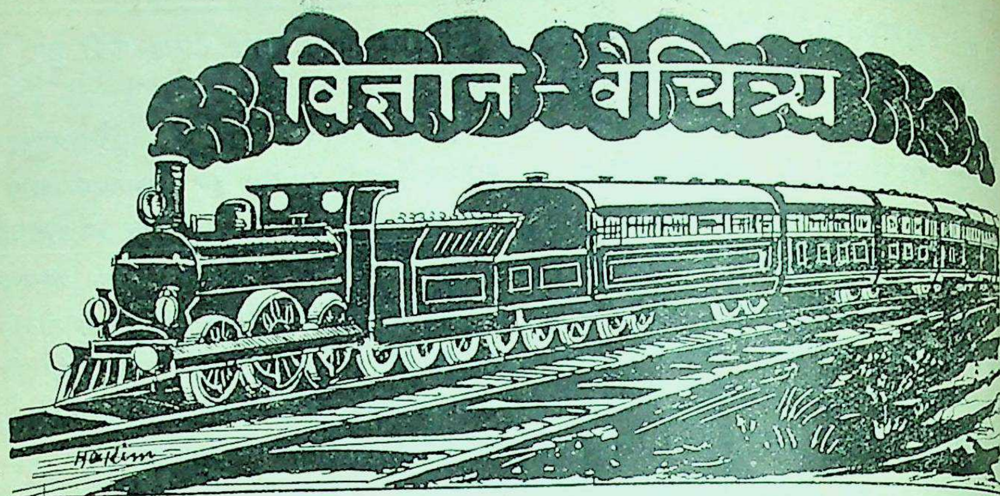
दिनों से गाने-बजाने-संबंधी भिन्न-भिन्न प्रयोग कर रहे हैं, और उसको सफल बनाना लोगों की अक़्ल और होशियारी पर निर्भर है।

गंधर्वविद्यामालोकय वाद्यं वा गणिकागणान् ;
धनुर्वेदार्थशास्त्राणि लोके रक्षेश्च भूपतिः ।

आओ, हम सब मिलकर यत्न करें। उस महान् कला के रक्षण, वृद्धि और प्रचार का। जो कला आदि काल से लेकर आज पर्यंत परंपरा द्वारा हम तक चली आई है, जिस कला के कारण मनुष्य का जीवन सुखमय हो जाता है, ज़रूरत है कि हम सब सच्चे मन से सहयोग देने का व्रत धारण करते हुए कर्मवीर बनें।

गुणी जनों की क़दर करने में हम सदैव अपना गौरव समझते हैं, और इसीलिये इस अवसर पर आप गुणी जनों को पारितोषिक देने में हमें अत्यंत हर्ष होता है*।

* उक्त व्याख्यान श्रीमान् महाराजा श्रीसयाजीराव गायकवाड़ बड़ौदा-नरेश ने 'असामान्य दरबार में' ता० १३। ३। ३१ को, स्वदेशीय संगीत-कला-निष्णात गुणी जनों को अपने जन्म-महोत्सव के उपलक्ष्य में पारितोषिक प्रदान करते समय दिया था।—सुधा-संपादक



१. संपत्ति-खोजक यंत्र

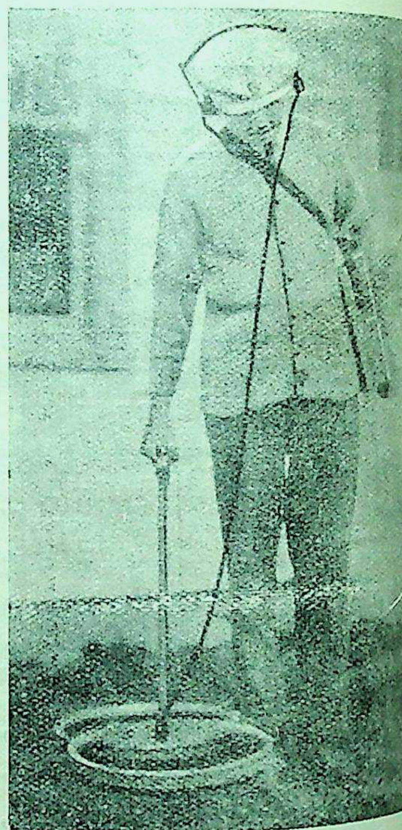


र-डाकुओं से अपने संचित धन की रक्षा करने के लिये अधिकांश मनुष्य उसे पृथ्वी में गाड़ दिया करते हैं, परंतु यदि अकस्मात् कोई घटना हो जाय, और उनके उस गड़े हुए धन के जानकार न रहें, अथवा भीतरी पोली ज़मीन उस धन के भंडार को यहाँ-वहाँ खिसका दे, तो वह संपत्ति पृथ्वी के गर्भ की ही हो जाती है। ऐसे संपत्ति के भंडार का बिना खोदे पता लगानेवाले यंत्र का जन्म संसार में हो गया है! इसका नाम है रेडियो-प्रास्पेक्टर (Radio-prospector)। इसे हाथ में लेकर आप किसी मैदान में निकल जाइए। ज़मीन पर इस यंत्र की आज़माइश कीजिए। यदि चाँदी का एक भी सिक्का कहीं गड़ा होगा, तो यंत्र में भन्नाहट की आवाज़ आवेगा। उसी स्थान को खोद लीजिए। आपको द्रव्य मिल जायगा। इसके द्वारा पृथ्वी-सतह के भीतर गड़ी हुई धातु का भी पता लगाया जा सकता है।

× × ×

२. नोबल-पुरस्कार का अंधा विजेता

वाष्प-नौका के द्वारा एक देश से दूसरे देश की यात्रा करनेवाले क्या कभी सोचते हैं कि उनके शरीर



संपत्ति-खोजक

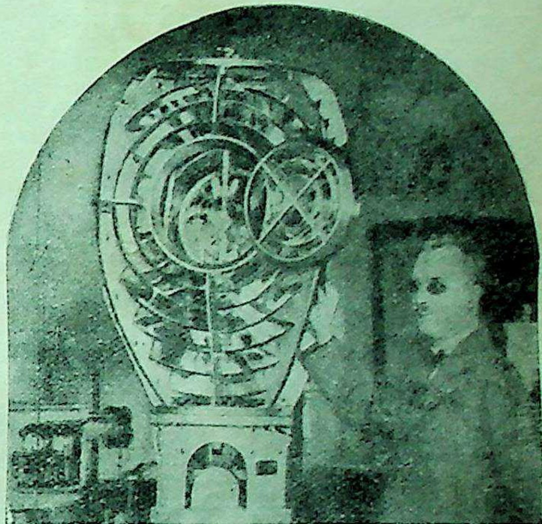
की रक्षा करने के लिये जगह-जगह पर 'प्रकाश-गृह' और स्वयं ही जलनेवाले लैंप स्थापित किए गए हैं। यदि ये लैंप न होते, तो पानी के भीतर छिपी हुई चट्टानों से, ग्लेसियर से या कुहरे में दूसरे जहाज़

से टक्कर खाने का समय दूर नहीं रहता। परंतु दूसरों को प्रकाश देनेवाला डॉ० निल्स गुस्टव डालिन (Nils Gustan Dalin, स्वीडन का सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक) अंधकार में रहता है। वह विज्ञानशाला के एक अग्नि-कांड में अपने नेत्रों को, सन् १६१२ में, खो बैठा। दो महीने बाद संसार के वैज्ञानिकों ने उसे नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया।

इस 'स्केनडिनेवियन एडीसन' ने अपने नेत्रों की कमी से अपनी उपयोगिता में कोई कमी नहीं आने दी। वह एक गैस-कंपनी का अध्यक्ष है, और अपने अत्यंत प्रकाशित कमरे से दूर तक के स्थानों में गैस भेजा करता है। इसके अतिरिक्त उसे हम हमेशा ही वैज्ञानिक प्रयोगों में मस्त देखते हैं। प्रसन्नता उसके चेहरे पर खेला करती है।

जीवन के प्रारंभिक काल से ही उसे प्रयोग करने का शौक़ है। बाल्य-काल में वह माता-पिता के साथ खेतों पर रहता था। खेती के काम में मदद देना उसका प्रधान कर्तव्य था। परंतु खेत पर जाने के लिये उसे प्रातःकाल ही उठना पड़ता था। यह एक बड़ी मुसीबत थी। इसके अतिरिक्त उसे काफ़ी पीने की आदत पड़ गई थी। बिना एक प्याला काफ़ी पिए उसका मन किसी काम में नहीं लगता था। अतएव उसने एक युक्ति ढूँढ़ निकाली। उसने एक पुरानी घड़ी को सुधारा, उसमें अलार्म लगाया, और उसने घड़ी के पुर्ज़ों से एक धातु के टुकड़े का संबंध कर दिया, जिस पर एक प्रकार का काग़ज़ लगा हुआ था। यह टुकड़ा अलार्म बजने के १५ मिनट पहले घूमने लगता था, और घर्षण के कारण अग्नि पैदा हो जाती थी। इससे एक आग काडी में आग लग जाती थी, और एक लैंप जलने लगता था। इस लैंप पर काफ़ी का बर्तन रक्खा रहता था। जब अलार्म बजने पर आप उठते थे, तो काफ़ी को तैयार, उबलती हुई, पाते थे।

इस प्रकार डॉ० डालिन ने स्वयं ही जल उठनेवाला प्रकाश बाल्य-जीवन में तैयार किया था। इसके बाद उन्होंने इस विषय में बहुत ही उन्नति की। उन्हें भौतिक शास्त्र के तीन महान् आविष्कारों पर पुरस्कार मिला है। इन सबका सम्मेलन उनके प्रसिद्ध Aga-लैंप में है, जिसका उपयोग समुद्री प्रकाश-गृहों में होता है। इनमें एसेटलीन-गैस बहुत ऊँचे दबाव में रक्खी जाती है, और इसके दबाव के कारण ही लैंप जलने लगता है, और बुझ जाता है। इसी तरह आपने सूर्य के प्रकाश के द्वारा जलने और बुझनेवाला लैंप बनाया।



जगत्-विख्यात डॉ० डालिन और उसका आप-ही-आप जलने और बुझनेवाला लैंप

इस लैंप में प्लेटिनम की एक छड़ लगी रहती है। उसका रंग काला रहता है। सूर्य के प्रकाश से वह फैल जाती और गैस आनेवाले दरवाज़े को बंद कर देती है। परिणाम-स्वरूप लैंप बुझ जाता है। संध्या होते ही कुहरे का विस्तार होता है, और "छड़" सिकुड़ जाती है, दरवाज़ा खुल जाता है, और लैंप जलने लगता है। इस प्रकार के लैंप का साल-भर का ख़र्च लगभग ५० रुपया है।

इन सब बातों पर विचार कर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि मनुष्य यदि चाहे, तो किसी भी प्रकार

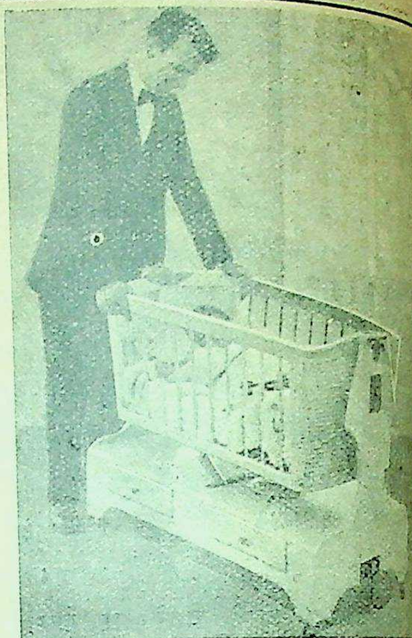
की स्थिति में रहकर उपयोगी कार्यों को कर सकता है। हृदय में केवल दृढ़ इच्छा-शक्ति होनी चाहिए।

× × ×

३. विद्युत् के पालने

प्रायः देखा जाता है कि बच्चों को पालने में लिटा देने से ही काम नहीं चलता। उन पालनों को लगातार हिलाना पड़ता है। इस कार्य के लिये एक आवश्यकता पड़ती है, परंतु अब यह अड़चन भी दूर हो गई। विद्युत्-प्रवाह से अपने इस नवीन पालने का संबंध कर देने की ही आवश्यकता है कि पालना चलने लगता है। बच्चा बड़े आनंद से सोता रहता है।

नाथूराम शुक्ल



विद्युत् का पालना

आप भी लखपती बन जाइए

बेकारों को रोज़ी और दौलत पैदा करानेवाली

अपूर्व पुस्तकें

सुगंधित तैलों के नुस्ख़े

हमने हज़ारों रुपए व्यय करके देश के सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तैलों के नुस्ख़े प्राप्त किए हैं और अपने बीस साल के परिश्रम को हृदय खोलकर जनता के सामने रख दिया है। पुस्तक में सैकड़ों मशहूर तैलों के नुस्ख़े दिए गए हैं, जिसमें से कुछ के नाम यह हैं—हिमसागर तैल, केशराज तैल, आमला तैल, ब्राह्मी तैल, बुद्धि-वर्धक तैल, मनमोहिनी तैल, कलकत्ता के डॉक्टर नगेंद्रनाथसेन को करोड़पती बनानेवाला केशरंजन तैल, विख्यात जवाकुसुम तैल, जैतश्री तैल, प्रसिद्ध हिमकल्याण तैल, गुलशन बहार तैल, कामिनिया तैल, पं० चंद्रशेखर वैद्य शास्त्री को लखपती बनानेवाला ब्राह्मी विलास तैल, मालती तैल आदि के नुस्ख़े आपको इसमें मिलेंगे। सुंदर दूधिया ऐंटिक काग़ज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १), डा० म० ।-) आने।

शर्बतों का रोज़गार

[ले० श्रीयुत बा० पीतमलालजी एम० ए०, एल्-एल्० बी० एडवोकेट]

कम पूँजी और बड़ी बचत का रोज़गार

इस पुस्तक में गर्मियों में पीनेवाले मज़ेदार शर्बतों के अनेकों नुस्ख़े और उनके बनाने का विधान तो दिया ही गया है, इसके साथ ही डॉक्टरी, यूनानी और वैद्यक के सभी प्रकार के शर्बतों के पूर्ण नुस्ख़े भी दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त सोडा वाटर, लेमोनेड आदि के बनाने और उनके व्यापार के करने के भी सभी विधान बता दिए गए हैं। जो भाई रोज़गार करना चाहें उन्हें तो इससे कम पूँजी और बड़ी बचत का व्यापार करना सिखानेवाली पुस्तक अन्यत्र कहीं मिलेगी भी नहीं, वे अवश्य मँगा लें। मूल्य भी कुछ नहीं, सिर्फ़ ।

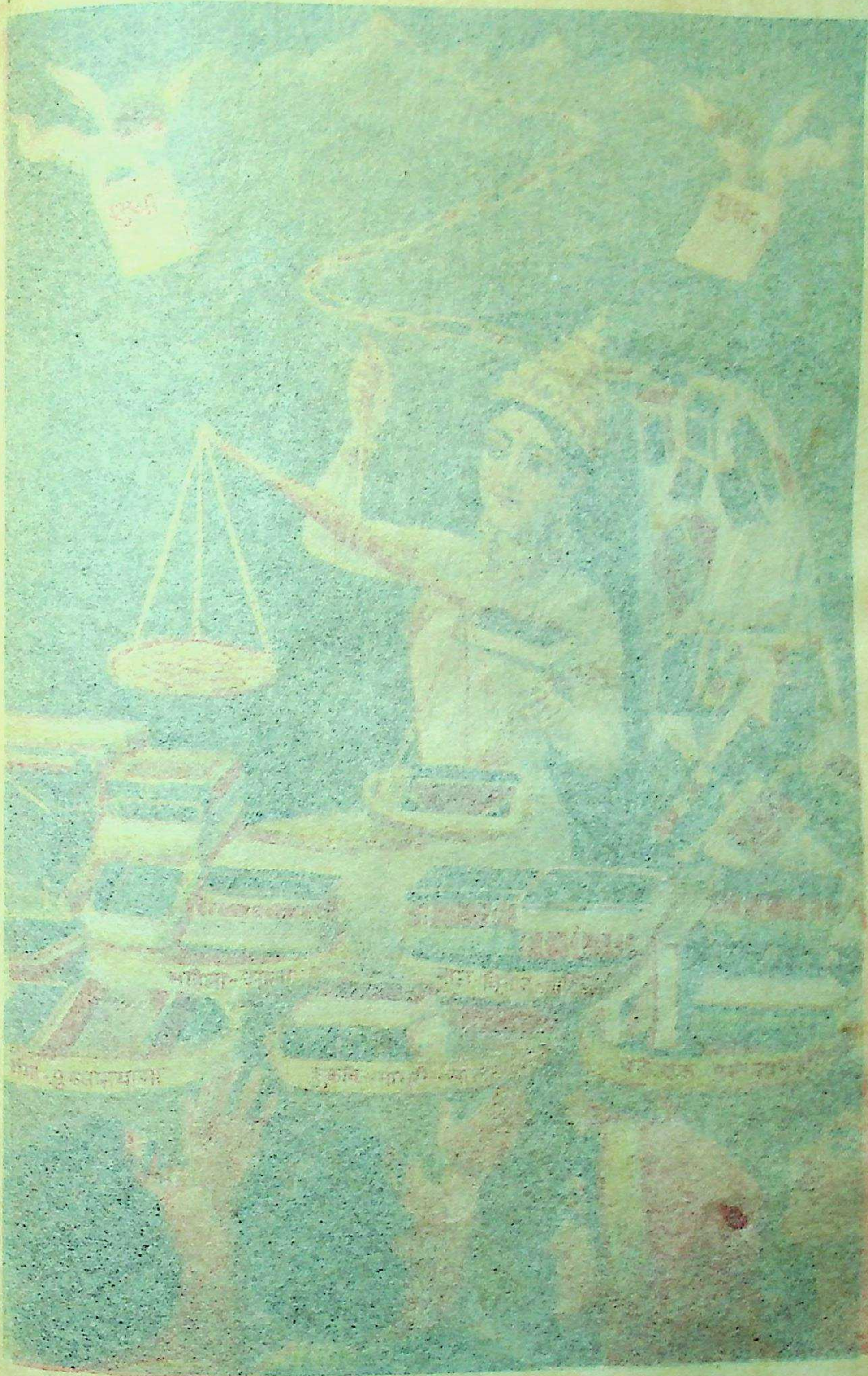
सामुद्रिक विद्या

[लेखक, पं० चंद्रशेखरजी वैद्य शास्त्री]

इस पुस्तक को पढ़कर आप प्रत्येक मनुष्य के मुख आदि अंगों को देखकर फ़ौरन ही बता सकते हैं कि उसकी आयु कितनी होगी और उम्र के किस वर्ष में कितना सुख या दुख होगा, पुत्र या कन्या होंगी। केवल अंग देखकर ही उसके बाँझ, विधवा, नपुंसक होने की बातें भी बता सकते हैं। राजा या प्रजा, धनी या दरिद्री, पंडित या मूर्ख रहने की बात आप इस पुस्तक के द्वारा देखकर तुरंत बता सकते हैं। थोड़े ही दिनों में लगभग ५० पत्र हमारे पास ऐसे सज्जनों के आए हैं जिन्होंने धन्यवाद देते हुए लिखा है कि हम आपकी 'सामुद्रिक विद्या'-पुस्तक के सहारे धन उपार्जन कर रहे हैं। मूल्य १।।), सजिल्द २)

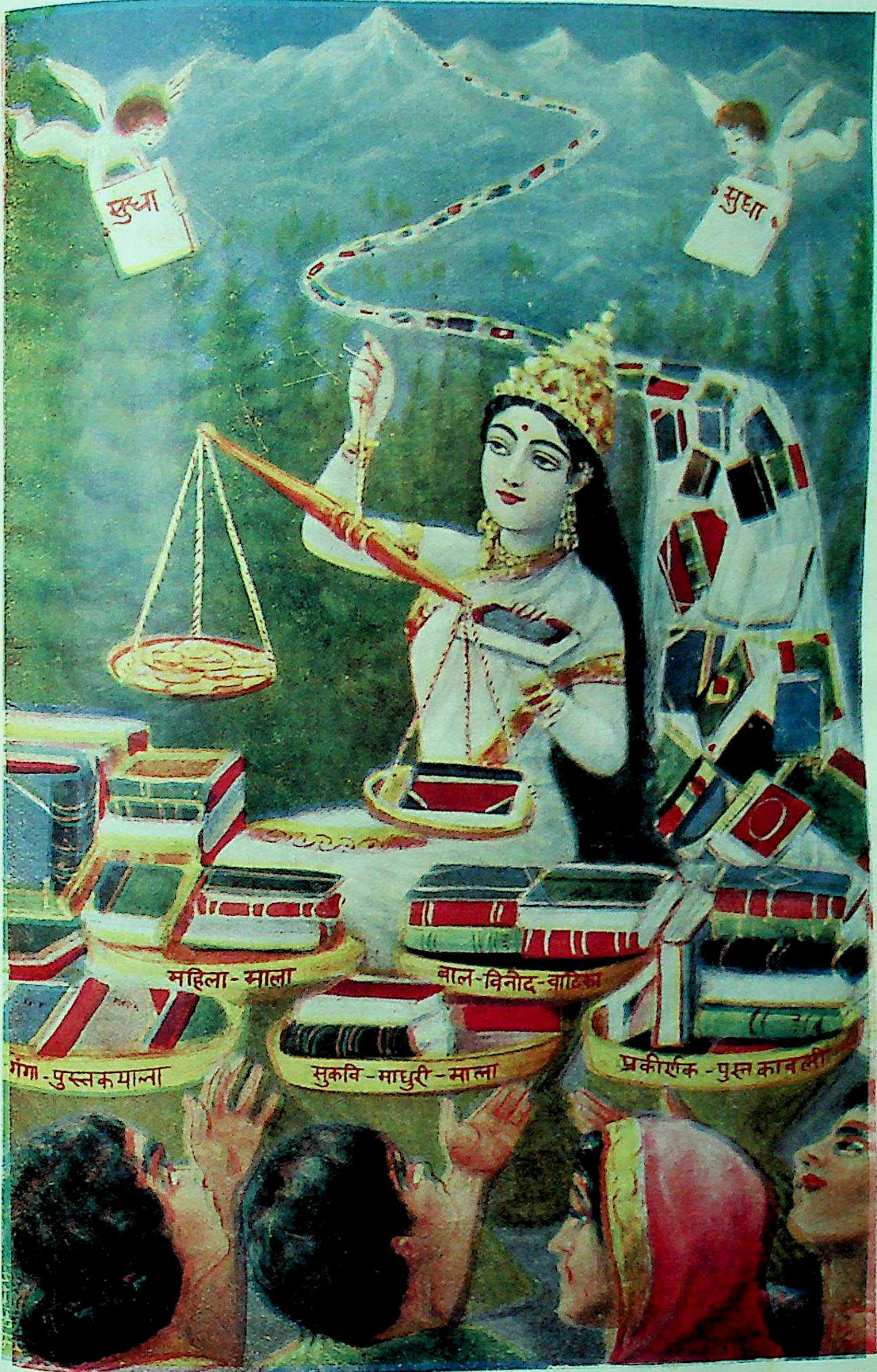
तीनो पुस्तकें एक साथ मँगाने पर ३।।) में मय डाक-महसूल के मिलेंगी।

मँगाने का पता—मैनेजर ब्राह्मी-प्रेस, नं० ११, अलीगढ़



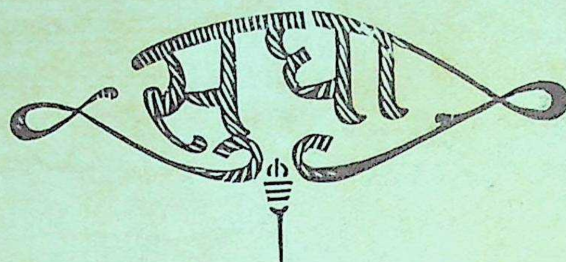
साहित्य-गंगा

Ganga Fine Art Press, Lucknow.



साहित्य-गंगा

Ganga Fine Art Press, Lucknow.



सर्वश्रेष्ठ पत्रिका क्यों है ?

इसका कारण ढूँढ़ने दूर नहीं जाना पड़ेगा। किसी बड़े स्टेशन पर, डीलर के बुकस्टाल पर, या अपने शहर या गाँव की किसी लाइब्रेरी में जाकर सुधा की कोई भी संख्या उठाकर आप देखेंगे, तो आपको मालूम हो जायगा—



ही हिंदी की सर्वोत्तम पत्रिका है।

क्योंकि

सुधा—साहित्य और कला की अभूतपूर्व प्रदर्शिनी है।
सुधा—के सभी लेख मौलिक और सुप्रसिद्ध विद्वानों के लिखे होते हैं।
सुधा—में सभी विषयों पर उत्तमोत्तम लेख निकलते हैं।
सुधा—ही बराबर ललित कला पर लेख निकालती है। जैसा कि हिंदी की किसी पत्रिका में नहीं होता।
सुधा—का प्रत्येक चित्र भावपूर्ण मनोहर और कला की दृष्टि से उत्तम होता है।
सुधा—में मोटाई बढ़ाने को भर्ती के लेख और चित्र नहीं दिए जाते।
सुधा—के कार्टून सामयिक और व्यंग्यपूर्ण होते हैं।
सुधा—काग़ज़, छपाई, रूप-रंग, गेट-अप आदि में आदर्श है।
सुधा—हिंदुस्तान के कोने-कोने और प्रत्येक गाँव में पढ़ी जाती है।
सुधा—हिंदुस्तान के बाहर सभी मुल्कों में सुधा पढ़ी जाती है।
सुधा—विज्ञापन का सबसे अच्छा साधन है।
सुधा—को सभी विद्वानों और कलाकारों ने सर्वश्रेष्ठ बनाया है।
सुधा—ही एक ऐसी पत्रिका है जो अँगरेज़ी की पत्रिकाओं से टक्कर ले सकती है।
सुधा—का प्रत्येक अंक स्थायी साहित्य की सर्वोत्तम सामग्री है।
सुधा—पहली ही संख्या से ७२०० छपती, जैसा सौभाग्य हिंदी की किसी भी पत्रिका को आज तक प्राप्त नहीं हुआ है।

अगर आप अभी तक सुधा के ग्राहक न हुए हों, तो शीघ्र ६॥) मनीआर्डर भेजकर ग्राहक हो जाइए। विलंब मत कीजिए। नहीं, तो इसके पिछले अंक फिर दुर्लभ हो जायँगे।

मैनेजर सुधा, लखनऊ



हमारा महिला-समाज



माज में स्त्रियों का कितना महत्त्व-पूर्ण और प्रभावोत्पादक स्थान है, इसे यहाँ बतलाने की आवश्यकता नहीं। पत्नियों और माताओं के ऊपर ही उनकी भावी संतति के चरित्र-निर्माण का कार्य अवलंबित रहता है। माताएँ अपने बच्चों को जो चाहें बना सकती हैं, और इस हालत में यह स्पष्ट है कि किसी भी देश की स्त्रियों पर उस देश के उत्थान, विकास, उन्नति और श्रेयस् का कितना अधिक उत्तरदायित्व होता है। जिस समाज की स्त्रियों की बुद्धि विकसित नहीं होती, जहाँ की स्त्रियाँ विदुषी और शिक्षिता नहीं होतीं, अवश्य ही वहाँ का समाज पतनोन्मुख होता है। उसकी उन्नति और विकास नहीं हो पाता, और न ऐसे समाज में वैसे नर-रत्नों का ही प्रादुर्भाव होता है, जो अपनी प्रशंसनीय प्रतिभा, अद्भुत व्यक्तित्व, अपूर्व त्याग, अलौकिक देश-प्रेम, अथक परिश्रमशीलता, अनुकरणीय कर्तव्य परायणता आदि सद्गुणों से उस देश का मस्तक संसार में ऊँचा करते हैं। परंतु आज भारतवर्ष के इस आधे अंग महिला-समाज की कितनी बुरी हालत है! करोड़ों स्त्रियाँ पर्दे के अंदर पड़ी-पड़ी सड़ रही हैं, जहाँ वे शुद्ध वायु में साँस भी नहीं ले सकतीं, जहाँ उन्हें चंद्र और सूर्य के प्रकाश के दर्शन भी दुर्लभ हैं, जहाँ वे शीत और गर्मी में गठरी के समान बैठकर और बरसात की नमी में मक्खियों और मच्छड़ों को अपना अमूल्य रक्त अर्पण करके केवल कुल-मर्यादा के थोथे पाखंड पर अपने स्वास्थ्य का बलिदान करती रहती हैं, और पुरुष की घृणित वासनाओं एवं अनुचित सेवाओं के लिये बरबस बाध्य की जाती हैं। कैसा यातनामय जीवन है! इससे तो जेल के क़ैदियों का जीवन भी सुखमय होता है। कम-से-कम वे प्रकृति के अमूल्य दान, स्वच्छ वायु और उज्ज्वल प्रकाश से तो वंचित नहीं किए जाते। वहाँ उन पर किसी की अनुचित और घृणित इच्छा-पूर्ति के लिये तो दबाव नहीं डाला जाता। क्या नृशंस कृत्यकारी क़ैदियों से भी हमारी माताएँ और बहनें अपराधी हैं? शिक्षा की परमावश्यकता को

जानते हुए भी आज देश में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं, जो स्त्री-शिक्षा पर नाक सिकोड़ते हैं। अपने कुत्सित स्वार्थों की पूर्ति के लिये वे स्त्रियों को ज्ञान के उज्ज्वल आलोक में आने देना घोर पाप समझते हैं, वे किस प्रकार गृह-स्वामिनी के पद से गिरकर पुरुषों के "पैर की जूती" बन गई हैं, और कितने अन्याय-पूर्ण तथा लज्जा-पूर्ण उपायों के द्वारा उन्हें मनुष्य के सभी नैसर्गिक अधिकारों से वंचित करके गुलामों से भी बदतर ज़िंदगी बिताने के लिये पर्दे की नरक-तुल्य चहारदीवारी के भीतर बंद कर दिया गया है। आदि बातें किसी व्यक्ति से छिपी नहीं।

आज कितनी देवियाँ वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह और बाल-विवाह की भेंट चढ़कर जीवन-भर वैधव्य की असह्य ज्वाला में अपना जीवन अहर्निश जलाने के लिये बाध्य की जाती हैं, इसका भी कुछ ठिकाना है? इन अनंत अत्याचारों से ऊबकर कितनी अबोध महिलाएँ नित्य गुंडों के चरण पर अपना स्वर्गीय सतीत्व निछावर-कर सदैव के लिये दीन-दुनिया से हाथ धो बैठती हैं। हम हज़ार चेष्टा करने पर भी नहीं समझ पाते कि जो पुरुष एक पत्नी के मरते ही—कभी-कभी एकाधिक रूपवती और पति-परायणा पत्नियों के जीवित रहते हुए भी दूसरा विवाह कर लेता है, उसे क्या अधिकार है कि वह अपनी पत्नियों से पातिव्रत-धर्म के पालन की आशा रक्खे, अथवा वह विधवा स्त्रियों को पुनर्विवाह न करने का उपदेश दे? विधवा-विवाह का प्रचलन उतनी ही मात्रा में हो जाना चाहिए, जितनी मात्रा में विधुर-विवाह प्रचलित है। यदि विवाह एक धार्मिक संस्कार है, और जीवन में केवल एक ही बार संपन्न हो सकता है, तो विधुर पुरुषों को दूसरा, तीसरा और चौथा विवाह करने की अनुमति किस प्रकार मिल जाती है, जब कि स्त्रियों को एक बार विधवा होने के बाद पुन-र्विवाह करने की अनुमति नहीं दी जाती। धर्म को पालन करना पत्नी के लिये उतना ही आवश्यक है, जितना पति के लिये। एक स्त्री के जीवित रहते हुए भी पुरुष अनेक विवाह कर लें, परंतु स्त्रियों को वैधव्यावस्था में भी पुनर्विवाह का अधिकार नहीं। री स्त्री-जाति! भारत-भू के पवित्र हृदय-पटल पर देवियों के प्रति होनेवाले इन दुःसह अत्याचारों अंत कब होगा भगवन्!

इस अवस्था में किस प्रकार की उन्नति की आशा की जा सकती है? जिस स्रोत से पानी निकलता है, जब वही ज़हर हो गया, तो फिर जीवन की आशा व्यर्थ है। यदि यह इच्छा हो कि हिंदू-जाति पुनः जीवित हो, और उसकी पहली-सी अवस्था हो, तो सबसे पहले आवश्यक बात यह है कि स्त्रियों की अवस्था का सुधार हो। जब स्त्रियाँ समझ-बूझवाली होंगी, घरों को स्वयं सँभाल लेंगी। जब घर सँभल गए, तो सारी जाति का सुधार हो गया। संसार की संपूर्ण उन्नति या अवनति केवल स्त्रियों की अवस्था पर है। इसलिये प्रत्येक राष्ट्र को उन्नत बनाने के लिये सबसे पहले सुशिक्षित माताओं की ही आवश्यकता है। यह सृष्टि स्त्री-रूप है। इसको माया का बाण बताया गया है। संपूर्ण देशों और जातियों की भली-बुरी जैसी अवस्था दिखाई दे, समझ लेना चाहिए कि वह स्त्रियों की अवस्था का ही फल है। किसी घर के लड़के को देखकर अनुभव कर सकते हैं कि उसकी माताएँ और बहनें कैसी हैं, किसी कुल के पुरुषों की अवस्था विचार करने से मालूम हो जायगा कि उनकी प्रतिष्ठा, साहस और वीरतादि में उनकी माताओं का दूध काम कर रहा है। स्त्री ही मान और मर्यादा है, स्त्री ही धर्म और कर्म है। स्त्री ही से घर बनता और बिगड़ता है। स्त्री ही से राज्य बनता और बिगड़ता है।

मुझको मानुषी इतिहास में कोई समय ऐसा दिखाई नहीं दिया, जिसको बनाने या बिगाड़ने में किसी स्त्री के हाथ ने काम न किया हो। जब स्त्रियाँ अच्छी होती हैं, जाति और देश सुधर जाते हैं। जब स्त्रियाँ ख़राब होती हैं, तब देश और जाति पर तबाही आ जाती है। जब स्त्रियाँ बुद्धिमती और धार्मिक होती हैं, तब संसार में ज्ञान और विवेक आता है

अब स्त्रियाँ मूर्ख और ज्ञान-हीन होती हैं, तो संसार में अविद्या-अंधकार फैला है।

अशिक्षिता होने तथा मानसिक एवं नैतिक शक्तियों का विकास न पाने के कारण हमारे देश की महिलाएँ प्राकृतिक रूप से संकीर्ण, दुराग्रह, अविचारी एवं अज्ञानी हैं। संसार उन्नति के पथ पर तेज़ी से दौड़ा जा रहा है, परंतु वे मूर्खता-पूर्ण और अनिष्टकारी अंध-विश्वासों से जकड़ी हुई, शिथिल होकर एक ही स्थान पर पड़ी हुई हैं, तथा अपनी संतानों की स्वतंत्रता और उन्नति के विरुद्ध अपनी शक्ति लगा रही हैं। अपनी अज्ञानता के कारण वे अपने पतियों के उद्योग एवं आदर्शों को न समझकर उनके प्रति सहानुभूति ही नहीं रख सकती हैं। अपनी अज्ञानता के कारण वे पाश्चात्य महिलाओं की भाँति अपने पतियों की सहायिका, जीवन-संगिनी, मंत्रिणी नहीं हो सकतीं। इस स्थिति में यदि मा स्वयं अज्ञानी, अंध-विश्वासी और उन्नत विचारों की विरोधिनी है, तो उसके पुत्र से क्या आशा की जा सकती है? जिस मनुष्य के कानों में उसके शैशव काल से ही विद्युच्छक्ति-संपन्न वाक्यामृत पड़ेगा, वह देश पर जान देनेवाला और मातृभूमि का अनन्योपासक होकर स्वाधीनता देवी की वेदी पर सर्वस्व निछावर कर देनेवाला क्यों न होगा?

देवियो! देश की उन्नति और अवनति तुम्हारे हाथ में है। तुम जैसा चाहो, वैसा बना दो। पुरुष तुम्हारे जिलाने से जीता और तुम्हारे मारने से मरता है। कौन शक्ति है, जो तुम पर प्रबल आए, तुम विद्या, बुद्धि और शक्ति का भंडार हो। तुम्हारे हृदय में साहस और वीरता का समुद्र भरा है। तुम यदि चाहो, तो देश की गिरी हुई अवस्था अभी सुधर जाय। यदि तुमने महाभारत और लंका की लड़ाई कराई, तो तुम्हीं ने कपिल और गौतम-जैसे महात्माओं को उत्पन्न करके शांति का राज्य भी स्थापित किया है। तुम संसार में जीवन-प्रदान करने आई हो। लोक-लाज, इज़्ज़त-आबरू तुम्हीं हो, तुम्हीं सबकी माता हो। तुम अपने कर्तव्य को समझो, और अपने घरों के पुरुषों को इस प्रकार की बुद्धि प्रदान करो कि वह सँभल जायँ, और सारे भारत का कल्याण हो। तुम्हारा आविर्भाव पुरुषों के जगाने के लिये ही हुआ है। निदान तुम कब तक सोती रहोगी? उठो, जागो, और देश के दुःख-दरिद्र को मेट दो। लक्ष्मी बनकर सब स्थान में सुख और आनंद की ढेरी बखेर दो। सरस्वती बनकर सबको विद्या और बुद्धि प्रदान करो। यह तुम्हारा कर्तव्य है। देश और संसार की गति को देखो, और तदनुरूप चलने की चेष्टा करो। तुम में बहुत-सी कुरीतियाँ समा गई हैं। अविद्या के अंधकार में पड़ी कराह रही हो, और अज्ञानता के कारण चेष्टा करने पर भी उससे छुटकारा नहीं होता, अतः इस अंधकार को दूर करने के लिये चेष्टा करो, जिससे देश का कल्याण हो।

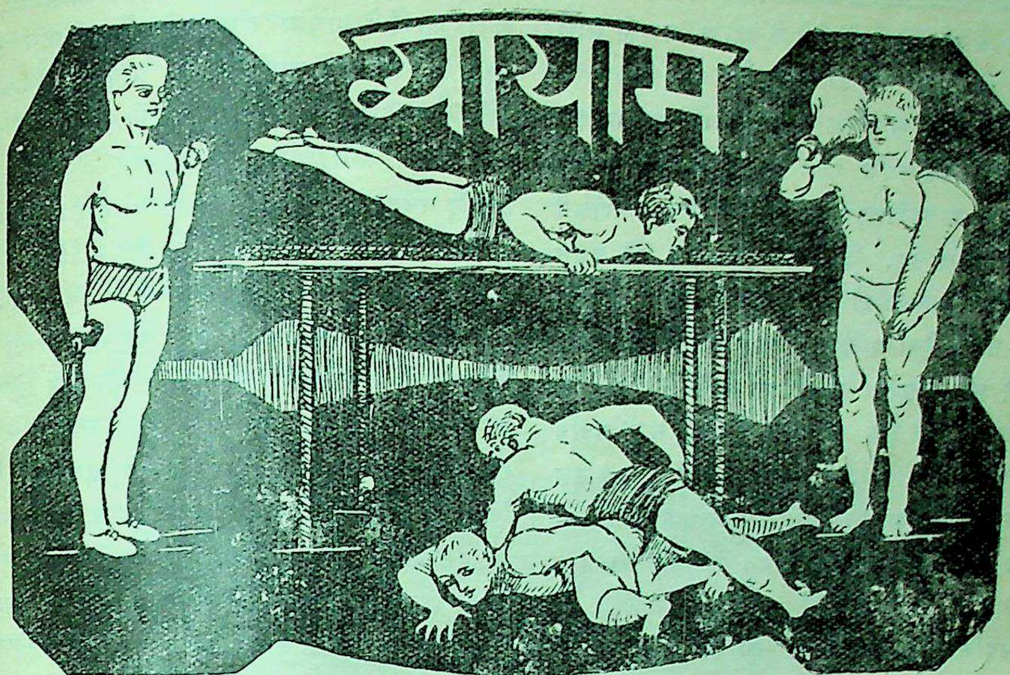
अंत में हमारी अपने देश-प्रेमी भाइयों से भी कर-बद्ध प्रार्थना है कि निर्बल किसी सीमा तक ही पीड़ित किया जा सकता है। जब उत्पीड़न अपनी सीमा पर पहुँच जाता है, तब दैव 'येन केन प्रकारेण' निर्बलों के कष्टों का नाश करता है। बली के चंगुल से उसका त्राण करता है, और आततायी को समुचित दंड देता है। भारतीय महिला-समाज के कष्ट भी अब निर्धारित सीमा तक पहुँच चुके हैं!

हिंदू-शास्त्रकारों ने स्त्रियों के साथ, जैसे किन्हीं लोगों की धारणा है, सदैव कठोर व्यवहारों के लिये आदेश नहीं दिया, बल्कि वहाँ उनके प्रति प्रशंसात्मक तथा गौरव-वर्द्धक वाक्य भी पाए जाते हैं।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः; यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।" किंतु हिंदू-समाज आज अवनत दशा में है, और वह अपने उच्चादर्शों से इतना अधिक गिर गया है कि उससे इस संबंध में सुधार की आशा करके हाथ-पर-हाथ रक्खे बैठना भारी भूल है! इस समय ऐसे उपाय ढूँढ़ निकालने की बड़ी भारी आवश्यकता है, जिनमें महिला-समाज की वर्तमान अवस्था में शीघ्र ही संतोष-जनक परिवर्तन हो सके। लाभ क्रांतिकारी

उपायों के द्वारा ही हो सकता है, और उन्हीं के द्वारा इस सुषुप्तावस्था-प्राप्त समाज में जागृति और हल-चल पैदा हो सकती है। राष्ट्र-निर्माण में महिलाओं का महत्त्व है। इस विषय पर कई विद्वानों द्वारा काफ़ी प्रकाश डाला जा चुका है। उनका मत है, और इसमें लेश-मात्र भी संदेह नहीं कि महिलाओं के उत्थान के विना राष्ट्र का उत्थान हो ही नहीं सकता, क्योंकि भावी राष्ट्र की निर्माता वे ही हैं, परंतु बड़े दुःख की बात है, उनको अविद्या ने ऐसा अंधा बना दिया है कि वह नीचतम परिस्थिति में पहुँच गई हैं, और इसी कारण देश की परिस्थिति भी उत्तरोत्तर ख़राब हो गई है। अतः उन्हें सुधारने की बड़ी भारी आवश्यकता है, अन्यथा देश का पतन अवश्यंभावी है। हम देश-सुधार के लिये चाहे जितनी चेष्टाएँ करें, जब तक मातृमंदर नहीं सुधरेगा, बलवान् पुरुष-समाज के स्वार्थ-पाश से उसका उद्धार नहीं होगा, तब तक पुरुष किसी भी उद्योग में सफल नहीं होंगे। अतः उपर्युक्त उपायों को कार्य-रूप में परिणत करके हिंदू-महिलाओं के कष्टों का अंत करना चाहिए, और पुनः शिक्षित बनाकर राष्ट्र-निर्माण के योग्य बनाना चाहिए, तभी हमारा, हमारी जाति का और हमारे राष्ट्र का कल्याण है!

कुमारी सत्यव...



स्त्रियों के व्यायाम

(१२)

लड़कियों के व्यायाम



ब तक रजोदर्शन न हो, तब तक कन्या-काल माना जाता है। कन्याओं के लिये वे सब व्यायाम हित-कर हो सकते हैं, जिन्हें लड़के कर सकते हैं। कन्या-पाठशालाओं में शारीरिक उन्नति के लिये लड़कियों से अवश्य व्यायाम कराना चाहिए। हम देखते हैं कि शिक्षा-विभाग जितना लड़कों के व्यायाम की तरफ़ ध्यान देता है, उतना लड़कियों के व्यायाम की ओर नहीं। यह पक्षपात-पूर्ण व्यवहार अन्याय है। शिक्षा-विभाग का स्त्री-जाति के प्रति अक्षम्य अपराध है। वे सब व्यायाम, ड्रिल वग़ैरह कन्याओं से भी कराए जा सकते हैं। जो खेल लड़के खेलते हैं, वे प्रायः सभी कन्याओं के लिये भी उपयुक्त हैं। दौड़-भाग, कूद-फाँद, डंबेल के व्यायाम, आसनों के व्यायाम, पैरेललबार्स के व्यायाम, सिंगलबार (हॉरिज़ेंटल बार) का व्यायाम, गोला फेंकना, रस्सा खींचना आदि प्रत्येक व्यायाम लड़कियों के लिये भी लाभदायक हैं। ईश्वर वह सुदिन शीघ्र लावे कि फ़ुटबाल, हॉकी, क्रीकेट वग़ैरह खेलों को हमारी बहनें भी खेलती हुई दिखाई पड़ें।

स्कूल के खेलों के अलावा कुछ घरू खेल भी लड़कियों के होते हैं। उन्हें खेलने देना चाहिए। साथ ही माता-पिता को चाहिए कि अपनी पुत्रियों से घरू कार्य जैसे चक्की पीसना, पानी भरकर लाना, रोटियाँ बनाना, चौका-बरतन करना इत्यादि कार्य भी समय-समय पर कराया करें, ताकि वे अपनी ससुराल में जाते ही सब काम फ़ौरन् सँभाल लें, और विना आलस्य के आनंद-पूर्वक हँसते-खेलते सारे घर का काम कर डालें। प्यार में अथवा बेपरवाही से अपनी पुत्री को जो माता गृह-कार्य नहीं सिखलाती, वह उसकी माता नहीं, बल्कि माता-नामधारिणी उसकी दुश्मन है। क्योंकि निकम्मी, ठलवी रहने की

आदत बचपन से डाल देने के कारण उसका सारा जीवन का आनंद नष्ट हो जाता है।

गृह-कार्य के अतिरिक्त बालिकाओं को सभ्यता-पूर्ण और बल-वर्धक खेल खेलने से रोकना नहीं चाहिए । माता-पिता को सिर्फ़ ऐसे खेलों के खेलने से रोकना चाहिए, जिनसे किसी प्रकार की हानि होने की संभावना हो । लड़कियों को बचपन में दौड़ने-भागने देना चाहिए । चाहें तो दंड-बैठक और कुश्ती, ज़ोर, मलखंभ वग़ैरह भी करने दें । मासिक धर्म आरंभ होने तक कन्याओं के लिये सभी मर्दाने खेल खेलने देना कोई बुरी बात नहीं । इस उम्र में कन्याएँ यदि शारीरिक और मानसिक बल अच्छे प्रकार प्राप्त कर लेंगी, तो जीवन-भर बड़े आनंद में रहेंगी।

लड़कियों के सब खेलों को यहाँ लिखना एक प्रकार से व्यर्थ-सा ही है । क्योंकि खेल भी प्रांतीय होते हैं । पंजाब में जो खेल खेले जाते हैं, मदरास में उनसे भिन्न कोई दूसरे ही खेल होते हैं। राजपूताना और बंगाल के खेल एक-से नहीं होते । यू० पी० और गुजरात के खेलों में भिन्नता दिखाई पड़ती है, अतएव कन्याओं के खेलों को यहाँ लिखकर समझाना यद्यपि असंभव नहीं है, तथापि कष्ट-साध्य और व्यय-साध्य कार्य अवश्य है । इसलिये अपने-अपने प्रांतीय उत्तम खेलों को, जो लाभदायक और सभ्यता-पूर्ण हों, प्रत्येक लड़की को नित्य अवश्य खेलना चाहिए। इस प्रकार नित्य के नियम-बद्ध खेलों के व्यायाम से शरीर में फुर्ती, तेज़ी, चपलता, सौंदर्य, बल और बुद्धि का विकास होता है।

लड़कियों को प्रायः नाचने का बहुत शौक़ होता है। नाचना एक उत्तम व्यायाम है । नाचने में भी मेहनत होती है । इसमें शारीरिक और मानसिक, दोनो प्रकार का व्यायाम होता है। नाचने आदि की क्रिया से—अंग-भंगी से—शरीर को मेहनत पड़ती है, और ताल पर विचार रखने से मानसिक श्रम भी हो जाता है । नाचना भारत की प्राचीनतम रीति है । आर्यों के प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में नृत्य-गान की आज्ञा है, और इस नृत्य-विधि को आयु बढ़ानेवाला माना है। "नृत्" शब्द का ऋग्वेद में—

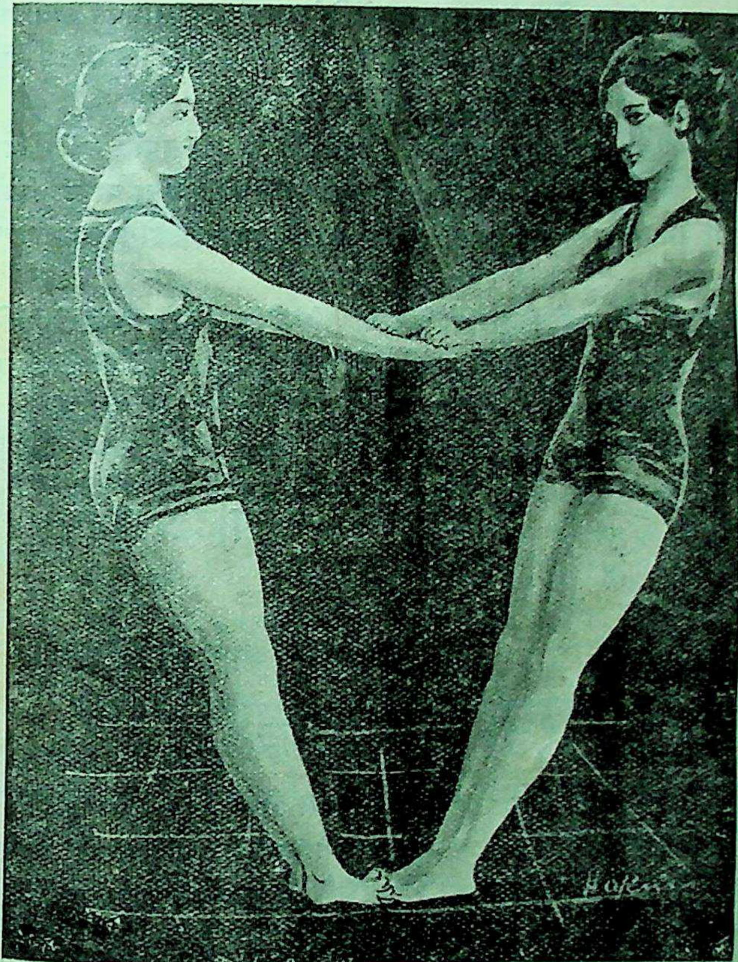
"अधिवेशांसि वपते नृतूरिव ।"

इत्यादि वचनों में उपयोग किया गया है। इसी अर्थ के द्योतक और भी अनेक शब्द वेद में आए हैं। इत्यादि बातों से प्रमाणित होता है कि वैदिककालीन जन-समाज में भी नाचने की कला का अस्तित्व था। ऐतिहासिक स्त्रियों की तथा पुरुषों की ओर देखा जाय, तो वे भी इस कार्य को अच्छा समझते थे। सरस्वती, पार्वती आदि स्त्रियों तक ने इस विद्या में निपुणता प्राप्त की है। महाराजा विराट के यहाँ उन की पुत्री उत्तरा को नाच-गान की शिक्षा देने के लिये अर्जुन (बृहन्नला)-जैसे वीर नियत हुए थे। मीरा बाई भक्ति में तन्मय होकर नाचा करती थीं। विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर नाच के द्वारा ही भस्मासुर से शंकर की प्राण-रक्षा की थी। शंकर-जैसे योगी भी नाचते थे। नारद-जैसे देवर्षि, श्रीकृष्ण-जैसे महापुरुष, रावण-जैसे प्रतापी लोग भी नाच के अच्छे पंडित थे। सारांश यह कि नृत्य एक विद्या है। स्त्रियों के लिये यह एक व्यायाम है। आजकल के युग में नृत्य को हेय दृष्टि से देखते हैं, किंतु वास्तव में यह कोई बुरा कार्य नहीं। आज सभ्य कहलानेवाला देश योरप भी नाच को उत्तम समझता है। प्रत्येक योरपियन स्त्री को नाचना आता है। माना कि उनका नाच एक विचित्र ढंग का इधर-उधर लंबी-चौड़ी टाँगें फेंकने का होता है, परंतु नाच को वे अच्छा समझते हैं। हमारे ख़याल से नाचना स्त्रियों के लिये एक अच्छा व्यायाम है।

भारत में सर्वत्र अब भी लड़कियाँ एक खेल खेलती हैं। वह एक रूप में सब जगह खेला जाता है। हाँ, प्रांतों के अनुसार नाम-भेद अवश्य पाया जाता है। इस खेल को एक प्रकार का नाच कहा जा सकता है। इस खेल को फुंदी, फुगगी, छेंका-छेंकी इत्यादि नामों से पुकारते हैं। इसके खेलने की विधि यह है

कि दो बराबरवाली अर्थात् उँचाई में समान क़दवाली लड़कियाँ आपस में दोनो हाथ पकड़ती हैं। हाथ पकड़ने का ढंग यह है कि एक लड़की अपना हाथ अधखुली मुट्ठी की तरह रखती है, और दूसरी भी उसी तरह हाथ रखकर अपने हाथों को औंधे करके उसके सीधे हाथों की उँगलियों में अपनी उँगलियाँ फाँस देती है। एक का दाहना और दूसरी का बायाँ हाथ मिलकर भी यह खेल होता है, और एक का दाहना दूसरी के दाहने हाथ में और बायाँ बाएँ हाथ में डालकर भी यह खेल होता है। इन हाथों के बल पर दोनो को खिंचाव देकर सारे शरीर का वज़न होना चाहिए। अर्थात् एक दूसरे को खींचे हुए रक्खें। पैरों के पंजे दोनो के आमने-सामने मिले हुए हों। अब चक्कर लगाओ। पैर धीरे-धीरे वहीं-के-वहीं पर गोल चक्कर में ताल पर सरकते रहें। यह खेल बड़ा ही नयनाभिराम और अच्छा होता है। चित्र नं० २६ को देखकर यह समझा जा सकता है।

जब एक का हाथ दाहना और दूसरी का बायाँ



चित्र नं० २६

और एक का बायाँ तथा दूसरी का दाहना आपस में खिंचा होता है, तब चक्कर खाते वक़्त दोनो एक साथ हाथों में से भी निकल सकती हैं, अभ्यास हो जाने पर यह हाथों में से निकलते हुए फुग्गी खेलना बड़ा ही अच्छा मालूम होता है।

सारांश यह कि स्त्रियों को और कन्याओं को व्यायाम अवश्य करना चाहिए। व्यायाम का आ... कन्या-काल में ही आरंभ कर देना चाहिए। मैं आ... करता हूँ कि बहनें इस पर विचार करेंगी, और ... ही व्यायाम आरंभ करके अपना तथा अपनी ... संतानों का कल्याण करेंगी।

गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इंद्र"

देश-विदेश

इँगलैंड के भावी बजट पर एक दृष्टि

गलत धारणा



धा' के एक अंक में हमने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की थी कि यह धारणा सरासर ग़लत है कि किसी प्रकार भी इस समय ऐसी स्थिति है, जिससे यह अनुमान किया जा सके कि इँगलैंड एकदम आर्थिक गर्त में है, किंतु इस बात से यह धारणा नहीं होनी चाहिए कि जनता की औद्योगिक तथा व्यावसायिक उन्नति के समान सरकारी आय-व्यय अर्थात् बजट भी उन्नत है ! आज इँगलैंड की जो दुर्दशा देख पड़ती है, उसका एक-मात्र कारण यह है कि स्वयं इँगलैंड की सरकार का आय-व्यय इतना विकृत हो गया है कि वह जनता को किसी-न-किसी प्रकार दबाकर उसके द्वारा अपना हिसाब-किताब ठीक कराना चाहती है, और परिणामतः सरकार के साथ जनता भी सिसकती चलती है ।

इँगलैंड में जिस दल का बहुमत होता है, उसी का शासन होता है । आज अनुदार तो कल लिबरल, तो फिर साम्यवादी अधिकारारूढ़ हो जाते हैं । प्रत्येक की अर्थ-शास्त्र के विषय में भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ और धारणाएँ हैं । किसी का विश्वास है कि द्रव्य का केंद्रीकरण होना चाहिए, तो किसी का विश्वास है कि इसका समाज में समान वितरण ही श्रेयस्कर होगा ! पर यह तो प्रजातंत्र की साधारण कमी है कि इसमें केंद्रिक तथा नियमित नीति हो ही नहीं सकती प्रसिद्ध हँसोड़ पत्र 'पंच' (लंदन) के संपादक ने भारतीय गोलमेज़ी प्रतिनिधियों द्वारा दी गई दावत में कहा था—"आप लोग व्यर्थ अपने यहाँ प्रजातंत्र की सृष्टि करना चाहते हैं ! हमें देखिए, हम इससे कितना ऊब उठे हैं !" इसी प्रकार के प्रजातंत्र के प्रति 'निराशा' के संवाद प्रायः मिलते हैं । कलकत्ते के 'लिबर्टी'-नामक अँगरेज़ी दैनिक का लंदन-स्थित

विशेष संवाददाता लिखता है—"इँगलैंड में आए दिन की राजनीतिक चख़चख़ से ऊबकर एक ज़बर्दस्त फ़ैसिस्ट दल तैयार होता जा रहा है।"

विरोध-स्तंभ

संपूर्ण विरोध तथा विच्छेद का मूल-कारण आर्थिक प्रश्न है, और इँगलैंड में जनता का इस विषय में विश्वास-सा होता जा रहा है कि यदि शासक अपनी-वाली न करे, तो हमारी उन्नति का क्रम यथावत् रहे। इसी कारण इँगलैंड के बजट पर जितना अधिक ध्यान दिया जाता है, उतना किसी भी चीज़ पर नहीं दिया जा सकता, और वही सबसे आवश्यक वस्तु है, जो इँगलैंड के शासकों की कसौटी है! ३१ मार्च की तिथि प्रत्येक सभ्य राज्य के जीवन में सबसे विकट तिथि होती है। इसी दिन 'बजट' पेश होता और प्रकाशित होता है, इसी दिन यह पता चलता है कि इस साल देश की दुर्दशा होगी या सुदशा! इँगलैंड की प्रजा जो १) में ।=) सरकार को टैक्स दे देती है, प्रत्येक बजट के अवसर पर यह सोचकर काँपा करती है कि ईश्वर जाने, कहीं नया कर और न लग जाय!

ब्रिटिश-साम्राज्य से इतना घनिष्ठ संबंध होने के कारण तथा ३१ मार्च के अवसर पर इँगलैंड के बजट की चर्चा करना अत्यंत सामयिक होगा।

प्रत्येक बजट के विषय में स्पष्ट बातें तो तब तक नहीं मालूम होतीं, जब तक उसका प्रकाशन न हो जाय। ३१ मार्च, १९२९ ब्रिटिश मज़दूर-दल के जीवन में प्रथम अवसर था, जब उसे राष्ट्र का बजट तैयार करना पड़ा था। उस अवसर पर ब्रिटिश अर्थ-मंत्री मि० फ़िलिप स्नोडन ने अपने बजट के अनुमानों को इस क़दर छिपा रक्खा था कि सारा संसार उत्सुक हो रहा था। किंतु जब बजट प्रकट हुआ, तो संसार को बड़ी ना-उम्मेदी हुई। अन्न पर कर बढ़ गया! अतएव इस वर्ष भी वही मि० फ़िलिप स्नोडन अर्थ-मंत्री हैं, और वही मज़दूर-दल का शासन! अनुदार दल अभी से कूद रहा है कि वह बजट के अवसर पर मज़दूर-दल को दे पछाड़ेगा! बजट-ऋतु का आगमन हो गया है।

बजट क्या तथा कैसा होगा, यह जानने के लि[ए] हम ३१ दिसंबर, १९३० तक को बजट की दशा [का] वर्णन करेंगे। ३१ दिसंबर को बजट का वर्ष अपने [नौ] महीने समाप्त कर लेता है, और उसी से अनु[मान] होने लगते हैं।

प्रथम नव मास

इँगलैंड—ग्रेट ब्रिटेन के बजट में लगातार घ[ाटा] ही होता आ रहा है। १९२८ में प्रथम ९ मास [में] ९७,६३,०५,५८ पौंड का नुक़सान हुआ। १९[२९] में १६,९७,९७,५८६ पौंड की हानि हुई थी। [कि]ं[तु] इस वर्ष—३१ दिसंबर, १९३० तक—बज[ट में] १८,०९,००,४८७ पौंड का घाटा रहा!

मि० फ़िलिप स्नोडन को इस विषय में पहले ही भय था कि कहीं बजट में घाटा न पड़े। इसीलि[ए] आपने ब्रिटेन के एक विशेष कोष—रेटिंग-रिलीफ़-[फंड] (Rating Relief Fund) से १६,००,००० पौंड पहले ही खींचकर ख़र्च करने के लिये निका[ल] लिए थे। किंतु इतने से भी काम न चलने पर आ[पने] अन्न पर अतिरिक्त कर (Super-Tax) लगाया। [इस] आर्थिक वर्ष के अंत में इस कर से ४६,५८,००० पौंड की विशेष आय होने की संभावना थी। [इस] हिसाब से ३१ दिसंबर, १९३१ तक इस म[द से] ३३,८०,००,०० पौंड की आय होनी चाहिए। किंतु [यह] तो अनुमानित आय है, और इसके आधार पर [कोई] क़यास नहीं किया जा सकता। फिर भी अभी [तक] जो लक्षण हैं, उनसे यही प्रकट होता है कि [इस वर्ष] में पूरा घाटा होगा। गत वर्ष अपना बजट [पेश करते] समय मि० स्नोडन ने यह आशा प्रकट की [थी] कि कम-से-कम २२,३९,००० पौंड की आम[दनी] होगी। पर लंदन के 'टाइम्स' पत्र का आर्थिक संपादक इस विषय में स्पष्टतः स्वीकार करता है— "मि० स्नोडन ने जिस रक़म के लाभ की आशा प्रकट की थी, वह तो न होगा, पर उसके बदले बहुत घाटा रहेगा। आय-कर का अधिकांश [भाग] वर्ष के अंत में एकत्रित होता है, इस कारण या

नहीं कहा जा सकता कि कितना घाटा होगा, पर "कमी" तो अनिवार्य प्रतीत होती है। इसका परिणाम यह होगा कि प्रतिवर्ष राष्ट्र का जो संचित कोष (Sinrkig Fund) होता है, उसमें जो रक़म रक्खी जाती है, वह न रक्खी जायगी, और परिणामतः उसी को क्षति होगी। इस वर्ष इस फ़ंड में मि० स्नोडन ने ५५,४०,००,०० पौंड रखने का विचार किया था।"

इसका परिणाम क्या होगा? ब्रिटेन तो अमेरिका का घोर क़र्ज़दार है। उसे उसका रुपया चुकाना है। इसीलिये वह संचित कोष इकट्ठा करता है। जब यह न हो सकेगा, तो राष्ट्र की सूद की हानि होगी, रुपया देर में मिलेगा, राष्ट्र-मात्र की क्षति होगी!

लंदन 'टाइम्स' का अनुमान ग़लत हो सकता है। वह एक विरोधी दल अनुदार दल का पत्र है, किंतु टाइम्स के दोषारोपण का उत्तर न तो किसी प्रकार मि० स्नोडन ने दिया है और न किसी मज़दूर पत्र ने। यदि कोई उत्तर दिया जाता है, तो वह केवल यही कि "आजकल व्यापार मंदा है", किंतु कोई भी अर्थ-शास्त्री इस पर विश्वास नहीं कर सकता! इसके और भी कारण होंगे!

मज़दूर-दल स्वभावतः मज़दूरों की विशेष चिंता करेगा। वास्तव में इसी चिंता पर उसका पुनः अधिकारा-रूढ़ होना निर्भर करता है। जब मज़दूर-दल का शासन हुआ था, तो उसने यह घोषित किया था कि शीघ्र ही बेकारी की समस्या हट जायगी। इसीलिये एक ख़ास बेकार-मंत्री भी रक्खे गए थे, पर मंत्री महोदय कुछ न कर सके। उलटे इँगलैंड के बेकारों की संख्या इस समय बढ़कर ४० लाख हो गई है। कुछ उपाय न देखकर मज़दूर-सरकार ने बेकारों को 'सहायता' के रूप में बड़ा पैसा ख़र्च किया है। यही नहीं, उन्होंने कई भारी निर्माण-कार्य इसीलिये शुरू कराए हैं कि बेकारों को काम तो मिले। इसी कारण ख़र्च बहुत बढ़ गया था। एक तो यह कारण है।

अनेक कारण

दूसरा कारण जितना ही स्पष्ट है तथा जिसे छिपाने की जितनी ही चेष्टा की जाती है, वह उतना ही प्रकट होता जाता है—वह है सैनिक व्यय! मज़दूर-सरकार ने ही एक ओर निरस्त्रीकरण की बात करते-करते ४ जंगी जहाज़ बनाने की आज्ञा दे दी है, जिससे बहुत कुछ रुपया—कम-से-कम ३ करोड़—उधर खिंच गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि विदेशी राज्यों में संयुक्त-राज्य, अमेरिका का क़र्ज़ चुकाने के लिये जो 'सिंकिंग-फ़ंड' नाम से कोष स्थापित कर रक्खा गया है, उसमें रुपया जमा करने के स्थान पर खींचने की बारी आ रही है। इस फ़ंड में इस व ५५,४०,००,०० पौंड जमा होनेवाला था—अब उलटे हमला होगा। इससे बैंकों में जो रक़म, क़र्ज़ की अदायगी के लिये, जमा होनेवाली थी, वह जमा न होगी, और बैंकों का क़यास ग़लत निकलेगा, जिसका परिणाम यह होगा कि बैंक की दर भी गिर जायगी।

इधर इस लोभ से कि संयुक्त-राज्य सोना अपने स्थायी कोष में एकत्रित कर रहा है, इँगलैंड ने भी यही करना शुरू किया है! किंतु इसका फल उलटा ही निकल रहा है। सोना खींचने से भारत में चाँदी का मूल्य इतना गिर गया है कि वह बहिष्कार-आंदोलन के साथ ही कम पैसे के कारण और भी विलायती माल नहीं मँगा रहा है। भारतीय व्यापार की हानि के कारण सरकार की ज़कात की, चुंगी की, अन्य कर की आमदनी मारी गई है।

बजट की इस क्षति के साथ ही व्यापार का मंदा-पन भी और घातक हो रहा है। यद्यपि इस मंदेपन से इँगलैंड की परवशता नहीं प्रकट होती, किंतु यह तो स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि मज़दूर-दल के शासन के समय ऐसी बातों का होना उसके लिये बड़ा घातक है। हम भारतीय अपनी व्यापारिक अधोन्नति से पिसे जा रहे हैं। ऐसे अवसर पर अपने शासक देश की स्थिति जानने से थोड़ी शांति मिलेगी।

इँगलैंड की आय

लंदन का 'टाइम्स' पत्र इँगलैंड के व्यापारिक

अधःपतन का प्रभाव बड़े मार्मिक शब्दों में व्यक्त करता है । नीचे हम उसका उद्धरण देते हैं—

व्यापार से साधारण आय इस ६ मास में ४३,९३,४३, २९४ पौंड हुई है, जो गत वर्ष से इस अवधि के लिये १६,८६,६०,७६ पौंड अधिक है । आय-कर तथा अतिरिक्त-कर में वृद्धि कर देने से इन दोनो में क्रमशः गत वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष ४०,००,००० पौंड तथा २६,६०,००० पौंड की वृद्धि हुई है । मृत्यु पर जो कर लगते हैं, उससे इस बार ख़ासी आमदनी हुई, यानी १६,९०,००० पौंड । व्यापारिक पतन के कारण इस वर्ष ४०,००,००० पौंड के टिकट कम ख़रीदे गए । आबकारी के मुहकमे से २६,००,००० पौंड कम की आय हुई । आबकारी के मुहकमे से इस वर्ष २३,६०,००० पौंड अधिक आय की आशा की जाती थी, उसका यह उलटा परिणाम निकला है । टेलीफ़ोन पर उन्नति करने के लिये जब सरकार ने १०,००,००,०० पौंड ख़र्च कर दिया है, तब जाकर डाकख़ाने से १७,००,००० पौंड की अधिक आय हुई है । हेग में जर्मनी के साथ हर्जाने के विषय में समझौता हो जाने के कारण उसकी भी आय बहुत कम हो गई है ।

अस्तु, उपर्युक्त तालिका से पता चलेगा कि यद्यपि स्थिति ऐसी चिंताजनक नहीं है, जैसा कि कहा जाता है, फिर भी विरोधी दल के लिये इतनी बात ले उड़ने के लिये काफ़ी है । किंतु मज़दूर-दल के सौभाग्य से दो बातें ऐसी हो गई हैं, जो बजट की कमी का लांछन उसके सिर से उतार सकती हैं ।

अनुदार-दल का कहना है कि मज़दूर-दल ने अपना हिसाब-किताब ठीक न रखकर ख़र्च बढ़ाया है । पर लिबरल दल के नेता मि० लायड जार्ज ने अपनी प्रखर बुद्धि से एक नया कारण ही ढूँढ़ निकाला है । उनका कहना है कि १६२१ में मि० बोनर लॉ ब्रिटेन के प्रधान मंत्री थे तथा मि० बाल्डविन (अनुदार-दल के वर्तमान नेता तथा भूतपूर्व अनुदार प्रधान मंत्री) अर्थ-मंत्री थे । उस समय ब्रिटेन के सिर पर महा-समर के समय का जो क़र्ज़ा अमेरिका से लिया ग[illegible] था, उसे चुकाने की क़िश्त तय करने का बोझ [illegible] मि० बाल्डविन इसकी बातचीत करने के लिये [illegible] गए थे । आप जाकर क़िश्त तय कर आए । यद्यपि [illegible] क़िश्त की रक़म से लोग सहमत नहीं थे, फिर [illegible] अमेरिका की नाराज़गी के डर से कोई कुछ न बोला [illegible] तब से अब तक वही सूरत चली आ रही है । [illegible] लायड जार्ज का कथन है कि तब की रुपए की [illegible] तब का सूद का भाव—इन सबमें अब [illegible] अंतर है, अतएव इँगलैंड से यह रक़म इतनी [illegible] लेनी चाहिए, चूँकि उसे इतनी रक़म इस संगि[illegible] ज़माने में बाहर भेजना पड़ती है, इसी [illegible] उसको रुपए के अभाव के कारण अपने यहाँ [illegible] बरबादी सहनी पड़ती है, अतएव सारा दोष [illegible] बाल्डविन तथा अनुदारों का है, न कि मज़दूर[illegible] का ।

मि० काइंस का मत

अनुदार-दल का कहना है कि बजट की ख़राबी [illegible] एक-मात्र कारण मज़दूर-दल का बड़ा ख़र्चालू [illegible] है । लंदन का 'टाइम्स' तो यहाँ तक लिखता है [illegible] "राष्ट्र के ख़र्चों में कमी केवल सामाजिक नीति [illegible] बात नहीं, किंतु आवश्यक आर्थिक आवश्यकता [illegible] बात है ।"

इस बात की खिल्ली एक संसार-प्रसिद्ध [illegible] शास्त्री ने इस प्रकार उड़ाई है कि अनुदारों [illegible] बहुत बड़ी बात ही कट गई । मि० काइंस का [illegible] अर्थ-शास्त्र-जगत् में बड़े आदर के साथ लिया [illegible] है । आपने अपने एक व्याख्यान में कहा है कि [illegible] समय प्रत्येक बच्चे का धर्म है कि जहाँ तक हो [illegible] जितना हो सके, ख़र्च करे और जितना चाहे [illegible] इस समय एक-एक पैसा बटोरना राष्ट्र का [illegible] काटना है । और एक-एक पैसा ख़र्च करना [illegible] सहायता करना है ।"

यहाँ पर इतना स्थान नहीं है कि इस [illegible] औचित्य या अनौचित्य विचारा जाय । इस उक्ति [illegible]

एक निष्पक्ष अर्थ-शास्त्रीय के कथन से—मज़दूर-दल को बहुत बड़ी आड़ मिल गई है, इसमें कोई संदेह नहीं।

अस्तु। इँगलैंड के बजट-ऋतु के समय भारत का भी बजट-ऋतु रहता है। इँगलैंड से हमारा जो घनिष्ठ संबंध हो गया है, उसके बजट की चर्चा का थोड़ा ज्ञान प्राप्त करना अति सामयिक होगा। उपर्युक्त कारणों से किसकी बात बीस उतरेगी, यह दूसरा प्रश्न है। किसकी बात उचित है, यह तो परिणाम से ज्ञात होगा, पर क्या तूफ़ान उठ रहा है, यह अभी ज्ञात हो रहा है।

श्रीपरिपूर्णानंद वर्मा



बेर का अचार



ड़े-बड़े बेर लेकर उबाल लो (परंतु यह ध्यान रहे कि बेर फटने न पावें), फिर उतारकर ठंडे होने दो। जब ठंडे हो जायँ, तो नमक, मिर्च, हल्दी, धनिया, राई आदि मसाले डालकर उन पर कुछ तेल डाल दो, और तीन दिन तक हिलाती रहो। बाद में कुछ तेल और डालकर रख दो। तीन सप्ताह के बाद काम में लाओ।

मिर्चों का अचार

बड़ी-बड़ी मिर्चं लेकर चीर लो, और उनमें राई, मिर्च, लौंग, इलायची, नमक, धनिया नीबू के अर्क़ में सानकर भर दो, और डोरे से बाँध दो, जिससे मसाला न निकलने पावे। इन्हें सुखा लो। और जब आव-श्यकता हो, नीबू के अर्क़ में डालकर काम में लाओ

अदरक का अचार

अदरक के लंबे-लंबे टुकड़े कर लो, और छुहारे किशमिश को उबालकर छुहारे के भी टुकड़े लो। केवल नमक, काली मिर्च, बड़ी इलायची ... कर काम में लाओ।

चावल के अँदरसे

चावलों को तीन दिन तक पानी में भिगो दो। ... में निकालकर सुखा लो, और उन्हें पीस लो। ... उनमें बराबर का मीठा डालकर माड़ लो और ... छोटी टिकिया बनाकर घी में सेक लो। यह कड़ाहि... से सिकते हैं। एक तो इसके नीचे लगा दी जाती ... और दूसरी से घी डाला जाता है। यह एक ... सिकते हैं।

गायत्रीदेवी वार्ष्णेय



रक्त-शोधक

चोबचीनी ४), उन्नाव १), गावजुबा ४), कबाबचीनी २), वंशलोचन १), इलायची के बीज ३), बनफ़शा १), दालचीनी ४), कमल के फूल १), कासनी के बीज ४), बेग कासनी ४), अनबुल साइब ४), सौंफ़ ४), लाल चंदन ५), सफ़ेद चंदन ५), चोबइयात ७), चिरायता १२), झाऊ १२), सरवाली के बीज १०), चित्रक ८), वर्ग हिना १०), वर्ग कासनी ४), मकोय ४), नीम के फूल ७), नीम के फल ७), उसब्बा १), हिना १), मुनक्क़ा दाख ४), अंजीर ७), आँवला ४), पित्ता ४), गोखरू ४), सनाय ६), बालहरड़ें ६)

उपर्युक्त सब चीज़ों से द्विगुण जल तथा समान भाग शहद मिलाकर अर्क़ निकाल ले।

इससे सब तरह के रक्त-विकार, दाद, खुजली, खोरा पाँव, फोड़े और फुंसी आदि अति शीघ्र नष्ट होकर काया कांचनी कांतिमय हो जाती है।

अपस्मार (मृगी) तथा ढब्बा

कोष्ठावच और काली मिर्च दोनो को समान भाग पीसकर नस्य दे, तो मृगी का वेग शीघ्र नाश हो जाता है। तथा माता के दूध के साथ बालक को पिलाया जाय, तो ढब्बा दूर हो जाता है।

मरहम

कपूर १), सफ़ेद राल १), मुर्दा संग १), मोम १) ५ तोला घी को गरम करके मोम डाल दो। मोम पिघलने के बाद तीनो चीज़ों को बारीक पीसकर डाल दे, और मिलाकर उतार ले। ठंडा होने के बाद इसको स्वच्छ जल में १०० बार धोकर मिट्टी के बर्तन में रख दे। बस, मरहम तैयार हो गया। इससे भयंकर-से-भयंकर घाव भी बहुत जल्द भर जाते हैं।

नीम का मरहम

निबोली का तेल एक सेर लोहे की कड़ाही में डालकर पकावे। गर्म होने के बाद पाव-भर राल तथा एक छटाँक गंदा बिरोजा डाल दे। जब सब चीज़ मिलकर एकजीव हो जायँ, तो मन-भर गरम पानी की कड़ाही में डाल दे। यह तेल जल में डालने से अन्य तेलों की तरह उछलता नहीं, इसलिये कड़ाही में डालते समय डरने की कोई बात नहीं। बाद में तेल जल पर तिर आवेगा, उसको बाहर किसी पात्र में निकालकर किसी मोटे कपड़े से छान ले। मरहम का सार भाग निकल आवेगा, और कीट कपड़े में रह जायगा। इस सार भाग को

कम-से-कम ५० बार जल में धोवे। सफ़ेद रंग का मरहम तैयार हो जायगा। इससे सब तरह के फोड़े-फुंसी, घाव तथा जले हुए घाव और जलन बहुत जल्दी नाश हो जाते हैं।

अनेकरोगहर अर्क़

कपूर ४), अजवायन के फूल १), इलायची का अर्क़ १), कारबोलिक एसिड १) सबको यथाभाग शीशी में भर दे। थोड़ी देर में अर्क़ तैयार हो जायगा।

सिर-दर्द में उपर्युक्त अर्क़ मालिश करने से लाभ करता है। यदि ज़्यादा दर्द हो, तो ख़मीरा बनफ़शा और मुरब्बा बनफ़शा ६ माशे में दो बूँद डालकर खिलावे तथा जिधर के हिस्से में अधिक दर्द हो, उधर के नासा-छिद्र में भी एक बूँद टपकावे।

अधिक कफ गिरनेवाली खाँसी में लेंडी पीपल के चूर्ण में दो बूँद डालकर अर्क़ गाज़बान में मिलाकर दे। यदि सूखी खाँसी हो, तो बेदाना के लुआब के साथ दे। श्वास में खाँसी के मुआफ़िक़ दे।

पसली के दर्द में ४-४ बूँद सौंफ़ के अर्क़ के साथ २-२ घंटे के अंतर से दे, और पसली पर लेप करे सेक कर दे।

मुख से रक्त आता हो, तो २-२ बूँद अर्क़ पोदीने या कुलफ़ा के रस के साथ दे।

नज़ला ज़ुकाम में १-१ बूँद नाक में टपकावे।

अपाचन, खट्टी डकार, अफरा, पेट का दर्द, कलेजे का फड़कना और भूख न लगने आदि उदर-संबंधी व्याधियों में २ से ४ बूँद तक सौंफ़ के अर्क़ के साथ दे।

विशूचिका (हैज़ा) में मिश्री के चूर्ण में १ बूँद दे, और उसके बाद अर्क़ गाज़बान और अर्क़ सौंफ़ मिलाकर २-२ बूँद १-१ घंटे के अंतर से दे।

क़ब्ज़ में ४ बूँद गुलक़ंद के साथ दे।

ढब्बा

सागरगोटा, जमालगोटा और निमोली सब समान भाग लेकर अदरख के रस में घोटकर जुआर बराबर गोली बनाकर १-१ गोली गरम पानी से दे।

महावीरप्रसाद यजुर्वेदी

स्त्री-मात्र का रक्षक व परम हितैषी इष्ट-मित्र

जगत्-विख्यात

Registered ☞ **'कौनटैक्स'** ☜ रजिस्टर्ड

इसके सेवन से गर्भ स्थापित नहीं होता, जो स्त्रियाँ गर्भ-धारण करना और अधिक संतान उत्पन्न करना नहीं चाहतीं, वे 'कौनटैक्स' के सेवन से कभी गर्भवती नहीं होतीं। क़ीमत फ़ी शीशी १॥) रु०, डाक-ख़र्च ।=)

पता—आनंदजीवन-फ़ार्मेसी, आगरा

२१ साल के प्रयोग से) **११००) इनाम** (पूर्ण यशस्वी साबित हो चुका है

सुप्रसिद्ध वैद्य मोहनलालसिंह मिरजवाले का

मदनमस्त-पाक (रजिस्टर्ड)

अत्यंत धातु-पौष्टिक, शक्ति-वर्धक, कामोत्तेजक, मूल्यवान्, भिन्न-भिन्न प्रकार की ६० वनस्पतियों द्वारा बनाया गया है। इस पाक से स्वप्नावस्था में और पेशाब के साथ धातु का गिरना बंद न हो, तो दाम वापस करेंगे। हस्त-मैथुन से अथवा अधिक स्त्री-प्रसंग के कारण आई हुई नामर्दी, कमजोरी, धातु का पतलापन, अशक्तता, स्त्री की इच्छा होते ही शीघ्र वीर्य गिर जाना, गरमी, कमर का दर्द, बीमारी से उठे पीछे की अशक्तता, हाथ-पैर और पेशाब का दाह, ये सब रोग एक ही डिब्बे से काफ़ूर होकर दस्त साफ़ होता है। भूख, शक्ति और तोल एकदम बढ़ जाती है। शरीर को लोहे के समान मज़बूत बनाकर वीर्य को पुष्ट और संतति को योग्य बनाता है। इस पाक से ६० वर्ष के वृद्धों को भी युवावस्था का अनुभव होने लगता है, तो क्या युवकों को पुरुषत्व, बल, तेज प्राप्त नहीं हो सकेगा? इसके प्रयोग से स्त्रियों का सफ़ेद और लाल प्रदर नष्ट होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है। २१ दिन तक दोनो समय की ख़ूराक ८४ तोले के डब्बे का मूल्य ५) रु०। डा० ख़० ।||-) कोई परहेज़ नहीं। सेवन-विधि डब्बे के साथ भेजते हैं। इसमें ६० भिन्न-भिन्न वनस्पतियों का संयोग न हो या धातु-पौष्टिक और शक्ति-वर्धक साबित न हो, तो शर्त से ११००) रु० इनाम-रूप में देंगे।

सूचना—कृपया अन्य किसी का अनुभव हमारे सिर न रक्खें। स्वयं उपर्युक्त पाक मँगाकर प्रयोग में लाएँ, और अपनी सम्मति दें। इस पाक की अधिक प्रशंसा करना व्यर्थ है, सिर्फ़ इतना ही कह देना काफ़ी है कि जिस किसी के रोग के मुक्त होने का समय आ गया होगा, वही इस पाक को मँगाने की इच्छा कर सकेंगे।

वैद्य मोहनलाल एस्० औषधालय, पोस्ट मिरज, S. M. C.

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।



१. साहित्य

हिंदी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास—लेखक, विद्याभास्कर, वेदांतरत्न श्रीसूर्यकांत शास्त्री व्याकरणतीर्थ, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्० अध्यक्ष हिंदी-विभाग डी० ए० वी० कॉलेज, लाहौर। प्रकाशक, मेहरचंद लछमणदास संस्कृत-बुकडिपो, लाहौर। पृष्ठ-संख्या ६३० ; मूल्य ३॥) सजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने हिंदी के प्रमुख कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन करते हुए हिंदी-साहित्य के इतिहास का रसवद् व्याख्यान किया है। पुस्तक की भूमिका विशद, प्रौढ़ तथा विद्वत्ता-पूर्ण है। इसमें लेखक ने हिंदी-भाषा के जन्म और विकास संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू तथा हिंदी-साहित्य में नाट्य-कला की अपेक्षाकृत न्यूनता तथा प्रशस्तियों की भरमार इत्यादि मार्मिक प्रश्नों पर मौलिक तथा गवेषणा-पूर्ण विचार किया है।

प्रथम तथा द्वितीय अध्याय में प्राचीन चारणों की कविता पर विचार करके तीसरे अध्याय में लेखक "वैष्णव-धर्म तथा ईसाई-मत" के आदान-प्रदानात्मक संबंध पर विस्तृत विचार करता है और बार्थ (Barth) आदि पाश्चात्य विद्वानों के पक्षपात-पूर्ण मतों का खंडन करता हुआ हिंदी-साहित्य के प्रमुख आधार वैष्णव-धर्म की मौलिकता को सिद्ध करता है।

चतुर्थ अध्याय में रामानंद आदि के काल तथा कृतियों पर विचार करके पाँचवें अध्याय में कबीर की विश्वजनीन कविता का अत्यंत सरस तथा दार्शनिक विवेचन किया गया है। ७८ से ६८ पृष्ठ तक तो पुस्तक पढ़ते ही बनती है। सरस प्रकरणों में लेखक का रस-स्निग्ध हृदय पागल करने की भाँति बड़े वेग से बह निकलता है। उसका स्वर गंभीर, विचार दार्शनिक, दृष्टि विश्वजनीन शैली रुचिर और भाषा प्रौढ़ बन जाती है। दर्शन तथा कविता के मनोज्ञ सम्मिलन में वह इतिहास को भूल जाता है और कबीर का मुँह—

> परं वृन्दावनेऽरण्ये शृगालत्वमवाप्नुयाम् ;
> नच निर्विषयां मुक्तिमन्तुमर्हसि गौतम !

इत्यादि दार्शनिक पंक्तियों द्वारा सविषय मोक्ष की घोषणा कराता है (पृष्ठ ८०)। अनुभूति का यह आवेश, विभूति का यह विवेचन, उन्माद का यह प्रलाप, प्रेम की यह पीर तुलसी, सूर तथा आधुनिक छायावादी कवियों के प्रकरण में परा काष्ठा को पहुँच

जाती है, और लेखक उक्त कवियों की पद्य-वीणा में अपनी गद्य-वीणा को मिला देता है।

छठे अध्याय में कबीर तथा ईसाइयों के भाव-योग पर विचार कर लेखक "कबीर और सूफ़ी धर्म" नाम की महत्त्व-पूर्ण समस्या को सुलझाता है, और सर चार्ल्स एलियट आदि पाश्चात्य विद्वानों के प्रामाणिक लेखों के आधार पर सर जार्ज ग्रियर्सन आदि विद्वानों की निम्न-लिखित उक्ति का खंडन करता है—

"कबीर ने बहुत कुछ सूफ़ियों से लिया। उसने ईसाइयों से मंतव्यों के पारिभाषिक शब्द और उनकी पूजा-प्रक्रिया से क्रिया-विधि के प्रकार लिए। विशेषतः कबीर का शब्द ईसाइयों से लिया गया है ...।"

आठवें अध्याय में कृष्ण-संप्रदायी कवि विद्यापति तथा मलिक मोहम्मद जायसी आदि की विस्तृत विवेचना करके ६वें अध्याय में लेखक केशव, बिहारी तथा देव आदि की कृतियों पर अपने स्वतंत्र, किंतु युक्ति-युक्त विचार प्रकट करता है। बिहारी के विषय में उसके निम्न-लिखित शब्द पढ़ते ही बनते हैं—

"बिहारी श्रृंगार-रस का सर्वोत्तम कवि है। स्मृति के कसक और विस्मृति के निरालेपन के वर्णन में वह अपने-जैसा आप है। यौवन के इंद्र-धनुष को जैसा उसने खींचा है, वैसा संसार में किसी ने न खींचा होगा। कामना और विलास के पुण्य तीर्थ पर जितने स्नान उसने किए हैं, उतने किसी ने नहीं। तारुण्य के उन्मुख विकास में गौर बाला के रक्तिम लज्जाभास को जैसा उसने परखा है, वैसा किसी ने नहीं। मदनाहत युवतियों की तंद्रा-मग्न चितवनों को जितना उसने ताड़ा है, उतना किसी ने नहीं। उसने जन्म और कर्म से क्लांत हुए मर्त्यलोक को स्त्रीत्व का रसायन देकर चिरंजीव बनाया है। उसने कीर्ति-क्लिष्ट पौरुष को तंद्रामयी रमणियों को मसृण प्रेम-पाश में फँसा अनेक बार निर्वापित किया है। उसने प्रेम की ओस से एक-एक बूँद लेकर अपनी सतसई को भरा है। उसकी एक-एक बूँद में श्रृंगार का मंत्र है, अनंग का राग है और प्रेम की वारुणी है। ओस की बूँद का कोई नाम नहीं, कोई धाम नहीं। बिहारी की प्रत्येक कै… स्त्रैणता का नाम है और वासना का गीत है।… बातों में बिहारी संसार के नेता हैं (पृष्ठ २००)…

बिहारी की कविता का इससे अधिक सरस, … तथा भाव-पूर्ण व्याख्यान और क्या हो सकता है!

इसके पश्चात तुलसीदास की विवेचना है जो… दृष्टियों से अद्वितीय है। "तुलसीदास का कवि… नामक प्रकरण में लेखक "Poetry should … simple, sensuous and passionat… (Milton) के अनुसार तुलसी की कविता… अत्यंत सरस, सुंदर तथा मौलिक व्याख्यान … है। इस प्रकरण की प्रत्येक पंक्ति सुरम्य … उसमें रुचिरता है श्रृंगार नहीं, चोट है प्रहार … क्रम-भंग है रस-भंग नहीं, बेहोशी है नशा … आकर्षण है माया नहीं, विस्तार है आडंबर न… क्या-क्या है, और क्या नहीं, यह केवल … नहीं, प्रत्युत पुस्तक पढ़कर ही जाना जा सकता… इसमें कहीं कुसुम का करुण गान है, तो कहीं … का प्रचंड गर्जन, कहीं सरसी का ईषत् कंपन है… कहीं-कहीं समुद्र का उद्वेलन। विभिन्न भावों… रुचिर चित्रशाला में पाठक विस्मित हो … बन जाता है। अतीत का वह इतिहास उसकी … में झाँकने लगता है। जगत् की सूनी हाट उसे … लगती है।

ग्राम-वधूटियों का कुंचित, आर्जव, अज्ञात … यात्री, यात्रा में श्रांति, श्रांति में सुषमा, कवि… ऐंद्रियता, शेक्सपियर की ऐंद्रियता, गोथे की ऐंद्रि… तुलसी की ऐंद्रियता, चातक अथवा सीता की ऐंद्रि… वैराग्य-मुद्रा, प्रेम का स्निग्ध अंधकार, राम की … मुद्रा, भेदों का तादात्म्य, तुलसी की ऐंद्रियता … आक्षेप, आक्षेप निराधार है। श्रृंगार का नग्न … भयावह है, जीवन और साहित्य का अटूट … कविता की भावमयता, तुलसी की भावमयता, … केकयी और राम पर विपत्ति-चक्रवात, … अभिशाप और सम्राट् की महायात्रा, माता की …

और पुत्र का संहार, तपस्वी कुमार का लोकोत्तर दार्शनिक, अनंत के यात्री पर निशीथ प्राजातंत्र्य, पिता और पुत्र का प्रातीप्य, जीवन-मुक्त राम का शूद्र तपस्वी को मारना, पथिक की अदृश्य आशावादिता इत्यादि प्रतीकों का मंजुल व्याख्यान पढ़ते ही बनता है।

इसके पश्चात् तुलसीदास के वर्णन में नाटकीय छटा का विवेचन करके लेखक "तुलसी के भाग्यवाद" पर अत्यंत मौलिक तथा सारगर्भित विचार करता है। होमर, शेक्सपियर तथा तुलसी के भाग्यवाद की दार्शनिक तुलना करते हुए लेखक तुलसी के प्राकृतिक वर्णन पर एक तीव्र दृष्टि डालता है। तुलसी का प्राकृतिक वर्णन-नामक प्रकरण बड़ा सुंदर है। वह कई दृष्टियों से अपने-जैसा आप है।

ग्यारहवें अध्याय में कबीर के अनुयायियों की चरचा करके १२ वें अध्याय में कबीर की कविता का सरल, सरस तथा भावमय व्याख्यान किया गया है। "सूर और तुलसीदास" (३७२-७८)-शीर्षक में "सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगण केशवदास" की व्याख्या भी एक चीज़ है, पढ़कर तबियत फड़क उठती है।

"नवीन युग का सिंहावलोकन" सुंदर, सरस तथा सारगर्भित है। वर्तमान कवियों में पं० नाथूराम 'शंकर' शर्मा, श्रीमैथिलीशरण गुप्त, श्रीसुमित्रानंदन पंत, श्री-सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', श्रीरामनरेश त्रिपाठी आदि का विवेचनात्मक अध्ययन ध्यान से पढ़ने योग्य है। पंत, निराला आदि छायावादी कवियों की दार्शनिक व्याख्या करके लेखक बड़ी ख़ूबी से छायावाद, प्रति-बिंबवाद अथवा रहस्यवाद की मार्मिक विवेचना करता हुआ उसके आदि स्रोत पर पहुँचता है (४६०-२१७)। आधुनिक हिंदी-गद्य, हिंदी भाषा-विज्ञान, नामाद्यनुक्रमणी अत्यंत उपयोगी हैं।

सौंदर्य-बोध की भिन्न-भिन्न दृष्टि से विचार करने पर हम निस्संकोच हो कह सकते हैं कि हिंदी-साहित्य का यह विवेचनात्मक इतिहास मौलिक, रुचिर, प्रगल्भ तथा गवेषणा-पूर्ण है। लेखक ने संस्कृत, हिंदी तथा इँगलिश-साहित्य के विकास-क्रम को भली भाँति समझा है और अपनी विचक्षण तुलनात्मक बुद्धि से हिंदी-साहित्य के उत्थान और पतन पर मार्मिक प्रकाश डाला है। तुलसी तथा सूर-दास पर हिंदी में दर्जनों ग्रंथ लिखे गए हैं, पत्र-पत्रि-काओं में सैकड़ों लेख प्रकाशित हुए हैं, परंतु सबमें भिन्न-भिन्न प्रकार से परंपरागत बातों को दुहराकर कविता के बहिरंग पर अधिक ध्यान दिया गया है और अंतरंग की उपेक्षा की गई है। शास्त्रीजी ने कविता के अंतरंग तथा बहिरंग दोनो की समान रूप से पूजा करते हुए भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत् का समन्वय किया है और उसके द्वारा "सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगण केशवदास"-वाली उक्ति का अत्यंत मौलिक तथा रसवद् व्याख्यान किया है।

शास्त्रीजी की दृष्टि विश्वजनीन तथा तुलनात्मक है। उनकी विवेचना में इतिहास, कविता तथा दर्शन का रुचिर समन्वय है। उनकी शैली प्रगल्भ, प्रसन्न, संक्षिप्त तथा संसूचक है। उनकी कृति कवित्व से कमनीय, मौलिकता से उज्ज्वल, विशुद्ध रुचि-परायणता से मनोज्ञ, सद्भावों से ओत-प्रोत तथा व्यापक पांडित्य से समुद्भासित है।

'हिंदी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' लिख-कर शास्त्रीजी ने अपनी कीर्ति अमर कर दी। ऐसे ही ग्रंथों से साहित्य की श्री वृद्धि होती है और साहित्य का गौरव बढ़ता है। हमें पूर्ण आशा है कि शास्त्रीजी की इस बहुमूल्य कृति को हिंदी-संसार अपनाएगा तथा भरपूर आदर करेगा।

× × ×

मधु-संचय—मधुकर, काशी-निवासी पं० शांतिप्रिय द्विवेदी; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरिया सराय; पृष्ठ-संख्या ६६; आकार १७×२७=१/१६; मूल्य ।=); छपाई-सफ़ाई सुंदर।

यह 'नवयुवक-हृदय-हार' का पाँचवाँ 'हीरा' है। पुस्तक उन्नतमना, सुसाहित्य-रसिक, देश-हितैषी मान-नीय श्रीराजा शारदा महेशप्रसादसिंह शाह अगोरी—बड़हराधिपति के कर-कमलों में समर्पित हुई है।

अस्तु। पुस्तक तीन भागों में विभाजित है—(१) छवि; (२) प्रेम और (३) विरह। पुस्तक के 'छवि'-विभाग में अर्वाचीन, मुख्यतः प्राचीन कवियों की अन्योक्तियाँ अत्यंत ही मनोरम हैं। शृंगार-रस की नख-शिख-संबंधिनी रचनाओं का भी संक्षेप में सुंदर संकलन है। इसमें संदेह नहीं कि चुनी हुई उत्तमोत्तम कविताओं का यह एक छोटा-सा संग्रह संग्रह-योग्य है। पुस्तक में कहीं-कहीं प्रूफ़ की भद्दी ग़लतियाँ खटकती हैं। इनके अतिरिक्त १६ पृष्ठ की छठी पंक्ति में १ अक्षर कम होता है; २४ पृष्ठ की आठवीं पंक्ति में एक अक्षर बढ़ता है; उसी पृष्ठ की १७वीं पंक्ति में दो अक्षर बढ़ते हैं; 'मनो' निकाल देने से कवित्त दोष-रहित हो सकता है। पृष्ठ २५ की नवीं पंक्ति में एक अक्षर घटता है, जिसकी पूर्ति 'पद्माकर' के बाद 'त्यों' जोड़ देने से हो सकती है; पृष्ठ २८ की दूसरी पंक्ति में दो अक्षर घटते हैं, जिसकी पूर्ति 'राखैं' के बाद 'औन' जोड़ देने से हो सकती है; पृष्ठ ४८ की १४वीं पंक्ति में एक अक्षर घटता है; पृष्ठ ५० के अंतिम घूँघट-शीर्षक सवैया के तीसरे चरण में दो अक्षर बढ़ते हैं। पृष्ठ ७१ की ७वीं और ८वीं पंक्तियों में एक-एक अक्षर घटते हैं। पृष्ठ ७५ की १७वीं पंक्ति में एक अक्षर बढ़ता है; पृष्ठ ७६ की दूसरी पंक्ति में एक अक्षर बढ़ता है, पृष्ठ ८० की ६वीं पंक्ति में भी एक अक्षर बढ़ता है; इसी प्रकार पृष्ठ ८६ की १४वीं पंक्ति में भी एक अक्षर बढ़ता है। साथ ही उस चरण की गति भी ठीक नहीं है; ८७ पृष्ठ की तीसरी पंक्ति में एक अक्षर कम है। आशा है, संग्रहकार महोदय पुस्तक के दूसरे संस्करण के अवसर पर इन त्रुटियों पर विचार करेंगे।

× × ×

तरंगिणी—लेखक, पं० जगदीश झा 'विमल'; प्रकाशक, पं० जगदेव पांडेय, पुस्तक-विक्रेता, सदर बाज़ार, मुंगेर; आकार डबल क्राउन १६पेजी; पृष्ठ-संख्या १७६; मूल्य ॥) कुछ अधिक तो नहीं है; छपाई मध्यम; सफ़ाई उत्तम।

प्रस्तुत पुस्तक संगीताचार्य, रायबहादुर कु नारायणसिंहजी एम्० एल्० सी०, ज़मींदार, गछिया, भागलपुर की सेवा में समर्पण की गई समर्पण के साथ उपर्युक्त रायबहादुर महोदय का एक भव्य चित्र भी है; पुस्तक के भूमिका-ले हैं भूतपूर्व मतवाला-मंडल के श्रीनवजादिक श्रीवास्तव, जिन्होंने संक्षेप में पुस्तक के संबं अपने हृदयोद्गार नहीं, मनोविकार प्रक है। तदनंतर पुस्तक के रचयिता का भी मनोहर चित्र है। अस्तु। समालोच्य पुस्त लेखक द्वारा लिखे हुए कोई २० निबंधों का सं ग्रह है, जिनमें से कई तो सामयिक पत्र-पत्रि में प्रकाशित भी हो चुके हैं। लेखों में लेख वास्तव में गद्य-गंगा बहाकर अपने सुकवि होने समुचित एवं यथेष्ट परिचय दिया है। लेखनशैली निराली है। नए-नए मुहाविरे अलग अपनी छ दिखला रहे हैं। संगृहीत निबंधों में 'लोभ', ' 'वसंत', 'स्वार्थ', 'चिता', 'पापी पेट', प्रभृति मुझे भी अच्छे लगे, जिन्हें पढ़कर, पुस्तक वर्ग फ़ाइनल की परीक्षा में रखने योग्य प्रतीत होते प्रूफ़ की अक्षम्य अशुद्धियों के अतिरिक्त पु कहीं-कहीं कुछ भद्दी भूलें भी खटकती हैं। पृष्ठ ११६ की ६ठी पंक्ति में 'रोपन' के स्थान 'वपन', तथा १२वीं पंक्ति में 'चेताती' के स्थान 'लगाती' होना चाहिए था; इसी प्रकार पृष्ठ ११ 'चिता'-शीर्षक निबंध में चिता से चिंतित प्राणि संबंध में 'धोती ख़राब करना'—नए मुहा प्रयोग भी विचारणीय है। सब कुछ होते हु पुस्तक संग्रहणीय है।

× × ×

२. कविता

गंधर्व—रचयिता, स्वर्गीय श्रीमहावीरप्रसाद 'विभूति'; प्रकाशक, पं० रामकेवल शर्मा, प्रचारक-कार्यालय, आरोपुर, नौबतपुर (पृष्ठ-संख्या ४५ ; मूल्य ।-) ; छपाई-सफ़ाई

यह सद्ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प है। पुस्तक के भूमिका-लेखक हैं पं० जगदीश झा 'विमल', साहित्य-सदन, जमालपुर ; कवि-परिचायक हैं ठाकुर मंगल-प्रसादसिंह, हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी।

प्रस्तुत पुस्तक में, रचयिता द्वारा, १६ वर्ष के भीतर की अवस्था में रचे हुए २८ गीतों एवं १३ राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह है। स्वर्गीय विभूति की रचनाओं से, वास्तव में, पता चलता है कि यदि विभूतिजी अधिक काल तक जीवित रहते, तो अवश्य ही देश और राष्ट्र की एक उच्चादर्श रूप में सेवा करते।

अस्तु। पुस्तक दो भागों में विभाजित है—(१) राग-रंग तथा (२) देश-दशा। पुस्तक के आरंभ में स्वर्गीय श्रीमहावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति' का एक अस्पष्ट चित्र भी है। प्रत्येक देशानुरागी, साहित्य-सेवी, संगीत-प्रेमी को इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य क्रय करनी चाहिए। पारितोषिक-वितरण के अवसर पर यह पुस्तक बालकों को बाँटने योग्य है। इसमें संदेह नहीं कि स्वर्गीय 'विभूति' की निम्नोक्ति मनन-योग्य है—

"जाता हूँ अब स्वर्ग में देकर यह संदेश ; गाकर मेरे गीत नित करना सुखी स्वदेश।"

इस पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय, लेखक के आचार्य पं० जगदीश झा 'विमल' को प्राप्त है। अस्तु। मैं हृदय से 'गंधर्व' के प्रचार की कामना करता हूँ।

"विह्वल"

× × ×

३. प्राप्ति-स्वीकार

निम्न-लिखित पुस्तकें प्राप्त हुई। प्रेषक महाशयों को अनेक धन्यवाद!

भजन-सत्संग-प्रचार—मूल्य =), श्रीरामेश्वर-पुस्तकालय, ऊबावड़ा, पो० गवें, तहसील शुजाबाद, ज़िला मुलतान।

धर्म के नाम पर अधर्म—मूल्य -)

घर का वैद्य—मूल्य ≡) पता—छात्र सहोदर (?) कार्यालय, जबलपुर।

संध्या-आत्म-ज्ञान—मूल्य ।)

चाय-विज्ञान—मूल्य -) सुखमार्ग-कार्यालय, बरानदी बुढ़ासी, अलीगढ़।

गायत्री-महिमा—मूल्य ।) तथा ओंकार-जप-विधि, मूल्य ।) उपयोगी ग्रंथ-भंडार, उज्जैन।

धनुर्वेद—मूल्य ।=), प्रो० रघुवीरसिंह चौहान हरदोई।

दिव्य प्रभा—मूल्य ।=), पं० निधिनाथ झा, पोखरिया, रौतारा, ज़िला पूर्णिया।

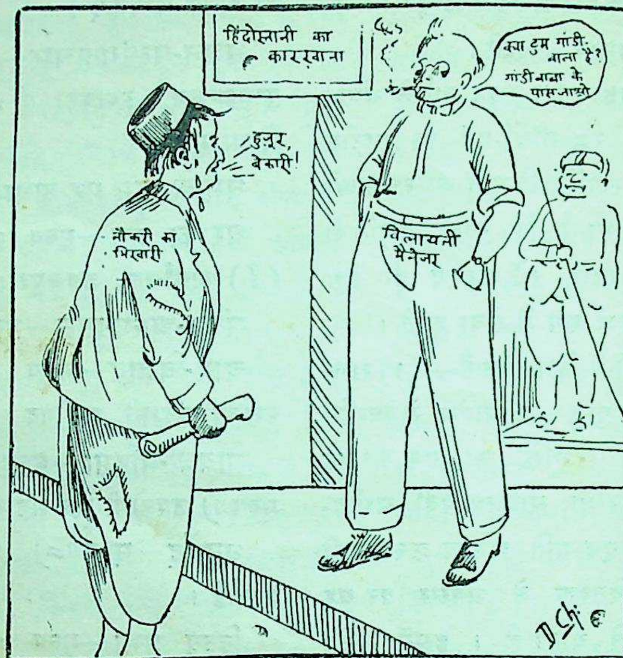
जैनों के दैनिक षट्कर्म—मूल्य =) जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अंबाला।

ब्रह्म-उपासना—मूल्य ।-) मुं० कामताप्रसाद श्रीवास्तव कालीमहल, काशी।

आचार्य के सदुपदेश—एक संत का अनुभव ; मूल्य -) और श्रीमद्भगवद्गीता मूल्य ॥) गीता-प्रेस, गोरखपुर।

शालग्राम

नौकरी का भिखारी



बेकार युवक—हुज़ूर नौकरी दीजिए, मैं बेकार हूँ।

विलायती मैनेजर—क्या टुम गांडीवाला है? गांडी बाबा के पास जाओ।



इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में नीचे-लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुईं—

(१) 'गोल-सभा'—लेखक, श्रीप्रो० चतुरसेन शास्त्री; संपादक, पं० दुलारेलाल भार्गव; मूल्य १), सजिल्द १॥)

(२) 'अछूत'—लेखक, श्रीप्रो० चतुरसेन शास्त्री; संपादक, पं० दुलारेलाल भार्गव; मूल्य १), सजिल्द १॥)

(३) ग़बन' (उपन्यास)—लेखक, श्री० बा० प्रेमचंद ; मूल्य ३)

(४) 'भगवद्भक्त प्रह्लाद' (सचित्र)—लेखक, चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसाद शर्मा सा० भू०, एम्० आर० ए० एस्०, पं० इंद्रनारायण द्विवेदी; मूल्य १)

(५) 'गीता में भक्तियोग'—लेखक, श्रीवियोगी हरि; मूल्य ।-)

(६) 'भजन-संग्रह'—लेखक, श्रीवियोगी ह[ुरि]; मूल्य =)

(७) 'सेवा के मंत्र'—लेखक, श्रीकाशीना[थ] नारायण त्रिवेदी ; मूल्य)॥

(८) 'खेती-बाड़ी'—लेखक, साहित्यर[त्न पं०] रामदीन पाराशर; मूल्य ।॥)

(९) 'रायकल्लाजी रायमलोत'—लेखक, साहि[त्य]रत्न पं० रामदीन पाराशर; मूल्य नहीं।

(१०) 'बाल-विनोद'—लेखक, साहित्यर[त्न पं०] रामदीन पाराशर ; मूल्य -)॥

(११) 'अमर शहीद जतींद्रनाथ दास'—संपा[दक,] पं० इंद्र विद्यावाचस्पति; मूल्य =)

(१२) 'पं० जवाहरलाल नेहरू'—संपादक, [पं०] इंद्र विद्यावाचस्पति; मूल्य =)

(१३) 'श्रीगांधिचरितम्' (संस्कृत में)—लेखक, चारुदेव शास्त्री ; मूल्य १)

चूहा-घूस-नाशक दवाई



इससे चूहे और घूस मर जाते हैं, और बाक़ी बचे हुए सब भाग जाते हैं। खेत, बग़ीचे और मकान में सर्वत्र इसका व्यवहार किया जा सकता है। मूल्य प्रति पुड़िया =), १२ का १), ४० का ३), १२ पैकट से कम का वी० पी० नहीं भेजा जाता। पोस्टेज ४० पैकेट तक का ।) ३२५

डॉ० जे० गुने, जे० पो० कराड, ज़ि० सतारा

"सुबह-शाम सुंदर जलपान,
खायँ बूढ़े तो होयँ जवान।"

दिल-दिमाग़-बल-वीर्य-वर्धक !

धातुक्षीणता की अद्वितीय दवा

❀ वीर्यराजमोदक ❀

क्या ? मेवा-मिश्रित स्वादिष्ठ पुष्टई है। इसके थोड़े ही दिनों के सेवन से देह में नई कांति झलकने लगती है। वीर्य को शुद्ध कर गाढ़ा तथा लसीला बनाता है। धातु-क्षीणता, स्वप्न-दोष, शीघ्रपतन और नामर्दी को दूर कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ बनाता है। १) में १६ लड्डू।

पता—आयुर्वेदाचार्य, आ० महोपाध्याय
पं० श्रीधर्मनाथ मिश्र काव्यतीर्थ
भास्कर-महौषधालय, दानापुर कैंट

हिंदुस्तानी एकेडेमी संयुक्त-प्रांत द्वारा प्रकाशित व्याख्यानमाला

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था

व्याख्यानदाता—अल्लामा अब्दुल्लाह यूसुफ़-अली एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०, सी० बी० ई०। सुंदर छपाई, ऐंटिक काग़ज़, कपड़े की सुंदर सुनहली जिल्द, रायल साइज़ के १०० पृष्ठों का मूल्य उर्दू अथवा हिंदी केवल १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति

व्याख्यानदाता—रायबहादुर महामहोपाध्याय गौरीशंकर-हीराचंद ओझा। सुंदर छपाई, ऐंटिक काग़ज़, कपड़े की सुंदर सुनहली जिल्द, रायल साइज़ के २३० पृष्ठों और २४ हाफ़टोन चित्रों-सहित का मूल्य केवल ३)

(३) कविरहस्य

व्याख्यानदाता—महामहोपाध्याय डॉक्टर गंगा-स्वरूप झा। सुंदर छपाई, ऐंटिक काग़ज़, कपड़े की सुंदर सुनहली जिल्द, रायल साइज़ के १२० पृष्ठों का मूल्य केवल १।)

मिलने का पता—जनरल सेक्रेटरी
हिंदुस्तानी एकेडेमी यू० पी०, इलाहाबाद

प्रदर-विनाशक

स्त्रियों के लिये टानिक दवा
(रजिस्टर्ड नं० ३१०)

इस दवा से प्रदर (कमताक़त), अनियमित ऋतु-स्राव, रक्त-प्रदर, छोड़ हिस्टीरिया, कमर पेडू का दुखना, सीने में जलन, हाथ-पैर की झन-झन, खावया, सुवारोग और दूसरे सब रोग जड़ से नष्ट होते हैं। एक बक्स का मूल्य २।।), डा० म० ।=)

भेंट—जो सज्जन १५ नाम मय पूरे पते के भेजेंगे, उनको १००० वर्ष का कलेंडर मुफ़्त भेजा जायगा।

पता—प्रदर-विनाशक ऑफ़िस
खंभातजी (खेड़ा) नं० २९



१. गांधी-नीति का अनुकरण



ल ही में फ़िलिस्तीन से गांधी की सत्याग्रह-नीति का अनुकरण करने के समाचार मिले हैं। फ़िलिस्तीन की समस्या अंतर्राष्ट्र-संबंधी समस्या है, और वह काफ़ी महत्त्व-पूर्ण है। ब्रिटिश राजनीति के वादों के बे-अंदाज़ झूठों को एकत्र देखने के लिये फ़िलिस्तीन एक ख़ासा उदाहरण है।

गत महायुद्ध के समय तत्कालीन महामंत्री मि० लायड जॉर्ज ने तुर्की साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर डालने के लिये एक गुप्त कार्य-क्रम बनाया था, और उसके अनुसार यह घोषणा की थी कि फ़िलिस्तीन और मेसोपोटामिया को तुर्क-साम्राज्य से पृथक् करके स्वाधीन कर दिया जायगा, और उनकी भिन्न राष्ट्रीय स्थिति स्वीकार की जायगी। उस समय साफ़-साफ़ यह कहा गया था कि फ़िलिस्तीन को यहूदियों का 'स्वतंत्र घर' बना दिया जायगा। पर यह बात यहूदियों की ख़ुशामद के लिये कही गई थी, क्योंकि अमेरिका के ६० प्रतिशत यहूदी थे, जिनसे अरबों रुपए की सहायता उस समय ग्रेट ब्रिटेन को प्राप्त हुई थी।

फ़िलिस्तीन ईसाई, मुसलमान और यहूदी तीन जातियों का प्रसिद्ध धर्म-स्थान है। इस पर करोड़ों ही जानें न्योछावर हुई हैं। यहीं मसीह को सूली दी गई थी। यहीं एक पत्थर की चट्टान पर पैर रखकर मुहम्मद स्वर्ग गए। यहीं यहोवा का संसार में सबसे बड़ा मंदिर था, जिसे तोड़कर मुसलमानों ने विशाल मसजिद बनाई थी। आज भी उस मसजिद की दीवार में सिर टकराकर प्रत्येक शुक्रवार को यहूदी लोग यहोवा का आवाहन करते हैं।

ईसाई और मुसलमान सभी ने यहूदियों को लताड़ा है। ईसा को फाँसी देने का अपराध आज तक क्षमा नहीं किया गया, परंतु उनकी धन की शक्ति ने सभी को ठंडा कर दिया। ग्रेट ब्रिटेन की उपर्युक्त प्रतिज्ञाओं से यहूदी ख़ूब ख़ुश हुए, पर अरबों का असंतोष बढ़ गया। फलतः युद्ध की समाप्ति पर जब ब्रिटिश-संरक्षण में यहूदियों की बस्तियाँ फ़िलिस्तीन में बसने लगीं, अरबों ने जब आपत्ति की, तो सुशासन और सुव्यवस्था के नाम पर उनकी बात अनसुनी कर दी गई। राष्ट्र-संघ इस सुव्यवस्था और सुशासन का

मानो ठेकेदार था। परिणाम-स्वरूप अरब और यहूदियों में कलह का बीज बोया गया। दंगा हुआ, सैकड़ों जानें गईं, और फ़ौजी क़ानून प्रचलित करना पड़ा। एक कमीशन परिस्थिति की जाँच के लिये नियुक्त किया गया, परंतु उसकी रिपोर्ट पर दोनो ही जातियों का असंतोष रहा।

अंततः यहूदियों ने महात्मा गांधी का असहयोग-शस्त्र उठाया है। गत २१ ऑक्टोबर की बैठक में, जो येरुसलम में हुई, लगातार ८ घंटे तक बहस हुई, और सरकारी नीति के बहिष्कार का निर्णय कर लिया गया।

'फ़्रेंच ज़ियोनिस्ट'-आंदोलन-समिति के उपाध्यक्ष मि० हिलेल ज़्लटो पोलस्की ने २२ ऑक्टोबर को ही घोषणा कर दी थी कि गांधी की पद्धति पर ब्रिटेन का शीघ्र बहिष्कार प्रारंभ कर दिया जाय। उन्होंने निश्चय किया कि अगर फ़िलिस्तीन में यहूदियों के लिये द्वार बंद कर दिया गया, तो वे फ़्रेंच झंडे के नीचे, सीरिया में, अपना घर बसावेंगे। फ़्रांस में भी इस संबंध में बहुत-सी सभाएँ हुईं।



महात्मा गांधी

अमेरिका की एक साधारण सभा में, जिसके प्रमुख डॉ० होम्ज़ थे, जो प्रसिद्ध ब्रिटेन-विरोधी लेखक हैं, मज़दूर-सरकार की भारी निंदा की गई, और महात्मा गांधी की नीति का ज़ोर से समर्थन करने पर ख़ूब बल दिया गया। इसी बीच में समाचार मिला कि डॉ० मेलचेट ने, जो असाधारण राजनीतिज्ञ हैं, यहूदी एजेंसी की संयुक्त-कौंसिल से त्याग-पत्र दे दिया।

दक्षिण-आफ़्रिका के प्रसिद्ध जनरल स्टम्स ने, जो स्वयं यहूदी हैं, तार भेजकर सरकार का प्रतिज्ञा-भंग की ओर ध्यान आकर्षित किया। वे इसी से संतुष्ट न हुए। उन्होंने तीव्र आंदोलन शुरू किया। इधर पार्लियामेंट में भी काफ़ी आंदोलन रहा। सुना है, इससे सरकार का आसन हिल गया है, और सरकार शीघ्र ही अपनी नीति की एक विज्ञप्ति प्रकाशित करनेवाली थी। गत गोल-सभा में भारतीय मुसलिम प्रतिनिधियों से बहुत-सी इसी संबंध की बातें हुईं। फ़िलिस्तीन की प्रधान मुसलिम-समिति के मंत्री श्रीजमालहुसेनी लंदन गए थे।

× × ×

२. महात्माजी की कठिनाई

जिस समय महात्मा गांधी ने एक मज़बूत लाठी हाथ में थामकर नमक पर चढ़ाई की थी, उस समय उन्होंने सर्वशक्तिमान ग्रेट ब्रिटेन से युद्ध छेड़ा था। वह सन् ३० की ४ मार्च थी। इसके ठीक एक वर्ष बाद, सन् ३१ की ४ मार्च को, उन्होंने सम्राट् जॉर्ज के प्रतिनिधि के राजमहल में दही और छुहारे चबाते-चबाते जो हास्य-वार्ता करते हुए लॉर्ड इरविन से समझौता कर डाला, वह सर्वशक्तिमान ग्रेट ब्रिटेन के सम्मुख मित्रता के लिये हाथ फैलाना था। परंतु यदि विचार कर देखा जाय, तो उस विग्रह में महात्माजी को जितनी निर्भयता, आनंद और निश्चिंतता थी, इस मित्रता में नहीं है।

महात्मा गांधी ने जिस युद्ध का सूत्रपात किया था, वह उनका अपना आविष्कृत विषय था। उनका मार्ग सरल था। उन्होंने प्राणों को पहले बाँध लिया था। एक सत्य और न्याय का पुतला—जिसके पीछे करोड़ों मनुष्य हों—युद्ध-यात्रा में जितना निर्भय और प्रसन्न होना चाहिए, उतना वह थे। परंतु इस संधि में उन्हें जहाँ अपने युद्ध को अनायास ही रोकना पड़ा है, वहाँ उन्हें राजसत्ता और देश के उबलते हुए जन-बल को भी वश में रखना है।

भारत दरिद्र, दलित और क्षुब्ध हो रहा है। उसका शासक विदेशी है, जिसे जन-बल और प्रजा की रुचि की तनिक भी परवा नहीं। ऐसी अवस्था में संधि की चर्चा पर शांति की स्थापना असाधारण साहस का काम है। सांप्रदायिक झगड़ों और राजकर्मचारियों के सामूहिक विद्वेषों के सम्मुख खड़े होना इस कार्य को और भी दुस्सह बनाता है।

सरदार भगतसिंह और उनके साथियों को फाँसी देकर सरकार ने तीन भयानक काम किए हैं—१. जनता को संतुष्ट कर उसकी विश्वस्त होने का सुयोग खो दिया। २. क्रांतिकारियों को उपकृत करने का अवसर खो दिया। ३. क़ानून की घोर अवज्ञा की। इन्हीं दो-चार दिनों में देख लिया गया है कि समस्त देश में इस निर्दय फाँसी का क्या प्रभाव पड़ा है, और देश उसे फाँसी नहीं, हत्या समझता है।

भविष्य में क्या होगा, यह कौन कह सकता है! परंतु हम जैसा वातावरण देखते हैं, उसके आधार पर तो यह साफ़ ही कहा जा सकता है कि भविष्य अच्छा नहीं। यह हम स्वीकार करते हैं कि इधर यद्यपि देश संधि की ओर देख रहा है, परंतु वह युद्ध की विकट अभिलाषा को मन में संग्रह कर रहा है। त्याग और आत्मसमर्पण के उच्च भाव देश के रक्त में उत्पन्न हो गए हैं। उधर सरकार भी संधि-चर्चा कर रही है, पर हमें साफ़ दिखलाई पड़ रहा है कि वह भविष्य के प्रबल मोर्चे से टक्कर लेने की तैयारी कर रही है। फिर यह तो स्पष्ट ही है कि उसका हृदय नहीं बदला है। उसका बदलना संभव भी नहीं है।

महात्मा गांधी ने पत्र-प्रतिनिधि से कहा था कि गोल-सभा में जिन संरक्षणों की कल्पना की गई है, उन्हें लॉर्ड संकी और वेजउड बेन स्वरूपतः और भावतः अपरिवर्तनीय समझते हों, तो हमारा लंदन जाना व्यर्थ है। महात्माजी की धारणा है कि संरक्षणों पर फिर से स्वतंत्रता-पूर्वक विचार किया जायगा, और संरक्षण का लक्ष्य भारत का हित होगा, इँगलैंड का नहीं। अब देखना यह है कि क्या ग्रेट ब्रिटेन इँगलैंड के हित की उपेक्षा करेगा।

सरकारी नीति भगतसिंह को फाँसी देने पर प्रकट हो गई है, और जहाँ हम यह भय करते हैं कि कदाचित् महात्माजी इस सरकार को न झुका सकेंगे, वहाँ हम इस बात में भी घोर संदेह करते हैं कि वे क्षुब्ध युवक भारत को भगतसिंह के लिये रोने से रोक सकेंगे। अब तो जो कुछ भी होना है, उसे देखकर ही कुछ कहा जा सकता है।

× × ×

३. पूर्ण स्वराज्य

महापुरुष तिलक ने जब से "स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है", यह महावाक्य उच्चारण किया, तब से यह वाक्य भारतवर्ष की आत्मा का मूल-मंत्र

बन गया है। किंतु सन् २० के आंदोलन से लेकर आज तक, गत दस वर्षों में, स्वराज्य-शब्द की ठीक-ठीक व्याख्या करने का साहस किसी भी राजनीतिज्ञ ने नहीं किया। तिलक ने इसके लिये अँगरेज़ी का 'होम रूल'-शब्द प्रारंभ में प्रयोग किया था। पर शीघ्र ही यह शब्द अपर्याप्त समझा जाने लगा। वह भी समय था कि स्वराज्य-शब्द मुख से निकालने पर महापुरुष तिलक को जेल की हवा खानी पड़ी थी, और अब इनक़िलाब ज़िंदाबाद के नारे गली-कूचों में बच्चे और स्त्रियाँ लगाती हैं। कांग्रेस के खुले इजलास में और अन्य अवसरों पर भी महात्मा गांधी से लेकर सभी राजनीतिज्ञों के सामने यह प्रश्न आता रहा है कि स्वराज्य के अर्थ क्या हैं? अंत में वह भी समय आया कि स्वराज्य-शब्द भी काफ़ी न समझा जाने लगा, और 'पूर्ण'-शब्द उसके साथ और जोड़ देना पड़ा। महात्माजी ने हाल में ही पूर्ण स्वराज्य की व्याख्या पत्र-प्रतिनिधियों के सम्मुख इस प्रकार की है, जो अब तक की सब व्याख्याओं से अधिक स्पष्ट है। वह इस प्रकार है—

"पूर्ण स्वराज्य के मानी यह नहीं हैं कि अन्य जातियों से संबंध न रक्खा जाय। या इँगलैंड से संबंध-विच्छेद कर दिया जाय पूर्ण स्वराज्य का अर्थ है पारस्परिक लाभ के लिये अपने इच्छानुसार सहयोग करना। साम्राज्य के भीतर रहकर भी भारत पूर्ण स्वराज्य भोग सकता है। पर इँगलैंड से जो हमारा सहयोग होगा, वह पूर्ण समानता की शर्तों पर होगा।"

महात्माजी ने आगे चलकर इसी बातचीत के सिलसिले में कहा था कि भारत की जनता पूर्ण स्वराज्य का अर्थ ब्रिटिश साम्राज्य से संबंध-विच्छेद होना ही समझती है। क्योंकि वह इस बात पर विश्वास ही नहीं कर सकती कि इँगलैंड सच्चे मन से भारत के साथ समानता का व्यवहार करेगा। बहुत-से मेरे साथी भी यह विश्वास नहीं करते कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ भारत को पूर्ण स्वराज्य दे सकेंगे। परंतु मैं विश्वास करता हूँ कि दिल्ली ही समस्त भारत का राजनीतिज्ञ-केंद्र बनेगी। क्योंकि ब्रिटिश जनता व्यावहारिक है। वह स्वतंत्रता-प्रेमी है। उसे दूसरों को स्वतंत्रता देने में क्यों आपत्ति हो सकती है?

महात्माजी के ये शब्द, हम समझते हैं, बहुत ही स्पष्ट हैं, और यह बहुत कुछ संभव है कि युवक भारत इस व्याख्या को बिलकुल ही नापसंद करे। महात्माजी महात्मा हैं, और केवल भारत का स्वार्थ-साधन नहीं कर रहे हैं। न्याय के लिये लड़ रहे हैं। इसके सिवा वे संसार के आध्यात्मिक लाभ के लिये भी एक सार्वभौम संगठन चाहते हैं। यह संगठन चाहे भी जितना स्वाभाविक एवं अनिवार्य हो, परंतु भारत के वर्तमान वातावरण में वह भारत के युवक-दल को रुचेगा, इसमें हमें संदेह है। अब देखना यह है कि इस समय महात्माजी देश के जितने प्यारे हैं, उतने कितनी देर रह सकते हैं?

× × ×

४. अभाव

इस समय देश में जो प्रबल राजनीतिक परिवर्तन का वातावरण उत्पन्न हुआ है, उसे हम केवल राजनीतिक परिवर्तन का वातावरण ही कहकर संतुष्ट नहीं हो सकते। वास्तव में वह भारत के भाग्य का निर्णय है। गत ५० वर्षों से देश के अग्रगण्य नेताओं ने जो अनथक प्रयास किया है, और देश के उत्कृष्ट युवकों ने जो फाँसी और काले-पानी के दंड पाए हैं, उन सबका मानो पुरस्कार प्राप्त करने का अब समय आ गया है।

यह बात तो स्पष्ट है कि देश ने इस बीच में बहुत-से नर-रत्न खोए हैं, पर आज देश जिस वस्तु का अभाव अनुभव कर रहा है, वह पं० मोतीलाल का व्यक्तित्व है। हम यदि यह कहें कि मोतीलाल का स्थान इस समय ख़ाली है, तो अत्युक्ति न होगी। आश्चर्य-जनक रीति से आज अतीत महाभारत की पुनरावृत्ति हो रही है। भारत का जब उस काल में श्रीकृष्ण ने भाग्य-निर्माण किया था, तब भी उनके दाएँ-बाएँ दो प्रबल शक्तियाँ थीं। एक व्यास की, जो मेधा और ज्ञान का भंडार थी, दूसरी अर्जुन की, जो शक्ति का अक्षय केंद्र थी। इन्हीं दोनो शक्तियों को पाकर

कृष्ण अपने कर्तव्य का यथावत् पालन कर सके थे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यदि ये दोनो आत्माएँ न होतीं, तो श्रीकृष्ण का अस्तित्व ही न होता। यद्यपि यह सत्य है कि इन दोनो शक्तियों को श्रीकृष्ण ने उत्पन्न किया था, और उनको उत्पन्न करना यह उनकी अपनी निजी सामर्थ्य थी।

महात्मा गांधी में बहुत अंश श्रीकृष्ण से मिलते हैं। इसका कारण चाहे भी जो कुछ हो। वह कृष्ण ही की भाँति उच्च ब्राह्मण-वर्ग के लिये जाति-भावना के कारण तिरस्कृत हैं। वह कृष्ण की ही भाँति कृष्ण वर्ण हैं। वह कृष्ण की ही भाँति शस्त्र-त्याग के व्रती हैं। कृष्ण की ही भाँति वह दुश्चिताओं से दूर केवल लक्ष्यवेध पर दृष्टि देकर चलते हैं। कृष्ण से उनमें यदि कोई अंतर है, तो केवल इतना ही कि कृष्ण जिस मोहन सौंदर्य के लिये प्रसिद्ध हैं, वह उतने सुंदर नहीं। परंतु अब यह तो समय ही बताएगा कि भविष्य भारत की संतान महात्माजी को कितना सुंदर समझेगी।

व्यास की सत्ता का पं० मोतीलाल में जो आभास मिलता है, वह भी विचारने योग्य है, और जवाहरलाल जो निकट भविष्य में पूर्णांक अर्जुन सिद्ध होनेवाले हैं, यह तो अब देखना ही है। उस दिन महात्माजी ने हास्य में जो बात किसी पत्र-प्रतिनिधि से कही है, वह निश्चय ही हास्य में ही न रह जायगी। भारत के प्रधान मंत्री के पद के लिये जिस नवयुवक का उन्होंने संकेत किया है, वह कौन है? अब यह खोज-जाँच करने की किसी को आवश्यकता नहीं।

परंतु मोतीलाल का एकाएक इस समय चला जाना भयानक हानिकर है। मोतीलालजी की दो शक्तियाँ—एक तो उनका प्रकांड व्यवस्था-निर्माता मस्तिष्क, दूसरे उनका उत्कृष्ट रचनात्मक प्रोग्राम—आज और किस पुरुष में है? क्या इस बात से इनकार किया जा सकता है कि सन् ३० में जो शृंखलाबद्ध कार्य देश-भर में हुआ, और जिसके कारण ही सरकार



स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू

की अपनी वह श्रृंखला भंग हुई, जिस पर उसे शताब्दियों से गर्व था, क्या साधारण है? निश्चय ही यह अकेले मोतीलाल की कर्तृत्व-शक्ति का बल था। जिस सुंदर और शानदार ढंग से इस महारथी ने अपने उच्चासन पर अपने युवक पुत्र को बैठाया, और उसे सर्वथा उस आसन के योग्य साबित किया, यह उसी का काम था। आज देश के सामने सबसे अधिक गंभीर रचनात्मक कार्य है। महात्मा गांधी अमोघ प्रभाव रखते हैं, और उनका लोकोत्तर नैतिक प्रभाव ही इसका कारण है। फिर भी रचनात्मक कार्य में वह मोतीलालजी से श्रेष्ठ हैं, इस पर हमें घोर संदेह है, और इसीलिये हम आज देश के राजनीतिक भविष्य को बड़ी बेचैनी से देख रहे हैं, और उसमें एक सर्वश्रेष्ठ रचनात्मक केंद्र का अभाव भी अनुभव कर रहे हैं।

× × ×

५. भविष्य शासन-विधान और देशी राज्य

गोल-सभा में जो भविष्य शासन-विधान का मसविदा बना है, उसमें सबसे महत्त्व-पूर्ण बात देशी राज्यों का उस विधान में समान सहयोग है। परंतु उस समान सहयोग का अर्थ यह है कि जिस नीति पर ब्रिटिश भारत में ब्रिटिश सरकार शासन करेगी, उसी नीति पर राज्यों के महाराजा भी अपनी प्रजा पर शासन करेंगे। इस शासन में एक ख़ास बात होगी उनकी ब्रिटिश सरकार से की गई प्राचीन संधियों की यह शर्त कि उनके भीतरी शासन में कोई हस्तक्षेप न किया जायगा। अर्थात् देशी राज्यों की प्रजा समष्टि रूप से ऐसा कोई अधिकार न रख सकेगी कि वह किसी ऐसी शक्ति से सहायता ले या फ़र्याद कर सके, जो महाराज की अपेक्षा बड़ी हो।

हम समझते हैं कि इस प्रकार का शासन राजों के लिये कुछ सुविधा-जनक अवश्य हो सकता है, पर इससे देशी प्रजा के कष्ट कम होने की तो संभावना ही नहीं है। गोल-सभा में देशी राज्यों की प्रजा के हित की, एक भी बात की, चर्चा नहीं की गई, बल्कि यदि यह कहा जाय कि उसकी उपेक्षा की गई, तो अत्युक्ति नहीं।

जो राजे गोल-सभा में सम्मिलित होने गए, उन्होंने व्याख्यान तो निस्संदेह ख़ूब ज़ोर-शोर के दिए; परंतु उनमें तत्त्व क्या था, विचारने की बात तो यह है। हम यह बात साफ़-साफ़ नहीं समझ सके कि नए शासन-विधान में देशी राज्यों की प्रजा की भीतरी दशा में क्या परिवर्तन होगा।

जिन लोगों को देशी राज्यों में रहने और वहाँ की प्रजा की दशा का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ है, वे अनायास ही समझ सकते हैं कि आज भी वहाँ १२वीं शताब्दी की राज्य-सत्ता क़ायम है। कुछ सुधरे हुए राज्यों की बात हम नहीं कहते, पर अधिकांश राज्यों की दशा जंगली शासन से अधिक अच्छी नहीं। ये राजा लोग जितनी परवा अपने हीरे-मोती और चमक-दमक की करते हैं, उतनी यदि प्रजा की दरिद्रता को दूर करने की करें, तो प्रजा का अनायास ही कल्याण हो जाय। देखना है, आगामी गोल-सभा में महात्मा गांधी के तत्त्वावधान में निरीह देशी राज्यों की प्रजा की क्या दशा होती है। हाल ही में जयपुर के नवयुवक महाराज को राज्याधिकार सौंपते हुए लॉर्ड इरविन ने कहा है—"ब्रिटिश भारत की जागृति का प्रभाव देशी रियासतों पर बिना पड़े नहीं रह सकता। ऐसी दशा में यह अनिवार्य है कि देशी रजवाड़ों को भी अपनी प्रजा के लिये उसी शासन की व्यवस्था करनी पड़ेगी, जो ब्रिटिश भारत में की जा रही है, और उसके लिये इनकार करने में भयानक विपद् की आशंका है।" नरेंद्रमंडल का अधिवेशन खोलते हुए भी वाइसराय ने इन्हीं भावों का समर्थन किया था।

यह खेद की बात है कि राजों को, प्रजा के मन में उन्नत होने की भावना का उदय देखकर, प्रेम के स्थान पर भय होता है। वे अपने राज्य की उन्नति करने की अपेक्षा उसमें पुरानी स्थिति को स्थिर रखना चाहते हैं। परंतु प्रजा के मन में जो इच्छा उत्पन्न

हो गई है, उसका इतनी सरलता से दमन होना तो संभव ही नहीं प्रतीत होता। पाठकों को हम बताना चाहते हैं कि लॉर्ड इरविन ने अपने शासन-काल में देशी नरेशों को समय-समय पर सचेत किया है। कुछ दिन पूर्व उन्होंने एक सरक्युलर देशी राजों के नाम जारी किया था, जिसमें उन्होंने उन्हें सुधारों की आवश्यकता बताते हुए वर्तमान शासन-पद्धति से काम लेने की सलाह दी थी।

इस समय जब जन-बल के सम्मुख प्रबल शक्तिशाली सरकार भी विचलित हुई है, तब देशी नरेशों को भी प्रथम से ही चेत जाना चाहिए। इसी में मंगल है।

× × ×

६. हमारे ग्रेजुएट

देश के युवक देश के स्तंभ हैं। उन्हीं के सहारे देश खड़ा होता है। शिक्षित युवकों का स्थान देश के लिये और भी मूल्यवान् है। परंतु क्या हमारे देश के ग्रेजुएट युवक देश के लिये उतने मूल्यवान् हैं, जितने कि किसी भी देश के युवकों को होना चाहिए।

साधारणतया ग्रेजुएट हो जाने पर हमारे युवक यह समझते हैं कि उनकी शिक्षा का ध्येय उन्हें प्राप्त हो गया। परंतु यदि सचमुच देखा जाय, तो इस समय तक तो उनकी बुद्धि का सिर्फ़ इतना विकास हो पाता है कि उसके आधार पर वे मानवीय जीवन के स्वत्वों की विवेक-पूर्वक पहचान कर सकें। जीवन के नए अनुभव, नई समस्याएँ और नई भावनाएँ तो अब उनके सामने आती हैं। परंतु ग्रेजुएट होते ही भारतीय नवयुवक बहुधा या तो सरकारी नौकरियों पर टूट पड़ते हैं या कोई ऐसा काम करने लगते हैं, जो प्रायः अर्ध-सरकारी कहाया जा सकता है। ऐसी हालत में यदि यह कहा जाय, तो अनुचित नहीं कि वे देश के काम के रहते ही नहीं।

इधर गत बीस वर्षों में बंगाल के ग्रेजुएटों ने देश के लिये उत्कट त्याग और साहस के काम अवश्य किए हैं। वे हिंसात्मक रहे, और इस कारण देश ने उनकी हस्तियों से लाभ नहीं उठाया, और वे अकाल ही कालेपानी भेज दिए गए, जेल में पेल दिए गए या फाँसी पर चढ़ा दिए गए, परंतु इस बात में तो तनिक भी संदेह नहीं कि यदि उनकी हस्ती विप्लव और हिंसक वृत्तियों से एकदम दूर रहकर तनिक मध्यम सहनशीलता-युक्त रहती, तो ये देश के सच्चे रत्न सिद्ध हो सकते थे, और देश उनसे अधिक-से-अधिक लाभ उठा सकता था।

जब भारतवर्ष स्वराज्य की सीढ़ी पर चढ़ जायगा, और आत्म-निर्णय के प्रश्न उसके सम्मुख आवेंगे, तब तो इन ग्रेजुएट युवकों की इतनी भारी आवश्यकता पड़ेगी कि जिसका हिसाब नहीं। उस समय यदि इनकी उपयोगिता में त्रुटि रही, तो वह देश का भारी दुर्भाग्य समझना चाहिए।

ग्रेजुएट होने पर यदि किसी युवक के मस्तिष्क में इस प्रकार के गंभीर विचार करने की इच्छा विकसित नहीं हुई है कि जिससे वे शिक्षित और अशिक्षित दोनो ही प्रकार के जन-समूह की अनियंत्रित भावनाओं का नेतृत्व करके उन्हें सीमित और औचित्य के अंदर रक्खें, तो हमें जानना चाहिए कि ये ग्रेजुएट लोहे के टके हैं। ज्ञान में एक अबाध शक्ति है, और सत्य जहाँ भी मनुष्य को ले जायगा, वहाँ निर्भय रक्खेगा। यह शक्ति और यह निर्भयता यदि ग्रेजुएट युवकों में नहीं, तब यह दुर्भाग्य का विषय है।

विचार ही रचनात्मक कार्यों के आधार-स्तंभ हैं। यदि विचार की प्रबल धाराएँ—जो वास्तव में शीघ्र ही देश के नव संगठित समूह का संचालन करेंगी—नीति और गंभीर तथ्य को जाननेवाली न हुईं, तो देश विजित होकर भी पराजित ही रहेगा।

यह बात तो खुले तौर से हम जान गए हैं कि देश में एक गंभीर परिवर्तन हो गया है। शताब्दियों की पुरानी बातें और संस्कृति हमने भुला दी हैं, और हम अब केवल राजनीति पर ही निरंतर बातचीत करना पसंद करते हैं। उन प्राचीन बौद्धिक गूढ़ विषयों को विचारना छोड़कर देश ने आज अपनी आत्मा को कर्कश और स्वार्थी बनाया है। यद्यपि यह

दोष है, पर देश का इसी से भला होगा। यह बात हमें स्वीकार करनी पड़ती है। ऐसी दशा में देश के ग्रेजुएट युवकों को अधिक राजनीतिज्ञ, अधिक गंभीर, अधिक वीर, साहसी और सात्विक बनने की आवश्यकता है, और उनकी शीघ्र ही बड़ी ज़रूरत पड़ेगी।

× × ×

७. अछूतों का प्रश्न

अब समय आ गया है कि अछूतों का अस्तित्व देश से उठा दिया जाय, और देश के ६ करोड़ नर-नारी मनुष्य की भाँति जीवित रहने को स्वतंत्र कर दिए जायँ, जो समय पर काम आवें।

भारत के भावी शासन-विधान में अछूतों का स्थान ख़ास रहना चाहिए, इस प्रकार की आवाज़ उठ रही है। ब्रिटिश कूट राजनीतिज्ञ न केवल इस भावना का समर्थन कर रहे हैं, प्रत्युत वे इन जातियों को दृढ़ होने के लिये भड़का भी रहे हैं। परंतु हमारा कहना तो यह है कि हमें अछूत नाम को ही उस समय से पूर्व उठा देना चाहिए था, जिस समय से कि देश में स्वाधीनता की हवा बहने लगी। क्या स्वाधीन भारत को यह शोभा देगा कि इसकी एक माता या बेटी प्रातःकाल अपवित्र मैले का टोकरा सिर पर उठाकर जीवन-भर, जीते-जी, नरक भोगे। यदि हम अछूतों के साथ न्याय और उदारता का व्यवहार नहीं कर सकते हैं, तो हमें क्या अधिकार है कि हम औरों से न्याय और स्वाधीनता माँगें।

हम यह स्वीकार करते हैं कि अछूतों के संबंध में भारत बहुत कुछ विचारने लगा है, पर इससे उनकी दुर्दशा में ज़रा भी कमी नहीं पड़ी है। जब तक हम अपने जीवन ऐसे बनाए रहेंगे कि अछूतों की ज़रूरत रहे, तब तक अछूत दूर नहीं हो सकते। यदि आपके घर में रात-दिन भंगी नहीं आता, तो क्या आप आपे से बाहर नहीं हो जाते? क्या बिना भंगी के एक दिन भी आपका काम चल सकता है? यदि नहीं, तो आप भंगी से भंगीपन नहीं छुड़ा सकते। आपको आवश्यकता इस बात की है कि आप ऐसा रहन-सहन बनावें कि आपको भंगी की आवश्यकता ही न पड़े। यदि ऐसा आप करेंगे, तो निस्संदेह अछूतपन के दूर होने की बहुत कुछ आशा है।

बहुधा अछूतों को मंदिर के बरामदे तक आने देना या ज़रा-सा उनके साथ समानता का व्यवहार करना यह समझा जाता है कि उनके साथ बड़ी भारी कृपा और उदारता का व्यवहार किया जा रहा है। परंतु वास्तव में बात तो यह है कि उनके साथ जो ज़ुल्म किया जा रहा है, उसके सामने तो यह कुछ बात ही नहीं है।

हाल ही में रत्नगिरि में एक अछूत-मंदिर की स्थापना हुई है। उसके अधिष्ठाता हैं प्रसिद्ध देश-भक्त विनायक-दामोदर सावरकर। यह मंदिर देश के सामने इस बात का नमूना है कि किस भाँति अछूतों के लिये विराट् हिंदू-राष्ट्र में स्थान निकाला जा सकता है। इस मंदिर में यह नियम रक्खा है कि स्नान और वस्त्रों से शुद्ध चाहे भी जिस जाति का हिंदू देवता की पूजा और अर्चना कर सकता है। मंदिर में भगवद्गीता का सदैव पाठ होता है, और हिंदू-मात्र एक भाव से, बिना छूतछात का भेद रक्खे, उसे सुन सकता है। क्या हम आशा करें कि भारत में अन्यत्र भी ऐसे मंदिरों की स्थापना होगी?

× × ×

८. समझौता और किसान

गांधी-इरविन-समझौते का सबसे अधिक ख़ास भाग किसानों की लगानबंदी-संबंधी है। इस समझौते ने किसानों को चौपट कर दिया है। एक फ़िरोज़ाबाद-तहसील का हम उदाहरण देते हैं कि यहाँ लगभग १०० गाँवों ने लगान देने से इनकार कर दिया था। इसका कारण राजनीतिक आंदोलन तो ओट-मात्र था। वास्तविक बात थी उनकी भयंकर दरिद्रता। टिड्डी और नाज के दर की कमी ने उन्हें तहस-नहस कर दिया था। ऐसी ही दशा अन्य प्रांतों की है। किसानों के पास पाई भी नहीं है, पर ज़िमींदार लोग और तहसीलदार लोग अंधाधुंध कुर्क़ियाँ और बे-

गंगा-पुस्तकमाला की सर्वोत्कृष्ट और सचित्र पुस्तकें

१. उपन्यास

अबला (सचित्र)—लेखक, श्रीरमाशंकर सक्सेना ; मूल्य १), १॥)

कर्म-फल (सचित्र)—मूल-लेखिका, मेरी कॉरेली ; अनुवादक, प्रोफ़ेसर बैजनाथ कोटी ; मूल्य १॥), २)

गिरिबाला (सचित्र)—लेखक, पं० व्रजकृष्ण गुर्टू बी० ए०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट ; मूल्य १), १॥)

जब सूर्योदय होगा (सचित्र)—मूल-लेखक, पं० भास्कर विष्णु फड़के बी० ए० ; अनुवादक, पं० गोपीवल्लभ-शालग्राम उपाध्याय ; मूल्य १), १॥)

तुषार तेजा (सचित्र)—लेखक, मेहता लज्जाराम शर्मा ; मूल्य ॥), १)

पतन (सचित्र)—लेखक, बाबू भगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य १॥), २)

पवित्र पापी (सचित्र, एक रूसी उपन्यास का अनुवाद)—अनुवादक, पं० व्रजकृष्ण गुर्टू बी० ए०, एल्-एल्० बी० और कविराज विद्याधर विद्यालंकार; मूल्य ३), ३॥)

प्रेम-परीक्षा—मूल-लेखिका, मेरी कॉरेली ; अनुवादक, श्रीपशुपाल वर्मा ; मूल्य ।॥=), १।=)

बहता हुआ फूल (सचित्र)—मूल-लेखक, बाबू चारुचंद्र बंद्योपाध्याय बी० ए० ; अनुवादक, पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न ; मूल्य २॥), ३)

बिदा (सचित्र)—लेखक, श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए० ; मूल्य २॥), ३)

मा (दो भाग)—लेखक, पं० विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' ; मूल्य ३), ४)

रंगभूमि (दो भाग)—लेखक, श्रीयुत प्रेमचंदजी ; मूल्य ५), ६)

विचित्र योगी—लेखक, श्रीद्वारकाप्रसाद मौर्य बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य १), १॥)

विजया (सचित्र)—मू०-ले०, श्रीशरच्चंद्र चट्टोपाध्याय; अ०, पं० रूपनारायण पांडेय; मूल्य १॥), २)

सीधे पंडित—ले०, ठा० प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य १॥)

संसार-रहस्य अथवा अधःपतन—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०; मूल्य १॥), २)

सौ अजान और एक सुजान—लेखक, श्रीयुत पं० बालकृष्ण भट्ट ; मूल्य १), १॥)

हृदय की प्यास (सचित्र)—लेखक, आयुर्वेदाचार्य पं० चतुरसेन शास्त्री ; मूल्य १॥), २)

हृदय की परख—लेखक, उपर्युक्त ; मूल्य १), १॥)

गढ़-कुंडार—ले०, बाबू वृंदावन वर्मा ; मूल्य २॥), ३)

केन—लेखक, श्रीकृष्णानंद गुप्त ; मूल्य १), १॥)

पाप की ओर—अनुवादक, श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए० ; मूल्य १), १॥)

मृत्युंजय—ले०, श्रीगुलाबरत्न वाजपेयी; मूल्य ॥), १)

गोरी—लेखक, श्रीरमाशंकर सक्सेना; मू० १), १॥)

भाई—लेखक, श्रीऋषभचरण जैन; मू० लगभग १)

अप्सरा—लेखक, कविवर निरालाजी; मू० लगभग १)

कर्म-मार्ग—अनुवादक, श्रीदुर्गाविनायकप्रसाद एम० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य १॥), २)

२. गल्प और कहानियाँ

अद्भुत आलाप—लेखक, हिंदी-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य १), १॥)

अश्रुपात (सचित्र)—लेखक, ख़्वाजा हसन निज़ामी ; अनुवादक, पं० श्रीराम शर्मा बी० ए० ; मूल्य १), १॥)

चित्रशाला (सचित्र, दो भाग)—लेखक, पं० विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' ; मूल्य ३), ४)

जासूस की डाली (सचित्र)—लेखक, बाबू गोपालराम गहमरी, जासूस-संपादक ; मूल्य १॥), २)

तूलिका (सचित्र)—लेखक, श्रीविनोदशंकरजी व्यास ; मूल्य १), १॥)

नंदन-निकुंज—लेखक, स्व० श्रीचंडीप्रसादजी बी० ए० 'हृदयेश' ; मूल्य ॥), १)

नाट्यकथाऽमृत (सचित्र)—लेखक, प्रिंसिपल चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी० ; मूल्य १), १॥)

प्रेम-गंगा (सचित्र)—अनुवादक, स्व० पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, संपादक "हिंदूपंच" ; मूल्य १), १॥)

प्रेम-प्रसून—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी; मूल्य १=), १॥=)

प्रेम-द्वादशी (सचित्र)—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी ; मूल्य १), १॥)

मधुपर्क—लेखक, पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी ; मूल्य १॥), २)

मंजरी (सचित्र)—अनुवादक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ; मूल्य १), १॥)

प्रेम-पंचमी—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी ; मूल्य ॥), १)

३. नाटक

आहुति अथवा जयपाल—अनुवादक, पं० रूपनारायणजी पांडेय; मूल्य १), १॥)

कीचक—लेखक, श्रीभगवन्नारायण भार्गव बी० ए०, एम्० एल्० सी० ; मूल्य १), १॥)

कृष्णाकुमारी (सचित्र)—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ; मूल्य १), १॥)

ख़ाँजहाँ (सचित्र)—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ; मूल्य १=), १॥=)

मिलने का पता—गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

जयद्रथ-वध—लेखक, पं० गोकुलचंद्र शर्मा बी० ए० ; मूल्य ॥।=), १।=)

दुर्गावती (सचित्र)—लेखक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य १), १॥)

पतिव्रता (सचित्र)—अनुवादक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ; मूल्य १।=), १॥।=)

पूर्वभारत—लेखक, हिंदी के धुरंधर विद्वान् "मिश्रबंधु" ; मूल्य ॥।=), १।=)

प्रबुद्ध यामुन—लेखक, श्रीवियोगी हरि ; मूल्य १), १॥)

बुद्ध-चरित्र (सचित्र)—अनुवादक, पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न ; मूल्य ॥।), १।)

वरमाला (सचित्र)—लेखक, श्रीयुत गोविंदवल्लभ पंत ; मूल्य ॥=), १=)

वेणी-संहार—लेखक, ˚० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ॥=), १=)

सौभाग्य-लाड़ला नेपोलियन (सचित्र)—अनुवादक, श्रीठाकुर लक्ष्मणसिंह वकील ; मूल्य ।), १)

उत्सर्ग—लेखक, श्रीचतुरसेन शास्त्री ; मूल्य ।=), ॥।)

समाज—लेखक, श्रीघनानंद बहुगुण एम्० ए० ; मूल्य ॥।=), १।=)

४. व्यंग्य, हास्य और प्रहसन

अचलायतन—मूल-लेखक, श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर ; अनुवादक, पं० रूपनारायण पांडेय ; मूल्य ॥), १)

ईश्वरीय न्याय—लेखक, प्रोफ़ेसर श्रीरामदास गौड़ एम्० ए० ; मूल्य ॥)

प्रायश्चित्त-प्रहसन—लेखक, पं० पनारायण पांडेय ; मूल्य =)

मध्यम व्यायोग—लेखिका, श्रीमती सुशीलादेवी जायसवाल ; मूल्य =)

मूर्ख-मंडली—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ; मूल्य ॥=), १=)

मिस्टर व्यास की कथा—लेखक, स्वर्गीय पंडित शिवनाथजी शर्मा बी० ए० ; मूल्य २॥), ३)

रावबहादुर—मूल-लेखक, मौलियर ; अनुवादक, पं० लक्ष्मीप्रसाद पांडेय ; मूल्य ॥।), १।)

लबड़धोंधों—लेखक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य ॥।=), १।=)

विवाह-विज्ञापन (सचित्र)—लेखक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य १), १॥)

५. काव्य

आत्मार्पण (सचित्र)—लेखक, द्वारकाप्रसाद गुप्त "रसिकेंद्र" ; मूल्य ॥।), १।)

उषा (सचित्र)—लेखक, स्व० श्रीशिवदास गुप्त "कुसुम"; मूल्य ॥=), १=)

लतिका—लेखक, श्रीगुलाबरत्न वाजपेयी ; मूल्य १), १॥)

पूर्ण-संग्रह—लेखक, राय देवीप्रसाद "पूर्ण" मूल्य १॥), २)

पराग (सचित्र)—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ; मूल्य ॥), १)

परिमल—लेखक, श्रीसूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', मूल्य १॥), २)

पद्य-पुष्पांजलि—लेखक, पं० श्यामविहारी मिश्र एम्० ए० और ˚० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०; मूल्य १॥), २)

भारत-गीत—लेखक, कवि-सम्राट् स्व० पं० श्रीधर पाठक ; मूल्य ॥।=), १।=)

रति-रानी—लेखक, 'सुहृदत्रय' ; मूल्य १॥।), २।)

६. साहित्य

निबंध-निचय—लेखक, हिंदी के उत्कृष्ट समालोचक पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ; मूल्य १), १॥)

विश्व-साहित्य—लेखक, सरस्वती-संपादक श्रीपदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी बी० ए० ; मूल्य १॥), २)

साहित्य-सुमन—लेखक, स्व० पं० बालकृष्ण भट्ट ; मूल्य ॥=), १=)

साहित्य-संदर्भ—लेखक, आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य १॥), २)

सौंदरनंद-महाकाव्य—प्रणेता, अध्यापक रामदीन पांडेय एम्० ए० ; मूल्य ॥), १)

संभाषण—लेखक, पं० दुलारेलालजी भार्गव ; मूल्य ।), ।)

हिंदी—लेखक, लखनऊ-विश्वविद्यालय के हिंदी-लेक्चरार पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य ॥=), १=)

७. समालोचनाएँ

देव और बिहारी—लेखक, पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य १॥।), २।)

भवभूति—अनुवादक, हिंदी-संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० ज्वालादत्त शर्मा ; मूल्य ॥=), १=)

हिंदी-नवरत्न—लेखक, हिंदी-संसार के धुरंधर समालोचक "मिश्रबंधु" ; मूल्य ४॥), ५)

८. जीवन-चरित्र

अयोध्यासिंह उपाध्याय ... ... ≡)

केशवचंद्रसेन—लेखक, भारतीय हृदय; मूल्य १), १।)

कारनेगी और उनके विचार—लेखक, श्रीउमरावसिंह कारुणिक ; मूल्य ।=)

प्राचीन पंडित और कवि—लेखक, आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ; मूल्य ॥।=), १।=)

बंकिमचंद्र चटर्जी—लेखक, पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न ; मूल्य १), १॥)

सम्राट् चंद्रगुप्त—लेखक, पं० बालमुकुंद वाजपेयी ; मूल्य

सुकवि-संकीर्तन (सचित्र)—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी; मूल्य १।), १॥।)

९. इतिहास

इँगलैंड का इतिहास (तीन भाग, सचित्र)—लेखक, डॉ० प्राणनाथजी विद्यालंकार पी० एच० डी० ; मूल्य ३॥।), ४)

१०. अर्थशास्त्र

भारतीय अर्थशास्त्र (दो भाग)—लेखक, भूतपूर्व प्रेम-संपादक बाबू भगवानदासजी केला; मूल्य २॥), ३॥)

विदेशी विनिमय—लेखक, श्रीदयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य १), १॥)

११. कृषि

उद्यान (सचित्र)—लेखक, श्रीशंकरराव जोशी एग्रिकल्चरल ऑफ़िसर ; मूल्य १=), १॥=)

किसानों की कामधेनु (सचित्र)—लेखक, पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ; मूल्य ।=)

कृषिमित्र—लेखक, पं० गंगाप्रसाद पांडेय एल्० एजी०, सुपरिंटेंडेंट एग्रिकल्चर ; मूल्य ।-)

१२. स्वास्थ्य और चिकित्सा

तात्कालिक चिकित्सा (सचित्र)—लेखक, बाबू लालबहादुरलाल ; मूल्य १), १॥)

स्वास्थ्य की कुंजी—लेखक, डॉक्टर बाबूराम गर्ग; मूल्य १।), १॥।)

संक्षिप्त शरीर-विज्ञान—लेखिका, श्रीमती हेमंतकुमारी भट्टाचार्य ; मूल्य ॥=)

संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा—लेखिका, श्रीमती हेमंतकुमारी भट्टाचार्य ; मूल्य ॥=)

१३. वैज्ञानिक

भूकंप—लेखक, बाबू रामचंद्र वर्मा ; मूल्य ।॥=)

मनोविज्ञान—लेखक, प्रिंसिपल पं० चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ॥), १)

१४. नवयुवकोपयोगी

आशा में प्रभात—मूल-लेखक, पाल रिचर्ड ; अनुवादक, श्रीठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी० ए० ; मूल्य ॥), १)

किशोरावस्था (सचित्र)—लेखक, गोपालनारायण सेन-सिंह बी० ए० ; मूल्य ॥=), १=)

जीवन का सद्व्यय—अनुवादक, श्रीहरिभाऊ उपाध्याय, संपादक त्यागभूमि ; मूल्य १), १ij)

पाली-प्रबोध—लेखक, ° आद्यादत्तजी ठाकुर एम्० ए०, काव्यतीर्थ ; मूल्य १॥)

भारत में बाइबिल (दो भाग)—लेखक, श्रीसंतराम बी० ए० ; मूल्य प्रत्येक भाग १॥), २)

भिखारी से भगवान्—अनुवादक, ठाकुर बाबू नंदनसिंह बी० ए० ; मूल्य १), १॥)

मदर-इंडिया का जवाब—लेखिका, श्रीमती चंद्रावती लखनपाल एम्० ए० ; मूल्य १), १॥)

मुक्ति-मंदिर—लेखक, साधु टी० , एल० वास्वानी; अनुवादक प्रोफ़ेसर बेनीमाधव अग्रवाल ; मूल्य ॥=), १=)

सुख तथा सफलता मूल्य ।)

हिंदू-जीवन का रहस्य—लेखक, देवता-स्वरूप भाई परमानंदजी एम्० ए० ; मूल्य ॥=), १=)

नीति-रत्नमाला मूल्य ।)

Hindi in 30 days मूल्य ॥), १)

१५. योग

कर्म-योग—लेखक, श्रीसंतराम बी०ए०; मूल्य ॥), १)

जीवन-मरण-रहस्य—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य ।=)

प्राणायाम—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य ॥=), १=)

योग की कुछ विभूतियाँ—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य ॥), १)

योग-शास्त्रांतर्गत धर्म—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य ॥), १)

योगत्रयी—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य ॥), १)

राजयोग—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य १॥), २)

हठयोग—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य १=), १॥=)

योग-दर्पण—लेखक, लाला कन्नोमलजी एम्०ए० ; मूल्य १), १॥)

महिला-माला की मनोहर मणियाँ

कमला-कुसुम (सचित्र)—लेखिका, श्रीमती गिरिजादेवी ; मूल्य ॥)

गप्प संदेस (दो भाग)—लेखक, डॉ० युद्धवीरसिंह ; मूल्य १)

जच्चा—लेखक, कविराज श्रीप्रतापसिंह वैद्य, हिंदू-विश्वविद्यालय के आयुर्वेद-विभाग के सुपरिंटेंडेंट ; मूल्य ।॥)

देवी पार्वती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ।॥), १)

देवी सती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ॥), १)

देवी द्रौपदी (सचित्र)—लेखक, कविवर श्रीराम-चरितजी उपाध्याय ; मूल्य ।=)

नल-दमयंती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ।।।), १)

नारी-उपदेश—लेखक, श्रीगिरिजाकुमार घोष ; मूल्य ।।)

पत्रांजलि—मूल-लेखक, श्रीसतीशचंद्र चक्रवर्ती ; अनुवादक, पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी ; मूल्य ।=)

भारत की विदुषी नारियाँ—संपादिका, श्रीमती कृष्णकुमारी ; मूल्य ।।)

भारतीय स्त्रियाँ—अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा ; मूल्य १।।), २)

महिला-मोद—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ।=)

लक्ष्मी (सचित्र)—लेखक, श्रीगिरिजाकुमार घोष ; मूल्य ।।)

वनिता-विलास (सचित्र)—लेखक, भूतपूर्व सरस्वती-संपादक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ।।)

सती सावित्री (सचित्र)—लेखक, अध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी 'श्रीहरि' ; मूल्य ।।=), ।।।=), १=)

देवी सीता (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य १।), २)

देवी शकुंतला—लेखक, श्रीहरिप्रसाद द्विवेदी ; मूल्य ।।=), ।।।=)

बाल-विनोद-वाटिका के सुंदर सुमन

इतिहास की कहानियाँ (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ।।)

कागज़ी करतब (सचित्र)—ले०, श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य लगभग ।।)

कीड़े-मकोड़े (सचित्र)—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ।।)

खिलवाड़ (सचित्र)—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ।)

खेल-पचीसी (सचित्र)—लेखक, श्रीप्रतिपालसिंह ; मूल्य ।)

गधे की कहानी (सचित्र)—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मू० ।।=), १=)

दिलावर सियार (सचित्र) मूल्य ।।)

नटखट पाँड़े (सचित्र)—लेखक, श्री पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य १), १।।)

परोपकारी हातिम (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य १), १।।)

बाल-नीति-कथा (दो भाग)—मूल-लेखक, श्रीयुत ए० बी० ध्रुव एम्० ए०, एल-एल्० बी० ; अनुवादक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य २।।), ३।)

बाल-विलास (सचित्र)—लेखक, श्रीगुरुराम भक्त ; मूल्य ।=), ।।=)

भगिनी-भूषण—लेखक, स्व० श्रीबाबू गोपालनारायण सेन-सिंह बी० ए० ; मूल्य =)

भगवान् गौतम बुद्ध (सचित्र) मूल्य ।-), ।।)

भारत के सपूत (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ।।), १)

भू-कवच (सचित्र) मूल्य ।=), ।।=)

मर्यादाराम की कहानियाँ (सचित्र) मूल्य ।।=), १=)

लड़कियों का खेल (सचित्र)—लेखक, स० श्रीगिरिजाकुमार घोष ; मूल्य ।=)

विचित्र वीर (सचित्र)—लेखक, श्रीजगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ; मूल्य ।।।), १।)

सुघड़ चमेली (सचित्र)—लेखक, श्रीयुत रामजीदास भार्गव ; मूल्य =)

सुनहरी नदी का राजा (सचित्र) मूल्य ।।), १)

हँसी-खेल (सचित्र)—ले०, श्रीजगमोहन 'विकसित' ; मूल्य ।।=), १=)

युधिष्ठिर—लेखक, श्रीकृष्णगोपाल माथुर ; मूल्य ।।।), १)

साहसी बालक मूल्य लगभग ।=)

घरेलू कहानियाँ—लेखिका, कुमारी गोपालदेवी ; मू० ।)

सुरुचि-माधुरी-माला के अनुपम रत्न

मतिराम-ग्रंथावली—संपादक, पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य २।।), ३)

मिश्रबंधु-विनोद (तीन खंड)—लेखक, पं० गणेशविहारी मिश्र, माननीय रा० ब० पं० श्यामविहारी मिश्र एम्०ए० और रा० ब० पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० ; प्रथम खंड मूल्य २), २।।)

द्वितीय खंड ,, ३), ३।)

तृतीय खंड ,, २), २।)

विहारी-रत्नाकर—प्रणेता, ब्रजभाषा के पारदर्शी विद्वान् बा० जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए० ; मू० ३)

भार्गव चित्रावली

मिलने का पता—गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला के स्थायी ग्राहक

बनने से

माला की पुस्तकों पर २५) सैकड़ा तथा बाहरी पुस्तकों पर एक आना रुपया कमीशन मिलेगा।

ग्राहक बनकर आप न केवल पुस्तकों से लाभ उठाएँगे, वरन मातृभाषा के प्रचार में भी हमारा हाथ बटाएँगे।

आज ही ॥) प्रवेश-फ़ीस देकर स्थायी ग्राहक बन जाइए।

नियम नीचे दिए हुए हैं—

(१) स्थायी ग्राहक बनने की प्रवेश-फ़ीस सिर्फ़ ॥) है।

(२) पुस्तकें, प्रकाशित होते ही—१५ दिन पहले दाम आदि का "सूचना-पत्र" * भेज देने के बाद—स्थायी ग्राहकों को, २५) सैकड़ा कमीशन काटकर, वी० पी० द्वारा, भेज दी जाती हैं। ५-६ रुपए की ४-५ पुस्तकें एक साथ भेजी जाती हैं, जिसमें डाक-ख़र्च में बचत रहे।

(३) जो पुस्तकें हमारी प्रकाशित अन्य मालाओं में निकलती हैं, उन पर स्थायी ग्राहकों को १५) सैकड़ा कमीशन दिया जाता है।

(४) स्थायी ग्राहक जिस पुस्तक को चाहें, लें; जिस पुस्तक को न चाहें, न लें; यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। वे चाहे जिस पुस्तक की चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जब, ऊपर-लिखे कमीशन पर मँगा सकते हैं।

(५) बाहर की—हिंदुस्थान-भर की—सब पुस्तकें स्थायी ग्राहकों को -) रुपया कमीशन पर मिलती हैं।

(६) स्थायी ग्राहक ऑर्डर देते समय अपना ग्राहक-नंबर अवश्य नोट कर दिया करें, जिसमें उनके ऑर्डर पर कमीशन कटने में भूल न हो।

(७) स्थायी ग्राहक की भूल से वी० पी० लौट आने पर डाक-ख़र्च उनको ही देना पड़ता है, और दो बार वी० पी० लौट आने पर स्थायी ग्राहकों की सूची से उनका नाम काट दिया जाता है।

* नई पुस्तकों में से यदि कोई या सब न लेनी हों, अथवा और कोई पुस्तकें मँगानी हों, तो 'सूचना-पत्र' मिलते ही हमें पत्र लिखना चाहिए, जिसमें इच्छानुसार काररवाई कर दी जा सके। १५ दिन के अंदर कोई सूचना न मिलने पर सब नई पुस्तकें वी० पी० द्वारा भेज दी जाती हैं।

कुछ बढ़िया-बढ़िया पुस्तकें

[स्थायी ग्राहकों को इन पर ।) रुपया कमीशन दिया जायगा]

उपन्यास

नाम	लेखक	मूल्य
हृदय-लहरी	लक्ष्मीनारायण गुप्त	।)
बनाम स्वदेश	चतुरसेन शास्त्री	॥=)
मन की मौज	नारायणप्रसाद अरोड़ा	॥)
तरंग	राधिकारमणप्रसाद	॥=)
कृष्णकुमारी	हरदीपनारायण	।=)
आदर्श वहू (स्त्रियोपयोगी)	अनुवादक, शिवसहाय चतुर्वेदी	।॥)
उर्वशी व मोहनकुमारी	पन्नालाल भय्या	२)
पूरनमल भक्त (ऐतिहासिक)		१।)
नवचरित (ऐतिहासिक)		१।)
विलासकुमारी (ऐतिहासिक)	दुर्गाप्रसाद तिगनाथ	२)
देवयानी या शर्मिष्ठा	विश्वंभरनाथ शर्मा	।)

नाटक और प्रहसन

नाम	लेखक	मूल्य
उपयोगितावाद	उमरावसिंह बी०ए०	१)
तक़दीर का फ़ैसला	मथुराप्रसाद शर्मा	।)
विनोद-रत्नाकर	श्यामसुंदर चतुर्वेदी	॥)
गौरीशंकर	रामनारायणसिंह	।=)
रणबाँकुरा चौहान (ऐतिहासिक)	मनसुखलाल सोजातिया	१)

गल्प और कहानियाँ

नाम	लेखक	मूल्य
जमालमाला	पन्नालाल भय्या	॥)
कथा-कहानी	नारायणप्रसाद अरोड़ा	।)
गृह का फेर	अखौरी अनंतसहाय	।-)
उन्नति	रेशमीलाल सोठिया	॥=)
पुनरुत्थान	अनु०, कृष्णलाल वर्मा	॥=)
रुई और मिश्रण	अनु०, कस्तूरमल बाँठिया	१॥)

राष्ट्रीय व राजनीतिक

नाम	लेखक	मूल्य
गांधी-दर्शन	चंद्रराज भंडारी विशारद	१)
अहमदाबाद खादी नगर का इतिहास	चंद्रशेखर पाठक	।)
भारत को स्वाधीनता-संदेश	सुखसंपतिराय	१)
असहयोग-दर्शन	अनुवादक, हरिभाऊ उपाध्याय	१।)
अकालियों का आदर्श-सत्याग्रह	संपूर्णानंद	।)
गांधीजी का बयान	अनु०, कृष्णलाल वर्मा	॥)
संसार-व्यापी असहयोग	अनु०, शंकरराव	॥=)
जाग्रत् भारत	माधव शुक्ल	॥)
राष्ट्रीय पंचक	एक भारतीय	।)
भारतीय जागृति	भगवानदास केला	।)
राष्ट्रीय शिक्षा	राष्ट्र-सेवक	=)
हमारी कारावास-कहानी	भवानीदयाल संन्यासी	॥)
लखनऊ-कांग्रेस में स्वराज्य	बद्रीप्रसाद	।)
भारतीय नवयुवकों को राष्ट्रीय संदेश	रघुनाथप्रसाद	॥)
स्वदेशी पर महात्मा गांधी	बद्रीप्रसादजी	॥)
स्वराज्य-वीणा (कविता)	मेहता वीरसिंह वर्मा	॥=)
भारतीय तरंग	श्रीकांत कुसुमाकर	।)
असहयोग पर महात्मा गांधी	गिरिधर शुक्ल	॥)
वीणा-झनकार (कविता)	"विमल"	।=)
क़ानून-भंग	मातादीन शुक्ल	॥)
आदर्श-ग्राम	राजेंद्रसिंह	-)
सर्वोदय	महात्मा गांधी	।)

धर्म-शास्त्र तथा कर्मकांड

नाम	लेखक	मूल्य
पातंजल-योगदर्शन	रुद्रदत्त शर्मा	३)
मनुस्मृति	स्वामी दर्शनानंद	१।)
दृष्टांत-समुच्चय	शिवशर्मा उपदेशक	१॥)
अष्टोपनिषद्	बद्रीदत्त जोशी	३)

मिलने का पता—गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

नाम	लेखक	मूल्य
शुद्धनामावली	गणेशदत्त शर्मा इंद्र	।।)
गीता-विमर्श	नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	१।)
भगवद्गीता (भा० टी०)	रामस्वरूप शर्मा	।=)
वैदिक धर्म और इस्लाम	शिवशर्माजी उपदेशक	१)
मंत्रसिद्ध-भांडागार	गौरीशंकर मिश्र	२)
रति-शास्त्र	कन्हैयालालजी मिश्र	२)
श्याम-रहस्य-तंत्र (भा० टी०)	कुंदनलाल विद्यारत्न	३)
कौतुकरत्नाकर		२)
अर्थ-शास्त्र	प्रो० बालकृष्ण	१।।)
अग्निहोत्र-व्याख्या	बालकृष्ण एम्० ए०	।।)
वैदिक धर्म-रहस्य	सभापति उपाध्याय	।।)
काशीखंड	भवानीचरण	१)
कृष्ण के क्राइस्टक (पुराण)	रघूलाल	२)
हितोपदेश (भाषा-काव्य)	मेवालाल चौधरी	।।।)
अंगीर-संहिता (वैद्यक)	भवानीचरण	।।-)
वशिष्ठ-संहिता	,,	।।-)
शंख-संहिता	,,	।।)
पराशर-संहिता	,,	।।-)
व्यास-संहिता	,,	।।-)
कल्कि-पुराण	,,	२)
स्वदेशी वैद्य	रामचंद्र वैद्यशास्त्री	१)
गीतासार	राजयरत्न आत्माराम	।=)
सचित्र लघु भारत	गोपीवल्लभ-शालग्राम उपाध्याय	।=)
हरफ़नमौला	चंद्रराज भंडारी विशारद	१)
अद्वैतामृत		।।=)

विविध विषय

नाम	लेखक	मूल्य
ताज़ीरात हिंद	हरिशंकर शास्त्री	२)
संतान-शिक्षक	गोकुलचंद्रजी	।।)
सिक्खों के दस गुरु	ज्वालादत्त शर्मा	।।।)
पाखंड-विडंबिनी	बस्तीराम शर्मा	।=)
देश-दिवाकर	स्वामी भास्कर तीर्थजी	१।)
यज्ञ-संग्रह	आचार्य रामेंद्रसुंदर त्रिवेदी	।।।)
कालिदास-ग्रंथावली	कन्हैयालाल मिश्र	३)
डाकिनी-विद्या	,,	१।)
तोता-मैना	शिवशंकर शास्त्री	१।)
कैलास (शिवरात्रि-अंक)	शिवशंकर शास्त्री	।।)
धातु-चिकित्सा	गो० घनश्यामजी	।=)
स्वर्ग में सब्जेक्ट-कमेटी	रुद्रदत्त शर्मा	=)।।
होमियोपैथिक-चिकित्सा		२।।)
बोल्शेविक रूस	रमाशंकर अवस्थी	।=)
पाश्चात्य संसार और भारतवर्ष	देवकीनंदन विभव	१)
किरणशशि	रामप्रसाद सन्याल	।-)
मनोव्यथा	हृदयनारायण पांडेय	=)
आधुनिक गायन	मुंशी हीरालाल	-)
सुभाषित-संजूषा	चौधरी रामसिंह	१।)
हिंदू-संगठन	राजकिशोरसिंह	।।।)
उन्नति	रेशमीलाल सोठिया	।।=)
आर्य-पर्वावली	भवानीप्रसादजी	।।।)
उर्दू-कवियों की नीति-कथाएँ	शिवनाथसिंह शांडिल्य	।=)
पार्श्वयज्ञ	श्रीअर्जुनलाल सेठी	।=)
भगिनीद्वय यानी मरुभूमि में जलबिंदु	यशवंत सूर्जाजी देसाई	।=)

स्त्रियोपयोगी

नाम	लेखक	मूल्य
स्त्री-गीत-संग्रह	शंकरदत्त शर्मा	।।।)
द्रौपदी-स्वयंवर	कृष्णानंद लीलाधर जोशी	१)
सावित्री की कथा	,, ,,	।=)
स्त्री-शिक्षा	दशरथ बलवंत	=)
आदर्श-बहू	अनु०, शिवसहाय चतुर्वेदी	।।।)
स्त्री-रत्न	कृष्णलाल वर्मा	।-)
अनंतमती	,, ,,	।।=)

नाम	लेखक	मूल्य
गृहिणी-गौरव	कृष्णलाल वर्मा	१॥)
मनाजात बेवा या विधवा-प्रार्थना	मौलाना ख़्वाजा अल्ताफ़-हुसेन साहब हॉली	।=)
भारत-महिला-मंडल	ठा० हनुमंतसिंह रघुवंशी	१)

जीवन-चरित

नाम	लेखक	मूल्य
महादेव गोविंद रानाडे	श्यामसुंदर त्रिपाठी	।)
मेरी व्यापक शिक्षा	रामभल जैन	।=)
विरजानंद सरस्वती	धर्मवीर लेखरामजी	=)
मनीषी चाणक्य	रमाशंकर त्रिपाठी	।)

हुज़ूरी कर रहे हैं। यह काम जिस निर्दयता से हो रहा है, उसका वर्णन न करना ही उत्तम है। कांग्रेस का उन्हें बड़ा सहारा था, पर अब वह भी न रहा।

कांग्रेस का यह कर्तव्य था कि लगानबंदी के लिये किसानों को उभारने से पूर्व सब बातों पर पूरा-पूरा विचार कर लिया जाता, और किस प्रकार सदा के दरिद्र किसान सर्वनाश से बच सकते हैं, इसका बंदोबस्त सोच लिया जाता।

सरकार ने इस प्रश्न को समझौते में अपनी उदारता के ऊपर ही निर्भर कर रक्खा है, परंतु सरकार की उदारता की सिर्फ़ कल्पना ही कर लेना यथेष्ट है। हम यह अच्छी तरह कह सकते हैं कि सरकार की उदारता की परीक्षा न लेना ही अच्छा है। हाल ही में राजा साहब कालाकाँकर की कुर्क़ी उनकी कुछ बक़ाया मालगुज़ारी के कारण कर दी गई है। रईसों के साथ जब सरकार का यह व्यवहार है, तो ग़रीबों की बात ही क्या!

यू० पी० के किसानों के कष्टों को मनस्वी मित्रवर श्रद्धेय श्रीपुरुषोत्तमदासजी टंडन ने समझा है। वह इस संबंध में जी-जान से चेष्टा कर रहे हैं। शेष किसी भी नेता के मुख पर इन करोड़ों ग़रीबों की दशा के संबंध में एक बात भी नहीं आई। स्वराज्य के सपने दिखाकर इन ग़रीबों को सरोते में कतरा जा रहा है। इससे अधिक दयनीय बात और हो क्या सकती है। हम यह कहे देते हैं कि भोले-भाले किसानों को आंदोलन के चक्कर में कांग्रेस ने खींचा है, यदि वह उन्हें मँझधार में छोड़ देगी, और ज़िमींदारों तथा अदालत के पेंचों में फँसने देगी, तो इसका परिणाम अत्यंत भयानक होगा।

× × ×

६. बर्मा-विच्छेद

बर्मा को भारत से अलग करने का विचार सरकार बहुत दिनों से कर रही है। सन् १९२२ ई० से यह प्रश्न सामने है। लेकिन अभी तक कुछ भी निश्चय नहीं हो पाया। भारत-सरकार बर्मा को अलग करके उसकी शासन-पद्धति में परिवर्तन करना चाहती है। यदि दोनो प्रदेश संगठित बने रहें, तो सरकार की नीति में बाधा पड़ती है। बर्मा बहुत उपजाऊ है। वहाँ तेल की खानें और कुएँ भी अधिक हैं। टीन, चाँदी, सीसे, जस्ते और ताँबे की खानें भी हैं। जंगल घने होने के कारण लकड़ी और चावल का बड़ा भारी व्यापार होता है। इसके सिवा वहाँ का जल-वायु अँगरेज़ों के विशेष अनुकूल है। ऐसी स्थिति में बर्मा भारत से कहीं उत्तम है। फिर अँगरेज़ इसे अनायास ही क्यों छोड़ने लगे?

अब जब से गांधी-संग्राम ने ज़ोर पकड़ा है, तब से यह प्रश्न और भी अधिक गंभीरता से विचार में है। गोल-सभा में भी इस प्रश्न पर वाद-विवाद चला था। बहस के उपरांत प्रधान मंत्री महोदय ने मामला शीघ्र निबटाने के अभिप्राय से गोल-मोल कह दिया था कि अच्छा, अब यह प्रश्न तो समाप्त हुआ। इसी आधार पर कोई कहता है कि बर्मा-विच्छेद स्वीकार हो गया, और कोई कहता है कि नहीं। गोल-सभा में जो बर्मा-प्रतिनिधि गए थे, वे सभी सरकार के पक्षी थे। भारत की तरह बर्मा में भी एक कांग्रेस है। इसका नाम है General Council of Burmese Association. इस संस्था का ख़ूब प्रभाव है। अभी तक इस कांग्रेस ने विच्छेद-योजना का घोर विरोध किया है, क्योंकि वे बर्मा को अलग करके भारत के लिये ग़ैर बनना नहीं चाहते। भारत और बर्मा प्राचीन काल से बहुत घनिष्ठ संबंधित हैं। वहाँ का धर्म बौद्ध है, इसलिये वे भारत को गुरु मानते हैं। इसके सिवा भारत और बर्मा का शासन समान होने में वे अपना और भारत का गौरव समझते हैं। उन्हें विश्वास है कि सरकार विच्छेद करके बर्मा को कमज़ोर बना देना चाहती है। बर्मी प्रजा की अधिकांश सम्मति विच्छेद के विरुद्ध है। लेकिन कुछ गवर्नमेंट सहयोगियों ने इस बात के पक्ष में जी-हुज़ूरी और हाँ मिलाई है। उस दिन नई दिल्ली में लेजिस्लेटिव एसेंबली के अधिवेशन में बर्मा के प्रतिनिधि मि० यू० के० यामाइंद

ने कहा था—"हमें यह बहकाया गया है कि बर्मा के अलग होने से ही उसे स्वराज्य मिल जायगा। परंतु यह बात नहीं है। बर्मा की प्रजा का मुख्य अंश General Council of Burmese Association की राय नहीं ली गई, जो कि परम आवश्यक है।"

गोल-सभा के प्रस्तावानुसार बर्मा की विभक्ति अमल में लाने के लिये सरकार से कहा गया, परंतु इसमें अभी देरी की जा रही है। इससे तो यह प्रकट होता है कि यह विषय अभी और भी विचारा जायगा। कोई भी प्रजा इस प्रश्न को अलग करना नहीं चाहती। अभी तो व्यापार के सुबीते, आने-जाने की स्वतंत्रता, प्रेम भाव और समानता का उपयोग हमें प्राप्त है, परंतु बर्मा के अलग होते ही ये सब काम बिना रुकावट के न हो सकेंगे। जाने के लिये पासपोर्ट लेना होगा, माल पर चुंगी की दर बढ़ जायगी, और भ्रातृ-भाव की संस्कृति मिट जायगी, सो अलग। हम यह प्रकट कर देना चाहते हैं कि बर्मा को पृथक् कर देना सरकार किसी लाभ-दृष्टि से करना चाहती है, और उस लाभ में अधिक अंश उसी का होगा। भारत के सहयोगी पत्रों ने इस पर अच्छी आलोचना की है। पृथक् करने की विवेचना करते हुए वे कहते हैं कि इस चाल द्वारा बर्मा राजकीय उपनिवेश बन जायगा। ऐसा होते ही अँगरेज़ अधिक संख्या में वहाँ जा बसेंगे। चीन मिला हुआ ही है। रक्षा के लिये पहले थोड़ी और फिर बहुत सेना वहाँ रक्खी जाने लगेगी। जिस प्रकार भारत का पतन किया गया, वही दशा यहाँ होगी। क्योंकि यह भी निश्चय है कि भारत तो अँगरेज़ों के हाथ से निकला, फिर वे बर्मा को क्यों न पकड़ें। उन सभी की यह राय है कि भारत को बर्मा से अलग न किया जाय। बर्मा का गवर्नर उसी प्रकार बर्मा की शासन-व्यवस्था रखता है, जैसे भारत के किसी प्रांत का कोई गवर्नर। फिर भी शासन की आड़ लेकर उसे पृथक् करना किसी अंधकारमय भविष्य में अर्थ रखता है।

× × ×

१०. भगतसिंह की फाँसी

इस वीर की फाँसी की आशंका ने गत २½ वर्षों से देश-भर में व्याकुलता उत्पन्न कर रक्खी थी, और सब इस प्रतीक्षा में थे कि इसका क्या होगा? गत कई महीनों से तो भगतसिंह की चर्चा इतनी अधिक फैल गई थी कि वाइसराय की विशाल अट्टालिका और महात्मा गांधी की ग़रीब कुटिया भी इससे हिल गई थी, और उन्हें इसके विषय में वारंवार विशेष रीति से सोचना पड़ा। संधि से निबटकर अगले दिन ही महात्मा गांधी ने दिल्ली-निवासियों की दो लाख भीड़ के सामने अपना वक्तव्य देते हुए आश्वासन दिया था कि "यदि तुम लोगों ने इस संधि पर अक्षरशः अमल किया, तो मैं भगतसिंह आदि-जैसे बहादुरों को भी बचवा सकूँगा। यदि ऐसा न हो, तो तुम मुझसे जवाब तलब करना।" महात्माजी के इन वचनों से युवक-मंडल को बहुत अच्छी सांत्वना मिल गई थी, और वह भगतसिंह के छुटकारे का स्वप्न देखने लगा था।

लेकिन १९ मार्च से रुख़ बदला हुआ दिखाई देने लगा। भगतसिंह की गोली से उड़ा देने की अर्ज़ी अस्वीकार कर दी गई, और अधिकारियों ने फाँसी देने की तैयारियाँ शुरू कीं। मालूम होता है, सरकार ने भगतसिंह आदि से क्षमा मँगवाने की चेष्टा की थी। यदि वे क्षमा-याचना करते, तो कदाचित् फाँसी टल जाती; पर भगतसिंह ने क्षमा माँगने से इनकार कर दिया। अहिंसा के अवतार महात्मा गांधी ने वाइस-राय से लेकर उच्च अधिकारियों तक दौड़-धूप की। देश की भिक्षा को सामने रक्खा, परंतु उन्हें सफलता न मिली। आख़िर उन्होंने कराँची तार भेजा कि "निकट भविष्य में ही सरदार भगतसिंह आदि वीरों को फाँसी दी जानेवाली है, मैं चेष्टा करके भी उन्हें बचा न सका। इस दुःखदायी अवसर पर कांग्रेस का कोई प्रदर्शन न किया जाय।" इस तार से तो समस्त भारत में बिजली फैल गई, और सबको निश्चय हो गया कि भगतसिंह आदि फाँसी पर चढ़ा दिए जायँगे। इनके संबंधियों को २३ मार्च की दोपहर को ११ बजे

अंतिम भेंट की सूचना भेज दी गई। ये लोग जब भेंट करने पहुँचे, तो साथ में निकट के अन्य पारिवारिक जन थे, लेकिन जेल-सुपरिंटेंडंट ने इन सबको अंदर जाने की आज्ञा नहीं दी। निदान भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंहजी ने भी भेंट करने से साफ़ इनकार कर दिया, और सब लोग विना अंतिम भेंट किए ही लौट गए। सायंकाल को ३ बजे से ही जेल की सारी आमद-रफ़्त रोक दी गई। सशस्त्र पुलिस का पहरा था। लगभग ६ बजे मैजिस्ट्रेट ने भगतसिंह आदि से भेंट की, और फाँसी की सूचना दी। इस पर भगतसिंह ने मुस्किराकर कहा—"मि० मैजिस्ट्रेट, आप बहुत सौभाग्यशाली हैं। आज हम बताएँगे कि स्वाधीनता के सिपाही किस भाँति फाँसी का आलिंगन करते हैं।" जब उनको कोठरियों से बाहर निकाला गया, तो सरदार भगतसिंह ऊँची आवाज़ से यह गीत गा रहे थे—"मेरा रँग दे बसंती चोला, इसी रंग में रँगकर शिवा ने मा का बंधन खोला", और वे प्रसन्नता-पूर्वक जल्दी-जल्दी चलकर वध-स्थल पर जा पहुँचे। उन तीनो की इच्छा थी कि हम लोग उछलकर रस्सी ले लें। परंतु जेल-अधिकारियों ने पहले भगतसिंह को तख़्ते पर चढ़ाया, फिर दाईं-बाईं ओर सुखदेव और राजगुरु को। तीनो के गले में रस्सी डाल दी गई, और तख़्ता हटा लिया गया। देखते-ही-देखते वीरों के प्राण निकल गए!

हमें मान लेना चाहिए कि इन लोगों को इनकी फाँसी ने ही देश के शहीदों का राजमुकुट पहनाया है। भगतसिंह की निर्भय बातों ने राजगुरु और सुखदेव को भी बहुत कुछ साहसी बना दिया था। गत मास की रिपोर्ट से पता चला था कि इन सबका वज़न बढ़ गया था, और वे मृत्यु की घड़ी को इस प्रकार याद कर रहे थे, मानो उनका विवाह निकट हो।

लगभग ६½ बजे उनकी लाश को उतारकर मोटर-लारी पर रक्खा गया, और सतलज-नदी के किनारे ले जाकर फूँक दिया गया, फिर ४ बजे उनकी राख को उसी नदी में बहा दिया गया। सरदार भगतसिंह के पिता अपने परिवार-सहित उस पुण्य भूमि पर अंतिम स्मृति ढूँढ़ने गए। उनके साथ एक आठ वर्ष की बच्ची भी थी, जो भगतसिंह की बहन थी। इस बेचारी बालिका को अपने भाई की टाँग के मांस का एक अधजला अंश मिल गया। उसे गोद में रखकर वह फूट-फूटकर रोने लगी, और बेहोश हो गई। पिता का तो कहना ही क्या था, वह ममता को कब तक रोकते, आख़िर वह भी बिखर पड़े। करुण रुदन से वह तट भर गया। पास ही पुल था, प्रकृति ने उस निर्जीव को भी आँसू दे दिए थे।

निदान जो कुछ वह पा सके, ले आए, और उसी का जलूस निकाला गया। अपने भाषण में सरदार किशनसिंह ने बताया कि मेरे बच्चे को ठीक तरह का कफ़न भी नसीब नहीं हुआ, उसे बड़ी ही शीघ्रता में फाँसी दे दी गई, जल्दी ही उसके प्राण निकाल लिए गए, और जल्दी ही उसे फूँक दिया गया। लाश जली भी या नहीं, इसका पता नहीं, वह पूरी तरह मरा भी था कि नहीं! यह कहकर वह रोने लगे। एक लाख का जन-समुदाय भी इस पिता के दुःख को देखकर फूट-फूटकर फ़ौरन् रो पड़ा। इस प्रकार यह पहला ही अवसर था, जब पंजाब ने एकत्र होकर आँसू बहाए।

महात्मा गांधी तक ने इन वीरों की मृत्यु का सदमा अनुभव किया। उन्होंने स्वयं कराँची-कांग्रेस में सर्व-प्रथम इस बलिदान का शोक-जनक प्रस्ताव उपस्थित किया। उस समय उन्होंने युवकों से कहा कि भगतसिंह-जैसे बहादुर बनो, पर उसका अनुकरण मत करो। यदि तुम तलवार से स्वराज्य प्राप्त करने की इच्छा रखते हो, तो एक क्या, लाखों भगतसिंह क़ुर्बान करने होंगे।

इस फाँसी के दुःख को पं० जवाहरलाल नेहरू ने कैसा अनुभव किया था, यह उन्हीं के वाक्यों से समझिए—"इधर कुछ दिनों से मैंने अपनी ज़बान बिलकुल ही बंद कर रक्खी थी, इस डर से कि कहीं मेरे किसी शब्द से उनकी सज़ा घटाए जाने में बाधा न

पड़े। उद्वेग से मेरी छाती फट रही थी। लेकिन अब तो सब समाप्त हो चुका। हम सब मिलकर भी उसे न बचा सके, जो हमें इतना प्यारा था, और जिसका उज्ज्वल साहस और बलिदान देश के युवकों के लिये स्फूर्ति का स्रोत था। यह भारत की असहाय अवस्था का एक प्रमाण है। अब जब लंडन में संधि की चर्चा होगी, तो भगतसिंह की लाश हमारे और उनके बीच में होगी.........।"

सरदार पटेल ने सुनकर एकाएक सिर झुका लिया, और अपने जीवन में पहली बार दुःख की गहरी साँस ली। पं० मालवीय दुःख के मारे कुछ भी न बोल सके। सुभाष बोस और सेन-गुप्ता ने बड़ी धीरता से युवकों की अग्नि को शांत किया। समस्त भारत ने एक-मत से शोक मनाया और सरकार की निंदा की है। कराँची-कांग्रेस ने अपना अधिवेशन आरंभ करते हुए भगतसिंह का शोक-जनक प्रस्ताव पास किया था। स्वयं महात्मा गांधी ने इसे उपस्थित किया। प्रस्ताव यह था—

"यद्यपि कांग्रेस किसी भी प्रकार की अथवा किसी भी रूप की हिंसा से अपने को अलग रखती है, तथापि सरदार भगतसिंह और उनके साथी सुखदेव और राजगुरु की वीरता की प्रशंसा करती और उनके परिवार के साथ उनकी प्राण-हानि के लिये शोक करती है।

"इस कांग्रेस का मत है कि इन तीनो को फाँसी देकर अकारण बदला लिया गया है, और देश ने एकमत से उनकी फाँसी की सज़ा बदलने की माँग की थी, उसकी सरकार ने उपेक्षा की है।

"इस कांग्रेस की यह भी राय है कि दोनो राष्ट्रों में परस्पर सद्भाव फैलाने में (जो इस समय दोनो राष्ट्रों के लिये अत्यंत आवश्यक है) इस सुवर्ण अवसर को सरकार ने अपने हाथ से खो दिया, और देश का जो दल निराश हो राजनीतिक हत्याएँ करने के लिये उतारू हो गया है, उस पर विजय प्राप्त करने का मौक़ा भी उसने गँवा दिया!"

श्रीयुत पं० जवाहरलालजी ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा—"हज़ारों आदमी मरते होंगे, किंतु भगतसिंह के नाम से कुछ विशेष बोध होता है। वह युवक थे, उनकी आत्मा में ज्योति थी, जो आज समस्त देश में प्रज्वलित हो रही है। जब हम अहिंसा के समर्थक हैं, तो हमें इस प्रस्ताव के समर्थन का क्या अधिकार है। उनका मार्ग विपरीत था। किंतु हम गुलामी की जकड़ी ज़ंजीर में बँधे नहीं रह सकते। उनका भारत के प्रति अनूठा प्रेम था। हम भगतसिंह के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं। हमें अब यह विचार करना होगा कि भगतसिंह के क्रम का अनुसरण करें या नहीं। गत वर्ष देश ने कितनी उन्नति की है, यह सब लोग जानते हैं। यदि जनता को स्वाधीनता-प्राप्ति के लिये हिंसा का मार्ग पसंद था, तो उसे इस मार्ग में जाने से किसी ने रोका नहीं। किंतु मुझे विश्वास है कि हम हिंसात्मक मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते। स्वाधीनता-प्राप्ति का केवल एक ही सुमार्ग है और वह है अहिंसात्मक मार्ग।"

श्री० पंडित मदनमोहन मालवीय ने कहा—"कितनी ही बार मैंने इस मंच से व्याख्यान दिया होगा, किंतु जिस दुःखित हृदय से आज मैं बोलने के लिये उठा हूँ, वैसा मेरे जीवन में कभी न हुआ था। निस्संदेह यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं उन तीन वीरों की मृत्यु पर शोक-प्रकाश कर रहा हूँ, जिन्हें प्रकृत्या मेरी मृत्यु पर शोक मनाना चाहिए था। यह महान् दुःख की बात है कि हम उनके जीवन की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ थे। भगतसिंह युवकों के लिये आदर्श हैं। उनमें देश-भक्ति की ज्वाला धक-धक जल रही थी। यह उनकी अलौकिक वीरता है। भगतसिंह के भाग्य तथा उनके मामले और दंड से ठीक पता चलता है कि युवक अपनी जान हथेली पर रखते हैं। यह निश्चय है कि युवक अपने देश के लिये प्राण-त्याग करने को तैयार हैं। ये वीर देश-भक्त सदैव सम्माननीय हैं। यदि प्रस्ताव युवकों से अहिंसा के लिये प्रार्थना करता है, तो उसका यह मतलब है कि युवकों में देश-प्रेम की मात्रा अधिक है। मैं नवयुवकों से

निवेदन करता हूँ कि वे अपनी माता के बंधन से मुक्त होने के लिये अहिंसात्मक रूप से सारी शक्तियाँ लगा दें। मुझे आशा है कि समझौते से हमें स्वतंत्रता प्राप्त हो जायगी। आज हम शांति-पाठ पढ़ रहे हैं, और हमें विश्वास है कि हम सारे संसार को महात्माजी के नेतृत्व में शांति-पाठ पढ़ा देंगे। (हर्ष-ध्वनि) युवकों को चाहिए कि वे महात्माजी का अनुसरण करें, और भगतसिंह-जैसे वीर देश-भक्त की तरह अपनी वीरता का परिचय देने में शांति-पूर्वक कटिबद्ध हो जायँ।

"वाइसराय ने घोषणा की थी कि इस फाँसी की सज़ा से और दूसरी उपयुक्त सज़ा कभी किसी को नहीं दी गई थी, किंतु मैं कहूँगा कि क्षमा-दान के अधिकार-प्रयोग का सुअवसर इससे अच्छा और कोई भी नहीं ले सकता था। इस फाँसी में एक और शोक-जनक बात हुई है कि देश के बड़े-बड़े नेता उन्हें फाँसी से उतरवाने में सर्वथा असमर्थ हो गए। यही एक बात मेरे दिल में खटक रही है। अनुमान कीजिए कि इस समय उनके स्थान में अँगरेज़ होते, तो उन्होंने आज क्या न किया होता? इस दुःखांत का यही अर्थ है कि अब स्वराज्य-प्राप्ति में कुछ भी विलंब नहीं। जितनी ही मुझे भगतसिंह की वीरता की याद आती है, उतनी ही अधिक उसकी प्रशंसा करने की सामर्थ्य आ जाती है। उस वीर की वीरता का वर्णन करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं। यद्यपि उनके अविशिष्ट अंश रावी तथा सतलज में फेंक दिए गए थे, किंतु भगतसिंह की वीर अमरात्मा हमारे सबके हृदय में वास करती है, और भारतमाता की गोद में वर्तमान है। मैं अपील करता हूँ कि आप लोग महात्माजी के अहिंसात्मक शस्त्र से ही युद्ध करने में प्रयत्नशील हों। इसी से भगतसिंह की आत्मा को शांति मिलेगी। भगतसिंह की अमरात्मा को तभी शांति मिल सकती है, जब भारतमाता स्वाधीन हो जायगी। परमेश्वर आप सबको इस शक्ति के लिये आशीर्वाद दे।"

इसके बाद पंडितजी ने भगतसिंह तथा राजगुरु की माता का परिचय दिया। जनता ने 'भगतसिंह ज़िंदाबाद' के नारे बुलंद किए। प्रथम राजगुरु की माता मंच पर उपस्थित हुईं, और उन्होंने कांग्रेस की श्रद्धांजलि तथा अन्यान्य लोगों की सहानुभूति के लिये सबको बधाई देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

शहीद भगतसिंह के पिता श्री० सरदार किशनसिंह ने कहा—"जिन लोगों ने आज इस तरह की सहानुभूति प्रकट की है, उनका मैं बड़ा आभार मानता हूँ। मालवीयजी तथा पंडित जवाहरलाल ने काफ़ी कह दिया है, अतः मेरे लिये ऐसी छूटी कोई बात नहीं, जिसका मैं उल्लेख करूँ। उन्हें उन वीर बच्चों के लिये हार्दिक दुःख है, जो आज इस पृथ्वी से सदैव के लिये चले गए। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि जब-जब मालवीयजी ने भगतसिंह के संबंध में भाषण दिया, तब-तब उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बह चली। स्वर्गीय मोतीलालजी भगतसिंह के मुक़दमे में बड़ा ध्यान देते थे। गत सन् १९०७ ई० में मेरे भाई सरदार अजितसिंह तथा अन्यान्य आदमियों ने निश्चय किया कि पंजाब में राष्ट्रीय काम करना चाहिए। इसका परिणाम यह हुआ कि स्व० लाला लाजपतराय तथा सरदार अजितसिंह दोनो निकाल दिए गए थे। मेरे दूसरे एक भाई की जेल में मृत्यु भी हो गई थी। जिस समय मैं जेल में था, उस समय भगतसिंह उत्पन्न हुआ था। मैंने तथा मेरे मित्र श्री० मेहताजी ने परमेश्वर से प्रार्थना की, वह बालक को देश-सेवक बनाए। यह मेरी हार्दिक इच्छा थी कि मेरा पुत्र देश के हित में भारतमाता की गोद में बलिदान हो। यद्यपि मुझे कई बार जेल जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तथापि मैंने भगतसिंह की पढ़ाई जारी रक्खी। गत असहयोग-आंदोलन में भगतसिंह पढ़ना छोड़कर राष्ट्रीय स्कूल में भर्ती हो गया था। जिस समय हम उसके विवाह की बातचीत कर रहे थे, उस समय उसने हठात् घर छोड़ दिया। भगतसिंह तथा दत्त में घनिष्ठ मित्रता थी। उनमें सगे भाइयों से भी अधिक प्रेम था। दिल्ली में बाढ़ के समय उन्होंने बड़ा अच्छा काम किया था, और हज़ारों आदमियों का ध्यान आकर्षित कर अपना परिचय बढ़ा लिया था। भगतसिंह ने अपील

करना अस्वीकार किया था, किंतु अंत में हमने उसे बाध्य किया। सरकार ने मुझे झूठे मुक़दमे में फँसा रक्खा था, इसीलिये मुक़दमे में अग्रसर नहीं हो सकता था।"

इस वज्राघात को शांति-पूर्वक सहने की शक्ति ईश्वर देश को और ख़ासकर नवयुवकों को दे, ताकि संधि की समाप्ति तक देश पर क्षुब्ध होने का कलंक न लग सके।

× × ×

११. मूर्ख-सम्मेलन

उस दिन लखनऊ में, सुप्रसिद्ध गंगाप्रसाद-मेमोरियल-हॉल में, एक मज़ेदार सभा हो गई। सभा का नाम था मूर्ख-सम्मेलन। योजना यह थी कि सभा में जो कोई अपने जीवन की ऐसी घटना सबसे अच्छे ढंग से, मज़ेदार भाषा में, सुनावेगा, जिसमें वह जीवन-भर में सबसे अधिक मूर्ख बना हो, उसे सुधा-संपादक पं० दुलारेलालजी भार्गव २१) नक़द पुरस्कार देंगे। प्रवेश-टिकट =) था, और प्रतियोगिता-शुल्क ॥)

शहर में इस अद्भुत सभा की ख़ूब चर्चा रही। सभा-भवन में बेतरह भीड़ थी। सैकड़ों लोग तो आकर लौट गए। उस हाल में इतनी भीड़ कभी नहीं देखी गई! यहाँ तक कि जनता को क़ाबू में रखना और सभा का काम संचालन करना असंभव हो गया। खेद है, इस कारण बीच ही में सम्मेलन स्थगित कर देना पड़ा, पर उस दिन हास्य का सामूहिक प्रवाह जैसा बहा, वह शायद ही कहीं देखने को मिले। इस अवसर पर सम्मेलन के सभापति श्रीदुलारेलालजी ने एक मज़ेदार स्पीच पढ़ी थी। उसका सारांश इस प्रकार है—

"सभापति वृंद, प्रतियोगिता-महारथियो और सम्माननीय दर्शकगण,

"हिंदी-सभा (लखनऊ) के सभापति की हैसियत से मूर्ख-सम्मेलन की योजना में सर्वाधिक भाग लेने का गौरव मुझे प्राप्त है। इसके लिये आप सब यदि मुझसे डाह करें, तो मुझे इसमें तनिक भी आपत्ति नहीं।

"गत १५-२० दिनों से मैं इस योजना के पीछे लगा हूँ। यद्यपि सुधा, प्रेस आदि बुरी तरह मेरे पीछे लगे हैं, और मुझे बहुत कम अवकाश इसके लिये मिला है, पर जितना भी मिला है, उसी से मैं ऐसी-ऐसी सूरतों को हँसा सका हूँ, जो शायद महीनों से सोंठ बनी बैठी रही हों। यह तो सभी जानते हैं कि हँसना-हँसाना जीवन के लिये बड़ा अनमोल है, पर मैं चाहता हूँ, उसका कुछ मोल अवश्य होना। यदि ऐसा होता, तो इन २१) की अपेक्षा, जो अभी किसी परम भाग्यवान् व्यक्ति को मिलनेवाले हैं, कहीं बहुत अधिक की मैं स्वयं आशा कर सकता था।

"मैं आपसे पूछता हूँ कि हम लोगों का रात-दिन रोनी सूरत बनाकर अपने काम-धंधों में लगे रहना क्या हमारे जीवन के लिये घातक नहीं? क्या सभ्य जातियों में सामूहिक विनोद की मात्रा अधिक नहीं होती?

"यह बात तो सच है, लोग मूर्ख बनना नहीं चाहते। पर मूर्खता जीवन से लिपटी हुई है। चाहे भी जब अनायास ही लोग मूर्ख बन जाते हैं। कभी-कभी अपनी मूर्खता पर उन्हें स्वयं हँसी आती है, परंतु यदि वास्तव में देखा जाय, तो अपनी और पराई मूर्खता ही हमें सीधे रास्ते पर लगाती है।

"बहुधा यह देखा गया है कि अधिक बुद्धिमानी दिखाना ही परले सिरे की मूर्खता है। कहावत है—'स्याना कौआ गंदगी खाता है।' इस बात में तथ्य तो है ही। लोग जहाँ ख़ूब सावधानी करते हैं, वहीं मुँह की खाते हैं। पंचतंत्र में एक ऐसी ही कहानी है कि एक तालाब में कई मछलियाँ रहती थीं। उनमें शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि तो पकड़ी गईं, एकबुद्धि ही बच रही।

"इस हालत में मूर्खता न केवल हँसने का, अपितु मनन करने का विषय है। हम आशा करते हैं कि आप लोग इस समय अनेक मनोरंजक बातें सुनेंगे, जिनमें बहुत-सी बुद्धिमानी की प्रतीत होंगी, पर वे सब मूर्खता की होंगी। यदि यह सम्मेलन आपको पसंद आया, तो भविष्य में इसके द्वारा बड़ी-बड़ी मज़ेदार बातें आप देखें-सुनेंगे।"

× × ×

१२. खून की प्यासी सांप्रदायिकता

कानपुर में जो रक्त की नदी बह गई, वह हमारे बीच से हमारे सुप्रसिद्ध नेता, वक्ता, साहित्यिक और संपादक श्रीगणेशशंकर विद्यार्थीजी का हरण कर ले गई ! उनकी यह बलि भारत के इतिहास में अमर हो, उनका यह निष्पाप रक्त हिंदू-मुसलिम-ऐक्य को अधिक दृढ़ करे।

हिंदू-मुसलिम-विद्रोह के अवसरों पर अधिकारियों की उदासीनता ने उन्हें अपनी बलि चढ़ाने को इतना ही प्रेरित किया, जितना कर्तव्य के आह्वान ने। वह नंगे सिर-पैर और भूखे पेट अपने घर से चल पड़े, और शहर के उन हिस्सों में प्रभु का नाम लेकर प्रविष्ट हुए, जहाँ सांप्रदायिकता की ओट में बर्बरता अपना राक्षसी नृत्य कर रही थी। वह तपस्वी अपनी शक्ति-भर उन्हें दया और प्रेम का संदेश देता रहा। उसने पीठ नहीं दिखाई। उसने उस खून की प्यासी सांप्रदायिकता की प्यास बुझाने को अपने रक्त की वे अमूल्य बूँदें दे दीं, जिनसे जीवित होकर उसने विगत अठारह साल से हमें जीवन और जागृति का प्रभात दिखाने की चेष्टा की थी। वह तो अमर ही हैं, परमात्मा उनके कुटुंबियों और उनका कर्तव्य सँभालनेवालों को धैर्य प्रदान करे।



स्वर्गीय श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी

× × ×

१३. चित्र-परिचय

विश्वामित्र-स्वागत—विश्वामित्र ऋषि एकांत आश्रम में जब जप और यज्ञ में निरत होते थे, तो मारीच, सुबाहु आदि राक्षस आकर उनके आश्रम में उपद्रव कर उनका ध्यान तोड़ते थे। उनसे दुखी होकर ऋषि ने विचार किया कि विना भगवान् के इन राक्षसों से पिंड न छूटेगा। उन्होंने अयोध्या-नरेश महाराज दशरथ की शरण में, श्रीरामचंद्रजी को प्राप्त करने की इच्छा से, प्रस्थान किया। प्रस्तुत चित्र में दशरथ अपने चारो राजकुमारों के साथ उनका स्वागत करने के लिये आए हैं।

× × ×

१४. भूल-सुधार

पिछली संख्या में प्रकाशित कुसुम-कुंज का 'उदुंबर'-शीर्षक नोट श्रीविश्वनाथ मिश्र बी० ए० का लिखा हुआ है। श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल एम्० ए०, एल्-एल्० बी० द्वारा हमारे पास आया था, अतः एव भूल से उनका नाम लेखक की जगह छप गया है। पाठक कृपाकर श्रीविश्वनाथ मिश्र को ही उसका लेखक समझकर भूल ठीक कर लें।

नवयुग का प्रवाह किधर है ?

गढ़-कुंडार

इस ग्रंथ-रत्न के लेखक हैं बा० वृंदावनलाल वर्मा। इसकी जोड़ का उपन्यास हिंदी-संसार में अब तक प्रकाशित नहीं हुआ, उपन्यास की सब कलाएँ इसमें विद्यमान हैं। यह उपन्यास ऐतिहासिक होते हुए भी पढ़ने में अत्यंत मनोरंजक है। विद्वानों ने इसकी परिपूर्ण प्रशंसा की है। मूल्य केवल २॥), सजिल्द ३) स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में।

इसका उत्तर सभी यही देंगे

कि नए काव्य, नई कल्पना-शक्ति और नई कला में।

क्या कोई भी यह मानने से इनकार कर सकता है कि गंगा-पुस्तकमाला ने हिंदी-संसार में नवयुग के प्रवाह को नहीं बढ़ाया है, इसके ग्रंथों ने मानव-हृदयों के चित्रण करने में जादू का-सा असर नहीं किया है ? आवश्यकता है उसकी नवीन कृतियों के पढ़ने की।

पा प की ओ र

❀ अनुपम ❀ सरस ❀ उपयोगी ❀

जापान इस थोड़े-से काल में जिस उच्च शिखर पर जा बैठा है, उससे सारा संसार चकित हो गया है। संसार के सभी देश उससे कंपित-से रहते हैं। इस महान् परिवर्तन का श्रेय उसके उच्चतम, श्रेष्ठ और नवीन साहित्य को ही दिया जा सकता है। जापानी-साहित्य आज संसार के सभी साहित्यों में अपना अच्छा स्थान रखता है। इसकी पुस्तकें संसार की सभी भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। पाप की ओर हिंदी में सबसे पहला अनूदित जापानी उपन्यास है। इसके लेखक जापान के सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक हैं, और अनुवादक भी माने हुए सफल औपन्यासिक, बिदा के लेखक बा० प्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए०।

मूल्य सादी केवल १), सजिल्द १॥)

❀ अद्वितीय ❀ सरल ❀ सामयिक ❀

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

Registered No. A. 1712.

महिलाओं का सर्वोत्तम अलंकार

मनोहर केश-युक्त मस्तक ही है



धनवानों की सामग्री, सर्वोत्तम रेशमी विलासमय केश, उन्हें कौन-सी स्त्री नहीं चाहती? ऐसे बालों का निर्माता केवल एक ही तैल है। सुप्रसिद्ध

कामिनिया ऑइल (रजिस्टर्ड)

स्त्रियों, मस्तिष्क से काम लेनेवालों और विद्यार्थियों के लिये अमूल्य वस्तु है। उससे गरम मस्तिष्क को शांति मिलती है, दर्द दूर होता है। बाल गिरने का नाम ही नहीं रहता! इतने पर भी इसकी सुंदर और मनोहर सुगंध निराली है। मैसूर, मदरास, कलकत्ता आदि अनेक प्रदर्शिनियों में सर्वोत्कृष्टता के लिये पदक मिले हैं। संसार में सर्वत्र इसकी बढ़ती हुई माँग है। हज़ारों में से केवल एक प्रशंसापत्र पढ़िए।

श्रीयुत आर० के० नैयर, चेनकारा, पो० वेंडीपेरियर (ज़िला ट्रावनकोर) ता० १ दिसंबर, १९३० के पत्र में लिखते हैं—"दो मास पूर्व आपने जो तैल मेरे लिये भेजे थे, उनके लिये अनेक धन्यवाद। मुझे यह लिखते हुए बड़ी प्रसन्नता है कि उन्होंने श्रीमती ईश्वर पिलया के बालों पर अद्भुत गुण दिखाया, इन्हीं के बारे में मैंने आपको लिखा था। अतः कृपा कर १२ शीशियाँ कामिनिया ऑइल की भी लौटती डाक से वी० पी० भेज दीजिए।" इससे अधिक और क्या प्रमाण आप चाहते हैं? एक शीशी ख़रीदकर आज ही आप भी परीक्षा करें। मूल्य प्रति शीशी १), वी० पी०-व्यय ।=) अलग; तीन शीशी २॥=), वी० पी०-व्यय ॥।) अलग।

पूर्व की सर्वोत्तम सुगंधि—ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)



वर्तमान काल की मधुर और स्थायी सुगंधि। चुने हुए देशी के फूलों की इस मधुर और आकर्षक सुगंधि के वर्णन की आवश्यकता ही क्या है? आपके रुमाल में इसकी दो-चार बूँदें सुंदर और स्वास्थ्य-दायक वातावरण से आपको घेर लेंगी, और एक विलसित सुगंधि-वाटिका की रचना करेंगी। ओटो दिलबहार बिना अलकोहल के मेल की, सर्वोत्तम, देशी सुगंधि है। समस्त सुरुचि-संपन्न स्त्री-पुरुषों ने इसका अनुमोदन किया है। भिन्न-भिन्न साइज़ों की शीशियों में बिकता है।

½ औंस की शीशी २), ¼ औंस की शीशी १।), एक ड्राम की शीशी ॥।), आधा ड्राम की शीशी ॥) ओटो दिलबहार के सुवासित कार्ड -) प्रति, नमूने की शीशी =) ख़रीदकर परीक्षा कीजिए।

समस्त प्रसिद्ध दूकानों में मिलेगा।

सोल एजेंट—दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी, २८५, जुमा मसजिद, बंबई नं० २

श्रीदुलारेलाल भार्गव द्वारा गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ में मुद्रित और प्रकाशित

वर्ष ५ ; खंड १

आश्विन, ३०९ तु० सं०
(OCTOBER. 1931)

संख्या ३ ; पूर्ण संख्या ५१



साधारण संस्करण

वार्षिक मूल्य	५)
एक प्रति का	॥)
विदेश में	६)

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(संपादक गंगा-पुस्तकमाला)

राजसंस्करण

वार्षिक मूल्य	१०)
एक प्रति का	१)
विदेश में	१२)

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ



महात्मा गांधी कहाँ गए हैं ?

गोल-सभा

में !

तो क्या

आप जानते हैं कि यह गोल-सभा (राउंड टेबिल-कानफ़्रेंस) क्या है ? क्या आप जानना चाहते हैं कि सुदूर लंदन में देशी और विलायती क़ानूनी खोपड़ियों ने किस मज़े की टक्करें ली हैं ? विख्यात सेंट जेम्स-पैलेस में इँगलैंड के पौराणिक राजा आर्थर की सड़ी-गली गोलमेज़ किस ठाट के मुलम्मे से सजाई गई, और उस पर बैठकर राज-नीति के दिग्गजों ने किस बारीकी से चोंचें चलाई हैं ? इस गोलमेज़ पर भारत की तक़दीर के क्या-क्या फ़ैसले हुए हैं, तथा नंगे विद्रोही फ़क़ीर को मनाने के लिये संसार-विजयी, प्रतापी ग्रेट ब्रिटेन ने क्या नफ़ीस नाच नाचा है ? महात्मा गांधी विलायत में क्या कर रहे हैं, यह समझने के लिये पहले इस पुस्तक को पढ़ डालिए, और फिर आपकी समझ में सारे विलायत के समाचार आ जायँगे ।

तब

अपने लिये एक प्रति आज ही मँगा लीजिए । हाल ही में यह पुस्तक छपी है, और देर करने पर फिर न मिलेगी । इस पुस्तक में गोल-सभा क्या है, और उसमें राजनीति-मर्मज्ञ विलायती और देशी प्रतिनिधियों ने किस प्रकार बहस कर क्या कहा, यह सब और उसकी अब तक की कुल कार्यवाही अत्यंत मनोहर भाषा में दी गई है । लेखक प्रोफ़ेसर चतुरसेनजी शास्त्री का बदनाम नाम देखिए, और चारो ओर की बहती हुई हवा का रुख़ देखिए । बस, इतने ही में सब कुछ समझ जाइए, और आज ही कार्ड लिखिए । सुधा के ग्राहकों को अर्द्ध मूल्य में । मूल्य १।।), सजिल्द २)

संचालक गंगा-बुकडिपो

लाटूश रोड, लखनऊ

लेख-सूची

चित्र-सूची

सम्मन वास्ते क़रारदाद उमूर तनक़ीह तलब
(आर्डर ५—क़ायदा १ व २) (नमूना क़ाबिल फ़रोख़्त)

मुक़द्दमा नंबर १२६० सन् १९३१ ई०
बअदालत अडिशनल मुंसिफ़ ज़िला गोरखपूर
सुखारीराम बढ़ई मुद्दई

बनाम

भोलानाथ मुद्दाअलेह
रामखेलावनराम वल्द रामदेनीराम हलवाई साकिन नयाग्राम बतद डाकख़ाना क़ुज़बा मुसिफ़ी सीवान ज़िला छपरा।

हरगाह मुद्दई ने आपके नाम एक नालिश बाबत—के दायर की है, लिहाज़ा आपको हुक्म होता है कि आप बतारीख़ २६ माह ऑक्टोबर सन् १९३१ ई० बवक़्त १० बजे दिन असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमा के हालात से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और कुल उमूरात अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा की करें और आपको लाज़िम है कि उसी रोज़ जुमला दस्तावेज़ात पेश करें जिन पर आप बताईद अपने जवाबदेही के इस्तदलाल करना चाहते हैं।

आपको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर आप हाज़िर न होंगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी आपके मस्मू और फ़ैसल होगा।

बसब्त मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत के आज बतारीख़ १६ माह सितंबर सन् १९३१ ई० जारी किया गया।

जज

नोटिस निस्बत दिखाने वजह के (नमूना आम)

बअदालत जनाब बाबू तिरबेनीप्रसाद साहब मुंसिफ़ बहादुर रामसनेहीघाट मुक़ाम बाराबंकी
इजराय नंबरी मुक़द्दमा ३०६ सन् १९३१ ई०
गणेशप्रसाद वल्द चंद्रिकाप्रसाद ब्राह्मण साकिन सफ़दरगंज परगना प्रतापगंज ज़िला बाराबंकी डिगरीदार

बनाम

१—कालिकाप्रसाद वल्द अनंतप्रसाद } अक़्वाम कायस्थ साकिन क़सबा दरियाबाद } मदयूनान
२—मुक्ताप्रसाद वल्द कालिकाप्रसाद } परगना दरियाबाद ज़िला बाराबंकी }

बनाम कालिकाप्रसाद वल्द अनंतप्रसाद क़ौम कायस्थ साकिन दरियाबाद ज़िला बाराबंकी परगना दरियाबाद

हरगाह मुसम्मा डिगरीदार ने दरख़्वास्त इस अदालत में गुज़रानी है कि जायदाद मरहूना मुंदर्जा ज़ैल में मौरूसी मदयूनान है और यह कि जायदाद मज़कूर नीलाम की जावे।

तफ़सील जायदाद नीलाम तलब

मुश्तमल मोहाल १६ आने मौसूमए कालिकाप्रसाद वाक़ा सरौली परगना दरियाबाद ज़िला बाराबंकी।

लिहाज़ा तुमको इत्तिला दी जाती है कि तुम असालतन या मार्फ़त किसी वकील के जो हालात मुक़द्दमा से बख़ूबी वाक़िफ़ हो बवक़्त १० बजे बतारीख़ ८ माह ऑक्टोबर सन् १९३१ ई० इस अदालत में हाज़िर होकर दरख़्वास्त के ख़िलाफ़ वजह दिखाओ। अगर ऐसा न करोगे तो दरख़्वास्त मज़कूर तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में समायत की जावेगी।

पेशी बग़रज़ तसफ़िया मुरातिब इश्तिहार नीलाम मुक़र्रर है।

बतारीख़ १२ माह सितंबर सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से जारी किया गया।

जज



माधव

Fine Art Press, Lucknow.



माधव

Ganga Fine Art Press, Lucknow.





"कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू।"
(गो० तुलसीदास)

वर्ष ५ } आश्विन, ३०९ तुलसी-संवत् (१९८८ वि०)— { संख्या ३
खंड १ } ऑक्टोबर, १९३१ { पूर्ण संख्या ५१

तारों के प्रति

[प्रोफ़ेसर श्रीरामकुमार वर्मा एम्० ए०, इलाहाबाद-विश्वविद्यालय]

सजीले नभ के राजकुमार !
सूक्ष्म रश्मियों की बूँदों का यह शैशव आकार ;
नभ के विस्तृत जीवन में आशाओं का अवतार।
उतरो, मेरे फूलों में ले ओस-बिंदु का रूप ;
दो दिन के जीवन में कर लूँ तुमसे अपना प्यार।
सजीले नभ के राजकुमार !

कुहू-निशा में अंधकार-सागर का आया ज्वार ;
खद्योतों में उड़ती थीं जब नव किरणें साकार।
मेरी बुझती आँखों में जब था आँसू का भार ;
उन्हीं आँसुओं में आए थे ले अपना आकार।
सजीले नभ के राजकुमार !

सद्गुरु

[आचार्य श्रीचतुरसेनजी शास्त्री]

(१)



आपने आगरा देखा है ? एक बार अनंत-यौवना राज्य-श्री को मुग़ल-सम्राट् अकबर ने यहाँ बैठकर वरण किया था। जहाँ-जहाँ उस महान् सम्राट् ने बैठकर वैभव की मदिरा पी थी, और जहाँ-जहाँ वह छलककर गिर गई थी, वह जगह आज भी उसकी लाली से लाल है।

परंतु यौवन कब किसका स्थिर रहा ? मुग़ल-साम्राज्य का यौवन भी ढला, और अकबर के नेत्रों की लाली, शाहजहाँ की डाढ़ी की भाँति, सफ़ेद होती गई। मुग़ल-साम्राज्य भी वृद्ध हुआ, और सिर से पैर तक सफ़ेद हो गया।

क़िले में, मुसम्मन-बुर्ज में, आज भी लाचार और बूढ़े शाहजहाँ की मृत्यु-समय की टूटती श्वासें उस पृथ्वी-भर में प्रतापी साम्राज्य की अंतिम दुर्दशा पर प्रकाश डाल रही हैं, और वह धवल-धूसर ताज आज भी वहाँ सदियों से किसी बादशाह की प्रतीक्षा कर रहा है।

भला, वह बादशाह कौन है ?

(२)

पीपलमंडी में, एक साधारण घर में, एक असाधारण महापुरुष समाधिस्थ बैठे थे। उनकी श्वेत डाढ़ी और मग्न नेत्र, दुर्बल शरीर और अविचलित मुद्रा उनके अंतस्तेज को प्रकट कर रहे थे। एक हलकी सुगंध और एक अनिर्वचनीय प्रकाश से वह अति साधारण कमरा छिप रहा था। महापुरुष के शरीर पर एक साधारण वस्त्र था, और वह भी असावधानी से उनके अंग पर पड़ा था। यद्यपि हड्डियों में हड़कंप उत्पन्न कर डालनेवाली सर्दी थी, परंतु ऐसा प्रतीत होता था कि यह इंद्रियातीत पुरुष सर्दी-गर्मी तथा भूख-प्यास की वेदना से परे, किसी अज्ञात और दुर्धर्ष, सूक्ष्म जगत् में सशरीर विचरण का अभ्यासी है।

साधारण दृष्टि से देखने पर वह कमरा जन-शून्य-सा दिखलाई पड़ रहा था। अकेले वही तपस्वी वहाँ पाषाण-प्रतिमा की भाँति बैठे देख पड़ते थे। परंतु ध्यान से देखने पर एक कोने में उसी भाँति स्थिर, मौन, नीरव और अविचलित भाव से एक और पुरुष खड़े थे।

उनकी आयु ३० वर्ष के लगभग होगी। उनके सुंदर चेहरे को घनी, काली डाढ़ी ने छिपा रक्खा था, पर अप्रतिम आँखें और प्रशस्त ललाट उनकी महत्ता को प्रकट कर रहा था। उनके उत्फुल्ल होंठ आत्मा की दृढ़ता का प्रमाण दे रहे थे, और कुंचित भृकुटी-विलास से यह मालूम होता था कि वह किसी गूढ़ वस्तु की खोज में हैं। मुख-मुद्रा पर चरित्र की निर्मलता और आकृति में श्रेष्ठ विवेक की छाया थी।

यह व्यक्ति सभ्य वेश में थे, और आश्चर्य-जनक धैर्य से उस स्थितप्रज्ञ तपस्वी की मुद्रा भंग होने और एक कृपा-पूर्ण दृष्टि अपने ऊपर पड़ने की प्रतीक्षा में कई घंटों से चुप चाप, विना हिले-डुले और तनिक-सी भी आहट किए, मानो दीवार का एक अंग बने, खड़े थे।

एकाएक एक धीमी, किंतु गंभीर वाणी ने उस कमरे को गुंजायमान कर दिया।

"तुम क्यों खड़े हो ?"

"स्वामी की कृपा-दृष्टि का भिखारी हूँ।"

"उससे क्या लाभ होगा ?"

"इस जीवन और आत्मा का कल्याण हो जायगा।"

"तुम्हारा साहस बहुत अधिक है"।

"परंतु यदि प्रभु प्रसन्न हों, तो अनायास ही इच्छा पूरी कर सकते हैं।"

"तुम घर लौट जाओ वत्स !"

"स्वामी, ऐसी आज्ञा न दें, मैं बड़ी आशा से आया हूँ—मेरा हृदय विदीर्ण हो जायगा।"

"जाओ, घर लौट जाओ।"

"प्रभो, मैं अत्यंत नम्रता से......"

"जाओ, जाओ, घर लौट जाओ।"

"क्या मैं स्वामी की कृपा-दृष्टि का अधिकारी नहीं ?"

"नहीं।"

"चरण-सेवा का अधिकारी नहीं ?"

"नहीं।"

"साधारण का अधिकार नहीं ?"

इस बार साधु पुरुष क्षण-भर चुप रहे। फिर उन्होंने करुणा-पूर्ण स्वर में कहा—

"पुत्र, यह वीतरागी, इंद्रिय-विजयी पुरुषों का कार्य है, जो कभी-कभी जन्म-जन्मांतरों में भी समाप्त नहीं होता। तुम श्रेष्ठ कुल के श्रेष्ठ युवक हो। तुम्हें अच्छा पद प्राप्त है, और भी उन्नति करोगे। तुम्हारा जन्म धन्य होगा। तुम बहुतों का उपकार करोगे। जाओ, जगत् में रहो; जगत् का जो बने, तन-मन से कल्याण करो।"

"परंतु अपना कल्याण, अपनी आत्मा का कल्याण !"

"वह बहुत कठिन है।"

"पर असंभव नहीं।"

"असंभव ही समझो।"

"ऐसी आज्ञा न कीजिए। मैं कदापि उसे असंभव न समझूँगा।"

"वह सहस्रों मनुष्यों से भी अकरणीय है।"

"पर स्वामिन्, आज्ञा होगी, तो मैं वह करूँगा।"

"जगत् की सत्य भावना को स्वप्नवत् समझना होगा।"

"मैं समझूँगा।"

"दुःख-सुख, मान-अपमान में एकरस रहना होगा।"

"मैं रहूँगा।"

"शरीर को भूलकर अंतरात्मा में लीन रहना होगा।"

"मैं वही करूँगा।"

"आँखों रहते अंधा, बहरा, गूँगा बनना पड़ेगा।"

"मैं बनूँगा।"

"तुम युवक हो।"

"सेवा करते-करते वृद्ध हो जाऊँगा।"

"तुम गृहस्थ हो।"

"स्वामी ही उसके स्वामी हैं, मेरा तन, मन, धन, गृहस्थी सभी स्वामी ही हैं।"

"पुत्र, जाओ-जाओ, इतना हठ, इतना दुस्साहस न करो। जगत् में बहुत भले काम हैं, उन्हें करो, और भले आदमी की तरह जीवन व्यतीत करो।"

"क्या बिना स्वामी की चरण-सेवा किए भला काम मुझ अज्ञानी से हो सकेगा ?"

"इस हठ पर तुम अंत में पछताओगे, थककर और ऊबकर भागोगे।"

"इस जीवन में कभी नहीं।"

तपस्वी पुरुष फिर मौन हुए। फिर वही स्तब्धता फैल गई। दोनो ही पुरुष फिर पत्थर की मूर्ति की भाँति स्तब्ध हो बैठे। घंटों व्यतीत हो गए। दिन चढ़ा, और ढल गया। संध्या का अंधकार आया, और गहरी रात में बदल गया। उस कमरे में प्रगाढ़ अंधकार था। वह भी धीरे-धीरे गया, और ऊषा का प्रकाश, नई आशा, नया जीवन लेकर, कमरे में घुस गया।

महात्मा ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—

"क्या तुम सोच चुके ?"

"प्रभु, मैं सोचकर आया हूँ।"

"तब तुम क्या प्रस्तुत हो ?"

"प्रभु, दास पर कृपा-दृष्टि हो।"

महात्मा के नेत्र खुल गए। एक तीव्र तेज उनसे निकलकर सम्मुख-स्थित पुरुष-रत्न के शरीर में घुस गया। वह तत्काल पृथ्वी पर गिरकर और तपस्वी के

चरणों को पकड़कर "गुरो, त्राहि माम्, त्राहि माम्" चिल्ला उठे। आँसुओं से धरती भीग गई।

तपस्वी ने उनके मस्तक पर हाथ फेरकर कहा—

"उठो वत्स, उठो। वह महायोग आ गया, जब सत्य का तत्त्व प्राणियों का उद्धार करे। तुम महाशक्ति से प्रेरित हो, आओ, मैं तुम्हें अपनी शरण में लेता हूँ।"

भावुक युवक आनंद-विभोर होकर मूर्च्छित-से हो गए। नहीं कह सकते, गुरु की दिव्य वाणी उनके कानों में पड़ी भी या नहीं।

(३)

जिन तपस्वी के अंतर्जीवन का एक अत्यंत गोपनीय दृश्य हमने ऊपर प्रकट किया है, वह उस समय बाहरी वेश में, नगर में, लाला शिवदयालसिंह सेठ के नाम से प्रसिद्ध थे, और दूसरे व्यक्ति असिस्टेंट पोस्ट मास्टर जनरल राय सालिगराम साहब थे।

नगर-निवासी यह कुछ-कुछ जानते थे कि नामी लाला शिवदयालसिंह सेठ कुछ साधना करते हैं, और ज्ञानी साधु पुरुष हैं। पर उनका बाहरी रहन-सहन साधारण गृहस्थों-जैसा ही था, और उसकी ओट में वह उस गुप्त भावना को छिपाए हुए थे, जिसे वह किसी भी अनधिकारी पर प्रकट नहीं किया चाहते थे।

परंतु रोगी तो सद्वैद्य को तलाश कर ही लेता है। राय साहब लाला सालिगराम के शरीर में संस्कारी आत्मा थी, वह बचपन से गुरु की तलाश में थे, और अंत में उन्होंने उन्हें ढूँढ़ ही लिया। उन्हें पाकर वह गद्‌गद और कृत्यकृत्य हो गए। दोनो महान् आत्माओं का यह गुप्त मिलन एक गंभीर भेद की बात हो गई, और यह अप्रतिम शिष्य तत्काल ही गुरु के चरणों में बैठकर अपनी ज्ञान-पिपासा मिटाने लगा।

(४)

"गुरु, जगत् में सत्य क्या है?"

"पुत्र, यह सब ब्रह्म है। मनुष्य को संसार की उत्पत्ति, नाम और स्थिति सब उसी ब्रह्म के रूप में विचारनी चाहिए।"

"उस ब्रह्म का रूप क्या है?"

"वह सर्वज्ञ, जिसका शरीर आत्मा है, रूप ज्योति है, जिसके विचार सत्य हैं, जो आकाश की भाँति व्यापक और अदृश्य है, जिससे सब कर्म, सब इच्छाएँ, सब सुगंधि और स्वाद आदि इंद्रियों के विषय उत्पन्न होते हैं। जो इन सबों में व्याप्त है, और जो कभी बोलता नहीं है, न कभी आश्चर्य करता है, वही ब्रह्म है।"

"वह है कहाँ?"

"वही मेरे हृदय के भीतर मेरी आत्मा है, जो चावल से भी छोटी, जौ से भी छोटी, सरसों और कनेरी के दाने से भी छोटी, अति छोटी है। वही मेरे हृदय के भीतर की आत्मा है, जो पृथ्वी से भी बड़ी, आकाश से भी बड़ी, स्वर्ग से भी बड़ी और सारे ब्रह्मांड और लोकों से भी बड़ी है।

"वह जिससे सब कार्य, सब इच्छाएँ, सब सुगंधि और स्वाद उत्पन्न होते हैं, जो सबमें व्याप्त है, जो न कभी बोलता है, न आश्चर्य करता है, वही मेरे हृदय के भीतर की आत्मा ब्रह्म है। मेरे पुत्र! जब मैं संसार से कूच करूँगा, तब उसे यथार्थ में प्राप्त करूँगा।"

"तब स्वामिन्, ये अनंत जीव उस एक महान् आत्मा में कैसे लीन हो जाते हैं?"

"हे पुत्र! जिस प्रकार मधु-मक्खियाँ दूर-दूर के वृक्षों के रस को इकट्ठा करके मधु बनाती हैं, और इन रसों को एक रूप में कर देती हैं, और जिस प्रकार इन रसों में कोई विवेक नहीं रहता, जिससे ये कहें कि मैं इस वृक्ष का रस हूँ, और मैं उस वृक्ष का, उसी प्रकार ये सब जीव जब परमात्मा में मिल जाते हैं, तब उन्हें यह ज्ञान नहीं रहता कि हम उस परमात्मा में मिल गए।

"देखो, ये नदियाँ बहती हैं। पूर्वी नदी पूर्व की ओर और पश्चिमी पश्चिम की ओर। वे समुद्र में से ही समुद्र में जाती हैं। और, वास्तव में समुद्र में ही हो जाती हैं। और, जिस प्रकार वे नदियाँ समुद्र में जाने के पीछे यह नहीं समझतीं कि मैं अमुक नदी हूँ, वैसे

ही ये अनंत जीव उस परमात्मा ही से बहिर्गत होकर यह नहीं जानते कि हम परमात्मा से ही बहिर्गत हुए हैं।"

"स्वामी, मेरा संदेह पूरा-पूरा निवृत्त नहीं हुआ।"

"अच्छा, नमक को पानी में डाल दो, और प्रातः-काल उस डली को निकालो।"

"वह डली तो उसमें घुल जायगी।"

"और जब पानी को चखोगे, तब?"

"वह नमकीन मालूम होगा।"

"वह नमक क्या हुआ?"

"जल में लीन हो गया।"

"मेरे प्यारे बेटे, इसी तरह परमात्मा हममें रहकर भी अदृष्ट है।"

"धन्य है गुरु, मैं समझ गया। परंतु यह मन किसकी इच्छा से भेजा जाकर अपने काम में लगता है? किसकी आज्ञा से पहलेपहल साँस निकलती है? किसकी इच्छा से हम बोलते हैं? कौन देवता आँख, कान का मालिक है?"

"वह कान का कान, मन का मन, वाणी की वाणी, श्वास की श्वास और आँख की आँख है। उसका वर्णन वाणी नहीं कर सकती, पर उसी से वाणी वर्णन करती है। वह, जिसे मन नहीं सोच सकता, परंतु जिससे मन सोचा जाता है। वह, जो आँख से नहीं देखा जाता, परंतु आँख जिससे देखती है। वह, जो कान से नहीं सुना जाता, पर कान जिससे सुनता है। वह, जो श्वास नहीं लेता, पर श्वास जिससे ली जाती है। वही वह ब्रह्म है। वह नहीं, जिसे लोग पूजते हैं।"

"फिर लोग उससे विमुख क्यों हैं?"

"मूढ़ ही उससे विमुख हैं। जो आत्मा में सब प्राणियों को और सब प्राणियों में आत्मा को देखता है, वह उससे विमुख नहीं होता।"

"और आनंद की प्राप्ति कैसे होती है?"

"जब कोई ज्ञानी सब चीज़ों में आत्मा को समझने लगता है, तो फिर जिसने इस एकता को एक बार समझ लिया है, उसे क्या कोई शोक या कष्ट हो सकता है?"

"स्वामिन्, यह तो उस अगोचर ब्रह्म का वर्णन हुआ, पर यह स्थूल जगत् कैसे बना?"

"पुत्र, आदि में केवल वही था। उससे आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से पुरुष हुआ।"

"प्रभो, मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है?"

"जिस प्रकार सुनार सोने के टुकड़े को लेकर उसका एक नया और अधिक सुंदर रूप बना देता है, उसी प्रकार आत्मा इस शरीर को छोड़कर और सब अज्ञान को दूर करके अपने लिये एक नया और अधिक सुंदर स्वरूप बनाता है।"

"यह सब तो उस मनुष्य के लिये हुआ, जो इच्छा करता है।"

"जो इच्छा नहीं करता, इच्छाओं से मुक्त तथा अपनी इच्छाओं से संतुष्ट है, या केवल परमात्मा ही की इच्छा रखता है, उसका आत्मा और कहीं नहीं जाता ब्रह्म होकर ब्रह्म ही में लीन हो जाता है। और, जैसे साँप की छोड़ी हुई काँचुली किसी टीले पर पड़ी रहती है, उसी प्रकार आत्मा रह जाता है। पर उस शरीर से पृथक् हुआ आत्मा अमर और केवल ब्रह्म और प्रकाश ही है।"

"हे गुरु, उस ब्रह्म के ज्ञान का यथार्थ अधिकारी कौन है?"

"वह, जो शांत, स्थिर, संतुष्ट, सहनशील और एकाग्रचित्त होकर आत्मा में अपने को देखता है, वह आत्मा में सब वस्तुओं को देखता है। पाप उसे नहीं जीतता, वही सब पापों को जीतता है। पाप उसे नहीं जलाता, वही सब पापों को जलाता है। सब पापों, कलंकों और संदेहों से रहित होकर वह सच्चा ब्रह्म हो जाता है, और ब्रह्मलोक में प्रवेश करता है।"

"धन्य है गुरु! मेरे हृदय की सभी गुत्थियाँ खुल

रही हैं। अच्छा, जब मनुष्य मर जाता है, तब यह शंका रहती है कि कोई कहता है—वह है; कोई कहता है—वह नहीं है; इसमें सत्य क्या है ?"

"हे पुत्र, यह तुमने बड़ा कठिन प्रश्न किया है; पर देखो, वह बुद्धिमान्, जो अपनी आत्मा का ध्यान करके उस आदि ब्रह्म को जान लेता है, जिसका दर्शन कठिन है, जिसने उस अंधकार में प्रवेश किया है, जो गुफा में छिपा है, जो गंभीर गर्त में रहता है, वह निस्संदेह सुख और दुःख को बहुत दूर छोड़ देता है। एक नाशवान् जीव, जिसने यह सुना और माना है, जिसने उससे सब गुणों को पृथक् कर दिया है, और जो इस प्रकार उस सूक्ष्म आत्मा तक पहुँचा है, प्रसन्न होता है कि उसने उसे पा लिया, जो आनंद का कारण है।"

"हे पूज्य पुरुष ! इस गंभीर तत्त्व को मनन करने, समझ सकने की योग्यता कैसे प्राप्त होती है ?"

"योग-साधना से।"

"उसके सूक्ष्म तत्त्व क्या हैं ?"

"योग का अर्थ है ध्यान। यह ध्यान चित्त की वृत्तियों के निरोध से उत्पन्न होता है। निरंतर अभ्यास और शांति से चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है, और 'ज्ञात' तथा 'प्रतिज्ञात' योग की प्राप्ति हो सकती है। 'ज्ञात' से 'प्रतिज्ञात' योग कठिन है। उसमें विवेक, आनंद, अहंकार अथवा चेतना सभी नष्ट हो जाते हैं।

"सच्ची भक्ति से यह मन की इच्छित अवस्था बहुत शीघ्र प्राप्त होती है। ईश्वर का ध्यान, अर्थात् ऐसी आत्मा का, जो क्लेश-कर्म, भावना और कामनाओं से रहित हो, और उसमें सर्वज्ञता का गुण अनंत रूप से हो, वही आदि ज्ञान का दाता है, क्योंकि समय उसको नहीं व्यापता। 'ओ३म्'-शब्द से वह सूचित किया जाता है।

"योग-सिद्धि में रोग, संदेह, सांसारिक प्रपंच में मन लगना, ये बाधाएँ हैं। मन की एकाग्रता, उपकार, दुःख-सुख से विरक्त रहने से ये बाधाएँ दूर की जा सकती हैं।"

"हे ज्ञानी ! उस योग की रीति क्या है ?"

"तपस्या, जप और भक्ति, यह उसकी प्रथम साधना है। इससे सब प्रकार के दुःख, अज्ञान, अहंकार, कामना और जीवन की लालसा दूर होती है। फिर यम-नियम का सेवन दूसरी साधना है।"

"यम-नियम क्या हैं ?"

"अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ये पाँच यम और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर का ध्यान, ये नियम हैं।"

"कृपा कर इनकी व्याख्या कर दीजिए।"

"अहिंसा—मन, वचन, कर्म से किसी प्राणी को व्यर्थ न सताना।"

सत्य—जिस बात को जैसा जाना है, उसे वैसा ही मानना, कहना और करना।

अस्तेय—पराई वस्तु, स्त्री आदि पर स्वार्थ-पूर्ण और अन्याय-दृष्टि न डालना।

ब्रह्मचर्य—इंद्रिय-विजयी होना।

अपरिग्रह—पराई कृपा के आसरे न होना, स्वावलंबी बनना।

ये पाँच यम हुए।

शौच—शरीर को जल और उज्ज्वल वस्त्रों से, मन को सत्य से और आत्मा को आत्म-चिंतन से शुद्ध रखना।

संतोष—हेतु में ईर्षा रखना, फल में संतुष्ट रहना। अर्थात् परिश्रम और उद्योग में सबसे आगे बढ़ने का हौसला रखना, किंतु कार्य के सुधरने-बिगड़ने पर हर्ष-विषाद न मानना।

तप—कष्ट सहकर भी धर्म-नीति न छोड़ना।

स्वाध्याय—सदैव सत्शास्त्रों को पढ़ते-सुनते रहना।

ईश्वर का ध्यान—ईश्वर में अटल भक्ति रखना।

इन यम और नियमों को साथ-साथ पालन करना चाहिए। एक के पालन से सिद्धि न होगी। इस विषय में सावधानी की ज़रूरत है।"

"प्रभो ! यह कैसी बात है ?"

"देखो, बिना अहिंसा के कोई पवित्र नहीं होता।

हिंसा-वैर जिसके मन से नष्ट हो गए, वही पवित्र है। जिसके मन में गाँठ है, उसे लोग मैला कहते हैं। अहिंसा यम और शौच नियम है। बिना अहिंसा शौच का पालन कैसा? क्या मांस गंगा-जल में धोने से शुद्ध हो जायगा? इसी प्रकार संतोष भी विना सत्य के स्थिर नहीं रह सकता। सच्चे ही पुरुष संतोषी रह सकते हैं। इसी भाँति अस्तेय के विना तप, ब्रह्मचर्य के विना स्वाध्याय और अपरिग्रह के विना ईश्वर-प्रणिधान व्यर्थ है। निभ नहीं सकेगा।"

"महाराज, आपके चरणों की कृपा से यह मैं ठीक-ठीक समझ गया।"

"तीसरी रीति ध्यान के लिये आसन बाँधना है, जो अभ्यास और गुरु-मुख से ही जानी जा सकती है। इससे आत्मा स्थिर हो जाता है।

"चौथी रीति प्राणायाम और पाँचवीं रीति इंद्रियों को उनके स्वाभाविक कर्मों से रोकना है। यहाँ तक योगी पहुँचकर भूख, प्यास, नींद आदि इंद्रिय-विकारों से रहित हो जाता है। छठी, सातवीं और आठवीं रीतियाँ धारणा, ध्यान और समाधि हैं, जो योग का मुख्य अंग हैं। जो इन्हें सिद्ध कर लेता है, वह सिद्ध हो जाता है। इन सिद्धियों के ज्ञान और साधना में अनेक जन्म बीत जाते हैं, परंतु सद्गुरु के मिलने से वह दुर्लभ और गोपनीय विषय शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।"

"हे स्वामी! मेरे ज्ञान-चक्षु खुल गए, और एक ही दिन में मैंने उतना प्राप्त कर लिया, जितना किसी को एक जन्म में मिलता। स्वामी, इन चरणों के प्रताप से मुझे तो सब कुछ अनायास ही मिल गया।"

इतना कहकर वह स्वामीजी के चरणों पर लोट गए, और अश्रु-धारा वेग से उनके नेत्रों से बह चली। इसके बाद ही वह "मिल गया—मिल गया—सद्गुरु मिल गया—सद्गुरु मिल गया—" कहते हुए बाहर को दौड़े। लोग हैरान थे, देखनेवाले दंग थे, परंतु राय साहब मानो इस जगत् में ही न थे, वह हर्षोन्माद में डूबे हुए अपनी धुन में दौड़े चले जा रहे थे। आज उनके बराबर धन्य पुरुष जगत् में कौन था! उन्हें सद्गुरु प्राप्त हो गए थे!!

(५)

स्वामीजी मौन मुद्रा से बैठे थे, और राय साहब काछा कसे जल्दी-जल्दी घर में झाड़ू लगा रहे थे। नौकर-चाकरों को उस समय वहाँ आने की आज्ञा न थी। भीतर से आवाज़ आई—

"सालिगराम!"

राय साहब झाड़ू फेंककर भीतर दौड़कर गए। कहा—

"माताजी की क्या आज्ञा है?"

"आज देर हो गई है। स्वामीजी स्नान भी नहीं कर पाए हैं। न हो, आज किसी नौकर से जल मँगवा लो।"

"मातेश्वरी, यह तो मैंने जान-बूझकर ही देर की है। मैं अभी जल लाता हूँ। इसमें कुछ रहस्य था।"

"जाने दो, आज नौकर, ले आवेगा। तुम्हारा शरीर भी स्वस्थ नहीं।"

"माता, आज १२ वर्ष से यह मेरा अधिकार है कि जब मैं आगरे में रहूँ, तो स्वयं यह सेवा करूँ। यह अधिकार जीते-जी मैं किसी को दूँ, ऐसी आज्ञा न दीजिए।"

माताजी हँसकर भीतर चली गईं। स्वामीजी भी हँस दिए, पर बोले नहीं।

राय साहब जल लेने चले। नंगा शरीर, एक साधारण धोती, एक चादर। कंधे पर घड़ा, नंगे पैर, बाज़ार में देखकर लोग हँसते थे। जब बीच बाज़ार में पहुँचे, वस्त्रों में से घुँघरू निकाल पैर में बाँध लिए। बाज़ार गूँज उठा। चारो ओर से फब्तियाँ उड़ने लगीं। हरभूले की गुइयाँ पर पहुँचे, स्नान किया, फिर जल भरा। जल लेकर लौटे। एक वृद्ध कँगला बोला—"भाई, ज़रा पानी पिलाते जाओ।" ना कहना वह सीखे नहीं, झट पानी पिला दिया। परंतु अशुद्ध जल गुरुजी के लिये लावें कैसे? वह उस जल को फेंक फिर पीछे लौटे, और जल भरा।

घड़ा उठाया था कि टूट गया ! अब क्या किया जाय ? पैसा तो गाँठ में था ही नहीं । कुम्हार के घर जाकर कहा --

"भाई, एक घड़ा चाहिए ।"

"एक आने का होगा ।"

"कुछ हर्ज नहीं, मगर पैसे कल मिलेंगे ।"

"तब घड़ा भी कल ही लेना ।"

"भाई, घड़े की अभी ज़रूरत है ।"

"मैं उधार नहीं बेचता ।"

क्षण-भर चुप रहकर आपने चादर उतारकर रख दी, और कहा—"लो भाई, इसे रख लो गिरवी । पैसे देकर इसे ले जायँगे ।" इतना कहकर घड़ा उठाकर चल दिए ।

स्वामीजी उसी तरह बैठे थे । वह घूर-घूरकर उन्हें देखने लगे ।

आपने पैरों में गिरकर कहा - "स्वामीजी, अपराध क्षमा हो, अब फिर ऐसा विलंब कभी न होगा !"

"और यदि आज ही-जैसी घटना हो गई, तब तुम कैसे कह सकते हो कि न होगा ?"

राय साहब घबराकर गुरु के मुख की ओर देखते रहे । स्वामीजी ने कहा—"सालिगराम, ये पैर में घुँघरू क्यों बाँधे हैं ?"

"प्रभु, ये अच्छे मालूम देते हैं ।"

स्वामीजी हँस पड़े । कहा—"लोगों ने कहा कि तुम छिपकर जल लेने जाया करते हो अँधेरे में । आज तुम गए दिन में और घुँघरू बाँधकर कि सभी कोई तुम्हें देखे ! क्यों, यही बात है न ?"

"प्रभु, नाराज़ न होना, यह मेरा अनुचित घमंड था । मैं स्वीकार करता हूँ ।"

"हे पुत्र, तुम १२ वर्ष से तुच्छ सेवक की भाँति हमारी सेवा करते आ रहे हो । रात-दिन, सर्दी-गर्मी, भय-आलस्य, सब पर तुमने विजय पाई । अब लोगों के कहने से तुमने हास्य और अपमान भी सहा, पैर में घुँघरू बाँधे, परंतु वत्स ! देखो, कभी जगत् की मत सुनो, सबको अपनी सुनाए जाओ, कल्याण का मार्ग तो यही है ।"

यह सुनकर राय साहब ने चरणों में सिर झुकाया, और थोड़ी देर बाद बोले —

"आज्ञा हो, तो कुछ निवेदन करूँ ।"

"कहो ।"

"मैं अब नौकरी त्यागकर चरण-सेवा में रहना चाहता हूँ ।"

"नहीं, ऐसा उचित नहीं । नौकरी पर रहते तुमसे बहुतों का कल्याण होगा ।"

"तब मेरी एक विनय है ।"

"वह क्या ?"

"वेतन सब यहीं आवेगा—जिस तरह चाहें, ख़र्च करें ।"

"बाल-बच्चों का क्या करोगे ?"

"आप स्वामी हैं, एक मुट्ठी चना-चबेना उन्हें भी दे दिया करें ।"

"परंतु यह क्या उचित होगा ?"

"स्वामी स्वामी रहें, इसमें अनुचित क्या है ?"

"तुम स्वयं ही अपनी कमाई सत्कर्म में लगाओ ।"

"मुझमें इतना विवेक कहाँ ?"

स्वामीजी हँस दिए ।

राय साहब वहीं बैठ गए । कहा —"अब सेवक स्वीकृति लेकर ही उठेगा ।"

स्वामीजी सहमत हुए । राय साहब ने फिर कहा—

"कुछ दीन-दुखियों की सहायता भी श्री-चरणों से हो जाय ।"

"वह क्या ?"

"मुझे अपने पद के कारण बहुतों को नौकरी देने का अधिकार है । वह अधिकार स्वामीजी अपने हाथ में लें ।"

"यह मैं क्या जानूँ कि कौन किस योग्य है ?"

"स्वामिन् ! जिसे जिस पद पर नियुक्त करेंगे, वह उस योग्य हो जायगा । मैं दस्तख़त करके एपॉइंट-मैंट-फ़ार्म गद्दी के नीचे रख देता हूँ । जिसे जो चाहें, दे दें ।"

स्वामीजी ने कहा—"सालिगराम ! मेरी एक बात तुम्हें माननी पड़ेगी । तुम सभी छोटी-बड़ी सेवाएँ

अपने हाथ से न किया करो। रोटी बनाना, लकड़ी फाड़ना, जल भरना आदि-आदि सेवक कर लेंगे।

"स्वामिन् ! सेवक ही करता है। उसे बिना अपराध काम से मत हटाइए। दुहाई है!"

(६)

"क्या १५) ही रुपए ? इसमें महीना कैसे कटेगा ?"

"सो मैं क्या बताऊँ, यह महीना तो इसी तरह काटना होगा। स्वामीजी ने यही दिया है।"

"सब तनख़्वाह ख़र्च हो गई ? दो हज़ार रुपए !"

"मैं क्या जानूँ, जो अपने शरीर और आत्मा के स्वामी हैं, उन्हें अधिकार है।"

"पर बच्चों की गुज़र कैसे होगी ?"

"जैसे स्वामीजी चाहेंगे।"

"मेरी धोती फट गई है।"

"अगले महीने मँगा लेना।"

देवी चुप हो गईं। राय साहब ने देखा, उनकी पत्नी के हृदय में दर्द हुआ है, पर पतिव्रता उसे प्रकट नहीं करना चाहती। उन्होंने कहा—

'प्रिये ! क्या तुम्हें दुःख हुआ ?"

"नहीं स्वामी !"

"तुम सुस्त क्यों हो गईं ?"

"यह मेरी मूर्खता है ! मैं अभ्यास करके योग्य बनूँगी।"

"प्रिये, दरिद्रावस्था क्या बुरी है ?"

"मैंने इसकी सच्चाई पर कभी विचार नहीं किया।"

"वह दरिद्रावस्था जो सन्मार्ग पर चलने से हो, जो दुर्भाग्य का चिह्न न हो, जो पवित्र त्याग और गुरु-भक्ति के कारण हो......।"

"स्वामी, वह दरिद्रता किसी भी स्त्री का भूषण हो सकती है।"

"क्या हमने तन, मन, धन सभी गुरुजी को नहीं दे दिया ?"

"सभी दे दिया।"

"और क्या यह हमने असत्पात्र में दान किया है ?"

"कदापि नहीं !"

"क्या हम ठगे गए हैं ?"

"नहीं स्वामी !"

"क्या हम आनंद के भागी नहीं ?"

"हम बड़भागी हैं, हमने सद्गुरु पाया है।"

"तब प्रिये, इतनी चिंता क्यों ? जो समर्थ है, वह हमारी प्रतिक्षण चिंता करता है।"

"स्वामी, मैं अबोध स्त्री हूँ, इस बार अपराध क्षमा करें।"

"पर मैं तुम्हें अगले महीने धोती ज़रूर ला दूँगा।"

"आप कष्ट न करें, स्वामी स्वयं जब चाहेंगे, भेज देंगे।"

"पर मैं उनसे कदापि न कहूँगा।"

"उसकी आवश्यकता न पड़ेगी।"

इसके बाद दोनो धर्म-प्राण पति-पत्नी ने निज-निज स्थान को प्रयाण किया।

(७)

राय साहब ने हठ करके कहा—"गुरुदेव ! आज तो मैं हेस-नेस करके उठूँगा।"

स्वामीजी ने हँसकर कहा—"अच्छी बात है।"

"मैं माताजी से सहायता ले चुका हूँ।"

"वह मैं जान गया।"

"अब या तो मेरे मन से यह विचार नष्ट कर दीजिए, या आप इसका अनुष्ठान कीजिए।"

"तुम चाहते क्या हो ?"

"सत्संग आम हो जाय, सभी संसारियों को इससे लाभ प्राप्त हो, जगत् का कल्याण हो। सभी की मुक्ति हो।"

"तुम अपने निजू प्रिय जनों को बताओ, उनको मुक्ति की हम राह बतावेंगे।"

"सारा संसार मेरा प्रिय है।"

स्वामीजी मौन होकर सोचने लगे। राय साहब ने उनके पैर पकड़कर कहा—

"प्रभु, पृथ्वी पर कितने अधम कीट-पतंग हैं।

मनुष्य क्या इनसे तनिक भी उच्च नहीं। फिर मनुष्य की योनि ही एकमात्र मुक्ति का अवसर पाती है। वह भी जन्म से मृत्यु तक झंझट में फँसी रहे? यह क्या बात है! ज्ञानी गुरु के रहते मनुष्य ज्ञान-रहित क्यों रहे?"

"पुत्र, यह गहन विद्या सर्वसाधारण को बताने की नहीं। तुम्हारी २० वर्ष की तपस्या क्या साधारण है?"

"आह, मैं तो मय सूद के पा चुका। मैं बेचैन हूँ कि जैसे बने, मनुष्य-मात्र को मैं इसे दूँ। हे स्वामी! रोग, शोक, पाप से पीड़ित इस संसार पर दया करो। उसी के उद्धार का मार्ग खोल दो।"

स्वामीजी एकाएक गंभीर हो गए। उन्होंने राय साहब को स्पर्श करके कहा—"सालिगराम! पुत्र, तुमने २० वर्ष हमारी सेवा की। तुम्हारी इच्छा हम पूर्ण करते हैं, परंतु देखो, हमारा तन्मय होने का समय निकट आ गया है। यह नवीन विचार, जो तुम्हारी रुचि का है, तुम्हें ही जीवित रखना पड़ेगा। आओ, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। तुम्हें सफलता प्राप्त हो।"

इसके बाद स्वामीजी एकदम मौन हो गए। उन्होंने नेत्र बंद कर लिए। बड़ी देर तक वह उसी स्थिति में बैठे रहे।

किसी ने कहा—"चंद्रसेनपुर से कैसे आया है, चरणों के दर्शन चाहता है।"

स्वामीजी ने संकेत से कहा—"आने दो।"

उसने आकर चरणों में माथा टेका। आपने उसकी ओर देखकर कहा—

"बैठ जाओ, और अच्छी तरह दर्शन कर लो। अब फिर दर्शन न होंगे।"

धीरे-धीरे सत्संगी एकत्रित होने लगे। सब लोग हैरान थे। प्रातःकाल ८ बजे कहा—"लो, अब चलने की तैयारी है।" झट से सुरत चढ़ाई। प्राणायाम खींचा। आँखों के सफ़ेद ढेले देख पड़ने लगे। बदन काँपने लगा। नाख़ून पीले हो गए। पाव घंटे बाद आपने आँखें खोलकर कहा—"अभी देर है।"

लाला प्रतापसिंह पास बैठे थे, पूछ बैठे—

"अब कब?"

"दोपहर बाद।"

स्वामीजी फिर ध्यान-मग्न हो गए, और लोग जो-जो सुनते गए इकट्ठे होते गए। कुछ सत्संगियों ने धन भेंट किया। जगनलाल खत्री ने कहा—"यह समय भेंट का नहीं, अंतर्ध्यान लगाने दो।"

आपने कहा—

"ध्यान इतना है, जब चाहा सुरत पहुँचा दी, और उतार ली। डेरे हमने रात ही को पहुँचा दिए हैं, और सूरत सत्पुरुष की गोद में पहुँच गई है। कुछ ध्यान करके उतर आए हैं।" इसके बाद आपका संकेत समझ सबने आरती उतारी, और दो बजे दोपहर को वह महान् आत्मा इस नश्वर शरीर से बिदा हुई।

(८)

राय साहब की मुख-मुद्रा पर एक तेज आ गया था, और वह शोक-संतप्त सत्संगियों को धैर्य और शांति प्रदान कर रहे थे। अपनी समस्त आय उन्होंने सत्संग में ख़र्च करनी शुरू कर दी, और आम सत्संग का प्रारंभ कर दिया। आपने नौकरी त्याग दी थी, और अब सच्चे मालिक की नौकरी एक मन, एक प्राण होकर बजा रहे थे। हज़ारों आदमी आपके दर्शनों और उपदेशों को श्रवण करने आते थे। धीरे-धीरे दूर तक आपका नाम फैल गया, और आपने उस गूढ़ विद्या का चमत्कार, जो आपने २० वर्ष की कठिन सेवा से थोड़ा-थोड़ा करके संचित किया था, लोगों पर प्रकट करना प्रारंभ किया। आप हुज़ूर साहेब के नाम से प्रख्यात हो गए, और सहस्रों पुरुष आपकी सेवा करने और भेंट चढ़ाने लगे। फिर भी आपका तेज और विनम्र व्यवहार आश्चर्य-जनक था।

धीरे-धीरे आपकी साधना बढ़ती गई, और आप बहुत कम विश्राम करने लगे। लोग आश्चर्य करते थे। एक क्षण आपको विश्राम न मिलता था। उत्तर, दक्षिण, पूर्व-पश्चिम से झुंड के झुंड आते, दर्शनों से लाभ उठाते, और सन्मार्ग पाते रहे। इस प्रकार यह महापुरुष ७० वर्ष की अवस्था में, राधास्वामी-धर्म को

जन्म देकर और संसार को एक सच्चा मार्ग दिखा-कर, सत्पुरुष की शरण हुए।

× × ×

आज भी, उसी आगरे के अंचल में, दयाल-बाग़ की चहारदिवारी के भीतर, ऊषा की लाली के उदय होने पर, एक गंभीर निनाद उठता है। जो कोई भी उस निनाद के मूल उद्गम को देखेगा, मुग्ध हो जायगा।

एक शुभ, उच्च पीठ पर एक कूटस्थ पुरुष मग्न, मौन मुद्रा में और इतस्ततः भक्ति-शांति में व्यास नर-मुंड—शुद्ध आकाश के नीचे भक्ति, विश्वास और प्रेम का अनवरुद्ध प्रवाह !

क्या आगरे की उस अतीत, मृतक, जीर्ण विभूति से इस सजीव विभूति से कुछ तारतम्य है ? कौन जाने और विवेचना करे !

विवाह का भविष्य

[श्रीयुत संतराम बी० ए०]



सार की प्रत्येक चीज़ में परिवर्तन का चक्कर लगा हुआ है। इसका एक-एक परमाणु क्षण-क्षण में बदल रहा है। जहाँ कभी समुद्र था, वहाँ आज बड़े-बड़े नगर बसे हुए हैं। जहाँ कभी जनाकीर्ण महानगरियाँ थीं, वहाँ आज मरुस्थली है। नदियों ने मार्ग बदल लिए हैं। लोगों के रहन-सहन, वेष-भूषा, खान-पान और भाषा में इतना रूपांतर हो गया है कि आज यदि महाभारत-काल का कोई मनुष्य भारत में आवे, तो वह इस देश को पहचान ही न सके। अकबर के समय में लोगों का जो वेष था, उसमें और आज के कोट, पतलून और हैट में आकाश-पाताल का अंतर है। वेष-भूषा के साथ-साथ जनता के रीति-रिवाजों में भी बराबर परिवर्तन होता रहता है। समय और परिस्थिति के अनुसार लोगों के नैतिक और सामाजिक आदर्श भी बदलते रहते हैं। जो बात आज से चार सौ वर्ष पूर्व अच्छी समझी जाती थी, वही आज पाप समझी जाती है। संसार में स्थिरता किसी भी चीज़ की नहीं। यह परिवर्तन का चक्कर मनुष्य-समाज का क्या रूप बना देगा, यह ठीक-ठीक बताना तो कठिन है, पर इसके संबंध में अनुमान बहुत कुछ किया जा सकता है।

मनुष्य-समाज की शांति और सुख का निर्भर स्त्री और पुरुष के ठीक-ठीक संबंध—विवाह—पर है। ध्यान-पूर्वक देखने से पता लगता है कि संसार में सुखी दंपतियों की संख्या बहुत थोड़ी है। कहीं पत्नी पति से बेज़ार है, और कहीं पति पत्नी को तलाक़ देने की फ़िक्र में है। कहीं पति परस्त्रीगामी बन रहा है, तो कहीं स्त्री पर छिनाल होने का संदेह किया जा रहा है। इस दुःख का प्रधान कारण लैंगिक अशांति (Sexual unhappiness) है। इस अशांति को दूर करने के लिये स्त्री-पुरुष-संबंध में परिस्थिति और समय के अनुसार परिवर्तन होते रहने की आवश्यकता है।

विवाह का मुख्य उद्देश्य सदा स्त्री-पुरुष का समागम रहा है, और अब तक भी है। सभ्य जातियों में विवाह के और भी कई उद्देश्य माने जाते हैं, यथा व्यक्तिगत, सामाजिक और परिवार-संबंधी। परंतु मुख्य उद्देश्य फिर भी समागम ही रहता है। कितने पुरुष जान-बूझकर ऐसी स्त्री के साथ विवाह करने को तैयार होंगे, जो अपने किसी शारीरिक दोष के कारण समागम के अयोग्य है? इसी प्रकार कितनी स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो जानती हुई भी नपुंसक पुरुष के साथ विवाह कर लेंगी? काम-वासना एक स्वाभाविक बात है। जैसे मनुष्य को भूख और प्यास स्वभावतः लगती है, वैसे काम-वासना की जागृति भी स्वभावतः होती है। अंतर केवल इतना है कि भूख-प्यास का अनुभव जन्म-काल से ही होने लगता है, पर काम-तृप्ति की इच्छा जवानी में होती है। जैसे भूख-प्यास को दबाने से हानि होती है, वैसे काम-वासना के स्वाभाविक वेग को दबाने से, कुछ अपवादों को छोड़कर, युवकों और युवतियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। उनको अनेक रोग हो जाते हैं, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के लिये इस स्वाभाविक वेग को दबाना संभव नहीं। इसलिये जवान होने के बाद जितनी जल्दी स्त्री-पुरुष का समागम हो सके, उतना ही अच्छा। इसके दो ही उपाय हैं—या तो छोटी आयु में विवाह होने लगें, या नियम-पूर्वक विवाह के पूर्व ही युवकों और युवतियों को काम-वासना की तृप्ति का मौक़ा मिले। पश्चिमी देशों में लोग बहुत बड़ी उम्र में विवाह किया करते थे। पर अब अमेरिका में छोटी उम्र की शादियाँ अच्छी

समझी जाने लगी हैं, और इनका प्रचार भी बढ़ रहा है। परंतु छोटी उम्र के विवाह के साथ तलाक़ों में आसानी भी करनी पड़ेगी। लड़के और लड़कियाँ जितनी छोटी उम्र में विवाह करेंगी, अपना जीवन-साथी चुनने में वे उतनी ही अयोग्य होंगी, और अधिक संभव यही है कि दस-पाँच वर्ष बाद वे एक दूसरे से ऊबकर अलग हो जायँ।

गर्भ-निरोध (Birth control) की विधियों के ज्ञान के प्रचार से छोटी आयु के विवाहों में सुबीता हो जायगा, क्योंकि इससे तरुण दंपतियों को उस समय से पूर्व संतान हो जाने का डर न रह जायगा, जब कि वे उसका पालन-पोषण कर सकते हैं। पर यदि राज्य (State) अपने नन्हे नागरिकों के पालन-पोषण का भार अपने ऊपर ले लेगा, तो छोटी उम्र के विवाह के मार्ग से यह आर्थिक बाधा भी दूर हो जायगी।

यदि तलाक़ को आसान करके छोटी उम्र के विवाह को संभव न बना दिया गया, तो वह समय आना अनिवार्य जान पड़ता है, जब विवाह के पूर्व का समागम उपयोगी होगा—विशेषतः यदि विवाह करने-वाले युवक और युवती अनुभव-शून्यता के कारण होनेवाली भूलों से बचना चाहते हैं।

इस समय विवाह से पूर्व समागम होने में कई डर हैं। इससे अनिच्छित गर्भ रह जाने का डर है; उपदंश या सूज़ाक आदि कोई रोग हो जाने और पता लग जाने पर बदनामी फैलने का डर है। परंतु गर्भ-निरोध के ज्ञान की उन्नति से कालांतर में अनभिलषित गर्भ रहने का डर बिलकुल जाता रहेगा। अधिक संभव है, कई अविवाहित माताएँ अपने विवाह से पूर्व के समागमों से होनेवाले गर्भ से जान-बूझकर बच्चा पैदा होने देंगी। यदि बच्चा तंदुरुस्त होगा, तो राज्य उसका स्वागत करेगा, और उपयोगी नागरिक उत्पन्न करने के लिये माता का आभार मानेगा। संभवतः पांडवों की माता कुंती के समान अविवाहित माता या उसकी संतान को कोई बुरा नहीं कहेगा।

उपदंश आदि रोगों के होने का डर भी बहुत कम हो जायगा; क्योंकि एक तो इनको रोकने और अच्छा करने के बहुत अच्छे उपाय निकल आवेंगे, दूसरे व्यव-सायी रंडियों का स्थान धीरे-धीरे अपनी इच्छा से रहने-वाली रखेल स्त्रियाँ ले लेंगी। विवाह से पूर्व होनेवाले समागमों का सामाजिक कलंक धीरे-धीरे कम होकर अंततः बिलकुल लोप हो जायगा। इसलिये युवकों भाड़े की व्यवसायी वारांगनाओं के पास जाने की आवश्यकता न रहेगी। वे पारस्परिक आकर्षण के आधार पर प्रणय-संबंध कर सकेंगे।

परंतु वेश्या का बिलकुल ही लोप हो जाना संभव नहीं। उसकी भी ज़रूरत बनी रहेगी, विशेषतः उन पुरुषों के लिये, जो सफ़र में हैं, या जिनको अधिक स्थायी संयोग बनाने का समय या अवसर नहीं, या जो अस्थायी रूप से अपनी पत्नियों या रखेलों से अलग हो गए हैं। वेश्या उन लोगों को भी अच्छी लगेगी, जो अपना साथी बार-बार बदलते रहने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं।

वर्तमान काल की वेश्या प्रायः गिरी हुई और घिनौनी है। पर समाज के उसके प्रति भाव ने ही उसे ऐसा बना रक्खा है। प्राचीन काल की गणिकाएँ अपेक्षाकृत उच्च नमूने की स्त्रियाँ होती थीं। भविष्य की वेश्या वर्तमान वेश्या से अधिक दुर्लभ और अधिक उत्तम होगी। जब समाज मानने लगेगा कि उसका होना अनिवार्य है, और उसका पूरा-पूरा लाभ उठाने का यत्न होने लगेगा, तो वह भी अपने भीतर आत्मसम्मान का भाव बढ़ावेगी, और अपने शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा और आकर्षण पर अधिक ध्यान देने लगेगी। यह भी संभव है कि एक दिन ऐसा आ जायगा, जब वेश्या-वृत्ति ऐक्ट्रस के काम से अधिक नीच नहीं समझी जायगी। ऐक्ट्रस या नटी बनना भी तो योरप में कुछ शताब्दी पहले बहुत ही बुरा समझा जाता था, और भारत में अब तक भी समझा जाता है।

स्त्री और पुरुष में समता के बढ़ते जाने से संभव है कि पुम्मैथुन भी बढ़ जाय। यह इस समय

पाया जाता है, पर इसे स्त्री के साथ व्यभिचार करने से अधिक बुरा समझा जाता है। इसका कारण यह है कि पुरुष के अधिकार और स्त्री की अधीनता का भाव मनुष्य-समाज में चिर काल से चला आ रहा है। परंतु यदि स्त्रियों को वे सब व्यवसाय करने की छुट्टी होगी, जो पहले केवल पुरुषों के लिये ही रक्षित थे, तो यह असंभव नहीं कि पुरुष भी उन व्यवसायों को करने से बाज़ न रहें, जो पहले स्त्रियों के लिये ही रक्षित थे।

भविष्य में युवक और युवतियों को सारी आवश्यक जानकारी देकर विवाह के लिये तैयार करने का कुछ यत्न किया जायगा। जीवन के प्रत्येक दूसरे विभाग में हम शिक्षा पर बड़ा ज़ोर देते हैं, परंतु विवाह के क्षेत्र में हम लोगों को बिलकुल अज्ञान में रखने का उद्योग करते हैं। सारा बचपन क्या खाना चाहिए, कैसे खाना चाहिए, कितना खाना चाहिए इत्यादि बातों के सीखने में ख़र्च हो जाता है, और हम बच्चे को तब तक अपना भोजन आप चुनने की आज्ञा नहीं देते, जब तक हमें निश्चय नहीं हो जाता कि वह उचित रूप से सिखाया जा चुका है।

पर विवाह के संबंध में बात इससे कितनी उलटी है! हम पूर्ण सतीत्व और काम-संबंधी बातों से पूर्ण अज्ञान की आज्ञा देते हैं। विवाहित जीवन को सुखी बनाने के लिये यह एक बहुत ही कच्ची नींव है। पति के लुच्चे होने से विवाह-संबंध उतना दुःखमय और असफल नहीं होता, जितना उसके काम-कला से सर्वथा अनभिज्ञ और असमर्थ होने से। जहाँ विवाहित जीवन के दुःखमय होने में पत्नी का दोष होता है, वहाँ कारण यह होता है कि उसकी शिक्षा इस ढंग से हुई होती है कि वह शारीरिक सतीत्व का इतना अधिक मूल्य समझने लगती है कि वह विवाह में भी समागम को निर्दोष कर्म नहीं समझ सकती।

स्त्री और पुरुष दोनो को काम-कला का थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए। इसके लिये यदि विवाह के पूर्व ही कुछ अनुभव की आवश्यकता होगी, तो आनेवाली पीढ़ियाँ इसे सीखना भी स्वीकार कर लेंगी।

सिद्धांतरूप से माने जाने पर भी पुरुष का ब्रह्मचारी होना कभी, वास्तव में, आवश्यक नहीं समझा गया। इसलिये स्त्री के आर्थिक उद्धार से वह भी स्वभावतः इस विषय में अपनी स्वतंत्रता का विस्तार कर रही है।

हमारी वर्तमान विवाह-पद्धति बिलकुल संतोषजनक नहीं। यदि लोग ऐसा महत्त्व-पूर्ण संबंध ऐसी छोटी उम्र में करेंगे, जब कि उन्हें बहुत कम अनुभव होता है, और उनकी बुद्धि का विकास भी पूरी तरह से नहीं हुआ होता, तो उसमें काफ़ी परिवर्तन की ज़रूरत है।

एक पुरुष के लिये एक स्त्री और एक स्त्री के लिये एक पति, यह एक आदर्श है। परंतु वर्तमान काल में यह आदर्श बहुत थोड़े लोगों के लिये ठीक है, और बहुत थोड़े लोग ही इस पर दृढ़ रह सकते हैं। अधिकांश पुरुष, कम-से-कम मन में, अनेक स्त्रियों की कामना करते हैं। पुरुषों की एक बड़ी संख्या एक से अधिक स्त्रियों से समागम करती है, और जो लोग एकपत्नीव्रती हैं, उनमें से अधिकांश इस जीवन में परिणामों के भय से या धर्म-पंडितों के कल्पित दूसरे लोक में दंड पाने के डर से रहते हैं।

प्रायः स्त्रियाँ उतनी बहुपुरुषगामिनी नहीं। इसका कारण शायद उनकी जन्म-सिद्ध प्रकृति हो या चिर काल से अपने वेग को दबाते रहने का उनका स्वभाव हो। परंतु आर्थिक रूप से स्वतंत्रता प्राप्त करने के साथ-साथ अब उनमें भी अनेकपुरुषगामिनी होने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, और संभव यही है कि यह प्रवृत्ति घटने के स्थान में भविष्य में बढ़ेगी ही। बहुपत्नीत्व एकपत्नीत्व को निकालकर उसका स्थान आप नहीं ले लेगा, बरन् दोनो एक साथ रहेंगे। हाँ, बहुत पत्नियाँ रखना ज़रूरी नहीं होगा।

विवाह की संस्था इतनी दृढ़ता से स्थापित हो चुकी है, और धार्मिक सिद्धांत जनता की अविचार-

शील बहुसंख्या पर अब भी इतना प्रभाव रखते हैं कि इस संस्था का सहसा लोप हो जाने या इसमें किसी क्रांतिकारी या भयानक परिवर्तन होने की कोई संभावना नहीं। एकदम होनेवाले परिवर्तन अच्छे नहीं होते, क्योंकि उनसे एक चरम सीमा का स्थान उसकी विपरीत चरम सीमा ले लेती है। किंतु क्रमिक परिवर्तन अवश्यंभावी है। इसलिये अधिक संभव यह है कि तलाक़ के लिये सुबीता बढ़ेगा। सिद्धांतो संप्रदायों की दासता से ज्यों-ज्यों छुटकारा मिलता जायगा, त्यों-त्यों तलाक़ सुगम होता जायगा, यहाँ तक कि अंत को पति या पत्नी में से किसी एक की भी इच्छा होने पर यह मिल जाया करेगा, क्योंकि नहीं तो समझदार व्यक्ति जन्म-भर में कभी न टूटने-वाला ठेका लेने से इनकार कर देंगे।

विवाह वास्तव में उन युगों की उपज है, जब गर्भ-निरोध का ज्ञान या तो बिलकुल था ही नहीं, या था, तो बहुत अधूरा था, और स्त्री पुरुष के लिये एक खिलौना-मात्र थी। यदि पुरुष को विषय-भोग का आनंद लेने की आवश्यकता होती थी, तो उसे स्त्री का और साथ ही बच्चों का भरण-पोषण करने के लिये तैयार होना पड़ता था।

स्त्री के आर्थिक स्वतंत्रता लाभ करने और पुरुष के मुक़ाबले में जीवन के अखाड़े में उतरने से यह अवश्यंभावी है कि पुरुष शीघ्र ही उसका भरण-पोषण अपना कर्तव्य समझना छोड़ देगा। वास्तव में यह भी असंभव नहीं कि स्त्री पहले ही से कहने लग जाय कि पुरुष का भरण-पोषण करना मेरा अधिकार है। कई लोग पुरुष के स्त्री को रखेल बनाकर 'रखने' की बात तो समझ सकते हैं, परंतु नायिका के किसी पुरुष को कांत बनाकर रखने की बात सुनकर एक-दम चौंक पड़ते हैं। किंतु अब ऐसे लक्षण प्रकट हो रहे हैं, जिनसे पता लगता है कि विचारशील पुरुष और स्त्रियाँ पुरुष के साथ होनेवाले इस अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करने लगी हैं। भविष्य में ऐसा समय आ रहा है, जब स्त्री और पुरुष दोनो स्वावलंबी होंगे, या वे दोनो अपनी आमदनियाँ इकट्ठी रक्खा करेंगे, या उनमें से जो अधिक योग्य होगा, वह दोनो के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया करेगा। अब रही बच्चों की बात, सो अधिक संभव यह है कि उनका भरण-पोषण राज्य उस रुपए से करेगा, जो वह सब नागरिकों पर—चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, विवाहित हों या अवि-वाहित और चाहे उनके अपने बच्चे हों या न हों—टैक्स लगाकर प्राप्त करेगा। जिस मार्ग पर संसार के स्वतंत्र देश इस समय चल रहे हैं, उसे देखते हुए इसी परिणाम पर पहुँचना पड़ता है!

इससे एक स्त्री के लिये अनेक पति और एक पुरुष के लिये अनेक पत्नियाँ रखना भी सुगम हो जायगा। यह रीति अनेक जातियों में इस समय भी है, यद्यपि सभ्य लोगों में नियमबद्ध विवाह के रूप में इसका लोप हो चुका है। यदि पति और पत्नी का विवाहित जीवन सौभाग्य से सुखमय है, तो एकपत्नीत्व और एकपतित्व एक आदर्श अवस्था है, परंतु लोगों की बहुसंख्या इस आदर्श को प्राप्त करने में असमर्थ है। ऐसे लोगों के लिये क़ानून-संगत बहुपतित्व और बहुपत्नीत्व अनेक प्रकार से लाभदायक सिद्ध होंगे।

अनेक पुरुष और कुछ स्त्रियाँ ऐसी हैं, जिन्हें, अपने जीवन को यथोचित रूप से सुखी बनाने के लिये, एक से अधिक स्त्रियाँ या पुरुषों की आवश्यकता है। ऐसे व्यक्ति अनेक स्त्री-पुरुषों से समागम कर सकेंगे। यदि बच्चों का पालन-पोषण राज्य करेगा, तो, व्यक्तिगत प्रवृत्ति के सिवा, फिर पुरुष या स्त्री चाहे जितने भी क़ानून-संगत जोड़ीदार बना सकेगी। तब स्त्री को यह बताने की भी आवश्यकता न रहेगी कि मेरे अमुक बच्चे का बाप अमुक पुरुष है, क्योंकि सभी बच्चों के भरण-पोषण का भार तो राज्य पर होगा। ज्यों-ज्यों हम अधिक सामाजिक बनते जायँगे, पहनने के कपड़े, पुस्तकें, घर का सामान, रहने का मकान इत्यादि केवल व्यक्ति-गत भोगों के अतिरिक्त और सब चीज़ों में संपत्ति का भाव धीरे-धीरे कम हो जायगा, और अंत में रुपए,

भूमि और ऐसी ही दूसरी जायदाद की विरासत की वर्तमान पद्धति का सर्वथा लोप हो जायगा।

जिस युग के आने की हम आशा कर रहे हैं, उसमें माता-पिता को अपनी संतान को बहुत-सा धन नहीं, बरन् नीरोग शरीर और उत्तम मन विरासत में देने की अभिलाषा होगी।

विवाह से पूर्व पुरुष और स्त्री बता दिया करेंगे कि वे एक ही जोड़ीदार पर संतुष्ट रहेंगे, या अनेक के साथ समागम करेंगे। यदि उनमें से एक तो एक ही जोड़ीदार पर संतुष्ट रहना चाहेगा, और दूसरा उसके साथ इसमें सहमत न होगा, तो उनका विवाह नहीं होगा। यदि दोनो पहले तो एक ही जोड़ीदार से संतुष्ट रहने पर सहमत होंगे, परंतु बाद को उनमें से कोई एक अपना विचार बदल लेगा, और दूसरा जोड़ीदार लेने का निश्चय करेगा, तो पहला विवाह विना किसी कठिनाई के टूट सकेगा।

अनेक स्त्रियाँ ऐसी भी हैं, जो सब प्रकार बहुत अच्छी हैं, जो बच्चे तो चाहती हैं, परंतु कोई स्थायी पति रखने की जिन्हें अभिलाषा नहीं। ऐसी स्त्रियों की समस्या को भी बहुपतित्व और बहुपत्नीत्व हल कर सकेगा। ऐसी स्त्री बच्चा लेने के लिये किसी पुरुष से विवाह कर सकेगी, और बच्चा हो जाने पर, क़ानूनी तौर पर तलाक़ दिए विना ही, उसे छोड़ सकेगी।

यह न समझना चाहिए कि सभी लोग या अधिकांश लोग अनेक जोड़ीदार रख सकने के सुबीते से लाभ उठाएँगे। जिनको सौभाग्य से संतोष-जनक जोड़ीदार मिल जायगा, वे एक पति और एक पत्नीव्रती ही रहना पसंद करेंगे, बरन् उन लोगों में से भी बहुत-से, जिनके जोड़ीदार बहुत संतोष-जनक नहीं भी हैं, परिवर्तन के कष्ट से बचना ही चाहेंगे। देखिए, थोड़ी-बहुत दिक़्क़त होने पर भी पुराने नौकरों और मकानों को छोड़कर नए लेने को हमारा जी नहीं चाहता। "पुराने को तो मैं जानता हूँ; नया, पता नहीं, कैसा हो।" ये शब्द हम प्रायः लोगों के मुँह से सुनते हैं। इतनी शताब्दियों के दबाव के परिणाम से आज इतने अधिक लोग काम-वासना की दृष्टि से अधूरे हैं कि हम आशा कर सकते हैं कि तरुणों की एक बहुत बड़ी संख्या एकपत्नीत्व और एकपतित्व को ही, या कम-से-कम एक समय में एक ही विवाह का जोड़ीदार, अच्छा समझेगी।

वर्तमान विवाह-व्यवस्था में इन परिवर्तनों का पहले तो घोर विरोध होगा, विशेषतः इस आधार पर कि इनसे कुटुंब भंग हो जायगा। परंतु यह बात समझ में आ जायगी कि वे कुटुंब का भंग वहीं करेंगे, जहाँ उसका भंग ज़रूर हो जाना चाहिए। यदि पिता, माता और बच्चे सब इकट्ठे रहकर सुखी हैं, तो जिस अधिक स्वतंत्रता का पूर्वाभास ऊपर दिखाया गया है, कोई कारण नहीं कि वह क्यों इन संबंधों में गड़बड़ करे। जहाँ वे सुखी नहीं, वहाँ वे इकट्ठे रहकर अपने जीवनों को दुःखमय बनाने के स्थान में एक दूसरे से अलग हो सकेंगे।

इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि बच्चे के लिये आपस में सदा झगड़ते रहनेवाले दो माता-पिता की अपेक्षा सदा अकेली माता या पिता के साथ रहकर पालित-पोषित होना अधिक अच्छा है। उत्तरदायित्व-हीन या अयोग्य माता-पिता की अपेक्षा तो यही अच्छा है कि बच्चों का पालन-पोषण अजनबियों द्वारा या राज्य द्वारा हो। कई बार यह सोचकर आश्चर्य होता है कि सामान्य माता-पिता अपने ही बच्चे को पालने के लिये सबसे कम योग्य हैं। बच्चे के प्रति उनका भाव इतना अधिक विकारतंत्र (Emotional) और इतना कम युक्ति-संगत (Rational) होता है कि उनको बच्चे के साथ न्याय का बर्ताव करने में बड़ी कठिनाई जान पड़ती है। वे या तो उसके साथ अनुचित कड़ाई करने लगते हैं या अनुचित लाड़, और इससे भी बुरी बात यह है कि वे कड़ाई और लाड़ बारी-बारी से करते हैं।

माता-पिता का विश्वास है, और वे बच्चों को भी इसका विश्वास कराने का यत्न करते हैं कि हमने बच्चों को जन्म देकर उन पर बड़ा भारी उपकार

चित्रों की छपाई के नियम

(१) सुधा तथा गंगा-पुस्तकमाला की पुस्तकों में प्रकाशित चित्र हम छाप देंगे।

(२) काग़ज़ का दाम पेशगी देना चाहिए।

(३) पैकिंग आदि ख़र्च ग्राहकों के जिम्मे होगा।

(४) काम वक़्त पर दिया जायगा।

(५) छपाई के रुपए नक़द या वी० पी० से लिए जायँगे।

(६) चित्र में ४-५ लाइनों से अधिक मैटर नहीं दिया जा सकेगा।

(७) १००० चित्रों की छपाई की दर यह है—

सुनहरी या रुपहली चौरंगा चित्र—

(अ) हमारे ब्लाक से	२५)
(ब) ग्राहक के ,,	२०)

तिरंगा—

(अ) हमारे ब्लाक से	२०)
(ब) ग्राहक के ,,	१५)

दुरंगा—

(अ) हमारे ब्लाक से	१२)
(ब) ग्राहक के ,,	१०)

एकरंगा

(अ) हमारे ब्लाक से	५)
(ब) ग्राहक के ,,	४)

(८) यह रेट ७।। × १० साइज़ या इससे छोटे काग़ज़ पर १ चित्र छापने का है।

(९) ७।। × १० साइज़ से बड़े काग़ज़ के लिये रेट अलग होंगे। पूछने से मालूम होंगे।

(१०) एक ही चित्र २००० या ज़्यादा छपवाने पर रियायत की जायगी।

(११) ग्राहक महोदयों को अपना पता और स्टेशन का नाम साफ़-साफ़ लिखना चाहिए।

मैनेजर गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

किया है, यह बिलकुल फ़िज़ूल है। माता-पिता की बहुसंख्या जान-बूझकर बच्चों को जन्म नहीं देती—बहुत-से बच्चे तो संभोग-क्रिया के गौण फल के रूप में अकस्मात् पैदा हो जाते हैं। संभोग-क्रिया में माता-पिता का असली उद्देश्य तो काम-वासना की तृप्ति ही रहता है। सच तो यह है कि बहुत-से बच्चे तो मा-बाप की इच्छा के विरुद्ध ज़बरदस्ती पैदा हो जाते हैं। जहाँ मा-बाप इच्छा-पूर्वक भी बच्चा पैदा करते हैं, वहाँ भी वे बच्चे की अपेक्षा अपने सुख के लिये करते हैं। माता-पिता प्रायः अपने वंश को चालू रखने के लिये बच्चा पैदा करते हैं। कभी उन्हें यह भी विचार होता है कि बुढ़ापे में हमारे चारो ओर बाल-बच्चे होंगे, तो बड़ा आनंद रहेगा। कभी-कभी बुढ़ापे में, जब वे आप नहीं कमा सकते, कोई सहारा पाने के लिये ही संतान उत्पन्न करते हैं। पितृ-ऋण चुकाने या एक सामाजिक कर्तव्य का पालन करने के भाव से बहुत कम माता-पिता बच्चा पैदा करते हैं। वास्तव में जीवन इतना दुःखों से भरा हुआ है कि हममें से बड़े-से-बड़े सौभाग्यशाली के लिये भी यह स्वीकार करना कठिन है कि हमारे माता-पिता ने हमें जन्म देकर हम पर भारी उपकार किया है। हममें से कइयों के लिये यह कहना बिलकुल ठीक है कि हमारे माता-पिता ने जो त्याग किए हैं, वे उस हानि को कभी पूरा नहीं कर सकते, जो उन्होंने हमें संसार में लाकर की है।

भविष्य में माता-पिता के बच्चों के साथ संबंध की विशेष देख-रेख की जायगी। पहलेपहल लोग इस हस्तक्षेप को बहुत बुरा मानेंगे, जैसा कि इस समय भी कई लोग बच्चों पर की जानेवाली निर्दयता को रोकनेवाली सभा के काम को समझते हैं। परंतु अनुचित कड़ाई और अनुचित लाड़ हस्तक्षेप के लिये युक्ति-संगत कारण समझे जायँगे, और जो माता-पिता अपने बच्चों का जीवन आप बसर करना चाहते हैं, उनको ठीक करने के लिये विशेष उपाय किए जायँगे। जो लोग अपने जीवन को यथोचित रूप से विकसित नहीं कर सके, और जो अपने बच्चों को घिनौने काम करने पर विवश करते हैं, वे अपने बच्चों का पालन-पोषण करने के सर्वथा अयोग्य समझे जायँगे। जिस पंचायत में ऐसे मुक़दमे सुने जाया करेंगे, उसमें केवल बुड्ढे ही नहीं होंगे। वास्तव में भविष्य की सभी कौंसिलों में सोलह और चालीस वर्ष की आयु के बीच के युवकों की संख्या आज की कौंसिलों से अधिक हुआ करेगी। लोगों को इस बात का अनुभव हो जायगा कि यह समझना भारी भूल है कि केवल बुड्ढे ही बुद्धिमान् हो सकते हैं। बुड्ढों के पास अनुभव का लाभ हो सकता है, परंतु वे युवावस्था के चित्त-विकारों और आवश्यकताओं को बहुत बार भूल जाते हैं। शारीरिक और विशेषतः लैंगिक (Sexual) ह्रास के कारण उनका दृष्टि-कोण ही बदल जाता है। बहुत बार उनके परिणाम युवकों के सच्चे द्वेष का फल होते हैं, चाहे इस द्वेष का उनको ख़ुद ज्ञान न हो।

यह न समझ लेना चाहिए कि स्त्री-पुरुषों में समागम की अधिक स्वतंत्रता हो जाने से—चाहे यह नर और नारी दोनो के लिये होगी, और चाहे इसमें विवाह से पहले ही समागम करने और एक से अधिक पति-पत्नियाँ रखने का भी सुबीता रहेगा—मैथुन-संबंधी दुःख (Sexual unhappiness) सर्वथा दूर हो जायगा। अब तक भी अनेक लोग ऐसे रहेंगे, जिनको डाह के कारण दुःख होगा, यद्यपि लोगों को अधिक स्वतंत्रता का अभ्यास हो जाने पर डाह उतना दुःखदायी न रह जायगा, जितना कि अब है, और ऐसे जोड़े सदा ही रहेंगे, जिनमें केवल एक ही साथी में प्रेम की आग ठंडी हो जायगी, दूसरे में नहीं। परंतु हमें दुःख के घट जाने से ही संतुष्ट हो जाना चाहिए; उसके संपूर्ण लोप की आशा नहीं करनी चाहिए।

अब हम राज्य द्वारा बच्चों के पालन-पोषण के विषय को लेते हैं। यह स्पष्ट है कि यदि समाज को अलग-अलग माता-पिताओं के बच्चों का भरण-पोषण करना होगा, तो वह ज़रूर कहेगा कि बच्चे इस प्रकार के और इतने होने चाहिए। गवैए को जो पैसे देता

है, वह उससे यह भी कह सकता है कि मुझे अमुक गीत सुनाओ।

सबसे पहले यह कड़ा क़ानून होगा कि जिन स्त्रियों और पुरुषों को ऐसे, शारीरिक या मानसिक, रोग हैं, जो उनसे बच्चों को विरसे में जा सकते या उन्हें हानि पहुँचा सकते हैं, उनके कोई संतान नहीं होनी चाहिए। यदि वे बच्चे पैदा करने पर हठ करेंगे, तो उन्हें उसी समय बाँझ बना दिया जायगा। बाँझ बनाने (Sterilization) का अर्थ ख़स्सी करना (Castration) नहीं। स्त्री और पुरुष, दोनो को बाँझ अर्थात् उत्पादन-शक्ति-विहीन बनाया जा सकता है। बाँझ हो जाने से उनके शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य की कोई हानि नहीं होती, और न काम-वासना, वीर्य या आनंद में ही कुछ विघ्न पड़ता है। इस युग का ज्ञान इतना उन्नत हो चुका है कि बाँझ बनाने की क्रिया बड़ी सुगम, निर्दोष और भय-रहित है। अब भी अमेरिका के संयुक्त राज्यों में से अठारह राज्यों ने विशेष-विशेष अवस्थाओं में अनिवार्य रूप से बाँझ बना देने का क़ानून बना रक्खा है, और कई हज़ार स्त्री-पुरुष बाँझ बनाए भी जा चुके हैं। विशेषज्ञों की एक बड़ी कमेटी द्वारा परीक्षा और अध्ययन किए जाने के बाद ही किसी व्यक्ति को बाँझ बनाया जाता और इसमें पूरी-पूरी सावधानी से काम लिया जाता है। परंतु बहुत-से लोग अपनी इच्छा से ही बाँझ बनने के लिये तैयार हो जायँगे। पश्चिमी देशों में अब भी अनेक लोग ऐसे हैं, जो समाज के प्रति अपने कर्तव्य का अनुभव करते हुए अपने को बाँझ बनवा डालते हैं—जैसे मिरगी के बीमार, वे लोग जो कभी पागल रह चुके हैं, या जिनके अपने शरीर या कुटुंब में विरसे में आगे जानेवाले रोग मौजूद हैं। सामाजिक उत्तरदायित्व का भाव ज्यों-ज्यों बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों स्वेच्छा-पूर्वक बाँझ बननेवाले लोगों की संख्या बढ़ती जायगी।

माता-पिता बनने की योग्यता का आदर्श समय-समय पर प्रजनन की जटिल विद्या के बढ़ते हुए ज्ञान के साथ-साथ बदलता रहेगा।

जो लोग माता-पिता बनने के स्थायी रूप से अयोग्य होंगे, उनको सदा के लिये बाँझ बना दिया जायगा। जो अस्थायी रूप से अयोग्य होंगे, उन्हें कुछ काल के लिये बाँझ बना दिया जायगा। इसके लिये या तो एक्स-रे का प्रयोग किया जायगा, या उनकी जनन-गिल्टियों को मर्यादा से अधिक गर्म किया जायगा, या उन्हें गर्भ-निरोध की किसी विश्वास्य विधि का उपयोग करने को कहा जायगा। इस रीति से कुछ काल के लिये बाँझ बनाए हुए चूहों में फिर बच्चे पैदा करने की शक्ति पैदा हो गई, और बच्चे ठीक पैदा हुए, परंतु अगली पीढ़ी में कई घोर अनियमताएँ प्रकट हो गईं। यह स्पष्ट था कि एक्स-किरणों ने कीटाणुओं के कोषों (Germinal Cells) को भारी हानि पहुँचाई थी।

इस समय भी चिकित्सा-शास्त्र को गर्भ न होने देने की विधियों का ज्ञान है, और इधर-उधर, संसार के बहुत-से देशों में, डॉक्टर, जीव-शास्त्री और रसायन-शास्त्री गर्भ-निरोध के और भी अचूक उपायों की खोज में लगे हुए हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों को देखकर यह कहना कठिन नहीं कि शीघ्र ही गर्भ-निरोध की कोई अचूक विधि मालूम हो जायगी।

अस्वस्थ व्यक्तियों को आज्ञा दी जायगी कि वे किसी विश्वास्य गर्भ-निरोधकारी विधि का प्रयोग करें। यदि इस आज्ञा का पालन नहीं होगा, तो इससे होनेवाले बच्चे को शायद क़ानून-संगत गर्भ-पात से भ्रूणावस्था में ही नष्ट कर डाला जायगा। या इसे पैदा हो लेने दिया जायगा, और जन्म के बाद परीक्षा करके निर्णय किया जायगा कि इसे जीता रहने दिया जाय या नहीं। इन प्रश्नों पर हम आगे चलकर फिर विचार करेंगे।

इस अनिवार्य बाँझ बनाने या गर्भ-निरोध के लिये तीन युक्तियाँ हो सकती हैं—जब माता बीमार हो, तो बच्चा जनने से उसकी बीमारी और भी बढ़ जाती

है। इसलिये माता के अपने लाभ के लिये ही स्थायी या अस्थायी तौर पर गर्भ धारण न करना ज़रूरी है। दूसरे, यदि माता-पिता में से कोई एक रुग्ण हो, तो बच्चे का हित इसमें है कि कुछ काल के लिये या सदा के लिये गर्भाधान न किया जाय। ऐसा बच्चा पैदा करने से बढ़कर, जिसे विरासत में ही रोग मिला है, जिसमें रोगों का मुक़ाबला करने की शक्ति या जीवनी शक्ति की कमी है, और कोई पाप नहीं।

तीसरे, समाज के हित में भी गर्भ-निरोध बहुधा आवश्यक होता है। दुर्बल शरीर और दुर्बल मनवाले बच्चे समाज के किसी काम के नहीं—वास्तव में वे उस पर बोझ हैं, क्या शांति के समय और क्या युद्ध-काल में। न केवल यह कि उनसे समाज को कुछ लाभ नहीं होता, वरन् जीवन-संग्राम में उपयोगी नागरिकों के साथ मुक़ाबला करके वे सचमुच उनकी उन्नति के मार्ग में बाधक हो जाते हैं। इन निकम्मे लोगों को भूत-दया के भाव से प्रेरित होकर पालना घास-फूस को बढ़ने देकर उपयोगी पौधे को हानि पहुँचाना है। इन सदोष बालकों की शिक्षा पर ठीक बालकों की अपेक्षा बहुत अधिक समय और धन व्यय करना पड़ता है।

तंदुरुस्त माता-पिता के लिये भी संतान का सीमा-बंधन कई कारणों से सदा आवश्यक रहेगा—

१—बहुत अधिक बच्चे जनने से माता में पैदा होनेवाली दुर्बलता को रोकने के लिये। गर्भ और दूध पिलाने का काल अठारह मास रहना चाहिए, और अधिकतर माताओं को दूसरा गर्भ धारण करने के पूर्व नौ मास तक विश्राम लेने की आवश्यकता होती है, इसलिये दो प्रसवों के बीच दो से तीन वर्ष तक का अंतर चाहिए।

२—यदि माता बार-बार गर्भ धारण से दुर्बल हो चुकी है, तो जिस बालक को जन्म लेना है, वह अपनी माता की दुर्बलता के कारण दुर्बल रह जाता है—संसार में आने से पहले ही उसका जन्म-सिद्ध अधिकार उससे छीन लिया जाता है।

३—बालक के जीवन के पहले दो वर्ष संकट के वर्ष होते हैं। इस काल में उसे माता के एकांत मनोयोग की आवश्यकता रहती है। यदि बच्चे थोड़े-थोड़े अंतर पर उत्पन्न होंगे, तो माता एक बच्चे पर पूरा-पूरा ध्यान न दे सकेगी। उसे अपना ध्यान उन सबमें बाँटना पड़ेगा, और दोनो की हानि होने का डर होगा।

४—वर्तमान में परिवार के बालकों की संख्या परिवार की आमदनी के अनुसार सीमित होनी चाहिए, किंतु जब बच्चों और माताओं के भरण-पोषण का भार समाज अपने ऊपर ले लेगा, तो गर्भ-निरोध के लिये इस कारण का लोप हो जायगा।

जन्म-मरण के आँकड़ों पर सरसरी दृष्टि डालने से ही पता लग जाता है कि बहुत बड़े परिवारों में कितना व्यर्थ विनाश होता है। परिवार में ज्यों-ज्यों बच्चों की संख्या बढ़कर दो से ऊपर होने लगती है, त्यों-त्यों बालकों की मृत्यु का डर पहले तो धीरे-धीरे और फिर बहुत तेज़ी से बढ़ने लगता है। इसका कुछ कारण तो यह है कि हमारे वर्तमान समाज में परिवार की वृद्धि का अर्थ बहुधा भोजन की कमी होता है। परंतु यदि भोजन देने की ज़िम्मेदारी समाज ही अपने ऊपर ले ले, तो भी आवश्यक ध्यान देना कठिन होगा। और, यदि बच्चों की देख-रेख के लिये दूसरी स्त्रियाँ नौकर रख ली जायँगी, जिनको अपने बच्चे पालने का काम न होगा, तो भी माता और बालक को बार-बार बच्चा जनने से उत्पन्न होनेवाली दुर्बलता से बचाना असंभव होगा। अलबत्ता इसका एक इलाज हो सकता है, और वह यह कि कुछ स्त्रियाँ केवल बच्चों को दूध पिलाने के लिये ही अलग रख ली जायँ, और उनको संसार के दूसरे झंझटों से मुक्त कर दिया जाय, ताकि उनको शक्ति का यथासंभव कम ह्रास हो। मधु-मक्खियों ने इसी प्रकार का कोई प्रबंध कर रक्खा है—यह असंभव नहीं है, यद्यपि यह आशा नहीं कि मनुष्य-समाज मधु-मक्खियों का अनुकरण करने लगे।

अनुमानों से पता लगता है कि भविष्य में सभी ठीक मनुष्य गर्भ-निरोध किया करेंगे। इस विषय में सर्वोत्तम परामर्श सबको डॉक्टरों से मिला करेगा। भविष्य

के डॉक्टर को वर्तमान के डॉक्टर से लैंगिक विषयों (Sex matters) का कहीं अधिक ज्ञान होगा। प्रत्येक मेडिकल स्कूल में काम-शास्त्र का भी एक अध्यापक होगा, जैसा कि इस समय कोनिङ्सबर्ग के विश्व-विद्यालय में है। प्रत्येक बड़े नगर में काम-शास्त्र का एक स्कूल होगा, जैसा कि इस समय बर्लिन में डॉक्टर मगनस हिर्स्चफ़ल्ड के नेतृत्व में है। डॉक्टरी के विद्यार्थी को काम-शास्त्र (Sexology) की शिक्षा दी जायगी, और इस शिक्षा का एक भाग गर्भ-निरोध होगा। वह अपने रोगियों को परामर्श दे सकेगा कि गर्भ-निरोध की कौन-सी विधियाँ विश्वास्य हैं और कौन-सी अविश्वास्य, कौन-सी हानिकारक हैं और कौन-सी निर्दोष, और वह प्रत्येक व्यक्ति को उसके अपनी अवस्था के लिये विशेष रूप से उपयुक्त विधि बतावेगा।

आजकल गर्भ-विरोध की जिन विधियों का प्रयोग सर्व-साधारण करते हैं, वे अविश्वास्य, वरन् हानिकारक भी हैं। विश्वास्य और निर्दोष विधियाँ भी हैं, परंतु सर्व-साधारण को उन्हें जानने में कठिनाई होती है। जब विवाहित लोग डॉक्टर से इस संबंध में पूछते हैं, तो वह धार्मिक या सामाजिक पक्षपात के कारण बताने से इनकार कर देता है। बहुधा वह इस विषय में कुछ भी सहायता नहीं कर सकता। वह आप ही नहीं जानता, क्योंकि उसके मेडिकल कॉलेज में यह विषय उसे पढ़ाया ही नहीं गया। डॉक्टर से सहायता लेने में असमर्थ होकर गृहस्थ किसी दाई या किसी दूसरे सामान्य व्यक्ति के पास सलाह लेने जाता है। जिस डॉक्टर ने गर्भ-निरोध का विषय कॉलेज में नहीं पढ़ा, जैसे वह सलाह देने में अयोग्य होता है, वैसे ही एक सामान्य मनुष्य उससे भी अधिक ख़राब होता है। क्योंकि किसी भी ग़ैर-डॉक्टर व्यक्ति को इस समय ऐसी शिक्षा पाने का मौक़ा नहीं, जो उसे इस योग्य बना सके कि वह मानसिक और शारीरिक परीक्षा कर सके, कारणों को ठीक-ठीक समझ सके, किसी व्यक्ति-विशेष के लिये सबसे अधिक उपयुक्त गर्भ-निरोध की विधि का निश्चय कर सके, और उसके उपयोग के लिये ज़रूरी हिदायतें दे सके। गर्भ-निरोध की सदोष विधियों के प्रयोग के कारण होनेवाले रोगों और कष्टों को देखकर आदमी डर-सा जाता है। भविष्य में, निरोधक ओषधि की उन्नति से, इससे बहुत कुछ बचाव हो जायगा।

गर्भ-निरोध की विधियाँ बताने के लिये सरकारी स्वास्थ्य-केंद्र खोले जायँगे। सरकारी अस्पतालों में भी लोगों को ये विधियाँ सिखाई जायँगी। तब बीमारी वर्तमान की अपेक्षा कम होगी। क्योंकि मनुष्य-समाज धीरे-धीरे इस क्रियात्मक सचाई को सीख रहा है कि रोग हो जाने पर उसकी चिकित्सा करने की अपेक्षा पहले से सावधान रहकर उसे होने ही न देना अधिक अच्छा है।

भविष्य का डॉक्टर रोग की चिकित्सा की अपेक्षा रोग को रोकने पर अधिक ध्यान देगा। बीमारी में इलाज करने के स्थान में उसे प्रत्येक मनुष्य को या मनुष्य-समूह को बीमार न होने देने के लिये फ़ीस मिला करेगी। वर्तमान काल में हमने डॉक्टर का फ़ायदा इसी में बना रक्खा है कि जहाँ तक हो सके, उसके रोगी अधिक काल तक बीमार रहें। यह मनुष्य के सामाजिक भाव के उच्च विकास का प्रमाण है कि आज चिकित्सक लोग, अधिकांश में, अपने हितों के विरुद्ध कार्य करते हैं। परंतु भविष्य में डॉक्टर को लोगों को तंदुरुस्त रखने के लिये इसके अतिरिक्त एक और भी प्रोत्साहन होगा—वह अपने को अनावश्यक काम से बचाने के लिये लोगों को बीमार न होने देने का यत्न करेगा।

माताओं और बच्चों के लिये स्वास्थ्य-केंद्रों (Health Centres) की द्रुत गति से वृद्धि और स्वास्थ्य-संघों (Health Leagues) की सृष्टि बड़े उत्साह-जनक लक्षण हैं। जर्मनी इस बात में सबसे बाज़ी ले गया है। उसने विवाह-संबंधी विषयों पर सलाह देनेवाले सरकारी केंद्र (Advisory Centres) खोल दिए हैं। भारत में भी ऐसे केंद्र स्थापित होंगे, पर बहुत पीछे से।

(आगामी संख्या में समाप्य)

उद्यान

(द्वितीय संस्करण)

लेखक

श्रीयुत शंकरराव जोशी,

एग्रीकल्चर-ऑफ़िसर

इस पुस्तक से साधारण मनुष्य भी, विना किसी माली की सहायता के, बाग़बानी के सब काम कर सकता है। अपने विषय की हिंदी में सर्वांग-पूर्ण पुस्तक है।

१४ चित्रों-सहित। मूल्य १=)

सजिल्द १॥=)

शहर और ग्राम दोनो के लिये



कृषिमित्र

लेखक

पं० गंगाप्रसाद पांडेय एल्० ए-जी०

सुपरिंटेंडेंट ऑफ़् एग्रीकल्चर

इस पुस्तक में सुंदर, सरल और सुबोध भाषा में कृषि-विज्ञान के नियमों को समझाया गया है। इसकी बातें प्रत्येक किसान और उनके बालकों को कंठस्थ होनी चाहिए।

मूल्य ।–), सजिल्द ॥)

संचालक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ



पृथ्वी

[श्रीयुत "उमेश"]

पाय-पाय दारुन कलेस भाँति-भाँतिन के ,
पागि-पागि पीर में न पल कल पाइहै ;
सोचि-सोचि घोर उतपात आततायिन के ,
सूखिकै कमठ के समान सकुचाइहै ।

धाइहौ न याहि जौ उधारिबे के हेत नाथ ,
तो यह धुरी पै न निमेस ठहराइहै ;
पापिन के पाप-भार ही तें चूरि ह्वै के हाय ,
देखि लीजौ धरा धूरि ह्वै के उड़ि जाइहै ।

कलकत्ता

[श्रीयुत व्रजमोहन वर्मा]



इस वर्ष हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन भारतवर्ष के सबसे बड़े नगर कलकत्ते में हुआ। कलकत्ता आज भारतवर्ष का सबसे बड़ा तथा ब्रिटिश साम्राज्य में दूसरे और संसार में चौदहवें नंबर का शहर है। इसकी गगनचुंबी अट्टालिकाओं को देखकर विदेशियों ने इसका नाम 'महलों का नगर' (The City of Palaces) रख दिया है। कलकत्ते का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। अब से केवल ढाई सौ वर्ष पूर्व इस सुरम्य नगरी, इन चमचमाती हुई सड़कों, इन जगमगाते हुए बाज़ारों तथा इन आलीशान इमारतों का कहीं पता भी न था। हाँ, उनके स्थान में खारी झीलों, भयानक दलदल, मटीले नालों, गंदे पोखर, भयावनी खोहों और सुंदर वन का घनघोर जंगल था। आजकल चौरंगी की सड़क संसार की अन्यतम सड़कों में गिनी जाती है। ढाई सौ वर्ष पहले इसी स्थान पर काली घाट जाने के लिये एक कच्ची जंगली सड़क थी, जिसमें चोर-डाकू और शेर-चीते लगा करते थे! केवल दो-ढाई सौ वर्ष के अल्प काल में यह विलासिता-पूर्ण जगमगाता हुआ शहर बनाकर खड़ा कर देने का संपूर्ण श्रेय अँगरेज़ों को है। वास्तव में एक प्रकार से अँगरेज़ों का इतिहास ही कलकत्ते का इतिहास है, और अँगरेज़ों का उत्थान ही कलकत्ते का उत्थान है।

प्रायः तीन सौ वर्ष पूर्व भारतवर्ष आजकल के समान दीन-हीन, दरिद्री न था। वह यद्यपि ग़ज़नी, ग़ोरी और तैमूर के हमले और लूट-पाट बर्दाश्त कर चुका था, फिर भी उसके धन की थाह न थी। मुग़ल बादशाहों का ऐश्वर्य और भारतवर्ष की धन-संपत्ति की कथाएँ, भारतवर्ष ही की नहीं, बल्कि एशिया की सीमाओं को पार करके सुदूर योरप में भी फैल रही थीं। ख़ैबर, फ़ारस और एशिया माइनर के मार्ग से भारतवर्ष का सुंदर रेशम, वस्त्र तथा कला-कौशल की व्यापारिक वस्तुएँ योरप पहुँचती थीं, जिन्हें देखकर वहाँवाले दंग हो जाते थे। इन सब बातों का फल यह हुआ कि योरप की अनेक जातियाँ भारतवर्ष से व्यापार करके लाभ उठाने के लिये लालायित हो उठीं। सबसे पहले पोर्चुगीज़ भारतवर्ष आए, और कुछ दिन तक भारत का समस्त योरपियन व्यापार उन्हीं लोगों के हाथ रहा। परंतु सत्रहवीं शताब्दि में योरपियन व्यापारियों का बवंडर बुरी तरह बढ़ा, और डच, फ्रेंच, अँगरेज़, डेंस आदि जातियाँ दनादन भारत में आने लगीं।

उस समय भारत में औरंगज़ेब का राज्य था। देखने में तो मुग़ल-साम्राज्य उस समय इतना विस्तृत हो गया था, जितना उससे पहले कभी नहीं हुआ था, मगर उसके अंतर की जीवनी शक्ति प्रायः समाप्त हो चुकी थी। देखने में शेर जीवित था, परंतु उसके नख और दाँत दोनो ही टूट चुके थे। इसी समय देश में योरपियन वणिकों का प्राबल्य हुआ।

उस समय बंगाल में दो प्रधान बंदरगाह थे—एक सतगाँव, दूसरा चटगाँव। सतगाँव के बंदर को धीरे-धीरे नदी की धार ने काट दिया, और समूचा शहर नदी के गर्भ में ऐसा विलीन हो गया कि आजकल किसी को पता भी नहीं कि सतगाँव था कहाँ! सतगाँव के नष्ट होने पर हुगली का क़स्बा व्यापार का केंद्र बनाया गया। इस स्थान पर 'सिरकी', जिसे बँगला में 'हुगला' कहते हैं, बहुत होती थी, इसी-लिये इसका नाम हुगली पड़ा। पोर्चुगीज़ व्यापा-

रियों की संरक्षा में हुगली शीघ्र ही एक बड़ा बंदरगाह बन गया, यहाँ तक कि योरपियन मल्लाहों ने भागीरथी-नदी का, जिसके किनारे हुगली बसा है, नाम ही 'हुगली' रख दिया। हुगली-नगर में पोर्चुगीज़ों की प्रधानता थी, इसलिये फ़्रेंच वणिकों ने चंद्रनगर को अपना केंद्र बनाया, और डच व्यापारियों ने चिनसुरा में अड्डा डाला। अँगरेज़ों ने सन् १६५८ में क़ासिम बाज़ार में अपनी कोठी खोली। जाब चार्नक अँगरेज़ी कोठी में एजेंट था। एक देशी व्यापारी का रुपया न देने पर अँगरेज़ी कंपनी की क़ासिम बाज़ार की कोठी को नवाब के आदमियों ने कुर्क कर लिया। चार्नक भाग गया। उसने मद्रास से चार सौ आदमियों की कुमुक और जंगी जहाज़ मँगाकर हुगली पर हमला किया। अँगरेज़ी फ़ौज दो दिन तक शहर पर गोलाबारी करती, मकानों में आग लगाती और लोगों में मारकाट और लूट-पाट करती रही *।

अंत में पोर्चुगीज़ों के हस्तक्षेप करने पर अँगरेज़ हुगली से चले आए, और तट के अरक्षित ग्रामों को लूटने लगे।

इस घटना के बाद अँगरेज़ों ने सोचा कि उन्हें भी अन्य योरपियन वणिकों की भाँति एक ऐसा अड्डा बनाना चाहिए, जहाँ उनकी प्रधानता हो, जहाँ उन्हें अन्य वणिकों से मुँह-दर-मुँह प्रतियोगिता न करनी पड़े, और जहाँ नवाबी अमलदार उन्हें मनमानी-घरजानी करने में बाधा न दे सकें। अँगरेज़ वणिकों ने केवल बीस वर्ष बंगाल में रहकर इस बात का अनुभव कर लिया था कि यहाँ व्यापार-सुलभ शांति और ईमानदारी से सफल व्यापार कठिन है। यहाँ व्यापार के साथ-साथ कौशल तथा तलवार-बंदूक़ से भी सहारा लेना पड़ेगा। इसके अलावा उन्होंने यह भी ताड़ लिया था कि एक बार शक्तिशाली हो जाने पर नवाबी शासक उनकी उपेक्षा न कर सकेंगे।

हुगली से २३ मील दक्षिण, भागीरथी के दूसरे तट पर, सूतानटी, गोविंदपुर और दिही कलकत्ता-नामक तीन छोटे-छोटे ग्राम थे। सूतानटी (अर्थात् 'सूत की लच्छी') सूत की एक चलती हुई मंडी थी। इसी सूतानटी में एक बड़े पीपल के पेड़ के नीचे—वर्तमान स्यालदह-स्टेशन के समीप, 'बैठकख़ाना रोड' पर—बैठकर हुक़ा गुड़गुड़ाते हुए जाब चार्नक ने इस स्थान को अँगरेज़ों का केंद्र बनाना निश्चित किया था। निस्संदेह उनके मतलब के अनुकूल इससे बढ़कर कोई स्थान नहीं था। एक तो उस समय के बड़े-बड़े जहाज़ इसी स्थान तक नदी में आ-जा सकते थे; दूसरे, यह स्थान हुगली, चिनसुरा, चंद्रनगर आदि स्थानों से विपरीत तट पर था, जिससे इस पर उन स्थानों से सहसा थल-मार्ग से आक्रमण नहीं हो सकता था। तीसरे, यह थोड़ा-बहुत सुरक्षित भी था, क्योंकि इसके एक ओर नदी, दो ओर झीलें और दलदल, तथा चौथी ओर मटियाबुर्ज का कच्चा क़िला था। चौथे, नदी की राह, ख़तरा होने पर भागने की सुविधा भी थी।

इसी समय बंगाल का नया शासक नियुक्त हुआ। चार्नक ने इस परिवर्तन का लाभ उठाया। २४ अगस्त सन् १६९० की दोपहर को पानी बरसते हुए वह सूतानटी के महंत घाट पर आकर उतरा। उसी दिन कलकत्ता शहर की नींव पड़ी।

अँगरेज़ों ने कलकत्ते में एक कोठी बनवाई, जो वास्तव में क़िला थी। वर्तमान जनरल पोस्ट ऑफ़िस, कस्टम हाउस और ईस्ट इंडियन रेलवे के दफ़्तर के स्थान पर यह क़िला बना था। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद जब देश-भर में गड़बड़ी मची, तब अँगरेज़ों ने उससे लाभ उठाकर क़िले को और भी मज़बूत कर लिया, और फिर मराठों के आक्रमण के बहाने कलकत्ते के चारो ओर एक खाईं भी खिचवा ली। यह खाईं वर्तमान

* Their War Vessels kept firing and battering the town most part of the night and the next day, making frequent salies on shore burning and plundering. —Lt. Col. Newell's Calcutta, Page 10.

सर्कुलर रोड के स्थान पर बनी थी। मराठों पर निगाह रखने के लिये कुछ मीनार (Watch towers) बनाए गए थे, जिनमें से एक-दो अब तक बारकपुर-ट्रंक रोड पर मौजूद हैं।

'कलकत्ता' शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई, इसका ठीक-ठीक निर्णय अब तक नहीं हो सका है। गोविंदपुर ग्राम से कुछ दक्षिण की ओर एक बड़ा प्राचीन काली-जी का मंदिर है। इसके चारो ओर की भूमि कालो-क्षेत्र कहलाती थी, और समीपवर्ती ग्राम भवानीपूर कहा जाता था। उस समय के अँगरेज़ भी कालीजी के बड़े भक्त थे, और कोई नया काम शुरू करने के पूर्व वे कालीजी को भेंट-पूजा चढ़ाते थे। कालीजी के मंदिर को जाने के लिये वे, जल-मार्ग से, जिस स्थान पर जाकर उतरते थे, वह 'कालीघाट' कहलाने लगा। कुछ लोग कहते हैं कि यही 'कालीघाट' विगड़कर 'कालीघट्टा' और उससे 'कलकत्ता' हो गया। कुछ का कथन है कि यहाँ किसी समय कोई 'खाल' (नाला) कट गया होगा, जिससे यह 'खालकाटा' कहलाने लगा, और फिर उससे बदलकर 'कालकाटा' या 'कलकत्ता' हो गया।

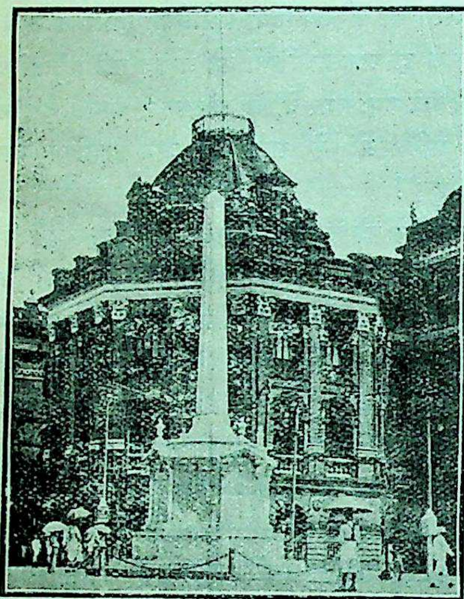
बंगाल के तत्कालीन शासक दिल्ली की हुकूमत से स्वतंत्रता के लिये व्यग्र थे। दूसरी ओर मराठों के दल-बादल समस्त देश को रौंद रहे थे। अतः बंगाल के सूबेदार को इसकी फ़ुर्सत ही न मिलती थी कि वह इन विदेशी वणिकों की बढ़ती हुई शक्ति को रोके। इस प्रकार सन् १७२६ तक कलकत्ते में अँगरेज़ लोग बिना रोक-टोक के निर्द्वंदता से रहे। उन्होंने नाम-मात्र का मूल्य देकर कलकत्ता, गोविंदपुर और सूता-नटी के तीनो ग्रामों को उनके ज़मींदारों से ज़बर्दस्ती ख़रीद लिया। सन् १८२६ में सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब हुआ। उसने अँगरेज़ वणिकों को आदेश दिया कि वे फ़ौजी टोमटाम को छोड़कर व्यापार सुलभ शांति से रहें। अँगरेज़ों ने सिराजुद्दौला के इस न्याय-पूर्ण आदेश की न केवल उपेक्षा ही की, बल्कि उसके दूत को लांछित करके निकाल दिया। अँगरेज़ वणिकों की इस धृष्टता पर उन्हें सबक़ सिखलाने के लिये सिराजुद्दौला ने पहले क़ासिम बाज़ार की अँगरेज़ी कोठी पर क़ब्ज़ा कर लिया, फिर कलकत्ते पर चढ़ाई कर दी।

सिराज का आक्रमण सुनकर अँगरेज़ों ने पहले उससे लड़ना निश्चय किया, और सिपाही भर्ती करने के लिये नगर में डुग्गी पिटवाई, मगर सिराजु-द्दौला की फ़ौज के आते ही उनका रणोत्साह भंग हो गया। उन्होंने स्त्रियों और बच्चों को नावों द्वारा भगा दिया। इस अवसर पर ब्रिटिश अफ़सरों ने काफ़ी कायरता का परिचय दिया। मैनिंघम और फ़्रैंकलैंड नाम के दो अफ़सर स्त्रियों को जहाज़ तक पहुँचाने के लिये भेजे गए, मगर वे फिर लौटकर न आए। वे दोनो भी महिलाओं के साथ ही जान बचाकर भाग खड़े हुए!

दो दिन की लड़ाई के बाद क़िला नवाब के हाथ आया, और बचे-खुचे अँगरेज़ सैनिक गिरफ़्तार कर लिए गए। जिस स्थान से सिराजुद्दौला ने क़िले में विजय-प्रवेश किया था, उसे निर्दिष्ट करने के लिये ई० आई० रेलवे के दफ़्तर में एक पत्थर लगा हुआ है। कहते हैं, नवाब के आदमियों ने १४६ अँगरेज़ क़ैदियों को रात-भर के लिये, एक छोटी कोठरी में, जिसमें सिर्फ़ एक ही दरवाज़ा था, बंद कर दिया था। सबेरे कोठरी खोलने पर केवल २३ व्यक्ति जीवित निकले, बाक़ी १२३ रात में दम घुटकर मर गए। यह घटना इतिहास में 'कलकत्ते की काल-कोठरी' के नाम से प्रसिद्ध की गई है। कई भारतीय इतिहास-कारों ने यह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है कि यह घटना एक सफ़ेद झूठ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कलकत्ता-पतन के कई मास बाद हालवेल नाम के एक झूठे व्यक्ति ने अँगरेज़ों की कायरता और दुष्कर्मों को छिपाने तथा विलायतवालों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये इस भयंकर झूठ को गढ़ा था *।

* श्रीअक्षयकुमार मैत्र का 'सिराजुद्दौला', पृष्ठ २०४

दो-एक अँगरेज़ इतिहासकारों ने दबी ज़बान से इस घटना के असत्य को स्वीकार भी किया है, परंतु अधिकांश अँगरेज़ी इतिहासकारों ने इस झूठ का प्रचार करके ही संतोष नहीं किया, बल्कि उसमें अपनी ओर से और भी नमक-मिर्च लगाकर उसे और अधिक बीभत्स रूप देने की नीचता की है। लॉर्ड कर्ज़न ने डलहौसी स्कायर के चौराहे पर इस काल-कोठरी का स्मारक बनाकर इस झूठ को सत्य सिद्ध करने की चेष्टा की है। अस्तु।



कलकत्ते की काल्पनिक काल-कोठरी का स्मारक

इतिहास के विद्यार्थियों को भली भाँति मालूम है कि इसके बाद क्लाइव और वाटसन ने किस प्रकार मीर ज़ाफ़र के साथ षड्यंत्र रचकर पलासी की लड़ाई जीती, और २४ परगने में ५५ ग्रामों की ज़मींदारी प्राप्त की। इतना ही नहीं, उन्होंने मीर ज़ाफ़र से हर्जाने के नाम से १,१६,००,०००) रुपए भी वसूल किए। अँगरेज़-जाति ने अपने अस्तित्व में उससे पहले कभी एकमुश्त इतनी बड़ी रक़म नहीं पाई थी। इतिहास के सभी विद्यार्थी जानते हैं कि अँगरेज़ों ने थोड़े ही दिन बाद किस प्रकार मीर ज़ाफ़र के ख़िलाफ़ षड्यंत्र रचकर मीर क़ासिम को नवाब बनाया, और फिर उसे भी कैसे हटाकर दीवानी प्राप्त की।

कलकत्ते की वृद्धि पलासी के युद्ध के बाद से आरंभ होती है। क्लाइव ने गोविंदपुर के ग्राम को उजाड़कर उसके स्थान पर एक नया क़िला बनवाया, जो वर्तमान 'फ़ोर्ट विलियम' है। क्लाइव के बाद वारन हेस्टिंग्स बंगाल का शासक हुआ। उसी के समय में, सन् १७७४ में, कलकत्ता ब्रिटिश भारत की राजधानी बनाया गया, और सन् १९११ तक—१३७ वर्ष तक—वह ब्रिटिश-राजधानी रहा।

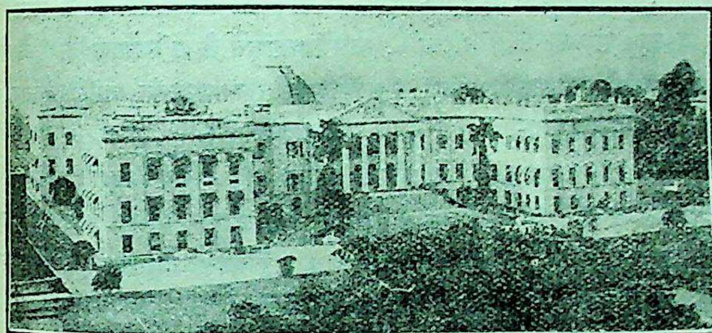
उस समय के अँगरेज़ अधिकारियों का जीवन बहुत ही असंयम-पूर्ण था। वे लोग शराबी, जुआरी, घूसख़ोर और दुराचारी होते थे। एक तो अपना देश छोड़कर सुदूर भारतवर्ष को, जान पर खेलकर, आनेवाले व्यक्ति समाज की उच्च श्रेणी के व्यक्ति नहीं होते थे। फिर भारत आकर उचित और अनुचित उपायों के सहारे वे शीघ्र ही धनी बन जाते थे, और अलल्ले-तलल्ले में जीवन बिताने लगते थे। शराब और दुराचार के कारण उनमें आपस में लड़ाई-झगड़ा होना भी अनिवार्य था। अलीपुर के एक निर्जन वृक्ष के नीचे सैकड़ों द्वंद्व-युद्ध (Duels) लड़े गए होंगे, और न-मालूम कितने अभागों ने अपने प्राण दिए होंगे। जिस पेड़ के नीचे ये लड़ाइयाँ होती थीं, वह 'नाशक वृक्ष' (Tree of Destruction) के नाम से प्रसिद्ध था। यह स्थान आज भी 'ड्यूएल ऐविन्यू' (Duel Avenue) के नाम से प्रसिद्ध है। यहीं वारन हेस्टिंग्स और उसके प्रतिद्वंद्वी फ़िलिप फ़्रैंसिस में द्वंद्व हुआ था।

इन कर्मचारियों का जुआ रोकने के लिये कंपनी ने एक क़ानून बनाया था, जिसके अनुसार एक दिन में दश पौंड से अधिक हारना जुर्म था। परंतु वह क़ानून शायद तोड़े जाने के लिये ही बना था, उसका कभी यथोचित व्यवहार नहीं हुआ। यार लोग एक

एक दिन में तीन-तीन लाख रुपयों की हार-जीत कर डालते थे *!

शराब की यह दशा थी कि प्रत्येक मेम के लिये एक बोतल प्रतिदिन और प्रत्येक जेंटिलमैन के लिये चार बोतल प्रतिदिन वाजिबी बात थी! चार व्यक्तियों के एक अँगरेज़-परिवार के लिये १२५ नौकरों की संख्या उचित समझी जाती थी।

इन अँगरेज़ों ने अपने रहने के लिये अनेकों अच्छी-अच्छी कोठियाँ और बग़ीचे बनवाकर कलकत्ते की शोभा बढ़ाई। भारत में ब्रिटिश राज की बढ़ती के साथ-साथ कलकत्ते की भी श्री-वृद्धि होती गई। नगर की उन्नति के लिये अधिकारियों ने एक नई तरकीब निकाली। उन्होंने 'लाटरी-कमेटी' बनाकर 'लाटरी'



कलकत्ते का गवर्नमेंट-हाउस

छोड़ना प्रारंभ किया। इस 'लाटरी' के रुपयों में से कुछ प्रति सैकड़ा 'नाल' के रूप में काट लिया जाता था, और इसी 'नाल' के धन से कलकत्ते की रौनक़ बढ़ाई जाती थी! टाउनहाल, कॉलेज स्क्वायर, कार्नवालिस स्क्वायर आदि पार्क तथा अनेकों सड़कें इसी जुए के पैसे से बनी हैं।

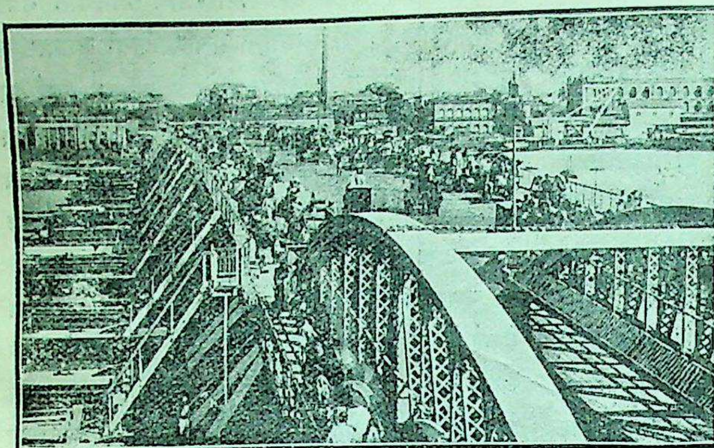
कलकत्ते की आबादी ११ लाख के लगभग है। नगर का क्षेत्रफल उपकूलों (Suburbs) सहित ४२ वर्गमील है। यहाँ का व्यापार-आयात-निर्यात बंबई तथा मद्रास, दोनो स्थानों के सम्मिलित व्यापार से अधिक है। समुद्र के समीप होने के कारण यहाँ का जल-वायु सम-शीतोष्ण है। युक्तप्रांत की अपेक्षा गर्मी-सर्दी दोनो ही कम पड़ती हैं। जाड़े का मौसम बहुत सुहावना होता है। बरसात में वर्षा का औसत ६६-०४ इंच है।

कलकत्ता सार्वभौमिक नगर है। यहाँ संसार के सभी देशों के अधिवासी रहते हैं, और पचासों भाषाएँ बोली जाती हैं, परंतु मुख्य भाषाएँ बँगला और हिंदी हैं। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि आजकल भी कलकत्ता भारतवर्ष में सबसे बड़ा हिंदी-भाषा-भाषी नगर है। पिछले सौ वर्षों से कलकत्ता केवल भारत की राजधानी और व्यापार का केंद्र ही नहीं, बल्कि वह देश का सांस्कृतिक और बौद्धिक केंद्र भी रहा। नवीन हिंदी-गद्य का जन्म कलकत्ते में ही हुआ था। लल्लूलालजी और सदल मिश्र ने यहीं अपनी पुस्तकें लिखी थीं, और हिंदी का सर्वप्रथम समाचार-पत्र 'उदन्त मार्तंड' भी कलकत्ते ही में उदय हुआ था। आज दिन भी हिंदी के दैनिक पत्रों का सबसे बड़ा केंद्र भी कलकत्ता ही है।

व्यापार का केंद्र होने के कारण कलकत्ता रेलों का भी केंद्र है। यहाँ ईस्ट-इंडियन-रेलवे, बंगाल-नागपुर-रेलवे और ईस्टर्न-बंगाल रेलवे के हेड क्वार्टर हैं। ईस्ट-इंडियन और बंगाल-नागपूर-रेलों के स्टेशन गंगा के दूसरे तट पर हावड़ा-नामक उपकूल में हैं। हावड़ा और कलकत्ते के बीच में गंगाजी पर एक पीपों का पुल (Pontoon Bridge) है। इस पुल की गणना संसार के बहुत जन-पूर्ण स्थानों में है। औसत में ढाई लाख आदमी प्रतिदिन इस पुल पर से गुज़रते हैं। पुल इस प्रकार का बना है कि उसके बीच का भाग

* This blessed day I have won twenty-thousand Pounds—Philip Francis' Letter, अर्थात्, आज शुभ दिन में मैंने तीन लाख रुपए जीते।

—फ़िलिप फ्रांसिस का पत्र



हावड़े का पुल

[इस पुल पर से २४ घंटे में ढाई लाख आदमी गुज़रते हैं ।]

खुलकर अलग हो जाता है, जिससे जहाज़ इस ओर से उस ओर आ-जा सकें। गंगा-तट पर मीलों तक घाट और जेटी बनी हुई हैं, जिन पर जहाज़ों से माल चढ़ता-उतरता है।

डलहौसी स्क्वायर और धर्मतल्ले को कलकत्ते का केंद्र कहना चाहिए। शहर के प्रत्येक भाग से ट्राम और बसें आकर यहीं मिलती हैं। डलहौसी स्क्वायर और उसके चारो ओर बंगाल सरकार के दफ़्तर, जनरल पोस्ट-ऑफ़िस, सेंट्रल टेलीग्राफ़-ऑफ़िस, करेंसी, बैंकों, रेलों तथा योरपियन व्यापारियों के दफ़्तर हैं। डलहौसी स्क्वायर एक पार्क है, जिसके बीच में एक तालाब है। कंपनी के समय में यह 'लालबाग़' या 'लालदीघि' के नाम से प्रसिद्ध था। शहर में 'वाटरवर्क्स' होने के पहले सब लोग इसी तालाब का पानी पीते थे। इस डलहौसी स्क्वायर का अँगरेज़ों के इतिहास से बहुत घनिष्ठ संबंध रहा है। इसके पश्चिम-पार्श्व में पुराना फ़ोर्ट विलियम स्थित था। पश्चिम-उत्तर के कोने पर कलकत्ते की काल्पनिक 'कालकोठरी' का स्थान बताया जाता है। उत्तरी पार्श्व में राइटर्स बिल्डिंग है, जिसमें बंगाल-सरकार की सेक्रेटरियट के दफ़्तर स्थित हैं। कंपनी के समय में इस इमारत में कंपनी के लेखक (Writers) रहा करते थे, इसी से यह राइटर्स बिल्डिंग कहलाती है। इस इमारत के पूर्व की ओर वह अदालत थी, जहाँ महाराज नंदकुमार को फाँसी का हुक्म दिया गया था। स्क्वायर के बिल्कुल पास 'मिशन रो' में वारेन हेस्टिंग्स की कौंसिल के सदस्य मांसन और क्लैवरिंग रहा करते थे। दक्षिण की ओर हेस्टिंग्स स्ट्रीट में वारेन हेस्टिंग्स रहा करता था। इसी हेस्टिंग्स स्ट्रीट की मोड़ पर सेंट जान का गिरजा है, जिसमें कलकत्ते के संस्थापक जाब चार्नक, क्लाइव के साथी एडमिरल वाटसन, लॉर्ड कैनिंग की पत्नी आदि की समाधियाँ हैं।

डलहौसी स्क्वायर के दक्षिण तथा धर्मतल्ला के चौराहे के पश्चिम की ओर गवर्नमेंट हाउस है। इस गवर्नमेंट हाउस की इमारत विलायत के 'कैडलेस्टन हाल' के ढंग की बनी हुई है, जिसे सन् १८०२ में लॉर्ड वेल्ज़ली ने बनवाया था। इसमें पहले भारत के गवर्नर जनरल रहा करते थे, परंतु अब बंगाल के छोटे लाट रहते हैं। सन् १८०२ से सन् १९१२—११० वर्ष तक, भारतवर्ष का शासन इसी गवर्नमेंट हाउस के भीतर से होता रहा। इसी के भीतर से बर्मा, सिख और अफ़ग़ानों की लड़ाइयाँ लड़ी गईं, यहीं से पेशवा और भोंसलों के राज्य छीने गए, अवध हथियाया गया, झाँसी पर क़ब्ज़ा किया गया, सती-प्रथा बंद की गई, ग़दर की ख़ून-ख़राबियों का हिसाब-किताब हुआ, कंपनी की इतिश्री हुई, और न-मालूम कितनी अन्य बातें हुईं।

गवर्नमेंट हाउस की इमारत बड़ी शानदार इमारत है। उसके दक्षिण की ओर दो मील लंबा मैदान है। इमारत के कमरे इस ढंग के बने हैं कि चाहे जिस

दिशा की हवा हो, प्रत्येक कमरे में ज़रूर आवेगी। गवर्नमेंट हाउस का एक कमरा थ्रोन रूम (सिंहासन घर) कहलाता है, क्योंकि इसमें टीपू सुल्तान का सिंहासन रक्खा है। यह सिंहासन अब केवल लाल गद्दे की एक छोटी चौकीनुमा कुर्सी-सी है। पहले यह कुर्सी एक सुनहरे सिंह पर स्थित थी, जिस पर चढ़ने के लिये चाँदी की सीढ़ी थी। चँदोवे में मोतियों की झालर थी, और उसके ऊपर एक मणि-जटित मयूर बना था। केवल बैठने की कुर्सी ही यहाँ रख ली गई, बाक़ी लाखों के मणि-माणिक विलायत में रानी चारलोट को भेंट कर दिए गए थे।

गवर्नमेंट हाउस के पश्चिम की ओर, नदी के समीप, हाईकोर्ट की इमारत है। बेल्जियम के प्रसिद्ध नगर येप्रे (Ypres) के टाउन हाल के नमूने पर हाई-कोर्ट की इमारत बनी है। येप्रे का नगर और टाउन-हाल गत जर्मन महायुद्ध में नष्ट हो गए। हाईकोर्ट का एक शिखर १८० फ़िट ऊँचा है।

गवर्नमेंट हाउस से दो मिनट की दूरी पर पूरब की ओर चौरंगी की सड़क है। यह सड़क संसार में अपने ढंग की अनूठी सड़क है। चमचमाती हुई चौड़ी सड़क के एक ओर ऊँची अट्टालिकाएँ, बड़े-बड़े होटल, जगमगाती दूकानें और 'शो-रूम' हैं, और दूसरी ओर पौने दो मील लंबा, हरी मख़मली दूब से आच्छादित मैदान है। वैसे तो लंदन की 'पिकेडली', पेरिस की 'शाँ ज़ेलिज़े' (Champs Elysee) और न्यूयार्क की 'ब्राडवे' संसार की बहुत प्रसिद्ध सड़कों में से हैं। मगर इस हरे मख़मली मैदान ने चौरंगी को ऐसी श्री प्रदान की है, जो अन्य किसी भी सड़क को नसीब नहीं। यह मीलों लंबा-चौड़ा विस्तृत मैदान क़िले के फ़ौजी अधिकारियों के नियंत्रण में है। नवीन फ़ोर्ट विलियम बनाकर अँगरेज़ों ने उसके समीप के ग्राम को उजाड़ डाला, और जंगल को काटकर इस मैदान की शक्ल में परिणत कर दिया, जिससे क़िले के सामने कोई ऐसी वस्तु न रह जाय, जिसकी आड़ में दुश्मन क़िले के समीप तक जा पहुँचे। यह मैदान ही आजकल कलकत्ते की जान है। दिन-भर काम-काज की मेहनत के बाद संध्या-समय सहस्रों मनुष्य इस मैदान की स्वच्छ वायु में साँस लेकर अपनी थकावट दूर करके तरोताज़ा होते हैं। मैदान में बारहो महीने हाकी, फ़ुटबाल, क्रिकेट, टेनिस, गाल्फ़ आदि खेल हुआ करते हैं।

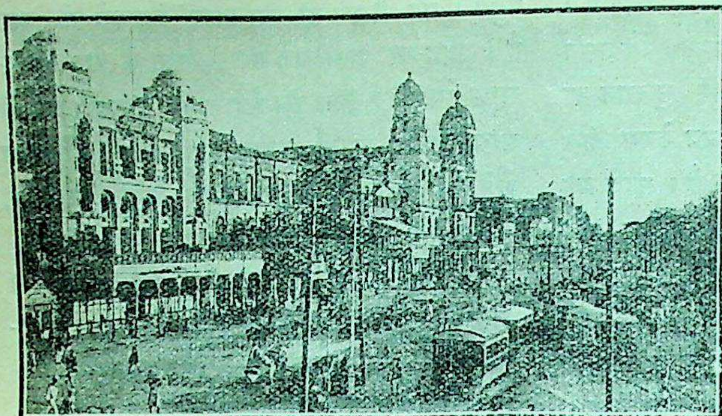
हमारे अँगरेज़ शासकों को अपनी मूर्तियाँ बनवाने का बहुत शौक़ है। इसके लिये उन्होंने एक चतुरता-पूर्ण नीति से काम लिया। फ़ारसी का एक कथन है—

'मन तुरा हाजी बिगोयम तू मरा हाजी बिगो।'

'अर्थात् मैं तुम्हें हाजी कहूँ, और तुम मुझे हाजी कहो।' अँगरेज़ शासकों ने भी यही पालिसी इख़्तियार की। प्रत्येक शासक अपने से पूर्ववर्ती शासक के गुणानुवाद गाकर, अपने प्रभाव के सहारे चंदा वसूल करके अपने पूर्वाधिकारी की मूर्ति स्थापित करता रहा। उसे इस बात का निश्चय रहता था कि उसके उत्तरा-धिकारी उसके लिये भी वैसा ही करेंगे। इस सबका नतीजा यह है कि कलकत्ते का मैदान पचासों योग्य-अयोग्य, सफल-विफल और भले-बुरे शासकों की मूर्तियों से पटा पड़ा है। साधारण जनता की इन मूर्तियों में कितनी श्रद्धा है, इसका अनुमान शायद ऐंग्लो-इंडियन पत्रवाले भी न कर सकेंगे; हाँ, इन मूर्तियों का केवल इतना ही व्यावहारिक उपयोग होता है कि वे चील, कौवों और गिद्धों को बैठने के लिये अड्डे का काम देती हैं।

धर्मतल्ला और चौरंगी के चौराहे पर एक बड़ी भारी सुनहरे गुंबदवाली मस्जिद है। इस मस्जिद को टीपू सुल्तान के बेटों ने बनवाया था, इसीलिये यह टीपू-सुल्तान की मस्जिद कहलाती है।

कलकत्ते में सबसे प्राचीन स्थान कालीजी का क्षेत्र है। कालीजी का वर्तमान मंदिर कुछ अधिक पुराना नहीं है, परंतु यह स्थान अति प्राचीन है, इसमें कुछ संदेह नहीं है। कलकत्ते की काली का बड़ा माहात्म्य है। इसकी गणना सिद्धपीठों में है। कहते हैं, जब भगवती सती की मृत्यु के बाद भगवान् भूतनाथ उनके



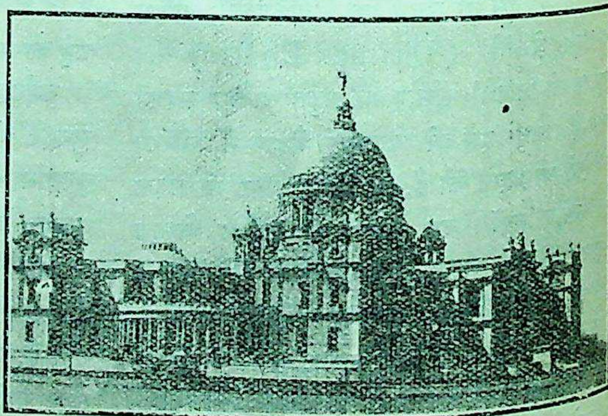
चौरंगी और धर्मतल्ले का चौराहा

शोक में व्याकुल होकर उनके शव को कंधे पर धरे, पागलों की भाँति, पृथ्वी पर घूमते थे, उस समय भगवती सती के पैर की छिगुली कटकर इस स्थान पर गिरी थी, इसलिये यह इतना पवित्र माना जाता है। प्रतिदिन सहस्रों तीर्थ-यात्री यहाँ दर्शन को आया करते हैं। कालीजी की मूर्ति किस चीज़ की बनी है, इस बात का पता लोगों को बहुत कम होगा। मूर्ति में धड़ और दोनो हाथों के स्थान में केवल लोहे की शलाकाएँ-मात्र हैं। इन्हीं शलाकाओं पर कपड़े की तहें लपेटकर पूरा कलेवर बनाया गया है।

भवानीपुर में, कालीघाट के समीप ही, बंगाल के सुप्रसिद्ध नेता स्वर्गीय देश बंधुदास का मकान है। आजकल यह मकान दास महोदय की स्मृति में 'चित्तरंजन सेवा-सदन'-नामक अस्पताल के रूप में परिणत कर दिया गया है।

चौरंगी रोड के दक्षिणी सिरे के समीप विक्टोरिया मेमोरियल हाल की भव्य इमारत है। इस इमारत पर अँगरेज़ों को बड़ा नाज़ है। वे इसे दूसरा ताजमहल कहते हैं। इसमें संदेह नहीं कि अँगरेज़ों ने भारत में जितनी इमारतें बनवाई हैं, यह उन सबमें श्रेष्ठ है। परंतु इसमें और आगरे के ताज में कुछ ऐसी ही समता है, जैसी राजा भोज और किसी तेली में थी! विक्टोरिया मेमोरियल की शानदार इमारत सफ़ेद संगमरमर की बनी हुई है। इस इमारत को बनाने का विचार भारत के वायसराय लॉर्ड कर्ज़न के मन में उत्पन्न हुआ था। उन्होंने महारानी विक्टोरिया के स्मारक-स्वरूप एक ऐसी इमारत बनाने का मंसूबा किया, जिसमें भारत में ब्रिटिश-शासन की स्मारक वस्तुएँ संगृहीत हो सकें। सन् १९०६ में इस इमारत की नींव सम्राट् पंचम जार्ज ने—जो उस समय प्रिंस ऑफ़् वेल्स थे—रक्खी थी, और सन् १९२१ में, इमारत के तैयार हो चुकने पर, वर्तमान प्रिंस ऑफ़् वेल्स ने उसका उद्घाटन किया था।

इमारत के चारो ओर बड़ा भारी बाग़ है, जिससे उसकी शोभा और भी बढ़ जाती है। सम्मुख और पृष्ठ भाग में स्वच्छ जल के चार ख़ूबसूरत तालाब हैं, जिनमें मुख्य इमारत का प्रतिबिंब प्रतिक्षण झलका करता है। अहाते के मुख्य द्वार पर ब्रिटिश-राज्य के



विक्टोरिया-मेमोरियल-हाल या ब्रिटिश राज का ताजमहल

चिह्न-स्वरूप दो बड़े संगमरमर के सिंह बने हैं। फाटक के बाहर लॉर्ड कर्ज़न की एक काँसे की मूर्ति है। फाटक के भीतर, सामने के दोनो तालाबों के बीच में एक सड़क इमारत की सीढ़ियों तक जाती है। इस सड़क के बीचोबीच महारानी विक्टोरिया की एक बड़ी मूर्ति है। इमारत बहुत ऊँची कुर्सी पर बनी हुई है। उसके मध्य भाग के ऊपर एक बृहत्काय गुंबद है। इस गुंबद के शिखर पर विजय (Victory) की मूर्ति बनी है।

यहाँ ब्रिटिश-राजत्व-काल की अनेकों वस्तुएँ एकत्रित हैं। इनमें प्रधानता चित्रों की है। पुराने कलकत्ते के चित्र, रंगापट्टम की लड़ाई के चित्र, समस्त प्रसिद्ध ब्रिटिश शासकों के चित्र, महारानी विक्टोरिया की मेज़-कुर्सी, महारानी एलेक्ज़ेंड्रा की राजगद्दी के समय की पोशाक, सम्राट् पंचम जार्ज के दिल्ली-दरबार के स्मारक, ब्रिटिश सिक्कों और तमग़ों के नमूने, ब्रिटिश और देशी नरेशों के सुलहनामे, महाराज नंदकुमार के मुक़द्दमे का फ़ैसला आदि वस्तुएँ यहाँ संगृहीत हैं। यहाँ महारानी विक्टोरिया के सैकड़ों चित्र रक्खे हैं। बीच के हाल में उनकी एक बड़ी भारी संगमरमर की मूर्ति है, और चारो ओर के खंभों पर उनका घोषणा-पत्र, स्वर्णाक्षरों में, अंकित है। इसके अलावा यहाँ और भी

सैकड़ों मूर्तियाँ आदि सुरक्षित हैं। ब्रिटिश-राजत्व-काल के अतिरिक्त प्राचीन मुग़ल-काल की कुछ सुंदर हस्त-लिखित पुस्तकें तथा रेशम पर बुनी हुई कुछ तिब्बती पुस्तकें भी यहाँ हैं।

कलकत्ते के अन्यान्य दर्शनीय स्थानों में चिड़िया-ख़ाना, बोटैनिकल गार्डन, इडन गार्डन, अजायब-घर, राजा राजेंद्रमल्लिक का मार्बेल पैलेस, जैन-मंदिर, घुड़दौड़ का मैदान, टकसाल-घर, अक्टरलोनी मानूमेंट आदि हैं।

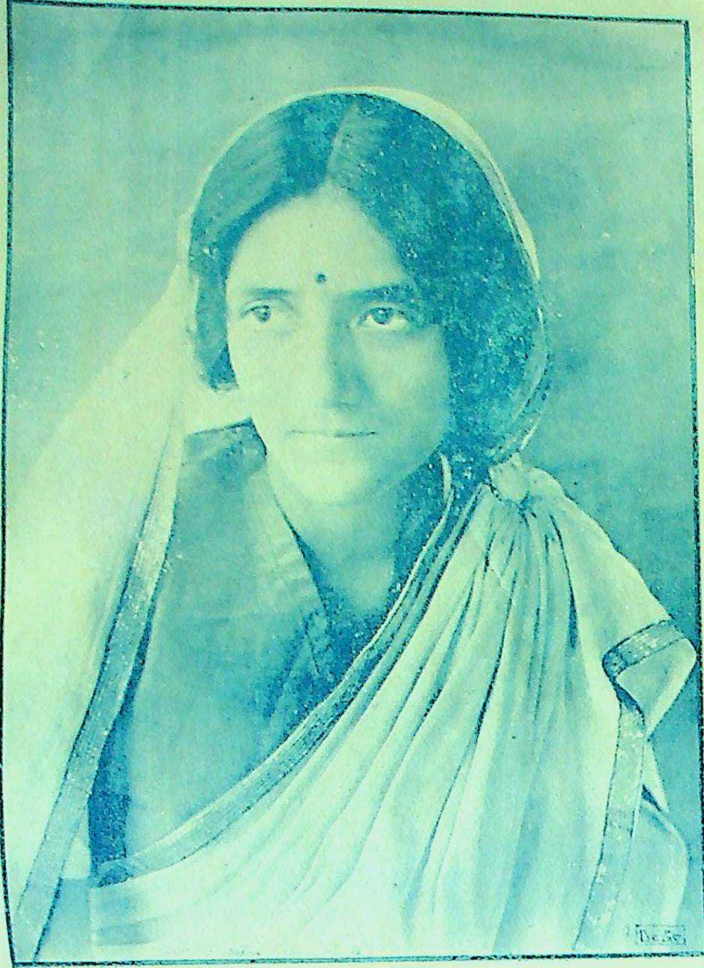
बोटैनिकल गार्डन में एक बहुत बड़ा और पुराना बरगद का पेड़ है। यहाँ के अजायब-घर में प्राचीन मूर्तियों और मुग़ल-चित्रों का अच्छा संग्रह है। राजा राजेंद्रमल्लिक के मार्बेल पैलेस में योरपियन चित्रों और मूर्तियों का क़ीमती संग्रह है। कलकत्ते का घुड़दौड़ का मैदान संसार के बहुत बड़े 'रेसकोर्सों' में है। यहाँ की टकसाल दुनिया की सबसे बड़ी टकसालों में है। उसमें प्रतिदिन छः लाख रुपए बन सकते हैं। कॉलेज स्क्वायर के बौद्ध-विहार में भगवान् बुद्ध का एक अस्थि-खंड सुरक्षित है।

सन् १९१२ में भारत की राजधानी कलकत्ते से उठकर दिल्ली चली गई, परंतु इससे कलकत्ते के वैभव और महानता में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ा।

बुद्धिमानी की बात

यह नहीं है कि अब तक आप जिस पत्रिका में विज्ञापन छपाते आए हों, केवल उसी में अब भी पुरानी लकीर पकड़े हुए विज्ञापन बराबर छपाते चले जायँ। सुधा में जिसने विज्ञापन छपाया, उसको बहुत लाभ हुआ। अतएव **सुधा** के अगले अंक में विज्ञापन छपाकर आप भी अपूर्व लाभ उठाने से न चूकिए।

मैनेजर सुधा, लखनऊ



कुमारी मनमोहनी जुत्शी एम्० ए०

[आप जनककुमारी की छोटी बहन हैं। जेल-यात्रा कर चुकी हैं। पंजाब की युवक-युवतियों की सभाओं में बहुत भाग लेती हैं। स्टुडेंट्स-यूनियन की [illegible] रही हैं।]

कुमारी जनककुमारी जुत्शी एम्० ए०

[आप लाहौर की विख्यात राष्ट्रसेविका जुत्शी-बहनों में सबसे बड़ी हैं। आपने १५०) रु० मासिक की सरकारी नौकरी राष्ट्रीय आंदोलन में छोड़ दी थी। जेल-यात्रा भी कर चुकी हैं।]



कुमारी स्वदेशकुमारी

[आप पंजाब के प्रख्यात देश-भक्त ला० पिंडीदासजी की सुपुत्री हैं। आप राष्ट्रीय आंदोलन में बहुत भाग लेती हैं। दो बार जेल-यात्रा भी कर चुकी हैं। आप आजकल पंजाब की युवतियों में शिरोमणि समझी जाती हैं।]

Ganga Fine Art Press, Lucknow.

आप भी लखपती बन जाइए

सुगंधित तैलों के नुस्खे (ले०, वैद्यभूषण श्रीमोहनलाल कोठारा) लेखक ने हज़ारों रुपए खर्च करके देश के सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तैलों के नुस्खे प्राप्त किए हैं और अपने बीस साल के अनुभव-सहित हृदय खोलकर जनता के सामने रख दिए हैं। नुस्खे तो इस पुस्तक में सैकड़ों तैलों के दिए गए हैं, जिनमें कुछ के नाम ये हैं—हिमसागर तैल, केशराज तैल, बुद्धि-वर्द्धक तैल, मनमोहिनी तैल, कलकत्ते के डॉ० नगेंद्रनाथ सेन को करोड़पती बनानेवाला केशरंजन तैल, हिमकल्याण तैल, पं० चंद्रशेखर वैद्यशास्त्री को लखपती बनानेवाला ब्राह्मीविलास तैल, मालती तैल आदि तैलों के साफ़ करने और ख़ुशबू के देने का विधान भी समझा दिया गया है। मूल्य सिर्फ़ १) रु०, डा० म० ।)

शर्बतों का रोज़गार (लेखक, बा० पीतमलालजी एम्० एस्० सी०, एल्-एल्० बी० ऐडवोकेट) में पीनेवाले बहारदार शर्बतों और सोडावाटर बनाने का विधान और अनेकों नुस्खे दिए हैं। मू० १) साबुन की विद्या—साबुन बनाने के सरल विधान और सैकड़ों नुस्खे। मू० १)

सामुद्रिक विद्या (लेखक, पं० चंद्रशेखर वैद्यशास्त्री) मुख आदि अंगों को देखकर ही चोर-साह, नेक-बद, धनी, निर्धन, बाँझ, विधवा, ज़िंदगी और मौत की बात आप बता सकते हैं। लिथो के लगभग ५० चित्र, २५० पृष्ठ। मूल्य सिर्फ़ १॥), डा० म० =)

साइनबोर्डसाज़ी— साइनबोर्ड बनाना सीखकर मामूली पढ़ा भी ३-४ रु० रोज़ पैदा कर सकता है। मूल्य १)

मँगाने का पता—मैनेजर ब्राह्मी प्रेस, अलीगढ़

५०००) की चीज़ ५) में

मेस्मिरेज़्म विद्या सीखकर धन व यश कमाइए

मेस्मिरेज़्म के साधनों द्वारा आप पृथ्वी में गड़े धन व चोरी गई चीज़ का क्षण-मात्र में पता लगा सकते हैं। इसी विद्या के द्वारा मुक़द्दमों का परिणाम जान लेना, मृत पुरुषों की आत्माओं को बुलाकर वार्तालाप करना, बिछुड़े हुए स्नेही का पता लेना, पीड़ा से रोते हुए रोगी को तत्काल भला-चंगा कर देना, केवल दृष्टि-मात्र से ही स्त्री-पुरुष आदि सब जीवों को मोहित एवं वशीकरण करके मनमाना काम कर लेना आदि आश्चर्य-प्रद शक्तियाँ आ जाती हैं। हमने स्वयं इस विद्या के ज़रिए लाखों रुपए प्राप्त किए और इसके अजीब अजीब करिश्मे दिखाकर बड़ी-बड़ी सभाओं को चकित कर दिया। हमारी मेस्मिरेज़्म विद्या-नामक पुस्तक मँगाकर आप भी घर बैठे इस अद्भुत विद्या को सीखकर धन व यश कमाइए। मूल्य सिर्फ़ ५) डाक-महसूल-सहित, तीन का मूल्य मय डाक-महसूल १३)

हज़ारों प्रशंसा-पत्रों में एक

(१) बाबू सीताराम बी० ए०, बड़ा बाज़ार, कलकत्ते से लिखते हैं—मैंने आपकी "मेस्मिरेज़्म विद्या" पुस्तक के ज़रिए मेस्मिरेज़्म का ख़ासा अभ्यास कर लिया है। मुझे मेरे घर में धन गड़े होने का मेरी माता द्वारा दिलाया हुआ बहुत दिनों का संदेह था। आज मैंने पवित्रता के साथ बैठकर अपने पितामह की आत्मा का आह्वान किया और गड़े धन का प्रश्न किया। उत्तर मिला 'ईंधनवाली कोठरी में दो गज़ गहरा गड़ा है।' आत्मा का विसर्जन करके मैं स्वयं खुदाई में जुट गया। ठीक दो गज़ की गहराई पर दो कलसे निकले। दोनो पर एक-एक सर्प बैठा हुआ था। एक कलसे में सोने-चाँदी के ज़ेवर तथा दूसरे में गिन्नियाँ व रुपए थे। आपकी पुस्तक 'यथा नामा तथा गुणः' सिद्ध हुई।

मैनेजर मेस्मिरेज़्म हाउस नं० १६, अलीगढ़

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

दक्षिण-आफ्रिका से प्रस्थान करते समय

[स्वामी भवानीदयाल संन्यासी]



प्रिय मित्र !

दक्षिण-आफ्रिका से कदाचित् मेरा यह अंतिम पत्र है। यदि कोई दैवी घटना न घट गई, तो अगस्त में मैं इस देश से विदा ले लूँगा। जिस समय यह पत्र पहुँचेगा, उस समय या तो मैं हिंद-महासागर में जहाज़ पर हूँगा, अथवा वात्सल्यमयी मातृभूमि की मोदमयी गोद में। आप तो जानते ही हैं कि मैंने दक्षिण-आफ्रिका में ही पहलेपहल सुनहरा सूरज और रुपहरा चाँद देखा था, यहीं की वैभवशालिनी भूमि पर बाल-सुलभ क्रीड़ाएँ की थीं, और इधर सोलह साल से यहाँ के सार्वजनिक जीवन में यथाशक्ति भाग लेता आया हूँ। यहाँ के प्रवासी भारतीयों के सेवा-यज्ञ में मैंने केवल अपनी संपत्ति की ही नहीं, किंतु अपने स्वास्थ्य की भी आहुति दे डाली है। आज उसी ममतामयी प्यारी जन्मभूमि से विदाई माँगते हुए जो असह्य वेदना हो रही है, उसे काग़ज़ पर लिखकर कैसे बताऊँ? कविवर "नवीन" की यह उक्ति आज मेरे संबंध में यथार्थ रूप से चरितार्थ हो रही है—

"यही नहीं कि हाथ काँपता, हिय भी कँपता आज ;
पूरन कैसे होगा पतिया-लेखन का यह काज ?
बड़े यतन से हिम्मत करके लिखने बैठा पत्र ;
पर ना-जानूँ कैसे यह हो गया आर्द्र सर्वत्र ?"

चित्त की वृत्तियाँ चंचल हो रही हैं, मन मचल रहा है, हृदय तड़प रहा है, अतीत की स्नेहमयी स्मृतियाँ मोह की माला गूँथने में व्यस्त हैं—पुरजन और परिजन का बिछोह करुणा की सृष्टि कर रहा है।

ख़ैर, दक्षिण-आफ्रिका छोड़ रहा हूँ—छाती को पोढ़ा करके। यद्यपि प्रवासी भारतीयों के मध्य से इस समय अलग हो रहा हूँ, किंतु इस जीवन में उनकी सेवा से विरक्त कैसे हो सकूँगा? उनकी दुःख-पूर्ण स्थिति मुझे कब चैन से बैठने देगी? उनकी आर्त वाणी जब महासागर की लहरों को चीरती हुई मेरे कानों तक पहुँचेगी, तब मेरे दिल की क्या दशा होगी? इन सब बातों को सोचकर मैं अभी से अधीर हो रहा हूँ। यह तो निश्चय है कि मैं चाहे जहाँ कहीं रहूँ, प्रवासी भाइयों को नहीं भूल सकता। मेरे मनसाराम अविचल रूप से निरंतर विशाल भारत का, चाहे वह बेसुरा ही क्यों न हो, राग अलापा करेंगे, और उसकी प्रतिध्वनि से मेरे हृदय-सितार का एक-एक तार झनझनाया करेगा। मैं इस पत्र द्वारा अपने प्रवासी भाइयों को विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी नस-नस में आपके प्रति विशुद्ध प्रेम का भाव भरा हुआ है, और यदि हृदय चीरा जा सकता, तो मैं उसे चीरकर दिखा देता कि उसमें और कुछ नहीं है—केवल विशाल भारत का मान-चित्र खिंचा हुआ है, और उस पर अमिट अक्षरों में लिखा हुआ है—"यह जीवन प्रवासी भारतीयों की सेवा में उत्सर्ग है।"

अब तक मैं दक्षिण-आफ्रिका के केवल डेढ़ लाख प्रवासी भारतीयों की सेवा में लगा रहा, किंतु अब मैं अपने कार्य-क्षेत्र की परिधि बढ़ा देना चाहता हूँ—उसमें २५ लाख प्रवासियों का समावेश करना चाहता हूँ। यह कार्य मुझसे हो सकेगा या नहीं, इसमें स्वयं मुझको ही संदेह है। क्या मैं इतना अबोध हूँ—क्या मैं यह भी नहीं जानता कि मेरे पास गांधी की आत्मा नहीं है; एंड्रूज़ का हृदय नहीं है; सरोजिनी की वाणी नहीं है; शास्त्री की नीतिज्ञता नहीं है; बनारसीदास की लगन नहीं है। सब कुछ जानता हूँ, और अच्छी तरह जानता हूँ। सच पूछिए, तो मेरे

पास है भी क्या ? मैं अपनी अयोग्यता और अल्प-ज्ञता का अनुभव न करता होऊँ, सो बात नहीं है। इधर कुछ दिनों से मेरे शरीर की शक्ति क्रमशः क्षीण होती जाती है ; वाणी का बल शनैः-शनैः घट रहा है, और लेखनी भी आगे बढ़ने से रुकने लग गई है। यह सब जानते हुए भी दिल अपना हठ छोड़ना नहीं चाहता—वह बड़ा हठी है। क्या करूँ, कैसे समझाऊँ, वह मानता ही नहीं।

"क्या कहूँ दिल की हक़ीक़त, कुछ कही जाती नहीं ;
किस तरह कैसे कहूँ, कुछ भी समझ आती नहीं।"

इस दिल में प्रवासी भाइयों के लिये दर्द है—सेवा करने की उमंग है। वह कहता है, चुपचाप बैठोगे कैसे—"जब तक जीना, तब तक सीना" यही तो मानव-जीवन की सार्थकता है। उसने "विशाल-भारत"-संपादक की वह नसीहत भी याद दिलाई—एक बार उन्होंने लिखा था—"हम सब लोग महात्मा गांधी और साधु एंड्रूज़ की तरह महान् कार्य अपने जीवन में भले ही न कर सकें, पर इससे क्या हमें अपना कर्तव्य छोड़ देना चाहिए ? सूर्य और चंद्र तो प्रकाश फैलाते ही हैं, क्या यह सोचकर जुगनू अपना प्रकाश छोड़ देता है ? प्रवासी भारतीयों के दुःखों की अंधकारमय रात्रि में आइए, हम जुगनू होकर ही चमकें। समय आवेगा, जब हमारे देश के नेता विशाल भारत के निर्माण के महत्त्व को समझेंगे, और तब वे हम लोगों की सेवाओं को निरर्थक न गिनेंगे।" इन सब अमर वाक्यों का स्मरण दिलाकर हृदय कहता है, आगे बढ़ो, किंतु—

"आगे कैसे बढ़ूँ, सूझता नहीं भयानक पथ है आज ;
पीछे हटना नहीं जानता, रख लो भगवन् ! मेरी लाज।
मर जाऊँ विशाल-भारत-हित, यही कामना लगी नवीन ;
इतना बल दे नाथ ! हृदय में, सब प्रकार से हूँ अति दीन।

यह कार्य सचमुच सहज नहीं है—अनेक कठिनाइयों से परिपूर्ण है। इस मार्ग में मख़मल के मुलायम गद्दे नहीं, काँटों के कटीले फ़र्श हैं। खिले हुए फूलों की फुलवारी नहीं, झाड़-झंखाड़ से भरा हुआ बीहड़ वन है। भादों की अमावस्या की कुहू-यामिनी में जुगनू का प्रकाश कहाँ तक मार्ग-प्रदर्शन कर सकेगा, यह बात विचारणीय है। इसके अनेक कारण हैं। पहला और मुख्य कारण तो यह है कि भारतीय जनता और नेता इस कार्य को उतना महत्त्व देना नहीं चाहते, जितना कि आवश्यक और उचित है। हाँ, अगर किसी भारतीय संस्था या सभा के लिये पैसे की ज़रूरत आ पड़े, तो ऐसे समय पर उसके सूत्रधार कदापि न चूकेंगे—भिक्षा की झोली लेकर वे प्रवासी भाइयों का दरवाज़ा अवश्य खटखटाएँगे। प्रवासी भाइयों को दम लेने की भी फ़ुर्सत नहीं मिलती। भारत से कोई-न-कोई चंदा माँगनेवाले महाशय यहाँ डेरा जमाए और धूनी रमाए बैठे ही रहते हैं। प्रवासी भाई किसी को निराश करना नहीं जानते ; जो कुछ बन पड़ता है, अवश्य देते हैं—कभी-कभी तो अपनी शक्ति से भी अधिक दे डालते हैं। वे जो कुछ दान-रूप से देते हैं, उसका बदला इस लोक में नहीं चाहते। वे बड़े भोले-भाले हैं, लेकिन उनके सीधेपन से अनुचित लाभ उठाना क्या कोई अच्छी बात है ?

हिंदुस्थान की सबसे बड़ी राजनीतिक सभा—इंडियन नेशनल कांग्रेस—को ही लीजिए। उसकी अपील पर लाखों रुपए प्रवासी भाइयों ने तिलक-स्वराज्य-फ़ंड में दिए—अन्य मदों में भी सहायता करने से कभी मुँह नहीं मोड़ा, किंतु उनकी भलाई के लिये कांग्रेस की ओर से अब तक कौन-कौन-से कार्य हुए ? उनकी खोज-ख़बर लेने की भी तो कोशिश नहीं की गई। कानपुर-कांग्रेस के अवसर पर जब साउथ आफ़्रिकन इंडियन डेपुटेशन के सदस्य वहाँ पहुँचे थे, और जिनमें इन पंक्तियों का लेखक भी एक था, तब बंधुवर बनारसीदास चतुर्वेदी के अथक उद्योग और श्रीमती सरोजिनीदेवी की शुभ प्रेरणा से कांग्रेस में एक प्रवासी-विभाग खोलने का निश्चय हुआ था, लेकिन तीन साल तक यह प्रस्ताव खटाई में ही पड़ा रहा। काग़ज़ी प्रस्ताव के सिवा न तो प्रवासी-विभाग का नियमानुकूल उद्घाटन हुआ और

न अब तक कोई महत्त्व का कार्य ही। सभी जानते हैं कि प्रतिवर्ष लाखों रुपए कांग्रेस के उत्सव में फूँक दिए जाते हैं। देश-भर से सहस्रों मनुष्यों की भीड़ जुटती है, बड़ी धूमधाम और चहल-पहल होती है, उत्साह का समुद्र-सा उमड़ आता है, परंतु फिर वही कहावत होती है कि "चार दिनों की चाँदनी पुनः अँधेरी रात।" एक-एक प्रस्ताव पर ग़ज़ब का बहस-मुबाहिसा होता है, बड़े-बड़े व्याख्यान-वागीश अपनी वाणी की पटुता और अपने दिमाग़ का चमत्कार प्रकट करते हैं। प्रस्तावों के बाल की खाल निकाल ली जाती है, किंतु कांग्रेस के अधिवेशन के पश्चात् वे प्रस्ताव कांग्रेस-कार्यालय की शोभा बढ़ाने के सिवा और क्या काम देते हैं? उन पर कहाँ तक अमल किया जाता है? प्रवासी-विभागवाले प्रस्ताव की भी यही दशा हुई, तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है?

अभी पिछली कलकत्ता-कांग्रेस के अवसर पर मैंने राष्ट्रपति पं० मोतीलालजी नेहरू और पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की सेवा में तार भेजकर निवेदन किया था कि अब भी तो कानपुर-कांग्रेस के प्रस्ताव को कार्य-रूप में परिणत किया जाय; विदेशी-विभाग की नियम-बद्ध स्थापना हो और उसके द्वारा कार्य का श्रीगणेश। हर्ष की बात है कि कलकत्ता-कांग्रेस के बाद कांग्रेस के अंतर्गत एक विदेशी-विभाग खोल दिया गया है। कोई भूलकर यह न समझ ले कि मेरे तार के प्रताप से यह कार्य सिद्ध हुआ है; किंतु असल बात है कि जब से पं० मोतीलाल नेहरू और पं० जवाहरलाल नेहरू योरप का पर्यटन करके लौटे हैं, तब से विदेशी-विभाग की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव करने लगे हैं।

यद्यपि कांग्रेस में विदेशी-विभाग खुल तो गया, किंतु उसकी व्यवस्था संतोष-जनक नहीं प्रतीत होती है। इस विभाग को यह भी पता नहीं कि इस समय भिन्न-भिन्न उपनिवेशों में प्रवासी भारतीयों के लिये कौन-कौन-सी राजनीतिक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। हाल ही में प्रयाग से प्रकाशित कांग्रेस की एक पत्रिका (बुलेटिन) मेरे देखने में आई, उसमें यह बात पढ़कर तो मैं दंग हो गया कि दक्षिण-आफ़्रिका की चार राजनीतिक संस्थाएँ कांग्रेस में सम्मिलित हैं, और उनके नाम हैं—"नेटाल इंडियन कांग्रेस", 'ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन", "केप ब्रिटिश इंडियन कौंसिल" और 'पोयंट इंडियन सोसायटी"। अगर कोई पूछ बैठे कि यह पिछली सोसायटी किस बला का नाम है, तो कांग्रेस-अधिकारियों को बग़लें झाँकने के सिवा और कोई जवाब न सूझेगा। वास्तव में पोयंट, नेटाल-प्रांत के मुख्य नगर डरबन का एक मुहल्ला है, और प्रांतिक कांग्रेस की विद्यमानता में एक छोटी-सी अज्ञात समिति भी भारतीय राष्ट्रीय महासभा से सीधा संबंध स्थापित कर सकती है; यह एक ऐसी बात है, जिस पर अफ़सोस की हँसी आती है। इधर डेढ़ वर्ष से ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की जगह ट्रांसवाल इंडियन कांग्रेस प्रवासी भारतीयों के प्रतिनिधित्व का कार्य कर रही है, किंतु भारतीय महासभा के अधिकारियों को इन सब बातों की कोई ख़बर ही नहीं है—वे वही पुरानी लीक पर गाड़ी हाँके जाते हैं।

इसके अतिरिक्त एक बात और सुनिए। यहाँ की सर्वोपरि राजनीतिक संस्था है साउथ-आफ़्रिकन इंडियन कांग्रेस। अन्य प्रांतिक कांग्रेस इसी के अधीन हैं। कई वर्षों तक श्रीमती सरोजिनीदेवी इसकी अध्यक्षा रह चुकी हैं। माननीय श्रीनिवास शास्त्री ने इसी के सहयोग से यहाँ डेढ़ साल तक कार्य किए। दक्षिण-आफ़्रिका और भारत की सरकारें इसी को यहाँ के प्रवासी भारतीयों की प्रतिनिधिक संस्था मानती हैं। यह कांग्रेस आज कई वर्षों से राजनीतिक कार्य कर रही है, लेकिन हाल ही में मुट्ठी-भर बेजवाबदार आदमियों ने जोहान्सबर्ग में बैठकर "साउथ-आफ़्रिकन-इंडियन-फ़ेडरेशन" नाम की एक मंडली बना डाली, और भारतीय महासभा को लिख दिया कि "साउथ-आफ़्रिकन इंडियन कांग्रेस पर से प्रवासी भारतीयों का विश्वास उठ गया है, और

अब भविष्य में यह फ़ेडरेशन ही उनका प्रतिनिधित्व करेगा।" इस पर भारतीय महासभा के अधिकारी चक्कर में पड़ गए; सोचने लगे, किसको ठीक मानें? अंत में मेरे एक मित्र को लिखकर पूछा गया—"हम लोग यह जानने के लिये बहुत उत्सुक और चिंतित हैं कि दक्षिण-आफ़्रिका-प्रवासी भारतीयों का सच्चा प्रतिनिधित्व कौन-सी संस्था करती है—कांग्रेस या फ़ेडरेशन?" इसके जवाब में मेरे मित्र ने महासभा के नायब मुंशी को सूचित कर दिया कि "फ़ेडरेशन दक्षिण-आफ़्रिका-प्रवासी भारतीयों के बहुमत का प्रतिनिधित्व नहीं करता, अतएव उसे स्वीकार करने की आवश्यकता आपको नहीं है।" यह है महासभा के दफ़्तर की अव्यवस्थित अवस्था की एक बानगी!

साधु एंड्रूज़ ने प्रवासी भारतीयों की जो सेवा की है, उसे कौन नहीं जानता? यह अँगरेज़ साधु मानो हिरण्यकश्यप के कुल में प्रह्लाद है, और इसके हृदय पर बुद्ध की अहिंसा और संयम का, कृष्ण के कर्म और धैर्य का और ईसा की दया और क्षमा का अद्भुत संयोग हुआ है। भारतीय महासभा में उनके लिये अनेक बार धन्यवाद-सूचक प्रस्ताव पास हो चुके हैं, और शब्दों से संपूर्ण सत्कार किया जा चुका है, लेकिन कांग्रेस के जलसों में लाखों रुपया पानी की भाँति बहानेवाले राष्ट्र-नेताओं ने क्या कभी यह भी सोचा कि एंड्रूज़ साहब, जो प्रवासी भाइयों के सेवा-कार्य में रात-दिन लगे हुए हैं, हमारी सहायता के अधिकारी भी हैं या नहीं? मैं उनके व्यक्तिगत व्यय की चर्चा नहीं करता, क्योंकि मुझे भय है कि ऐसा करने पर वह मुझे कभी क्षमा न करेंगे, किंतु मैं तो साधारण रूप से उनके उन कार्यों के संबंध में कह रहा हूँ, जो आर्थिक बल के बिना संपन्न ही नहीं हो सकता। एंड्रूज़ साहब जो दक्षिण-अमेरिका के अंतर्गत ट्रिनीडाड और डेमरारा की ओर गए थे, वह बंबई के इंपिरियन इंडियन सिटीज़न शीप एसोसिएशन की सहायता से। यह बात उन्हीं के एक पत्र से मुझे मालूम हुई है। कांग्रेस के सूत्रधार शायद यह सोचते होंगे कि यदि एंड्रूज़ साहब उनके सामने हाथ पसारें, तो वे बैठकर कुछ विचार करें, लेकिन सच्ची और अच्छी बात तो यह है कि ऐसे सेवकों के सामने स्वयं सहायता के हाथ बढ़ाने चाहिए—उनको कभी हाथ पसारने का मौक़ा ही नहीं देना चाहिए।

ऐसी स्थिति में मेरे-जैसे तुच्छ व्यक्ति को महासभा से सहायता की आशा करना व्यर्थ है—मृगतृष्णा है, लेकिन मैं यह कोशिश अवश्य करूँगा कि महासभा अपने विदेशी-विभाग का सुचारु रूप से संचालन करे। मैं जानता हूँ कि नगाड़ों की आवाज़ के सामने तूती की धीमी ध्वनि कौन सुनेगा? महाकोलाहल-पूर्ण वातावरण में कौन मेरी दुख-भरी आह की दाद देगा? लेकिन मैं उस टिटीहरी की भाँति हिम्मत तो न छोड़ूँगा, जो अपने पतले पैरों से बादल और बिजली का मुक़ाबला करने को डट गई थी। मैं भरसक कोई बात उठा नहीं रक्खूँगा—आगे प्रवासियों का भाग्य।

विशाल-भारत के प्रति उदासीन-वृत्ति और उपेक्षा-नीति धारण करने के कारण केवल भारतीय नेताओं के मत्थे सारा दोष नहीं मढ़ा जा सकता—इस मामले में प्रवासी भारतीय भी कुछ कम दोषी नहीं हैं। क्या आप कुछ सुनना चाहते हैं? अच्छा, सुनिए—

"हृदय कह रहा तेरे सम्मुख सब गाथा गा जाऊँ;
अंतस्तल में छिपी वेदना जो है उसे सुनाऊँ।
किंतु हाय! कहने से पहले ही यह दुखद कहानी;
रो देते हैं नयन और रुक जाती है यह बानी।"

दक्षिण-आफ़्रिका को ही सामने रखकर देखिए। आज लगभग पौन सदी गुज़र गई, लेकिन इस अर्से में प्रवासी भारतीयों ने अपने उद्धार के लिये कौन-कौन-से प्रयत्न किए? सत्याग्रह की बात छोड़ दीजिए। वह तो एक महापुरुष के आत्मबल का अद्भुत चमत्कार था। प्रवासी भारतीयों के उद्धार का एकमात्र उपाय है शिक्षा का प्रचार। दक्षिण-आफ़्रिका में एक-चौथाई बालकों को थोड़ी-बहुत शिक्षा मिलती है—शेष तीन-चौथाई अविद्या की गोद में पल रहे हैं। सरकार भारतीय शिक्षा की मद में जिस कंजूसी से

काम ले रही है, उसकी हम निंदात्मक समालोचना कर सकते हैं, किंतु साथ ही यह बात भी नहीं भुलाई जा सकती कि स्वयं प्रवासी भारतीयों ने अपने बच्चों को विद्या-दान देने में कहाँ तक त्याग किया है ? कितने स्कूल और कॉलेज खोले, कितनी छात्र-वृत्तियों की व्यवस्था की, और कितने होनहार विद्यार्थियों को विदेश भेजा ? इसके उत्तर में शर्म से सिर झुका लेने के सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। ईसाई मिशनवाले तो हमारे बच्चों को पढ़ाने के लिये पाठशालाएँ खोलें, हमारे रोगियों की रक्षा के लिये अस्पताल बनावें, हमारे माता-पिता-विहीन बालकों के लिये अनाथालय क़ायम करें, और हम मिट्टी की मूर्ति की भाँति हिलें न डोलें—अपनी अचलता से हिमाचल और विंध्याचल को भी मात कर डालें ! क्या यह अवस्था दुःख-पूर्ण और लज्जा-जनक नहीं है ? इसी बल-बूते पर समानाधिकार का दावा करना क्या विडंबना की बात नहीं है ? यह भी नहीं कहा जा सकता कि प्रवासियों के पास पैसे की कमी है। नेटाल में १२५ बीघे ज़मीन में एक बीघा भारतीयों का है—केवल दरबन म्युनिसिपैलिटी की सीमा के अंदर भारतीयों की १३ लाख पाउंड अर्थात् वर्तमान विनिमय के अनुसार १ करोड़ ७२ लाख २९ हज़ार रुपए मूल्य की संपत्ति है। प्रवासी भाइयों के पास बड़े-बड़े आलीशान मकान हैं, दर्शनीय बँगले हैं, और मूल्यवान् मोटर हैं। देश के कृषि और वाणिज्य में इनका एक विशेष भाग है, और उससे इनको यथेष्ट लाभ होता है। सब कुछ साधन इनके पास है, किंतु वह हृदय नहीं है, जिसमें शिक्षा-प्रेम की सलिल-धारा बहती हो, राष्ट्रीयता की उत्कट उमगें उठती हों, और विशाल-भारत के प्रति कर्तव्य की भावना जाग्रत् होती हो।

शास्त्री-कॉलेज के लिये बीस हज़ार पाउंड की अपील की गई, लेकिन बड़े-बड़े प्रयत्न करने पर बमुश्किल यह धन इकट्ठा हो पाया है। यहाँ का एक ही व्यापारी, बिना किसी कठिनाई के, इतनी रक़म दे सकता है, लेकिन शिक्षा-कार्य में दान करना उन्होंने सीखा ही नहीं है। दक्षिण-आफ़्रिका में कमाकर अनेक आदमी मालामाल हो गए हैं, परंतु स्वर्गीय काका रुस्तमजी को छोड़कर और किसी ने सार्वजनिक शिक्षा के संबंध में कोई उल्लेख-योग्य त्याग नहीं किया।

हाँ, धर्म या मज़हब के नाम पर आप जो चाहिए इनसे करा लीजिए। ख़ानगी पाठशालाएँ या मदर्से जो देशी भाषा पढ़ाने या धार्मिक शिक्षा देने के लिये इने-गिने हैं भी, उनकी अवस्था कभी संतोष-जनक नहीं देखी गई—उनके संचालक सदा सहायता की याचना करते फिरते हैं, और जनता की अकर्मण्यता पर आँसू बहाते रहते हैं, किंतु मंदिर या मसजिद की शान में कोई फ़र्क़ पड़ने नहीं पाता। पैसे हैं मुसलमान सौदागरों के पास ; दक्षिण-आफ़्रिका-भर में इनके वाणिज्य का सिक्का जम गया है। हिंदुओं में अधिकांश निर्धन हैं। किसानी या मज़दूरी करते हैं। मुसलमानों में यह एक विशेष लक्षण है कि वे मज़हबी संस्थाओं के सिवा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के प्रति अत्यल्प उदारता का परिचय देते हैं। हिंदू यद्यपि ग़रीब हैं, लेकिन उनकी धमनियों में भी तो भारतीय रक्त प्रवाहित हो रहा है। यह एक सर्वमान्य बात है कि हिंदोस्तान, संप्रदायों का एक अजायब-घर बन गया है। वहाँ जन्म के साथ ही बच्चों को सांप्रदायिकता की घुटी पिला दी जाती है। फिर चाहे वे अपने जीवन में धर्म का ककहरा भी न जान पावें, किंतु उसके नाम पर मरने-मारने और सर्वस्व निछावर करने को सर्वदा तैयार रहते हैं। मतांधता ऐसी बुरी बला है कि विवेक के द्वार पर पर्दा डाल देती और मनुष्य को पशु बना डालती है ! मैं एक ऐसे पंडित को जानता हूँ, जो रोज़ाना पाँच रतल मेवा-मिष्टान्न का भोग लगाते थे, और सार्वजनिक कार्यों से वैसे ही दूर भागते थे, जैसे मनुष्य को देखकर बनैला बिलार। पर जब वह यहाँ से जाने लगे, तो हिंदोस्तान के किसी गाँव में मंदिर बनाने के बहाने हज़ारों पाउंड वसूल करके

लेते गए। प्रवासी भाइयों ने धर्म के नाम पर उनकी थैली भर दी, लेकिन ज़रा दूसरी ओर का नज़ारा देखिए। मेविल-दरबन के आर्य-अनाथाश्रम के नवीन भवन के लिये ढाई हज़ार पाउंड की आवश्यकता है। इस आश्रम में सभी संप्रदाय और सभी वर्ग के लँगड़े-लूले, अपाहिज और वृद्ध भारतीयों को आश्रय दिया जाता है, और सभी इस संस्था की मुक्त कंठ से सराहना करते हैं, लेकिन बार-बार अपील किए जाने पर भी अब तक एक तिहाई रक़म भी नहीं इकट्ठी हो पाई। भला मनुष्य-जाति की सेवा से बढ़कर कौन-सा धर्म है। वास्तव में धर्म के नाम पर अधर्म का पोषण होता है। आजकल हमारा धर्म और कहीं नहीं, केवल मंदिरों और मसजिदों के इर्द-गिर्द चक्कर काटना तथा पंडितों और मुल्लाओं की वाणी में रमा करता है।

रहे हैं? आर्य-अनाथाश्रम और हिंदी-पाठशालावाले तो नाटक खेल-खेलकर पैसे जुटावें, और किसी तरह इन सर्वोपयोगी संस्थाओं को चलाते जायँ। उनको देने के लिये तो आपके पास पैसे नहीं हैं, मगर कादियाँ के स्कूल को देने के लिये आपकी थैली बेशक खुल जाती है। कांग्रेस का कार्य बड़ी कठिनाइयों से चल रहा है, अन्य सार्वजनिक संस्थाएँ भी धन के अभाव से डावाँडोल हो रही हैं। इनको अगर आप कुछ देते भी हैं, तो घंटों निहोरा करवाकर। हाँ, हिंदोस्तान के अमुक पत्र की सहायता करना आवश्यक है, अमुक स्कूल को मदद देना मुनासिब है, अमुक पंडित की पूजा करना पुण्य है। कैसी आत्म-विस्मृति है? घर के प्राणी तो दाने-दाने को तरसें, और बाहर के लोगों को दूध-बताशा खिलाया जाय। डेढ़ साल दक्षिण-आफ़्रिका-प्रवासी भारतीयों की सेवा कर मातृभूमि को प्रस्थान करते

> पं० बनारसीदास चतुर्वेदी (संपादक विशाल भारत)—हिंदी के वर्तमान मासिक पत्रों की उन्नति में श्रीदुलारेलालजी भार्गव का बड़ा हाथ है। उन्होंने हिंदी-पत्र-पत्रिकाओं में अपने ऊँचे स्टैंडर्ड द्वारा एक अच्छी स्पर्द्धा उत्पन्न कर दी है, और यह उसी स्पर्द्धा का परिणाम है कि हम लोगों को पहले से उत्तमतर लेख पढ़ने के लिये मिलते हैं।...'सुधा' बहुत अच्छी निकली है। आशा है, हिंदी-जनता इसे ख़ूब अपनावेगी, और शीघ्र ही इसकी ग्राहक-संख्या सहस्रों पर पहुँच जायगी।

यहाँ के हिंदू-बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने के लिये एक भी सुसंचालित पाठशाला नहीं है, पर इससे क्या? पंजाब के कादियाँ से एक लालाजी तशरीफ़ लाते हैं, और प्रवासी हिंदुओं को समझाते हैं—"कादियाँ में मुसलमानों का बड़ा ज़ोर है, वे हिंदुओं को हड़प जाने की कोशिश में हैं, ऋषि-वंश का सितारा डूबना चाहता है, अतएव हमारे अमुक हाईस्कूल की मदद करके हिंदुत्व को बचाओ।" तीर निशाने पर बैठता है, और वे सैकड़ों पाउंड यहाँ से लेकर चले जाते हैं। स्वयं प्रवासी हिंदू यह नहीं सोचते कि कादियाँ के हिंदुओं को बचाने के लिये तो वे इतना कर सकते हैं, लेकिन उनके ख़ास बच्चे जो ईसाइयों की शरण में चले जाते हैं, उनकी रक्षा के लिये वे क्या कर

समय माननीय श्रीनिवास शास्त्री को प्रेम-प्रदर्शन के रूप में एक तुच्छ थैली देने के लिये धन इकट्ठा करने में कांग्रेस-कार्यकर्ताओं को रात-दिन लोगों की चिरौरी करते फिरना पड़े, लेकिन अमृतसर के फलाने दास और ढिकाने दास लोगों की हस्त-रेखा देखकर और भविष्य बताकर बड़े मज़े में हज़ारों पौंड बटोर ले जायँ। चाहे घर में मूसरी दंड पेले, लेकिन बाहरवालों को अपनी सद्भावत अवश्य दिखलानी चाहिए। और भी सुनिएगा—

"आह वह दिल को लगी है कि सुना ही न सके;
लज्ज़ते-दर्द वह शै है कि बता ही न सके।"

ख़ैर, दिल कड़ा करके कुछ और सुनाता हूँ। हिंदोस्तान में मेरे एक सहृदय मित्र हैं, जो विशाल-भारत

की सेवा में अपना "सब कुछ" निछावर कर चुके हैं। उनकी वाणी विशाल भारत का गीत गाती है, और उनकी लेखनी विशाल भारत का नक़्शा खींचा करती है। वे निर्धन हैं, लेकिन दिल के धनी हैं। वे घर बैठकर वर्षों प्रवासी भारतीयों की सेवा करते रहे, और हज़ारों रुपए के क़र्ज़दार बन गए। ऐसी नाज़ुक हालत में भी किसी प्रवासी ने उनकी सुधि लेने की ज़रूरत नहीं समझी—सहायता करना तो दरकिनार रहा। और भी सुनिए। मेरे एक दूसरे देश-भक्त मित्र कई साल तक प्रवासी भाइयों की सेवा करते रहे, सत्याग्रह-संग्राम में उन्होंने जैसा शौर्य और साहस दिखाया था, वह इतिहास की अमर घटना है। उन्होंने यहाँ से भारत पहुँचकर असहयोग के युग में अपना सर्वस्व तिलक-स्वराज्य-फ़ंड में दे डाला, और वे सूरत के "नवयुग" के संपादक की हैसियत से भारतीय स्वाधीनता की वकालत के अपराध में दो साल की क़ैद भी काट आए। पारिआर साल जब वह स्वदेश से वहाँ लौटे, दक्षिण-आफ़्रिका की स्वेच्छाचारी सरकार ने वर्जित प्रवासी कहकर उन पर मामला चलाया। यह मुक़द्दमा यहाँ की सर्वोच्च अदालत तक पहुँचा। यद्यपि इस वीर भाई की अंत में विजय हुई, किंतु ऐसे देश-भक्त पुरुष की, ऐसी कठिन परिस्थिति में, सहायता करने के लिये बहुत कम लोग आगे बढ़े। हाँ, उन पर साउथ-आफ़्रिकन इंडियन कांग्रेस के मंत्रित्व का भार अवश्य लाद दिया गया। वह बेचारे स्वदेश में बाल-बच्चे छोड़ आए हैं, उनके निर्वाह के लिये कुछ कमाना ज़रूरी था, किंतु उन्होंने मंत्रित्व के फेर में पड़कर प्रवासी भाइयों की सेवा के भाव से साल-भर यों ही बिता दिया। यह बात कितनी करुणा-जनक है? दूसरा पहलू देखिए। एक अमुकनामा सांप्रदायिक महोपदेशक आ धमके, और लगे संकीर्णता की बाँसुरी से बेसुरा राग अलापने, और मतांधता का तांडव-नृत्य करने। हिंदुओं में परस्पर मनोमालिन्य की ज्वाला फूट पड़ी। भयानक दृश्य था, जिसको देखकर मेरा हृदय तो दग्ध हो उठा, और मुख से सहसा निकल पड़ा—

"दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग़ से ;
इस घर में आग लग गई घर के चिराग़ से।"

लेकिन मेरे दुखी दिल की दाद कौन देता है? धर्म-प्राण हिंदुओं की भक्ति उमड़ पड़ी—पंडितजी के पैर पखारने और पूजा-अर्चा करने के लिये भक्तों की भीड़ जुट गई। उनके इशारे पर लक्ष्मी नाचने लगी, और उनकी यशोदुंदुभी से सभी दिशाएँ गूँज उठीं। किसी भुक्त-भोगी ने ठीक ही कहा है—"जोत मुवे बैलवा, बैठा खाय तुरंग" जहाँ किसी ने आकर सांप्रदायिक संकीर्णता की शहनाई फूँकी कि बस वह अमुक वर्ग के प्रवासी भारतीयों का पूज्य और श्रद्धा-भाजन बन बैठा। पंडितों और मौलवियों को धन देकर स्वर्ग का सार्टिफ़िकेट लेने में प्रवासी भारतीय अपना परम सौभाग्य समझते हैं, किंतु सच्चे सेवकों को कोई टके सेर भी नहीं पूछता। क्या ये बातें प्रवासी भारतीयों के भविष्य के लिये आशा-प्रद कही जा सकती हैं?

आज मैं अपनी भी एक-आध बात कह डालूँगा, चाहे कोई भला माने या बुरा? सब बातें सिलसिलेवार कहना तो कठिन हैं। यहाँ केवल इतना ही कहना काफ़ी है कि मैंने अपने सोलह साल के सार्वजनिक जीवन में प्रवासी भारतीयों से अपने व्यक्तिगत व्यय के लिये कभी याचना नहीं की, यद्यपि उसकी पूर्ति के लिये पैतृक संपत्ति भी स्वाहा कर डाली। इधर दो वर्ष से मैं संन्यासी के रूप में काम कर रहा हूँ, फिर भी अपना ही अन्न खाकर और अपना ही वस्त्र पहनकर। मेरे कामों की प्रशंसा करनेवालों की कमी नहीं है, लेकिन यह पूछने की किसी ने तकलीफ़ गँवारा नहीं की कि आप कुछ खाते-पीते भी हैं, या हवा खाकर जीते हैं? इसकी मुझे कोई शिकायत भी नहीं है; मेरे पास कुछ ज़मीन थी, उसे बेचकर निर्वाह कर लिया। अब भारत-यात्रा की तैयारी है, वहाँ पहुँचकर मैं प्रवासियों के लिये प्रचार-कार्य करना चाहता हूँ। ख़ासकर उन भाइयों के संबंध में कुछ उद्योग करने का विचार है, जो यहाँ से राह-ख़र्च और इनाम के लालच से भारत जा रहे हैं। मैं

उनकी दशा की स्वतंत्र जाँचकर रिपोर्ट प्रकाशित करना चाहता हूँ, और अपने "प्रवासी-भवन" द्वारा प्रवासी भारतीयों की कुछ सेवा करने का इरादा रखता हूँ। इन सब कामों के लिये मुझे इस समय धन की ज़रूरत आ पड़ी है—आवश्यकता से अधिक मुझे चाहिए भी नहीं। मैंने अपने ख़ास-ख़ास मित्रों से इस बात की चर्चा की। जिन मित्रों ने मुझे सहायता देने का वचन दिया, उनका मैं आभार मानता हूँ, किंतु मुझे चंद ऐसे सज्जन भी मिले, जिनकी मनोवृत्ति का परिचय पाकर मैं व्यथित हो उठा।

मैं इस विषय का विस्तार करना नहीं चाहता, क्योंकि अपने संबंध में जितना ही थोड़ा कहा जाय, उतना ही अच्छा है। पर इतना कहे विना रहा भी नहीं जाता कि ये ही मित्र मुझसे बार-बार यहाँ रहने और काम करने का आग्रह करते आए हैं, और इनकी यह भी धारणा है कि मेरे चले जाने से नेटाल अपने एक नम्र सेवक से वंचित हो जायगा, यद्यपि यह ख़याल सरासर ग़लत है। लेकिन जब इस सेवक को सेवा-कार्य के लिये कुछ देने का प्रसंग आया, तो एक मित्र बोले—"हम इस नीति के विरुद्ध हैं कि यहाँ का धन भारत में ले जाकर ख़र्च किया जाय।" मैं हैरान होकर सोचने लगा कि हिंदोस्तान के अमुक पाठशाला, अमुक पत्र, अमुक ज्योतिषी और अमुक पंडित को धन देते वक्त प्रवासियों की यह नीति कहाँ लुप्त हो जाती है, और विशाल-भारत के एक सेवक को, वह भी प्रवासी भारतीयों के सेवा-कार्य के लिये, कुछ देने से बचने के लिये यह नीति अवश्य अमल में आ घुसती है। यह कैसी हृदय-हीनता है, कैसा निठुर व्यवहार है? मेरे जीवन में अनेक संकट-पूर्ण अवसर आए हैं, जिन्हें मैंने हँस-हँसकर काटे हैं। मैं दुःख को आवाहन नहीं करता, किंतु स्वयं आ जाने पर उससे भयभीत भी नहीं होता—हृदय को दृढ़ करके उससे हाथ ही मिलाता हूँ। उस दिन मित्र की दलील सुनकर मुझे जो दुःख व्यापा, उसे कैसे बताऊँ—वह लिखकर बताने की बात नहीं है। वह हृदय की तड़पन है, जिसका कोई इलाज नहीं।

सच बात तो यह है कि जो स्वयं अपनी सहायता नहीं कर सकता, उसकी सहायता और कौन करेगा? परमात्मा भी तो नहीं करता। जब प्रवासी भाई स्वयं अपने हित-अनहित का ख़याल नहीं करते, तब फिर दूसरों पर क्यों दोष मढ़ा जाय? पर मातृभूमि से मैं इतनी प्रार्थना अवश्य करूँगा।

"पूत कुपूत होत बहुतै पै होत कुमाता नाहीं;
बरु कुपूत पै अधिक मातु-रुचि होतै रहीं सदाहीं।
करिकै यहै भरोस मातु, माँगत तुमपै कर जोरे;
छमिए सब अपराध हमारे पुत्र-सनेह निहोरे।"

मातृभूमि अपनी प्रवासी संतान को कैसे बिसार सकती है? यह व्यथा की बात अवश्य है कि भारत की राष्ट्रीय महासभा विशाल भारत की ओर उचित ध्यान नहीं देती, लेकिन केवल उसी को क्यों कोसा जाय? हिंदू-महासभा, जो हिंदू-हित का ठेका लिए बैठी है, प्रवासी हिंदुओं के लिये क्या कर रही है? उसे फ़ुरसत भी कहाँ है? वह संगठन का सुखमय स्वप्न देख रही है; और हिंदुओं के अतीत गौरव को सजीवन करने और अनेक जातियों-उपजातियों तथा संप्रदायों में विभक्त हिंदुओं को एक झंडे के नीचे एकत्र करने में व्यस्त है। हाँ, कभी-कभी महासभा में प्राचीन विशाल-भारत की भी तान छिड़ जाती है, और यह झनक सुनाई पड़ती है कि जावा, श्याम, बाली, लंबक, सुमात्रा आदि द्वीपों की भी ख़बर लेनी चाहिए, और वहाँ की बची-खुची हुई हिंदुओं की प्राचीन स्मृतियों की रक्षा करनी चाहिए। जोश में आकर यह भी कहा जाता है कि वहाँ के निवासी हिंदुत्व से पतित हो गए हैं, अतएव उन्हें पुनः हिंदू-धर्म में दीक्षित करना चाहिए। वास्तव में हिंदू-महासभा के कार्यकर्ता भी शेख़चिल्ली की भाँति कल्पना का महल बसाने में परम-प्रवीण हैं, लेकिन करते-धरते कुछ नहीं। महासभा के पास अच्छा फ़ंड है, सच्चे कार्यकर्ता भी हैं, किंतु हम जानना चाहते हैं कि अब तक प्राचीन विशाल-भारत में हिंदुत्व के भाव फैलाने के लिये क्या-क्या यत्न किए गए? हम महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर,

श्रीकालीदास नाग इत्यादि सत्पुरुषों की सराहना अवश्य करेंगे, जिन्होंने कष्ट उठाकर उन द्वीपों की यात्राएँ कीं, और प्राचीन विशाल-भारत के निवासियों को आधुनिक भारतवर्ष का संदेश सुनाया। इन्हीं महानुभावों के उद्योग से "बृहत्तर भारत-परिषद्" की स्थापना हुई है, और इस संस्था के द्वारा विशाल-भारत के संबंध में कुछ साहित्य भी तैयार हो गया है।

हिंदू-महासभा प्राचीन विशाल-भारत को तो उपेक्षा कर ही रही है, किंतु अर्वाचीन विशाल-भारत के संबंध में भी उसकी नीति सराहनीय नहीं है। उसके कितने उपदेशक आज उपनिवेशों में परिभ्रमण कर प्रवासी भाइयों को हिंदुत्व का पैग़ाम दे रहे हैं? एक भी नहीं! और तो और, हिंदू-महासभा के एक अधिवेशन में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और पं० तोताराम सनाढ्य ने इस आशय का एक साधारण प्रस्ताव पास कराया था कि महासभा प्रत्यागत प्रवासी भाइयों की खोज-ख़बर लेने और ख़ासकर उनको जाति में मिलवा देने की कोशिश करे। इस प्रस्ताव पर कुछ अमल भी हुआ या नहीं, यह बात किसी को नहीं मालूम? हाँ, यह बात हम अवश्य जानते हैं कि सैकड़ों प्रवासी हिंदू जातिच्युति का दंड पाकर मटियाबुर्ज में नरकवास कर रहे हैं, अथवा कलकत्ता, मद्रास या अन्य नगरों की सड़कों पर धूल फाँकते फिरते हैं।

महासभा के मंच से अछूतोद्धार का ख़ूब ढोल पीटा जाता है, किंतु जहाँ सछूत भी अछूत बनाए जाते हों, वहाँ किसी हिंदू प्रचारक का पता ही नहीं है। गाँव के गँवार प्रवासी भाइयों को जाति के बाड़े से दूर खदेड़ देते हैं, और हिंदू-सभावाले उनको अपने भाग्य के भरोसे पर छोड़े हुए हैं! फिर चाहे वे इसाई बनें या मुसलमान, इसकी किसी को कुछ चिंता नहीं है। हाय री हिंदू-जाति और हिंदू-सभा! विदेशी हूण, शक्य इत्यादि तो हिंदुओं में दूध-पानी की तरह मिल गए, पर स्वदेशी प्रवासी भाई कुत्तों की भाँति दुरदुराकर अलग किए जाते और महासभा के कर्णधार बैठे-बैठे तमाशा देखते हैं। प्रवासी भाई तो ख़ुद अधमरे-से हो रहे हैं, उन पर जाति के जानवरों को और भी दुलत्तियाँ जमाना क्या उचित है?

"किसी बेकस को ऐ बेदाद, गर मारा, तो क्या मारा?
जो आपी मर रहा हो, उसको गर मारा, तो क्या मारा?"

हिंदू-जाति और हिंदू-सभा को अपने अभागे प्रवासी अंग पर दया करनी चाहिए। महासभा अपने उपदेशकों को आदेश करे कि वे जहाँ-जहाँ जायँ, प्रत्यागत प्रवासियों की सुधि लिया करें। जहाँ-जहाँ प्रवासी भाई जाति से बहिष्कृत किए गए हैं, वहाँ-वहाँ जाति के पशुओं को चुचकार-पुचकारकर राह पर लाने की चेष्टा करें। यह कार्य कुछ कठिन अवश्य है, क्योंकि प्रत्यागत प्रवासी देश-भर में फैले हुए हैं, लेकिन आजकल हिंदू-हित के हामी भरनेवालों की भी तो कमी नहीं है; क्या वे प्रत्यागत प्रवासियों के लिये इतना भी नहीं कर सकते।

इस प्रसंग में आर्य-समाज का स्मरण करना भी उचित है। ऋषि दयानंद की हार्दिक अभिलाषा थी कि आर्य-समाज के द्वारा सारे भूमंडल में वैदिक धर्म का प्रचार हो और पुरातन आर्य-संस्कृति का पुनरुद्धार। किंतु ऋषि की इच्छा की पूर्ति की ओर समष्टि रूप से आर्य-समाज को जितना ध्यान देना चाहिए, उतना नहीं दिया गया। कुछ आर्य पुरुषों का विचार है कि जब तक आर्यावर्त का सुधार न हो जाय, तब तक विदेश-प्रचार में—अपनी शक्ति ख़र्च करना बुद्धिमानी नहीं है। एक दृष्टि से तो मैं ख़ुद इस ख़याल का क़ायल हूँ कि जब तक स्वदेश के करोड़ों प्राणियों के हृदय-मंदिर में वेद भगवान् की स्थापना न हो जाय, जब तक ईसाई और मुसलमान तक अपने देश के प्राचीनतम साहित्य के नाते वेदों को अपना न बना लें—उसे अपनी पैतृक संपत्ति और राष्ट्र की धरोहर न मानने लगें, अथवा जब तक हिंदोस्तान में एक भी प्राणी "अछूत" नाम से पुकारा जाता रहे, तब तक हाँ, तब तक आर्य-समाज को मदांध योरपियनों और अर्थ-लोलुप अमेरिकनों में धर्म का प्रकाश फैलाने की

चेष्टा करना वैसा ही है, जैसे घर को तिमिराच्छन्न छोड़कर वन में दीपक जलाना। पर यहाँ तो प्रश्न यह है कि जो पचीस लाख भारतीय उपनिवेशों में आ बसे हैं, उनके संबंध में आर्य-समाज का क्या कर्तव्य है? यह बात ऐसी है, जिसकी उपेक्षा करना आत्मघात के समान है।

आधुनिक विशाल-भारत को आर्य-समाज की बड़ी आवश्यकता है—वह उसका स्वागत करने को तैयार है। यद्यपि मोरिशस, फ़िजी, पूर्व और दक्षिण-आफ्रिका में आर्य-समाज ने सुचारु रूप से प्रचार का कार्य नहीं किया, तो भी भूले-भटके कुछ प्रचारकों ने इन उपनिवेशों में पहुँचकर हिंदू-जाति की जो सेवा की है, उसकी सभी प्रशंसा करते हैं। जन्म-प्रवासी हिंदुओं को पथ-भ्रष्ट होने से बचाने का अधिकांश श्रेय आर्य-समाज को है, किंतु अभी ऐसे अनेक उपनिवेश बचे हुए हैं—जैसे डेमरारा, ट्रिनीडाड, जमैका, सुरीनाम इत्यादि—जहाँ के लोग आर्य-समाज के वैदिक संदेश से बिलकुल वंचित हैं। वहाँ के पढ़े-लिखे हिंदू-युवक ईसाई हो गए, और होते जाते हैं। मुझे ईसाइयत से कोई द्वेष नहीं है। सच पूछा जाय, तो मैं हज़रत मसीह को उतना ही पूज्य मानता हूँ, जितना कि महर्षि दयानंद को। साधु एंड्रूज़, बिशप फ़िशर, डॉक्टर दत्त, श्रीपोलक, रेवरेंड हिवटवेर, रेवरेंड वेणी सिंगामणि, ऐडवोकेट क्रिस्टफ़र, ऐडवोकेट गोडफ़्रे इत्यादि ईसाई सज्जनों की मित्रता पर मुझे अभिमान है। किंतु भारतीय ईसाइयों में एक दुर्गुण अवश्य पाया जाता है कि वे धर्म के साथ हिंदोस्तान की संस्कृति और सभ्यता को भी तिलांजलि दे बैठते हैं, और सब बातों में विदेशियों के चरण-चिह्न पर चलना गौरव-युक्त समझते हैं। हम उन संप्रदायों को भारतीयों के लिये एक शाप समझते हैं, जो उन्हें अपने देश की ममता से विरक्त कर अरब या जिरूशलीम की भक्ति करना सिखलावें। आर्य-समाज ही भारत के प्राचीनतम धर्म और संस्कृति का प्रचार यथार्थ रूप से कर सकता है—वह विशाल भारत के प्रवासियों के हृदयों में मातृभूमि के प्रति प्रेमानुराग का भाव भर सकता है। उपनिवेशों में आर्य-समाज के लिये बहुत अच्छा क्षेत्र तैयार है, किंतु खेद की बात है कि कुछ विशेष व्यक्तियों को छोड़कर समष्टि रूप से आर्य-समाज को इन प्रवासी भाइयों की कुछ चिंता ही नहीं है। हाँ, आर्य-समाज के उत्सवों पर यह राग अवश्य अलापा जाता है—

"आवेंगे ख़त अरब से उनमें लिखा यह होगा;
गुरुकुल के ब्रह्मचारी हलचल मचा रहे हैं।"

और

"आवाज़ अपने कानों एक दिन सुनोगे प्यारे।
योरप में आर्यों का झंडा फहरा रहा है।"

वाह भाई! मचाइए अरब में हलचल, और फहराइए योरप में पताका। आपको इस उमंग और तरंग पर बधाई है, लेकिन तब तक तो आप अपने पचीस लाख प्रवासी भाइयों से हाथ धो बैठेंगे। बिरानों को तो आप अपना बनाने जायँगे, लेकिन यहाँ तो अपने ही बिराने बन बैठेंगे। जब तक आप उधर से हलचल मचाकर और पताका फहराकर लौटेंगे, तब तक तो इधर प्रवासी भाइयों का भाग्य-बेड़ा मँझधार में डूब चुकेगा। आप एक ओर खड़े होकर सिसकियाँ भरेंगे, और हाथ मल-मलकर पछतायँगे, लेकिन महाकवि तुलसीदास ने ठीक कहा है—

"का वर्षा जब कृषी सुखाने;
समय चूकि पुनि का पछिताने।"

इसीलिये कहते हैं कि पहले घर में चिराग़ जला लीजिए, पीछे मसजिद या गिरजे में जलाइएगा। आर्य सार्वदेशिक सभा ही उपनिवेशों में वैदिक धर्म-प्रचार का कार्य ठीक ढंग से कर सकती है—इस मद में उसके पास कुछ धन भी जमा है। सभा के द्वा-

वार प्रचारकों को हमेशा विशाल-भारत का पर्यटन करते रहना चाहिए। ये प्रचारक ऐसे हों, जो प्रवासी भारतीयों के भाग्य की अंधकारमयी रजनी में दीप-स्तंभ का काम दे सकें। उनका हृदय विशुद्ध, विशाल और उदार होना चाहिए। ऐसे ही, और केवल ऐसे ही, प्रचारक उपनिवेशों में आवें, जो सांप्रदायिक संकीर्णता को नफ़रत की निगाह से देखते हों, और जो अँगरेज़ी और हिंदी में धारावाही वक्तृता देकर प्रवासियों के हृदय में भारतीय धर्म और सभ्यता का सिक्का बैठा सकते हों। खंडन की खँजड़ी बजानेवाले प्रचारक प्रवासियों पर दूर ही से दया बनाए रक्खें; उनके आने से आर्य-समाज का गौरव बढ़ेगा तो नहीं, घटेगा अवश्य।

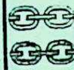
चिट्ठी बहुत बढ़ गई, लेकिन मेरी बातें ख़तम न हुईं। कहाँ तक कहूँ—लंबी और करुण कहानी है। कहने में वाणी थर्राती है—लिखने में हाथ काँपते हैं। प्रवासियों की दुर्दशा पर दर्द-भरी आहें भरता हूँ, और सिर धुनकर रह जाता हूँ। व्यथित हृदय को ज़रा-सा धक्का भी बहुत होता है, यहाँ तो चोटों पर चोटें लग रही हैं। लेखनी को रोकता हूँ कि थम ला—अब आगे मत बढ़, किंतु वह भी अदब नहीं मानती—मचल पड़ती है। ख़ैर, अब उसे डाँट-डपटकर रोकना ही पड़ेगा—और चारा ही क्या है?

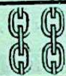
अंत में प्रवासी भाइयों को एक बार पुनः विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा तुच्छ जीवन-पुष्प विशाल-भारत के जनता-जनार्दन के चरणों पर सादर समर्पित है। मैं हिंदोस्तान पहुँचकर उनकी कल्याण-कामना से कांग्रेस-कार्यालय पर धरना दूँगा, हिंदू-महासभा का दरवाज़ा खटखटाऊँगा, और आर्य-समाज के मंदिरों में अलख जगाऊँगा। इसी ख़याल से इस पत्र में मैंने इन लोकोपयोगी संस्थाओं की चर्चा की है। इनके संबंध में मेरी क़लम से यदि कोई कटु बात भी निकल पड़ी हो, तो यह ध्यान रहे कि वह सदिच्छा की प्रेरणा से ही निकली है। मैं प्रवासी भाइयों की सेवा से उदासीन भी होना नहीं चाहता, किंतु इस संबंध में उनका भी कुछ कर्तव्य है। मैं केवल दक्षिण-आफ्रिका ही नहीं, किंतु सभी उप-निवेश के भाइयों से प्रार्थना करता हूँ कि यदि आपको मेरी तुच्छ सेवा स्वीकृत हो, तो आप मेरी सहायता करें—आपकी सहायता विना मैं कुछ भी न कर सकूँगा। आपके सब प्रकार के सहयोग और सहा-यता का मैं स्वागत करूँगा, किंतु इस समय मेरी याचना यह है कि आप मेरे पास बराबर पत्र लिखते रहें, पत्रों में केवल व्यक्तिगत कुशल-क्षेम ही न हो, बल्कि उनमें आपके उपनिवेशों की राजनीतिक, धार्मिक, शिक्षा-संबंधी और सामाजिक प्रगति की चर्चा भी हो। अख़बार या अख़बारों के कतरन, वार्षिक बुक, इतिहास, भूगोल, नक़्शा, क़ानूनी मस-विदा, भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र और अन्य साहित्यिक सामग्रियाँ भी मेरे कार्य में सहायक सिद्ध होंगी। यदि इतना कष्ट आप उठा सकेंगे, तो मेरी ओर से आप निश्चिंत रहें—मैं आपकी सेवा से न हटूँगा। आशा है, मेरी यह प्रार्थना उनके कानों तक पहुँचेगी, जो भारत और विशाल भारत का संबंध बनाए रखना आवश्यक और उचित समझते हैं।

हठयोग

(द्वितीयावृत्ति)

बाबा रामचारकदासजी-कृत पुस्तक का अनुवाद। इसमें स्वामीजी के बनाए हुए ऐसे सरल अभ्यास हैं, जिनसे आपकी शारीरिक उन्नति और मनःशक्ति-प्रबलता बढ़ेगी। मूल्य १।≈), सजिल्द १॥≈)





भिखारी से भगवान्

(द्वितीयावृत्ति)

❁ ❁ ❁

सुप्रसिद्ध लेखक जेम्स ऐलेन की (From Poverty to Power) का हिंदी-अनुवाद। स्वास्थ्य, सफलता, स्वार्थ तथा सत्य, शक्ति और परमानंद का रहस्य, आध्यात्मिक शक्ति का उपार्जन आदि-आदि विषयों का विशद वर्णन है। मूल्य १), स० १।)

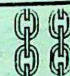
सुकवि-संकीर्तन

लेखक—साहित्य-महारथी

पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी

इसे पढ़ने में एक उपदेशप्रद उपन्यास का-सा आनंद आता है। कहीं साहित्यिक लालित्य है, कहीं अगाध पांडित्य है, कहीं काव्य की कमनीय छटा है। बिलकुल नायाब चीज़ है। इसमें दस चित्र भी हैं। सुंदर, सरल, सरस और प्रौढ़ गद्य का चमत्कार है। मूल्य १।), सजिल्द १॥)



संचालक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

सिंकोना की खेती और कुनीन

[श्रीसत्यप्रकाश एम्० एस्-सी० व हरप्रकाशकुमार वर्मा]



यह सभी जानते हैं कि ज्वर में रोगी को कुनीन खिलाई जाती है। यह कुनीन सिंकोना-वृक्ष की छाल से प्राप्त की जाती है। इसकी छाल को भी साधारणतः सिंकोना कहते हैं। दक्षिण अमेरिका में इसके पौधे की लगभग २० जातियाँ पाई जाती हैं। वेंजुला, न्यू-ग्रेनेडा, एक्यूडर, पीरु और बोलोविया इसके प्रसिद्ध स्थान हैं। अति प्राचीन काल से ही स्पेन-निवासियों को यह बात विदित थी कि सिंकोना की छाल में ज्वर-नाशक गुण विद्यमान हैं। धीरे-धीरे इसका प्रचार सभी देशों में बढ़ने लगा, और यह आवश्यक समझा जाने लगा कि नियम-पूर्वक इसकी खेती की जाय। सन् १८६० में ब्रिटिश भारत, सीलोन और जावा में इसकी खेती आरंभ की गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि सिंकोना की प्राप्ति के लिये दक्षिणी अमेरिका की उपज का आसरा देखने की आवश्यकता न रही।

सिंकोना के पौधे भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं, और इनकी पत्तियाँ सदा हरी रहती हैं। इनके श्वेत अथवा गुलाबी फूलों में भीनी-भीनी सुगंध होती है। इनके बीज फलियों के अंदर होते हैं। ये फलियाँ ऊपरी सिरे पर जुड़ी रहती और नीचे से फट जाती हैं, ताकि बीज निकल जाय। ये बीज चपटे होते और उनके सब तरफ़ रोएँ होते हैं।

इस पौधे की लगभग ४० जातियाँ पाई जाती हैं, पर इनमें से केवल १२ ही खेती के योग्य समझी गई हैं। दक्षिणी अमेरिका की पश्चिमी पर्वत-श्रेणियों में १०° उत्तर से लेकर २२° दक्षिण अक्षांश तक इसकी प्राकृतिक उपज होती है। समुद्र की तह से ५००० से ८००० फ़ुट ऊँचाई तक का स्थान इसके लिये उपयोगी माना जाता है।

इन पेड़ों का महत्त्व केवल इनकी छाल के लिये है, जिससे ज्वर-नाशक कुनीन निकाली जाती है। सबसे पहला उल्लेख, जिसमें इस छाल का ज्वर में प्रयोग किया जाना लिखा है, सन् १६३८ का है, जब कि पीरु के शासक की पत्नी 'सिंकोन की रानी' का ज्वर इसके सेवन से दूर हो गया था। इस रानी के नाम पर ही इस छाल को सिंकोना कहा जाता है।

दक्षिणी अमेरिका के घने जंगलों से इसकी छाल प्राप्त करना बड़ा ही कठिन और परिश्रम-शील व्यवसाय है। वहाँ का अनुभवी व्यक्ति पहले तो जंगलों में इस पौधे की खोज करता और फिर उस पर लिपटी हुई लताओं को अलग करता है। तदुपरांत उन पर लगे हुए परोपजीवी कीड़ों को साफ़ करता है। फिर जहाँ तक वह पहुँच सकता है, डालियों की छालों को कुशलता-पूर्वक छुटाता है। इसके पश्चात् पेड़ गिरा दिया जाता है, और शेष सब छाल अलग कर ली जाती है। फिर इस छाल को सावधानी से एक-

त्रित करके दूसरे स्थानों पर भेज दिया जाता है। इन सब कामों में कितने परिश्रम की आवश्यकता है, इसको वे ही लोग जानते हैं, जिन्हें यह काम करना पड़ता है। जब से अमेरिका में कुनीन की खपत बढ़ने लगी, तब से यह आवश्यक समझा जाने लगा कि पुराने समय से प्रचलित विधियों में सुधार किया जाय, क्योंकि उनसे बहुत-सी छाल ख़राब हो जाती थी, और व्यर्थ श्रम भी अधिक उठाना पड़ता था। सन् १८५४ में डच-सरकार ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया, और जावा में इसकी खेती को विशेष सफलता मिली। सन् १८६२ में सर क्लेमेंट मारखाम ने नीलगिरि में इसकी खेती आरंभ की।

भारतवर्ष में सिंकोना की खेती के दो मुख्य केंद्र हैं। मद्रास प्रेसीडेंसी में नीलगिरि, कोयंबटूर और टिनावेली में इसकी खेती होती है। बंगाल में दार्जिलिंग इसका प्रसिद्ध स्थान है।

कुनीन तीन जातियों की छालों से मुख्यतः प्राप्त की जाती है—

(१) सिंकोनालेजिरियाना (पीली छाल) इसकी खेती मुख्यतः बंगाल में होती है।

(२) सिंकोना सक्सीरूब्रा (लाल छाल)

(३) सिंकोना आफ़िसिनेलिस (पीली छाल)

सिंकोना की खेती पर जल-वायु का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसके लिये ऐसी शीत जल-वायु की आवश्यकता है, जिसके ताप-क्रम में गरमी और सरदी की ऋतुओं में अथवा दिन और रात में अधिक अंतर न पड़े। ५० इंच से १०० इंच तक की वर्षा की भी आवश्यकता होती है। नए साफ़ किए गए वन-प्रदेशों में, जिनकी भूमि उपजाऊ, खुली और ढलुआ हो, जिससे पानी जल्दी बह जाय, सिंकोना बहुत अच्छी तरह पनपता है। चौरस और दलदल भूमि इसके लिये अनुपयुक्त है, पर कुछ जाति के पौधे, जैसे पीली छाल-वाले, साधारण हरी-भरी ज़मीन पर भी उग सकते हैं।

सिंकोना के बीज की तैयारी के लिये भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, और इसकी क्यारियाँ भी सावधानी से बनाई जाती हैं। सिंकोना का बीज सामान्य ताप-क्रम पर अच्छी प्रकार उगता है, अतः बोने के लिये ग्रीष्म अथवा वर्षा-ऋतु अधिक उपयुक्त मानी गई है। क्यारियों के लिये साफ़ ज़मीन चुनी जाती है, जिसमें वनस्पतिक खाद डाली जाती है। इस काम के लिये ऐसा स्थल चुना जाता है, जो ढाल पर स्थित हो, जिससे पानी के बहने में कठिनता न हो। यह स्थान पूरब-पच्छिम फैला होना चाहिए। बीजों को आँधी और पानी के झोंकों से बचाने की आवश्यकता होती है, और सूर्य की सीधी तीव्र किरणों से भी इनकी रक्षा करनी पड़ती है, इसलिये इन खेतों पर छप्परों का भी प्रबंध किया जाता है। जब यह सब प्रबंध हो जाता है, तो बीज घने बो दिए जाते हैं। इनके अंकुर निकलने का, समय ताप-क्रम के अनुसार बदलता रहता है। लगभग २ से ६ सप्ताहों के बीच में अंकुर निकलने आरंभ हो जाते हैं। इस समय के समाप्त होने तक इनमें दो-तीन पत्तियाँ भी निकल आती हैं। इसके उपरांत इन्हें धायालयों (Nurseries) में भेज दिया जाता है। वहाँ भी छप्पर आदि प्रबंध द्वारा इनकी रक्षा की जाती है। फिर क्या-

रियों से निकालकर लगभग २ इंच के अंतर से इन्हें अलग-अलग बो दिया जाता है, और जब तक ये चार-पाँच इंच ऊँचे न हो जायँ, इन्हें वहीं रहने दिया जाता है। इसके पश्चात् उखाड़कर इन्हें फिर अलग लगाया जाता है, और अब इनकी रक्षा के लिये छप्परों की आवश्यकता नहीं रहती। इन्हें बार-बार उखाड़ने और लगाने का अभिप्राय यह है कि ऐसा करने से इनका बीज दृढ़ और जड़ें मज़बूत हो जाती हैं, जिससे ६-१२ मास हो जाने के पश्चात् इन्हें असली खेतों में सुरक्षित लगाया जा सके।

सिंकोना की खेती के लिये जो भूमि निश्चित की गई हो, उसका घास-फूस सब अलग कर लेते हैं। जब यह बिल्कुल साफ़ हो जाय, तब जहाँ-जहाँ पौधे लगाने हों, उन स्थानों को बल्लियाँ गाड़कर चिह्नित कर देते हैं। प्रत्येक बल्ली के पास गढ्ढा खोदा जाता और इसमें अच्छी खाद भर दी जाती है। इस खादवाली ज़मीन में पौधे जल्दी जड़ पकड़ सकते हैं। मेघाच्छन्न ऋतु में पौधे लगाए जाते हैं, और प्रत्येक पौधे के बीच में चार फ़ुट या कुछ अधिक ज़मीन छोड़ दी जाती है। यद्यपि छाए हुए खेतों में व्यय अधिक पड़ता है, पर इसके लाभ भी अधिक हैं, अर्थात् धूप से इस स्थल की रक्षा होती है, पौधों में साफ़ सीधे तने निकलते हैं, और छाया में सेंठे, नरकुल आदि अनावश्यक झाड़ कम उगते हैं। छोटे पौधों को धूप से बचाने के लिये इनके खेतों के चारों ओर अन्य पदार्थों के बड़े पौधे (या घास) बो दिए जाते हैं, अथवा बाँसों का घना बाड़ा बना दिया जाता है, जिनकी पत्तियाँ धूप की ओर होती हैं, इस प्रकार उनसे धूप रुक जाती है।

सिंकोना के पेड़ों से अच्छी छाल प्राप्त करने के लिये कई वर्ष धैर्य रखना पड़ता है। पेड़ की जाति पर यह निर्भर है कि कितने वर्षों में इसकी छाल काम योग्य बन जायगी। यह समय, स्थल की उँचाई के भी आश्रित है। सिंकोना सक्सीरुब्रा नीची भूमि पर लगभग ६ वर्षों में तैयार हो जाता है, और ऊँची भूमि पर सिंकोना आफ़िसिनेलिस १०-१५ वर्ष लेता है।

फ़सल काटने की दो मुख्य विधियाँ हैं—(१) काई लगाकर (Mossing), (२) कतरकर (Coppicing),। सन् १८६३ में मेकईवर ने यह मालूम किया कि सिंकोना के पेड़ में यह गुण है कि एक बार छाल छील लेने पर इसमें फिर दुबारा छाल निकल सकती है, यदि छिले हुए स्थान में गीली काई लगा दी जाय यद्यपि यह विधि नीलगिरि में सफलीभूत हुई, पर दार्जिलिंग में इससे काम न चला, क्योंकि वहाँ चींटियों के आक्रमण ने इसमें बाधा डाली। दक्षिणी भारत में भी यह सफल न हुई, क्योंकि इसके कारण पेड़ों की वृद्धि रुक गई।

समस्त भारत में सामान्यतः जिस विधि का व्यवहार किया जाता है, वह कतरन-विधि है। इसमें पेड़ की नीचेवाली शाखें काट दी जाती हैं, और इनके कटे हुए स्थानों में से नवीन शाखें निकलने दी जाती हैं। इसका लाभ यह है कि यह विधि कई बार दुहराई जा सकती है। यदि पेड़ बहुत पुराना न हो, तो इसके प्रमुख तने से प्रत्येक बार नई शाखें निकलती हैं।

छाल प्राप्त करने के लिये सबसे उत्तम समय शीत-ऋतु का है। छाल को आसानी से उखाड़ने के लिये जगह-जगह पर दराज़ चीर दिए जाते हैं, और फिर चाक़ू की सहायता से छाल उकसाकर छुटा ली जाती है। छाल छुटाने के उपरांत सुखाने के लिये बाड़ों में भेज दी जाती है, जहाँ यह बाँसों की पच्चरों पर सुखाई जाती है। जब यहाँ काफ़ी सूख जाती है, तब यह विशेष शुष्कालयों में भेज दी जाती है, जहाँ इसे १००° के लगभग ताप-क्रम पर गरम करके सुखाया जाता है। इस प्रक्रिया में इसके रासायनिक गुणों में कुछ भी अंतर नहीं पड़ने पाता। अब यह छाल कुनीन निकालने के योग्य बन जाती है।

शुष्कालयों में से निकालकर इसे अच्छे प्रकार पीसते हैं, पर फिर इसे शेल-तेल (Shale oil) और दाहक सैंधक (कास्टिक सोडा) के घोल के मिश्रण के साथ लोहे के बड़े कड़ाहों में उपयुक्त ताप-क्रम पर प्रभावित करते हैं। ऐसा करने से सिकोना के क्षारोद (Alkaloid) शेल-तेल में घुल जाते हैं, जिसे अब कड़ाहों में अलग कर लिया जाता है, और इसे फिर गरम करते हैं। तेल को फिर गंधकाम्ल के हलके घोल से संचालित करते हैं। इस प्रकार पृथक् हुआ तेल बराबर प्रयोग में आ सकता है। इस अम्लीय घोल को फिर गरम किया जाता है, और दाहक सैंधक द्वारा इसे शिथिल किया जाता है, और इसके पश्चात् सीसा चढ़े हुए थालों में ठंडा होने दिया जाता है। ऐसा करने से कुनीन-गंधेत (कुनीन और गंधकाम्ल से बना हुआ एक लवण) के रवे बैठने लगते है। ये रवे अस्वच्छ होते हैं, और इन्हें फिर शुद्ध किता जा सकता है। इस प्रकार शुष्क कुनीन-गधेत सुखाकर ठीक कर लिया जाता है। ज्वर-नाशक सिकोना (Cinchona Febrifuge) प्रारंभिक द्रव को ही नीरंग करने के पश्चात् सैंधक क्षार डालकर प्राप्त किया जाता है, ऐसा करने से अवक्षेप प्राप्त होता है, जिसे धोकर सुखा लिया जाता है, और इसे ही ज्वर-नाशक सिंकोना कहते हैं।

नीलगिरि के पेड़ों से दो प्रकार की छालें प्राप्त होती हैं--लाल और पीली। लाल छाल में यद्यपि अन्य क्षारोद तो बहुत होते हैं पर कुनीन कम होती है। पीली छाल में कुनीन अधिक पाई जाती है। अतः कुनीन के व्यवसाय के लिये यह अधिक मूल्यवान् समझी जाती है।

छाल से जो कुछ भी प्राप्ति होती है, वह या तो विदेशों में भेज दी जाती या गवर्नमेंट द्वारा ख़रीद ली जाती है। गवर्नमेंट के दो मुख्य कारख़ाने हैं, एक तो नीड़्बातलाम (नीलगिरि) में और दूसरा मूँगपू में। यहाँ कुनीन-गंधेत और ज्वर-नाशक सिंकोना तैयार किए जाते हैं। मलेरिया ज्वर के इलाज के लिये भारतवर्ष में कुनीन की जितनी माँग है, वह इन कारख़ानों से अधिकतर पूरी हो जाती है। हमारे देश के प्रत्येक डाकख़ाने में कुनीन-गंधेत (जिसे साधारणतः लोग कुनैन कहते हैं) बिकता है। यह या तो चूर्ण-रूप में बंडलों में बेचा जाता है, या चार-चार ग्रेन की बीस गोलियों के पैकटों में, जिनके ऊपर "ट्रीटमेंट्स" लिखा होता है। भारत में कुनीन की कितनी माँग है यह निम्न-लिखित अंकों से विदित हो जायगा। सन् १९२७-२८ में सरकारी दफ़तरों, संस्थाओं और

जनता में अकेला कुनीन-गंधेत ३६,२०४ रुपए आठ आने का बेचा गया, और कुनीन-गंधेत, ज्वर-नाशक सिंकोना आदि सबकी बिक्री ५,३८,२०२ रुपए ५ आने ६ पाई की हुई। महायुद्ध से पहले लगभग डेढ़ लाख रुपए के मूल्य की ३,००००० सेर छाल इँगलैंड को भेजी जाती थी, पर सन् १६१७-१८, १६१८-१६ और १६२२-२३ में समस्त छाल को मद्रास-सरकार ने ख़रीद लिया, और नीड्वातलाम में इससे ८००० सेर कनीन निकालकर विदेश भेजी गई, जिससे केवल ७,६८० रुपए ही प्राप्त हुए।

कुनीन और इसके लवण भी बाहर से हमारे देश में आते हैं। सन् १६२२-२३ में ४० हज़ार सेर कुनीन और १५० सेर छाल भारत में आई। इसमें बहुत-सा अंश तो इँगलैंड और अमेरिका का है; पर जावा से भी कुनीन बहुत आती है।

ब्रिटिश फ़ार्माकोपिया में जिस सरकारी छाल का उल्लेख है, वह लाल छाल है। यह छाल लंबे, खुरदरे टुकड़ों के रूप में विदेश से आती है, जिसका ऊपर का भाग भूरे रंग का और भीतरी भाग लाल रंग का होता है। इसको पीसने से लाल भूरा निर्गंध चूर्ण प्राप्त होता है, जिसका स्वाद कटु एवं तीक्ष्ण होता है। ब्रिटिश फ़ार्माकोपिया के अनुसार उस छाल में, जिसका ओषधियों में प्रयोग किया जा सकता है, ५-६ प्रतिशत सब क्षारोद होने चाहिए, और इस अंश में कम-से-कम आधा कुनीन और सिंकोनीदिन का भाग होना चाहिए। इस छाल से चार पदार्थ उपलब्ध किए जाते हैं—(१) जल-निष्कर्ष, जिसमें ५ प्रतिशत सब क्षारोद होते हैं (२) अम्ल-निष्कर्ष (३) टिंक्चर, जिसमें १ प्रतिशत सब क्षारोद रहते हैं। (४) यागिक टिंक्चर, जिसमें क्षारोदिक मात्रा साधारण टिंक्चर की आधी होती है। साधारण शक्ति-वर्धन और पुष्टि के लिये इन पदार्थों का उपयोग किया जाता है।

दवाओं में कुनीन नहीं दी जाती, प्रत्युत इसके लवण दिए जाते हैं, क्योंकि कुनीन पानी में बहुत कम घुलती है, पर इसके लवण बहुत ही घुलन-शील हैं। तीन प्रकार के लवण काम में आते हैं—कुनीन-गंधेत अर्थात् गंधकाम्ल और कुनीन का लवण, कुनीन उदहरिद अर्थात् कुनीन और उद-हरिकाम्ल का लवण और कुनीन अम्लहरिद। यह अंतिम अम्लहरिद सबसे अधिक प्रभावशाली माना जाता है।

ओषधियों में जिस कुनीन का व्यवहार किया जाता है, उसमें ३ प्रतिशत सिंकोनीदिन-नामक एक क्षारोद भी रहता है। ओषधि तीन रूपों में विशेष बेची जाती है—(१) फेरी-एट कुनीनाइ-साइट्रस। इसकी दस ग्रेन की ख़ुराकें पुष्टई में दी जाती हैं। इसका सेवन बड़ा ही अरुचिकर होता है। (२) पिल्यूले कुनीनाइ। इसके ६ भाग में पाँच भाग कुनीन-गंधेत होता है। (३) सीरप्स-फेरी-फोस्फेटिस-कम कुनीना-एट-स्ट्रिक नीना, जिसे ईस्टन का सीरप भी कहते हैं। इसकी प्रत्येक ख़ुराक में $\frac{1}{5}$ ग्रेन कुनीन होती है।

बौन के प्रोफ़ेसर बिंज ने कुनीन के शारीरिक प्रभाव के संबंध में बहुत जाँच की है। कुनीन में मलेरिया के कीटाणुओं को नष्ट कर देने की शक्ति विद्यमान है। कुनीन कड़ुई होती है, इस कारण इसके सेवन करने पर लार-ग्रंथियों और आमा-

शय-ग्रंथियों से एक प्रकार का रस निकलता है, जिससे आमाशय की श्लैष्मिक कला (Mucous membrane) उत्तेजित होती है। इसलिये कुनीन खाने पर भूख बढ़ जाती और भोजन जल्दी पच जाता है। अतः कुनीन के पौष्टिक गुण स्पष्ट ही हैं।

कुनीन ज्वर को किस प्रकार रोकती है, यह कहना कठिन है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी विद्यमानता में ओषजन ले जानेवाले रक्ताणु कुछ सिथिल पड़ जाते हैं, पर रक्त-संचार पर कुनीन का प्रभाव नहीं पड़ता। हाँ, अगर बहुत अधिक कुनीन खा ली जाय, तो नाड़ी धीमी चलने लगती है, और रक्त का दबाव इतना कम हो जाता है कि मरने तक की नौबत आ जाती है।

कुनीन और ताप-क्रम का संबंध बड़ा ही विचित्र है। जब ज्वर नहीं होता, तो कुनीन का ताप-क्रम पर कुछ भी प्रभाव नहीं होता, पर बुख़ार आ जाने पर कुनीन खिलाई जाय, तो बहुधा बुख़ार उतर जाता है। बुख़ार लगभग दो घंटे बाद उतरना आरंभ होता है। इस काम के लिये साधारण व्यक्तियों को कुनीन-गंधेक की ४० ग्रेन और अम्लहरिद की २५ ग्रेन मात्रा दी जाती है।

मलेरिया के लिये कुनीन एक अमूल्य ओषधि है, और इसके निवारणके लिये १०-१५ ग्रेन की ख़ुराकें दिन में तीन बार खिलाई जाती हैं। मलेरिया, तिजारी, चौथिया और इसी प्रकार के प्रत्येक ज्वर में एक बात ध्यान में रखनी चाहिए। कुनीन पेट में पहुँचने पर रुधिर में मिल जाती है, और मलेरिया के कीड़ों को नष्ट कर डालती है। मगर जब बुख़ार चढ़ा होता है, तब कुनीन उन कीड़ों को नहीं मार सकती। इसलिये बुख़ार चढ़े होने पर कुनीन देने से कोई लाभ नहीं है। या तो बुख़ार आने के एक या दो घंटे पहले कुनीन-गंधेत की ३० ग्रेन की एक ख़ुराक खिला देनी चाहिए, या बुख़ार उतर जाने पर चार-चार घंटे बाद १०-१० ग्रेन की ख़ुराकें देनी चाहिए। इलाज आरंभ करने से पूर्व हलका जुलाब दे देना भी लाभ-दायक होता है।

बहुधा लोगों को कुनीन खाने से एक बीमारी हो जाती है, जिसे सिंकोना-रोग (सिंकोनिज़्म) कहते हैं। इससे रोगी बहरा हो जाता है, मगर कानों में घड़घड़ाहट होती है, सिर में दर्द होने लगता है, आँखों से धुँधला दिखाई देने लगता है, पेट में भी विकार हो जाता है। अगर किसी को बहुत-सी कुनीन खिला दी जाय, तो बहरा या अंधा हो जायगा। उसकी नाक से ख़ून बहने लगेगा, कभी-कभी बेहोशी भी आ जायगी, यहाँ तक कि उसकी मृत्यु भी संभव है। इस दृष्टि से कुनीन का, जहाँ तक संभव हो, कम ही सेवन करना चाहिए। बहुत-से व्यक्ति, जिन्हें दवाएँ खाने का बहुत शौक़ है, थोड़ी-सी हरारत की आशंका पर ही कुनीन खाने लगते हैं। पर यह आदत बहुत हानिकर है। पेट को ओषधियों का भंडार बनाने की आवश्यकता नहीं है। ओषधियों का व्यवहार आपद्धर्म ही समझना चाहिए।

छायावाद

[साहित्याचार्य प्रो० वागीश्वरजी विद्यालंकार]



जकल अपने देश में क्रांति का युग है। प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति की धूम है। रूढ़ि तथा अपरिवर्तन का पुजारी भारत आज क्रांति का क्रीड़ा-स्थल बन रहा है। न केवल राजनीतिक क्षेत्र में, अपितु सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में भी आज क्रांति मच रही है। यहाँ तक कि जो लोग यह भी नहीं जानते कि क्रांति किस चिड़िया का नाम है, वे भी क्रांति कर रहे हैं। गत वर्ष सीमा-प्रांत में भी कुछ अशांति मची थी। वहाँ के लोगों ने ब्रिटिश-शासन के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया था। बीच में सुना था कि वे कुछ शर्तों पर संधि करने के लिये तैयार थे। उन शर्तों में से कुछ ये हैं—

(क) मलंग गांधी को छोड़ दिया जाय।
(ख) इनक़िलाब को छोड़ दिया जाय।
(ग) शराब की दुकानें बंद कर दी जायँ।

शर्तें कैसी मनोरंजक हैं। ब्रिटिश-सरकार भी चकराई होगी कि इनक़िलाब किस जेल में बंद है कि वह उसे छोड़ दे। परंतु, मेरी सम्मति में, अभी हमारे देश में क्रांति ने पदार्पण नहीं किया। दूरस्थित क्रांति को देखकर ही हमारी आँखों में चकाचौंध हो गई है, जिसका परिणाम यह है कि अब हमें सर्वत्र क्रांति-ही-क्रांति दिखाई दे रही है। राष्ट्रीय झंडा लेकर बाज़ार में से निकल जाइए, पूरी क्रांति है। अछूतों के संबंध में एक प्रस्ताव पास कर डालिए, एकदम क्रांति है। एक ट्रैक्ट छपवा दीजिए, साहित्य-क्षेत्र में महा-क्रांति हो जायगी। गांधी-टोपी पहन लीजिए, एक स्पीच झाड़ दीजिए, या कुछ लोगों के साथ बैठकर भोजन कर लीजिए, यह सब क्रांति है। इतनी क्रांतियाँ हो रही हैं, किंतु हम अभी वहीं खड़े हैं। क्या यही तो छायावाद नहीं? हिंदी-जगत् में, पत्र-संपादन-विभाग में, संपादकाचार्य से नीचे कोई उपाधि ही नहीं। तुकबंदी की दो लाइन लिखकर कवि टैगोर से टक्कर लेने लगते हैं। एक-आध उपन्यास लिख डालने से उपन्यास-सम्राट् की उपाधि मिल जाती है। यही अवस्था साहित्य के अन्य अंगों की भी है। हमें आश्चर्य है कि इतने साहित्य-सम्राटों के रहते भी हमारे देश में हिंदी के साम्राज्य की सत्ता को कोई स्वीकार ही नहीं करता।

जिस क्रांति का वर्णन हम ऊपर कर आए हैं, उसका एक परिणाम अवश्य हुआ है। आज हिंदी-भाषा में एक नए प्रकार की कविता बनने लगी है। अथवा यों कहिए कि वंग साहित्य के कुछ अनुवादकर्ताओं या अनुकरणकारियों ने हिंदी-कविता में युगांतर उपस्थित कर दिया है। जिस प्रकार चिड़िया-घर में किसी नए पशु के आ जाने पर कुछ दिनों उसकी खूब प्रदर्शिनी होती है, समझ में नहीं आता कि वह किस जाति का प्राणी है, प्रायः सब लोगों की जिह्वा पर उसी की चर्चा रहती है, इसी प्रकार जब छायावाद की नई कविता-वधू यहाँ पधारी, तो हिंदी-साहित्य-संसार में हलचल मच गई। आजकल जाति-पाँति-तोड़क मंडल का बोलबाला है, इसलिये यह आवश्यक नहीं कि वधू वर के समान वर्ण की ही हो। हिंदी के कुछ अप-टु-डेट समाचार-पत्रों की बग़ल में नई कविता को देखकर पुराने सहृदय चकित रह गए। वे उसके नूतन वेष-विन्यास, भाषा-भूषादि द्वारा उसकी जाति का निर्णय न कर सके। कुछ अन्य पत्रिकाओं में इस प्रकार के काव्य को देखकर कई मनचलों का संदेह इससे भी आगे बढ़ गया। उन्होंने

समित्पाणि होकर जिज्ञासा की, तो पता चला कि यही तो छायावाद है। सर्वत्र स्वतंत्रता का आंदोलन है। इस समय कविता भी छंदों के नियम की क़ैद में क्यों रहे। उसने अपना छंद स्वच्छंद कर लिया है। आवश्यकतानुसार आविष्कार हो ही रहे हैं। आज इंजेक्शन के द्वारा बूढ़े जवान बन रहे हैं। हैट लगाकर काले गोरे बन रहे हैं। सुना है, नाटे क़द-वालों को लंबा करने का भी कोई उपाय निकल आया है। मतलब यह कि ज़माना ही क्रांति का है। परमात्मा ने जिसको जैसा बनाया है, वह वैसा रहना नहीं चाहता। स्त्रियाँ पुरुष बन रही हैं, और पुरुष स्त्री बनना चाहते हैं। इसलिये इस कविता के शब्द भी अपना कोई नियत लिंग नहीं रखते, आवश्यकतानुसार बदलते रहते हैं। किसी नियम में चलना पराधीनता का सूचक है, अस्वाभाविकता का द्योतक है। कविता तो स्वाभाविक वस्तु है। उसका व्याकरण, वाक्य-रचना, नियमों के साथ भला क्या संबंध? क्या कहीं रोना या हँसना भी नियमों के अनुसार होता है? क्या लताओं तथा वृक्षों में पत्र-पुष्प ज्यामिति अथवा आलेख्य-कला के नियमों के अनुसार लगते हैं? इसलिये कविता में भी इस प्रकार का कोई नियम न होना चाहिए। शेष रही यह बात कि उसका अर्थ किसी की समझ में आता है या नहीं? छायावाद की कविता के संबंध में यह प्रश्न करना सबसे बड़ी गुस्ताख़ी है। देखिए, चंद्रमा भी तो परमात्मा की कविता है, और वह भी कितनी सुंदर! किंतु उस चंद्रमा का शब्दार्थ क्या है? शरत्काल की मोहिनी उषा, वर्षा के दिव्य सायंकाल क्या कोई नपे-तुले वाक्य बोलकर संदेश देते हैं। व्याकुल वीणा की आतुर तंत्री किस भाषा में बोलकर सहृदय के हृदय में वेदना उत्पन्न कर देती है? इसलिये यदि इस कविता में कोई ठीक-ठीक वाक्य-रचना नहीं है, या कोई एक पूर्ण अर्थ नहीं बनता है, तो क्या हानि है? उसका एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर स्वयं कविता है। वह स्वतंत्र है। उसका अर्थ समझने की शक्ति सर्व-साधारण में नहीं हो सकती, क्योंकि वह असाधारण वस्तु है। कहीं-कहीं तो अर्थ समझ में आता ही है, शेष स्थलों में अनुमान कर लेना चाहिए कि वहाँ भी अर्थ होगा ही। साधारण कविता का अर्थ सीमित तथा निश्चित होता है, किंतु इस कविता का अर्थ असीम तथा अनंत होता है। समझनेवाले की रुचि तथा सामर्थ्य के अनुसार वह बदलता रहता है। यही तो कौशल है—विभूति है। "जिनकी रही भावना जैसी; प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी।" शब्द ब्रह्म है, ब्रह्म सर्वमय है, इसलिये इस कविता का कोई निश्चित स्वरूप नहीं। यह भी सर्वमय है। साधारण कविता में उन्हीं शब्दों और अर्थों का प्रयोग किया जाता है, जो लोक में होते हैं। किंतु इस कविता में ऐसे शब्दों तथा अर्थों का प्रयोग होता है, जो इस लोक में ढूँढ़ने पर भी न मिलें। कवि ने अंतर्जगत् की झाँकी ली, वहाँ उसने वे वस्तुएँ देखीं, जिनकी सत्ता इस स्थूल संसार में नहीं। अब कवि इन लौकिक शब्दों द्वारा अपने उल्लास, अपनी वेदना, अपने क्षोभ को कैसे वर्णन करे? वह चटपट शब्दों की टकसाल में पहुँचा। सरस्वतीदेवी हाथ बाँधकर खड़ी हो गईं। नए शब्दों की रचना होने लगी। पुराने शब्दों ने अपने अर्थ बदल डाले। मुहावरों ने अपनी मोम की नाक को तोड़-मोड़कर मौक़े के मुताबिक़ बना लिया। यही तो अलौकिकता है। इसमें बेचारे कवि का दोष ही क्या? दोष तो मंद-मति पाठकों का है, जो लौकिक होकर अलौकिक कविता का अर्थ समझना चाहते हैं—ऐसा दुस्साहस करते हैं! साधारण कवि का कर्तव्य है कि वह अपनी रचना को अधिक-से-अधिक स्पष्ट, निस्संदिग्ध तथा सरल करे। किंतु छायावाद की कविता के लिये आवश्यक है कि वह यथासंभव अस्पष्ट, संदिग्ध तथा उलझी हुई हो। जब बनानेवाला यह देखे कि अपनी कविता का अर्थ अब वह स्वयं भी नहीं समझ सकता, तो जान ले कि कविता ठीक हो गई। छायावाद की कविता इतनी लजीली है कि वह अपने ही घर में, अपने माता-पिता से भी, परदा करती है। इसी में उसकी सुंदरता है।

इतना लिखकर मैंने यह लेख समाप्त कर दिया, और प्रातःकाल के भ्रमण के लिये मैं बाहर चला गया। कुछ समय पश्चात् लौटकर जब मैं अपने पढ़ने के कमरे में आया, तो मुझे मालूम हुआ कि उसके दूसरे दरवाज़े में से कोई चुपके-से निकला जा रहा है। मैं क़दम बढ़ाकर बाहर आया, पर फिर मुझे कुछ भी न दिखलाई पड़ा। यद्यपि निश्चय-पूर्वक उस व्यक्ति के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता, तथापि यह निर्विवाद है कि वह कोई पुरुष न था। मैंने मेज़ पर दृष्टि डाली, और अपने काग़ज़ों को उलटा-पलटा, तो मालूम हुआ कि उनमें कुछ पृष्ठ बढ़ गए हैं। मैं उन्हें एकदम पढ़ गया, मुझे पता लगा कि इन पृष्ठों में किसी ने मेरे ऊपर लिखे लेख का जवाब दिया है। जवाब मुझे बहुत पसंद आया। मैं उसे इस लेख के पूरक के तौर पर यहाँ ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर देता हूँ—

भूमिका

तुमने ऊपरवाला लेख लिखकर मेरे साथ अत्यंत अन्याय किया है। परंतु इसका उत्तरदायित्व बहुत कुछ मेरे शुभचिंतकों अर्थात् छायावाद के कुछ लेखकों पर ही है, इसलिये मेरा तुम पर रोष नहीं, प्रत्युत तुम्हारे द्वारा ही मैं अपनी सफ़ाई पेश करना चाहती हूँ। आशा है, तुम इसमें मेरी सहायता करोगे। तुम्हारी अलमारी में हिंदी के किसी अच्छे छायावादी कवि की कोई पुस्तक मुझे न मिल सकी, इसलिये अत्यंत आवश्यक होने पर भी उदाहरणों द्वारा मैं अपने वक्तव्य को अधिक स्पष्ट नहीं कर सकी हूँ। बहुत जल्दी में केवल सिद्धांत पर ही कुछ प्रकाश डालने का यत्न किया है। यदि संभव हुआ, तो शायद कभी इस विषय का अधिक विस्तार से वर्णन कर सकूँ।

वास्तविक छायावाद

सूर्य के प्रखर प्रकाश में पर्वत, वनमाला, घाटी, नदी आदि वस्तुओं का वह सौंदर्य प्रकट नहीं होता, जो सायंकाल के मंद प्रकाश में। ढाक, सेमल आदि जब वसंत-ऋतु में खिलते हैं, तो ऊपर से लेकर नीचे तक फूल-ही-फूल हो जाते हैं। पत्तों के अभाव में उनका सौंदर्य नग्न हो जाता है। उनकी वह शोभा नहीं होती, जो कोमल किसलयों में अर्ध-प्रकाशित गुलाब, चमेली, बेला, मोतिया आदि की होती है। चित्रों की सुंदरता भी दिन में उतनी प्रस्फुटित नहीं होती, जितनी रात्रि के समय दीपक के कोमल प्रकाश में। यही सम्मति मानव-सौंदर्य के संबंध में उन लोगों की है, जो पर्दे के पक्षपाती हैं।

संसार के आदि से लेकर आज तक जितने भी उत्तम कवि हुए हैं, वे सब छायावादी थे। वे प्रकाश-वादी या अंधकार-वादी न थे। किसी वस्तु या घटना का सीधे-सादे ढंग से, ज्यों-का-त्यों, वर्णन कर देना यदि प्रकाशवाद है, तो आजकल के बहुत-से छायावादी कवियों का ढंग एकदम अंधकारवाद कहलाना चाहिए।

संसार का जो स्वरूप हमारे इन चर्म-चक्षुओं के सम्मुख है, वह वास्तविक नहीं। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ;
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।

इसी भाव को तुलसीदासजी ने किस सुंदरता से पल्लवित किया है—

मोह-निसा सब सोवनिहारा,
देखिय सपनु अनेक प्रकारा।
यहि जग-जामिनि जागहिं जोगी ;
परमारथी प्रपंच-बियोगी।
जानिअ तबहिं जीव जग जागा,
जब सब बिषय-बिलास-बिरागा।

स्वप्न में हम अनेक वस्तुएँ देखते हैं, जो यथार्थ नहीं होतीं। इसी प्रकार मोह-रूप निशा के घोर अंध-कार में हम लोग सो रहे हैं, और संसार-रूपी महा-स्वप्न देख रहे हैं। हमारा यह समस्त अनुभव एक महाभ्रम है। इस मोह-निशा में प्रपंच-वियोगी ज्ञानी ही जागते हैं। उनका अनुभव यथार्थ होता है। बौद्धों का विज्ञानवाद, शंकर का अध्यास, बर्क्ले का आइडियलिज़्म (Idealism), प्लेटो का दृश्य जगत्

तथा आदर्श जगद्वाद इस पहेली को ही सुलझाने का यत्न-मात्र है। इस संबंध में अँगरेज़ी के सुप्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ का अनुभव जानने योग्य है। वह लिखता है—बचपन में मेरे लिये इससे अधिक कठिन बात कोई न थी कि मैं यह सोचूँ कि मैं भी मर सकता हूँ। इसके साथ तथा इसी प्रकार मैं अपने से पृथक् बाह्य वस्तुओं की बाह्य सत्ता को भी अनुभव नहीं कर सकता था। मुझे जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता था, वह मुझे अपनी ही अमर सत्ता के अंतर्गत-सा प्रतीत होता था। पढ़ने के लिये विद्यालय जाते समय कई बार मैं वृक्षों या दीवारों से चिपट जाता था, ताकि मैं विचार-जगत् (Idealism) के गढ़े से निकलकर बाह्य सत्ता को अनुभव कर सकूँ। कवि आगे लिखता है—मेरे जीवन में एक वह भी समय था, जब मैं अपने से बाहर किसी अतिरिक्त वस्तु की सत्ता का निश्चय करने के लिये उसे हाथ से धकेलकर देखता था। 'मैं हूँ' इस विषय में मुझे संदेह न हो सकता था, किंतु इससे अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु अभाव प्रतीत होती थी।

"Nothing" the poet tells us, "was more difficult for me in childhood than to admit the notion of death as a state applicable to my own being. With a feeling congenial to this, I was often unable to think of external things as having external existence, and I communed with all that I saw as something not apart from, but inherent in, my own immaterial nature. Many times while going to school I have grasped at a wall or tree to recall myself from this abyss of idealism to the reality." And again: "There was a time in my life when I had to push against something that resisted, to be sure that there was anything outside of me. I was sure of my own mind: everything else fell away, and vanished.

सच्चा कवि बाह्य आवरण की आड़ में से वस्तु के वास्तविक स्वरूप को देख लेता है, यही उसका क्रांतदर्शित्व है (कवयः क्रांतदर्शिनः)। वह अपने अनुभव को शब्द-चित्र का रूप दे सकता है, यही उसका कविपन है। चित्रकार, मूर्तिकार, गायक, नट ये भी कवि हैं। इन सबकी आँखें आदर्श-जगत् में खुली रहती हैं। उस आदर्श को ये लोग अनेक रूपों में हमारे सम्मुख रखते रहते हैं। ऐसा करने के लिये उनके पास साधन भिन्न हैं। इस साधन-भेद के कारण ही इनके नाम भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। सर्व-साधारण की दृष्टि उस तत्त्व तक नहीं पहुँचती, इसलिये इन कवियों के वर्णन हमें अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं। बात यह है कि जो अंदर देख रहा है, वह बाहर के विषय में नहीं जानता; जो बाहर देख रहा है, वह अंदर के विषय में अज्ञ है। उनका पृथक्-पृथक् ज्ञान हाथी को देखनेवाले आठ अंधों के अनुभव के समान है। जो दोनो तरफ़ देख सकता है, वही वस्तुतः देख सकता है। और तो देखते हुए भी नहीं देखते। 'पश्यन्नपि न पश्यति।' एक किसान के लिये पावस की उठती नवमेघ-माला में इसके अतिरिक्त क्या सौंदर्य है कि उसके बरसने से कुछ ठंडक हो जायगी, उसे हल चलाने में विशेष कष्ट न होगा, उसकी फ़सल ख़ूब अच्छी होगी। इस उपयोगिता-वाद को छोड़कर उसकी दृष्टि में वृष्टि का कोई भी सौंदर्य नहीं। एक विद्यार्थी की दृष्टि में मनोहर दिवस का महत्त्व केवल छुट्टी हो जाने से है। यदि छुट्टी न हुई, तो वह सुंदर दृश्य उसके लिये उलटा दुखदाई हो जाता है। बेचारे धोबी तथा ऐसा ही अन्य व्यवसाय करनेवालों के लिये वर्षा-ऋतु सच्चे अर्थों में 'बैरिन बरखा' हो जाती है। किंतु कवि के लिये वर्षा-ऋतु के एक-एक अंश में कितना संदेश भरा हुआ है। उसे तो एक-एक बूँद बोलती प्रतीत होती है। एक-एक पत्ती से वह बात करता है। एक-एक फूल उसका अंतरंग सुहृद् होता है।

कालिदास की शकुंतला को अपनी बहन प्रियंवदा

तथा अनसूया से शायद वह प्रेम नहीं, जो तपोवन की नवमल्लिका, वन-ज्योत्स्ना तथा सहकार से है। आश्रम का मृग-शिशु उसे पुत्र से अधिक प्रिय है। कुमारसंभव की पार्वती को जो प्रेम अपने लगाए लता-वृक्षों से था, वह अपनी कोख से उत्पन्न किए स्कंद से न था। कवि लिखता है—

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्
घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत ;
गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां
न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ।
अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्तथा च
तस्यां हरिणा विशश्वसुः ;
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः
सखीनाममिमीत लोचने ।

इस प्रकृति-प्रेम का वर्णन शेक्सपीयर ने अनेक स्थलों पर किया है। उदाहरण के लिये मैं केवल एक पेश करता हूँ—

"Hath not old custom made this life more sweet
Than that of painted pomp? Are not these woods
More free from peril than the envious court?
Here feel we but the penalty of Adam,
The seasons' difference, as the icy fang
And churlish chiding of the winter's wind,
Which, when it bites and blows upon my body,
Even till I shrink with cold, I smile and say
This is no flattery; there are councillors
That feelingly persuade me what I am.
Sweet are the uses of adversity,
Which like the toad, ugly and venomous,
Wears yet a precious jewel in his head;
And this our life, exempt from public haunt,
Finds tongues in trees, books in the running brooks,
Sermons in stones and good in everything."

परमात्मा सबसे बड़ा कवि है, उसका शब्दमय काव्य वेद तथा अशब्द-काव्य यह प्रकृति है। जब हम इस प्रकृति के साथ अपना संबंध स्थापित करना चाहते हैं, तो यह हमें अपनी भाषा स्वयं सिखा देती है। अपने अवाक् बच्चों तथा घर के पालतू पशुओं से भी सब बात-चीत करते ही हैं गूँगे की मा अपने बच्चे से कितनी बातें करती है। इसी प्रकार कवि तथा प्रकृति में भी स्पष्ट भाषा द्वारा वार्तालाप होता है। शेक्सपियर ने ऊपर की कविता में उस वार्तालाप का कैसा सुंदर वर्णन किया है। साधारण लोग अपनी दुनियादारी में फँसे रहकर या पुस्तकों के कीड़े बनकर इस वार्तालाप-सुख से वंचित हो जाते हैं। हममें से कितने ऐसे हैं, जिन्होंने कभी गंगा-तट पर बैठकर, उसकी अनंत धारा पर दृष्टि-पात करते हुए उसमें अपनी चेतना को कुछ क्षण के लिये विलीन कर दिया है? कितनों ने क्षितिज से उठती हुई संध्याकालिक मेघ-सोपान-पंक्ति पर पदन्यास कर स्वर्ग की सैर की है? कितनों ने निस्तब्ध निशीथ में तारों पर टकटकी लगाकर, उनके दिव्य मूक संगीत को सुना है? बात यह है कि प्रकृति अपरिचय के कारण हमारे लिये एक बंद पुस्तक हो गई है। जो उससे बातचीत करता है, वह हमें पागल प्रतीत होता है, उसकी बातचीत को हम बहक कहते हैं। कारण यह है कि आदर्श जगत् इस दृश्य-जगत् से भिन्न है। यह जगत् तो उसकी छाया-मात्र है। कवि भी तो आख़िर मनुष्य ही है। उसकी भी वही भाषा है, जो हमारी। किंतु आदर्श-जगत् के पदार्थ यहाँ के पदार्थों से कुछ भिन्न हैं। किंतु कवि के पास उन पदार्थों के लिये अतिरिक्त शब्द या भाषा नहीं है। इसलिये वह लौकिक भाषा के इन शब्दों को अपने आवश्यकता-नुसार बदल डालता है, तथा उनके द्वारा अलौकिक पदार्थों का वर्णन करने का यत्न करता है। इस अवस्था में उसकी भाषा में, उसके भाव-प्रकाशन में

गूढ़ता, गहनता, अस्पष्टता होना बिलकुल स्वाभाविक है। छायावाद-कविता की सर्वप्रथम पुस्तक वेद है। उसमें एक मंत्र है—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तदु अन्तिके ;
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत।

हम लोगों के लिये परमात्मा कहीं भी नहीं है। परंतु क्रांतिदर्शी को वह सर्वत्र दिखलाई पड़ रहा है। वह अपने अनंत, असीम भाव को लौकिक असमर्थ भाषा में कैसे प्रकट करे—यही छायावाद हो गया। कबीर ने कैसा सुंदर कहा है—

आतम-अनुभव-ज्ञान की जो कोइ पूछे बात,
सो गूँगा गुड़ खाइके कहे कौन मुख स्वाद ?
ज्यों गूँगे के सैन को गूँगा ही पहचान ;
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को ज्ञानि होय सो जान।

उधार लिए हुए शब्दों में अपनी झाँकी या कल्पना का वर्णन करते हैं। ये मध्यम कोटि के कवि होते हैं। एक तीसरे प्रकार के कवि हैं, जो उस अदृश्य जगत् की झाँकी कभी नहीं लेते, उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। उस नई भाषा के शब्दों के द्वारा भी उनके हृदय में कोई निर्देश जाग्रत् नहीं होता, तो भी वे एक कला के तौर पर उन सुंदर शब्दों की एक ऐसी लड़ी बनाते हैं, जो बड़ी मोहिनी प्रतीत होती है, किंतु उनके भीतर उन्हें बाँधनेवाला सूत्र नहीं होता। उन्हें देखकर जनता यह समझती है कि यह भी कोई उत्कृष्ट कविता है, जो अत्यंत गहन होने के कारण हमारी समझ में नहीं आ रही है। परंतु यथार्थ में देखा जाय, तो वहाँ वस्तुतः ही शब्द-संग्रह के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। ये शब्द इतने निर्देशक होते हैं कि अलग-

कभी-कभी दृश्य बायस्कोप के फ़िल्म की तरह प्रतिक्षण बदलता रहता है। कवि भागती हुई भाषा में उसका चित्र बनना चाहता है, उसका एक वाक्य पूरा नहीं हो पाता कि दूसरा शुरू हो जाता है। एक शब्द से उसका काम नहीं चलता, वह दो-दो, तीन-तीन शब्दों की क़लम लगाकर अपना काम चला लेता है। वास्तविक कविता तो यही है। बालकांड में तुलसीदासजी ने श्रीरामचंद्रजी के मुख से श्रीसीताजी का वर्णन अद्भुत लक्ष्मी के रूप में करवाया है। उसमें कवि ने कुछ-कुछ इसी ढंग का आश्रय लिया है। इस प्रकार उत्तम कवियों के पुनः-पुनः व्यवहार से उस वास्तविक जगत् के कुछ पदार्थों तथा उनके वाचक पदों का ज्ञान साधारण लोगों को भी होने लगता है। तब वे भी कल्पना द्वारा उस आदर्श-जगत् का चित्र अपनी आँखों के सम्मुख बनाते हैं। कभी-कभी उन्हें उस जगत् की झाँकी भी मिल जाती है, परंतु अत्यंत क्षणिक। तब वे पुनरंतःप्रेक्षण (Reintrospection) द्वारा उन

अलग भी रहकर अपनी ध्वनि से बहुत-सा अर्थ दे डालते हैं। किंतु उनका मिलकर एक अर्थ नहीं बनता।

असली छायावाद की कविता निरर्थक नहीं, अपितु प्रायः द्व्यर्थक अथवा दोहरी होती है। उसमें एक बिंब-प्रतिबिंब भाव-सा दृष्टिगोचर हुआ करता है। लौकिक भाषा के शब्द होने के कारण एक अर्थ लौकिक तथा विषय अलौकिक होने के कारण दूसरा अर्थ अलौकिक-सा प्रतिभासित होता है। शायद इसीलिये इसका नाम छायावाद है। उपनिषद छायावाद की अत्युत्तम रचनाएँ हैं। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, कबीर, ठाकुर, ये सब छायावाद के सिद्धहस्त लेखक हैं। लेख लंबा हो जाने के कारण उदाहरण न देकर आज यहीं विश्राम की इच्छा है।

* यह लेख गुरुकुलीय साहित्य-परिषद् के वार्षिकोत्सव पर पढ़ने के लिये लिखा गया था।—सं०

अत्रे का "नागरी" लेखन-यंत्र

(पहला परिपूर्ण हिंदी)

टाइप राइटर

सुंदर आकार, सरल रचना, सुंदर और सुडौल अक्षर, मात्रा और चिह्नों से परिपूर्ण, मूल्य में कम होने पर भी मज़बूत, अनेक संस्थाओं तथा संस्थानों में काम में लाया जा रहा है।

आज ही लिखिए—

बच्छराज कंपनी लिमिटेड

३६५, कालबादेवी, बंबई नं० २

---

२१ साल के प्रयोग से] ११००) इनाम [पूर्ण यशस्वी साबित हो चुका है।

प्रसिद्ध नाड़ी-परीक्षक वैद्य मोहनलालसिंह मिरजवाले का

धातु-पौष्टिक, शक्ति-वर्द्धक, कामोत्तेजक ६० वनस्पति-युक्त

मदनमस्त-पाक (रजिस्टर्ड)

इस पाक से स्वप्नावस्था और पेशाब के साथ धातु का गिरना बंद न हो, तो दाम वापस देंगे। हस्त-प्रयोग से अथवा अधिक स्त्री-प्रसंग के कारण आई हुई नामर्दी, धातु का पतलापन, अशक्तता, स्त्री की इच्छा होते ही शीघ्र वीर्य गिर जाना, गरमी का परिणाम कोई भी परमा, संधिवात यह सब रोग नष्ट होकर दस्त साफ़ होता है। भूख, शक्ति और तोल बढ़ जाती है। २१ दिन की खुराक ८४ तोले के डिब्बे का मूल्य ५) रु०, डा० ख० ॥।=)। पुराने रोग के वास्ते तीन डिब्बे का मूल्य ११), तीन डिब्बे का १५।।), डाक-खर्च माफ़। कोई परहेज़ नहीं। सेवन-विधि डिब्बे के साथ भेजते हैं। इस पाक की हज़ारों लोगों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। उनमें मुख्य पदवीधारी डाक्टर, राजवैद्य और स्कूल-मास्टर हैं। इनके सार्टिफ़िकेट देखिए—

१. डाक्टर हरीहर सीताराम गजंदेकर एल्० एम्० पी० एच० एम्० बी० पोस्ट राजंदा ज़ि० अकोला। आपके मदनमस्त-पाक से जीवन-शक्ति का संवर्धन होकर वीर्यहीनत्व, बलहीनत्व, गृहस्थ विकार, इंद्रिय-शिथिलता, संधिवात आदि रोग नष्ट होते हैं। वीर्य, बल और स्मरण-शक्ति बढ़ जाती है। परमेश्वर आपकी कीर्ति बढ़ावे।

२. राजवैद्य रामचंद्र गणेश शास्त्री जोशी पोस्ट बालबे, ज़ि० सितारा। आपका मदनमस्त-पाक अपने रोगी मि० स० बा० देशपांडे ता० लोकलबोर्ड मेंबर को दे दिया था। लिखते हुए आनंद होता है कि उनकी स्वप्नावस्था, धातु का पातलापन और अशक्तता रोग दूर होकर भूख, शक्ति और तोल बढ़ गई। प्रत्येक रोगी को इस पाक का अनुभव करना चाहिए। ऐसी हमारी भावना है।

३. जगन्नाथ रंगनाथ दडपे स्कूल-मास्टर पोस्ट तडपके ज़ि० सोलापुर—आपके मदनमस्त-पाक के दो डिब्बे सेवन करने से १६ प्रकार का आश्चर्यकारक गुण आ गया। मेरा तौल ५ पौंड बढ़ गया। आपका उपकार माता-पिता से भी अधिक समझता हूँ।

सूचना—कृपया अन्य किसी का अनुभव हमारे सिर न रक्खें। इतने पर भी इस प्रभावशाली पाक पर जिसका विश्वास नहीं, उसका रोग-मुक्त होके संसार-सुख भोगने का समय आया नहीं, ऐसा ख़ास समझना। इस पाक में ६० वनस्पति धातुपौष्टिक नहीं और ऊपर के सर्टिफ़िकेट असत्य हैं, ऐसा करनेवाले को ११००) इनाम देंगे।

वैद्य मोहनलाल एस्० औषधालय, पोस्ट मिरज, ज़िला सतारा

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

यौवन से

[श्रीमती "चकोरी"]

कुछ कहो, कहाँ से आए हो,
मतवाली व्यापकता लेकर ?
मरकत के प्याले में भर दी,
यह किसकी मादकता लेकर ?
शैशव के सुंदर आँगन में
तुम चुपके से आ गए कहाँ ?
भोले-भाले चंचलपन में
लज्जा-रस बरसा गए कहाँ ?
ले गए चुरा किस हेतु कहो,
वह जीवन शांत तपस्वी का ;
निष्कपट, अलौकिक, निर्विकार,
शुचि, सुंदर, धीर, मनस्वी का।
उस छोटे-से नंदन-वन में,
जिसमें न पुष्प थे, कलियाँ थीं;
थे भाव नहीं, आसक्ति न थी,
केवल प्रमोद-रँग-रलियाँ थीं।
संकुचित कली की पंखुरियाँ
छू चुपके से विकसा दीं क्यों ?
सौरभ की सोई-सी अलकें
आसक्त ! कहो, उकसा दीं क्यों ?
उस शांत-स्निग्ध नीरवता में
प्रलयंकर झंझावात मचा ;

यह कैसा कायाकल्प किया
यह कैसा माया-जाल रचा !
लज्जा का अंजन लगा दिया
उन चपल हठीली आँखों में ;
ले गए लूट स्वातंत्र्य-सौख्य,
हे हठी ! लुटेरे ! लाखों में !
नन्हे मन ने किस भाँति अचानक
आज प्रणय को पहचाना ;
अभ्यंतर में क्यों सुनती हूँ
पीड़ा का व्यथा-सिक्त गाना !
उर-अंतर किसके मिलने को
अज्ञात भावनाएँ भरकर ;
उन्मत्त सिंधु-सा उबल पड़ा
अपना लेने किसको बढ़कर !
उस सरल हृदय में यह कैसा
अभिलाषाओं का द्वंद्व हुआ ;
उत्थान हुआ या पतन हुआ,
दुख हुआ या कि आनंद हुआ !
अँग-अंग मूक संभाषण की
यह कैसी जटिल पहेली है ;
बतलाओ, तुम्हीं तुम्हारी ही
उलझाई अखिल पहेली है !

हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखक श्रीयुत वृंदावनलालजी वर्मा ऐडवोकेट-कृत

गढ़-कुंडार

ऐतिहासिक उपन्यास

मूल्य २॥) रु०

सजिल्द ३) रु०



संगम

सामाजिक उपन्यास

मूल्य १॥) रु०



प्रेम की भेंट

सामाजिक उपन्यास

मूल्य १) रु०

सजिल्द १।) रु०

कोतवाल की करामात

सामाजिक उपन्यास

मूल्य १) रु०

सजिल्द १।) रु०

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

हमारी विदेश-यात्रा

[रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० (मिश्रबंधुओं में से एक)]

(६)



उसी भारी सड़क पर पाँच-छः बसें नित्य खड़ी रहती हैं, जो सस्ते किराए पर लोगों को दो-दो, चार-चार घंटों की सैर करा लाती हैं। एक-एक बस में तीस-तीस, चालीस-चालीस लोग बैठकर सैर को जाते हैं। सड़कें बहुत ही अच्छी बनी हुई हैं। बस तेज़ भागती है, किंतु थोड़ा भी धक्का नहीं लगता। सड़कों के किनारे भारत के समान नालियाँ या पटरी कहीं नहीं हैं। पूरी-की-पूरी सड़क पक्की बनी होती है, और बहुत स्थानों पर उसके किनारे की भूमि उससे ऊँची होती है। फिर भी पानी से सड़क नहीं कटती, यद्यपि उसी पर होकर वर्षा का पानी बहता है। बात यह है कि योरप में वर्षा अपने यहाँ के समान न होकर कुछ विचित्र होती है। वहाँ जिस दिन एक इंच पानी बरस गया, उस दिन समझिए बहुत बरसा। बहुत करके इंच के अंशों-भर पानी बरसता है, किंतु बरसा प्रायः नित्य ही करता है। पता ही नहीं लगता कि कब बरसेगा और कब नहीं। ख़ासी धूप में भी सैर करने जाने में छाता हाथ में रखना अच्छा है, क्योंकि १५ मिनट के भीतर बादल आकर पानी बरसने लगता है, और आध घंटे में खुल भी ऐसा जाता है, मानो कुछ था ही नहीं। बहुत करके ओवरकोट के स्थान पर लोग साधारणतया भी बारानकोट पहनते हैं। कई बार विना छाता के सैर करने गए, तो पलटने में ही पानी बरसने लगा। देर तक इधर-उधर दूकानों आदि के सामने खड़े रहे। और कभी-कभी चले आने में कपड़े अच्छी तरह भीग भी गए। कोई वर्षा-ऋतु है ही नहीं। ऋतुएँ केवल गर्मी और जाड़े की हैं। बहुत करके चार ऋतुएँ कहलाती हैं, अर्थात् जाड़ा स्प्रिंग, (वसंत), गर्मी और आटम (शरद्), वर्षा समय-समय सदा हुआ करती है। एक-एक दिन-रात में कभी-कभी चार-चार, छ-छ बार पानी बरसता है। प्रति सप्ताह चार-छ बार तो अवश्य ही बरसता है। जो वर्षा हमारे हिसाब से नितांत साधारण होती थी, उसमें भी वहाँ के लोग कहने लगते थे कि पानी काटे देता है। हम लोगों की-सी दस-दस, पाँच-पाँच इंच-वाली वर्षा वहाँ होती ही नहीं। कहते हैं, हमारे यहाँ मेघ कुत्ते-बिल्ली नहीं बरसता।

समुद्र-तट के नगरों में इँगलैंड तथा स्विट्ज़रलैंड में सैरवाली ऋतु-भर रोशनी अच्छी कराई जाती है। स्विट्ज़रलैंड में समुद्र का मज़ा भारी झीलों से आता है। वहाँ बीस-बीस, पचीस-पचीस मील तक लंबी झीलें होती हैं। उन्हीं के किनारे शहरों में रोशनी होती है। होव ब्राइटन में समुद्र के किनारे अच्छी तिरंगी रोशनी की जाती है। समुद्र के ऊपरवाले सदनों पर भी बहुत अच्छी रोशनी होती है। बिजली के बल्बों द्वारा एक स्थान पर ऐसा भाव दिख-लाते हैं कि एक-एक रेखा के बल्ब उत्तरोत्तर गुल हो-होकर फिर जलने लगते हैं, जिससे देखने में ऐसा आता है कि मानो रोशनी घूमती है। ऐसा ही बराबर घंटों तक हुआ करता है, जिसके देखने में मज़ा आता है। सिनेमा आदि के सामने फाटक पर एक स्थान पर लाल रेखाएँ बनी थीं, जिनसे फाटक की आकृति की रोशनी नज़र आती थी। समुद्र-तट के अतिरिक्त ब्राइटन में थोड़ा ही पीछे हटकर पार्क में वृक्षों पर ऐसी रोशनी की जाती है, जिससे रोशनी के वृक्ष ही दूर तक देख पड़ते हैं। वहाँ सिनेमा ऐसा होता है कि एक

तमाशा समाप्त होने पर दूसरा नया होने लगता है। नए लोग आते जाते तथा पुराने उठते जाते हैं। यह समझ ही नहीं पड़ता कि कहाँ से पुराने टिकट के दाम समाप्त हुए। चाहे जितनी देर तक बैठे रहिए, कोई कहता भी नहीं कि अब आपका टिकट समाप्त हो गया। शायद बहुत देर बैठने से कोई टोकता हो। हमने तो सदा एक टिकट-भर सोचकर देख लिया और अनंतर स्थान छोड़ दिया। ब्राइटन में एक अक्वेरियन भी है, जिसमें छ पेंस देने से मनुष्य पूरा दृश्य देख सकता है। वहाँ जल-जंतु एकत्रित हैं। सामने शीशा लगा रहता है, और उसके पीछे पानी भरा रहता है। उसी जल में भाँति-भाँति के जल-जंतु प्रायः ३० या ३५ ख़ानों में एकत्रित हैं।। कई प्रकार की रंगीन मछलियाँ, केकड़े, साँप, दरियाई शेर आदि छोटे-बड़े जंतु मौजूद हैं। इँगलैंड में लोगों से रास्ता आदि पूछने से साधारण लोग बड़े अदब से उत्तर देते हैं। एस सर (हाँ हुज़ूर) कहकर बोलते हैं, और दस-पंद्रह क़दम चलकर उचित बात बतला देते हैं। पूछने से ज्ञात हुआ कि वहाँ का नियम है कि बेजाने हुए मनुष्य से बात करने में सर कहकर बात करनी चाहिए। पहले जब हमको यह नियम ज्ञात न था, तब हमारे विना सर कहे बात करने पर भी वे लोग उत्तर सर कहकर ही देते थे। हमारे सर आदि न कहने से बुरा नहीं मानते थे, क्योंकि जानते थे कि ये लोग बाहर के होने से हमारे देश की पूरी सभ्यता से अनभिज्ञ होंगे। यदि किसी जाने हुए व्यक्ति से सर आदि कहिए, तो सम्मान-सूचक है, और बेजाने हुए मनुष्य को सर कहना साधारण भद्रत्व का अंग है। वहाँ भद्रत्व का व्यवहार बहुत अधिक होता है। बहुत ही शिष्ट भाषण तथा व्यवहार करते हैं। हमारे यहाँ हिंदुओं में बहुतों का यह विचार है कि अधिक शिष्टता दिखलाना एक प्रकार से अपनपौ के प्रतिकूल है। एक बार मुझसे एक नए मित्र ने कहा कि हमारे कमरे में चलकर क्या रेडियो का गाना सुनिएगा? मैंने उत्तर दिया, बड़ी ही कृपा हुई (So kind of you to make the offer)। इस पर बोले कि पंडितजी! क्या आपको हम लोगों से ऐसा अति व्यवहार करना चाहिए? ऐसे विचार विलायत में नहीं हैं। एक बार एक ऊँचे अफ़सर के यहाँ अतिथि होकर गए, तो जितने दिन उसके यहाँ रहे, उतने दिन बराबर जब हमारे साथ वह किसी स्थान को जाते थे, तब विवश करके मुझी को आगे चलाते थे। यदि जान-बूझकर मैं कमरे में पीछे रह जाता था, तो भी दरवाज़े पर खड़े हो जाते थे। और जब तक मैं निकल न जाऊँ, तब तक दरवाज़ा ही पार न करते थे। मैंने एक बार कहा कि भला एक बार तो आगे चले जाइए, तो बोले कि मैं अपने अतिथि का एक बार निरादर क्यों करने लगा? यह घटना भारत ही में घटी थी। विलायत में भी यही हाल है। अपने यहाँ इतना विचार करना कुछ दिखलौवापन-सा समझा जाता है, किंतु वहाँ यह साधारण भद्रत्व का द्योतक है।

प्रायः १५ दिन ब्राइटन होव में रहना हुआ। समुद्र-तट की सैर वहाँ बहुत ही सुखद थी। बसों आदि की सैर भी बहुत अच्छी रही। बसों पर जाने में ऐसे-ऐसे रास्ते पहले ही से नियत किए हुए हैं, जिनमें अच्छे-अच्छे दृश्य तथा नगर पड़ पाते हैं। जाते एक मार्ग से हैं और लौटते दूसरे से। मार्ग में नए-पुराने गृह, लान, पार्क आदि की अपेक्षाकृत उन्नति देखने का अच्छा डौल लगता है। जो भारतीय सज्जन टारकी, ब्राइटन आदि में दिखाई पड़ते थे, वे भारत के नाते से बड़ा ही सभ्य व्यवहार करते थे। टारकी तथा ब्राइटन ही में रहकर जल तथा थल की सैर से अनेक ग्राम, नगर, स्थान आदि देखे। इन्हीं स्थानों पर रहते हुए तीन बार लंदन नगर की भी सैर की। बड़ा ही उत्कृष्ट शहर है। सड़कें ख़ूब चौड़ी-चौड़ी हैं। एक ओर से दूसरी ओर सड़क पर जाने में लोगों के मोटर आदि के नीचे दब जाने का भय है। इससे सड़कों के बीच में यत्र-तत्र चार-चार, पाँच-पाँच इंच ऊँचे छोटे-बड़े चबूतरे बना देते हैं जिन्हें आप (Islana) कहते हैं। जानेवाली सवारियाँ उनके

एक ओर चलती हैं, और आनेवाली दूसरी ओर। अतएव जो कोई सड़क पार करना चाहे, वह एक ओर की सवारियों को देखकर टापू तक चला जाय, और वहाँ ठहरकर इसी प्रकार दूसरी ओर चला जाय। जहाँ टापू नहीं होते, वहाँ भी आधी सड़क तक आकर कुछ ठहर जाय, और देख-भाल करके दूसरी ओर जाय। जब तक बड़े शहरों में चलने का अभ्यास न हो, तब तक लंदन आदि में सड़क पार करना भयप्रद अवश्य है। मैं तो कभी बड़े शहरों में रहा नहीं, और रहने पर भी मोटर पर चलने का विशेष अभ्यास था, सो योरप में जब पैदल चलने के मौक़े आए, तब जान पड़ा कि चलने का शास्त्र भी बहुत सुगम नहीं है। एक बार मोटर के नीचे मानो कुचल ही गया था। बच जाना मेरी बुद्धिमानी से न था, वरन् मोटर चलानेवाले ने झट गाड़ी खड़ी कर ली, और मेरी ओर मुस्किराया। मैं चुपके से निगाह बचा-

पर भी सवारियों की ऐसी गिचपिच रहती है कि कभी-कभी एक पार से दूसरे पार तक सड़कों का किनारा तक नहीं दिखता। प्रायः चार-चार, पाँच-पाँच, छ-छ श्रेणियाँ सवारियों की एक साथ, एक ही सड़क पर, निकला करती हैं। कुछ दूर चला-चलाकर पुलीसवाले चौराहों पर उन्हें रोक दिया करते हैं, जिसमें दूसरी सड़कों पर आनेवाली सवारियाँ निकल जायँ। ट्रमें तो भारत में भी दुमंज़िली तक होती हैं, किंतु लंदन में बसें भी दुमंज़िली हैं। वहाँ टैक्सियाँ हैं तो सस्ती, किंतु रास्तों में रोक-टोक इतनी है कि निश्चित स्थान पर पहुँचने में काफ़ी देर लगती है।

लंदन में एक रात तथा चार दिन रहने का डौल लगा था। एक दिन गाइड करके वहाँ की सैर की। गाइड की मदद प्रायः चार घंटे तक ली। बेचारे ने वेस्ट मिनिस्टर अबी, टेम्स नदी, लंदन टावर, ट्यूब रेल आदि दिखलाए तथा टैक्सी पर चढ़ाकर शहर भी घुमाया।

> सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक श्रीयुत सुदर्शन—हिंदी की जो अच्छी-से-अच्छी पत्रिकाएँ हैं, सुधा उनसे भी अच्छी है।

कर खिसक गया। प्रतापनारायण के बहुत कुछ समझाने पर भी मुझे अंत पर्यंत योरप में चलना न आया। पैरिस में दो-चार बार ऐसा मौक़ा पड़ा कि बिना टापुओंवाली सड़क को पार ही न कर सका! और जब कांस्टेबुल ने सारी मोटरें खड़ी करके रास्ता बंद कर दिया, तब कहीं मुझे सड़क पार करने की हिम्मत पड़ी। पुलीसवाले जान लेते थे कि मैं बाहरी मनुष्य होने से योरपीय यातायात का अभ्यस्त नहीं हूँ, सो बेचारे बिना कहे भी मदद कर देते थे। वहाँ के पुलीसवाले राह बतलाने आदि में बड़े सज्जन होते हैं। होते तो भारतीय पुलीसमैन भी अच्छे हैं, किंतु यहाँ पुलीस की निंदा करने का फ़ैशन है। जब मैंने योरपीय पुलीस की भारी प्रशंसा सुनी थी, तो दो-चार बार आज़माने ही को भारतीय पुलीस से मार्ग आदि पूछे थे। बेचारे बड़ी सभ्यता-पूर्वक कुछ दूर चलकर मार्ग बतला आए थे। लंदन में बड़ी चौड़ी सड़कें होने

वेस्ट मिनिस्टर अबी एक बहुत पुराना गिरजाघर है, और उसी गिरजा के अंदर देश के बड़े-बड़े लोगों के शव गड़े हैं। क़बरों पर थोड़ी भी उँचाई नहीं है। सब कहीं साधारण फ़र्श हैं। उसी पर होकर लोग चलते हैं। अज्ञात युद्धकर्ता की क़ब्र भी वहीं है। केवल बहुत ही बड़े लोग वहाँ गड़े हैं। उसी स्थान पर एक और वैसा ही गिरजाघर है। अन्य गिरजाघरों में भी क़बरें हैं। लंदन टावर में बहुत-से ऐतिहासिक सामान एकत्रित हैं, तथा ब्रिटेन के शासकों के ताज, ख़ंजर आदि भी हैं। उनमें कोहनूर हीरे के भी दर्शन होते हैं। अच्छे-अच्छे जवाहिरात हैं। ट्यूब रेलवे पृथ्वी के नीचे-नीचे चलती है। कहलाने को ट्यूब कहलाती है, किंतु होती ख़ासी बड़ी है। बंबई में बी० बी० सी० आई० रेलवे की लोकल गाड़ियाँ जैसी वहाँ के मोहल्लों में दौड़ा करती हैं, कुछ-कुछ उन्हीं के समान ट्यूब के डब्बे हैं, केवल उनमें प्रत्येक गाड़ी से दूसरी

गाड़ियों में जाने का रास्ता रहता है, जो बात भारत में नहीं है। थोड़ी ही देर में लंदन के कई स्थानों के देखने से गाइड महाशय बोले कि "सर! अमेरिकन लोग स्थान देखने में चलते जाते हैं, किंतु आप दौड़ते गए हैं।" प्रयोजन यह कि वे लोग वस्तुएँ देखने को ठहरते नहीं, वरन् उनके बीच में होकर चले-भर जाते हैं, और इतने ही में जो कुछ देखा, सो देख लेते हैं। एक स्थान पर ब्रिटेन के बड़े आदमियों, राजाओं आदि के मोम-चित्र बहुत ही बढ़िया रक्खे हैं। देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। एक दिन टैक्सी करके कई घंटे तक शहर में घूमते रहे। वहाँ का पश्चिमी भाग बड़े आदमियों का निवास-स्थल है और पूर्वी ग़रीबों का। पश्चिमी भाग कई बार देख ही चुके थे, सो टैक्सीवाले से कहा कि पूर्वी भाग दिखलाओ। उसने कहा, बहुत अच्छा, किंतु प्रायः दो घंटे तक पश्चिमी भाग में ही फिरता रहा। बार-बार कहता जाता था कि अब पूर्वी ही भाग को चल रहे हैं। समझ पड़ता था कि पूर्वी भाग दिखलाने में उसे लज्जा लगती है। बड़ी कठिनता से, बहुत कहने-सुनने पर, पूर्वी की ओर ले गया, और पश्चिमी के पीछे वह इतना हल्का जँचा कि हम लोग भी अति शीघ्र वापस चले गए। एक दिन अपने पुराने अफ़सरों अथवा मित्रों—सर यडवर्ड शैमियर, सर लूई स्टुवर्ट, सर थियो डोर मारिसन आदि—से मिले, तो सब लोग बड़े प्रेम से मिले। बहुत देर तक भारतीय मित्रों तथा राजनीतिक स्थिति की बातें करते रहे। लंदन ज़ू देखने में प्रायः छ घंटे लगे। संसार-भर से भाँति-भाँति के जानवर वहाँ एकत्र किए गए हैं। तोते बहुत ही अच्छे-अच्छे हैं। अन्य पक्षी भी बड़े सुंदर हैं। उनके रंग, बोली आदि देखते ही बनती है। बंदर, ऊँट, रीछ, गीध आदि अनेकानेक प्रकार के हैं। कुछ ऊँटों के दोहरे कूबर हैं। उन्हीं के बीच में एक मनुष्य आराम से बैठता है। भाँति-भाँति के भैंसे, ज़िराफ़, हाथी, भालू, तिब्बती बैल, शेर, चीते, दरियाई शेर आदि हैं। जल-जंतुओं की अच्छी बहार है, और सर्प भी अनेकानेक प्रकार के हैं। एक जंतु चीता तथा शेर के संसर्ग से उत्पन्न हुआ है। मज़े में अपने कटहरे में फिरता है, और ख़ासा तगड़ा है। इँगलैंड में थिएटर ऐसी सच्चाई से किए जाते हैं कि वास्तविक सजीव घटनाएँ दिखती हैं। खेल समझ ही नहीं पड़ता है। नटों की क्रियाएँ बहुत ही अच्छी होती हैं, किंतु पर्दे आदि बिलकुल फीके रहते हैं। आपरा में गाने तथा पर्दों का भी कुछ-कुछ मज़ा रहता है, किंतु अपने यहाँ के थिएटरों के समान नहीं।

१६ ऑक्टोबर को ब्राइटन से स्विटज़रलैंड जाने का विचार था। उसके दो दिन पूर्व रियासत (छतरपुर) का तार मिला कि जल्द वापस आना चाहिए, क्योंकि आवश्यक सरकारी काम पेश है। बड़ी आफ़त आई। उधर डॉक्टरों ने कहा था कि स्विटज़रलैंड में महीना-सवा महीना रह लेना स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है, और इधर यह आवश्यकता आ पड़ी। विवश होकर तार दिया कि अभी वापसी असंभव है, जैसे हो काम चलाया जाय। हमारे दो अँगरेज़ मित्रों ने जब इस तार का हाल सुना, तो कहा कि आपके महाराज बड़े स्वार्थी समझ पड़ते हैं कि पंद्रह वर्ष की नौकरी के पीछे तो योरप जाने की आज्ञा दी, और फिर भी बीच ही में बुलाते हैं। मैंने कहा, ऐसा नहीं है। कुछ ऐसा ही कठिन काम पड़ गया होगा, नहीं तो कभी इस प्रकार कष्ट न देते। फिर भी शारीरिक आवश्यकता के आगे कठिन काम को भी अनावश्यक मानकर न वापसी का तार दे दिया। १६ ऑक्टोबर को प्रायः आठ बजे की गाड़ी पर रवाना हो गए। हमारे बालक मित्र महाशय अपनी मोटर पर स्टेशन पहुँचा गए, और बड़े प्रेम-पूर्वक इँगलैंड से बिदा दे गए। प्रायः डेढ़ घंटे की रेलवाली यात्रा समाप्त हो गई, और स्टीमर पर बैठकर फ्रांस के बंदरगाह डियम के लिये रवाना हुए। यद्यपि इँगलिश चैनल कहीं-कहीं केवल २३ मील चौड़ी है, किंतु मैंने दोनो बार कुछ चौड़े स्थानों पर उसे पार किया। जाने में प्रायः छः घंटे स्टीमर पर लगे और वापसी में साढ़े तीन। हवा बिलकुल तेज़ न थी।

समुद्र का पानी बहुत ही काली ब्लूब्लैक स्याही के समान था, और दोपहर तथा तीसरे पहर उसे पार करने से सूर्य की किरणों से वह ख़ूब चमक रहा था। यात्रा बड़ी सुखद रही। ठीक समय पर प्रायः ३ बजे डियम पहुँचे। रेल तैयार खड़ी थी। तुरंत उतरकर उस पर जा बैठे, और वह प्रायः एक घंटे के पीछे चल पड़ी। फ्रांस देखने का यह पहला अवसर था। बहुत ध्यान-पूर्वक इधर-उधर देखते हुए चले। यहाँ की खेती अच्छी मालूम पड़ी। नहरों का भी अच्छा प्रबंध समझ पड़ा। प्रायः ८ बजे शाम को पैरिस पहुँचे। बोलने में इसे पैरी कहते हैं। हमारे ऐजंट कुक ऐंड सन का एक आदमी मिला। उसने असबाब, टैक्सी आदि का प्रबंध कर दिया। कोई कष्ट न हुआ। होटल पहले ही तै हो चुका था। रास्ते में टैक्सियों आदि की भीड़-भाड़ लंदन के प्रायः समान ही थी। इधर-उधर ठहरते-ठहराते टैक्सी होटल पर पहुँची। अच्छे कमरे मिले। खाना खाकर आराम से सोए। दूसरे दिन ब्रेकफ़स्ट के पीछे कुक ऐंड सन का ऑफ़िस खोजने पैदल चले। प्रयोजन यह था कि प्रातःकालीन व्यायाम हो जाय, तथा शहर देखने, लोगों से मार्ग पूछने, एवं साइनबोर्ड आदि समझने का भी कुछ अनुभव हो। होटल से ही शहर का एक नक़्शा ले लिया था। उसी के सहारे सड़कें, गलियाँ आदि देखते हुए चले।

हिंदी-नवरत्न

परिवर्द्धित-संशोधित तृतीय संस्करण

१. तुलसीदास

२. सूरदास

३. देवदत्त

४. बिहारीलाल

५. त्रिपाठी-बंधु भूषण-मतिराम

६. केशवदास

७. कबीरदास

८. चंदबरदाई

९. हरिश्चंद्र

हिंदी-भाषा के सर्वोत्तम कविरत्नों के आलोचना-पूर्ण जीवन-चरित्र

लेखक—

हिंदी-संसार के प्रख्यातनाम समालोचक "मिश्रबंधु"

इस पुस्तक की प्रशंसा बड़े-बड़े विद्वानों ने की है। साहित्य-प्रेमी और साधारण-जन, सबको समान भाव से यह पुस्तक आनंद देगी। इस बार यह पुस्तक पहले से लगभग दुगुनी बड़ी और दसगुनी उपयोगी हो गई है! इसे सामयिक और सर्वांग-पूर्ण बनाने में कोई भी चेष्टा बाकी नहीं रक्खी गई। अब तक की साहित्यिक खोजों के अनुसार संशोधन और संवर्द्धन होने से पुस्तक अप-टु-डेट हो गई है नवरत्न का यह संस्करण सब तरह आदर्श, अद्वितीय और सर्वांग-सुंदर है। अब की चित्र सब तिरंगे कर दिए गए हैं, पर मूल्य वही रक्खा गया है।



११ रंगीन चित्रों से समलंकृत

मूल्य ४॥), सुंदर सुनहरी जिल्द ५)



१. [illegible]

सूरदास

३. देवदत्त

४. बिहारीलाल

५. त्रिपाठी-बंधु
भूषण-मतिराम

६. केशवदास

७. कबीरदास

८. चंदबरदाई

९. हरिश्चंद्र

हिंदी-नवरत्न

परिवर्द्धित-संशोधित तृतीय संस्करण

हिंदी-भाषा के सर्वोत्तम कविरत्नों के
आलोचना-पूर्ण जीवन-चरित्र

लेखक—
हिंदी-संसार के प्रख्यातनाम समालोचक "मिश्रबंधु"

इस पुस्तक की प्रशंसा बड़े-बड़े विद्वानों ने की है। साहित्य-प्रेमी और साधारण-जन, सबको समान भाव से यह पुस्तक आनंद देगी। इस बार यह पुस्तक पहले से लगभग दुगुनी बड़ी और दसगुनी उपयोगी हो गई है! इसे सामयिक और सर्वांग-पूर्ण बनाने में कोई भी चेष्टा बाकी नहीं रक्खी गई। अब तक की साहित्यिक खोजों के अनुसार संशोधन और संवर्द्धन होने से पुस्तक अप-टु-डेट हो गई है नवरत्न का यह संस्करण सब तरह आदर्श, अद्वितीय और सर्वांग सुंदर है। अब की चित्र सब तिरंगे कर दिए गए हैं, पर मूल्य वही रक्खा गया है।



२१ रंगीन चित्रों से समलंकृत
मूल्य ४॥), सुंदर सुनहरी जिल्द ५)



दमयंती

[चित्रकार—श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू]

Ganga Fine Art Press, Lucknow.

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर ... [illegible]

क्या आप घर बैठे अपना माल बेचना चाहते हैं ?

तो आइए

'सुधा'

में

विज्ञापन छपवाइए !

साधना औषधालय
ढाका (बंगाल)

ब्रांच—श्यामबाज़ार कलकत्ता (ट्रैम डिपो के समीप)

अध्यक्ष—श्रीयोगेशचंद्र घोष एम्० ए०, एफ़्० सी० एस्० (लंडन)

भूतपूर्व कैमेस्ट्री-प्रोफ़ेसर, भागलपुर कॉलेज

यदि रोग की अवस्था ठीक-ठीक लिखी गई है और हमारी राय के अनुसार काम लिया जाय, तो रोग चाहे जैसा हो, फ़ायदा अवश्य पहुँचेगा। हमारे औषधालय का बड़ा सूचीपत्र मँगाकर पढ़िए।

मकरध्वज (स्वर्णसिंदूर)

(विशुद्ध स्वर्णघटित) मूल्य तोला ४) रु०

मकरध्वज—शास्त्रोक्त रीति से स्वर्ण, पारा, आमलासार गंधक इत्यादि से तैयार किया गया है। सर्व-रोग-नाशक अद्भुत ओषधि है। चाहे जैसा रोग हो, इसके सेवन से दूर हो जाता है।

च्यवनप्राश

भयंकर-से-भयंकर श्वास और कास, दमा और खाँसी और फेफड़े के संपूर्ण रोगों के लिये अत्यंत हित-कारी है। सुंदरता, ताक़त तथा जीवन को बढ़ानेवाला सबसे उत्तम रसायन है। मूल्य १ सेर का ३) रु०।

शुक्र-संजीवनी

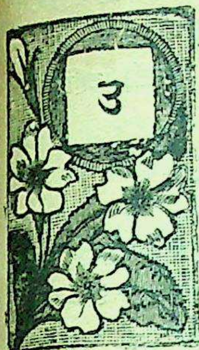
शुक्र-संजीवनी—धातु-दुर्बलता, शुक्र-हीनता, स्वप्न-दोष, नपुंसकत्व इन सबों के लिये अत्यंत लाभ-दायक है। बुढ़ापा, क्षयरोग, गठिया, बहुमूत्र, बदहज़मी, उन्माद इत्यादि रोग नष्ट हो जाते हैं। १ सेर का दाम १६) रु०

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखिए कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

कुंडली-चक्र

[श्रीयुत वृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ऐडवोकेट]

(१९)



उसी शाम को भुजबल अजित के घर पहुँचा। वह कहीं घूमने के लिये निकल गया था। भुजबल को उस दिन अजित के इंतज़ार में बहुत देर बैठना पड़ा। अजित बहुत गई रात लौटा।

बहुत थका हुआ मालूम पड़ता था। चाहता था कि किसी से कोई बात न करके बिस्तरों में जा पड़ूँ। परंतु जो भुजबल उसके लिये इतनी देर से बैठा था, वह वहाँ से सहज ही थोड़े जानेवाला था।

भुजबल का भाव आज उतना नम्र न था, जितना पहले दिनों में रहा करता था, परंतु इस पर अजित ने कोई ध्यान नहीं दिया।

भुजबल ने कहा—"मास्टर साहब, हम एक काम के लिये बड़ी देर से बैठे हुए हैं। आश्चर्य कर रहे थे कि कहाँ लापता हैं।"

"कहिए, क्या है? मेरे सामर्थ्य का काम होगा, तो करने की चेष्टा करूँगा।"

"शिवलालजी का नाम मैंने पहले भी आपके आगे लिया है। वह अपनी जाति के एक बड़े ज़मींदार हैं। आजकल बेचारे बड़े अर्थ-संकट में हैं। ज़रा ख़रचीले ज़्यादा हैं, इसलिये सिर पर बहुत ऋण हो गया है। साहूकार उनकी ज़मींदारी पर नियत लगाए हुए हैं। मैं चाहता हूँ कि वह बच जाय, नीलाम न हो। आप इस परोपकार में मेरी सहायता कर दीजिए।"

"मेरे पास तो कानी कौड़ी भी नहीं है।"

"कुछ हर्ज नहीं, आपके पास जो कुछ है, उससे मेरी मदद कर दीजिए।"

"वह क्या?"

"आप बाबू ललितसेन से कहकर रुपया दिलवा दीजिए। वह आपको बहुत मानता है। आपके कहने से रुपया दे देगा। हम आपको दलाली देंगे—एक ख़ासी रक़म।"

अजित के सिर पर वज्र-सा टूटा। चेहरा लज्जा के मारे लाल हो गया, और माथे पर पसीने की बूँद आ गई। बोला—"वह मेरा कहना न मानेगा। बहुत ज़िद्दी है। दलाली का प्रसंग फ़िज़ूल है।" अजित का गला भर्रा गया।

भुजबल ने अनिरुद्ध भाव से कहा—"आपका हाल हनुमानजी-सरीखा है। जब तक कोई उनको उलहना देकर न जगाता था, तब तक वह अपने अतुल पराक्रम को अनुभव ही न करते थे।" और हँसने लगा। दलाली की बात नहीं कही।

उसकी हँसी अजित के कलेजे में बर्छी-सी धस गई। जो कहना चाहता था, वह मुँह से न निकला। घिग्घी-सी बँध गई।

भुजबल ने फिर कहा—"एक ज़रा-सी बात के लिये आप हामी नहीं भर सकते। अफ़सोस! इसमें आपको कुछ श्रम भी तो न पड़ेगा।"

कलेजा कड़ा करके अजित ने कहा—"मैं आज ही उनकी नौकरी छोड़कर आया हूँ। इसलिये असमर्थ हूँ।"

"क्यों?" भुजबल ने आश्चर्य के साथ पूछा।

अजित क्षुब्ध हो गया। बोला—"इससे आगे पूछने की आपको कोई आवश्यकता नहीं।"

एक दरिद्र आदमी में इतना अहंकार देखकर ललित के भावी बहनोई ने कहा—"ओह हो! ओह हो! यह बात!" और वहाँ से चला गया।

(२०)

भुजबल की सगाई रतन के साथ हो गई, यह बात अनेक बिरादरीवालों को न केवल छावनी में, किंतु आस-पास के गाँवों में भी मालूम हो गई। भुजबल ने छावनी का रहना कम कर दिया। विवाह शीघ्र होनेवाला था। तो भी कभी-कभी थोड़ी देर के लिये हो जाता था, और प्रायः अजितकुमार से मिल लेता था। गायन-वादन तो न होता था, परंतु इधर-उधर की बातें हो जाती थीं। भुजबल अपनी बारात में कम-से-कम दो-एक अच्छे पढ़े-लिखे आदमी ले जाने का इच्छुक था।

बारात के लिये कुछ घोड़े और तड़क-भड़क का सामान मऊ-सहानिया के रईस से माँगने के लिये एक दिन वहाँ गया। ससुराल पहुँचा। साली और सास दोनो मिलीं। पूना प्रसन्न मालूम पड़ती थी और उसकी मा उदास।

मा ने भुजबल से कहा—"मैं नहीं जानती थी कि ऐसे चुपचाप विवाह कर लोगे। हम लोगों को तो भूल ही गए!"

भुजबल निरुत्तर-सा हुआ, परंतु प्रयास करके बोला—"क्या करूँ, बड़ी आफ़त आई है। सच मानो, झूठ नहीं कहता। बहुत टाला, परंतु ललितसेन गले पड़ गया। ज़बरदस्ती जन्म-पत्री ले ली। इत्तिफ़ाक़ से मिल भी गई। सगाई-संबंध का हठ किया। लोगों से ज़ोर डलवाए। तब क्या करता? मंज़ूर करना पड़ा। बेबस हो गया।"

पूना की मा ने लंबा घूँघट खींचकर कहा—"पूना के लिये टीपना माँगी ही काहे को होगी। अपनी चिंता में दूसरे की थोड़े ही कुछ सुहाती है।"

भुजबल ने विश्वास दिलाते हुए कहा—"मैंने माँगी, हठ किया, परंतु उन्होंने बिलकुल नाहीं कर दी। जब वह अपनी बहन के ब्याहने के स्वार्थ में लिपट रहे थे, तब हमारी साली के साथ संबंध कैसे कर सकते थे!" भुजबल के स्वर में सचाई की खनक थी, परंतु पूना की मा को बिलकुल विश्वास नहीं हुआ। बोली—"पुरुषों की माया को भगवान् ही जाने, हम अबोध स्त्रियाँ तो समझने में असमर्थ हैं। अब यह बतलाओ कि पूना के लिये क्या करूँ? मेरी तबियत फिर ख़राब रहने लगी है। अब जीने की बिलकुल इच्छा नहीं है। तुम तो ब्याह करके फिर यहाँ कभी आने का नाम न लोगे। मेरे मायके में जो भाई-बंद हैं, वे हम लोगों की जीवितों में गिनती नहीं करते। पूना का क्या होगा?"

वह घूँघट के ही भीतर आँसू बहाने और पोंछने लगी।

भुजबल ने कहा—"एक वर मेरी निगाह में है। वह मास्टर, जो उस दिन मेरे साथ आए थे—" पूना की मा ने बात टोककर कहा—"पूना चाहे क्वाँरी ही मर जाय, पर उस गवैए-नचैए के साथ उसकी सगाई न करूँगी। और कोई योग्य वर जाति में नहीं है?"

भुजबल ज़रा कुढ़ गया। बोला—"होंगे, और मिल भी जायँगे, पर न-मालूम कितना समय ढूँढ़-खोज में लगाना पड़ेगा, मास्टर की भी जन्म-कुंडली ले लूँगा। तुम नाहक़ हठ करती हो।"

इसके बाद बारात के सामान की फ़िक्र में भुजबल चला गया।

मा ने बेटी को बुलाया। वह एक ओर छिपी हुई कान लगाकर बात सुन रही थी। पुकार सुनकर भी ज़रा ठहरकर आई।

मा ने उससे कहा—"मैं जल्दी भगवान् की शरण में जाऊँगी। तुम्हारा क्या होगा?" पूना ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया—"मैं भी तुलसीजी की शरण में चली जाऊँगी। इसीलिये तो उनकी पूजा किया करती हूँ।"

मा ने हाय लेकर कहा—"पूजा का कुछ फल नहीं हुआ। मुझे आशा थी कि ऐसा अच्छा घर मिल जायगा। भाग्य फूट गए।"

पूना हँसकर बोली—"बहुत अच्छा हुआ!"

"अच्छा हुआ, क्यों री मूर्ख!" मा ने उत्तेजित

कंठ से कहा—"किसी हलवाहे के साथ ब्याह होगा, तब अच्छा होगा ?"

पूना झाड़ू लेकर स्थान बुहारने लगी। उसकी मा ने कहा—"एक बात की मुझे चिंता है। मेरे मरने के पीछे तेरे जीजा कहीं उस मास्टर से संबंध न कर दें।"

पूना ने कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरी ओर मुँह करके झाड़ू देने लगी।

उसकी मा ने कहा—"पूना, तुलसी की पूजा छोड़कर, देवीजी को जल चढ़ाया कर। मैं चाहती हूँ कि मरने के पहले तुझको सुखी देख लूँ।"

पूना ने झाड़ू रख दी। सीधी खड़ी हो गई। गर्दन ज़रा तिरछी करके बोली—"मैं तुलसी की पूजा नहीं छोड़ूँगी। तुम मुझसे और कुछ मत कहो।"

घर में बहुत दिनों से केवल मा-बेटी ही थीं, इसलिये परस्पर संकोच कुछ कम हो गया था।

मालूम होती थी। परंतु जिस तरह कड़ी धूप में दलदार फूल कुम्हला जाता है, उसी तरह लहचूरा के १०-१२ दिन के निवास ने रतन को अस्वस्थ कर दिया। ललितसेन ने यह अंतर लक्ष्य कर लिया, और उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि अब भुजबल को छावनी में ही रक्खूँगा और रतन को घर पर। रतन ने जो अनुभव किया, वह प्रेम नहीं था, आँधी थी। उसको भुजबल और लहचूरा भय के पर्याय जान पड़ने लगे।

नयागाँव छावनी में बँधकर रहने के पहले भुजबल को शिवलाल की ज़मींदारी और उसके ऋण का प्रबंध करने की चिंता हुई।

उसके और ललितसेन के परस्पर व्यवहार में दूरी कम रह गई थी। बहनोई आयु और पद में छोटा होने पर भी समाज की रीति के अनुसार बड़ा होता है। भुजबल को भी इस बड़प्पन का अनुभव हुआ।

एक दिन उसने ललितसेन को फिर शिवलाल

(२१)

यथासमय शान-शौक़त के साथ भुजबल की बारात आई। आदमी कम थे, परंतु तड़क-भड़क बहुत ज़्यादा थी। भुजबल ने अजितकुमार को बारात में शरीक करने की बहुत लाग लगाई, परंतु अजित बारात में न गया, बीमार हो गया था। बारात में शिवलाल आया और उसके अनेक वंदीजन भी।

विवाह होने के पश्चात् रतन की बिदा हुई। बुँदेलखंड में साधारणतया विवाह के समय वधू की बिदा नहीं होती, परंतु वर-वधू पूरी आयु के होने की दशा में उक्त नियम का व्यतिक्रम कर दिया जाता है।

ललितसेन १०-१२ दिन बाद स्वयं लहचूरा जाकर रतन को लिवा लाया। घर में जब तक थी, तब तक खिले हुए फूल की ओस की तरह प्रफुल्ल और सप्रभ

की सहायता के लिये दबाया। ललित के मन पर भुजबल के सद्यः संबंध का कोई आतंक न बैठा था। इसलिये उसने फिर स्पष्ट इनकार कर दिया।

ललित ने कहा—"सहायता तो उस निकम्मे बेवक़ूफ़ को एक कौड़ी को भी न दूँगा। बारात में कैसी सज-धज करके आया था! रंडियों के गाने और शराब के समुद्र में डूबे रहनेवाले व्यक्ति की सहायता करना नीति के संपूर्ण नियमों से वर्जित है। तुमसे अनुरोध है कि उसकी जायदाद के प्रबंध की आफ़त अपने सिर से उतारकर फेंक दो। मेरी जायदाद और लेन-देन का काम सँभालो। तुमको और कुछ करने की ज़रूरत नहीं है।"

यह सलाह भुजबल को भी नापसंद न होती, परंतु बहनोई के घर पड़े-पड़े रोटी तोड़ना बड़ी कीर्ति की

बात नहीं समझी जाती। इसलिये भुजबल स्वतंत्र आय या संपत्ति का अधिकारी बनने की कामना रखता था। बोला—"आप जो कुछ कहते हैं, वह ठीक है, परंतु शिवलाल को बीच में ही छोड़ देना ठीक नहीं जान पड़ता। और फिर आपके लेन-देन और जायदाद के संबंध में बहुत समय व्यय नहीं हो सकता। हाथ-पैरवाले व्यक्ति को कुछ काम और चाहिए।"

ललित ने कहा—"लेन-देन की अवस्था अब कुछ बुरी हो चली है। आसामी ठीक समय पर रुपया नहीं देते, और बाज़-बाज़ इधर-उधर रियासतों में भाग जाते हैं, जिससे वसूली में बड़ी कठिनाई पड़ती है। यदि और जायदाद मिल जाय, तो लेन-देन से रुपया निकालकर उसी में डाल दूँ, और बहुत कुछ बेखटके हो जाऊँ।"

"किस तरह की जायदाद?" भुजबल ने पूछा—

"मकानी जायदाद, छावनी में बँगले, मकान इत्यादि।" ललित ने उत्तर दिया।

भुजबल कुछ सोचकर बोला—"यदि किसी दिन यहाँ की अधिकांश पलटनें किसी दूसरी जगह भेज दी जायँ, और छावनी तोड़ दी जाय, तब यहाँ की मकानी जायदाद की क्या बिसात रहे?"

ललित को यह संकेत खटका। बोला—"अभी तो इस तरह की कोई संभावना नहीं मालूम पड़ती।"

भुजबल को आभास हो गया कि इस बार तर्क की विजय उसके हाथ रहेगी। दृढ़ता के साथ बोला—"यह कदापि नहीं कहा जा सकता। कभी कोई ज़िला तोड़ दिया जाता है, कभी कोई छावनी कहीं से हटाकर कहीं और कर दी जाती है। मैं तो मकानी जायदाद को बिलकुल निर्बल पूँजी समझता हूँ।"

ललित हार गया।

धीरे से बोला—"तब क्या किया जाय?"

भुजबल ने तुरंत उत्तर दिया—"ज़मींदारी जायदाद ख़रीदिए। अच्छा प्रबंध हो फिर कभी खुटका नहीं?"

ललित ने कुछ क्षण बाद कहा—"सस्ते दामों अच्छी ज़मींदारी पास में कहीं मिल जाय, तो ख़रीद ली जाय।"

भुजबल ने कहा—"ये सब शर्तें मौजूद हैं। आपके कहने-भर की देर है।"

ललित ने चकित होकर पूछा—"किसकी?"

"शिवलाल की।" भुजबल ने उत्तर दिया—"वैसे तो वह बेचने को तैयार नहीं है। ऋण का पहाड़ बढ़ता चला जाता है, परंतु ज़मींदारी का कुछ भाग बेचकर उसको काटने के लिये जी नहीं करता। रहन धरने और जायदाद को डुबोने को भले ही भुगत ले, परंतु बेचने से इनकार करता है। आप रहन रक्खेंगे?"

"नहीं, कदापि नहीं। रहन के झगड़े में नहीं अटकना चाहता हूँ।" ललित ने कहा। भुजबल अपना माथा टटोलकर बोला—"तब मैं उसको किसी तरह बिक्री करने पर आरूढ़ करूँगा। निर्बल के नाश में तो आपका विश्वास है ही?"

"अवश्य।" ललित ने कहा, और मन में इस विचित्र प्रसंग पर शंका करने लगा।

भुजबल—"शिवलाल को जो आदतें पड़ी हुई हैं, उससे यह असंभव मालूम होता है कि वह कभी सुधरे। ऋण बढ़ता चला जायगा, और एक-न-एक दिन उन दुर्व्यसनों के बदले में जायदाद नीलाम हो जायगी। निर्बल मनुष्य के नाश में सहायक होना तो आपकी नीति के अनुकूल है?"

ललित—"हाँ, इसमें कोई आक्षेप नहीं। उस क्रिया में सहायक होना, मानो प्रकृति की मदद करना है। क़ानून की मर्यादा भंग न हो, केवल इतना ही चाहता हूँ।"

भुजबल—"अर्थात् जालसाज़ी, धोका इत्यादि न हो, सो आप निश्चित रहिए।"

ललित—"निर्बल आदमी को निर्बल कहकर उसका नाश उसे सावधान करके करना यह मैं न्याय-संगत मानता हूँ।"

भुजबल ने हँसकर कहा—"अर्थात् एक नोटिस इस विषय का शिवलाल को देना चाहिए! यह तो नहीं, परंतु मैं इसी तरह का कुछ और उपाय करूँगा।"

भुजबल की इस बात के भीतर इतना आत्म-विश्वास भान हुआ कि ललित के हृदय में उसकी एकाग्रता के लिये एक आश्चर्य की गूँज उठी।

(२२)

अजितकुमार रतन के विवाह के बाद नीरोग हो गया। छावनी में और कोई नौकरी अब तक नहीं मिली थी। एक ट्यूशन और मिल गई, परंतु काम में जी नहीं लगता था, घूमने-टहलने में बहुत। बाहर से १००) मासिक वेतन का एक दिन बुलावा आया। परंतु न-मालूम उसने क्यों इस अच्छे वेतन-वाली जगह को मंज़ूर करने से इनकार कर दिया। सदा कुछ चिंता में घुटता हुआ-सा दिखलाई पड़ता था। कुछ थोड़े-से लोगों से साधारण जान-पहचान हो गई थी। वे लोग उस साधारण परिचय को मित्रता में परिणत करना चाहते थे, परंतु अजित ने उनमें से किसी को भी प्रोत्साहन न दिया। एकांत-सेवन उसको अधिक अच्छा लगने लगा, और पहाड़ियों तथा निराले स्थानों में बैठे-बैठे मनन करना। समय तथा दूरी उसको कष्ट नहीं पहुँचाती थी।

मानसिक व्यथा की अवस्था में वे स्थान और समय अधिक स्मरण हुए, जब और जहाँ मन को कोई विशेष आनंद प्राप्त हुआ था।

जब वह सबसे पहले मऊ-सहानिया गया था, मार्ग में पहाड़ी के नीचे बच्छे को दूध पिलाती हुई गाय उसने तेंदुए के डर से नएगाँव बस्ती की ओर भगा दी थी, और तारों में से उतरकर कुछ परिश्रम करने में उसको सुख मिला था। उस स्थान की याद आने पर फिर सहानिया जाने और महलों के पीछे-वाली झील की लहरों को परखने की इच्छा मन में उठी। किसी अल्हड़ लड़की ने उसको रासधारी या गवैया कहा था, और इस पर उसको कुछ रिस भी उठी थी, परंतु इस समय उस बालिका के चबाव का ध्यान उतना न आया, जितना उसके अल्हड़पने और भोली-भाली सूरत का। सहानिया जाने की इच्छा में कोई कल्पना बाधक न हुई।

एक बार देखे हुए स्थानों को दुबारा बारीकी के साथ देखता हुआ चला गया, और संध्या से बहुत पहले महल के पीछे पहुँच गया। पहाड़ी के नीचे एक स्थान पर जा बैठा, जो झील से सटा हुआ और बिलकुल एकांत था।

वैसी ही लहरें। उसी तरह की आंदोलित प्रकाश-रेखाएँ। नीलिमा और तरंगें। पहाड़ियों की गोद में निर्भय नाचनेवाली जल-राशि। प्रमुदित तरलता। स्वरमय एकांतता। ढका हुआ सौंदर्य और बँधी हुई उन्मुक्तता। झील पहाड़ों के घर में चंचल-सी जान पड़ती थी, परंतु बाहर से केवल उसका अनुमान ही किया जा सकता था।

अजित ने अपनी जेब में से एक सुरचित चित्र निकाला, रतन का था। जैसे विकसित पुष्प।

अजित ने मन में कहा—"अधिष्ठात्रीदेवी है, और मैं पुजारी। पुजारी का देवी से व्यापक न होने की प्रार्थना करना अज्ञान है। देवी किसी मंदिर में स्थापित हो, परंतु पुजारी को उसका ध्यान करने-भर का अधिकार है। मूर्ति के दर्शन कभी हों या न हों, इससे क्या? मैं मूर्ति के कभी दर्शन करूँगा भी नहीं। चित्र ही यथेष्ट है। यह भी न हो, तो क्या? मेरे हृदय-मंदिर में जो चित्र है, वह अक्षय है। इस चित्र को तो मैं अभी इसी जल-राशि में रख सकता हूँ।" परंतु थोड़ी देर वहाँ बैठने के बाद भी उस चित्र को अजित ने जल-राशि के हवाले नहीं किया, प्रत्युत जेब में फिर लौटा दिया। संध्या होने में अभी विलंब था, परंतु दूर जाना था। इसलिये इच्छा न होने पर भी अजितकुमार उस स्थान को छोड़कर छावनी की ओर चल पड़ा।

जब वह भुजबल की ससुराल के सामने से होकर निकला, उसको एक अल्हड़ ढीठ लड़की का ख़याल हो आया। सामने से पूना उज्ज्वल पीतल का पानी-भरा घड़ा सिर पर धरे कुएँ से आ रही थी। ढलते हुए सूर्य की सुवर्ण किरणें झलकते हुए पीतल के घड़े पर रिपट रही थीं। पूना की बड़ी-बड़ी, भोली-भाली आँखें

किरणों द्वारा और भी अधिक प्रभामय हो रही थीं। दूर से अजित ने उसको नहीं पहचाना। सिर पर पीतल का घड़ा रक्खे हुए बालिका प्राकृतिक सौंदर्य का एक कौतुक है, परंतु परिचितों को उसमें कोई विलक्षण विशेषता भासित नहीं होती। इसलिये अजित ने अधिक ध्यान नहीं दिया। किंतु पूना ने अजित को दूर से ही पहचान लिया। एक हाथ से घड़ा पकड़े रही, और दूसरे से वस्त्र सँभाल लिया। बीच मार्ग छोड़कर एक किनारे खड़ी हो गई। पीठ फेर ली, परंतु इतनी ही कि अजित को देख सके।

यह विचित्र व्यापार देखकर अजित का ध्यान आकर्षित हुआ। पहचान लिया। सोचा—"भुजबल इसका बहनोई है। मैं उसके मित्र की हैसियत से आया था, इसलिये लाज कर रही है।" उसकी पूर्व धृष्टता पर मुस्किराकर बोला—"मैं रासधारी नहीं हूँ। देखो, बाजा-वाजा कुछ भी नहीं लाया हूँ।"

वहाँ उस समय कोई न था, परंतु पूना ने कोई उत्तर नहीं दिया। अजित चला गया।

(२३)

भुजबल शिवलाल के पास मऊ गया। मऊ में उसका एक बड़ा मकान था। देहात में जहाँ उसकी ज़मींदारी थी, वहाँ भी मकान थे, परंतु वह रहता अधिकतर मऊ ही में था।

मऊ छोटा-सा ख़ूबसूरत शहर है। व्यापार की मंडी है। अधिकांश लोगों को अपने धंधे से और कामों के लिये फ़ुरसत नहीं मिलती। सबेरे सुखनई नदी में जिसके ठीक किनारे पर शहर बसा हुआ है, नहा-धोकर लोग अपने-अपने काम में जुट जाते हैं। जब इस चौड़ी नदी में बिलकुल पानी नहीं रहता है, तब गड्ढे खोदकर काम चलाते हैं। परंतु शिवलाल उन लोगों में से था, जो नदी में नहाने-धोने के लिये नहीं जाया करते।

भुजबल जैसे ही उसके पास पहुँचा, शिवलाल ने कहा—"नई शादी के नशे में कौन किसको पूछता है? बहुत दिनों में ख़बर ली!"

भुजबल—"आपकी आज्ञा से तो सब काम किया। अब आप ऐसा उल्टा उलहना देते हैं।"

शिवलाल—"अरे भाई, नई बहू सबको बिसरा देती है। कहो, प्रसन्न तो हो?"

भुजबल—"आपकी दया से। आप?"

शिवलाल—"मेरी दया से क्यों प्रसन्न होने चले? पहले अपनी बहू का कुछ हाल सुनाओ। टालने न दूँगा। क़सम जवानी की। बोलो, रंग-रूप कैसा है?"

भुजबल ने ज़रा झेंपते हुए उत्तर दिया—"अच्छी है। ख़ूब पढ़ी-लिखी है। गायन-वादन में भी कुशल है।"

शिवलाल ने मूँछ चाबते हुए कहा—"क्या जानें भाई। कभी सुनूँ, तो मालूम हो। सुना है, उन लोगों में पर्दा तो होता नहीं।"

भुजबल न-मालूम क्यों हिल उठा। एक क्षण बाद बोला—"पर्दा तो नहीं होता है, परंतु ललितसेन के यहाँ आपने और मैंने एक बार गायन सुन तो लिया था।"

शिवलाल—"तो भी क्या हुआ? एक बार पानी पी लेने से फिर क्या प्यास नहीं लगती? तुम यार यों ही रहे।"

भुजबल—"ख़ैर, यह सब पीछे देखा जायगा। मतलब की बात करिए। नालिशों की तारीख़ों का क्या होगा?"

शिवलाल—"क्या होना है? मैं तो अदालत में जाऊँगा नहीं। इकतर्फ़ा डिग्रियाँ हो जायँगी। अदालत में जाकर यह कहना कि इकमुश्त रुपया नहीं दे सकता, क़िस्तबंदी कर दी जाय, और साहूकार की ख़ुशामद करना, नीचों का काम है। इस समय मुझको नालिशों की फ़िक्र नहीं है। जब डिग्रीदार साले इजराय कराने आवें, तब कुछ ऐसी पेचदार काररवाई करना, जिसमें अपना अँगूठा चाटते रह जायँ।"

भुजबल—"यह बात ठीक है। मैं भी समझता हूँ कि इस समय कुछ भी करना बेकार होगा।"

शिवलाल—"परंतु और ख़र्चों के लिये रुपए की

ज़रूरत इसी समय है। किसान बेईमान लगान नहीं दे रहे हैं।

बुद्धा और पैलू फिर यहाँ आए थे। मेरा डेढ़ सेर आटा खाकर ज्यों-के-त्यों चल दिए। तुमसे हो सके, तो वसूली कर लेना। मुझे तो आशा कम दिखलाई पड़ती है।"

भुजबल—"ब्याह की विपद् से तो निबट ही गया हूँ। अब बस यही करना है।"

शिवलाल—"यहाँ बलोची घोड़े बेचने के लिये आए हुए हैं। दो घोड़े मैंने पसंद किए हैं। दो हज़ार में आवेंगे। फ़िटन में बहुत भले मालूम होंगे।"

भुजबल—"यह बड़ा कठिन प्रश्न है।"

शिवलाल—"बलोची रोज़ आते हैं, और मुझको रोज़ आजकल-आजकल करना पड़ता है। बेचारे मेरे लिये ही यहाँ पड़े हुए हैं, क्योंकि और किसी से कोई सौदा पटा नहीं है।"

भुजबल—"ज़मींदारी में तो कुछ उगाही की आशा है। कभी-कभी जी चाहता है कि कमबख़्तों का रजिस्टर-बजिस्टर छीनकर सुखनई के किसी गड्ढे में डुबो दूँ।"

भुजबल—"दस हज़ार रुपए मिल जायँ, तो काम चल जाय। क़र्ज़ा निबट जाय, और घोड़े ख़रीद लिए जायँ।"

शिवलाल—"हो कैसे ? तुम्हारे साले साहब रुपया दे सकते हैं, सो उन्होंने बहन तो तुमको दे दी, रुपया नहीं दिया। हो बड़े चंट। चुपचाप अपनी जन्म-कुंडली खपा दी। अगर मेरी जन्म-कुंडली मिल जाती, तो किसी की कुछ परवा न रहती।" और ख़ूब हँसा। भुजबल ने भी साथ दिया। परंतु विषय जमने न पाया। बोला—"वह रुपया देने को तैयार हैं, परंतु रहन नहीं रखते।"

"और भी अच्छा है।" शिवलाल ने तपाक के साथ कहा—"रहन से गाँव बचे रहे, तो आगे का सुबीता बना रहेगा।"

नहीं होती। बुद्धा और पैलू पर सैकड़ों रुपया इसी साल का बाक़ी है। पिछली साल भी पूरी उगाही नहीं हो पाई थी। आजकल ज़मींदारी में कुछ फ़ायदा नहीं रहा।"

शिवलाल—"मैं तो इस ससुरी को एक सेकंड में अलग कर दूँ। परंतु रह-रह जाता हूँ। बतलाओ भाई, रुपए के लिये क्या किया ? नहीं किया, तो कुछ कर भी सकोगे, या नहीं ?"

भुजबल—"आशा तो है।"

शिवलाल—"आशा-ही-आशा में सब दिन निकले चले जा रहे हैं। ख़र्च किसी तरह कम हो नहीं सकता, और तो जो लगे हुए थे, सो थे ही, चंदेवालों ने अलग ऊधम मचा रक्खा है। एक बार चंदा दिया था, बस, तब से फिर पीछा छुटाना मुश्किल हो गया।

भुजबल बोला—"ललितसेन यह नहीं करते।"

शिवलाल ने झुँझलाकर कहा—"तब फिर क्या चाहते हैं ? मेरा सिर लेंगे ?"

भुजबल कुछ देर सोचने के बाद बोला—"उसने स्पष्ट तो कुछ नहीं कहा है। रुपया देने का वचन पूरा नहीं हारा है। रुपया उसके पास कम-से-कम एक लाख नक़द होगा।"

शिवलाल—"मुझे तुम्हारे ऊपर बड़ी ईर्षा होती है। सुंदर स्त्री उड़ा दी, और किसी दिन लखपती भी बन जाओगे। ऐसा जान पड़ता है कि किसी दिन मुझको तुम मझधार में छोड़कर नएगाँव के होकर रहोगे।"

भुजबल—"आपकी यह कल्पना भ्रम-पूर्ण है। मैं तो सदा अपने को आपका सेवक समझता हूँ। क्या

करूँ, बहुत चेष्टा की, परंतु ललितसेन सीधा नहीं हुआ। उसकी बहन की मार्फ़त भी कहलवाया, वह भी निष्फल। ललितसेन लेन-देन बंद करके ज़मींदारी ख़रीदने की चिंता में है। मैंने उसको बहुत समझाया कि जिसको बैठे-बिठलाए झंझट में अपनी जान डालनी हो, वह ज़मींदारी ख़रीदे, परंतु माना नहीं। कहता था कि कहीं-न-कहीं ज़मींदारी ख़रीदने में रुपया लगाऊँगा। यदि उसने कहीं दूर ज़मींदारी ख़रीद ली, तो वह शायद नएगाँव में बहुधा न रहेगा, और ऐसी अवस्था में मुझको भी प्रायः उसके पास जाना पड़े। मुझको यह सब सोचकर आपके संबंध में और भी चिंतित होना पड़ रहा है।"

शिवलाल—"यदि उसको ज़मींदारी ही ख़रीदनी है, तो हमारे गाँवों में से चाहे जौन उसको दे दो। उसको फिर नयागाँव छोड़कर यहाँ बार-बार न आना पड़ेगा, क्योंकि केवल ८-९ कोस है, और तुम भी यहीं बने रहोगे।"

भुजबल कुछ देर के लिये गंभीर हो गया। बोला—"अभी तक इस विषय की चर्चा यथावत् नहीं हुई है। कहिए तो करूँ, परंतु आधी ज़मींदारी से अधिक के लिये मैं कदापि न कहूँगा।"

शिवलाल ने दबंगी के साथ कहा—"चाहे आधी के लिये कहो, चाहे जितने के लिये, परंतु रुपया दस हज़ार जल्दी लाओ। एक बात की और गाँठ बाँध लेना, यदि तुम्हारी मेम साहब का गाना सुनने को न मिला, तो क़सम जवानी की, चाहे जो कुछ नुक़सान हो जाय, सारी ज़मींदारी को ख़ाक करके बैरागी हो जाऊँगा, और तुम्हारी देहली के सामने जन्म-भर धूनी रमाऊँगा।" दोनो थोड़ी देर तक इस पर हँसते रहे।

(२४)

जिस तरह बरसात में नदी में बाढ़ विना ढिंढोरा पीटे एकाएक आ जाती है, उसी तरह कई पल्टनें नएगाँव में बहुत थोड़े दिनों के अंतर में आ गईं। बँगलों का किराया बढ़ने लगा। उन्हीं दिनों ललितसेन ने एक दिन खाना खाते-खाते अपनी बहन से कहा—"इतने बँगले नहीं हैं, जितनी कि माँग है। कुछ और बनवाने पड़ेंगे।"

"बनवा लो।" रतन ने इस विषय में बहुत रुचि न दिखलाते हुए कहा।

"लेन-देन के झंझट से छुटकारा मिल जायगा।"

"हूँ।"

"और रुपया अच्छी संपत्ति में लग जायगा।"

"ठीक है।"

"और यह सब किराया अब तुम्हारे नाम से आया करेगा।"

रतन ने ज़रा चौंककर कहा—"सो क्यों?"

"सो क्यों?" ललित ने प्रश्न को दुहराते हुए कहा—"बस, तुम्हारी ही चिंता है। मुझे तो कुछ सिर पर धरकर ले नहीं जाना है। प्रबंध का पचड़ा भी दूर हो जायगा।"

ललित ने सोचा था कि रतन का चेहरा इस भविष्य सांपत्तिक सुख से खिल उठेगा, और बारीक निगाह से वह उसकी ओर देखने लगा।

रतन बहुत उदास थी।

ललित खिन्न हो गया। बोला—"उदास क्यों हो?"

रतन ने अपने मलिन मुख पर मुस्किराहट को ज़बरदस्ती बुलाने की चेष्टा की। होठ के दोनो कोनों पर मुस्किराहट आई भी, परंतु चेहरे की उदासी उस मुस्कान से और भी करुण हो गई।

ललित को भीतर-ही-भीतर बड़ी पीड़ा हुई। उसने सोचा कि रतन सुखी नहीं है। क्यों सुखी नहीं है? इसका कारण उसको अच्छी तरह समझ में न आया। परंतु किसी आंतरिक दुःख के लक्षण मौजूद थे। रतन में विवाह के पूर्व की वह प्रफुल्लता नहीं दिखलाई पड़ती थी। जान पड़ता था, मानो किसी बोझ से दबी जा रही है। कई बार ललित ने यह बात देखी थी, परंतु उसका ठीक कारण न पहले समझ में आया था और न अब।

कुछ अटकल लगाकर ललित ने पूछा—"रतन, तू उदास क्यों रहा करती है बेटी ?"

"नहीं तो।" रतन ने मुस्किराकर कहा। फिर एकाएक और अधिक मुँह लटकाकर बोली—"तुम भैया, यह घर और कब तक सूना रक्खोगे ? ब्याह कर लो, मैं हाथ जोड़ती हूँ तुम्हारे।"

"दुर पगली ! क्या जगत् में जितने आदमी पैदा हुए हैं, सब ब्याह करने के लिये ही जन्मे हैं, और क्या विवाह ही सुख की चरम सीमा है ?"

"यह सब शास्त्र तो मैं नहीं जानती, परंतु अब यह घर सचमुच बहुत सूना मालूम होता है। न-जाने क्यों बुरा लगा करता है।"

"तुम्हें शायद यह चिंता लगी रहती है कि कहीं फिर लहचूरा-बहचूरा न जाना पड़े, और इसी भ्रम में तपा करती हो। विश्वास रक्खो, घर के सूने छूट जाने की आशंका कभी फलवती न होगी। यहीं सदा रहना होगा। मेरे पीछे भी।" और भोजन समाप्त करके ललित बैठक में चला गया।

(२५)

शिवलाल के ऊपर साहूकारों ने जो नालिशें की थीं, उनकी डिग्रियाँ बँध गईं। इसके पहले उनको अदालत के हुक्म इम्तनाई भी मिल गए थे कि मुक़दमों के फ़ैसलों तक कहीं जायदाद हस्तांतरित न करना।

तब शिवलाल के आमोद-प्रमोद में कुछ कमी आई, और उन्होंने किसानों से लगान वसूल करने में और अधिक कड़ाई से काम लेना शुरू कर दिया। परंतु किसानों के पास रुपया न था, इसलिये उगाही बहुत थोड़ी हुई। ख़र्च के लिये रोज़ ही काफ़ी रुपए की ज़रूरत रहा करती थी, इसलिये जो कुछ वसूल हुआ, वह उसी के लिये यथेष्ट न था। तब दूसरा सहारा ललित के धन के बदले में ज़मींदारी बेचने के सिवा और कुछ न सूझ पड़ा।

बहुत कठोरता का बर्ताव करने पर भी असामियों से बहुत कम रुपया कई दिनों में वसूल कर पाने के बाद भुजबल शिवलाल के पास आया। वैसे कुछ लोग मऊ में शिवलाल की ज़मींदारी ख़रीदने को तैयार थे, परंतु डिग्रियों और हुक्म इम्तनाइयों के झगड़े में न पड़ने की इच्छा से वे बातचीत करने से भी हिचकते थे। भुजबल और शिवलाल को यह बात मालूम थी। शिवलाल को भुजबल के कौशल पर विश्वास था। ललित और भुजबल के संबंध पर उसको और भी अधिक भरोसा था। नयागाँव साहूकारों के लंबे हाथों से कुछ दूर भी पड़ता था, इसलिये दोनो ने कुछ दीर्घ काल के निवास के लिये नएगाँव को पसंद किया।

स्थान ठीक कर लेने के बाद अकेला भुजबल ललित के पास गया। बहुत अहसान जताने की ग़रज़ से बोला—"अब की बार तो बड़ा सिर खपाना पड़ा।" ललित ने पूछा—"काहे में ? क़ाज़ीजी शहर के किस अंदेशे से दुबले हो रहे हैं ?"

दिल्लगी की परवा न करते हुए भुजबल ने उत्तर दिया—"वही शिवलाल की ज़मींदारी। अब छोड़िए मत। मुश्किल से राज़ी कर पाया है। वह यहीं आ गए हैं। स्टांप मँगवाकर बैनामा करवा लीजिए और मऊ में चलकर रजिस्ट्री।"

"नारदजी की चिंता का बस यही कारण है !" ललित ने बिना कोई उत्साह दिखलाते हुए, परंतु हँसकर कहा—"ज़मींदारी ख़रीदने की अपेक्षा मैंने एक और बहुत लाभ-पूर्ण बात सोची है।"

भुजबल भीतर-ही-भीतर तिलमिला-सा गया।

"कौन-सा लाभ-पूर्ण यत्न सोचा है ?" भुजबल ने पूछा।

"कई नई पल्टनें आ गई हैं।"

"अच्छा !"

"बँगलों का किराया बढ़ती पर है।"

"किसी दिन जब पल्टनें चली जायँगी, तब गिर भी जायगा।"

"प्रबंध में दिक़्क़त न होगी।"

"यह तो कोई बड़ी बात नहीं है।"

"तुम्हीं को प्रबंध करना है। सहज और सुगम रहेगा। दूसरे कामों के लिये काफ़ी अवकाश मिलेगा।"

"हारमोनियम का बजाना क्या अब कुछ ज़्यादा तरक़्क़ी पर है ?"

"उसका बजाना इस समय अधिक न आता सही, किंतु किसी-न-किसी दिन अवश्य अच्छा आ जायगा। परंतु हारमोनियम से और वर्तमान चर्चा से कोई संबंध नहीं है।"

भुजबल ललित के स्वभाव की दृढ़ता को जानता था। बोला—"तब क्या और बँगले बनवाइएगा ? आप तो बड़ी आफ़त का सामान इकट्ठा कर रहे हैं।" ललित ने कहा—"अभी तो मन में यही आ रहा है। किराए की बँधी-बँधाई आय से ज़मींदारी का बखेड़ा किसी हालत में अच्छा नहीं हो सकता।"

भुजबल ने सिर नीचा करके सोचते-सोचते कहा—"मैं बड़ी विषम समस्या में उलझ गया हूँ। आपकी स्वीकृति पाकर शिवलाल को जैसे-तैसे राज़ी कर पाया था। अन्य कई साहूकार उनकी ज़मींदारी ख़रीदने के लिये सिर दिए फिरते हैं, मुश्किल से उनको टाल पाया। अब आप यदि नाहीं करते हैं, तो मैं शिवलाल को क्या मुँह दिखाऊँगा ?"

ललित ने हँसकर कहा—"ख़ूब साबुन से मुँह धोकर शिवलाल के पास चले जाइए, और कह दीजिए कि दूसरे साहूकारों के हाथ उस इल्लत को बेच दें। साहूकारों को ख़रीदने के लिये तैयार करने में आपको बहुत समय न लगेगा।" "परंतु मैंने निश्चय किया है कि आप ही शिवलाल की ज़मींदारी को ख़रीदें।" भुजबल बोला—"मैं इस संपत्ति को भरसक हाथ से न जाने दूँगा। ज़मींदारी यहाँ से बहुत थोड़ी दूर है। प्रबंध में किसी तरह की गड़बड़ी नहीं पड़ सकती। बँगलों के बनवाने और निरंतर बढ़ती हुई रक़म प्राप्त करने की आशा में दिमाग़ ख़राब करना बिलकुल व्यर्थ है।"

"और मैंने निश्चय किया है कि ज़मींदारी में हाथ न लगाऊँगा, और न लगाने दूँगा। ज़मींदारी यहाँ से थोड़ी दूर है और बँगले बिलकुल नाक के नीचे। तुमको इस कारण रहना भी सदा यहाँ ही होगा।" ललित ने कहा। भुजबल अपने निश्चय का रुख़ बदलकर बोला—"परंतु बँगलों के बनवाने की विधि जब तक बिलकुल पक्की न हो जाय, शिवलाल को अंतिम जवाब न दिया जाय। मैं उसको तब तक अवकाश रखना चाहता हूँ।" भुजबल के स्वर में बहुत विनय थी। ललित ने कहा—"जैसी आपकी मर्ज़ी। परंतु मैं अपना निश्चय न बदलूँगा।

(२६)

जब भुजबल लगान-वसूली के काम से लौटकर नए-गाँव आया था, तब कुछ सिपाहियों को उगाही के काम पर छोड़ आया था और उनको हिदायत कर आया था कि वैसे न दें, तो खाल खींचकर लेना। पैलू और बुद्धा को वह किसानों का अगुआ समझता था, और उनको उसने विशेष तौर पर अपना ध्यान-भाजन बनाया था। सिपाहियों ने भी उन दोनो को मार-मारकर चूर कर दिया। तब शिवलाल का पता लगाकर दोनो नएगाँव आए। उनको देखकर शिवलाल का क्रोध अपने साहूकारों को भूल-सा गया। ख़ूब गालियाँ देकर उनसे कहा—"तुम्हीं लोगों ने हमको इस हालत में पहुँचाया है। तुम्हारे साथ जो रियायतें मैंने की हैं, उसी का यह सब फल है।"

वे दोनो देर तक केवल अपना दुःख रोते रहे। भुजबल ललित के पास गया हुआ था। शिवलाल उसके उत्तर लाने की आशा बाँधे बैठा हुआ था। इसलिये इन किसानों के आने से उसको जितना हर्ष हुआ होगा, उसका अनुमान-भर किया जा सकता है।

थोड़ी देर में भुजबल आ गया। उसके चेहरे पर आशा-जनक प्रफुल्लता तो न थी, परंतु उदासी भी नहीं दिखलाई पड़ती थी। भुजबल भाव बनाना जानता था, शिवलाल ने किसानों की उपस्थिति का ख़याल न करते हुए पूछा—"क्यों, क्या कहा ?"

भुजबल ने माथा सिकोड़कर किसानों की ओर

संकेत करके कहा—"ये बदमाश यहाँ भी आ पहुँचे ? इनके मारे नाकोंदम है। तुम लोग अब तक जीते हो?"

पैलू बोला—"मरे के बराबर हैं। हम यह कहने आए हैं कि हमारे पास रुपया नहीं है। अपनी ज़मीन ले लो, परंतु हमारे प्राण छोड़ दो।"

"न ज़मीन छोड़ेंगे और न तुम्हारे प्राण। देखें, तुम बचकर कहाँ जाते हो?"

बुद्धा ने ज़मीन पर नाख़ून गड़ाते हुए कहा—"हम तो मरने को ही आए हैं। घर में एक दाना खाने को नहीं है। बाल-बच्चों-समेत हमको मार डालो। बड़ा पुण्य होगा।"

शिवलाल ने कहा—"साथ में कुछ खाना-वाना बाँधकर भी लाए हो या नहीं? या हमारा सिर खाकर ही चैन लोगे?"

बुद्धा बोला—"मालिक के घर आएँगे, और खाना साथ बाँध लाएँगे!"

भुजबल ने तमककर कहा—"आप ही ने इन पाजियों को बिगाड़ा है। जाओ यहाँ से। कोई सुनवाई न होगी।"

शिवलाल ने भी क्रुद्ध स्वर में कहा—"हटो! मैं कुछ न सुनूँगा। एक-दो सेर आटा हमारा ख़राब करने आए हो। खाओ-पियो, और काला मुँह करके चले जाओ।"

भुजबल चकित दृष्टि से शिवलाल की ओर देखने लगा। पैलू ने कहा—"हम तो अब रियासत में जाते हैं। वहीं खेती-पाती करेंगे। अपनी ज़मीन आप सँभालिए। अब और नहीं सहा जाता। उठ रे बुद्धा! चल। अभी दो कोस और चलना है।"

भुजबल ने कुछ विस्मित होकर पूछा—"कहाँ जा रहे हो?"

"जहाँ सींग समावें।" पैलू ने बेधड़क होकर कहा।

बुद्धा बीच में बोल उठा—"नातेदारी में सिंगरावन जा रहे हैं। जो खेती-पाती का कुछ ठीक हो गया, तो वहीं रहेंगे।"

"अच्छा, जाओ! निकलो! हटो!" भुजबल तड़पकर बोला।

शिवलाल ने कुछ नरम होकर कहा—"ख़ैर, इन्हें एक चिलम तंबाकू पी लेने दो। फिर चाहे भाड़ में चले जायँ।"

बुद्धा इतना आश्रय पाकर चिलम तैयार करने लगा। उसका अधीर साथी किसी आंतरिक भाव या व्यथा के कारण काँप रहा था। उसकी आँखें लाल थीं, परंतु चिलम पीने के लिये वह भी ठहर गया।

शिवलाल ने भुजबल से पूछा—"उधर का क्या हाल है?"

देखा कि शिवलाल जानने के लिये व्यग्र हो रहा है, तब भुजबल ने मन के भाव को दबाकर कहा—"बुरा नहीं है। मैंने उनसे बातचीत की थी। उसकी तबियत कुछ अस्वस्थ है। कुछ दिन ठहरने को कहा है।"

"क्या हर्ज है?" शिवलाल बोला—"कुछ दिनों में बिगड़ता ही क्या है? साहूकारों की डिग्रियों की इजराय बहुत जल्दी तो नहीं हो सकती। यदि जायदाद को नीलाम पर चढ़ाना चाहेंगे, तो नएगाँव में इत्तिलानामा की तामील के लिये बहुत दिन चाहिए। तब तक सब ठीक-ठाक हो जायगा। बलोचियों के घोड़े अवश्य अब न मिलेंगे; वे बेचारे निराश होकर चले भी गए होंगे। जब रुपया हाथ में आ जायगा, बहुत घोड़े हो जायँगे।"

शिवलाल को इतना आशामय देखकर भुजबल को कुछ संतोष हुआ। परंतु उन दोनो किसानों की वहाँ पर उपस्थिति भुजबल को बहुत खटक रही थी, और उनके समक्ष अपनी सांपत्तिक अवस्था का नंगा वर्णन। किसानों से बोला—"सिंगरावन में किसके पास जाओगे?"

पैलू ने उत्तर दिया—"अभी कुछ ठीक नहीं है।"

बुद्धा बोला—"नातेदार हैं। उनके यहाँ जायँगे।"

भुजबल ने गर्व के साथ कहा—"हमारे नातेदार वहाँ पर भी हैं। हम वहाँ पर भी तुमको समझेंगे।"

"तुम हमें कच्चा चबा लेना।" पैलू ने निर्भीकता के साथ कहा—"ऐसा अन्याय उस रियासत में न होगा, जैसा तुमने मचा रक्खा है।"

बुद्धा ने भुजबल और शिवलाल के कोप का अंदाज़ा लगाकर पैलू को रोकते हुए कहा—"चुप क्यों नहीं रहता है?"

भुजबल की आँख से सचमुच कम-से-कम पैलू को कच्चा चबा लेने का भाव टपक रहा था।

उसने बात बदलकर शिवलाल से कहा—"सिंगरावन में रिश्तेदारी में एक ब्याह हाल ही में है। दो दिन के लिये तब तक मैं वहाँ हुए आता हूँ। तब तक वा० ललितसेन का ठीक-ठाक हो जायगा।"

"मैं यहाँ पड़ा-पड़ा क्या करूँगा? मेरे लिये निमंत्रण होता, तो मैं भी तुम्हारे साथ चला चलता। देखता की सुंदरियों की भी खैर हो आती।"

भुजबल ने उत्साह के साथ कहा—"निमंत्रण तुरंत आ जायगा। आपका कुछ दूर का रिश्ता भी उन लोगों से होता है।"

शिवलाल ने प्रस्ताव किया—"पैलू और बुद्धा भी वहीं जा रहे हैं, हमारा सामान लिए चलेंगे।" पैलू चुप रहा। बुद्धा ने कहा—"बहुत अच्छा। हम मालिक के साथ चलेंगे।"

शिवलाल ने दोनो रुख़ रखते हुए कहा—"तुम लोग बदमाशी न करो, तो कुछ दुश्मन थोड़े ही हो। खाना-वाना खा लो। कल चलेंगे।" भुजबल ने अपने हाथ से निमंत्रण लिखकर शिवलाल को दे दिया।

हिंदी-विश्वविद्यालय

[प्रो० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, प्रबंध-मंत्री, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग]



रत में अभी तक एक भी विश्वविद्यालय ऐसा नहीं था, जिसमें प्रत्येक विषय की उच्च-से-उच्च पढ़ाई सर्वमान्य राष्ट्र-भाषा हिंदी के माध्यम से होती हो, और जिसकी परीक्षाएँ भी हिंदी में ही ली जाती हों। बनारस के हिंदू-विश्वविद्यालय में भी पढ़ाई और परीक्षा का माध्यम अँगरेज़ी ही है। कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी को एम्० ए० की परीक्षा में स्थान दिया गया है। परंतु वहाँ भी हिंदी की पढ़ाई प्रायः अँगरेज़ी द्वारा होती है, और हिंदी के प्रश्न-पत्रों के उत्तर भी अँगरेज़ी में दिए जा सकते हैं। विश्वविद्यालयों में अन्य विषयों की पढ़ाई और परीक्षा का माध्यम प्रायः अँगरेज़ी ही है। गत वर्ष से केवल प्रयाग-विश्वविद्यालय में बी० ए० (आनर्स) के अर्थ-शास्त्र विषय के परीक्षार्थियों को एक प्रश्न-पत्र का उत्तर हिंदी या उर्दू में ही देना पड़ता है। विदेशी भाषा को शिक्षा और परीक्षा का माध्यम बनाने से देश की जो हानियाँ हो रही हैं, वे किसी से छिपी नहीं। इन्हीं हानियों को कुछ अंशों में दूर करने और हिंदी का जनता में प्रचार करने के उद्देश्य से हिंदी-साहित्य-सम्मेलन ने प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा इत्यादि परीक्षाओं का हिंदी में लेना आरंभ किया, और धीरे-धीरे ये परीक्षाएँ लोक-प्रिय होने लगीं। परीक्षा के केंद्रों में भी वृद्धि हुई। भारत के प्रायः सभी प्रांतों और देशी राज्यों में इन परीक्षाओं के केंद्र स्थापित हो गए। इन परीक्षाओं के कार्य-क्षेत्र के इतना अधिक बढ़ जाने के कारण यह आवश्यक समझा गया कि इन परीक्षाओं की व्यवस्था उसी ढंग पर की जाय, जिस पर विश्वविद्यालयों की की जाती है। इसलिये सम्मेलन के बीसवें अधिवेशन में, जो इस वर्ष मई-मास में, कलकत्ते में, हुआ था, सम्मेलन की नियमावली में आवश्यक परिवर्तन कर हिंदी-विश्वविद्यालय की स्थापना कर दी गई।

हिंदी-विश्वविद्यालय का कार्य-भार हिंदी-विश्वविद्यालय-परिषद् को सौंपा गया है। हिंदी-विश्वविद्यालय-परिषद् में ३० से ४० सदस्य तक रहते हैं। इनका चुनाव प्रतिवर्ष नीचे लिखे अनुसार होता है—

(क) (१) सम्मेलन के सभापति (२-३) सम्मेलन के उप-सभापति (४) प्रधान मंत्री (५-६) परीक्षा, साहित्य, प्रचार, प्रबंध एवं अर्थ-मंत्री और (१०) हिंदी-विद्यापीठ के प्रधानाध्यापक।

(ख) स्थायी समिति द्वारा निर्वाचित २० सदस्य, जिनमें कम-से-कम १० स्थायी समिति के सदस्य होंगे।

(ग) सम्मेलन के रजिस्टर्ड उपाधिधारी व्यक्तियों द्वारा निर्वाचित सदस्य, जो सैकड़ा पीछे ५ होंगे।

संवत् १९८८ के लिये निम्न-लिखित सज्जन हिंदी-विश्वविद्यालय-परिषद् के सदस्य निर्वाचित किए गए हैं—

१—श्रीमान् जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' (सभापति)
२— ,, गोकुलचंदजी } (उप-सभापति)
३— ,, पुरुषोत्तमदासजी } (उप-सभापति)
४— ,, रमाकांतजी मालवीय (प्रधान मंत्री)
५—श्रीयुत डॉ० रामप्रसादजी त्रिपाठी (परीक्षा-मंत्री)
६— ,, कृष्णदेवप्रसादजी गौड़ (साहित्य-मंत्री)
७— ,, दुर्गाप्रसादजी खेतान (प्रचार-मंत्री)
८— ,, दयाशंकरजी दुबे (प्रबंध-मंत्री)
९— ,, बैजनाथप्रसादजी केडिया (अर्थ-मंत्री)
१०— ,, बलदेव चौबे
११— ,, छविनाथजी पांडेय
१२— ,, रामचंद्रजी दीक्षित

१३—श्रीयुत विश्वेश्वरप्रसादजी
१४— ,, केदारनाथजी गुप्त
१५— ,, रामकुमारजी वर्मा
१६— ,, नरेंद्रदेवजी
१७— ,, अलगूराम शास्त्री
१८— ,, शालग्रामजी भार्गव
१९— ,, कालिदासजी कपूर
२०— ,, सद्गुरुशरणजी अवस्थी
२१— ,, अयोध्यानाथजी शर्मा
२२— ,, रामलखनजी शुक्ल
२३— ,, जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल
२४— ,, लक्ष्मीधरजी वाजपेयी
२५— ,, साँवलिया विहारीलालजी वर्मा
२६— ,, रामदासजी गौड़
२७— ,, व्रजराजजी
२८— ,, दुलारेलालजी भार्गव
२९— ,, हीरालाल खन्ना
३०— ,, धीरेंद्र वर्मा

हिंदी-विश्वविद्यालय-परिषद् के प्रधान कर्तव्य ये हैं—

(क) परीक्षा-समिति का संगठन करना, और तत्समिति-संबंधी उप-नियम बनाना

(ख) परीक्षाओं के संबंध में नियम बनाना।

(ग) भिन्न-भिन्न परीक्षाओं के शुल्क को निश्चित करना।

(घ) भिन्न-भिन्न विद्यालयों को संबद्ध करना एवं केंद्र स्थापित करना और तोड़ना।

(च) परीक्षा के भिन्न-भिन्न विषयों का विभाग करके प्रत्येक वर्ग के लिये ५ सदस्य नियुक्त करना।

(छ) प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, अरायज़नवीसी, मुनीमी, संपादन-कला एवं राष्ट्र-भाषा-परीक्षा के अतिरिक्त आवश्यकता समझे, तो अन्य परीक्षाओं को स्थापित करना।

(ज) परीक्षा-समिति के कार्य का निरीक्षण करना।

हिंदी-विश्वविद्यालय-परिषद् १५ सदस्यों की परीक्षा-समिति चुनता है। इस समिति के प्रधान कर्तव्य ये हैं—

(क) परीक्षाओं के समय का निश्चय करना, परीक्षकों की नियुक्ति करना, परीक्षाओं के फल का विवरण प्रकाशित करना और परीक्षा-संबंधी अन्य विषयों का प्रबंध करना।

(ख) हिंदी-विश्वविद्यालय-परिषद् द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों और मंतव्यों को कार्य-रूप में परिणत करना।

संवत् १९८८ की परीक्षा-समिति के सदस्यों की सूची नीचे-लिखे अनुसार है—

१—श्रीमान् जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' (सभापति)
२— ,, रमाकांतजी मालवीय
३—श्रीयुत डॉ० रामप्रसादजी त्रिपाठी
४— ,, प्रो० दयाशंकरजी दुबे
५— ,, प्रो० धीरेंद्रजी वर्मा
६— ,, प्रो० विश्वेश्वरप्रसादजी
७— ,, लक्ष्मीधरजी वाजपेयी
८— ,, सद्गुरुशरणजी अवस्थी
९— ,, कृष्णदेवप्रसादजी गौड़
१०— ,, प्रो० हीरालालजी खन्ना
११— ,, कालिदासजी कपूर
१२— ,, पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल
१३— ,, बलदेव चौबे
१४— ,, गुरुनारायण पांडेय

प्रत्येक विषय का पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य-विषय-सूची तैयार करने में सहायता देने के लिये हिंदी-विश्वविद्यालय-परिषद् द्वारा ५ सदस्यों का एक वर्ग निर्वाचित किया जाता है। संवत् १९८८ के लिये भिन्न-भिन्न विषयों के वर्गों की सूची निम्न-लिखित है—

साहित्य— (१) श्रीयुत प्रो० धीरेंद्रजी वर्मा एम्० ए० (संयोजक)
(२) ,, प्रो० अयोध्यानाथ शर्मा एम्० ए०, कानपुर
(३) ,, साहित्य-रत्न पं० भागीरथ-प्रसादजी दीक्षित, लखनऊ
(४) ,, कृष्णदेवप्रसादजी गौड़ एम्० ए०, एल्० टी०, काशी

(५) श्रीयुत रामशंकरजी शुक्ल 'रसाल', एम्० ए० प्रयाग

इतिहास—(१) श्रीयुत डॉ० रामप्रसादजी त्रिपाठी एम्० ए०, डी० एस्-सी० (संयोजक)
(२) ,, कालिदासजी कपूर एम्० ए०, एल्० टी०, लखनऊ
(३) ,, गौरीशंकर चटर्जी, प्रयाग-विश्वविद्यालय, प्रयाग
(४) ,, डॉ० ईश्वरीप्रसादजी एम्० ए०, डी० लिट
(५) ,, प्रो० विश्वेश्वरप्रसादजी एम्० ए०

भूगोल—(१) श्रीयुत रामनारायणजी मिश्र बी० ए० (संयोजक)
(२) ,, शिवप्रसादजी पांडेय, प्रयाग
(३) ,, रामनाथजी दुबे बी० कॉम०
(४) ,, कौशलकिशोरजी बी० ए०
(५) ,, डी० एन्० सिन्हा, प्रयाग

गणित—(१) श्रीयुत डॉ० प्यारेलालजी (संयोजक)
(२) ,, गोरखप्रसादजी, प्रयाग-विश्वविद्यालय
(३) ,, श्रीगोविंद तिवारी एम्० ए०, प्रयाग-विश्वविद्यालय
(४) ,, प्रो० हीरालाल खन्ना एम्० ए०, कानपुर
(५) ,, बेनीमाधवसिंहजी, काशी

राजनीति—(१) ,, डॉ० बेनीप्रसादजी प्रयाग-वि० वि० (संयोजक)
(२) ,, साँवलिया विहारीलालजी वर्मा एम्० ए०, बी० एल्०, छपरा
(३) ,, भगवानदासजी केला, वृंदावन
(४) ,, श्रीप्रकाशजी एम्० ए०, काशी
(५) ,, प्रो० गुर्तीवेंकटरावजी एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

अर्थशास्त्र—(१) श्रीयुत प्रो० दयाशंकरजी दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी० (संयोजक)
(२) ,, डॉ० डोरीलालजी दुबे, मेरठ
(३) ,, व्रजगोपालजी भटनागर, मेरठ
(४) ,, जयदेवजी गुप्त एम्० ए०, बी० कॉम०, चँदौसी
(५) ,, एल्० सी० जैन एम्० ए०, पी० एच्० डी०, प्रयाग-वि० वि०

संस्कृत पुरातत्त्व (१) ,, बाबूरामजी सक्सेना (संयोजक)
(२) ,, नरेंद्रदेवजी, फ़ैज़ाबाद
(३) ,, के० सी० चट्टोपाध्याय, प्रयाग-विश्वविद्यालय
(४) ,, प्रो० प्रयागदयालजी एम्० ए०, लखनऊ
(५) ,, बलदेवजी उपाध्याय, प्रयाग-विश्वविद्यालय

दर्शन और तर्क शास्त्र (१) श्रीयुत गंगाप्रसादजी एम्० ए० (संयोजक)
(२) ,, अनुकूलचंद्र मुकर्जी एम्० ए०
(३) ,, चंद्रमौलिजी शुक्ल एम्० ए०, हिंदू-विश्वविद्यालय
(४) ,, कृष्णविनायकजी फड़के एम्० ए०, कानपुर
(५) ,, लाला कन्नोमलजी एम्० ए०, धौलपुर

अँगरेज़ी—(१) ,, पं० अमरनाथजी झा एम्० ए० (संयोजक)
(२) ,, प्रो० व्रजराजजी एम्० ए०, बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
(३) ,, लीलाधरजी गुप्त, प्रयाग-विश्वविद्यालय
(४) ,, शिवाधारजी पांडेय, प्रयाग-विश्वविद्यालय

(५) श्रीयुत रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', एम्० ए०, धार

धर्मशास्त्र—(१) ,, साहित्याचार्य पं० चंद्रशेखर शास्त्री (संयोजक)
(२) ,, लक्ष्मीधरजी वाजपेयी दारागंज
(३) ,, डॉ० भगवानदासजी, काशी-विद्यापीठ
(४) ,, बा० राघवदासजी, गोरखपुर
(५) ,, व्याकरणाचार्य पं० कमलाकांतजी, प्रयाग

वैद्यक और शरीर-विज्ञान (१) ,, आयुर्वेद-पंचानन पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल (संयोजक)
(२) ,, आयुर्वेदाचार्य गणेशदत्तजी सारस्वत, हरद्वार
(३) ,, डॉक्टर त्रिलोकीनाथजी वर्मा, लखनऊ
(४) ,, केदारनाथजी गुप्त बी० ए०, सी० टी०, प्रयाग
(५) ,, जगन्नाथप्रसाद वाजपेयी, हिंदी-विद्यापीठ

विज्ञान—(१) श्रीयुत सत्यप्रकाशजी एम्० एस्-सी०, प्रयाग (संयोजक)
(२) ,, शालग्रामजी भार्गव एम्० ,, एस्-सी०, प्रयाग-वि० वि०
(३) ,, रामदासजी गौड़, काशी
(४) ,, महावीरप्रसादजी श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, एल्० टी०, रायबरेली
(५) श्रीयुत प्रो० गोपालस्वरूपजी भार्गव एम्० एस्० सी०

कृषिशास्त्र—(१) ,, प्रिंसिपल तेजशंकरजी कोचक बी० एस्० सी० (संयोजक)
(२) ,, चौधरी मुख़्तारसिंह, मेरठ
(३) ,, नंदकिशोरजी शर्मा, झाँसी
(४) ,, शीतलाप्रसादजी, प्रयाग
(५) ,, गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री, जबलपुर

ज्योतिष—(१) ,, श्यामकिशोर मालवीय (संयोजक)
(२) ,, रामदासजी गौड़, काँगड़ी
(३) ,, हनूमानशर्मा, जयपुर
(४) ,, रामव्यासजी पांडेय, काशी
(५) ,, महावीरप्रसादजी श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, एल्० टी०, विशारद

हिंदी-विश्वविद्यालय-परिषद् ने यह भी निश्चय किया है कि इस वर्ष पाठ्य-क्रम दो वर्षों के लिये तैयार किया जाय। परीक्षाओं का ढंग भी उसी प्रकार रक्खा जायगा, जिस प्रकार आगरा-विश्वविद्यालय का है । हिंदी-विश्वविद्यालय-परिषद् परीक्षाओं का स्टैंडर्ड ऊँचा बनाए रखने का हमेशा प्रयत्न करता रहेगा। हम आशा करते हैं कि हिंदी-प्रेमी जनता, म्युनिसिपैलिटी, ज़िला-बोर्ड तथा देशी रियासतों के अधिकारीगण हिंदी-विश्वविद्यालय के उपाधिधारी व्यक्तियों का कम-से-कम उतना आदर अवश्य करेंगे, जितना वे अन्य विश्वविद्यालयों के उपाधिधारियों का आजकल करते हैं।

विस्मृति के फूल

(२)

[श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

धीरे-धीरे मैं बढ़ता हूँ। पूछोगी—"किस ओर?"
मेरा पथ वह अंधकार है, जिसका ओर न छोर!
रुकने की इच्छा करते ही उठ जाते हैं पैर
उसी अंत की ओर, जहाँ करता अनंत हिलोर!

× × ×

अरे कहाँ से मैं आया हूँ, पूछ रही हो आह!
कहीं चित्र भी पा सकता है चित्रकार की थाह?
जान सका हूँ इन सदियों में बस इतनी-सी बात—
एक कल्पना थी, छाया थी उसके उर में चाह।

× × ×

यह मेरा अस्तित्व, इसे तुम ढूँढ़ रही हो आज?
यह सपनों की सेज अनोखी, यह विस्मृत का राज!
छुईमुई-सा यह जीवन है एक घात-प्रतिघात—
मेरे गौरव-युक्त भाल पर है काँटों का ताज!
मिट न सकेगी देवि! अमिट है मेरे उर की श्वास;
इसमें अंकित हैं जीवन के शत-शत विफल प्रयास।
मेरे युगों-युगों के पल का केवल इतना अर्थ—
निःश्वासों में छिपा हुआ है चिर-संचित विश्वास!

× × ×

बुझ न सकेगी देवि! प्रबल है इस जीवन की प्यास;
उस सूखे-से मरु-प्रदेश में मृग-तृष्णा का वास।
अरी पिपासा ही जीवन है, और तृप्ति है मृत्यु,
अविकल उत्पीड़न विकास है, और शांति है ह्रास!

× × ×

रोनेवाले से न पूछना उसके दुख का ज्ञान,
हँसनेवाले से न पूछना तुम सुख की पहचान।
'रोना-हँसना!' अमिट प्रकृति की क्षणिक भावना और
परिवर्तन है नियम, दुःख-सुख हैं उसके परिधान।

× × ×

यह विस्मृति का पात्र, भ्रांति की मदिरा इसमें डाल,
अभिमंत्रित कर इंद्र-जाल के मंत्रों से तत्काल।
फेंक दिया है किसने माया के प्रांगण में? और
यहाँ किसलिये इस नाटक का है निर्माण विशाल?

× × ×

आनेवाले ले आते हैं अपना-अपना प्यार;
जानेवाले ले जाते हैं जग का हाहाकार।
यह विचित्र-सा क्रय-विक्रय है, यह विचित्र-सी हाट!
इस माया के प्रांगण को ही कहते हैं संसार।

× × ×

पंच-तत्त्व से बनता, होता उसमें अंतर्ध्यान;
परिवर्तन के अमिट नियम का यह प्रतिरोध महान।
जिससे बना, उसी से होकर पृथक्, उसी से भिन्न
यह विस्मृति का पात्र यही है इस तन का उपमान।

× × ×

बेसुध विस्मृति के मंडल में हलचल का निर्माण
प्रेरित करते रहते जिसको अस्ति-नास्ति के बाण!
जहाँ रंग है, जहाँ व्यंग्य है, तम है, जहाँ प्रकाश;
यही भ्रांति की मदिरा है मेरा छोटा-सा प्राण!

× × ×

बस इतना ही! इधर-उधर है धुँधला-सा अज्ञात!
जहाँ कल्पना है, संशय है, घात और प्रतिघात।
कहो, कौन वह शक्ति, रच दिया है जिसने यह खेल?
अरी दिवानी, अब न पूछना अंधकार की बात!

ब्रह्मचर्याश्रम

[श्रीअवध उपाध्याय]

(१)



ठ-नौ सौ वर्ष हुए, बीजापुर में संस्कृत-विद्या का बड़ा प्रचार था। वहाँ अनेक विद्वान् थे, और कई सभाएँ थीं। बीजापुर में उस समय अनेक शिक्षक मौजूद थे, जो विद्यार्थियों को केवल निःशुल्क पढ़ाते ही नहीं थे, परंतु स्वयं उन्हें भोजन भी देते थे। और वर्तमान राजा से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करा लिया करते थे। राजा लोग भी प्रसन्नता से उनकी माँगों को पूरी कर देते थे। बीजापुर के सब शिक्षकों में महेश्वर भट्ट अत्यंत ही अधिक विद्वान् थे। भारतवर्ष की सब विद्वन्मंडली ने महेश्वर भट्ट को भारतवर्ष का केवल सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ और सर्वश्रेष्ठ ज्योतिषी ही नहीं माना था, किंतु ये लोग इन्हें सदाचारी, दयालु तथा धर्मात्मा भी मानते थे। पहले इनके कोई संतान नहीं थी, परंतु ईश्वर की कृपा से वृद्धावस्था में इनके एक कन्या उत्पन्न हुई। कन्या का नाम लीलावती था। उसका रूप वास्तव में अत्यंत ही अधिक सुंदर तथा मनोहर था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, सुंदर गोरा चेहरा, प्रत्येक अंग की कोमलता और सहनशीलता दर्शकों के ऊपर बड़ा अच्छा प्रभाव उत्पन्न करती थी। महेश्वर भट्ट अपनी कन्या लीलावती को पढ़ाते भी थे, और उसकी कुशाग्र बुद्धि की सब लोग प्रशंसा करते थे। लीलावती की अवस्था इस समय आठ वर्ष की थी।

महेश्वर भट्ट अपनी कुटी में बैठे थे। कहीं पर आसन पड़ा था, तो कहीं तोते विहार कर रहे थे, कहीं विद्यार्थी पढ़ रहे थे, तो कहीं कन्याएँ अध्ययन कर रही थीं। इसी समय बीजापुर की देहात से भास्कर-नामक एक बालक अध्ययन करने के विचार से महेश्वर भट्ट के पास आया। भास्कर की अवस्था उस समय लगभग दस वर्ष की थी। भास्कर देखने में सुंदर प्रतिभाशाली तथा सुशील था। भास्कर वास्तव में बहुत तेज़ निकला, और बाल्यकाल में ही उस प्रतिभा का परिचय तथा प्रमाण देने लगा, जिसने उसे पीछे संसार-भर में प्रसिद्ध कर दिया। महेश्वर भट्ट ने इसे पुत्र की तरह पाला, और अपने ही घर में इसे रख लिया। भास्कर, लीलावती के भाई की तरह, उसके साथ-साथ पढ़ने लगा।

धीरे-धीरे लीलावती और भास्कर की प्रतिभा तथा बुद्धि की सारे बीजापुर में प्रशंसा होने लगी। वे दोनो प्रायः एक साथ ही रहते, एक साथ ही पढ़ते और साथ-ही-साथ खेलते थे। भास्कर बुद्धि का साक्षात् अवतार था, उसमें हृदय का अभाव नहीं था। लीलावती भाव की मूर्ति थी, उसमें बुद्धि की कमी नहीं थी। धीरे-धीरे इन दोनो के हृदय में उस पवित्र प्रेम का संचार हो आया, जो अबोध बालकों तथा बालिकाओं के हृदय में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो सकता है। जब दोनो प्रातःकाल पास या दूर की पुष्प-वाटिका में गुरुजी की पूजा के लिये फूल लाने जाते थे, तो मार्ग में दर्शकों के ऊपर उस सहज तथा स्वर्गीय प्रेम का प्रभाव उत्पन्न करते थे, जो सब दृष्टिकोणों से आदर्श कहा जा सकता है। दोनो ने एक दूसरे के आकर्षण का अच्छी तरह से अनुभव किया, और दोनो ही एक दूसरे से प्रेम करने लग गए थे। परंतु दोनो के प्रेम में बड़ा अंतर था। भास्कर लीलावती को उसी प्रकार शुद्ध भाव से प्यार करता था, जैसे भाई बहन को प्यार करता है, परंतु लीलावती भास्कर को उस तरह से प्यार करती थी, जैसे प्रेमिका अपने प्रेमी को।

(२)

थोड़े समय में ही महेश्वर भट्ट ने भास्कर को बहुत कुछ पढ़ा दिया, परंतु भास्कर की प्रतिभा गणित-शास्त्र और ज्योतिष में बहुत ही अधिक चमक उठी। इस बात को सब लोगों ने मुक्त-कंठ से स्वीकार कर लिया कि गणित-शास्त्र में महेश्वर भट्ट के सिवा और कोई विद्वान् भास्कर के समान नहीं है। और महेश्वर भट्ट अपने मन में भली भाँति समझ गए कि थोड़े ही दिनों में भास्कर मुझसे भी अधिक विद्वान् हो जायगा। भास्कर के इन सब गुणों के कारण गुरुजी उससे बहुत प्रसन्न थे। अब भास्कर लीलावती से विद्या में बहुत अधिक हो गए थे।

एक दिन महेश्वर भट्ट अपनी धर्म-पत्नी से लीलावती के विवाह के संबंध में बातें कर रहे थे। उन्होंने कहा कि यदि लीलावती का विवाह भास्कर से कर दिया जाय, तो बड़ा अच्छा हो। लीलावती के लिये भास्कर से अच्छा वर मिलना कठिन ही नहीं, असंभव भी है। स्त्री-सहज ज्ञान से लीलावती की माता इस बात को अच्छी तरह से जान गई थीं कि वह भास्कर को प्यार करती है। इसलिये उन्होंने भी अपने पतिदेव की बात मान ली। उन्होंने कहा—"हाँ, यदि लीलावती का विवाह भास्कर से हो, तो बहुत अच्छा हो। भास्कर भी हम लोगों की तरह उच्च कुल का ब्राह्मण है, और लीलावती उसे चाहती भी है।" जब लीलावती के संबंध में ये सब बातें हो रही थीं, तब लीलावती उनसे दूर नहीं थी। उसने भीत के अंतर से इन सब बातों को साफ़-साफ़ सुन लिया। इसी वर्ष महेश्वर भट्ट ने लीलावती के विवाह कर देने का निश्चय कर लिया। परंतु वह स्वयं इस संबंध में भास्कर से कुछ भी नहीं कहना चाहते थे। उन्होंने इस विषय में एक षड्यंत्र रचा, और अपनी स्त्री से कहा कि किसी विद्यार्थी के द्वारा भास्कर से इस संबंध में कहलाओ। तब इस संबंध में उसकी स्पष्ट सम्मति मालूम हो जायगी। लीलावती की माता ने एक-एक करके लगभग सब विद्यार्थियों से इस संबंध में कहलाया। परंतु सबोंने बस यही एक उत्तर दिया कि इसके संबंध में स्पष्ट रूप से भास्कर कुछ नहीं कहते। जब कभी इस संबंध में बातें होती हैं, तब भास्कर दूसरी ओर मुँह कर लेते हैं। और इस संबंध में कुछ नहीं कहते। जब इन सब बातों को लीलावती की माता ने महेश्वर भट्ट से कहा, तब उनके आश्चर्य की सीमा ही नहीं रही। वह समझते थे कि भास्कर इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करेगा, और जब पहले-पहल इस समाचार को सुनेगा, तो उसकी आत्मा आनंद से नाच उठेगी। लीलावती की माता को भी इस विषय में कम आश्चर्य नहीं हुआ। परंतु इन लोगों ने अपने मन में समझा कि लड़कों ने अच्छी तरह से इस संबंध में भास्कर से नहीं कहा है, और इसलिये भास्कर असली बात नहीं समझ सका है। इसलिये लीलावती की माता ने स्वयं भास्कर से इस संबंध में कहने का विचार किया। वह अब भी देखती थीं कि लीलावती तथा भास्कर बड़े प्रेम के साथ रहते थे। भास्कर उसे बहन कहकर पुकारते थे, और लीलावती भास्कर को भैया कहकर संबोधन करती थी। यदि सहृदयता में जान होती, तो वह पुकार-पुकारकर कहती कि भास्कर का लीलावती से विवाह हो जाना चाहिए। वास्तव में दोनो एक दूसरे के सर्वथा योग्य थे।

एक दिन उचित अवसर पाकर लीलावती की माता ने इस संबंध में स्पष्ट रूप से भास्कर से कह दिया। और तब उत्सुक नेत्रों से उसकी ओर देखने लगीं। भास्कर ने शीघ्र ही उत्तर दिया—"माताजी! यह असंभव है, यह नहीं हो सकता।" इस उत्तर को सुनकर लीलावती की माता दंग रह गईं, इस उत्तर के सुनने के लिये वह तैयार नहीं थीं। अब तक लीलावती के विवाह का प्रश्न उसके घर बहुत सुगम समझा जाता था, परंतु अब वह एक कठिन समस्या हो गई। इस नकारात्मक उत्तर का कुछ भी कारण महेश्वर भट्ट की समझ में नहीं आया। वह अपने मन में कई बातें सोचने लगे। अंत में उन्होंने स्वयं इस संबंध में

भास्कर से कहने का विचार किया। भास्कर उनकी बातों को वेद-वाक्य समझे थे, और गुरु की सब आज्ञाओं का, उचित-अनुचित का, विना विचार किए, पालन करते थे। इसलिये अब स्वयं महेश्वर भट्ट ने इस संबंध में भास्कर से कहने का विचार किया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि भास्कर उनकी बात अवश्य मान लेंगे। परंतु जब स्वयं भट्टजी ने इस ओर संकेत किया, तो भास्कर ने कहा—"गुरुजी, आपकी सब आज्ञाओं का मैं पालन करता हूँ, और सदा करूँगा। मैं आपकी आज्ञाओं के संबंध में इस बात का भी विचार नहीं करूँगा कि वे उचित हैं अथवा अनुचित। परंतु मैं लीलावती से विवाह नहीं कर सकता। जिस बालिका को मैंने आज तक 'बहन' कहकर पुकारा, जो हमारी धर्म की बहन है, जिसका जन्म पूज्य गुरुओं के घर में हुआ है, जिसकी मैं आज तक हृदय से पूजा करता चला आया हूँ, उसी कन्या को मैं स्त्री के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। गुरुदेव! आप मुझे क्षमा कीजिए, मैं गुरु-कन्या से अपना विवाह नहीं कर सकता। पूज्य आचार्य! ऐसा करना अनुचित होगा, सर्वथा अनुचित।" भट्टजी ने दुःख तथा आश्चर्य के साथ कहा—"भास्कर! भास्कर!! क्या गुरु-भक्ति इस संसार से उठ गई? क्या आज्ञा-पालन इस संसार में अब नहीं रहा? क्या प्रकृति के नियम बदल गए? भास्कर! मैं तुमसे ऐसे उत्तर की आशा नहीं करता था।"

भास्कर ने अपने दोनो हाथों को जोड़ लिया, अपने मस्तक को झुका दिया, और तब नम्रता से कहा—"गुरुदेव! भास्कर आपकी आज्ञा पालन करने के लिये अपनी जान दे सकता है, परंतु यह अधर्म......।"

भट्टजी ने बीच ही में बात काटकर कहा—"क्या यह अधर्म है?"

भास्कर—"पूज्य आचार्य!"

भट्टजी ने कहा—"मैं इसी वर्ष लीलावती का विवाह कर देना चाहता हूँ। इसी से......।"

भास्कर—"गुरुदेव! आज से मैं अपनी पढ़ाई बंद करता हूँ। आपकी शिष्य-मंडली बहुत है। मैं उनको जाकर समाचार दूँगा, और पूर्ण आशा है कि शीघ्र ही योग्य वर मिल जायगा। ऐसी दशा में इसी वर्ष लीलावती बहन का विवाह हो जायगा।" भट्टजी भास्कर के इस उत्तर से बहुत कुछ शांत हो गए। इस समय वह भास्कर और लीलावती के विवाह के औचित्य अथवा अनौचित्य का आचार-शास्त्र की दृष्टि से विवेचन नहीं कर रहे थे। वह भास्कर को भली भाँति जानते थे। वह अपने मन में समझ गए कि संसार की कोई भी शक्ति भास्कर को अब उसके मार्ग से विचलित नहीं कर सकती। उन्होंने प्रसन्नता-पूर्वक कहा—"अच्छा बेटा! यही करो।"

(३)

दूसरे दिन जब भट्टजी का पत्र लेकर भास्कर बाहर जाने लगा, तो लीलावती ने उससे कहा—"भैया! मुझे भी अपने साथ भ्रमण के लिये ले लो। मैं भी अवश्य तुम्हारे साथ चलूँगी।" बेचारी लीलावती अभी भास्कर के अस्वीकार के संबंध में कुछ नहीं जानती थी। भास्कर ने कहा—"नहीं, मेरे साथ तुम्हारा चलना अच्छा नहीं।" भास्कर चला गया, और लीलावती उदास मुँह, टकटकी बाँधकर बड़ी देर तक उसी ओर देखती रही, जिधर भास्कर गया था।

भास्कर के लौट आने पर लीलावती ने उससे बहुत पूछा कि तुम कहाँ गए थे, परंतु भास्कर इस प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दे सका। धीरे-धीरे लीलावती को पता चल गया कि उसके लिये वर खोजा जा रहा है। बेचारी बालिका इस बात का कोई कारण नहीं समझ सकी कि उसके लिये वर क्यों खोजा जा रहा है। उसने स्वयं अपनी पूज्य माता तथा पिता से सुन लिया था, वह भली भाँति जानती थी कि भास्कर से ही उसका विवाह होगा, तथापि उसके लिये वर खोजा जा रहा था। इस वर खोजे जाने का कुछ भी अभिप्राय वह नहीं समझ सकी। इस संबंध में वह किसी से कुछ पूछ भी नहीं सकती थी। सबसे कठिनाई इस बात की थी कि वह स्त्रियों का सर्वश्रेष्ठ रत्न—हृदय-

भास्कर को दे चुकी थी, और भास्कर को अपने हृदय के अंतस्तल में पति-रूप से स्वीकार कर चुकी थी। बहुत पहले से अपने हृदय-मंदिर के भीतर भास्कर की मूर्ति की स्थापना कर चुकी थी, और प्रेम से उसकी पूजा किया करती थी। वह अब भी भास्कर से मिलती थी, उससे बातें करती थी, साथ-साथ पढ़ती थी, और आवश्यकता पड़ने पर विद्या के संबंध में भास्कर से वाद-विवाद भी करती थी, परंतु इनमें कभी प्रेममय बातें नहीं हुई थीं। इस समय लीलावती अत्यंत ही अधिक दुखी थी। जब-जब वह सुनती थी कि उसके लिये वर खोजा जा रहा है, तब-तब वह अपने मन में और भी अधिक दुःखी हो जाती थी, और उसकी व्याकुलता बहुत बढ़ जाती थी। एक दिन उसके मन में आया कि वह इस संबंध में स्पष्ट रूप से भास्कर से कह दे। इसी विचार से भास्कर के पास गई भी, परंतु बहुत प्रयत्न करने पर भी उससे कुछ नहीं कह सकी। लज्जा ने उसका कंठावरोध कर दिया। भास्कर के यहाँ से लौटकर जब वह अपनी माता के पास गई, तो उसका सुंदर तथा कोमल मुँह बहुत उदास था।

एक दिन लीलावती के विवाह के संबंध में महेश्वर भट्ट अपनी धर्म-पत्नी से बातें कर रहे थे। उन्होंने इस संबंध में बहुत बातें कहीं। अंत में उन्होंने यह भी कहा कि वर तो मिल गया, परंतु भास्कर के समान वर मिलना तो असंभव है। उनकी धर्म-पत्नी ने कहा कि कहिए तो एक बार मैं फिर भास्कर से इस संबंध में कहूँ। महेश्वर भट्ट ने उत्तर में कहा—"व्यर्थ है। भास्कर की प्रतिज्ञा पत्थर पर की लकीर है, वह नहीं टल सकती। भास्कर अपने कर्तव्य के सामने ब्रह्मा को भी नहीं मानता।"

आज लीलावती ने अच्छी तरह से समझ लिया कि उसके लिये क्यों वर खोजा जा रहा है, वह व्याकुल हो उठी, और उसका नारी-दर्प जाग उठा। इसीलिये आज जब भास्कर ने उसे गुरुजी की पूजा के लिये फूल लाने के विचार से बुलाया, तो वह नहीं गई। भास्कर अकेला फूल लेने के लिये चला गया। इस प्रकार फूल लेने के लिये अकेले जाने का यह पहला अवसर था। भास्कर की अंतरात्मा आज तड़प उठी, वह समझ गया कि लीलावती सब बातें जान गई। अपना संदेह मिटाने के विचार से, फूल लेकर लौट आने पर, भास्कर ने साथ पढ़ने के लिये बुलाया, तो भी लीलावती नहीं आई। अब भास्कर के मन में कोई संदेह नहीं रह गया, वह उदास हो गया, और वर्तमान परिस्थिति के संबंध में सोचने-विचारने लगा।

(४)

अब लीलावती बहुत उदास और भास्कर से सदा अलग रहने लगी। भास्कर अब उसे बहलाना चाहता था, उसे दुखी तथा उदास देख स्वयं खिन्न हो जाता था, उसकी सेवा करना चाहता था, परंतु उसकी कर्तव्य-बुद्धि लीलावती से विवाह करने के लिये मना करती थी, वह विवश था। महेश्वर भट्ट लीलावती को उदास देख अत्यंत ही अधिक दुखी होते थे, और उनकी धर्म-पत्नी तो उदासीनता की साक्षात् मूर्ति बनी हुई थीं। भास्कर इन सब बातों को देखता था। उसने एक दिन इस संबंध में फिर विचार किया। पहले तो उसने अपने मन में कहा कि मैं ही इन सब विपत्तियों का मूल कारण हूँ। जब गुरुजी की आज्ञा है, जब लीलावती भी यही चाहती है, जब माताजी की यही सम्मति है, तब लीलावती से विवाह कर लेने में कोई दोष नहीं है। क्यों मैं इस कुटुंब को विपत्ति में डालूँ, और गुरु की आज्ञा की अवहेलना करने का अपराधी बनूँ! परंतु अंत में उसकी कर्तव्य-बुद्धि प्रबल हो उठी, उसने कहा—"मैं गुरु-कन्या से कभी विवाह नहीं कर सकता।" भाव ने बुद्धि की आज्ञाओं के सामने सिर झुका दिया।

(५)

लीलावती ने भी जब भली भाँति समझ लिया कि भास्कर से मेरा विवाह नहीं हो सकता, तो उसने लज्जा तथा नम्रता के साथ अपनी माताजी के सामने आजन्म कुमारी रहने का विचार प्रकट किया। महेश्वर भट्ट तो पहले ही से केवल सोच ही नहीं रहे थे, किंतु

डर भी रहे थे कि ऐसा ही होगा। लीलावती की माता अब और भी अधिक उदास रहने लगीं। विवाह की सब तैयारियाँ बंद कर दी गईं, और एक विकट तथा जटिल समस्या उठ खड़ी हुई। इस समाचार ने भास्कर को अथाह दुःख-सागर में ढकेल दिया। वह इस बात को बिलकुल ही नहीं समझ सका कि इस संबंध में क्या करे। परंतु इस बात को भास्कर भली भाँति समझता था कि सब अनर्थों की जड़ स्वयं वही है। उसने अपने मन में सोचा कि मैं विवाह करने के लिये लीलावती से कहूँगा, प्रार्थना करूँगा और अंत में उसे विवश करूँगा। इस समय इन चारो व्यक्तियों में सबसे अधिक दुखी भास्कर था। और सबसे अधिक सुखी कौन था? लीलावती। क्योंकि अब वह अपने जीवन का मार्ग तय कर चुकी थी, उसके मन में द्वैत नहीं था, कोई दुविधा नहीं थी, और एक भाव ने उसे अच्छी तरह से अपना लिया था।

विवाह करने के संबंध में भास्कर ने लीलावती को अच्छी तरह संकेत किया, उसे समझाया, प्रार्थना की तथा अपनी सब बुद्धिमत्ता लगा दी थी, परंतु लीलावती ने कभी किसी का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसने सर्वदा उस मौन का अवलंबन किया, जो सब वक्ताओं को हरा देता है। अंत में भास्कर ने लीलावती से इस संबंध में स्पष्ट रूप से एकांत में बातें करने का निश्चय किया और फूल लेने के लिये उसे अपने साथ चलने के लिये विवश किया।

एकांत में भास्कर ने कहा—"बहन लीलावती!"

लीलावती समझ गई, सहम गई और सकुचा गई। उसने बोलने का प्रयत्न किया, परंतु कुछ भी नहीं कह सकी। भाव की अधिकता से उसका कंठावरोध हो गया।

भास्कर ने घबराकर फिर कहा—"बहन लीलावती! बोलती क्यों नहीं हो?"

लीलावती अब अपने को नहीं सँभाल सकी। वह उठी और जाने लगी। भास्कर ने उसे रोककर कहा—"आज तुम्हें मेरे प्रश्नों का उत्तर देना होगा। मैं तुमसे तुम्हारे विवाह......।"

लीलावती और भी अधिक उत्तेजित हो गई, वह दूसरी ओर से जाने लगी। भास्कर ने उसे फिर रोकना चाहा, परंतु जब उसने देखा कि लीलावती की सुंदर आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है, तब उसे रोकने का साहस नहीं हुआ, वह चली गई। भास्कर के हृदय में इस समय करुणा का संचार हो आया, वह भी रोने लगा, और बड़ी देर तक वहीं रोता रहा।

(६)

इसी प्रकार कई दिन बीत गए, कोई बात निश्चय नहीं हो सकी, सब लोग उदास थे। भास्कर के हृदय-सागर में ज्वार-भाटे की लहरें बड़े ज़ोरों से उठ रही थीं, उसके मन में एक बड़ा भारी तूफ़ान था, और हृदय में हाहाकार। अपने हृदय के इस घोर संग्राम को वह किसी तरह नहीं दबा सका। अब तक लीलावती उससे कुछ खिची-सी और अलग रहती थी। परंतु अब भास्कर सदा पहले की तरह उसके साथ रहने लगा और दूसरी-दूसरी बातों के संबंध में उससे बातें करने लगा। लीलावती की झिझक कुछ जाती रही। अवसर—उचित अवसर—पाकर एक दिन भास्कर ने कहा—"बहन!"

लीलावती ने कहा—"कहो।"

भास्कर—"मैं तुमसे आज एक प्रार्थना करना चाहता हूँ।"

लीलावती—"कहो।"

भास्कर—"मेरी बात मानोगी?"

लीलावती—"कहो।"

भास्कर—"पहले प्रतिज्ञा करो कि मुझे निराश न करोगी?"

लीलावती—"प्रतिज्ञा?"

भास्कर—"हाँ, प्रतिज्ञा।"

लीलावती समझ गई कि वह विवाह करने के लिये कहेगा। उसने कहा—"एक बात के सिवा मैं तुम्हारी सब आज्ञाओं का पालन करूँगी। कहो।"

भास्कर भी समझ गया। उसने कहा—"मेरे ऊपर यह अविश्वास क्यों?"

लीलावती चुप हो गई, उसने शब्दों की सहायता से कुछ उत्तर नहीं दिया, परंतु उसकी मुखाकृति स्पष्ट रूप से कह रही थी—"तुम्हीं अपने हृदय सेपूछो।"

भास्कर ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—"मेरे कहने से आजन्म कुमारी रहने का व्रत छोड़ दो।"

लीलावती ने दृढ़ता तथा नम्रता से कहा—"नहीं।"

भास्कर—"मेरी बात मान लो।"

लीलावती—"असंभव है।"

भास्कर—"असंभव है?"

लीलावती—"हाँ।"

भास्कर—"एक बार फिर सोचो, तब उत्तर दो।"

लीलावती—"सोचा है।"

भास्कर की मुखाकृति बदल गई, उसके मुँह पर प्रतिभा चमकने लगी, उसकी सारी उन्नत भावनाएँ जाग उठीं, ब्रह्मतेज से उसका मुख-मंडल प्रकाशित हो गया। उसने कहा—"यदि लीलावती आजन्म कुमारी रहेगी, तो भास्कर भी आजन्म ब्रह्मचारी रहेगा, अपना जीवन तपस्या, त्याग, पठन-पाठन और ब्रह्मचर्य के अपार आनंद में काट देगा, परंतु वह गुरु-कन्या से विवाह न करेगा। ध्रुव अपने स्थान से टल जायगा, परंतु भास्कर की यह प्रतिज्ञा अब नहीं टल सकती।"

इतना कहकर भास्कर महेश्वर भट्ट के घर से सर्वदा के लिये चला गया। उसी क्षण बाहर निकल गया, फिर वह नहीं लौटा। बीजापुर में किसी ने उसके बारे में कुछ कहा भी नहीं, वह बेपता हो गया। बीजापुर धीरे-धीरे भास्कर को भूल गया, और लीलावती ने अपना विवाह नहीं किया। कुछ दिनों बाद लीलावती के माता-पिता भी मर गए। वह अकेली रह गई।

(७)

उक्त घटना के अस्सी वर्ष बाद एक वृद्ध पथिक संध्या-समय बीजापुर में दिखलाई पड़ा। वह टिकने के लिये स्थान खोज रहा था। वृद्ध के सब बाल सफ़ेद हो गए थे, उसके पास कुशासन और दो-एक पुस्तकों के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। एक आदमी ने उससे कहा—"आप श्रीमती लीलावतीदेवी के पास जाइए, वहीं पर आपको टिकने के लिये स्थान मिलेगा। वह अतिथियों की सेवा करने में अपने को धन्य मानती हैं।"

पथिक एक पथ-दर्शक के साथ लीलावतीदेवी के पास पहुँचा। इस समय वह पूजा कर रही थीं। उन्होंने वृद्ध पथिक की बड़ी सेवा की, उसका ख़ूब स्वागत किया। पथिक ने कहा—"मैं काशी के ब्रह्मचर्याश्रम से आ रहा हूँ।"

लीलावतीदेवी की आत्मा प्रसन्न हो गई। उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा—"आप?"

पथिक—"हाँ, मैं वहीं से आ रहा हूँ।"

लीलावतीदेवी—"आज मैं कृतकृत्य हुई।"

पथिक—"वहाँ के आचार्य ने आपके पास एक समाचार भेजा है।"

लीलावतीदेवी ने आश्चर्य के साथ कहा—"मेरे पास?"

पथिक—"जी हाँ, आपके पास। लीलावतीदेवी आप ही का तो नाम है?"

विस्मय-पूर्ण नेत्रों से देखकर लीलावतीदेवी ने कहा—"हाँ, क्या काशी के ब्रह्मचर्याश्रम के आचार्य मुझे जानते हैं?"

पथिक—"अच्छी तरह से।"

लीलावती—"पूज्य पथिक! यह आप क्या कह रहे हैं? मैं तो काशी कभी गई भी नहीं।"

पथिक—"इससे क्या? वह आपकी बड़ी प्रशंसा करते हैं।"

लीलावतीदेवी ने कहा—"पूज्य पथिक! मेरे धन्य भाग, जो काशी के ब्रह्मचर्याश्रम के आचार्य मुझे जानते हैं। कहो पथिक! शीघ्र कहो, उनकी क्या आज्ञा है। आपकी सुखद वाणी सुनने के लिये मेरा मन उत्कंठित हो रहा है।"

पथिक ने अब अपने हाथ में एक चीज़ उठा ली, और

लीलावतीदेवी को उसे दिखाकर कहा—"यह वस्तु उन्होंने आपको समर्पित की है।"

लीलावतीदेवी घबरा गईं, उनके आश्चर्य की सीमा ही नहीं रही, उन्होंने नम्रता-पूर्वक कहा—"पूज्य पथिक! आपको श्रम हो गया है। आपके आचार्य ने किसी दूसरे व्यक्ति को समर्पित किया होगा। अपरिचित व्यक्ति को वह कोई चीज़ समर्पित नहीं कर सकते। यह वस्तु उचित व्यक्ति को मिलनी चाहिए, उसे खोजने में मैं आपकी सहायता करूँगी।"

पथिक ने कुछ ज़ोर से कहा—"नहीं देवीजी, नहीं। आचार्य ने यह वस्तु आपको ही समर्पित की है। क्या आपका नाम लीलावतीदेवी नहीं है? क्या आपके पिता का नाम महेश्वर भट्ट नहीं था, क्या यह बीजापुर नहीं है? देवीजी! आप विश्वास मानिए, आचार्य भली भाँति आपको जानते हैं।"

लीलावतीदेवी के पैरों के नीचे की धरती सरकती हुई मालूम पड़ी, उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा—"पूज्य पथिक! क्या मेरे कान ठीक हैं? मैं क्या सुन रही हूँ? पूज्य पिता! पूज्य माता!! आह!!! अब वे इस संसार में नहीं हैं।"

पथिक—"आचार्य यह भी जानते हैं कि आपके माता-पिता मर गए हैं। उन्होंने आपके पास यह संदेशा भेजा है कि आपके पवित्र प्रेम के कारण उन्हें जीवन में बड़ी सफलता मिली है। उन्होंने कहा है कि आपका प्रेम उनके लिये गंगा-जल से अधिक पवित्र, अमृत से अधिक सुखद और चंदन से अधिक शीतल है। जो कुछ उनका नाम हुआ है, जो कुछ वह कर सके हैं, वह केवल आपके प्रेम के कारण से......।"

लीलावतीदेवी की अंतरात्मा हिल गई, वह आश्चर्य-सागर में ग़ोता लगाने लगीं, वह पथिक की बातों का ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझ सकीं, उनके मुँह से निकल गया—"पूज्य पथिक!"

पथिक ने फिर कहना प्रारंभ किया—"आचार्य ने कहा है कि आपके प्रेम—पवित्र प्रेम—के कारण उनकी जीवन-शक्ति कई गुनी बढ़ गई है, उनकी बुद्धि बढ़ गई है, और अब वह केवल गणितज्ञ और ज्योतिषी ही नहीं, किंतु कवि और काव्य-मर्मज्ञ भी हो गए हैं। काशी के ब्रह्मचर्याश्रम के आचार्य को जो कुछ सफलता मिली है, वह आपके पवित्र, निष्काम तथा स्वर्गीय प्रेम के कारण।"

इन बातों को सुनकर लीलावतीदेवी के मन में संदेह हो गया, उन्होंने घबराकर कहा—"काशी के ब्रह्मचर्याश्रम के पूज्य आचार्य का नाम क्या है?"

पथिक ने शीघ्रता से उत्तर दिया—"भास्कराचार्य।"

लीलावतीदेवी की पुरानी हड्डियों में जवानी का जोश आ गया, उनके हृदय की वीणा के सब तार झनझना गए, उनके हृदय में प्रेम का संचार हो आया, उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा—"भास्कराचार्य!"

पथिक ने फिर कहना प्रारंभ किया—"आचार्य पहले यहीं आपके साथ पढ़ते थे, तब उनको सब लोग भास्कर कहते थे। यहाँ से जाकर उन्होंने काशी में एक ब्रह्मचर्याश्रम खोल दिया, तब से सब लोग उन्हें भास्कराचार्य कहने लगे। लीलावतीदेवी! आचार्य अभी तक ब्रह्मचारी हैं। उनके बाल मेरे ही तरह सफ़ेद हो गए हैं। उनका नाम अब सारे संसार में प्रसिद्ध हो गया है, और उन्होंने इसके द्वारा आपका नाम भी अमर कर दिया है।"

इतना कहकर वृद्ध पथिक ने फिर उसी चीज़ को अपने हाथ में ऊपर उठा लिया, जिसे उसने पहले लीलावतीदेवी के देने के लिये आचार्य की समर्पित वस्तु बतलाई थी।

लीलावतीदेवी की धमनियों में इस समय बिजली दौड़ रही थी, उनका आनंद-सागर बाँध तोड़कर लहराने लगा था। साठ और बीस पूरे अस्सी वर्ष के बाद आज उन्हें अपने पूज्य देवता का पता चला था, अपने आनंद के आँसुओं की प्रबल धारा को वह बिलकुल ही नहीं रोक सकीं, उनका रोआँ-रोआँ सजग हो आया, और वह अनिमेष नेत्रों से पथिक की ओर देखने लगीं।

पथिक की आँखों से भी धारा बह चली। उसने अपने को बहुत सँभाला, और फिर कहने लगा—"लीलावतीदेवी ! आचार्य प्रायः ब्रह्मचर्याश्रम में आपकी प्रशंसा किया करते हैं, और आपको आदर्श रमणी समझते हैं। क्या आप उनका दर्शन नहीं करना चाहतीं ?"

इस प्रश्न को सुनकर लीलावतीदेवी की नस-नस में बिजली दौड़ गई, उन्होंने एक विशेष प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव किया, उन्होंने अपने को सँभालकर कहना प्रारंभ किया—"पूज्य पथिक ! क्या आप कोई ईश्वरीय दूत हैं ? आपकी सुखद वाणी से मुझे बड़ा संतोष हुआ। आपके आचार्य मेरे पूज्य देवता हैं, क्या आप मुझे काशी के ब्रह्मचर्याश्रम का मार्ग बतलावेंगे ?"

पथिक ने कहा—"देवीजी, आचार्य आपको अब भी बहुत प्यार करते हैं। क्या आप अभी उनके दर्शनों के लिये चलेंगी ? लीजिए, यह लीजिए। आचार्य ने इसे आपको समर्पित किया है। इसी से आपका नाम आचार्य ने अमर कर दिया है।"

इतना कहकर पथिक ने लीलावतीदेवी के हाथ में उस वस्तु—पुस्तक—को रख दिया। लीलावतीदेवी ने उसे उठा लिया, उस पुस्तक का नाम 'लीलावती' था।

लीलावतीदेवी ने प्रसन्नता-पूर्वक कहा—"पूज्य पथिक ! मैं तुम्हारे आचार्य की बहुत ही अधिक ऋणी हूँ। वही मेरे पूज्य देवता हैं। उन्हीं की मैं पूजा करती हूँ। पूज्य पथिक ! देखो, मैं इन्हीं की पूजा करती हूँ, यही उस देवता के चिह्न हैं।"

इतना कहकर लीलावतीदेवी ने घर के भीतर ले जाकर उस वस्तु को दिखला दिया, जिसकी वह पूजा किया करती थीं। वह भास्कराचार्य के खड़ाऊँ थे।

लीलावतीदेवी ने फिर कहना प्रारंभ किया—"मैं आपके आचार्य के इन खड़ाउओं की पूजा करती हूँ। पूज्य पथिक ! मैं आपसे क्या छिपाऊँ ? वही मेरे हृदय के स्वामी हैं, उन्होंने मुझे ठुकरा दिया, परंतु मेरे हृदय के ईश्वर हैं। मेरे हृदय की बड़ी भारी साध है कि एक बार मैं उन्हें 'हृदयेश्वर' कहकर पुकारूँ ? पूज्य पथिक ! यहाँ से काशी आदमी कितने दिन में पहुँच सकता है ?"

लीलावतीदेवी ने अनिमेष नेत्रों से वृद्ध पथिक की ओर थोड़ी देर तक देखा, और फिर कहा—"युग-युग की साधना और इस जन्म की तपस्या का फल मैं उसी दिन सफल समझूँगी, जब तुम्हारे आचार्य को 'हृदयेश्वर' कहकर पुकारूँगी, पूज्य पथिक ! कहिए, काशी यहाँ से कितनी दूर है।"

वृद्ध पथिक ने बड़े ध्यान से लीलावतीदेवी की ओर देखा, और कहा—"बहन ! बहन लीलावती !! क्या मुझे पहचानती नहीं हो ?"

लीलावतीदेवी थोड़ी देर तक वृद्ध पथिक की ओर देखती रहीं, फिर धड़ से उसके पैरों पर गिर पड़ीं, और चिल्ला उठीं—"हृदयेश्वर !-हृदयेश्वर !! हृदयेश्वर !!"

महात्माजी की यात्रा



"क्षितिज में घोर अंधकार छाया हुआ है। संभव है, मैं लंदन से केवल खाली हाथ लौटूँ। पर ईश्वर में मेरी अविचल श्रद्धा है। मैं मानता हूँ, प्रभु ने मेरे समीप लंदन का मार्ग रक्खा है, प्रजा ने भी मुझे आज्ञा सौंप दी है। मुझे इस आज्ञा के प्रति विश्वासघात नहीं करना है।"

—महात्माजी



स्वरकार
गौरीशंकरसिंह साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

शब्दकार
महात्मा सूरदासजी

राग विहाग—तीन ताल

गीत

कहत कोउ परदेसी की बात।
मंदिर अरध अवधि बदि हमसों, हरि अहार चलि जात,
ससि-रिपु बरस सूर-रिपु युगवर, हर-रिपु किए फिरे घात;
मघ पंचक लै गए श्यामघन, आय बनी यह बात।
नखत बेद ग्रह जोरि अर्ध करि, को बरजै हम खात;
'सूरदास' प्रभु तुमहिं मिलन को, कर मींजत पछतात।

स्थायी

०				३				×				२			
											प	म	प	म	ग
											क	ह	त	को	उ
प	नि	सं	नि	प	म	ग	म	ग	—	—	ग	स	स	ग	म
प	र	दे	ऽ	सी	ऽ	की	ऽ	बा	ऽ	ऽ	त	प	र	दे	ऽ
प	—	नि	—	सं	नि	प	म	ग	म	ग	प				
सी	ऽ	की	ऽ	बा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	त	क				
ग	म	प	प	नि	नि	सं	सं	सं	सं	सं	सं	सं	रें	नि	प
मं	ऽ	दि	र	अ	र	ध	अ	व	धि	ब	दि	ह	म	सों	ऽ
ग	म	नि	प	—	म	ग	म	ग	—	—	ग				
ह	रि	अ	हा	ऽ	र	च	लि	जा	ऽ	त	क				

अंतरा

०				३				×				२			
प	प	नि	नि	सं	सं	सं	सं	—	सं	सं	रें	नि	नि	प	प
स	सि	रि	पु	ब	र	स	सू	ऽ	र	रि	पु	यु	ग	व	र
ग	ग	ग	म	प	प	नि	नि	सं	नि	प	म	ग	म	ग	ग
ह	र	रि	पु	क्रि	प	फि	रे	घा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	त
सं	सं	गं	—	गं	मं	पं	—	गं	मं	पं	गं	—	सं	सं	सं
म	घ	पं	ऽ	च	क	लै	ऽ	ग	प	ऽ	श्या	ऽ	म	घ	न
प	नि	सं	नि	प	म	ग	म	ग	—	ग	प				
आ	ऽ	य	ब	नी	ऽ	य	ह	वा	ऽ	त	क				

नोट—दूसरा अंतरा भी इसी तरह बजेगा।



१. सच्चा संबंध

(१)

जो आप दीनानाथ हैं,
तो हम दरिद्री, दीन हैं।
जो आप करुणा-सिंधु हैं,
तो कारुणिक हम मीन हैं।

(२)

जो आप अशरण-शरण हैं,
तो हम शरण-इच्छुक प्रभो!
जो हैं दयाधन आप, तो
हम हैं दया-भिक्षुक प्रभो!

(३)

जो आप हैं दनुजाऽरि, तो
हम हैं दनुज-पीड़ित मनुज।
जो आप हैं हलधर*-अनुज,
तो हम गदाधर † के अनुज।

(४)

जो भक्त-वत्सल आप हैं,
तो आपके हम भक्त हैं।
जो आप प्रेमी-वश्य, तो
हम आपमें अनुरक्त हैं।

(५)

जो आप हैं श्रीराम, तो
हम वायु-नंदन वीर हैं।
जो आप हैं श्रीकृष्ण, तो
हम द्विज सुदामा धीर हैं।

(६)

जो आप गोपीनाथ, तो
हम गोपियाँ संतुष्ट हैं।
जो आप हैं गोपेश, तो
हम गोपगण परिपुष्ट हैं।

(७)

जो आप नटवर-नाथ हैं,
तो हम नटों के झुंड हैं।
जो आप पूरे रसिक, तो
हम शांत-रस के कुंड हैं।

(८)

जो आप नाविक नव्य हैं,
तो हम निराली नाव हैं।

* बलराम के छोटे भाई श्रीकृष्ण। † भीम के छोटे भाई अर्जुन

जो आप भावुक भव्य हैं,
तो हम विभूषित भाव हैं।

(९)

जो आप कर्षण-शक्ति हैं,
तो आपके हम कृष्य हैं।
जो आप दर्शन*-हीन हैं,
तो आपके हम दृश्य हैं।

(१०)

जो हैं निराकृति आप, तो
हम दिव्य आकृति आपकी।
जो हैं अचिंतन आप, तो
हम सौख्यकर-स्मृति आपकी।

(११)

जो आप नीरज-बंधु†, तो
हम श्रेष्ठ नीरज, शांत हैं।
जो आप कैरव-बंधु‡, तो
हम श्रेष्ठ कैरव-कांत हैं।

(१२)

जो आप पूरे ब्रह्म हैं,
तो जीव हैं सुखकार हम।
जो आप हैं आधार, तो
ब्रह्मांड हम, संसार हम।

(१३)

जो आप हैं वर गंध, तो
हम भूमि-कण दृढ़, धीर हैं।
जो आप हैं रस-रूप, तो
हम तृप्तिकारक नीर हैं।

(१४)

जो आप मोहन-रूप हैं,
तो तेज हमको मानिए।
जो आप सुंदर स्पर्श हैं,
तो वायु हमको जानिए।

(१५)

जो आप सौख्यद शब्द हैं,
तो स्वच्छ हम आकाश हैं।
पर्दा उठाकर देखिए,
हम आप ही के पास हैं।

(कुमार) प्रतापनारायण (कविरत्न)

× × ×

२. एक विनय

भुला दो, भुला दो, नाथ, अपनी उस दासी को, जिसने इतनी सद्भक्ति से तुम्हारी सेवा की, सराहना की, अर्चना की, उपासना की, अनुनय की, विनय की, प्रेम किया, प्रयास किया, किंतु अब उसे सदा के लिये स्मृति में विलीन हो स्वर्ग में जा सोने दो, तारों के बीच तड़पने दो, चंद्रमा का चुंबन लेने दो ! खूब डूब चुकी हूँ उस शोकाब्धि में, अब तो सुख-सागर में ग़ोते लगाने दो !

उद्यान में आग लग गई, कुसुमों में कृमि-कीट पड़ गए, नहरों का नीर बह गया, पलकों का प्रकाश बुझ गया, सुखद अतीत में दावानल दहकने लगा। अब अरे, अब कौन इस मरु-भूमि का मालिक है ? कौन इस उजड़े उपवन का रक्षक है ? कौन इस खोए ख़ज़ाने का ख़ज़ांची है ?

"ऐसों का साथी इस स्वार्थी संसार में कोई नहीं ; हाँ, हो भी, तो कौन हो ?" ऐसी आकाश-वाणी हुई, मैंने सुनी, और उसकी प्रतिध्वनि में मेरे पापी प्राण भी पखेरू हो जा मिले।

(कुमारी) दिनेशनंदिनी चोरड्या

× × ×

३. कुतिया

उसका प्रथम दुर्भाग्य उसके जन्म-दिवस को ही था। वह संसार में छोटे, भूरे बालों के साथ आई थी। लचीले कान और लोमड़ी की-सी आँखें। प्रत्येक जान-

* अदृश्य। † सूर्य। ‡ चंद्रमा।

वर में एक ऐसा गुण अवश्य रहता है, जो मनुष्य के सद्व्यवहार को उसकी ओर खींचा करता है। किंतु उसमें ऐसा न था। उसमें कोई ऐसी मौलिकता न थी, जिससे वह लोगों की कृपा-पात्र बन सकती। स्वभावतः वह मरुस्थल के सदृश सूखी तथा किसी भी काम की न थी।

कुछ भी हो, वह एक कुतिया थी, एक जानवर, जो स्वतः जीविका चलाने में असमर्थ हो। लोगों द्वारा पोषित होकर वह जीवन-यापन की आदत को न छोड़ सकी। किसी योग्य मनुष्य के मकान की खोज में रहने लगी।

वह दुखिया किनसन के किराए पर देनेवाले मकान के पास ठहर गई। आकबो की ग्रामीण सड़क पर वह मकान बना था। मकान की बनावट इस प्रकार थी कि कोई पीछे को आँगन से मुख्य सड़क पर जाने में असमर्थ था। फ़र्श ऊँचे थे, और ज़मीन सूखी थी। इस मकान और पास ही के दूसरे मकान के बीच में एक सकरी, अँधेरी, ख़ाली गली थी। इस गली को अपनाने में उसे अधिक समय न खोना पड़ा।

सबसे अधिक आवश्यकता भोजन ढूँढ़ना था। पास दो और किराए के मकान थे। चारो मकान मिलकर एक खेतनुमा मकान बनाते थे—यहाँ किनसन का परिवार रहता था। ये मकान एक दूसरे के सम्मुख खड़े थे। तथा सघन वृत्त उनके मध्य में थे। उसकी तीखी नाकों ने उसे पहले रसोई-घर की ओर प्रस्थान करवाया। वह भूखी थी, अतएव इच्छा करने की आवश्यकता न हुई। फलों के छिलके, जूठे बरतन—जो कुछ उसे मिला—सब चाट गई। पास ही पानी का टब रक्खा था। बड़ी प्रसन्नता से उसने टब में पानी पिया।

बग़ीचे में एक पुराना वृत्त था। उसने उसके नीचे आराम करने का निश्चय किया। चारो पैर से गरम ज़मीन को—जो पत्तियों के मध्य से सूर्य की किरणों द्वारा गरम हो गई थी—खुरेदकर वहीं बैठ गई। सायंकाल में वह फ़र्श के नीचे, कोयले के बोरे में, लेट जाती। इस तरह उसका जीवन व्यतीत होने लगा।

इस समय तक किनसन के परिवार ने पोची-नामक एक चितकबरा कुत्ता पाल रक्खा था। पोची ही एक ऐसा प्राणी था, जो उसका स्वागत करता था। ज़मीन को खुरेदते हुए नम्रता-पूर्वक जब वह उसके पास जाती, तो वह अपनी मैली पूँछ हिला-हिलाकर उसका आदर करती। पोची सभ्य स्वभाव का कुत्ता था।

किंतु पोची जिस प्रकार उसका स्वागत करता, उस प्रकार किनसन और पड़ोसी उसका स्वागत न करते। "क्या कुरूप होना जानवरों तक में भी भारी पाप नहीं है?" एक ने कहा—"मैं उसे पाल लेता, यदि वह तनिक भी सुंदर होती।" दूसरे ने कहा—"ये सब उसके लिये निरर्थक थीं।" और वह इन लोगों द्वारा पप के नाम से पुकारी जाती थी। चारो मकानों में से प्रत्येक मकान में एक "चाची" होती थी। यह नाम मकान-मालकिन को दिया जाता था। सिर्फ़ 'चाचियाँ' ही नहीं, किंतु बच्चे भी उस पर हँसते और घृणा-पूर्वक पुकारते—"पप-पप।" 'चाचा' वग़ैरह तो और भी भयंकर थे। पत्थर, लोहे के टुकड़े आदि कई चीज़ें उसकी ओर फेंकी जातीं। एक बार तो एक पुराना चौखट फेंका गया, जिससे उसके पिछले पैर में घाव हो गया।

धीरे-धीरे वह मानुषिक मस्तिष्क को समझने लगी। मुँह का क्रोध-सूचक भाव, लोगों का नीचे झुकना, मानो कुछ उठानेवाले हों, ओठों को कतरना—ये सब सूचनाएँ उसे शिकारी की गहरी दुश्मनी का परिचय दे देतीं। एक दिन वह किनसन के रसोई-घर के पास की नाली के पास पहुँच गई। कोई नहीं जानता, वह कैसे बची! लोग चिल्ला रहे थे—"रस्सी लाओ—रस्सी-रस्सी!" वह भड़क उठी, और बग़ीचे की ओर से भागती हुई गरम कमरे के पास पहुँची, वहाँ से खेत में होती हुई दूर निकल गई।

"आख़िर चली गई!" एक चाचा ने कहा।

"क्या वह दुःखदायी प्राणी नहीं है?"

FOR SALE!

50,000 Shop-Soiled and Slightly Damaged

(IMPORTED FROM U. S. A.) **BOOKS**

Usual Selling Price Rs. 1-14-0 each. Now to be cleared off at As. 12 each. V. P. P. extra (Foreign 1s. 2d. each)

Love & Marriage	Stage Secrets
Don't Marry	Temptations of Stage
Confessions of Boy	Behind the Scenes
Gypsy Fortune Teller	Poems & Recitations
Vail's Dream Book	Popular Recitations
Dreams Interpreted	Children's Recitations
Slow Train. Funny Saying	Fortune Telling by cards
Oh Boy! (Fun & Jokes)	Book of Stories
Bootlegger's Paradise	Macon Moore Detective
How to Speak Spanish	Mandy's Dream Book

Write your Name & Address clearly in capital letters.

GENERAL SUPPLIES Co., P. B. 167., Karachi. 13

दी इण्डियन टेलरिङ्ग कालेज

होशियारपुर पंजाब—याद रक्खो, धनी पुरुष धनी नहीं हुनरमंद पुरुष धनी है। ११० लिबास सीखकर अपनी सूर्टिग शाप खोल लें। इस हुनर की दुनिया में हर जगह हमेशा ज़रूरत है। कपड़ा मशीन कॉलेज से नियम काफ़ी ही मँगाएँ।

अद्वितीय पुस्तक हिंदी-उर्दू—१२ कमीज़ २४८ प्रश्न कपड़ा लगाने पर ५६ चित्र ॥ु ५ कोट १७२ प्रश्न ८० चित्र १ु, ४ जंपर, ३ झंगी २ ब्लौज़, पेटीकोट ॥ु, पतलून, निकर, ब्रीचिस, १२ कपड़ा लगाने के तरीके १ु, छत्री १६२ प्रश्न ॥ु वास्कट ।ु, ८ पाजामे ।ु ग्राफ़ विनी फ़ोर ।ु यह ८ पुस्तकें ५ु अद्वितीय दौलत दर्ज़ी इलम कटाई पर ५ु नुक़सों के रफ़ा करने पर पुस्तक १ु, सुकेयर, कयंचीयाँ, तसवीर यहाँ से मँगाएँ।

शुद्ध स्वदेशी शक्ति की सर्वोत्तम दवा

मदनमंजरी

ये दिव्य गोलियाँ दस्त साफ़ लाती, वीर्य-विकार-संबंधी तमाम शिकायतें नष्ट करती और मानसिक व शारीरिक प्रत्येक प्रकार की कमज़ोरी को दूर करके नया जीवन देती हैं। मूल्य ४० गोलियों की डिब्बी का १ु

बंबई ब्रांच—३६३ कालबादेवी रोड

राजवैद्य नारायणजी-केशवजी

हेड ऑफ़िस जामनगर (काठियावाड़) लखनऊ एजेंट—निगम मेडिकल हाल

स्त्री-मात्र का रक्षक व परम हितैषी इष्ट-मित्र

जगत्-विख्यात

Registered **'कौनटैक्स'** रजिस्टर्ड

इसके सेवन से गर्भ स्थापित नहीं होता। जो स्त्रियाँ गर्भ-धारण करना और अधिक संतान उत्पन्न करना नहीं चाहतीं, वे 'कौनटैक्स' के सेवन से कभी गर्भवती नहीं होतीं। क़ीमत फ़ी शीशी १॥ु रु०, डाक-ख़र्च ।=ु

पता—आनंदजीवन-फ़ार्मेसी, आगरा

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

किनसन ने कहा "जो भले मनुष्य की नाईं हँसा था।"

यह सिर्फ़ एक या दो बार ही नहीं था, जब कि उसे इस प्रकार के कटु अनुभव करने पड़े थे। किराए के मकान के नए रसोई-घर में वह ढिठाई से पग रखती, अथवा मैले पैरों के साथ दालान तक जाती। इस परिवार में कोचन-नामक एक बालिका थी, जो आँगन में खेलना पसंद करती थी। वह इस बाला के साथ तमाशे करती। कभी कोचन स्वादिष्ठ दिखाई देनेवाली रोटी लाती, और उसे दिखाती।

"यह देखो! यह देखो, पप!"

उसी वक़्त वह कोचन पर कूद पड़ी।

"ओह! पप दुष्टा है, चाची!"

यही कोचन की मदद के लिये आवाज़ होती थी, तब चाची जल्दी आती, और कोचन को बुलाती।

"दौड़ आओ, कोचन!—जल्दी!"

इस समय तक ग़रीब कोचन के पास कुछ शेष न रहा। रोती हुई कोचन के पास से उसने रोटी छीन ली थी। इस प्रकार मनुष्यों द्वारा खाए जानेवाली मिठाइयों का रसास्वादन करती। ऐसी घड़ियों में बहुधा वह अपनी नाक को लाल जीभ से चाटा करती।

किसी भी तरह उसके कार्यों में कोई ख़राबी अथवा अच्छाई की सूचना न थी। ये शब्द चाचा और चाची से सुना करती, किंतु उनके बारे में उसे कुछ भी ज्ञात न था। मनुष्यों की सभ्यता के बारे में वह पूरी अज्ञान थी। वह सिर्फ़ एक कुतिया थी। उसके कार्य कठिन थे या नहीं—यह कोई प्रश्न न था। वह एक ग़रीब जानवर थी, जो अपने स्वभावानुकूल कार्य करती थी।

ठंडा, दुःखदायी शरद् चला गया। जब "अच्छा हो, यदि चली जाओ।" सहती रही। यह आश्चर्य था कि वह भूखों न मरी। यहाँ तक कि मनुष्य-वर्ग भी बुरी स्थिति में थे। तब कैसे वे इस अबोध, बेकाम ढोर के सामने अपने ठंडे भात के एक प्याले को रख सकते थे? वह बर्फ़ में बड़ी दूर चली जाती, और सब कुछ खाती, यहाँ तक कि नारंगी के छिलके भी।

इसी बीच में वसंत आया, और जब बर्फ़ पिघलने लगी, वह पूरी बढ़ी हुई प्रतीत होने लगी। सब कुत्ते, किनसन के पोची से लेकर स्नान-घर के कूरो तक, लकड़ी के ठेकेदार का कुत्ता अका और वह डरावना पड़ोसी का बड़ा कुत्ता, उसके चारो ओर इकट्ठे हो जाते। जहाँ कहीं वह जाती, दो-तीन कुत्ते उसके पीछे लग जाते। इस तरह उस वृक्ष के नीचे, जहाँ वह आराम करती थी, इनकी भीड़ लग जाती।

एक चाची ने, जो हाथ में बालटी लिए कुएँ पर आई थी, यह दृश्य देखा।

"मेरी।" उसने कहा—"पप कुतिया थी! मैं यह न जानती थी!"

और पड़ोसिन चाची ने भी, जो वहाँ आ गई थी, कहा—"मैं भी न जानती थी!"

दोनो चाचियाँ हँस पड़ीं—मनोरंजन! किनसन के यहाँ जो बातें हो रही थीं, उनसे उसे वनवास होना था। चारो ओर से यही सुन पड़ता था कि यदि उसे बच्चा हुआ, तो बड़ा बुरा होगा। उसके भविष्य-चिंतन के लिये कोई न था।

उसे इसके बारे में कुछ भी ज्ञात न था।

दूसरे दिन किनसन के मकान के सामने एक गाड़ी खड़ी हुई। गाड़ी में एक ढक्कन-रहित संदूक़ थी, जो एक मैली चटाई से ढँकी थी। उसकी तीखी नाकों ने झट जान लिया कि उसमें क्या था?

एक पुलिस-मैन के पीछे एक अधेड़ व्यक्ति ने गृह-प्रवेश किया। किंतु वह वहाँ न थी। पोची, कूरो और अन्यान्य कुत्ते एकाएक चिल्लाने लगे। अब चाचा, चाची और गाँव के सब लोग बाहर निकल आए।

"कुत्ते का शिकारी मा!"

कोचन ने अपनी मा के आँचल में स्वतः को छिपा लिया।

लोग बग़ीचे में दौड़ने लगे। किनसन की पुत्री,

जो रोज़ वृक्षों को पानी दिया करती थी, बाहर, सड़क पर, दौड़ी आई। एक मिडिल स्कूल का विद्यार्थी, जो एक चित्र बना रहा था, अपना काम छोड़ उनके पीछे दौड़ने लगा।

"वहाँ बची! यहाँ दौड़ी!"

कोचन ने काँपते हुए कहा—"पप सचमुच मारी गई।"

अंत में वह बच गई। दोनो—पुलिस-मैन और वह अधेड़ व्यक्ति—ख़ाली गाड़ी लेकर चले गए।

कहीं भी वह अपनी जान बचा ले गई, और धीरे-धीरे उसका शरीर लंबा होने लगा। अब उसे स्वयं अपनी रक्षा ही नहीं, किंतु अपने बच्चों की भी रक्षा करनी है। अब वह उस वृक्ष के नीचे आराम से रहा करती है। यहाँ तक कि जब वह गीली ज़मीन में बैठकर आराम कर रही थी, वह उठ खड़ी हुई—उसने एक मनुष्य की छाया देखी। एक क्षण के लिये भी वह आना-कानी न कर सकी। उस समय उसके नेत्रों में दुष्टता तथा निष्ठुरता 'मनुष्यता' के सिवा और किसी में न दिखलाई पड़ती थी।

परंतु अपने घर के बदले में वह मनुष्य के मकान को नहीं छोड़ सकती थी। किंतु कितना अच्छा होता, यदि वह अन्य ढोरों की भाँति जंगल में जाकर बच्चे देती। किंतु वह अपना घर न छोड़ सकती थी!

ठीक जून के प्रथम हफ़्ते में उसने 'माता का कार्य' बंद किया। किनसन के गरम मकान में चार बच्चे दिखलाई पड़ रहे थे। दो तो पोची के समान चितकबरे थे। एक काला था, और दूसरा भूरा, बहुत कुछ उसके समान।

आह! माता की अवस्था में जब उसने पहले-पहल मनुष्य की हँसी देखी थी, तब वह एक प्रभात था।

"पप—आओ, आओ।"

रसोई-घर की खिड़की का दरवाज़ा खोलते हुए किनसन के यहाँ की चाची ने कहा।

तब से वह सदा उसे इसी प्रकार बुलाया करती थी *।

श्रीकेशवप्रसाद वर्मा

× × ×

४. स्वप्न

(१)

नाथ ! प्रतिज्ञा की थी तुमने
खाकर शपथ मेरे सर की।
पत्र भेजने में पर स्वामी,
इतनी देरी क्योंकर की?

(२)

छोड़ अकेली नाथ ! मुझे तुम
चले गए हो निष्ठुर वन।
बीत चला संपूर्ण वर्ष, पर
दिया नहीं तुमने दर्शन।

(३)

बिता रही हूँ दिन की घड़ियाँ
ठंडी, दीर्घ साँस भर-भर;
तम की निशा कटे यह कैसे
नभ के तारे गिन-गिनकर?

(४)

भाद्र मास की रात अँधेरी,
बूँदें पड़ती हैं झर-झर;
कभी-कभी है चमक रही यह
चपल चंचला इठलाकर?

(५)

घुमड़-घुमड़कर बादल गर्जन
करते, शोर मचाते हैं;

* जापानी कहानी (अँगरेज़ी से)।—लेखक

मेरे व्याकुल विरही मन को
रह-रहकर तरसाते हैं।

(६)

जा सोई सूनी शय्या पर
करके अपना कड़ा हिया;
अर्द्ध रात्रि के बाद किसी के
कोमल कर ने जगा दिया।

(७)

क्या देखा, क्या कहूँ सखी,
बस मन से पूछो वारंवार;
लिए हाथ में पत्र खड़े हैं
मेरे सम्मुख प्राणाधार।

(८)

मेरा मन था भारी पुलकित,
किंतु मान कर खड़ी रही;
बोले बार-बार प्रियतम, पर
मौन बनी मैं अड़ी रही।

(९)

प्रेम-सने सुमधुर वचनों में
प्राणनाथ ने प्रश्न किए;
प्रत्युत्तर नीरव भाषा में
मैंने सबके उन्हें दिए।

(१०)

झटका उनको दिया, उन्होंने
जब पकड़ा सारी का छोर;
छिपा लिया मुँह घूँघट-पट में,
आए जब वह मेरी ओर।

(११)

चाहा, बाहु-बद्ध कर उनको
विरह-अग्नि को शांत करूँ;
मिलें परस्पर विरह-व्यथित उर,
विरह-काल का अंत करूँ।

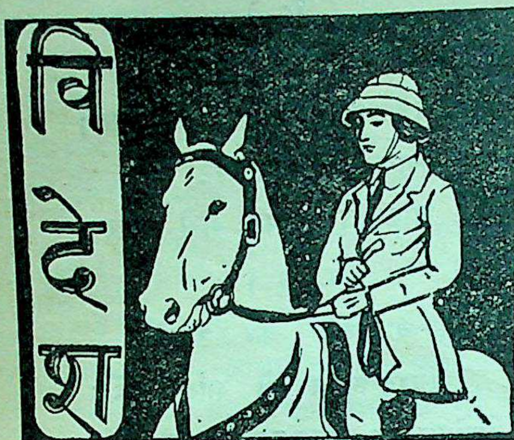
(१२)

लेकिन हुई मान के वश में,
दौड़ी पीछे को निरुपाय;
ठोकर खा चौखट की मैंने
खोया अपने प्रभु को हाय!

(१३)

सरस रंग में भंग हुआ
सहसा नेत्रों के खुलते ही।
स्वप्न हुआ, जो सच समझे थी,
बिछुड़े स्वामी मिलते ही।

(श्रीमती) सावित्रीदेवी गर्ग



१. ब्रिटिश-साख का आधार



जर्मनी की आर्थिक विपत्ति के साथ-ही-साथ संपूर्ण योरप की आर्थिक दुरवस्था का वर्णन हमें विदित होने लगा है। राष्ट्रपति हूवर ने अमेरिका की ओर से जो घोषणा की है कि वह एक वर्ष के लिये योरप के सभी क़र्ज़दार राष्ट्रों से अपना क़र्ज़ न लेंगे, तथा उसकी अदायगी एक वर्ष के लिये मुल्तवी की जाती है, इसका रहस्य भी अब हम समझ गए हैं। क़र्ज़दार राष्ट्रों से अमेरिका अपना क़र्ज़ सोने में लेता है। इसी प्रकार उसने संसार का आधा सोना अपने यहाँ बटोर लिया है। किंतु इस वर्ष सोने का इतना बड़ा अकाल है कि सभी क़र्ज़दार राष्ट्र चीज़ों में या चाँदी में अपना क़र्ज़ चुकाने पर ज़ोर देते। पर हूवर अपने देश का बाज़ार चौपट करने के लिये न तो विदेशी माल ही अपने देश में आने देना चाहते हैं, और न चाँदी का ही उनके लिये कुछ मूल्य है। इसीलिये, ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने के पहले ही, उन्होंने एक वर्ष के लिये सबका क़र्ज़ माफ़ कर दिया है, मुल्तवी कर दिया है।

अमेरिका की इस चालबाज़ी को इँगलैंड बख़ूबी समझता है। पर खुलकर कुछ कहने की उसमें हिम्मत नहीं है। फिर भी इस अवसर से जहाँ तक लाभ और यश हो सकता है, वह उठाना चाहता है। इस जर्मनी की सहायता के प्रकरण को ब्रिटेन में क्या रूप दिया गया है, तथा वास्तव में उसकी आर्थिक परिस्थिति पर जर्मनी से महासमर का हर्जाना मिलने और क़र्ज़ न मिलने की मुल्तवी का क्या असर पड़ा है, इसका समाचार-पत्र के पाठकों को अच्छा ज्ञान होगा। यहाँ पर मैं इस संबंध में लंदन के 'न्यूज़ ऑफ़् दि वर्ल्ड' (News of the World) में प्रकाशित २ अगस्त के अग्र लेख को उद्धृत कर देना चाहता हूँ। इससे हमें इस विषय में साफ़ ज्ञान हो जायगा। पत्र लिखता है—

चूँकि ब्रिटिश जनता अपनी जीविका के लिये अधिकांशतः विदेशी संबंधों पर अवलंबित है, इसलिये जर्मनी की समस्या ध्यान देने योग्य है। अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (लंदन) के परिणाम का तत्त्व यही है कि यदि ब्रिटेन महाद्वीप का पूर्ण विनाश रोकना चाहता है, तो उसके लिये यह आवश्यक है कि अमेरिका के साथ वह अपना दृढ़ भाग अदा करने को तैयार हो। इस तूफ़ान के बीच में, पेरिस में, इस देश की साख के संबंध में गप्प उड़ाई गई थी। इनका प्रभाव भी पड़ा, और बैंक ऑफ़् इँगलैंड पर सोने की भयानक माँग की गई। किंतु थ्रेडनीडल स्ट्रीट की यह वृद्धा विना कंपे

के ही इस धक्के को बर्दाश्त कर गई, और हमारे प्रधान मंत्री बर्लिन में इस बात की शान हाँक सके कि 'बैंक ऑफ़् इँगलैंड के समान सुरक्षित' वाक्य भूतकाल के समान ही व्यावसायिक जगत् में विश्वास की वस्तु अब भी है।

मामूली आदमी के लिये यह एक ताज्जुब की बात है कि जर्मनी की परिस्थिति का हमारे ऊपर इतना प्रभाव पड़ा। इसका कारण यह है कि पाँचो महाद्वीपों का बैंकीय केंद्र लंदन है। इसी कारण बाहर की आर्थिक विपत्ति का प्रभाव अवश्य ही हमारे ऊपर पड़ेगा। हमारी हृष-योग्य शक्ति का यह परिणाम है। यदि हूवर का क़र्ज़ मुल्तवी करने का प्रस्ताव फ़ौरन् स्वीकार कर लिया जाता, तो साधारण विश्वास को एक स्वास्थ्य-प्रद रसायन मिल जाता, और विना अधिक हलचल के यह संकट टल जाता। यद्यपि पेरिस की सरकार ने अपने को पीछे रक्खा, पर पेरिस के अर्थ-शास्त्रियों ने परिस्थिति को विकट बनाने के लिये कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी, और बाढ़ के रूप में वे बैंक ऑफ़् इँगलैंड से सोना खींचने लगे। यह बहाव इस समय बंद हो गया है, पर यदि निकट भविष्य में यही काम फिर किया जाय, तो जैसा हमारे प्रधान मंत्री ने कहा है, हम लोगों को परेशान होने का कोई कारण नहीं है।

शताब्दियों से मज़बूत की हुई इस देश की साख की दीवार कुछ घड़े सोने पर अवलंबित नहीं है। हमारी साख उस जनता के चरित्र पर निर्भर है, जिनकी टोकियो से लेकर सैन.फ्रैंसिस्को तक एक बात एक हुंडी के समान है। हमने अपने पौंड स्टर्लिंग को अपना बोझा हल्का करने या अपने क़र्ज़दारों को धोखा देने के लिये नहीं बदला। हमारे कारख़ाने, वर्कशाप, बिजली के कारख़ाने, रेलवे आदि में सब ऐसी पूँजी है, जो संसार के संपूर्ण सोने से भी नहीं ख़रीदी जा सकती। समुद्र-पार हमारा करोड़ों रुपया, रबड़, रुई, चाय, क़हवा और जहाज़ आदि थोड़े से उदाहरण हैं। अंत में यह भी साधारण बात नहीं है कि हमारी इतनी बड़ी आबादी के प्रत्येक व्यक्ति की पूँजी इस समय जितनी है, उतनी इतिहास में किसी समय नहीं थी, १९१४ की सरकारी संख्या केवल १०,००,००,००० पौंड थी। आज वह २,०१,८०,००,००० पौंड है। यह रक़म अमेरिका तथा फ़्रांस के समूचे सोने से दुगने मूल्य की है।

हमारा व्यापार और वाणिज्य विश्व-व्यापी व्यावसायिक पतन के कारण मंदा पड़ रहा है, और जर्मनी इस पतन का केंद्र है। जब तक हमारे ठोस ख़रीदार अच्छी हालत में नहीं हो जाते, हम रुपया पैदा ही नहीं कर सकते। इस मामले में, ऐसी हालत में, हमीं अकेले नहीं हैं। इसके अलावा बुद्धिमत्ता हमको सचेत करती है कि हम इस ख़राब समय पर फूँक-फूँककर चलें, तथा राष्ट्रीय थैली का इस प्रकार प्रबंध रक्खें कि अपनी संतति को राष्ट्र की थैली विना किसी क्षति के दे सकें। इस संतति को हमसे प्रधान वस्तु जो ग्रहण करनी है, जो विरासतन पाना है, वह है ब्रिटिश-साख। आज वह अविचलित तथा अक्षुण्ण है।

× × ×

२. जर्मनी विनाश के पथ पर

'शिकागो-ट्रिब्यून'-नामक प्रमुख अमेरिकन पत्र के प्रधान संवाददाता कर्नल रॉबर्ट आर० मैककौरनिक योरप की पूरी यात्रा करके न्यूयार्क लौट गए। वहाँ पहुँचने पर आपने योरप की परिस्थिति के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है—

"जर्मनी को आज जो सबसे ज़रूरी बात सीखनी है, वह यह है कि वह अपनी आमदनी के भीतर ख़र्च करे। वह जितना सोना बाहर भेजता है, उससे कहीं अधिक अपने यहाँ एकत्रित कर लेता है। पर हर्जाने में जितना सोना वह ख़र्च करता है, उससे कहीं अधिक वह अपने ऊपर ख़र्च कर रहा है। यदि वह अपना ख़र्च कम न करेगा, तो ज़रूर दिवालिया हो जायगा।"

"और इँगलैंड? वह भी, मुझे दुख है, अपनी आमदनी से ज़्यादा ख़र्च कर रहा है। उसके लिये यह आवश्यक है कि अपना ख़र्च कम करे, अन्यथा आस्ट्रेलिया की तरह वह भी दिवालिया बन जायगा।"

ऊपर हम 'न्यूज़ ऑफ़् दि वर्ल्ड' की सम्मति दे आए हैं। उसके बाद यह लेख पाठकों को रुचिकर प्रतीत होगा।

× × ×

३. अविवाहितों का दल

ब्रिटेन में अविवाहितों का एक दल है। ब्रिटेन-भर में इस दल की शाखाएँ फैली हुई हैं। इसके प्रत्येक सदस्य को यह शपथ लेनी पड़ती है कि वह विवाह न करेगा। दल के क्लब में कोई स्त्री नहीं आ सकती। स्त्रियों के विषय में बातचीत तक करने की मनाही है। क्लब के सदस्य कभी स्त्रियों के साथ बातचीत तक खुले आम नहीं कर सकते!

इतना बंधन होते हुए भी क्लब की कारडिफ़ (Cardiff) की शाखा के अध्यक्ष मि० रेजिनाल्ड जॉयस ने स्वयं अपना ही विवाह करने का निश्चय किया है। इस निश्चय से क्लब के ही नहीं, ब्रिटेन के सभी लोग घबरा उठे। क्लबवाले अपने सदस्यों को इस प्रकार 'विचलित' होने तथा शपथ को तोड़ने के लिये दंड देना तथा किसी प्रकार का जुर्माना नियुक्त करना चाहते हैं।

अध्यक्ष की क्लब के साथ इस 'कृतघ्नता' तथा विश्वासघात से अविवाहित यह सोचने लगे हैं कि क्या वास्तव में स्त्रियाँ इतनी प्रबल हैं! उधर अध्यक्ष की शादी की दावत खाने सभी सदस्य गए थे!!

परिपूर्णानंद वर्मा



१. फाँसी पर लटकनेवाली निहिलिस्ट वीरांगना

३ अगस्त, १६०६ को पिटरहफ़्-रेलवे-स्टेशन के प्लैटफ़ार्म पर जेनरल मिन-नामक एक फ़ौज के बड़े पदाधिकारी पर एक युवती ने गोली चलाई, जिससे उसकी वहीं मृत्यु हो गई। गोली चलानेवाली युवती स्त्री, जिसका नाम ज़िनैडा मैसिलिएभना कोनोपलिएनिकोभा था, वहीं गिरफ़्तार कर ली गई, तथा पिटर और पाल के दुर्ग में एक कोर्ट मार्शल के समक्ष उसका विचार हुआ। अदालत के सामने उसने अपना बयान इस प्रकार दिया—

"साम्यवादी क्रांतिकारी दल की मैं एक सदस्या हूँ, और मैंने ही जेनरल मिन की हत्या की है। मेरे ऐसा करने के कारण स्पष्ट हैं। मुझे उम्मीद है कि आप सब लोगों को दिसंबर के वे दिन स्मरण होंगे, जब मास्को में मिन तथा रीमन के व्यवहार ऐसे हुए थे, मानो वे किसी शत्रु-देश में युद्ध कर रहे हों। एक-दो नहीं, बल्कि सैकड़ों आदमी उनके हाथों से मारे गए थे। मैं पूछती हूँ, मास्को के इन नगर-निवासियों की हत्या क्यों की गई? उत्तर मिलेगा, चूँकि ज्ञानांधकार तथा दरिद्रता में पड़े हुए, निकोल्स द्वितीय के घोषणा-पत्र और गवर्नमेंट की धूर्त नीति से धोखा खाए हुए श्रमजीवियों ने अपने जीवन-भर के संतत अत्याचारियों के विरुद्ध बगावत के झंडे उठाए थे। मैंने मिन की हत्या इसलिये की कि उसने स्वतंत्रता के मार्ग-दर्शक एवं पुजारियों की हत्या की थी; मैंने उसे इसलिये मारा कि उसने मास्को की सड़कों पर निर्दोष व्यक्तियों के ख़ून की नदी बहाई थी।

मैं जब गिरफ़्तार हुई थी, तो मुझसे पूछा गया था—तुम्हें हत्या करने का अधिकार किसने दिया? क्रांतिकारी साम्यवादी-दल की सदस्या की हैसियत से मैं इसका उत्तर इस प्रकार दूँगी—हमारे दल ने यह निश्चय किया था कि गवर्नमेंट के सफ़ेद, किंतु ख़ूनी आतंक का उत्तर हम लोग लाल आतंक से दें। पर यह हम लोगों की अपनी इच्छा नहीं है। गवर्नमेंट ने ही हम लोगों को मजबूर किया है कि हम लोग इस तरह की लड़ाई लड़ें। रूस की जनता की ओर से मैं आपसे पूछती हूँ—सदियों तक ज्ञानांधकार तथा दरिद्रता में रखने, जेल में ठूँसने, देश-निर्वासित करने, खानों में काम कराने, सैकड़ों की संख्या में गोली के शिकार बनाने तथा हमें फाँसी पर लटकाने का अधिकार आपको किसने दिया? यह अधिकार आपको कहाँ प्राप्त हुआ? आपने बल-पूर्वक इस अधिकार का अपहरण किया है, ख़ुद ही क़ानून बनाकर इसे क़ानूनी ठहराया है, और आपके दास पादरियों और पुजारियों ने इसे 'पवित्र' बतलाया है। पर अब एक दूसरे ही अधिकार का उद्भव हुआ है। वह है देश की जनता का अधिकार, जो आपके इस पाशविक अधिकार से कहीं श्रेष्ठ है। आपने इसी अधिकार

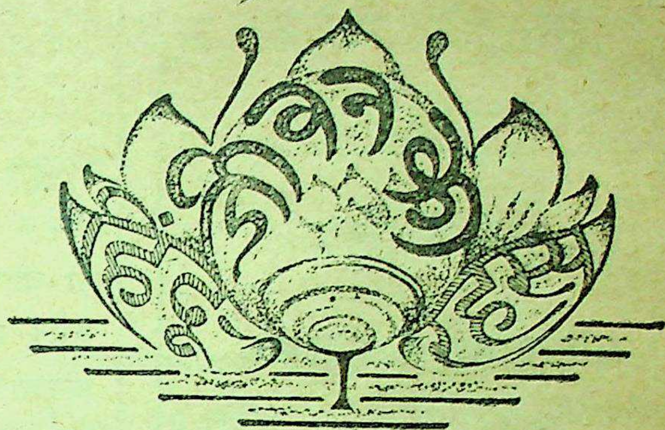
के ख़िलाफ़ जीवन-मरण के युद्ध की घोषणा की है।

मैं अपने जीवन के संबंध में थोड़ा-सा ही कहूँगी। कॉलेज की शिक्षा समाप्त करके मैं सरकार की ओर से सिक्लैंड-प्रांत के एक सुदूर ग्राम-पाठशाला की अध्यापिका बनाकर भेजी गई। गवर्नमेंट की नीति थी, जैसी कि अब भी है, उन बाल्टिक-प्रांतों में रूस की बू लाना तथा रशियन-भाषा, रहन-सहन, आचार-विचार का प्रचार करके लोगों के हृदय से राष्ट्रीयता के भाव मिटा देना। इसी उद्देश्य से ये स्कूल वहाँ खोले गए थे। रूस से ही वहाँ अध्यापक-अध्यापिकाएँ भेजी जाती थीं, ताकि वहाँ के लड़के और लड़कियों की शिक्षा उनकी मातृभाषा में न हो, रूसी भाषा में हो। मैं जिस गाँव में रहती थी, उसके तीन ओर जंगल था, और एक ओर पाइपस-नामक झील। लोगों की दरिद्रता भयंकर थी। ज़मीन पर उनका कोई अधिकार न था, ज़मीन या तो बड़े-बड़े ज़मींदारों के हाथ में थी या गवर्नमेंट के। मछली मारकर वे अपना जीवन-निर्वाह करते थे।

एक साल तक इस स्कूल में काम कर चुकने के बाद मैं सेंट पिटर्सबर्ग-प्रांत में पिटरहफ़्-ज़िले की एक रूसी ग्राम-पाठशाला में अध्यापिका नियुक्त हुई। स्कूल के सामने एक पुलिस का अफ़सर रहा करता था। उसके पीछे एक ग्राम-सिपाही (Village Constable) का तथा समीप के एक पहाड़ पर एक पादरी का निवास-स्थान था। वे सभी मेरे संबंध में तरह-तरह की सूचनाएँ अधिकारियों के पास भेजा करते थे। जब कभी मैं ग्राम-निवासियों के साथ किसी विषय पर वार्तालाप करती, अथवा उनकी ज्ञान-वृद्धि के लिये किसी विषय पर भाषण देती, जिससे राजनीति का कोई संबंध नहीं होता, वे फ़ौरन् स्कूल-इंस्पेक्टर के पास ख़बर भेजते कि मैं टाल्स्टाय के सिद्धांतों का प्रचार कर रही हूँ! एक बार मैंने एक ऐतिहासिक नाटक के अभिनय का आयोजन किया, बस पुलिस के उस अफ़सर ने, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है, अपने बड़े अफ़सर के पास इसकी ख़बर भेज दी! ये आज से प्रायः ५ साल पूर्व की बातें हैं। पूर्वोक्त निराधार सूचनाओं को पाकर कभी तो स्कूल के इंस्पेक्टर (निरीक्षक) मुझे बुला भेजते, कभी स्कूल की कौंसिल अथवा प्रांतीय गवर्नर के पास उपस्थित होकर मुझे अपनी सफ़ाई देनी पड़ती थी। मैं इस जीवन से तंग आ गई, और अंत में मुझे बर्ख़ास्त भी होना पड़ा। पर मुझे इस नौकरी के जाने का कुछ भी दुःख न हुआ, क्योंकि अनुभव ने मुझे बतला दिया था—मेरी यह धारणा हो गई थी कि मेरे लिये ग्राम्य जनता को शिक्षा प्रदान करना कठिन ही नहीं, असंभव था। अतएव मैं क्रांतिकारी दल के साथ जा मिली।

इसके बाद ही मुझे गिरफ़्तार होना पड़ा। साल-भर तक जेल में सड़ती रही, अंत में छोड़ दी गई, पर दो सप्ताह के भीतर ही पुनः गिरफ़्तार कर ली गई। इस बार मुझे केवल आठ महीने जेल में रखकर छोड़ दिया गया। जेल से छुटते ही मैं विदेश चली गई, पर कुछ ही दिनों बाद स्वदेश लौट आई। जेलों तथा व्यर्थ के अत्याचारों ने मेरे क्रांतिकारी विचारों को दृढ़ बना दिया था। मैं यह महसूस करने लगी थी कि अगर ज़ार स्वयं अत्याचारी न भी हों, तो भी वह रूस की जनता को दासता की श्रृंखला में बाँधे रखने के एक महान् साधन अवश्य हैं। रूस में शासन करने का मतलब है प्रजा को लूटना, उनकी हत्या करना। जीवन के अनुभवों से मेरी यह दृढ़ धारणा हो गई कि इस देश से जब तक प्राचीन सभी चीज़ों का मूलोच्छेद न हो जाय, तब तक कोई भी उपादेय काम संभव न हो सकेगा। अगर आप केवल बंदूक़ों से विचारों के विरुद्ध लड़ाई नहीं लड़ सकते, तो केवल विचारों से ही बंदूक़ों से अपनी रक्षा भी नहीं कर सकते। मैं आतंकवाद में दीक्षित हुई......।

बस, थोड़े में मेरे जीवन की यही कहानी है। आप मुझे मृत्यु-दंड दे सकते हैं। मेरी मृत्यु चाहे जहाँ कहीं हो—फाँसी के स्तंभ पर, साइबेरिया की खानों में अथवा कारागार की पीड़ा पहुँचानेवाली काल-कोठरियों





हिंदू-संगठन की इस उदीयमान गति में भाईजी की सेवाएँ, त्याग और योजनाएँ अपना ख़ास स्थान रखती हैं। इस पुस्तक में आपके ऐसे ही अनुभव का निचोड़ है। पुस्तक ऐतिहासिक दृष्टि से लिखी गई है। धार्मिक जड़ता के कारण हिंदू-शक्ति किस प्रकार छिन्न-भिन्न हुई, इसका इसमें अच्छा निरूपण है। साथ ही हिंदू-जीवन का महत्त्व क्या है और क्या होना चाहिए, इसकी तर्क-पूर्ण विवेचना है। प्रत्येक हिंदू को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। इसमें हिंदू-वैभव, एक-देशीयता, जातीयता तथा सामाजिक संगठन आदि की पहेलियाँ स्वरैक्य के साथ हल की गई हैं। दार्शनिक तर्कों के साथ हिंदू-जीवन का रहस्य इतने अच्छे ढंग से अंकित किया गया है कि पाठक फड़क उठेंगे, और निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचे विना न रहेंगे। अवश्य मँगाइए। मूल्य ||=) सजिल्द १|=)





लेखक, देवता-स्वरूप
भाई परमानंदजी
एम० ए०

संचालक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ



बाल-विनोद-वाटिका की अन्य पुस्तकें

१. भारत के सपूत (सचित्र)
मूल्य ॥=), सजिल्द १=)

२. परोपकारी हातिम
मूल्य १।), सजिल्द १॥)

३. ३ू-कवच
मूल्य ।॥)

४. इतिहास की कहानियाँ
(सचित्र) मूल्य ॥)

५. बाल-विलास (सचित्र)
मूल्य ।=), राजसंस्करण ।॥=)

६. विचित्र-वीर (सचित्र)
मूल्य ।॥), सजिल्द १।)

७. हँसो-खेलो (सचित्र)
मूल्य ॥=), सजिल्द १=)

८. सुनहरी नदी का राजा
मूल्य ॥), राजसंस्करण १)

९. मर्यादाराम की कहानियाँ
मूल्य ॥=), राजसंस्करण १=)

१०. भगवान् गौतम बुद्ध
मूल्य ।-), रंगीन जिल्द ॥)

११. दिलावर सियार
मूल्य ॥), रंगीन जिल्द ।॥)

१२. युधिष्ठिर
मूल्य ।॥), रंगीन जिल्द १)

१३. कथा-कहानियाँ (सचित्र)
मूल्य ॥), रंगीन जिल्द ।॥)

१४. घरेलू कहानियाँ
मूल्य ॥)

संचालक
गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय
लखनऊ

सुकवि-माधुरी-माला



१. बिहारी-रत्नाकर

भाष्यकार

व्रजभाषा-साहित्य के पारदर्शी विद्वान् बा० जगन्नाथ-दास 'रत्नाकर' बी० ए० ।

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

हिंदी-संसार के व्रजभाषा-साहित्य में युगांतर-कारी बृहद् ग्रंथ । मूल्य ५) रु०

२. मतिराम ग्रंथावली

महाकवि मतिराम हिंदी के नवरत्नों में से हैं । उनकी यह ग्रंथावली हिंदी-संसार में अद्वितीय चीज़ है । टिप्पणियाँ, शब्दार्थ नोट और आलोचनात्मक विस्तृत भूमिका के साथ । मूल्य २।।), सजिल्द ३)



३. मिश्रबंधु-विनोद

हिंदी-साहित्य का अप-टु-डेट इतिहास तथा कवि-कीर्तन ।

हिंदी के सुप्रसिद्ध

सिद्धहस्त और

मार्मिक लेखक

मिश्रबंधुओं

के दीर्घकालिक परिश्रम का फल ।

तीन भाग निकल चुके हैं ।

प्रथम भाग—२।)

द्वितीय भाग—३)

तृतीय भाग—२)

सजिल्द के ।।) अधिक

चौथा भाग १९३२ में निकल जायगा ।



बाल-विनोद-वाटिका

इस माला में ६ वर्ष से लेकर १६ वर्ष तक के लड़की-लड़कों के लिये उपयोगी, उत्तमोत्तम और सचित्र पुस्तकें निकल रही हैं। उनकी भाषा इतनी सरल, सीधी, सुंदर और मनोरंजक रहती है कि बालवृंद किसी अध्यापक या कोष की सहायता के विना उन्हें पढ़ और समझ सकते हैं। सभी पुस्तकें नयनाभिराम एकरंगे और तिरंगे चित्रों से युक्त होती हैं। पढ़ने से ख़ासा ज्ञान होता है। कविता, कहानी, इतिहास, जीवनी आदि सभी विषयों की पुस्तकें इस माला में प्रकाशित हो चुकी हैं।

१. सुघड़ चमेली (सचित्र) मूल्य =)	५. नटखट पाँड़े (सचित्र) मूल्य १।) सजिल्द १।।।)
२. भगिनी-भूषण मूल्य =)	६. खेल-पचीसी (सचित्र) मूल्य ।)
३. गधे की कहानी (सचित्र) मूल्य ।।=) सजिल्द १=)	७. कीड़े-मकोड़े (सचित्र) मूल्य ।।), सजिल्द १)
४. लड़कियों का खेल मूल्य ।=)	८. खिलवाड़ (सचित्र) मूल्य ।)

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

ल ख न ऊ



सती-दाह

अस कहि योग-अगिनि तनु जारा ; भयउ सकल मख हाहाकारा !

Ganga Fine Art Press, Lucknow.



बाल-विनोद-वाटिका

इस माला में ६ वर्ष से लेकर १५ वर्ष तक के लड़कों के लिये उपयोगी, उत्तमोत्तम और सरस [illegible] निकल रही हैं। उनकी भाषा इतनी सरल, सीधी और मनोरंजक रहती है कि बालवृन्द किसी [illegible] या कोष की सहायता के बिना उन्हें पढ़ और [illegible] सकते हैं। सभी पुस्तकें नयनाभिराम एकरंगे और [illegible] चित्रों से युक्त होती हैं। पढ़ने से ज्यादा ज्ञान [illegible] कविता, कहानी, इतिहास, जीवनी आदि सभी [illegible] पुस्तकें इस माला में प्रकाशित हो चुकी हैं।

१. सुघड़ चमेली (सचित्र) मूल्य ।-)

२. भगिनी-भूषण मूल्य ।-)

३. माँ की कहानी (सचित्र) मूल्य [illegible] सजिल्द [illegible]

४. लड़कियों का खेल मूल्य ।-)

५. नटखट पाँड़े (सचित्र) मूल्य १।) सजिल्द [illegible]

६. खेल-पचीसी (सचित्र) मूल्य [illegible]

७. कीड़े-मकोड़े (सचित्र) मूल्य ।।), सजिल्द [illegible]

८. खिलवाड़ (सचित्र) मूल्य [illegible]

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ



सती-दाह

अस कहि योग-अगिनि तनु जारा ; भयउ सकल मख हाहाकारा !

Ganga Fine Art Press, Lucknow.

...—मरते समय मेरे दिमाग़ में बस यही ख़याल आता रहेगा—'मेरे देशवासियो ! मुझे क्षमा करना, मैं तुम्हारे लिये कुछ भी न दे सकी—दुःख है, मेरे पास केवल एक ही प्राण है ।' और मैं इस विश्वास के साथ मरूँगी कि कभी-न-कभी वह दिन अवश्य ही आवेगा, जब इस देश के राजासन का पतन होगा, तथा उस पर स्वातंत्र्य-सूर्य जाज्वल्यमान होकर चमकेगा ।"

ज़िनैडा को फाँसी की सज़ा मिली, तथा ११ सितंबर, १६०६ को वह फाँसी पर लटका दी गई । मरते दम तक वह शांत तथा दृढ़ बनी रही । यही नहीं, बल्कि फाँसी के स्तंभ पर स्वयं जाकर अपने हाथों फाँसी की रस्सी अपने गले में लटका ली, तथा वहाँ किस प्रकार खड़ा होना चाहिए, यह फाँसी देनेवाले से पूछकर वह स्वयं उसी तरह खड़ी हो गई । दूसरों को इस संबंध में कुछ करने का मौक़ा ही न आया । इन कामों को उसने इस तत्परता के साथ अंजाम दिया कि उसके मृत्यु-दंड को पढ़नेवाला सरकारी मंत्री (सेक्रेटरी) उसे समाप्त भी न कर सका । ज़िनैडा के इस व्यवहार का उसके ऊपर कुछ ऐसा असर पड़ा कि वह दुःख से काँपने लगा, ज़बान बंद होने लगी, आगे न बढ़ सका । एक दूसरे आदमी ने उसके हाथ से आज्ञा-पत्र लेकर उसे समाप्त किया ।



ज़िनैडा मैसिलिएभना कोनोपलिएनिकोभा

फ़ौज का एक नया सिपाही, जिसने आज से पहले किसी औरत को फाँसी पर चढ़ते न देखा था, इस दृश्य को देखकर मूर्च्छित हो गया ।

पीटर और पाल के दुर्ग से जो लोग उसे फाँसी देने को श्लुस्सेलबर्ग ले गए थे, वे भी इतने दुःखित थे कि एक दूसरे की ओर अपनी निगाह न डालते थे, और न राह-भर किसी ने एक शब्द ही मुँह से निकाला । ज़िनैडा के फाँसी पर जाने के बाद रूस की क्रांतिकारी समिति ने एक घोषणा-पत्र निकालकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी, तथा फाँसी पर चढ़ने के समय की उसकी स्थिरता और दृढ़ता को आदर्श - स्वरूप बतलाया था ।

राजेश्वरप्रसाद-नारायणसिंह

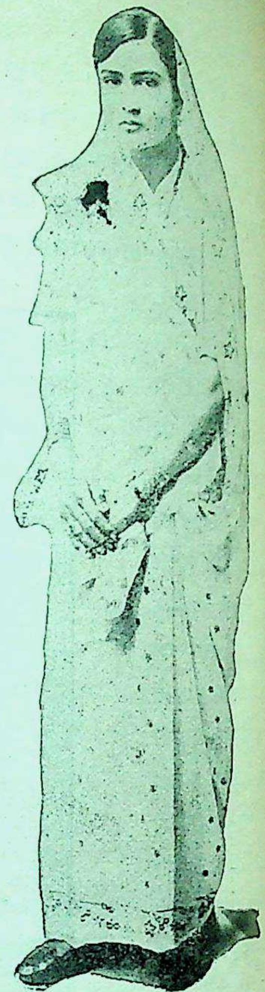
× × ×

२. महिलाओं की प्रगति

श्रीमती नानीव्हेन सघवी का जन्म संघवी-कुल में, सं० १६५१ में, हुआ था । आपके पिता का नाम था आर चंदर वचंद । आपका विवाह सं० १६६६ में, सेठ चुन्नीलाल-माणिकचंदजी के साथ, हुआ था, किंतु विवाह के थोड़े ही समय बाद आपके पतिदेव का स्वर्गवास हो गया । ग्राम में भरण-पोषण होने के कारण विद्याभ्यास करने का आपको अवसर न मिला । बाद में, सं० १६६६ में, आपने अक्षरारंभ किया । चार ही वर्ष में जैन-धर्म तथा गुजराती-भाषा का अच्छा अध्ययन कर लिया । साथ-ही-साथ संस्कृत तथा हिंदोस्तानी (हिंदी) का भी साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया । सं० १८८१ में



श्रीमती नानीव्हेन संघवी

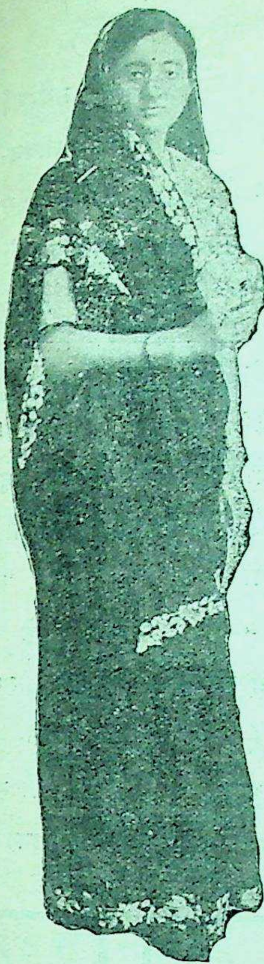


श्रीमती शीलावती

आपने श्राविकाश्रम में अवैतनिक पद स्वीकार किया, और आज तक विशुद्ध भाव से, माता के समान, आश्रम की सेवा कर रही हैं। आप बड़ी दयालु, शांत-प्रकृति और हँसमुख हैं। आश्रम की ओर से आपको 'धर्म-प्रचारिका' की पदवी मिली है। गुजरात में भ्रमण करके, विधवाओं के पास जा-जाकर शील की महिमा का उपदेश और ऐहिक और पारलौकिक कल्याण का सत्य मार्ग-प्रदर्शन करती रहती हैं, तथा आश्रम में प्रवेश होकर ज्ञान-संपादन करने की प्रार्थना करती हैं। आशा है, आप चिरायु होकर स्त्री-समाज की विशेष सेवा करती रहेंगी।

श्रीमती शीलावती रियासत हैदराबाद के श्रीमान् राजा दीनदयाल मुसव्वरजंग के सुपौत्र बाबू हुकुमचंद की धर्म-पत्नी हैं। स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार के लिये आप बड़े उत्साह से कार्य कर रही हैं।

कुमारी बचुव्हेन लोटवाला ही वह सर्व-प्रथम महिला-रत्न हैं, जिन्होंने बंबई से निकलनेवाले 'हिंदुस्तान'-नामक दैनिक पत्र का बड़ी योग्यता-पूर्वक संपादन किया था। माननीय मिस्टर बी० जे० पटेल के साथ आप योरप-भ्रमण भी कर चुकी हैं। श्री आर० बी० लोटवाला की आप कन्या-रत्न हैं।



कुमारी बचुव्हेन लोटवाला



स्व० सौभाग्यवती सविताबाई कापड़िया

स्व० सविताबाई कापड़िया सूरत-निवासी सेठ मूलचंद-किशनदास कापड़िया की पत्नी थीं। उन्होंने जैन-महिलाओं की उन्नति में ख़ूब उद्योग किया था।

रसिकरंजन रतूड़ी

× × ×

३. कनक-कण

१. स्वार्थपरता मनुष्य को ज्ञान-शून्य बनाकर उसकी आँखों में धूल झोंक देती है।

२. मनुष्य की दुर्बल दृष्टि में वर्तमान घटना-समूह का प्रगाढ़ पटल भेदकर भविष्य को प्रकाशित करने की शक्ति कहाँ!

३. चिंता-हीन मनुष्य कभी किसी कार्य में पारंगत नहीं हो सकता। जितने महात्माओं ने संसार को अपनी कीर्ति से शीतल और यश से प्रकाशित किया है, वे सब चिंताशील थे।

४. संसार में ज्ञानाभिमानियों की कमी नहीं, यदि अभाव है, तो सच्चे ज्ञान-पिपासुओं का--कुछ सीखने की इच्छा रखनेवालों का।

५. जो अपने हृदय को सत्य की पुनीत धारा से सींचना चाहता है, वह कोई नया विषय सामने आते ही तत्क्षण उसके तत्वानुसंधान में प्रवृत्त हो जाता है।

(कुमारी) संतोषकुमारी (विदुषी)



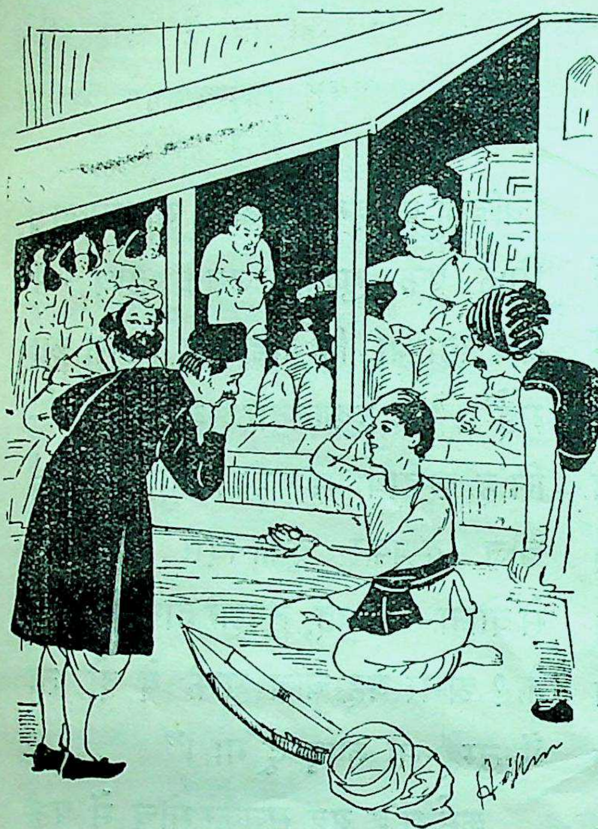
१. मोतियों की माला



संतपुरी में कर्मसिंह नाम का एक जाट था। एक दिन कर्मसिंह शहर में पैसा कमाने के लिये जा रहा था। मार्ग में एक नदी आई। कर्मसिंह इस नदी को पार कर रहा था कि उसे एक घड़ा लुढ़कता हुआ दिखाई दिया। वह उस घड़े को ढकेलता हुआ नदी के पार ले गया। किनारे पहुँचकर जब उसने घड़ा खोला, तो उसमें बड़े रंग-बिरंगे गुल्ले दिखाई दिए। कर्मसिंह हज़ारों गुल्लों को पाकर बड़ा ख़ुश हुआ। शहर को जाते-जाते उसने कई कौओं और चिड़ियों को इन गुल्लों से मार डाला। सिर्फ़ एक गुल्ला उसके हाथ में बच रहा था कि शहर की दूकानें आ गईं। एक दूकानदार की दृष्टि कर्मसिंह के हाथ पर पड़ी। चमकती हुई चीज़ देखकर दूकानदार कर्मसिंह से बोला—"भई, तुम्हारे हाथ में क्या है? अगर यह चीज़ मुझे दे दो, तो मैं तुम्हें सौ रुपए दूँगा।"

कर्मसिंह यह सुनकर सोच में पड़ गया। वह सोचने लगा, मैं तो ऐसे हज़ारों गुल्लों को फेंक चुका हूँ। कर्मसिंह की इस चुप्पी को देखकर दूकानदार समझा, शायद क़ीमत ठीक नहीं लगाई गई, इससे यह उदास हो गया है। यह सोचकर दूकानदार बोला

उठा—"भई, चुप क्यों हो गए, सौ रुपए न सही, हज़ार ले लो।" हज़ार रुपए सुनकर कर्मसिंह ने अपने माथे पर हाथ पटका। दूकानदार समझा,



हज़ार रुपए सुनकर कर्मसिंह ने अपने माथे पर हाथ पटका

शायद यह मेरे कम क़ीमत लगाने पर अफ़सोस कर रहा है। इसलिये वह फिर बोला—"अरे भई, हज़ार रुपए भी तुम्हें स्वीकार न हों, तो लो, मैं तुम्हें एक लाख रुपए देता हूँ।" इन शब्दों को सुनते ही कर्मसिंह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। आध घंटे तक वह मूर्च्छित रहा। बाज़ार के लोग दौड़े आए। पानी के छींटे देकर किसी तरह उसे सचेत किया लोगों ने उससे मूर्च्छित होने का कारण पूछा। कर्मसिंह बोला—"मैं दूकानदार की बातों पर दुःखित नहीं हुआ। मैं अपनी मूर्खता पर रो रहा हूँ। हाय! मेरे पास ऐसे हज़ारों गुल्ले थे। मैं उन्हें काँच के टुकड़े समझकर उनसे निशाने मारता रहा। अगर मुझे इस जवाहरात की पहचान होती, तो मैं आज करोड़पती बन जाता। मेरी प्रारब्ध फूटी हुई थी।"

अंत को लोगों के समझाने पर उसने उस जवाहरात के गुल्ले को एक लाख में दूकानदार के हाथ बेच दिया, और रुपया लेकर घर चला गया।

दूकानदार ने उस जवाहरात को एक जौहरी के पास पौने दो लाख

को बेच दिया । जो लाभ हुआ, उससे उसने अपनी प्यारी पुत्री मनोरमा के लिये 'मोतियों की माला' बनवा दी।

मनोरमा जब यह माला पहनती, तो अपनी सखी-सहेलियों को 'माला' की कहानी सुनाती, और कहती—

जो जाको गुण जानहीं, सो तेहि आदर देत;
कोकिल अंबहिं लेत है काग निबौरी हेत।
हीरा अपनी खान को मन-ही-मन पछतात;
गुण-क़ीमत जाने नहीं, तहाँ बिकाने जात।

(कुमारी) गोपालदेवी (हिंदी प्रभाकर)

× × ×

२. विश्वासघात का फल

"धड़-धड़-धड़-ड़-ड़-ड़-धड़ाम !"

"संध्या-समय अरे ! यह क्या हुआ ? यह गोलों का शब्द कहाँ सुन पड़ता है ! क्या मेरी सेना में विद्रोह की प्रबल ज्वाला फैल गई ? सामंत !"

"क्या आज्ञा है महाराज कौशलाधिपति !"

"अभी जाओ, और देखो, क्या बात है ?"

"महाराज ! आप चिंता न करें । आपका प्रताप सूर्य के समान है, और सारे नराधिप आपके समक्ष तारों-से शोभा-रहित हैं ।" कहकर चला जाता है ।

आज पूर्णिमा की रात्रि है । ऊपर आकाश में उपग्रह चंद अपने रूप पर इतराता हुआ जा रहा है, और नीचे जयचंद अपने प्रभुत्व पर मचल रहा है ।

प्रासाद के सम्मुख आनंद-वाटिका में बड़ी धूम-धाम हो रही है । क्यों ?

केवल इसलिये कि आज के दिन महाराज पृथ्वीराज मारे गए ! जयचंद उनसे जलता था, और उसने उनके विरुद्ध मुहम्मद ग़ोरी को सहायता दी थी । उसी के विश्वासघात से पृथ्वीराज मारा गया । अब कौन है, कौन उसके सम्मुख खड़ा होगा ? अब वह अजेय है ।

पृथ्वीराज के मारे जाने के पश्चात् जयचंद सोच रहा था कि अब तो मैं ही एकमात्र भारत का सम्राट् होऊँगा । अब मुहम्मद ग़ोरी के आने का समय है । आज या कल वह अवश्य आवेगा, और मेरा राज-तिलक होगा । मुहम्मद

ग़ोरी के पत्र (मैं शीघ्र आऊँगा ! आप उद्यत रहें।) पर देखते हुए जयचंद उस विदेशी यवन पर विश्वास कर चारो ओर उत्सव करा रहा है। कई युवराज उसके चारो ओर खड़े हैं।

'धड़-धड़-धड़-ड़-ड़-ड़-ड़-धम' का शब्द हुआ। शब्द तो दुर्ग के बाहर है ! क्या कारण है ? सामंत अभी तक नहीं आया ! इसी बीच सामंत आता है, और नत-मस्तक हो कहता है—"महाराज, दुर्ग की ओर एक बड़ी सेना बढ़ रही है ! झंडा इस्लाम का है ! संभवतः मुहम्मद ग़ोरी आ रहा है, और ये शब्द आपके सम्मान-सूचक हैं।" अब क्या था ! जयचंद ने सारे दुर्ग के फाटक खुलवा दिए। मारे आह्लाद के उसका हृदय उथल-पुथल करने लगा। आज वह भारत का सम्राट् घोषित होगा। मुहम्मद ग़ोरी के स्वागत के लिये प्रबंध होने लगा। चारो ओर आनंद का साम्राज्य फैल गया। क्या है ? 'जयचंद का राज्याभिषेक।' अब क्या था ! मुहम्मद ग़ोरी ने दुर्ग में प्रवेश किया। चारो ओर मार-काट आरंभ हो गई ! जहाँ पर गुलाब-जल के झरने लगे थे, वहाँ पर रक्त की धार बह निकली। जहाँ वेश्याओं का नाच हो रहा था, वहाँ भयानक आग के गोले फट रहे हैं !

जहाँ मधुर राग-रागिनियाँ हो रही थीं, वहाँ पर अब प्रचंड दावानल 'धायँ-धायँ' हो रहा है। मूर्ख और स्वार्थांध जयचंद कितनी अभिलाषा के साथ मुहम्मद ग़ोरी के सामने आया, पर वह हतभाग्य बंदी हुआ ! भयानक लूट-मार तथा रक्तपात के पश्चात् शव-संस्कार के लिये सारे नगर में आग लगा दी गई।

प्रातःकाल मुहम्मद ग़ोरी अपने शिविर में बैठा है। सभासद् चारो ओर विराजमान हैं, और बीच में बंदी जयचंद।

मुहम्मद ग़ोरी—"ऐ नराधम जयचंद ? तेरे साथ क्या किया जाय ?"

जयचंद—"महाराज ! मैंने आपके

निमित्त अपने भाई को न छोड़ा ! न अपने स्व०....।"

मुहम्मद ग़ोरी—"हा ! हा ! इसी भ्रातृघात के लिये ऐ कुत्ते ! इसी पतित लोभ के लिये....!"

जयचंद—"अपने स्वजन-संबंधियों का घात कराया, अपनी पुत्री संयुक्ता का सर्वनाश किया ! क्या मेरा यही पुरस्कार है ?"

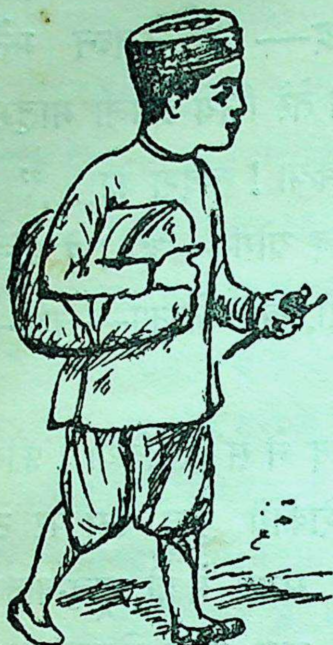
मुहम्मद ग़ोरी—"हाँ, अवश्य। तेरे सदृश विश्वासघातियों से संसार शून्य होना चाहिए। जब तू अपनों का नहीं हुआ, तब मेरा कब होगा !"

जयचंद—"ऐ कृतघ्न म्लेच्छ ग़ोरी ! मैंने तेरे लिये अपनी मातृभूमि से कपट किया ! स्वदेश को...."

मुहम्मद ग़ोरी—"हा ! ऐ पतित, स्वदेश-द्रोही, स्वार्थ-लोलुप—तुझे—तुझे।"

मुहम्मद ने संकेत किया। फ़ौरन कई एक शिकारी कुत्ते उस पर टूट पड़े। थोड़े समय में ही भ्रातृ-घातक, देश-द्रोही तथा स्वार्थ-लोलुप कुत्ता कुत्तों से नुचवाकर मार डाला गया।

(कुमारी) भगवती लम्साल (नैपाल)



बाल-विनोद-वाटिका

इस माला में ६ वर्ष से लेकर १६ वर्ष तक के लड़की-लड़कों के लिये उपयोगी, उत्तमोत्तम और सचित्र पुस्तकें निकल रही हैं। उनकी भाषा इतनी सरल, सीधी, सुंदर और मनोरंजक रहती है कि बालवृंद किसी अध्यापक या कोष की सहायता के बिना उन्हें पढ़ और समझ सकते हैं। सभी पुस्तकें नयनाभिराम एकरंगे, तिरंगे चित्रों से युक्त होती हैं। पढ़ने से खासा ज्ञान होता है। कविता, कहानी, इतिहास, जीवनी आदि सभी विषयों की पुस्तकें इस माला में प्रकाशित हो चुकी हैं।

१. सुघड़ चमेली (सचित्र) मूल्य =)	५. नटखट पाँड़े (सचित्र) मूल्य १।), सजिल्द १॥)
२. भगिनी-भूषण मूल्य ~)	६. खेल-पचीसी (सचित्र) मूल्य ।)
३. गधे की कहानी (सचित्र) मूल्य ॥=), सजिल्द १=)	७. कीड़े-मकोड़े (सचित्र) मूल्य ॥), सजिल्द १)
४. लड़कियों का खेल मूल्य ।=)	८. खिलवाड़ (सचित्र) मूल्य ।)

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

ल ख न ऊ



कृत्रिमदूध



ये दूध इसलिये पचते हैं कि ये बहुत हल्के करके दिए जाते हैं। चूँकि १:२४ के अनुपात में हल्का किया जाता है। इससे इसमें Casline की राशि बहुत कम हो जाती है, यदि इसमें थोड़ी-सी राशि Acetic Acid की मिलाकर पैप्टोनाइंड दूध से तुलना करके देखें, तो भेद स्पष्ट हो जायगा।

इसके स्थान पर Citrated milk भी दिया जा सकता है, जो एक औंस में १ ग्रेन सोडा साईट्रेट डालकर बन जाता है। इससे छिछड़ा कठोर नहीं बनता।

शुष्क दूध—कैजिन को सुखाते समय कुछ ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं, जिनसे चक्का कठोर नहीं बनता। इसके लिये सबसे उत्तम 'ग्लैक्सो दूध' (Gladxo) है, जो सुकुमार-से-सुकुमार बच्चे को भी दिया जा सकता है।

पैप्टोनाइंड मिल्क—Fairchild's Peptonising a milk Powder' से बनाया जाता है। आरंभ में दूध आठ भाग और पानी २४ भाग लेकर पैप्टोनाइंड करना चाहिए।

यदि इन सबसे सफलता न हो, तो 'ग्रे पाउडर' (Hydrargyrum Cumcreta) का उपयोग करके देखना आवश्यक है।

भोजन न पचने का मुख्य कारण कैजिन है। दूध में से Renet के द्वारा उसे निकालकर लस्सी (Whery) के रूप में देना चाहिए। इस Whery को पैप्टोनाइंड कर लिया जाय, तो उत्तम है। इसमें वसा की न्यूनता के लिये ६ से ८ भाग लस्सी में एक भाग Cream मिला देनी चाहिए। क्रीम के स्थान पर मैलंसफ़ूड मिला सकते हैं।

यदि इन सबसे कुछ न हो, तो दंतोद्गम के समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। उस समय ये विकार प्रायः स्वयं हट जाते हैं।

परंतु कई शिशुओं में कोई भी उपाय काम नहीं करता। उनका शरीर सूखता जाता है। अतिसार आरंभ हो जाता है, यथा कार्श्य (Morasmus)-रोग में। अंत में शिशु मर जाता है।

पेटेंट भोजन—सुगमता के लिये डॉक्टर हैंचिसन ने इन्हें तीन भागों में बाँट दिया है। यथा—

(१) जो पूर्ण रूप से माता के दूध के स्थानापन्न हो सकते हैं।

(२) जो दूध से बनाए जाते हैं। परंतु पाचक भाग कृत्रिम होता है।

(३) जिनमें निशास्ता होता है। ये भोजन

६ मास से पूर्व भूलकर भी नहीं देने चाहिए। प्रथम दोनो भोजनों में शिशु को दुकर्वा से बचाने के लिये फलों के रस देने चाहिए।

दंतोद्गम के समय जब पूरा गाय का दूध न मिले, तब इन भोजनों का उपयोग करना चाहिए। इस समय शुष्क भोजन उत्तम रहते हैं। जिस भोजन में वसा कम होती है, उससे शिशु में Rickets होने का भय रहता है।

दूध छुटाना—जब तक दंतोद्गम न हो, बच्चे को दूध से सर्वथा पृथक् नहीं करना चाहिए। न कोई निशास्ता का भोजन तब तक देना चाहिए। दूध छुटाने का समय १० से १२ मास का है। दूध छुटाने के लिये स्तन के स्थान पर क्रमशः चम्मच से दूध देना आरंभ करना चाहिए। कई बार चम्मच के स्थान पर बोतलें बरती जाती हैं। दूध छुटाने में तीन-चार मास लग जाते हैं। गर्मियों में दूध भूलकर भी बंद नहीं करना चाहिए। अन्यथा अतिसार हो जायगा। कई माताएँ रुपया बचाने के लिये या शीघ्र गर्भवती न हों, इसलिये देर तक दूध पिलाती रहती हैं। ऐसी अवस्था में माता का स्वास्थ्य गिरने की अधिक संभावना है।

दूध छुटाने के समय ९ से १२ मास का भोजन

पहला भोजन—($७\frac{१}{२}$ बजे प्रातः) दूध को जई के आटे से या एलनवरी नं० ३ से अथवा मैलंसफूड से घना करके देना चाहिए।

दूसरा भोजन—($१०\frac{१}{२}$ से ११ बजे प्रातः) गर्म दूध शुद्ध या $\frac{१}{२}$ सुधा-जल मिलाकर।

तीसरा भोजन—($१\frac{१}{२}$ से २ बजे) गर्म दूध।

चौथा भोजन—(५ बजे शाम) पूर्ववत्।

पाँचवाँ भोजन—(९ से १० बजे शाम) गर्म दूध।

इस अंतर में बोतल का प्रयोग कम करते हुए शिशुओं को चम्मच या कटोरे का उपयोग करना चाहिए। दिन-भर की राशि $१\frac{१}{४}$ सेर से अधिक नहीं होनी चाहिए। बीच में प्यास लगे, तो पानी देना चाहिए। दस मास के बाद नरम वस्तु—मक्खन, खुरचन, मलाई आदि—देनी चाहिए।

---

१२ मास से १८ मास तक

$७\frac{१}{२}$ बजे प्रातः—४ छटाँक जई के आटे से गाढ़ा दूध या रोटी और मक्खन देना चाहिए।

११ बजे—एक प्याला शुद्ध दूध का।

$१\frac{१}{२}$ बजे—चाय या आलू भूनकर दे या दूध, रोटी, मक्खन और गर्म दूध।

१८ मास से ३ वर्ष तक

पहला भोजन—$८\frac{१}{२}$ बजे प्रातः दूध

दूसरा भोजन—$१२\frac{१}{२}$ बजे ,,

तीसरा भोजन—$४\frac{१}{२}$ बजे रोटी-मक्खन संतरे और फल।

चौथा भोजन—$६\frac{१}{२}$ बजे गर्म दूध और बिस्कुट।

पाँचवाँ भोजन ,, ,, ,,

कृत्रिम दूध की तालिका

आयु	हल्का करना अनुपात में	दूध पिलाने की संख्या	भोजन को राशि	२४ घंटों की राशि	दूध में खाँड	क्रीम
२ से ७ दिन	१ से ३	८	$१\frac{१}{४}$ औंस	१० औंस	छोटा आधा चम्मच	छोटा आधा चम्मच
१ मास	१ ,, २	८	$२\frac{१}{२}$,,	२० ,,	,, ,,	,, ,,
२ ,,	१ ,, $१\frac{१}{२}$	७	४ ,,	२८ ,,	१ ,,	$\frac{३}{४}$,,
३ ,,	१ ,, १	७	$४\frac{१}{२}$,,	३२ ,,	$१\frac{१}{४}$,,	$\frac{३}{४}$,,
४ ,, ५ मास	१ ,, $\frac{१}{२}$	६	$५\frac{१}{२}$,,	३३ ,,	$१\frac{१}{२}$,,	१ ,,
६ से ७ मास	१ ,, $\frac{१}{४}$	६	७ ,,	४२ ,,	$१\frac{१}{२}$,,	१ ,,
८ ,, ९ ,,	शुद्ध दूध	६	७ ,,	४२ ,,	१ ,,	१ ,,

स्तनपायी तथा कृत्रिम दुग्ध पर पाले जानेवाले शिशुओं की भोजन-तालिका

शिशु की आयु	दूध की संख्या २४ घंटों में	बीच का अंतर	रात की संख्या १० बजे रात से ७ बजे सुबह तक	एक बार की मात्रा	राशि २४ घंटों की
प्रथम दिवस	४	६ घंटे	१	१ औंस	४ औंस
द्वितीय दिवस	६	४ ,,	१	१ से १.५	६ से ९ ,,
तृतीय-सात दिन	१०	२ ,,	२	१.५ ,, २	१५ ,, २० ,,
३ से ४ सप्ताह	१०	२ ,,	२	२ ,, २.५	२० ,, २५ ,,
१ ,, ३ मास	८	२॥ ,,	१	३ ,, ४.५	२४ ,, ३६ ,,
३ ,, ५ ,,	७	३ ,,	१	४ ,, ५.५	२८ ,, ३८ ,,
५ ,, ९ ,,	६	३ ,,	१	५.५ ,, ७ तक	३२ ,, ४२ ,,
९ ,, १२ ,,	५	३॥ ,,	...	७॥ ,, ९ तक	३८ ,, ४५ ,,

अवस्था	दिन में भोजन का अंतर	रात्रि में भोजन	२४ घंटे में भोजन	भोजन की मात्रा एक बार	कुल राशि २४ घंटों में
१ से ७ दिन	२ घंटे	२ बार	१० बार	१॥ से $\frac{3}{4}$ छटाक	५ से ७॥ छटाक
२ ,, ३ सप्ताह	२ ,,	२ ,,	१० ,,	$\frac{3}{4}$,, १॥ ,,	७॥ ,, १५ ,,
४ ,, ५ सप्ताह	२ ,,	१ ,,	१० ,,	१॥ ,, २ ,,	१३ ,, १८ ,,
६ सप्ताह से ३ मास	२॥ ,,	१ ,,	८ ,,	२ ,, २॥ ,,	१३ ,, २० ,,
३ से ५ ,,	३ ,,	१ ,,	७ ,,	२ ,, ३ ,,	१४ ,, २१ ,,
५ ,, ९ ,,	३ ,,	...	६ ,,	२॥ ,, ४ ,,	१५ ,, २३ ,,
९ ,, १२ ,,	४ ,,	...	५ ,,	३॥ ,, ४॥ ,,	१८ ,, २४ ,,

श्रीअत्रिदेव गुप्त (वैद्य)



१. चाय स्वादिष्ठ बनाने की विधि



य का पानी उबालते समय दालचीनी और छोटी इलायची पीसकर डाल देने से चाय बड़ी स्वादिष्ठ और लाभदायक बन जाती है।

२. बताशों का रायता

बताशों को कड़ाही में डालकर धीमी आग में भून ले, और बढ़िया दही कूँड़ेवाला लेकर उसे मथ डाले, और उसमें केसर, चिरौंजी, किशमिश और पिस्ता इत्यादि कतरकर डाल दे, भुने हुए बताशों में मिला दे, और फिर अंदाज़ से चीनी मिला दे। बताशे साबित ही बने रहेंगे।

३. ख़रबूज़ों के बीज की पूरी

ख़रबूज़ों के बीजों को कड़ाही में डालकर बिना घी के ख़ुश्क भून ले, और जब वे चटख़ने लगें, तो उनको निकालकर बारीक पीस ले, और उसमें आध पाव खोया और अंदाज़ की चीनी, बादाम, पिस्ता, किशमिश और चिरौंजी सबको मिलाकर एक कर ले। फिर एक सेर मैदा लेकर आध पाव घी उसमें मिलाकर पानी डालकर गूँद ले, और छोटी-छोटी लोई बनाकर बराबर की दो पूरी बेल ले। एक पूरी पर कुल सामान रखकर और दूसरी पूरी उस पर चिपकाकर गूँठकर पूरी की भाँति भून ले।

४. मूँग की दाल के लड्डू

मूँग की दाल को रात को भिगो दे। सुबह ख़ूब साफ़ करके धो डाले। छिलका न रहने पावे। फिर उसको बहुत बारीक पीसकर कड़ाही में घी डालकर हल्की आग में भून डाले। घी इतना डाले कि उसमें लड्डू बन सकें, और अब वह ख़ूब सुर्ख़ हो जाय और रवे की तरह भुन जाय, तो निकाल ले। फिर एक सेर में पाव-भर खोआ भूनकर उसमें दानेदार चीनी मिला दे, और पिस्ता, बादाम, किशमिश, चिरौंजी इत्यादि पीसकर डाले। फिर सब चीज़ें मिलाकर लड्डू बना ले।

५. फटे दूध की खीर

२॥ सेर दूध फाड़कर (नीबू या नमक डालने से फटता है), एक कपड़े में, रखकर कहीं बाँधकर लटका दे। जब बिल्कुल पानी निचुड़ जाय, तब उसे थाली या पत्थर के पाटा पर घी लगाकर जमा दे। जम जाने पर उसकी छोटी-छोटी कतरी खुरमों की तरह काट ले। फिर कड़ाही में घी डालकर हल्की आग में भून ले। और दूसरी कड़ाही में अच्छा दूध चढ़ा दे। जब वह ख़ूब औट जाय, तो उसे उतार ले, और सब मेवे कतरकर घी में भूनकर दूध में डाल दे, और उसी में भुने हुए खोए के टुकड़े और चीनी डाल दे। खीर तैयार हो गई।

कृष्णवतीदेवी श्रीवास्तव



१. राजनीति

रामायण में राजनीति—लेखक, श्रीशालग्राम शास्त्री; प्रकाशक, मृत्युंजय-औषधालय, ऐबट रोड, लखनऊ; मूल्य १)

पंडितवर शालग्रामजी शास्त्री की गणना उन विद्वानों में है, जो एक विषय पर नहीं, अनेक विषयों पर अधिकार रखते हैं। कुछ समय हुआ, मुझे आपके प्रणीत उपर्युक्त शीर्षक ग्रंथ के दर्शन हुए। पहले आपके 'दो शब्द' पढ़े, उससे तो यही समझा कि ऐसी-वैसी ही पुस्तक होगी, परंतु आगे पढ़ने पर मालूम हुआ कि इन दो शब्दों में आपकी शालीनता का ही परिचय मिला था। छापे की भूलें यत्र-तत्र अवश्य हैं, परंतु इतनी नहीं कि पढ़ने का मज़ा किरकिरा हो जाय। मैं तो सड़ाके के साथ पढ़ गया।

शास्त्रीजी ने वाल्मीकि-कृत रामायण की आश्रित कथा को लेकर उसके राजनीतिक अंग की विवेचना की है। रामचरित-मानस का भी आपने कहीं-कहीं वर्णन किया है, सो भी गुसाईंजी के भक्ति-भाव में ऐतिहासिक शृंखला का लुप्तीकरण दिखाने के लिये।

रामायण संस्कृत के ऐतिहासिक ग्रंथों की श्रेणी में है। उस प्राचीन काल में, जब इस ग्रंथ का निर्माण हुआ, इतिहास वीर-गाथा-रूप में था, और काव्य तथा गायन से उसका घनिष्ठ संबंध था। इतिहास पद्यबद्ध होता था, और उसका प्रचार गायक लोग—माध्यमिक काल के चारण और भाट—घूम-फिरकर किया करते थे। स्वदेशाभिमान और चरित्र-संगठन की शिक्षा ऐसे ही ग्रंथों द्वारा होती थी।

शास्त्रीजी ने रामायण-रचना के काल-निर्णय पर भी कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इस विषय पर आपसे ऐतिहासिकों का बहुत कुछ मत-भेद हो सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि रामाख्यानों का गौतम बुद्ध के समकालीन अवध में प्रचार था, परंतु इस बात का पता नहीं कि क्या वास्तव में यह आख्यान वाल्मीकि-कृत थे या और कोई। इसलिये इस बात का भी निर्णय करना कठिन है कि वाल्मीकि-कृत रामायण की रचना राम-राज्य ही में हुई या कुछ समय पश्चात्। अन्य वीर-गाथाओं के निर्माण-इतिहास से तो यही अनुमान होता है कि रामायण की रचना राम-राज्य के कुछ समय पश्चात् ही हुई, जब उनके यश की स्मृति ने उनकी जीवन-कथा को दिव्य रूप देकर वाल्मीकि-रसना से काव्य-धारा प्रवाहित कर दी।

सौभाग्य-वश शास्त्रीजी ने विवाद-ग्रस्त विषय पर विवेचना प्रसंग-वश ही की है। पुस्तक का मुख्य उद्देश्य दूसरा ही है, और वह यह कि यदि हम रामा-

यण के प्रधान पात्रों को राजनीतिक कसौटी पर कसें, तो किसके विषय में क्या बात प्रमाणित होती है। शास्त्रीजी ने इस विवेचना को ख़ूब निबाहा है, गंभीर भावों को चटपटी भाषा द्वारा व्यक्त करके ज्ञान और मनोरंजन दोनो का सम्मिश्रण कर दिया है।

शास्त्रीजी का विचार है कि राम के वनवास का उत्तरदायित्व दशरथ पर है, न कि कैकेयी या मंथरा पर। रह गई तुलसीदासजी की राक्षसों का संहार करनेवाली कल्पना, सो केवल भक्तों को भुलावा देने के लिये है। बिलकुल ठीक है। राम का चरित्र-विश्लेषण करते हुए शास्त्रीजी यह सिद्ध करते हैं कि वह गार्हस्थ्य जीवन के लिये ही मर्यादा-पुरुषोत्तम नहीं थे, राजनीति में भी उन्होंने वह आदर्श स्थापित किया, जिस तक किसी देश-काल में बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ भी नहीं पहुँच सके। "स्वार्थ-साधन और लोक-संग्रह यही राजनीति के मुख्य लक्ष्य हैं।" राम ने लोक-संग्रह को ही अपना प्रधान लक्ष्य माना। मर्यादा की रक्षा करते हुए ही उन्होंने अपनी स्वार्थ-सिद्धि होने दी।

शास्त्रीजी ने भरत के चरित्र की जो विवेचना की है, वह सर्वथा सत्य होते हुए भी अभी तक इतने परिपक्व रूप में प्रकाशित नहीं हुई थी। यह काम शास्त्रीजी ने कर दिखाया। यदि राम राजनीतिक जीवन के आदर्श हैं, यदि सीता पत्नी-जीवन की आदर्श हैं, तो भरत गार्हस्थ्य जीवन के आदर्श हैं। राम के चरित्र पर कहीं स्वार्थ या यश-लालसा का लांछन लग जाय, परंतु भरत का विशुद्ध भ्रातृ-प्रेम बराबर कठिन-से-कठिन परीक्षाओं को पास करता चला जाता है।

इन प्रधान पात्रों के परे मंथरा की कूट-नीति, कैकेयी का अल्हड़पन, विभीषण का विद्रोही भाव, रावण का स्वाभिमान—ऐसे अन्य पात्रों के चरित्रों पर शास्त्रीजी की अनेक मौलिक विवेचनाएँ पढ़ने में आईं। ज्ञान प्राप्त हुआ और मनोरंजन भी।

शास्त्रीजी ने तत्कालीन राज्य-प्रणाली पर भी प्रकाश डाला है। उस समय यह पूर्ण रूप से निश्चित नहीं हुआ था कि ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी हो। उस समय क्या, गुप्त-काल तक यह निश्चित नहीं हुआ था। राजा की इच्छा और प्रजा के महाजनों का परामर्श, इन्हीं पर उत्तराधिकार अवलंबित था। इसके अतिरिक्त कई और प्रश्न उठते हैं। राजसभा में कौन-कौन लोग होते थे? लोकमत की सूचना राजा को क्योंकर मिलती थी? लोकमत मानने के लिये राजा कहाँ तक बाध्य रहता था? अंतर्राष्ट्रीय नीति क्या थी? इन सब प्रश्नों के उत्तर भी शास्त्रीजी दे सकते थे। आशा है, अगले संस्करण में आप ऐसे-ही-ऐसे अन्य तत्कालीन शासन-स्थिति-संबंधी प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करेंगे। अभी जो कुछ आपने दिया है, उसी के हम कृतज्ञ हैं।

कालिदास कपूर
(एम्० ए०, एल्० टी०)

× × ×

२. उपन्यास-नाटक

अप्सरा—लेखक, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; मूल्य सादी प्रति १), सजिल्द १॥)

यह एक सामाजिक उपन्यास है। 'निराला'जी इसके संबंध में आप ही कहते हैं कि "मैंने किसी विचार से अप्सरा नहीं लिखी, किसी उद्देश्य की पुष्टि इसमें नहीं। अप्सरा स्वयं मुझे जिस-जिस ओर ले गई, मैं दीपक-पतंग की तरह उसके साथ रहा। अपनी ही इच्छा से अपने मुक्त-जीवन-प्रसंग का प्रांगण छोड़ प्रेम की सीमित, पर दृढ़ बाहों में सुरक्षित, बँध रहना उसने पसंद किया।" सो वस्तुतः यह उपन्यास किसी विशेष उद्देश्य की पुष्टि नहीं करता। पर इससे इसकी मनोरंजकता कम नहीं हो गई, और न यह बात है कि इससे कोई शिक्षा न मिलती हो। सर्वेश्वरी, कनक और राजकुमार के चरित्र समाज की आँखें खोल देनेवाले हैं। प्रेम और निःस्वार्थ सेवा का प्रभाव कितना प्रबल और कितना अटल होता है, यह लेखक ने ख़ूब दिखलाया है। 'निराला'जी का भाषा पर पूर्ण अधिकार है, और आपके उपन्यास को एक बार पढ़ना

प्रारंभ कर देने पर फिर बिना समाप्त किए छोड़ना मुश्किल हो जाता है। सचमुच आपकी अप्सरा बड़ी मन-मोहिनी है।

× × ×

समाज—लेखक, श्रीघनंद बहुगुणा एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; मूल्य ॥।=); सजिल्द १।=)

हिंदू-समाज इस समय अपनी कुरीतियों, कुविचारों और कुसंस्कारों के कारण ही रसातल को जा रहा है। इसकी संख्या दिन-पर-दिन कम हो रही है। हर जगह यह विधर्मियों द्वारा पादाक्रांत हो रहा है। हिंदुओं की प्रभुता गई, वैभव गया, और मान गया, पर अभी तक इनको होश नहीं आया। रस्सी जल गई, पर बल नहीं गया। ये लोग अज्ञान के कारण धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझ रहे हैं। इन्हें अपने-पराए का कुछ विवेक ही नहीं रहा। जो गो-रक्षक और पुण्यात्मा हैं, जो इनके धर्म-बंधु हैं, उनको ये अछूत, अधर्मी और नीच समझकर दुत्कार रहे हैं, और जो गो-भक्षक तथा धर्म-विरोधी हैं, उनकी जूतियाँ चाटते हैं। सच तो यह है कि जब तक हिंदू अपना सामाजिक सुधार नहीं करते, तब तक इनकी उन्नति तो दूर, प्राण-रक्षा भी कठिन है। श्रीयुत बहुगुणा ने अपने इस नाटक में झूठी पवित्रता, अज्ञान-मूलक धार्मिकता और छुआ-छूत का विनाशक परिणाम बहुत अच्छे ढंग से प्रकट किया है। गढ़वाल-जैसे पोप-गढ़ में रहते हुए आपने छुआछूत और अयोग्य ब्राह्मणों को दान देने के विरुद्ध लिखने का साहस किया है, यह बड़ी प्रशंसा की बात है। परंतु छुआछूत पर ही धावा बोलने से काम न चलेगा। छुआछूत, ऊँच-नीच और आपस की फूट का मूल-कारण जाति-पाँति है। ब्राह्मण के लिये क्षत्रिय, क्षत्रिय के लिये वैश्य और वैश्य के लिये शूद्र अछूत है! क्योंकि वह उसके यहाँ खान-पान और ब्याह-शादी नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में जाति-पाँति एक क्रमिक अछूतपन है। इसलिये जब तक जाति-पाँति को नहीं मिटाया जाता, तब तक अछूतोद्धार और हिंदू-संगठन असंभव है। 'समाज'-नाटक का कथानक अच्छा रोचक है। गाने भी खूब रसीले हैं। इस नाटक का प्रचार होने से हिंदू-समाज का उपकार ही होगा। यदि जाति-पाँति की हानियों को दिखलानेवाला ऐसा ही एक नाटक लिखा जाय, तो हिंदुओं की बहुत कुछ रक्षा हो सकती है।

संतराम बी० ए०)

× × ×

गोरी—लेखक, श्रीरमाशंकरजी सकसेना; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; आकार-प्रकार डबल-क्राउन १६ पेजी; छपाई-सफ़ाई उत्तम; पृष्ठ-संख्या १७५; मूल्य सादी १) सजिल्द १॥)

यह पुस्तक एक सामाजिक उपन्यास है, और अपने ढंग का अनूठा है। लेखक महोदय के कथनानुसार इसकी कलाएँ सच्ची और हृदय को द्रवीभूत करनेवाली हैं। इसका प्लॉट अति उत्तम है। यह पुस्तक भारतीय युवक और योरपीय युवतियों के प्रेम को प्रकाशित करती है, और साथ-ही-साथ शिक्षा-प्रद भी है, और अंत में यह दिखलाती है कि उनका प्रेम स्थायी नहीं होता, किंतु कृत्रिम होता है, और इस प्रेम का अंत दुःख होता है।

सकसेनाजी ने बहुत ही चित्ताकर्षक रीति से यह दिखलाया है कि भारतीय सीधे-सादे युवक किस प्रकार गोरी रमणियों द्वारा फँसाए जाते हैं, और अपना सर्वस्व खोकर भी उनको अपना नहीं पाते; माधव का चरित्र, जो इतना उत्तम था, किस भाँति कैथिनी के प्रेम में पड़कर गिर गया था; अपनी पैत्रिक संपत्ति अपनी माता द्वारा पढ़ने के लिये बिकवा डाली, और वह किस प्रकार आनंद उड़ाता है, और उसकी माता और बहन कैसा दुःख-पूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं! परंतु वह ऐसे जाल में फँसाया जाता है कि उसका उससे छूटना असंभव हो जाता है, और अपनी प्रेमिका से भी वह हाथ धोता है, और दुःख-पूर्वक अपना अंत करता है।

इस उपन्यास का दूसरा मुख्य व्यक्ति नरेंद्र माधव

का मित्र है, और नरेंद्र की प्रेमिका है । नरेंद्र उसे प्राण से बढ़कर चाहता है, और वह उसे चाहती है । परंतु नरेंद्र जब डॉक्टरी पास करके वापस जाता है, तो अपने पिता व माता से उससे विवाह करने के लिये आज्ञा माँगता है । वह आज्ञा न पाकर अकेले भारतवर्ष लौटता है, और थोड़े ही समय बाद विरह-वियोग न सह सकने से पागल हो जाता है । उसकी प्रेमिका एक अन्य व्यक्ति से विवाह कर लेती है, और भारतवासियों को सच्चा प्रेमी न जानकर उनके काले हृदय पर एक लेक्चर देती है । धन्य है भारतीय प्रेम ! भला वैसा प्रेम का आदर्श योरप में किस भाँति हो सकता है । भारतीय प्रेम और पाश्चात्य प्रेम की समुद्र व जल की एक बूँद द्वारा उपमा दी जा सकती है ।

इसका तीसरा मुख्य व्यक्ति नरेंद्र का जिगरी दोस्त है । यह भी इँगलैंड जाता है, एक गोरी रमणी को वैदिक धर्मानुसार ब्याह करके भारत लाता है, उसके द्वारा एक भीषण षड्यंत्र का पता लगाता है, और गोरी रमणियों का भारतीयों से विवाह करने का कारण स्पष्ट पाता है—यह ज्ञात करता है कि इनका उद्देश्य भारतीयों को ईसाई बनाना होता है । नरेंद्र के मित्र की बीबी उसको छोड़कर चली जाती है, और उसका पुत्र भी साथ ले जाती है, और वह माधव की बहन से ब्याह करके अपना जीवन सार्थक और सुखी बनाता है ।

लेखक ने यह स्पष्ट रीति से दरसा दिया है कि गोरियों से प्रेम करना अपने आपके लिये गड्ढा खोदना है । मैं आशा करता हूँ कि यदि पाठकगण इस पुस्तक को पढ़कर अपने आपको सँभालें, और अपना चरित्र उज्ज्वल बनाएँ, तो अवश्य लेखक का परिश्रम सफल हो जायगा, और बहुतेरे भारतीय युवकों की दशा सुधर जायगी ।

'विह्वल'

× × ×

३. भूगोल

उदयपुर (मेवाड़)—सचित्र ; लेखक, श्रीदेवनाथजी पुरोहित ; डबल-क्राउन सोलहपेजी ; पृष्ठ-संख्या १२६ ; ३७ चित्रों और तीन नक़्शों सहित ; मूल्य २) ; प्रकाशक, अज्ञात । श्रीभूपाल-मुद्रण-यंत्रालय में मुद्रित ।

उदयपुर भारत के ऐतिहासिक गौरव की वस्तु है । इसके अतिरिक्त इसका प्राकृतिक सौंदर्य भी बड़ा मनोमोहक है । अनेक बार उसकी तुलना काश्मीर की शोभा से की गई है । इस पुस्तक में मेवाड़ का सचित्र वर्णन है । लेखक ने पुस्तक की सामग्री अपनी वंश-क्रमागत जानकारी, टॉड-राजस्थान, राजपूताना-गज़ेटियर और रायबहादुर पं० गौरीशंकर ओझा-कृत राजपूताने के इतिहास से संग्रह की है । ख़ास-ख़ास स्थानों के भौगोलिक वर्णन के साथ-साथ ऐतिहासिक वर्णन भी दिया गया है । अंत में उदयपुर की वंशावली भी जोड़ दी गई है । यह पुस्तक उदयपुर के यात्रियों को मार्ग-प्रदर्शक का भी काम दे सकती है ।

× × ×

४. बालोपयोगी

बाल-कथा-कहानी (दसवाँ-ग्यारहवाँ भाग)—फुलिस्केप चौपेजी साइज़ ; पृष्ठ-संख्या ६२ और ५२ ; लेखक और प्रकाशक, श्रीरामनरेश त्रिपाठी, हिंदी-मंदिर, प्रयाग ; मूल्य प्रत्येक का ।=) ; रंगीन कवर ।

दसवें भाग में केवल एक ही कहानी है । पुस्तक में बालकों की कल्पना को जगाने के अतिरिक्त उनको भौगोलिक ज्ञान देने का भी प्रयत्न किया गया है । पर स्थान-स्थान पर दिए गए केवल जल और थल के नाम उनकी स्मरण-शक्ति पर भार होने के अतिरिक्त उनको कोई भौगोलिक तथ्य नहीं दे सकते । ग्यारहवें भाग में ९ छोटी-छोटी कहानियाँ हैं । घटनाओं से संबद्ध ८ सादे चित्र भी हैं ।

गं०



इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) 'सरल नाटक-संग्रह' (नाटक)—संपादक, श्रीनर्मदाप्रसादसिंह बी० ए०; मूल्य २॥)

(२) 'नाककटाई' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीआत्मारामजी देवकर; मूल्य ≡)

(३) 'ढोंगी बाबाजी' (बालकोपयोगी)—लेखक, श्रीआत्मारामजी देवकर; मूल्य ।)

(४) 'ईश्वर-भक्ति' (पौराणिक नाटक)—लेखक, पं० राधेश्यामजी 'कविरत्न'; मूल्य १॥)

(५) 'सुलोचना सती'—लेखक, श्रीविष्णुजी; मूल्य ॥)

(६) 'महापाप' (कहानी-संग्रह)—मूल-लेखक, महात्मा टाल्स्टाय; मूल्य १॥)

(७) 'षड्यंत्रकारी' (उपन्यास)—मूल-लेखक, अलेक्ज़ेंडर ड्यूमा; मूल्य १॥)

(८) 'अग्नि-शिखा' (कविता)—लेखक, "श्रीविप्लवी कमल"; मूल्य ।)

(९) 'चाणक्य-नीति' (नीति-ग्रंथ)—अनुवादक, श्रीप्रेमशरण 'प्रणत'; मूल्य ।=)

(१०) 'विदुर-नीति' (नीति-ग्रंथ)—अनुवादक, श्रीप्रेमशरण 'प्रणत'; मूल्य ॥)

(११) 'देवी वीरा' (जीवन-चरित)—लेखक, श्रीसुरेंद्र शर्मा; मूल्य १॥)

(१२) 'आयुर्वेदीय खनिज-विज्ञान' (आयुर्वेद-संबंधी)—लेखक, कविराज प्रतापसिंहजी; मूल्य २॥)

(१३) 'गुरु-संदेश'—संदेश-प्राप्तकर्त्री, कुमारी दिनेशनंदिनी चोरड्या 'मोहन'; मूल्य ।=)

(१४) 'श्रीतुलसी-तत्त्व-प्रकाश' (रामायण-प्रश्नोत्तरमाला)—लेखक, श्रीजगन्नाथप्रसाद 'भानु'; मूल्य १।)

(१५) 'शिवेंद्रसागर-संग्रह की (?) इष्ट-शोधन' (ज्योतिष-संबंधी)—लेखक, श्रीमहाराजाधिराज कृष्णदत्तसिंह साहब; मूल्य ३)



१. भारतीय साहित्य के प्रति अँगरेज़ों की उपेक्षा



अँगरेज़ों ने इस देश के साहित्य को सदैव उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। फ़्रांस और जर्मनी के निवासियों को भारतीय साहित्य और उसकी मूल प्रकृति का जितना ज्ञान है, उतना अँगरेज़ों को शायद अपने देश के साहित्य का भी न होगा। इँगलैंड में प्राचीन भारतीय साहित्य के महत्त्व-पूर्ण ग्रंथों के अनुवाद भी बहुत कम पढ़े जाते हैं। वहाँ के प्रकाशक भारतीय साहित्य के प्रकाशन की ओर ध्यान नहीं देते, और न सर्वसाधारण में उसका प्रचार ही चाहते हैं।

उदाहरण के लिये शकुंतला ही ले लीजिए। गत बीस-पचीस वर्ष के भीतर अँगरेज़ी में इसके कई रूपांतर प्रकाशित हुए हैं। कुछ तो अविकल अनुवाद हैं, और कुछ मर्मानुवाद। परंतु इँगलैंड की जनता ने इन सबके प्रति अपनी उपेक्षा प्रकट की है। Lawrence Binyon-कृत शकुंतला के अँगरेज़ी अनुवाद की बहुत प्रशंसा है। सुनते हैं, यह चीज़ भी अँगरेज़ पाठकों के निकट यथोचित सम्मान प्राप्त करने में असमर्थ रही है। वास्तव में, शकुंतला की अपेक्षा, नैट गोल्ड और एजर वेलेस के सनसनीदार उपन्यासों की ही उनके यहाँ ज़्यादा क़द्र है। अँगरेज़ी में Everyman's Library नाम की एक प्रसिद्ध पुस्तकमाला प्रकाशित होती है। इस माला में अब तक विश्व-साहित्य के आठ सौ से अधिक ग्रंथ-रत्न गूँथे जा चुके हैं। परंतु इतनी बड़ी संख्या में प्राच्य साहित्य के केवल दो ग्रंथों को माला में स्थान मिला है। इनमें एक शकुंतला है। प्रकाशकों का कहना है कि ये दोनों ग्रंथ अच्छे नहीं, और इनकी बिक्री भी अपेक्षाकृत कम हुई है। ऑक्सफ़ोर्ड से प्रकाशित होनेवाली The World's Classics-सीरीज़ में प्राचीन ग्रीक और लैटिन से लेकर आधुनिक रूसी और फ़्रेंच-साहित्य तक के अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। परंतु प्राच्य साहित्य का एक भी ग्रंथ इस लायक़ नहीं समझा गया कि विश्व-साहित्य के ग्रंथों की पंक्ति में उसे स्थान मिल सके! एक पुस्तक-प्रकाशक ने अपने प्रेस से सर्वप्रथम एक भारतीय काव्य-ग्रंथ का अँगरेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया, जिसका नतीजा यह हुआ कि बेचारे का दिवाला निकल गया। साहित्य की ही नहीं, भारतीय ललित कलाओं की भी अँगरेज़ों ने ऐसी ही उपेक्षा की है।

फ़्रांस में अवस्था बिलकुल प्रतिकूल है। पेरिस के अनेक पुस्तक-प्रकाशक वर्षों से ऐसी पुस्तकमालाएँ परिचालित कर रहे हैं, जिनमें केवल-मात्र प्राच्य साहित्य और कला से संबंध रखनेवाले ग्रंथ प्रकाशित

होते हैं। प्राचीन भारतीय, चीनी और जापानी ग्रंथों के अनुवाद फ्रांस में अत्यंत लोकप्रिय प्रमाणित हुए हैं। इस प्रकार की पुस्तकमालाओं में Ex Oriente Lux नाम की सीरीज़ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विगत युद्ध के पूर्व इस माला का प्रकाशन प्रारंभ हुआ था। तब से दिन-दिन इसकी उन्नति हो रही है। माला में प्रकाशित भारतीय साहित्य के अनेक ग्रंथों के सैकड़ों संस्करण निकल चुके हैं। पेरिस का शायद ही कोई ऐसा प्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशक होगा, जिसने प्राच्य साहित्य के एकाध ग्रंथ का अनुवाद प्रकाशित करके अपनी संस्था को लोकप्रिय न बनाया हो। इस प्रकार के ग्रंथ वहाँ हाथोंहाथ बिक जाते हैं।

पुस्तक-प्रकाशकों के सूचीपत्रों पर नज़र डालने से सर्वसाधारण की साहित्यिक रुचि का पता चल जाता है। इसके साथ ही यह बात भी ठीक है कि पुस्तक-प्रकाशक यदि चाहें, तो जनता की रुचि को बहुत कुछ परिष्कृत और परिमार्जित भी कर सकते हैं। अँगरेज़ पुस्तक-प्रकाशकों ने जिस प्रकार इँगलैंड की जनता में नैट गोल्ड और एडगर वेलेस के उपन्यास पढ़ने की रुचि उत्पन्न कर दी है, उसी प्रकार वे भारतीय साहित्य के प्रति भी अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं। परंतु ऐसा करना उन्हें मंज़ूर नहीं। अँगरेज़ी में भारतीय साहित्य के महत्त्व-पूर्ण और श्रेष्ठ ग्रंथ मौजूद न हों, सो बात नहीं। परंतु इस प्रकार के अँगरेज़ी और फ्रेंच ग्रंथों में सबसे बड़ा अंतर यह है कि अँगरेज़ी में प्रकाशित होनेवाले प्राच्य साहित्य के ग्रंथ सदैव राजसंस्करण के रूप में ही जन-साधारण के सामने आते हैं, बढ़िया काग़ज़ पर छपते हैं, और दाम भी उनके दस-पंद्रह पौंड से कम नहीं होते। अँगरेज़ी में कथा-सरित्सागर के दाम दो सौ रुपए हैं। इतने ही पन्नों का उपन्यास आपको दो-तीन रुपयों में मिल सकता है। फ्रांस में यह बात नहीं। वहाँ के पुस्तक-प्रकाशक भारतीय साहित्य के ग्रंथों को शुद्ध साहित्यिक भावना की प्रेरणा से प्रकाशित करते हैं, और इस बात का ध्यान रखते हैं कि जन-साधारण तक उनकी पहुँच हो। उनके संस्करण बहुत सस्ते होते हैं। शायद ही किसी पुस्तक के दाम तीन-चार शिलिंग से अधिक होते हों। छपाई सुंदर और 'गेट-अप' भी आकर्षक होता है।

सबसे अधिक दुःख की बात तो यह है कि अँगरेज़-प्रकाशकों की भाँति अँगरेज़-लेखक भी भारतीय साहित्य की चर्चा करना पसंद नहीं करते। अँगरेज़ी में विश्व-साहित्य की चर्चा करनेवाले प्रामाणिक लेखकों और आलोचकों की कमी नहीं। परंतु कालिदास, व्यास और वाल्मीकि से वे परिचित नहीं। अथवा अपने परिचय को छिपाकर रखना चाहते हैं। फ्रेंच-लेखक इस विषय में अधिक उदार हैं। हम तो कहेंगे, सच्चे अर्थ में ये ही सौंदर्य के प्रकृत पुजारी और कला के वास्तविक प्रेमी हैं। पेरिस के किसी थिएटर में एक बार कठपुतलियों द्वारा शेक्सपियर के 'टैंपेस्ट' का अभिनय दिखाया गया। अनातोले फ्रांस कठपुतलियों के उस मूक अभिनय से बहुत प्रभावित हुआ। उसने अभिनय की चर्चा करते हुए एक पत्र में लिखा—

"थिएटर के प्रबंधक महोदय अपनी कठपुतलियों द्वारा संसार के श्रेष्ठ नाटकों के अभिनय का आयोजन कर रहे हैं। मैं इन्हें नाट्य-जगत् की अत्यंत पवित्र कृतियाँ मानता हूँ। कल अरिस्टोफ़ेनीज़, आज शेक्सपियर, कल फिर कालिदास।"

ख़ूब! कालिदास का नाम लेकर अनातोले फ्रांस ने अपनी स्वर्ण-लेखनी का मुँह मीठा-भर किया है। परंतु हम जानना चाहते हैं, ऐसे सात्त्विक आनंद और उल्लास के साथ क्या किसी अँगरेज़ समालोचक ने भी शेक्सपियर के साथ कालिदास का नाम लेने की परवा की है?

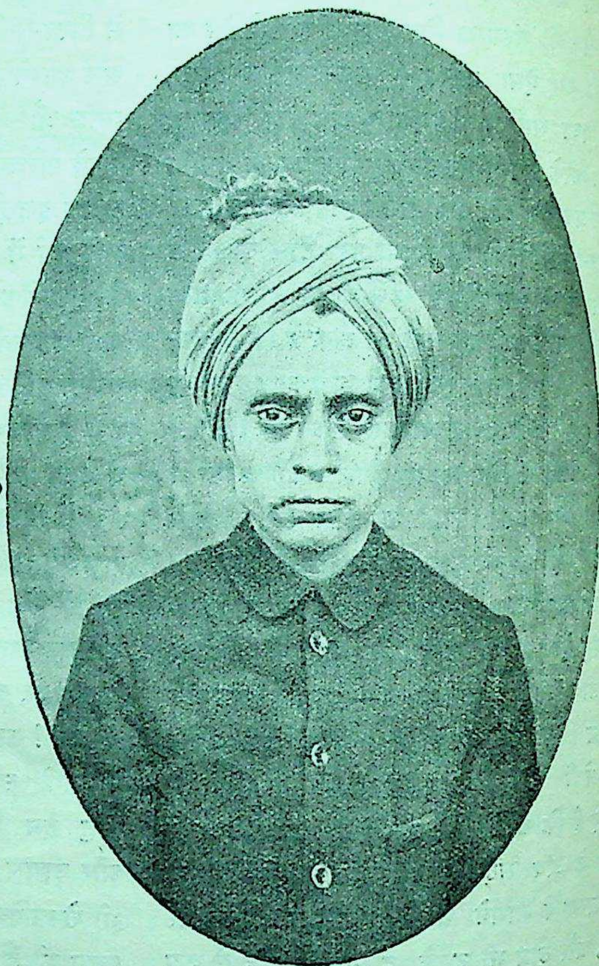
× × ×

२. हिंदी-पत्रकार

गत मई-मास में, कलकत्ता-विश्वविद्यालय के सेनेट-हाल में, जो हिंदी-पत्रकार-परिषद् हुई थी, उसके सभापति के आसन से सुधा के मान्य लेखक, नैटाल-प्रवासी, प्रख्यात स्वामी भवानीदयालजी संन्यासी ने

बड़े मार्के का भाषण दिया था। आपने बतलाया कि हिंदी-पत्रकारों का आसन वास्तव में संसार को शिक्षा देनेवाले व्यास का आसन है, इसे कोई भी पत्रकार न भूले। कहा जाता है, यह वैश्य-युग है। और यहाँ ब्रह्म-कर्म उसके आश्रित हैं, किंतु लोक-शिक्षा का कर्म जब व्यापार की वस्तु हो जाता है, तब उसे लोक-शिक्षा के नाम से पुकारना इस पवित्र शब्द का दुरुपयोग करना है!

लोक-शिक्षा का उत्तम-से-उत्तम प्रकार ढूँढ़ निकालने में जो प्रतिद्वंद्विता होगी, वह तो ब्रह्म-कर्म ही होगा, और उससे लोक-शिक्षा के कार्य की उन्नति होगी। पर जब शिक्षा का ध्यान एक ओर रह जाता है, और किसी तरह पत्र की बिक्री बढ़े, यही भावना दृढ़ रहती है, तब लोग उन उपायों को भी काम में लाते देखे गए हैं, जिनके विषय में महात्मा टालसटाय के ये शब्द बहुत ही उपयुक्त जान पड़ते हैं—"यदि वह होश में होते, तो ऐसा कभी न करते।" आस्ट्रेलिया में ख़ून हुआ, तो उसकी ख़बर ऐसे ढंग से छापी जायगी कि पाठक को भ्रम हो कि कहीं ख़ून उसके पड़ोस ही में तो नहीं हो गया? वास्तव में यह अत्यंत अनुचित है। किसी भी भद्र पुरुष के विषय में सोचे-समझे विना, सत्यासत्य का ज़रा भी विचार किए विना, ऐसी गंदी भाषा में कि गंदी भाषा पसंद करनेवालों को रुचिकर हो, कोई भी बात ग़ैर-ज़िम्मेदारी से लिख देना पत्र की बिक्री बढ़ाने का एक ज़रिया है। यह बहुत ही गंदा और घृणित ढंग है। लोक-शिक्षा को उद्देश्य बताकर जो लोग सभी उपायों से धन कमाने में व्यस्त हो जाते हैं, और अपने काम को त्याग देते हैं, वे भी निंदनीय कर्म करते हैं। हिंदी-पत्रकारों का



स्वामी भवानीदयालजी संन्यासी

[कलकत्ते में जो हिंदी-पत्रकार-परिषद् हुई थी, उसमें आपने सभापति का आसन सुशोभित किया था। आप पुराने पत्रकार हैं, और नैटाल से निकलनेवाली 'हिंदी' नाम की पत्रिका का योग्यता-पूर्वक संपादन करते रहे हैं। सुधा से आप मान्य लेखक हैं।]

पत्र इतना निष्कलंक और इतना गौरवमय होना चाहिए कि वे लोक-शिक्षा को व्यापार की वस्तु बनाने की पाश्चात्य पद्धति के वश में न होकर पाश्चात्य देशों के पत्रकारों के लिये भी आदर्श बनें, और अपने हृदयों को ऊँचा करें।

हिंदी-पत्रकारों की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं। २४ घंटे जो लोक-हित का चिंतन करते हैं, उनके जीवन-निर्वाह का भी पर्याप्त प्रबंध नहीं। इतने कम वेतन पर, इतनी ज़िम्मेदारी और चिंता का भार सिर पर रखनेवाला दूसरा कोई भी व्यवसाय नहीं। अँगरेज़ों द्वारा चलनेवाले पत्रों के प्रधान संपादक ३-४ हज़ार रुपए मासिक तक वेतन पाते हैं, सो भी इसी देश में! और, उन्हें जो काम करना पड़ता है, वह हिंदी-पत्रकारों के काम का दशांश भी नहीं!! इसका फल यह होता है कि जो उत्तम पत्रकार अपने आदर्श से च्युत होकर लोक-शिक्षा को व्यापार की वस्तु बनाना पसंद नहीं करते, वे सदा दरिद्र ही रहते हैं, और गृह-चिंता तथा अति परिश्रम के कारण अपने आदर्शमय निश्चित मार्ग को प्रशस्त करने में समर्थ नहीं होते।"

भाषण का यह गंभीर एवं महत्त्व-पूर्ण अंश हिंदी-पत्रकारों के कठिन जीवन पर बहुत कुछ प्रकाश डालता है। अब हिंदी-पत्रकारों के संगठन और उन्नत होने का समय आ गया है। हिंदी-भाषा-भाषी, देश में, सर्वत्र बढ़ रहे हैं। यह वृद्धि अब सर्वदा जारी रहेगी, परंतु हिंदी-पत्रकार जिस निकृष्ट श्रेणी में हैं, यदि उसका संशोधन न हुआ, तो यह असंभव है कि वे उस प्रतिष्ठा को प्राप्त हों, जिस पर उन्हें अवश्य ही पहुँचना चाहिए। हम यह भली भाँति जानते हैं कि अनेक पत्रकार तो ऐसे हैं, जिन्हें जगत् में कोई धंधा नहीं मिला था, और वे पत्रकार बन गए! उनके पत्र भी वैसे ही साधारण, कुत्सित और सार-हीन हैं। क्या आशा करें कि हिंदी-पत्रकार एक संगठन बनाकर अपनी स्थिति उच्च बनावेंगे?

× × ×

३. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन और नाटक

इस बार कलकत्ता-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर नाटक-साहित्य के विकास और प्रश्रय पर काफ़ी ज़ोर डाला गया। इसमें संदेह नहीं कि नाटक लिखना साहित्य का सबसे क्लिष्ट अंग है, और हिंदी-संसार में उत्तम क्या, साधारण श्रेणी के भी नाटकों का अभाव बना रहा है। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन ने इस अवसर पर इस महत्त्व-पूर्ण अंग को आश्रय देकर साहित्य की एक भारी कमी को पूर्ण करने की ओर क़दम बढ़ाया है।

आज जब कि नाटक-रंगमंच, बाइस्कोप, टॉकी आदि का सर्वत्र प्रचार हो रहा है, हिंदी में नाटकों का अभाव बहुत खटकनेवाला है। हमारे पास मुज़फ़्फ़र-पुर से श्रीललितकुमारसिंह 'नटवर' का भेजा हुआ विवरण आया है, जिसमें सम्मेलन की नाट्य-उपसमिति की योजना है। पाठकों के अवलोकनार्थ हम उसे यहाँ उद्धृत करते हैं—

परम संतोष का विषय है कि राष्ट्रीय उन्नति के शुभ अवसर में राष्ट्र-भाषा हिंदी का साहित्य भी स्वभावतः विकासोन्मुख हो रहा है। परंतु जहाँ साहित्य के अन्य अंगों की पूर्ति के आयोजन हो रहे हैं, वहाँ सबसे उपयोगी अंग नाटक के लिये कुछ नहीं हो रहा है। 'रंगमंच' एक ऐसी अपूर्व प्रयोग-शाला और प्रदर्शिनी है, जहाँ गद्य-पद्य, संगीत, नृत्य-वाद्य, संभाषण, भाव-प्रकाश, कौशल, चित्रकारी आदि कला का विकास तथा सभ्यता, सामाजिकता एवं मानवता के आदर्श का प्रचार एक ही स्थान पर किया और परखा जा सकता है। संसार के किसी भी देश के इन सभी विषयों की बानगी एक ही जगह देखनी हो, तो वहाँ का नाटक देखें। खेद है, हिंदी का न कोई अपना रंगमंच है, और न कोई नियमित अभिनय-शैली ही। जिसके जी में जैसा आता है, नाटक लिखता और खेलता है। कोई बँगला का बेढंगा अनुकरण करता है, तो कोई पारसी-कंपनियों की भद्दी नक़ल; कोई प्राचीन शैली अपनाना चाहता

है, तो कोई पँचमेल पकवान के फेर में भोजन का स्वाद ही नष्ट किए डालता है। समालोचक भी, बिना इस बात का विचार किए कि नाटकीय उपकरणों का यथोचित समावेश हुआ है या नहीं, अभिनय किया जा सकता है या नहीं, प्लाट का ठीक सिलसिला और चारित्रिक विकास है या नहीं, केवल लेखक की विद्वत्ता, काव्याधिक्य, भाषा-सौष्ठव तथा किसी प्रचारात्मक विषय के लंबे व्याख्यान पढ़कर ही नाट्य-पुस्तकों की प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं।

इन्हीं सब बातों को देख-सुन और अभाव अनुभव कर मैंने, गत १९२२ ई० के लाहौरवाले हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में, एक 'नाट्य-उपसमिति' बनाने का प्रस्ताव पास कराया था। परंतु कुछ पत्र-व्यवहार और एक साधारण बैठक के सिवा और कोई कार्य न हुआ। इस बार कलकत्ता-सम्मेलन में श्रद्धेय पं० माधव शुक्ल, पं० राधेश्याम और पं० नरोत्तम व्यासजी के प्रोत्साहन एवं कार्यकारी सहयोग का भरोसा प्राप्त कर मैंने फिर उक्त प्रस्ताव पास कराने का उद्योग किया। तदनुसार एक 'नाट्य-उपसमिति' बनी, और उसकी प्रथम बैठक पं० माधव शुक्ल के सभापतित्व में, ७ जून को, हुई, जिसमें कई उपयोगी प्रस्ताव पास हुए। पूरा विवरण नीचे दिया गया है—

अतएव हिंदी-पत्र-पत्रिकाओं, साहित्यिकों, कलाविदों, नाट्य-कला-मर्मज्ञों, नाट्य-लेखकों, अभिनेताओं और नाट्य-समितियों से नम्र विवेदन है कि यथोचित परामर्श देकर साहित्य के इस बहुत बड़े अभाव की पूर्ति का प्रयत्न करें।

मूल-प्रस्ताव—हिंदी में अभिनय के योग्य उच्च कोटि के साहित्यक नाट्य-ग्रंथों, नाट्यकला के यथोचित निर्दिष्ट नियमों तथा हिंदी-रंगमंच का अभाव अनुभव करता हुआ यह सम्मेलन, इस संबंध में यथोचित कार्यवाही करने के लिये, निम्न-लिखित सज्जनों की एक नाट्य-उपसमिति बनाता है—

१ पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी
२ श्रीआग़ा हश्र काश्मीरी
३ पं० माधव शुक्ल
४ पं० नारायणप्रसाद 'बेताब'
५ बा० जयशंकर 'प्रसाद'
६ पं० माखनलाल चतुर्वेदी
७ बा० दुर्गाप्रसाद खेतान एम्० ए०
८ श्रीकुमार कृष्णकुमार एम्० ए०
९ बा० हरीकृष्ण जौहर
१० पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०
११ शिवपूजनसहाय
१२ पं० कृपानाथ मिश्र एम्० ए०
१३ पं० राधेश्यामजी
१४ पं० तुलसीदत्त 'शैदा'
१५ बा० साँवलिया बिहारीलाल वर्मा
१६ नरोत्तम व्यास
१७ पं० कृष्णकांत मालवीय
१८ पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'
१९ बा० आनंदप्रसाद कपूर
२० पं० नर्मदाशंकर नायक
२१ बा० ललितकुमारसिंह 'नटवर' (नियोजक)

[इसमें नव-निर्वाचित ७ सदस्य भी हैं। कोरम ७ का होगा]

प्रथम बैठक के प्रस्ताव—(१) हिंदी-पत्र-पत्रिकाओं, नाट्य-संस्थाओं, नाट्य-लेखकों, नाट्यकला-मर्मज्ञों और अभिनेताओं से आंदोलन तथा पत्र-व्यवहार द्वारा अभिनय-कला पर मत संग्रह किए जायँ।

(२) नाट्य-ग्रंथों, अभिनेताओं और सार्वजनिक अथवा व्यावसायिक नाट्य-मंडलियों के अभिनयों की समालोचनाएँ की जायँ। इसके लिये निम्न-लिखित सज्जनों की 'नाट्यालोचना-समिति' बनाई जाय, जिसके सदस्य सम्मिलित अथवा व्यक्तिगत रूप से भी समालोचनाएँ प्रकाशित किया करें—

१ श्रीमाधव शुक्ल
२ बा० शिवपूजनसहाय
३ पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

४ पं० बदरीनाथ भट्ट
५ पं० नरोत्तम व्यास

(३) नीचे-लिखे सज्जनों की एक 'नाट्य-ग्रंथ-निर्माण-समिति' बनाई जाय, जो अपने सदस्यों द्वारा नाटक लिखने-लिखाने का प्रयत्न करे, तथा लिखित नाट्य-ग्रंथों की उपयोगिता का निर्णय कर प्रोत्साहन एवं पुरस्कार आदि देने-दिलाने की घोषणा करे।

१ पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी
२ श्रीआग़ा हश्र काश्मीरी
३ बा० जयशंकर प्रसादजी
४ पं० माखनलाल चतुर्वेदी
५ पं० नारायणप्रसाद 'बेताब'

[नोट—नियोजक प्रत्येक उप-समितियों का अतिरिक्त सदस्य समझा जायगा ।]

(४) हिंदी-अभिनय-कला के नियमों के अनुसार हिंदी का स्वतंत्र 'रंगमंच' निर्माण करने के उद्देश्य से हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की संरक्षकता में, 'हिंदी-रंगमंच' के नाम से, एक नाट्य-संस्था स्थापित की जाय। इसके प्रारंभिक कार्य के लिये कलकत्ता केंद्र रहे, और यहाँ की (संभव हो, तो बाहर की भी) नाट्य-संस्थाओं के चुनिंदे तथा नियमानुसार चलनेवाले सदस्य ('हिंदी-रंगमंच' के) पात्र बनाए जायँ, और उसका संचालन योग्य ट्रस्टियों द्वारा हो।

इस प्रस्ताव को शीघ्रातिशीघ्र कार्य-रूप में परिणत करने के लिये पं० माधव शुक्ल और पं० नरोत्तम व्यास पर भार दिया जाय।

(५) नाट्य-उपसमिति का प्रत्येक सदस्य अधीनस्थ समितियों के कार्यों में रुचि-अनुकूल मत दे सकेगा, और निरीक्षण कर सकेगा।

(६-७) और नवीन सदस्य चुने गए, जिनके नाम मूल-प्रस्ताव में जोड़ दिए गए हैं।

हमें यह देखकर ताज्जुब है कि हिंदी के श्रेष्ठ नाटककार पं० गोविंदवल्लभ पंत का नाम किसी भी समिति में नहीं है। नाट्य-समिति को चाहिए कि उनका भी सहयोग प्राप्त करे। कारण, हमारी राय में, हिंदी-नाटक-लेखकों में, साहित्य और अभिनय दोनो की दृष्टि से, जैसे उनके नाटक सफल हुए हैं, वैसे शायद ही किसी के हुए हों।

× × ×

४. हिंदू-महासभा बनाम मुस्लिम-कान्फ्रेंस

सांप्रदायिकता की अंधी आँधी देश के राजनीतिक वायु-मंडल में व्यर्थ के बवंडर उठाया करती है। हिंदू-सभा और मुस्लिम-लीगों के पिट्ठुओं की ज़बानदराज़ी से सारे देश में भयंकर दंगों की सृष्टि आए दिन हुआ करती है। कट्टर कठमुल्लों के काले कारनामों और हिंदू-हितों के हिमायतियों के हठ से देश की भयानक क्षति होती रहती है, तो भी उनका विष-वमन कम होता नज़र नहीं आता।

प्रयाग की विगत मुस्लिम-कान्फ्रेंस के सभापति मुल्ला शौक़त की एँड़ी-बेंड़ी बातों से साफ़ प्रकट हुआ है कि उनके दिमाग़ में अलीगढ़-कॉलेज में मुफ़्त की खाई हुई डबल रोटियों के सिवा और कुछ भी नहीं भरा। बेसिर-पैर की शेख़ियों तथा तानेबाज़ियों के सिवा बड़े अली को भाषण के नाम पर रेंकना तक नहीं आता। तब फिर उनसे किसी विद्वत्ता-पूर्ण स्पीच की आशा करना गधे के सिर पर सींग देखने के समान था। तो भी लोगों को उम्मीद थी कि वह अब की बार कुछ पते की कहेंगे। लेकिन वह सब कुछ न हुआ, बड़े मियाँ ने कोरी शेख़ीबाज़ी तथा हिंदुओं को धमकाने के अतिरिक्त और कोई बात ही नहीं कही। कांग्रेस की कार्यकारिणी द्वारा किए गए हिंदू-मुस्लिम-समझौते से वह बेतरह नाराज़ हुए हैं। वह मि० जिन्ना की १४ शर्तों से एक क़दम पीछे हटना नहीं चाहते। इसके लिये वह हिंदुओं को चैलेंज तक दे चुके हैं।

उधर दूसरी ओर हिंदू-महासभा के अकोला-अधिवेशन में भी कांग्रेस के समझौते पर असंतोष प्रकट किया गया है। किंतु इस बार विशेषता यह हुई है कि हिंदू-महासभा ने मुसलमानों की तरह अंधापन नहीं दिखलाया।

हिंदू-महासभा के सभापति श्रीविजय राघवाचारियर ने हिंदू-मुस्लिम-समझौते के एक नए मार्ग की ओर संकेत किया है। यह मार्ग सबसे पहले लखनऊ-विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के अध्यक्ष आचार्य श्रीराधाकुमुद मुकर्जी इतिहास-शिरोमणि, विद्या-वारिधि महोदय द्वारा सुझाया गया था। आज से १० मास पूर्व आचार्य महोदय ने इस विषय पर पटना, कलकत्ता, राँची, दिल्ली तथा अन्य स्थानों में व्याख्यान दिए थे। तब से अब तक इसका महत्व सर तेजबहादुर सप्रू, पूज्य महात्माजी, स्वर्गीय नेहरूजी तथा महामना मालवीयजी तक ने स्वीकार कर लिया है। इसीलिये हिंदू-महासभा के विद्वान् सभापति ने उसका निर्देश करके बड़ी दूरदर्शिता का काम किया। मुसलमानों के बड़े भारी नेता मुल्ला शौक़त की तरह ज़िद न दिखलाकर उन्होंने इस उचित मार्ग को स्वीकार करने में बड़ी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की है।



डॉक्टर राधाकुमुद एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पी० आर० एस्०, विद्या-वैभव, इतिहास-शिरोमणि

उनका प्रस्ताव है कि भारतीय हिंदू-मुस्लिम-प्रश्न का समझौता राष्ट्र-संघ की एक विशिष्ट पंचायत पर छोड़ दिया जाय। उसका फ़ैसला सभी को मान्य होना चाहिए। यद्यपि कांग्रेस-जैसी प्रधान राष्ट्रीय संस्था के लिये इस प्रस्ताव को स्वीकार करना बड़ी लज्जा की बात होगी, तो भी वह इसे स्वीकार करने में ननु-नच नहीं करेगी। हाँ, मुसलमानों को अवश्य इसमें बेढब आनाकानी होगी, क्योंकि वे जानते हैं कि उनकी मूर्खता-पूर्ण १४ माँगें राष्ट्र-संघ त्रिकाल में भी मंज़ूर न करेगा। ब्रिटिश सरकार भी अपने छिपे स्वार्थों की रक्षा की दृष्टि से इस प्रस्ताव के मार्ग में अड़ंगे लगावेगी ही। किंतु तो भी कांग्रेस को गोल मेज़-सभा में इसी मार्ग के अवलंबन पर ज़ोर देना चाहिए, क्योंकि पारस्परिक समझौता तो होता दिखाई देता नहीं। अब केवल पंचायती समझौता ही संभव है। यदि निष्पक्ष पंचों के समझौते को मानने से हिंदू या मुसलमान इनकार करेंगे, तो दोष उन्हीं का होगा। उस दशा में उनके लिये दूसरे उपाय काम में लाए जा सकते हैं।

× × ×

५. पुलिस और सरकार

भारत की बदनसीबी का एक अंश यहाँ की पुलिस है। इतिहास इस बात को बतलाता है कि पुलिस का कर्तव्य, धर्म और उद्देश्य प्रजा की रक्षा और आश्वासन है। लेकिन पुलिस को देखते ही प्रजा-जन भयभीत होते हैं; किसानों के प्राण सूख जाते हैं। लाल पगड़ी जल्लादी चिह्न है। किसी भी ग्राम में एक लाल पगड़ीवाला सिपाही जाकर मनमाना अत्याचार और दबाव डाल सकता है। गत राष्ट्रीय आंदोलन में पुलिस ने क्या-क्या किया, यह आम तौर पर विदित है। स्त्रियों की इज़्ज़त ली, बच्चों को काटकर टुकड़े-टुकड़े किया, पुरुषों को घोर यातनाएँ दीं, वृद्धों को अपमानित किया। जेलों में पुलिस ने इतिश्री की। बेचारे देश-भक्त दो-दो महीने भूख-प्यास की तपस्या करके मरे। महात्मा गांधी ने अपनी विलायत-यात्रा इसीलिये स्थगित कर दी थी कि सरकार ने पुलिस के अनाचार-अत्याचारों की जाँच अस्वीकृत कर दी थी। दिल्ली-समझौते में भी एक प्रश्न इसी तरह का रक्खा गया था, जिस पर बंगाल और पंजाब के गवर्नर ने तथा

वहाँ के उच्च पुलिस-अधिकारियों ने वायसराय को सावधान कर दिया था कि यदि पुलिस की जाँच की शर्त मान ली जायगी, तो हम इस्तीफ़े दे देंगे।

ये तो अभी ताज़ी घटनाएँ हैं। किंतु अब से ११४ वर्ष पहले, सन् १८१७ में, ईस्ट-इंडिया-कंपनी के प्रारंभिक काल में, तत्कालीन सरकूट (बंगाल) के एक उच्च जज महोदय ने सरकारी ४ सितंबर के पत्र में कहा था—

"मुझे व्यक्तिगत अनुभव है कि दारोग़ा के पास जाने में गाँववालों को बड़ी परेशानी और मुसीबत उठानी पड़ती है, और उसका बहुत समय नष्ट होता है। इसी बहाने दारोग़ा उसी गाँव में कई दिन अधिक गुज़ार देता है, और गाँववालों को अपनी और अपने साथियों की ज़रूरियात पूरी करने को बाध्य करता है।"

बंगाल के लेफ़्टिनेंट गवर्नर सर फ्रेडरिक हैलिडे ने १८५४ में कहा था—"भारतीय पुलिस भारत के लिये शाप है।" इन्हीं महोदय ने १८५५ में सुप्रीम गवर्नमेंट को रिपोर्ट देते हुए पुलिस के संबंध में कहा था—"वर्तमान बंगाली पुलिस भारत में अभिशाप है।"

कलकत्ता-हाईकोर्ट के एक जज ने कहा था—"भारतीय पुलिस आरंभ से ही बेईमान और जनता की शत्रु है, जब कि चाहिए यह था कि जनता उसे अपना सेवक, रक्षक और क़ानून तथा व्यवस्था को क़ायम रखनेवाला समझती!"

भारतीय क़ानूनी कमिश्नर ने कहा था—"भारतीय मामलों पर विचार करने के लिये १८५२-५३ में बैठाई गई भारतीय पार्लियामेंट्री कमेटी के सामने आई हुई गवाहियों और अन्य काग़ज़ात से, जो हमारी नज़रों से गुज़रे हैं, स्पष्ट है कि पुलिस अत्याचार करने और बात का पता लगाने के लिये अपने अधिकारों का दुरुपयोग करती है।"

सीमा-प्रांत के गवर्नर सर एंटनी मैक्डानलड ने कहा था—"वर्तमान अवस्था में पुलिस-इंस्पेक्टर से, जिसका वेतन ३० रु० से ७० रु० माहवार है, और जिसके पास अनुचित ढंग से रुपया कमाने के अनंत अवसर हैं, यह आशा नहीं की जा सकती कि वह इस तरह नहीं कमाएगा, जब तक कि उस पर बहुत कड़ा निरीक्षण न हो।"

सन् १६०२ में इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में बोलते हुए बंगाल के तत्कालीन गवर्नर सर जॉन वुडबर्न ने कहा—"सबसे पहली और राज-संबंधी आवश्यकता यह है कि पुलिस में सुधार हो। प्रजा पर इसका भार है। पुलिस की सर्वत्र ही निंदा है।"

११ जुलाई, सन् १६०२ में, सर एंड्रू फ्रेसर की अध्यक्षता में, जाँच-कमीशन बना था। इसके समक्ष बड़ी-बड़ी गवाहियाँ हुई थीं—

'इँगलिशमैन' ने कहा था—"भारतीय पुलिस बदनाम है। इसकी पुष्टि सरकारी, ग़ैर-सरकारी, योरपियन और भारतीय करते हैं।"

लंदन के 'टाइम्स' ने कहा था—"कमीशन जहाँ कहीं भी गया, उसे पुलिस की शिकायतें सुनने को मिलीं। अदना सिपाही से इंस्पेक्टर तक अपने को सर्वेसर्वा समझता है।"

इसी कमीशन की सिफ़ारिश पर इंडियन एवीडेंस-ऐक्ट सन् १८७२ में २५वीं धारा का नियोग किया गया था।

सन् १६२३ में विहार और उड़ीसा के पुलिस-महकमे के इंस्पेक्टर जेनरल मि० डब्ल्यू स्वान ने कहा था—

"पुलिस की लोक-निंदा का कारण है कि पुलिस-अफ़सर अपने कर्तव्य और अधिकार के संबंध को भूल जाते हैं, और वे अपने दिल में अनुभव नहीं करते कि हम जनता के सेवक हैं।"

सन् १६२६ की वार्षिक रिपोर्ट में बंबई के पुलिस कमिश्नर ने शिकायत की थी—

"जनता का सहयोग पुलिस को तब तक नहीं मिल सकता, जब तक पुलिस जनता का विश्वास प्राप्त नहीं करती, और दुर्भाग्य से अभी तक उसने उसे पाया नहीं है। जनता पुलिस की अशिष्टता, अमृदुता

तथा ढिठाई-पूर्ण व्यवहार के प्रति नाराज़गी ज़ाहिर करती है।"

सन् १६२८ में साइमन-कमीशन के सामने, पटना में, गवाही देते हुए पुलिस-इंस्पेक्टर जेनरल मि० स्वान ने कहा—

"मुझे सुपरिंटेंडेंट से ज्ञात हुआ है (और वह अपने आदमियों को अच्छी तरह जानते हैं, और उनसे परिचित हैं), ६६ % कांस्टेबिल और हेड-कांस्टेबिल बिगड़े हुए हैं, और ७५ % सब इंस्पेक्टर बिगड़े हुए और ख़राब हैं।"

कलकत्ते के कमिश्नर सर चार्ल्स टेगार्ट ने साइमन-कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था—

"पुलिस के महकमे में कुछ आतंक और अत्याचार बर्ता जाता है। यही बात शासन के सभी विभागों में भी बर्ती जाती है।"

होम मेंबर सर जेम्स केराट ने कहा था—"पुलिस के महकमे में भी ख़राबी है।"

कलकत्ता-रोटरी-क्लब के सामने भाषण देते हुए मुक्ति फ़ौज के कमिश्नर स्टैंसी इवांस ने कहा था—

"पुलिस की रिश्वत-ख़ोरी से बचना कठिन है।"

उपर्युक्त वाक्य ज़िम्मेदार सरकारी अफ़सरों ने कहे हैं। इन शब्दों से पुलिस की निंदा की दृढ़ता स्पष्ट हो जाती है। फिर भी लार्ड इरविन ने भारत से बिदा होते समय, सन् ३० के अत्याचारों के प्रशंसा-स्वरूप, पुलिस के ओहदे बढ़ाए थे, तमग़े बाँटे थे, और सराहना की थी।

इन अत्याचारों में क्या रहस्य है, यह फिर कभी बतलाया जायगा।

× × ×

६. प्रलय-काल

अभी हाल में यह गणना की गई है कि संसार में आबादी क्या है, और उसके भरण-पोषण का क्या प्रबंध है। पृथ्वी-भर की जन-संख्या इस समय १७५ करोड़ है। पिछले वर्ष यह संख्या १,७३,८०,००००० थी, अर्थात् प्रतिवर्ष १,२०,००,००० वृद्धि हुई। फ़्रांस की राज्य-क्रांति के समय प्रो० मैल्थस ने यह संख्या ८५,००,००,००० बताई थी। इस हिसाब से १०० वर्ष में जन-संख्या दूनी हो गई है। भारत में इस वर्ष जो मर्दुमशुमारी हुई है, उन आँकड़ों को देखते हुए भी हमें जन-संख्या में वृद्धि प्रतीत होती है। लेकिन संसार की मर्दुमशुमारी के आँकड़े जाँचने पर पता चलता है कि गोरी जाति—विशेषकर ग्रेट ब्रिटेन—की जन-संख्या ने अति वृद्धि पाई है। इस जाति-विशेष में जन-वृद्धि का क्या कारण है? महायुद्ध के बाद जो क्षति संसार को पहुँची थी, वही पूर्ण होनी दुर्लभ प्रतीत होती थी, लेकिन ऐसा न होकर वह कमी शीघ्र ही भर भी गई, उलटे से और भी वृद्धि हुई। इस वृद्धि से प्रसन्न होने की बात थी। लेकिन ज्यों-ज्यों मनुष्य बढ़ते जा रहे हैं, त्यों-त्यों खाद्य पदार्थ कम और महँगे होते जा रहे हैं। पृथ्वी पर कुल ३३,००,००,००,००० एकड़ भूमि है, जिसमें से १३,००,००,००,००० एकड़ भूमि पर खेती-बारी होती है। फ़ी आदमी पीछे २॥ एकड़ भूमि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये यथेष्ट होती है। इस हिसाब से उस कुल उपजाऊ भूमि की पैदावार को ५,२०,००,००,००० मनुष्य अपने उपयोग में ले आवेंगे। किंतु इनके बाद आनेवाली संतान क्या खायगी? भविष्य के सवा सौ वर्ष के काल में ही, यदि यही क्रम रहा तो, भोजन प्राप्त करना कठिन हो जायगा। लोग भूखे तड़पेंगे, और मरेंगे।

यह तो हुई मनुष्य-जाति की चिंता। संसार के अन्य चराचर, मूक प्राणियों का ह्रास भी सर्वविदित है। भारत में तो मुग़ल-राज्य से अब तक ७८ फ़ी-सदी पशु कम हो गए हैं, और प्रतिवर्ष मारकर, चर्बी में भूनकर सभ्य जाति द्वारा खाए जाते हैं! घी-दूध की कमी के साथ-साथ पशु-भक्षण की क्षति भी हमें मिल रही है, और हमें भविष्य में किसी भी खाद्य-प्राप्ति की आशा न करनी चाहिए।

इन सब गणनाओं के अतिरिक्त जल-प्रवाह

में भी पशुओं की क्षति कम नहीं होती । मनुष्य तो हाथ-पैर पीटकर निकल भी आते हैं, पर ये परवश जीव चुपचाप बहे चले जाते हैं, और कोई जोखिम सहकर उनका उद्धार नहीं कर सकता ।

इस प्रकार संसार का अंत समीप है । क्या यह वास्तविक प्रलय तो नहीं है ?

× × ×

७. स्कूली शिक्षा और उद्योग-धंधे

भारतवर्ष एक जगत्-प्रसिद्ध निर्धन देश है । पृथ्वी-भर में यहाँ की धरती सबसे ज़्यादा उपजाऊ और असंख्य प्राकृत वस्तुओं से भरपूर है । फिर भी देश की दरिद्रता बढ़ती चली जा रही है । यह दरिद्रता सदा से न थी । इतिहास के विद्वान् इस बात को जानते हैं कि भारत की संपत्ति की कभी संसार में वैसी ही ख्याति थी, जैसी आज उसकी दरिद्रता की है ।

इसके बहुत-से कारण हैं, जिनका उल्लेख करना यहाँ अप्रासंगिक होगा । यहाँ हम एक बात की तरफ़ सर्वसाधारण एवं गवर्नमेंट का ध्यान आकर्षित किया चाहते हैं । वह बात है स्कूली शिक्षा में उद्योग-धंधों का अभाव । यह तो सभी जानते हैं कि ब्रिटिश-राज्य में स्कूलों की सफलता बहुत अंश तक ठीक-ठीक हुई है । प्रतिवर्ष लाखों छात्र स्कूलों की शिक्षा प्राप्त करके निकलते, और फिर एक बार वे इस बात पर सोचते हैं कि अब किस भाँति के ढाँचों में अपने जीवन को ढालें । बहुत लोग कॉलेज जाते हैं । कुछ भिन्न-भिन्न विभागों में चले जाते हैं । पर सबसे अधिक भाग नौकरी की खोज में ही लग जाता है । इसका कारण दरिद्रता है । आगे पढ़ना चाहकर भी वे पढ़ नहीं सकते । क्योंकि न तो शिक्षा का खर्च चलाने का कोई सुबीता उन्हें प्राप्त होता है, न वे कुछ कर ही पाते हैं । सिवा नौकरी के वे किसी भी मतलब के नहीं, परंतु इन बेचारों की नौकरी की दुर्गति तो सब पर प्रत्यक्ष ही है । अगर स्कूल के छात्रों को काँच का काम, लकड़ी, लोहा, पत्थर, रँगसाज़ी और ऐसे ही फुटकर उद्योग-संबंधी काम सिखाए जायँ, तो इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि भारत के लाखों युवकों का ग़ुलामी और भूखों मरने से उद्धार हो जाय ।

सर्वप्रथम दादाभाई नौरोज़ी ने, सन् १८६७ में, भारत के प्रत्येक व्यक्ति की औसत आय २०) रु० अनुमान की थी । इसके बाद तो बहुतों ने भिन्न-भिन्न अनुमान लगाया । परंतु सभी का निष्कर्ष भारत की घोर दरिद्रता ही रहा, परंतु औसत आय पर विचार करने से प्रथम तो हमें इस गंभीर सत्य पर विचार करना है कि देश की आय का ३३ प्रतिशत तो जनता का एक प्रतिशत अंश भोग करता है, और ३५ प्रतिशत अंश जनता कुल आय का एकतिहाई भोग रही है । अब जो ६४ प्रतिशत जन-संख्या बची, जो ग्रामीण जन-संख्या है, उसके लिये ३० प्रतिशत ही शेष बच रहता है । इसका अर्थ यह है कि लगभग २२ करोड़ मनुष्यों की आय २०) रुपए प्रतिवर्ष के लगभग है । क्या यह भयानक प्रश्न नहीं है ? विलियम डिडवी ने तो लिखा था कि लगभग १० करोड़ मनुष्यों को एक बार भी भोजन नहीं मिलता । परंतु इन निर्धन मनुष्यों की बात भी जाने दीजिए । मध्यम वर्ग के मनुष्यों की हीन दशा पर भी विचार करिए। यदि हम हिसाब लगाकर देखें, तो हमें पता लगेगा कि भारत के ३५ करोड़ मनुष्य साल में जितना कमाते हैं, उतना तो ग्रेट ब्रिटेन के सवा चार करोड़ आदमी शराब और भोजन पर ख़र्च कर देते हैं ।

इस भयानक दरिद्रता का केवल एक ही सच्चा कारण है कि भारतवर्ष के दरिद्र व्यक्तियों का आधार भूमि की उपज या मज़दूरी है, और मध्यम श्रेणी के लोगों की आय का आधार नौकरी या ऐसी ही कोई उपजीविका । देश-भर में ७५ फ़ीसदी जनता प्रत्यक्ष रूप से और १५ प्रतिशत अप्रत्यक्ष रूप से भूमि पर ही अवलंबित है । इस भूमि की इस प्रकार अधिक जोत करने का फल यह हुआ है कि गोचर-भूमि तक जोत-बो डाली गई, और पशुओं तक के लिये भूमि आज नहीं बच रही है । सन् १८६१ में ६२ प्रतिशत मनुष्य खेती करते थे, पर १९०१ में ६८ प्रतिशत । १९११ में ७३

प्रतिशत और १९२१ में ७४ प्रतिशत मनुष्य खेती-बारी में लगे रहे। इससे पाठक समझ सकते हैं कि किस प्रकार उद्योग-धंधे पिछड़ रहे हैं।

उद्योग-धंधे के नाम पर भारतीय स्त्री-पुरुष मज़दूरी करते हैं, और उनका ऐसा कलुषित संगठन बन जाता है, जिससे उनका आचार बहुत कुछ भ्रष्ट हो जाता है। बंबई, कलकत्ते और बड़े-बड़े सभी शहरों के इन मज़दूरों की आप ऐसी ही दशा देखेंगे।

इसका कारण घरेलू धंधों का अभाव है। यदि स्कूल की शिक्षा में घरेलू धंधों का समावेश कर दिया जाय, तो बहुत कुछ कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं। इन दस वर्षों में भारतीय युवकों के मन में छोटे-छोटे काम करने की उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हो गई है। यदि खेती का ढंग बिलकुल वैज्ञानिक कर दिया जाय, और घरेलू उद्योग-धंधे सीखकर छात्र स्कूल से निकलें, तो फिर सर्वसाधारण की दशा बहुत कुछ सुधर जाय। यह तो मानी हुई बात है कि खेती-बारी में किसान बारहो महीने नहीं लगा रह सकता। सभी देशों के किसान छोटे-छोटे उद्योग-धंधे करते हैं। जापान का किसान रेशम के कीड़े पालता है। स्विटज़रलैंड का किसान अपने अवकाश के समय में घड़ियाँ, कपड़े, लकड़ी का सामान आदि बनाता है। फ्रांस का किसान लेस, लकड़ी का काम, रेशमी कपड़ा, जूते आदि बनाता है। जर्मनी का किसान खिलौने और कपड़े बनाता है। हर हालत में भारत के ही किसान सोते और हुक्क़ा गुड़गुड़ाते रहते हैं। सभी देशों में घरू धंधे सफलता से चल रहे हैं। बेल्जियम में ६४ प्रतिशत छोटे-छोटे कारख़ाने हैं, जर्मनी में ६० प्रतिशत, फ्रांस में ८० प्रतिशत, डेनमार्क में ७६ प्रतिशत, अमेरिका में ६१ प्रतिशत; फिर भारत में ही कहीं कुछ नहीं, यह क्यों ?

यदि स्कूल से निकलनेवाले लाचार युवक अपने सार्टिफ़िकेट लिए दर-दर न फिरें, और देहातों, क़स्बों में बसकर घरेलू उद्योग-धंधों में लग जायँ, तभी देश की आर्थिक दशा ठीक हो सकती है।

× × ×

८. रूसी हौआ

केलीफ़ोर्निया से एक अमेरिकन सज्जन ने महात्मा गांधी को एक महत्त्व-पूर्ण पत्र लिखा था, जिसका अभिप्राय इस प्रकार है—"मैं ग्रेट ब्रिटेन के प्रति श्रद्धालु हूँ। मेरे बुज़ुर्गों ने भी उससे स्वतंत्र होने के लिये युद्ध किया था। फिर भी वर्तमान स्थिति को देखते हुए मैं ब्रिटेन से भारत का संबंध विच्छेद हो जाना लाभप्रद नहीं समझता। भारत में शासन करने की योग्यता होगी, लेकिन संबंध-विच्छेद होते ही यदि रूस अथवा अन्य राष्ट्र भारत में घुस आवे, तो उसे कौन रोकेगा ? भारत के पास आत्म-रक्षा के साधन नहीं हैं। कदाचित् आप लोग अँगरेज़ों की अपेक्षा रूस का प्रभुत्व अधिक हितकारी समझें। रूस पूर्व के प्रति सहानुभूति रखता है, लेकिन वह है तो पश्चिम का अंश ही। वहाँ की सभ्यता पश्चिमी है। यदि रूस ने भारत से संबंध किया, तो वह शासक और शासित का ही होगा। मुझे यह पसंद नहीं, क्योंकि रूस भारत की सभ्यता और असलियत को नष्ट कर देगा।

शायद आप लोग रूस से उतना भय नहीं समझते, जितना हम पश्चिमी लोग देख रहे हैं। हमारा विश्वास है कि जैसे ही अँगरेज़ भारत से हटे, वैसे ही रूस प्रवेश कर लेगा। भारत की आधुनिक भेद-नीति, कृषि-दुर्दशा, उद्योग-शिल्प-दुर्दशा आदि को देखते हम नहीं अनुमान कर सकते कि भारत पाश्चात्य नवीन आविष्कार के सामने अपनी रक्षा कर सकेगा। रक्षा के लिये राष्ट्रीय संगठन की परम आवश्यकता होती है, जिसका भारत में अभी सर्वथा अभाव है। साधारण एकता तक नहीं है। इस युग में नवीन शिल्प-पद्धति का ज़ोर है, किंतु भारत में इसकी उन्नति की कोई चेष्टा नहीं की जाती। आप स्वयं कपड़ा बुनने की पुरानी चाल पर जा रहे हैं। क्या आपको संसार की परिवर्तन-शीलता का कुछ भी ज्ञान नहीं होता ? आप वृद्धावस्था से बचपन में प्रवेश नहीं कर सकते, फिर आप यह आशा कैसे करते हैं कि बुनाई के उन्नतिशील उपायों

से पुरानी चाल पर जाकर लाभ उठावेंगे। आप स्वयं यह अनुभव करते होंगे कि वह ढंग कठिन है, और नया ढंग सरल है। नवीन ढंग पर काम करके चीन और जापान ने आशातीत लाभ उठाया है। आज संसार-भर में भारत ही एक-मात्र ऐसा देश है, जो नवीनता की उपयोगिता नहीं अनुभव करता। आप नेता हैं, आपको ऐसा आदेश जनता को देना चाहिए। मुझे आपसे दो प्रश्न करने हैं कि यदि भारत इँगलैंड से स्वतंत्र होना चाहता है, तो वह रूस का भय क्यों नहीं अनुभव करता, और आप क्यों नहीं लोगों को समझाते कि मशीनरी की सहायता से मजूरी का नवीन ढंग अपनाने में ही स्वतंत्रता है? मुझे इन दोनो प्रश्नों का उत्तर मिल जाना चाहिए। मुझे साधारणतया ब्रिटेन के प्रतिकूल होने के विषय में आपसे सहानुभूति है, फिर भी भारत की परिस्थिति, जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, भारत में ब्रिटिश नियंत्रण के ही आधार पर है, और दूसरी बात, जो मैं ऊपर कह चुका हूँ, रूस के संबंध में है। हम सब सिर्फ़ यह जानना चाहते हैं कि इन समस्याओं पर आपके क्या विचार हैं?

उक्त पत्र के उत्तर में महात्माजी ने जो विचारणीय उत्तर दिया है, वह इस प्रकार है—

आपके पत्र में दो बातें हैं। एक तो यह कि भारत स्वराज्य के अयोग्य है, क्योंकि वह अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकता, और इसमें फूट है। आपका यह विश्वास है कि यदि अँगरेज़ भारत से चले जायँगे, तो रूस धर दौड़ेगा। परंतु रूस के लिये यह कार्य अपमान का प्रश्न होगा। क्या रूस का यह काम है कि जिन देशों से ब्रिटेन का शासन हट चुका है, उन पर वह आक्रमण करे? यदि रूस की यही मनोभावना है, तो भी उसकी आशा पूर्ण न होगी। हमारी जो शक्ति ग्रेट ब्रिटेन को हटाएगी, वही उसे भी हटा देगी। यदि परस्पर समझौते से भारत के प्रतिनिधियों को शासन की बागडोर दी जाती है, तो भारत की बाहरी शक्तियों से रक्षा करने की ब्रिटेन को गारंटी करनी होगी। क्योंकि इतने दिनों तक भारत को अपनी रक्षा-योग्य न बनाकर उसने भूल की है। व्यक्तिगत रूप से मैं समझौते में भी राष्ट्र की दमन-नीति का सामना करने की शक्ति पर विश्वास करूँगा, जैसा कि गत वर्ष ब्रिटिश-दमन का सामना करने में उसने बहुत कुछ सफलता प्राप्त की है। राष्ट्र के पूर्ण रूप से अहिंसक बने रहने पर पूर्ण सफलता मिल सकती है। इतने बड़े राष्ट्र ने अहिंसात्मक सत्याग्रह में सफलता प्राप्त करके संसार को शस्त्रों की निरुपयोगिता बतला दी है। हिंसा के लिये शस्त्र आवश्यक है, और अहिंसा के लिये सत्याग्रह आवश्यक है। आपको हमारी फूट से भी भय है। आपको समझना चाहिए कि हमारी फूट के समाचार विदेशों में बढ़ा-चढ़ाकर भेजे जाते हैं। दूसरी बात, विदेशी शासन में उन्हें उत्तेजना दी जाती है। फूट डालकर राज्य करना विदेशी सत्ता की नीति है।

चर्ख़े की बाबत आप ही-जैसे विचार रखनेवाले लोग यहाँ भी बहुत हैं। पर यह बात संदिग्ध है कि दस्तकारी से मशीनरी सर्वत्र उत्तम है, या सरल कार्य से कठिन कार्य श्रेष्ठ है। यह भी संदेहास्पद है कि हरएक परिवर्तन नियामत है, और हरएक पुरानी वस्तु त्याज्य है। जब एक कार्य बेकार फिरनेवाले करोड़ों व्यक्ति हाथ से कर सकते हैं, तब मशीनरी हानि कारक है। वह सुदिन भी आवेगा, जब १६०० मील लंबे और १५०० मील चौड़े स्थान में तथा सात सौ हज़ार मील के क्षेत्र-फल में फैले हुए करोड़ों मनुष्य अपने उपयोग के लिये उसी भाँति वस्त्र भी तैयार कर लेंगे, जिस भाँति अपना भोजन बना लेते हैं। यदि वे अपनी दैनिक इच्छा नहीं पूर्ण कर सकते, तो वे स्वाधीन भी नहीं हो सकते। जब भारत और पश्चिम में इतना अंतर है, तब यह कैसे हो सकता है कि जो बात पश्चिम के लिये ठीक है, वही भारत के भी लिये है।

× × ×

६. जापानी कपड़ा

हाल ही में बंबई के मिल-मालिक-मंडल के सभा-

पति मि० मोदी ने एक पत्र द्वारा जापानी कपड़े के संबंध में एक महत्त्व-पूर्ण प्रकाश डाला है। आपका कहना है—

इस देश में विदेश से आनेवाले कपड़े के चार विभाग किए जा सकते हैं—बुना हुआ, धुला हुआ, रंगीन और बनावटी रेशम का माल। सन् ३० के पिछले चार महीनों और सन् ३१ के पहले चार महीनों अर्थात् ८ महीनों में इनमें से हरएक प्रकार का माल ब्रिटेन और जापान से आया। उसके आँकड़े खोज निकाले हैं। वे इस प्रकार हैं—

युनाइटेड किंगडम से—

बना हुआ माल	३६० लाख गज़
धुला हुआ ,,	१०५० ,, ,,
रंगीन ,,	६०० ,, ,,
कुल	२०१० ,, ,,

जापान से—

बना हुआ माल	१३०० लाख गज़
धुला हुआ ,,	२२० ,, ,,
रंगीन ,,	४४० ,, ,,
बनावटी रेशम का कपड़ा	३१० ,, ,,
कुल	२२७० ,, ,,

इससे स्पष्ट है, ग्रेट ब्रिटेन की अपेक्षा जापान तेज़ी पर है। जापानी आयात पौनी, दुगनी और ढाईगुनी तक बढ़ गई है।

पिछले वर्षों के आँकड़े देखने से यह स्पष्ट है कि भारत के वस्त्र-व्यवसाय का शत्रु ग्रेट ब्रिटेन से भी भयंकर जापान है। सन् १९२९-३० में, जो भारत में वाणिज्य-व्यवसाय के दिवाले का काल रहा है, जापान से ५६ करोड़ २० लाख गज़ कपड़ा आया। १९२४-२५ में १५ करोड़ ९० लाख आया था। ग्रेट ब्रिटेन से १९२९-३० में १२४ करोड़ ८० लाख गज़ आया है, और १९२४-२५ में १६२ करोड़ २० लाख गज़ आया था। इससे यह सिद्ध है, जापान की प्रगति बढ़ रही है। जापान से आनेवाले बनावटी रेशम के माल में जो प्रचंड वृद्धि हुई है, उससे मिलों की अपेक्षा कर्घे और हाथ के उद्योग पर अधिक हमला हुआ है, क्योंकि पहले जो बनावटी रेशम आता था, उसका ८०% हाथ-कर्घों पर बुना जाता था, और सिर्फ २०% मिलों में उपयोग होता था।

जापानी माल यद्यपि बहुत बारीक और कारीगरी का नहीं होता, फिर भी भारतीय वातावरण से जापान लाभ उठाता है। हमारी देशी मिलें वैसा कपड़ा तैयार करने की चेष्टा कर रही हैं, लेकिन जापान की सस्ती क़ीमत के आगे वे कैसी प्रतिद्वंद्विता करेंगी, और वह सफल भी होगी या नहीं, इसमें संदेह है। कारण, जापान लागत-मात्र तक सस्ता भाव कर देगा। यदि लोकमत भारतीय माल अपना ले, तो संभव है, देशी मिलें अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त कर लें।

बहिष्कारकर्ताओं को सब प्रकार से विदेशों का माल रोकना चाहिए। अन्यथा आर्थिक दृष्टि से कुछ लाभ न होगा। कारण, जापान लंकाशायर से बाज़ी ले जाने की चेष्टा में उद्योगशील है।

× × ×

१०. नया प्रेस-नियंत्रण-बिल

सर जेम्स क्रेरर ने गत ७ सितंबर को एक भयानक प्रेस-बिल असेंबली में पेश किया है। उसकी कुछ आवश्यक बातें ये हैं—

[३] १—प्रत्येक व्यक्ति को, जो छापेख़ाने का कीपर (रखनेवाला) है, और सन् १८६७ ई० के प्रेस एंड रजिस्ट्रेशन-ऐक्ट की धारा ४ के अनुसार डिक्लरेशन लेना चाहता है, मजिस्ट्रेट से डिक्लरेशन लेने की दरख़्वास्त करनी पड़ेगी। मजिस्ट्रेट ५००) और २०००) के बीच में ज़मानत लेगा, यानी मजिस्ट्रेट अपनी मरज़ी से चाहे न्यूनतम ५००) की ज़मानत ले या दो हज़ार की। यह ज़मानत या तो नक़द होनी चाहिए या अन्य सरकारी काग़ज़ात में। साथ ही मजिस्ट्रेट को अख़्तियार होगा कि यदि वह चाहे, तो विशेष कारण बतलाकर किसी से ज़मानत न भी ले। यदि उप-धारा नं० ३ के अनुसार किसी प्रेस के

मालिक से दुबारा ज़मानत लेने की आवश्यकता पड़ी, तो वह १०००) तक हो सकती है।

२—मजिस्ट्रेट किसी भी समय, जब वह चाहे, पूर्व ज़मानत रद्द कर दे, और दूसरी माँगने का ऑर्डर निकाल दे। उसको समय-समय पर ज़मानत की रक़म बदल देने का भी अधिकार है।

३—जब कभी स्थानीय सरकार चाहे, उन प्रेस के कीपरों से भी ज़मानत ५००) से ५०००) तक तलब कर सकती है, जिन्होंने अब से पहले डिक्लरेशन दे रक्खे हैं। वह इस प्रकार कि स्थानीय सरकार प्रेस के नाम नोटिस प्रकाशित कर देगी, और कहेगी कि वह उस मजिस्ट्रेट के पास, जिसके इलाक़े में वह प्रेस स्थित है, ऑर्डर के अनुसार ज़मानत जमा करा दे या कर दे।

[४] १—स्थानीय सरकार को जब कभी किसी ऐसे प्रेस के संबंध में, जिसने धारा ३ के अनुसार ज़मानत जमा कर रक्खी है, यह पता चले कि वहाँ कोई पत्र, पुस्तक, पुस्तिका, चित्र इत्यादि छपा है, जो किसी-न-किसी प्रकार—चाहे प्रत्यक्ष रूप में यानी खुले शब्दों में या अप्रत्यक्ष रूप में—हिंसा को प्रोत्साहन देता है, तो स्थानीय सरकार प्रेस के कीपर को लिख दे कि अमुक पत्र, पुस्तक या पोस्टर में अमुक शब्द, मज़मून या पंक्तियाँ ऐसी हैं, जो हिंसा का समर्थन करती हैं। साथ ही ज़मानत में से जितना भी हिस्सा वह चाहे, (अपराध के अनुसार) ज़ब्त कर ले, और उस पत्र, पुस्तक इत्यादि की प्रतियाँ जहाँ भी (भारतवर्ष में) मिलें, ज़ब्त कर ले।

२—नोटिस तामील हो जाने के १० दिन बाद प्रेस-ऐक्ट की धारा ४ के अनुसार किया हुआ डिक्लरेशन रद्द माना जायगा।

[५] १—यदि धारा ४ के अनुसार ज़मानत ज़ब्त हो जाय, या उसका कुछ हिस्सा ज़ब्त हो जाय, तो छापेख़ाने के कीपर को नए सिरे से डिक्लरेशन देने के लिये १ से १० हज़ार तक की ज़मानत देनी पड़ेगी। यह मजिस्ट्रेट की इच्छा पर निर्भर है कि चाहे वह एक हज़ार की ले या १००००) की। इससे कम या ज़्यादा तो क़ानूनन् ले ही नहीं सकता।

२—जितना भाग ज़मानत का ज़ब्त हो चुका है, उसके अतिरिक्त जितना शेष रहता है, वह नया डिक्लरेशन देने पर हिसाब में लगा लिया जायगा।

[६] १—यदि फिर भी किसी प्रेस का कीपर हिंसा को उत्तेजना देनेवाला साहित्य छापे, तो स्थानीय सरकार पूर्ववत् लिखित नोटिस देकर दुबारा दी हुई ज़मानत में से कोई भाग या संपूर्ण ही ज़ब्त कर लेगी, पर साथ ही उन मज़मूनों का भी उल्लेख कर दिया जायगा, जो हिंसा को प्रोत्साहन देनेवाले हैं। दूसरे, वह प्रेस ही ज़ब्त कर लिया जाय, जिसमें उक्त साहित्य छपा हो। तीसरे, उस साहित्य की प्रतियाँ सारे भारतवर्ष में ढूँढ-ढूँढकर ज़ब्त कर ली जायँगी।

[७] १—प्रत्येक पत्र के प्रकाशक को भी सन् १८६७ ई० के प्रेस-ऐक्ट की धारा ५ के अनुसार डिक्लरेशन देना पड़ता है। अतः अब नए प्रेस-बिल के अनुसार उसे भी मजिस्ट्रेट के यहाँ ५०० रु० से लेकर २००० रु० तक की ज़मानत देनी पड़ेगी। मजिस्ट्रेट अपनी इच्छा से यदि चाहे, तो ज़मानत न भी ले, पर इसका कारण लिखना होगा। साथ ही पाठकों को यह भी विदित होना चाहिए कि उप-धारा ३ के अनुसार पत्र-प्रकाशकों से भी ५००० रु० तक की ज़मानत ली जा सकती है।

२—मजिस्ट्रेट जब चाहे, ज़मानत को रद्द कर दे।

३—स्थानीय सरकार को यदि यह पता चले कि कोई ऐसा प्रकाशक, जिसने डिक्लरेशन अब से पूर्व लिया हुआ है, कुछ हिंसात्मक साहित्य प्रकाशित करे, तो वह उससे ५०० रु० और ५००० रु० के बीच में ज़मानत तलब कर ले।

[८] १—यदि कोई पत्र हिंसा का समर्थन करे, तो उसके प्रकाशक को लिखित नोटिस द्वारा सूचना देकर उसकी ज़मानत—कुछ हिस्सा या संपूर्ण—ज़ब्त कर ली जाय।

२—नोटिस देने के १० दिन पश्चात् पूर्व दिया हुआ डिक्लरेशन रद्द माना जायगा।

[९] १—यदि किसी पत्र की ज़मानत धारा ८ व १० के अनुसार ज़ब्त हो जाय, और उसका प्रकाशक दुबारा डिक्लरेशन दे, तो उससे १ हज़ार से १० हज़ार तक की ज़मानत ली जायगी।

२—यदि पहले दी हुई ज़मानत में से कुछ शेष है, तो वह दुबारा हिसाब में लगा ली जायगी।

[१०] १—इस प्रकार ज़मानत देने पर भी यदि पत्र-प्रकाशक हिंसा को उत्तेजना देने से बाज़ न आवे, तो स्थानीय सरकार पत्र-प्रकाशक को लिखित सूचना देकर दुबारा दी हुई ज़मानत ज़ब्त कर ले, और पत्र की सारी प्रतियाँ, भारतवर्ष में जहाँ भी मिलें, ज़ब्त कर ले।

२—नोटिस देने के दस दिन बाद डिक्लरेशन रद्द समझा जायगा। तत्पश्चात् उक्त प्रकाशक बिना स्थानीय सरकार की मंज़ूरी के नया डिक्लरेशन नहीं दे सकता।

[११] १—जिस किसी भी व्यक्ति के पास बिना डिक्लरेशन दिया हुआ छापाख़ाना मिलेगा, या जो ज़मानत माँगने पर ज़मानत न देगा, तो उसके साथ प्रेस-क़ानून के अनुसार कार्यवाही की जायगी, और दंड दिया जायगा।

२—यदि कोई व्यक्ति बिना ज़मानत दिए पत्र निकालेगा, तो उसके साथ भी वही कार्यवाही की जायगी, जो डिक्लरेशन न देने के समय की जाती है, यानी उस पर प्रेस-ऐक्ट की धारा ५ का मुक़दमा चलाया जायगा।

[१२] १—जब एक छापेख़ाने के कीपर से ज़मानत माँगी जाय, तो यह समझ लेना चाहिए कि वह तब तक कोई पत्र या पुस्तक नहीं छाप सकता, जब तक वह ज़मानत न अदा कर दे। यदि वह इस बात की परवा न करे, और अपना काम करता रहे, तो स्थानीय सरकार लिखित नोटिस देकर छापेख़ाने को ही ज़ब्त कर ले।

प्रस्तावित बिल का सबसे अधिक आपत्ति-जनक पहलू तो वह है, जिसमें हिंसात्मक कार्य की प्रशंसा करनेवाले की ही नहीं, बल्कि हिंसा करनेवाले व्यक्ति की किसी भी दृष्टिकोण से प्रशंसा करनेवाले पत्र को भी ज़मानत से हाथ धोना पड़ेगा। इस बिल में हिंसात्मक कार्य की प्रशंसा और हिंसक की किसी चरित्र की प्रशंसा को एक ही चीज़ समझा गया है। हिंसा करना निंदनीय हो सकता है, पर यह आवश्यक नहीं कि हिंसक किसी भी दृष्टि से प्रशंसनीय न हो। महात्मा गांधी-जैसे अहिंसक सिद्धांतवादी ने भगतसिंह के चरित्र की मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। हम जहाँ तक समझते हैं, जब मदनलाल ढींगरा ने सबसे प्रथम राजनीतिक वध किया था, उसकी मि० चर्चिल और लायड जार्ज ने भी प्रशंसा की थी, और ब्रिटिश मंत्रिमंडल के अधिकांश सदस्य इससे सहमत थे।

यह बात ध्यान-पूर्वक देखने योग्य है कि जब भारत के प्रतिनिधि महात्मा गांधी शांत वातावरण को उत्पन्न करके, उसे स्थायी बनाने के लिये, विलायत की ओर अग्रसर हुए हैं, तब ऐसे दमन-नीति-मूलक क़ानूनों का निर्माण करना सरकार की साफ़-दिली का सबूत नहीं। हमारी राय में ऐसे क़ानून सहयोग की भावना को ठेस पहुँचानेवाले हैं।

बिल पर बोलते हुए मि० क्रेरर ने बताया कि पहले जो बिल बना था, उसकी मार बहुत लंबी थी, पर इसकी उतनी लंबी न होगी। यह केवल हिंसाओं को उत्तेजन देनेवाले कार्यों के विरुद्ध प्रयोग में लाया जायगा।

यह बिल ७ सितंबर को तो पेश हुआ, और ११ को एक विशिष्ट कमेटी के सुपुर्द कर दिया गया, जिसके साथ यह प्रतिबंध है कि वह समिति ७ दिन के भीतर ही अपनी रिपोर्ट परिषद् के सामने उपस्थित करे।

साधारणतया यह नियम होता है कि जब कोई क़ानूनी मसविदा पेश होनेवाला होता है, तब उसे जनता की जानकारी और विवेचना के लिये प्रस्तुत

समाचार-पत्रों में प्रकाशित किया जाता है, पर यह बिल इतनी शीघ्रता के साथ अमल में लाने की तैयारी हो रही है, जिसका अभिप्राय साफ़ है कि अब राष्ट्रीय पत्रों का जीवन सुरक्षित रह ही नहीं सकता।

इस बिल को पेश करते हुए मि० क्रेरर ने समाचार-पत्रों का ऐसा संग्रह पढ़कर सुनाया, जिससे हिंसा को उत्तेजना मिलती है। पर शायद विद्वान् मि० क्रेरर यह नहीं जानते कि जिस भाँति पुलिस ने गत वर्ष क्रूर अत्याचार किए, महिलाओं तक पर लाठियों के घातक वार किए, किसी के मानापमान का विचार न किया, हिंसा को उत्तेजना देने के कारण तो ये हैं। उत्तर भारत जब सिद्धांत रूप से ऐसे कठिन समय में, जब कि वह अपनी हज़ारों वर्ष की सोती हुई क़िस्मत को ठोकर मारकर जगा रहा है, पूर्ण अहिंसा और शांति के ऐसे मार्ग को चुन रहा है, जैसा पृथ्वी पर कभी किसी ने ऐसे अवसर पर नहीं चुना, तब ऐसे घृणास्पद क़ानून बनाकर जनता को क्षुब्ध करना उसकी सद्भावना के प्रति अपनी द्वेष-पूर्ण प्रवृत्ति प्रकट करना ही है। हम इस बिल का दृढ़ता-पूर्वक तिरस्कार करते हैं।

× × ×

११. संसार में सबसे बड़ा बाज़ार

फ़्रांस की राजधानी, विलास-नगरी पेरिस में चार करोड़ रुपए की लागत से एक बड़ा भारी मार्केट बनाया जा रहा है। इसमें कुल ५,००० दूकानें रहेंगी, जहाँ कारीगर, मजूर, व्यापारी और ग्राहक सब मिलाकर लगभग तीस हज़ार आदमी हर समय बने रहेंगे। दूकानों का किराया ६०) मासिक के लगभग होगा, और चार वर्ष के लिखित ठेके पर मिल सकेगा। एक ही प्रकार के व्यापारी एक विभाग में रहेंगे। इस मार्केट में प्रत्येक व्यक्ति को सब तरह का सुबीता और आराम रहेगा। आमोद-प्रमोद का सुख भी उसे प्राप्त होगा। नहाने को स्नान-गृह, तालाब, कसरत-घर, भोजन-घर, विश्राम-गृह, व्याख्यान-शालाएँ, सिनेमा आदि अनेकों मनोरंजन की व्यवस्था रहेगी। काम के सुबीते के लिये टेलीफ़ोन, दुभाषिए, टाइप करनेवाले, क़ानूनी सलाहकार, बीमावाले और चुंगीवाले सब तैयार मिलेंगे। सब बैंकों की ब्रांच रहेंगी। प्रत्येक देश का व्यापारिक राजप्रतिनिधि भी यहाँ रहेगा। योरप-भर की तमाम रेल-लाइनों का केंद्र होने के कारण इस मार्केट की योजना की गई है, ताकि संसार-भर के व्यापारी ग्राहक चले आवें। दो वर्ष में यह तैयार हो जायगा। इसकी दूकानें अभी से रिज़र्व की जा रही हैं। संसार के प्रत्येक देश से बड़े-बड़े व्यापारियों ने एक-एक, दो-दो दूकानें अपने क़ब्ज़े में कर ली हैं। अमेरिकावालों ने ५०० दूकानें रिज़र्व करा ली हैं, और अभी अन्यत्र से प्रार्थना-पत्र आ रहे हैं।

इससे अच्छा, सुंदर और व्यवस्थित मार्केट अन्य नहीं है।

× × ×

१२. गाने के दाम

मैडम पट्टी योरप की प्रसिद्ध गायिका थी। अमेरिका, फ़्रांस, रूस आदि जिस देश में वह गई, लोग उसके गाने पर मुग्ध हो गए। उसके ऊपर धन की बौछार होती थी। थैलियों रुपए वह इनाम पाती थी। सन् १८८२ में, चालीस दिन गाने के लिये, अमेरिका के न्यूयार्क-नगर की एक गायन-मंडली ने, इसे सवा पाँच लाख रुपया दिया था। सेनफ़्रांसिस्को-नगर में पहली बार जब वह गाने गई, तो गाने के दिन टिकट लेनेवाले लोग दिन निकलने के बहुत पहले ही टिकट-घर पर लाइन लगाकर खड़े हो जाते थे। यह लाइन चार बाज़ारों में लंबी चली जाती थी, और ठसाठस भर जाती थी। लगातार एक मास तक गाने पर भी भीड़ कम नहीं हुई। इन दिनों उसके गाने की फ़ीस १८ हज़ार रुपए रोज़ थी। ठेकेदार को जिस दिन ३६ हज़ार से अधिक आय होती थी, उसमें से भी आधा वह और ले लेती थी। सन् १८६३ में तो उसकी दर और भी बढ़ गई थी। एक बार ५ महीने के दौरे के उसे ६ लाख रुपए दिए गए थे। महीनों पहले से उसके प्रोग्राम बन जाया करते थे। अमीर और ग़रीब सब उसके प्रति

लालायित थे। हिंदोस्तान की चौपट नवाबी की बू योरप में रंग ला रही है।

× × ×

१३. मँगतों का ख़र्च

कुछ दिन पूर्व स्वर्गीय लाला सुखवीरसिंह ने भारत के भिखारियों के सालाना ख़र्च का अंदाज़ा लगाया था। सन् १६०१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार भारत में ५२ लाख मँगते थे। तब से देश के दुर्भाग्य ने उनकी संख्या बढ़ाई ही है, पर यदि इतने ही मान लिए जायँ, तो आजकल ६) रुपए महीने से कम में तो एक आदमी का पेट भर ही नहीं सकता। इसी हिसाब से ५२ लाख आदमियों का सालाना ख़र्च साढ़े सैंतीस करोड़ रुपए होता है। देश का इतना धन खाकर भी ये लोग बदले में कुछ काम नहीं करते। अगर ये लोग अपने पेट भरने लायक़ भी कमाई कर सकें, तो देश का ३७॥ करोड़ का ख़र्च बच जाय, और इतना ही कमा भी लें। इस प्रकार इन्हें काम में लेने से ७५ करोड़ रुपए सालाना का देश को लाभ होने लगे! और ये लोग साधारण मजूर की तरह १०) मासिक भी कमावें, तो साल-भर में एक अरब रुपयों का फ़ायदा होने लगे। मँगतों को सदावर्त लगाकर या एक मुट्ठी आटा या चना बाँटकर जो सज्जन अपने लिये स्वर्ग से विमान आने की आशा में बैठे हैं, वे उपर्युक्त आँकड़ों से सावधान हो जायँ, और उपर्युक्त पाप-रूप पुण्य से हाथ खींचकर धर्मादे के रुपए से कारख़ाने खोलें, और मँगतों को मजूरी करने पर लाचार करें।

पाठकों को यह भली भाँति मालूम होना चाहिए कि योरप और अमेरिका में भीख माँगना क़ानूनी जुर्म है। जब कि भारत में ऐसे-ऐसे अकड़ू भीख माँगते हैं, जो यह समझते हैं कि लोग जो हमें भीख देते हैं, इससे उन्हीं के लिये स्वर्ग का द्वार खुलता है, कुछ हम पर एहसान नहीं होता। धर्म की पुरानी पोथियाँ उनकी सहायक हैं। कदाचित् भारत ही ऐसा प्रदेश है, जहाँ के भिखमंगे करोड़ों की संपत्ति के स्वामी हैं, और हाथियों पर चढ़कर भीख माँगते हैं। ऐसे श्रीमंतों को ग़रीब-अमीर सभी भीख देते हैं, यह आश्चर्य की बात है।

सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण तो वे भिखारी हैं, जो किसी मंदिर या मठ की दूकान खोले बैठे हैं, और अपनी आय का एक ख़ासा सिलसिला बना रहे हैं। अभी कुछ दिनों से भारत के नवयुवकों के मन से धर्म-पाखंड का भय कम हुआ है, और उन्होंने इन महंतों और धर्म-धकेलों के अधिकारों पर सख़्त आक्रमण किए हैं। अब देखना यह है कि कब लोग भिखारियों को भिक्षा देना पाप समझेंगे, और भारत से भिखारीपन का धब्बा दूर होगा!

× × ×

१४. स्वर्गीय गायनाचार्य श्रीविष्णु दिगंबरजी

विगत अगस्त के महीने में आपकी मृत्यु से भारत-वर्ष का एक प्रमुख संगीतज्ञ उठ गया। हम आपके संबंध में एक नोट पिछली सख्या में दे चुके हैं।



स्व० गायनाचार्य श्रीविष्णु दिगंबरजी

× × ×

१५. श्रीदिनेशचंद्र गुप्त

आप गत वर्ष जुलाई-मास में कर्नल सिंपसन की हत्या के संबंध में गिरफ़्तार हुए थे। विगत ७ जुलाई को सवेरे ४ बजे, अलीपुर-जेल में, आपको फाँसी दे दी गई।

× × ×



स्वर्गीय श्रीदिनेशचंद्र गुप्त

१६. भारतीय मज़दूर

दुनिया के श्रमजीवियों में सबसे गया-बीता हिंदोस्तान का श्रमजीवी है। अभी हाल में प्रकाशित ट्रेड-नियन-कांग्रेस की खोज-समिति तथा ह्विटले-लेबर-कमीशन की रिपोर्टों में उसकी दयनीय दुर्दशा का बीभत्स चित्र देखने को हमें मिला है । कमीशन द्वारा वर्णित भारतीय मज़दूर की दशा देखिए, कितनी असंतोष-जनक तथा कारुणिक है—

उसे मज़दूरी बहुत ही कम मिलती है। ५ या ६ आने प्रतिदिन से अधिक उसे कहीं भी नहीं मिलता। सो भी तब, जब कि वह पुरुष हो। स्त्री होने पर दर घटकर ३ आने प्रतिदिन रह जाती है।

उनमें से ⅔ मज़दूर क़र्ज़दार हैं। क़र्ज़ा भी उन पर मामूली नहीं होता, अपितु बहुत अधिक हुआ करता है। धीरे-धीरे सूद-दर-सूद चढ़ते-चढ़ते वह मूल-धन का १२० गुना तक हो जाता है। सूद की दर भी बड़ी विचित्र हुआ करती है। ७५ फ़ी-सदी से तो वह किसी हालत में नीची होती ही नहीं। हाँ, कभी-कभी बढ़कर १५० प्रतिशत तक पहुँच अवश्य जाती है। महाजन और बौहरे यह क़र्ज़ा मज़दूर को नीलाम करके वसूल किया करते हैं। किंतु पठान महाजन उसे लौह-मंडित यष्टिका के सहारे ही उसकी खोपड़ी से वसूल करता है।

कभी-कभी तो नौबत यहाँ तक आ पहुँचती है कि महाजन महोदय मजूर की सारी मजूरी स्वयं रख लेते तथा उसे कुटुंब के भरण-मात्र के लिये सौदा-जिंस दे दिया करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बेचारा मज़दूर साहूकार का बेपैसे का ग़ुलाम सारी ज़िंदगी-भर बना रहता है।

भारतीय मज़दूर के रहने की जगह होती है महा सड़ी, गंदी नमी से भरी, छोटी-सी कोठरीनुमा माँद। उस एक माँद में ६ से लेकर ९ आदमी तक रहा करते हैं। वहाँ हवा और रोशनी आने के लिये एक छोटे-से दरवाज़े के अतिरिक्त और कोई छेद नहीं होता, तथा उसके बाहर टूटी-फूटी नालियों के पानी से छोटे-छोटे तालाबों में गोभी और मूली के पत्ते तथा छोटे बच्चों का पाख़ाना-पेशाब सड़ा करता है। दरवाज़े भी ४ या ५ मंज़िल की हवेलियों के पिछवाड़ेवाली, छोटी, तंग गलियों में खुलते हैं। इस प्रकार भारतीय मज़दूरों की ये बस्तियाँ कुंभीपाक नरक की जीती-जागती प्रतिमूर्तियाँ हुआ करती हैं।

ऐसी भयंकर परिस्थिति का परिणाम भी बड़ा भयंकर होता है । केवल बंबई शहर में उत्पन्न होनेवाले १००० बच्चों में से ३०० मज़दूर-बच्चे पैदा होते ही मर जाते हैं।

ब्रिटेन के 'माई-बाप' आई० सी० एस्० के इंतज़ाम में ऐसी बदइंतज़ामी का होना साफ़ ज़ाहिर करता है कि यह भूरी जाति हिंदोस्तानियों की रक्षा के लिये नहीं, अपितु अपने पेट भरने के लिये ही सदा सयत्न रहा करती है । इँगलिश-जाति को शर्म आनी चाहिए कि उसके राजत्व-काल में इस प्रकार की नारकीय दुरवस्था का जन्म हो, और वह दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ा करे ! उसे चाहिए कि वह शीघ्र ही लेबर-कमीशन द्वारा बनाए हुए उपायों को कार्य-रूप में परिणत करे। अन्यथा ट्रेड-यूनियनों, वर्कमेंस यूनियनों तथा अन्य मज़दूर-संघों के सहमत होने तथा उनमें रूसी साम्यवाद के सिद्धांतों के प्रचार पा जाने पर उसे सदा के लिये पछताने का कारण उपस्थित हो जायगा।

× × ×

१७. भारतीय नागरिक का अधिकार-पत्र

आधुनिक-प्रजा-तंत्रों के प्रत्येक नागरिक को कुछ वैयक्तिक अधिकार स्वभावतः प्राप्त हैं। वे उसके जन्म-सिद्ध अधिकार कहलाते हैं । वैध शासन-विधान के निर्माण करने से पहले ही इन अधिकारों की राष्ट्र को गारंटी करनी पड़ती है। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, रिपब्लिक ऑफ़् फ़्रांस तथा जर्मनी के संयुक्त-राष्ट्र के शासन-विधानों में नागरिक के वैयक्तिक अधिकारों के लिये यह गारंटी मौजूद है। इसकी अनुपस्थिति होने पर शासन-विधान अधूरा और सदोष कहलाता है।

इसी रीति को ध्यान में रखकर कांग्रेस ने भावी भारतीय राष्ट्र के नागरिकों के अधिकारों की अभी से घोषणा कर देना उचित समझा है। मौलिक अधिकार-समिति द्वारा पेश की हुई तथा कांग्रेस द्वारा स्वीकृत रिपोर्ट में उनका पूरा विवरण मौजूद है। यहाँ हम अपने पाठकों की जानकारी के लिये भारतीय नागरिक के अधिकार-पत्र का सारांश दे रहे हैं। भारतीय नागरिक को निम्न-लिखित मौलिक अधिकार प्राप्त होंगे, उन्हें नष्ट करने का राष्ट्र को या उसके किसी अधिकारी को हक़ न होगा —

१. भारत के प्रत्येक नागरिक को अपनी सम्मति प्रकट करने और सभाओं तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिये न्याय, नीति तथा अहिंसा का ध्यान रखते हुए एकत्रित होने की स्वतंत्रता रहेगी।

२. प्रत्येक नागरिक अपने-अपने विश्वास के अनुसार अपने धर्म तथा व्यापार-संबंधी कार्यों में उस हद तक स्वतंत्र होगा, जहाँ तक वह नैतिक सीमा का उल्लंघन न करे।

३. अल्पसंख्यक जातियों की संस्कृति, भाषा और लिपि की तथा विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों की रक्षा की जायगी।

४. न्याय की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को—चाहे वह किसी भी धर्म, जाति, सिद्धांत अथवा वर्ग का क्यों न हो—समान अधिकार प्राप्त रहेंगे।

५. भारत का कोई भी नागरिक अपने धर्म, जाति, सिद्धांत और वर्ग अथवा व्यवसाय के कारण किसी सार्वजनिक पद के लिये अयोग्य न ठहराया जा सकेगा।

६. भारत के समस्त नागरिकों को कुँओं, सड़कों, शिवालयों और सार्वजनिक आमोद-प्रमोद के स्थानों का समान रूप से उपयोग करने का अधिकार रहेगा।

७. देश के प्रत्येक नागरिक को कतिपय प्रतिबंधों के अनुसार अस्त्र-शस्त्र रखने की स्वतंत्रता रहेगी।

८. देश के किसी भी नागरिक की स्वतंत्रता का अपहरण न किया जायगा, और न उसकी संपत्ति का ही।

९. नागरिकों के धर्मों के संबंध में राष्ट्र की नीति तटस्थ होगी।

१०. प्रत्येक बालिग़ नागरिक को वोट देने का अधिकार रहेगा।

११. राज्य की ओर से निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य रूप से जारी की जायगी।

१२. स्वतंत्र भारत के किसी भी नागरिक को राज्य की ओर से उपाधि प्रदान नहीं की जायगी।

१३. स्वतंत्र भारत के शासन-काल में प्राण-दंड की सज़ा उठा दी जायगी, और किसी को फाँसी की सज़ा नहीं दी जायगी।

१४. स्वतंत्र भारत के प्रत्येक नागरिक को भारत के किसी भी प्रदेश में बसने, व्यापार करने और संपत्ति ख़रीदने का समानाधिकार रहेगा, और सब स्थानों में उसकी रक्षा का ध्यान रक्खा जायगा।

× × ×

१८. भारत पर फ़ौजी भार

मि० वेजउडवेन ने वार-ऑफ़िस और इंडिया-ऑफ़िस के बीच फ़ौजी ख़र्च पर विचार करने के लिये कुछ दिन पूर्व एक स्पेशल ट्रिब्युनल की स्थापना करने की घोषणा की थी। सन् १८६१ में एक ब्रिटिश फ़ौज भारत को भेजी गई थी, और इसका ख़र्च इंडिया-ऑफ़िस से माँगा गया था। इंडिया-ऑफ़िस के इनकार करने पर दोनो ऑफ़िसों में तनातनी हो गई, और ख़र्च घटाने की चर्चा चली थी। फिर सन् १८७८ के फ़रवरी-मास में भारत-सरकार ने यह घोषित किया कि फ़ौजी टैक्स भारत पर उसी के इच्छानुसार लगाया जाना चाहिए, ताकि उसे सरकार की उदारता में संदेह न हो। इसी आधार पर जहाँ ख़र्च की माँग १० पौंड थी, वहाँ ७॥ ही चुकाया गया, और शेष देने से इनकार कर दिया गया। इसके बाद स्टेट-सेक्रेटरी ने यह बात कही थी कि भारत के ख़र्चे से साम्राज्य जिस योरपियन रेजिमेंट को रखता है, वह अपने साम्राज्य की रक्षा के लिये है, न कि भारत-हित के लिये।

भारत में सन् १९१३-१४ में १,३८,००० और १९२० में १,४१,००० अँगरेज़ सिपाही थे। परंतु भारत पर जो टैक्स लगाया गया, उसे ११ पौंड ८ शि० से १९ पौंड १३ शि० तक बढ़ा दिया गया। इससे यह स्पष्ट है कि इंडिया-ऑफ़िस की अवहेलना करते हुए भारत पर मनमाना फ़ौजी ख़र्च लादा जा रहा है, और यह साम्राज्य की इच्छा ही से है। सन् १८७२ में इँगलैंड ने लिखा था कि किसी भी ख़र्च के लिये भारत के ऊपर निश्चित कर नहीं लगाए जा सकते, क्योंकि साम्राज्य की रक्षा के लिये उसे किसी-न-किसी उपाय से प्राप्त करना पड़ेगा। भारत की फ़ौज से बराबर काम लिया जाता है। द्वितीय अफ़ग़ान युद्ध में १९ करोड़ रुपए ख़र्च हुए थे, और गत योरपीय महायुद्ध में १३७ करोड़ रुपया भारत के नाम लिखा गया था। इससे यह स्पष्ट है कि बाहरी फ़ौजी ख़र्च बहुत ही अधिक और अनुचित है, जो भारत को देना पड़ता है। फिर इससे भारत को कुछ लाभ भी नहीं। शार्ट-सर्विस-पद्धति का समस्त ख़र्च साम्राज्य को अपने ऊपर लेना चाहिए, क्योंकि वह तो इँगलैंड की ज़रूरत के अनुसार क़ायम हुई थी। सन् १८५७ में भारतीय फ़ौज अँगरेज़ी फ़ौज से पँचगुनी थी, और अब ढाई गुनी रह गई है। इँगलैंड से फ़ौज आना और ले जाना कम ख़र्चीला नहीं है। पर यदि इँगलैंड अपनी आवश्यकतानुसार ऐसा करता भी है, तो उसका व्यय उसे ही उठाना चाहिए। लेकिन देना पड़ता है भारत को। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस द्विट्यु-नल ने इस प्रश्न पर विचार ही नहीं किया कि भारत में अँगरेज़ी फ़ौज कितनी है। हम इसका कोई कारण नहीं देखते कि इस समय भारत के हित की दृष्टि से और कौन-से ऐसे भारी कारण हैं, जिनके कारण बराबर ख़र्चीली पद्धति से ब्रिटिश फ़ौज रक्खी गई है।

क्या कोई भी बुद्धिमान् इस बात को न्याय की बात न कहेगा, जब हम यह चाहते हैं कि योरपियनों की शिक्षा के लिये हमें एक पाई भी ख़र्च न करनी चाहिए। हम यह भी चाहते हैं कि भारत के बाहर के ख़र्च का बोझ हम पर न लादा जाय, और न इँगलैंड भारत को अपनी साम्राज्य-लिप्सा-पूर्ति के लिये अपना फ़ौजी गोदाम बनावे।

× × ×

१९. चित्र-परिचय

दमयंती—तब दमयंती कुमारी ही थी। उसके वर की खोज के साथ उसके रूप की ख्याति देश-देशांतरों में फैल रही थी। एक दिन वह अपने उपवन में विहार कर रही थी, उसने सरोवर की कमल-पंक्ति में अनेक हंसों को क्रीड़ा करते पाया। जब वह उनके निकट गई, तो सब हंस डरकर भाग गए; परंतु एक निडर होकर वहीं पर खड़ा रहा। दमयंती उसकी ओर आकृष्ट हुई। हंस राजा नल का भेजा हुआ था। वह हंस के समीप बैठ गई, और मंत्र-मुग्ध होकर प्रणय के प्रथम संदेश को सुनने लगी। यही इस चित्र का भाव है। सुप्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू ने इसका अंकन किया है।

द्विवेदीजी की दो पुस्तकें

अद्भुत आलाप

(द्वितीयावृत्ति)

विचित्र कौतूहल-पूर्ण निबंध, जिन्हें शुरू करने पर विना समाप्त किए रहा नहीं जाता । महारथी की लेखन-शैली का कहना ही क्या ! यह पुस्तक लखनऊ-विश्वविद्यालय में बी० ए० में और सी० पी० में मैट्रिक में पढ़ाई जाती है ।




वेणी-संहार

(द्वितीयावृत्ति)

महाभारत के सुप्रसिद्ध कथानक का आख्या-यिका-रूप में वर्णन । शिक्षा-विभाग से इनाम और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत । मूल्य ॥=), सजिल्द ॥|=)

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

पूर्ण-संग्रह

मूल्य १।।।)
सजिल्द २)

श्रीमान् राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की कमनीय कविताओं का संग्रह। पुस्तक के आरंभ में कवि की आलोचनात्मक जीवनी भी दी गई है। हिंदी-काव्य-प्रेमियों के लिये बड़े उपयोग की चीज़। पूर्णजी के सुंदर चित्र के साथ। मूल्य १।।।), सजिल्द २)



पराग



पं० रूपनारायण पांडेय 'कविरत्न' की चुनी हुई कविताओं का संग्रह पढ़ने ही योग्य है। पांडेयजी और पं० दुलारेलालजी के चित्र-सहित। पृष्ठ-संख्या १४४। मूल्य ।।), सजिल्द १)

अभिनयो-पयोगी नाटक

कीचक

लेखक

पं० भगवन्नारायण भार्गव बी० ए०, एक्स-एम्० एल्० सी०

पांडवों के अज्ञात-वास का सुमनोहर नाटक। मूल्य १।), सजिल्द १।।।)

अचलायतन

अनुवादक

पं० रूपनारायण पांडेय

卐 卐 卐

हिंदू-धर्म की छुआछूत और आडंबर की कट्टरता पर प्रकाश डालनेवाला रवि बाबू का प्रसिद्ध नाटक।

मूल्य ।।), सजिल्द १)

वीर भारत

वीर-रस-प्रधान नाटक

लेखक, पं० भवानीदत्त जोशी बी० ए०, एल्-एल्० बी०। अभिनया-नुकूल मनोरंजक नाटक।

मूल्य ।।।), सजिल्द १)

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

कुछ कहानियों के संग्रह



प्रेम-प्रसून

(द्वितीयावृत्ति)

सिद्ध-हस्त सुलेखक

श्रीयुत प्रेमचंद

की

स्वाभाविकता-पूर्ण सरस चुनी हुई उत्तमोत्तम कहानियों का संग्रह । मूल्य १=)

सजिल्द १॥=)

मंजरी

(द्वितीयावृत्ति)

कई लब्ध-प्रतिष्ठ गल्प-लेखकों की चमत्कार-पूर्ण रचनाओं का काव्यमय संग्रह । अनेक सुंदर, रंगीन और सादे चित्रों से सुशोभित ।

मूल्य १।), सजिल्द १॥।)



चित्रशाला (दो भाग)

(द्वितीयावृत्ति)

पं० विश्वंभरनाथ कौशिकजी की ललित कहानियों का संग्रह । पृष्ठ-संख्या ४००; मूल्य २।), सजिल्द २॥।)

दूसरा भाग मूल्य १), सजिल्द १॥)

तूलिका

श्रीयुत विनोदशंकर व्यास की १८ कहानियों का संग्रह ।

पृष्ठ-संख्या १७६; सचित्र

मूल्य १।), सजिल्द १॥।)

संचालक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

एशिया में प्रभात



योगिराज तपस्वी अरविंद घोष के सुहृद और फ़्रांस के अद्भुत त्यागी विद्वान् श्रीमान् पॉल रिचर्ड की Dawn over Asia का अतीव भावमय सुंदर अनुवाद। पुस्तक अतीव सुंदरता से छपी है।

मूल्य ॥)

सजिल्द १)



निबंध-निचय

लेखक, हास्यरसावतार पं० जगन्नाथ-प्रसादजी चतुर्वेदी

आपकी लेखनी का एक-एक वाक्य हास्य-रस से रंजित और विनोद से विकसित रहता है। पुस्तक में आपके लेखों और भाषणों का अपूर्व संग्रह है।

मूल्य १।)

सजिल्द १॥।)

संचालक

गंगा-पुस्तकमाला-

कार्यालय

लखनऊ

प्रभु-चरित्र



सुख-सागर और प्रेम-सागर की तरह बोलचाल की भाषा में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजी का चरित्र-ग्रंथ। गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरित्र-मानस के आधार पर लिखित। बालक-बालिकाएँ, पुरुष-स्त्री सबके पढ़ने योग्य। पृष्ठ-संख्या ४३६ ;

मूल्य ॥।)

सजिल्द १)



उद्यान

(द्वितीय संस्करण)

लेखक

श्रीयुत शंकरराव जोशी,

एग्रीकल्चर-ऑफ़िसर

इस पुस्तक से साधारण मनुष्य भी, विना किसी माली की सहायता के, बाग़बानी के सब काम कर सकता है। अपने विषय की हिंदी में सर्वांग-पूर्ण पुस्तक है।

१४ चित्रों-सहित। मूल्य १=)

सजिल्द १।।=)

शहर और ग्राम दोनो के लिये



कृषिमित्र

लेखक

पं० गंगाप्रसाद पांडेय एल्० ए-जी०

सुपरिंटेंडेंट ऑफ़् एग्रीकल्चर

इस पुस्तक में सुंदर, सरल और सुबोध भाषा में कृषि-विज्ञान के नियमों को समझाया गया है। इसकी बातें प्रत्येक किसान और उनके बालकों को कंठस्थ होनी चाहिए।

मूल्य ।-), सजिल्द ।।)

संचालक

गंगा-पुस्तकमाला-

कार्यालय

लखनऊ



हठयोग

(द्वितीयावृत्ति)

बाबा रामचारकदासजी - कृत पुस्तक का अनुवाद । इसमें स्वामीजी के बनाए हुए ऐसे सरल अभ्यास हैं, जिनसे आपकी शारीरिक उन्नति और मनःशक्ति-प्रबलता बढ़ेगी । मूल्य १।=), सजिल्द १॥=)



भिखारी से भगवान्

(द्वितीयावृत्ति)



सुप्रसिद्ध लेखक जेम्स ऐलेन की (From Poverty to Power) का हिंदी-अनुवाद । स्वास्थ्य, सफलता, स्वार्थ तथा सत्य, शक्ति और परमानंद का रहस्य, आध्यात्मिक शक्ति का उपार्जन आदि-आदि विषयों का विशद वर्णन है । मूल्य १), स० १॥)



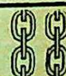
सुकवि-संकीर्तन

लेखक—साहित्य-महारथी

पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी



इसे पढ़ने में एक उपदेशप्रद उपन्यास का-सा आनंद आता है । कहीं साहित्यिक लालित्य है, कहीं अगाध पांडित्य है, कहीं काव्य की कमनीय छटा है । बिलकुल नायाब चीज़ है । इसमें दस चित्र भी हैं । सुंदर, सरल, सरस और प्रौढ़ गद्य का चमत्कार है । मूल्य १।), सजिल्द १॥)



संचालक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

स्वर्ण संयोग

सचित्र

रामायण

(तुलसी-कृत)

हिंदी-साहित्य-भांडार में रामायण-सी अद्भुत पुस्तक का सुंदर रूप में न होना खटकता है। किसी की टीका बुरी है, तो किसी में क्षेपकों की भरमार है। छपाई और काग़ज़ तो बहुत ही रद्दी होता है। चित्र होते ही नहीं। होते भी हैं, तो बहुत रद्दी। इसकी पूर्ति के लिये हमने रामायण का शुद्ध अनुवाद हिंदी के सुयोग्य विद्वानों द्वारा कराया है।

यह रामायण २० खंडों में प्रकाशित होगी। प्रत्येक खंड में १०० पृष्ठ और ६-७ रंगीन चित्र रहेंगे। साइज़ सुधा का-सा भव्य होगा। मूल्य प्रति खंड १॥) होगा, पर अभी से ग्राहक बननेवाले से १) लिया जायगा, और ५) भेजकर प्रथम ५ खंड के लिये स्थायी ग्राहक बननेवालों से केवल वही ५) अर्थात् १) प्रति खंड लिया जायगा।

कृपा कर ग्राहक बनें, और अपने इष्ट-मित्रों से भी अनुरोध करें। इस सहायता से हमारी एक योजना पूर्ण हो जायगी, और आपके हाथों में एक अनुपम ग्रंथ-रत्न आ जायगा।

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय (रामायण-विभाग)

२३-२५, लाटूशरोड, लखनऊ

सचित्र

स्व र्ण सं यो ग

कलेंडर छपाइए !

व्यापारियों के लिये अपूर्व लाभ !!

यह कदाचित् प्रत्येक दूकानदार को मालूम होगा कि जैसे भोजन आत्मा तथा जीवन के लिये आवश्यक है, वैसे ही विज्ञापन व्यापार के लिये। और, सब तरह की विज्ञापनबाज़ियों में कलेंडर सर्वोत्तम साधन है। परंतु इसकी सुविधा प्रत्येक व्यापारी के पास होना असंभव है। इसी कठिनता को दूर करने के लिये हमने : : : : : : :

भारी इंतज़ाम

किया है। कलेंडर छापने की नई मशीन भी हमने मँगा ली है, और आदमी भी, जो इस कला के विशेषज्ञ हैं, बाहर से बुलाकर रक्खे हैं। रेट भी सर्वसाधारण के लिये बहुत कम हैं, जैसा निम्न-लिखित दरों से मालूम हो जायगा—

संख्या	मूल्य	
१०००	७५)	बीच में एक सुंदर तिरंगी तस्वीर और नीचे तारीख़ों का पैड भी। १०×१५ साइज़ के आर्ट पेपर।
५००	४५)	
२५०	३०)	

कृपा कर एक बार छपवाकर देखें कि आपको कितना लाभ होता है। हमें विश्वास है, आपका व्यापार दूना हो जायगा, और आप हमारे काम से संतुष्ट होंगे।

मैनेजर गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस (कलेंडर-विभाग)

२३-२५, लाटूश रोड, लखनऊ

श्रीदुलारेलाल भार्गव द्वारा [illegible] से, लखनऊ में मुद्रित और प्रकाशित

वर्ष ५ ; खंड १

पौष, ३०९ तु० सं०
(JANUARY, 1932)

संख्या ६ ; पूर्ण संख्या ५४



साधारण संस्करण	
वार्षिक मूल्य	५)
एक प्रति का	॥)
विदेश में	६)

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(संपादक गंगा-पुस्तकमाला)

राजसंस्करण	
वार्षिक मूल्य	१०)
एक प्रति का	१)
विदेश में	१२)

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

सुधा के नए पुराने ग्राहकों को अर्द्ध मूल्य में।



महात्मा गांधी लंदन क्यों गए ?

गोल-सभा

में सम्मिलित होने के लिये

तो क्या

आप जानते हैं कि यह गोल-सभा (राउंड टेबिल-कानफ्रेंस) क्या है ? क्या आप जानना चाहते हैं कि सुदूर लंदन में देशी और विलायती क़ानूनी खोपड़ियों ने किस मज़े की टक्करें ली हैं ? विख्यात सेंट जेम्स-पैलेस में इँगलैंड के पौराणिक राजा आर्थर की सड़ी-गली गोलमेज़ किस ठाट के मुलम्मे से सजाई गई, और उस पर बैठकर राजनीति के दिग्गजों ने किस बारीकी से चोंच चलाई है ? इस गोलमेज़ पर भारत की तक़दीर के क्या-क्या फ़ैसले हुए हैं, तथा नंगे विद्रोही फ़क़ीर को मनाने के लिये संसार-विजयी, प्रतापी ग्रेट ब्रिटेन ने क्या नफ़ीस नाच नाचा है ? महात्मा गांधी ने विलायत में क्या किया, यह समझने के लिये पहले इस पुस्तक को पढ़ डालिए, और फिर आपकी समझ में सारे विलायत के समाचार आ जायँगे।

तब

अपने लिये एक प्रति आज ही मँगा लीजिए। हाल ही में यह पुस्तक छपी है, और देर करने पर फिर न मिलेगी। इस पुस्तक में गोल-सभा क्या है, और उसमें राजनीति-मर्मज्ञ विलायती और देशी प्रतिनिधियों ने किस प्रकार बहस कर क्या कहा, यह सब और उसकी अब तक की कुल कार्यवाही अत्यंत मनोहर भाषा में दी गई है। लेखक प्रोफ़ेसर चतुरसेनजी शास्त्री का बदनाम नाम देखिए, और चारो ओर की बहती हुई हवा का रुख़ देखिए। बस, इतने ही में सब कुछ समझ जाइए, और आज ही कार्ड लिखिए। मूल्य १।।), सजिल्द २) सुधा के नए-पुराने ग्राहकों को अर्द्ध मूल्य में। लाइब्रेरियों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को ३/४ मूल्य में।

संचालक गंगा-बुकडिपो लाटूश रोड, लखनऊ

लेख-सूची

चित्र-सूची

हस्ब ऑर्डर ५ रूल २० ज़ाब्ता दीवानी।

गोशवारा

बइजलास जनाब सब जज साहब बहादुर परतापगढ़।

नंबर ८ सन् १९३० ई०

१—लाला रामगोपाल वल्द भगवानसहाय
२—दुर्गाप्रसाद नाबालिग़ पिसर मुंशी रामकुमार } साकिनान मकंदरोगंज। मुद्दइयान

बनाम

राजा जगतपालबहादुरसिंह वग़ैरह मुद्दाअलेहुम

दावा क़तई बयानात डिगरी।

इत्तिलानामा बनाम १—राजा जगतपालबहादुरसिंह वल्द बाबू बेनीमाधोबख़्शसिंह साकिन कैपोवा परगना रामपूर तहसील कुंडा ज़िला परतापगढ़ व २—बाबू गुरुचरणप्रसाद व ३—बाबू जगन्नाथप्रसाद पिसरान बाबू शंकरसहाय व ४—बाबू राजइंदरप्रसादसिंह व ५—बाबू नरबदाप्रसाद पिसरान बाबू गुरुचरणप्रसाद व ६—बाबू श्रीकृष्णप्रसाद व ७—बाबू शंभूप्रसाद नाबालिग़ान पिसरान बाबू जगन्नाथ अक़वाम खत्री साकिनान चंदर कपूर की गली शहर बनारस बवलायत वकील अदालत।

मुक़द्दमा मुंदरजा उनवान में मुद्दइयान ने दरख़्वास्त क़तई डिगरी बयनात की अदालत हाज़ा में गुज़रानी है लिहाज़ा तुमको इत्तिला दी जाती है कि बतारीख़ १६ जनवरी सन् १९३२ हाज़िर होकर जो कुछ उज़्र निस्बत बयानात व कतई डिगरी में रखते हो पेश करो। ७ दिसंबर सन् १९३१ ई०।

जज

हस्ब ऑर्डर ५ रूल २० ज़ाब्ता दीवानी

गोशवारा

नोटिस नमूना आम।

नंबरी बअदालत जनाब सब जज साहब बहादुर कुंडा।

मुक़द्दमा दीवानी नंबर ८ सन् १९३० ई०।

१—लाला रामगोपाल वल्द भगवानसहाय
२—दुर्गाप्रसाद नाबालिग़ पिसर मुंशी रामकुमार } साकिनान मकंदरगंज मुद्दइयान

बनाम

राजा जगतपालबहादुरसिंह वग़ैरह मुद्दाअलेहुम

दावा क़तई बयानात डिगरी।

इत्तिलानामा मावक़ायान मुद्दाअलेहुम

बनाम १—बाबू गुरुचरणप्रसाद व २—बाबू जगन्नाथसहाय पिसरान बाबू शंकरसहाय ३—बाबू राजइंदरप्रसाद व ४—बाबू नरबदाप्रसाद नाबालिग़ान पिसरान बाबू गुरुचरणप्रसाद ५—बाबू श्रीकृष्णप्रसाद व ६—बाबू शंभूप्रसाद नाबालिग़ान पिसरान बाबू जगन्नाथप्रसाद साकिनान चंदर कपूर की गली शहर बनारस बवलायत वकील अदालत।

हरगाह मुद्दइयान ने अदालत हाज़ा में दरख़्वास्त क़तई बयानात डिगरी बमुक़द्दमा ८ सन् १९३० ई० इस बयान से गुज़रानी है कि डिगरी मज़कूर उसकी हक़ में फ़ैसल हो गई है लिहाज़ा तुमको इत्तिला दी जाती है कि तुम बतारीख़ १६ जनवरी सन् १९३२ ई० इस अदालत में हाज़िर होकर वजह ज़ाहिर करो कि वारिस मृतवफ्फी क्यों न क़रार किए जाओ।

आज बतारीख़ ७ माह दिसंबर सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

आर्डर ५ रूल २० ज़ाब्ता दीवानी

बअदालत जनाब बाबू भगौतीपरसाद साहब बहादुर सब जज मुक़ाम व ज़िला परतापगढ़।

मुक़द्दमा नंबर ८ नंबरी सन् १९३० ई०

लाला रामगोपाल — मुद्दई

बनाम

राजा जगतपालबहादुरसिंह वग़ैरह — मुद्दाअलेहुम

बनाम १—बाबू राजइंदरप्रसाद, २—बाबू नरवदाप्रसाद } नाबालिग़ान ववलायत बाबू गुरुचरण, प्रसाद पिसरान गुरुचरणप्रसाद } साकिनान चंदर कपूर की गली शहर बनारस।

३—बाबू श्रीकृष्णप्रसाद, ४—बाबू शंभुप्रसाद } नाबालिग़ान पिसरान जगन्नाथप्रसाद ववलायत बाबू जगन्नाथप्रसाद } नाबालिग़ान

५—बाबू गुरुचरणप्रसाद, ६—बाबू जगन्नाथप्रसाद } पिसरान बाबू शंकरसहाय साकिनान चंदर कपूर की गली शहर बनारस } वली नाबालिग़ान मज़कूर

हरगाह मुक़द्दमा मुंदरजा उनवान में एक दरख़्वास्त गुज़रानी है कि मुद्दाअलेहुम नाबालिग़ान का एक वली दौरान मुक़द्दमा मुक़र्रर किया जावे लिहाज़ा तुम नाबालिग़ान को और तुम बाबू गुरुचरणप्रसाद व बाबू जगन्नाथप्रसाद को इसकी रू से इत्तिला दी जाती है कि अगर तामील इत्तिलानामा हाज़ा से मुअर्रख़ा १६ जनवरी सन् १९३२ ई० के अंदर एक दरख़्वास्त इस अदालत में निसबत तुम्हारे या तुम बाबू गुरुचरणप्रसाद व बाबू जगन्नाथप्रसाद नाबालिग़ान के किसी दोस्त के वली दौरान मुक़द्दमा मुक़र्रर किए जाने की न गुज़रानोगे तो अदालत किसी और शख़्स को नाबालिग़ मज़कूर का वली वास्ते मगराज़ मुक़द्दमा के मुक़र्रर करेगी।

आज बतारीख़ १२ दिसंबर सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से जारी किया गया।

जज

सम्मन बग़रज़ इनफिसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर २१५ सन् १९३१ ई०।

बअदालत जनाब मुंसिफ साहब बहादुर रामसनेहीघाट मुकाम बाराबंकी।

बद्रीप्रसाद उम्र तख़मीनन २५ साल वल्द भगौतीप्रसाद ब्राह्मण साकिन मौज़ा माँझा हरहवा मज़रा बाँस गाँव परगना दरियाबाद तहसील रामसनेहीघाट ज़िला बाराबंकी — मुद्दई

बनाम

लछमणप्रसादसिंह वग़ैरह — मुद्दाअलेहुम

१—लक्ष्मणप्रसादसिंह उम्र तख़मीनन २८ साल वल्द ठाकुर प्रसादसिंह साकिन मौज़ा माँझा हरहवा मज़रा बाँस गाँव } परगना दरियाबाद तहसील राम-

२—मुसम्मात भगवती उम्र तख़मीनन ४५ साल बेवा शीतलाबख़्श कौम ब्राह्मण साकिन मौज़ा बाँस गाँव } सनेहीघाट ज़िला बाराबंकी

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत दख़लयाबी अराज़ी वाक़े मौज़ा ववरा के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ६ माह जनवरी सन् १९३२ ई० बवक़्त १० बजे दिन को असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ा मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाब दावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेजात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा तुम्हारी ग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ १६ माह दिसंबर सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

तम्बीह—अगर बयानात तहरीरी की ज़रूरत हो तो लिखना चाहिए कि तुम को (या फ़लाँ फ़रीक़ को यानी जैसी के सूरत हो) हुक्म दिया जाता है कि बयान तहरीरी तारीख़ ४ माह जनवरी सन् १९३२ ई० तक गुज़रानो।

कार्रवाई हस्ब आर्डर ५—क़ायदा २० जाबता दीवानी।
नंबरी बअदालत जनाब मुंसिफ़ साहब बहादुर कुंडा मुक़ाम परतापगढ़।
सम्मन बगरज़ क़रारदाद उमूर तनक़ीह तलब।
मुक़द्दमा नंबरी ३०५ सन् १९३१ ई०
अदालत जनाब कुँवर रघुराज बहादुर साहब बहादुर मुंसिफ़ कुंडा मुक़ाम परतापगढ़।
जंगईखाँ वग़ैरह साकिनान मौज़ा दांदोपूर परगना व तहसील पट्टी ज़िला परतापगढ़। मुद्दयान

बनाम

गुलाबख़ाँ वग़ैरह साकिनान मौज़ा भभवार परगना व तहसील पट्टी ज़िला परतापगढ़ मुद्दाअलेहुम
बनाम १—गुलाबख़ाँ वल्द शहबाज़ख़ाँ।
२—सराजुलदीनख़ाँ वल्द गुलाबख़ाँ साकिनान मौज़ा भभवार परगना व तहसील पट्टी ज़िला परतापगढ़।

वाज़ेहहो कि मुद्दयान ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत दख़लयाबी मय हरजा के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १८ माह जनवरी १९३२ ई० बवक़्त १० बजे पर असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुकद्दमा के हाल से करार वाक़ई वाक़िफ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतअल्लिक़ा मुकद्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और तुमको हिदायत की जाती है कि जुमला दस्तावेज़ात को जिन पर तुम बताईद अपनी जवाबदिही के इस्तदलाल करना चाहते हो पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा तुम्हारी ग़ैर हाज़िरी में मस्मू और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ १८ माह दिसंबर सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से जारी किया गया।

जज

तंबीह अगर ब्यानात तहरीरी की ज़रूरत हो तो लिखना चाहिए कि तुमको (या फलां फरीक़ को यानी जैसी के सूरत हो) हुक्म दिया जाता है कि बयान तहरिरी बतारीख़ ८-माह जनवरी सन् १९३२ ई० तक गुज़राना।

बहुक्म जनाब बाबू बद्रीप्रसाद टंडन साहब बहादुर मुंसिफ़ तरबगंज मुकाम गोंडा।

नोटिस निस्बत दिखाने वजह के (नमूना समेत)

बअदालत दीवानी मुंसिफ़ी तरबगंज मुक़ाम गोंडा

मुक़द्दमा नंबर १४५ सन् १९२८ ई०

रामसरन वग़ैरा

बनाम

लालताप्रसाद वग़ैरा

बनाम साटो वल्द टुन्नी मुसलमान दरज़ी साकिन क़सबा करनैलगंज मुहल्ला बाबूगंज परगना गुआरिच ज़िला गोंडा।

हरगाह मुसम्मो मुद्दैयान ने दरख़्वास्त इस अदालत में गुज़रानी है कि डिगरी कराई कि जावे लिहाज़ा तुमको इत्तिला दी जाती है कि तुम असालतन या मार्फ़त किसी वकील के जो हालात मुक़द्दमे से बख़ूबी वाक़िफ़ है बवक्त १० बजे बतारीख़ २ माह जनवरी सन् ई० १९३२ इस अदालत में हाज़िर होकर दरख़्वास्त के ख़िलाफ़ वजह दिखाओ अगर ऐसा न करोगे तो दरख़्वास्त मज़कूर तुम्हारी ग़ैर हाज़िरी में समाअत की जावेगी।

आज बतारीख़ ३ माह दिसंबर सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

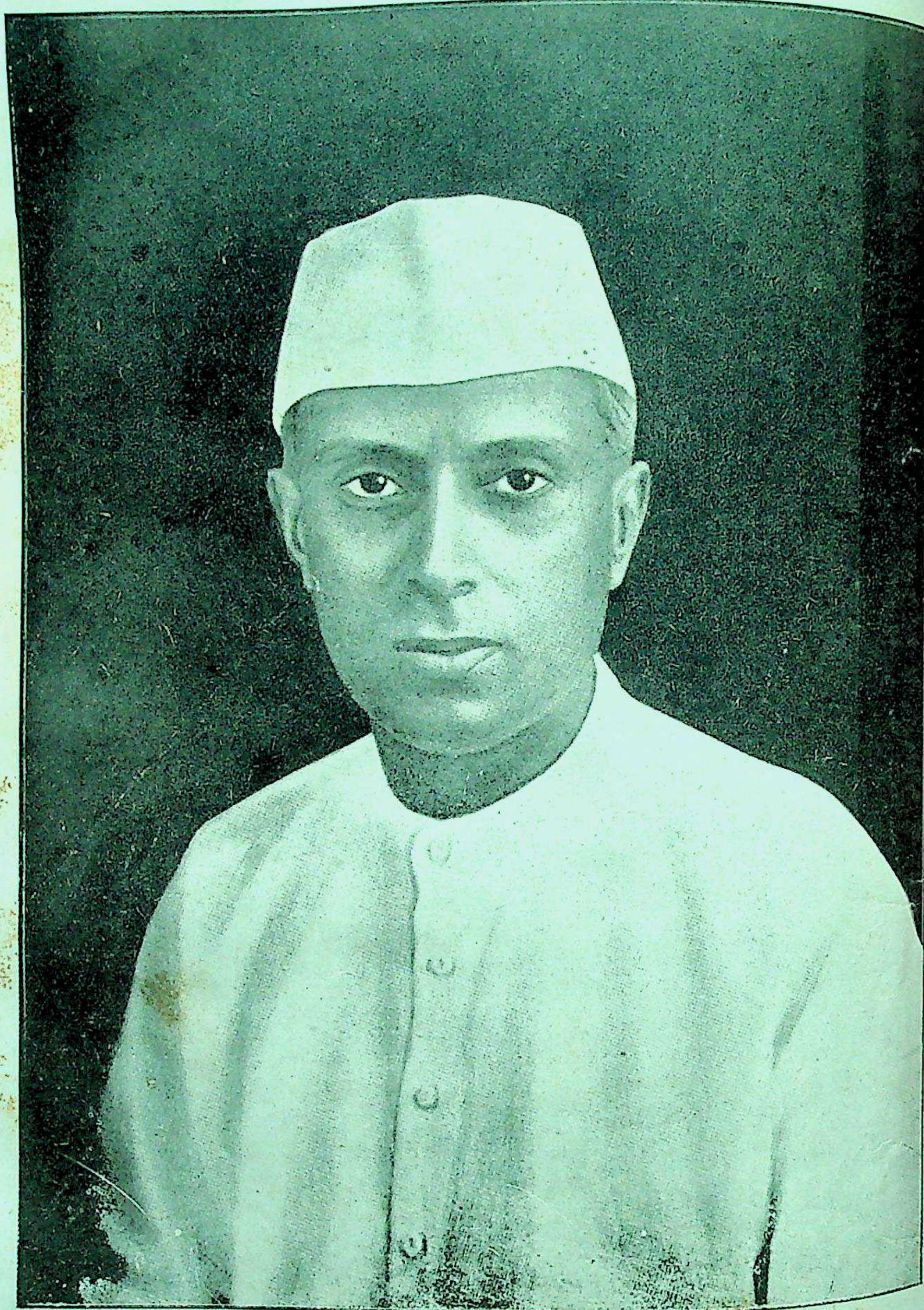
जज



धनुष-भंग

लेत, चढ़ावत, खैंचत गाढ़े ; काहु न लखा लोग सब ठाढ़े ;
तेहि छन मध्य राम धनु तोरा ; भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा ।
(गो० तुलसीदास)

Ganga Fine Art Press, Lucknow.



पं० जवाहरलालजी नेहरू
[आप आजकल किसानों का दुख दूर करने में प्रयत्नशील हैं ।]

उत्कृष्ट पुस्तकों की आश्चर्य-जनक लूट ! !

! सिर्फ़ एक मास के लिये !

❋ फिर ऐसा अवसर न मिलेगा ❋

१ली जनवरी, १९३२ तक

'विशाल-भारत' के नवीन ग्राहक बननेवालों को

निम्न-लिखित सभी या कोई पुस्तकें

सिर्फ़ पौने मूल्य में दी जायँगी !

"प्रताप" की राय है कि—

"मासिक पत्रों में 'विशाल-भारत' ही एक ऐसा पत्र है, जिसके विचारों की गंभीरता, लेखों का चुनाव और हर तरह की उपयोगी सामग्री संकलित करने की परिपाटी बहुत ही उत्तम है।...हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में 'विशाल-भारत' अपना सानी नहीं रखता, वह सर्वोत्कृष्ट पत्र है...।"—'प्रताप', कानपूर

वार्षिक मूल्य सिर्फ़ ६) रुपए।

बुकसेलरों को भी ऐसी सुविधा नहीं मिलती

उपन्यास—	"कुमुदिनी"—रवींद्रनाथ ठाकुर ; अनुवादक, धन्यकुमार जैन,	मूल्य ३)	ग्राहकों के लिये २।)
	"प्रेम-प्रपंच"—तुर्गनेव ; अनुवादक, जगन्नाथप्रसाद मिश्र	,, १।)	,, ॥=)
कहानियाँ—	"गल्पगुच्छ"—रवींद्रनाथ ठाकुर ; अनुवादक, धन्यकुमार जैन	,, १॥)	,, १=)
	"षोडशी"— ,, ,,	,, १॥)	,, (छप रही है)
सचित्र हास्य—	"लंबकर्ण"—परशुराम ; अनुवादक, धन्यकुमार जैन	,, १)	,, ॥=)
	"भेड़ियाधसान"— ,, ,,	,, १॥)	,, १=)
क्रांतिकारी—	"रूस की चिट्ठी"—रवींद्रनाथ ठाकुर ; अनुवादक, धन्यकुमार जैन	,, १॥)	,, १=)
	"क्रांतिकारी कार्लमार्क्स"—लाला हरदयाल	,, ॥)	,, (छप रही है)

प० १—'विशाल-भारत' पुस्तकालय, १२०-२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता



चिड़चिड़े, दुर्बल और अस्वस्थ बच्चे

बालसुधा

पीने से

स्वस्थ, सुंदर और आनंदी बनते हैं। दाँत निकलने के समय की बीमारियों से उनकी रक्षा करता है। मूल्य ॥।) डा० ख० ॥=), नमूना मुफ़्त।

हिंदुस्तान में सबसे पुराना

सुख-संचारक कंपनी

(केमिकल और फ़रमास्यूटिकल वर्क्स) मथुरा

(सब दवा बेचनेवालों के पास मिलेगी)

पान लगाने का मसाला

हमारे इस मसाले को पान में रखकर खाइए। चूना, कत्था, सुपारी रखने की ज़रूरत नहीं है। मुँह में पान रखते ही सुगंध से मुँह भर जाता है, मुँह का ज़ायक़ा बहुत ही अच्छा हो जाता है, मुँह की बदबू बिलकुल मिट जाती है। भोजन करने के बाद आप-से-आप पान खाने की तबियत होने लगती है। मुख में इतनी रचना कर देता है कि भीतर मुँह और ओठ बहुत ही ख़ूबसूरत लाल हो जाता है। मामूली लगे पान में कभी चूना ज़्यादा हो गया, तो मुँह फाड़ देता है, कत्था ज़्यादा हो गया, तो पान बदज़ायक़ा हो जाता है। मेरे मसाले में कमी और ज़्यादती कभी नहीं होती, इससे हमेशा एकसा ज़ायक़ा रहता है। मामूली पान से दाँतों की जड़ें कट जाती हैं, दाँतों में कालापन आ जाता है। दाँत जल्दी हिलने और गिरने लगते हैं। इस समय दाँतों का रोग (पाइरिया) यहाँ बहुत बढ़ रहा है, इसका कारण है चूना, कत्था, सुपारी की कमी-ज़्यादती। पान खानेवाले सज्जन इस बात को स्वयं विचारकर देखें कि उनके दाँत और मसूढ़ों में तकलीफ़ कितनी है। हमारा मसाला दाँतों की हर तरह की तकलीफ़ कम कर देता है। दाँतों की जड़ों से मवाद आना, ख़ून आना, दाँत हिलना, दाँत या डाढ़ों पर मैल जमना यह सब बंद हो जाता है, चाहे किसी पान में रखिए, सबका ज़ायक़ा अच्छा ही बना देगा। देशी, बंगाली, मद्रासी या कपूरी पान में रखकर खाइए, सब पान आपको स्वादिष्ट लगेगा। ज़ायक़ा इतना अच्छा आएगा कि थूकने की भी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। इससे दीवालें, कोना, आँगन थूकने से बच जायँगे। यदि स्वादिष्ट पान के साथ खाइए, तब तो कहना ही क्या है। सुवर्ण में सुगंधि का संयोग। सफ़र में जाइए कितना बोझ कम हो जाता है। न पानदानी, न चुनौटी की ज़रूरत, न कत्थादानी, न सुपारी की, न सरौता की। सिर्फ़ एक डिब्बी मसाले की ले लो, जहाँ पान मिला, चुटकी-भर मसाला रखकर खा लो, तो बरातों में या दोस्तों के जमाव में सुपारी थैली के भरोसे सैकड़ों पान जल्दी नहीं लग सकते हैं। मेरे मसाले से मिनटों में सैकड़ों पान तैयार हो जाते हैं। मूल्य १२ तोला का डिब्बा जिसमें ३०० पान लगते हैं। क़ी० १), तीन डिब्बा २॥) रु०। दर्जन ८)

पता—शक्ति-सुधा कार्यालय (१०२), कुम्हार [illegible] गली, बंबई ४

श्रेष्ठ लेखकों के श्रेष्ठ उपन्यास और श्रेष्ठ गल्प-गुच्छ

अतिशय मनोरंजक, उत्कंठा-वर्द्धक और ऊँची भावनाओं को जागरित करनेवाले

आँख की किरकिरी	(रवींद्रनाथ)	२॥)	घृणामयी	(पं० इलाचंद्र जोशी)	१।)
चिरकुमार-सभा	,,	१।)	प्रतिभा	(अविनाशचंद्र)	१।)
रवींद्र कथा-कुंज	,,	१)	शांति-कुटीर	,,	१=)
परख	(जैनेंद्रकुमार)	१)	छत्रसाल	(ऐतिहासिक)	२।)
वातायन	,,	१॥)	मानव-हृदय की कथाएँ	(मोपासाँ)	१)
अन्नपूर्णा का मंदिर	(निरुपमा)	१)	पुष्पलता	(सुदर्शन)	१)
विधाता का विधान	,,	२॥)	चंद्रकला	(चंद्रगुप्त विद्यालंकार)	॥=)
चंद्रनाथ	(शरद् बाबू)	॥)	वीरों की कहानियाँ	(कुं० कन्हैयाजू)	।=)
सुखदास	(प्रेमचंदजी)	॥=)	फूलों का गुच्छा	(प्रथम भाग)	१)
नवनिधि	,,	॥)	,,	(द्वितीय भाग)	१)

स्थायी ग्राहकों को

उक्त सब ग्रंथ पौने मूल्य में भेजे जाते हैं। आगे लिखी हुई घटाए हुए मूल्य की पुस्तकों पर भी पौना मूल्य लिया जाता है।

क़ीमत कम कर दी

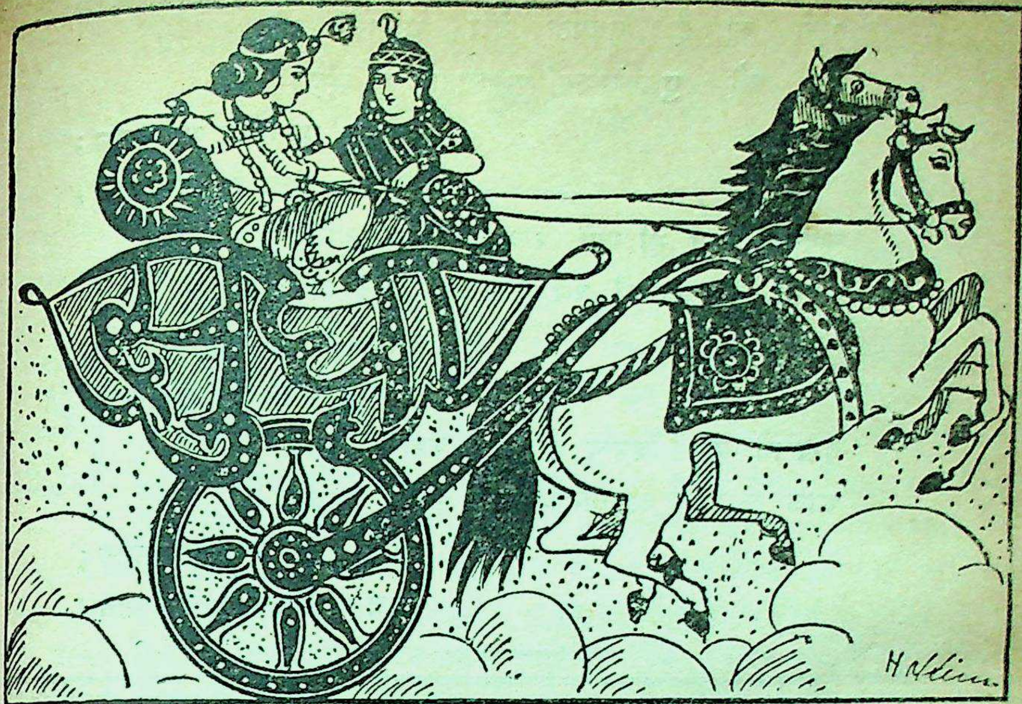
अधिक प्रचार के लिये निम्न-लिखित पुस्तकों का दाम घटा दिया है।

स्वाधीनता	(मिल की 'लिबर्टी' का अनुवाद)	मूल्य २) का १॥)
जॉन स्टुअर्ट मिल	(जीवनी)	,, ॥=) का ॥)
अरबी-काव्य-दर्शन	(मौलवी महेशप्रसादजी)	,, १।) का १)
साहित्य-मीमांसा	(काव्यालोचना)	,, १।=) का १=)
कालिदास और भवभूति	(द्विजेंद्रलाल राय)	,, १॥) का १।)
सरल मनोविज्ञान	(बहुत ही सरल पद्धति)	,, १॥) का १)
ज्ञान और कर्म, सजिल्द	(सर गुरुदास बनर्जी)	,, ३॥) का ३)
संतान-कल्पद्रुम	(रसराज वैद्य रामेश्वरानंदजी)	,, १) का ॥)

नोट—हमारे यहाँ अन्य सब प्रकाशकों के ग्रंथ भी मिलते हैं। एक कार्ड लिखकर सूचीपत्र मँगा लीजिए।

संचालक हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय,

हीराबाग़, पो० गिरगाँव, बंबई



"कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू।"

(गो० तुलसीदास)

वर्ष ५ खंड १ | पौष, ३०९ तुलसी-संवत् (१९८८ वि०)— जनवरी, १९३२ | संख्या ६ पूर्ण संख्या ५४

वियोगिनी उर्मिला

(साकेत से)

[श्रीयुत बाबू मैथिलीशरण गुप्त]

स्वजनि, रोता है मेरा गान ;
प्रिय तक नहीं पहुँच पाती है उसकी कोई तान।
झिलता नहीं समीर पर इस जी का जंजाल ;
झड़ पड़ते हैं शून्य में बिखर सभी स्वर-ताल।
विफल आलाप-विलाप समान !
स्वजनि, रोता है मेरा गान।

उड़ने को है तड़पता मेरा भावानंद ;
व्यर्थ उसे पुचकारकर फुसलाता है छंद।
दिलाकर पद-गौरव का ध्यान ;
स्वजनि, रोता है मेरा गान।

अपना पानी भी नहीं रखता अपनी बात ;
अपनी ही अँखियाँ उसे ढाल रही दिन-रात।
जना देते हैं सभी अजान ;
स्वजनि, रोता है मेरा गान।

दुख भी मुझसे विमुख हो करें न कहीं प्रयाण ;
आज उन्हीं में तो तनिक अटके हैं ये प्राण।
विरह में आ जा, तू ही मान ;
स्वजनि, रोता है मेरा गान।

उसकी प्रतिहिंसा

[श्रीयुत कृष्णानंद गुप्त]



कुछ वस्तुएँ होती हैं, जिनकी स्मृति मन में सदैव के लिये अपना घर कर लेती है। मोती ऐसी ही वस्तु था। उसे मैं जीवन में कभी भूल नहीं सकता। उसके विना मेरा घर सूना हो गया है, और उसे खोकर मेरे मुन्नी ने तो मानो सब कुछ खो दिया है। वह मुन्नी का सखा था, सेवक था, सहचर था, प्रहरी था, और सबसे बड़ी बात, वह उसका खिलौना था। मोती उसके पास हो, तो फिर उसे कुछ नहीं चाहिए। उस बालक की सारी कामनाएँ मानो एक मोती में ही केंद्रित थीं। उसके विना अब उसे कुछ नहीं सुहाता। हमेशा उसी के लिये रोया करता है। परंतु मोती ऐसा हठी है कि उस बच्चे की कातर वाणी सुनकर भी वह उस पर दया नहीं करता, दौड़कर तुरंत उसके समीप नहीं आता। बेचारे मुन्नी को मोती के इस अनहोने, अप्रत्याशित व्यवहार पर आश्चर्य तो क्या होगा। बार-बार बुलाकर भी जब वह उसे बुलाने में विफल-मनोरथ होता है, तब और भी ज़ोर से रो उठता है। उस समय वह मा की दी हुई मीठी-से-मीठी वस्तु का भी तिरस्कार करता है, और किसी प्रकार भी चुप नहीं होता।

मुझे जो दुःख है, सो मैं ही जानता हूँ। यह मुन्नी जब हुआ, तभी पिताजी उसे कहीं से लाए थे। मुन्नी के साथ ही वह खेला. और उसके साथ ही वह बड़ा हुआ। बहुत सुंदर था। जो देखता, वही उसे प्यार करता था। नेत्रों में असीम विश्वास, व्यवहार बहुत ही स्नेह-पूर्ण, प्रकृति का भारी चंचल, पर कुछ क्रोधी और हठी भी। यह दोष ही उसकी मृत्यु का कारण हुआ। बहुत दवा-दारू की, सब व्यर्थ। चोट बहुत गहरी थी। चट्टान काफ़ी ऊँचे से गिरी थी। मुझे तो यही आश्चर्य है कि उस चट्टान को खिसकाकर वह छत के किनारे ला कैसे सका। पर बंदर में एक तो वैसे ही बहुत ताक़त होती है, दूसरे प्रतिहिंसा उसके पीछे थी। जो न कर डालता, थोड़ा था। चट्टान मोती के सिर पर हो गिरी, जिसकी वजह से उसका सिर एक बार ही कुचल गया था। पड़ोस में वैद्य हैं। रसों के बल से अनेक रोगियों को उन्होंने मौत के मुँह से छीना है, पर मोती के मामले में वह कुछ नहीं कर सके। दही के लेप ने कुछ लाभ नहीं पहुँचाया। डॉक्टर भी आया था। उनके पास ब्रांडी ही ऐसी चीज़ थी, जो मोती की रक्षा कर सकती थी। रात-भर तो उसके नशे में मोती बेहोश पड़ा रहा। उससे लाभ हुआ, तो यही कि बेचारे की वेदना कम हो गई। सबेरे बड़े कष्ट में उसके प्राण निकले। उसकी मृत्यु-समय की यंत्रणा के स्मरण से। मुझे अब भी रोमांच हो आता है। जब उसका आख़ीर वक़्त आया, और वह बिलकुल निस्पंद और शिथिल हो गया, तब मैं मुन्नी को गोद में लेकर दूर हट गया। उसी समय वह एक बार फिर छटपटाया। यह मृत्यु से बचने का मानो अंतिम प्रयास था। उसके बाद दो-एक हलकी-सी हिचकी के साथ, उसका दम टूट गई। वह मर गया। उसी जगह, जहाँ कल तक जाड़े की सुनहली धूप में बैठकर वह अपने को गरमाया करता था, जहाँ मुन्नी उसके साथ खेलता, किलोलें करता और प्रेम-पूर्वक उसे अपने हिस्से की जलेबी और कभी-कभी बिस्कुट खिलाया करता था। मुन्नी कुछ नहीं समझा। वह मेरी गोद से उतरकर मोती को बिस्कुट देना चाहता था। पर क्या वह उठ बैठता?

मोती का कोई भी चिह्न मैंने अपने घर में नहीं

रक्खा। परंतु उन स्थानों को तो मैं दूर नहीं कर सकता, जहाँ उसकी तिल-तिल पर छाप लगी है। जहाँ वह जाड़े में धूप लेता था, जहाँ वह ग्रीष्म में शीतल बालू पर लेटता था, जहाँ वह अपना भोजन करता था, और जहाँ मुन्नी उसे लेकर घर-भर में धूम मचाता था। इन सब जगहों को मैं क्या करूँ? क्या निकालकर फेंक दूँ? और मोती की उस अशरीरी छाया का क्या करूँ, जो मेरे घर के प्रत्येक कोने में, मेरे आँगन के प्रत्येक उन्मुक्त स्थान में, और मेरे निवास-स्थान में, क्रीड़ा करनेवाली पवन के प्रत्येक कण में मुझे दिखाई देती है, मुझसे बात करती है, और मानो अपनी शोचनीय मृत्यु के लिये मुझे उत्तरदायी बनाती है? अपराध मेरा ही था। नौकर नहीं आया था, तो मैं उसे छत पर ले क्यों गया? क्या मैं जानता नहीं था कि उसकी भयानक प्रतिहिंसा मोती का काल बनकर निरंतर मेरे घर का चक्कर लगाया करती है?

क्या कहा? उसे गोली मार देता? शिव-शिव! उसने तो अपने साथी की मृत्यु का बदला लिया। पशु को यदि इतनी स्वतंत्रता न मिले, तो वह आदमी ही न बन जाय! बदला लिए बिना यदि उसकी मौत हो जाती, तो सौ जन्म में भी उसकी संतप्त आत्मा को शांति न मिलती। उसने ठीक ही किया। यह ठीक करके यद्यपि उसने मेरे जीवन की एक अत्यंत प्रिय वस्तु का अपहरण किया है, फिर भी मैं उससे कुछ कह नहीं सकता। उस पर अप्रसन्न नहीं हो सकता। उसे किसी प्रकार का दोष नहीं दे सकता। इतनी भारी क्षति यदि किसी और ने की होती, तो मैं न-जाने क्या कर डालता, अथवा कुछ भी न करता। पर उसके दुःख को मैं जानता हूँ। अपने साथी के वियोग में वह दिन-पर-दिन दुबला होता जाता था। प्रतिहिंसा की आग उसके शरीर को भूने डाल रही थी। अतएव इस समय यदि वह मेरी छत पर आवे, तो मैं उससे कहूँगा—"भाई, तुम पशुत्व से ऊपर और मनुष्यत्व के निकट होते, तो मैं तुमसे पूछता, क्या मिल गया तुम्हें मोती को मारने से?"—शांति? झूठी बात है। पर तुम निरे पशु ही हो। अतएव मोती को मारने से यदि तुम्हारे देवता प्रसन्न हुए हों, और तुम अपने साथी की मृत्यु का दुःख भूल गए हो, तो मैं सुखी हूँ। मोती का अपराध मेरा अपराध था। तुम्हारे कृत्य से यदि वह पाप-मुक्त हुआ है, तो यह बात नहीं कि मेरी आत्मा को शांति न मिले।

× × ×

दिन चढ़ आया था। सूर्य की उज्ज्वल किरणें गली में चारो ओर फैलती जा रही थीं। मुन्नी बाहर खेल रहा था। मा ने उसे दो बिस्कुट दिए थे। जिनमें से एक धूल में न-जाने कहाँ गिर गया। मुन्नी को उसकी चिंता नहीं हुई। बात यह है कि मीठे बिस्कुट उसे पसंद नहीं। नमकीन थे नहीं। हाथ में जो बिस्कुट था, उसे विमन-भाव से चूसता, और वायु में उड़ते हुए पक्षियों के पीछे स्वच्छंद भाव से इधर-उधर दौड़ रहा था। सामने चबूतरे पर उसका सहचर मोती बैठा था। दोनो पैरों के बीच में मस्तक रखकर चुप-चाप धूप ले रहा था। गली में दो-तीन कुत्ते थे, जो मोती पर रह-रहकर भूँक रहे थे। परंतु मोती को इसकी परवा नहीं थी। वह अकारण कभी चंचलता प्रकट नहीं करता था, और ख़ासकर ऐसे मौक़े पर जब कि उसका छोटा स्वामी हाथ में बिस्कुट लेकर उसे खाने को दे रहा था। मोती लोभी अवश्य था। उसे आप मिठाई दीजिए, तो वह अपनी पूँछ हिलाकर, सकृतज्ञ नेत्रों से आपकी ओर देखकर तुरंत आपको धन्यवाद देगा। परंतु अपने छोटे स्वामी के हाथ से बल-पूर्वक किसी वस्तु को छीनकर खाने का उसे अभ्यास नहीं था। इस विषय में वह मुन्नी के अन्य साथियों की अपेक्षा कहीं अधिक शिष्ट और संयमशील था। अतएव मुन्नी ने जब हाथ आगे बढ़ाकर कहा—"मोती, लो।" तब वह केवल अपने स्थान पर उठकर खड़ा हो गया, और कदाचित् विचार करने लगा, क्या यह बिस्कुट सचमुच उसके लिये ही है? परंतु

उसे अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। मुन्नी ने बिस्कुट फेंका, और मोती ने लपककर उसे ले लिया। बिस्कुट के उस छोटे टुकड़े ने मोती के मुँह को एक प्रकार के अपूर्व मीठे रस से प्लावित कर दिया। जीभ बाहर निकालकर अपना मुँह चाटने और लुब्ध दृष्टि से मुन्नी की ओर देखने लगा। मुन्नी के पास अब बिस्कुट नहीं था। पर मोती को उसकी ओर से निराश होना पड़े, यह भी तो अच्छी बात नहीं थी। सहसा उसे स्मरण हुआ कि माने दो बिस्कुट दिए थे। तब दूसरा क्या हुआ? कहीं गिर गया? तो फिर उसकी तलाश होनी चाहिए, और तुरंत मोती को आश्वासन देकर वह अपना बिस्कुट ढूँढ़ने में व्यस्त हो गया। मोती अपने स्वामी का मनोभाव समझा अथवा नहीं, कहना कठिन है। पर उसे इतना अवश्य अवगत हो गया कि उसके स्वामी के निकट अब दूसरा बिस्कुट नहीं है। तब गली में जो कुत्ते घूम रहे थे, उन पर दो-एक बार भूँककर वह अपने स्थान पर बैठ गया। और कोई काम न देखकर अपने पंजे चाटने और सामने जो पतंगें उड़ रहे थे, जब-तब खिन्न भाव से उन पर लपकने लगा। इस विनोद से भी जब उसका मन ऊब उठा, तब पुनः अपने दोनो पैरों पर सिर रखकर पूर्ववत् लेट गया, और धूप में गरमाकर ऊँघने-सा लगा।

मुन्नी तो अभी बिस्कुट ढूँढ़ने में ही लगा था। जान पड़ता था, वह उसे ढूँढ़कर ही रहेगा। बालक स्वभाव से ही हठी होते हैं। उनकी यह हठ बुरी नहीं होती। मुन्नी को आख़िर बिस्कुट नज़र आ गया। उसके सामने ही धूल में पड़ा था। उत्फुल्ल होकर उसे उठाने को झुका ही था कि सामने छत की मुँडेर पर जो बंदर बैठा था, वह एक ही छलाँग में नीचे आकर बिस्कुट छीनने के अभिप्राय से उसके हाथ पर टूट पड़ा। मुन्नी के मुँह से एक भय-सूचक आवाज़ निकली। साथ ही मोती उछला, और बंदर पर आ गिरा। यह सब कांड पल-भर के भीतर हो गया। मुन्नी त्रस्त-व्यस्त भीतर को भागा। वह बंदर तेज़ और फुर्तीला ज़रूर था, जैसे कि बंदर होते हैं, पर मोती के आकस्मिक आक्रमण से बिलकुल ही घबरा गया। मोती का यह व्यवहार कुछ अप्रत्याशित भी था। बंदर कुछ नया नहीं था। वह अपने एक और साथी बंदर के साथ नित्य ही नगर की परिक्रमा के लिये बाहर निकलता था। यहाँ यही दो बंदर थे। एक तो ख़ूब हृष्ट-पुष्ट और विशालकाय एवं दूसरा कुछ कमज़ोर और रोगी-सा। इस कमज़ोर बंदर ने ही आज मोती की उपस्थिति की अवहेला करके सहसा मुन्नी के बिस्कुट पर आक्रमण कर दिया। उसकी कदाचित् यह धारणा थी कि मोती ऊँघ रहा है। पर वास्तव में बंदर पर ठीक उसी समय उसकी दृष्टि पड़ गई थी, जब वह चुपचाप नीचे उतरकर मुन्नी पर झपटने का प्रयत्न कर रहा था। हाँ, मोती ने यही समझा कि बंदर उसके स्वामी पर ही झपट रहा है। एक ऐसी बात जिसकी कल्पना भी उसके लिये असह्य थी। भयानक वेग से क्रुद्ध चीते की भाँति वह उस बंदर पर झपटा। बंदर उसकी दबोच में आ गया, पर दूसरे क्षण बाहर भी हो गया। मोती खिसियाकर फिर झपटा। बंदर ने छलाँग मारनी चाही, पर न-जाने कहाँ से गली का एक कुत्ता उसके सामने आ गया। क्षण-भर के लिये उसकी सिट्टी भूल गई। बस, मोती ने उसे फिर ले लिया। तब तक दो-तीन कुत्ते भूँकते हुए और दौड़े। पेड़ों पर ही निवास करनेवाले इस जंतु को पृथ्वी पर उतरते देखकर उनका रुधिर उत्तप्त हो उठा था। अथवा वह अपने साथी और सजातीय की सहायता करना चाहते थे। बंदर चारो ओर से घिर गया। निकलना कठिन हो गया। जिधर जाता, कुत्ते यमदूत की तरह मुँह फाड़े उस पर टूट पड़ने को तैयार थे। मोती किसी तरह भी शांत नहीं हो रहा था। अनादि काल से उसके भीतर जो भेड़िया सो रहा था, वह मानो आज अपनी संपूर्ण भीषणता के साथ जाग उठा था। भेड़िए ने कुत्ते को दबा लिया था। वह बार-बार निर्मम भाव से उस ग़रीब बंदर की गर्दन लथेड़ने लगा। कुत्तों का चीत्कार सुनकर

मुहल्ले की तमाम औरतें और बालक बाहर दरवाज़ों पर खड़े हो गए। मुन्नी भय से इतना किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया था कि वह अपनी मा से स्पष्ट कुछ भी न कह सका। उस समय वह रसोई-घर में थीं। क्या हुआ है, यह देखने के लिये जितने शीघ्र हो सका, चूल्हे पर चढ़ी हुई तरकारी को नीचे उतारकर वह बाहर आईं। देखा तो, हतबुद्धि-सी होकर रह गईं। कमबख़्त मोती क्या कर रहा है ? इसे आज क्या हो गया है ? मोती ! ओ मोती !! हताहत और निर्जीवप्राय बंदर को धूल में घसीटते छोड़कर मोती छलाँगें भरता हुआ पल-भर में अपनी स्वामिनी के पैरों पर आ गिरा। युद्ध में उसने अपने शत्रु को पराजित किया है, इस भारी विजय के लिये मानो वह अपनी स्वामिनी से शाबाशी चाहता था। तभी तो ख़ुशी से उसकी आँखें नाच रही थीं, और पूँछ किसी तरह स्थिर रहना ही नहीं चाहती थी। "क्या किया है तूने यह ? उस बंदर को क्यों मारा ?" और मुन्नी की मा मोती के ऊपर उठे हुए मस्तक पर अपना कर स्पर्श किए विना ही पीछे हट गईं। मोती सहम गया। स्वामिनी की वक्र दृष्टि और स्वर की कठोरता देखकर स्पष्ट समझ गया कि उसने अन्याय किया है। अपराधी की भाँति भयभीत दृष्टि से चुप होकर ऊपर देखता रहा। स्वामिनी क्रुद्ध भाव से उसे देख रही थीं। उन्होंने कठोर बनकर फिर कहा—"तूने यह क्या किया है ?" इस बार उनके स्वर में क्रोध-ही-क्रोध नहीं था प्रेम-मिश्रित भर्त्सना थी। मोती यह सब जान लेता था। भय की दीवार कुछ हट गई थी। तुरंत पास जाकर धीमे-धीमे शब्द करके, पूँछ हिला, कातर दृष्टि से स्वामिनी के मुख की ओर देखता हुआ पैरों पर मस्तक रगड़कर क्षमा माँगने लगा। फिर भी क्षमा नहीं। स्वामिनी ने उसके मस्तक पर हाथ नहीं रक्खा, जिसका आशय यह था कि वह वास्तव में बहुत अप्रसन्न हैं। पर असल में वह कुछ चिंतित हो उठी थीं। उनका ध्यान उस बंदर की ओर था। इस समय वह धूल में पड़ा सिसक रहा था। कुत्ते भाग गए थे। मुहल्ले के कुछ लड़के घेरे खड़े थे। पास जाकर देखा। कुत्तों ने उसे बुरी तरह घायल किया है। शायद ही बचे। घड़ी-दो घड़ी का मेहमान था। उसे मरते देखकर मुन्नी की मा की आँखें सजल हो आईं। ये दो बंदर ऊधम ज़रूर करते थे, पर किसी का कुछ नुक़सान तो नहीं करते थे। इसके साथी को कितना रंज होगा। अभी तक दो थे, अब वह अकेला रह जायगा। यह अकेली ज़िंदगी उस बेचारे के लिये कितनी असह्य होगी। पर वह आज गया कहाँ ? रोज़ तो ये दोनो साथ ही बाहर निकलते थे। तभी ऊपर नज़र पड़ी। देखा, जहाँ वह निर्जीवप्राय बंदर पड़ा है, ठीक उसके ऊपर एक मकान की छत पर दूसरा बंदर अपने दो पैरों के बल बैठा ज़मीन की ओर घूर रहा है। उसकी दृष्टि स्थिर है और देह निस्पंद। मानो किसी ने पत्थर का बंदर बनाकर छत के कोने पर बिठाल दिया हो। यह क्रोध नहीं हो सकता, जिससे आक्रांत होकर वह इस प्रकार गुम-सुम बना बैठा है। यह निस्संदेह मोती के हाथ से अपने साथी की रक्षा न कर पाने का मानसिक संताप और उसकी आगत मृत्यु का गंभीर शोक था, जिसने उसे एक बार ही विह्वल बना दिया था। वह केवल देख रहा था। फिर मानो उसकी चेतना भंग हुई। अत्यंत धीरे-धीरे वह नीचे उतरा। लड़के उसे देखते ही दूर भाग गए। वह अपने मुमूर्षु साथी के निकट आया। उसके पार्श्व में बैठ गया। उसका एक हाथ उठाया, छोड़ दिया। पैर उठाया, छोड़ दिया। फिर एकटक होकर देखने लगा। तभी उसके साथी के प्राण निकल गए। वह चीख़ पड़ा। फिर उसके मुँह से रह-रहकर बारीक आवाज़ें निकलने लगीं। बहुत ही करुण और मर्म-भेदिनी। वह रो रहा था ! पशु अपने बंधु की मृत्यु पर मनुष्य की भाँति विलाप करने लगा। वह उसकी भाँति आँसू भी नहीं गिरा रहा था, इसे कौन बता सकता है ?

मेरी पत्नी से वह दृश्य देखा नहीं गया। वह मुन्नी को लेकर भीतर चली गईं। उनके कोमल हृदय के लिये वह सारा दृश्य इतना दुःखांत था कि संध्या के समय जब मेरे घर आने पर उन्होंने बंदर की शोचनीय मृत्यु की सारी कथा सुनाई, तो मैं भी दुःख और करुणा से अभिभूत हुए विना नहीं रहा। मैंने मोती की तलाश की। वह खिन्नवदन घर के कोने में गुम-सुम बना पड़ा था। मालूम हुआ, आज उसने भोजन नहीं किया। मुझे दया आई। अपने चेहरे को प्रसन्न बनाकर उसे वास्तव में क्षमा करने के अभिप्राय से उसके समीप पहुँचा। कहा—"मोती, क्या बात है? तुम इस प्रकार चुपचाप क्यों पड़े हो?" पर मोती चुप। तब मैंने उसकी पीठ पर प्यार से हाथ फेरा। उसे पुचकारा, प्यार किया, फिर भी उसने सिर नहीं उठाया। समझ गया। एक तो मेरी पत्नी ने उसे क्षमा नहीं किया, जिसके कारण उसने अपने को अपमानित समझा है। उसके आत्माभिमान को ठेस पहुँची है। दूसरे, अपनी स्वामिनी के कठोर व्यवहार के द्वारा उसे अपने कृत कर्म के गुरुत्व का आभास मिल गया है। वह समझ रहा है कि उसने कोई भारी अपराध किया है। इसका उसे दुःख है। वह जिस प्रकार कर्म के अच्छे पहलू से परिचित है, उसी प्रकार बुरे से भी। यह गुण अन्य पशुओं में नहीं होता। बिल्ली यदि कोई निषिद्ध कर्म करती पकड़ी जाय, तो वह तुरंत भागेगी, लज्जा से नहीं, वरन् भय से। परंतु मोती की लज्जा, दुःख और शोक के ऐसे अतल गर्त को स्पर्श करती है, जहाँ हमारे गहरे-से-गहरे मनोभाव छिपे रहते हैं। मोती आज अपने अपनत्व से च्युत हुआ है। उसने आज अपने स्वामी की इच्छा के प्रतिकूल कोई बड़ा भारी अपराध किया है। इसका उसे महान् संताप है। जब तक उसकी स्वामिनी सच्चे हृदय से उसे क्षमा नहीं करतीं, वह अपने को अपराध-मुक्त नहीं समझेगा, और तब तक उसके संतप्त हृदय को शांति भी नहीं मिलेगी। मैंने अपनी पत्नी को बुलाया। उनसे अनुरोध किया कि वह इस बार मोती को क्षमा कर दें, और अपने हाथ से उसे भोजन करावें। मोती मानो सब समझ गया। उसने गर्दन उठाई, पंजा आगे बढ़ाया, पूँछ भी हिली, और वह मेरी ओर कातर दृष्टि से देखता हुआ सचमुच ही मानो कहने लगा—"अब मैं ऐसी ग़लती कभी न करूँगा।" मैंने उसकी गर्दन में अपने हाथ डाल दिए। उसे चूम लिया। वह उठकर खड़ा हो गया। आध घंटे बाद वह नित्यप्रति की भाँति मुन्नी के साथ खेल रहा था।

× × ×

संध्या को घूमने जाता, तो मोती को अपने साथ ले जाता था। उस दिन भी ले गया। निश्चिंत भाव से जा रहा था। इतने में ऊपर नज़र उठाई, तो मकान की छत पर बंदर बैठा था। देखते ही कल की सारी घटना का स्मरण हो आया। मोती भूँक उठा। और दिन मैं उसके भूँकने की परवा नहीं करता था। पर उस दिन मुझे ग़ुस्सा आ गया। फिर वही बात। आख़िर बंदर से इसकी ऐसी कौन-सी दुश्मनी है, जो एक के प्राण लेकर भी अब दूसरे पर गर्जन-तर्जन करने को उतारू है। दो-तीन बार डाटना पड़ा, तब कहीं वह शांत हुआ। हम दोनो सड़क पर जा रहे थे। मैंने देखा, वह बंदर भी छतों-छत हमारा अनुसरण कर रहा है। यह कोई नई बात नहीं थी। फिर भी मैंने लक्ष्य किया कि वह बंदर आज विशेष रूप से मेरे नज़दीक और साथ-ही-साथ चल रहा है। कुत्ते उसे देखकर भूँक रहे थे, और लड़के रास्ते चलते उस पर ढेले फेंक रहे थे, पर इन सबकी उसे परवा नहीं थी। वह मोती को देख रहा था। एक मोती पर ही उसकी नज़र थी, तो क्या वह जानता था कि मोती ही उसके बंधु की शोचनीय मृत्यु का प्रधान कारण है?

मैं बाज़ार से जा रहा था। एक दूकान पर मेरे एक परिचित मित्र खड़े थे। उनसे बात करने को मैं रुक गया। मोती मेरी बग़ल में था। ५-६ मिनट हुए होंगे कि एक फूटी बोतल बड़े वेग से लुढ़कती हुई

आई, धम्म से मोती की पीठ पर गिरी, और फिर धरती पर गिरकर चकनाचूर हो गई। मैं चौंककर पीछे हट गया, और विस्मित भाव से ऊपर देखने लगा। अलक्ष्य स्थान से आई उस बोतल ने सभी को आश्चर्य में डाल दिया था। तब तक गली के लड़के चिल्ला उठे—"बंदर है बंदर! भागिए, ईंटा फेंक रहा है।" ईंटा फेंक रहा है! मेरे ऊपर! कुछ क्षुब्ध और कुपित होकर मैं पीछे हटा। बंदर पर ही मेरी नज़र पड़ी। भयानक रूप से मुझे खीसें दिखा, उछलकर तुरंत दूसरी दूकान पर पहुँच गया। मैं उसके इस विलक्षण व्यवहार के संगत कारण पर विचार कर ही रहा था कि दूकान पर खड़े हुए एक सज्जन बोले—"अरे साहब, कुछ न पूछिए। जब से कुत्तों ने इसके साथी को मार डाला है, यह उनका घातक शत्रु बन गया है। कुत्ते को देखा नहीं कि जो हाथ में आता है, फेंकता है। अभी उस दूकान पर एक सज्जन का तो सिर बच गया।" तो यह बात है। मैं बंदर को देखने लगा। वह दूर छत पर बैठा मोती की ओर ही घूर रहा था। उसकी दो नन्हीं चमकीली आँखों में जो बात पहले नहीं दिखाई दी थी, वह अब दृष्टिगोचर हुई। मैं डरा तो नहीं, पर मोती के साथ फिर किसी दूकान पर खड़ा नहीं हुआ। बीच रास्ते से चलने लगा। देखा, बंदर बराबर मोती के साथ चल रहा है। गली में और भी कुत्ते थे पर उसका ध्यान था मोती पर ही। दूकानों का ताँता टूटा, तो उतरकर दूर-दूर मैदान में चलने लगा। एक बार बहुत नज़दीक आ गया। मोती भूँका और झपटा। बंदर खिसियाकर पेड़ पर चढ़ गया। फिर उतर आया। मैंने मोती को मना नहीं किया। बात यह थी कि कल की बंदरवाली घटना को लेकर मैं विचारों की ऐसी उधेड़-बुन में फँस गया कि मोती से कुछ कहने का ख़याल भी न आया। उसका भूँकना और गुर्राना बढ़ता ही गया। साथ ही मैंने देखा कि बंदर भी जब-तब खिसियाकर उस पर झपटने का उपक्रम करता है, पर कदाचित् उसे साहस नहीं होता। बार-बार मोती के भूँकने और बंदर के निकट आ जाने के कारण मेरे लिये आगे बढ़ना कठिन हो गया। मैं लौट पड़ा। बंदर भी लौटा। मुझे अब संदेह नहीं रहा कि यह वास्तव में व्यापक रूप से कुत्तों का और विशेष रूप से मोती का शत्रु बन गया है। यदि वश चले, तो मोती को चबा ही जाय। किसी तरह घर आया। बंदर ने पीछा नहीं छोड़ा। छत की मुँडेर पर बैठ गया। यह अच्छी आफ़त रही। मोती को घर में बाँध दिया। रात हुई। छत पर अँधेरा छा गया। पर क्या यह बंदर वहाँ से टला होगा? मुझे तो विश्वास नहीं।

सबेरा हुआ। आँगन में आते ही मेरी पत्नी ने भय-सूचक आवाज़ में कहा—"छत पर बंदर है।" मैंने कहा—"रहने दो। मोती को आज खोलना मत।" पर मोती पहले ही मुक्त हो चुका था। आँगन में आया। वैसे ही धम्म से एक ईंट मेरी पत्नी के पैरों के पास आ गिरी। और जब तक वह ऊपर देखें, बंदर चलता बना। पत्नी नाराज़ होकर बोलीं "यह तो बड़ी विपत्ति है। बच गई, नहीं तो अभी सिर ही फूट जाता। इतनी बड़ी यह ईंट इसे मिली कहाँ?" मैंने उन्हें बताया—"इस नई छत पर कुछ ईंटें और पत्थर की चट्टानें पड़ी हैं।" "उन्हें अलग करवा दो।" वही मैं सोच रहा था। उसी समय नौकर से कहकर ईंटें हटवा दीं। पत्थर की चट्टानें पड़ी रहीं। इतनी भारी चीज़ कोई खिसका सकता है, इसकी कल्पना भी उस समय मेरे मन में नहीं आई।

निश्चय कर लिया कि संध्या को अकेला ही घूमने जाऊँगा, पर इससे क्या? बंदर ने दिन-भर छत नहीं छोड़ी। मैं भी सतर्क रहा। मोती को आँगन में नहीं आने दिया। पर संध्या के बाद वह एक बार ज्यों ही आँगन में उछलकर आया, त्यों ही एक हलका-सा ढेला उसकी पीठ पर गिरा। यह अप्रत्याशित था। क्योंकि छत पर नौकर ने ढेले के नाम एक कंकड़ भी नहीं छोड़ा था। लंबा-सा बाँस उठाया। हाँ, मैं सचमुच उससे डरने लगा था। कहीं आक्रमण

न कर बैठे। छत पर पहुँचा, त्यों ही बंदर भागा, और दूर नीम के पेड़ पर जा चढ़ा। मैंने देखा, छत पर बहुत-से ढेले, तीन-चार फूटी बोतलें, कुछ लकड़ी के टुकड़े और इसी प्रकार की अन्य सामग्री पड़ी है। निस्संदेह यह बंदर की ही करतूत थी। मोती को मारने के उद्देश्य से ही उसने यह सामान इकट्ठा किया था। मैंने उठाकर दूर फेंका। वहीं खड़े होकर सोचने लगा—"बंदर की जो हत्या हुई, उसका दंड तो भुगतना ही पड़ेगा। इस जन्म में नहीं, तो अगले जन्म में। पर यह बंदर क्या कर बैठे, इसका कुछ ठीक नहीं। इसकी प्रतिहिंसा, भगवान् जाने, मेरे घर पर कौन-सी आफ़त ढाए।" इसी तरह की चिंता करता हुआ मैं नीचे उतरा।

दूसरे दिन फिर वही बंदर। तब मेरी पत्नी ने कहा—"यह तो ठीक नहीं। क्या ठिकाना, कभी आँगन में आकर मुन्नी को नोच-खसोट ले।" उनकी आशंका मुझे बिलकुल निर्मूल नहीं जान पड़ी। कुछ समझ में नहीं आया, क्या करूँ। यही कर सकता था कि मोती को पल-भर के लिये भी न खोलूँ। पर इतना भारी अत्याचार उस पर कैसे करूँ? दोपहर तक उसे बाँधकर ही रक्खा। तदुपरांत थोड़ी देर के लिये उसे खोल दिया। बहुत कोशिश की कि वह घर के भीतर ही रहे, पर मोती खुली वायु और प्रकाश चाहता है। अंधकार से उसे घृणा है। बंधन में तो वह रह ही नहीं सकता। अतएव ज्यों ही मुक्त हुआ, उच्च शब्द द्वारा अपनी प्रसन्नता प्रकट करता हुआ आँगन में आ गया। मुन्नी इतना ख़ुश, मानो स्वयं उसे किसी बंधन से छुटकारा मिला हो। मोती के साथ खेलने लगा। गेंद पानी से भरे टब में फेंक दी। मोती गया और गेंद को ऐसे हौले से उठाकर ले आया, मानो कोई अत्यंत कोमल और भंगुरशील वस्तु हो। स्वामी के पैरों पर रख दी। उसके कृतत्व पर मुन्नी इतना प्रसन्न हुआ कि किलक-किलककर आँगन में धूम मचाने और गेंद को बार-बार ऊपर उछालने लगा। इसी उछल-कूद में गेंद छत पर चली गई। मोती मानो किसी प्रकार अपने छोटे स्वामी को प्रसन्न करने का अवसर ही ढूँढ़ रहा था। गेंद ऊपर गई नहीं कि उसके साथ एक-दो छलाँग में वह छत पर पहुँच गया। यहाँ से गेंद को मुँह में दबाकर वह लौट ही रहा था कि दोमंज़िले के न-जाने कौन-से अलक्ष्य कोने से बंदर प्रकट हुआ, और बिजली की तरह तड़पकर मोती पर टूट पड़ा। मोती भयानक चीत्कार करके भूँका। बंदर ने उसकी पूँछ पकड़ ली थी। जब तक यह सब हो, मैंने लपककर डंडा उठाया, और दूसरे क्षण में छत पर था। मेरा पहुँचना कि बंदर ने छलाँग मारी, और जा बैठा पड़ोस के मकान की छत पर। वहाँ से बार-बार खीसें निकालकर मुझ पर अपना ग़ुस्सा प्रकट करने लगा। मैं अपना क्रोध तो पी गया। पर मोती भयानक रूप से खिसिया उठा था। क्रोध से उसकी आँखें जल रही थीं। पीछे की पसलियाँ फैली थीं। और गर्दन के बाल फूलकर किसी बड़े पुष्प की तरह खिल गए थे। बार-बार अपनी पैनी दाढ़ें चलाकर बंदर की तरफ़ झपटता था, मानो उसके और बंदर के बीच में जो अवधान है, उसे एक ही छलाँग में पार कर जायगा। इस प्रकार बड़ी देर तक भूँकता और अपना रोष प्रकट करता रहा। भूँकते-भूँकते थक गया, तो आँगन में आकर गुम-सुम होकर लेट गया। ज़रूर कुछ उदास था। शत्रु पर वह प्रतिघात नहीं कर सका था। इससे बढ़कर लज्जा और अपमान की बात उसके लिये और हो क्या सकती थी? वह सचमुच अपना मुँह छिपाने की कोशिश कर रहा था। पत्नी के बहुत कहने पर भी आज दूसरी बार उसने भोजन नहीं किया।

बंदर के उपद्रव से बचने का अंत में मुझे एक उपाय सूझा। राइफ़िल तो थी ही। थोड़े ख़ाली कारतूस भी थे। नौकर को हुक्म दिया, दिन में राइफ़िल लेकर दोमंज़िले की छत पर बैठे, और जब बंदर दिखाई दे, ख़ाली फ़ायर कर दे। पत्नी को आदिष्ट किया, मोती सदैव भीतर रहे, और मुन्नी घर से बाहर न निकले। दूसरे दिन वही किया गया।

नौकर दिन-भर धूप में छत का पहरा देता रहा। मोती और मुन्नी घर से बाहर नहीं निकले। पर भय और आशंका के इस वातावरण में कोई चिर काल तक तो रह नहीं सकता। एक सप्ताह हो गया। बेचारा मोती घर से बाहर नहीं निकला था। मैं उसके निकट गया। मुझे देखते ही उछल पड़ा। त्यों ही रस्सी का झटका लगा। जहाँ-का-तहाँ खड़ा हो गया। और उस पर जो अत्याचार हुआ है, उसके विरुद्ध उच्च स्वर में अपना समस्त रोष और क्षोभ प्रकट करने लगा। मैंने उस पर हाथ फेरकर कहा—"अच्छा मोती, आज तुम्हें छुटकारा मिलेगा। आज तुम मेरे साथ प्रकाश के दर्शन कर सकोगे। आज तुम्हें मैं छत पर ले चलूँगा।" और मैंने उसे खोल दिया। एक ही छलाँग में वह आँगन में पहुँच गया। ओहो! इतने दिन तक वह इस प्रकाश और इस वायु से वंचित क्यों रहा, उसकी समझ में नहीं आया। आँगन में आते ही भूँकने लगा, मानो इतने से उसकी तृप्ति नहीं हुई। इस घर की चहारदिवारी के बाहर जो आमोद-प्रमोद हो रहा है, वह उसमें भाग लेना चाहता है। मैंने कहा, बाहर नहीं। चलो, थोड़ी देर के लिये तुम्हें ऊपर ले चलूँ। मैं छत पर आया। मोती ने मेरा अनुसरण किया। उस दिन इतवार था। कोई काम नहीं था। आराम-कुर्सी डालकर छत पर बैठ गया। मोती मेरी बग़ल में बैठा। प्रातःकाल की उज्ज्वल, प्रखर धूप उसके कोमल, सुचिक्कण गात्र पर चमक उठी। मैंने स्नेह-पूर्वक उसके माथे पर हाथ फेरकर कहा—"मोती, मैं किताब पढ़ूँगा। तुम चुपचाप धूप खाओ।"

मोती समझ गया। वह मेरा प्रत्येक संकेत समझ लेता था। मेरे प्रत्येक अभिप्राय की थाह उसे तुरंत मिल जाती थी। पूँछ हिलाकर, मृदु-मृदु शब्द करके उसने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। वह वास्तव में आज प्रसन्न था। मैंने उसे बंधन-मुक्त किया था। घड़ी-भर के भीतर ही वह अतीत को भूल गया था। भविष्य की भी उसे चिंता नहीं थी। इस समय केवल सुख के स्वप्न से घिरा हुआ वर्तमान उसके सामने था। उसकी प्रसन्नता मन में समा नहीं रही थी। वह स्थिर नहीं बैठ पा रहा था। वह भूँकने लगा। मानो वृक्ष पर बैठी हुई यह चिड़िया और घर के बाहर का समस्त अस्पष्ट कोलाहल उसे अपनी ओर बुला रहा था। उसका भूँकना और इन सबका बुलाना व्यर्थ नहीं हुआ। मुन्नी हाथ में रोटी लेकर आया। वही तो मोती का स्वर्ग है। रोटी मिल जाय, फिर उसे स्वर्ग नहीं चाहिए। परंतु यह क्या? रोटी का तिरस्कार करके वह दोमंज़िले की छत की ओर मुँह करके फिर भूँक उठा। मैंने मुन्नी से कहा—'यह रोटी नहीं खायगा। उसके लिये बढ़िया बिस्कुट लाओ।" "बिस्कुट तो हैं नहीं।" मुन्नी ने निराशा से मुँह लटकाकर जवाब दिया। "तो जलेबियाँ मँगवाओ।" मोती तब भी शांत नहीं हुआ। भूँकता ही रहा। मैंने डपटकर कहा—"यह क्या? जलेबियाँ आ रही हैं। चुप बैठ जाओ। धूम मचाओगे, तो फिर बाँध दिए जाओगे।" मोती क्षण-भर के लिये चुप हो गया। सहसा ऊपर की ओर मुख करके फिर भूँक उठा। मानो कह रहा था—"बाँध कैसे दोगे। अब मैं तुम्हारे बंधन में पड़ूँगा ही नहीं।" उसकी इस धृष्टता पर कुपित होकर मैं उसे दंड देने जा ही रहा था कि सहसा छत की मुँडेर...... नहीं, चट्टान थी; जो अचानक दोमंज़िले से मोती के सिर पर गिरी। मोती दब गया, और करुण चीत्कार कर उठा। वह भयानक कांड देखकर मैं क्षण-भर के लिये जैसा था, वैसा ही रह गया। धमाके की आवाज़ सुनकर मेरी पत्नी आँगन में दौड़ आई थीं। मैंने उन्हें कहते सुना, वह बंदर गया! बंदर ....! मैंने अपना सिर पीट लिया। तो बंदर ने ही यह काम किया! जब तक वह प्राणघाती चट्टान हटे, मोती बेसुध हो गया था, और दूसरे दिन सब समाप्त हो गया। बंदर फिर दिखाई नहीं दिया। मुझे उस पर तनिक भी रोष नहीं है। फिर भी यदि वह चला जाय, तो उसकी ख़ुशी।

वैज्ञानिक युग का धर्म

[श्रीयुत रमाशंकर मिश्र एम्० ए०]



eligion is the personal and social movement for order and harmony in man and man's world."—F. G. Gould.

विज्ञान ने मज़हब की अट्टालिका को जड़ से हिला दिया है। श्रद्धा और भक्ति की जगह सचाई की खोज ने ले ली है। अंधविश्वासियों की तादाद दिन-ब-दिन घट रही है। मज़हब से लोगों का विश्वास तो हट गया है, लेकिन ढोंग को लोग ढोए जाते हैं *। कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर पर विश्वास रखने से सदाचार रहता है, परंतु यह बात भ्रम-मूलक है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि मज़हब ने सदाचार का गला घोटा है। मज़हब का ध्येय सदाचार नहीं रहता, वरन् ईश्वर की कृपा अथवा मुक्ति *। कुछ लोगों के विचार में ईश्वर पर भरोसा रखने से दिल को राहत मिलती है †। कुछ लोग यह कहते हैं कि विज्ञान मज़हब को हटा रहा है, परंतु मज़हबी स्वभाव, जो एक प्राकृतिक स्वभाव है, दूर नहीं हो सकता।

इस बात का कहना बहुत मुश्किल है कि वैज्ञानिक युग में किस क़िस्म का मज़हब रहना चाहिए, क्योंकि इसका विकास भी ठीक उसी नियम के अधीन है, जिस तरह पशु तथा वनस्पति-जीवन। कोई भी व्यक्ति, किसी मज़हब अथवा राष्ट्र का निर्माण नए रूप से नहीं कर सकता। विश्व का नया मज़हब क्या होगा, इस प्रश्न के उत्तर देने में पहले हमको यह देखना होगा कि नए विचारों की स्वाभाविक धारा इस विषय में किस तरफ़ है।

आरंभ से ही मज़हब की अट्टालिका बलिदान की नींव पर खड़ी की गई है। मनुष्य के मानसिक विचार के साथ-साथ इस बलिदान की धारणा में भी परिवर्तन दीख पड़ता है।

---

* "Minds that have once pledged adherence to religious doctrines are naturally reluctant to give them up, and the motives for retaining their faith are so numerous and effective that it surprises one to perceive how feeble the religious vitality of the twentieth century has become. Some may call this degeneracy, I prefer to call it progress".—The Great Delusion by Charles T. Gorham published in the Literary Guide (November, 1930), p. 103.

"It must be the fruit of religious bias, of that tendency to believe in the supernatural in preference to the natural which has been the suicide of thought, and which may be called the Great Delusion".—Ibid.

* "It is no exaggeration to say that the vigilant, painstaking cultivation of the moral side of man's nature has never been taken in hand with earnest persistence, because theology has always been celebrating the power of grace to the depreciation of Ethics".—The Service of Man by James Cotter Morison (Watts and Co.), p. 52.

† Mr. J. Krishnamurty calls God a comforting theory.

प्रारंभिक काल में नर-बलि द्वारा देवता प्रसन्न किए जाते थे। देवताओं पर बहुमूल्य वस्तुएँ चढ़ाई जाती थीं। बाद को देवताओं के सदाचार-विषयक विचार में उन्नति हुई। लोगों में भी सदाचार का भाव ऊँचा हुआ। लोगों ने अपने बुरे स्वभावों का हनन करना ही सबसे अच्छा बलिदान समझा।

प्रारंभिक मज़हब को मानव-जाति की भलाई से कोई सरोकार नहीं था। इस काम का करना देवताओं अर्थात् प्रकृति के परे के लोगों का कर्तव्य था। आध्यात्मिक दुनिया (Spirit-world) के लोगों से तकलीफ़ न मिले, अथवा उनसे चंद तरह का लाभ उठाना पूजा-पाठ का मुख्य उद्देश्य था, परंतु मानव-विकास के साथ-साथ मज़हब की दृष्टि मानव-समाज की भलाई की तरफ़ गई।

हम देखते हैं कि हर मज़हब का आधार बलिदान है, और मानव-समाज के विकास के साथ मज़हबी ख़यालात में भी तबदीली हुई है। देवताओं की सेवा की जगह मनुष्य-सेवा ने ले ली है। बलिदान पहले जीव-जंतुओं का हनन कर किया जाता था; बाद को बुरे स्वभावों का दबाना ही बलिदान का अर्थ हुआ, परंतु सच्चा बलिदान दूसरों की भलाई के लिये अपना सर्वस्व जीवन तक को न्योछावर करने के लिये तैयार रहने में है। ईश्वर तथा देवताओं के ग़ुलाम के लिये इस बलिदान की परा काष्ठा तक पहुँचना मुश्किल है। ईश्वर का पुजारी अपनी सेवा का बदला अपने प्रभु से चाहता है *।

मज़हबी जीव को इस बात से हमेशा इनकार रहेगा कि कुछ लोग ऐसे भी दुनिया में हो सकते हैं, जो बिला किसी बदले के ख़याल के मानव-सेवा में अपने को हवन कर दें। अपनी सेहत पर ख़याल न रखकर जो माता अपने बच्चे का पालन करती है, खान के अंदर काम करनेवाला जो क़ुली अपने मेट को भागकर जान बचाने का आख़िरी मौक़ा इसलिये देता है कि उसके बाल-बच्चे हैं, और यह ख़ुद अकेला होने की वजह से लाफ़िक्र है, मरते हुए बच्चे के गले का "डिफ़्थेरिक ज़हर" (Diphtheric poison) को चूसकर जो डॉक्टर अपनी जान देता है—ये सब ऊँचे दर्जे के प्रेम तथा बलिदान के सच्चे नमूने हैं। इस बात से इनकार करना कि भविष्य में ऐसे नमूने अधिकतर मिलेंगे, विकास के इतिहास की अवहेलना करना है। सच्चे बलिदान के भाव को दुनिया ने बहुत कष्ट झेलकर हमको दिया है। इस स्वभाव को हम कोशिश कर और भी ऊँचा कर सकते हैं। विज्ञान की मदद से हम इस बात को समझते हैं कि मनुष्य के मानसिक तथा नैतिक स्वभाव भी जीवन के और-और रूपों की तरह वंशानुक्रम (Heredity) तथा परिवर्तन (Variation) के नियम के अधीन है। वैज्ञानिक ढंग से इनको विकास की चरम सीमा पर लाया जा सकता है।

सभ्यता के प्रसार के साथ-साथ आम लोगों की भलाई की तरफ़ लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। मज़हब का भी उद्देश्य इसी तरफ़ हुआ। इस बात से किसी को इनकार नहीं हो सकता कि आधुनिक सभ्य क़ौमों के लोग सिर्फ़ वहशियों से ही अच्छे नहीं हैं, वरन् अपने ही पूर्वजों से भी हर तरह से बढ़े-चढ़े हैं। इसमें कोई शक नहीं कि ग़रीबी की समस्या को हल करने में अभी नई दुनिया कामयाब नहीं हुई है। परंतु इस ओर हमारे ध्यान का आकर्षित होना

* "And the spirit of sacrifice, the postponing of self to others, the giving up what the natural man loves and values, whether possessions or cherished lusts, is so little restricted to the worshippers of a God or gods that it may be said in its highest form to be unattainable by them. The worshipper of a God never quite transcends the hope, a recompense for his devotion–not from men but from his father which seeth in secret, and who shall reward him openly".—The Service of Man, p. 100.

ही इस बात का सबूत है कि हम आगे बढ़ रहे हैं। इस सामाजिक समस्या का हल करना बहुत ही कठिन काम है, और इसमें सफलता प्राप्त करने के लिये कठिन दुख झेलने की ज़रूरत पड़ेगी। लेकिन इसमें ज़रा भी शक नहीं कि मानवी शक्ति द्वारा ही इस उलझन को सुलझाया जा सकता है। ग़रीबों की रक्षा के लिये क़ानून बनने लग गए हैं। साम्यवाद (Socialism) के सिद्धांत का प्रभाव दुनिया पर पड़ते दीख पड़ता है। सामाजिक क्रांति के काम में बहुत-सी भूल-चूक होंगी, अपराधों की संख्या भी बढ़ सकती है। मनुष्य से भूल का होना स्वाभाविक है, परंतु उसमें सुधार की क्षमता भी मौजूद है। मारके की बात तो यह है कि इहलौकिक सिद्धांत पर सामाजिक क्रांति की जायगी, व्यावहारिक जीवन को मज़हब से जुदा किया जायगा। दुनिया के ग़रीब बहिश्त के स्वप्न को भूलकर इस लोक में जीवन-सुख में अपना पूरा हक़ लेने के लिये तैयार हो जायँगे *।

हम देखते हैं कि बलिदान का भाव जिसकी उत्पत्ति मज़हबी युग हुई, अब उससे एकदम जुदा हो गया है। अदृश्य देवताओं को बलि द्वारा तथा प्रार्थना कर हज़ारों वर्ष से लोग दुनियाबी फ़ायदा अथच पाप से मुक्ति अथवा चित्त-शांति की याचना करते आ रहे हैं। जाहिलियत के ज़माने में जब मनुष्य और प्रकृति में विरोध देख पड़ता था, तब लोगों को अदृश्य पर श्रद्धा रखने से तस्कीन मिलती थी। इस अवस्था में अज्ञान के कारण मनुष्य को अदृश्य में एक पनाह देनेवाले की ज़रूरत थी, आकाश में मित्र का बनाना आवश्यक प्रतीत होता था। परंतु कठोर अनुभव ने हमको इस बात की सीख दी है कि देवता बहरे हैं। प्रार्थना का सुननेवाला कोई भी नहीं, प्रार्थी ही के कान उसे सुनते हैं *।

इस तरह देवताओं की उपासना का स्थान मनुष्य-सेवा ने ले लिया है। मनुष्य-सेवा का महत्त्व देव-पूजा से कहीं ज़्यादा बढ़ा-चढ़ा हुआ है। हमको दो ऐसे तथ्यों का पता लग गया है, जिससे सच्ची रहनुमाई मिल सकती है। पहली बात यह है कि हमारी सामाजिक परिस्थिति को किस तरह के सदाचार की ज़रूरत है, अर्थात् नए ज़माने के मुताबिक़ रोज़-ब-रोज़ बढ़ते हुए सदाचार का दिग्दर्शन काफ़ी तौर से मिल चुका है। दूसरी बात यह है कि सामाजिक परिस्थिति में भविष्य में जिस परिवर्तन पर हमारा लक्ष्य है, जिसके कारण मौजूदा नीचे दर्जे की परिस्थिति हट जायगी, उसका पूर्वाभास हमको मिल रहा है। इन दो कारणों के जुट जाने से समाज में पूर्ण जीवन का विकास हो सकता है †। मनुष्य-सेवा का उद्देश्य इन दोनो को विकास-पथ पर अग्रसर करना है।

किसी समाज के व्यक्तियों के सदाचार में वृद्धि होने से वह समाज ऊँचा बनता है, और समाज

* "But the point to be noted is that the social revolution will be accomplished on secular principles, that this province of practical life is once for all severed from any theological interference. The proletariate of Europe is resolved to have its fair share of the banquet of life, quite regardless of the good or bad things in store for it in the next world".—The Service of Man, p. 101.

* "A bitter experience has at least taught us that the immortals are deaf, that no prayers, however passionate, are heard, save by the care laden hearts which utter them".—The Service of Man, p. 102.

† "Complete life carrried on under social conditions".—Herbert Spencer's Data of Ethics, p. 130. (I have taken the quotation from the Service of Man.)

के उत्कृष्ट होने से उसका प्रभाव व्यक्तिगत जीवन को उच्च बनाता है। अब हम जीवन-विकास के ऐसे स्थान पर पहुँच गए हैं, जहाँ से मानव-भलाई को लक्ष्य कर सफलता की आशा रखते हुए आगे बढ़ सकते हैं। अपने सफ़र के रास्ते का हमको काफ़ी ज्ञान है। हमको यह मालूम है कि किस तरह की मानवी सहकारिता की बदौलत हम अपनी मंज़िल पर पहुँच सकते हैं। हमको यह भी मालूम है कि किस तबियत के लोगों से समाज को मदद मिल सकती है। समाज को अब यह सामर्थ्य है कि वह ऐसे नमूने के लोग ज़्यादा-से-ज़्यादा बना सके। लोक-मत, जिसे हम सामाजिक अंतःकरण (Collective conscience) कह सकते हैं, सामाजिक तथा व्यक्तिगत सदाचार को परिमाण-बद्ध बना सकता है। राजनीतिक क्षेत्र में भी सार्वजनिक तथा सामाजिक भाव का मूल्य बहुत ज़्यादा रहता है। अमीरों के ऐश तथा बेकारी के जीवन से लोगों को घृणा होने लगी है। साम्यवाद (Socialism) के प्रसार से इस भाव का विस्तृत होना ज़रूरी है।

जीवन के दो ही लक्ष्य रह जाते हैं। व्यक्तिगत जीवन को उच्च तथा समाज को उत्कृष्ट बनाना। दूसरों की सेवा करने लायक़ बनने के लिये ज़रूरी है कि पहले हम अपने शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक बल को बढ़ावें। सेहत में ख़राबी होने से कर्तव्य का पालन ठीक तरह से नहीं किया जा सकता। इस विस्तृत ज्ञान के ज़माने में, जब कि युवा तथा प्रौढ़ जीवन का बहुत-सा समय अध्ययन तथा तैयारी में गुज़र जाता है, उच्च कोटि के लोगों का दीर्घजीवी होना समाज के हित के लिये ज़रूरी है *। मानसिक श्रेष्ठता के हम सब क़ायल हैं, परंतु शिक्षा-पद्धति पर हमारे विचार अभी न्यून हैं। अभी हमारी युनिवर्सिटियों का ध्यान शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य की तरफ़ आकर्षित नहीं हुआ है। नैतिक शिक्षा की बड़ी सख़्त ज़रूरत है, परंतु मज़हब के दास इसका गला घोटते हैं। मज़हबी लोग सदाचार पर ज़ोर नहीं देते, बरन् उनका ध्यान पश्चात्ताप की ओर रहता है। तोबा करना ही उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य रहता है। सामाजिक कर्तव्यों को पालन करते हुए जीवन व्यतीत करने की जगह वे ईश्वर से सुलह करना चाहते हैं, और इसे भी मरने के कुछ ही दिनों पहले। मानव-समाज को ऐसे लोगों की ज़रूरत नहीं, जो समाज-विरुद्ध आचरण करें, तथा बुरे कामों में ज़िंदगी-भर लिप्त रहकर आख़िरी समय, जब वे भला-बुरा कुछ भी करने के लायक़ नहीं रहते, पश्चात्ताप ज़ाहिर करें। मानव-समाज को ऐसे लोगों की ज़रूरत है, जो जीवन के आरंभ से ही समाज-हित का काम शुरू कर दें, और ज़माने की रफ़्तार के साथ-साथ उन शुभ कार्यों की मात्रा भी बढ़ती जाती है *। रोना-धोना बेकार है, कर्म ही करना सच्चा धर्म है।

समाज-संरक्षण ही का काम वैज्ञानिक युग का धर्म है †। आज मनुष्य-सेवा ही हमारा महान् कर्तव्य

* "A vigorous old age is able to accomplish out of all proportion more than several careers, however brilliant, cut short in youth".—The service of Man, p. 102.

* "What humanity needs is not people who lead unsocial and wicked lives, and are very sorry when about to die—when, by the nature of the case, they can do no more harm nor good; but people, who at an early period, begin to render valuable service to the good cause, and continue rendering more valuable service as they advance in years".—The service of Man, p. 103.

† प्राचीन भारत में लोग इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे। कर्म के महत्त्व को गीता में अच्छी तरह समझाया गया है। शांतिपर्व में (१०६-१२) भीष्म ने कहा है—"धर्म शब्द (धृ=धारण करना) धातु से बना

है। इस कार्य को सफलता के साथ करने के लिये शिक्षा की ज़रूरत है। शिक्षा की आवश्यकता प्राचीन काल से ही लोगों को प्रतीत होने लगी है। वहशी युवक को अहेर करने की शिक्षा दी जाती थी। युद्ध-कला भी शिक्षा के आधार पर खड़ी है। सार्वजनिक जीवन में भाग लेने के लिये शिक्षा की महान् आवश्यकता है। शिक्षा के अभाव से राजनीतिक जीवन का ह्रास हो जाने की संभावना रहती है। मज़हब भी लोगों को अदृश्य शक्तियों का पूजन करने की शिक्षा देता है। इस उपासना की शिक्षा की ख़ास वजह यह रहती है कि लोग विश्वास करते हैं कि अदृश्य शक्तियों के द्वारा लोगों की लौकिक तथा पारलौकिक भलाई का होना निश्चय रहता है। इस शिक्षा पर लोगों का ज़ोर विशेष रूप से रहा है। मानव-स्वभाव के विकास की ओर लोगों का ध्यान बहुत ही प्राचीन समय से आकर्षित हुआ है।

परंतु इसका विकास पूरी तरह होने नहीं पाया। वहशी की तमाम ज़िंदगी भोजन इकट्ठा करने ही में ख़तम हो जाती है। ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ लोगों की दिलचस्पी का क्षेत्र भी बढ़ता जाता है; फिर भी इनका दृष्टि-कोण बहुत ही संकुचित रहता है। मामूली जंग का जीतना अथवा पड़ोसी नगर पर क़ब्ज़ा करना ही इनका उद्देश्य रहता है। देव-पूजन में भी कुल देवता तथा ग्राम-देवों पर दृष्टि रहती है।

आधुनिक समय में भी मानव-स्वभाव के विकास में न्यूनता दीख पड़ती है। यह उद्देश्य अभी कहीं भी नज़र नहीं आता कि मनुष्य के अच्छे-से-अच्छे नमूने पैदा किए जायँ; मानव-समाज के हित के लिये मनुष्यों की शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक शक्तियों को बढ़ाया जाय। अभी किसी ख़ास मज़हब के लिये, किसी ख़ास मुल्क के लिये अथवा किसी ख़ास पेशे या तिजारत के लिये लोगों को शिक्षा दी जाती है। समाज को ऊँचा बनाने के लिये ज़रूरी है कि व्यक्तियों को अच्छा बनाया जाय। मानव-समाज की सबसे बड़ी माँग शिक्षा है। यह एक बड़ी आशा-जनक बात है कि आज सभ्य-संसार इस तथ्य को मानता है कि व्यक्तियों की शिक्षा तथा उनके विकास का पूरा यत्न करने से ही व्यापक रूप से भलाई हो सकती है। यहाँ पर यह देखना है कि ईश्वर-उपासना की जगह पर मनुष्य-पूजा क़ायम करने से मानव-स्वभाव-विकास के सिद्धांत में कुछ तबदीली होती है या नहीं। हमको यह देखना है कि इसका असर हमारे शरीर, मन तथा हृदय पर क्या होता है।

चिकित्सा-विषयक ज्ञान ने स्वास्थ्य की समस्या को क़रीब-क़रीब हल कर दिया है। स्वास्थ्य-संबंधी नियमों का ज्ञान इतना सुलभ हो गया है कि कोई भी मनुष्य उनका पालन कर स्वस्थ तथा दीर्घजीवी हो सकता है। कड़ी-से-कड़ी बीमारी पर विज्ञान की जीत हुई है। परंतु यह बात भी ठीक है कि डॉक्टरी चमत्कारी के कारण बहुत-से ऐसे लोग बच जाते हैं, जो कमज़ोर रहते और ख़राब संतान पैदा करते हैं। विवाह तथा प्रजा-जनन-कार्य में कुछ सख़्ती करने से यह दिक़्क़त भी हट सकती है। सार्वजनिक तथा निज कर्तव्यों के पालन करने के लिये अच्छे स्वास्थ्य का होना अनिवार्य है। भविष्य में लोकमत ऐसे लोगों की कड़ी आलोचना करेगा, जिनकी सेहत बेवक़ूफ़ी अथवा ज़्यादती की वजह से ख़राब हो जाय।

ज्ञान के प्रसार की आवश्यकता से हर कोई परिचित है। विज्ञान का क्षेत्र दिन-ब-दिन बढ़ता जाता है। परंतु विज्ञान के प्रसार के साथ-साथ विशेषज्ञों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। विशेषज्ञ अपने विषय का पूरा ज्ञान हासिल करता है, परंतु अन्यान्य विषयों के बारे में कुछ भी ख़बर नहीं रखता, यही इसकी ख़राबी है। सब विषयों का अल्पज्ञ

है। धर्म से ही सब प्रजा बँधी हुई है। यह निश्चय किया गया है कि जिससे (सब प्रजा की) धारणा होती है, वही धर्म है।" प्राचीन भारतीय मज़हब के ग़ुलाम न थे। मज़हब का उत्थान इस देश में उस समय से हुआ, जब कि उसका राजनीतिक पतन शुरू हुआ।

(Sciolist) तथा निरा विशेषज्ञ (Pure specialist) मनुष्य-समाज का सच्चा सेवक नहीं बन सकता।

मानव-स्वभाव-विकास में हृदय का विकास ख़ास महत्त्व रखता है। ऊपर कहा जा चुका है कि मज़हब का उद्देश्य सदाचार नहीं होता, बल्कि परलोक में मुक्ति ही का पाना उसका ध्येय रहता है। यहाँ पर यह दिखलाने का प्रयत्न किया जायगा कि इहलौकिक तथा मानवी सिद्धांतों के ज़रिए से मानव-स्वभाव

> प्रोफ़ेसर श्रीरामकुमार वर्मा एम्० ए०—सुधा के शृंगार में आपका चातुर्य स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित है। साहित्य की अलभ्य सामग्री की पूर्ति सुधा की विशेषता है। विश्वास है, यह सुधा-धारा हिंदी का कल्याण करेगी।

के विकास के होने से और ही नतीजा निकलेगा, क्योंकि उद्देश्य ही जुदा होगा, और उसकी पूर्ति के साधन ही कुछ और होंगे।

वनस्पति तथा जीवों का विकास कार्य-कारण के व्यापक नियम पर क़ायम है। इसी नियम पर परीक्षा तथा प्रमाण निर्धारित है। आज किसान तथा पशु-पालक रसायन-शास्त्रियों की मदद से इस बात को जानते हैं कि किन-किन साधनों से वे अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं। वनस्पति तथा जीवों की बीमारी भी दूर की जा सकती है। यहूदी लोग फैलनेवाली मोहलिक बीमारियों को दैविक कोप का प्रमाण समझते थे। प्लेग को रोकने के लिये प्रार्थना तथा यज्ञ किए जाते थे *। आज इन बीमारियों से बचने के लिये लोग डॉक्टरों तथा सैनिटरी इंस्पेक्टरों का मुँह ताकते हैं।

वैज्ञानिक रूप से मानव-स्वभाव का विकास भी इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर किया जा सकता है। दैवी मदद तथा मोअजज़ों पर से हमको विश्वास उठाना होगा; कार्य-कारण के सिद्धांत के दृढ़ पथ पर हमको अग्रसर होना पड़ेगा। खेत जोतने तथा बीज बोने के बग़ैर फ़सल काटने की उम्मीद रखना महज़ पागलपन है। नैतिक दृष्टि से मज़हब का देव-कृपा (Grace) तथा अध्यात्म-शास्त्र की इच्छा-शक्ति का स्वातंत्र्य (Freedom of the will) के सिद्धांत दोनो मानव-स्वभाव के विकास को नष्ट करनेवाले हैं *।

मज़हब ईश्वर की कृपा के लिये सब कुछ कर सकता है। सदाचार उसके लिये कोई महत्त्व की चीज़ नहीं। मज़हब का सिद्धांत है कि ईश्वर की कृपा के बग़ैर कुछ नहीं हो सकता; उसकी कृपा से पल-भर में राई पर्वत बन सकता है।

---

* "Help us, O Lares! help us, Lares, help us,
And thou of Marwar, suffer not
Fell plague and ruin's rot
Our folk to devastate".—Song of the Arval Brother. (I have taken the quotation from the Service of Man, p. 105.)

आज बीसवीं सदी में भी भारत में लोग हैज़ा और चेचक को देवीजी का कोप समझते हैं। माली का गाना-बजाना करने का नतीजा चेचक की बीमारी में बहुधा भयानक होता है।

* "The theological doctrine of grace, and the metaphysical doctrine of the freedom of the will, are alike fatal to a steady cultivation of human nature from a moral point of view".—The Service of Man, p. 105.

चित्रों की छपाई के नियम

(१) सुधा तथा गंगा-पुस्तकमाला की पुस्तकों में प्रकाशित चित्र हम छाप देंगे।
(२) कागज़ का दाम पेशगी देना चाहिए।
(३) पैकिंग आदि ख़र्च ग्राहकों के जिम्मे होगा।
(४) काम वक्त पर दिया जायगा।
(५) छपाई के रुपए नक़द या वी० पी० से लिए जायँगे।
(६) चित्र में ४-५ लाइनों से अधिक मैटर नहीं दिया जा सकेगा।
(७) १००० चित्रों की छपाई की दर यह है—

सुनहरी या रुपहली चौरंगा चित्र—

(अ) हमारे ब्लाक से	२५)
(ब) ग्राहक के ,,	२०)

तिरंगा—

(अ) हमारे ब्लाक से	२०)
(ब) ग्राहक के ,,	१५)

दुरंगा—

(अ) हमारे ब्लाक से	१२)
(ब) ग्राहक के ,,	१०)

एकरंगा—

(अ) हमारे ब्लाक से	५)
(ब) ग्राहक के ,,	४)

(८) यह रेट ७॥ × १० साइज़ या इससे छोटे कागज़ पर १ चित्र छापने का है।
(९) ७॥ × १० साइज़ से बड़े कागज़ के लिये रेट अलग होंगे। पूछने से मालूम होंगे।
(१०) एक ही चित्र ३००० या ज्यादा छपवाने पर रियायत की जायगी।
(११) ग्राहक महोदयों को अपना पता और स्टेशन का नाम साफ़-साफ़ लिखना चाहिए।

मैनेजर गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

हमारी सभ्यता का इतिहास

[श्री० प्रो० धीरेंद्र वर्मा एम्० ए०, अध्यक्ष हिंदी-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय]



अपने देश के राजनीतिक इतिहास तो कुछ अवश्य मौजूद हैं, किंतु अपनी सभ्यता के अन्य अंगों के इतिहास बिलकुल ही देखने को नहीं मिलते। किसी भी देश की सभ्यता के इतिहास में राजनीतिक अवस्था का वर्णन केवल एक अंग है। राजनीतिक अवस्था के साथ-साथ देश की धार्मिक अवस्था, साहित्यिक अवस्था, सामाजिक अवस्था, आर्थिक अवस्था आदि ऐसे अन्य आवश्यक अंग भी हैं, जिनके अध्ययन के बिना किसी देश की सभ्यता का ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। इस कमी को समझकर कुछ दिनों से राजनीतिक इतिहासों में ही साहित्य, धर्म और समाज आदि पर संक्षिप्त विवेचन सम्मिलित किए जाने लगे हैं। गत तीन-चार वर्षों के अंदर आधुनिक साहित्य पर कुछ स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे गए हैं, किंतु अब तक हिंदी में मुझे किन्हीं स्वतंत्र धार्मिक, सामाजिक या आर्थिक इतिहासों के देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है।

सच तो यह है कि हिंदी में अभी आदर्श राजनीतिक इतिहास भी नहीं है। क्या हिंदी में भारतवर्ष का कोई ऐसा प्रामाणिक, मौलिक इतिहास मौजूद है, जिसकी जानकारी अँगरेज़ो, फ्रांसीसी, जापानी, बंगाली या मराठी विद्वानों के लिये अनिवार्य हो? पाठकों ने भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों—जैसे बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब आदि—के राजनीतिक इतिहासों के नाम अवश्य सुने होंगे, किंतु हिंदी में क्या एक भी हिंदी-भाषा-भाषी प्रदेश—हिंदोस्तान, हिंद या अंतर्वेद—का इतिहास भी लिखा गया है? इसकी कदाचित् अभी हम लोग कल्पना ही नहीं कर पाए हैं! साहित्यिक इतिहास के क्षेत्र में भी अभी हम जनता के हाथ में कोई एक मौलिक सुपाठ्य पुस्तक नहीं दे सकते, जिसमें वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक हिंदी-साहित्य तक का ब्योरेवार प्रामाणिक वर्णन हो।

वास्तव में राजनीतिक और साहित्यिक इतिहासों की सामग्री इकट्ठा करने और इन विषयों पर पहलेपहल ग्रंथ लिखने का श्रेय भी हमारे अँगरेज़ विजेताओं को ही प्राप्त है। भारतीय लेखकों द्वारा अँगरेज़ी अथवा हिंदी में इन विषयों पर लिखे गए ग्रंथ अँगरेज़ लेखकों के इन मूल-ग्रंथों के प्रायः जुगाली-मात्र हैं। विदेशी विजेता का दृष्टि-कोण विशेष हुआ करता है, किंतु दुर्भाग्य से विदेशी लेखकों अथवा उनका सहारा लेकर देशी लेखकों द्वारा लिखे गए इतिहासों के संक्षिप्त रूप हम लोग कई पीढ़ियों से पढ़ते आ रहे हैं, जिसके कारण राष्ट्र के मानसिक विकास को भारी धक्का पहुँचा है। इस संबंध में कुछ सुधार अवश्य हो रहा है, किंतु राजनीतिक परिस्थिति के कारण उसकी गति अत्यंत मंद है। भारतीय प्रोफ़ेसरों से लेकर विद्यार्थीवर्ग तथा साधारण जनता तक में

विदेशियों द्वारा लिखे गए इन इतिहासों का विष ऐसा व्याप्त हो गया है कि इसके दूर होने में कदाचित् कई पीढ़ियाँ लगेंगी।

नाम-मात्र के लिये राजनीतिक तथा साहित्यिक इतिहास तो कुछ मौजूद भी हैं, किंतु जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है, अपनी सभ्यता के अन्य अंगों का अध्ययन अभी बिलकुल ही नहीं हुआ है। जिस तरह भारत-वर्ष ५००५० ईसवी, ५०० ईसवी, १५०० ईसवी और १६३१ ईसवी में एक ही राजनीतिक शक्ति से शासित नहीं रहा है, ठीक इसी तरह ५००५० ईसवी, ५०० ईसवी, १५०० ईसवी तथा १६३१ ईसवी में हमारी सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था भी भिन्न-भिन्न रही है। भारत तथा भारत के प्रांतों के संबद्ध राजनीतिक तथा साहित्यिक इतिहासों के समान ही सामाजिक तथा धार्मिक इतिहासों के लिखे जाने की भी बड़ी आवश्यकता है। इस तरह के प्रामाणिक ग्रंथों के न होने के कारण साधारण पढ़े-लिखे लोगों तक में तरह-तरह के भ्रम फैले हुए हैं। लाखों-करोड़ों लोग समझते हैं कि हम सनातन वैदिक धर्मानुयायी हैं, किंतु वास्तव में आजकल के हिंदू-धर्म में मूल वैदिक धर्म की मुख्य बातों में से कदाचित् एक भी अपने मूल-रूप में मौजूद नहीं है। करोड़ों हिंदुओं की धारणा है कि वर्तमान हिंदू-समाज की विशेषता वर्णाश्रम-धर्म के सिद्धांत का मौजूद होना है। किंतु सच यह है कि भारतीय आर्य-समाज से वर्णाश्रम संगठन को लुप्त हुए बहुत सदियाँ बीत गईं। हमारी सच्ची सामाजिक और धार्मिक अवस्था का ज्ञान हमें तभी हो सकता है, जब हमारे सामने हमारे धर्म और समाज का सच्चा क्रम-बद्ध इतिहास मौजूद हो। तभी हम ठीक-ठीक समझ सकते हैं कि हम कहाँ थे, और कहाँ से होते हुए कहाँ पहुँच गए हैं, और भविष्य में किधर जाना हितकर होगा। इस समय तो हिंदू-समाज और हिंदू-धर्म राम-आसरे चल रहा है।

धर्म और समाज के विकास के अध्ययन के ढंग पर देश की आर्थिक तथा कला-संबंधी अवस्था का अध्ययन भी आवश्यक है। उदाहरण के लिये आज हम जिन मकानों में रह रहे हैं, वास्तु-कला की दृष्टि से क्या वे हिंदू-मकान हैं? आजकल के बाबू लोगों की गांधी कैप, कुर्ता और उसके ऊपर वेस्ट कोट और खुले कालर के कोट, धोती, मोज़े और बूट जूते की तरह हमारे मकान भी कला की दृष्टि से महा-संकर हो रहे हैं। कलकत्ता, बंबई, बनारस, लखनऊ, कानपुर, दिल्ली आदि शहरों की इमारतों में भारत की अपनी छाप कितनी है?

आजकल अपने देश में सभ्यता के केवल एक अंग काव्य-साहित्य के अध्ययन और विकास की ओर प्रायः समस्त रही-सही शक्ति लगाई जा रही है। किसी देश की सभ्यता में साहित्य केवल एक अंग-मात्र है, इसे नहीं भुलाना चाहिए। हिंदी-ग्रंथ-भंडार तभी पूर्ण समझा जा सकेगा, जब उसमें काव्य-साहित्य के अतिरिक्त राजनीति, धर्म, समाज, अर्थशास्त्र, कला तथा विज्ञान आदि पर भी वैसे ही उत्कृष्ट मौलिक ग्रंथ मौजूद हों। विविध अंगों पर सामग्री इकट्ठा हो जाने के बाद ही अपनी सभ्यता का पूर्ण इतिहास लिखा जा सकेगा।

नवीन कवि

[श्रीयुत विश्वनाथप्रसाद एम्० ए०]

कवि ! रचना करनी सिखला दे मुझको भी इस बार ;
करती है कल्पना आज मानस में केलि-विहार।
नाच-नाच उठती जग-रण में मेरी भी तलवार ;
कभी जीत, तो कभी मुझे भी खानी पड़ती हार।
भटक-भूल जाता हूँ मैं भी सिर पर रख भव-भार ;
क्रूर परिस्थितियों की पड़ती है मुझ पर भी मार।
बज उठते हैं मेरी भी इस हृत्तंत्री के तार ;
कभी कला, तो आकुलता की कभी उठे झनकार।
लहराता है मेरी भी स्मृति में ज़ोरों का ज्वार ;
विरह-विकल दृग से भी बहती है आँसू की धार।
लुट-लुट जाता है मेरा भी सोने का संसार ;
खोती हैं ये आँखें भी पा कभी किसी का प्यार।
दूर देश से सुन करुणा की व्याकुल प्रणय-पुकार ;
उड़ जाता है मेरा भी मन कभी-कभी उस पार।
बह आती है कभी इधर भी मीठी मलय-बयार ;
हिल पड़ती है मेरे उर-उपवन की भी तरु-डार।
किंतु बात मन की मन में ही रह जाती बेकार !
कवि ! जीवन का भेद बता दे मुझको भी इस बार।

बिलकुल नई



चार पुस्तकें

(१) कोतवाल की करामात—लेखक, हिंदी-संसार के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार बा० वृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ऐडवोकेट । आपके दो उपन्यास 'गढ़-कुंडार' और 'प्रेम की भेंट' हाल में गं० पु० मा० से प्रकाशित हुए हैं, जिनकी प्रशंसा हिंदी-संसार ने मुक्त कंठ से की है । वर्माजी पर हिंदी-संसार को गर्व है । उन्हीं की लेखनी से निकला हुआ 'कोतवाल की करामात'-नामक एक छोटा-सा सामाजिक उपन्यास है । इसे रोचक बनाने में वर्माजी ने कुछ उठा नहीं रक्खा । पुस्तक को हाथ में लेने पर आप उसे समाप्त करके ही छोड़ेंगे । इसलिये अधिक प्रशंसा करना व्यर्थ है । छपाई-सफ़ाई और गेट-अप अत्यंत सुंदर । मूल्य १), सजिल्द १॥)

(२) भाग्य—लेखक, श्रीऋषभचरण जैन । सुंदर, भाव-पूर्ण, सामाजिक उपन्यास । किस प्रकार पात्रों के मनोभावों ने गिरगिट की तरह रंग बदले, किस तरह घटनाओं ने अजीब-अजीब रूप धारण किए, और किस तरह अंत में योग्य नायक-नायिका का संयोग हुआ—ये सब बातें जीती-जागती-सी आँखों-आगे फिरने लगती हैं । भाषा नए ढंग की है, और कथा ठीक शिथिलता-हीन और अनोखी है । हिंदी में बिलकुल नई तरह का सामाजिक उपन्यास है । मूल्य १), सजिल्द १॥)

(३) संध्या-प्रदीप—लेखक, श्रीगोविंदवल्लभ पंत । इस पुस्तक में पंतजी की पाँच मौलिक कहानियों का संग्रह है । इन कहानियों में कुछ ऐसी जान डालनेवाली शक्ति है कि पढ़नेवाले के दिल और दिमाग़ दोनो पर असर करती हैं । सभी कहानियाँ ऐसी परिमार्जित और सरल भाषा में लिखी गई हैं कि थोड़ा पढ़ा-लिखा भी समझ लेगा । मूल्य १), सजिल्द १॥)

(४) राजयोग अर्थात् मानसिक विकास—योगी रामचारक-लिखित अँगरेज़ी पुस्तक राजयोग अर्थात् Mental Development का हिंदी-रूपांतर । अनुवादक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० । यह वह विद्या है, जिसके द्वारा आप अपने मानसिक दूषणों और त्रुटियों को दूर करके मनःशक्ति को प्रबल तथा 'हृदय' को परमानंद-परिप्लावित कर सकते हैं । लेखक ने इसमें मन के भिन्न-भिन्न भेदों का स्पष्ट वर्णन करके आत्मोद्धार के उत्तम उपाय बतलाए हैं । इसमें अनुभव-हीनों की तरह मन को मारना या इसे ज़बरदस्ती दबा लेना नहीं बतलाया गया है । स्वामीजी ने इसमें मतवाले मन को स्वच्छंद रीति से वश में करना सिखाया है । सुंदर उपदेशों के साथ-साथ सरल भाषा में ऐसे मंत्र दिए गए हैं, जिनके मनन से वास्तविक कल्याण होगा । इसके तत्त्व पढ़ने से ही ज्ञात होंगे । मूल्य १॥), सजिल्द २)

पर्वत-यात्रा

[कुमारी शकुंतलादेवी स्नातिका]



आज पंजाब-प्रांत की 'कन्या-महाविद्यालय' नाम की संस्था को कौन नहीं जानता ? इसमें भिन्न-भिन्न प्रांतों की कन्याएँ आकर शिक्षा ग्रहण करती हैं। उन्हें यहाँ किसी प्रकार की असुविधा और तकलीफ़ नहीं अनुभव करनी पड़ती। साल में दो मास का ग्रीष्मावकाश भी होता है, जिसमें समीपवर्ती कन्याएँ तो अपने-अपने घर चली जाती हैं, किंतु दूरवर्ती कन्याओं के लिये यह कार्य कठिन-सा होता है, इसलिये छुट्टियों से पूर्व ही, उनके संरक्षकों से आज्ञा लेकर, उन्हें पर्वत-यात्रार्थ बाहर ले जाते हैं। इसी प्रकार इस वर्ष भी श्रीपूज्य आचार्य लाला देवराजजी के साथ ११।८।३१ को प्रातःकाल ३॥ बजे लॉरी में पर्वत-यात्रार्थ रवाना हुईं।

एक सेवक और एक मिसरानी को मिलाकर कुल संख्या २३ के क़रीब थी।

कन्याओं की मंडली के प्रबंध का काम श्रीकृष्णादेवी ने अपने हाथों में ले लिया था, और व्यय आदि के हिसाब-किताब को कुमारी शकुंतलादेवी ने सँभाला।

पहले तो होशियारपुर की तरफ़ से गगरेट तथा भरवाईं होते हुए कुछ दिन गर्ली और परागपुर में निवास करके कलेश्वर महादेव और ज्वालामुखी भी जाने का विचार था। गर्ली में रायबहादुर लाला मोहनलाल ने और परागपुर में जज श्रीजयालालजी ने कन्याओं के रहने के लिये अपनी कोठी दे दी थी, किंतु एक तो छोटी कन्याओं की संख्या ज्यादा होने के कारण और दूसरे खान-पान की सामग्री भी आवश्यकतानुसार साथ थी, क्योंकि लगभग एक मास की खान-पान सामग्री—दाल, खाँड़, घी और मसाला आदि—साथ लेकर जाना ही उचित समझा। इनके सिवा कपड़ों के ट्रंक, बिस्तरे भी साथ थे, और साथ ही परागपुर और गर्ली के पर्वत भी ऊँचे न होने से ठंड का लाभ ही नहीं उठाया जा सकता था, इसलिये बैजनाथ की ही यात्रा का विचार करना पड़ा। लॉरी का प्रबंध पहले से ही कर लिया था, क्योंकि रेल में सफ़र करने से हमें पहले अमृतसर और फिर पठानकोट में गाड़ी बदलनी पड़ती थी, जिसमें क़ुलियों के खर्च के सिवा चढ़ने-उतरने की भी चिंता रहती थी। यों तो पठानकोट तक रेल और लॉरी का किराया समान ही है।

यों तो मंडली की छोटी-बड़ी कन्याओं को मिलाकर कुल १७ सवारियाँ होती थीं, किंतु लॉरीवाले से कुल २० सवारियों का किराया देकर पूरी लॉरी किराए पर ले ली। इस लॉरी में २१ सवारियों का स्थान था। दस अगस्त, ५ बजे सायंकाल को लॉरी आश्रम के द्वार पर आ खड़ी हुई। अधिष्ठात्री महादेवीजी ने (क्योंकि

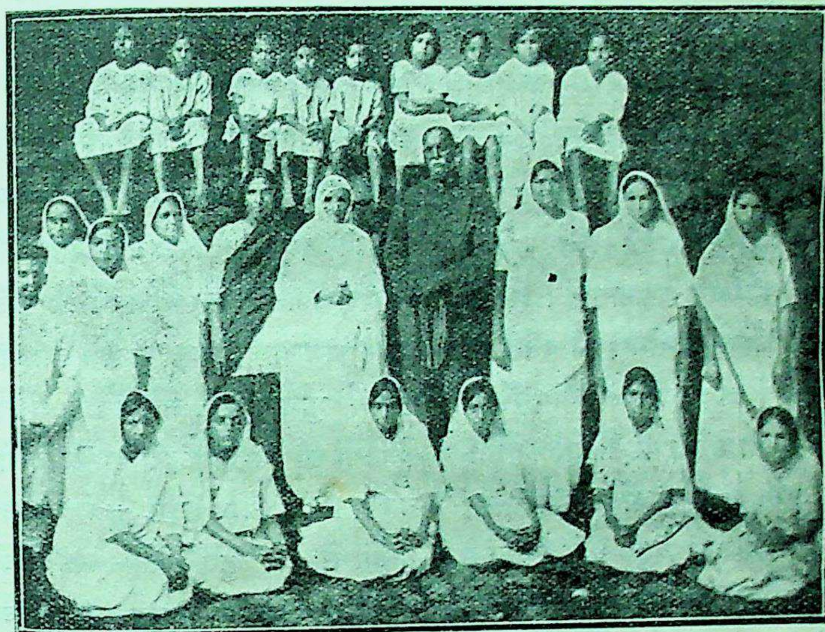
श्रीमती मुख्याधिष्ठात्री नारायणदेवीजी घर गई हुई थीं) पहले से ही खान-पान की सामग्री बोरियों तथा पीपों में बंद करके रख ली थी। इस सामग्री में कसार, लड्डू, मट्ठियाँ, बिस्कुट, बड़ियाँ तथा काबुली चने और पागी हुई सौंफ़ भी साथ थी। बर्तन भी हमने ले लिए थे। कन्याओं ने अपने-अपने बिस्तरे तथा ट्रंक तैयार कर रक्खे थे। यह सब सामान सायंकाल को ही लॉरी में भर दिया गया था। जिस पर पहले एक दरी और ऊपर मोमजामे की तरपाल बिछाकर वर्षा से सामान की रक्षा कर ली गई। दो बजे रात्रि को यात्रा-मंडली जगी, और स्नानादि सर्व कार्यों से निवृत्त हो लॉरी पर सवार हो श्री-पूज्य चाचा देवराजजी की कोठी पर पहुँची। वहाँ से उन्हें तथा कुमारी कलावतीजी को साथ लेकर ठीक ३½ बजे लॉरी अमृतसर की तरफ़ रवाना हुई, और ६½ बजे प्रातःकाल अमृतसर पहुँच गई। वहाँ से बटाला, गुरुदास-पुर, दीनानगर होते हुए हम सकुशल ६ बजे पठानकोट पहुँच गए। रास्ते में लगभग आध घंटा पठानकोट, गुरुदासपुर के मध्य में जल-पानादि के लिये ठहरे भी थे।



कन्या-महाविद्यालय पर्वत-यात्रा मंडली नं० १

(कांगड़े का एक कुंज)

पठानकोट में हमारे भोजनादि का प्रबंध पहले से ही हो गया था, क्योंकि हमने एक दिन पूर्व ही अपने आदमी को वहाँ रेल द्वारा भेज दिया था। पठानकोट तक लॉरी का किराया २० सवारियों के हिसाब से प्रति सवारी १।।) चुका दिया गया, और एक नई लॉरी किराए पर ली गई, इससे हमे बड़ी बचत हुई। क्योंकि यहाँ बंदरों की संख्या बहुत थी, जिन्हें छोटी-छोटी कन्याएँ देखकर बहुत ही प्रसन्न हुईं। वहाँ से १½ बजे लॉरी रवाना होकर ६ बजे बैजनाथ पहुँच गई। असबाब कुछ तो कुलियों ने उठाया, और बाक़ी छोटा-छोटा सामान स्वयं कन्याएँ श्रीपूज्य चाचाजी के कथौगी-नामक बाग़ तक ले गईं। रास्ते में थोड़ी-सी वर्षा हो



कन्या-महाविद्यालय पर्वत-यात्रा मंडली नं० २

(अच्छर-कुंड)

यदि हम रेल से भी जाते, तो हमें प्रति सवारी लगभग २।।) देने पड़ते, किंतु पठानकोट से बैजनाथ तक हमें १८ सवारियों का केवल १।।) प्रति सवारी ही देना पड़ा। हमने भोजन-सामग्री अपने साथ ही रख ली, और कोटले से दो मील की दूरी पर त्रिलोकनाथ का जो मंदिर है, वहाँ बैठकर बड़े आनंद से भोजन किया। चुकी थी, इसलिये उस समय का दृश्य बड़ा सुहावना प्रतीत होता था। आकाश में कुछ-कुछ मेघ छाए हुए थे, धूप बिलकुल न थी। यदि धूप होती, तो शायद कुछ तकलीफ़ भी होती। मार्ग में ठौर-ठौर पर नदियाँ बहती और झरने झरते थे। उनके कलकल निनाद को श्रवणकर चित्त अतीव प्रसन्न होता था। ऐसा प्रतीत होता था,

मानो पहाड़ों की चोटियाँ हाथ जोड़े ईश्वर के गुणानुवाद में ही तल्लीन हों। वहाँ मिसरानी ने भोजन तैयार किया, और हम सब संध्या आदि से निवृत्त हो भोजन करके और कुछ देर संगीत का आनंद ले, निद्रादेवी की गोद में जा बैठीं।

कहते हैं, कोई समय ऐसा था कि पठानकोट से बैजनाथ तक पहुँचने में ३-४ दिन लग जाते थे, किंतु रेल तथा लॉरी से आजकल एक ही दिन में सफ़र पूरा कर लेते हैं।

बैजनाथ बड़ा सुंदर स्थान है। यहाँ ठंड भी काफ़ी है। यह जगह समुद्र से ३३०० फ़ीट ऊँची बताई जाती है। यहाँ लगभग २००० वर्ष का पुराना मंदिर भी अब तक वर्तमान है। इस पर पत्थर की मूर्तियाँ बहुत कारीगरी से बनाई गई हैं, जिससे भारतवर्ष की प्राचीन शिल्पकारी की स्तुति विदेशियों को भी करनी पड़ती है। कथौगी-बाग़ का जल अति निर्मल, स्वादु, ठंडा और पाचक है। ऐसा मीठा जल बहुत थोड़े स्थानों में शायद प्राप्त हो। कहते हैं, पुराने समय में जब राजा संसारचंद ज़िले कांगड़े पर राज्य करता था, तो वह १०० कोस की दूरी से इस जल को मँगवाकर पिया करता था। सचमुच, जल ऐसा ही है।

जिस कोठी में हम उतरे थे, वह कथौगी-बाग़ में है। इसके तीन ओर त्रिवेणी नदी है, और एक ओर, सड़क की तरफ़, घना वन। यह एक बड़ा और एकांत स्थान है। यहाँ भी असंख्य बंदर हैं। नदी का जल स्वच्छ और सुंदर है, क्योंकि ऊँचे रमणीय पर्वतों से बर्फ़, पिघलकर इसका पोषण करती है। अपने कलकल निनाद से सबका मन हरती है। इसके तटस्थ बड़ी-बड़ी शिलाओं पर बैठकर खीर खाने और भजन गाने में जो आनंद आता है, उसका वर्णन करना बड़ा कठिन है। इसी नदी पर यात्रा-मंडली स्नान आदि करती और वस्त्रादि भी धोती थी।

कथौगी-बाग़ की हमारी दिनचर्या इस प्रकार थी। प्रतिदिन प्रातःकाल ५ बजे निद्रादेवी से विदा ले, स्नान तथा संध्या आदि से निवृत्त होकर कुछ जल-पानादि करतीं। तत्पश्चात् ६ बजे से ११ बजे तक स्वाध्याय करतीं। ११½ बजे यथारुचि तैयार किया हुआ भोजन करतीं, तदनंतर १ से ४ बजे तक स्वेच्छानुसार विश्राम करतीं, और ४½ बजे फिर दुग्धपानादि करके लगभग ५ बजे के क़रीब बाहर भ्रमणार्थ निकल जातीं। इस सैर में अनेक दृश्यों—झूलना पुल, जल-प्रपात, पर्वतों की ऊँची चोटियों की गहरी कंदराओं की जमी हुई बर्फ़, घने वनों में क्रीड़ा करते हुए बादल और हरे धानों से भरे हुए खेतों—को देखकर बहुत आनंदित होती थीं। कहीं-कहीं श्रीपूज्य चाचाजी हमें इन दृश्यों पर कई प्रकार की घटनाएँ सुना-कर उपदेश देते थे, जिससे हमें कई विचित्र-विचित्र बातों का पता लगता था। इन पर्वतों पर गद्दी नाम की एक जाति है, जो प्रायः ऊँचे-ऊँचे पर्वतों पर निवास करती है। ये अपने पशुओं को 'धन' नाम से पुकारते हैं। क्योंकि ऊन तथा घी आदि पर इनका विशेष निर्वाह होता है। अपने को यह खत्री कहते हैं। कोई कपूर, मल्होतरे और खन्ना आदि भी हैं। कहा जाता है, औरंगज़ेब के समय में जब

हिंदुओं को बलात्कार मुसलमान बनाया जाता था, तो ये लोग निज धर्म की रक्षार्थ इन पहाड़ों पर जा बसे। गद्दी-जाति कुत्तों पर अपना विशेष प्रेम रखती है, क्योंकि यह भेड़, बकरियों की रक्षा करने में बड़े काम आते हैं। चीते और बाघ भी इन कुत्तों से भय खाते हैं। फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या। गद्दी-जाति बड़ी रूपवान् और हृष्ट-पुष्ट होती है। होना ही था, क्योंकि इनको विकट पर्वतों में निवास करने के लिये बहुत परिश्रम करना पड़ता है। जो जाति श्रम-शील हो, उसका स्वस्थ रहना कोई असंभव बात नहीं।

यहाँ एक बिच्छू-नामक पौधा होता है, जिसके पत्ते पान के आकार के होते हैं। उनको स्पर्श करने से खुजली पैदा होती है, और यदि मला जाय, तो सूजन हो जाती है। प्रायः देखा गया है कि जहाँ बिच्छू बूटी के पौधे होते हैं, वहाँ उनके पास ही एक और पौधा होता है, जिसे मक्खनो बूटी के नाम से पुकारते हैं। इसके मलने से खुजली दूर हो जाती और सूजन भी हट जाती है। भंग के हरे पत्ते मलने से भी खुजली दूर हो जाती है।

जालंधर की अपेक्षा खान-पान की सामग्री के भाव में कोई विशेष अंतर नहीं है, जैसा कि निम्न-लिखित ब्यौरे से पता लगेगा—

गेहूँ का आटा	१)	का १४ सेर
खाँड़	।—)	,, १ सेर
घी	१॥)	,, १ सेर
दूध	=)॥	,, १ सेर

बैजनाथ-वास के विषय में कन्याओं ने कुछ छंद स्मरण किए, जो श्रीपूज्य चाचाजी द्वारा विरचित किए गए थे।

२२।८।३१ को हम सबने बैजनाथ से बीड़ को प्रस्थान किया। बीड़ बैजनाथ से ६ मील की दूरी पर है। यहाँ का मार्ग पहाड़ों को चीरकर बनाया गया है। कहीं रेलगाड़ी पटरी से नीचे न उतर जाय, इसलिये बहुत धीरे-धीरे उस मार्ग को तय करती है। इस मार्ग में प्रत्येक को भय की आशंका बनी रहती है। बैजनाथ से बीड़ तक संपूर्ण रास्ते में कुछ-कुछ बूँदा-बूँदी होती रही। दिन बड़ा रमणीय और सुहावना प्रतीत होता था। जब हम ऐजू-स्टेशन पर पहुँचीं, तब श्रीपूज्य गंधर्वराजजी ने पहले से ही क़ुलियों तथा खच्चर आदि का प्रबंध कर लिया था। क्योंकि श्रीचाचाजी इस इंतज़ाम के लिये पहले ही बीड़ पहुँच चुके थे। स्टेशन से श्रीचाचाजी की कोठी १½ मील की दूरी पर थी। यात्रा-मंडली प्रसन्न-वदन हँसती-खेलती हुई पैदल ही कोठी तक गई। वर्षा हो जाने के कारण सारा मार्ग कीचड़ से भरपूर था। कहीं-कहीं तो जल और पत्थरों की ही भरमार दिखाई पड़ती थी। इन सब रास्तों को उलाँघती हुई निश्चित स्थान पर पहुँची। कन्याओं के सर्व वस्त्रादि कीचमय हो गए थे। श्रीपूज्य चाचाजी की कोठी पर हम सबने जल-पान किया। तदनंतर श्रीरामजी की कोठी में गईं, क्योंकि पूर्व ही हमारे निवास के लिये यह स्थान निश्चित किया जा चुका था। यहाँ हमारी दिनचर्या बैजनाथ की ही तरह रही। यहाँ बैजनाथ की अपेक्षा काफ़ी खुला स्थान था। वर्षा भी खूब होती थी। काले-काले मेघ हर समय

पर्वतों के चारो ओर परिक्रमा किया करते थे। समय पा थोड़ी-थोड़ी देर बाद बारिश भी कर देते थे, जिससे समय अति रमणीय और सुहावना प्रतीत होता था। बीड़ को चाय बहुत प्रसिद्ध है। कोठियों में बनती हुई चाय भी हम सबने बड़ी उत्सुकता से देखी। यहाँ के सभी मनुष्य प्रायः बहुत ग़रीब हैं। वे चाय की पत्ती को तोड़कर और चाय तैयार करके अपना तथा परिवार का पालन-पोषण करते हैं। ये सब पहाड़ी लोग प्रायः अनपढ़ ही हैं। इसलिये प्रकृति की शोभा का निरीक्षण कर कुछ भी आनंद नहीं उठा सकते। यहाँ की पैदावार सिर्फ़ चाय और अख़रोट ही है। यहाँ एक सुप्रसिद्ध योरपियन स्त्री की कोठी है, और इसमें मशीन द्वारा चाय बनाई जाती है। इसके निरीक्षणार्थ भी हम गई थीं। कुछ वर्ष हुए कि उस देवी का परलोक-गमन हो गया, क्योंकि वह काफ़ी वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुकी थीं।

यहाँ से २५।६।३१ को यात्रा-मंडल में से ७ व्यक्ति योगेंद्रनगर की कार्यवाही देखने गए थे। योगेंद्रनगर पठानकोट से ६६ मील की दूरी पर है। यहाँ हम समाज-मंदिर में उतरे, और कुछ जलपानादि ग्रहणकर वायु-सेवनार्थ बाहर चल दिए। उस दिन हमने योगेंद्रनगर का सारा नीचे का भाग बड़ी अच्छी तरह से देख लिया। दूसरे दिन २६।६।३१ को प्रातःकाल जलविद्युत्-प्रणाली देखने के लिये गए। यह जल द्वारा बिजली पैदा करने का बड़ा भारी विधान है। यह नगर समुद्र से ४००० फ़ीट ऊँचा है, और वहाँ साथ के पर्वतों की चोटियों से जो कि लगभग १८००० फ़ीट ऊँचे से ऊल-नदी बहती आती है। इसके साथ ही लंबादाग-नदी इतनी ही उँचाई से बहती हुई इसके साथ आकर मिल जाती है। ऊँची चोटियों से सुरंग द्वारा जल नीचे लाने का परिश्रम किया जा रहा है, और योगेंद्रनगर में ही बिजली-घर बनाने का विचार है। लगभग १४२०० फ़ीट लंबी सुरंग तैयार की जायगी। इस इतने बड़े काम की सफलता के लिये पहले पठानकोट से योगेंद्रनगर तक एक रेलगाड़ी की सड़क तैयार की गई, और इसके साथ ही ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ने के लिये बिजली के तारों से खींची जानेवाली ट्रामगाड़ी तैयार की गई। यह ट्रामगाड़ी लगभग ६,३०० फ़ीट की ऊँची चढ़ाई को चढ़कर पूरा काम दे सकती है। कहते हैं, जब इस विद्युत्-विधान (बिजली का कार्य) में पूर्णरूपेण सफलता प्राप्त हो जायगी, तो पंजाब के नगर और ग्रामों को भी बिजली का प्रकाश बड़ी सुगमता से प्राप्त होगा। इस कार्य में अब तक कई करोड़ रुपया ख़र्च हो चुका है। कइयों का तो यह कहना है कि सरकार व्यर्थ ही रुपया ख़र्च करने में लगी हुई है। न-जाने इसके लिये कितना धन व्यय होगा, तब भी सफलता में संदेह ही है। सब स्थानों पर पैदल ही घूमती हुई लगभग १० मील का चक्कर काटती हुई निज स्थान पर पहुँचीं। २७।६।३१ को फिर बीड़ में वापस आ गई।

यहाँ श्रीपूज्य चाचाजी ने हमारी भूतपूर्व स्वर्गवासिनी आचार्या सावित्रीदेवीजी की मधुर स्मृति के लिये कुछ स्तोत्रों की रचना की। हम सबने इसे कंठ करके, इसके नित्य पाठ का व्रत

ले लिया। इससे हमें अपनी पूजनीया स्वर्गवासिनी पहली आचार्या के गुणों का बोध हुआ।

२९।९।३१ को बीड़ से जालंधर की ओर प्रस्थान किया। बैजनाथ तक तो रेलगाड़ी की सवारी, उससे आगे कांगड़े तक लॉरी किराए पर की। मार्ग में मूसलाधार वर्षा होती रही, जिससे हम लॉरी में भी सुरक्षित न रह सकीं। कांगड़े में हम दीवान मानचंद्रजी वकील की कोठी में ठहरीं; उन्होंने हमारा बड़ा आदर-सत्कार किया। हमें साथ लेकर प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों तथा वस्तुओं को भी स्वयं ही दिखलाया। यहाँ बाज़ार में ५००० वर्ष का एक पुराना मंदिर भी देखने में आया, जिसका नाम बैजेश्वरनाथ है। यह मंदिर १९०४ में भूकंप के कारण भग्न हो गया था, किंतु मरम्मत आदि करके फिर ज्यों-का-त्यों बना दिया गया है। पांडवों के समय का पुराना दुर्ग भी दृष्टिगोचर हुआ, जो आजकल खँडहर के रूप में है।

कांगड़े के क़स्बे से फिर सुंदर, रमणीय और मनोमोहक दृश्यों का आगमन शुरू हो गया। भीनी-भीनी शीतल वायु का प्रवाह था। ३०।९।३१ को रामकुंड, लक्ष्मणकुंड, सूर्यकुंड, मनोनी बाग़ और बान गंगा आदि स्थानों को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

गुप्तगंगा नाम का सरोवर लगभग ७० फ़ुट लंबा, ७० फ़ुट चौड़ा और ९ फ़ुट गहरा था। अच्छर-कुंड नाम का जल-प्रपात जो कि पहाड़ों को काटकर बनाया गया है, दृष्टिगोचर हुआ। १० फ़ीट की ऊँचाई से इसका पानी नीचे गिरता है। इस रमणीय स्थान पर हम सबने फ़ोटो आदि खिंचवाए थे। चलते समय वकीलजी ने विद्यालय के लिये १०) दान दिया। हम उनकी बड़ी कृतज्ञ हैं। हम बटाला आदि शहरों से होती हुई ९ बजे रात को अमृतसर पहुँचीं। उस समय और कहीं जाना अनुचित समझ जज के घर में ही उतरीं, उस समय भी मूसलाधार वर्षा हो रही थी। रात्रि वहीं काट दूसरे दिन ३१।९।३१ को १२½ बजे क़रीब वहाँ से चल पड़ीं। रास्ते के विचित्र-विचित्र दृश्यों को देखती हुई सायंकाल ५ बजे जालंधर-विद्यालय में आ विश्राम लिया। सब कन्याएँ इस पर्वत-यात्रा से अपने-अपने वज़न के अनुसार अधिक-अधिक उन्नत भी हुईं। इसलिये समझना चाहिए कि हमारी पर्वत-यात्रा सफल हुई।

रैयत और सरकार

[श्रीयुत जी० एस्० पथिक]



भा रतवर्ष के प्रांतों की रचना देखकर इस देश की भी तुलना अमेरिका से की जाती है। भौगोलिक दृष्टि से यह रचना भले ही संभव हो, किंतु अमेरिका के संयुक्त राज्यों की तरह न तो यहाँ के प्रांतों में स्वतंत्र शासन-सत्ता ही क़ायम की जा सकती है, और न वहाँ की तरह कृषि तथा वाणिज्य-व्यवसाय का संगठन ही। पूर्व काल में भारतवर्ष न केवल कृषि-प्रधान देश ही था, बल्कि व्यापार और उद्योग-धंधों में भी अग्रगण्य था। अध्यात्मविद्या, क्षात्रतेज, व्यापार और उद्योग-धंधे—इन सब विषयों में भारतवर्ष की समता करनेवाला संसार में अन्य कोई देश नहीं था। पर आज इस देश में वह संगठन नहीं है। भारतवर्ष के व्यापार-व्यवसाय के सर्वनाश होने से वैश्य-जाति ही नहीं रही है, व्यापारी-जाति का इस देश में शताब्दियों से नामोनिशाँ मिट गया। दैव-दुर्विपाक से इस देश से व्यापार और उद्योग-धंधे तो पूरे छिन गए; किंतु कृषि का धंधा किसी अंश तक बना रहा।

यद्यपि आज भी इस देश को कृषि-प्रधान देश कहते हैं, तथापि उसके साधनों का नाश हो गया है। इस संकट-जनक अवस्था में भारतवर्ष का आधार कृषि और उत्पादन वस्तुओं का व्यवसाय है। इस देश की आबादी में ७६ प्रतिशत किसान हैं। संसार में आज जो कच्चे माल की उपज बढ़ रही है, उससे भारतीय किसानों को अपनी उपज में बहुत थोड़ा मुनाफ़ा बचता है। इन किसानों को आजकल के सभी नवीन साधन सुलभ न होने और शासन-संबंधी घोर विपत्तियों का सामना करने से इस देश की कृषि अमेरिका, आस्ट्रेलिया, मिस्र और रूस से भी पिछड़ गई है। इस विपन्नावस्था में भी सरकार की आर्थिक नीति के कारण इन दरिद्र किसानों की उपज के साढ़े बारह प्रतिशत दाम विदेशियों को दे दिए जाते हैं। जहाँ करेंसी और एक्सचेंज की विपरीत आर्थिक नीति के कारण उनकी पैदावार इस देश में सस्ती हो गई, वहाँ उनका ऋण अत्यंत बढ़ गया है। आजकल भारतवर्ष एक ऋण-प्रधान देश है, इसलिये उसे ज़िंदा रहने के लिये अधिक निर्यात करना पड़ता है। पर इस सस्ताई के कारण उनकी क्रय-शक्ति घट गई है, और उन पर डेढ़ सौ-दो सौ करोड़ रुपए से अधिक का ऋण चढ़ गया है। भारतवर्ष की कच्ची उपज की इतनी दुरवस्था और किसानों के इस संकट में होने पर भी उनसे जो लगान वसूल किया जाता है, और वह जिस तरह वसूल होता है, वह संसार की मानवी स्वतंत्रता के लिये कलंक-स्वरूप है। डेढ़ शताब्दी बीत गई, पर भारतवर्ष की ७५ प्रतिशत रैयत से उत्तरोत्तर भारी लगान निर्दयता-पूर्वक वसूल किया जाता है। भारतवर्ष के अच्छे मौसम में भी भारतीय किसान पूरा लगान देने की सामर्थ्य नहीं रखते, इससे उन्हें अपनी उपज सस्ते बाज़ार में बेंच डालना पड़ती है आजकल की इस हलचल में योरप और अमेरिका के कई प्रसिद्ध पत्रकार और अर्थ-विशारदों ने किसान-आंदोलन का सच्चा वर्णन विदेशीय पत्रों में किया है। संसार के सभी देशों में आज राष्ट्रीयता का ज़ोर-शोर है। सभी देश अपने-अपने यहाँ कच्चा और पक्का माल तैयार करने में लगे हुए हैं, और बाहर के माल पर वहाँ की सरकारों ने भारी ज़कात लगा दी है। इसी से तो और भी संसार में काफ़ी आर्थिक संकट उपस्थित हो गया है। आज उद्योग-धंधेवाले देशों में उतनी बेकारी और सस्ताई नहीं है, जितनी कच्चे माल की उपज करने-

वाले भारतवर्ष में कारण, तैयार माल की अपेक्षा कच्चे माल के दाम अधिक गिर गए हैं। आज संसार में ज़रा-से आर्थिक संकट से बड़ा बावैला मच गया है, पर भारतवर्ष के किसानों का धन वर्षों से शोषण हो रहा है। आज भी संसार के सभी देशों में वैसी विपन्नावस्था नहीं होगी, जैसी भारतवर्ष के कहलानेवाले सुकाल में होती है। इस संबंध में गैरेट-नामक एक योरपीय अर्थ-विशेषज्ञ ने बड़ी सच्चाई से लिखा है— "अच्छी फ़सलवाले साल में भी अधिकांश किसान भूखे रह जाते हैं, और उनके पास इतने दाम नहीं बचते कि वे ज़िंदा रहें, और अपना हर रोज़ का ख़र्च चलावें। मगर इतने पर भी प्रत्येक किसान से प्रतिवर्ष नक़द लगान हम विशेषतः उस समय वसूल करते हैं, जब बाज़ार में ग़ल्ला और दूसरी उपज ख़ूब भरी होती है। उन्हें कौड़ियों के मोल में अपनी पैदावार बेंचकर सरकारी रुपया जमा करना पड़ता है।" इसलिये महात्मा गांधी ने अपनी स्वराज्य की माँग में इन किसानों का कभी विस्मरण नहीं किया। उन्होंने भारतीय किसानों पर अधिक-से-अधिक लगान न रखने की ज़बर्दस्त माँग की। इस देश में स्वराज्य तभी अनुभव किया जायगा, जब पूरी सच्चाई से आर्थिक स्वायत्तता भारतवासियों को सौंप दी जायगी, और भारतवर्ष के किसानों पर से अधिक लगान हटा दिया जायगा। भारत के किसान यह चाहते हैं कि वे भी अँगरेज़ किसानों की तरह इस देश में रहें। इन किसानों से धन शोषण करनेवाले ज़िले और तहसीलों में सरकारी काग़ज़ों को देखकर कई विदेशी विशेषज्ञों को यह कह देना पड़ा —"भारतीय किसान की अपेक्षा अँगरेज़ किसान से उसकी एक एकड़ ज़मीन का ५०वाँ भाग और उपज का १०० वाँ हिस्सा वसूल करने में भी बहुत कम तंग किया जाता है।" जिस प्रकार ब्रिटिश पार्लियामेंट नए शासन-विधान में देशी नरेशों को शामिल कर प्रजातंत्र की भावना को नष्ट करने का उद्योग कर रही है, उसी प्रकार अन्याय-पूर्ण ज़मींदारी पद्धति क़ायम रखकर और दोष-पूर्ण लगान-पद्धति जारी रखकर उसने किसानों की स्वायत्तता नहीं रक्खी है। मगर चाहे ज़मींदार हो, या राजा-महाराजा अथवा अँगरेज़ बहादुर, इस देश की २७ कोटि दरिद्र जनता अपने अधिकार लिए बिना न रहेगी। उसका तो कहना है —

We shall battle exploitation,
Whether be it White or Brown.

आज कोई धनी या रईस इन्हें त्रस्त रखकर अधिक काल तक चैन से नहीं रह सकता। भारत की साख, भारत की पैदावार और वाणिज्य-व्यवसाय क़ायम रखने के साधन हैं ये ग़रीब किसान। सरकार को इस बात की चिंता है कि मालगुज़ारी की आमदनी में ५५ करोड़ रुपया सेना के लिये कभी कम न हों, और आर्थिक स्वायत्तता भी भारतीयों को न सौंपी जाय, क्योंकि हमारे विदेशी शासक कहते हैं कि सरकार का दारमदार अर्थ के नियंत्रण पर ही है। इस नियंत्रण को अनेक बंधनों द्वारा विदेशियों ने अपने अधिकार में रक्खा है। इस देश की इतनी तबाही पर भी विदेशी अपने को संरक्षक कहने का दावा करते हैं, और यह भी कहते हैं कि ज़रा-से संकट के लिये भारतवासी इतना बड़ा ख़तरा और क्रांति क्यों मचाए हुए हैं। सच है, जिसके पैर में बिमाई होती है, उसे ही उसका दुख-दर्द मालूम होता है। साहूकार कब यह जानता है कि उसके क़र्ज़दार की क्या हालत है, उस पर आजकल कैसी बीतती है। वे अपने स्वार्थों का त्याग और न्याय-पूर्ण अधिकार देना ही नहीं चाहते।

भारतवर्ष की पैदावार और वाणिज्य-व्यवसाय में अत्यधिक उन्नति हो सकती है, यदि देश में पूर्ण रूप से राष्ट्रीय, आर्थिक नीति का निर्माण उन सब ग़रीब देशवासियों की बुद्धि से हो, और उन्हीं के ज़िम्मेवार और विश्वसनीय प्रतिनिधि उसका नियंत्रण करें। भारतवर्ष एक क्षण के लिये भी इस प्राथमिक अधिकार को विदेशियों को नहीं सौंपना चाहता। पर विदेशी सत्ता ने विदेशी व्यापा-

रियों की रक्षा की महत्ता के आगे भारतीय किसानों के हित का प्रश्न नगण्य कर दिया। पर भारतीय किसानों की उन्नति व इस देश की आर्थिक पैदावार की रक्षा के लिये हर हालत में विदेशियों के अधिकार कम होंगे। उनके जिस व्यापार-व्यवसाय और उद्योगों से भारत के राष्ट्रीय हितों में बाधा पड़ेगी, वे राष्ट्रीय आर्थिक नीति में कब क़ायम रह सकते हैं?

कहना न होगा कि भारतवर्ष में आर्थिक व्यवहार की नीति में कभी कोई सुधार नहीं हुआ। इस आर्थिक व्यवहार की नीति से हमारा तात्पर्य भारतवर्ष की साख, उपज पदार्थों का संगठन और उनके विक्रय की सुविधाएँ उत्पन्न करना है। विदेशी व्यापार की नीति में इस देश के हितों के लिये परिवर्तन करना, अतिरिक्त संपत्ति को बचाना और नए-नए खेतों को तैयार करना और विविध पैदावारों को बढ़ाना भी आर्थिक व्यवहार की नीति में शामिल हैं। अन्य देशों में देश के आर्थिक व्यवहार और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की नीति कभी एक नहीं है। नए शासन-विधान में भी योरपियन व्यापारियों को भारतीय व्यापारियों के समान अधिकार नहीं मिल सकते। उनकी समान अधिकार की माँग किसानों की पैदावार को नष्ट करने और इस देश का धन शोषण करने के लिये है। क्या किसी भी देश की आर्थिक व्यवहार नीति में दूसरे देश के लोगों को कभी समान अधिकार मिलते हैं? संसार के सभी देशों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की नीति पर दृष्टि डालिए, और यह भी देखिए कि आज संसार में कोई भी ऐसा देश नहीं है, जो अपने देश में कच्चे और पक्के माल की पैदावार बढ़ाने में नहीं लगा हुआ है। इसी से तो संसार में बेहद पैदावार बढ़ गई है। एक देश दूसरे देशों की पैदावार को पूछता तक नहीं है। इसका परिणाम आगे चलकर क्या होगा, उसे विचार करने का हमारा यहाँ उद्देश्य न होने से हम यह अवश्य कहेंगे कि हमने आर्थिक व्यवहार-नीति में जिन बातों का उल्लेख किया है, उन्हीं के द्वारा अन्य देश अपनी उन्नति कर रहे हैं। एक तो भारतवर्ष में अभी तक आर्थिक व्यवहार-नीति का अस्तित्व ही नहीं है, और जहाँ कहीं है भी, तो वहाँ उसका रूप सर्वथा अनुपयुक्त है। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्थिक दृष्टि से भारतीयों का संसार में कोई दर्जा ही नहीं है। संगठन न होने के कारण भारतीय किसानों से पैदावार छिन जाती है, और उल्टे वे दुगने-तिगुने क़र्ज़ में फँसते चले जाते हैं। इसी से देश के किसानों में तथा अन्य श्रम-जीवियों में भयंकर बेकारी फैली हुई है। यह हालत है कि वे न तो किसी तरह का व्यवसाय करते हैं और न कोई काम-काज। भारत के शासन-विधान के समय इन बातों का ज़िक्र तक नहीं हुआ। सरकार का आर्थिक व्यवहार की नीति के संचालन के समय यह नैतिक कर्तव्य है कि वह इन किसानों और मज़दूरों को भूखा न मरने दे। अगर वे बेकार रहते हैं, तो उन्हें राज-कोष से खाने को दे। भारतवर्ष के नए आर्थिक विधान में बेकारों के बीमा का कोष होना चाहिए। इँगलैंड में प्रतिवर्ष कितना धन रोज़ कोष से बेकार बीमा की मद से बाँटा जाता है। अगर वहाँ की सरकार इस मद में रुपया न रक्खे, और लोगों को भूखा मरने दे, तो वर्तमान साम्यवाद के बढ़ते हुए विचारों में एक दिन भी शासन-संकट नहीं चल सके। जब बेकारी बीमा-कोष से भारतीय बेकारों की रक्षा होगी, या राष्ट्रीय सरकार उन्हें उद्योग-धंधों में लगावेगी, तब इस देश के ३२ कोटि मनुष्य अपनी सरकार का अनुभव करेंगे। इस दृष्टि से आर्थिक व्यवहार की नीति का संचालन होने से भारतीय किसान और भारतीय व्यवसायियों को अपने देश के व्यवसाय और उद्योग-धंधों में प्रधानता रहेगी। विदेशियों को बड़ी कठिनाई से दो-तीन शतांश रियायतें पाने का अवसर मिलेगा। जिस दिन भारत को इस रूप में

आर्थिक स्वायत्तता मिलेगी, उस दिन इँगलैंड को अपने कर्मों का पता चलेगा। भारतवर्ष की आर्थिक माँग की नीति में कोई सेफ़गार्ड विदेशियों के अधिकार में नहीं रह सकता। कारण, देश को इस बात का अधिकार प्राप्त होगा कि वह विपरीत अवस्थाओं को हटा दे, और वह सब साधन उपलब्ध कर दे, जिससे नए व पुराने उद्योग-धंधे संसार के अन्य देशों के मुक़ाबले में चलने लगें। इस संबंध में भारतीय महाजन और दलाल तथा आढ़तियों का भी सुधार करना होगा। इन लोगों के अनुचित स्वार्थों से भारतीय पैदावार और उद्योग-धंधे ख़तरे में पड़ गए हैं, किंतु भारतवर्ष की आर्थिक नीति में विदेशी प्रभुत्व सबसे बड़ा ख़तरा है। वह बड़ी सफ़ाई से हमारा धन शोषण करता है। इन विदेशियों ने हमारी आर्थिक नीति पर पूर्ण अधिकार जमा रक्खा है। हम इस क्षेत्र में किसी रंग, जाति व धर्म के विरोधी नहीं हैं। हम तो यह देखते हैं कि उनका मुनाफ़ा इस देश में नहीं रहता, जिससे भारतीय उद्योग-धंधों की उन्नति हो सके। वह देश के बाहर चला जाता है। किसी पराधीन और साधन-हीन देश के लिये इस प्रकार बराबर विदेशों में संपत्ति ढुली चला जाना अत्यंत ख़तरनाक है। इसी ख़तरनाक लूट ने देश में जो ख़राबी पैदा की है, उसे अवश्य दूर करना होगा। विदेशी व्यापारी चीख़ते-चिल्लाते हैं कि हमारे व्यापारिक अधिकारों में कोई हस्तक्षेप न हो। अगर ऐसा हो, तो इस देश को क्या मिला? कोई राजनीतिक अधिकार किस मर्ज़ की दवा है? साहूकारी, चालानी, बीमा, आमदनी-रफ़्तनी और दलाली तक का व्यापार विदेशियों के हाथ में है, और उन्हें अपने अधिकार के लिये हरएक सुविधा प्राप्त है। भारतवासी जब तक इसमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे, तब तक यह संगठित लूट कदापि बंद न होगी। भारतीय किसानों की पैदावार और भारतीय उद्योग-धंधों की रक्षा करना अब अनिवार्य हो गया है। अँगरेज़ व्यापारियों को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि संसार के किसी भी देश में विदेशी व्यापारियों को देश के व्यापार में इतना स्वतंत्र अधिकार नहीं मिलता, जितना उन्हें भारतवर्ष में मिला है, और जिसे वे अब भी क़ायम रखने की धुन में हैं। अँगरेज़ भली भाँति जानते हैं कि फ़्रांस, जापान, चीन तथा उपनिवेशों तक में उनके व्यवसाय में क़ानूनी बंधन लगाए जा रहे हैं। उनसे आज यह साफ़ कहा जाता है कि वे अपने व्यवसाय से राष्ट्रीय व्यापार और उद्योग-धंधों को कोई ख़तरा नहीं पहुँचावेंगे। बेचारे भारतवासी भी यही न्याय-पूर्ण अधिकार चाहते हैं। भारतवासी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में इस देश का प्रभुत्व चाहते हुए भी किसी के साथ अन्याय नहीं करना चाहते। वे यह चाहते हैं कि भारतवर्ष के कच्चे माल की रफ़्तनी भारतीय जहाज़ों के लिये रक्षित रहे। विदेशी बैंक पूरी शर्तों के साथ लाइसेंस लेने पर व्यवसाय कर पावें। बीमा-कंपनियाँ तथा अन्य व्यावसायिक कंपनियों के हिस्सेदार और पूँजी में भारतवासियों का प्रभुत्व हो। आज जूट, चाय और अन्य सूती-ऊनी कारख़ानों के हिस्सेदारों में ७० प्रतिशत भारतीय हिस्सेदार होते हुए भी उनकी व्यवस्था योरपियनों के अधिकार में है। भारतवासियों को इन धंधों के संचालन का ज्ञान प्राप्त हो गया है। व्यापारिक कनवेनशन से भारतवर्ष के इन न्याय-पूर्ण अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए। इस पंचायत से भारतवासियों को विदेशी व्यापारियों के व्यवसाय और विदेशी व्यापारिक कंपनियों पर क़ानून द्वारा नियंत्रण करने का अधिकार प्राप्त हो। ज़मीन, खान और अन्य सार्वजनिक व्यवसाय आदि में भारतवर्ष उचित रूप में टैक्स बढ़ा सके। अँगरेज़ों के व्यापार के संबंध में पंचायत से यह फ़ैसला तय पाए कि वे यह मानें कि भारतवर्ष को वही अधिकार है, जो अन्य राष्ट्रों को राष्ट्रीय और विदेशी धंधों को क़ानून द्वारा नियंत्रण करने के प्राप्त हैं। भारतवर्ष इससे पीछे नहीं हटना चाहता है। इन उद्देश्यों को भारतवासी तो भंग करेंगे ही नहीं, पर विदेशियों को भारतवर्ष के इन न्याय-पूर्ण अधिकारों को पूर्ण रूप से

स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि ब्रिटिश सरकार बिना किसी पशोपेश के, बिना सेफ़गार्ड का बंधन लगाए भारतवर्ष को पूर्ण आर्थिक स्वायत्तता, उपर्युक्त अधिकारों के सहित, प्रदान कर दे, तो वह स्वयं देखेगी कि भारतवासी अँगरेज़ व्यवसायियों के साथ न्याय करने में कभी विमुख न होंगे। यदि यह स्वीकार न हो, तो अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के विशेषज्ञों की पंचायत से अँगरेज़ व्यापारी अपने व्यापारिक अधिकारों का निर्णय करा लें। कारण, भारतवर्ष आर्थिक स्वायत्तता पूर्ण रूप से चाहता है। वह कितने समय तक के लिये भी कोई अधिकार विदेशी शासकों के हाथ में सौंपने के लिये तैयार नहीं है। ग्रेट ब्रिटेन अपने व्यापार और उद्योग-धंधों की रक्षा अनेक संरक्षण करों से कर रहा है। सभी उपनिवेश इँगलैंड के साथ कोई रियायत न कर अपने व्यवसाय की रक्षा के लिये समान रूप से विदेशी माल पर संरक्षण कर लगा रहे हैं। उपनिवेश खुल्लमखुल्ला यह कहने लगे हैं कि उनके व्यवसाय की रक्षा साम्राज्य रियायती कर लगाने को आर्थिक नीति से कदापि नहीं होती। वे तो ग्रेट ब्रिटेन या साम्राज्य के किसी अन्य देश पर अन्य देश की अपेक्षा कोई रियायत नहीं करना चाहते। इस नीति के द्वारा साम्राज्य के उपनिवेशों का संगठन सर्वथा अव्यावहारिक है। कनाडा तो इस इंपीरियल फ़्रीट्रेड की नीति किसी अंश तक नहीं स्वीकार कर सका। उस समय चेंबरलेन ने कनाडा को ग्रेट ब्रिटेन व उपनिवेशों पर कर लगाने का अधिकार देते हुए यह कहा था—

"So long as a preferential tariff, even a munificent preference is sufficiently protective to exclude us altogether, or nearly so, from your markets, it is no satisfaction to us that you have imposed even greater disability upon the same goods if they come from foreign markets especially if the articles in which the foreigners are interested come in under some more favourable conditions."

भारतवर्ष के लिये उपर्युक्त वाक्य अत्यंत महत्त्व-पूर्ण हैं। ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष पर फ़्रीट्रेड का सिद्धांत लादकर इस देश के छोटे-बड़े राष्ट्रीय धंधों तक की रक्षा की चिंता नहीं की। इसके बाद घोर आंदोलन होने पर यह घोषित किया गया कि भारतवर्ष अपने उद्योगों की रक्षा के लिये ग्रेट ब्रिटेन और साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों पर भी कर लगा सकेगा। पर इस संरक्षण नीति का अनुसरण करते हुए भारतवर्ष ग्रेट ब्रिटेन और उपनिवेशों के साथ अपने धंधों की रक्षा करते हुए विदेशों की अपेक्षा रियायती कर लगावे। भारतवर्ष इस इंपीरियल प्रिफ़रेंस की नीति को स्वीकार करने के लिये न तब राज़ी था, और न आज है। भारतवर्ष का निर्यात व्यापार आज भी साम्राज्य के बाहर अधिक है। अभी ग्रेट ब्रिटेन पर रियायती कर लगाकर भारतवर्ष जापान के क्रोध का अनुभव कर चुका है। जो देश भारतवर्ष के कच्चे माल के ख़रीदार हैं, उन्हें वह कदापि अप्रसन्न नहीं कर सकता। साथ ही, उनके कच्चा माल ख़रीदने के कारण भारतवर्ष अपने धंधों को नष्ट कर उनके पक्के माल के आयात पर कोई भी रियायत नहीं कर सकता। जिस प्रकार यह सिद्धांत जापान आदि देशों पर लागू है, उसी प्रकार इँगलैंड पर भी। आज इँगलैंड के धंधे ही तो भारतवर्ष के लिये भयप्रद हो रहे हैं। वह उनसे रक्षा पाने के लिये जापान के मुक़ाबले में कोई न्यून कर नहीं लगा सकेगा। कच्चा माल ख़रीदने के कारण न तो इँगलैंड और न कोई उपनिवेश भारतवर्ष को अन्य देशों की अपेक्षा रियायती कर लगाने के लिये बाध्य कर सकते हैं।

आज भारतवर्ष के व्यापार की साख निर्यात व्यापार से क़ायम है। कच्चे माल की रफ़्तनी साम्राज्य के बाहर के देशों में अधिक होती है। यदि इस माँग में कोई बाधा पड़े, तो भारतवर्ष अपने ऊपर लदा हुआ

भारी क़र्ज़, ब्याज और होम-चार्ज वग़ैरह कहाँ से चुकाएगा। आज इस निर्यात व्यापार से आमदनी में कमी करेंसी और एक्सचेंज की दर से और भी हो रही है; किंतु होम-चार्ज, क़र्ज़ और ब्याज में भारतवर्ष से अधिक रक़म वसूल करने के लिये उनका नियंत्रण देश के लिये असह्य हो रहा है।

भारतवर्ष के २७ करोड़ किसानों की जीविका पर प्रहार कर भारतवर्ष ग्रेट ब्रिटेन या साम्राज्य के उपनिवेशों के साथ रियायती कर लगाने में समर्थ नहीं है। भारतवर्ष को इंपीरियल प्रिफ़रेंस की नीति स्वीकार करने में यही अड़चन है। इस नीति के स्वीकार करने में कोई राजनीतिक सिद्धांत उपस्थित नहीं होता है। जिस इँगलैंड से उसका वर्षों से संबंध रहा है, और जो ट्रस्टी बना रहा, उसके साथ फिर भी इतनी रियायत की जा सकती थी, पर यहाँ तो सर्वथा व्यापारिक समस्या उपस्थित होती है। साम्राज्य के बाहर के देश अधिक कच्चा माल ही नहीं ख़रीदते हैं; अपितु उनकी तैयार की हुई सस्ती चीज़ें भारतवर्ष के उद्योग-धंधों के व्यवहार में आती हैं। इसलिये उन्हें अप्रसन्न करने में भारतवर्ष का सब प्रकार से अहित है। इतना ही नहीं, पूर्ण आर्थिक स्वायत्तता प्राप्त होने पर साम्राज्य के बाहर के देशों में भारतवर्ष का व्यापार और भी उन्नति करेगा। अब यह देश अपना कच्चा माल ऊँचे-से-ऊँचे दामों में बेचना चाहता है। भारतवर्ष के साथ ही मिस्र और चीन भी प्रकाश में आ गए हैं। मिस्र ने आज अँगरेज़ों से साफ़ कह दिया है कि हमें तुम्हारी यह परोपकारिता और संरक्षिता नहीं चाहिए। मिस्र ने पक्का इरादा कर लिया है कि अपनी रुई की अत्यधिक पैदावार बढ़ाकर ऊँचे-से-ऊँचे दाम लेगा। सभी उपनिवेश इसी प्रयत्न में हैं। तब अकेले भारतवर्ष का दोहन कैसे हो सकता है? वर्ल्ड इकनामिक कान्फ़्रेंस की जिनेवा की बैठक में ब्रिटिश सरकार के चुने हुए भारतीय प्रतिनिधियों ने अन्य देशों के प्रतिनिधियों के साथ टैक्स घटानेवाले प्रस्ताव की भले ही ताईद की हो, किंतु उसे आज कौन-सा देश व्यवहार में ला रहा है। सभी देश अधिक-से-अधिक संरक्षण कर की दीवार अपने देश में खड़ी कर रहे हैं। इस कहने में भी कोई अर्थ नहीं है कि भारतवर्ष के उद्योग-धंधों पर संरक्षण कर लगाने से किसानों का अहित होता है। यदि उद्योग-धंधों पर अधिक संरक्षण कर लगाने पर भारतवर्ष की उपज अच्छे दामों में बाहर नहीं बिक पावेगी, तो उसे इसकी ज़रा भी चिंता नहीं है। भारतवर्ष में ही कच्चे और पक्के माल की काफ़ी खपत है। अभी तक तो भारतवर्ष विदेशियों के शब्दों में घाटे का बजट पूरा करने के लिये टैक्स लगाता आया है, किंतु अब वह संरक्षण कर लगाने की आवश्यकता से नए कर लगावेगा।

संसार में कच्चे माल की पैदावार बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है। ऐसी अवस्था में भारतवर्ष के किसानों के गौरव की रक्षा करना सरकार का परम कर्तव्य है। भारतीय किसानों को अपनी उपज के पूरे दाम भी नहीं मिलते। कई वर्षों से उन्हें पैदावार के दाम कम मिलते आ रहे हैं। आज किसानों की यह हालत हो गई है कि वे अपनी सारी उपज बेचकर भी सरकारी लगान नहीं भर सकते। इस प्रकार भारतवर्ष के किसानों का आर्थिक ह्रास हो रहा है। पर इँगलैंड अपने हितों के लिये आज भी भारतवर्ष को जकड़े हुए है। अभी उस दिन स्टोक न्यूंगटन में भाषण देते हुए लॉर्ड ब्रेनफ़ोर्ड ने कहा था कि इँगलैंड भारतवर्ष के बिना मर जायगा। इसीलिये इँगलैंड नए शासन-विधान में भी भारतवर्ष की आर्थिक नीति पर से अपना हाथ ज़रा भी नहीं हटाता है। संसार में पैदावार सस्ती हुई, अन्य देशों ने संरक्षण कर द्वारा अपने दरवाज़े बंद कर लिए, मगर भारतवर्ष में आस्ट्रेलिया का सस्ता गेहूँ आने दिया गया। भले ही इससे देश को कुछ महीनों में ही पाँच सौ करोड़ रुपए का नुक़सान हुआ हो, यह नुक़सान अधभूखे किसानों को सहना पड़ा। आज आस्ट्रेलिया और रूस की अधिक पैदावार से भारतीय किसानों की रक्षा करने का महान् प्रश्न

उपस्थित है। भारतवर्ष के गेहूँ की रक्षा विदेशी गेहूँ पर अधिक कर लगाने से हो सकती है। देश की व्यापारी संस्थाओं ने बार-बार सरकार को चेतावनी दी कि वह आस्ट्रेलिया के सस्ते गेहूँ पर भारी कर लगावे। मगर सरकार उपेक्षा कर गई। आस्ट्रेलिया का गेहूँ भारतवर्ष में आना अहितकर है। इस सस्ते गेहूँ के आने से भारतवर्ष के गेहूँ की पैदावार मारी जायगी। भारतवर्ष में गेहूँ और रुई दो ही तो प्रधान कच्ची उपज हैं। आस्ट्रेलिया का गेहूँ हलके दर्जे का है, और उसमें कोई रोग हुआ, तो यहाँ की पैदावार ख़राब हो जायगी, और लोगों का स्वास्थ्य नष्ट होगा। इसलिये कृषि की दृष्टि से भी आस्ट्रेलिया का गेहूँ भारतवर्ष में आना हानि-कारक है। आस्ट्रेलिया के गेहूँ की डॉक्टरी परीक्षा भी होना चाहिए। फिर भी आस्ट्रेलिया और रूस की पैदावार भयंकर रोगों से रहित नहीं है। रूस की पाँच वर्ष की योजना ने संसार में हलचल मचा दी है। दो वर्ष की पैदावार ने ही भारतवर्ष और कनाडा के गेहूँ को संसार के बाज़ार में स्थान नहीं रक्खा। यद्यपि भारतवर्ष और कनाडा का गेहूँ ऊँचे दर्जे का होता है, तथापि भारतवर्ष को असंगठित किसानों की पैदावार की रक्षा करने के लिये तत्पर होना पड़ेगा।

भारतवर्ष के लिये रूस का उदाहरण सर्वथा उपयुक्त है। आज रूस में जैसी उन्नति हो रही है, वैसी भारत में क्या नहीं हो सकती है? रूस के उद्योग ने संसार को आश्चर्य में डाल दिया है। धनी इँगलैंड का प्रसिद्ध पत्र इकनामिस्ट भी आज रूस की योजना को अव्यावहारिक नहीं बतलाता। भारतवर्ष के किसानों को तो कोई पूछता तक नहीं कि तुम मरते हो या जीते। सरकार को लगान से मतलब है। योरप के अन्य देशों की तरह रूस में भी बेकारों की संख्या लिखी जाती है। जब तक ये धंधे से नहीं लगते, तब तक उन्हें खाने को देना पड़ता है। रूस में इन बेकारों की संख्या १६-२० लाख थी। वह अब ३०-४० हज़ार रह गई। अब इन्हें भी कह दिया गया कि औद्योगिक स्कूलों में भर्ती होकर शिक्षा प्राप्त करो, और बाद में नए धंधों में लगो। अब तुम्हें बेकारी के कोष से कोई सहायता नहीं मिलेगी। धीरे-धीरे लड़के व बालि-काएँ जो बेकार माने गए थे, वे भी आज बेकार नहीं हैं। स्त्रियाँ भी सभी काम से लगी हैं। रूस के इन ग़रीब किसानों ने अपनी कृषि और उद्योग-धंधों को बढ़ाने के लिये विदेशों से एक पाई क़र्ज़ नहीं ली है। जहाँ की सरकार ख़ूब मितव्ययता से चलती है, वहाँ की प्रजा कब घर फूँककर तमाशा देखेगी? सरकार की आय में भी प्रतिवर्ष दुगनी-तिगुनी वृद्धि हो रही है। कृषि में ६० प्रतिशत और उद्योग-धंधों में ४४ प्रतिशत वृद्धि संसार के इस संकट-काल के समय में हुई है। इस प्रकार रूस ने अपनी जो उन्नति पाँच वर्ष में करना सोची है, उसे वह और भी जल्दी किए डालता है। रूस का उदाहरण प्रत्येक देश के लिये सर्वदा के लिये अनुकरणीय है।

भारत-सरकार राष्ट्र-निर्माण के कार्यों के लिये विदेशों से क़र्ज़ लेती है, पर रूस को जितना धन चाहिए था, वह उसने बाहर से क़र्ज़ लेने की अपेक्षा अपने देश से लिया। अमेरिका-जैसा धनी देश भी तेल के कुएँ, खानें, रेलें, बंद, बिजली-घर और फ़ैक्टरियों आदि में एकबारगी इतना धन नहीं ख़र्च करेगा, जितना रूस। उसने राष्ट्रीय आय में से १०००००००००० रूबल इन कामों में लगा दिए। मगर ब्रिटिश सरकार भारतवर्ष को शासन-अधिकार सौंपने पर भी इन सब कामों के करने की सत्ता नहीं देती है, और भारत-वासी इन्हीं अधिकारों को चाहते हैं। इस आर्थिक स्वायत्तता के संबंध में ब्रिटिश सरकार ने पिछले दो सौ वर्षों से कभी भारत के साथ न्याय नहीं किया। और आगे भी वह नहीं करना चाहती। यह कहना असंगत न होगा कि वैभवशाली भारतवर्ष आज जो इतना ग़रीब हो गया है, वह ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति के कारण। यह कहना भी मूर्खता है

कि पिछले समय में भारतवर्ष केवल कृषि-प्रधान देश रहा है। निस्संदेह, प्राचीन काल में भारतवर्ष कृषि में अत्यंत उन्नतशाली देश था, किंतु उसके उद्योग-धंधे भी उतने ही उन्नत थे। इतिहास का हरएक विद्यार्थी जानता है कि १८वीं शताब्दी में देश जितना उद्योग-धंधों में चढ़ा-बढ़ा था, उतना ही कृषि में भी। पर सरकार ने ज़हरीली आर्थिक नीति के द्वारा इस देश के सब धंधे बाहर भगा दिए। दुख तो यह है कि भारतीय किसानों के नाम से यह सब कुछ किया गया। पर यह नहीं सोचा गया कि ये कृषक ही तैयार माल के भी उत्पादक हैं। पर ग्रेट ब्रिटेन के धंधों के लिये ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारतीय धंधों को जड़-मूल से उखाड़ दिया। और आज उपनिवेशों के गोरे किसानों के हित के लिये भारतवर्ष की कच्ची पैदावार भी नष्ट की जा रही है। आज ग्रेट ब्रिटेन अपने माल पर भारत में संरक्षण करों में रियायत चाहता है, पर उसने अपने धंधों को बढ़ाने के समय इस भाव को कहाँ भुला दिया था। तब तो इन अँगरेज़ों ने एक ओर इस देश में उनके निर्यात माल पर भारी कर लगा दिया था। उधर इँगलैंड में भी भारतवर्ष के आयात पर भारी कर लगाकर पूरी-पूरी रोक की गई थी। पर अँगरेज़ी माल जो भारतवर्ष में आता था, उस पर कोई कर तक नहीं था। इसी घातक नीति से इस देश के किसान और कारीगर दोनो मरे। राजा लंकाशायर के हितों के लिये बंबई का उद्योग-धंधा नष्ट किया गया, और भारतवर्ष की रुई की पैदावार बढ़ने से रोकी गई। लंकाशायर ने भारतवर्ष के बल पर उन्नति की है। आज भी लंकाशायर और ब्रिटिश पार्लियामेंट फूटी आँख से भी यह नहीं चाहती कि भारतवर्ष के धंधों की वृद्धि हो। भारतीय कपड़ों की मिलों की उन्नति होने पर निश्चय ही भारतवर्ष की रुई की पैदावार में वृद्धि ही नहीं होगी, बल्कि ऊँचे दर्जे की भी रुई पैदा होने लगेगी।

भारतीय कृषि की रक्षा के लिये सरकार को रेलों का किराया अब कम-से-कम ४० प्रतिशत घटा देना चाहिए। रुई पर से ड्यूटी हटाने की आवश्यकता है। इसकी पूर्ति आयात वस्तुओं पर कर बढ़ाकर की जा सकती है। सरकार ने भारत की आर्थिक उन्नति और पैदावार बढ़ाने की दृष्टि से लगान के ३५ करोड़ रुपए वसूल ही नहीं किए। जिन किसानों की साल में ३५ रुपए से अधिक आमदनी नहीं होती है, उनसे लगान की इतनी भारी रक़म वसूल करना सर्वथा अन्याय है। इसे तो संप्रति मिटा ही देना चाहिए। अमेरिका के किसान १०८० रुपए, आस्ट्रेलिया के किसान ८१० रुपए, ग्रेट ब्रिटेन के किसान ७५० रुपए, कनाडा के किसान ५७० रुपए और जर्मनी के किसान ४५० रुपए कम-से-कम प्रतिवर्ष में कमाते हैं। इन देशों की तुलना में भारतवर्ष के किसान ३५ रुपए प्रतिवर्ष कमावें, और फिर भी यह देश कृषि-प्रधान कहलावे! इधर पिछले कई वर्षों से, संभवतः १९२६ से, देश के व्यापारियों ने सरकार का ध्यान आर्थिक संकट की ओर आकर्षित किया। अमेरिका से अधिक गेहूँ की रफ़्तनी और जर्मनी की साख घटने से भारतवर्ष में आर्थिक संकट उपस्थित नहीं होता, यदि भारत सरकार सच्चाई से भारतीय किसानों की रक्षा का ज़रा भी ख़याल रखती।

भारत के किसानों के लिये आज सरकार क्या करती है। जो ग्रेट ब्रिटेन संसार के उद्योग-धंधों का केंद्र है, वह भी कृषि में उन्नति करने के लिये अग्रसर है। ग्रेट ब्रिटेन कच्चे माल की पैदावार बढ़ाने के लिये अनेक प्रकार के आयोजन कर रहा है। वहाँ की पैदावार सस्ते भाव में बिकने के लिये विदेशी कच्चे माल के आयात पर भारी कर लगाया जा रहा है। भारतवर्ष, अरजनटाइना और अन्य देशों की पैदावार पर नियंत्रण किया जा रहा है। आज अँगरेज़ों को गर्व है कि वे एक राष्ट्र हैं, जिन्हें कृषि का पैत्रिक गुण प्राप्त है, और जिन्होंने उद्योग-धंधों के क्षेत्र में आश्चर्य-जनक उन्नति की है, वे कृषि में भी उतनी उन्नति कर संसार को चकित कर देना चाहते हैं। इसलिये इँगलैंड ने मार्केटिंग बिल की योजना स्वीकार की है। पर

भारतीय किसानों की पैदावार की खपत बढ़ाने के लिये कोई उद्योग नहीं किया जाता। इंडिया ऑफ़िस और भारतीय ट्रेड कमिश्नर का भारी ख़र्च इस देश को और उठाना पड़ता है। ट्रेड कमिश्नर की रिपोर्ट अत्यंत असंतोष-जनक प्रकाशित होती है। योरप के भिन्न-भिन्न मेलों में भारतीय उपज की बीस-तीस नुमाइशों से ट्रेड कमिश्नर का कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। उन्हें तो भारतीय पैदावारों के लिये उन सब उपायों से काम लेना चाहिए, जिनसे आज संसार के कृषि-प्रधान देश अपनी खपत बढ़ा रहे हैं। ट्रेड कमिश्नर को वे सभी उपाय भारतीय व्यापारियों और किसानों को सुझाने चाहिए, जिनसे भारतीय पैदावार की खपत अन्य देशों में आसानी से बढ़ सके। भारतीय किसानों के हितों के लिये कृषि-बैंक की स्थापना अत्यंत वांछनीय है। इंपीरियल बैंक और रिज़र्व बैंक किसानों के धंधे में पूरा अनुराग नहीं ले सकते। भारतीय महाजनों का कर्तव्य है कि वे अपनी महाजनी को दूकानें बंद करके कृषि-बैंकों में अपनी सारी शक्ति लगावें। अब अधिक ब्याज लेने का समय नहीं रहा, और देश में जो आर्थिक उत्क्रांति का भाव बढ़ रहा है, उससे उनका यह रहा-सहा व्यवसाय भी चला जायगा। यदि वे साधारण ब्याज लेने और मेहनत कर चार पैसे कमाने की नियत से भारतवर्ष के १६ हज़ार गाँवों में पैदावार बढ़ाने की दृष्टि से कृषि-बैंक खोलेंगे, तो इस देश का सच्चा हित होगा। किसानों को आज सस्ते ब्याज में रुपया और उपज बढ़ाने के सभी साधन चाहिए। इसके साथ ही उनकी पैदावार सस्ते बाज़ार में न बिकने पावे। यदि भारतीय महाजनों के कृषि-बैंक इस दृष्टि से कृषि-बैंकों का संगठन करें, तो वे इस देश में बहुत बड़ा काम कर डालेंगे। निश्चय ही किसानों की पैदावार बढ़ाने और उसके अच्छे भावों में बिकने पर कृषि-बैंकों को भी ख़ूब काम-काज मिलेगा। कृषि-बैंक सारा काम-काज किसानों की ओर से करेंगे। वे किसानों से सस्ता माल ख़रीदकर अपनी ओर से महँगा माल नहीं बेचेंगे, बल्कि किसानों के हितों के सच्चे प्रतिनिधि बनेंगे। बाज़ार की अवस्था अंतर्राष्ट्रीय पैदावार और भिन्न-भिन्न देश किस प्रकार अपनी पैदावार बढ़ाने में लगे हैं, इसका सारा ज्ञान किसानों को कराया जायगा। इस दृष्टि से भारतीय महाजन अपना व्यवसाय करेंगे, तो इस देश में भविष्य श्रमजीवी और पूँजीपतियों के विग्रह का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होगा। आज बड़े-बड़े बैंकों के व्यापारिक काम-काज करने से उनकी दूकानों में जो महाजनी का व्यापार नहीं रहा है, और जो आज हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हुए हैं, वे कभी ईश्वर को कोसते हैं, तो कभी भाग्य को, सो उस निर्जीव जीवन से भी छुटकारा मिल जायगा। वे देश के सच्चे व्यवसाय में लग जायँगे। ये कृषि-बैंक जितने थोड़े नफ़े से काम करेंगे, उनके संचालक जितना स्वार्थ-त्याग प्रकट करेंगे, उतना ही किसानों से उनका अनुराग बढ़ेगा। उस समय कोई यह नहीं कह सकेगा कि भारत के व्यापारी भारतीय किसानों का धन शोषण करते हैं, और न २७ करोड़ भारतीय किसान इस दरिद्रावस्था में रहेंगे।

नवीन भारत में इन किसानों और उनके साथ भारतीय व्यापारियों की रक्षा का प्रश्न सर्वथा आवश्यक है। इनके हितों के लिये इस देश में आजकल की तरह अँगरेज़ व्यापारियों के साथ पूर्ण समता का व्यवहार नहीं हो सकेगा, और साथ ही उनके व्यापार की रोक के लिये अनेक प्रतिबंध भी रक्खे जायँगे। इससे भारत और इँगलैंड के मेल-मिलाप में बाधा पड़ती हो, तो उसके लिये भारतवासी कुछ नहीं कर सकते। व्यावहारिक समस्याओं के नाम से भारतवर्ष अब कोई उदारता नहीं प्रकट कर सकता। भारत का ख़ज़ाना और सभी आर्थिक अधिकार पूर्ण रूप से भारतवर्ष के प्रतिनिधियों के हाथ में आने से इस देश की साख, कृषि, व्यापार और उद्योग-धंधों की रक्षा होगी। भारतवर्ष यह भी नहीं चाहता कि भारत के ही कुछ एक अनुदार लोगों के क़ब्ज़े में आर्थिक नियंत्रण का अधिकार सौंपा जाय। यह देश बिना

किसी शर्त और गारंटी के आर्थिक स्वायत्तता और पूर्ण रूप से धन पर अधिकार चाहता है। यदि ब्रिटिश सरकार व्यर्थ दख़ल देने का इरादा नहीं रखती, और भारत के धन पर उसकी दृष्टि नहीं है, तो उसे अब आर्थिक समस्याओं के लिये संरक्षक बनने की आवश्यकता नहीं है।

पाश्चात्य सभ्यता का भविष्य

[शंकरदयालु श्रीवास्तव्य विशारद, एम्० ए०]



सभ्यता एक व्यापक शब्द है। इसे पारिभाषिक सीमा से आबद्ध करना दुरूह ही नहीं, वरन् असंभवप्राय है। साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि जीवन के विविध क्षेत्रों में उन्नति करना ही सभ्यता है। विद्या-बुद्धि के विकास में, साहित्य-संस्कृति की उन्नति में, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक संगठन में तथा कला-विज्ञान की वृद्धि में, हमने जितनी सफलता प्राप्त कर ली है, हममें उतनी ही सभ्यता है। यदि उपर्युक्त विषयों में हमारी उन्नति परम सीमा तक पहुँच गई है, तो हमें यह समझना चाहिए कि हम सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ हो गए हैं, और यदि इसके विपरीत उन विषयों में हमारा विकास-क्षेत्र अत्यंत संकुचित है, तो हमारी सभ्यता भी केवल आंशिक है। इस पृथ्वी के वक्षस्थल पर इतिहास-काल के प्रारंभ से लेकर आज तक जितनी जातियाँ, जितने राष्ट्र आविर्भूत हुए हैं, न्यूनाधिक सभी ने उन्नति की है। किंतु पारस्परिक पार्थक्य के कारण—अंतर्राष्ट्रीय जीवन के अभाव से—उन सबके जीवन-विकास-स्रोत भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रवाहित हुए हैं। मिस्र, चीन, बेबिलोनिया, भारतवर्ष, ग्रीस, रोम, असीरिया तथा ईरान ने अतीत काल में कला-साहित्य एवं दर्शनादि क्षेत्रों में पर्याप्त उन्नति कर ली थी, परंतु सभ्यता के उस आदर्श-पथ तक नहीं पहुँच सके थे, जिसका निरूपण संक्षेपतः मैं कतिपय पंक्तियों में नीचे कर देता हूँ।

जिस आदर्श-सभ्यता की ओर मैंने इंगित किया है, उसका लक्ष्य समस्त संसार को यथासंभव अधिक-से-अधिक सुख-शांति प्रदान करना है। जो सभ्यता एकांगीय, एकदेशीय है, सर्वांगीय एवं सर्वदेशीय नहीं, वह कितनी भी उच्च क्यों न हो, संसार का कल्याण करने में सर्वथा असमर्थ है। स्थान व देश-विशेष में किसी क्षेत्र के अंतर्गत अत्यंत अधिक उन्नति श्लाघ्य कदापि नहीं कही जा सकती। यदि उस उन्नति से किसी अन्य देश का अहित होता है, तो सभ्यता की उत्तमता का माप उपयोगितावाद-सिद्धांत के आधार पर होना चाहिए। उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दि में समस्त संसार आर्थिक, व्यापारिक संबंध-सूत्र से बँध गया है। विचारशील महापुरुषों को यह स्पष्ट हो गया है कि अंतर्राष्ट्रीय विधान एवं संगठन के बिना संसार में शांति नहीं स्थापित हो सकती। अब हमें यह विचारना है कि उस अंतर्राष्ट्रीय जीवन के लिये आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता उपयुक्त है अथवा अनुपयुक्त, उपादेय है या अनुपादेय। पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में यदि तनिक भी अवरोध न किया जाय, तो संसार का भविष्य सुखमय होगा अथवा दुःखमय।

योरप तथा अमेरिका ने विगत १००-१५० वर्षों में आशातीत उन्नति की है। वाष्प-विद्युत्-शक्तियों के आविष्कार होने से वहाँ औद्योगिक क्रांति का श्रीगणेश हुआ। इँगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, हालैंड, बेल्जियम, इटली तथा अमेरिका प्रभृति पाश्चात्य देशों में लोहे और कोयले का अखंड राज्य स्थापित हो गया। दैनिक जीवन में उपयोग की जानेवाली वस्तुओं की उत्पादन-गति अत्यंत अधिक बढ़ गई। यह उनके विज्ञान-विकास का वैभव था। उक्त वैज्ञानिक आविष्कारों ने पाश्चात्य विद्वानों के सम्मुख समुचित साधन उपस्थित कर दिए, जिनके आधार पर उन्होंने जीवन के विविध क्षेत्रों में उत्तरोत्तर अधिकाधिक उन्नति करना प्रारंभ किया। कला, विज्ञान, साहित्य, इतिहास, अर्थ-

शास्त्र, राजनीति तथा अनुसंधान इत्यादि विषयों का बहुत विकास हुआ। व्यापार-व्यवसाय के द्वारा पाश्चात्य देश-निवासी संसार के कोने-कोने में पहुँच गए। वाष्प-विद्युत्-शक्ति द्वारा संचालित अपने यंत्रों से जितनी वस्तु उत्पन्न करते थे, उतनी अपने उपयोग में नहीं ला सकते थे। कलों को निरंतर चलाते रहने से काग़ज़, कपड़ा, साइकिल, मोटर, सुई, आलपीन, निब, चाकू तथा साबुन इत्यादि असंख्य प्रकार की वस्तुएँ अधिक-से-अधिक मात्रा में एकत्रित होती जाती थीं। उनकी खपत के लिये अन्यान्य देशों में व्यापारिक मंडियाँ ढूँढ़नी पड़ीं। सुदूरस्थ देशों से कच्चे माल भी अपनी आवश्यकता के लिये लाने लगे। इस प्रकार व्यापार के द्वारा पश्चिमी राष्ट्र धनवान् तथा विद्या-बुद्धि से समृद्ध हो गए। सैनिक साधन एवं संगठन के बल से, अपने साहस तथा राजनीतिक निपुणता के कारण, वैज्ञानिक साधनों से वंचित जातियों और देश-प्रदेशों पर उन्होंने अपना राजनीतिक आधिपत्य भी सुदृढ़ रूप से स्थापित कर लिया।

अधिकृत देशों एवं उपनिवेशों में पाश्चात्य शासक-गण अपनी भाषा, अपने साहित्य-विज्ञान का प्रचार करने लगे। अपने देशों में कल-मशीनों द्वारा बनी हुई वस्तुओं का प्रचार कर अपने अधीनस्थ जातियों के उद्योग-धंधों पर बड़ा भारी व्याघात पहुँचाया।

साम्राज्यवाद के साथ-साथ पूँजीवाद की प्रथा ने भी बल पकड़ा। धन-धान्य से संपूर्ण होने पर भी अर्थ-वितरण-व्यवस्था के असंतोष-प्रद होने से समाज के अंतर्गत भिन्न-भिन्न दलों में विषम आर्थिक असमानता हो गई। एक ओर तो श्री-वैभव-संपन्न पूँजीपति राजप्रासाद सदृश उच्च अट्टालिकाओं पर चैन की वंशी बजा रहे हैं, और दूसरी ओर मलिन-मुख दीन श्रमजीवी—स्त्री, पुरुष, बालक सब—अशुद्ध, अस्वस्थकर स्थान में बनी हुई छोटी-छोटी संकुचित कोठरियों में क्षुधा-पिपासा की विकराल ज्वालाओं में भस्मसात् हो रहे हैं। इनसे भी अधिक भीषण अवस्था है उन मनुष्यों की, जो इनके अधीनस्थ देश-प्रदेशों में वास करते हैं, और जहाँ अर्थ-शोषण-नीति का अवलंबन करके ये स्वयं माला-माल हो रहे हैं।

हम यह स्वीकार करने को तैयार हैं कि रेल, तार, साइकिल, दूरदर्शक, सूक्ष्मदर्शक, रश्मि-विश्लेषक आदि यंत्र, टेलीफ़ोन, मोटर तथा जलपोत इत्यादि वस्तुएँ संसार को सुखमय बना सकती हैं, यदि उनका समुचित उपयोग किया जाय। 'वसुधैव कुटुंबकम्' के सिद्धांत के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय जीवन का सम्यक् संघटन किया जाय, तो हम यह भी मान लेने को तैयार हैं कि मनुष्य-जीव-ध्वंसक गैस और यंत्रों के अतिरिक्त और जितने प्रकार के यंत्र आविष्कृत हुए हैं, सभी संसार के हित में हैं। नए प्रकार से भाँति-भाँति की विद्याओं का भी इन लोगों ने पर्याप्त विकास किया है। भौतिक विज्ञान, रसायन, भूगर्भ-विद्या, प्राणिविज्ञान, शरीरविज्ञान, इतिहास, अर्थ-शास्त्र, राजनीति इत्यादि-इत्यादि विषयों में अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखलाया है। डाकघरों का संगठन कितना सुदृढ़ है, अच्छे-अच्छे मुद्रण-यंत्रालय शिक्षा एवं समाचार का प्रचार कर संसार का कितना उपकार कर रहे हैं। अच्छी-अच्छी सड़कें भी चारो ओर बन गई हैं। स्वास्थ्य एवं स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया गया है।

किंतु क्या कारण है कि इतने सुख-साधनों के प्रस्तुत रहने पर भी आज संसार सुखी नहीं है। आज संसार में चारो ओर असंतोष क्यों फैल रहा है? जहाँ देखिए, विद्रोह और विप्लव-कांड मचा हुआ है, इसका कारण क्या है? यदि चीन, भारत, कोरिया एवं फ़िलिपाइंस में ही असंतोष और विद्रोह की भीषण ज्वाला धधकती होती, तो उसका उत्तर दिया जा सकता है कि इन-इन देशों के निवासी अभी अशिक्षित, असभ्य तथा काले रंग के हैं। परंतु हम देखते हैं कि वे लोग भी, जिन्होंने संसार को सुशिक्षित एवं सभ्य बनाने का भार अपने ऊपर ले रक्खा है, और जो अपने को

सभ्यता की पताका का वाहक बतलाते हैं*, स्वयं पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, अविश्वास तथा मतभेद के कारण वस्तुतः सुखी नहीं हैं। योरप, अमेरिका के राष्ट्र भी एक दूसरे की उन्नति पर जला करते हैं। आंतरिक अविश्वास तथा असंतोष के कारण ये राष्ट्र बड़ी-बड़ी सुसंगठित स्थल-जल-सेना रखते हैं। इन सेनाओं के कारण देश की आर्थिक आय का एक बड़ा भाग उनके संगठन, अस्त्र-शस्त्र, युद्ध-पोत तथा विनाशकारी गैसों में व्यय हो जाता है। अपने भौतिक साम्राज्य की उन्नति के लिये युद्ध-यज्ञ में सहस्रों-लाखों युवक सैनिकों की प्राणाहुति कर देते हैं। गत योरपीय महायुद्ध ने संसार का सर्वनाश कर डाला। लाखों की संख्या में निरपराध सैनिक तोपों और मशीनगनों से उड़ा दिए गए, लाखों मनुष्य लँगड़े-लूले बन गए, लाखों निरपराध बालक असहाय हो गए, तरुण स्त्रियाँ विधवा बन बैठीं, कितने घर नष्ट हो गए, कितने घरों के जगमगाते हुए दीपक सदा के लिये बुझ गए, यह सभ्यता है कि बर्बरता ? यदि वैज्ञानिक शक्तियों का इस प्रकार दुरुपयोग किया जाय, तो इन आविष्कारों का कुछ भी मूल्य नहीं है। कारण, ये संसार को दुख और यंत्रणा की ओर ले जा रहे हैं, सुख-शांति की ओर नहीं।

प्रलयकारी महायुद्ध के पश्चात् जब चतुर राजनीतिज्ञों, प्रधान सचिवों, मंत्रि-मंडल के सदस्यों, धुरंधर अर्थशास्त्रवेत्ताओं की आँखों पर से नशा उतरा, तब वारसम्ल (?) की संधि में राष्ट्र-संघ (League of Nations) की आयोजना की गई, और यह निश्चय किया गया कि युद्ध-नीति का परित्यागन कर राष्ट्र-संघ द्वारा संसार में शांति स्थापित की जाय। संधि में युद्ध का सारा दोष जर्मनी के मत्थे मढ़ा गया, और फलतः उसे पूर्णतया निःशस्त्र कर दिया गया। उसके अधीनस्थ देश-प्रदेशों और उपनिवेशों को छीन लिया गया, और मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी को यह वचन दिया कि हम लोग भी यथाशीघ्र तुम्हारी तरह निःशस्त्र हो जायँगे। राष्ट्र-संघ को स्थापित हुए दस वर्ष से अधिक व्यतीत हो गए, किंतु अभी समस्त संसार में क्या योरप में भी शांति नहीं स्थापित हो सकी। योरपीय राष्ट्रों में पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और आंतरिक अविश्वास अभी कम नहीं हुआ है। फ्रांस चाहता है कि हम उत्तरोत्तर अधिकाधिक उन्नति करते जायँ, और जर्मनी को सदा के लिये बलहीनावस्था में रक्खें। फ्रांस की कुटिल नीति के फल-स्वरूप निःशस्त्र जर्मनी के चारो ओर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सेनाएँ खड़ी कर दी गई हैं। जर्मनी की सीमा से मिले हुए देश बेल्जियम, ज़ेकोस्लोवेकिया, पोलैंड सभी फ्रांस की राजनीतिक गुट्ट में सम्मिलित हैं। उधर जर्मनी, आस्ट्रिया संधि के विरुद्ध आंदोलन मचा रहे हैं। निःशस्त्रीकरण में विलंब-पर-विलंब होता चला जा रहा है। बहुत-से राष्ट्र छुपे-छुपे अपनी सेना और अस्त्र-शस्त्र बढ़ा रहे हैं। सारा संसार आर्थिक संकट में पड़ा है। व्यक्तिवादी, साम्यवादी आदि अनेक दल* प्रचलित राज्य-पद्धति को मिटाकर नए प्रकार की शासन-व्यवस्था की आयोजना करने के लिये आंदोलन कर रहे हैं।

इस प्रकार उपयोगिता-वाद के सिद्धांत की कसौटी पर कसने से आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता आदर्श-सभ्यता कदापि नहीं कही जा सकती। यह सभ्यता संसार में अधिक-से-अधिक सुख-शांति फैलाने की क्षमता कदापि नहीं रखती। जिन देशों में इस सभ्यता का बड़ा बोलबाला है, जो इसके भारी केंद्रस्थल हैं, जब वहीं के निवासियों में सुख-शांति नहीं है, ईर्ष्या-द्वेष, मतभेद, अविश्वास और असंतोष फैला हुआ है, तब हम समस्त संसार के लिये—भावी सुसंगठित अंतर्राष्ट्रीय

* फ्रांस महोदय ने अपनी पुस्तक The mastery of Pacific में एक स्थान पर लिखा है—"We are the standard-bearers of civilization".

* इन भिन्न-भिन्न दलों के नाम ये हैं—Individualists, Socialists, Guild Socialists, Anarchists और Fascists.

जीवन के लिये—इस सभ्यता को आदर्श-रूप में कैसे मान सकते हैं ? इस सभ्यता में कुछ दूषण हैं, जिनके कारण यह संसार-व्यापी नहीं बन सकती। यह सभ्यता भौतिक वैभव के बल पर खड़ी है। योरप तथा अमेरिकावाले भौतिक विकास में इतने व्यस्त हो गए कि आध्यात्मिक उन्नति की ओर उनका ध्यान ही नहीं आकर्षित हुआ। पाश्चात्य देशों में आध्यात्मिकता भौतिकता की दासी बनी है। बाह्य सुंदरता, बाह्य स्वच्छता पर बहुत बल दिया गया है, किंतु आंतरिक शुद्धता-स्वच्छता की पूर्ण उपेक्षा की गई है। पाश्चात्य देशों में भी धर्म-पुस्तकें हैं, उनका बहुत प्रचार है, आध्यात्मिक विकास के सिद्धांतों की भी विवेचना पुस्तकों में है, किंतु व्यावहारिक जीवन में उनका अभ्यास एवं उपयोग बहुत कम होता है। योरप एवं अमेरिका के सामाजिक जीवन पर भौतिकता की छाप इतनी गहरी पड़ी हुई है कि प्रबल प्रयास के बिना उस पर आध्यात्मिक सिद्धांतों का रंग नहीं चढ़ सकता। यह पाश्चात्य सभ्यता का पहला और सर्व-प्रधान दोष है।

दूसरा मुख्य दोष यह है कि भौतिक विकास द्वारा उपलब्ध सुख-साधनों की वितरण-व्यवस्था, जैसा ऊपर एक स्थल पर कहा गया है, असंतोषप्रद है। जो पूँजी-पति हैं, धन-कुबेर हैं, वे ही बड़ी-बड़ी फ़ैक्टरियाँ स्थापित कर व्यापार-व्यवसाय से मालामाल होते हैं। दीन श्रमजीवी लोग, जो उनके आश्रित हैं, परिश्रम अधिक करते हैं, किंतु परिश्रम का पर्याप्त पुरस्कार नहीं पाते। इसके अतिरिक्त अपने अधीनस्थ, सुदूरस्थ देशों में अपने राजनीतिक प्रभुत्व के कारण अपना बना माल अधिक मूल्य में बेचते हैं, और वहाँ से कच्चा माल कम मूल्य में पा जाते हैं। कल-मशीनों के आविष्कार से मुख्य लाभ यह हो सकता है कि अल्प समय में वस्तुएँ अधिक परिमाण में तैयार हो जाती हैं। जितनी वस्तुओं के तैयार करने में सहस्रों मनुष्य लगे रहते थे, और महीने-भर का समय व्यतीत होता था, उतनी वस्तुएँ अब दो-एक दिन के अंदर, थोड़े-से मनुष्यों की सहायता से, दो-एक यंत्र से, बनाई जा सकती हैं। किंतु यदि इस सुविधा-जनक साधन का लाभ केवल मुट्ठी-भर लोगों को ही हो, और अधिकांश लोग उससे वंचित रहें, तो उससे संसार को क्या लाभ ?

एक बात और है। यदि योरप अमेरिका की भाँति कल-मशीनों की सभ्यता का प्रचार भारत, चीन, आफ़्रिका आदि स्थानों में भी हो जाय, तो क्या उस समय सारा संसार सभ्य हो जायगा ? कलों-मशीनों द्वारा भौतिक सभ्यता के विकास के लिये पाश्चात्य राष्ट्रों ने यह आवश्यक समझा कि अपने निर्मित पदार्थों की खपत के लिये और अधिक परिमाण में कच्चा माल ले आने के लिये अन्य देशों को अपने राजनीतिक प्रभुत्व में रक्खा जाय। तब भला कल-मशीनों के अधिक प्रचार से संसार में दुख के अतिरिक्त सुख कहाँ से आवेगा। थोड़ी देर के लिये मान लीजिए कि भारत एवं चीन भी इँगलैंड, फ़्रांस की भाँति कल-मशीनों से भर गए, तब अवस्था क्या होगी। भारत, चीन-जैसे पृथुल देशों के बनाए हुए माल की खपत कहाँ होगी ? और जब यहाँ स्वयं अधिक परिमाण में सब वस्तुएँ बनने लगेंगी, तो इँगलैंड, फ़्रांस तथा अमेरिका में बनी हुई वस्तुएँ कहाँ बिक सकेंगी। इस सभ्यता के लिये आवश्यक होगा कि एक देश दूसरे छोटे-छोटे देशों पर अपना सैनिक सत्व सुदृढ़ रूप से बनाए रक्खे। इससे सिद्ध होता है कि पाश्चात्य देशों की कल-मशीनवाली सभ्यता सिद्धांततः दोष-पूर्ण है।

पाश्चात्य सभ्यता आधुनिक रूप में चिरस्थायी नहीं हो सकती। पश्चिम देशों के विचारशील पुरुषों ने भी इस सभ्यता के प्रति प्रबल असंतोष प्रकट किया है। प्रसिद्ध लेखक डॉ० वैलेस महोदय ने लिखा है कि हम लोगों ने जो कुछ उन्नति की है, उससे कदापि यह प्रमाण नहीं मिलता कि प्राचीन काल-वाले लोगों (जैसे भारतवासी, मिस्र देशवाले, चीनी इत्यादि) से हम पाश्चात्य लोगों ने बुद्धि-विकास एवं चरित्र-गठन में कुछ अधिक उन्नति की है। रूसो और कार्लमार्क्स-जैसे महापुरुषों ने भी योरपीय सभ्यता के प्रति अपना असंतोष प्रकट किया है। जैसा

ऊपर कहा गया है, कार्लमार्क्स के अनुयायी लोग तो वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को मिटाकर नई विधि से उसका संघटन करना चाहते हैं, जिससे युद्ध, ईर्षा-द्वेष के बदले सुख-शांति का प्रसार हो।

अंतर्राष्ट्रीय जीवन के लिये आदर्श-सभ्यता का आधार उपयोगिता-वाद के सिद्धांत पर दृढ़ होना चाहिए। सच्ची सभ्यता वही कहलाएगी, जिसके अंतर्गत संसार में उपलब्ध सुख-साधन समस्त संसार के लोगों को प्राप्त हों, और दुःख के कारण यथा-संभव निर्मूल हो जायँ। दुःख के कारण क्या हैं, इसका उत्तर देते हुए श्रीफ्रय़ूड महोदय ने एक स्थान पर लिखा है कि मानव-समाज के दुःखों के तीन प्रधान उद्गम-स्थान हैं। उनमें से शक्तिशालिनी प्रकृति-देवी का प्रथम नंबर है। आप विज्ञान की चाहे जितनी उन्नति करें, प्रकृति को पूर्णतया पराजित कर देना असंभव है। इस कारण प्रकृति-जनित दुःख प्रयत्न करने पर कम हो सकते हैं, किंतु एकदम से उन्हें हम दूर कर सकें, यह असंभव है। दुःखों का दूसरा कारण यह है कि मनुष्य मरणशील है। बालक से युवा-वस्था को प्राप्त होता है, फिर वृद्धावस्था के दिन आते हैं। इस प्रकार एक-न-एक दिन प्रत्येक मनुष्य को इस संसार से पयान करना ही है, इसकी कोई औषधि नहीं। शरीर रोग-व्याधि से पीड़ित और जर्जरित हो-कर भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार किसी भी कारण के आधार से हमारे प्राण शरीर को त्याग सकते हैं। हम इन दुःखों को भी किसी मात्रा में कम कर सकते हैं, किंतु सर्वथा दूर करने में असमर्थ हैं। हमारे दुःख का तीसरा प्रधान कारण यह है कि कुटुंब, जाति एवं राज्य के अंतर्गत मानव-समाज के पारस्परिक संबंध को नियमन व संचालन करने की हमारी व्यवस्था असं-तोष-प्रद है। प्रयत्न करने से दुःख के इस कारण को हम बहुत अंश तक निर्मूल कर सकते हैं। बलवान् निर्बल को, धनाढ्य दीन-कंगाल को, गोरे कालों को दुःख पहुँचाते हैं। मनुष्य मनुष्य का काल बन जाता है। मार-पीट, लड़ाई-झगड़ा और युद्ध कम कर देना या मिटा देना असंभव नहीं, किंतु तब भी आश्चर्य से कहना पड़ता है कि मनुष्य-समाज के पारस्परिक संपर्क-विपर्क की व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित कर हम दुःख के तीसरे कारण को भी नहीं मिटा रहे हैं। यदि योरपीय लोगों ने विज्ञान में उन्नति करके प्रकृति के ऊपर आंशिक विजय प्राप्त भी कर ली है, तो वे उससे अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं। एक दूसरे को मिटा देने के लिये तुले बैठे हैं।

यदि पाश्चात्य देशों में यही उन्नति-क्रम रहा, तो पाश्चात्य सभ्यता का भविष्य घोर अंधकार में है। यह सभ्यता इस रूप में अब अधिक काल तक स्थिर नहीं रह सकती। पाश्चात्य सभ्यता ने अनेक प्रकार के सुख-साधनों का आविष्कार कर संसार को सुख-मय बनाने का मार्ग कुछ अंश तक ढूँढ़ा है। किंतु केवल इतने से तो संसार सुखी नहीं हो सकता। उन सुख-साधनों का समुचित लाभ उठाने के लिये पाश्चात्य जीवन-प्रवाह की विधि रोकनी होगी। भौतिकता से यथासंभव अपना पिंड छुड़ाकर आध्या-त्मिकता की ओर उन्हें दत्त-चित्त होना पड़ेगा। व्यर्थ का गर्व, काले-गोरे का भेद-भाव सब भूल जाना चाहिए। भारत, चीन, ग्रीस आदि देशों की प्राचीन सभ्यता के आदर्श-सिद्धांतों को उन्हें अपनाना होगा। एक जापानी राजनीतिज्ञ ने योरपीय विद्वानों से भरी हुई सभा में कहा था कि—

"For two thousand years we kept peace with the rest of the world......and we were accounted barberous. But from the day we made war on other nations and killed many thousands, of our advesaries you at once admit our claim to rank among civilized nations."

अर्थात् दो सहस्र वर्षों तक हमने बाह्य संसार के साथ शांति स्थापित रक्खी, और तब हम लोग बर्बर-

जाति के लोग कहे जाते थे। किंतु जिस दिन से हमने अन्य राष्ट्रों के साथ युद्ध किया, और कई सहस्र विपक्षी सैनिकों का वध किया, उस दिन आप लोगों ने हमें सभ्य-संसार में परिगणित होने का अधिकारी स्वीकार किया।

सभ्यता की परख पशु-बल की नहीं, वरन् आत्म-बल की कसौटी पर करना चाहिए।

बुद्ध भगवान् ने कहा है कि युद्ध में एक मनुष्य हज़ारों पर विजय प्राप्त कर सकता है, किंतु सच्चा, सबसे बड़ा विजयी वही है, जिसने अपने पर विजय पाई है। पाश्चात्य देशवाले यदि अपनी सभ्यता को स्थायी बनाना चाहते हों, और उसे अंतर्राष्ट्रीय जीवन के योग्य करना चाहते हों, तो उन्हें प्राच्य की प्राचीन सभ्यता के गुणों को अपनाना होगा। प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यता के सम्मिश्रण से एक अच्छी सभ्यता का जन्म हो सकता है, जो कि समस्त संसार में सुख-शांति स्थापन करने में सफलता प्राप्त कर सकती है।

माये !

[श्रीयुत सत्यप्रकाश एम्० एस्-सी०]

कभी प्रकृति का कभी पुरुष का करता मैं आह्वान ;
प्रकृति पुरुष हो करके मुझको छलती है अनजान ।
पर मैंने तो यह तब जाना
मोह-निशा जब आई ;
दास बना मुझको माया ने मेरी राह भुलाई ।
और नचा ले कठपुतली-सा, केवल कुछ दिन और ;
एक दिवस आवेगा माये ! इन पेड़ों पर बौर ।
तू बौराई-सी दौड़ेगी—
तुझे न मैं पूछूँगा ;
अपनी भीनी मत्त गंध से छलने ! तरसा दूँगा ।
माये ! तू यह क्यों न जानती, तेरा मैं स्वामी हूँ ;
मेरी यदि अनुगामिनि तू है, तो मैं अनुगामी हूँ ।

समालोचनाएँ

भवभूति

अनुवादक
हिंदी-संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० ज्वालादत्त शर्मा

× × ×

संस्कृत के प्राचीन महाकवि भवभूति की संक्षिप्त प्रामाणिक जीवनी और उनकी रचनाओं की पांडित्य-पूर्ण गंभीर आलोचना, उसमें सरसता और सहृदयता ख़ूब प्रस्फुटित हुई है। कहीं-कहीं वर्णन-शैली ऐसी ओजस्विनी और ललित है कि पढ़ते-पढ़ते काव्य-जनित आनंद से चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। वीर और करुण-रस की सवेग धारा प्रवाहित करनेवाले भवभूति के महाकाव्यों की यह गवेषणा-पूर्ण आलोचना अवश्य पढ़िए। मूल्य ॥=), सुनहरी रेशमी जिल्द १=)

देव और बिहारी

लेखक
हिंदी-काव्य-मर्मज्ञ पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०

× × ×

इस ग्रंथ में देव और बिहारी, दोनो कवियों की तुलनात्मक समालोचना की गई है। इस पुस्तक के पढ़ने से दोनो कवियों के कमनीय कवित्व, प्रचंड पांडित्य और प्रखर प्रतिभा का प्रकाश सहज ही नेत्रों को आनंद से विकसित कर देता है। इस पुस्तक के विषय में हिंदी-संसार में जितनी हलचल हुई है, उतनी किसी भी काव्य-ग्रंथ पर नहीं हुई। भाषा बड़ी सजीव और लेखन-प्रणाली परम मनोरंजिनी है। मूल्य १॥), सजिल्द २)

संचालक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

कुंडली-चक्र

[श्रीयुत वृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ऐडवोकेट]

(४१)



यद्यपि पूना ने मना कर दिया था, तो भी उसके मामा ने छावनी से भुजबल को बुला भेजा। ललितसेन का बहनोई होने के कारण भुजबल की गणना रिश्तेदारी में बड़े आदमियों में हो चुकी थी।

दाह-संस्कार के लिये सब लोग उसके आने तक रुके रहे।

अजितकुमार को वहाँ देखकर भुजबल को आश्चर्य की अपेक्षा क्रोध अधिक हुआ। परंतु उसने प्रकट न तो आश्चर्य को ही किया और न क्रोध को। उपेक्षा करके उससे बोला भी नहीं।

छावनी में भुजबल को मालूम हो गया था कि अजित बुद्दा को सिंगरावन ले गया है। वह इस ओर से निश्चिंत-सा था। जानता था कि बुद्दा कुछ न कर सकेगा।

उसको अपने मंसूबों के पूर्ण सफल होने में बहुत संदेह नहीं था, परंतु कुछ अकारण ही अजित का स्मरण उसको कभी-कभी बेचैन-सा कर देता था।

दाह-क्रिया से फ़ारिग़ होने के बाद भुजबल सिंगरावन में ही रह गया, और तेरहीं तक वहीं बना रहा। दो-एक मर्तबे छावनी गया भी, तो जल्दी लौट आया।

अजितकुमार एक ही दिन बाद चला गया था। परंतु बुद्दा की दवा-दारू के लिये वह दिन में एक बार अवश्य हो जाता था। घूमने-टहलने के लिये यह स्थान उसको बहुत भला मालूम हुआ। सिंगरावन के तालाब के किनारे और उसके सामने की चकरई पहाड़ी पर बहुधा कुछ देर बैठकर लौट जाया करता था।

बुद्दा की चोटें तो अच्छी हो गई थीं, परंतु बुख़ार न टूटा था। अजितकुमार को उसकी चिंता थी। अजितकुमार के पास रुपया-पैसा बहुत कम था, परंतु किसी का क़र्ज़दार न था। उसी में से वह बुद्दा के लिये ख़र्च करता था। पैलू और बुद्दा जिस नातेदार के घर ठहरे हुए थे, वह भी एक साधारण दरिद्र किसान था, परंतु बेमुरव्वत न था, तो भी विना अजित की सहायता के वह बुद्दा को आश्रय नहीं दे सकता था। पैलू अपने नातेदार को खेती-किसानी में मदद देकर दिन काट रहा था।

तेरहीं हो जाने के बाद भुजबल ने पूना से कहा। उसका मामा भी वहाँ मौजूद था—"तुम हमारे साथ छावनी चलो।" और उसके मामा से कहा—"विवाह का यदि ठीक-ठाक हो गया, तो वहीं होकर हो जायगा। और यदि वहाँ के लिये इनका मन न बोले, तो मऊ लिवा जायँगे। वहाँ पर सब लोग-बाग हैं।"

"मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। मामा के पास बनी रहूँगी। और यदि मामा कह देंगे, तो मऊ-सहानिया चली जाऊँगी।"

पूना को भैंसों और खेती का ख़याल करके मामा ने कहा—"पूना को यहाँ बना रहने दीजिए। हमारे यहाँ जो कुछ रूखा-सूखा है, सो हाज़िर है। उसकी खेती और भैंसों का आप इंतज़ाम कर दीजिए।"

"मैं वैसे ही बहुत बंधनों में पड़ा रहता हूँ। आप इसको अच्छा सँभाल लेंगे।" भुजबल ने उत्तर दिया।

"भांजी के धान्य और लोक-लाज से मैं बहुत डरता हूँ। सँभाल करने का बोझ लेने को तैयार हूँ, परंतु आप निगरानी करते और हिसाब लेते रहना।" उस सीधे-सादे देहाती ने कहा।

भुजबल केवल उसको संबोधन करके कहने लगा—"पूना के ब्याह की मा को बहुत चिंता थी। अब वह

चिंता मुझे लग गई है। ललितसेन का और एक बुड्ढे ज़मींदार का संदेशा उनके पास आया था। उन्होंने नाहीं कर दी थी। अब योग्य वर की तलाश जल्दी करनी है।"

पूना वहाँ से उठकर चली गई। उसके मामा को विस्मय था कि उसी के समक्ष यह चर्चा क्यों की गई।

भुजबल बोला—"आप ललितसेन के लिये राज़ी होंगे। और तो कोई बात नहीं है, धर्म के विरुद्ध है, और अपनी जाति में ऐसा नहीं होता है।"

"कभी नहीं।" पूना के मामा ने कहा—"और कोई वर नहीं मिलता। जो मिलते भी हैं, उनसे टीपना का मेल नहीं खाता। एक बड़ी अजीब बात है।"

"क्या?"

"मेरी टीपना से मिलान मिला है। और मा ने मरने के पहले ज़ोर भी दिया था। परंतु उन्होंने तब कहा, जब ललितसेन के यहाँ मेरा विवाह हो चुका था।"

"आप जो कुछ ठीक समझें, सो करें। बस, इतना हो जाय कि पूना को दुःख न झेलना पड़े।"

"इसमें क्या संदेह है।"

उसके साथ भुजबल की और बातचीत नहीं हुई। परंतु उसी दिन मौक़ा निकालकर भुजबल पूना से अकेले में मिला।

बोला—"पूना, अब तुम सयानी हो गई हो। तुमसे दो बातें करनी हैं।"

पूना सिर नीचा करके खड़ी रह गई। उसने फिर कहा—"तुम्हारे मामा सीधे-सादे किसान हैं। दुनिया का ऊँच-नीच नहीं समझते। समय बुरा है। तुम्हारा यहाँ अकेले रहना अच्छा नहीं मालूम होता।"

पूना ने धीरे से कहा—"तब क्या करूँ?"

"हमारे घर चलो। छावनी ठीक न जान पड़े, तो मऊ रानीपुर चली चलो।"

"मुझे यहाँ बना रहने दीजिए। मैं भी किसान की लड़की हूँ। किसानों में मेरा निर्वाह अच्छी तरह हो जायगा।"

"तुम्हारे विवाह की मुझको बड़ी चिंता है। पास रहोगी, तो ज़्यादा फ़िक्र बनी रहेगी।"

पूना ने कोई उत्तर नहीं दिया। भुजबल ने कुछ सोचकर कहा—"यदि इस समय तुम्हारी इच्छा यहाँ रहने की है, तो मैं ज़िद न करूँगा।" फिर कुछ ठहरकर बोला—"ब्याह के विषय में मरने के पहले तुम्हारी मा ने एक इच्छा प्रकट की थी, तुमको मालूम है?"

पूना सिर नीचा किए खड़ी रही, परंतु उसका चेहरा लाल हो गया था।

भुजबल ने कहा—"अच्छा, मैं फिर किसी समय शीघ्र ही बतलाऊँगा, मुझको तुम्हारी बड़ी चिंता है।"

पूना ने नीचा सिर किए हुए धीरे से कहा—"आप-जैसा हितू अब मेरा संसार में और कौन है।" और रोने लगी। भुजबल चला आया।

(४२)

एक बार जहाँ अपनी कार्य-विधि को व्यावहारिक क्षेत्र में अवतरित-भर कर पाया कि फिर भुजबल अपनी आंतरिक शक्तियों को चैन नहीं लेने देता था।

परंतु सिंगरावन से लौटने पर उसको ललितसेन से बातचीत करने के लिये अवसर नहीं तलाश करना पड़ा। दोनो में इस तरह बातचीत चल पड़ी।

"कहो, सिंगरावन का क्या हाल है? मा के मरने से लड़की तो बड़ी व्यथा में होगी?"

"सो तो है ही, परंतु हम लोग उससे अधिक व्यथा में हैं। पूना के विवाह की समस्या बड़ी उलझी हुई मालूम पड़ती है।"

"उसका कोई रिश्तेदार तो है?"

"कई एक हैं। इस समय वह अपने मामा के पास है। सीधा-सादा लट्ठ देहाती आदमी है। आपके लिये राज़ी नहीं मालूम पड़ता।"

"वह क्या चाहता है?"

"निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा। एक बात पूछता हूँ।" और फिर हँसकर कहा—"आपके दर्शन-शास्त्र के लिये मसला है।"



सौंदर्य संसार के आधे जन-समाज को ठगता है

परंतु समाज का उत्तम अर्ध भाग यानी रमणी-मंडल को धोखा नहीं दिया जा सकता। क्योंकि उनमें से अधिकांश यह सब जानती हैं कि ओटीन सौंदर्य को विकसित करने के लिये क्या कर सकता है।

जो प्रतिदिन रात को सोने के पहले पाँच मिनट तक ओटीन क्रीम से मुँह की मालिश करती हैं, उनकी कांति को बुरी आब-हवा नहीं बिगाड़ सकती। नित्यप्रति इसके व्यवहार से चेहरे पर गुलाबीपन आ जाता, सुंदरता और भी विकसित होती है। यह क्रीम चर्म को स्वस्थ, कोमल और ताज़ा बनाती है, और प्रति-दिन चर्म की जो हानि होती है, उसकी पूर्ति करती है।

दिन में लगाने से ओटीन स्नो गर्मी, धूल और पसीने के कुप्रभाव से चर्म की रक्षा करती है।

इन दोनों की परीक्षा कीजिए—ओटीन क्रीम रात में और ओटीन स्नो को दिन में। आप पहले परीक्षा करना चाहते हैं, तो इस कूपन को काटकर नमूना मँगा लीजिए।

कूपन—ओटीन क्रीम, ओटीन स्नो, ओटीन साबुन, ओटीन फ़ेस पाउडर, पूरे साज के ओटीन सैम्पल और ओटीन की सौंदर्य पुस्तिका परीक्षा के लिये मेरे नाम भेज दीजिए। छः आना का टिकट इसके साथ भेज रहा हूँ।

नाम ....

पता ....

The Oatine Co. 17, Prinsep St., Calcutta

दि ओटीन कंपनी, १७ प्रिंसेप स्ट्रीट, कलकत्ता

ललितसेन ने विना हँसे हुए कहा—"वह क्या है ?"

"एक स्त्री के रहते हुए मनुष्य दूसरा विवाह कर सकता है या नहीं ?"

भुजबल बोला।

ललितसेन ने ख़ूब आँख गड़ाकर कहा—"आपका क्या मतलब है ?"

भुजबल ने आँख मिलाए हुए ही जवाब दिया—"कोई विशेष प्रयोजन नहीं है। परंतु विषय से संबंध रखता है, इसलिये पूछा।"

"क्या कोई ऐसा वर भी है ?"

"जी हाँ।"

ललितसेन ने कुछ क्षुब्ध होकर कहा—"तुम्हारा वह शिवलाल मालूम होता है, अंधा है।"

भुजबल ने हँसकर कहा—"इसमें संदेह करने के लिये रत्ती-भर भी स्थान नहीं, और मेरी चर्चा का कुछ इशारा उस तरफ़ भी था।"

ललितसेन ने कुछ क्षण बाद गंभीर होकर कहा—"ऐसे जर्जर-तन, कूड़ा-करकट, सड़े आदमी का तो एक भी विवाह नहीं होना चाहिए। अयोग्य मनुष्य का योग्य स्त्री पर अधिकार प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल है।"

"यह बिलकुल सच है।" भुजबल बोला—"परंतु मेरे प्रश्न पर यह दार्शनिक सम्मति नहीं फबती। मेरा तो सवाल ही दूसरा है। सारे पहलू पर जवाब माँगता है।"

ललितसेन ने कहा—"एक मनुष्य के लिये एक स्त्री, यह एक स्वाभाविक बात मालूम पड़ती है। इसीलिये योरप के देशों में एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री के साथ विवाह क़ानून के द्वारा निषिद्ध ठहराया गया है। परंतु यह विधि बहुत संतोष-जनक नहीं पाई गई है। परंपरा के भक्त इसके दोषों को दूर करने की फ़िक्र में हैं। तलाक़ एक उपाय है, परंतु दवा कभी-कभी मर्ज़ से भी बुरी हो जाती है। वह विवाह की प्रथा बिलकुल ही नीच नहीं है। ख़ास-ख़ास कारणों के उपस्थित होने पर कभी-कभी यदि ऐसे विवाह हो जायँ, तो निंदनीय नहीं है। परंतु ऐसी हालत में तलाक़ को भी किसी-न-किसी रूप में मानना पड़ेगा।"

"यदि आपके लिये पूना का मामा तैयार न हुआ, और और कोई उपयुक्त वर न मिला, तो ऐसी अवस्था में या तो शिवलाल को ग्रहण करना पड़ेगा, या इससे कोई अच्छा; परंतु इसी विवाहित श्रेणी का वर पसंद करना होगा।"

ललित ने तेज़ होकर कहा—"कदापि नहीं। उस फूल को काँटे की नोक पर नहीं कुतरना चाहिए। उसके विषय में बहुविवाह-समर्थक भी कभी यह नहीं कह सकते कि जीवन के आरंभ से ही सौतिया डाह की आग में झुलसा दी जाय।"

भुजबल ने सोचते-सोचते कहा—"यथाशक्ति ऐसा न होने पावेगा।"

ललित ने कुछ आकस्मिक वेग के साथ पूछा—"उस लड़की की क्या इच्छा है ? वह तो सयानी है।"

"उसकी कोई विशेष इच्छा नहीं है।"

"बिलकुल ठीक मालूम है ?"

"हाँ।"

(४३)

बुद्धा अभी स्वस्थ नहीं हुआ था। अजितकुमार कभी-कभी सिंगरावन उसकी दवा-दारू के लिये जाया करता था। यदि उसकी दवा-दारू का विशेष कारण सामने न भी होता, तो इतनी दूर वह वैसे ही अकारण टहल लिया करता था।

उस दिन छावनी छोड़ते ही कुछ दूरी से भुजबल भी उसी ओर जाता दिखलाई पड़ा। अजित रास्ता कतराकर जाने लगा, परंतु कुछ समय के परिश्रम के बाद एक जगह इकट्ठा होने का अनिवार्य अवसर आ ही गया। भुजबल बोला—"मास्टर साहब, कहाँ का चक्कर काट रहे हो ?"

अजित ने कहा—"यों ही। ज़रा सिंगरावन तक जा रहा हूँ।"

"आप बुद्धा की इतनी चिंता न करें। वह मरेगा नहीं।"

"मर नहीं पावेगा, इसका मुझे भी भगवान् पर भरोसा है।"

थोड़ी देर दोनो चुप रहे। भुजबल फिर बोला—"इन छोटे आदमियों को इतना सिर चढ़ा लेने से ही हम लोगों पर तबाही आ रही है।"

"अभी तबाही नहीं आई है, परंतु यदि इन लोगों के साथ इसी तरह की बेदर्दी का बर्ताव रहा, तो भयंकर फल होगा।"

अजितकुमार ने कहा, और मन में बहस न करने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

बहस की आकांक्षा भुजबल के मन में भी बहुत नहीं फड़का करती थी। परंतु वह किसी अंध-प्रेरणा के वश उससे बोला—"उस दिन मैंने अपना ग़ुस्सा बहुत रोक लिया था। मैं अपने काम में किसी को दख़ल देना नहीं पसंद करता हूँ।"

"और दूसरों के ख़ून में तो शायद बर्फ़ ही भरी हुई है?" अजित ने कहा—"आप अपना काम देखिए, मैं अपना काम देखूँगा। मेरा आपका मार्ग भिन्न है। रार-तकरार में कुछ लाभ नहीं दिखलाई पड़ता।"

"इसमें क्या संदेह है?" भुजबल होठ सिकोड़कर बोला—"मदरसे के शिक्षक और गाँव के ज़मींदार की गली न्यारी-न्यारी है, परंतु इस तरह सिंगरावन बहुत जाने के कारण किसी दिन आपको पछताना पड़ेगा।"

अजित ने ख़ूब दृढ़ और तीक्ष्ण दृष्टि से भुजबल की ओर देखा। एक क्षण बाद स्थिर भाव के साथ बोला—"देखा जायगा।" और तेज़ी के साथ क़दम बढ़ाकर भुजबल से आगे जाने की चेष्टा करने लगा। फिर कोई बातचीत नहीं हुई।

थोड़ी देर में गाँव आ गया। जहाँ से गली लालसिंह के मकान की ओर मुड़ी थी, वहाँ से बुद्धा का घर तीस-चालीस क़दम के लगभग था। ज़रा आगे लालसिंह का मकान था। एक लड़की उसी ओर चली जा रही थी। पैर की आहट पाकर उसने पीछे मुड़कर देखा। ज़रा ठिठकी। कपड़ा खींचा, और तेज़ी के साथ बढ़ने लगी। ५-६ क़दम चलकर फिर रुक गई, और एक ओर खड़ी होकर कभी अजित की ओर, और कभी मकान की दीवार की ओर देखने लगी। अजित ने पहचान लिया। पूना थी।

जब अजित पास पहुँचा, उसको ख़याल हो आया—"इस अनाथ की मा ने मुझको अपने मरने के पहले स्मरण किया था। न-जाने क्या कहना चाहती थी।" बोला—"पूना, अच्छी तरह हो।" खड़ा हो गया। जाने के लिये उद्यत पूना ने धीरे से कहा—"जी हाँ।" परंतु मुँह दूसरी ओर किए रही। मालूम होता था, जैसे भागने के लिये कहीं छोटा पतला-सा मार्ग ढूँढ़ रही हो। शरीर उसका काँप-सा रहा था।

इसी समय मोड़ पर भुजबल आ गया। अजितकुमार ने उसको देखकर कहा—"तुम्हारे बहनोई भी आ रहे हैं, उनका आतिथ्य करो। मैं जाता हूँ।" पूना बहनोई को देखकर सकपका-सी गई। तेज़ी से जाने के लिये पैर उठाया, परंतु न उठा। भुजबल पास आ गया, वह खड़ी रही। टकटकी लगाकर अपने बहनोई की ओर देखने लगी।

भुजबल की आँखें उसको भयानक-सी मालूम पड़ीं। कुछ कहना चाहती थी कि भुजबल ने बहुत धीमे, परंतु ज़रा तीव्रता के साथ कहा—"चलो, यहाँ खड़ी-खड़ी क्या कर रही हो?" पूना कुछ कहना चाहती थी, पर उसके गले में शब्द रुक-सा गया। भुजबल के पीछे-पीछे चल दी।

घर पहुँचने पर जब भुजबल ने एकांत पाया, तब लालसिंह से कहा—"मैंने आज पूना के लिये निश्चय कर लिया है।"

"क्या?" लालसिंह ने पूछा।

भुजबल ने उत्तर दिया—"पूना की सगाई के विषय में।"

लालसिंह ने फिर वही प्रश्न किया। कुछ देर तक सोचने के पश्चात् भुजबल बोला—"फिर बतलाऊँगा। अभी नहीं।" लालसिंह ने और कुछ नहीं पूछा।

सिंगरावन से छावनी के लिये चलने के समय

भुजबल ने पूना को अकेले में बुलाया। वह किवाड़ पकड़कर मुँह छिपाए हुए खड़ी हो गई।

भुजबल ने धीरे-धीरे कहा—"अगले महीने में विवाह होगा पूना तुम्हारा। तुम छोटी होतीं, तो न कहता। सयानी हो गई हो, इसलिये कहा।"

पूना बिलकुल चुपचाप खड़ी रही। भुजबल फिर बोला—"किसके साथ तुम्हारा विवाह होगा, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि तुम जानती हो।"

वह बिलकुल निस्पंद खड़ी रही। भुजबल ने कहा—"आज से ठीक बीसवें दिन। इसलिये जल्दी है कि दुनिया के ढंग अच्छे नहीं हैं।"

एक क्षण चुप रहने के बाद फिर बोला—"तुम्हारा गाँव में इधर-उधर फिरना अच्छा नहीं मालूम होता।"

"कहाँ ?" पूना ने बहुत प्रयत्न के बाद बहुत क्षीण स्वर में प्रश्न के आवरण में उत्तर दिया—"कहाँ ?" भुजबल ने कुछ आश्चर्य और कुछ रुखाई के साथ दुहराते हुए कहा—"इन सब बातों पर तर्क-वितर्क करने की ज़रूरत नहीं मालूम पड़ती। घर का काम देखो, और जो कुछ तुम्हारे बड़े तुम्हारे लिये तय करें, उसको मानो।"

"उसको तो मानती ही हूँ।" पूना ने काँपते हुए गले से कहा।

भुजबल नरम होकर बोला—"यह बात ठीक है। अब मैं जाता हूँ। अपनी पूजा-पत्री बराबर करती रहो। तुम्हारी मा ने मरने के पहले मुझे जो आज्ञा दी, और मैंने उनको जो वचन दिया था, उसके निभाने के लिये मैं तैयार हो गया हूँ। कोई कुछ कहे, अब और किसी तरह निवारण होता नहीं दिखता। तुम्हारे लिये सोने के कितने गहनों की ज़रूरत पड़ेगी ?" अंतिम प्रश्न करते ही भुजबल के चेहरे पर एक हलकी लालिमा दौड़ गई।

पूना ने साफ़ गले से कहा—"किसी की नहीं।" और तुरंत भीतर चली गई।

(४४)

जितनी देर भुजबल सिगरावन में ठहरा, उससे अधिक समय तक ठहरे रहने के लिये अजित को ज़रूरत नहीं पड़ी। जिस समय वह छावनी जाने के लिये तैयार हुआ, उसको ख़बर मिली कि भुजबल भी जाने को है।

मार्ग में फिर तर्क-वितर्क न हो, इसलिये उसने एक कोस के चक्कर से उत्तर की ओर तालाब और चकरई की पहाड़ी और नएगाँव ग्राम के पास से होकर तिंदरी और फाँटा की पहाड़ियों के निकट जाने का निश्चय किया।

वह इधर से गया, और उधर से पूना तालाब से नहा-धोकर कंधे के सहारे भरा लोटा हाथ की गदेली पर और दूसरे कंधे पर गीली धोती रक्खे हुए आती हुई मिली। तप्त स्वर्ण-सदृश निखरा हुआ रंग और प्रभामय मुख-मंडल। अजित ने कुछ कौतूहल के साथ देखा। किसी आंतरिक पीड़ा के कारण स्वभाव-सहज उल्लास मुख पर न था। पूना नीचा मुँह किए हुए चली गई। अजित की इच्छा हुई कि कुछ बात करें, परंतु बेरुख़ देखकर चुपचाप चला गया। उसे ऐसा मालूम पड़ा, जैसे किसी वन में कुहरे से ढका हुआ गेहूँ का खेत आँख के सामने एक क्षण के लिये आकर ओट हो गया हो।

एकाएक उदास हो गया। सिर घूमने-सा लगा। जैसे चक्कर आने को हो। पास ही चकरई पहाड़ी और उसके ऊपर प्राचीन काल के बने हुए एक कोठे को देखकर उस पर चढ़ गया। थोड़ी देर के लिये छाया में बैठकर तालाब की ओर रिक्त दृष्टि से देखने लगा। मन में कहा—"इससे अधिक और चाहता ही क्या हूँ ? कभी दर्शन नहीं होते। न हों। कभी कान में कूज नहीं पड़ती। न पड़े। मेरा शायद ही कभी स्मरण होता हो। न हो। परंतु मेरे स्मृति-पटल पर से किसकी मजाल जो उस चित्र को पोंछ सके ?" फिर जेब से एक चित्र निकालकर उसको देखने लगा।

रतन का चित्र था।

मन में बोला—"यह यदि सुखी रहे, तो कोई चिंता की बात नहीं। सुखी न होगी। परंतु यह तो मेरा स्वार्थ-पूर्ण भाव है। क्यों सुखी न होगी? घर संपन्न है। भाई भला आदमी है। यदि भुजबल भी अच्छा आदमी होता! कैसे क्रूर मनुष्य का साथ हुआ है! परंतु भुजबल क्या इतना पशु होगा कि ऐसे कोमल, ऐसे सुंदर कुसुम को जान-बूझकर शीर्ण कर दे? भुजबल का बर्ताव दीन किसानों के साथ चाहे जैसा हो, परंतु उसके साथ ऐसा न होगा। वह गायन-वादन का भी प्रेमी है। उसके हृदय में अवश्य ही एक ललित कोना होगा, जहाँ रतन ने स्थान पा लिया होगा।"

फिर एक आह खींचकर थोड़ी देर निरपेक्ष भाव के साथ तालाब की ओर देखता रहा। जल की एक बारीक रेखा-मात्र वहाँ से दिखती थी, परंतु वह उसी को ख़ूब ध्यान लगाकर देख रहा था। थोड़े समय बाद ट्यूशन की याद करके उठ खड़ा हुआ, और चित्र को जेब में रख लिया।

मन में कहा—"मैं भुजबल से कभी नहीं लड़ूँगा। वह मेरे साथ चाहे जैसा बुरा बर्ताव करे, मैं उसको दुखी न करूँगा। भुजबल के दुखी होने पर रतन सुखी न रह सकेगी।"

(४५)

भुजबल की अनुपस्थिति में ललितसेन ने एक दिन लालसिंह को बुलवाया। मैली धोती, होली के दिनों की, रंग के छींटों से रंग-बिरंगी, अँगरखी पहने, और बड़े एहतियात से रक्खा हुआ बिलकुल सफ़ेद साफ़ा बाँधे, मोटी लकड़ी हाथ में लिए लालसिंह दरवाज़े तक मज़े में आ गया। बैठक में घसने का साहस न हुआ। वहीं से बोला—"मुझे हुक्म हुआ था, सो आ गया।"

ललितसेन उठकर आया, और बैठक में ले जाकर उसको बिठला लिया।

ललितसेन ने विना भूमिका बाँधे हुए कहा—"आप अपनी भांजी का विवाह करना चाहते हैं?"

"जी हाँ, उसके लिये तो मारे-मारे ही फिर रहे हैं।" लालसिंह ने कहा—"परंतु वर नहीं मिलता।"

"किसी के साथ टीपना मिली है?"

"जी हाँ, दो टीपनाएँ मिली हैं।"

"किसकी?"

"एक तो भुजबलजी की और एक कोई मास्टर हैं, जो ग़रीबों की दवा-दारू करते हैं।"

ललितसेन ने कुछ चकित होकर कहा—"भुजबल की?" फिर हँसकर बोला—"यह तो असंभव है। परंतु मास्टर कौन हैं?"

लालसिंह ने भोलेपन के साथ कहा—"एक मास्टर यहाँ छावनी में हैं, जो कुछ पागल या सनकी-से सुने जाते हैं।"

"नाम अजितकुमार है?" ललितसेन ने पूछा।

लालसिंह—"नाम नहीं मालूम।"

ललित—"परंतु यह आज ही मालूम हुआ कि वह पागल हो गया है।"

इसके एक क्षण बाद ललित ने पूछा—"आपकी इच्छा क्या है?"

उसने उत्तर दिया—"जो भुजबलजी की इच्छा होगी, और आप चार जनों की मर्ज़ी होगी।"

ललित ने बेधड़क कहा—"मेरी और भुजबल की एक ही इच्छा है। उन्होंने जो कुछ कहा होगा, उससे मैं सहमत हूँ।"

लालसिंह नम्रता के साथ बोला—"सो आपकी आज्ञा सिर-माथे है। आप तो हम लोगों के सिर-मौर हैं।"

"जन्मपत्री तो बहुत पहले ही मिल चुकी थी। अब कोई और विशेष विघ्न तो है नहीं?"

"कुछ भी नहीं।"

"इस घर में आपकी लड़की को देवी की तरह रक्खा जायगा।"

"किस घर में?"

"इसी में।"

"तो भुजबलजी मऊ न ले जायँगे। एक जगह रहने में लड़ाई-झगड़े का डर रहता है।"

"लड़ाई-झगड़े का डर! किसके साथ?"

"भूल क्षमा कीजिएगा। मैं गाँव का आदमी हूँ।"

ललित ने लालसिंह को अपने शिष्टाचार से प्रसन्न करने के प्रयोजन से कहा—"मैं पान ले आऊँ, अभी तो मेरा पान खाने में कोई हर्ज नहीं है। संबंध हो जाने के बाद फिर चाहे न खाइएगा।"

"फिर क्या हो जायगा?" लालसिंह ने पूछा।

"यही कि लोग दामाद के यहाँ का जल भी ग्रहण नहीं करते।" ललित ने उत्तर दिया।

लालसिंह बोला—"आपके साथ संबंध थोड़ा ही होना है।" और सबसे पहले अब की बार थोड़ा-सा मुस्किराया।

ललितसेन ने इस बात में उस देहाती की सहज-सुलभ मूढ़ता देखकर कहा—"इसका मैं अर्थ नहीं समझा। अभी तो आप कहते थे कि मेरे साथ संबंध करने में आपको उज़्र नहीं है।"

"वाह साहब वाह।" देहाती बोला—"मैंने तो यह कभी नहीं कहा। आप बड़े आदमी होकर ऐसे अधर्म की बात कहते हैं! बहन के साथ क्या इस कलिकाल में भी किसी का विवाह हो सकता है?"

ललित की समझ में अब कुछ आ गया। भौंचक्का-सा रह गया। परंतु शीघ्र सँभलकर बोला—"मैंने यही पूछने के लिये बुलाया था। यदि आपकी इच्छा नहीं है, तो कोई ज़बरदस्ती थोड़े ही है।" और देर तक चुप रहा। लालसिंह ने वहाँ अपनी उपस्थिति की उपयोगिता की समाप्ति समझकर उठते हुए पूछा—"तो मैं जाऊँ?" ललितसेन ने किसी विचार में ग़ोते खाते हुए अन्यमनस्क होकर कहा—"जी हाँ।"

(४६)

यद्यपि थोड़े ही दिन पहले निराश होकर बिलोची लोग अपने घोड़े लेकर चले गए थे, और शिवलाल को अपनी गुण-ग्राहकता प्रकट करने का मौक़ा न मिल पाया था, तथापि शिवलाल के मन में जो बात समा गई थी, उसको अनुकूल परिस्थिति में व्यावहारिक रूप मिल गया। शिवलाल ने दो घोड़ों की एक फ़िटन मोल ले ली।

ज़मींदारी के किसी काम से लौटकर आते ही भुजबल शिवलाल के पास गया। जुती हुई फ़िटन बाहर खड़ी थी। शिवलाल हवाख़ोरी के लिये जाने को तैयार हो रहा था।

भुजबल को देखते ही आत्म-संतोष के साथ बोला—"सस्ते मोल मिल गई है। घोड़े भी मज़े के हैं। चलो, रास्ते में बातचीत होती चलेगी। आज बदली है। मंद-मंद समीर बह रहा है, कवियों को पुलकित करनेवाला।"

भुजबल ने कहा—"मैं साथ न जा सकूँगा।"

"कुछ कहना है, थोड़ी-सी बातचीत करके जाऊँगा।"

थोड़ी दूर हटकर दोनो में बातचीत होने लगी।

भुजबल बोला—"अदालत में साहूकारों का रुपया अब तक जमा नहीं किया? मियाद आजकल में जानेवाली है। यदि मियाद निकल गई, तो सर्वनाश हो जायगा।"

"अजी अभी काफ़ी मियाद है।" शिवलाल ने कहा—"और फिर तुम अपने हथकंडों से और भी मियाद ले लोगे।"

भुजबल तीखेपन के साथ बोला—"अब मुहलत न मिलेगी। मियाद समाप्त होते ही बैनामों की सारी काररवाई मिट्टी में मिल जायगी।"

"क्यों?"

"क़ानून है। इसी शर्त पर अदालत की अनुमति बैनामा करने की मिली थी। यदि साहूकारों की डिग्रियों का रुपया दाख़िल न किया गया, तो सब बैनामे क़ानून के विरुद्ध समझे जाकर नष्ट हो जायँगे।"

"और जायदाद के मालिक क्या साले साहूकार बन जायँगे?"

"सो तो नहीं है, परंतु जायदाद नीलाम हो जायगी। बाबू ललितसेन का दस हज़ार रुपया मारा जायगा।"

"मैं तो कहीं भाग नहीं जाऊँगा।"

"परंतु हम लोगों ने ललितसेन को विश्वास दे रक्खा है कि अदालत में रुपया जमा कर दिया है। वह जब सुनेंगे, तब क्या कहेंगे ?"

"कुछ परेशान होने की बात नहीं है। मैं भी इतना क़ानून जानता हूँ कि नोलाम होने के पहले यदि रुपया दाख़िल हो जाय, तो जायदाद बच जाती है। फिर मेरी आधी जायदाद तो बची हुई है। बाबू ललितसेन के रुपए की इतनी चिंता न करो।" भुजबल मुँह लटकाकर रह गया। पूछा—"फ़िटन और घोड़ों में कितना रुपया बिगाड़ा है ?"

"बिगाड़ा है।" शिवलाल ने नाक सिकोड़कर कहा—"आठ सौ रुपए में ऐसी सस्ती चीज़ कहीं नहीं मिल सकती थी। एक कर्नल साहब की है। बेचारे विलायत जा रहे हैं। उनकी बात कहाँ मिलती ? इसलिये ले ली। काम देगी। बहार रहेगी।"

भुजबल दाँत पीसकर रह गया। एक क्षण बाद बोला—"और कितना रुपया फूकने से बचा है ?"

शिवलाल हँसकर बोला—"यह लीजिए। अब आप बिगड़ गए। अजी साहब, रुपए की सिर्फ़ शकल बदल गई है। रुपया न सही, माल तो पास है। कुछ सोने के गहने बनवा लिए हैं। विवाह यदि जल्दी होने को हुआ, तो ज़ेवर का शीघ्र जुटाना लगभग असंभव हो जाता। बनवा लिया है। जल्द काम में आवेगा। घबराइए मत जनाब, ज़रूरत पड़ने पर गहने के फिर रुपए खड़े किए जा सकते हैं। कर्नल साहब को ख़ुश रखने की नियत से अभी लोग एक हज़ार रुपया घोड़ा-गाड़ी का दे देंगे। बाक़ी रुपए अभी रक्खे हुए हैं।"

माथा टटोलने के बाद भुजबल ने कहा—"ख़ूब किया ! अच्छा किया ! अब देखें, क्या आफ़त आती है !"

शिवलाल ने टोककर कहा—"तुम तो बुढ़ियों की तरह रोना ले बैठे। क़सम जवानी की, यह चर्चा अब और न छेड़ने दूँगा।"

"तब क्या कहूँ, और क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता ?" भुजबल ने निर्बल स्वर में कहा, और उसका मुँह बिलकुल मुर्झा-सा गया।

शिवलाल ने उसको उत्साहित करने के इरादे से कहा—"यह बात बहुत हो ली, अब मतलब की बात करो। सगाई-संबंध की बात किस सीढ़ी पर पहुँची है ?"

"वह नहीं होती दिखती। लड़की की मा के मर जाने से स्थिति में बड़ा परिवर्तन हो गया है। उसका मामा बहुत हठी मालूम होता है।" भुजबल ने उत्तर दिया। शिवलाल उत्तेजित होकर बोला—"उसके मामा की क्या दम जो इनकार कर सके ? मैं इतना ख़र्च कर चुका हूँ। ज़मींदारी दे चुका हूँ। अब विवाह को क्या कोई रोक सकता है ?"

भुजबल ने कुछ शांति प्राप्त करके कहा—"ज़मींदारी जैसी दी वैसी न दी। डिग्रियों का रुपया दाख़िल न करने से वह सब देना-लेना बराबर हो जायगा।"

शिवलाल सोचकर बोला—"उसका मामा बड़ा काइयाँ मालूम होता है। ज़मींदारी को सुरक्षित समझकर शायद मुझको अँगूठा दिखला देगा। मैं तो भाई, रुपया अभी कदापि दाख़िल न करूँगा। यह सब विवाह होने के बाद होगा। इसमें तुम्हारे ललितजी चाहे नाराज़ हो जायँ और चाहे ख़ुश रहें—मैंने तय कर लिया है।"

भुजबल ने अकस्मात् अपना भाव बदलकर कहा—"विवाह तो कोई कठिन बात नहीं है।"

"मैं उसके मामा को बात-की-बात में सीधा कर लूँगा, परंतु जैसे बने, वैसे अदालत में रुपया तुरंत दाख़िल होना चाहिए।"

"तुम्हें याद होगा कि हमने रजिस्ट्री के समय कहा था कि रुपया दाख़िल कर दो।" शिवलाल बोला—"परंतु तुम्हीं ने कहा था कि अभी ऐसी जल्दी नहीं है; छावनी चलकर देखा जायगा। और तुमको स्मरण होगा कि कुछ रुपया तो तुम्हारे ही पास है। उसकी मुझे परवा नहीं, परंतु यह निश्चय है कि

विवाह पहले होगा, रुपया पीछे दाख़िल किया जायगा।"

भुजबल ने फिर हठ-पूर्वक मुस्किराकर कहा—"आप बड़े ज़िद्दी हैं। यह तो सोचिए कि यदि विवाह हो भी, तो चार दिन में कैसे सब रीतें निभ जायँगी? फलदान है, लगन है और न-मालूम कितने नेग और होते हैं।"

"अच्छा, यही सही। फलदान हो जाय, उसके बाद रुपया दाख़िल कर दिया जायगा। कब होगा फलदान?" शिवलाल ने प्रश्न किया।

भुजबल कुछ देर तक सोचता रहा। सोचने के अनंतर बोला—"परसों।"

बहुत प्रसन्न होकर शिवलाल ने कहा—"भाई, बुरा मत मानना। बात यह है कि तुमने पहले सौदा किया है। तुमने ज़मींदारी पहले बै न कराई होती, तो मैं यह हठ न करता। अब चलो, घूम आवें।"

"इस समय क्षमा कीजिए। बहुत काम करना है।" कहता हुआ भुजबल वहाँ से चला गया। उसके जाते-जाते शिवलाल ने फबती कसी—"जिसके गायन-वादन के सुनने के लिये इतने आतुर होकर चले जा रहे हो, हमको फिर कभी न सुनवाया, देखूँगा।"

(४७)

शिवलाल जब हवा खाकर लौट आया, पानी बरसने लगा। खाना खाकर जा लेटा, और श्रृंखला-विहीन विचारों और कल्पनाओं में लतपत होने लगा। पानी रिम-झिम बरस रहा था, परंतु उसके मन में मूसलाधार-सी हो रही थी।

पूना का प्रसन्न वदन, हेम-वर्ण और सुडौल अंग, विशेषतः लजीले नेत्र, विविध भाँति के आकर्षक उत्तेजक और मोहक रूप धारण कर-करके आँखों के सामने आने लगे, और उसकी असंयत, अनिश्चित प्यास को बढ़ाने लगे। विवाह की और विवाहित अवस्था की असंख्य कल्पनाओं में मन को उलझाकर कामियों के कल्पित स्वर्ग का आनंद लूटने लगा। वर्तमान की वास्तविक वस्तु-स्थिति जब-जब कुछ निराश करती, तब-तब विवाह करने की उत्कट इच्छा को दृढ़ प्रण, कठोर हठ का रूप देने लगा।

परंतु एक नतीजे पर पहुँचकर मन को विश्रांति देना शिवलाल के स्वभाव में न था। कामुकता की लहर में पूना की तुलना न-मालूम अपने किस-किस अनुभव के साथ की। परंतु इंद्रिय-लोलुप मौजी शिवलाल भी इस तुलना में पूना को उसके लावण्य से अधिक न-जाने किस बात में उसको बढ़ा-चढ़ा हुआ देखने लगा। इतने में किसी समय किसी के मधुर कंठ से निकली हुई स्वरावलि की ध्वनि कान में गूँजी, और कोई सुंदर मुख आँखों के सामने से घूम गया। कई बार चेष्टा की, कई बार प्रार्थना की, परंतु गले की वह तान फिर न सुनने को मिली, वह दर्शन फिर न हुआ। शिवलाल यह सोचकर व्याकुल हो गया।

मन में कहा—"भुजबल बड़ा स्वार्थी, पामर है। वैसे न-मालूम कहाँ-कहाँ हमारा साथ किया, परंतु अपनी स्त्री का गाना उस दिन के बाद फिर कभी नसीब न होने दिया। जैसे होगा, तैसे कल गाना तो ज़रूर सुनूँगा।" कभी पूना, कभी रतन, कभी घोड़ा-गाड़ी और कभी गहने—इस तरह के ऊट-पटाँग ख़यालों में डूबते-उतराते अंत में साहूकारों की डिग्रियों की बिभीषिका और लापरवाही के निश्चय से उत्तेजना की धारा के परिवर्तन में किंचित् शांति पाकर उखड़ी-पछड़ी नींद में सो गया।

सबेरे उठकर बैठक में गया। उसी समय अजित-कुमार आया। नौकर मौजूद थे। उसके आने से बहुत प्रसन्न न होकर शिवलाल बोला—"आज सबेरे ही कैसे तकलीफ़ की मास्टर साहब?"

अजित ने उत्तर दिया—"आपने एक बार ऋण पर रुपए लेने के लिये इच्छा प्रकट की थी।"

"सो?" नौकरों की उपस्थिति में यह चर्चा सुनकर कठिनाई से अपनी अप्रसन्नता को छिपाकर उसने पूछा।

"ऋण पर नहीं, वैसे ही बहुत-सा रुपया मिल सकता है।" अजित ने मुक्त हास के साथ कहा।

"सो कैसे ?" शिवलाल ने अप्रसन्नता कम और विस्मय अधिक प्रकट करते हुए कहा।

"आज सुबह मैं अपने मकान के पीछे के खँडहल में लघुशंका के लिये गया, तो स्वर्ण-मुहरों से भरा हुआ एक घड़ा पानी के प्रवाह के कारण पृथ्वी में से कुछ उभरा हुआ दिखलाई पड़ा। मैंने उसको उखाड़ लिया है। चाहिए हो, तो दे जाऊँ।"

पहले शिवलाल ने सोचा कि किसी ने सुना तो नहीं। नौकर पास ही खड़े सुन रहे थे। बोला—"आप ही क्यों नहीं ले लेते ?"

अजित ने हँसकर कहा—"लावारिस माल है। नाठ का धन। मुझे ज़रूरत भी नहीं है।"

शिवलाल नौकरों की ओर देखते हुए बोला—"नाठ का धन मुझे नहीं चाहिए। प्रेतात्मा साँप का शरीर धारण करके उसकी रक्षा किया करते हैं। जो इस तरह का धन अपने क़ब्ज़े में करता है, निर्वंश हो जाता है। आप ही को मुबारक हो। मैं न लूँगा।"

अजित ने कहा—"पहले मेरी भी इच्छा हुई थी कि आपको न दूँ, परंतु यह सोचकर कि आपको यह संपत्ति कठिनाइयों का सामना करने में सहायता करेगी, और एक बार आपको वचन दिया था, यद्यपि बहुत शिथिलता के साथ, इसलिये कहने आया था। अब जो उसका हक़दार दिखलाई पड़ रहा है, उसको जाकर दे दूँगा।"

"किसको ?" शिवलाल ने प्रश्न किया, परंतु विना उत्तर दिए अजित वहाँ से चला गया। शिवलाल मन में कभी नौकरों को, कभी धर्म को, कभी अजित को और कभी अपने को देर तक गालियाँ देता रहा। अजित ने वह सब धन मजिस्ट्रेट की कचहरी में जमा कर दिया।

(४८)

संध्या का समय था। बदली अब भी छाई हुई थी। कभी-कभी एकाध बूँद टपक जाती थी। अंधकार व्याप्त न हुआ था। ललितसेन का दरवाज़ा खुला हुआ था, परंतु बैठक ख़ाली थी। भीतर से हारमोनियम पर किसी बारीक मधुर कंठ के गायन का शब्द लहरा रहा था। गायन धीमा था और कुछ करुण-सा। बदली से छाए हुए नभ में पूर्ण तिमिर के प्रवेश के समय वह तान किसी व्याकुल तंत्री की झनकार जान पड़ती थी।

इसी समय अजित वहाँ होकर निकला। इस मार्ग से वह बहुत कम आया-जाया करता था। आज ज्यों ही ललित के मकान के पास पहुँचा, त्यों ही दूर निर्झरित स्वर के कान में पड़ते ही इस तरह खड़ा हो गया, जैसे किसी ने पैर थाम लिए हों। "कोई आ जाय, तो क्या सोचेगा ?" यह प्रश्न मन में उठा, और उसका असुविधा-जनक उत्तर भी मन में आया, परंतु वहाँ से जा न सका, कुछ छिपा-सा एक कोने के पीछे खड़ा हो गया।

मकान के सामने सड़क पर किसी की गाड़ी के आने की आहट मालूम पड़ी। वह सटकर खड़ा हो गया, जैसे कोई चोर या अपराधी हो। गाड़ी दरवाज़े पर खड़ी हो गई। मेघाच्छादित संध्या के उस निर्बल प्रकाश में अजित ने गाड़ी से उतरनेवाले व्यक्ति को पहचान न पाया। अजितकुमार को कुछ अचरज हुआ। उस व्यक्ति ने दरवाज़े पर खड़े होकर झाँका। बैठक सूनी थी। भीतर से गाने का शब्द आ रहा था।

गाड़ीवान से उस व्यक्ति ने कहा—"तुम जाओ। मैं आ जाऊँगा। छाता पास है।" गाड़ी चली गई, और वह बैठक में पहुँच गया।

अजितकुमार की इच्छा चले जाने की हुई। परंतु गायन बंद न हुआ था। वहाँ से चले जाने की कई बार इच्छा करने पर भी रुका रहा। क़रीब आधा घंटा गाना और होता रहा। इतने में निविड़ अंधकार हो गया।

गाना बंद हुआ, और कुछ ही क्षण बाद बैठक के किवाड़ बंद हो गए, परंतु बैठक में उजेला न दिखलाई पड़ा।

अजित ने सोचा—"ललितसेन और भुजबल कहाँ हैं ?"

इसके बाद ही उसके मन में तरह-तरह की शंकाएँ और उनके तरह-तरह के समाधान उठने लगे। देर तक कान लगाए रहने के बाद घर के भीतर से कोई आवाज़ न सुनाई पड़ी। अजित को अकारण भय लगा। इतने में किसी ने कहा—"कौन है? क्यों आए हो? निकलो।" यह रतन का कंठ था। उसी बात को एक और स्त्री ने दुहराया।

किसी मनुष्य ने उत्तर दिया—"बाबू ललितसेन से मिलने आया था। उनके दर्शनों की आशा से अँधेरे में ही बैठक में बैठा रहा। इतने में नौकरानी किवाड़ बंद करके भीतर चली गई। असमंजस में पड़ गया। बैठा रहा। पानी टिपटिपा रहा है। घर दूर है। सवारी पास नहीं। सबेरे चला जाऊँगा।"

तब किसी ने चिल्लाकर कहा—"जाइए, वे लोग यहाँ नहीं हैं। जब आ जायँ, मिल लीजिएगा। इस समय आपका यहाँ कोई काम नहीं।"

यह रतन का स्वर था। उस मनुष्य ने इस पर ज़िद करते हुए कहा—"यह तो आपकी बड़ी बेरहमी है। ऐसी अच्छी गलेबाज़ी के बाद ऐसी कठोरता। मैं भुजबलजी का मित्र हूँ। घबराइए नहीं।"

अजितकुमार आपे से बाहर हो गया। किवाड़ पर ज़ोर की दस्तक देकर बोला—"खोल दो। निकाल दो इस बदमाश को, घबराओ मत, मैं आ गया हूँ।"

एक क्षण में नौकरानी ने किवाड़ खोल दिए। लालटेन हाथ में लिए हुए थी। पास ही रतन खड़ी थी। एक ओर जलती हुई-सी आँखें निकाले शिवलाल हाथ में छाता लिए हुए अकड़ा खड़ा हुआ था।

अजित ने गरजकर कहा—"क्यों रे नीच, अधम, यहाँ से निकलता है या नहीं? अथवा एक लात में सड़क पर फेंकूँ?"

शिवलाल अकड़ा खड़ा रहा, परंतु खराए हुए गले से बोला—"आप अपने पागलपन का नाटक यहाँ भी खेलेंगे? मैं तो अपने मित्र के घर आया था, पर आप किसके यहाँ आए हैं?"

अजित ने शोर करते हुए कहा—"निकल! नहीं तो एक घूँसे से जान ले लूँगा।"

रतन काँप गई।

अजित की आकृति भीषण हो गई। उसकी आँखों की भयानकता ने शिवलाल को बैठक छोड़ने पर विवश किया। धीरे-धीरे चला गया। जाते समय कह गया—"इस अनधिकार चेष्टा के लिये तुमको पछताना पड़ेगा। जब मेरे मित्र मुझको मिलेंगे, तब उनसे कहूँगा।"

शिवलाल के चले जाने पर अजित इस बात को शायद भूल गया कि मुझको भी जाना है।

वह कभी खुले दरवाज़े की ओर और कभी रतन को ओर देखने लगा।

रतन शिवलाल के इस तरह घुस आने से इतनी भयभीत न हुई होगी, जितनी अजितकुमार के शोर-गुल से डर गई।

एक बार तस्वीर उतारने के बाद ही जब ललित आ गया था—और आज, भय से थर्रा गई।

अजित ने क्षमा-सी माँगते हुए कहा—"यह अच्छा आदमी नहीं है। नौकरानी की असावधानी से बैठक में बैठा रह गया। इसको फिर कभी न आने देना।" अजित को प्रतीति थी कि अब भी उपदेश देने का उसको हक़ प्राप्त है।

नौकरानी ने अपनी सफ़ाई में कहा—"वह सचमुच कोई बदमाश न था। ज़रूर बाबूजी के कोई मिलनेवाले थे। मेरी भूल से बैठक में बैठे रह गए। आपको इतनी हल्लादराज़ी न करनी चाहिए थी।"

रतन का चेहरा सूखा हुआ था। निर्बल स्वर में बोली—"यदि वह भैया का मिलनेवाला न होता, तो ऐसा साहस नहीं कर सकता था। यह सब हल्ला-गुल्ला जब सब लोग सुनेंगे, तो न-जाने क्या कहें-सुनेंगे।"

अजित का कलेजा भीतर धस गया। कठिनाई से बोला—"मैंने जो कुछ किया, न-मालूम किस प्रेरणा से किया। क्षमा करना। जाता हूँ।" और सिर नीचा कर लिया।

रतन और सहम गई। क्षीण स्वर में बोली—"मास्टर साहब, आप भैया के पास बहुत दिनों से कभी नहीं आते, परंतु यह जो अभी यहाँ से चले गए हैं, उनके मिलने-जुलनेवालों में से मालूम पड़ते हैं। एक ज़रा-सी बात के लिये आपको अपने मन में बतंगड़ नहीं खड़ा करना चाहिए था।"

अजित ने नीची आँखें किए हुए ही कहा—"तुम्हारा कहना यथार्थ मालूम होता है।" फिर गला साफ़ करके एक क्षण बाद बोला—"मैं फिर कभी नहीं दिखलाई पड़ूँगा। परंतु केवल एक प्रश्न करना चाहता हूँ—तुम सुखी हो?"

जैसे कंठ को प्रबल शक्ति मिल गई हो, रतन स्पष्ट स्वर में बोली—"यह सब बात करने की आपको कोई ज़रूरत नहीं है। इस समय न मेरे भाई यहाँ हैं और न और लोग।"

फिर नौकरानी से यह कहकर भीतर चली गई—"किवाड़ अच्छी तरह बंद करके आ जाओ।"

अजित की आँखों में बिजली की-जैसी चकाचौंध लग गई। वह बैठक में से चला आया। नौकरानी ने किवाड़ बंद कर दिए।

उसको उस रात यह अवगत न हुआ कि घर किस तरह जा पहुँचा था।

(४१)

एकाध दिन पीछे थोड़ी रात गए भुजबल और ललितसेन कहीं से घर लौट आए। नौकरानी ने एक-दो बार प्रश्न करके और परिचय पाने के बाद किवाड़ खोल दिए। ललित के चेहरे पर क्षोभ और चिंता की छाप लगी हुई थी, भुजबल भी प्रसन्न न मालूम होता था। एक दूसरे से विना कुछ कहे-सुने दोनो अपने-अपने शयनागार को चले गए।

रतन अभी सोई नहीं थी। कुछ कहना चाहती थी, परंतु स्वामी को सुचित्त न देखकर चुप रही।

भुजबल ने क्षणिक विश्राम के बाद कहा—"बड़ी आफ़त में हूँ। कुछ समझ में नहीं आता।" रतन ने भय-कंपित स्वर में पूछा—"क्या कोई बात हो गई है?"

"पूना जो मेरी साली है, उसके विवाह की चिंता में जान जा रही है।"

"क्या कोई वर नहीं मिलता?"

"मेरे ज़मींदार मित्र बाबू शिवलाल से जन्मपत्रिका का कुछ मिलान हुआ था। पूना की मा की तरफ़ से कुछ सह उसको मिली, तो अपनी ज़मींदारी का एक ख़ासा भाग उसको दे दिया। वह मरीं, और मेरे ऊपर पहाड़ टूटा। पूना का मामा बिलकुल इनकारी हो गया है। इधर बाबू से दस हज़ार रुपए लेकर जो बैनामे हमारे-तुम्हारे और उनके नाम उन्होंने किए थे, उन बैनामों का रुपया लेकर बाबू शिवलाल ने अदालत में जमा नहीं किया, सो उन बैनामों के मंसूख़ होने की नौबत आ रही है, और दस हज़ार की बड़ी रक़म खटाई में पड़ी जा रही है। इसका तो ख़ैर हम लोग कुछ उपाय कर रहे हैं, परंतु बूढ़ा शिवलाल ब्याह के बेतरह पीछे पड़ा हुआ है। उधर पूना सयानी हो गई है, और वह गाँव भले आदमियों का नहीं है। यदि उसका विवाह झमेले में पड़ गया, तो उसके आवारा हो जाने का पूरा डर है।"

"मेरे विवाह होने के पहले पूना के साथ मेरी जन्मपत्री मिल गई थी, इस पर वह बेवक़ूफ़ मामा मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा हुआ है कि तुम्हीं पीले हाथ कर दो। तुम्हारे रहते मैं दूसरा विवाह करूँ, यह शैतानी बात एक क्षण के लिये भी मेरे मन में नहीं ठहरती। क्या करूँ, तुम्हीं बतलाओ।"

रतन ने ज़रा ठहरकर उत्तर दिया—"आपके रुपए-पैसे और जायदाद के झगड़ों को मैं जानती नहीं, परंतु मेरे जी में तो यह आता है कि उस लड़की के लिये कोई लड़का शीघ्र ढूँढ दो।"

भुजबल ज़रा झुँझलाकर अपनी बेबसी प्रकट करता हुआ बोला—"इतना कह देना तो बहुत आसान है, परंतु लड़का ढूँढते-ढूँढते मैं तो आधा रह गया हूँ। या तो उसका विवाह उस बूढ़े सनीचर के साथ होता है, या कुछ दिन बाद वह लड़की

बिगड़ती है, और कुछ समझ में नहीं आता।" और रतन की ओर देखने लगा।

रतन ने इस घोर समस्या को सुलझाने में अपने को असमर्थ समझकर कहा—"आप जो कुछ ठीक समझें, सो करें, परंतु यदि विवाह होने तक पूना को आप यहाँ बुला लें, तो कैसा हो?"

"तुम्हारी उसकी पट जायगी?"

"आज तक आपने किसी के साथ मुझको लड़ते देखा है?"

भुजबल ने दुलार के साथ कहा—"यह लो, करने लगीं न उल्टी बातें। लड़ने और न पटने में ज़रा अंतर है। बाबू न-जाने क्या कहेंगे?"

रतन उत्साहित होकर बोली—"भैया को मैं ख़ूब जानती हूँ। उन्हें पूना के आने से बड़ा हर्ष होगा।"

भुजबल ने धीरे से कहा—"तुम्हें एक बात नहीं मालूम। बतलाता हूँ। किसी से कहना मत।"

रतन के फीके चेहरे पर हलकी-सी मुस्किराहट दौड़ गई। बोली—"मुझे मालूम है।"

भुजबल ने आश्चर्य के साथ कहा—"कैसे? किसने कहा?"

फिर हँसकर बोला—"तुम स्त्रियाँ विचित्र जीव हो। न-मालूम क्या-क्या जासूसी बेचारे मनुष्यों की किया करती हो।"

रतन नीची आँखों से ऊँचे देखते हुए मुस्किराती रही। भुजबल ने कहा—"उनकी इच्छा विवाह की थी। परंतु धर्म-विरुद्ध होने के कारण वह इच्छा पूरी नहीं हो सकती। वह शायद मान गए होंगे, परंतु पूना के यहाँ आने पर उनके हृदय को क्लेश होगा। मैंने सोचा है कि पूना को अपने घर भेज दूँ।"

"पूना के मामाजी राज़ी हो जायँगे?" रतन ने पूछा।

भुजबल ने सिर हिलाकर कहा—"सो तो सहज नहीं जान पड़ता। वह बहुत हठी और बेढब है। मैंने कहा था कि विवाह होने तक मेरे साथ छावनी भेज दो, परंतु बाबू के नाम से ऐसा सनका हुआ है कि किसी तरह मानता ही नहीं है। एक शर्त लगाता है—विचित्र और विकट।"

"कौन-सी?"

"कहता है कि यदि तुमको अपने घर लिवा जाना हो, तो उसके साथ भाँवर डाल लो, फिर लिवा जाओ।"

रतन थोड़ी देर चुप रहकर बोली—"कोई वर न मिले, तो ऐसा ही कर लीजिए।" फिर मुस्किराकर कहा—"जैसा सूखा फूल खिलने का प्रयास करे—हम लोग एक से दो हो जायँगे।" और नीचे देखने लगी।

भुजबल ने उसको सोचने का अवसर न देकर कहा—"तुमने झटपट कह दिया। यह नहीं सोचा कि लोग-बाग क्या कहेंगे? बाबू क्या कहेंगे? और तुमको अपना मुँह कैसे दिखलाऊँगा। पूना की रक्षा के लिये यदि मुझको कष्ट उठाना पड़े, तो मैं धीरज के साथ सह लूँगा, परंतु तुम?"

रतन ने सिर उठाकर खनकते हुए गले से कहा—"मुझे कोई कष्ट न होगा। आपको दुःख न हो, यही चाहती हूँ। परंतु आप दिल्लगी कर रहे हैं।"

भुजबल ने मुस्किराकर कहा—"अभी तो दिल्लगी ही है, परंतु संसार में कर्म का विचित्र खेल हुआ करता है। कौन जानता था, कौन कह सकता था कि तुम्हारे साथ मेरा विवाह हो जायगा? भाग्य में जो कुछ होता है, होकर रहता है। न-मालूम कब क्या हो जाय?"

"सो तो है ही।" रतन ने भाग्य की अखंडनीय दलील को स्वीकार करते हुए कहा—"जो कुछ होना होगा, सो तो होगा ही, परंतु अपनी शक्ति में उस लड़की की रक्षा करने में कोई कसर नहीं लगानी चाहिए।"

"मैं कसर नहीं लगाऊँगा।" भुजबल ने दृढ़ता के साथ कहा, और शांत होकर लेट गया।

रतन कुछ समय से, कुछ कहने के लिये, जमुहाइयाँ ले रही थी। अनुकूल अवसर पाकर बोली—"परसों की बात सुनी है?"

"क्या ?"

"आपके ज़मींदार मित्र संध्या समय आपसे मिलने के लिये आए। कमरे में अँधेरा था। हम लोग भीतर थे। वह बैठे रहे। नौकरानी अँधेरे में किवाड़ लगा आई। आहट मालूम होने पर हम लोग लालटेन लेकर गए, उनको देखकर घबराए। पूछ-ताछ की। इतने में मुझे जो पहले एक मास्टर पढ़ाते थे—नाम याद नहीं आता—किवाड़ों को ठोककर हल्ला करने लगे। किवाड़ खुलने पर अंड-बंड बकने लगे। आपके मित्र तो चले गए, परंतु वह बैठक में अचल-से हो गए। हम लोगों ने कहा-सुनी की, तब हटे। आप नौकरानी से पूछ लेना।" भुजबल एकाएक उठ बैठा। फिर से सारी कथा को सुनकर बोला—"उस बदमाश पाजी की यह हिम्मत! इस कमीने अजितकुमार को पीस डालूँगा, तब चैन लूँगा।" रतन ने उसको शांत करने की चेष्टा की, परंतु उस रात भुजबल को नींद आई या नहीं, यह एक कठिन प्रश्न है।

(५०)

सबेरे जब भुजबल और ललितसेन ने बिस्तरे छोड़े, तब एक दूसरे से किनारा काटना चाहते थे, परंतु नौकरानी ने ललितसेन से कुछ कहा। ललितसेन अपनी बहन से बात करके बैठक में आया। भुजबल भी आ गया। भुजबल एक पुस्तक के पन्ने लौटने लगा, ललितसेन चुपचाप बैठा सोचने लगा।

निदान ललितसेन बोला—"परसों की बात तुमने सुनी है ?"

भुजबल ने कहा—"हाँ, कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। वह आधा क्या पूरा पागल हो गया है। मेरी समझ में उसको तो पागलख़ाने में भेजने का बंदोबस्त करना चाहिए।"

"पागलख़ाना या जेलख़ाना, इनमें से एक की व्यवस्था अवश्य करनी पड़ेगी।" ललितसेन ने अपनी ठोढ़ी नोचते हुए कहा—"मेरी समझ में नहीं आता कि वह बदमाश शिवलाल यहाँ क्यों आया था। इस शिवलाल के कारण जितनी परेशानी हुई, उतनी कभी किसी पागल ने किसी को नहीं पहुँचाई होगी।" और कुपित दृष्टि से एक बार भुजबल की ओर ताककर दूसरी ओर देखने लगा।

भुजबल ने आत्म-रक्षा का पैंतरा बदलते हुए कहा—"वह जैसा पाजी है, यह मैंने अब जाना, और उसके होश ठीक करने के लिये जो कुछ हो सकता है, वह करवा ही आया हूँ। परंतु इस वनचर को तो देखिए।"

"मुझे तो सब पशु प्रतीत होते हैं।" ललितसेन ने कुछ अधीरता के साथ कहा—"शिवलाल को मैं पहले गधा समझता था, अब कुत्ता समझता हूँ।" भुजबल क्षोभ का लक्षण न दिखलाते हुए बोला—"हाँ, सो तो है ही, परंतु यह मास्टर मेरी समझ में अच्छी तरह न आया।"

ललितसेन के दिल में यह कुछ गड़ गई। बोला—"मैं उसे ख़ूब समझता हूँ। पागल नहीं है, अहमक़ है। उसकी पीठ खुजलाती है। दो कोड़े लगा देने से ही ठीक हो जायगा। उसको किवाड़ खुलवाकर शोर करने की ज़रूरत न थी। परंतु तुम्हारे उस सनीचर को यहाँ आने की क्या अटक पड़ी थी ?"

"उसको तो यह मालूम नहीं था कि हम लोग घर पर नहीं हैं। बहुधा ऐसा होता है कि कोई सीधा या बेवक़ूफ़ आदमी कहीं पर जाता है, किसी को उस स्थान पर न पाकर ठिठक जाता है, रह जाता है और फिर नाहक़ धक्के खाता है।"

"और उसको चोर समझकर रास्ते से चलनेवाला कोई ग़रीब मास्टर मदद के लिये दौड़ पड़ता है, सब स्वाभाविक है। फिर भी जी को काफ़ी मतलाने-वाला है।"

ज़रा ठहरकर ललित ने कहा—"और जिसके लिये दस हज़ार नक़द रुपए ठगने की क्रिया मालूम है, उसको मिलने के बहाने आकर बैठक का सामान चुराने में कितनी देर लगती है ? वाह, कैसे मालिक के आप मुख़्तार आम हैं ! बड़ी शोभा-प्रतिष्ठा की बात है।"

"यह ताना आपका व्यर्थ है।" भुजबल ने अपने झुँझलाए हुए चित्त को संयत करके कहा—"मैं कौन किसी के भीतर बैठा हूँ? परंतु जो कुछ उसने किया है, वह उसका किया पावेगा। आपसे एक प्रार्थना है।"

ललित ने तीखी मुस्किराहट के साथ कहा—"क्या जाति का कोई और व्यक्ति किसी क़र्ज़ में फँसा है, जिसके बचाने की चिंता में आप घुले जा रहे हैं?"

भुजबल ने अनुनय के साथ कहा—"आप इस समय दिल्लगी मत करिए। अजित के मामले को यों ही छोड़ देने से बदनामी होगी। न-मालूम यह नौकरानी क्या-क्या कहती फिरती होगी। लत्ते का साँप बन जायगा और हम लोग मुँह दिखाने के लायक़ न रहेंगे। अजित पर फ़ौजदारी में दावा करना चाहिए।"

"और शिवलाल को कहीं के सिंहासन पर बिठला देना चाहिए।" ललित ने व्यंग्य किया।

भुजबल बोला—"उसका प्रबंध तो हम लोग पहले ही कर आए हैं। अब इसको देखना चाहिए। मदाख़लत बेजा में दावा होगा।"

"करो।" ललित ने कहा—"ख़ूब पीसो उस बेईमान अजित को। पर गवाही कौन देगा? रतन तो कचहरी में जायगी नहीं, चाहे आप मुँह दिखाने योग्य न रहें, और चाहे मैं।"

"कोई ज़रूरत नहीं, भुजबल ने कहा—"अकेली नौकरानी की गवाही होगी। आप मजिस्ट्रेट से ज़रा मिल लें।"

सोचकर ललितसेन ने कहा—"यह ठीक है। वैसे भी उस राक्षस, सर्व-भक्षी शिवलाल के बारे में मैजिस्ट्रेट से कहना-सुनना पड़ेगा। इसके विषय में भी कह आऊँगा। उन दोनो पर दावा करना पड़ेगा। एक पर चोरी का और दूसरे पर मुँहज़ोरी का।"

ललितसेन उठकर कमरे में टहलने लगा। मूछों पर हाथ फेरता हुआ बोला—"क्या बात है! अच्छी ज़मींदारी मोल ली। दस हज़ार रुपए पर पानी फिर गया। अब मुक़द्दमेबाज़ी करने पर उतारू हुआ हूँ। एक झाँसी में दूसरा छावनी में। मजिस्ट्रेटों और वकीलों की ख़ुशामद करनी होगी। मुख़्तार साहब बाबू भुजबल बहादुर की पग-पग पर राय लेनी होगी। भविष्य बड़ा उज्ज्वल है।"

फिर ज़रा तड़ककर बोला—"तुमने ख़ूब फँसाया। फिर एकाएक थमकर और धीरे से बोला—"नहीं, आपका कोई दोष नहीं। मैं ही बड़ा गधा हूँ। अपने सदा के निश्चय पर अड़ा रहता, तो यह अवसर न आता। तुम सचमुच ऐब से पाक हो। मैंने यदि विवाह का निश्चय न किया होता, तो यह ज़िल्लत न उठानी पड़ती।"

भुजबल चुप रहा। ललित थोड़ी देर टहलने के बाद बोला—"मैं न-जाने क्या-क्या कह गया हूँ। भाई, बुरा न मानना। चित्त ठिकाने न था। उस लड़की के विवाह के संबंध में कुछ हुआ? परंतु तुम भी तो उसी उलझन में अटके रहे हो, जिसमें मैं। तुमको क्या पता।"

भुजबल ने मिठास के साथ कहा—"कुछ पता तो है। एक भयंकर विकट समस्या खड़ी हो रही है। जो चाहता है, उसके साथ विवाह नहीं हो रहा है, और जो नहीं चाहता है, उसके मत्थे इस आफ़त के मढ़े जाने का हठ किया जा रहा है।' "कौन? कैसा?" ललित ने शांति के साथ पूछा।

"आप चाहते थे। शिवलाल चाहता था। लड़की का मामा किसी के लिये राज़ी न हुआ। अब मेरे सिर हुआ है। अचंभा मत करिए। मैं गाली दे-देकर उसको हटाता हूँ, और मेरे सिर आता है। कहता है—"मरने के पहले उसकी मा कह गई है।"

बहुत देर बाद ललित के चेहरे पर हँसी आई। बोला—"बेशक, इस कुल मामले में काफ़ी मज़ाक़ भरा हुआ मालूम होता है। मैं तो अब इस तरह के झगड़ों से सदा के लिये हाथ धो बैठा हूँ। मुक़द्दमों

से फ़ुरसत पाकर तुम उस भोली लड़की के ब्याह का कहीं ठीक-ठाक कर दो।"

"मैं इस विषय में बहुत शीघ्रता करना चाहता हूँ।" भुजबल ने उत्तर दिया। फिर माथे पर दोनो हाथ रखकर, आँखें मूँदे हुए बोला—"बड़ी विपत्ति में हूँ। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ।"

एक घूँट

(आलोचना)

[प्रोफ़ेसर सद्‌गुरुशरण अवस्थी एम्० ए०]



हिंदी-संसार जयशंकर प्रसादजी के नाम से चिर-परिचित है। अभी मैं अपने को यह कहने का अधिकारी नहीं समझता कि प्रसादजी वर्तमान काल के निर्भ्रांत रूप से सर्वश्रेष्ठ कवि अथवा नाटककार हैं, परंतु जो कुछ मैंने पढ़ा है, उसके बल पर मैं उन्हें बहुत ऊँचा नाटककार और कवि समझता हूँ। वर्तमान युग के बड़े-बड़े कवि प्रसादजी की समता में कठिनता से टिकेंगे। यह बात दूसरी है कि कविता का मन-माना आदर्श निर्धारित करके अपने-अपने पृष्ठपोषकों, परिचितों और मित्रों को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया जाय, और किसी को 'कवींद्र' किसी को कोई दूसरा 'इंद्र' बनाकर आगे ढकेल दिया जाय। समय के प्रवाह के साथ-साथ असत् समालोचनाएँ भी साधारण कृतियों के साथ विस्मृति के आवरण में छिप जायँगी। समय का झोंका सहकर जो साहित्य खड़ा रहा, वही अमर है। उसका सुलेखक धन्य है।

प्रसादजी की काव्य-निर्झरिणी तीन स्रोतों से निर्गत हुई है—स्फुट कविताएँ, कहानियाँ तथा उपन्यास और नाटक। प्रथम दोनो क्षेत्रों में तो उनका स्थान ऊँचा है ही। नाटक के लिखने में भी वह अद्वितीय हैं। यह हम निस्संकोच कहेंगे कि प्रसादजी का वर्तमान नाटककारों में सर्वश्रेष्ठ स्थान है। स्कंदगुप्त, अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, जन्मेजय का नाग-यज्ञ बड़े नाटक और कई छोटे-छोटे रूपक आपने लिखे हैं। आलोच्य पुस्तक 'एक घूँट' प्रसादजी के इन्हीं छोटे नाटकों में से एक है। उसमें केवल एक दृश्य है। केवल एक आदर्श को खड़ा करने के लिये कथोपकथन कराया गया है। कदाचित् इस आदर्श की पुष्टि के लिये कि सच्चा प्रेम एक ही से हो सकता है, इस नाटक का प्रणयन हुआ है। प्रेम के अखंड स्रोत को एक ही दिशा की ओर बहाकर, एक ही केंद्र तक पहुँचाकर प्रेम कृतकार्य होता है—यही लेखक प्रतिपादित करना चाहता है। सर्वोन्मुखी प्रेम को एकोन्मुखी बनाना साधु-धर्म की उपासना-भावना की चरम सीमा तो है ही, समाज-धर्म की भी इससे पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है। ध्याता के लिये एक ही ध्येय, ज्ञाता के लिये एक ही ज्ञेय की भाँति उपासना-विधान में भी व्यवस्था की गई है।

कबिरा या जग आइ के बहुतक कीन्हे मित ;
जिन दिल बाँधा एक ते, ते सोए निश्चिंत।

बीसों या सहस्रों देवी-देवताओं में घूमनेवाला मन एकाग्रता और अनन्यमनस्कता, जो कि पुण्य-तीव्रता के लिये अत्यंत आवश्यक है, कभी नहीं प्राप्त कर सकता। समाज के लिये भी इसी प्रकार एक स्त्री-प्रेम समाज को विच्छृंखलता से बचा लेता है। बस, इसी आदर्श की प्रतिष्ठा के लिये प्रसादजी ने 'एक घूँट' को रचा है।

इस आदर्श के प्रतिकूल सबल से भी सबल जितनी दलीलें हो सकती हैं, उन्हें 'आनंद' उपस्थित करता है। गृहस्थी के प्रेम में फँसे हुए लोगों के दुःख का चित्र सामने रखता है। पति को उपेक्षा, पत्नी का विरह, परस्पर का संघर्ष इत्यादि जितने कारुणिक स्वरूप प्रेम के सीमित होने के वह सोच सकता है, बतलाता और अरुणाचल-आश्रम के लोगों को उपदेश देता है कि विश्व की समस्त अभिव्यक्ति को समान-भाव से प्रेम करे। 'आनंद' की 'वसुधैव कुटुंबकम्'

सबसे बलवती दलील अवश्य है। इसको यदि मनुष्य व्यवहार-जगत् में परिणत कर सके, और विश्व के सारे प्राणियों को समान रूप से देखे, तो दुःख की मात्रा कम अवश्य हो जाती है। यह विचार 'प्रसाद'जी ने कदाचित् गीता से ग्रहण किया है। अरुणाचल-आश्रम के लोग मंत्र-मुग्ध होकर आनंद की बातें सुनते हैं। उन्हें संदेह होता है—वे आनंद से वाद-विवाद करते हैं, परंतु अधिकांश लोग आनंद की दलीलों के सामने ठहर नहीं पाते। हाँ, 'वनलता' अवश्य अपने पति के उपेक्षाभाव की अंतर्ज्वाला के हाहाकार से लिपटी हुई, 'आनंद' के तर्क में बिलकुल सार नहीं देखती। प्रेम के केंद्रित करने के कारण उसे कष्ट है और महान् कष्ट है, परंतु 'आनंद' की बातों को वह केवल तार्किकों का इंद्रजाल समझती है। अंत में हृदय की विजय होती है, और यह प्रमाणित हो जाता है कि प्रेम के ऐक्यभावों के विना हृदय को शांति नहीं मिलती। ज्ञानी चाहे जितना सिखावे कि संसार में सबको समान समझना चाहिए, परंतु प्रेमी अपने प्रियतम को खोज निकालने के लिये सदा तत्पर रहता है—यह व्यवसाय सृष्टि के आदि काल से चला आ रहा है। प्रेम को केंद्रित न करके समान रूप से सबकी ओर ले जाना व्यवहार-क्षेत्र में उच्छृंखलता पैदा कर देता है, जिसका परिणाम व्यभिचार हो सकता है। 'आनंद'-ऐसे जागरूक व्यक्ति भी सबसे समान भाव से प्रेम करने की झोंक में आकर एक विवाहिता स्त्री, वनलता, से कह बैठता है—"क्या आप मुझे प्यार करने की आज्ञा देंगी?" यहीं से उसके सिद्धांत की व्यावहारिक शिथिलता झलकने लगती है।

इस छोटे-से रूपक में 'प्रसाद'जी ने एक बड़ी ही उपयोगी दार्शनिक और सामाजिक गुत्थी सुलझाने का प्रयत्न किया है। प्रायः अपने सब नाटकों में इसी प्रकार के कोई-न-कोई आदर्श को लेकर उसके उभय पक्षों पर आप ख़ूब प्रकाश डालते हैं। दार्शनिक दृष्टि से उनकी विवेचना समझने और मनन करने की वस्तु है; और सामाजिक दृष्टि से व्यवहार करने की। अस्तु।

इस छोटे-से दृश्य में आठ पात्र आते हैं। 'आनंद' एक प्रकार से प्रमुख पात्र है। अपनी आकृति और पहनावे से वह एक बनारसी घुमक्कड़ धनी युवक मालूम होता है। अरुणाचल-आश्रम में अपने सिद्धांत के प्रचार के लिये यह आता है। यह विद्वान् है और विवाद-पटु भी। दुःख के अस्तित्व को यह स्वीकार नहीं करता, और उसे काल्पनिक मानता है। स्वतंत्र प्रेम का प्रचार इसका ध्येय है। जिससे यह विवाद करता है, उसे अपनी प्रभावशालिनी वाग्चातुरी से विजित कर लेता है। उसके शब्द इतने गूढ़ और तर्क इतने गंभीर होते हैं कि उनके चक्कर में पड़कर इसकी बातों पर लोग विश्वास करने लगते हैं। प्रेमलता, जो आश्रम की अविवाहिता बालिका है, तर्क-वितर्क करके भी और हृदय के अनुमोदन न करने पर भी मस्तिष्क से इसके पक्ष में हो जाती है। रूपक के कुछ अच्छे-से-अच्छे वाक्य और अच्छे-से-अच्छे भाव नाटककार ने आनंद के मुख से कहलाए हैं, जैसे "विश्व-चेतना के आकार धारण करने की चेष्टा का नाम 'जीवन' है। जीवन का लक्ष्य सौंदर्य है, क्योंकि आनंदमयी प्रेरणा, जो उस चेष्टा या प्रयत्न का मूल रहस्य है, स्वस्थ अपने आत्म-भाव में, निर्विशेष रूप से, रहने पर सफल हो सकती है। दृढ़ निश्चय कर लेने पर उसकी सरलता न रहेगी अपने मोह-मूलक अधिकार के लिये वह झगड़ेगी।"

पुनश्च—"आनंद का अंतरंग सरलता और बहिरंग सौंदर्य है, इसी में वह स्वस्थ रहता है।"

कुछ नवीन तत्त्वखंडों पर अनूठे ढंग से प्रकाश डाला गया है। भावों की गहनता के कारण भाषा कुछ दुरूह और कठिन है, किंतु यह अभिव्यक्ति इससे सरल ढंग से लिखे जाने पर इतनी कवित्व-पूर्ण न रह सकती। ध्यान से पढ़ने पर अर्थ स्पष्ट हो जाता है। एक अप्रतियोगी मुलम्मावादी के समान दुःख की विवेचना में कितनी सुंदर उपमा का आश्रय लेकर 'आनंद' कहता है—"अपने काल्पनिक अभाव, शोक, ग्लानि और दुःख के काजल आँखों के आँसू में घोलकर सृष्टि के सुंदर कपोलों को क्यों

कलुषित करें ?" और आगे 'आनंद' की सर्वकालीनता प्रमाणित करने के लिये विश्व के आदर्श को उदाहरण के लिये प्रयोग करता है। शब्द ये हैं —"उँह, विश्व विकास-पूर्ण है; है न ? तब विश्व की कामना का मूल रहस्य 'आनंद' ही है। अन्यथा वह विकास न होकर दूसरा ही कुछ होता।" एक स्थान पर और भी 'आनंद' ने एक बड़ी सुंदर उक्ति कही है। "अपने दुःखों से भयभीत कंगाल दूसरों के दुःख में श्रद्धावान् बन जाता है।" जहाँ कहीं किसी स्वरूप में दुःख दिखाई देता है, 'आनंद' उसको निंदा करता है। रसाल के कारुणिक गीत के लिये रसाल को झिड़कता है। चँदुला की विनोद-प्रिय बातों से हर्षित न होकर वह उसके दुखी जीवन से निष्कर्ष-विशेष निकालने लगता है, और अपने निष्कर्ष को, एक बड़े सुंदर रूपक में, श्रोताओं को व्यक्त करता है। "यह जो दुःखवाद का पचड़ा सब धर्मों ने, दार्शनिकों ने गाया है, उसका रहस्य क्या है ? डर उत्पन्न करना ! विभीषिका फैलाना, जिससे स्निग्ध-गंभीर जल में अबाध गति से तैरनेवाली मछली-सी विश्व-सागर की मानवता चारो ओर जाल-ही-जाल देखे, उसे जल न दिखाई पड़े ! वह डरी हुई, संकुचित-सी, अपने लिये सदैव कोई रक्षा की जगह खोजती रहे। सबसे भयभीत, सबसे सशंक !" व्यवहार-रूप में आनंद का सिद्धांत कहाँ पर गिर जाता है, उसका प्रमाण स्वयं 'आनंद' के इन वाक्यों से मिलता है—"श्रीमती, मैं तो पथिक हूँ, और संसार ही पथिक है। सब अपने-अपने पंथ पर घसीटे जा रहे हैं, मैं अपने को ही क्यों कहूँ। एक क्षण एक युग कहिए, या एक जीवन कहिए; है वह एक ही क्षण, कहीं विश्राम किया, और फिर चले। वैसा ही निर्मोह प्रेम संभव है। सबसे एक-एक घूँट पीते-पिलाते नूतन जीवन का संचार करते चल देना। यही तो मेरा संदेश है।" कदाचित् 'आनंद' ने स्वयं यह न समझा होगा कि व्यवहार-पक्ष में उनके इन वाक्यों का अर्थ व्यभिचार भी लगाया जा सकता है। यही पकड़कर 'वनलता' उनको ठिकाने लाती है।

'आनंद' का जीवन वास्तव में आरंभ से लेकर अंत तक एकरस है। अंत में जब वह वनलता की दलीलों से कुछ शिथिल पड़ जाता है और प्रेमलता के प्रति एक अव्यक्त गुदगुदी उसे आक्रांत कर लेती है, तब वह अपनी स्थिति पर सँभलता है। अपने सिद्धांत पर पुनः दृष्टिपात करता है, और उसके खोखलेपन को स्वीकार कर लेता है। उसमें बल था, तर्क था और मानसिकता थी, परंतु उसमें भावुकता और मनोवेग न था, जिस पर हृदय टिक सकता। 'आनंद' ने इसे अंत में ताड़ा और खोकर ताड़ा। परंतु अंत में जो कुछ उसे मिला, वह उसके हृदय के परिष्कार के लिये अलम् था।

इस नाटक की दूसरी उल्लेख्य पात्री 'वनलता' है। यह आश्रम के कवि रसाल की गृहिणी है। उसका प्रेम 'रसाल' के प्रति बड़ा तीव्र और गंभीर है। 'रसाल' कविता में इतना व्यस्त रहता है कि उसे 'वनलता' की अंतर्वेदना का अध्ययन करने का अवकाश नहीं रहता। 'वनलता' दुखी होकर चारो ओर घूमा करती है, उसे कहीं शांति नहीं मिलती। अपने पति की कविताओं में जहाँ कहीं उसे विरक्ति-भाव देख पड़ता है, तो मर्माहत हृदय से और भी तड़प उठती है। उसका सारा दुख यही है कि उसका पति उसके प्रेम का प्रत्युत्तर नहीं देता। उसकी अंतर्वेदना को नहीं सुनता।

दुखी होते हुए भी 'वनलता' विनोद-प्रिय है। वह अपने पति का, जहाँ कहीं अवसर मिलता है, मज़ाक़ उड़ाती है। उस मज़ाक़ का उपहास परिहास तक नहीं पहुँचता। 'वनलता' एक विदुषी स्त्री के स्वरूप में सामने आती है। इसलिये रसाल जब व्याख्याता बनने का स्वाँग रचता है, तो वह कैसी चुटकी लेती है—"छोटी-छोटी कल्पनाओं के उपासक ! सुकुमार सूक्तियों के संचालक ! तुम भला क्या व्याख्यान दोगे ?" इस व्यंग्य में कितना अप्रिय सत्य

निहित है। 'वनलता' पूर्वीय रमणी का हृदय रखनेवाली भारतीय पातिव्रत धर्म से ओत-प्रोत होने पर भी सारा बाहरी व्यवहार तथा बातचीत पाश्चात्य महिला के समान करती है। कदाचित् भारतीय रमणी ऐसे व्यंग्य-पूर्ण वाक्य-शल्यों का प्रयोग अपने पति के प्रति न करती, और न पश्चिमीय महिला अपने अन्यमनस्क पति पर इतना उत्कट प्रेम ही दिखाती। इस दुरंगे स्वरूप का निर्माण साभिप्राय किया गया है। अरुणाचल-ऐसे आश्रम में जहाँ दार्शनिकों की भीड़ है, और ऊँचे-ऊँचे दार्शनिक तत्त्वों की ऊहापोह के लिये तर्क का अप्रतिहत प्रयोग किया जाता है, वहाँ घूँघटवाली भारतीय रमणी टिक नहीं सकती थी। वाद-विवाद के लिये उसे पूर्वीय रंग देना अनिवार्य था, और फिर पूरी कथा में शिष्ट प्रयोग द्वारा हास्य-रस का संचार करने के लिये जिस पात्र को 'प्रसाद'जी ने नियोजित किया है, वह 'वनलता' ही है। चँदुला का उपहास तो भद्दा और अशिष्ट है। अस्तु। वह उसी के योग्य है। परंतु भारतीय रमणी का सुंदर स्वरूप झिलमिलाते हुए आवरण के भीतर प्रकाश की भाँति फूटा निकलता है। पाठकों को यदि करुण और हास्य का कुछ अस्वाभाविक सम्मिश्रण इस पात्र में दृष्टिगत हो, तो ऊपर के विवेचन से उसका निराकरण कर लें।

नाटक में वनलता की उक्तियों का महत्त्व 'आनंद' की उक्तियों से कम नहीं है। रूपक में सबसे पहले इसी पात्र के दर्शन होते हैं। इसका पति बातचीत में इसके सामने ठहर नहीं सकता। आनंद भी इसकी उक्तियों से घबरा जाता है। वह कह बैठती है—"केवल पेट की ही भूख-प्यास तो मानव-जीवन में नहीं होती; हृदय को भी टटोलकर देखा है ?" संसार का उसे इतना ज्ञान है कि वह समझती है कि प्रेमलता और आनंद की बहस में हृदय ही अंत में जीतेगा। उसका पति जब वक्तृता देने का प्रयास करता है, तब वह उसे बहुत छेड़ती है। लोगों को यह अखरता भी है, परंतु वह ऐसा करना अपना अधिकार समझती है। वैसे तो वह पति के उपेक्षाभाव के कारण छलछलाए हुए नेत्र लिए घूमा करती है, और ऐसा मालूम होता है कि यदि किसी ने छेड़ा, तो वह रो देगी, परंतु वह इस अधिकता को अपनी कथोपकथन-पटुता के व्यंग्य में छिपाए रहती है। झाड़ूवाले से विवाद करते समय वह उसको पत्नी का पक्ष लेकर प्लेटो और अरस्तू के विचारों को सुनाने लगती है, इससे इस पात्री की विद्वत्ता का पता चलता है, परंतु रह-रहकर उसकी मानसिक स्थिति उभर पड़ती है। अपने हृदय को इससे अधिक उसने कहीं भी न खोला होगा। "यही तो, इसे कहते हैं झगड़ा, और यह कितना सुखद है। एक दूसरे को समझकर जब समझौता करने के लिये, मनाने के लिये, उत्सुक होते हैं, तब जैसे स्वर्ग हँसने लगता है—हाँ, इसी भीषण संसार में। मैं पागल हूँ। (सोचती हुई करुण मुख-मुद्रा बनाती है। फिर धीरे-धीरे सिसकने लगती है।) वेदना होती है। व्यथा कसकती है। प्यार के लिये। प्यार करने के लिये नहीं, प्यार पाने के लिये। विश्व की इस अमूल्य संपत्ति में क्या मेरा अंश नहीं है। इन असफलताओं के संकलन में मन बहलाने के लिये, जीवनयात्रा में थके हृदय के संतोष के लिये कोई अवलंब नहीं। मैं प्यार करती हूँ और प्यार करती रहूँ; किंतु मानवता के नाते—इसे सहने के लिये मैं कदापि प्रस्तुत नहीं। आह ! कितना तिरस्कार है। (सिर झुकाकर सिसकने लगती है। ")

और आगे कहती है—"संसार में लेना तो सब जानते हैं, कुछ देना ही तो कठिन कार्य है।" व्यंग्य में लपेटे हुए वनलता के ये शब्द ध्रुव सत्य हैं। दूसरे का प्रेम सभी चाहते हैं। 'आनंद' जब बातों में फँसकर वनलता को न समझकर प्रेम करने को स्वयं उद्यत हो जाता है, तब जो झिड़की वनलता देती है, उसकी झेंप का रंग 'आनंद' की आकृति से अंत तक नहीं छूटता। 'वनलता' कहती है—"मैं जिसे प्यार करती हूँ, वही—केवल वही व्यक्ति—मुझे प्यार करे,

मेरे हृदय को प्यार करे, मेरे शरीर को—जो मेरे शरीर का सुंदर आवरण है—सतृष्ण देखे। उस प्यास में तृप्ति न हो, एक-एक घूँट वह पीता चले; मैं भी पिया करूँ। समझे? इसमें आपकी कोरी दार्शनिकता या व्यर्थ के वाक्यों को स्थान नहीं।" अंतिम वाक्य में कैसा मनोहर व्यंग्य है। इसमें विनोद नहीं, इसमें मानसिकता नहीं। इसमें करुणा से मिला हुआ सत्य परिहास के रूप में व्यक्त किया गया है। आनंद कुछ सँभलता है और उसे वनलता के इन वाक्यों में कि "असंख्य जीवनों की भूलभुलैया में अपने चिर-परिचित को खोज निकालना और किसी शीतल छाया में बैठकर एक घूँट पीना और पिलाना।" एक नवीन आधार मिलता है, जिस पर उसका मन रमता है। उसमें विशाल परिवर्तन हो जाता है। वनलता को भी अंत में उसका स्वामी 'पहचान' लेता है। प्रेमलता और आनंद को मिलाकर अपने पक्ष की विजय और आनंद की दार्शनिक व्याख्या की पोल पर वह चुटकी नहीं लेती, केवल हँसती है। जिस विषय की विवेचना इस रूपक का मुख्य ध्येय है, उसकी ऊहापोह में उभय पक्ष के दो पात्र आनंद और वनलता ही हैं। अतएव वनलता को 'एक घूँट' की प्रमुख पात्री कहना अनुपयुक्त न होगा।

प्रेमलता अरुणाचल-आश्रम की एक अविवाहिता कन्या है। आनंद की ओर उसका आकर्षण हो जाता है। वह बड़े गौरव और तर्क के साथ आनंद से बहस करती है। आनंद को इस भावना को कि दो परस्पर विचारों को परस्पर लड़ा दो, और तटस्थ की भाँति आप उनका झगड़ा देखो, प्रेमलता झट यह कहकर काट देती है कि "विचारों का आक्रमण तो मुझी पर होता है।" परंतु फिर भी प्रेमलता कन्या ही है। आनंद उसे स्कूली बालिका की भाँति पढ़ाता है। और उसे बोलने का भी अवकाश नहीं देता। प्रेमलता जब आनंद के सुलझावादी वाग्जाल को स्पष्ट नहीं कर पाती है, तो आनंद उसकी खिल्लियाँ उड़ाता है। इसी वाग्विलास में अनजाने वह आनंद पर आसक्त हो जाती है। और आनंद की रूखी बातों से खीझकर कहने लगती है—"आनंद, आनंद, यह तुम क्या कह रहे हो? इस स्वच्छंद प्रेम में तुमने क्या पाया?" आगे भी कहती है—"यह कितनी निराशामयी शून्य कल्पना है।" प्रेमलता संगीत-प्रिय है। वह जो पहला गाना गाती है, वही बड़ा मार्मिक है। उसकी पहली कड़ी इस प्रकार है—

"जीवन-वन में उजियाली है।
यह किरनों की कोमल धारा
बहती ले अनुराग तुम्हारा;
फिर भी प्यासा हृदय हमारा।
व्यथा घूमती मतवाली है।"

इस गाने ने प्रेमलता की मनोभावना को आनंद तक बहुत स्पष्ट शब्दों में पहुँचा दिया होगा। जीवन रूपी वन-खंड प्रदेश में प्रकाश-ही-प्रकाश है। इस वनखंड को प्रकाश करनेवाली किरणें तुम्हारा (आनंद का) स्नेह लेकर धारा की भाँति प्रवाहित हो रही हैं। अर्थात् तुम्हारा सर्वदेशी प्रेम जीवन की प्रत्येक परिस्थिति तक पहुँचता है; परंतु फिर भी मेरा हृदय प्यासा ही है। अर्थात् आपके स्वच्छंद प्रेम में मेरी प्रेम-पिपासा तृप्त नहीं होती, और व्यथा पागल की भाँति मतवाली होकर घूम रही है। अर्थात् मुझे कष्ट-ही-कष्ट है। साथ-ही-साथ इस पद में परोक्ष की ओर भी संकेत है। उस अखंड सत्ता का आलोक जीवन के प्रत्येक भाग पर पड़ता है, और उसकी दया प्रत्येक परिस्थिति में उपलब्ध है। परंतु फिर भी उपासक का ससीम हृदय असीम हृदय-विरह में तीव्र वेदना अनुभव करता है। यह परिस्थिति उस समय तक रहती है, जब तक ससीम का असीम से पूर्ण तादात्म्य न हो जाय।

'प्रसाद'जी की ओर भी कविताओं में ऐसी परोक्ष की झलक मिलती है, और इसी कारण वे रहस्यमयी हो गई हैं। प्रेमलता आनंद के साथ-ही-साथ दिखाई देती है। दूसरा गान—'जलधर की माला'—भी प्रेमलता ही गाती है। यह उपयुक्त है कि कोमल कंठ का आयोजन अविवाहिता प्रेमलता के ही लिये किया

जाय, नहीं तो तर्क-प्रिय आनंद को उसमें मादक आकर्षण कैसे दीखता। जिस समय वनलता और आनंद का तर्क होता है, और आनंद परास्त होकर अपने सिद्धांत का खोखलापन देखने लगता है, उस समय 'प्रसाद'जी प्रेमलता को वहाँ से हटा देते हैं। यह क्रिया साभिप्राय है। वनलता खुलकर बात कर सकती है, और प्रेमलता अपने प्रियतम का पराभव नहीं देखने पाती। अंत में दोनो का परिणय हो जाता है। प्यासी प्रेमलता को प्रेम मिल जाता है, और रूखे आनंद को अपनी भूल ज्ञात हो जाती है।

रसाल इस अभिनय का चौथा पात्र है। इसका एक उपयोगी स्थान है। रसाल की प्रतिकृति संसार में बहुत तो न होंगे, परंतु होंगे अवश्य। वह अंतर्जगत् में इतना लीन रहता है कि उसे बाह्य जगत् का कम ध्यान रहता है। उसके मनोभाव की सुंदर व्याख्या स्वयं उसकी पत्नी बड़े अनूठे शब्दों में करती है—

"निरीह भावुक प्राणी जंगली पक्षियों के बोल, फूलों की हँसी और नदी के कलनाद का अर्थ समझ लेते हैं, परंतु मेरे अंतर्नाद को कभी समझने की चेष्टा भी नहीं करते।" विद्या-व्यसनी, कला-प्रेमी और कवि अपने आप ही में डूबा रहता है। हमीं लोगों में कितने रसाल मिल सकते हैं। यह बात नहीं कि रसाल पत्नी को चाहता न हो। परंतु वनलता के प्रेम की गहनता और तीव्रता का वह अनुमान ही न कर सकता था, और इसी कारण उसका प्रत्युत्तर देने में वह सर्वथा असमर्थ था। यह उसकी सजग उपेक्षा न थी, बरन् अनजाने का अपराध था। परंतु इसमें वनलता को बड़ी ठेस लगती थी। वह जो एकाग्रता और तन्मयता चाहती थी, वह रसाल उसे नहीं दे सकता था। कारण यह था कि उसकी वृत्ति एक दूसरी ही ओर लीन थी—कविता-देवी की आराधना में। वह उसी ओर तन्मय था।

हाँ, तो यह न समझना चाहिए कि रसाल अपनी पत्नी को उपेक्षा-भाव से देखता था। वह उसे विनोद द्वारा प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता था। पीछे से आकर वह अपनी पत्नी के नेत्र बंद कर लेता है। उसके पहनने के लिये सुंदर साड़ी ले आता है। उसे वाक्-चातुरी से रिझाने का भी प्रयत्न करता है। जब वनलता न पहचान सकी, तो रसाल कहता है—"जानोगी कैसे लता! मैं भी जानने की, स्मरण होने की वस्तु होऊँ तब न? अच्छा तो है, तुम्हारी विस्मृति भी मेरे लिये स्मरण करने की वस्तु होगी।" परंतु इन बातों में हृदय का साक्षात्कार नहीं। वे केवल मन की गढ़ी हुई कवि की बातें हैं, जिससे उसकी पत्नी धोखे में आकर कवि का प्रेमालाप समझे। परंतु वनलता मूर्ख न थी। बातें उसे भी बनाना आती थीं। वह यह जानती थी कि रसाल प्रेम से आकृष्ट होकर उसके पास नहीं आया है, बरन् उसका आना साभिप्राय है। वह केवल यह चाहता है कि उसकी पत्नी भी उसके सुंदर भाषण को सुने, जो वह आनंद के परिचय में देना चाहता है, और सबके साथ 'वाह-वाह' करे। कलाविद् की यह निश्छल आकांक्षा निंदनीय तो नहीं कही जा सकती, परंतु इसकी पूर्ति के लिये पत्नी को प्रेम करने का स्वाँग स्वयं पत्नी से करना, जो सारे मनोभाव से अभिज्ञ है, कपट की परा काष्ठा है। संभव है, कदाचित् रसाल यह समझता हो कि ऐसा न करने से उसकी पत्नी भाषण में न जायगी, परंतु यह उसका भ्रम था। वह वनलता के हृदय को अच्छी तरह परख नहीं पाया। चलने का प्रस्ताव वह बड़ी समझदारी के साथ रखता है, परंतु यह स्पष्ट लक्षित हो जाता है कि यही उसके आने का प्रधान कारण है। रह-रहकर वह अपने जाने की व्यग्रता दिखाता है। पत्नी से बात करने में उसकी अन्यमनस्कता प्रदर्शित होती है। जो-जो विवाद वनलता उठा देती है, वह उसे टाल देता है। हाँ, जब उसकी कविता की चरचा होने लगती है, तब वह मनोयोग से वाग्विलास करता है, अन्यथा बातें टालता है। स्त्री का विनोद अथवा उसकी फटकार से क्षुब्ध नहीं होता। वह कदाचित् अपने को अपराधी समझता और पत्नी की वचन-बाणावली को सुनी-अनसुनी कर देता है।

व्याख्यान के समय वनलता रसाल को बहुत टोकती और बनाती है, परंतु वह तनिक भी क्षुब्ध नहीं होता। कहीं-कहीं पर वनलता की बातें शिष्टता की परिधि का भी उल्लंघन कर जाती हैं, और लोग उसे बुरा भी मान जाते हैं, परंतु अपराधी रसाल मूक की भाँति सब सहन कर लेता है। रसाल से यदि विद्वत्ता, कवित्व-गुण बहिष्कृत कर दिए जायँ, तो वह 'रिपवान् विंकिल' की प्रतिकृति हो सकता है। भाषण देते-देते वह घबरा जाता है। वनलता उस पर फ़बतियाँ कसती जाती है।

विद्वान् होते हुए भी रसाल का कोई निजी चरित्र नहीं है। वह पवन की दिशा विज्ञापन करनेवाले झंडे की भाँति दूसरे के प्रवाह में वह जाता है। बिना चूँ किए वह अपनी कविता के संबंध में स्वीकार कर लेता है—मैं स्वीकार करता हूँ कि यह (दुःखात्मक काव्य) मेरी कल्पना की दुर्बलता है। मैं इसके बचने का प्रयत्न करूँगा। और फिर आनंद से इतना प्रभावित हो जाता है कि उसके प्रेम-विषयक सिद्धांत को उससे भी अधिक वेग के साथ उद्बोधित करने लगता है। एक स्थान पर अपने संभाषण में कहने लगता है—"सीखिए कि हम मानवता के नाते स्त्री को प्यार करते हैं।" वास्तव में यह सिद्धांत उसके व्यवहार-पक्ष का समर्थन करता है। परंतु जहाँ वनलता इस उक्ति पर एक विवाद छेड़ देती है, तो चुप होकर बैठ जाता है। उसमें विवाद-शक्ति बिलकुल नहीं है। चँदुला से बात करने में 'हाँ-हूँ' के अतिरिक्त कोई शास्त्रार्थ करने की आवश्यकता न थी, और वहाँ पर हम रसाल को बातचीत करते पाते हैं।

अंत तक रसाल आनंद की बातों में रहा। उसी के सिद्धांत मन में जमे रहे। इससे वह अपने अपराध को न्याय-संगत प्रमाणित कर सकता था, परंतु अंत में जब उसने आनंद और वनलता की बातचीत सुनी, और अपनी स्त्री के अनन्य भाव के प्रेम की परीक्षा नेत्रों के समक्ष ले ली तथा आनंद का खोखलापन भी देखा, तो सहसा अपनी पत्नी से कहने लगता है—"प्रिये! आज तक मैं भ्रांत था। मैंने आज पहचान लिया। यह कैसी भूलभुलैया थी।" 'प्रसाद'जी ने यह परिवर्तन सहसा उपस्थित नहीं किया। दर्शक इसके लिये तैयार रहते हैं, अतएव इसमें अस्वाभाविकता नहीं।

चँदुला एक विदूषक है। आनंद के लिये वह सीमित प्रेम की परिधि में आनंद लेनेवाला कीड़ा है। परंतु कवि का अभिप्राय उसके द्वारा जीवन की एक विशेष परिस्थिति पर प्रकाश डालना है, जो नितांत सत्य है। व्यंग्य और परिहास की मीठी चीनी में लपेटकर वह जीवन का कडुआपन नीचे उतारने का प्रयास करता है। विज्ञापन लगी हुई उसकी खोपड़ी को देखकर जब रसाल कहता है कि तुमने यह क्या भद्दापन अंकित कर रक्खा है, तो कितनी शीघ्रता के साथ चँदुला उत्तर देता है—"प्रायः लोगों की खोपड़ी में ऐसा ही भद्दापन भरा रहता है। मैं तो उसे निकाल बाहर करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। आपको इसमें सहमत होना चाहिए। यदि इस समय आप लोगों की कोई सभा, गोष्ठी या ऐसी ही कोई समिति इत्यादि हो रही हो, तो गिन लीजिए; मेरे पक्ष में बहुमत निकलेगा।" यह कितना अप्रिय सत्य है। शेक्सपियर और कालिदास के विदूषकों की भाँति चँदुला भी मूर्खता और सज्ञानता का एक अनोखा सम्मिश्रण है। कुशल नाटककारों को, हास्यरस के निरूपक पात्रों को एक ओर तो भद्देपन से बचाने का प्रयत्न करना पड़ता है, और दूसरी वे कहीं अनाकर्षक न हो जायँ, इसका भी ध्यान रखना पड़ता है। हास्यरस के संपादन के साथ-साथ प्रसंग में उनका अबाध प्रयोजन भी उपस्थित करना पड़ता है। इन सब बातों को दृष्टि में रखकर भी हम निस्संकोच भाव से कह सकते हैं कि चँदुला बहुत अंश तक सफल विदूषक है। उसमें स्वाभाविकता लाने का काफ़ी प्रयत्न किया गया है। बहुत-से विदूषक हास्यरस के उद्रेक का एक-मात्र साधन बेसिर-पैर की बातों को बकने लगना समझते हैं, जो स्वाभाविकता से कोसों

दूर हो। चार आने के टिकटवाले चाहे जितने वेग से इन प्रदर्शनों पर अट्टहास करें, परंतु शिष्ट जनों को इससे तोष नहीं होता। वह मानव-भावना की गहनता को स्पर्श न करके केवल इंद्रियों को थोड़े काल के लिये गुदगुदा देता है। परंतु चँदुला का हास इस कोटि से ऊपर है।

चँदुला से एक काम लेखक ने और लिया है। 'आनंद' सुख-सुख चिल्लाता है, आनंद-आनंद उद्घोषित करता है। सुख और आनंद की अनुभूति पृथक्-पृथक् लोगों को किन साधनों से होती है, इस पर व्याख्याता का ध्यान न गया था। सुख के उपकरण का कैसा विकृत रूप चँदुला उपस्थित करता है—"आश्चर्य क्यों होता है, महोदय ! मान लिया कि आपको मेरा विज्ञापन देखकर आनंद नहीं मिला, न मिले; किंतु इन्हीं पंद्रह दिनों में जब मेरी श्रीमती हार पहनकर अपने मोटे-मोटे अधरों की पगडंडी पर हँसी को धीरे-धीरे दौड़ावेंगी, और मेरी चँदुली खोपड़ी पर हल्की-सी चपत लगावेंगी, तब क्या आँखें मूँदकर आनंद न लूँगा—आप ही कहिए। आपने विवाह किया है तो।" आनंद घबरा जाता है, और कहने लगता है—"अंतरात्मा के उस प्रसन्न गंभीर उल्लास को इस तरह कदर्थित करना अपराध है।" चँदुले की सहायता से आनंद की भी समीक्षा हो जाती है। हमारा विश्वास है कि चँदुले का पात्रत्व सजीव और रोचक है।

झाड़ूवाले का आयोजन करके अरुणाचल को साबरमती अथवा शांति-निकेतन के अनुकूल बनाने की चेष्टा की गई है। पढ़ा-लिखा व्यक्ति झाड़ू लगाकर इस आश्रम में केवल इसलिये जीवन-निर्वाह करता है कि उसे शांति मिले। परंतु उसकी स्त्री में त्याग के वे भाव अभी नहीं आए। वह उजली साड़ी और सितार के लिये उससे झगड़ती है। उनके प्रवेश से आनंद की मंडली में सीमित प्रेम के विरूप स्वरूप का एक और प्रदर्शन समक्ष आ जाता है। साथ-ही-साथ स्वास्थ्य, सरलता और सौंदर्य के व्यवहार...का अभाव भी सामने चित्रित हो जाता है। वनलता के यह कहने पर कि "तुम तो समझदार हो।" झाड़ूवाला कैसी सुंदर, मीठी, चुटकी के स्वरूप में तथ्य का स्वरूप खड़ा करता है। वह कहता है—"हाँ देवि ! किंतु समझदारी में एक दुर्गुण है। उस पर अन्य लोग चाहे कितने ही अत्याचार करें, परंतु वह नहीं कर सकता, ठीक-ठीक उत्तर भी नहीं देने पाता।" किस प्रकार लोग प्राचीनों की दुहाई देकर व्यावहारिक जीवन में अपने मन की दुर्बलता को आदर्श के रूप में प्रतिपादित करते हैं, इसकी अभिव्यक्ति वनलता के वाक्यों में देखकर झाड़ूवाला बिगड़कर दो-चार प्राचीनों के नाम लेकर नितांत प्रतिकूल सिद्धांत उसी तर्क से सामने रखता है, जिस तर्क को वनलता समझती है। लोग अवाक् रह जाते हैं। झाड़ूवाले के इन शब्दों में कितनी सत्यता निहित है, इसको पाठक स्वयं समझ लेंगे।

"उन्होंने इन बातों को जिस रूप में समझा था, वैसी मेरी और आपकी परिस्थिति नहीं, समय नहीं, हृदय नहीं।" जीवन का आदर्श स्पष्ट करते ही उसकी पत्नी समझ जाती है। दोनो ख़ुशी-ख़ुशी विदा होते हैं।

मुकुल एक तर्कशील व्यक्ति है। किसी भी बात को जमने नहीं देता। कौतूहल से परिपूर्ण, उत्सुकता से ओत-प्रोत, वाग्-विदग्धता से संयत वह इधर-उधर भ्रमण करता है। परंतु उसका कोई विशेष महत्व रूपक में नहीं है। कुंज और झाड़ूवाले की पत्नी भी अन्य छोटे अभिनेता हैं। उनका कोई उपयोगी महत्व नहीं।

अरुणाचल एक ऐसा स्थान है, जहाँ आदर्शवादियों का जमघट है। ज्ञान की प्रत्येक दिशा के न केवल तार्किक वाद-विवाद ही वहाँ होते हैं, परंतु उनके व्यवहार-रूप देने का यह आश्रम एक अद्वितीय प्रयोग-शाला है। प्रत्येक व्यक्ति आदर्श तक पहुँचने का प्रयत्न करता है। इस दृष्टि से वर्तमान साबरमती अथवा शांति-निकेतन से उसकी थोड़ी-बहुत समता दी जा सकती है, परंतु इस समता को अधिक दूर

तक नहीं ले जाया जा सकता। अरुणाचल विवाद-शाला अधिक और प्रयोग-शाला कम है।

भारतीय नाट्यकला की परिपाटी के अनुसार 'एक घूँट' दुःखांत है। उसमें भावों की जटिलता के साथ भाषा की भी दुरूहता स्पष्ट है। अतएव इसका बहुत-सा भाग अभिनय के योग्य नहीं। श्रोता और द्रष्टा अभिनय करनेवाले अभिनेतों को रोककर यह नहीं कह सकते कि अमुक गाना अथवा अमुक भाषण का भाव अथवा भाषा हमारी समझ में नहीं आई, अतएव इसको दोहरा दो। ऐसा करने से रस की निष्प्राप्ति में व्याघात उपस्थित होता है। और अभिनय-आनंद में बाधा पड़ती है। अतएव जिन नाटकों में ऐसे कठिन स्थल और गाने आ जाते हैं, वे अभिनय करने के योग्य नहीं रह जाते। 'एक घूँट' में ऐसे कई स्थल हैं, जिसे साधारण लोगों की तो बात ही क्या है, बड़े-बड़े विद्वान् दो-तीन बार बिना पढ़े अर्थ नहीं समझ सकते। यही बात 'प्रसाद'जी के प्रायः सभी नाटकों के लिये है। इसी कारण कुछ लोग 'प्रसाद'जी के नाटकों को नाटक ही नहीं कहते। यदि नाटक का उद्देश्य केवल दृश्य काव्य और अभिनय ही है, तो अवश्य यह आरोप प्रसादजी पर लगता है, परंतु अंतिम सम्मति देने के पूर्व हमें भारतीय प्राचीन संस्कृत-साहित्य पर एक दृष्टिपात कर लेना चाहिए।

हृदय के कसमसाते भावों को कवि किसी-न-किसी रूप में बाह्य जगत् में व्यक्त करेगा। दृश्य काव्य और श्राव्य काव्य दोनो प्रणालियों को अपनी रुचि के अनुकूल वह ग्रहण करेगा। दृश्य काव्य का बाहरी स्वरूप लेकर उसे केवल श्राव्य प्रधान बना देना अथवा श्राव्य काव्य का स्वरूप अंगीकार कर उसमें दृश्य काव्य के स्वरूप-विधान का प्राबल्य कर देना कवियों ने और नाटककारों ने कभी अनुचित नहीं समझा। अपनी सुविधा और भावना के अनुकूल उन्होंने हेर-फेर कर लिए हैं। केशव की रामचंद्रिका में तो इतने सुंदर कथोपकथन हैं कि उनको पढ़ने और सुनने में उतना आनंद नहीं आता, जितना उनके अभिनय में। गोस्वामीजी की रामायण तो प्रत्येक धनुष-यज्ञ और रामलीला में अभिनय की जाती है; परंतु तो भी वह एक श्राव्य काव्य ही है। दृश्य काव्य नहीं। दूसरी ओर उत्तररामचरित, मृच्छकटिक, वेणीसंहार अभिनय करने के लिये भाषा और भाव दोनो ही दृष्टि से दुरूह हैं। चाहे कोई कितना ही कहे, मैं इसे स्वीकार न करूँगा कि भारतवर्ष में कभी भी ऐसा समय रहा होगा, जब भवभूति के बड़े-बड़े समास एक ही बार सुनकर द्रष्टा अवगत कर लेते होंगे, अतएव यह निष्कर्ष निकला कि ये सब दृश्य काव्य पढ़ने और मनन करने की दृष्टि से निर्माण किए गए हैं, अभिनय की दृष्टि से नहीं। प्रसादजी ने भी इसी प्राचीन प्रणाली का अनुसरण किया है, कोई क्रांति उपस्थित नहीं की। उनके नाटक पढ़ने, मनन करने और समझने की चीज़ें हैं।

हमें यह भी समझ लेना है कि केवल अभिनय की दृष्टि से लिखे गए उत्तम नाटकों के लेखकों के समक्ष कितनी कठिनाइयाँ रहती हैं। ज्ञान-विभिन्नता और रुचि-वैचित्र्य का एकीकरण कितना कठिन है, इसको वे ही लोग समझते हैं। संजीदगी और भोंडेपन के बीच एक बहुत ही झिलमिलाती हुई पतली रेखा है। यदि कवि उसे पकड़ सका, यदि नाटककार ने उस पर अपनी उँगली रख ली, तो उसे सफलता मिलती है, अन्यथा वह उपहासास्पद ही होता है। जिस क्षितिज पर लोक-रुचि और शिष्ट-रुचि का मेल होता है, वहाँ तक पहुँचना बहुत ही कठिन कार्य है। बहुधा देखा गया है कि जिस नाटक से शिष्ट जनों को रस-प्राप्ति होती और आनंद मिलता है, उसे साधारण लोग पसंद नहीं करते। वे अपना मन-बहलाव केवल भड़कीली सीन-सीनरी अथवा पाउडर लगी हुई आकृतियों से कर लेते हैं। करुणा के उद्रेक करनेवाले गान को वारविलासिनी के प्रणय-वाणिज्य का पोषक समझकर करतल-ध्वनि करने लगते हैं। दूसरी ओर जिस गाने अथवा जिस कथा-विन्यास अथवा पात्र में लोक-

रुचि निमग्न होती है, उसे शिष्ट लोग यह कहकर 'कुछ नहीं है, भद्दी है' टिप्पणी करते हैं। अतएव उस सच्ची लोक-रुचि को जो एकदेशीय, एककालीन न होकर सर्वदेशीय और सर्वकालीन है, और उस काव्य-निष्पत्ति का पहचानना, जो अधिक लोगों को अधिक काल तक सुखप्रद है, कोई साधारण कार्य नहीं। हमें तो हिंदी में रामचरित-मानस के अतिरिक्त कभी दूसरा कोई ऐसा ग्रंथ दिखाई नहीं पड़ा। अस्तु।

और नाटकों की भाँति 'एक घूँट' भी विद्वानों के लिये प्रणयन किया गया है, अतएव उसमें दुरूहता का आक्षेप लगाना व्यर्थ है। इसी दृष्टि से कथोपकथन भी लंबे और गंभीर हैं। किस स्थितिवाले पात्र के मुख से क्या कहलाया जाता है। यदि वह बाह्य जगत् के वर्तमान अनुभव से नहीं मिलता, तो लोग उसे झट अस्वाभाविक कहने लगते हैं। हम इसे अनधिकार चेष्टा और काव्य-अनुशीलन की कमी समझते हैं। यथार्थवाद का झंझावात हम लोगों में से कुछ आलोचकों और लेखकों पर भूत की तरह सवार है। कवि किसी दूसरे जगत् का भी कुछ कह सकता है, ऐसे देश की भी अभिव्यक्ति हो सकती है, जहाँ मछुवे भी शास्त्रार्थ करें। मुझे तो आदर्श की यह भावना यथार्थवादी की सांसारिक दैनिक घटनाओं की उद्भावना से कहीं अधिक श्रेयस्कर है। मोपासाँ चाहे कुछ भी कहें, मुझे तो व्यास और वाल्मीकि स्मरण हो आते हैं। यहाँ हम इस विवाद को तूल देना नहीं चाहते। प्रसादजी के अन्य नाटकों की समीक्षा में हम इस मत की व्याख्या करेंगे। 'एक घूँट' में कोई ऐसी बात नहीं। झाड़ूवाला भी उपाधि-धारी ग्रेजुएट है, अतएव उसका कथन, प्रदर्शन न अस्वाभाविक है और न अनुपयुक्त।

हाँ, एक बात प्रसादजी की लोगों को खटकती है। वह कठिन-से-कठिन शब्द ढूँढ़-ढूँढ़कर रखते और साधारण बोल-चाल के शब्दों का तिरस्कार करते हैं। 'गेरुआ पहाड़' न कहकर वह 'अरुणाचल' कहेंगे। 'बातचीत' न कहकर 'वाग्विलास' कहेंगे। रोने के स्थान में क्रंदन, प्रकाश के स्थान में आलोक सर्वत्र मिलेंगे। संस्कृत-साहित्य के ज्ञान से वह इतने ओत-प्रोत हैं कि उनके लिये ये शब्द सरलता से निकलते चले आते हैं। कहीं पर शब्द-दारिद्र के कारण कोई भरती नहीं है। जहाँ पर यह बात खटकती है कि बोल-चाल के मुहावरेवाले शब्दों से अधिक रोचकता और स्वाभाविकता का संचार हो सकता था, वहाँ यह बात भी सबको माननी पड़ेगी कि प्रसादजी ने सैकड़ों की संख्या में ऐसे शब्दों का निर्माण किया होगा, जो शुद्ध संस्कृत की धरोहर हैं, और जिनके भाव भी हिंदी-शब्दों में न थे। प्रसादजी एक-आध फ़ारसी-शब्द भी प्रयोग करते हैं, किंतु बहुत कम।

अभिनय के अनुपयुक्त होने पर भी स्थान-स्थान पर अभिनय का पूर्ण आयोजन 'एक घूँट' में मिलेगा। पात्रों का उपयुक्त संचालन तथा आवश्यकतानुसार प्रवेश सर्वत्र मिलेगा। अपनी भावना के अनुकूल प्रत्यक्ष से परोक्ष का संकेत भी स्थान-स्थान पर मिलता है। उदाहरण के लिये कुछ स्थल दिए जाते हैं—

खोल तू अब भी आँखें खोल !
जीवन-उदधि हिलोरें लेता, उठतीं लहरें लोल।
छवि की किरनों से खिल जा तू,
अमृत-झड़ी सुख से झिल जा तू।
इस अनंत स्वर से मिल जा तू, वाणी में मधु घोल।
जिससे जाना जाता सब यह,
उसे जानने का प्रयत्न ! अह !
भूल और अपने को मत रख जकड़ा, बंधन खोल।

× × ×

जीवन-वन में उजियाली है।
यह किरनों की कोमल धारा
बहती ले अनुराग तुम्हारा;
फिर भी प्यासा हृदय हमारा।
व्यथा घूमती मतवाली है।

'बहती ले अनुराग तुम्हारा' परोक्ष की ओर कैसी सुंदर भावना है।

अशक्त स्त्री-पुरुषों के लिये ताक़त की बढ़िया दवा

ताकात बढानेवाली बढीया दवाई

अमृतगुटीका

ट्रे॰ मार्क जेनस नं॰ ३०२

इसके सेवन से कमर का दर्द, पिंडलियों का दुखना, आँखों की कमज़ोरी, बदन की सुस्ती, काम-काज में दिल न लगना, नया या पुराना प्रमेह, बदन और इंद्रियों की शिथिलता, सुख, बग़ल या पेशाब के रास्ते से धातु स्खलित होना, शौच के समय धातु गिरना, मग़ज़ ख़ाली पड़ जाना, चेहरा शुष्क इत्यादि बहुत-से दर्द को दूर करके जवानी का मज़ा लूटने के लिये बदन मोटा और ज़ोरदार होता है। हरएक मौसम में उपयोग हो सकता है। दाम ३२ टिकियों की एक ट्यूब का २) रु०, डाक-ख़र्च अलग। सूचीपत्र मुफ़्त मँगा देखिए। हर जगह दवाफ़रोशों के यहाँ भी मिलेगी।

पता—जे० एन्० शेठना, मु० पो० नड़िआद (गुजरात) ३४

---

२१ साल के प्रयोग से] ११००) इनाम [पूर्ण यशस्वी साबित हो चुका है।

प्रसिद्ध नाड़ी-परीक्षक वैद्य मोहनलालसिंह मिरजवाले का

धातु-पौष्टिक, शक्ति-वर्द्धक, कामोत्तेजक ६० वनस्पति-युक्त

मदनमस्त-पाक (रजिस्टर्ड)

इस पाक से स्वप्नावस्था और पेशाब के साथ धातु का गिरना बंद न हो, तो दाम वापस करेंगे। हस्त-प्रयोग से अथवा अधिक स्त्री-प्रसंग के कारण आई हुई नामर्दी, धातु का पतलापन, अशक्तता, स्त्री की इच्छा होते ही शीघ्र वीर्य गिर जाना, गरमी का परिणाम कोई भी परमा, संधिवात यह सब रोग नष्ट होकर दस्त साफ़ होता है। भूख, शक्ति और तोल बढ़ जाती है। २१ दिन की खुराक ८४ तोले के डिब्बे का मूल्य ५) रु०, डा० ख़० ॥≡)। पुराने रोग के वास्ते दो डिब्बे का मूल्य ११), तीन डिब्बे का १५॥), डाक-ख़र्च माफ़। कोई परहेज़ नहीं। सेवन-विधि डिब्बे के साथ भेजते हैं। इस पाक की हजारों लोगों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। उनमें मुख्य पदवी-धारी डॉक्टर, राजवैद्य और स्कूल-मास्टर हैं। इनके सार्टिफ़िकेट देखिए—

१. डॉक्टर हरीहर सीताराम राजंदेकर एल्० एम्० पी० एच० एम्० बी० पोस्ट राजंदा ज़ि० अकोला। आपके मदनमस्त-पाक से जीवन-शक्ति का संवर्धन होकर वीर्यहीनत्व, बलहीनत्व, उदरस्थ विकार, इंद्रिय-शिथिलता, संधिवात आदि रोग नष्ट होते हैं। वीर्य, बल और स्मरण-शक्ति बढ़ जाती है। परमेश्वर आपकी कीर्ति बढ़ावे।

२. राजवैद्य रामचंद्र गणेश शास्त्री जोशी पोस्ट वालवे, ज़ि० सितारा। आपका मदनमस्त-पाक अपने रोगी मि० स० वा० देशपांडे ता० लोकलबोर्ड मेंबर को दे दिया था। लिखते हुए आनंद होता है कि उनकी स्वप्नावस्था, धातु का पतलापन और अशक्तता रोग दूर होकर भूख, शक्ति और तोल बढ़ गई। प्रत्येक रोगी को इस पाक का अनुभव करना चाहिए। ऐसी हमारी भावना है।

३. जगन्नाथ रंगनाथ दडपे स्कूल-मास्टर पोस्ट तडपके ज़ि० सोलापुर—आपके मदनमस्त-पाक के दो डिब्बे सेवन करने से १६ प्रकार का आश्चर्यकारक गुण आ गया। मेरा तौल ५ पौंड बढ़ गया। आपका उपकार माता-पिता से भी अधिक समझता हूँ।

सूचना—कृपया अन्य किसी का अनुभव हमारे सिर न रक्खें। इतने पर भी इस प्रभावशाली पाक पर जिसका विश्वास नहीं, उसका रोग-मुक्त होके संसार-सुख भोगने का समय आया नहीं, ऐसा ख़ास समझना। इसमें ६० वनस्पति धातुपौष्टिक नहीं और ऊपर के सर्टिफ़िकेट असत्य हैं, ऐसा साबित करनेवाले को ११००) इनाम देंगे।

वैद्य मोहनलाल एस्० औषधालय, पोस्ट मिरज, ज़िला सतारा

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

प्रकृति-वर्णन प्रसादजी का बड़ा अनूठा है। हिंदी-यों में भी एक प्रकार से इसका अभाव नहीं है। और तुलसी भी प्रकृति के कवि नहीं हैं। सेनापति चित् प्रकृति के अच्छे कवि हैं। वर्तमान युग कवियों में प्रसादजी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। नियों में प्रेमचंदजी प्रकृति-वर्णन अच्छा करते उसमें और प्रसादजी के वर्णन में बड़ा साम्य है। ध भाषा लिखने के कारण प्रेमचंदजी का वर्णन क हृदयग्राही होता है; परंतु प्रसादजी का भी न अनोखा होता है। न उसमें इने-गिने वृत्तों नाम रहते हैं, और न उनकी निजी अकेली सत्ता अभिव्यक्ति की जाती है, वरन् बाद के संस्कृत-यों की भाँति—कालिदास, भवभूति, माघ और की भाँति—प्रसादजी का प्रकृति-वर्णन...है। य की क्रिया-कलाप से लिपटा हुआ प्रकृति का प प्रसादजी सामने रखते हैं। और वह भी... प में। वाल्मीकिजी की भाँति अथवा राजा ानसिह अथवा जायसी की भाँति नहीं। उसमें ों का उत्कर्ष होता है, हृदय पर प्रभाव पड़ता । अरुणाचल का वर्णन छोड़कर इस ग्रंथ में ादजी का प्रकृति-वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं है। तएव हम यहाँ इस प्रसंग को छोड़ते हैं। क में प्रकृति-वर्णन के स्थान में प्रकृति-प्रदर्शन ोता है, अतएव एक नाटककार को इस संबंध सीमित अधिकारों से काम लेना पड़ता ।

इतनी आलोचना के पश्चात् हम उन कुछ बातों ा निदर्शन करा देना चाहते हैं, जो 'एक घूँट' में कनेवाली हैं।

पृष्ठ ११ में जिस शृंगार भाव के विप्रलंभ में ओत-ोत होकर वनलता अपने स्वामी को स्मरण कर रही है, उससे और उसके तुरंत कहे हुए इन वाक्यों से कुछ मेल नहीं मिलता—

"...अच्छा, मैं भी ख़ूब छकाऊँगी, तुम लोग बड़े दुलार पर चढ़ गए हो न।"

वनलता का अकेले में पति से कहना—"व्याख्यान! तुम कब से देने लगे? तुम तो कवि हो कवि, भला तुम व्याख्यान देना क्या जानो, और वह विषय कौन-सा होगा, जिस पर तुम व्याख्यान दोगे?"

पति के लिये 'तुम' कहना और इतने तिरस्कार-युक्त शब्द कहना, जब कि उसका पति-प्रेम इतना प्रगाढ़ है, एक आदर्श महिला का काम नहीं हो सकता। इसी प्रकार अन्यत्र भी अपने पति की वह खिल्लियाँ उड़ाती है।

कहीं-कहीं पर प्रसादजी इतने दुरूह हो जाते हैं कि समझ में नहीं आते। नीचे दी हुई कविता का... क्रम अस्पष्ट और दुरूह है, केवल भाव-ही-भाव समझ में आता है—

जलधर की माला,
घुमड़ रही जीवन-घाटी पर जलधर की माला।
आशा-लतिका कँपती थर-थर,
गिरे कामना-कुंज हहरकर,
अंचल में है उपल रही भर यह करुणा बाला।
यौवन ले आलोक किरन की,
डूब रही अभिलाषा मन की,
क्रंदन-चुंबित निठुर निधन की बनती वनमाला।
अंधकार गिरि-शिखर चूमती,
असफलता की लहर घूमती,
क्षणिक सुखों पर सतत झूमती शोकमयी ज्वाला।

परंतु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। 'एक घूँट' एक उत्तम कृति है। प्रत्येक साहित्य-सेवी को इसे अच्छे प्रकार अनुशीलन करना चाहिए।

वीर अभिमन्यु

[श्रीरामचंद्र शुक्ल 'सरस']

राजैं हैं किरीट मनि-मंडित-मुकुट सोस,
कंचन कैं कुंडल बिराजैं श्रुति-वर मैं;
'सरस' बखानै अभिमन्यु कैं छपाकर लौं,
सबल-सनाह सजो दोपै देह-भर मैं।
राखति कृपान जो कृपान पानि राजै एक,
छाजैं बर बान मनौं भानु-कर कर मैं;
कंध पैं कमान मान बैरिन को भंग करै,
दंग करै देखत निषंग परिकर मैं॥ १॥

रासि रस-राज को बिराजि रहो मूरति पैं,
मुद्रा मुख-हास के विलास को ढरो परै;
'सरस' बखानै करुना को छाँह कोयनि मैं,
लोयनि मैं लालो रुद्रता को उसरो परै।
बक्र भृकुटीनि मैं भयानकता खेलै भूरि,
अद्भुत आभा शांत-भाव सौं झरो परै;
उर उभरी-सी परै वीर-रस की तरंग,
अंग-प्रति-अंग सौं उमंग उछरो परै॥ २॥*

* 'अभिमन्यु-वध' से।

असमान-समाज

[श्रीअवध उपाध्याय]

(१)



मोहन अपनी बहन सरस्वती के विवाह के लिये सामान ख़रीदने कलकत्ते गया था। सब सामान ख़रीदकर आज वह अपने घर बनारस लौट रहा था, परंतु कई कारणों से उसे बहुत देरी हो गई थी। इसलिये जब वह हवड़ा-स्टेशन पर पहुँचा, और कुली ने उससे कहा कि आप जल्दी कीजिए, तो गाड़ी मिल जायगी, तब उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके पहले वह गाड़ी पाने की आशा छोड़ चुका था। भाग्य-वश उसे गाड़ी भी मिल गई। ज्यों ही उसने गाड़ी में पैर रक्खा, त्यों ही एक अत्यंत ही सुंदर बालिका ने उसके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित किया। बालिका की अवस्था पंद्रह वर्ष से अधिक नहीं थी, और उसे देखने से सुगमता से अनुमान किया जा सकता था कि अभी वह अविवाहित है। इस बालिका के आकर्षण को मोहन ने स्पष्ट रूप से अनुभव किया। रूप का आकर्षण वास्तव में बड़ा प्रबल होता है।

जिस डिब्बे में मोहन बैठा था, वह सचमुच में ठसाठस भरा हुआ था, और वास्तव में उसमें मोहन तथा उसके सामान के लिये कुछ भी जगह नहीं रह गई थी, तथापि क़ुली ने किसी-न-किसी प्रकार से बंडलों की तरह मोहन को भी उसी डिब्बे में ठूँस दिया था। मोहन ने बैठने के विचार से चारो ओर दृष्टि फेंकी, परंतु उसे ठीक-ठीक पता चल गया कि उसे खड़े-खड़े ही सफ़र करना पड़ेगा। थोड़ी देर के बाद गाड़ी खुल गई। मोहन अब भी खड़ा था। कुछ देर के बाद विद्यावती ने मोहन से कहा—"आइए, यहाँ बैठ जाइए।" मोहन की आत्मा आनंद से नाच उठी। उस सुंदर बालिका का नाम विद्यावती था।

मोहन जाकर विद्यावती के पास बैठ गया, और अपने हृदय में उसकी प्रशंसा करने लगा। पहले तो उसने विद्यावती को धन्यवाद देने का विचार किया, परंतु उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। फिर उसके मन में आया कि विद्यावती से पूछूँ कि आप कहाँ जा रही हैं, परंतु ऐसा करने का भी साहस नहीं हुआ। इस समय वह विद्यावती से बातचीत करने के लिये व्याकुल हो रहा था। इस समय मोहन के मन में संकोच था और विद्यावती के हृदय में लज्जा।

प्रेम की बातें भी वास्तव में बड़ी विचित्र होती हैं। इसमें संदेह नहीं कि इसका मार्ग प्रायः टेढ़ा होता है। परंतु यह बात भी सच है कि प्रथम दृष्टि में ही इसका उत्पन्न हो जाना प्रेम-साम्राज्य का एक स्वाभाविक धर्म है। प्रथम दृष्टि में ही मोहन विद्यावती के रूप पर मुग्ध हो गया, और उसके हृदय में प्रेम का संचार हो आया। विद्यावती भी मोहन की ओर कुछ आकर्षित होती हुई जान पड़ी। एक स्टेशन तक दोनो में किसी प्रकार की बातें नहीं हुईं, परंतु इस समय भी उनके हृदय का आकर्षण बड़े ज़ोरों से जारी था।

जब गाड़ी दूसरे स्टेशन पर खड़ी हुई, तब विद्यावती ने मोहन से कहा—"आप कहाँ जा रहे हैं?" मोहन का हृदय हिल गया, उसके हृदय में भाव-सागर की अनेक सुखद तरंगें उठीं, उसने प्रसन्नता-पूर्वक कहा—"बनारस।"

विद्यावती—"बनारस तो मैं भी जा रही हूँ।"

मोहन—"बनारस?"

विद्यावती—"जी हाँ, बनारस।"

मोहन—"बड़ी ख़ुशी है।"

विद्यावती—"आप बनारस क्यों जा रहे हैं ?"

मोहन—"बनारस में मेरा घर है।"

विद्यावती—"आपका ?"

मोहन—"जी हाँ।"

विद्यावती—"मुझे बड़ी प्रसन्नता है। मैं किसी ऐसे आदमी की खोज में थी, जो बनारस का हाल बता सके।"

मोहन—"मैं बनारस का सब हाल बता सकता हूँ। यदि मैं आपकी सेवा कर सका, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। क्या मैं यह जान सकता हूँ कि आप बनारस क्यों जा रही हैं ?"

विद्यावती—"मैं बनारस-विश्वविद्यालय में पढ़ने जा रही हूँ।"

मोहन—"आप किस कक्षा में अपना नाम लिखाएँगी ?"

विद्यावती—"बी० ए० में।"

मोहन—"बी० ए० में ?"

विद्यावती—"जी हाँ।"

मोहन—"तब तो मुझे बड़ी प्रसन्नता है, मैं भी बी० ए० में पढ़ता हूँ।"

इसी प्रकार दोनो में और भी बहुत-सी बातें होती रहीं। दोनो ही पढ़े-लिखे थे, दोनो ने किशोरावस्था को पारकर युवावस्था के आँगन में पैर रक्खा था, और आज दोनो ने एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित किया था। बनारस स्टेशन पर दोनो उतर गए। विद्यावती विश्वविद्यालय के स्त्री-छात्रालय की ओर चली गई, और मोहन अपने घर की ओर। मोहन का मन अब विद्यावती के बिना बहुत उदास हो गया।

(२)

मोहन की बहन सरस्वती के विवाह के दिन बहुत भीड़ थी। मोहन के घर उस दिन बहुत आदमी आते थे, और बहुत जाते थे। किसी का मोहन स्वागत करता था, तो किसी का उसका पिता, किसी को भोजन कराया जा रहा था, तो किसी को जलपान। इस भारी भीड़ के दिन भी मोहन तथा मोहन के घर-वाले मिस्टर जॉन के आने की बड़ी उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहे थे। इसमें संदेह नहीं कि मिस्टर जॉन एक अँगरेज़ सज्जन थे, और सरकार के एक बड़े भारी कर्मचारी थे, परंतु मोहन के घर के साथ उनकी घनिष्ठता संबंधियों से कम नहीं थी। अतएव सब लोगों को विश्वास था कि आज मोहन के घर मिस्टर जॉन सकुटुंब अवश्य आवेंगे। वास्तव में ऐसा ही हुआ। संध्या के कुछ पहले ही मिस्टर जॉन अपनी स्त्री, कन्या और पुत्र के साथ मोहन के घर आए।

मिस्टर जॉन की कन्या मिस जॉन अभी इँगलैंड से आई थी। अतएव मोहन के घर के लोग उससे परिचित नहीं थे। मोहन से परिचय कराने के विचार से मिस्टर जॉन ने अपनी कन्या से यों कहा—"तुम इन्हें अभी नहीं पहचानती हो। इनके पुरखों ने हमारे पूर्वजों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया था। कदाचित् तुम्हें मालूम है कि सन् १८५७ के बलवे में किसी भी अँगरेज़ की जान ख़तरे से ख़ाली नहीं थी, उस समय इन्हीं के घरवालों ने हमारे बाबा की रक्षा की थी, और लगभग चार महीने तक अपने घर में उन्हें गुप्त रूप से रक्खा था। यदि इन लोगों ने उनकी रक्षा न की होती, तो आज हम लोग इस बारात में शामिल नहीं हो सकते थे। इसी कारण से यदि संपूर्ण भारत में मेरे हृदय में किसी का सर्वश्रेष्ठ स्थान है, तो इसी वंश का। इनसे कोई बात नहीं छिपाता, और जिस प्रकार इनके पूर्वजों ने मेरे बाबा की रक्षा की थी, मैं भी, यदि आवश्यकता पड़े तो, अपनी जान देकर इनकी सहायता करना चाहता हूँ। बेटी! आज से तुम भी इसे अपना ही घर समझना।"

इसके बाद मोहन ने उनका आदर-सत्कार किया। उन लोगों ने भी भारतीय ढंग से जलपानादि किया। मिस जॉन तथा मोहन से बहुत देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। अंत में मिस जॉन ने

यह प्रस्ताव किया कि दोनो कुटुंबों का एक साथ फ़ोटो लिया जाय। मोहन के घर के लोगों ने भी इसका अनुमोदन किया। परंतु सरस्वती ने कहा कि एक साथ फ़ोटो तभी लिया जा सकता है, जब मिस जॉन आदि सब-के-सब भारतीय ढंग के वस्त्रों को पहनें। मिस्टर जान के कुटुंब ने सहर्ष इस बात को स्वीकार कर लिया। मोहन ने भारतीय वस्त्र अपने घर से उन लोगों को दिए, और थोड़ी ही देर में मिस्टर जॉन के कुटुंब के लोगों ने भारतीय ढंग के वस्त्रों को पहन लिया। तदनंतर सबका एक साथ फ़ोटो लिया गया। एक साथ फ़ोटो लिए जाने के कारण आज दोनो कुटुंब के लोग बहुत प्रसन्न थे।

(३)

कॉलेज खुल गया, और मोहन पढ़ने के लिये विश्वविद्यालय जाने लगा। विद्यावती भी पढ़ने आती थी। दोनो एक दूसरे को देखते थे। कभी-कभी उनमें कुछ थोड़ी बातें भी हो जाया करती थीं, परंतु प्रायः स्पष्ट रूप से नहीं हुआ करती थीं। वे प्रेम की मूक-भाषा का उपयोग किया करते थे। इसमें संदेह नहीं कि प्रेम के संबंध में उन दोनो में परस्पर कुछ बातें नहीं हुई थीं, तथापि दोनो एक दूसरे के प्रेम को जान गए थे। इनके प्रेम के संबंध में कॉलेज के कुछ लोग भी जानते थे। इसी प्रकार दिन बीतने लगे। परंतु इन दोनो में से कोई भी यात्री प्रेम-मंदिर की ओर अधिक वेग से अग्रसर नहीं हुआ। एक दिन दोनो कॉलेज में पढ़ रहे थे। इसी समय मिस जॉन मोटर पर आई, मोहन को बाहर से ही इशारे से बुलाया, मोहन उठकर बाहर गया, फिर लौटकर कमरे के भीतर आया, अपने प्रोफ़ेसर से छुट्टी माँगी, और मोटर पर बैठकर मिस जॉन के साथ कॉलेज के बाहर चला गया। इस बात को कॉलेज के सब लोगों ने और विद्यावती ने भी देखा, तथा इस घटना के ऊपर विचार किया। जब प्रोफ़ेसर साहब पढ़ाकर कमरे के बाहर चले गए, तो इस घटना पर क्लास में खुल्लमखुल्ला बातें होने लगीं। किसी ने कहा—"मिस जॉन मोहन को प्यार करती है।" किसी ने कहा—"नहीं, प्यार नहीं करती। उनका पुश्तैनी संबंध है।" किसी ने मोहन को भाग्यशाली कहा, तो किसी ने उसे गुरु-पदवी से विभूषित किया।

वास्तव में बात चाहे जो रही हो, परंतु इसमें तो कुछ भी संदेह नहीं कि इस दृश्य से विद्यावती को बड़ा कष्ट पहुँचा, उसकी अंतरात्मा दुखी हो गई, उसने अपने मन कहा—"क्या वास्तव में मिस जॉन मोहन को चाहती है? क्या मोहन उससे प्रेम करता है? क्या इनका वैवाहिक संबंध हो सकता है? इस में संदेह नहीं कि मिस जॉन अभी अविवाहित है, और अब विवाह करने योग्य हो गई है, क्योंकि उसकी अवस्था सत्रह वर्ष से कम नहीं है, तथापि एक अँगरेज़ किसी हिंदुस्तानी से अपनी कन्या का विवाह कभी नहीं करेगा। अब जब मोहन से भेंट होगी, तो मैं उसे बिना फटकारे न रहूँगी। परंतु उसे फटकारने का मुझे क्या अधिकार है?"

इस समय इसी प्रकार की सैकड़ों बातें विद्यावती के हृदय में आ रही थीं। दूसरे दिन विद्यावती से मोहन मिला। इस अवसर पर विद्यावती ने अपने हृदय का ग़ुबार निकालने का विचार किया, परंतु साहस नहीं हुआ। फिर उसने प्रेममय बातों के प्रारंभ करने का विचार किया, परंतु उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। इसके बाद भी वे कॉलेज में तथा बाहर एक दूसरे से अनेक बार मिले, परंतु उनमें प्रेम की कोई चर्चा नहीं हुई। इसी प्रकार एक वर्ष बीत गया। गर्मी की छुट्टी हो गई। और सब छात्र अपने-अपने घर जाने की तैयारी करने लगे। इसी समय मोहन ने एक दिन विद्यावती से कहा—"आप कब घर जाइएगा? मैं आपको स्टेशन तक पहुँचाने चलूँगा।" जब विद्यावती को यह पता चला कि मोहन उसे पहुँचाने के लिये स्टेशन तक जायगा, तो उसकी अंतरात्मा आनंद के मारे नाच उठी, और उसने जान-बूझकर दो-एक दिन की जाने में देरी कर दी।

विद्यावती ने मोहन को अपने जाने का दिन पहले

ही से बतला दिया था। उस दिन मोहन जाने के समय से बहुत पहले विद्यावती के पास पहुँच गया। विद्यावती ने भी आज दिल खोलकर मोहन का स्वागत किया। आज भी उनमें प्रेमालाप नहीं हुआ, तथापि आज दोनो के मन बहुत प्रसन्न थे। स्टेशन जाने तथा विद्यावती के टिकट ख़रीदने में आज मोहन को बड़ी प्रसन्नता हुई। अंत में विद्यावती ने मोहन को अपने घर का पता लिखवाया, और उससे कहा कि पहले तुम मेरे पास पत्र अवश्य लिखना। मोहन ने पहले पत्र लिखने का वादा किया। इसी समय गाड़ी ने सीटी दी, और विद्यावती को लेकर भाग चली। मोहन बड़ी देर तक अपना रूमाल हिलाता रहा, और विद्यावती गाड़ी के बाहर मुँह निकालकर उसकी ओर देखती रही।

(४)

दूसरे दिन मोहन विद्यावती के लिये पत्र लिखने बैठ गया, परंतु उसकी समझ में नहीं आया कि क्या लिखे। इधर मिस जॉन भी उसके पीछे पड़ी हुई थी, और वह अच्छी तरह से मिस जॉन के प्रेम को जान गया था। वह मिस जॉन से न तो प्यार ही करता था और न उससे विवाह ही करना उचित समझता था। इधर विद्यावती के संबंध में वह विशेष रूप से कुछ जानता ही नहीं था। सिर्फ़ इतना कि विद्यावती उसकी ओर अवश्य आकर्षित हुई है, परंतु वह यह नहीं जानता था कि वह उसे प्यार करती है या नहीं। वास्तव में इस समय वह बड़ी दुबिधा में फँसा हुआ था। इस संबंध में उसने विद्यावती के पास स्पष्ट रूप से पत्र लिखने का निश्चय कर लिया। उसने विद्यावती के नाम पत्र लिखा—

जगतगंज, बनारस

५-५-३१

प्रिय विद्यावतीजी !

आपकी सेवा में मेरा यह पहला पत्र जा रहा है। अतएव यदि इसमें कोई भूल हो गई हो अथवा भ्रमवश कोई अनुचित बात लिख गई हो, तो सहपाठी के नाते मुझे क्षमा कीजिएगा। बात यह है कि जिस दिन से मैंने आपको देखा है, उसी दिन से मैं आपको प्यार करता हूँ। इस बात को मैं आज तक, डर के मारे, आपके सामने प्रकट नहीं कर सका। परंतु आज मुझसे रहा ही नहीं गया। मैं आपके संबंध में कुछ नहीं जानता। मैं तो आपके दर्शनों के विना रह ही नहीं सकता। स्टेशन का वह दिन! हम लोगों के प्रथम दर्शन!! आपकी सहायता, और सुहृदयता!!! क्या इन्हें मैं अपने जीवन में कभी भूल सकता हूँ? कदापि नहीं! कदापि नहीं!! विशेष आपका पत्र मिलने पर।

अपराधी (यदि सच हो)

मोहन

इसके उत्तर में विद्यावती ने मोहन के पास पत्र लिखा—

१९६, हरीसन रोड

कलकत्ता

७-५-३१

प्रियवर मोहन !

मैं नहीं कह सकती कि आपके पत्र से आज मुझे कितनी प्रसन्नता हुई। मोहन! मैं स्पष्ट रूप से इस बात को आपके सामने प्रकट कर रही हूँ कि इतनी प्रसन्नता मेरे जीवन में इसके पहले केवल एक बार और हुई थी। उस दिन के अतिरिक्त, मुझे कोई दूसरा दिन स्मरण नहीं आता, जिस दिन मुझे इतनी प्रसन्नता हुई हो। ये दो दिन मेरे जीवन में सदा स्मरणीय रहेंगे। मोहन! क्या बता सकते हो (मध्यम पुरुष के प्रयोग के लिये क्षमा करना) वह दूसरा दिन कौन है? यदि शीघ्र ही इसका उत्तर तुम्हारी समझ में न आवे, तो सोचना, अवश्य सोचना और कल्पना की भी सहायता से इस प्रश्न के हल करने का प्रयत्न करना। मोहन! यदि इतने पर भी तुम उस दिन को ठीक-ठीक न समझ सको, तो मेरे इस पत्र को आगे मत पढ़ना, और ठहरकर शांत भाव से फिर एक बार विचार करना। मोहन! वह दिन स्मरण आते ही मेरा हृदय नाच उठता और

आनंद दूना हो जाता है। मेरा अभिप्राय उस दिन से है, जिस दिन मैंने तुम्हें पहलेपहल स्टेशन पर देखा था। मुझे इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि तुम्हारे विशाल हृदय में मेरे लिये भी थोड़ा स्थान है। मैं एक बात के बारे में और लिखना चाहती हूँ। परंतु डर रही हूँ। संभव है, तुम बुरा मान जाओ, इसलिये नहीं लिख रही हूँ। पत्र का जवाब जल्द देना।

तुम्हारी
विद्यावती

इस पत्र के पढ़ने से मोहन को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसका सब संदेह मिट गया। प्रेम-दुर्ग पर उसने यह अपनी पहली विजय समझी। परंतु उसके मन में एक बड़ा भारी संदेह भी उत्पन्न हो गया। वह इस बात को बिलकुल नहीं समझ सका कि विद्यावती किस बात के संबंध में लिखना चाहती है। इसलिये वह तुरंत विद्यावती को पत्र लिखने बैठ गया। उसने लिखा—

जगतगंज, बनारस
६-९-३१

प्रिय विद्यावतीजी !

आपका कृपा-पत्र मिला। उसने मुझे कृतकृत्य कर दिया। वास्तव में मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरा जीवन अब अवश्य सफल होगा। मैं एक बात के संबंध में आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप किसी बात का संकोच मत कीजिए, और मोहन को आज्ञा दीजिए। आपने दिल खोलकर मेरे पास पत्र लिखा है, अतएव मैं भी अब कुछ नहीं छिपाता। मोहन को अब आपसे कुछ नहीं छिपाना है। मोहन अपनी गुप्त से भी गुप्त बात अब आपसे प्रकट करेगा। यदि आपने शीघ्र ही उस बात को मेरे पास नहीं लिख भेजा, तो मुझे वास्तव में हार्दिक कष्ट होगा। पत्रोत्तर शीघ्र, अत्यंत शीघ्र, अवश्य।

आपका
मोहन

१२६, हरीसन रोड
कलकत्ता
१२-९-३१

प्रियवर मोहन !

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे इस बात का बहुत दुःख है कि तुमने मेरे लिये 'आप' शब्द का प्रयोग किया है। मोहन, यदि फिर तुमने भूलकर भी मेरे लिये इस शब्द का प्रयोग किया, तो मुझे हार्दिक खेद होगा। मेरे लिये 'तुम' का प्रयोग किया करो, 'आप' का नहीं। नहीं मोहन ! नहीं, अब मुझे तुमसे कुछ नहीं पूछना है। पहले मेरे मन में संदेह था, परंतु अब जाता रहा। मैं अब उसके बारे में तुमसे पूछकर तुम्हारा दिल नहीं दुखाऊँगी। अब उसके संबंध में तुमसे कभी कुछ नहीं कह सकती। पहले कदाचित् मेरे हृदय में स्त्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति—ईर्षा—का प्रवेश हो गया था। परंतु मोहन ! कदाचित् इतने से तुम्हें संतोष न हो, अतएव साफ़-साफ़ लिख रही हूँ। कॉलेज की कुछ कन्याएँ तथा बालक प्रायः तुम्हारे संबंध में बातें किया करते थे और यह कहा करते थे कि मोहन जब देखो, तब मिस जॉन के साथ मोटर में घूमा ही करता है। कदाचित् इन में प्रेम हो गया है। मोहन, जब-जब मैं इस बात को सुनती थी, अथवा जब तुम्हें उसके साथ देखती थी, तो मुझे बड़ी ईर्षा होती थी। इतना ही नहीं, मुझे बड़ा कष्ट भी होता था। कभी-कभी तो यह कष्ट असहनीय हो जाता था, परंतु मैं सोचती थी कि इस संबंध में बुरा मानना मेरी ग़लती है। कभी-कभी तो मन में यहाँ तक आता था कि तुम्हें मना कर दूँ, परंतु फिर कहती थी कि ऐसा करने का मुझे क्या अधिकार है। अब तुम्हारे पत्रों ने मेरा सब संदेह दूर कर दिया। तथापि मोहन, एक बार स्वयं तुमसे सुनना चाहती हूँ कि मेरी यह धारणा सही है ? मैं बड़ी उत्सुकता से तुम्हारे इस पत्र की प्रतीक्षा करती रहूँगी।

तुम्हारी
विद्यावती

विद्यावती के इस पत्र का मोहन ने उत्तर दिया—

जगतगंज, बनारस

१६-६-३१

प्रियतमे !

स्त्री-जाति और आपके प्रति विशेषतः जो मेरी श्रद्धा है, जो भक्ति है, जो प्रतिष्ठा है, उसके कारण मैं आपके लिये 'तुम' का प्रयोग नहीं कर सकता, नहीं कर सकता। मिस जॉन के संबंध में मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि वही मुझे घेरे रहती है, मैं उससे प्रेम नहीं करता। मेरा हृदय आपके प्रेम से लबालब भरा है, अब उसमें दूसरे के लिये बिलकुल जगह नहीं है। आप मेरा विश्वास मानिए, मिस जॉन के घराने से हम लोगों का कई पुश्त से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। संभव है, मिस जॉन के हृदय में मेरे लिये कुछ प्रेम भी हो, परंतु मेरा उससे व्यक्तिगत संबंध पुश्तैनी मार्ग से ही हुआ है, प्रेम-मार्ग से नहीं। जब आपसे भेंट होगी, तब मैं विस्तृत रूप से इस संबंध में बातें करूँगा।

आपका

मोहन

(६)

कॉलेज खुल गया। विद्यावती कलकत्ते से बनारस आई, और मोहन से उससे ख़ूब अच्छी तरह से बातें हुईं। दोनो ने एक दूसरे के प्रेम को स्वीकार किया, और विवाह-सूत्र में बँधने की प्रतिज्ञा की। विद्यावती अब साथ पढ़ने के लिये कभी-कभी मोहन के घर चली आती थी, परंतु जब दोनो एक साथ होते थे, तब प्रेम-संबंधी वार्तालापों में ही इनका अधिक समय कटता था, पढ़ने में कम। आज प्रातःकाल ही विद्यावती मोहन के घर आई, और उससे बातें करने लगी। इसी समय मिस जॉन अकेली मोटर पर मोहन के घर आई, और मोहन को अपने साथ ले जाने का प्रस्ताव किया। परंतु मोहन इस समय घूमने नहीं जाना चाहता था। उसने कई बहाने किए, परंतु मिस जॉन ने एक न मानी। फिर मोहन ने कहा कि देखो, मेरे यहाँ यह आई हुई हैं, मैं कैसे जा सकता हूँ। इस पर मिस जॉन ने विद्यावती से कहा कि आप कल इनसे मिल लीजिएगा। इतना कहकर मिस जॉन ने मोहन का हाथ पकड़ा, उसे खींचा, मोटर पर उसे बैठा दिया, और मोटर चला दिया। विद्यावती वहीं पर स्तंभित तथा अवाक् खड़ी रह गई। इस समय वह उदासीनता की सजीव मूर्ति की तरह दिखलाई पड़ती थी।

मोहन के चले जाने पर विद्यावती ने अपने को बहुत समझाया। उसने अपने मन में कहा कि इसमें मोहन का कुछ भी अपराध नहीं है। तथापि उसे बहुत दुख हुआ, और आज की घटना ने उसके कोमल हृदय को मथ डाला। जिस मोहन को वह बहुत सुंदर समझती थी, जिस मोहन को वह प्यार करती थी, जिस मोहन के हाथ को उसने आज तक स्पर्श नहीं किया था, उसी मोहन के हाथ को आज उसके सामने मिस जॉन ने ख़ूब अच्छी तरह से स्पर्श किया, और उस घनिष्ठता का परिचय दिया, जिसने विद्यावती के हृदय को मसल दिया, व्यथित कर दिया। यह घटना विद्यावती के लिये आज असह्य हो गई।

मिस जॉन मोहन को बहुत प्यार करने लग गई थी, और उसके देखे विना वह रह ही नहीं सकती थी। जब उसे नहीं देख पाती थी, तो उसके फ़ोटो को ही देखा करती थी। जब मोहन उसके पास रहता था, तो वह प्रायः उसके सुंदर मुँह पर अपने दोनो नेत्र गड़ा देती। मोहन भी भली भाँति जान गया था कि वह उसे बहुत अधिक प्यार करती है। इधर मिस जॉन का प्रेम और भी अधिक होता हुआ जान पड़ा। वास्तव में अब मिस जॉन मोहन के प्रेम में पागल हो गई। सब लोग इस बात को जान गए कि मिस जॉन को मोहन ने मोह लिया है। धीरे-धीरे इसका पता मिस्टर जॉन और उनकी धर्मपत्नी को भी चल गया। मिस्टर जॉन की धर्मपत्नी ने अपनी कन्या मिस जॉन को बहुत समझाया, बहुत रोका,

परंतु उसके हृदय ने एक न मानी । इस समय मिस जॉन का हृदय उसके वश में नहीं था । वह उसी प्रकार मोहन से मिलती रही । एक दिन उसके पिता ने भी उसे कोमल शब्दों में समझाया, और कहा कि तुम्हारा विवाह मोहन से नहीं हो सकता, यह असंभव है, तथापि वह अपने को नहीं रोक सकी । इतना ही नहीं, उसने मोहन से भी इस संबंध में सारी बातें खोलकर कह दीं । उसने कहा कि मोहन ! मेरे माता-पिता नहीं चाहते कि मैं तुम्हें प्यार करूँ, परंतु मैं विवश हूँ । मैं तुम्हारे विना नहीं रह सकती । अब मोहन की आत्मा पर भी मिस जॉन के प्रेम का प्रभाव पड़ा । वह अपने मन में कहने लगा—"वास्तव में मिस जॉन मुझे बहुत प्यार करती है, मुझे जी-जान से चाहती है ।"

कभी-कभी मोहन अपने मन में सोचने लगता था कि वास्तव में मिस जॉन मुझे विद्यावती से भी अधिक प्यार करती है । उसके पत्थर को पिघलानेवाले प्रेम ने मोहन के ऊपर अपना सिक्का जमा लिया ।

जब-जब मोहन इन दोनो के प्रेम के संबंध में सोचता था, तब-तब वह घबरा उठता था । वह इस बात से डर रहा था कि किसी-न-किसी को अब अवश्य ही निराश करना पड़ेगा । इस समय मोहन दोनो की ओर समान भाव से आकर्षित हुआ । मिस जॉन ने एक दिन मोहन से कहा कि पिताजी ने आज फिर मुझे फटकारा है । इसलिये मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि तुम शीघ्र ही इस संबंध में अपना कर्तव्य और मत निश्चय कर लो, नहीं तो पीछे गड़बड़ हो सकता है । मुझे तो इस संबंध में कुछ सोचना-विचारना है ही नहीं । मोहन ! मैं सच कहती हूँ, मैं तुम्हारे विना नहीं जी सकती । मैं सारे संसार को छोड़ दूँगी, परंतु तुम्हें नहीं छोड़ सकती ।

(६)

उस दिन से विद्यावती अपने मन में बहुत दुखी रहती थी । उसके बाद मोहन से वह मिली, और कई बार मिली । फिर दोनो में प्रेममय बातें हुईं, परंतु दोनो ने एक दूसरे के प्रेम में कुछ अपूर्णता पाई । इसका कारण कुछ भी नहीं मालूम हुआ । फिर भी दोनो ही अब एक दूसरे से कुछ-कुछ दूर होने लगे । मोहन के घरवाले भी जान गए थे कि मिस जॉन और विद्यावती दोनो ही मोहन को प्यार करती हैं । परंतु उन्हें मिस जॉन से वैवाहिक संबंध करना पसंद नहीं था । वे लोग भी चाहते थे कि मोहन मिस जॉन से न मिला करे । उन लोगों ने भी मोहन को स्पष्ट रूप से मिस जॉन से मिलने के लिये मना कर दिया था, परंतु अब स्वयं मोहन उसकी ओर बहुत आकर्षित हुआ था । तथापि इस समय मोहन के दिन बड़ी भारी दुविधा में कटते थे ।

विद्यावती ने कई बार मोहन को मिस जॉन के साथ देखा था, और देखकर असह्य वेदना का अनुभव किया था । एक बार तो इस संबंध में उसने मोहन से स्पष्ट रूप से पूछने का भी निश्चय कर लिया था । परंतु जब वह मोहन के सामने गई, तो पूछने का उसका साहस नहीं हुआ । इस समय विद्यावती बहुत दुखी रहती थी, और अपने मन में वह समझ रही थी कि अब मोहन मिस जॉन को प्यार करने लगा है । इसलिये आज जब विद्यावती ने मोहन को मिस जॉन के साथ मोटर में देखा, तो उसका हृदय व्याकुल हो गया । उसे असह्य वेदना हुई, और अब उसने इस संशयात्मक दशा में न रहने का ही अंतिम निश्चय किया । अतएव उसने एक बड़ा भारी पत्र लिखा, और अवसर पाते ही मोहन को दे दिया । मोहन ने उस पत्र का ऐसा उत्तर दिया, जो दूसरे समय विद्यावती की सब शंकाओं को दूर कर देता, परंतु इस समय उस पत्र से उसे संतोष नहीं हुआ । वह शीघ्र ही मोहन के पास आई ।

विद्यावती ने कहा—"मोहन ! कह दो कि तुम मिस जॉन को नहीं प्यार करते । बस ! मुझे विश्वास हो जायगा । मुझे तुम्हारी बातों का बड़ा विश्वास है ।"

मोहन—"विद्यावती !"

विद्यावती—"मोहन !"

मोहन—"परंतु ।"

विद्यावती—"मोहन ! अब 'किंतु, परंतु' मत करो । कह दो कि तुम उसे नहीं चाहते । बस, बस, जल्द कहो ।"

मोहन सोचने लगा। विद्यावती समझ गई कि वह दुविधा में पड़ा है। प्रेमी लोग एक दूसरे के भावों के ताड़ने में सचमुच आफ़त के परकाले ही होते हैं। विद्यावती निराश हो गई, उठी और वहाँ से चलने की तैयारी करने लगी। मोहन ने उसे रोकना चाहा, परंतु उसने एक न सुनी। वह उदास मुँह वहाँ से चली गई। मोहन खिन्न होकर उसकी तरफ़ देखता रह गया। थोड़ी देर बाद विद्यावती फिर लौट आई और उसने मोहन से कहा—"यही हम लोगों का अंतिम मिलन है।" इसके बाद वह बड़े वेग से चली गई।

(७)

मिस्टर जॉन तथा मोहन के पिता में एक दिन इस संबंध में साफ़-साफ़ बातें हुईं। दोनो पिताओं ने इस बात को मान लिया कि इनका विवाह किसी भी कुटुंब तथा व्यक्ति के लिये सुखद नहीं होगा। दोनो ने परस्पर यह प्रतिज्ञा की कि वे इस संबंध में अपने-अपने वंशजों को भली भाँति समझाएँगे, तथा प्रत्येक प्रकार से इस संबंध को रोकने का प्रयत्न करेंगे, और यदि आवश्यकता पड़े, तो बल का भी प्रयोग करेंगे।

इसी के अनुसार मिस्टर जॉन ने अपनी कन्या को एक दिन और बहुत समझाया, और अंत में यह भी कह दिया कि अब तुम मोहन के साथ कभी घूमने मत जाओ।

दूसरे दिन मिस जॉन पागल की तरह लपकती हुई मोहन के कमरे में आई, और कहने लगी—"मोहन! मोहन !! अब क्षण-भर के लिये भी विलंब मत करो। अब समय आ गया है। मोहन ! अगर जल्दी इस प्रश्न को हल न करोगे, तो स्मरण रखना, मेरी जान नहीं बचेगी।"

मोहन घबरा गया। उसने आश्चर्य के साथ कहा—"कहो, क्या बात है ?"

मिस जॉन—"अभी तक तुम नहीं समझे ? मैंने पहले ही कहा था कि जल्दी निश्चय कर लो। आज वह समय आ गया है।"

इसके बाद मिस जॉन ने सारी घटना कह सुनाई, और अंत में यह भी कह दिया कि मैं तुम्हारे लिये माता-पिता तथा सारी संपत्ति छोड़ने को तैयार हूँ। इस बात का मोहन के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा, उसकी अंतरात्मा हिल गई, और वह मिस जॉन पर मुग्ध हो गया। इस समय उसने मिस जॉन को बहुत सुंदर पाया। इससे पहले वह उसको इतना सुंदर नहीं समझता था। मिस जॉन ने अंत में कहा—"संभव है, पिता मेरे ऊपर अब कड़ी निगाह रक्खें, और इस कारण से मैं तुमसे इधर मिल भी न सकूँ, परंतु मेरा हृदय सदा तुम्हारे साथ रहेगा, और तुम्हारी आज्ञाओं का सहर्ष पालन करेगा। मोहन, अब इसमें विलंब न करो, अपना अंतिम निश्चय मुझसे बतलाओ।"

अब मोहन उत्तर देने जा रहा था। इसी समय मिस्टर जॉन उधर से आते हुए दिखलाई पड़े। वह कमरे के भीतर आए, और अपनी पुत्री को लेकर अपने घर चले गए। मोहन अपनी परिस्थिति पर विचार करता हुआ वहीं पर चुपचाप बैठा रह गया।

(८)

मिस्टर जॉन के चले जाने के बाद मोहन के घरवालों ने उसे चारो तरफ़ से घेर लिया, और उसके मन में अच्छी तरह से बैठा दिया कि मिस जॉन के साथ विवाह करना असंभव है। जब मोहन ने मिस जॉन की बातों तथा अंतिम दर्शन का विचार किया, तो उसकी अंतरात्मा हिल गई, शरीर में रोमांच हो आया, और हृदय फटने लगा। परंतु यह बात भी उसके मन में अच्छी तरह बैठ गई कि केवल समाज ही नहीं, कुटुंब भी मिस जॉन से विवाह नहीं करने देगा। इसी समय

उसके सामने विद्यावती का आख़िरी बार देखा हुआ उदास मुँह तांडव नृत्य करने लगा। उसने विद्यावती से अपना विवाह करना निश्चय कर लिया। जब उसने अपने मन में सोचा कि अब मैं विद्यावती से ख़ूब ज़ोर के साथ प्रेम के संबंध में बातें करूँगा, तो उसका मन प्रसन्न हो उठा, और वह विद्यावती के संबंध में बहुत कुछ सोचने लगा।

(६)

मिस्टर जॉन ने घर पहुँचकर अपनी पुत्री को बहुत समझाया, और तब अंत में कहा—"देखो, तुम मेरी प्रिय संतान हो। अगर मेरा कहना न मानोगी, तो मुझे बड़ा कष्ट होगा। मैं नहीं चाहता कि मेरी कन्या का विवाह एक काले आदमी के साथ हो। यदि ऐसा होगा, तो तुम्हीं कहो, हम अपने समाज में क्या मुँह दिखलाएँगे। बेटी! अभी मेरे सामने प्रतिज्ञा करो कि आज से तुम मोहन से कोई संबंध न रक्खोगी।"

इस बात को सुनकर मिस जॉन घबरा गई। वह समझ न सकी कि इसका क्या उत्तर दे। उसके मुँह से अकस्मात् निकल गया—"पिता!"

मिस्टर जॉन समझ गए कि वह प्रतिज्ञा नहीं करना चाहती। वह क्रोध के मारे तिलमिला उठे। उन्होंने कहा—"अगर तू न मानेगी, तो मैं अपनी कुछ भी संपत्ति तुझे न दूँगा। बोलो, जल्दी बोलो, क्या कहती हो?"

मिस जॉन ने फिर कहा—"पिता!"

इसके बाद मिस्टर जॉन ने अपनी कन्या को ख़ूब फटकारा, उसे भला-बुरा कहा, और अंत में यह भी कह दिया—"यदि आज से कभी मोहन से विवाह करने का विचार किया, तो तुझे मेरा घर छोड़ देना पड़ेगा, और ऐसी दशा में मैं तुझे एक पैसा भी नहीं दूँगा।"

इस समय क्रोध के मारे मिस्टर जॉन थर-थर काँप रहे थे। उन्होंने गरज-गरजकर अपना निश्चय अपनी कन्या को सुनाया। क्रोध में अपने दो-चार बाल नोच डाले। पागल की तरह मिस जॉन की ओर देखा। अंत में वह मिस जॉन के कमरे के बाहर चले गए।

(१०)

मिस जॉन अब बहुत घबरा गई। पहले तो वह यह नहीं समझ सकी कि अब इस संबंध में उसे क्या करना चाहिए। परंतु फिर उसी क्षण उसने अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया। वह उठी, मोटर पर सवार हुई, और मोहन के घर चली गई। उसने वहाँ जाकर मोहन से उन बातों के संबंध में ठीक-ठीक सब कुछ कह डाला, जो उससे और उसके पिता से हुई थीं। इस समय वास्तव में वह बहुत घबराई हुई थी।

अंत में उसने कहा—"मोहन! अब समय नहीं है। संभवतः पिता अभी आते होंगे। मैं तो सारे संसार को तुम्हारे लिये छोड़ सकती हूँ, परंतु तुम्हें नहीं छोड़ सकती। यही मेरा अंतिम निश्चय है। बोलो, जल्दी कहो, क्या कहते हो?"

मोहन ने घबराकर कहा—"मिस जॉन! मिस जॉन!! प्रिये!!!"

मिस जॉन—"कहो, क्या कहते हो?"

मोहन—"प्रियतमे! जीवन के लिये प्रेम है, प्रेम के लिये जीवन नहीं।"

मिस जॉन अब घबरा गई। जिस बात के सुनने के लिये वह तैयार नहीं थी, वही आज उसे सुननी पड़ी। उसने उत्तेजित होकर कहा—"मोहन! क्या मैं ठीक सुन रही हूँ। बोलो, जल्दी कहो। बोलते क्यों नहीं हो?"

मोहन—"हम लोग सुखी नहीं रह सकते।"

मिस जॉन और भी अधिक घबरा गई। उसने कहा—"तो तुम मेरे लिये कुछ त्याग नहीं कर सकते?"

मोहन—"प्रियतमे! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, परंतु...।"

मिस जॉन—"परंतु, किंतु के लिये समय नहीं है। कहो, मेरे साथ भाग चलोगे या नहीं? एक शब्द में उत्तर दो।"

मोहन ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मिस जॉन उससे ऐसा प्रश्न करेगी। वह इस प्रश्न के लिये बिलकुल तैयार नहीं था, वह घबरा गया।

मिस जॉन ने भी उस घबराहट को लक्ष्य कर लिया। वह बड़े ज़ोर से बोली—"कहो, क्या कहते हो ?"

मोहन—"मिस जॉन !"

मोहन ने शब्दों की सहायता से तो विशेष कुछ नहीं कहा, परंतु मिस जॉन मुखाकृति से समझ गई कि मोहन उसके साथ भागने के लिये तैयार नहीं है। उसके प्रेम-सागर की धारा अकस्मात् एक बड़े भारी पर्वत से टकरा गई, वह घबरा गई, और उसकी चेतना के संसार में बड़ी भारी उथल-पुथल मच गई। अभी तक जो दोनो में प्रेम चल रहा था, उसका प्रतिघात हुआ, और वह पागल की तरह दिखलाई पड़ने लगी। थोड़ी देर के बाद उसकी मुखाकृति बदल गई, उसकी आँखें लाल हो गईं, और क्रोध के मारे वह तिलमिला उठी। वह उठ खड़ी हुई, चारो ओर मोहन के कमरे में देखा, मोहन की ओर भी शून्य दृष्टि से देखा, फिर जाकर मोटर पर बैठ गई। मोहन भी घबराया हुआ उसे मोटर तक पहुँचाने गया। पहले तो उसने मोहन को नहीं देखा, परंतु जब उसने मोटर चलाना प्रारंभ किया, तो उसकी दृष्टि मोहन पर जा पड़ी। वह क्रोध के मारे फिर एक बार थर-थर काँपने लगी। उसने मोहन को तिरस्कार की दृष्टि से देखा, और यह कहकर मोटर चलाने लगी—"तू गुलाम है, तू प्रेम करना क्या जाने।"

(११)

जब मिस जॉन घर पहुँची, तो सबसे पहले उसने अपने पिता की गर्जना सुनी। परंतु वह घबराई नहीं। सीधे अपने कमरे में चली गई, और जाकर पत्र लिखने बैठ गई। अभी उसने एक शब्द भी नहीं लिखा था कि इतने में मिस्टर जॉन वहाँ पहुँचे। मिस जॉन ने कहा—"पिता! मुझे दस मिनट के लिये क्षमा करो, केवल दस मिनट।" परंतु क्रोध के आवेश में वह अभी उससे बातें करना चाहते थे। मिस्टर जॉन की धर्मपत्नी ने उन्हें बहुत कुछ समझा-बुझाकर अलग हटा लिया। पंद्रह-बीस मिनट तक वह पत्र लिखती रही। इतने ही समय में उसने छोटे-छोटे दो पत्र लिखे। उसके बाद वह मोटर पर सवार हुई, और मोहन के घर की ओर चली गई। वहाँ जाकर उसने मोहन के हाथ में विना कुछ कहे एक पत्र दिया, और फिर जाकर मोटर में सवार हो गई। थोड़ी ही देर के बाद वह फिर लौट आई। उसके क्रुद्ध पिता उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। परंतु इस बार भी वह सीधे अपने कमरे में चली गई। थोड़ी देर के बाद तमंचे की आवाज़ हुई। सब लोग चारो ओर से दौड़कर वहाँ आए, परंतु उनके आने के पहले ही पंछी उड़ गया था, छिन्न-भिन्न पिंजड़ा ज़मीन पर इधर-उधर पड़ा था।

(१२)

मिस जॉन ने अपने पिता के नाम यह पत्र लिखा था—

प्रिय पिता !

जब मेरा पत्र आपको मिलेगा, तब मैं इस संसार में नहीं रहूँगी। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि मेरी मृत्यु से—इस प्रकार की मृत्यु से विशेषतः—आपको बहुत कष्ट होगा। परंतु पिता! मैं क्या करती, मैं विवश थी। मैं उस गुलाम मोहन को बहुत प्यार करती थी। पिता, अगर मैं उसके विना रह सकती तो आपको मेरी मृत्यु का कष्ट नहीं भोगना पड़ता। परंतु पिता! मैं उसके प्रेम में पागल हो गई थी, मैं उसे विना देखे एक क्षण भी नहीं रह सकती थी। परंतु पिता! मैं इस अंतिम समय में आपको विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि इसमें उस गुलाम का कुछ भी दोष नहीं है। मैं ही उससे प्रेम करने लगी, मैंने ही बार-बार उसके प्रेम को उत्तेजित किया, प्रेम में मैं ही सदा अग्रसर होती चली आई थी। परंतु उसने मुझे अस्वीकार कर दिया। पिता! मैं तो उसके साथ भाग जाने के लिये भी तैयार थी, परंतु उसने ही ऐसा नहीं किया। इसी से निराश होकर मैं आत्मघात कर रही हूँ। पिता! अब मैं अंत समय में आपसे प्रार्थना करती हूँ, हाथ जोड़कर प्रार्थना

करती हूँ कि आप कृपा करके मुझे तथा मोहन को हृदय से क्षमा कर दीजिएगा। विशेष कर मोहन को, क्योंकि उसका इसमें कुछ भी दोष नहीं है।

आपकी अभागिनी पुत्री
मिस जॉन

(१३)

इस पत्र को पढ़कर मिस्टर जॉन और भी अधिक उत्तेजित हो गए। उन्होंने मोहन को मार डालने का निश्चय कर लिया, तमंचा उठाया, और मोहन के घर की ओर बड़े वेग से प्रस्थान कर दिया।

मिस जॉन मोहन को पत्र देकर चली गई, तो मोहन ने उसे पढ़ना प्रारंभ कर दिया। उसमें लिखा था—

अभागे ग़ुलाम !

मैंने अपने जीवन में कभी किसी से झूठ नहीं कहा, कभी किसी को धोखा नहीं दिया, और इस अंत काल में तुमसे भी न तो झूठ कहूँगी और न धोखा दूँगी। मैं तुम्हें बहुत प्यार करती थी और तुम्हारे बिना रह ही नहीं सकती थी। जब मुझे पता चल गया कि तुम मेरे नहीं हो सकते, तो मैंने निश्चय कर लिया कि मैं अब अवश्य ही जान दे दूँगी, क्योंकि प्रेम ही स्वर्ग है, प्रेममय जीवन ही स्वर्गीय सुख है, और प्रेम-रहित जीवन ही नरक है। ग़ुलामों की तरह मैं जीवन के लिये प्रेम नहीं मानती, किंतु प्रेम के लिये जीवन मानती हूँ। तुम मेरी मृत्यु के संबंध में शीघ्र ही सुनोगे। इसलिये आज मैं एक विशेष कारण से पत्र लिख रही हूँ। क्रुद्ध पिता इस अपमान को न सह सकेंगे, और यदि तुम भाग न गए, अथवा और किसी तरह से रक्षा न की, तो वह तुम्हें जान से मार डालेंगे। इसलिये तुम कहीं जल्द भाग जाओ, और कुछ दिन तक गुप्त रीति से रहो, नहीं तो तुम्हारी जान का ख़तरा है। मैं पिता के स्वभाव को ख़ूब जानती हूँ।

मिस जॉन

(१४)

इस पत्र को पाते ही मोहन के पैरों के नीचे की पृथ्वी सरकती हुई जान पड़ी। उसकी आँखों के सामने लाल-पीला दिखलाई पड़ने लगा। उसने अपने मन में कहा—"क्या वास्तव में मिस जॉन मेरे लिये ही आत्महत्या कर लेगी।" वह उसे भली भाँति जानता था। उसने समझ लिया कि मैंने उसे स्वीकार नहीं किया, तो अवश्य वह जान दे देगी। उसने अंत में अपने मन में निश्चय किया कि चाहे जो हो, मैं अब मिस जॉन से अपना विवाह अवश्य करूँगा। फिर उसके मन में आया—"मान लो, उसने आत्मघात कर ही लिया, तो क्या यहाँ से भागना पड़ेगा? कदापि नहीं, कदापि नहीं, भय से भागना तो कायरता है।"

मोहन अभी इन्हीं सब बातों के संबंध में सोच रहा था। इसी समय मिस्टर जॉन सामने से उसकी ओर आते हुए दिखलाई पड़े। पहले तो वह मन में घबरा गया, परंतु अंत में वह उनके स्वागत करने के विचार से आगे बढ़ा। मिस्टर जॉन ने क्रोध के आवेश में कहा—"नरक के कीड़े! काला आदमी! मेरी कन्या की हत्या करके तू जीवित नहीं रह सकता।"

इसके बाद उन्होंने तमंचा उठाया, मोहन को निशाना बनाया और उसे मार डाला। मोहन की आत्मा का आज पार्थिव शरीर से वियोग हो गया। क्रोध ने वंश-परंपरा की कृतज्ञता की अवहेलना कर दी।

(१५)

जब विद्यावती ने ये सब बातें सुनीं, तो वह बहुत उदास हुई, और जब सरस्वती ने विद्यावती से यह भी कहा कि भैया ने तुम्हीं से अपना विवाह करना निश्चय किया था, और वह तुम्हें बहुत चाहते थे, तो विद्यावती को असीम दुःख हुआ। वास्तव में इन सब बातों ने उसके हृदय को मथ डाला। उसने अपने मन में कहा कि मैं उस दिन व्यर्थ ही उनसे

रुष्ट हो गई थी, इस बात के स्मरण हो आने के कारण उसका हृदय विदीर्ण होने लगा। यदि वह मोहन को आज देख पाती, तो उसके चरणों पर लोटती और अपने अपराधों को क्षमा कराती। परंतु अब ऐसा अवसर नहीं आ सकता था, इसीलिये वह और भी अधिक दुखी हो गई।

रात के समय विद्यावती उसी स्थान पर गई, जहाँ मोहन की चिता जलाई गई थी। उस स्थान को वह बड़े ध्यान से देखने लगी। उसका गला भर आया। वह एक अबोध बालिका की तरह चिता के पास बैठ गई और रोने लगी। अंत में उसने अपने दोनो हाथ जोड़ लिए, आँखें आकाश की ओर उठ गईं और वह मोहन, अपने प्यारे मोहन की आत्मा की शांति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करने लगी।

ग्रेट ब्रिटेन का अभिमान



दलबंदी के पचड़े को पद-दलित कर नेशनल पार्टी के सहारे ग्रेट ब्रिटेन के गर्व की मुद्रा।

अ प्स रा !

उपन्यास-साहित्य की बेजोड़ कृति

लेखक—
पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

मूल्य १), सजिल्द १॥)

देखिए, और-और प्रसिद्ध पत्रिकाएँ तथा प्रतिष्ठित लोग क्या कहते हैं—

सरस्वती—प्रस्तुत पुस्तक इतनी रोचक है कि बिना आदि से अंत तक पढ़े मन नहीं मानता।...प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन, पात्रों के मनोभावों का विवरण, घटना विशेष से विशेष विचार-धाराओं का संचालन, गंभीर विषय के बीच में हास्य-रस की चुटकी 'निरालाजी' के उन्नत कला-कौशल के परिचायक हैं।

श्रीमती चंद्रावतीदेवी—मैं आदि से अंत तक पढ़ गई, समाप्त करने पर भावनाओं से परिप्लुत हृदय आप-ही-आप उल्लसित हो उठा, और मानवीय जीवन की वास्तविकता तथा आदर्श को कार्य-रूप में परिणत करने की गंभीर छाप मेरे हृदय पर चिरस्थायी है।

पं० रामरत्नपाल मिश्र, मैनेजर, सीता-रसोई—सामाजिक उन्नति का मुख्य साधन साहित्य ही है, जो 'अप्सरा'-जैसे उपन्यासों से ही परिपुष्ट हो हिंदू-समाज को वर्तमान गर्त से निकालकर उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकता है।

हिंदी के प्रतिष्ठित विद्वान् लेखक, श्रीसंतराम बी० ए०—'निराला'जी का भाषा पर पूर्ण अधिकार है, और आपके उपन्यास को एक बार पढ़ना आरंभ कर देने पर फिर बिना समाप्त किए छोड़ना मुश्किल हो जाता है। सचमुच आपकी अप्सरा बड़ी मनमोहिनी है।

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

बहुक्म जनाब बा० शिवशंकरलाल साहब मुंसिफ़ उरई
[बदस्त अवाम फ़रोख्त के लिये]
सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा
(आर्डर ५, क़वायद १ व ५ मजमूआ ज़ाब्ता दीवानी सन् १९०८ ई०)
नंबर मुक़द्दमा ३१ । ३४८
बअदालत मुंसिफ़ी मुक़ाम उरई ज़िला जालौन

फ़र्म टेकचंद मिट्ठूलाल, वाक़े कौंच ज़रिए नाथूराम वल्द बालमकुंद वैश्य कौंच । मुद्दई

बनाम दर्शनसिंह फ़र्म दर्शन मुरलीमनोहर वाक़े औरैया मुंसिफ़ी फफूंद ज़िला इटावा । मुद्दाअलेह

वाज़े हो कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत बहीखाता के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ११ माह जनवरी सन् १९३२ ई० बवक़्त १० बजे बमुक़ाम मुंसिफ़ी उरई असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमा के हालात से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ा मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारी हाज़िरी के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि उसी रोज़ अपने जुमला गवाहों को जिनकी शहादत पर नीज़ जुमला दस्तावेज़ात जिन पर तुम बताईद अपने जवाबदिही के इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ पेश करो।

तारीख़ पेशी ११ जनवरी १९३२ ई०

और तुमको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा।

बसब्त मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत के आज बतारीख़ १५ माह दिसंबर सन् १९३१ ई० जारी किया गया।

असिस्टेंट कलक्टर दरजा अव्वल

इत्तिला

१—अगर तुमको यह अंदेशा हो कि तुम्हारे गवाह अपनी मर्ज़ी से हाज़िर न होंगे तो तुम अदालत हाज़ा से सम्मन बईं मुराद जारी करा सकते हो कि जो गवाह न हाज़िर हो वह जबरन हाज़िर कराया जाय और जिस दस्तावेज़ को किसी गवाह से पेश कराने का तुम इस्तहक़ाक़ रखते हो उससे पेश कराई जाय बशर्तें कि तुम ख़र्चा ज़रूरी अदालत में दाख़िल करके इस अम्र की दरख़्वास्त गुज़रानो।

२—अगर तुम मतालबा मुद्दई को तसलीम करते हो तो तुमको लाज़िम है कि रुपया मय ख़र्चा नालिश अदालत में दाख़िल करो ताकि कारवाई इजराय डिगरी की जो तुम्हारी ज़ात या माल या दोनों पर हो करना न पड़े।

बअदालत जनाब पंडित गिरिजाशंकर साहब बहादुर मुंसिफ़ गोंडा
सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा
मुक़द्दमा नंबर १७२३ सन् १९३१ ई० इब्तिदाई

बअदालत ख़फ़ीफ़ा इब्तदाई मुंसिफ़ी गोंडा मुक़ाम गोंडा

लालजी वल्द लालताप्रसाद पांडे साकिन छपरहोत परगना ज़िला गोंडा मुद्दई

बनाम

गंगादीन मुद्दाअलेह

बनाम गंगादीन वल्द महावीर क़ौम लोहार साकिन चलिया परगना ज़िला गोंडा।

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत १०९।।।) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ४ माह जनवरी सन् १९३२ ई० बवक़्त १० बजे असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावे मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे महज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ ६ माह जनवरी सन् १९३२ ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से जारी किया गया।

जज

१ सितंबर से प्रति मंगलवार को प्रकाशित होता है

स्वराज्य

(हिंदी-राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र)

संपादक—श्री० सिद्धनाथ माधव आगरकर बी० ए०

भारत की राष्ट्रीय पंचायत ने स्वराज्य का अर्थ किया है—ग़रीबों का राज्य। इस महामंत्र का घर-घर प्रचार करने और जन-साधारण में स्वराज्य-संचालन की योग्यता पैदा करने के लिये **'स्वराज्य'** साप्ताहिक पत्र की सृष्टि हो रही है।

'स्वराज्य' (१) अपना शासन आप चलाने के लिये जनता को तैयार कर रहा है।

(२) देशी राज्यों में 'स्वराज्य'-महामंत्र का प्रचार करता है।

(३) 'रियासती स्वराज्य' और 'भारतीय स्वराज्य' के संयुक्त शासन की बलवान् एकता का समर्थन करता है।

(४) समाज के नैतिक पतन पर प्रकाश डालकर भारतीय जनता को शुद्ध और बलवान् जीवन का संदेश सुनाता है।

(५) सत्य की कसौटी पर बड़ों-छोटों की निष्पक्ष आलोचना करता है।

(६) राष्ट्र-भाषा के साहित्य की निष्पक्ष आलोचना करता है।

(७) मध्यप्रांत-मध्यभारत के विशेष समाचार प्राप्त कर प्रकाशित करता है।

ताज़े समाचार, चुभते व्यंग्य, रोचक कविताएँ, शिक्षाप्रद कहानियाँ, जनता की पंचायत आदि सामग्री से भरा हुआ **'स्वराज्य'** का प्रत्येक अंक समाचार-पत्र पाठकों की प्रिय वस्तु होता है।

राष्ट्रीयता—स्वराज्य का धर्म है। **भारतीयता**—स्वराज्य का मर्म है।

रॉयल साइज़ पृष्ठ १६, वार्षिक मूल्य केवल ३), आज ही मनीऑर्डर से भेजकर ग्राहक बनिए।

'स्वराज्य' के संपादकीय विभाग में हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक श्री० विनयमोहन शर्मा बी० ए० तथा 'हिंदी-चित्रमय जगत्' के भू० पू० संपादक श्री० गोपीवल्लभ उपाध्याय काम करते हैं।

सभी बड़े शहरों में एजेंटों की आवश्यकता है।

मैनेजर 'स्वराज्य'-कार्यालय

खंडवा, सी० पी०



१. छलो मित्र

आइ मिलैं, अस बात करैं,
जनु मीत सदा के रहे यक ठौरैं;
भेद-विभेद न जान्यो जबै,
तब हीं मन रूख करयो मुख जोरैं।
मित्र बने अरि के अब तो,
छल-छंद छल्यो छिपिकै चहुँ ओरैं;
अंकुश अंकित रे गज, बंधु
बँधावत लाज न लागत भोरैं।

शिवरत्न शुक्ल

× × ×

२. धर्म

इस वर्तमान जाग्रत् अवस्था में भारत के स्वराज्य में यदि कोई रुकावट है, तो केवल एक हिंदू-मुस्लिम समस्या का जटिल प्रश्न ! अथवा यों कहिए कि धार्मिक पुरुषों का धार्मिक पुरुषों से ही द्वंद्व-युद्ध !! सच पूछिए, तो दोनो मतों में से, संभव है, शायद एक-आध अपने-अपने मत से भिन्न हों, अन्यथा अधिकतर तो लकीर के फ़क़ीर ही दिखाई देते हैं। किसी ने कह दिया कि परेड पर मुसलमानों को हिंदुओं ने पीटा। बस, फिर क्या था, धर्म के नाम पर शहीद हो ! कानपुर में एक दूसरी १८५७ की मिसाल बना दी ! परंतु इसमें तो भाई ने भाई का ही ख़ून बहाया ! न-मालूम ख़ुदा ऐसे अवसरों पर कहाँ छिप जाता है ? कहाँ कृष्ण, राम और शंकरजी भागकर शरण लेते हैं ? दयानंद की शिक्षाएँ न-मालूम कहाँ अंतर्धान हो जाती हैं ? ईसा की Ten Commandments (दस धार्मिक आज्ञाओं) का पता नहीं चलता, कहाँ पर अदृश्य हो जाते हैं ? कुछ मालूम नहीं होता कि गुरु नानक की ज्ञान-पूर्ण वार्ताएँ कहाँ धरी रह जाती हैं ? अरे, यह सब ढकोसला नहीं, तो क्या है ? धर्म के नाम पर सरासर अधर्म करनेवालो ! एक क्षण अपनी आत्मा की ओर तो निहार लो ! वह तुम्हें क्या कह रही है ? ओहो, वह तुम्हें धिक्कारती है, लजाती है, तुम्हारा मुँह दुबारा नहीं देखना चाहती ! यह सब केवल एक धर्म के कारण। यदि इस न्याय में आजन्म कारावास का दंड होगा, तो केवल धर्म को ! इसी धर्म ने निरी अबलाओं का, कुमारियों का सतीत्व नष्ट कराया है ! इसी धर्म के ही कारण मंदिरों में क्या पशुता का नंगा नाच नहीं हो रहा है ? इसी धर्म के कारण सैकड़ों-हज़ारों बच्चियाँ देवदासी बनी हुई पुजारियों तथा यात्रियों की भोग-पिपासा को तृप्त कर रही हैं ! इसी धर्म के ही कारण तीर्थों पर नित्यप्रति क्या हो रहा है ? क्या किसी के मुख में जिह्वा है, जो यह कह सके कि कानपुर, हरिद्वार, अयोध्या, प्रयाग, गया इत्यादि तीर्थों में पाप व व्यभिचार नहीं होता ? क्या कोई यह कहने की हिम्मत कर सकता है कि धर्म का आडंबर रखने-

वाले साधू सचमुच ही साधू हैं !! ओफ़्, इसी धर्म के कारण आज दुधमुँही बालिकाएँ विधवा-वेश में आँसू बहा रही हैं ! उनके तप्त आँसू चिल्लाते हैं—"हे हिंदू-समाज, तेरे पतन का समय निकट ही आ रहा है।" क्या इसी धर्म के कारण सैकड़ों भ्रूण-हत्याएँ नित्यप्रति नहीं होतीं ? क्या यही पापी-हत्यारा धर्म हमारी भोली-भाली बहनों को वेश्या बनाने का कारण नहीं है ? क्या यही दुष्ट धर्म सैकड़ों को अपनी बिरादरी तथा समाज से निकालकर दाने-दाने का मोहताज बनानेवाला नहीं है ? क्या यही धर्म है, जो विधवा-आश्रमों, अनाथालयों, मंदिरों, मसजिदों में पाया जाता है ? क्या कोई पाप इस संसार में है, जो इन स्थानों में नहीं होता ? भई ! जब यह हाल धर्म का है, तो उसे अपने पास ही क्यों रखते हो ? उसको हमेशा के लिये तिलांजलि दे दो, उसे इस संसार से ही निकाल दो। ऐसे धर्म के लिये तो इस पृथ्वी पर स्थान ही नहीं। हाँ, विना किसी धर्म के रहना अच्छा है। और यदि वास्तव में कोई धर्म है, तो वह केवल 'अहिंसा' ही है। इसी को, इसी अहिंसा को, बड़े-बड़े ऋषियों ने, बड़े-बड़े विद्वानों ने, नेताओं ने सराहा है। स्वयं महात्माजी इसी 'अहिंसा' के ऊपर धर्म-युद्ध कर रहे हैं।

बस, इसी अहिंसा में पूरा और असली धर्म का रूप स्थित है, परंतु इसी 'अहिंसा'-धर्मानुयायियों में सब मत-मतांतरों का लोप हो जायगा। न कोई समाजी, न हिंदू, न मुसलमान, न यहूदी, न ईसाई, न जैनी, न बौद्ध ; कोई न रहेगा। सब मनुष्यत्व के नाते ही में इसी धर्म के अनुयायी रहेंगे।

मैं पूर्व काल के धर्म के ऊपर व्याख्या नहीं करना चाहता। प्रश्न यह है कि इस समय वर्तमान अवस्था में धर्म कितना हानिप्रद है। केवल इसी के कारण ३३ करोड़ भारतवासी शृंखला में जकड़े हुए हैं। यदि एक ही मत होता, तो अँगरेज़ों की क्या, संसार-भर की हस्ती नहीं थी कि हम भारतीयों को पिंजर-बद्ध रखता। ज़रा विचारिए, कैनेडा में क्या हुआ ? अमेरिका ने स्वतंत्रता कैसे प्राप्त कर ली ? आस्ट्रेलिया ने क्या नहीं किया ? न्यूज़ीलैंड स्वतंत्र कैसे हुआ ? इन सब प्रदेशों में एक ही धर्म को माननेवाले थे। कहीं भी अल्प जाति का प्रश्न, जिस प्रकार भारत में इस समय है, नहीं उपस्थित हुआ। मैं तो कहता हूँ कि यदि मुसलमान पृथक् निर्वाचन चाहते हैं, तो हमें मंज़ूर, है वे इसे ले लें। एक भारतवासी एक अछूत तथा अस्पृश्य विदेशी जाति से लाखगुना अच्छा है, परंतु इस प्रकार के भाव हम लोगों को तभी तक रखने चाहिए, जब तक वे हमें स्वतंत्रता की वायु में नहीं विचरने देते। स्वतंत्र भारत में तो संसार के सब व्यक्ति समान दृष्टि से ही देखे जायँगे। कहने का तात्पर्य यह कि या तो धर्म अहिंसा के रूप में रहे, या सब व्यक्ति धर्म को मरा हुआ, समाप्त, पुरुषत्वहीन समझें, और केवल वही कार्य करें, जो किसी भी प्राणी को किसी रूप में भी दुःख-प्रद न हो। बस, केवल यही उद्देश्य हरएक मनुष्य का होना चाहिए। यही सच्चा सुख दिलावेगा, और मुक्ति भी इसी से होगी।

अच्छा, अब ज़रा धर्म-गृहों को भी देख लीजिए, वहाँ होता क्या है ? मसजिदों में अधिकतर काफ़िरों को संसारहीन करने का ही सबक़ याद कराया जाता है। जिस किसी प्रकार से हो, उसे मुसलमान बना लो, भगा दो, बेच दो, विना ही बात में लड़ो-झगड़ो,

सरकार का साथ दो, चाहे तुम्हारा नुक़सान हो हो जाय। ये शिक्षाएँ मसजिदों में, ख़ुदा के रहने के घर में, दी जाती हैं। ज़रा आर्य-समाजों में भी एक दृष्टि डालिए। साप्ताहिक अधिवेशनों में मुश्किल से ४-५ आते होंगे, परंतु चुनाव के समय तो बहुत ज़्यादा आवेंगे। नित्य प्रति एक दूसरे की बुराई करने के सिवा और करना कुछ भी नहीं। लंबी-चौड़ी डींगें मारना, अपने सामने किसी को न गिनना, ज़रा-ज़रा-सी बातों पर मान-हानि समझना, विधवाश्रमों तथा अनाथालयों को स्वार्थ-सिद्धि का लक्ष्य बनाकर प्रबंध करना! ज़रा पूछा जाय कि एक आर्य-समाजी संध्या-मंत्रों के अर्थ भी जानता है? वह यह भी जानता है कि कितने वेद हैं, अथवा कितने उपांग हैं? बड़ी लज्जा है। अच्छी बात है, ज़रा गिरजाघरों को भी जाकर देखिए, वहाँ पर क्या-क्या रंग हैं? युवक व युवतियों का प्रेमालाप व कोर्टशिप यहीं पर बहुधा हुआ करती है। कितना दिखावा गिरजाघरों में होता है? कितने ऐसे हैं, जो महात्मा ईसा की बातों पर, शिक्षाओं पर ध्यान देते हैं? ज़रा मंदिरों को भी देख लीजिएगा। साक्षात् पापागार! पापकुंड!! मंदिरों में जाना ही पाप-कार्य करना है! धर्मशालाओं व सरायों का तो कुछ कहना ही नहीं!! अब आप ही बताइए, इस धर्म से तो बिना धर्म ही रहना अच्छा है।

रूस को देखिए। कौन कहता है कि उसने उन्नति नहीं की? इन १०-११ वर्षों में जितनी उन्नति उसने की है, इतनी आज तक, इस अल्प समय में, किसी ने नहीं की। कौन प्रदेश नहीं चाहता कि वह रूस का-सा साम्राज्य स्थापित न करे। न तो वहाँ पर दरिद्रता है, न कोई धर्म, न कोई अमीर और न कोई भिखारी। तो हम लोगों में ही कौन-सा सुर्ख़ाब का पर लगा है? हम लोग ही क्यों धर्म को पकड़ने को पीछे-पीछे फिरें, और धर्म का यह तुर्रा कि वह भागती ही जाय। धिक्कार है उस धर्म को, और पीछे पड़नेवालों को क्या कहा जाय? सारांश यह कि संसार का इतिहास यदि खोला जाय, तो स्पष्ट तथा सिद्ध होगा कि जहाँ-जहाँ पर धर्म रहा है, जहाँ-जहाँ पर उसका आधिपत्य रहा है, वहाँ पर हमेशा अवनति होती आई है, वरन् जहाँ पर धर्म का बहिष्कार किया गया, उस देश में अवनति का नामोनिशान नहीं। वास्तव में वैमनस्य की एक-मात्र जड़ केवल धर्म ही है। यदि इस समय भारत में धर्म न रहे, तो कितना मेल हो। स्वराज्य तो मेल होते ही मिले, और किसी प्रकार का अपना-पराया ही न जान पड़े। इसके उपरांत ही राम-राज्य हो सकता है, अन्यथा नहीं। मेरे इन विचारों पर थोड़ा-सा मनन करने पर ही धर्म की वर्तमान सत्ता तथा असत्ता की समस्या हल हो जायगी।

रामकृष्ण निगम (एम्० ए०)

× × ×

३. हठी मन

कैसे मन को समझाऊँ ?

यह रोता ही रहता है दुखिया-सा सूने घर में ;
मैं इसके अल्हड़पन को अब कैसे दूर हटाऊँ ?
है नादान एक ही यह, ज़िद इसकी और निराली ;
इस नन्हे, मचले शिशु को कैसे ठग लूँ, बहलाऊँ ?
खोया-सा, अकुलाया-सा, कुछ सदा खोजता रहता ;
पीड़क टीसें उठती हैं, उनको किस भाँति दबाऊँ ?

उनकी निर्मम भौंहें तो हर घड़ी तनी ही रहतीं ;
कैसे कसक मिटे यह फिर, कैसे मुसकाऊँ, गाऊँ ?
उस उन्मादक चितवन को कैसे यह भला भुलावे ;
वे रूठे ही रहते हैं, उनको किस तरह मनाऊँ ?

श्रीसत्यव्रत शर्मा 'सुजन'

× × ×

४. सोने की बात

२१ सितंबर की शाम को ख़बर आई कि कल को बैंक बंद रहेंगे। सोमवार के दिन काम वैसे ही अधिक होता है। हम लोग बहुत थके हुए थे, इसलिये छुट्टी कुछ बुरी न मालूम हुई। हरएक यही कहता था कि रुपए की दर घट गई है, अब एक पौंड में अधिक रुपए आया करेंगे, इस बाढ़ के कारण ही बैंक बंद हैं। सब लोग सोना ख़रीदने के लिये उत्सुक थे। यह सब जानते थे कि सोने का भाव बढ़ेगा, पर कारण कोई न जानता था।

२२ सितंबर को अख़बारवाले के इंतज़ार में बिस्तरे से जल्द उठ बैठा था। अख़बार से मालूम हुआ कि इँगलैंड में सोने का पुराना क़ानून कारण-वश हटा दिया गया है। यह ख़बर बिलकुल नई थी, और इसकी किसी को आशा भी न थी। अख़बार में यह भी लिखा था कि आज की छुट्टी रहेगी। सब जगह सनसनी फैल गई। जिधर जाता था, उधर ही लोग अनेकों बातें पूछते थे। समझनेवाले बहुत कम थे। सब यही समझे बैठे थे कि इसमें गवर्नमेंट की कोई चाल है। यहाँ पर थोड़ा-सा इसका कारण दे देना अच्छा होगा।

इँगलैंड में गिन्नी नहीं चलती है। यदि आप सोना चाहते हैं, तो आप 'बैंक ऑफ़ इँगलैंड' (इसको हम अब आगे से 'बैंक' ही कहेंगे) में जाकर ३ पौंड १७ शिलिंग १०॥ पेंस फ़ी औंस के हिसाब से सोना ख़रीद सकते थे। एक पौंड के नोट की क़ीमत एक पौंड का सोना इस हिसाब से ठीक आ जाती थी। जितना सोना एक गिन्नी में होता है, उतना ही इस हिसाब से आपको पड़ जाता था। देश में सोने का सिक्का नहीं था, पर नोटों का हर समय सोना मिल सकता था, इसलिये नोट और गिन्नी में कोई फ़र्क़ न था।

आख़िर हम सिक्के को करते क्या हैं? वह कोई खाने के काम में तो आता ही नहीं, उससे हम अपनी ज़रूरत की चीज़ें मोल लेते हैं। यह काम नोटों से भी चल जाता है। फिर सिक्के और नोट में क्या फ़र्क़ रहा ? ठीक है, देश के अंदर तो व्यापार में नोट और सिक्कों में कोई फ़र्क़ नहीं है। हमको कोई रुपए दे या नोट, हमारे लिये दोनो बराबर हैं। क्योंकि क़ानून से हम जब चाहें, तब ख़ज़ाने में जाकर नोट से रुपए ले सकते हैं। यह हमारा क़ानून और देशों के लोग क्यों मानने लगे। हमारा और देशों से जो व्यापार है, वह सोने के ऊपर निर्भर है। सोना विदेशी व्यापार में ऐसे ही काम करता है, जैसे देश के अंदर नोट या रुपए। विदेशी हमारे नोटों को न लेंगे, वह हमको अपनी चीज़ सोने के ही बदले में बेचेंगे।

यदि हमको हर समय अपने नोटों का सोना मिल सकता है, तो हमारे लिये नोट और सोने में कोई अंतर नहीं है। इँगलैंड में ऐसी ही बात थी। वहाँ सोने का सिक्का न चलता था, पर सारे नोटों की नींव सोना ही था, अतः हम यह कहते थे कि पौंड का और सोने का भाव एक ही है। २१ सितंबर को यह बात जाती रही, क्योंकि यह क़ानून बन गया कि बैंक पौंडों का सोना न बेचेगा।

इसका असर यह हुआ कि दूसरे देशों को आप सोना नहीं भेज सकते। विदेशी व्यापार के लिये नोट

बेकार हैं। फिर नोटों का मूल्य क्या रहा। देशी व्यापार में तो नोट वह काम देते हैं, जो पहले देते थे, पर विदेशी व्यापार के लिये इँगलैंडवालों पर कोई रुपया न रह गया। डालर (अमेरिका का सिक्का) भी सोने का होता है और पौंड भी। आप हिसाब लगाकर कह सकते थे कि एक पौंड में कितने डालर आते हैं, पर जब पौंड सोने का न रहा, तो हिसाब भी इतना सीधा न रहा, और अब पौंड में कम डालर आने लगे। पौंड के सोने से अलग हो जाने से उसका मूल्य गिर गया।

इसका रुपए पर क्या असर पड़ा? जिस तारीख़ के अख़बार में यह ख़बर थी कि इँगलैंड में सोने का क़ानून तोड़ दिया गया, उसी तारीख़ को यह भी ख़बर आई कि भारत में भी सोने का और पौंड का क़ानून रद कर दिया गया। इँगलैंड में तो मालूम हुआ कि यह क़ानून पार्लियामेंट ने रद किया है, पर भारत में इसकी ज़रूरत भी न समझी गई। श्रीमान् वाइसराय ने ही अपने एक नए क़ानून से सारा काम पूरा कर दिया। हमारे मेंबरों को अधिक बकबक करने का कष्ट न हुआ। पर वे तो कृतघ्न हैं, वाइसराय महोदय को धन्यवाद देने के बजाय उन्होंने जो बातें कहीं, अवश्य ही मैं अपने लिये उनको सुनना न चाहूँगा।

भारत में इस क़ानून के रद करने का मतलब क्या था? भारत में भी नोट ही चलते हैं, कुछ काग़ज़ पर छपे हुए, और कुछ चाँदी पर। चाँदी पर छपे हुए नोटों को हम रुपया कहते हैं, पर हैं यह नोट ही। क्योंकि रुपए में ६ आने की चाँदी भी नहीं होती। अतः हम अपने देश में उनको चाहे किसी भाव से चलाएँ, पर अन्य देशवाले तो जितनी इनमें चाँदी है, उसी हिसाब से ख़रीदेंगे। रुपयों के इस बनावटी भाव को बढ़ा हुआ रखने के लिये भारत-सरकार २१ रु० ८ आ० तोला के हिसाब से सोना बेचती है, और १ शि० ६ पें० के हिसाब से पौंड बेचती है। कुछ आनों का इस भाव में फ़र्क़ कुछ कारणों से पड़ जाता है। रुपए की और नोटों की क़ीमत इस तरह से हम विदेशों में भी वही कर लेते हैं, जो देश में है।

यह सोना और पौंडों का बेचना २२ सितंबर को बंद हो गया। इसका मतलब यह हुआ कि रुपए की क़ीमत घट गई। रुपया तो ६ आने का है, पर रुपया कोई ढाल नहीं सकता, इसलिये हमारी ज़रूरत से थोड़े रुपए होने के कारण इसका भाव बढ़ा रहता है। दूसरे, हमको एक बँधी हुई दर पर हर समय सोना मिल जाता था, इसलिये रुपये का मूल्य बँधा हुआ था। इस बाँध के टूटने पर रुपए की क़ीमत गिरने लगी, और सोने का भाव बढ़ने लगा। यह कहाँ तक बढ़ा, यह अभी मालूम हो जायगा।

हमको यह भी मालूम कर लेना चाहिए कि इँगलैंड ने यह क़ानून क्यों तोड़ा था, और उसकी नक़ल भारत ने क्यों की। इँगलैंड को इस समय क़र्ज़ा बहुत चुकाना है। कुछ सोना तो उनको अभी दो-चार दिन में ही देना पड़ेगा। उनका व्यापार बिलकुल गिर गया है। कोई उनकी चीज़ें अब ख़रीदता ही नहीं, तो उनको क़र्ज़ा सोने में ही चुकाना पड़ता है। यदि लोग उनकी चीज़ें मोल लें, तो फिर सोने की ज़रूरत बहुत कम पड़े। जुलाई से २०,००,००,००० पौंड का सोना वह अब तक बाहर भेज चुके थे। इतना उनके पास था नहीं, पर उन्होंने फ्रांस और संयुक्त राज्य से उधार लेकर काम चलाया। अब अधिक माँगने पर इन दोनो देशों ने मना कर दिया। जब उधार भी न मिल सका, और पास केवल १३०,०००,००० पौंड का ही सोना रह गया, तो वह मजबूर हो गए इस बात पर कि सोना जनता के हाथ जैसे पहले बेचा जाता था, अब न बेचा जाय। क्योंकि इनको सारा क़र्ज़ा चुकाने के लिये सोना जल्द ही देना था। बैंक सोना ख़रीदेगा, पर बेचेगा नहीं, देश में इस तरह से सोना आएगा, पर व्यापार के लिये देश से जायगा नहीं, और सरकार अपना क़र्ज़ा चुका सकेगी। बैंक की दर भी बढ़ाकर ६ प्रतिशत कर दी गई, यह भी देश में रुपया मँगाने की एक चाल है।

भारत-सरकार पर इसका क्या असर पड़ा, और उन्होंने अपना क़ानून क्यों तोड़ा। इँगलैंड में इस क़ानून के तोड़ने से पौंड और सोने का भाव एक न रह गया। पहले एक पौंड में १८५ फ़्रांक (फ़्रांस का सिक्का) आते थे, अब केवल १०० आने लगे। हमने जो क़ानून बनाया था, वह तो इसी विचार से बनाया था कि पौंड और सोने की दर में फ़र्क़ न पड़ेगा, पर यहाँ फ़र्क़ पड़ गया। फिर हमको एक का ही साथ करना पड़ता था, पौंड का या सोने का। पौंड का साथ करके हम इँगलैंड का साथ देते, और सोने का साथ देकर दुनिया का।

पर इस द्विविधा को दूर करने की हमको आवश्यकता न थी। हमारे भाग्य-विधाताओं ने ही इसका फ़ैसला कर दिया। २२ सितंबर को अख़बारों में अनेकों देशों के भाग्य का निपटारा हो गया था, और उनके साथ में भारत का भी। भारत-मंत्री ने हमारे प्रतिनिधियों को बुलाकर समझा दिया कि रुपया पौंड का ही साथ देगा, सोने का नहीं। जैसे पिता अपनी संतान को बुलाकर कोई उनके लाभ की बात कहता है, और बाद को कह देता है कि देखो, इस बात पर दुंद न मचाना। यही बात मंत्री महोदय ने की। पर प्रायः बड़े लड़के बिगड़ जाया करते हैं। गांधीजी न माने, और दुंद मचा ही बैठे। इनको न-मालूम गवर्नमेंट से क्या चिढ़ पड़ गई है।

२३ तारीख़ के अख़बार से मालूम हुआ कि मंत्री महोदय की कार्यवाही पर भारत में भी खेद प्रकट किया जा रहा है। और यह भी मालूम हुआ कि बैंक दो दिन और बंद रहेंगे। इससे तो यह बात तय हो गई कि अब बैंकों की दशा बड़ी शोचनीय हो उठी है, और मुझको ख़ूब मालूम है कि अनेकों आदमी बीमार हो गए, और देश का व्यापार चौपट हो जाने की संभावना हो आई।

२५ तारीख़ को मालूम हुआ कि वाइसराय साहब ने एक और क़ानून बना दिया है। सोना और पौंड न बेचने के क़ानून की जीवनी केवल एक दिन की थी। यह नया क़ानून उसके तोड़ने को बना। इसके हिसाब से अब सोना और पौंड बेचने का अधिकार केवल इंपीरियल बैंक को है। कुछ बैंकों के नाम दिए गए, और यही बैंक इंपीरियल बैंक से सोना या पौंड ख़रीद सकते थे। भाव पुराना ही रहा। पर बैंकों को अब सोना या पौंड देख-देखकर बेचने होंगे। सट्टेबाज़ों को इससे नुक़सान रहा, पर हमारा भाग्य फिर सोने के साथ न बँध कर पौंड के साथ बँध गया।

इससे हमको कुछ फ़ायदे भी हुए और कुछ नुक़सान भी। हमको हर साल इँगलैंड को तनख़्वाह का और अनेक कारणों से बहुत रुपया भेजना पड़ता है। यदि पौंड का भाव गिर जाता यानी १ शिलिंग ६ पें० से १ शि० चार पें० हो जाता, तो हमको पहले से अधिक रुपए देने पड़ते। ३,२०,००००० पौंड के ऊपर यह फ़र्क़ जाकर बहुत पड़ता है। फिर थोड़े ही दिनों में हमको कुछ इँगलैंड में क़र्ज़ा चुकाना है, इससे सरकार को अपनी दशा सँभालनी कठिन हो जाती।

२६ तारीख़ को शिमले में ऐसेंबली में यह बात रक्खी गई कि देश भारत-मंत्री के विना जनता की राय के इस प्रकार रुपए को पौंड के साथ बाँध देने की निंदा करता है। मिस्टर चेटी ने यह प्रस्ताव बड़ी शान के साथ रक्खा था, और उनकी कुछ बातें यहाँ पर बड़ी ज़ोरदार रहीं। भारत का विदेशी व्यापार ४४१ करोड़ रुपए का है, उसमें इँगलैंड का भाग केवल १७२ करोड़ का ही है। यह क़ानून बनाकर हमारा विदेशी व्यापार अधिकतर इँगलैंड के हाथ में चला जायगा। इसमें गवर्नमेंट की हार हुई, पर देश के प्रतिनिधियों की सुनता कौन है, क्योंकि उनकी बात मानने से गवर्नमेंट को और देश को बहुत हानि थी। यह बात भी लिखने योग्य है कि जिन बैंकों को इंपीरियल बैंक सोना बेच सकता है, उनमें देशी बैंक केवल सेंट्रल बैंक ही है।

बैंक बंद होने का सबब यह था कि सट्टेबाज़ों

का काम न चले। सोमवार २१ सितंबर को ही इतना सोना बिका, और इतना रुपया इँगलैंड भेजा गया कि जिसका कुछ ठीक नहीं। अगर मंगल को सरकार बैंक न बंद करती, तो मंगल को ही दो-चार बड़े-बड़े बैंक टूट जाते। सब लोग आकर अपना रुपया निकालने की कोशिश करते, और सोना ख़रीदते या विलायत भेज देते। सोने का भाव सोमवार को २१ रु० १० आ० था, और बृहस्पतिवार तक २५ रु० ८ आ० हो गया। तीन दिन में ही सौ रुपए पर कम-से-कम १८ रुपए का फ़ायदा हो जाता, और व्यापार नष्ट हो जाता, पर मंगल को जब ख़बर मिली कि बैंक दो दिन और बंद रहेंगे, तो जनता घबरा गई, पर गवर्नमेंट और समाचार-पत्रों ने बड़ी मदद की, और इधर बैंकों ने इंतज़ाम भी कर लिया था। सोने का भाव भी अब एक जगह रुक गया था, इसलिये हालत ऐसी न गिरी। पर बेचारा पीपुल्स बैंक गिर गया। इस टक्कर को सँभालने की उसमें शक्ति न थी। उसके गिरने से और देशी बैंकों पर भी आफ़त आई, किंतु सबकी हालत बहुत अच्छी है, और सब इस हमले को सँभाल लेंगे। पर सट्टा बिलकुल ही बंद नहीं हो गया है। क्योंकि शनिश्चर को ही भारत से १२० लाख का सोना बाहर भेजा गया है, और भेजनेवालों में कुछ देश के बड़े-बड़े शुभ-चिंतक भी हैं।

'आदित्य'

× × ×

५. अतिथि

सदय हृदय ! सोते हो ? अपना द्वार तनिक तो खोलो ;
कौन ?—निराश्रय अतिथि। कहो, क्या ?—मधुर शब्द दो बोलो।
कहाँ चले हो ?—श्रांत भिखारी आया तेरे द्वार ;
कहो, करूँ क्या ?—करो सुजनता का सुंदर व्यवहार।
माँग रहे क्या ?—केवल आश्रय। क्या है तेरा नाम ?
नारायण का रूप अतिथि है, प्रेम नाम अभिराम।

रामपलटसिंह (एम्० ए०)

× × ×

६. सिनेमा और ग्रामोफ़ोन में भारतीयता

यह बहुत ही यथार्थ कथन है कि वैज्ञानिक सभ्यता की उत्तरोत्तर उन्नति के साथ-ही-साथ कविता का क्रमशः ह्रास होता है। कविता से हमारा यह तात्पर्य है कि सच्चा प्रकृतिवाद ही काव्य का आधार है। प्रकृति के वक्षःस्थल पर ही विज्ञान अपनी लीलाएँ दिखाता है। इतना होने पर भी विज्ञान से प्रकृति की विभूतियाँ नष्ट नहीं होती हैं। इससे एक आदर्श का निर्माण होता है। प्रकृति के गुप्त रहस्य को उद्घाटित करना ही विज्ञान का लक्ष्य है। यदि विज्ञान चाहे, तो वह प्रकृति का रहस्य प्रकाशित कर भी सुरक्षित रख सकता है। संरक्षण की ऐसी अवस्था में विज्ञान का महत्त्व बहुत ही बढ़ जाता है। विज्ञान की इसी भित्ति पर किसी भी देश के जातीय आदर्श की रक्षा अनंत-काल तक हो सकती है।

भारतवर्ष विज्ञानवाद की रचनात्मक छाया-भूमि है। सृष्टि तो अन्य देशों में होती है, लेकिन विज्ञान के विकास-क्रम में यह देश भी कुछ कम सहायक नहीं है। आज यदि भारतवर्ष में सिनेमा के फ़िल्मों और ग्रामोफ़ोन के रेकॉर्डों की गिनती हो, तो यह सहज

में ही पता चल सकता है कि यह देश विज्ञान की उन्नति में कितना बड़ा सहायक है। विज्ञान की इस उन्नति से हमें तनिक भी ईर्ष्या नहीं है। हम चाहते इतना ही हैं कि विज्ञान के आधार पर हमारा भारतीय आदर्श सुरक्षित रहे यह सवाल बड़ा महत्त्व-पूर्ण है। इस पर आवश्यक विचार होना चाहिए।

भारतवर्ष में भी लाखों रुपए ख़र्च करके सिनेमा के फ़िल्म तैयार किए जाते हैं। कुछ फ़िल्म तो वास्तव में ही वीरता-पूर्ण और बड़े मनोरंजक होते हैं। राजपूत-जाति और मुग़ल-जाति के इतिहास के आधार पर जो फ़िल्म तैयार किए गए हैं, उनमें से कुछ बड़े उत्साहवर्द्धक तथा गौरव-पूर्ण हैं। इसी देश में कुछ ऐसे फ़िल्म भी तैयार किए जाते हैं, जो हमारे राष्ट्रीय आदर्श को नरक की राह दिखाते हैं। सिनेमा के फ़िल्मों के विरुद्ध देश में कई बार आंदोलन हुआ है। यद्यपि इस आंदोलन से फ़िल्मों में परिवर्तन तो कुछ नहीं हुआ, तथापि जनता की रुचि का पता इससे चल गया है। व्यर्थ स्वास्थ्य और संपत्ति की हानि करके भी लोग सभ्यता तथा परिष्कृत रुचि के नाम पर बीमारियाँ ख़रीदते हैं। विदेशी फ़िल्मों की निर्लज्जता का वर्णन करना तो अलग रहा, देशी फ़िल्मों में भी कुछ कम अश्लीलता नहीं रहती है। इस प्रकार की अश्लीलता वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता में कोई पाप नहीं है। परंतु इस अश्लीलता से हमारी भारतीय संस्कृति पर कितनी चोट पहुँचती है, यह अनुमान करने की बात है।

हम चाहते हैं कि देशी फ़िल्मों में वर्तमान राष्ट्रीय आंदोलन का जीता-जागता चित्र भी रहे। हर्ष की बात है, मदन-कंपनी ने कलकत्ता-कांग्रेस तथा लाहौर-कांग्रेस के फ़िल्म तैयार किए हैं। अमर शहीद यतींद्र के शव के जुलूस का फ़िल्म भी मदन-कंपनी के सत्साहस का ही परिणाम है। हम मदन-कंपनी के संचालकों की प्रशंसा करते हैं, और उनसे अनुरोध भी करते हैं कि इस राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास वे फ़िल्मों में ही निर्माण करें। किताब के पन्नों से ये फ़िल्म बहुत ही ज़्यादा उपयोगी होंगे, यह निर्विवाद है। अन्य देशी फ़िल्म-कंपनियों का भी ध्यान इस ओर आकर्षित होना नितांत आवश्यक है।

जिस दिन हमने कलकत्ता-कांग्रेस के फ़िल्म में व्याख्यान-मंच पर बैठे हुए महात्मा गांधी को मुस्किराते हुए देखा, उस दिन हमें अपार हर्ष हुआ। हवा के झोंके से उनके कपड़े उड़-से रहे थे, और बग़ल में आचार्य कृपलानी खड़े थे। कैसा सुंदर दृश्य था। इस दृश्य को अब लोग सौ वर्षों के बाद भी उसी उल्लास के साथ देख सकते हैं। महात्मा गांधी के चलने की विचित्र गति भी मज़े में देखी जा सकती है। इसी प्रकार अन्यान्य नेताओं के दर्शन भी, जीवित रूप की भाँति ही, हो सकते हैं। इस फ़िल्म में एक खटकनेवाली कमी यही रही कि पं० मोतीलालजी के स्वागत के शानदार जुलूस का चित्र नहीं खींचा जा सका। यह दृश्य अभूतपूर्व था। सत्याग्रह के इतिहास में नमक-क़ानून तोड़ने के लिये समुद्र-तट की ओर महात्मा गांधी की यात्रा कितनी दर्शनीय थी। जरमनी आदि की कई विदेशी फ़िल्म-कंपनियों ने बड़े गौरव के साथ उस कर्मवीर गांधी के सत्याग्रही जत्थे के चित्र खींचे। इन चित्रों के प्रदर्शन से लोगों को कितना जोश और कितनी ताक़त आ सकती है, यह बंबई सरकार पहले से ही जानती थी। इसीलिये ऐसे फ़िल्मों का दिखाना वहाँ ग़ैर-क़ानूनी क़रार दिया गया। अभी यदि बारडोली-सत्याग्रह-संग्राम के फ़िल्म तैयार रहते, तो देहात की अपढ़ जनता के लिये वे कितने उपयोगी होते। ये सब नहीं भी होते, केवल जलियानवाले बाग़ की ओडायरशाही का दृश्य निश्चय ही एक बार भारतवासियों के कलेजे में भयंकर आग फूँक देता। इस आग को शांत करने के लिये कोई कभी समर्थ नहीं हो सकते। राष्ट्रीय जागृति में ये फ़िल्म कितने सहायक हो सकते हैं, यह सहज में ही प्रमाणित है।

सर सुरेंद्रनाथ बनर्जी, दादाभाई नौरोज़ी, लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले तथा स्वामी

दयानंद आदि को बहुतों ने नहीं देखा होगा। इन महापुरुषों के फ़िल्म आज भारतीय उत्थान में कितने ज़ोर देनेवाले होते! लोगों को मालूम होता कि हमारे नेता अब भी ज़िंदा हैं, और हमें आगे की ओर बढ़ने को प्रोत्साहित कर रहे हैं। चित्र खींचने के लिये फ़िल्म-कंपनियों को लाखों रुपए ख़र्च करके अच्छे-अच्छे नट और नर्तकियाँ रखनी पड़ती हैं। एक-एक फ़िल्म को खींचने के लिये कई स्थानों का भ्रमण करना पड़ता है। रुपया तो आँखें मूँदकर ख़र्च करना पड़ता है। इतना होने पर भी किसी फ़िल्म को देखने के लिये टिकट ख़रीदनेवाला भी नहीं मिलता। कितने फ़िल्म तो ऐसे मज़ेदार होते हैं कि थोड़ी-सी देर हो जाने पर टिकट ही नहीं मिलते। सामयिकता की दृष्टि से ही फ़िल्मों की उपयोगिता सिद्ध होती है। संप्रति राष्ट्रीय फ़िल्मों का प्रदर्शन बहुत ही लाभदायक होगा। मिस सुलोचना का अनोखा हाव-भाव और नृत्य-कला भारतवर्ष में वर्षों तक सिनेमा-प्रेमियों के हृदय पर अपना प्रभाव दिखाती रहेगी। सीतादेवी का चित्र भी अगणित दिनों तक हिंदुस्तानी फ़िल्मों पर मुस्किराता रहेगा। इनके साथ ही यदि कुछ ऐसे फ़िल्म भी तैयार होते, जिसमें हम सर सुरेंद्रनाथ बनर्जी को व्याख्यान-मंच पर खड़े देखते, लोकमान्य तिलक को जेल में बैठे-बैठे गीता-रहस्य को लिखते देखते, स्वामी दयानंद को वैदिक धर्म का डंका पीटते देखते, तो आज हमारे आनंद की सीमा न रहती। फ़िल्म-कंपनियों को इसमें व्यवस्था के कम ख़र्च की एक ख़ास सुविधा है। इसमें सुलोचना और सीतादेवी अपना वेतन नहीं माँग सकतीं। ऐसे समय में अब राष्ट्रीय आंदोलन के फ़िल्म ही अधिकतर बनने चाहिए।

ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड भी हमारे राष्ट्रीय संदेश का प्रचार करने में बड़े सहायक हो सकते हैं। मिस गौहरजान और दुलारीजान के दिनों का अब धीरे-धीरे लोप हो रहा है। गौहरजान अक्षय संपत्ति छोड़कर मर गई। उसकी ग़ज़ब की ग़ज़लों ने उसे गाँव-गाँव में परिचित करा दिया। देहात में ग्रामोफ़ोन की आवाज़ सुनते ही अनेक साहब निकट आकर कह बैठते हैं—"एक थाली गौहरजान की बजाइए।" इसी प्रकार कोई प्यारे साहब में मस्त हो जाते हैं, और कोई राधेश्याम को ही ढूँढ़ने लगते हैं। अपनी-अपनी तबीयत है।

ग्रामोफ़ोन के रिकॉर्ड में जान फूँकनेवाले राष्ट्रीय गीतों का बड़ा अभाव है। अब ऐसे गीतों का ही आदर होगा। इसके साथ तिलक के मुँह से "स्व-राज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।"—सुनने में कितना हर्ष होता है। गई बातों को छोड़कर अब भी महात्मा गांधी के मुँह से—"मुझे खद्दर दो, और मैं तुम्हें स्वराज्य दूँगा।" सुनने में कैसा लगेगा! इसी प्रकार अन्य नेताओं के वाक्य-संदेश भी राष्ट्रीयता के प्रचार में अमूल्य सहायता पहुँचा सकते हैं। हमारे ये रिकॉर्ड जब विदेशों में बजाए जायँगे, तब वहाँ भी भारतीयता की ही वंशी बजेगी। अमेरिका आदि देशों में अब स्कूल के चुने हुए पाठ भी रिकॉर्ड द्वारा ही पढ़ाए जाते हैं। छोटे-छोटे बच्चे उन पाठों को बड़े चाव से सुनते हैं। क़वायद (ड्रिल) के समय तो ख़ासकर रिकॉर्ड की ज़रूरत होती है। हिंदुस्तान में भी 'हिज़ मास्टर्स वॉइस' तथा 'ज़ोनोफ़ोन' आदि ग्रामोफ़ोन की कंपनियों का ध्यान इस ओर आकर्षित होना चाहिए। कुछ रिकॉर्ड तो ऐसे ख़राब हैं, जिनसे हानि के सिवा कोई भी लाभ नहीं। साथ ही ऐसे रिकॉर्डों की खपत भी ज़्यादा नहीं है, जिससे कंपनी के संचालक और भी अनर्थ करने के लिये आगे बढ़ें। यह सब तो कुछ ही इने-गिने मनचले लोगों की एक हविस है। उपदेश-प्रद राष्ट्रीय गीत और संदेश रिकॉर्डों में ख़ूब उत्साह के साथ भरे जाने चाहिए। सिनेमा में चलते-फिरते और रिकॉर्डों में बोलते हुए गांधी प्रलयकाल तक भारतवर्ष में अपने राष्ट्रीय आदर्श की रक्षा करते रहेंगे।

श्रीलक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु'



स्वास्थ्य-विज्ञान



णी-जीवन की सबसे बहुमूल्य वस्तु है स्वास्थ्य। इसके आगे धन और यश कौड़ी-मोल बिकते हैं। आप भले ही करोड़पती हों, आपकी सेवा में भले ही दर्जनों 'अप-टु-डेट' स्टाइल की मोटर-गाड़ियाँ हों, आपके ज़बान हिलाते ही भले ही सैकड़ों दास-दासियाँ दौड़ पड़ते हों, किंतु विना स्वास्थ्य के ये सब-के-सब विष-तुल्य हैं। स्वास्थ्य-रहित जीवन भार-स्वरूप है। इसके विना हम कोई भी ऐसा काम नहीं कर सकते, जिससे हमारी अक्षय कीर्ति बनी रहे। स्वास्थ्य-रहित जीवन मृत्यु से भी बढ़कर है। इसके अभाव में न तो हम ज़िंदगी के आनंद को ही भोग सकते और न अपने परिवारवालों के ही जीवन को सुख और शांतिमय बना सकते हैं। ऐसी अमूल्य वस्तु को पाने का सबसे सरल तरीक़ा है प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम करना।

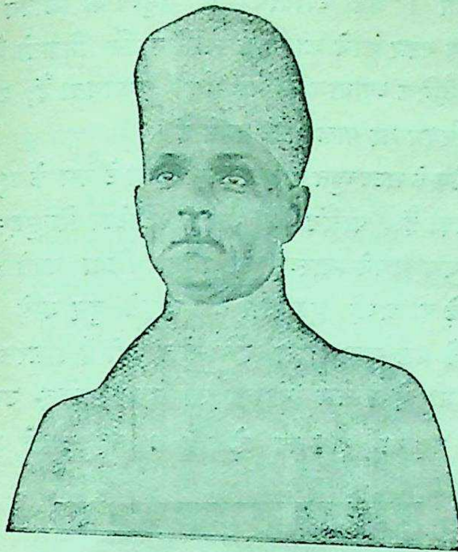
संसार के जितने बड़े-बड़े मनुष्य हैं, वे मनुष्य जिन पर संसार को नाज़ है, वे मनुष्य जो संसार की भलाई के लिये अपने प्राण को भी तुच्छ समझते हैं, वे मनुष्य जो मनुष्य-जाति की उन्नति में सर्वस्व न्योछावर करने को सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं, वे मनुष्य जिनका नाम घर-घर में व्याप रहा है, उनको दिन-चर्या पर दृष्टि डालिए। वे व्यस्त-से-व्यस्त जीवन व्यतीत करते हुए भी अपने स्वास्थ्य से उदासीन नहीं रहते, प्रत्युत वे प्रतिदिन कुछ समय अपने स्वास्थ्य की उन्नति में लगाते हैं। उनके लिये स्वास्थ्य एक ईश्वरी देन है, जिसकी रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का परम धर्म है।

भारत के हृदय-सम्राट् महात्मा गांधी प्रतिदिन केवल चरखा ही चलाकर अपना स्वास्थ्य ठीक नहीं रखते, (यद्यपि चरखा चलाना भी एक प्रकार का व्यायाम ही है) वे प्रतिदिन दो-तीन मील टहला भी करते हैं। इस नियम को वह इतनी सख़्ती से पालन करते हैं कि चाहे पानी पड़े या ठंड, वह टहलेंगे अवश्य। क्यों? क्योंकि टहलना स्वास्थ्य-रक्षा का अत्युत्तम साधन है। इसके-जैसा दूसरा कोई व्यायाम नहीं। यह सब जगह सुलभ है, सर्वथा निर्दोष है, और सभी अवस्था के मनुष्य इससे लाभ उठा सकते हैं।

पं० जवाहरलालजी नेहरू एक अच्छे Sportsman हैं। जिन दिनों यह जेल में थे, उन दिनों भी इनका सुबह का दौड़ना जारी था। कुछ लोगों का विचार है कि टहलने से दौड़ना अच्छा व्यायाम है। जवाहरलालजी घुड़सवारी भी करते हैं। इसके अतिरिक्त वह टेनिस भी अच्छा खेलते हैं।

सरदार पटेल अपने को 'किसान' कहने ही में गर्व समझते हैं। 'किसान' और 'कसरत' का कितना

घनिष्ठ संबंध है, इसे सभी भारतीय जानते हैं। सरदारजी के लिये कोसों पैदल चलना कोई भी भारी बात नहीं। महामना मालवीयजी इस गिरती हुई



महामना मालवीयजी

[आप गिरती हुई उम्र में भी अखाड़े में उतरकर किसी भी पहलवान से हाथ मिलाने या एक पकड़ लड़ने का दावा रखते हैं।]

उम्र में भी अखाड़े में उतरकर किसी भी पहलवान से हाथ मिलाने या एक पकड़ लड़ने का दावा रखते हैं।

स्वर्गीय सर सुरेंद्रनाथ बनर्जी बुढ़ापे में भी व्यायाम करते थे। डंबल उनका प्रिय व्यायाम था। उनके सुबह का आधा से एक घंटा समय स्वास्थ्य-साधन के इस कार्य में व्यतीत होता था। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, राइट ऑनरेबल सर श्रीनिवास शास्त्री भी अपना दैनिक व्यायाम किया करते हैं। विहार के मंत्री सर गणेशदत्तसिंह प्रतिदिन दो घंटे टहला करते हैं।

भारतवर्ष के राजे-महाराजों में अधिकांश व्यायाम-प्रिय होते हैं। उनके लिये घुड़सवारी करना, शिकार करना आदि आवश्यक समझे जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यस्त-से-व्यस्त भारतीय नेता और राजे अपनी स्वास्थ्योन्नति से अन्यमनस्क नहीं हैं।

अब पाश्चात्य देश की ओर दृष्टि फेरिए।

मुसोलिनी का नाम आज संसार-व्यापी हो रहा है। फ़ेसिस्ट-संप्रदाय के आप जन्म-दाता माने जाते हैं और अपने देश के भाग्य-विधाता। इनके नाम से सभी शिक्षित मनुष्य परिचित हैं। आप प्रतिदिन सुबह या तो एक घंटा पैदल टहलते या एक घंटा घोड़े की सवारी करते हैं। आपका कहना है कि पेट के स्नायुओं का व्यायाम प्रत्येक मनुष्य के लिये नितांत आवश्यक है। इन स्नायुओं के व्यायाम से पेट की कोई भी बीमारी नहीं सता सकती। इस प्रकार मनुष्य सौ में ६६ बीमारियों से बच सकता है।

संसार के सबसे अधिक धनवानों में रॉकफ़ेलर भी हैं। इनके धन तथा दान की बातें सभी ने पढ़ी या सुनी होंगी। आप इस बुढ़ापे में भी हफ़्ते में तीन दिन 'गॉल्फ़' खेलते और अपने स्वास्थ्य को ठीक रखते हैं।

हर्बर्ट हूवर अमेरिका के यूनाइटेड स्टेट्स के प्रेसी-



वेनितो मुसोलिनी

[आपका कहना है कि पेट के स्नायुओं का व्यायाम प्रत्येक मनुष्य के लिये नितांत आवश्यक है।]

डेंट हैं । इस उच्च पद पर रहकर भी आपको मछली मारने का बड़ा शौक़ है । इसलिये आप 'बंसी' और 'चारा' लेकर मीलों पैदल निकल जाते हैं।



जगत-सेठ रॉकफ़ेलर

[आप बुढ़ापे में भी गॉल्फ़ खेलते और स्वास्थ्य साधन करते हैं ।]

छुट्टी के दिनों में जंगलों में या पहाड़ों पर घूमने में ही अपना समय बिताते हैं । इनका सुबह का कुछ समय टहलने या 'वाली बॉल' खेलने में ही व्यतीत होता है ।

सम्राट् पंचम जॉर्ज को नाविक का जीवन बहुत पसंद है । आप अपने युवा-काल में नाविकों का कठोर जीवन बिताने ही में आनंद मानते थे । सैंडो को आप आदर की दृष्टि से देखते और डंबलों से आप व्यायाम भी किया करते थे । यह व्यायाम ही का प्रभाव है कि आप इस उम्र में भी राज-काज-संबंधी सभी आवश्यकीय काग़ज़ स्वयं देखते हैं ।

प्रिंस ऑफ़् वेल्स की व्यायाम-प्रियता का क्या कहना ? आपका विचार है कि मनुष्य जितना ही कड़ा व्यायाम करेगा, उतना ही अधिक उसे आनंद मिलेगा । कड़े व्यायामों से मनुष्य के जीवन में अधिक काम करने की शक्ति तथा स्फूर्ति मिलती है। आप दैनिक व्यायाम के बड़े भारी हिमायती हैं, और इस नियम का पालन भी करते हैं ।

स्पेन के राज्यच्युत बादशाह एलफ़ेंसो टेनिस के अच्छे खिलाड़ी हैं । पोलैंड के भूतपूर्व डिक्टेटर पिल्सुद्स्की सर्वप्रथम अपने स्वास्थ्य की चिंता किया करते हैं। ये बड़े ही अच्छे घुड़सवार हैं । दौड़ते हुए घोड़े पर सिर के बल खड़ा रहना हँसी-खेल नहीं है । सरकस-वाले भी ऐसा खेल नहीं दिखा सकते, किंतु उनके लिये यह बाएँ हाथ का खेल है । वह दौड़ते हुए



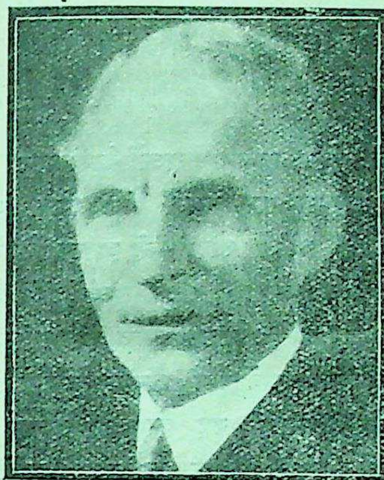
स्पेन के राज्यच्युत बादशाह एलफ़ेंसो

[आप टेनिस के अच्छे खिलाड़ी हैं ।]

घोड़े की ज़ीन के रकाब में पैर लगाकर इस प्रकार

लटक जाते हैं कि सिर प्रायः ज़मीन से छूने लगता है। उनका विश्वास है कि इस प्रकार के व्यायाम से मनुष्य के शरीर के सभी अंग चुस्त बन जाते हैं, और वह किसी भी काम के लिये तैयार हो जाता है।

फ़ोर्ड मोटर-गाड़ी के कारण हेनरी फ़ोर्ड का नाम प्रसिद्ध हो गया है। आप प्रतिदिन मीलों टहलकर अपना स्वास्थ्य ठीक रखते हैं। आप साधारण मनुष्यों



हेनरी फ़ोर्ड

[आप टहलकर अपनी तंदुरुस्ती ठीक रखते हैं।]

के लिये टहलना सर्वोत्तम व्यायाम मानते हैं। "टहलने से मनुष्य का मस्तिष्क तुरत तरोताज़ा हो जाता है। निरंतर टहलने से शरीर को हरएक मांस-पेशी का व्यायाम हो जाता है।"

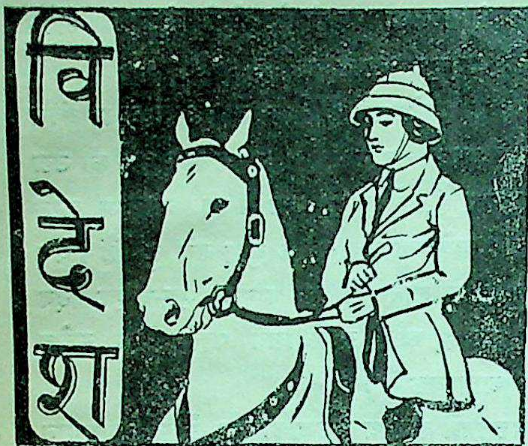
रूस के साम्यवादी नेता ट्राट्स्की स्वास्थ्य को ही जीवन मानते हैं। स्वास्थ्य-रहित मनुष्य न तो अपनी ही भलाई कर सकता है और न मनुष्य-समाज ही की। ट्राट्स्की ने अपने कमरे में एक Rowing Machine लगा रक्खी है, जिसे लेकर वह अपने पुट्ठों को मज़बूत बनाया करते हैं।

सिनेमा देखनेवालों के लिये डोगलॉस फ़ेयर बैंक्स का नाम अपरिचित नहीं है। यह पचास वर्ष की उम्र में भी युवा हैं। ये छोटी उम्र से ही व्यायाम करते हैं। इसीलिये यह ५० वर्ष के युवा बने हुए हैं। यह आरंभ ही से जानते थे कि मनुष्य एक-न-एक दिन बूढ़ा होता है, और इसके लिये पहले ही से सचेत रहना आवश्यक है।

लिंडनबर्ग सर्वप्रथम उड़ाका था, जिसने वायुयान द्वारा एटलांटिक समुद्र को एक ही उड़ान में पार किया। उसका कहना है कि वायुयान द्वारा उड़ना व्यायाम, खेल और व्यवसाय है। इसी व्यायाम का वह आदी है, और इसी में उसे आनंद मिलता है।

ऐसे लाखों उदाहरण दिए जा सकते हैं। संसार के सभी बड़े-बड़े मनुष्य अपनी स्वास्थ्य-चिंता में लगे हैं, किंतु इस देश के कितने नवयुवक अपना दैनिक व्यायाम किया करते हैं? इसका उत्तर उनकी झुकी हुई छाती, चिपटे हुए गाल, टेढ़ी कमर, ज्योति-हीन चेहरा, असमय में उपस्थित होनेवाला वार्धक्य, अकाल मृत्यु आदि देते हैं। प्रत्येक मनुष्य के लिये जीवन का एक अर्थ या उद्देश्य होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति कितने नवयुवक करते हैं? जिनमें अधिकांश कुत्ते, बिल्ली या कीड़ों की तरह मृत्यु को प्राप्त होते हैं। वे जीवन का उद्देश्य क्योंकर पालन कर सकते हैं? जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिये शरीर का दृढ़ होना आवश्यक है। जिनका शरीर दृढ़ होगा, उनका मस्तिष्क भी उन्नत होगा। इसलिये नियमित व्यायाम कर अपने को जीवन-संग्राम के उपयुक्त बनाना प्रत्येक मनुष्य का धर्म होना चाहिए।

श्रीरमेशप्रसाद (बी० एस्-सी०)



१. अमेरिका की रुई



जीवादी व्यापार-प्रणाली इस समय बड़े संकट में है। व्यापार में निरंतर पतन देखते हुए यही कहना पड़ता है कि यदि यही दशा रही, तो कुछ ही समय में व्यापार का वर्तमान ढाँचा बैठ जायगा। जब व्यापार तथा उद्योग नहीं सँभलता, ज़रूरत से ज़्यादा उत्पत्ति हो जाती है, तो उत्पन्न पदार्थ को नष्ट करके समस्या सुलझाने का प्रयास किया जाता है। लंदन के टाइम्स-पत्र के १६ अगस्त के अंक में यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि प्रत्येक राष्ट्र बाहर से आनेवाले रबर पर आयात कर लगाना चाहता है। यह आयात कर पैसे के रूप में नहीं लिया जायगा। स्वतः रबर ही ले लिया जायगा। सरकार ज़कात के रूप में रबर बटोरेगी, और उसमें से जितना उसके काम आवेगा, रखकर, बाक़ी जला डालेगी, नष्ट कर डालेगी। कितने श्रम से उत्पन्न किए हुए पदार्थ का यह भविष्य होगा! इस प्रकार रबर की समस्या सुलझाई जायगी।

इसी उदाहरण को लेते हुए मि० फ्रेड हेंडरसन ने एक लेख लिखा है। उसमें आप अमेरिका की रुई का ज़िक्र करते हैं। आप लिखते हैं—"संसार अमेरिका में उत्पन्न रुई की १३० लाख गाँठ ख़रीदता है, किंतु अमेरिका के रुई उत्पादक १४ राज्यों के किसान उससे भी ज़्यादा पैदावार कर सकते हैं। किंतु, यदि वे ज़्यादा पैदा कर भी लें तो, उन्हें ज़्यादा बेचने की इजाज़त नहीं दी जाती। संयुक्त-राज्य अमेरिका की सरकार ने रुई की अधिक उत्पत्ति की समस्या को रोकने के लिये अपने यहाँ केंद्रीय कृषि-बोर्ड की स्थापना की है। इसका यह काम ही होता है कि उत्पादकों से अधिक 'माल ख़रीदकर' अपने यहाँ 'अच्छा समय' आने की उम्मीद यों रख छोड़ना! मौक़ा आने पर वह चीज़ बाज़ार में छोड़ी जा सकती है। इस प्रकार, एकत्रित होते-होते, इस बोर्ड के पास, जुलाई के अंत तक, १३० लाख गाँठ रुई एकत्रित हो गई थी। २० लाख गाँठ इसी बोर्ड की शाखा 'रुई-सहकारिता-संघ' के यहाँ जमा थी।

"एक ओर इतना माल विना बिके पड़ा है, दूसरी ओर १५० लाख गाँठ की फ़सल फिर पैदा हुआ चाहती है। यानी इसी साल संसार की दो वर्ष की ज़रूरत का माल तैयार है। इसीलिये सरकार बहुत परेशान है। केंद्रीय सरकार ने सभी राज्यों के गवर्नरों के पास तार द्वारा सूचना दी है कि किसी तरह मौजूदा फ़सल को पैदा होने से ही रोक दो, अन्यथा रुई का भाव पानी से भी गिर जायगा।"

इस पर 'टाइम्स'-पत्र का कहना है—"यह बात असंभव है। अर्थशास्त्री कितनी भी बहस करें,

साधारण किसान फ़सल पैदा करने से नहीं रुक सकता। इसीलिये अब बैंकों की सहायता ली जा रही है। उनसे कहा जा रहा है कि खेती के लिये किसानों को क़र्ज़ न दें। इसलिये रुई का भविष्य अब बैंक-स्वामियों पर निर्भर करता है। जिस सीमा तक वे किसानों को खेती करने से रोक सकेंगे, वे रुई का भाव बचा सकेंगे।"

× × ×

२. कच्चे माल के लिये युद्ध

"पूँजीवाद द्वारा युद्ध होता है। केवल माल बेचने के लिये, बाज़ार प्राप्त करने के लिये, उसके मुनाफ़े के लिये या व्यापार में पूँजी लगाने के ही लिये नहीं, किंतु केवल कच्चे माल बेचने के लिये विश्व-व्यापी युद्ध हो रहा है।" इन शब्दों में डेवेर एलेन ने एक सुंदर लेख लिखकर यह प्रमाणित किया है कि इस समय संसार की सारी अशांति कच्चा माल हथियाने के लिये हो रही है। आप लिखती हैं—"१६२१-२३ तक का रबर-युद्ध अभी तक लोगों को याद है। अब भी यह चल रहा है। लाइबेरिया में अब भी अमेरिकन ब्रिटिश तथा डच एकाधिकार को चुनौती दे रहे हैं। इसी के परिणाम-स्वरूप अमेरिका-ब्रिटेन के बीच शस्त्रीकरण-युद्ध छिड़ गया है।

"धातु की ओर ही दृष्टि डालिए। संयुक्त राष्ट्र संसार में उत्पन्न होनेवाले ताँबे का आधा उत्पन्न करता है। जो पद आज अमेरिकनों का है, वही इँगलैंड का कुछ समय पूर्व था। संसार का तीन-चौथाई लोहा चार देशों के हाथ में है--संयुक्तराज्य अमेरिका, जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन और फ़्रांस।

"संसार के तैल-कोषों लिये ब्रिटिश तथा अमेरिकन हितों में संघर्ष एक दूसरा ही उदाहरण है। संसार-भर के निजी तथा स्वार्थी कार्यों के लिये सरकारी सहायता प्राप्त करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। विदेशी व्यापार तथा पूँजी से रक्षा प्राप्त करने के लिये प्रत्येक बड़े व्यापारी सरकारी सहायता के लिये दौड़ पड़ते हैं। सोचने की बात है कि अगर आज संसार का कच्चा माल जनता के ही हाथों में आ जाय, तो कितनी शांति स्थापित हो जायगी।"

× × ×

३. साइप्रस की क्रांति

हिंदुस्तान टाइम्स में प्रोफ़ेसर बी० एन्० शर्मा ने एक बड़ा सारगर्भित लेख लिखकर यह बतलाया है कि साइप्रस में क्रांति का क्या कारण है, उसका आरंभ क्यों हुआ? आप लिखते हैं—"साइप्रस की राजधानी तथा मुफ़स्सिल के कई क़स्बों में कई दुःखद घटनाएँ हो जाने के कारण साइप्रस की राजनीतिक पद-महत्ता की ओर ब्रिटिश राजनीति का ध्यान आकर्षित हो गया है।" जो लोग इस द्वीप की राजनीतिक स्थिति नहीं जानते तथा यहाँ के निवासियों की महत्त्वाकांक्षा नहीं जानते, वही यहाँ पर ब्रिटिश सेना के बल पर स्थापित शांति को स्थायी समझ सकते हैं। साइप्रस के इतिहास में घटित कुछ घटनाओं का साधारण पर्यवेक्षण ही हमें यहाँ की स्थिति का ज्ञान करा सकता है।

साइप्रस का द्वीप क्षेत्रफल में ३,५८४ वर्ग-मील है। भूमध्य-सागर के द्वीपों में इसका नंबर सिसली तथा सार्डिनिया (इटली राज्य में) के नीचे है। १६२१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इसकी आबादी ३१०,७०१ थी। १६३१ की संख्या तो मालूम नहीं है, पर १६२८ की मई में ऐसा अनुमान लगाया गया था कि वह बढ़कर ३४४,०२० हो गई है, जिसमें से ६४,००० मुसलमान हैं, इसके अलावा सभी ईसाई हैं।

ईसवी सन् १५७१ तक यह वेनिस-साम्राज्य के अधीन था। उसके बाद सुलतान की हुकूमत में आ गया, और १८७८ तक टर्की के सुलतान का यहाँ शासन रहा। १८७८ में सैन स्टिफ़ानो की संधि के कारण तुर्कों को आर्मीनिया का अधिकांश भाग रूस के सुपुर्द कर देना पड़ा। इसी साल टर्की से तथा ग्रेट ब्रिटेन से यह संधि हो गई कि एशिया में टर्की का जो कुछ साम्राज्य है, उसकी रक्षा की ज़िम्मेदारी ग्रेट ब्रिटेन

ले तथा इसके बदले वह भूमध्य-सागर में टर्की का साइप्रस ले ले । इस प्रकार साइप्रस टर्की-साम्राज्य का अंग होते हुए भी ब्रिटिश-शासन में आ गया ।

स्वाधीनता की माँग

ब्रिटेन के हाथ में आते ही यहाँ के निवासी यूनानी, जो ८० प्रतिशत हैं, स्वाधीनता के लिये ज़ोर लगाने लगे । परिणामतः १८८२ में यहाँ के प्रधान शासक ब्रिटिश हाइ कमिश्नर की सहायता के लिये व्यवस्थापक सभा का निर्माण किया गया, जिसमें ६ सरकारी प्रतिनिधि तथा १२ ग़ैर सरकारी प्रतिनिधि थे । सांप्रदायिक निर्वाचन का फल मुसलमानों को दिया गया, तथा १२ प्रजा के प्रतिनिधियों में से ३ मुसलिम मत से चुने गए थे । १९१४ में महासमर छिड़ा, और साइप्रस पर टर्की का रहा-सहा हक़ भी मारा गया । १९१६ में ब्रिटिश सरकार ने ग्रीक (यूनान)-राज्य को इस शर्त पर साइप्रस लौटा देने का वादा किया कि अगर वह महासमर में ब्रिटेन का साथ देने को तैयार हो जाय । १९१६ में यूनान से जो कहा गया था, वह बात वापस ली गई, और ब्रिटेन ने यह स्वीकार किया कि विना फ़्रांस की रज़ामंदी के वह साइप्रस का भाग्य-निर्णय नहीं करेगा । महासमर के बाद साइप्रस पर यूनानी हक़ को रोकना कठिन हो जाता, पर उस समय के ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० लायड जॉर्ज ने बड़ी चालाकी से एशिया में स्मर्ना तथा थ्रेस (तुर्की राज्य) पर ग्रीक हक़ का समर्थन कर उनका ध्यान साइप्रस से हटा दिया । मुस्तफ़ा कमालपाशा ने स्मर्ना-थ्रेस से ग्रीस को मार भगाया, इधर साइप्रस भी हाथ से गया ! ! !

साइप्रस में गवर्नर

१९२६ में इस द्वीप का पद बढ़ाकर क्रांउन-कोलोनी कर दिया गया, तथा हाइ कमिश्नर गवर्नर बना दिए गए । इस समय की शासन-प्रणाली १९२५ की ही है । गवर्नर की एक शासन-समिति है, जिसमें चार सरकारी तथा तीन ग़ैर सरकारी मेंबर होते हैं । तीन ग़ैर सरकारियों में से एक मुसलमान होता है । व्यवस्थापक सभा में २४ सदस्य होते हैं, ९ नामज़द तथा १५ निर्वाचित । १५ निर्वाचितों में से १२ ग्रीक तथा ३ मुसलमान होते हैं । इसलिये हम देखते हैं कि यद्यपि नवीनता पद की यही है कि सरकारी तथा ग़ैर सरकारी सदस्यों को शासन-समिति में एक कर दिया गया है, फिर भी ग़ैर सरकारी सदस्यों की शक्ति ६६ प्रतिशत से घटाकर ६२ प्रतिशत कर दी गई है । सरकार ने यूनानियों को ख़ुश करने के लिये २५ प्रतिशत मुसलिम प्रतिनिधित्व को घटाकर २० प्रतिशत कर दिया । किंतु इससे यूनानी संतुष्ट न हुए, और उनकी स्वाधीनता की प्यास बढ़ती ही जाती है ।

पृथक्करण की माँग

जुलाई, १९२९ में, व्यवस्थापक सभा के १२ निर्वाचित सदस्यों ने अपने हस्ताक्षर से एक आवेदन-पत्र अपने कोलानियल सेक्रेटरी के पास भेजा कि "साइप्रस-निवासी ब्रिटिश-साम्राज्य में संबंध त्यागना चाहते हैं, यदि वह न हो सके, तो वहाँ ज़िम्मेदार शासन-प्रणाली स्थापित की जाय, साम्राज्य-सरकार को ९२,०० पौंड की जो सालाना चौथ दी जाती है, वह रद्द की जाय, तथा १९१४ के बाद से जो रक़म इस मद में सरकार को चुकाई गई है, वह वापस कर दी जाय ।" इसी माँग को लेकर लंदन में लॉर्ड पासफ़ील्ड के पास एक डेपुटेशन भी गया । आप ही कोलोनियल सेक्रेटरी थे । आपने जनता की माँग पर विचार करने का वादा किया ।

इस द्वीप को ब्रिटिश सरकार को जो रक़म देनी पड़ती है, उसके कारण रक्त ख़ूब चुस जाता है, और उसे इस बात का अभाग्य प्राप्त रहता है कि जो रक़म देश की समस्याओं को हल करने में बहुत कुछ हाथ बँटा सकती थी, वह ब्रिटेन के पास चली जाती है । सन् १९१४ के बाद से वह अब तक ३०,००,०००) रुपए ब्रिटिश ख़ज़ाने में दे चुकी है । कोलडोनियल सेक्रेटरी का कहना है कि साइप्रस

टर्की साम्राज्य का एक अंग है। अतः महासमर के पूर्व टर्की की सरकार का जो राष्ट्रीय क़र्ज़ ग्रेट ब्रिटेन के प्रति है, उसे चुकाने की ज़िम्मेदारी उसकी भी है। अतएव उसी क़र्ज़े का एक भाग साइप्रस से चुकता कराया जा रहा है। कुछ समय के लिये साइप्रस के चीफ़ सेक्रेटरी कैप्टेन ओर थे। आपकी राय है कि टर्की का क़र्ज़ा ब्रिटेन अपने ही राष्ट्रीय बजट में से भुगते। जनता बहुत ग़रीब है, और उस पर इतना बोझा लादना ठीक नहीं है। किंतु ब्रिटिश सरकार के पास तो केवल एक बहाना है। उसने इनकी माँग को इस बुनियाद पर नामंज़ूर कर दिया कि साइप्रस अभी तक प्रजातंत्र का भार नहीं वहन कर सकता।

मुसलिम-विश्वासघात

जिस मुसलिम साम्राज्य के हाथ से साइप्रस छीना गया, जिस साम्राज्य ने टर्की के साथ इतना विश्वासघात किया, उसी साम्राज्य के साथ हम द्वीप की व्यवस्थापक सभा के सदस्य सहयोग कर रहे हैं। तीन मुसलमान मेंबरों के मिल जाने के कारण सरकारी ९ नामज़द मेंबर इतने काफ़ी बलशाली हैं कि निर्वाचित १२ यूनानी-ग्रीक मेंबर व्यवस्थापक-मंत्र को तोड़ नहीं सकते, पर स्वराज्य पार्टी की तरह उनकी अड़ंगा-नीति ज़बर्दस्त है।

अस्तु। अंत में ब्रिटिश सरकार ने साफ़ शब्दों में साइप्रस का पृथक्करण अस्वीकृत कर दिया। इस अस्वीकृत से साइप्रस-निवासी ग्रीक जनता में बड़ी अशांति फैली है। प्रसिद्ध ग्रीक नेता, ज़ेनोन रोसिडे, का कहना है कि इससे ग्रीक बर्न और भी प्रोत्साहित होकर कार्य करेगा। आपने बतलाया है कि बर्न में १९१९ में मज़दूर-नेता मि० मैकडॉनेल्ड ने अपने व्याख्यान में कहा था कि यदि मज़दूर-दल के हाथ में शासन आया, तो वे साइप्रसवालों पर ही इसका निश्चय करना छोड़ देंगे कि आया वे ब्रिटिश-साम्राज्य के अंतर्गत रहेंगे या अलग। पर मज़दूर-शासन में ही साइप्रस की जनता की महत्त्वाकांक्षा ठुकराई जा रही है।

अस्तु। अंत में, ऊबकर, स्वाधीनता के प्रेमातिरेक में ग्रीक सशस्त्र क्रांति कर बैठे, जिसे बड़ी क्रूरता के साथ फ़िलहाल दबा दिया गया है।

× × ×

४. ब्रिटिश-चुनाव

२७ ऑक्टोबर को ग्रेट ब्रिटेन में जो निर्वाचन हुआ है, जिसमें अनुदार-दल बड़ी शान से जीत गया है, उसके विषय में क्या कहा जाता है, यह कुछ शब्दों में हम पाठकों को भी बतलाना चाहते हैं। यह तो सभी जानते हैं कि मज़दूर-दल के पास चुनाव की लड़ाई लड़ने के लिये रुपया या समाचार-पत्र नहीं है।

अनुदार-दल के पास बड़ा धन है, बड़ा सुंदर संघटन है। वह तूफ़ान बर्पा कर सकता है। अस्तु।

मैंचेस्टर गार्जियन—मैंचेस्टर का दैनिक—कहता है—"हमारे सामने यह सबसे कम समय में लड़ा हुआ, सबसे विचित्र और दग़ाबाज़ चुनाव रहा है।...... जिस समय देश को देश-प्रेम का उफान कम होगा, वह काँप उठेगा। अपनी रक्षा की झोंक में उसने गत ३० वर्ष के भीतर सबसे रद्दी सदस्य हॉउस ऑफ़् कामंस में भर दिया है।"

श्रीबर्नार्ड शॉ—"मि० मैकडॉनेल्ड बड़े बुरे दिल के आदमी हैं। वह कभी ईमानदारी से बोलेंगे। वह केवल एक जहाज़ (मज़दूर) से उतरकर दूसरे जहाज़ (अनुदार) पर चले गए हैं।"

मि० एच्० मौरिसन—"यह चुनाव नहीं था, क़त्ले-आम था।"

जॉर्ज लांसबरी—"झूठी बातें फैलाने से अनुदार-दल जीता है।"

आर्थर हेंडरसन—"प्रजातंत्रीय पार्लियामेंटीय निर्वाचन का मज़ाक़।"

मि० क्लाइंस—"सरासर बेईमानी तथा फ़रेब से यह चुनाव हुआ है।"

इसी प्रकार इस निर्वाचन के विषय में मत हैं।

परिपूर्णानंद वर्मा



१. कविता

युगल-जोड़ी—वर्तमान हिंदी-संसार स्वर्गीय लाला भगवानदीनजो 'दीन' से परिचित ही है । उनका साहित्यिक कार्य उन्हें अब भी जीवित रक्खे हुए है, और सदा जीवित रक्खेगा। लालाजी से हमारा भी बहुत बड़ा घनिष्ठ परिचय था। उनके निवास-स्थान के समीप ही हमारा संबंध होने के कारण वह हमें छोटे भाई की भाँति मानते थे। लालाजी का स्वभाव बड़ा ही सौम्य था, हृदय उनका सरस, भावुक और सरल था।

प्रस्तुत पुस्तक को देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीकृष्णकुमारजी सक्सेना का यह कार्य सर्वथा सराहनीय है । पुस्तक में लालाजी की जीवनी पर्याप्त विस्तार के साथ दी गई है, जिससे हिंदी-संसार को लालाजी का पूर्ण परिचय मिल जाय। इसी के साथ उनकी धर्मपत्नी (जो बड़ी सुंदर कविता करती थीं) की भी जीवनी दी गई है। साथ ही दोनो की कुछ चुनी हुई कविताओं पर आलोचनात्मक शैली से प्रकाश डालते हुए लेखक ने स्वर्गीय दंपति के काव्य-सौंदर्य का चित्र चित्रित किया है, जो बहुत ही मनोरम और मनोरंजक है।

अच्छा हो, यदि इसी प्रकार 'दीन-ग्रंथावली' नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की जाय, अथवा इसी को उस रूप में परिवर्तित कर दिया जाय। यह पुस्तक भी अवलोकनीय और प्रशंसनीय है। यहाँ हम लालाजी के काव्य की आलोचना स्थानाभाव से नहीं कर सकते। सूत्र-रूप में केवल यही कहते हैं कि लालाजी का आधुनिक कवियों में अच्छा स्थान था। उनकी रचनाएँ काव्य-गुण से समलंकृत और ऊँचे दर्जे की हैं। पुस्तक का आकार-प्रकार रुचिर-रोचक है। पृष्ठ-संख्या ११२ ; छपाई-सफ़ाई अच्छी है। उत्तम और साधारण संस्करणों के मूल्य क्रमशः १२ आने और १० आने हैं। पुस्तक को कृष्णकुमारलाल, पत्थर हवेली, मुहल्ला भूड़, बरेली से प्राप्त करके हिंदी-प्रेमियों को अवश्य देखना चाहिए।

श्रीरामचंद्र शुक्ल 'सरस'

× × ×

२. इतिहास-भूगोल

देवी वीरा—लेखक, श्रीसुरेंद्र शर्मा ; प्रकाशक, शारदा-सदन, प्रयाग; मूल्य १॥)

वेरा फ़िगनर एक प्रसिद्ध रूसी क्रांतिकारिणी महिला थीं । कार्लमार्क्स तथा अन्य साम्यवादी लेखकों ने जिन सिद्धांतों का रूस में प्रचार करना प्रारंभ किया था, उन्हीं को लेकर, किंतु उनसे कुछ आगे बढ़कर, ज़ार के अत्याचारी शासन से देश को छुड़ाने के लिये देवी वीरा ने अपने पति का त्याग किया, डॉक्टरी डिप्लोमा छोड़ा, बहन को फाँसी लगते देखा, ज़ार की हत्या में अपने प्राणों की बाज़ी लगाई, और अंत में उसे मारकर ही दम ली। किंतु अपने

एक देशद्रोही साथी के चुग़ली खाने पर वह पकड़कर जेल भेज दी गईं। वहाँ उन्हें नग्न तक किया गया, सब प्रकार की यंत्रणाएँ दी गईं, किंतु तो भी उन्होंने अपने धैर्य को नहीं छोड़ा। आजन्म काले पानी की सज़ा दी गई, किंतु वहाँ भी उन्होंने मनुष्योचित अधिकारों के लिये भीषण सत्याग्रह करना प्रारंभ किया, और अंत में क़ैदियों के लिये पर्याप्त सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। ऐसे अध्यवसाय तथा साहस का जीवन वास्तव में प्रत्येक देश-भक्त के लिये उत्तम आदर्श उपस्थित करता है। प्रत्येक युवक को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए।

अँगरेज़ी से अनुवाद किए जाने के कारण पुस्तक की भाषा कुछ बेमुहावरे तथा ऊबड़-खाबड़-सी हो गई है। आशा है, अगले संस्करण में यह कमी दूर कर दी जायगी।

सुधींद्र वर्मा (एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

भारतवर्ष का भूगोल—भूगोल का विषय, प्रायः देखा जाता है, बालकों के लिये बड़ा नीरस-सा होता है। वास्तव में यह विषय ऐसा है नहीं। इसमें मनो-रंजन की पर्याप्त सामग्री है, यदि उस सामग्री का उचित उपयोग रुचिर भाषा और रोचक शैली से किया जाय। भूगोल की पुस्तकों में प्रायः ऐसा नहीं किया जाता। भूगोल का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना अत्युपयोगी और आवश्यक है। विशेषतया अपने देश का भौगोलिक ज्ञान तो अनिवार्य ही ठहरता है। श्रीपं० रामनारायणजी मिश्र ने इस भूगोल को इन्हीं बातों का ध्यान रखते हुए बड़ी सफलता-पूर्वक लिखा है। पुस्तक सर्वथा रोचक और उपादेय है।

भूगोल का वास्तविक ज्ञान पर्यटन से ही होता है। मिश्रजी ने देश में पर्याप्त भ्रमण द्वारा अनुभव प्राप्त करते हुए इसे और भी अधिक वास्तविक और उपयोगी कर दिया है। इसलिये न केवल विद्यार्थी ही इससे लाभ उठा सकते हैं, बरन् इतर जन भी, जिन्हें भूगोल के विषय में अनुराग है, मनोरंजन पा सकते हैं। विद्यार्थियों को प्रायः जो-जो कठि-नाइयाँ इस विषय के अध्ययन में पड़ती हैं, उनको ओर भी लेखक महाशय ने पूर्ण ध्यान दिया है। वह स्वतः इस विषय के अध्यापक हैं, और इसलिये उन्हें और भी पूरा अनुभव है। यदि ऐसे ही अनुभवी और अपने विषय के पंडित जन विद्यार्थियों के लिये पाठ्य पुस्तकें तैयार करें, तो ठीक हो, किंतु ऐसा प्रायः कम होता है।

पुस्तक की भाषा भी सुंदर और रोचक है, शुद्ध हिंदी है। इसमें जटिलता नहीं, लेखन-शैली भी निबंधात्मक और बोधक (Teaching) है। उसमें स्पष्टता, सरलता और स्वाभाविकता है। भूगोल से संबंध रखनेवाले अन्य विषयों की भी आवश्यक बातों पर इसमें ध्यान दिया गया है। स्थान-स्थान पर चित्रों के द्वारा विषय में साकारता एवं सजीवता लाई गई है। इससे पुस्तक की सुंदरता तो बढ़ी ही है, विषय भी पढ़नेवालों के लिये प्रत्यक्ष-सा हो गया है। कहीं-कहीं रंगीन चित्र भी दिए गए हैं, जो विद्यार्थियों के लिये समाकर्षक और उप-योगी हैं।

व्यापारिक दशा पर भी बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है। देश की उपज (खनिज, उद्भिज्ज आदि), पशु-पक्षी, कला-कौशल, भाषा-भेद, जाति-भेद आदि का सचित्र वर्णन बड़ा ही रोचक और उपयोगी है।

प्रथम सामूहिक रूप से देश की भौगोलिक अवस्था पर प्रकाश डालकर, उसके फिर विभिन्न विभागों का वर्णन किया गया है। जल-वायु, मनुष्य, वेश-भूषा, भाषा, रहन-सहन, पेशे, मार्ग और नगर आदि सभी आवश्यक विषय ले लिए गए हैं। दर्शनीय स्थानों और उनकी प्रसिद्ध इमारतों का भी सचित्र वर्णन किया गया है। प्रत्येक प्रांत की नागरिक और देहाती दशा पर भी उचित प्रकाश डाला गया है।

अंत में, परिशिष्ट के रूप में, अनेक ज्ञातव्य बातों का समावेश तालिकाओं के रूप में किया गया है, जिससे पुस्तक की उपयोगिता दूनी हो गई है। हमारी समझ

में पुस्तक अपने ढंग की अकेली है, क्योंकि अब तक, जहाँ तक हम जानते हैं, हिंदी में इस विषय की इस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक शैली से लिखी गई दूसरी पुस्तक नहीं। इसलिये हम मिश्रजी को हार्दिक बधाई देते हैं। हाँ, प्रूफ़-संबंधी जो कुछ अशुद्धियाँ इस संस्करण में रह गई हैं, अगले में दूर हो जायँगी, यह हमें आशा है। पुस्तक का आकार-प्रकार, रूप-रंग, छपाई-सफ़ाई आदि सभी बातें आकर्षक और सुंदर हैं। ४०४ पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक का जो अनेक चित्रों से सजी हुई है, मूल्य केवल २) ही है, जो उसकी संपूर्ण सामग्री को देखते हुए बहुत ही कम है।

शिक्षा-विभाग को इसी प्रकार की पुस्तकें स्वीकृत करनी चाहिए। प्रसन्नता का विषय है कि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन ने अपने यहाँ इसे स्वीकृत कर लेखक को प्रोत्साहित किया है, और अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है। हमें विश्वास है कि पुस्तक का अच्छा समादर और प्रचार होगा। "भूगोल-कार्यालय, प्रयाग" इस पुस्तक का प्रकाशक है, और वहीं से यह प्राप्य भी है।

श्रीरामचंद्र शुक्ल 'सरस'

× × ×

३. स्वास्थ्य-व्यायाम-योग

स्वास्थ्य की कुंजी—लेखक, डॉक्टर बाबूराम गर्ग, एल्० एम्० पी०; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या १८६; मूल्य १।)

स्वास्थ्य-रक्षा का विषय कितना महत्त्व-पूर्ण है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। तंदुरुस्ती के नियमों का ठीक-ठीक ज्ञान न रहने से भारत-वासियों की औसत उम्र इतनी कम हो गई है। इसलिये स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी ज्ञान का जितना भी प्रचार हो, थोड़ा है। इस विषय पर यों तो हिंदी में अनेक पुस्तकें निकल चुकी हैं, परंतु उनमें अच्छी और वस्तुतः लाभदायक पुस्तकों की संख्या बहुत थोड़ी है। आलोच्य पुस्तक बहुत अच्छे ढंग से लिखी गई है। नीरोग रहने के लिये जिन-जिन बातों का जानना मनुष्य के लिये आवश्यक है, वे सब बड़ी सरल भाषा में और रोचक ढंग से इसमें लिख दी गई हैं। पुस्तक उपयोगी और उपादेय है।

× × ×

योग-दर्पण—लेखक, कन्नोमल एम्० ए०; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; मूल्य सादी प्रति १)

योग आर्य ऋषियों की आविष्कृत पवित्र विद्या है। भारत के योगियों का किसी समय सारे संसार में डंका बज चुका है। सांसारिक चिंताओं, मानसिक व्याधियों और पाप-ताप से पीड़ित व्यक्तियों को योग से ही शांति मिल सकती है। भव-सागर से पार उतरने का योग-साधन के बिना और दूसरा उपाय नहीं। पश्चिमी जगत् भी आज भोगवाद से तंग आकर आत्मिक शांति की तलाश में योग, योग की पुकार कर रहा है। अनेकों जिज्ञासु पुरुष और स्त्रियाँ अमेरिका और योरप से भारत में आकर योग-साधन सीखने के लिये योगियों की तलाश में वनों और पर्वतों में मारी-मारी फिर रही हैं। सचमुच योग की बड़ी महिमा है। "योग-साधनों के सीखने और अभ्यास करने से शरीर, मन और बुद्धि, इन तीनो की शक्तियों का विकास होता है, जिससे आपकी स्वास्थ्य-वृद्धि, नीरोगता, दीर्घायुता ही नहीं होती, बल्कि आपका उन मानसिक शक्तियों पर अधिकार हो जाता है, जिनके द्वारा आप घर बैठे सब जगह का हाल जान लो, अन्य देशों के रमणीक दृश्य देख लो, संगीत-

शालाओं के मधुर गान सुन लो, देव-वन-वाटिकाओं के पुष्पों की सुगंध सूँघ लो, नाना प्रकार के अन्य स्थानीय पदार्थों का स्वाद चख लो, और उष्ण देश में बैठे शीत देश की शीतल समीर का स्पर्श कर लो।" विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में योग के संबंध में बहुत उपयोगी सामग्री एकत्र कर दी है। पुस्तक के तीन भाग हैं। पहला भाग भूमिका है। उसमें पतंजलि मुनि के जीवन-चरित्र-संबंधी बातें, योगदर्शन के मुख्य-मुख्य सिद्धांत, सांख्य और योग का संबंध, योग-संबंधी पुस्तकों की सूची इत्यादि बहुत-सी उपयोगी और जानने योग्य बातें लिखी गई हैं। दूसरे भाग में श्रीपातंजल योगदर्शन का अनुवाद और व्याख्या है। तीसरा भाग परिशिष्ट है। उसमें सांख्य-शास्त्र के पचीस तत्त्व, चित्त-विवरण, शोधन-विचार, आसन और मुद्राएँ, नाड़ीचक्र, प्राणायाम और स्वरोदय, भुवनज्ञान और स्फोटवाद ये सात आवश्यक विषय दिए गए हैं। योग-संबंधी इतनी बातें किसी एक ही पुस्तक में मिलनी कठिन हैं। यद्यपि अच्छे गुरु के बिना योग-साधन में सफलता होना कठिन है, तो भी योग-विद्या में रुचि रखनेवाले जिज्ञासुओं और अभ्यासियों के लिये यह पुस्तक अच्छी लाभदायक सिद्ध होगी।

संतराम (बी० ए०)

× × ×

गर्भाधान-रहस्य—लेखक श्रीडॉक्टर रामनारायण; प्रकाशक, संतति-रहस्य-ऑफ़िस, मनीराम की बगिया, कानपुर। दोनों भागों का मूल्य ४॥)

कामशास्त्रों और रतिशास्त्रों के इस युग में 'गर्भाधान-रहस्य'-जैसी उपदेशप्रद तथा सभ्य पुस्तक का हम हार्दिक अभिनंदन करते हैं। विचित्र ८४ समागम के प्रकारों के विशद वर्णन का इसमें एकांत अभाव वास्तव में बड़ा ही उत्तम है। नैतिक दृष्टि से इन आसनों का प्रयोग अत्यंत गर्हित तथा हेय है, किंतु विषयानंद अथवा पारस्परिक सुगमता की दृष्टि से उनका जानना भी कभी-कभी आवश्यक होजाता है। इसी दृष्टि से ग्रंथकर्ता महाशय ने उनकी लाभ-हानियों पर पर्याप्त प्रकाश डालकर ही इस विषय से बिदा ले ली है। यदि हमारे टकापंथी आयुर्वेदाचार्य-गण—जो आरोग्य, कामवासना, रति तथा व्यभिचारादि विविध विषयों को लेकर महाशास्त्रों की रचना में प्रवृत्त होते हैं—इसी प्रकार की प्रवृत्ति तथा रुचि को ध्यान में रक्खें, तो बड़ा ही भला हो। हमारे नवयुवक तब वास्तव में स्वास्थ्यप्रद बातों से भले प्रकार परिचित हो जायँ। 'गर्भाधान-रहस्य' में उसके योग्य लेखक ने हमारे युवक-समाज की घृणित प्रवृत्ति को सन्मार्ग पर लाने का बड़ा अच्छा प्रयत्न किया है। वीर्य-रक्षा तथा ब्रह्मचर्य को प्रधानता देकर उन्होंने भारतीय आदर्श को ही प्रधानता दी है।

उत्तम संतान की प्राप्ति के लिये दांपत्य प्रेम की चरम सीमा अत्यंत अपेक्षित होती है। उसके होने से ही मनुष्य मनचाही संतान प्राप्त कर सकता है। गर्भाधान के समय तो उसकी परा काष्ठा का होना और भी आवश्यक है। अतएव हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने विशेषतः वात्स्यायन मुनि ने इसकी अभिवृद्धि के चौंसठ कला, अष्टांग समागम, औषधि-प्रयोग, चंद्र-कला-ज्ञान तथा कन्या-विस्तंभणादि अनेक उपायों की सृष्टि की थी। उन सभी का पुस्तक में पर्याप्त वर्णन मौजूद है। डॉक्टर साहब के व्यक्तिगत तथा अन्य पाश्चात्य लेखकों के विशद अनुभवों का भी उसमें निचोड़ मौजूद है। सौंदर्य-वृद्धि के उपाय भी उसमें खूब हैं। सारांश यह कि पुस्तक अपने ढंग की बहुत उत्तम है। प्रत्येक गृहस्थ के घर में इसकी एक-एक प्रति रहनी चाहिए।

किंतु गुलाम देश की संतान-वृद्धि की आवश्यकता में हमें संदेह अब भी है।

× × ×

४. नाटक

चंद्रगुप्त मौर्य—लेखक, श्रीजयशंकर 'प्रसाद'जी; प्रकाशक, भारती-भंडार-पुस्तकालय, काशी; मूल्य २॥)

'प्रसाद'जी का यह ताज़ा उपक्रम जिसे उन्होंने

नाटक नाम से संबोधित किया है, हमारे सामने है। नाटक संज्ञा होने, उसमें भी 'ऐतिहासिक' विशेषण संयुक्त होने तथा उसके प्रसादजी-जैसे भुवन-विज्ञापित साहित्य-विश्वस्रष्टा, हिंदी-साहित्य-संसार के स्वयंभू तथा प्रसिद्ध गल्प-सम्राट्, महाकवि, हिंदी-कालिदास और सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार द्वारा लिखा होने के कारण हमें अतिकाल से उसके दर्शन की लालसा थी। किंतु एक बार पढ़ लेने पर उसे दुबारा पढ़ने को ज़रा भी तबियत नहीं हुई। पहली बार का पारायण ही कुछ ऐसा गरिष्ठ और नीरस-सा हुआ कि अब तक ग्लानि तथा खेद के भाव हृदय में वर्तमान हैं। अच्छा होता कि यह नाटक लिखा ही न गया होता। 'प्रसाद'जी की प्रसिद्धि तब दबी-ढकी तो रह सकती। श्रीकृष्णानंदजी द्वारा लिखी हुई 'स्कंदगुप्त' की समालोचना पढ़कर हमें खेद हुआ था कि उन्होंने व्यर्थ ही प्रसादजी की एक निकम्मी रचना को लेकर इतने पृष्ठ रँग डाले थे। क्या किसी की रद्दी चीज़ की भी कोई आलोचना किया करता है? हम तो 'स्कंदगुप्त' को प्रसादजी की कीर्ति-कौमुदी का कलंक-मात्र समझते थे, किंतु आज फिर नाटक-कला की नितांत अनभिज्ञता का पारायण 'चंद्रगुप्त' में भी पाकर हमें गुप्तजी की समालोचना का औचित्य समझ पड़ा है। 'प्रसाद'जी ने 'स्कंदगुप्त' में जो भयंकर भूलें की थीं, वे इसमें भी अधिक भयानकता से मौजूद हैं। भाषा की कर्ण-कर्कशता, संस्कृत-बाहुल्य, अशुद्धियों की भरमार ठीक वैसी ही है जैसी स्कंदगुप्त में। बनारसी मुहाविरों का प्रयोग भी जो कि खड़ी बोली के व्याकरण की दृष्टि से दोष-पूर्ण है, वैसा ही है।

भावों की ऊहापोह का तो पूछना ही क्या है। छायावादी वेपर की उड़ानों तथा अनंत की ओर ले जानेवाले अनादि सनातन व्याख्यानों से तो पुस्तक जगह-जगह रँगी पड़ी है। ऐसा मालूम होता है कि प्रसादजी के प्राचीन आर्य किसी निराले संप्रदाय के ही अनुगामी रहे होंगे। तभी तो उन लोगों की विचार-परंपरा ऐसी विशृंखल तथा ऊट-पटाँग हुई है कि उन्हें विक्षिप्त कहने में हमें तनिक भी संकोच नहीं होता। प्रसादजी के प्रायः सभी पात्र ऐसी छायावादी भाषा में बात करते हैं कि पाठक सिवा अनंत की ओर जाने के और कुछ कर ही नहीं सकता। कभी-कभी तो उसे कई पृष्ठ एकदम उलटकर अपना आगा-पीछा देखकर वस्तु-स्थिति का ज्ञान करना पड़ता है। ऐसी अवस्था में रंगमंच पर अभिनीत इस नाटक के दर्शक तो प्रातःकाल ही आगरे के दिमाग़ी अस्पताल के लिये उपयुक्त बीमार हो जायँगे। इसमें हमें तनिक भी संदेह नहीं, क्योंकि एक तो वैसे ही प्रसादजी की भाषा के बंबार्डमेंट से उनके दिमाग़ का बैलेंस ठीक नहीं रहेगा, और उस पर पड़ेगा छायावादी भावों का घन, बस एकदम विचलित होकर वे मुहम्मद तुग़लक़ बन जायँगे।

नाटक के जिन मुख्य अंगों, अभिनेयत्व, कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण तथा नाटक-सज्जा का प्रत्येक नाटककार को अनवरत ध्यान रखना चाहिए। प्रसादजी ने उनमें भी अपने छायावादी नैरंकुश्य से ही काम लिया। नाटक में अभिनेत्व का तो ज़रा भी ध्यान नहीं रक्खा गया। दृश्यों का तारतम्य तथा अभिनेय कार्यों की दुरभिनेयता के साथ-साथ अनेकों दृश्यों की रंगमंच के लिये अनुपयुक्तता ने 'चंद्रगुप्त' के अभिनेयत्व को एकदम नष्ट कर दिया है। वह अपने भाषा-क्लैब्य तथा गानों की असंबद्धता, असांप्रत्य तथा अनर्गलता के कारण हमारे रंगमंच के लिये बिलकुल अनुपयुक्त हो गया है। हाँ, हिंदी-शब्द-भंडार तथा संस्कृत के प्राथमिक ज्ञान से रहित, विश्वविद्यालयों के बी० ए० तथा एम्० ए० के विद्यार्थियों के शब्द-भंडार की वृद्धि करने तथा कोर्स में आधुनिक नाटकों की नियुक्ति के अभिनय द्वारा प्रसाद-प्राप्ति के काम वह बड़ी अच्छी तरह आ सकता है। बाबू श्यामसुंदरदासजी की तरह सभी विश्वविद्यालय के हिंदी-अध्यापकों को उसे तुरंत अपनाकर प्रसाद-प्राप्ति करनी चाहिए।

कथा-वस्तु जिस विचित्र ढंग से पुरस्कृत की गई है, उसे देखते हुए भी चंद्रगुप्त-नाटक सफल नहीं कहा जा सकता। ऐतिहासिकता का श्राद्ध करके प्रसादजी ने अपने मनोरंजन तथा पाठकों पर अपनी ऐतिहासिकता का सिक्का बैठाने के लिये जिस लंबी-चौड़ी भूमिका का आयोजन किया है, वह इतने गड़बड़ाध्याय का अवतार है कि उसके लिये हम एक विस्तृत लेख की आवश्यकता समझते हैं। ऐसी अनधिकार चेष्टा के लिये हम प्रसादजी को दोष नहीं देते, यह दोष तो है उनकी सर्वतोन्मुखी, किंतु कुतोप्यनुगामिनी महत्त्वाकांक्षिणी प्रतिभा का। जब वह इतिहास में ज़रा भी दख़ल नहीं रखते, तब अपने को उसका एक बहुत बड़ा मौलिक अन्वेषक सिद्ध करने की चेष्टा सचमुच गर्हणीय है। इतिहास ने जिन बातों को भ्रांत सिद्ध कर दिया है, उन्हीं को लेकर नाटक और फिर एक ऐतिहासिक नाटक की रचना नहीं की जाती। सेल्युकस की पुत्री से चंद्रगुप्त का विवाह होना अब कोई इतिहासज्ञ सत्य नहीं समझता। पौरव का औद्धत्य तथा क्षुद्रहृदयता का निदर्शन भी अनैतिहासिक है। इसी प्रकार सिकंदर तथा सेल्युकस के आक्रमणों का सान्निध्य भी अनैतिहासिक ही कहा जायगा। अनैतिहासिकता के अतिरिक्त प्रसादजी की कथा-वस्तु निरुद्देश्य भी ऐसी है कि उससे नाटक के उद्देश्य का भान नहीं होता। पता नहीं, प्रसादजी चाणक्य को नाटक का नायक बनाना चाहते थे या चंद्रगुप्त को। नाटक नाम से तो चंद्रगुप्त ही उद्दिष्ट व्यक्ति प्रतीत होता है, किंतु नाटक पढ़ने से नायक चाणक्य प्रतीत होता है। चंद्रगुप्त तो एक गौण तथा दासत्व-पूर्ण पात्र प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त जिन-जिन पात्रों की अवतारणा की गई है, उनमें से कई अनावश्यक-से ही हैं। पता नहीं, तीन-चार रमणियों को चंद्रगुप्त पर आसक्त करवाने में प्रसादजी ने क्या भलाई सोची थी, और फिर उनके आत्मघात तथा हत्या द्वारा अपना पीछा क्यों छुड़ाया।

चरित्र-चित्रण में भी उन्हें सफलता नहीं मिली। चाणक्य को छोड़कर और किसी भी पात्र का चरित्र वह ठीक चित्रित नहीं कर सके। कथोपकथन की अधिकता होने पर भी उससे प्रसादजी ने अपने पात्रों के चरित्र-निर्माण में सहायता नहीं ली। यही कारण है कि चंद्रगुप्त, पौरव, सिंहरण, नंद आदि सभी पात्र काष्ठमय तथा मृण्मय पुत्तलिकाओं के समान ऐंद्रजालिक अभिनय-मात्र करते-से प्रतीत होते हैं, उनमें आर्य-जीवन की अमृतमयी स्रोतस्विनी का शक्तिप्रद प्रवाह हमें दृग्गोचर नहीं होता। पात्रों में जीवन की धमनियों का प्रवाह जब तक प्रतीत नहीं होता, तब तक वे सजीव पात्र नहीं कहे जा सकते। वे तब केवल चाबी भर देने पर अपनी कार्य-रूढ़ि पर आरूढ़ होनेवाले आत्मगति-यंत्र-मात्र रह जाते हैं। उनके निर्माण में चरित्र-चित्रण की कुशलता अपेक्षित नहीं होती। प्रसादजी ने भी ऐसी ही मानव-मशीनों की सृष्टि की है। चंद्रगुप्त तो एक अत्यंत निराशा-जनक पात्र बना दिया गया है। नाटक-सज्जा अथवा घटना-तारतम्य में भी नाटकीय कौशल से काम नहीं लिया गया है।

जहाँ चंद्रगुप्त में उपरि-लिखित दोष हैं, वहाँ उसका एक बड़ा ही उत्तम गुण है उसका प्रकार। पारसी कंपनियों तथा पुराने ढर्रे के लेखकों द्वारा लिखे अश्लील, कुरुचि-पूर्ण तथा नीरस अथवा दक्रियानूसी नाटकों की शैली को एकदम बहिष्कृत कर उनके स्थान पर नवीन, देश-भक्ति के भावों को जाग्रत् करनेवाले तथा प्राचीन आर्य-गौरव का चित्रण करनेवाले नाटकों की रचना करके प्रसादजी ने वास्तव में हिंदी-नाट्य-साहित्य को नया ही रूप देना प्रारंभ किया है। चंद्रगुप्त उस नवीन विचार-धारा का एक उत्तम उदाहरण है। वर्तमान विदेशी शासन से युद्ध करनेवाली हमारी युवक-शक्ति को उससे पर्याप्त प्रोत्साहन मिल सकता है। इस दृष्टि से न कि कला की दृष्टि से हम चंद्रगुप्त-नाटक की पूरी सिफ़ारिश करते हैं।

सुधींद्र वर्मा (एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)



इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में नीचे-लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

(१) 'देशी राज्यों में व्यभिचार'—लेखक, साहित्य-भूषण श्रीगोविंद हयारण ; मूल्य १)

(२) 'संन्यासी' (नाटक)—लेखक, श्री-लक्ष्मीनारायण मिश्र ; मूल्य १॥)

(३) 'राक्षस का मंदिर' (नाटक)—लेखक, श्री-लक्ष्मीनारायण मिश्र ; मूल्य १॥)

(४) 'अंजलि' (काव्य)—लेखक, प्रो० रामकुमार वर्मा 'कुमार' एम्० ए० ; मूल्य ॥)

(५) 'आनंद की लहरें'—लेखक, श्रीहनुमान-प्रसादजी पोद्दार ; मूल्य ~)॥

(६) 'तुलसी-दल'—लेखक, श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ; मूल्य ॥)

(७) 'स्वप्न-दोष'—लेखक, कविराज श्रीउपेंद्र-नाथ शर्मा ; मूल्य १)

(८) 'प्रबोध-सुधाकर'—अनुवादक, श्रीमुनि-लाल ; मूल्य ≡)॥

(९) 'विवेकचूडामणि'—अनुवादक, श्रीमुनि-लाल ; मूल्य ।≡)

(१०) 'रामायण तुलसी-कृत व अँगरेज़ी अनुवाद'—अनुवादक, बा० महादेवप्रसादजी ; मूल्य ॥)

(११) 'श्रीमद्भगवद्गीता' (शंकर-भाष्य-हिंदी-अनुवाद-सहित)—अनुवादक, श्रीहरिकृष्णदास गोइंदका ; मूल्य २॥)

(१२) 'भारत में ब्रिटिश साम्राज्य'—लेखक, श्रीगंगाशंकर मिश्र ; मूल्य छपा नहीं।

(१३) 'कौमुदी' (काव्य)—लेखक, श्रीबाल-कृष्णराव ; मूल्य छपा नहीं।



१. युक्त-प्रांत का भविष्य-संघर्ष



युक्त-प्रांत भारतवर्ष का एक दब्बू, शांत, कमज़ोर और ग़रीब प्रांत है, और अब तक के राष्ट्रीय युद्धों में प्रायः वह सदैव ही पिछड़ा रहा है ; परंतु इस बार रंग-ढंग विकट नज़र आते हैं, और ऐसा मालूम होता है कि शीघ्र ही यह प्रांत बारदोली की प्रतिस्पर्धा करेगा। लात खाकर धूल भी सिर पर चढ़ती है, फिर मनुष्य और जनपद की तो बात ही क्या है। देश-भर में फैले हुए किसानों की दुरवस्था हज़ारों बार हज़ारों ही रीतियों से बयान की जा चुकी है। कारीगरों के विनाश के पश्चात् देश के प्राण किसानों के भूखे और जर्जरित कंकालों में आ अटके थे, और वे किसान एक आदर्श राजभक्त पुरुष की भाँति सरकार का लगान चुका दिया करते थे। उनका जीवन दुख, रोग, क़र्ज़ा और असहायता का सदैव ही शिकार रहा है ; फिर भी उनमें अराजकता और दबंगता की बू भी नहीं आई, परंतु आज जैसी परिस्थिति हो गई, और गत बारदोली के प्रयोग ने जैसा उत्कट त्याग, धैर्य और निष्ठा प्रकट की है, वह निस्संदेह उस सरकार के लिये भय की वस्तु है, जिसका शासन केवल दंड के आधार पर है। यू० पी० के किसानों का संगठन और उनका टैक्स न देने के विषय में निर्णय एक बहुत बड़ी भारी भावी विपत्ति की सूचना है। और यह विपत्ति केवल सरकार को नहीं, किसानों को भी और उनके साथ ही नागरिकों को भी भुगतनी पड़ेगी। हम समझते हैं कि भारत-सरकार और उसके सलाहकार उस परिस्थिति को समझ गए, और हाल ही में जो यू० पी० आर्डिनेंस घोषित किया गया है, वह इस बात को सिद्ध करता है कि सरकार काफ़ी भयभीत हो गई है, जो कि बेजा नहीं है।

हाल ही में वायसराय ने बंगाल की एक सभा में आर्डिनेंसों के प्रचारित करने के विषय में अपना हार्दिक दुख प्रकट किया, और अपनी विवशता और युक्तियाँ भी प्रकट की हैं। सरकार का यह ख़याल कि विना ऐसे आर्डिनेंस जारी किए किसानों और ज़मींदारों में सामंजस्य न स्थापित हो सकेगा, कहाँ तक ठीक है, यह तो समय ही बतलावेगा। प्रांतीय सरकार ने आर्डिनेंस के विषय में अपना वक्तव्य प्रकाशित किया है—"कांग्रेस ने गांधी-इर्विन-समझौते पर अमल नहीं किया, प्रत्युत युक्त-प्रांत के कांग्रेसी नेताओं ने किसानों की अवस्था से अनुचित लाभ उठाकर ज़मींदारों और सरकार के विरुद्ध लगानबंदी का आंदोलन चलाना चाहा है।" इसी वक्तव्य में महात्माजी के विरुद्ध यह अभियोग है कि उन्होंने किसी समय ऐसी विज्ञप्ति निकाली थी, जिसमें कांग्रेस को लगान के संबंध में निर्णय करने का अधिकारी माना गया था।

अंत में सरकार ने कहा है—"धैर्य की भी सीमा हुआ करती है। सरकार धैर्य धारण करते-करते थक गई। करोड़ रुपए से अधिक की छूट भी दे चुकी, अब इससे अधिक कुछ भी नहीं कर सकती।"

कांग्रेस ने गांधी-इर्विन-समझौते को कहाँ तक माना है, और अब भी कहाँ तक मानने का दावा करती है, यह तो सरकार और कांग्रेसी राजनीतिज्ञ ही जानें। हाँ, इतना हम कह सकते हैं कि गांधीजी की आंदोलन स्थगित करने की आज्ञा देश ने उस समय मानी थी, जिस समय वह बहुत आगे बढ़ चुका था, और महात्माजी के अतिरिक्त कोई अन्य माई का लाल न था, जो देश के प्रचंड वातावरण को इतनी शीघ्रतापूर्वक शांत कर देता। सरकार ने क्या किया ? क़ैदियों का छोड़ना प्रारंभ कर दिया गया, किंतु जितनी शीघ्रता से उन्हें छोड़ना चाहिए था, उतनी शीघ्रता से तो क्या, बल्कि देरी से छोड़े गए। और कुछ को तो कई महीने की देरी करके छोड़ा गया।

हमारी सम्मति में सरकार को आर्डिनेंस जारी करने के लिये इस समय उतावली की इतनी आवश्यकता नहीं थी। अब जब कि किसान युद्ध के लिये कटिबद्ध हैं, और सरकार भी आर्डिनेंस निकाल रही है, इस दशा में हमें भविष्य का वह भीषण चित्र स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है, जिसमें किसानों और सरकार के बीच महान् युद्ध होगा। ग़रीब किसान सत्याग्रह का आश्रय लेंगे और सरकार दमन का। सुना है, सरकार ने पुलिस के लिये बीस हज़ार लाठियाँ ख़रीदी हैं। अभागे किसानों के भयानक भविष्य का अनुमान करने के लिये यही एक चिह्न काफ़ी है।

हाल ही में जिस तत्परता से गिरफ़्तारियाँ होनी शुरू हुई हैं, और प्रमुख पुरुषों के प्रति दमन का जैसा भाव दिखाया गया है, उसे देखते हमें भय होता है कि युक्त-प्रांत इस शांत वातावरण में भी जब कि महात्माजी युद्ध छेड़ने को तैयार नहीं, एक गंभीर रण-स्थल शीघ्र ही बन जायगा।

× × ×

२. गोल-सभा की पोल

उसके नाला ने किया बज़्म को दरहम बरहम;
हम जो कहते थे, न गांधी को बुलाना यारो!

गोल-सभा का अभिनय ख़ूब सफलता से समाप्त हुआ। इसके लिये हम ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों को जितनी बधाई दें, थोड़ा है। भयानक अर्थ-संकट की आँधी ब्रिटेन के सिर पर इस ज़ोर से आई थी कि गोल-सभा की ढाल अगर न होती, तो ग्रेट ब्रिटेन इस बार सूखे पत्ते की तरह उड़कर न-जाने कहाँ-का-कहाँ जा पड़ता। किंतु बलिहारी उन मदारी राजनीतिज्ञों की, जिन्होंने अत्यंत कौशल और विचक्षण तत्परता से उस महासंकट को कम-से-कम दस वर्ष के लिये टाल दिया।

यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष को मूर्ख बनाने की पर्याप्त चेष्टाएँ की गईं, और बहुत अंशों तक भारतवर्ष मूर्ख बना भी, इस बात को क्या महात्मा गांधी और क्या मि० मेकडॉनल्ड सभी जानते हैं। परंतु इस बार इस राजनीतिक शतरंज के खेल में भारत को कम-से-कम एक चीज़ तो मिली, और वह सारे संसार की वह सहानुभूति थी, जो इस बात के प्रकट होने से उसको प्राप्त हुई कि भारत का दावा सीधा, सच्चा और साफ़ है; और दूसरे पक्ष के खिलाड़ी धूर्त और स्वार्थी हैं। क्या महात्मा गांधी ख़ाली हाथ आ रहे हैं ? क्या उनके साथ आज वह विश्व-शक्ति नहीं है, जो भविष्य में उनको विजयी बनावेगी ? गोल-सभा और महात्मा गांधी का यह प्रताप है कि आज संसार की महाशक्तियाँ भारत के भाग्य को अत्यंत चाव से देख रही हैं, और उसका अभ्युदय चाहती हैं। यह बिल्कुल सत्य है कि महात्मा गांधी ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि सारा इँगलैंड ही साम्राज्यवादी और भारत का शत्रु नहीं है, बल्कि साम्राज्य-लिप्सावाले कुछ चुने हुए राजनीतिक भेड़िए हैं। वह भी समय आवेगा कि लाखों सच्चे अँगरेज़ मि० एंड्रूज़ और मि० ब्रेस फ़्लोरेस की भाँति भारत के लिये ईमानदारी की

आवाज़ उठावेंगे। भारतवर्ष की वह शक्ति, जिसका दारमदार अहिंसा पर है, और कल तक जिस पर स्वयं भारत को भी विश्वास न था, आज एक मानी हुई ऐसी दुर्धर्ष शक्ति सिद्ध हुई है, जो प्रतापी ग्रेट ब्रिटेन से अनायास ही चाहे जब लोहा ले सकती है।

गोल-सभा से भारत को क्या प्राप्त हुआ? इसका उत्तर महात्माजी के उस उत्तर से स्पष्ट हो जाता है, जो उन्होंने इटली के किसी पत्र-प्रतिनिधि के प्रश्न करने पर दिया था।

उन्होंने कहा था—"गोल-सभा से ब्रिटेन और भारत के संबंध निश्चित रीति से टूट गए। हमारे लिये ब्रिटेन का संबंध बहुत ही कष्ट-प्रद रहा, परंतु गोल-सभा द्वारा ब्रिटेन को भारतीय राष्ट्र और उसके नेताओं के भाव मालूम हो गए, और हम लोगों को भी ब्रिटेन के इरादे का पता चल गया। मैं भारत जाकर फिर लड़ाई छेड़ूँगा, जो अब तक की तरह अहिंसात्मक ही रहेगी। हिंसा से भारत की हार होगी। अहिंसात्मक भद्र अवज्ञा में राष्ट्र की इतनी महती शक्ति निहित है, जो ब्रिटेन के लिये भय का स्थान है।" महात्माजी ने अपना यह अनुमान भी प्रकट किया कि बहिष्कार का परिणाम ब्रिटेन के लिये भयानक होगा।

गोल-सभा के अंत के कुछ दिन पूर्व महात्माजी ने कहा था—"इस कान्फ़्रेंस के फल-स्वरूप भयंकर दमन के सिवा और कुछ मिलना-जुलना नहीं है।" और कान्फ़्रेंस की समाप्ति पर भी उन्होंने स्पष्ट कह दिया—"अब हम ऐसे स्थान पर पहुँच गए हैं, जहाँ से भिन्न-भिन्न दिशाओं को मार्ग जाते हैं, और भविष्य में हमारा मार्ग दूसरा ही होगा।" उन्होंने यह भी कहा कि—"गोल-सभा द्वारा समझौते की बातचीत का तरीक़ा विफल हो गया है, इसलिये कांग्रेस को पुनः अपने अस्त्रों से सुसज्जित हो जाना चाहिए, जिससे वह अपना काम करने के लिये काफ़ी शक्ति-संपन्न हो।"

गोल-सभा से स्वराज्य प्राप्त होना तो दूर रहा, प्रत्युत भूतकाल में ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा पूर्ण दायित्व-पूर्ण शासन स्थापित करने की जो घोषणाएँ समय-समय पर घोषित की गई थीं, और जिन्हें भारतीय पवित्र प्रतिज्ञा समझते थे, वही प्रतिज्ञाएँ अब मि० मेकडॉनल्ड के कथनानुसार प्रतिज्ञा नहीं रहीं, वरन् ब्रिटिश सरकार के विचार प्रकट करनेवाली धारणाएँ-मात्र बन गईं। इसका अर्थ यह है कि यदि उन प्रतिज्ञाओं से कोई यह सिद्ध कर दे कि उनमें भारत को स्वराज्य देने की बात कही गई थी, तो मेकडॉनल्ड साहब और उनके बंधु उससे सहमत न होंगे। क्योंकि विचार-धाराओं का परिवर्तन तो प्राकृतिक है ही।

गोल-सभा से भारत को किसी प्रकार का लाभ होने की कोई आशा न थी, और न भविष्य में ही किसी प्रकार की आशा की जा सकती है। अभी इसका अंतिम दृश्य सम्मुख नहीं आया है, पर शीघ्र ही आनेवाला है! अभी तो जाँच करने के लिये कई कमेटियाँ लंदन से भारत को भेजी जायँगी, और उनके लौटने पर पुनः गोल-सभा का अंतिम स्वाँग लंदन में किया जायगा। किंतु यह कब तक होगा? इसका निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। यह भली भाँति स्पष्ट हो गया है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ समय टाल रहे हैं। भारतवासियों के भोलेपन को वह मूर्खता समझकर अनुचित लाभ उठाते रहे, और भविष्य में भी यही चाहते हैं, जिसका होना कठिन ही नहीं, असंभव है।

महात्माजी ने तो गोल-सभा से पूर्ण स्वराज्य पाने की कभी आशा ही न की थी, अतएव गोल-सभा भंग होने से उन्हें किसी प्रकार की निराशा नहीं हुई है। और न अन्य कांग्रेसवालों को। महात्माजी कांग्रेस को अस्त्रों से सुसज्जित होने की आज्ञा दे चुके हैं, जिसका अर्थ निकट भविष्य में भीषण सत्याग्रह-युद्ध होना निश्चित है। यह युद्ध भारत-व्यापी होगा। और इसमें कोई संदेह नहीं कि देश और सरकार दोनो ही के लिये दुख और चिंता के कारण उत्पन्न हो जायँगे।

× × ×

३. सोना कहाँ गया ?

संसार-भर के सोने का हिसाब लगाने पर इस बात का पता चलता है कि सोना ५५ प्रतिशत फ़्रांस, ३५ प्रतिशत अमेरिका, शेष १० प्रतिशत शेष संसार में है। ग्रेट ब्रिटेन फ़्रांस का क़र्ज़ी है और फ़्रांस ने उसे कड़ी सूचना दे दी है कि आगामी तीन मास में उसका जितना ऋण ग्रेट ब्रिटेन के ऊपर है, वह उसको चुकता कर दे। ब्रिटेन के ख़ज़ाने में सोना न होने के बराबर है। ऐसी दशा में एक ही उपाय हो सकता है कि नोटों का प्रचार करके बाज़ार का सोना खींच लिया जाय, या नए-नए कर लगाए जायँ अथवा पुराने करों में इतनी वृद्धि की जाय, जितनी आवश्यक है।

ब्रिटेन के पास यदि सोने का सबसे बड़ा साधन है, तो वह भारतवर्ष है, किंतु भारतवर्ष में अब केवल सोने का नाम-मात्र रह गया है, यहाँ का सोना अधिकांश में विदेश पहुँच चुका है।

या सत्याग्रह करने के अतिरिक्त किसानों के लिये अन्य मार्ग नहीं है।

अब हमें इस पर विचार करना है कि क्या अपना सोना बेचकर भारत की अभागी जनता इस भीषण आर्थिक संकट से त्राण पा सकेगी ? और उससे जितना भी सोना प्राप्त होगा, उससे ब्रिटेन की आवश्यकता की पूर्ति सरलता-पूर्वक हो जायगी ? यदि ऐसा हो भी, तो इसके पश्चात् इस देश की कैसी दशा होगी, और संसार के राष्ट्रों की श्रेणी में इस देश का कौन-सा स्थान होगा ? भारत के अनेक व्यापारियों ने भारत-सरकार से यह प्रार्थना की कि सोने पर निर्यात-कर लगा दिया जाय, किंतु सरकार ने न तो किसी प्रकार का आश्वासन दिया, और न इस संबंध में कोई व्यवस्था ही की। पिछले कुछ ही महीनों में कई करोड़ का सोना भारत से बाहर भेजा जा चुका है। हम आशा करते हैं कि जब तक और कई करोड़ रुपए का सोना भारत से बाहर न भेजा जायगा, सरकार कान में तेल डाले बैठी रहेगी। क्योंकि इसी में उसकी प्राण-रक्षा है। आज यदि भारत के देहातों के अंदर देखा जाय, तो पता लगेगा कि सैकड़ों सुनार और टुटपुँजिए व्यापारी देहातों में घूम-घूमकर सस्ते भाव में हज़ारों तोले सोना ख़रीदते और गलाकर बाज़ार में बेचते हैं। किसानों की तंगदस्ती और दुरवस्था इस मौक़े पर और भी उनको अपने उन प्यारे गहनों के बेचने के लिये मजबूर करती है, जिसे वह अपनी इज़्ज़त-आबरू और अपने आगे-पीछे का सहारा समझते हैं। उस लज्जा और दुख की कल्पना कौन कर सकता है ? जो इन ग़रीब किसानों के हृदयों में उस समय उत्पन्न होती है, जब वह अपनी स्त्रियों और पुत्रियों के शरीर से उन प्राणाधिक गहनों को उतारते और बेच देते हैं। भारत के प्रमुख व्यापारियों ने इस बात की

> पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'—'सुधा' का सावन का अंक बहुत अच्छा निकला। पहला चित्र और श्रृंगार सुंदर है, और संपादकजी के दोहे तो बस परी के पर।

निर्धन भारत के पास सोना अब सिक्कों के रूप में बहुत कम मात्रा में है। हाँ, जो कुछ भी है, वह है आभूषणों के रूप में, और सोने के आभूषण भी प्रायः धनिकों के पास हैं। ऐसी दशा में धनिकों के आभूषणों का निकलना कठिन है, किंतु निर्धन किसानों के पास जो आभूषण हैं, वह सोने का बाज़ार चढ़ जाने से और अनाज सस्ता हो जाने से सहज ही में सराफ़ों की दूकानों पर पहुँच जायँगे। बिना इस नीति का अवलंबन किए वे बेचारे शांति-पूर्वक दिन में एक बार भोजन करके भी अपने दिन न बिता सकेंगे। मालगुज़ारी कम कर देने पर भी खेतों की उपज से यदि किसान लगान देना चाहें, और उसी से अपना तथा परिवार का भरण-पोषण भी करना चाहें, तो हमारी समझ में यह नितांत असंभव है। ऐसी दशा में सिवा आभूषण बेचकर अपनी मर्यादा रखने

बहुत कोशिश की है कि सरकार सोने की निकासी पर निर्यात बैठा ले।

परंतु सरकार ऐसा क्यों करने लगी? उसे तो विदेशी क़र्ज़दारों से अपना प्राण बचाना है। सोने के महत्त्व को फ्रांस और अमेरिका ने समझा है। बैंक ऑफ़् फ्रांस के पास इस समय ४७०००००००० पौंड का सोना है (१ पौंड=१६ रुपया)। संसार के स्वर्ण-भांडार का यह एक चतुर्थांश है। फ्रांस में इतना सोना कहाँ से एकत्र हुआ? इस प्रश्न को जान लेने के बाद संसार के आर्थिक इतिहास का वह भाग आप-ही-आप समझ में आ जायगा, जिसका निर्माण महासमर के पश्चात् हुआ। सन् १९१३ में फ्रांस के पास केवल १४०००००० पौंड का सोना था। १९२६ के दिसंबर में वह बढ़कर २६०००००० पौंड हो गया। १९३१ के प्रारंभिक मासों में वह ४३०००००० हो गया। और तब से उसकी बाढ़ में कोई रुकावट नहीं उपस्थित हुई। जुलाई में जब इँगलैंड की आर्थिक अवस्था शोचनीय हो गई थी, उस समय इँगलैंड से ३०००००० का सोना दूसरे देशों को चला गया।

किंतु उसका अधिकांश फ्रांस की ओर चला आया था। महासमर के पश्चात् फ्रांस को लोग 'बेचारा फ्रांस' कहा करते थे, क्योंकि जर्मनी की सेवा ने प्रायः उसके अच्छे भू-भागों को नष्ट कर दिया था। इसलिये 'बेचारे फ्रांस' की सहायता करने के लिये सभी राष्ट्र इच्छुक थे। इसी से जुर्माने की रक़म में फ्रांस को सदैव अधिक भाग दिलाया जाता था। यहाँ तक कि सन् १९२९ में यंग प्लान के अनुसार नवीन बटवारे का पैग़ाम बाँधा गया, उस समय भी फ्रांस का काफ़ी ख़याल रक्खा गया। युद्ध के पश्चात् जर्मनी ने अपने सिक्के की दशा शीघ्र ही ठीक कर ली थी। किंतु फ्रांस के फ्रैंक की दशा इतना सोना पाने पर भी न ठीक हो सकी। १९२६ में एक फ्रैंक का मूल्य एक पेंस था, किंतु कुछ ही दिनों में वह दो फ्रैंक हो गया। युद्ध के पूर्व उसका मूल्य ९॥ पेंस के बराबर था। इटली इस समय सचमुच ग़रीब है, किंतु उसका सिक्का फ्रैंक की अपेक्षा अच्छी दशा में है।

आजकल एक पौंड में ९२॥ लिरा (इटली का मुद्रा) मिल सकता है। किंतु फ्रैंक १२४ से कम नहीं मिलता। इन सब बातों का प्रभाव आर्थिक संसार पर यह पड़ा कि वह फ्रांस को सदैव ही निर्धन समझता रहा, और फ्रांस को क़र्ज़ के रूप में इँगलैंड को जितना भुगतान करना था, उसमें इँगलैंड ने उसे बहुत सहूलियत दे दी। किंतु जो लोग फ्रांस को निर्धन समझते थे, वे बड़ी भूल करते थे, क्योंकि वास्तव में फ्रांस निर्धन राष्ट्र नहीं है। वह बहुत धनी है। युद्ध के पश्चात् के उसके आर्थिक इतिहास पर दृष्टिपात करने से इसका पूरा पता चल जाता है। फ्रांस के सिक्के का भाव गिरने का कारण उसकी आर्थिक दुर्बलता नहीं है, बल्कि उसका आर्थिक कुप्रबंध है। युद्ध के व्यय के लिये अन्य राष्ट्रों ने अपनी प्रजा से कसकर कर वसूल किया था, किंतु फ्रांस ने यह नहीं किया। दो वर्ष तक युद्ध होता रहा, किंतु फ्रांस ने कुछ भी ध्यान न दिया। इस समय के पश्चात् भी उसने जो कर लगाया, वह अत्यंत ही अल्प था। युद्ध के ऋण के लिये फ्रांस ने जिसे अपना साहूकार बनाया, वह था बैंक ऑफ़् फ्रांस। घर के ऋण का तात्पर्य यह हुआ कि धन बाहर से नहीं आया। लेन-देन मामूली खतौनी के काग़ज़ों तक ही परिमित रहा। इस पद्धति से बनावटी काग़ज़ी सिक्कों की वृद्धि हुई, जो देश में विना रुकावट दौड़ लगाया करते थे। महासमर के समय जर्मनी ने फ्रांस के पश्चिमोत्तर देश का एक भाग प्रायः विनष्ट कर दिया। सहस्रों वर्गमील भूमि प्रायः उसने नाश ही कर डाली। संधि के पश्चात् फ्रांस ने इस भग्नावशेष भूमि को मनुष्यों के निवास करने योग्य बनाया। लगभग ३८ हज़ार मील सड़क, कई हज़ार मील की रेलवे-लाइन, तीन हज़ार पुल तथा अनेकों सरकारी और ग़ैर सरकारी इमारतों के बनाने का काम उसने प्रारंभ कर दिया। इस

प्रकार जितना धन व्यय होता था, वह सब सरकारी कोष से होता था; किंतु सरकारी कोष में उस समय था क्या? सिवा काग़ज़ी सिक्कों के और कुछ भी नहीं। सोना जितना भी था, वह था बैंक ऑफ़् फ़्रांस के पास। इस प्रकार फ़्रैंक का मूल्य घटने लगा, किंतु ज्यों-ज्यों काग़ज़ी सिक्कों की वृद्धि होती थी, त्यों-त्यों युद्ध-कालीन ऋण की अदायगी का सोना उसके पास आता गया। इस प्रकार बैंक ऑफ़् फ़्रांस में सोने की बाढ़ आती गई। दूसरी ओर फ़्रांस में काग़ज़ी सिक्कों की बाढ़ आ गई। काग़ज़ी सिक्के की बाढ़ का सँभालना बड़ा ही दुरूह कार्य है, क्योंकि ज्यों-ज्यों काग़ज़ी मुद्रा बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसका मूल्य घटता जाता है, और सरकार के पास अधिक नोटों की माँग आती रहती है। इसका एक ही उपाय यह है कि अधिक कर बैठाकर और सरकारी ख़र्च कम करके बढ़े हुए नोटों को बाज़ार से खींच लेना।

किंतु फ़्रांस ने ऐसा नहीं किया। इसी से इतना अधिक सोना रखते हुए भी वह फ़्रैंक के मूल्य को न उठा सका। आजकल भी एक पौंड में १२४ फ़्रैंक मिलते हैं। किंतु युद्ध के पूर्व वह २५ से अधिक नहीं मिलते थे।

× × ×

४. विवाह का बंधन

कई लोग विवाह को केवल एक सामाजिक बंधन-मात्र समझते हैं। परंतु यह भारतीय आदर्श नहीं है। उसमें यह आदि और सनातन बंधन माना गया है। इस जन्म के बंधन में पूर्वजन्म का भी सूत्र है, और इस लौकिक नाते में भविष्य तथा इस पृथ्वी के बाहर के और लोक भी जुड़े हुए हैं। भारत के इतिहास-पुराण और काव्य-कला इसके उदाहरणों से परिपूर्ण हैं। अब भी समय-समय पर हमें इसकी साक्षी मिलती रहती है।

रायबहादुर बा० ज्योतिप्रसादजी वकील, सहारनपुर के भतीजे श्रीराजेश्वरसहाय सब जज, मेरठ के सबसे बड़े पुत्र श्रीकिशननाथजी भार्गव एम्० बी० बी० एस्० पिछले दो वर्षों से बीमार थे। आप क्षयाक्रांत हो गए थे। नाना प्रकार के उपाय किए गए, हज़ारों रुपए ख़र्च किए गए, पर आपका स्वास्थ्य नहीं सँभला। घरवालों की निराशा बढ़ती गई, और उनकी धर्मपत्नी, श्रीमती विंदोबाई, अपने अंधकारमय भविष्य की कल्पना कर काँप उठीं! विधाता का विधान किसके वश में है? पहाड़ का जल-वायु उनके जीवन के लिये हितकर हो, इस भरोसे पर उनको देहरादून लाया गया। परंतु वहाँ भी आशा की कोई किरण नहीं दिखाई दी। उनका स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता ही चला गया। सती पत्नी दिन-रात पति के चरणों में बैठकर भगवान् से उनकी मंगल-कामना करने लगी। पर रोग भयंकर-तम होता गया। सबने उनके जीवन की आशा छोड़ दी। पति-हीन जीवन किस प्रकार व्यतीत होगा, विधवा कहलाई जाकर दुर्दिन देखने में आवेंगे, इन विचारों से सती ने प्राणों की ममता छोड़ देनी आरंभ की। अंत में उस दिन जब उसको पूरा विश्वास हो गया कि अब पति-देवता का अंतिम समय निकट है, उसने अपने पिता को पत्र लिखा—"मुझे विधवा कहलाकर संसार में जीवित रहना स्वीकार नहीं है, मैं अपने पति के ही साथ जा रही हूँ। इस जीवन में अब भेंट न होगी, यही अंतिम मिलन है।" इसके बाद वह देवी आसन्न-मृत्यु पति के निकट बैठकर उनके मृत्यु की छाया से मलीन मुख को टक लगाकर निहारने लगी। जब उस दृश्य को न देख सकी, तो "हाय! मैं अभागिनी क्यों जीवित हूँ, मैं ही क्यों नहीं मरती।" कहकर मूर्च्छित हो गई, फिर न जागी, और इच्छामृत्यु प्राप्त की। मरते समय डॉक्टर किशननाथजी ने पूछा कि पत्नी कहाँ है? घरवाले किस प्रकार वह दुखद समाचार उन्हें सुनाते, उनसे कहा गया कि अभी आती है। वह यह सब समझ रहे थे, और पत्नी की मृत्यु के दो घंटे बाद उन्होंने भी अपने प्राण त्याग दिए। पति और पत्नी दोनो का एक ही चिता पर दाह-संस्कार हुआ। विवाह के बंधन में जिनके जीवन और मृत्यु भी ग्रथित थे, ऐसे ये दंपति संसार में धन्य हैं!

× × ×

५. ईश्वर का अस्तित्व

विगत योरप के प्रवास में अपनी साठ वर्ष की आयु में महात्माजी ने कोलंबिया-ग्रामोफ़ोन-कंपनी की प्रार्थना पर अपना पहला और अंतिम रिकॉर्ड भरवाया है। यह अनेक देशों में तथा हमेशा सुना जायगा, यह विचारकर महात्माजी ने स्थायी तत्त्व बोलने के लिये राजनीति को छोड़ दिया, और ईश्वर के अस्तित्व पर भाषण दिया। आरंभ में उन्होंने कहा—"इंद्रियगम्य न होने पर भी ईश्वर की सत्ता का हमें स्वयं ही अनुभव होता रहता है। ईश्वर और नियम इन दोनो को आपने भिन्न-भिन्न नहीं बतलाया। जगत् के परिवर्तन का नियम या नियामक जो स्वयं अपरिवर्तित ही रहता है, वही ईश्वर है। वह तर्क और ज्ञान के बाहर विश्वास की चीज़ है, उसका केवल अनुभव-मात्र होता है।" द्वंद्वों के संबंध में आपने कहा—"मृत्यु में जीवन है। असत्यता में भी सत्य है। अंधकार में भी प्रकाश है।" अंधकार में प्रकाश है, प्रकाश में अंधकार है! पर किस प्रकार उलझा हुआ? एक दूसरे की कहीं पर सीमा ही नहीं दिखाई देती। आगे चलकर आपने विश्वास की महिमा गाई है, और उसे ही ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करने का तर्क बताया है। इस रिकॉर्ड की आय का अधिकांश भाग अखिल भारतीय चर्खा-संघ को मिलेगा।

× × ×

६. दूर-दर्शन

जो वस्तु भूतकाल की कल्पना थी, उसे वैज्ञानिकों ने वर्तमान के सत्य में बदल दिया है। भविष्य में कौन-सा नया आश्चर्य हमारे बीच में होगा, हमें इसका कुछ भी पता नहीं है।

सिर्फ़ अमेरिका में ही सिनेमा के समय प्रति मिनट तीस हज़ार आदमी सिनेमा के टिकट ख़रीदते हैं। सात दिन में ही इसका जोड़ सारे देश की आबादी से कहीं अधिक हो जाता है। उन्नीसवीं सदी में क्या जनता के इस प्रकार के मनोरंजन की कोई कल्पना थी? जब सिनेमा का आविर्भाव हुआ, तो नाटकवालों को यह भय हुआ था कि यह किसी दिन उनके रंग-मंच को निगल जायगा। टॉकी ने जन्म लेकर इसी भय से सिनेमा को त्रस्त किया है। अब भविष्य के धूसर धरातल पर एक ऐसी चीज़ की छाया प्रकट होने लगी है, जिससे ये सब भयभीत होने लगे हैं।

दूर-श्रवण का संसार में अब काफ़ी प्रचार हो गया है। कुछ दिन बाद यह और भी अधिक लोगों के पहुँच के भीतर की चीज़ हो जायगी। जिस प्रकार दूर-श्रवण से मनुष्य दूर-दूर की ध्वनियाँ अपने ही कक्ष में बैठे-बैठे सुन सकता है, उसी प्रकार दूर-दर्शन से वह देश-देशांतरों के दृश्य अपने ही घर के अंदर देख सकेगा। तब हमारे गृह शेष जगत् के दृश्य और गीतों के साथ कैसे आश्चर्य-जनक ढंग से संबद्ध हो जायँगे। तब कोई गृहिणी सिनेमा से लौटनेवाले अपने पति की आकुल प्रतीक्षा न करेगी, न किसी पति को ही सिनेमा देखने का बहाना मिल सकेगा।

बड़े-बड़े शहरों में कुछ केंद्र स्थापित होंगे, जहाँ से संसार के गृहों में यंत्रों द्वारा नाद और प्रकाश के प्रति कंपन पहुँचाए जा सकेंगे। तब नाटक, सिनेमा और टॉकी का क्या होगा? इन बड़े-बड़े रंग-भवनों में कौन बसेंगे, हॉलीवुड में किसकी आबादी होगी?

× × ×

७. भंडारीजी का साहित्यिक कार्य

हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीसुखसंपत्ति राय भंडारी के नाम से हिंदी-साहित्य-संसार भले प्रकार परिचित है। राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास, विज्ञान तथा अन्य कई विषयों पर कोई दो-ढाई दर्जन पुस्तकें लिखकर आपने हिंदी-साहित्य की बड़ी सराहनीय सेवा की है। आपके कुछ ग्रंथों का हिंदी-साहित्य में बड़ा आदर है, और उनमें से कुछ ग्रंथ हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा तथा उत्तमा परीक्षा की पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित किए गए हैं। आपके लिखे हुए 'भारत के देशी राज्य'-नामक ग्रंथ पर इंदौर-दरबार से आपको १५०००) रुपयों का पुरस्कार मिला था। हमें यह प्रकाशित करते

अत्यंत प्रसन्नता होती है कि आप इस समय एक विशाल साहित्यिक आयोजन के साथ साहित्य-क्षेत्र में उपस्थित हो रहे हैं। आपने इस समय विद्वान् और विशेषज्ञों की सहायता से एक विशाल अँगरेज़ी-हिंदी-कोष तैयार किया है। इस कोष की हस्त-लिखित प्रति को हमने देखा है, और हम यह निस्संदेह रूप से कह सकते हैं कि केवल हिंदी ही में नहीं, वरन् किसी भी भारतीय भाषा में इतना विशाल कोष अब तक निर्माण नहीं हुआ है। राजनीति, अर्थ-शास्त्र, क़ानून, दर्शन-शास्त्र, मनोविज्ञान, वैद्यक-विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र, कृषि-शास्त्र, ज्योति-विज्ञान, गणित-शास्त्र, सृष्टि-शास्त्र आदि अनेक शास्त्रों में प्रयोग होनेवाले अँगरेज़ी-शब्दों के पारिभाषिक हिंदी-शब्द इसमें दिए गए हैं। महायुद्ध के बाद अँगरेज़ी भाषा में हज़ारों नए शब्द निर्माण हुए हैं। उन्हें भी भंडारीजी ने इस कोष में लेने की चेष्टा की है। इसमें लगभग डेढ़ लाख शब्द होंगे। इसकी हस्त-लिखित प्रति के लगभग २०००० पृष्ठ हैं।

प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर महामहोपाध्याय डॉक्टर गंगानाथ झा, पंजाब-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डॉक्टर ए० सी० वूलनर, आगरा-विश्व-विद्यालय के वाइस चांसलर श्रीयुत नारायणप्रसाद अस्थाना, रसायन-शास्त्र के संसार-प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य सर पी० सी० राय, लखनऊ-विश्वविद्यालय के डॉक्टर राधाकुमुद मुकर्जी, प्रयाग-विश्वविद्यालय के डॉक्टर बेनीप्रसाद, कलकत्ता-विश्व-विद्यालय के डॉक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी आदि अनेक गण्य-मान्य और प्रतिष्ठित विद्वानों ने भंडारीजी के इस साहित्यिक साहस और इस कोष की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। डॉक्टर झा महोदय ने इसे हिंदी-साहित्य के इतिहास का एक अटल स्मारक कहा है। सर पी० सी० राय ने इसे महान् प्रशंस-नीय साहित्यिक कार्य कहते हुए बंगाली, मराठी और गुजराती भाषा-भाषियों के लिये भी अत्यंत उपयोगी बतलाया है।



श्रीयुत सुखसंपत्ति राय भंडारी
[लेखक अँगरेज़ी-हिंदी-कोष]

इसके अतिरिक्त इंडियन डेली मेल, बाँबे क्रॉनि-कल, पायोनियर, ट्रिब्यून, टुडे, भारत, अभ्युदय, स्वतंत्र, लोकमान्य, भारतमित्र, हिंदू-पंच, अर्जुन, हिंदू-संसार, राजस्थान, संदेश, विजय, वीणा आदि अँगरेज़ी और हिंदी के अनेक पत्रों ने इस ग्रंथ की बड़ी प्रशंसा की है। बंबई के इंडियन डेलीमेल ने तो इसे भारतीय साहित्य का प्रथम और महान् प्रयास कहा है। हिंदी के प्रायः सभी समाचार-पत्रों ने

इसके महत्त्व और उपयोगिता पर लंबे-चौड़े संपादकीय लेख लिखे हैं। इस ग्रंथ के संकलन में लगभग बीस हज़ार रुपए ख़र्च हुए हैं, जो ग्रंथ की विशालता को देखते हुए कम मालूम होते हैं।

× × ×

८. सन् १९३१ में भारत के प्रमुख नगर

सन् १९३१ की मनुष्य-गणना की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, भारत के प्रमुख नगरों की जन-संख्या सन् १९२१ की जन-संख्या की तुलना में इस प्रकार रही—

नाम नगर	सन् १९३१	सन् १९२१	प्रतिशत घटी या बढ़ी
कलकत्ता (उप-नगरों-सहित)	१४१९३२१	१२७२५६५	+ ११.५
कलकत्ता ख़ास	११९६८३३	१०७७२६४	+ ११.१
हबड़ा ख़ास	२२२४८८	१९५३०१	+ १३.०
बंबई	११५७८५१	११७५९१४	− १.५३
मदरास	६४७२२८	५२६९११	+ २२.८
दिल्ली	४४७४४२	३०४४२०	+ ४६.९८
लाहौर	४२९७४७	२८१७८१	+ ५२.५१
हैदराबाद	३७७००९	४०४१८७	− ६.७२
रंगून	४००४१५	३४५६२१	+ १५.९
अहमदाबाद	३१००००	२७४००७	+ ११.६
बंगलौर	३०६३६५	२३७४९६	+ २८.९
लखनऊ	२७४६५९	२४०५६६	+ १४.२
अमृतसर	२६४८४०	१६०२१८	+ ६५.३०
करांची	२६०९३८	२१६८८३	+ २०.१
कानपुर	२४३७५५	२१६४३९	+ १२.६
आगरा	२२९७६४	१८५५३२	+ २३.८
नागपुर	२१५००३	१४५१९३	+ ४८.०८
बनारस	२०५३१५	१९८४४७	+ ३.५
इलाहाबाद	१८३९१४	१५७२२०	+ १७.०
मदुरा	१८२००७	१३८८९४	+ ३१.०४
श्रीनगर	१७३६४९	१४१७३५	+ २२.५
पूना	१६३१००	२१४७९६	− २४.०६
पटना	१५८२३०	११९९७६	+ ३१.८
मंडला	१४४८९९	१४८९१७	+ २.७
जयपुर	१४४१७९	१२०२०७	+ १९.९
बरेली	१४४०३१	१२९४५९	+ ११.३
त्रिचनापल्ली	१४१६४०	१२०४२२	+ १७.६
ढाका	१३८५१८	११९४५०	+ १९.९
मेरठ	१३६७०९	१२२६०९	+ ११.५
शोलापुर	१३५६३५	११९८५१	+ १३.४
इंदौर	१२७३२७	९३०९१	+ ३६.८
जबलपुर	१२४४९९	१०८७९३	+ १४.४
पेशावर	१२१८६६	१०४४५२	+ १६.७
अजमेर	११९५२४	११३५१२	+ ५.३
मुल्तान	११९४५७	८४८०९	+ ४०.८६
रावलपिंडी	११९२८४	१०११४२	+ १७.९४
बड़ौदा	११२८६२	९४७१२	+ १९.१
मुरादाबाद	११०३४६	८२६७१	+ ३३.७
सलेम	१०२१८१	५२२४४	+ ९५.५

इस तालिका से पता चलता है कि भारत-भर में प्रथम नंबर कलकत्ता, द्वितीय बंबई, तृतीय मदरास और चतुर्थ दिल्ली का है। सलेम में सबसे अधिक जन-संख्या बढ़ी, अर्थात् ९५.५ प्रतिशत। उपर्युक्त अड़तिस नगरों में एक लाख से अधिक आबादी के युक्तप्रांत में आठ, पंजाब में चार, सीमाप्रांत में एक, दिल्ली में एक, बंगाल में दो, बिहार में एक, मध्यप्रांत में दो, बंबई में पाँच, बर्मा में दो और मदरास में तीन नगर हैं। देशी राज्यों में इंदौर, जयपुर, बड़ौदा, बंगलौर और श्रीनगर हैं। + निशान आबादी बढ़ने का और − निशान आबादी घटने का है।

× × ×

९. पुष्कर की राजनीतिक परिषद्

प्रांतीय राजनीतिक परिषद् का अधिवेशन पुष्कर में बड़े समारोह के साथ, श्रीमती कस्तूरबा के नेतृत्व में, गत २५ नवंबर को, सानंद समाप्त हो गया। भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रमुख नेता वहाँ उपस्थित थे। परिषद् ने २४ महत्त्व-पूर्ण प्रस्ताव पास किए। खादी-प्रदर्शिनी दर्शनीय थी। लगभग ३००० आद-

मियों ने टिकट ख़रीदा था। पहले दिन श्रीहरिभाऊ उपाध्याय ने स्वागताध्यक्ष के पद से जो भाषण दिया, वह सुंदर और सामयिक रहा। स्वागत आरंभ करते ही आपने अमर शहीद श्रद्धेय गणेशशंकरजी विद्यार्थी के प्रति अपनी और राजपूताने की श्रद्धा प्रकट की। इसके पश्चात् गोल-सभा के विषय में कुछ कहा, और अपने प्रांत के उन महान् कार्यों का वर्णन किया, जो विगत आंदोलन के समय उक्त प्रांत ने किए थे।

अपने कर्तव्य के विषय में आपने कहा—"हमारा प्रांत आरंभ से ही सैनिकों, बलवीरों और वीरांगनाओं की भूमि रहा है। इसलिये हमारी समझ में तो सहसा यह बात नहीं आ सकती कि वाद-विवाद और दलीलों से स्वराज्य प्राप्त हो सकता है। महात्माजी भी इँगलैंड बहस करने नहीं गए, केवल अँगरेज़ों और दुनिया को यह मौक़ा देने गए हैं कि भविष्य में कोई कांग्रेस को दोषी न ठहरावे कि अँगरेज़ मिल-जुलकर फ़ैसला करने को तैयार थे, परंतु गांधी या कांग्रेस की हठधर्मी ने अकारण दोनो को स्वाहा होने दिया। महात्माजी स्वयं स्वावलंबन, आत्मत्याग और कष्ट-सहन पर भरोसा रखनेवाले आदमी हैं। इसलिये मुझे यहाँ गोल-सभा के वाद-विवाद और प्रश्नों के चीर-फाड़ करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। फिर इस नाटक की रंगभूमि से ७००० मील दूर राजस्थान के रेगिस्तान में भटकनेवाला जीव उसकी क्या समालोचना करे? उसके लिये तो इतना ही बस है कि अभी भारत को स्वराज्य नहीं मिला है, और जब तक वह न मिल जाय, राष्ट्र के किसी स्त्री-पुरुष को चैन लेने का, सुख की नींद सोने का अधिकार नहीं है। चरख़ा कातने से स्वराज्य मिलता हो, तो वह मस्त होकर चरख़ा गुँजावेगा, लाठी खाने से मिलता हो, तो वह ख़ुशी-ख़ुशी सिर फुड़वावेगा, जेल जाने से आता हो, तो वह वहाँ जाकर चक्की पीस लेगा, और बेड़ियों की झनकार पर स्वराज्य के गीत गावेगा, गोलियाँ खाने से मिलता हो, तो अँगरेज़ों की फ़ौज के सामने छाती तानकर खड़ा हो जायगा, इसलिये प्रांतीय स्वाधीनता, कुछ संरक्षण या समझौता आदि में मेरी दिलचस्पी नहीं है। मेरी दिलचस्पी है स्वराज्य के लिये जीने या मरने में, मेरी दिलचस्पी है स्वराज्य के पश्चात् भावी राष्ट्र या समाज को बनाने में।"

देशी राज्यों के विषय में आपका यह कथन है—"देशी राजा अँगरेज़ों के ग़ुलाम हैं, उनकी प्रजा पीड़ित और दुखी है। वे किसी भी अर्थ में स्वाधीन नहीं हैं। भारत के प्राचीन इतिहास और समाज के बनानेवाले इन्हीं नरेशों के पूर्वज थे, इसलिये इनके प्रति मेरे हृदय में कोमल स्थान अवश्य है, परंतु प्रजा की क़ुरबानी पर मैं उनका अस्तित्व कदापि न चाहूँगा। वे यदि वास्तव में प्रजा-सेवक बनकर रहें, तो उन्हें अवश्य चाहूँगा।"

यही बात काका कालेलकर ने इसी परिषद् के अपने एक भाषण में इस प्रकार कही थी—"राजा प्रजा के सेवक हैं, और उनकी प्रतिष्ठा उसी में है। अगर वे प्रजा के सेवक नहीं, तो कुत्ते-जितनी भी उनकी प्रतिष्ठा नहीं है। प्रजा के सेवक कहने से हम उनकी इज़्ज़त करते हैं। देशी राज्यों में शासन बुरा है, ऐसा कहने में अँगरेज़ों की तारीफ़ होती है। हमें यह न भूलना चाहिए कि दोनो के लिये ज़िम्मेवार अँगरेज़ ही लोग हैं। जब स्वराज्य मिलेगा, तो राजा भी ठीक हो जायँगे। राजाओं के पीछे अँगरेज़ ही असली गुनहगार हैं। अँगरेज़ ठीक हो जायँगे, तो नरेश अपने आप ही ठीक हो जायँगे।"

इसी अवसर पर राजा कस्तूरबा ने सभा के कार्यों से संतोष और प्रसन्नता प्रकट की। परिषद् में जो मुख्य-मुख्य प्रस्ताव पास हुए, उनमें कुछ तो बंगाल-संबंधी थे। इन पर स्वामी कुमारनंद ने बड़ा ज़ोरदार भाषण दिया। नए प्रेस-ऐक्ट के विरुद्ध भी एक प्रस्ताव पास किया गया। सरकार की अर्थ-नीति और रेलवे तथा अन्य विभागों की छटनी के लिये भी

प्रस्तावों पर ख़ूब गर्मागर्म बहस हुई। एक प्रस्ताव में भारत पर लादे गए सरकारी क़र्ज़ों की जाँच की माँग की गई, जिस पर श्रीगोकुललाल असावा ने बड़े ज़ोर का भाषण दिया। शेष प्रस्ताव राजपूताना-प्रांत से संबंध रखनेवाले थे, जिनमें बूँदी-हत्याकांड, रियासतों की अंधाधुंधी, भूमि-कर की वसूली की सख़्तियाँ आदि कई बातों पर प्रकाश डाला गया था। परिषद् में सब मिलाकर कुल ३०० से ऊपर प्रतिनिधि आए थे।

स्थानीय अधिकारियों ने छोटे-मोटे काफ़ी अड़ंगे डाले थे, परंतु उत्साही कार्य-कर्ताओं और स्वयं-सेवकों ने रात-दिन एक करके कुल कार्य बहुत ही सुंदरता-पूर्वक समाप्त किया। परिषद् के पंडाल में गत २५ नवंबर को एक स्त्री-सम्मेलन हुआ, जिसमें स्त्रियों ने सामाजिक कुरीतियों और पर्दे की प्रथा पर ख़ूब ज़ोर-शोर के भाषण दिए। इस सम्मेलन की उपस्थिति २००० के लगभग थी।

× × ×

१०. सिक्ख और सरकार

ऐसा मालूम होता है कि सिक्खों का क्षोभ बहुत बढ़ गया है। गत दस वर्षों में सिक्खों ने बहुत कुछ अपना ओज प्रकट किया है, परंतु इस बार गोल-सभा में सिक्खों के प्रतिनिधि शरीक न करने के कारण सिक्ख लोग एकदम बिगड़ खड़े हुए हैं। हाल ही में ननकाना साहब में जो सिक्खों का सम्मेलन हुआ है, उसमें उसके अध्यक्ष सरदार संतसिंह ने बड़े ज़ोरों में सिक्खों की नाराज़ी प्रकट की है।

राउंड टेबिल कान्फ़्रेंस तथा भारतीय समस्याओं का समझौता ही आज का सबसे प्रमुख प्रश्न हो रहा है। पिछली कान्फ़्रेंस में प्रधान मंत्री की घोषणाओं से उत्पन्न आशाओं के आधार पर महात्मा गांधी, राष्ट्रीय महासभा तथा सिक्ख-लीग ने भी अपना विचार बदल दिया, जिन सबों ने सबसे पहले उसका बॉयकाट किया था। भारत में यह धारणा बहुत व्यापक हो रही थी कि सम्राट् की सरकार वास्तव में इस बात के लिये उत्सुक है कि पिछली बातों को भूलकर वह भारतीय जन-साधारण को ब्रिटिश कामन-वेल्थ का समान साझीदार समझेगी, तथा भारत को उपनिवेशों की बराबरी का अधिकार दे देगी। पर मज़दूर-सरकार के पतन के बाद ही वे सारी आशाएँ और आकांक्षाएँ धूल में मिल गईं। नीति में ऐसा परिवर्तन क्यों हुआ? यह भारतीयों की समझ में न आ सका, क्योंकि इँगलैंड के इस चुनाव में भारत की किसी दलबंदी का कभी प्रश्न नहीं था, और ३१ अॅक्टोबर १९२९ को लॉर्ड इर्विन की उस घोषणा का सभी दलवालों ने भी समर्थन किया था, जिसमें पार्लियामेंट में औपनिवेशिक स्वराज्य देने की प्रतिज्ञा की गई थी। उस समय के विरोधी दल के नेता मि० बॉल्डविन ने भी लॉर्ड इर्विन तथा सम्राट् की सरकार की नीति का बड़े उत्साह के साथ समर्थन किया था। वही मि० बॉल्डविन आज भी उस अनुदार-दल के नेता हैं, जो सबसे प्रबल दल है, और सर्वदली सरकार में भी उसी का प्राधान्य है।

फिर भी भारत के संबंध में इस भाँति नीति में परिवर्तन कर दिया गया। इंडिया-ऑफ़िस से मि० वेजउड बेन के हटते ही प्रत्येक भारतीय को यह अनुभव होने लगा है कि पार्लियामेंट से वह भाव लुप्त हो गया, जो मि० मांटेगू का था, तथा उसका स्थान बर्कनहेड के भाव ने ले लिया है। ऐसी दशा में आश्चर्य ही क्या है, जो महात्माजी शीघ्र ही भारत वापस आने की बात सोचने लगे। और इसमें क्या आश्चर्य कि वे माडरेट अब निराश तथा हतोत्साह हो रहे हैं, जिन्होंने राउंड टेबिल कान्फ़्रेंस से इतनी बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रक्खी थीं। पर सिक्खों को निराश होने की कोई बात ही नहीं है, क्योंकि हमने उससे कोई आशा नहीं बाँधी थी। अवश्य ही वे लोग बड़े सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें कोई आशा नहीं रहती। क्योंकि वे कभी निराश नहीं हो सकते।

हमारी आशा की अंतिम किरण तो उसी समय लुप्त हो गई थी, जब सम्राट् की सरकार ने गोल-सभा में हम सिक्खों के प्रतिनिधि सम्मिलित करने से

इनकार कर दिया। जहाँ हम कान्फ्रेंस में सरदार उज्ज्वल-सिंह और सरदार संपूर्णसिंह की सेवाओं की निस्संकोच सराहना करते हैं, वहाँ यह भी समझते हैं कि उनके कर्तव्य-पालन में उग्र दलवाले सिक्खों का एक भी प्रतिनिधि न चुने जाने के कारण बड़ी भारी बाधा भी पड़ी है। जैसा उन लोगों ने भी स्पष्ट ही कह दिया है। मुसलमानों को उनकी संख्या के अनुसार पूरा प्रतिनिधित्व मिला है, जो सर फ़ज़्लीहुसेन की ही व्यक्तिगत विजय है। मुसलमानों के प्रत्येक दल के प्रतिनिधि चुने गए, यहाँ तक कि अपने को राष्ट्रीय मुसलमान दल कहनेवाली संस्था का भी प्रतिनिधि सर अली-इमाम को चुनकर उनका प्रतिनिधित्व पूरा किया गया। किंतु सिक्खों में केवल माडरेट-दल को ही प्रतिनिधित्व मिला, जिसे हम राज-भक्ति भी कह सकते हैं; और गर्म या बीचवाले किसी भी दल का डेलीगेट न चुना गया, सबकी उपेक्षा कर दी गई।

जब भीषण आवश्यकता पड़ती है, तब तो सिक्खों को अँगरेज़ों के लिये लड़ने को बुलाया जाता है। ब्रिटिश-राज्य को अनंत काल तक स्थायी बनाने के लिये महाद्वीपों और मेसोपोटामिया में सिक्खों के ख़ून की धारा बहनी चाहिए, और साम्राज्य को जीवित रखने के लिये सिक्खों को मरना चाहिए, पर जब भारतीय समस्याओं पर विचार तथा भारत का भविष्य निश्चित किया जाता हो, तब सिक्खों के साथ अछूतों का-सा बर्ताव किया जाता है। ख़ालसा में सहयोग का भाव भरने के लिये यह पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। राउंड टेबिल कान्फ्रेंस से सिक्खों का व्यावहारिक बहिष्कार करने के कार्य की निंदा करने में मुझे ज़रा भी संकोच नहीं है। कान्फ्रेंस के निर्माण से तो यही मालूम पड़ता है कि हिंदोस्तान में केवल हिंदू और मुसलमान दो ही जातियाँ हैं।

अधगोरों और अछूतों को भी सिक्खों से ऊँचा दर्जा दिया गया है। योरपियन समाज के प्रतिनिधि जिनकी संख्या सबसे कम है, सभी अल्पसंख्यकों के साथ सिक्खों का भी नेतृत्व कर रहे हैं। सौभाग्य है कि उन्होंने हमारा प्रतिनिधित्व करने का दावा नहीं किया, नहीं तो आज हमें उसका भी विरोध करना पड़ता।

× × ×

११. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

जब यह अंक पाठकों के हाथों में पहुँचेगा, तब हिंदी-साहित्य के प्रेमी प्रसिद्ध साहित्यिक महारथी झाँसी में सम्मिलित होकर हिंदी के भविष्य के विषय में विचार कर रहे होंगे। गत वर्षों के कार्य-कलाप को देखते हुए हम साहित्य-सम्मेलन को सफल संस्था यदि नहीं कह सकते, तो उसे बिलकुल असफल कहने का साहस भी किसी को नहीं हो सकता। हिंदी-प्रचार का कार्य करने तथा हिंदी को वर्तमान प्रतिष्ठित पद प्रदान करने में सम्मेलन के उद्योग का ही बहुत बड़ा हाथ है। किंतु मौलिक साहित्य की उत्पत्ति तथा विधेयात्मक कार्य-क्रम के अनुसरण में सम्मेलन को बहुत कम सफलता मिली है। अब तक सम्मेलन हिंदी-साहित्य-भंडार के लिये बहुत कम अमर वस्तुएँ प्रदान कर सका है। हिंदी-साहित्य के विस्तार तथा प्रसार के लिये भी उसने कोई रचनात्मक सफल कार्य-क्रम अभी तक जनता के सामने नहीं रक्खा। ऐसी दशा में हम उसके पिछले बीस वर्ष के जीवन को पूर्णतः सफल जीवन नहीं कह सकते।

सम्मेलन की इस असफलता का श्रेय अधिकतर हमारे पद-लोलुप महागुरुओं को ही जाना चाहिए। साहित्य-संसार में दो भिन्न पार्टियाँ तैयार करके उन्होंने अपनी शक्ति-भर सम्मेलन का नाश करने की तदबीरें करने में कभी कोई कसर नहीं लगाई। उनके पिछलग्गू चेला-चेलियों की सारी शक्ति भी सम्मेलन के अहित की ओर ही अग्रसर रही है। ऐसी दशा में दो बड़ी-बड़ी साहित्यिक संस्थाओं में से एक का अनिष्ट अनिवार्य-सा ही था। वह हो हुआ। साहित्य-सम्मेलन बेचारा दादा गुरु की महत्त्वाकांक्षा की रक्तिम वेदी के बलि-पशुओं में से अन्यतम बनाया गया।

सम्मेलन के मार्ग में काँटे बिछाने का काम जहाँ

महागुरुजी ने किया, वहाँ आपस की तू-तू मैं-मैं ने उस का प्रशस्त मार्ग गह्वर-पूर्ण बना दिया। मंत्रिमंडल की अधिकार-लिप्सा तथा पारस्परिक वैमनस्य आज दिन समस्त हिंदी-संसार की अवज्ञा की वस्तु हो रही है। जब तक योग्य मंत्रि-मंडल का चुनाव होकर उनमें पारस्परिक सहयोग की स्थापना नहीं होती, तब तक किसी शुभ परिणाम की आशा दुराशा-मात्र ही सिद्ध होगी।

तीसरा एजेंट है अर्थाभाव। साहित्य-सम्मेलन-जैसी एक अखिल भारतीय संस्था के लिये पर्याप्त द्रव्य का न मिलना वास्तव में बड़े दुःख और परिताप का कारण है। जहाँ देश की इतनी संस्थाएँ ३५ करोड़ भारतीयों के दान के भरोसे फ़ल-फूल रही हैं, वहाँ हिंदी-भाषी २० करोड़ मानव-समाज की प्रमुख संस्था की जड़ तक सूख जाना बड़ी ही लज्जा का कारण है। इससे तो यही प्रकट होता है कि हम कोरे नाम के ही हिंदी-प्रेमी हैं। हम अपनी राष्ट्र-भाषा को अनुप्राणित करने के लिये ज़रा-सा भी स्वार्थ-त्याग नहीं करना चाहते। चार आना प्रति मनुष्य भी यदि हम एक बार दे डालें, तो सम्मेलन के कोष में ५ करोड़ रुपया जमा हो जाय। इस स्थिर निधि से सम्मेलन अपना कार्य बड़ी आसानी से करता रह सकता है। उसे फिर कभी भी भिक्षा-वृत्ति की आवश्यकता नहीं रह सकती। किंतु ऐसा हो सकना संभव नहीं प्रतीत होता। पहले तो दान-पात्र की फेरी लगाने के लिये उत्साही युवक ही सम्मेलन के पास नहीं हैं। साहित्य-रत्न और विशारद की उपाधियों से विभूषित होते ही हमारे हिंदी-प्रेमी युवक अपने साहित्य-प्रेम का श्राद्ध कर डालते हैं। उसके बाद वे सम्मेलन का नाम तक नहीं लेते। अतएव उनमें जब तक सम्मेलन के प्रति श्रद्धा का उद्रेक नहीं होता, तब तक उत्साही कार्य-शील युवकों की प्राप्ति भी सम्मेलन को नहीं हो सकती। चंदा मिलने में दूसरी रुकावट है सम्मेलन के हिसाब की गड़बड़। वर्षों से सम्मेलन का हिसाब-किताब ऐसा अस्त-व्यस्त हो रहा है कि उससे लोगों के मन में अनेक संदेह उत्पन्न होते रहते हैं। इसी कारण उसे चंदा भी प्राप्त नहीं होता। अच्छे-अच्छे हिंदी-प्रेमी नरेश भी उससे असहयोग-सा किए रहते हैं। जब तक जनता की एतद्विषयक आशंकाएँ दूर नहीं की जा सकतीं, तब तक सम्मेलन की आर्थिक परिस्थिति ऐसी ही बनी रहेगी। चंदा न मिलने का एक और भी कारण है। वह है बड़े-बड़े हिंदी-साहित्यिकों की सम्मेलन के प्रति अश्रद्धा। सम्मेलन का कार्य-कलाप बहुत दिनों तक कुछ ऐसा अश्लाघ्य तथा अवद्य-सा रहा है, जिससे सभी संकोचशील साहित्यिकों ने उससे अपनी कोई सहानुभूति नहीं रक्खी। यही कारण है कि उनका उसे सहारा नहीं मिल रहा है। यदि भविष्य में भी उसने अपनी आपाधापी नीति न बदली तथा प्रसिद्ध साहित्यिक व्यक्तियों का तिरस्कार किया, तो संभव है, उसके रहे-सहे प्रभाव को भी पर्याप्त ठेस लगे। अतएव झाँसी में एकत्रित सभी साहित्यिक बंधुओं से हमारा हार्दिक अनुरोध है कि वे इस बार एक आदर्श संगठन करें। इस संगठन से कोई भी प्रसिद्ध साहित्य-सेवी निकलने न पावे। अन्यथा हमें भविष्य कुछ उज्ज्वल नहीं प्रतीत होता।

इस वर्ष सम्मेलन का सभापतित्व जिन हाथों में जा रहा है, उनसे हमें अनवरत क्रियाशीलता की आशा तो हो सकती है। उस क्रियाशीलता के परिमाण का अंदाज़ा भी हम गोस्वामीजी के उपजाऊ दिमाग़ की बेहद उपज से लगा सकते हैं, किंतु उस उपज की उपयोगिता को देखते हुए उक्त क्रियाशीलता की उपयोगिता भी संदिग्ध ही रह जाती है। सम्मेलन का सभापतित्व दो-एक वर्ष के लिये सम्मेलन के भविष्य की दृष्टि से निश्चित होना अत्यंत आवश्यक हो उठा है। उसके लिये साहित्य-सेवा का दृष्टि-कोण तब तक गौण ही होना चाहिए। जब परिस्थिति आशा-जनक हो उठे, तब साहित्य-सेवा के सम्मानार्थ सभापतित्व को प्रस्तुत करना हमें उचित प्रतीत होता है। अभी सम्मेलन को बड़े चतुर कर्णधार की

आवश्यकता है, प्रसिद्ध साहित्यिक की कम। ऐसी दशा में श्रीगोस्वामीजी का सभापतित्व हमें यदि निराशा-जनक नहीं, तो अत्यंत आशा-जनक भी प्रतीत नहीं होता। झाँसी में जिस प्रकार से यह चुनाव हुआ, उसका भी हमें पूरा पता है। साहित्य-सम्मेलन के सभापतित्व के लिये उस प्रकार के आयोजन को हम अत्यंत अनुचित और अश्लाघ्य समझते हैं। हम जानते हैं कि दो-चार पत्रकारों के हथकंडों ने वहाँ साहित्य-सम्मेलन की स्वागतकारिणी-समिति का खाका ही बिगाड़ दिया है। यही कारण है कि हमें यह चुनाव संदिग्ध प्रतीत होता है।

किंतु अब जो हो चुका, उसके लिये परिताप करना भी हम ठीक नहीं समझते। बेचारे गोस्वामीजी का स्वयं इस गड़बड़ाध्याय में कहीं भी कोई हाथ नहीं था। जो कुछ हुआ, वह स्वागतकारिणी के अधिकारियों की असावधानी के कारण। अब सम्मेलन की सफलता और पूर्णतः सफलता ही हमारी अभिलषित वस्तु है। आशा है, देश के योग्य साहित्यिक सम्मिलित होकर स्वार्थमय वायु-मंडल से सम्मेलन का उद्धारकर उसके भविष्य को आशामय और उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न करेंगे।

× × ×

१२. हिंदी-साहित्य-जयंती

झाँसीवाले अधिवेशन के साथ ही सम्मेलन का २१वाँ वर्ष समाप्त होता है। अब ४ वर्ष बाद सम्मेलन २५ वर्ष का हो जायगा। हिंदी-साहित्य-संसार की इस प्रमुख संस्था की सफल सेवाओं की स्मृति में तब एक रजत-जयंती मनाने की योजना हम अभी से हिंदी-प्रेमियों के सामने रख देना चाहते हैं। चार वर्ष के इस पर्याप्त समय में उसके लिये अधिक-से-अधिक तैयारी होना चाहिए। प्रत्येक हिंदी-प्रेमी को अभी से उसके लिये प्रयत्नशील होकर उसे सफल बनाने के उपायों का आविष्कार करना चाहिए, जिससे संसार के साहित्यिक इतिहास में हमारी मातृभाषा की यह जयंती एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सके। हम अपने कुछ विचार क्रम-बद्ध रूप से सम्मेलन के सामने रखना चाहते हैं। आशा है, हमारी इस योजना को सम्मेलन ग्रहण करेगा, और उसके लिये अभी से प्रयत्न आरंभ हो जायगा।

(१) जयंती महाकवि तुलसीदासजी की जन्म-भूमि में मनाई जाय। यदि यह संभव न हो, तो किसी अन्य हिंदी-साहित्य के इतिहास से संबद्ध स्थान में मनाई जाय।

(२) जयंती में समस्त संसार के प्रसिद्ध साहित्य-सेवियों को आमंत्रित किया जाय, और उनसे हिंदी-साहित्य के विषय में कुछ व्याख्यानादि कराए जायँ।

(३) हिंदी-साहित्य पर एक बृहत् ग्रंथ संसार-भर के हिंदी-प्रेमियों के निबंधों के संग्रह-रूप में प्रकाशित किया जाय।

(४) समस्त हिंदी-लेखकों, कवियों, संपादकों तथा प्रकाशकों के चित्रों का एक संग्रहालय स्थापित किया जाय।

(५) हिंदी की समस्त प्रकाशित तथा अप्रकाशित पुस्तकों की प्रदर्शिनी की जाय।

(६) समस्त प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का एक पूरा सेट दान-रूप में स्वीकृत करके एक बृहत् हिंदी-पुस्तकालय स्थापित किया जाय।

(७) हस्त-लिखित हिंदी-पुस्तकों का भी एक विराट् प्रदर्शन किया जाय।

(८) जयंती के अवसर पर आए हुए साहित्यिकों के सम्मानार्थ हिंदी-साहित्य के धुरंधर तथा सर्वश्रेष्ठ लेखकों से लिखवाकर ५ सर्वोत्तम पुस्तकों का एक सेट स्मृति-चिह्न के रूप में उन्हें भेंट किया जाय, जिससे विदेशों तक में हिंदी का सिक्का जम जाय।

(९) हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का एक विशिष्ट कार्य-क्रम आगामी २५ वर्षों के लिये, इसी जयंती में, बना लिया जाय।

(१०) इस योजना को सफल बनाने के लिये अभी से एक जयंती-समिति नियुक्त कर दी जाय, जो विभिन्न स्थानों में जा-जाकर जयंती के अनुकूल प्रचार-

कार्य आरंभ कर दे। इसी समिति की देख-रेख में समस्त आयोजन चलता रहे। ३ वर्ष बाद २४वें सम्मेलन में स्वागतकारिणी समिति तथा अन्य समस्त समितियों की योजना कर दी जाय, जिनके द्वारा जयंती का कार्य-संचालन हो।

(११) प्रसिद्ध-प्रसिद्ध प्राचीन साहित्यिकों के संस्मरण भी लेख-बद्ध करा लिए जायँ, और उन्हें जयंती में उपस्थित कर सबसे परिचय कराया जाय।

(१२) साहित्य के सभी अंगों पर विविध परिषदों का आयोजन हो, और तद्विषयक प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध हिंदी-लेखकों को अवश्य आमंत्रित किया जाय।

(१३) इस अवसर के लिये किसी प्रसिद्ध हिंदी-नाट्यकार द्वारा लिखे हुए पटोपयोगी नाटक की फ़िल्म तैयार करने के लिये किसी सिनेमा-कंपनी से अनुरोध किया जाय।

(१४) हिंदी में जिन विषयों पर ग्रंथ नहीं हैं, उन पर कम-से-कम ४ या ५ उत्कृष्ट पुस्तकें अवश्य लिखाई जायँ।

(१५) हिंदी-पत्रकारों तथा लेखकों का एक विशिष्ट संघ स्थापित किया जाय, जिसको देख-रेख में भविष्य में हिंदी की उन्नति का कार्य-क्रम चालू रहे।

हम जानते हैं कि साहित्य-सम्मेलन के मार्ग में अनेक रुकावटें हैं, किंतु यदि अनवरत अध्यवसाय से काम किया जाय, तो जयंती की सफलता कुछ असाध्य नहीं। स्थान-स्थान पर हिंदी-समितियों की अभी से स्थापना कराकर १ आना फ़ंड द्वारा धन-संग्रह प्रारंभ किया जाय। प्रत्येक हिंदी-भाषी व्यक्ति से इस इकन्नी के लिये प्रतिमास अनुरोध किया जाय। इस प्रकार पर्याप्त फ़ंड इन ४ वर्षों में इकट्ठा हो सकता है। यदि आचार्य पद्मसिंहजी, बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त, साहित्य-रत्नाकर श्रीरत्नाकरजी, श्रीवियोगीहरिजी, पं० बनारसीदासजी, पं० माखनलालजी, रायबहादुर जगन्नाथप्रसादजी भानु, रायबहादुर हीरालालजी, पं० गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा, लाला सीतारामजी आदि पुराने तथा नए साहित्य-सेवी कमर कस लें, तथा अपने अमूल्य समय में से थोड़ा-सा भी समय इस योजना के लिये दें, तो ज़रा भी संदेह नहीं कि उनके भारत-प्रसिद्ध नाम के प्रभाव से ही जयंती के लिये रुपया ठीक उसी प्रकार से बरस पड़े, जैसे विश्वजित्-यज्ञ में सर्वहुत तथा वीत-हिरण्मय रघु की रण-यियित्सा-मात्र से ही कौत्स के लिये त्रेता में एक बार बरसा था।

क्या सम्मेलन के कर्ता-धर्ता हमारे इन थोड़े-से शब्दों पर ध्यान देकर इस योजना को क्रियात्मक रूप देंगे?

श्रीमुरारीशरण मांगलिक बी० ए०—आपका प्रयास कई प्रकार से विलक्षण ही है। हिंदी की उन्नति के इतिहास में आपका और आपकी सुधा का स्थान बहुत ही असाधारण रहेगा।

× × ×

१३. हिंदुस्थानी एकेडेमी की सूचना

हिंदुस्थानी एकेडेमी, प्रयाग ने पाँच-पाँच सौ रुपए के दो पारितोषिक हिंदी और दो उर्दू के लिये निम्न-लिखित विषयों पर देने की सूचना दी है—

१. मनोविज्ञान-नैतिक विज्ञान (हिंदी और उर्दू)
२. काव्य (हिंदी और उर्दू)

लेखक की कृति का मौलिक होना ज़रूरी है। कविता की पुस्तक या तो लेखक की कविताओं का संग्रह हो या एक ही दीर्घ कविता हो। पारितोषिक के लिये प्रत्येक पुस्तक की सात-सात प्रतियाँ ३१ अगस्त सन् १९३२ तक जेनरल सेक्रेटरी के पास पहुँच जानी चाहिए।

द्विवेदीजी की दो पुस्तकें

अद्भुत आलाप

(द्वितीयावृत्ति)

विचित्र कौतूहल-पूर्ण निबंध, जिन्हें शुरू करने पर बिना समाप्त किए रहा नहीं जाता। महारथी की लेखन-शैली का कहना ही क्या ! यह पुस्तक लखनऊ-विश्वविद्यालय में बी० ए० में और सी० पी० में मैट्रिक में पढ़ाई जाती है।




वेणी-संहार

(द्वितीयावृत्ति)

महाभारत के सुप्रसिद्ध कथानक का आख्या-यिका-रूप में वर्णन। शिक्षा-विभाग से इनाम और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत। मूल्य ॥=), सजिल्द ॥।=)

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

कुछ कहानियों के संग्रह



प्रेम-प्रसून

(द्वितीयावृत्ति)

सिद्ध-हस्त सुलेखक

श्रीयुत प्रेमचंद

की

स्वाभाविकता-पूर्ण सरस चुनी हुई उत्तमोत्तम कहानियों का संग्रह । मूल्य १=)

सजिल्द १॥=)

मंजरी

(द्वितीयावृत्ति)

कई लब्ध-प्रतिष्ठ गल्प-लेखकों की चमत्कार-पूर्ण रचनाओं का काव्यमय संग्रह । अनेक सुंदर, रंगीन और सादे चित्रों से सुशोभित ।

मूल्य १), सजिल्द १॥)



चित्रशाला (दो भाग)

(द्वितीयावृत्ति)

पं० विश्वंभरनाथ कौशिकजी की ललित कहानियों का संग्रह । पृष्ठ-संख्या ४००; मूल्य २), सजिल्द २॥)

दूसरा भाग मूल्य १), सजिल्द १॥)

तूलिका

श्रीयुत विनोदशंकर व्यास की १८ कहानियों का संग्रह ।

पृष्ठ-सख्या १७६; सचित्र

मूल्य १), सजिल्द १॥)

संचालक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

एशिया में प्रभात



योगिराज तपस्वी अरविंद घोष के सुहृद और फ्रांस के अद्भुत त्यागी विद्वान् श्रीमान् पॉल रिचर्ड की Dawn over Asia का अतीव भावमय सुंदर अनुवाद । पुस्तक अतीव सुंदरता से छपी है ।

मूल्य ॥)
सजिल्द १)



निबंध-निचय

लेखक, हास्यरसावतार पं० जगन्नाथ-प्रसादजी चतुर्वेदी

आपकी लेखनी का एक-एक वाक्य हास्य-रस से रंजित और विनोद से विकसित रहता है । पुस्तक में आपके लेखों और भाषणों का अपूर्व संग्रह है ।

मूल्य १।)
सजिल्द १|||)

संचालक
गंगा-पुस्तकमाला-
कार्यालय
लखनऊ

प्रभु-चरित्र



सुख-सागर और प्रेम-सागर की तरह बोलचाल की भाषा में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजी का चरित्र-ग्रंथ। गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरित्र-मानस के आधार पर लिखित । बालक-बालिकाएँ, पुरुष-स्त्री सबके पढ़ने योग्य । पृष्ठ-संख्या ४३६ ;

मूल्य |||)
सजिल्द १)



इ
किसी
सब व
हिंदी
१४
सजि

उद्यान

(द्वितीय संस्करण)

लेखक

श्रीयुत शंकरराव जोशी,

एग्रीकल्चर-ऑफ़िसर

इस पुस्तक से साधारण मनुष्य भी, विना किसी माली की सहायता के, बाग़बानी के सब काम कर सकता है। अपने विषय की हिंदी में सर्वांग-पूर्ण पुस्तक है।

१४ चित्रों-सहित। मूल्य १=)

सजिल्द १॥=)

शहर

और ग्राम

दोनो के

लिये



कृषिमित्र

लेखक

पं० गंगाप्रसाद पांडेय एल्० ए-जी०

सुपरिंटेंडेंट ऑफ़् एग्रीकल्चर

इस पुस्तक में सुंदर, सरल और सुबोध भाषा में कृषि-विज्ञान के नियमों को समझाया गया है। इसकी बातें प्रत्येक किसान और उनके बालकों को कंठस्थ होनी चाहिए। मूल्य ।–), सजिल्द ॥)

संचालक

गंगा-पुस्तकमाला-

कार्यालय

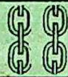
लखनऊ



हठयोग

(द्वितीयावृत्ति)

बाबा रामचारकदासजी - कृत पुस्तक का अनुवाद। इसमें स्वामीजी के बनाए हुए ऐसे सरल अभ्यास हैं, जिनसे आपकी शारीरिक उन्नति और मनःशक्ति-प्रबलता बढ़ेगी। मूल्य १।=), सजिल्द १॥।=)



भिखारी से भगवान्

(द्वितीयावृत्ति)



सुप्रसिद्ध लेखक जेम्स ऐलेन की (From Poverty to Power) का हिंदी-अनुवाद। स्वास्थ्य, सफलता, स्वार्थ तथा सत्य, शक्ति और परमानंद का रहस्य, आध्यात्मिक शक्ति का उपार्जन आदि-आदि विषयों का विशद वर्णन है। मूल्य १), स० १।)



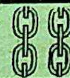
सुकवि-संकीर्तन

लेखक—साहित्य-महारथी

पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी



इसे पढ़ने में एक उपदेशप्रद उपन्यास का-सा आनंद आता है। कहीं साहित्यिक लालित्य है, कहीं अगाध पांडित्य है, कहीं काव्य की कमनीय छटा है। बिलकुल नायाब चीज़ है। इसमें दस चित्र भी हैं। सुंदर, सरल, सरस और प्रौढ़ गद्य का चमत्कार है। मूल्य १।), सजिल्द १॥)



संचालक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ


आर्यी दुनिया

स्त्रियोपयोगी सुंदर, सचित्र और सरल पुस्तकें

महिला-माला की मनोहर

: : मणियाँ : :

कमला-कुसुम (सचित्र)—लेखिका, श्रीमती गिरिजादेवी ; मूल्य ॥।)

गुप्त संदेश (दो भाग)—लेखक, डॉ० युद्धवीरसिंह ; मूल्य १)

जच्चा—लेखक, कविराज श्रीप्रतापसिंह वैद्य, हिंदू-विश्वविद्यालय के आयुर्वेद-विभाग के सुपरिंटेंडेंट ; मूल्य ॥।)

देवी द्रौपदी (सचित्र)—लेखक, कविवर श्रीरामचरितजी उपाध्याय ; मूल्य ।=)

देवी पार्वती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ॥।), १।)

देवी सती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ।।), १)

देवी सीता (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य १॥), २)

देवी शकुंतला—लेखक, श्रीहरिप्रसाद द्विवेदी ; मूल्य ॥=), ॥।=)

नल-दमयंती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ॥।), १।)

नारी-उपदेश—लेखक, श्रीगिरिजाकुमार घोष ; मूल्य ॥)

पत्रांजलि—मूल-लेखक, श्रीसतीशचंद्र चक्रवर्ती ; अनुवादक, पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी ; मूल्य ।=)

भारत की विदुषी नारियाँ—संपादिका, श्रीमती कृष्णकुमारी ; मूल्य ॥)

भारतीय स्त्रियाँ—अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा ; मूल्य १॥), २)

महिला-मोद—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ।=)

लक्ष्मी (सचित्र)—लेखक, श्रीगिरिजा-कुमार घोष ; मूल्य ॥)

वनिता-विलास (सचित्र)—लेखक, भूतपूर्व सरस्वती-संपादक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ॥)

सती सावित्री (सचित्र)—लेखक, अध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी 'श्रीहरि' ; मूल्य ॥=), ॥।=), १=)

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ



गीतकार—श्रीराजारामजी, संगीताध्यापक

राग यमन कल्याण——तीन ताल

गीत

स्थायी

भगवत के गुण गाइए मन;
चरण-कमल का करके चिंतन।

अंतरा

जो गावे, सो सब सुख पावे;
छूटत-टूटत जग के बंधन।

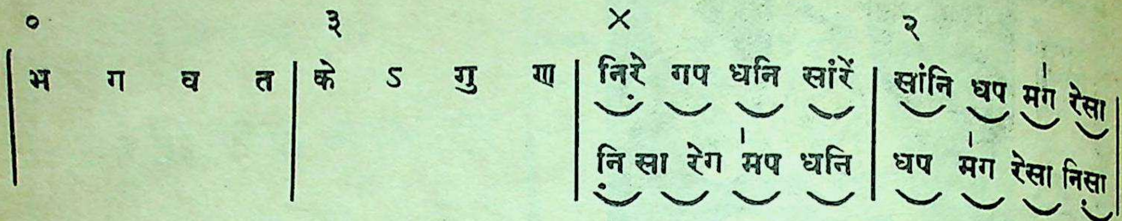
स्थायी

०				३				×				२			
ग	म	ग	रे	नि़	रे	स	स	ग	म	ग	रे	गम	पध	पम	प
भ	ग	व	त	के	—	गु	ण	गा	—	—	इ	ए-	--	म-	न
नि	ध	नि	ध	म	ध	प	—	ग	रे	ग	रे	नि	रे	सा	सा
च	र	ण	क	म	ल	का	—	क	र	के	—	चिं	—	त	न

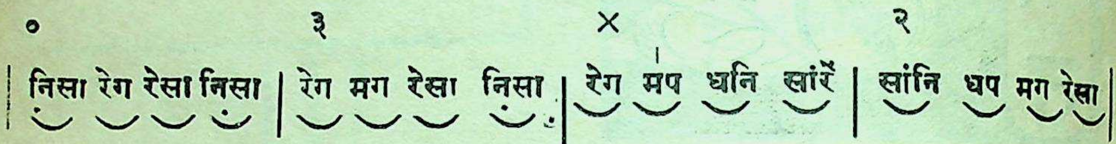
अंतरा

०				३				×				२			
ग	—	प	—	ध	—	प	—	सां	सां	सां	सां	नि	रें	सां	सां
जो	—	गा	—	वे	—	सो	—	स	ब	सु	ख	पा	—	वे	—
गंरें	गं	रें	सां	नि	ध	पम	प	ग	म	ग	रे	नि़	रे	सा	सा
छू-	—	ट	त	टू	—	ट·	त	ज	ग	के	—	बं	—	ध	न

तान सम से

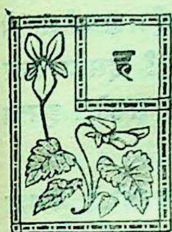

० ३ × २
भ ग व त | के ऽ गु ण | निरे गप धनि सांरें | सांनि धप मग रेसा
निसा रेग मप धनि | धप मग रेसा निसा

तान खाली से


० ३ × २
निसा रेग रेसा निसा | रेग मग रेसा निसा | रेग मप धनि सांरें | सांनि धप मग रेसा



१. विधवा-विवाह की आवश्यकता



हमारे देश के आदमी चिरकाल से चले आ रहे कुसंस्कारों के बड़े ही अनुगत हैं। जो कुछ पुरुष-परंपरा से चला आता है, वह अनेक अनर्थों का मूल और अनेक उत्पातों का कारण होने पर भी, उसे ही श्रेयस्कर समझकर वही करने का हमारा स्वभाव-सा हो गया है। इन प्रथाओं के प्रबल और प्रचलित रहने से कितने ही प्रकार के अनिष्ट होते जा रहे हैं। कुसंस्कार के कारण होनेवाले अनिष्टों को प्रत्यक्ष होते हुए भी इस देश के लोग सचेत नहीं होते। कुसंस्कार मनुष्य का बड़ा भारी शत्रु होता है। विधवा-विवाह प्रचलित होने से अनेक अनर्थों का मिट जाना सर्वथा सिद्ध है। किंतु इधर बहुत दिनों से विधवा-विवाह की चलन न रहने से लोग ऐसा करने से हिचकिचाते हैं।

अनेक लोग यह आपत्ति किया करते हैं कि यह चाल अगर सचमुच श्रेयस्कर होती, तो हमारे पूर्वज पुरुष इसे क्यों छोड़ देते? इस विषय में यह कहना ही पर्याप्त होगा कि यह प्रथा सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग के कुछ समय तक प्रचलित थी। स्मृति और पुराण इस बात के साक्षी हैं। इसके बाद ही यह प्रथा धीरे-धीरे कम होने लगी, और अंत को बिलकुल उठ गई। इसके उठ जाने का प्रधान कारण यही है कि पूर्व युगों की अपेक्षा कलियुग में सहमरण (सती) की प्रथा उत्तरोत्तर ज़ोर पकड़ती गई। अनेक अथवा प्रायः सभी विधवाएँ पति के साथ जलती हुई चिता पर, अथवा विदेश से स्वामी के मरने की ख़बर पाकर अकेले ही चिता पर चढ़कर सती हो जाती थीं। इस कारण आजकल की तरह उस समय विधवाओं की संख्या अधिक नहीं थी। कन्या, बहन, बहू आदि की दुस्सह वैधव्य यंत्रणा और अनर्थ बहुत कम देखने को मिलते थे। जब विधवाओं की संख्या कम हो गई, तब विधवा-विवाह की वैसी आवश्यकता ही नहीं रही। इससे यह जान पड़ता है कि इसी कारण धीरे-धीरे विधवा-विवाह की प्रथा उठ गई होगी। किंतु इस समय क़ानून द्वारा सती की प्रथा उठा दी गई है। इस कारण व्यभिचार आदि अनर्थों की मात्रा भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। इस समय इस अनर्थ को कम करने और विधवाओं की वेदना को दूर करने का यही एक उपाय है—"विधवाओं का पुनर्विवाह प्रचलित किया जाय।"

भारतीय विधवाओं की अवस्था सर्वथा करुणोत्पादक है। इनकी दर्दनाक दशा देखकर पत्थर-सा कलेजा भी पिघल जाता है। बरबस सहानुभूति हो जाती है। फिर भी कुछ स्वार्थियों की छत्रच्छाया में इन्हें सुख-शांति मिलने की आशा नहीं।

पंडिताभिमानी धार्मिकों का फ़तवा है—"वैधव्य दुख झेलकर ही विधवा स्वर्ग जायगी।" पर क्या इन्हें कुछ वसंत की भी ख़बर है? सारे संसार की जन-संख्या क़रीब डेढ़ अरब की है, और कहीं भी विधवाओं का पुनर्विवाह स्वर्ग की राह में रोड़ा नहीं अटकाता, और क्या, तीस करोड़ भारतीयों में भी, सात करोड़ मुसलमानों के घर और उतने ही अछूतों में भी विधवाएँ ठुकराई नहीं जातीं। आर्य-समाजी, ब्रह्म-समाजी और कृस्तानों में भी विधवाओं को पूरी स्वतंत्रता है। हलवाई, कुर्मी तथा अहीरों ने भी अपनी बहू-बेटियों के दुखों को देखा है। केवल पाँच-सात करोड़ ब्राह्मण, क्षत्रियों और कायस्थों में ही यह प्रथा है। उसमें भी स्त्रियों की संख्या पुरुषों से आधी ही होगी, और थोड़ी-सी विधवा। तब क्या दो-चार लाख विधवाओं को सताकर ही इन धर्म के ठेकेदारों को स्वर्ग बसेगा?

भारत के कुलीन घरों में पुनर्विवाह का प्रश्न उठाना ही मानो उनमें व्यभिचार फैलाना समझा जाता है। वहाँ की विधवाएँ भले ही चोरी-छिपे व्यभिचार करें, गर्भपात और भ्रूण-हत्या करें, कोई पूछनेवाला नहीं। केवल ऐसे अनाचार चोरी-छिपे ही होने चाहिए, या यों कहिए कि आड़ में होने चाहिए। यदि वही कार्य समाज में खुल्लमखुल्ला किया जाता है, तो उन बेचारी अबलाओं को भारी आपत्ति का सामना करना पड़ता है। जिन घरों से विधवाएँ निकल जाती हैं, या निकल गई हैं, उनकी समाज में घोर निंदा हुई है या होती है। ऐसे चोरी-छिपे व्यभिचार को जानते हुए भी छिपाने की चेष्टा करते हैं। वे उन पर किसी प्रकार की सख़्ती नहीं कर सकते। कारण, उनको यह अच्छी तरह विदित रहता है कि देश की वर्तमान स्थिति में इन विधवाओं के लिये ब्रह्मचर्य का प्रश्न उठाना ही बड़ा टेढ़ा काम है।

अब ज़रा हमारे यहाँ की विधवाओं की संख्या पर भी ध्यान दीजिए। सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार समस्त भारत की विधवाओं की संख्या इस प्रकार थी—

१ वर्ष से कम आयु की	
१ वर्ष से २ वर्ष तक	१०१४
२ वर्ष से ३ वर्ष तक	८५१
३ वर्ष से ४ वर्ष तक	१८०७
४ वर्ष से ५ वर्ष तक	४७५१
५ वर्ष से १० वर्ष तक	९२७३
१० वर्ष से १५ वर्ष तक	८४२७०
	२२३०४२
	कुल ३३५०१५

उपर्युक्त संख्या पर विचार कीजिए, देश का वर्तमान वातावरण देखिए, और फिर ज़रा अपने हृदय पर हाथ रखकर बताइए कि क्या ये विधवाएँ ब्रह्मचर्य-व्रत से रहकर अपना जीवन बिता सकती हैं? इसका उत्तर सिवा नहीं के आप कुछ दे ही नहीं सकते। इसका क्या कारण है?

देश में जो दिनोंदिन वेश्या-वृत्ति बढ़ रही है, उसका सबसे ज़बर्दस्त कारण वैधव्य जीवन ही है। समाज को यदि अपनी संतान को वेश्या-वृत्ति से बचाना है, तो उन्हें विधवाओं के विवाह की प्रथा को शीघ्र-से-शीघ्र जारी कर देना चाहिए। इसमें किसी भी प्रकार की रुकावट डालना ठीक नहीं है। यदि रुकावट डाली गई, तो यह पाशविक वृत्ति घटने के स्थान में बढ़ती ही जायगी।

भारतीयो! और कितने दिनों तक तुम आलस्य के पलँग पर मोह-निद्रा में अचेत पड़े रहोगे? एक बार ज्ञान की आँखें खोलकर देखो, तुम्हारी पुण्य भूमि भारतवर्ष में व्यभिचार और गर्भ-हत्या का पाप किस वेग से बढ़ रहा है। बस, अब यथेष्ट हो गया। अब एकाग्र होकर शास्त्र के यथार्थ तात्पर्य और मर्म को समझने में मन लगाओ, और उसके अनुसार काम करो। ऐसा करने ही से अपने देश का कलंक दूर कर सकोगे। किंतु दुर्भाग्य-वश तुम चिर-संचित कुसंस्कार के ऐसे वशीभूत हो रहे हो, देशाचार के ऐसे दास हो रहे हो, लौकिक आचार की रक्षा में ऐसे दृढ़ हो रहे

हो कि सहसा यह तुमसे आशा नहीं की जा सकती कि तुम कुसंस्कार और देशाचार का अनुसरण छोड़कर यथार्थ सन्मार्ग के पथिक बन सकोगे। अभ्यास के दोष से तुम्हारी बुद्धि और धर्म-प्रवृत्ति ऐसी कलुषित हो गई है कि अभागिनी विधवाओं की दुर्दशा देखकर तुम्हारे चिर-शुष्क हृदय में कारुण्य रस का संचार होना ही कठिन है। देश में व्यभिचार और भ्रूण-हत्या का प्रबल प्रवाह देखकर भी तुम्हारे हृदय में उस पर घृणा का होना असंभव-सा है।

क्या तुम अपनी प्राण-प्यारी कन्याओं को वैधव्य की आग में जलाने के लिये राज़ी हो। वे अजेय इंद्रियों के वशीभूत होकर व्यभिचार-दोष से दूषित हों, तो उसमें तुम्हें लज्जा नहीं आवेगी? धर्म-लोप के भय को तिलांजलि देकर केवल लोक-लज्जा के भय से उनकी भ्रूण-हत्या में सहायता करके स्वयं सपरिवार पाप-पंक से मलीन होना तुमको पसंद है?

हाय! कैसे आश्चर्य की बात है कि शास्त्र-विधि के अनुसार विधवा बालिका का पुनर्विवाह करके उसे वैधव्य यंत्रणा से बचाना और आप भी सब आपत्तियों से छुटकारा पाना तुमको पसंद नहीं? तुम समझते हो कि पति के मरते ही स्त्रियों का शरीर पत्थर का हो जाता है, उन पर दुःख और यंत्रणा का प्रभाव नहीं पड़ता, अजेय शत्रु उनकी इंद्रियाँ एकदम निर्मूल हो जाती हैं, किंतु तुम्हारा यह सिद्धांत बिलकुल निर्मूल है। इस बात के पुष्ट प्रमाण तुमको पग-पग पर प्राप्त होते हैं। सोचकर देखो, इसी पर ध्यान न देने के कारण तुम कैसा विषमय फल भोग रहे हो।

कैसे खेद की बात है! जिन पुरुषों में दया नहीं, धर्म नहीं, न्याय-अन्याय का विचार नहीं, तथा हिताहित की समझ नहीं है, एवं सद्विवेचना नहीं है, और वे लोकाचार की रक्षा को ही प्रधान कार्य और परम धर्म समझते हैं, उस देश में, हे ईश्वर! अबला स्त्रियों को पैदा ही मत करो!

हा अबलाओ! तुम किस पाप से भारतवर्ष में जन्म ग्रहण करती हो? हे करुणे! क्या तुम अबलाओं की इस दीन दशा पर करुणा न करोगी?

(कुमारी) सत्यवती

× × ×

२. पट-परिवर्तन

संसार में रमणी रमणीयता तथा कोमलता का स्वरूप मानी जाती है, परंतु इस कोमल प्राणों पर जन्म से मरण तक जिन-जिन कठिन समस्याओं का आघात होता है, और वह उन्हें किस सहनशीलता से सहती है, उसे केवल रमणी-हृदय ही जानता है। हमें इन कठिनाइयों का सामना उस समय से करना पड़ता है, जब से हम माता की कुक्षि में पदार्पण करती हैं। अर्थात् उसी समय से हमारे माता-पिता तथा अन्य परिवारी जन यही कामना करते हैं कि कहीं हमारा दुस्स्वरूप कुक्षि में न घुस आवे। परंतु जब तक यह रहस्य माता के गर्भ में गर्भित रहा, विशेष आपत्ति न उठी, केवल मैं ही उस आगामी शुभागमन का अनुमान कर सकी, जो मुझे जन्म-समय पर मिलनेवाला था।

पाठिकागण तनिक ध्यान धरकर विचारें कि हमारी नीव पड़ते ही हमारे लिये किस प्रकार का वायुमंडल उत्पन्न हो रहा है, फिर जीवन का क्या हाल होगा, जिसमें हमें पदार्पण करना है। जब अनेकों कष्टों के पश्चात् जन्म हुआ, तब उस तिरस्कार ने भीषण रूप धारण किया, ऐसा ज्ञात होता था, मानो उनकी सारी आशाओं तथा प्रसन्नताओं पर पानी पड़ गया हो, अथवा उनकी सारी संपत्ति या वैभव का ह्रास हो गया हो।

यही नहीं, राजपूताने की कुछ झूठी घमंडी जातियों में तथा कुछ अन्य बर्बर जातियों में तो हमारा स्वागत गला घोंट देने व किसी नदी में बहा देने से ही होता था। परंतु साधारणतः सभ्य और उच्च कुलों में हमारा वह दिवस दृष्टिगोचर कर जब हमारे कारण 'अमीन' उनके दरवाज़े पर नीलाम की बोली बोलेगा, शोक तो अवश्य ही मनाया

जाता है। यदि समाज में इस कुप्रथा का प्रचार न होता, तो संभव था कि हमें अपने जन्म-दिन के शुभागमन का अनुभव विपरीत होता। हमारे अपराध के कारण बेचारी प्रसवा माता की भी देख-रेख में त्रुटि होने लगी। परंतु इस अपराध की भागी कहाँ तक मैं अथवा मेरी माता थीं, केवल प्रकृति ही जानती है, जिसने यह सारा चक्र रचा है। जिसके अपराध पर हमको जीवन के प्रथम शुभागमन, का इस प्रकार अनुभव हुआ, हम एक अनावश्यक, तिरस्कारित वस्तु समझी गईं। लालन-पालन भी विधि-पूर्वक न हुआ, केवल माता के ही स्वाभाविक प्रेम ने हमें जीवित रक्खा। परंतु जब हम तनिक बाल्यावस्था को प्राप्त हुईं, तब पिता आदि परिजनों को अपने दैवी प्रसाद से आकर्षित किया। अपनी सरलता, मधुरता और दीनता से उनके हृदयों में

लगी। यह सारा समुदाय, जिसका आयोजन बड़े प्रयास से वर्षों में कर पाया था, क्षण-मात्र में अस्त-व्यस्त होता-सा दिखाई दिया, सारी संपत्ति बात-की-बात में हवा में उड़ती-सी चली प्रतीत हुई, और मैं फिर दुखिया, निस्सहाय एक नए संसार में बहकर जाती-सी दिखाई पड़ी। माता-पिता ने मुझे एक आनंदमय वाटिका की कली की भाँति चुनकर एक अपरिचित माली को दे दिया। कन्याओं के जीवन में क्या ही आश्चर्य-जनक परिवर्तन होते हैं, वह एक वायुमंडल से दूसरे में कैसी लुढ़का-सी दी जाती हैं। हे भगवान्! वही माता-पिता, जो निज आत्मा की भाँति मुझे देखा करते थे, उन्हीं के सुकोमल हृदयों में कहाँ से इतने साहस और धैर्य का प्रादुर्भाव कर देता है। माता जो अपनी संतान को प्राणों से भी प्रिय समझती है और न जिसके ऋण

> सुकवि श्रीयुत शिवरत्न शुक्ल—आपमें प्रतिभा है, इससे आप पत्रकला-नाट्यशाला में आश्चर्यमय पर्दा बदल देते हैं। सुधा का शृंगार करने में आप सिद्धहस्त हैं।

स्थान प्राप्त किया। परंतु तब भी लड़कों की अपेक्षा हमारे खान-पान, वस्त्राभूषण तथा स्वतंत्रता में बड़ा ही अंतर रक्खा गया। परंतु ईश्वर-कृपा से इन सब न्यूनताओं पर भी लड़कों की अपेक्षा हमारा स्वास्थ्य, भाव, विचार, व्यवहार और विद्या-बुद्धि विकसित ही रही, और उन्हीं हृदयों में अपने परिश्रम से ही विशेष स्थान प्राप्त किया, और किसी प्रकार उसी तिरस्कारमय वायुमंडल में प्रेममय वायुमंडल उत्पन्न किया। अपने राग में मधुर-मधुर गीत गानकर प्रथम तो दूसरों को प्रसन्न किया, अपनी सखी-सहेलियों के सत्संग में एक आनंदमय सौरभ का सुख भोगने लगीं।

परंतु विधाता अथवा इस लोक के कर्मदाता इस दशा को भी देख न सके। इसमें एक परिवर्तन! भीषण परिवर्तन करने की सोचने लगे। हमारे निर्मल आकाश में एक कालिमा की श्याम घटा दिखाई देने

से संतान आजन्म उऋण ही हो सकती है। हे माता! तुम्हीं मेरी स्वच्छंदता का अंत कर एक अपरिचित स्थान के अपरिचित जनों के साथ आजन्म के लिये ग्रंथि बाँध देती हो। जो माता-पिता ऐसे प्रियजन होते हैं, वह क्यों जीवन में विलग हो जाते हैं। यह बड़ी कठिन समस्या है, इसका हल करना केवल सृष्टि-रचयिता के ही हाथ में है।

अब नाटक का जो नया दृश्य आरंभ होता है, उसका कहना ही क्या है, उसमें हमारे प्रत्येक चाल-ढाल, विचार, व्यवहार पर बड़ी ही विकट समालोचनाएँ होती हैं। जीवन की दिनचर्या नवीन रूप धारण करती है, नवीन चरित्रों का अभिनय करना होता है। इन सबके परे यदि धर्म-माता आत्म-सम्मानित हुईं, तब तो बवंडर में कुछ स्थिरता मिली, और यदि हुईं कंटक-रूप, तो फिर क्या—अमावस्या की रात्रि में काली घटा और भी छा गई। वहाँ पर

आँगन की धूप देखना तो अत्यंत ही अनावश्यक है। क्या प्राचीन काल में स्त्रियाँ पर्दा न करती थीं? अवश्य, परंतु आडंबर नहीं। भगवान्! कब वह सुदिन फिर लौटेंगे, जब हमारी समाज हृदय व नेत्रों के सच्चे पर्दे का स्वरूप देखेगी। विशेषकर सारी आधुनिक आपत्तियाँ स्त्री-समाज में विद्या के अभाव के कारण ही हैं। वरना नारी-जीवन जो एक महान् तपस्या का जीवन है, इसमें आदि से अंत तक स्वार्थ-परायणता का लेश नहीं। हम अपना तन-मन-धन अपने जनों के लिये निछावर करती रहती हैं। हम दूसरों के सुख में ही अपना सुख और उन्हीं के दुख में दुखी हुआ करती हैं। ऐसे स्वार्थ-रहित पवित्र जीवन को हमें अधम न समझना चाहिए। यह बड़ा महत्त्व-पूर्ण है। केवल हमें विद्या द्वारा अविद्या-अंधकार हटाकर अपने जीवन का उज्ज्वल स्वरूप देखना चाहिए।

भगवानश्री



१. स्वर्गीया श्रीमती पुरुषार्थवती विशारदा



हिंदी-साहित्य और कविता के लिये यह अत्यंत दुर्भाग्य की बात है कि एक उदीयमान प्रतिभाशालिनी महिला कवि का स्वर्गवास हो गया है! एक अधखिली कली अपना पूर्ण सौंदर्य और सुरभि प्रकट किए विना ही मुरझा गई!



श्रीमती सावित्रीबाई

सुधा के पाठक 'कुमारी' पुरुषार्थवती के नाम और कविताओं से भली भाँति परिचित होंगे। पुरुषार्थवतीजी अब कुमारी नहीं रही थीं। कुछ ही दिन हुए, उनका विवाह हिंदी के प्रसिद्ध गल्प-लेखक और साहित्यिक श्रीयुत चंद्रगुप्तजी विद्यालंकार से हुआ था। आशा थी कि यह साहित्यिक जोड़ी हिंदी की ख़ूब सेवा करेगी। चंद्रगुप्तजी अपनी गल्पों के लिये बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे थे। उनमें सच्चे लेखक की अपूर्व प्रतिभा विद्यमान है। उनकी गल्पों में मौलिकता, सजीवता और नवीन विचारों तथा कल्पनाओं का समावेश रहता है। उनको अपनी जीवन-सहचरी एक प्रतिभाशालिनी कवि मिली थी। स्त्रियों में भी कविता करने का शौक़ तो बहुत बढ़ गया है। बहुत-सी लड़कियों की कविताएँ हिंदी के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। पर पुरुषार्थवतीजी की कविताओं को जिसने भी पढ़ा, उससे यह कहे विना न रहा गया कि यह एक दिन अच्छी कवि बनेगी। पिछले साल, अगस्त के अंतिम सप्ताह में, काश्मीर की सुमनोहर घाटी में, जब इन दो साहित्यिकों—गल्पकार और कवियों का विवाह बड़ी धूम-धाम के साथ हो रहा था, तब बहुत-से साहित्य-सेवी एकत्रित थे। सब एक स्वर से यही कह रहे थे कि यह जोड़ी किसी दिन हिंदी-संसार का मुख उज्ज्वल करेगी। परंतु उसी समय आसमान के तारों के पीछे छिपा हुआ दैव मुस्किराकर कह रहा था कि यह गठबंधन ६ महीने से ज़्यादा

के लिये नहीं है। कहते हैं कि "जो लोग देवताओं को बहुत अधिक प्यारे होते हैं, उन्हें वे शीघ्र अपने पास बुला लेते हैं।" निस्संदेह प्रतिभाशालिनी पुरुषार्थी इस



श्रीमती संखजवती-लक्ष्मीबाई

दुनिया की चीज़ नहीं थी, उसे देवताओं ने इतनी जल्दी अपने पास बुला लिया। गत ११ फ़रवरी को वह अपने शोक-संतप्त पारिवारिक जनों को ही नहीं, अपितु संपूर्ण साहित्य-प्रेमियों को रुलाती हुई इस असार संसार से चली गई। भाई चंद्रगुप्तजी को हम किन शब्दों में सांत्वना दें, उनके लिये यह अनभ्रवज्र-पात है। उनकी सारी आशाएँ, कल्पनाएँ और आकांक्षाएँ धूल में मिल गईं। उन्हें शायद यही जानकर कुछ संतोष हो कि आज वह अकेले नहीं रोते, पुरुषार्थवती को यादकर रोनेवाले बहुत हैं, और जब तक उनकी कविता रहेगी, तब तक उस कली के विना खिले ही मुरझा जाने पर रोना बंद नहीं होगा।

काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में एक प्रसिद्ध परिवार है, जिसके मुखिया ला० चिरंजीतलालजी हैं। प्रतिवर्ष हज़ारों यात्री काश्मीर की सैर करने के लिये जाते हैं, इनमें से जिन लोगों को काश्मीर के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन को समझने की ज़रा भी परवा होती है, वे ला० चिरंजीतलालजी के संसर्ग में आए विना नहीं रह सकते। उनका घर एक आदर्श-घर है, जो हमेशा एक सदावर्त बना रहता है। कितने ही अतिथि आ जायँ, वहाँ सबके लिये स्थान है। श्रीनगर की आर्य-समाज मुख्यतया इसी परिवार के दान पर चल रही है। शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में इस परिवार ने अच्छी उन्नति की है। ला० चिरंजीतलालजी पंजाब के मेरा-नामक क़स्बे के रहनेवाले हैं। युवावस्था में वह काश्मीर आए थे। जब वह पहलेपहल वहाँ गए थे, तब उनकी हालत बहुत मामूली थी। अपने धैर्य, साहस और प्रयत्न के बल पर आज वह काश्मीर के प्रमुख व्यापारियों और नागरिकों में एक हैं। श्रीमती पुरुषार्थवती लाला चिरंजीतलालजी की तृतीय कन्या थी, उसने हिंदी और संस्कृत की ऊँची शिक्षा प्राप्त की थी। परंतु इस अक्षर-शिक्षा के अतिरिक्त उसने प्रकृतिदेवी की गोद में बैठकर वह अनुपम शिक्षा प्राप्त की थी,



डॉक्टर सो० आई० रुग्मीअम्मा

जिसे पाना किसी विरले के लिये ही संभव है। काश्मीर की ऊँची-ऊँची हिमाच्छादित घाटियों, डल झील पर नाचते हुए कमलों और विनम् के विशाल वृत्तों ने उसे वह अनुपम पाठ पढ़ाया था, जो किसी स्कूल में नहीं



श्रीमती पूनमचंदजी राँका

पढ़ा जा सकता। वह काश्मीर की घाटी के रंग-बिरंगी फूलों में पली थी। केसर की मदमाती सुगंधवाली क्यारियों में उसका शैशव व्यतीत हुआ था। काश्मीर का संपूर्ण वातावरण ही काव्यमय है। कविता के उस अनंत सोते में उसने मन-भर काव्यामृत का पान किया था। पर शोक! पुरुषार्था अपनी अपूर्व प्रतिभा को अपने साथ ही लेकर चली गई। हिंदी का दुर्भाग्य है कि वह इतनी शीघ्र अपनी जीवन-लीला को समाप्त कर गई।

हम पाठकों के सम्मुख श्रीमती पुरुषार्थवती की कविताओं के कुछ उद्धरण पेश करते हैं, ताकि वे जान सकें कि हिंदी की इस बालिका कवि ने अपने शैशव में ही किस प्रकार के अनुपम संगीत की सृष्टि की थी।

'निराशा' इस शीर्षक से एक कविता पुरुषार्था ने लिखी थी—

(१)

सोचा, वह आवेंगे—क्या हो
बिठलाने का साज ?
टूटी-सी कुटिया में हा ! मिल
सका न कुछ भी आज।
हुई निराशा—सँभल गई, फिर
दुखिया बने न दीन।
अस्तु, हृदय-मंदिर में ही वह
हो लेंगे आसीन।

(२)

चिंता हुई तभी मन में क्या
दूँ उनको उपहार ?



श्रीमती शांता बी० सुखदंकर एम्० ए०

लुढ़क पड़े दो आँसू नयनों से
अंतिम आधार।
पुलकित हो सोचा—इससे बढ़
क्या है जीवन-सार ?
यही अश्रु की दो बूँदें दूँगी
चरणों पर वार।

(३)

बीती साँझ—निशा भी बीती,
आया सुंदर प्रात ;
समझ रही थी मैं यह ही है
मेरा पुण्य-प्रभात।
किंतु कहाँ उल्लास, कहाँ विश्वास,
कहाँ था मान।
आशा की निराश घड़ियाँ थीं,
आ न सके भगवान।

'मीठा जल बरसानेवाले' के नाम से बादल को संबोधित कर क्या अच्छा कहा है—

(१)

नील वर्ण की चादर डाले,
उमड़-घुमड़कर आनेवाले ;
नगर, गाँव, गिरि-गह्वर, कानन,
निज संदेश सुनानेवाले।

(२)

तूने देखा सभी ज़माना,
पहला गौरव भी था जाना ;
वर्तमान तूने पहचाना,
लुटा चुके हम सभी ख़ज़ाना।

(३)

दिन खोटे आए अब अपने,
सुखद दिनों के लेते सपने ;
साहस-बल सब कुछ खोकर हम
स्वार्थ-माल ले बैठे जपने।

(४)

ऐसा अमृत-जल बरसा दे,
तप्त दिलों की प्यास बुझा दे ;
वीरों का संदेश सुना दे,
हमको निज कर्तव्य सुझा दे।



श्रीमती के० एस० थिमय्या

(५)

हे स्वच्छंद विचरनेवाले,
हे स्वातंत्र्य सुधा-रसवाले,
हमको भी स्वाधीन बना दे,
मीठा जल बरसानेवाले।

कविता के रूप में ये 'प्रश्न' कितने सुंदर किए गए हैं—

(१)

सांध्य गगन की ललित लालिमा,
विहग-वृंद का कलरव-नाद ;
शीत, मंद, शुचि मलय-प्रभंजन,
किसकी अहो दिलाते याद ?

(२)

बाल सूर्य की मृदुल रश्मियाँ,
उषा-सुंदरी का वर वेश ;
चंचल सरिता का कल गायन,
देते क्या अतीत-संदेश ।

(३)

व्यथित हृदय-तंत्री झंकृत कर,
कौन अहो गाता है गान ;
किस अतीत की याद दिलाकर,
बेसुध कर देता अनजान ।

ये कविताएँ जिस संग्रह से उद्धृत की गई हैं, वह श्रीमती पुरुषार्थवती के अपने हाथ का लिखा हुआ है । इस संग्रह का नाम 'निःश्वास' है, और इसे इस प्रकार से लिखा हुआ है, जैसे प्रेस में भेजने के लिये तैयार किया हो । हमारी इच्छा है कि श्रीमती पुरुषार्थवती का यह प्रथम और अंतिम 'निःश्वास' हिंदी के काव्य-कानन को सदा सुरभित करता रहे । क्या यह संग्रह कभी पाठकों के हाथ में आवेगा ।

सुशीला शास्त्रिणी

× × ×

२. महिलाओं की प्रगति

श्रीमती सावित्रीबाई—आप मध्यप्रांत की प्रथम ज़मींदार-महिला हैं, जो जेल-विज़िटर नियुक्त हुई हैं। आप महिला-आंदोलन में सदैव भाग लेती रहती हैं।

श्रीमती लखजवती-लचमोबाई—आप भोर की रानी साहब थीं । पिछले दिनों आपका देहांत महाबालेश्वर में हो गया ।

डॉक्टर सी० आई० रुग्मीअम्मा—आप ऐलेपी की महिला-समिति की मंत्रिणी नियुक्त हुई हैं, और बड़े मनोयोग से अपना काम करती हैं ।

श्रीमती पूनमचंदजी राँका—आप अपने पति के साथ देश के कामों में भाग लेती हैं । आपका उत्साह सराहनीय है ।

रसिकरंजन रतूड़ी





केक



व-भर घी, पाव-भर मैदा, पाव-भर सूजी, पाव-भर दही और आधा माशा सोडा, इन सबको मिलाकर एक क़लई के बरतन में रख दीजिए। यदि जाड़े के दिन हों, तो २४ घंटे तक और यदि गर्मी के दिन हों, तो दस घंटे तक रक्खे। जब ख़मीर तैयार हो जाय, तो इसे बड़ी थाली में डाल दे। और एक तोला किशमिश, एक तोला छिले बादाम, एक तोला पिस्ता और दो-चार सफ़ेद इलायची के दाने डाल दे। सबको ख़ूब मिला ले, फिर चार घंटे पड़ा रहने दे। फिर ऐसी जगह कोयले दहकावे, जहाँ ख़मीरवाली थाली अच्छी तरह आ जाय। फिर उसे ऐसी थाली से ढँक दे कि भाप बाहर न निकले, और थाली के ऊपर भी दहकते हुए कोयले रक्खे। नीचे की आँच धीमी रहे और ऊपर की तेज़। दस मिनट बाद तैयार हो जायँगे।

कुलफ़ी की बर्फ़

टीन के पतले, छोटे-छोटे ढक्कनदार गिलास बनवावे, उसमें गरम दूध भरकर थोड़ा-सा नीबू का रस और शकर डाल दे। मुँह पर ढक्कन लगाकर आटे या उर्द की दाल से बंद कर दे। फिर उन टीन के गिलासों को घड़े में भर दे। उस घड़े में थोड़ा-सा नमक और बर्फ़ डालकर घड़े को ऊनी वस्त्र से लपेट दे। एक घंटे के बाद बर्फ़ तैयार हो जायगी।

मोहिनी पूरी

दो सेर मैदा, आध सेर घी में तीन तोला नमक, दो तोला अजवायन, एक तोला काली मिर्च मिलाकर इन सबको गरम पानी में साने, और पूरी की तरह बेलकर घी में सेक ले। अति स्वादिष्ठ बनेंगी।

भुजिया (पकौड़ी) की तरकारी

पहले बेसन के भुजिए घी में तैयार कर ले। उन्हें इमली या खटाई के शरबत में डालकर ऊपर से नमक, मिर्च, ज़ीरा आदि मसाला डाल दे। शरबत में शकर न डाले। यह बड़ी ही स्वादिष्ठ और भूख बढ़ानेवाली है। परंतु रोगी को इसे न खाना चाहिए।

राजरानीदेवी

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर ११८४ सन् १९३१ ई० इब्तिदाई

बअदालत जनाब मुंसिफ़ साहब बहादुर गोंडा मुक़ाम गोंडा

रामनाथ वल्द पराग क़ौम कोरी साकिन छपरतला परगना व ज़िला गोंडा — मुद्दई

बनाम

हाकिमसिंह — मुद्दाअलेह

बनाम हाकिमसिंह वल्द हनुमंतसिंह क़ौम चत्री साकिन मौज़ा कुरो परगना व ज़िला गोंडा हालवारिद शहर लाहौर मुहल्ला अनारकली आर्य-समाज-मंदिर, मथुरा चपरासी व रामसुमिरन के मारफ़त।

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम नालिश एक तमस्सुक की मुबलिग़ ११२) रु० के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १२ माह जनवरी सन् १९३२ ई० बवक़्त १० बजे असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ा मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे इज़हार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ १९ माह दिसंबर सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से जारी किया गया।

जज

सम्मन बग़रज़ क़रारदाद उमूर तनक़ीह तलब

मुक़द्दमा नंबरी २२५ सन् १९३१ ई०

बअदालत जनाब कुँअर रघुराज बहादुर साहब बहादुर मुंसिफ़ मुक़ाम कुंडा व ज़िला परतापगढ़।

लाला घनश्यामदास वल्द शिवबख़्शराय क़ौम अगरवाल साकिन मकंदरोगंज परगना व ज़िला परतापगढ़ — मुद्दई

बनाम

खहूरी

बनाम खहूरी वल्द सूखी क़ौम पासी साकिन मौज़ा प्यागीपूर परगना रामपूर तहसील कुंडा ज़िला परतापगढ़ — मुद्दाअलेह

वाज़े हो कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत दख़लयाबी बज़रिए .... के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १४ माह जनवरी सन् १९३२ ई० बवक़्त १० बजे असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतअल्लिक़ा मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और तुमको हिदायत की जाती है कि जुमला दस्तावेज़ात को जिन पर तुम बताईद अपने जवाबदिही के इस्तदलाल करना चाहते हो पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा तुम्हारी ग़ैर हाज़िरी में मस्मू और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ २२ माह दिसंबर सन् १९३२ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

[illegible]बीह—अगर बयानात तहरीरी की ज़रूरत हो तो लिखना चाहिए कि तुमको (या फ़र्क़ाँ फ़रीक़ के जैसी कि सूरत हो) हुक्म दिया जाता है कि बयान तहरीरी बतारीख़ ७ माह जनवरी सन् १९३[illegible] गुज़रानो।

बअदालत जनाब पंडित गिरिजाशंकर मिश्र साहब बहादुर मुंसिफ़ गोंडा

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर १९२८ सन् १९३१ ई० इब्तिदाई

बअदालत जनाब मुंसिफ़ साहब बहादुर गोंडा सीग़ा ख़फ़ीफ़ा मुक़ाम गोंडा

बाबर वल्द रामनारायण क़ौम ब्राह्मण पांडे साकिन मौज़ा भट्टाप्रेट नज़ूल गोंडो परगना व ज़िला गोंडा

मुद्दई

बनाम

दातादीन मुद्दाअलेह

बनाम दातादीन वल्द पूरन क़ौम धोबी साकिन मौज़ा भट्टाप्रेट नज़ूल गोंडा परगना व ज़िला गोंडा

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत रुक़्क़ा तमस्सुकी मुबलिग़ ११२।–) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ७ माह जनवरी सन् १९३२ ई० बवक़्त १० बजे दिन को असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ा मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ १४ माह दिसंबर सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से जारी किया गया।

जज

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर ६७० सन् १९३१ ई०

बअदालत दीवानी मुंसिफ़ी शाहाबाद मुक़ाम शाहाबाद ज़िला हरदोई

शेरसिंह वल्द तेजसिंह ठाकुर साकिन गोरा हनुआगार परगना व तहसील जलालाबाद ज़िला शाहजहाँपुर मुद्दई

बनाम

रामदयालसिंह वग़ैरह मुद्दाअलेहुम

बनाम रामदयालसिंह वल्द विशंभरसिंह व जगन्नाथसिंह व रामेश्वरसिंह व रामविलाससिंह व जसकरणसिंह पिसरान लालनसिंह व मोहनसिंह वल्द निधानसिंह अक़वाम ठाकुर साकिनान मौज़ा केंग परगना व तहसील व ज़िला शाहजहाँपुर

हरगाह मुद्दइयान ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत १०००) रु० के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ११ माह जनवरी सन् १९३२ ई० बवक़्त १० बजे असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ा मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ १६ माह दिसंबर सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से जारी किया गया।

जज

नोट—अगर बयानात तहरीरी की ज़रूरत हो लिखना चाहिए कि तुमको (या फ़र्लां फ़रीक़ को यानी जैसी हो) हुक्म दिया जाता है कि बयान तहरीरी तारीख़ ४ माह जनवरी सन् १९३२ ई० तक गुज़रानो।

द्विवेदीजी की साहित्य-ग्रंथावली

की

चार पुस्तकें

१. सुकवि-संकीर्तन	सुकवियों, कविता-प्रेमियों और कवि-कोविदों के आश्रयदाताओं के संबंध में परिचयात्मक लेख। मूल्य १।), सजिल्द १।॥)
२. अद्भुत आलाप	विचित्र कौतूहल-पूर्ण निबंध, लखनऊ-विश्व-विद्यालय में बी० ए० और सी० पी० में मैट्रिक में कोर्स। मूल्य १), सजिल्द १॥)
३. प्राचीन पंडित और कवि	आलोचनात्मक और नई खोजों से परिपूर्ण लेखों का संग्रह। मूल्य ।॥=), सजिल्द १।=)
४. वेणी-संहार	नाटक का आख्यायिका के रूप में वर्णन। मूल्य ॥=), सजिल्द १=)

बुद्धिमानी की बात

यह नहीं है कि अब-
तक आप जिस पत्रिका
में विज्ञापन छपाते
आए हों, केवल उसी में
अब भी पुरानी लकीर
पकड़े हुए विज्ञापन बरा-
बर छपाते चले जायँ।
सुधा में जिसने विज्ञापन
छपाया, उसको बहुत
लाभ हुआ। अतएव
सुधा के अगले
अंक में
विज्ञापन छपाकर आप
भी अपूर्व लाभ उठाने
से न चूकिए।

मैनेजर सुधा, लखनऊ

कवि और चित्रकार का

मधुर मिलन



शादी-विवाह आदि अवसरों पर बहू-बेटियों को उपहार देने योग्य नायाब चीज़ !



यह चित्रावली हर तरह से उपादेय बना दी गई है। चित्रों की प्रशंसा करना व्यर्थ है। इसके चित्र चित्र-कला के आदर्श उदाहरण हैं। साथ में चित्रों का परिचय सरस, ओजमयी, भाव-पूर्ण तथा प्रसाद-गुणमयी पूर्ण भाषा में दिया है, जो सोने में सुगंध का काम करता है। सभी चित्र सुंदर आर्ट-पेपर पर छपे हैं। छपाई-सफ़ाई, जिल्द-बँधाई के संबंध में कुछ न पूछिए, देखते ही बनती है। शुरू में भारतीय चित्रकला का इतिहास भी दिया गया है, जो हिंदी में एकदम नई चीज़ है !

भार्गव-चित्रावली

मूल्य २) रु०, जिल्द० २॥)





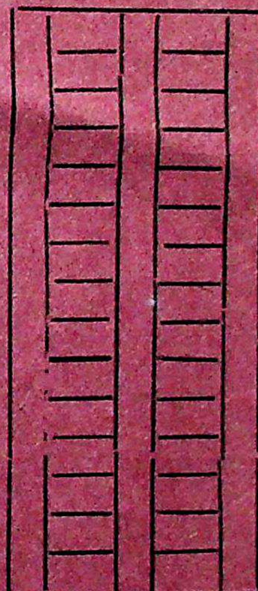
आपक
गुदाक
मतवा
से र
सुनक
बाहर
सजिल
पौने

अ द्भु त

[६–७ चित्र]

ले०, प्रो० चतुरसेनजी शास्त्री

क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि निर्जीव क़लम, रस-भरी जीवित सुंदरी की भाँति, किस प्रकार, हँसती-रोती और ठुमक-ठुमक-कर नृत्य करती है, और मन किस प्रकार उस पर मोह-मग्न होकर, उन्मत्त मोर की भाँति, नाचने लगता है ? कभी आतंक आपकी छाती में घूँसा मारकर कहेगा—"कहो, क्या देखा ?" कभी प्रेम गुद-गुदाकर आपके सोते हुए मन को जगाकर कहेगा—"उठ, उठ ओ यौवन के मतवाले !" कभी आप अपने भीतर से रोने की, कभी हँसने की ध्वनि सुनकर चौंक उठेंगे। आप आपे से बाहर हो जायँगे। मूल्य केवल १), सजिल्द १॥), स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में।





?

समय का सदुपयोग और बुद्धि का विकास कैसे हो ?

सुंदर, सरल, सुबोध साहित्य के पढ़ने से दोनो समस्याएँ हल हो जायँगी

ऐसा साहित्य कहाँ मिलेगा ?



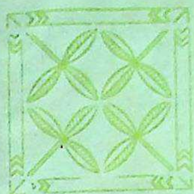
इधर-उधर भटकने की जरूरत नहीं।

फ़ौरन्—

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

को डाक-ख़र्च के लिये एक आने को टिकट भेजकर नया सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए। निकलने ही वाला है।



सचित्र

रामायण

धार्मिक ग्रंथमाला

(तुलसी-कृत)

हिंदी-साहित्य-भांडार में रामायण-सी अद्भुत पुस्तक का सुंदर रूप में न होना खटकता है। किसी की टीका बुरी है, तो किसी में क्षेपकों की भरमार है। छपाई और काग़ज़ तो बहुत ही रद्दी होता है। चित्र होते ही नहीं। होते भी हैं, तो बहुत रद्दी। इसकी पूर्ति के लिये हमने रामायण का शुद्ध अनुवाद हिंदी के सुयोग्य विद्वानों द्वारा कराया है।

यह रामायण २० खंडों में प्रकाशित होगी। प्रत्येक खंड में १०० पृष्ठ और ६-७ रंगीन चित्र रहेंगे। साइज़ सुधा का-सा भव्य होगा। मूल्य प्रति खंड १॥), होगा, पर अभी से ग्राहक बननेवाले से १।) लिया जायगा, और ५) भेजकर प्रथम ५ खंड के लिये स्थायी ग्राहक बननेवालों से केवल वही ५) अर्थात् १) प्रति खंड लिया जायगा।

कृपा कर ग्राहक बनें, और अपने इष्ट-मित्रों से भी अनुरोध करें। इस सहायता से हमारी एक योजना पूर्ण हो जायगी, और आपके हाथों में एक अनुपम ग्रंथ-रत्न आ जायगा।



संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय (रामायण-विभाग)

२३-२५, लाटूश रोड, लखनऊ

Registered No. A. 1712

श्रीदुलारेलाल भार्गव द्वारा गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ में मुद्रित और प्रकाशित